अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—173

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(परिचायक खण्ड)

लेखक

अल्फ्रेड मार्शल

अनुवादक

डा० श्रीगोपाल तिवारी

एम० ए०, डी० लिट्०

(आठवें संस्करण का अनुवाद)

'प्रकृति की गति अनियमित नहीं है।'

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रकाशकीय

उपलब्ध तथ्यों के विश्लेषणों तथा नये-नये प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। यह क्रम अटूट चलता रहता है और इस प्रकार विज्ञान के विकास की निरन्तरता का क्रम कभी भंग नहीं होता। किन्तु इसके बावजूद पुराने सिद्धान्तों में कभी आमूल परिवर्तन नहीं होता, भले ही उनकी अनुपूर्ति कर दी जाय, उनका विस्तार एवं विकास हो जाय, उनमें सुधार कर दिये जायँ अथवा उन्हें नवीन रूप प्रदान किया जाय। अर्थ-विज्ञान मे भी आर्थिक तथ्यो का संग्रह किया जाता है, उनकी व्यवस्था तथा विश्लेषण होता है और उन्हे व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने तथा ऐसे नियम निष्पादित करने के प्रयोग मे लाया जाता है जो दिन-प्रतिदिन के जीवन मे व्यक्ति और समाज का पथ-प्रदर्शन करते हैं। विश्वविदित अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने जिन आर्थिक सिद्धान्तों की स्थापना की थी, वे आज भी अति उपयोगी हैं और हमारी पीढ़ी के अर्थ-वैज्ञानिकों, विचारकों एवं अध्येताओं का मार्ग-दर्शन करने मे सर्वथा सक्षम है। उनके ये सिद्धान्त उनकी लोकप्रिय अमर कृति 'प्रिन्सिपिल्स आफ एकनामिक्स' मे समाविष्ट हैं।

उक्त पुस्तक के प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर मे मूल लेखक की भावना को यथावत् ल बनाये रखते हुए सरल एवं सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया है जिससे कि मू लेखक के अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को समझने मे कठिनाई न हो। हिन्दी माध्यम से अर्थशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन मे मार्शल के ग्रन्थ का यह हिन्दी रूपान्तर, हमे विश्वास है, अतिशय उपयोगी सिद्ध होगा और तदर्थ शिक्षकों एवं छात्रों द्वारा अपनाया जायेगा।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'
सचिव, हिन्दी समिति

प्रथम संस्करण का प्राक्कथन

आर्थिक परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है और प्रत्येक पीढ़ी अपनी समस्याओं पर अपने ही ढग से विचार करती है। इग्लैड तथा यूरोप महाद्वीप मे तथा अमेरिका में आर्थिक विषयों पर पहले की अपेक्षा अब अधिक तेजी से विचार किया जाने लगा है, किन्तु इस प्रगति से केवल यह ही अधिक स्पष्ट हुआ है कि अर्थ विज्ञान मे धीरे-धीरे तथा निरन्तर प्रगति होती है तथा होनी चाहिए। आधुनिक पीढी की सर्वोत्तम कृतियाँ वस्तुत: प्रथम दृष्टि मे पूर्ववर्ती लेखकों की कृतियों के विरोधी प्रतीत होती है, किन्तु जब कुछ समय पश्चात् ये अपने सही रूप मे देखी जाने लगी और इसमे पायी जाने वाली असंगति दूर हो जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि विज्ञान के विकास की निरंतरता का क्रम भग नही होता। नये सिद्धान्तो ने पुराने सिद्धान्तों की अनुपूर्ति की है, उनका विस्तार किया है, विकास किया है तथा उनमे कभी-कभी सुधार किये है और बहुधा उन पर पहले से भिन्न प्रकार से जोर देकर इन्हे नया रूप दिया है, किन्तु इनके फलस्वरूप उनमे बहुत कम आमूल परिवर्तन हुआ है।

इस युग की नयी समस्याओं को ध्यान मे रखकर इस काल मे लिखी गयी नयी कृतियों की सहायता से इस ग्रन्थ में पुराने सिद्धान्तों के आधुनिक रूपान्तर को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसके सामान्य विषय क्षेत्र तथा उद्देश्य को भाग 1 मे दिया गया है। इसके अन्त मे एक सक्षिप्त विवरण दिया गया है जिसमे आर्थिक अध्ययन के मुख्य विषयों पर, तथा उन मुख्य व्यावहारिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है जिन पर इसका अध्ययन आधारित है। आग्ल परम्पराओं के अनुसार यह मत प्रकट किया गया है कि अर्थ विज्ञान मे आर्थिक तथ्यों का सग्रह, उनकी व्यवस्था तथा उनका विश्लेषण किया जाता है और पर्यवेक्षण एवं अनुभव से प्राप्त ज्ञान द्वारा विभिन्न प्रकार के कारणों के तुरत एव अन्तिम परिणामो को निर्धारित किया जाता है। इसमे यह भी मत व्यक्त किया गया है कि अर्थशास्त्र के नियम साधारण प्रकार से व्यक्त की गयी प्रवृत्तियों के कथन मात्र है, न कि प्रवर्तनार्थक प्रकार से व्यक्त किये गये नैतिक नियम हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र के नियम एवं प्रणालियाँ उस सामग्री के केवल अंग मात्र है जिसे विवेक तथा साधारण समझ द्वारा व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने तथा ऐसे नियम निर्धारित करने के प्रयोग मे लाया जाता है जो जीवन का पथ प्रदर्शन कर सकें।

किन्तु अर्थशास्त्रियों को जिन बातों को ध्यान में रखना है उनमे नैतिक शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। वास्तव में ऐसे 'आर्थिक व्यक्ति' के कार्यों के सम्बन्ध मे एक गूढ विज्ञान की रचना करने के प्रयत्न किये गये है जिस पर नैतिक प्रभाव नहीं पड़ता तथा जो आर्थिक प्राप्ति के लिए स्थिरतापूर्वक तथा पूर्ण शक्ति लगाकर प्रयत्न करता है, किन्तु जो यंत्रवत् तथा स्वार्थपरता से ही कार्य करता है। किन्तु इन प्रयत्नों मे उन्हें सफलता नही मिली, और न ये प्रयत्न ही ठोस रूप मे किये गये। क्योंकि उन्होंने आर्थिक व्यक्ति को कभी भी नितान्त स्वार्थी नही माना : किसी भी व्यक्ति से यह आशा नही

की जा सकती कि वह निःस्वार्थ भाव से अपने परिवार के लिए सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्न एवं त्याग करे। प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य उद्देश्यों में पारिवारिक स्नेह की भावना को सदैव निहित समझा गया है। किन्तु यदि इनमे इन तथ्यों को सम्मिलित किया जाय तो उन अन्य सभी परहितकारी उद्देश्यों को क्यों नही शामिल किया जाय जिनका किसी समय तथा स्थान मे सभी वर्गों के लोगों पर इतना समान प्रभाव पड़ता है कि उसे सामान्य नियमों के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है। ऐसा न करने का कोई कारण नही दिखायी देता। इस भाग मे उस कार्य को सामान्य माना गया है जो कुछ विशेष दशाओ में किसी औद्योगिक वर्ग द्वारा किया जा सकता है, और उन प्रयोजनों के प्रभाव को इसमे शामिल न करने का कोई भी प्रयत्न नही किया गया है जिनका परहितकारी होने के कारण निरन्तर प्रभाव पड़ता है। इस भाग की यदि कोई अपनी विशेषता है तो वह यह है कि इसमे निरन्तरता के सिद्धान्त के इस तथा अन्य उपयोगों को प्रमुखता प्रदान की जाती है।

इस सिद्धान्त को न केवल उन प्रयोजनों के नैतिक गुणों पर लागू किया जाता है जिनका किसी व्यक्ति के लक्ष्य चयन पर प्रभाव पड़ता है, अपितु इसे उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उसकी ईमानदारी, शक्ति तथा उद्यम पर भी लागू किया जाता है। इस प्रकार इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि 'शहरी व्यक्तियों' के सुचिन्तित एवं दूरदर्शी गणनाओं पर आधारित, तथा ओज एवं योग्यता से किये गये कार्यों से लेकर उन साधारण लोगों तक के कार्यों को निरन्तर अलग-अलग श्रेणियों मे विभाजित किया गया है जिनमे अपने कार्यों को व्यावसायिक ढग से करने की न तो शक्ति है और न इच्छा ही है। बचत करने *तथा किसी निश्चित आर्थिक पुरस्कार की प्राप्ति के लिए* किसी यत्न को करने की प्रसामान्य तत्परता, या वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए सर्वोत्तम बाजारों को ढूँढने या अपने लिए एवं अपने बच्चों के लिए सर्वाधिक लाभदायक पेशे ढूँढने की सामान्य जागरूकता—ये सभी तथा इसी प्रकार के वाक्यांश किसी निर्दिष्ट समय तथा स्थान मे किसी विशेष वर्ग के सदस्यों के लिए सापेक्षाए होने चाहिए : किन्तु जब इसे एक बार समझ लिया जाय तो प्रसामान्य मूल्य का सिद्धान्त व्यावसायिक ढंग से कार्य न करने वाले वर्गों के कार्यों मे भी समान रूप से लागू होता है, भले ही यह सूक्ष्म रूप मे उसी यथार्थता से लागू नही हो सकता जितना कि यह व्यापारी या महाजन के कार्यों पर लागू होता है।

जिस प्रकार किसी प्रसामान्य आचरण तथा असामान्य माने जाने के कारण अस्थायी रूप से उपेक्षित आचरण के बीच विभाजन की कोई सूक्ष्म रेखा नही हो सकती, उसी प्रकार प्रसामान्य मूल्यों तथा 'प्रचलित' या 'बाजार' या 'आकस्मिक' मूल्यों के बीच कोई विभाजन रेखा नही होती। पश्चादुक्त वे मूल्य हैं जिनमे *किसी घटना का* प्रबल प्रभाव पड़ता है, जब कि प्रसामान्य मूल्य वे है जिन्हें विचाराधीन आर्थिक दशाओं के पूर्ण प्रभाव के लिए समय मिलने पर अन्ततोगत्वा प्राप्त किया जा सकेगा, किन्तु इन दोनो के बीच कोई दुर्गम खाई नही है। ये निरन्तर श्रेणी विभाजन के कारण एक दूसरे के समान मालूम पड़ती हैं। मण्डी मे घण्टे-घण्टे मे होने वाले परिवर्तनों पर

विचार करते समय हम जिन मूल्यों को प्रसामान्य मानते है वे उस वर्ष के इतिहास मे केवल प्रचलित उतार-चढ़ाव को ही प्रदर्शित करते है: और उस वर्ष के इतिहास के प्रसंग में प्रसामान्य माने गये मूल्य उस शताब्दी के इतिहास के प्रसग मे केवल प्रचलित मूल्य ही है। क्योंकि समय का तत्व जो कि प्रायः प्रत्येक आर्थिक समस्या की मुख्य कठिनाई का केन्द्र रहा है, स्वय भी निरपेक्ष रूप मे निरन्तर विद्यमान रहता है: प्रकृति की ओर से दीर्घ और अल्पकालों के बीच कोई निरपेक्ष विभाजन नही होता, किन्तु ये दोनों अति सूक्ष्म श्रेणी विभाजन के कारण एक दूसरे के समान मालूम पड़ती है और किसी एक समस्या के लिए समय की जिस अवधि को अल्प माना जाता है वही दूसरी समस्या की दृष्टि से दीर्घ है।

इस प्रकार दृष्टान्त के लिए लगान तथा पूँजी पर दिये जाने वाले ब्याज के बीच पाये जाने वाले अन्तर का अधिकाश भाग, विचाराधीन समयावधि के अनुसार बदलता रहा है। जिस वस्तु को *'मुक्त' या 'चल' या पूँजी के नये विनियोजनों पर मिलने वाला* ब्याज मानना उचित है उसे पूँजी के पुराने विनियोजनों पर एक प्रकार का लगान जिसे आगे आभास-लगान की सज्ञा दी गयी है—मानना उचित होगा। चल पूँजी तथा उत्पा-*दन की किसी विशेष शाखा मे 'लगी हुई' पूँजी के बीच विभाजन की* कोई सूक्ष्म रेखा नही है और न पूँजी के नये तथा पुराने विनियोजनो के बीच ही कोई सूक्ष्म रेखा होती है। प्रत्येक वर्ग धीरे-धीरे एक दूसरे मे मिल जाता है। इस प्रकार भूमि के लगान को भी स्वयं कोई विशेष वस्तु न मानकर किसी विशाल जीन्स की प्रमुख जाति माना जा सकता है, भले ही इसकी अपनी विशेषताएँ है और इसका सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों मे बड़ा महत्व है।

पुनः यद्यपि स्वयं मनुष्य मे तथा उसके द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले उपकरणों के बीच विभाजन की सूक्ष्म रेखा पायी जाती है, और यद्यपि मानवीय प्रयत्न एवं त्यागों के लिए माँग एवं सम्भरण की अपनी विशेषताएँ है, जो कि भौतिक वस्तुओं की माँग एवं उनके सम्भरण पर लागू नही होती, इस पर भी अन्त मे स्वय ये भौतिक वस्तुएँ साधारणतया मानवीय प्रयत्नो एवं त्यागो के ही परिणाम है। श्रम के मूल्य के तथा उसके द्वारा तैयार की गयी वस्तुओ से सम्बन्धित सिद्धान्तो को पृथक् नही किया जा सकता . वे तो एक महान् वस्तु के अग है। इनके बीच सूक्ष्मरूप मे जो भी भिन्नताएँ पायी जाती है वे, पता लगाये जाने पर, अधिकाश रूप मे बिलकुल भिन्न न होकर केवल मात्रा मे ही भिन्न है। जिस प्रकार पक्षियो तथा चतुष्पाद के आकार के बीच बहुत बड़ा अन्तर होने पर भी उनके ढाँचे मे समान आधारभूत कल्पना पायी जाती है, *उसी प्रकार माँग एव सम्भरण के सतुलन के सामान्य सिद्धान्त में वह 'आधारभूत'* विचार निहित है जो वितरण एव विनिमय की केन्द्रीय समस्या के विभिन्न भागों मे पाया जाता है।[1]

---

1 मेरी पत्नी तथा मेरे द्वारा सन् 1879 में प्रकाशित Economics of Industry नामक पुस्तक में इस आधारभूत एकता को प्रदर्शित करने का प्रयत्न कया गया था। वितरण के सिद्धान्त के पहले माँग एवं सम्भरण के सम्बन्धों का

निरन्तरता के सिद्धान्त का दूसरा प्रयोग शब्दों के चयन मे किया जाता है। आर्थिक पदार्थों का जिनके विषय मे अनेक सक्षिप्त एवं तीक्ष्ण तर्क दिये जा सकते हैं, सदैव ही स्पष्ट रूप मे परिभाषित वर्गो मे वर्गीकृत करने का इसलिए आकर्षण रहा है कि इसमे विद्यार्थियों की तार्किक यथार्थता तथा जनसाधारण की उन रूढ़ियों को पसन्द करने की इच्छा पूरी हो सकती है जो गम्भीर प्रतीत होने पर भी सरलतापूर्वक अपनायी जा सकती है। किन्तु इस आकर्षण से प्रभावित होने के कारण बहुत बड़ा अपकार हुआ है, और उन वस्तुओ मे भी व्यापक रूप मे काल्पनिक विभाजन किया गया है जहाँ प्रकृति ने इस प्रकार का कोई भी विभाजन नही किया था। आर्थिक सिद्धान्त जितना ही अधिक सरल तथा निरपेक्ष होगा इसे व्यावहारिक रूप मे लागू करने के प्रयत्नों से तब उतना ही अधिक भ्रम उत्पन्न होगा जब इसमे इगित विभाजन की रेखाएँ वास्तविक जीवन मे न पायी जाएँ। वास्तविक जीवन मे उन वस्तुओं के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नही है जो पूंजी है तथा जो पूंजी नही है, या जो आवश्यक आवश्यकताएँ है तथा जो आवश्यक आवश्यकताएँ नही है, या पुन. उस श्रम के बीच जो उत्पादक है तथा जो नही है।

प्रकृति के सम्बन्ध मे आर्थिक सिद्धान्त की सभी आधुनिक विचारधाराओं मे निरन्तरता का विचार पाया जाता है, चाहे इन पर जीव विज्ञान के मुख्य प्रभाव पडे हों, जिन्हे कि हर्बर्ट स्पेन्सर के लेखों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, या इतिहास तथा दर्शन का मुख्य प्रभाव पडा हो, जिसे हिगल लिखित Philosophy of History नामक पुस्तक द्वारा प्रदर्शित किया गया है, तथा जिसे यूरोप महाद्वीप मे तथा अन्यत्र नैतिक एव ऐतिहासिक अध्यापनो द्वारा प्रभावित किया गया है। इन दो प्रकार के प्रभावों का, किसी अन्य प्रभाव की अपेक्षा इस पुस्तक मे व्यक्त किये गये विचारो के सार पर अधिक प्रभाव पडा है किन्तु निरन्तरता के गणितीय विचारो के कारण (जिन्हे कुर्नो द्वारा लिखित Principles Mathematiques de la Theorie des Richesses पुस्तक मे प्रदर्शित किया गया है) इनका रूप सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। उन्होंने यह बताया कि किसी आर्थिक समस्या के विभिन्न तत्वों को कार्यकारण की किसी श्रृखला मे अर्थात् यह कि अ, ब को ब, स को निर्धारित करता है तथा आगे भी इस प्रकार एक दूसरे को निर्धारित करने वाला न मान कर परस्पर एक दूसरे को निर्धारित करता हुआ मानने मे होने वाली कठिनाई का सामना करना आवश्यक है। प्रकृति की कार्यप्रणाली जटिल है: और दीर्घकाल मे इसे सरल मानने तथा इसे साधारण तर्क वाक्यों की एक श्रृखला मे व्यक्त करने का प्रयत्न करने से कुछ भी लाभ नही होगा।

संक्षिप्त अस्थायी वर्णन दिया गया था। इसके पश्चात् समान्य तर्कप्रणाली की इस योजना को क्रमशः श्रम के उपार्जन पूंजी के ब्याज तथा प्रबन्ध के उपार्जन पर लागू किया गया। किन्तु इस विन्यास के रुख को पर्याप्तरूप से स्पष्ट नहीं किया गया, और प्रोफेसर निकोलसन के सुझाव के फलस्वरूप इस ग्रन्थ में इसे अधिक स्पष्ट में व्यक्त किया गया है।

कुर्नो के अधिक तथा वानथुनेन के उनसे कम निदेशन में मैंने इस तथ्य को अधिक महत्व दिया कि भौतिक संसार की भाँति नैतिक संसार मे भी प्रकृति के विषय मे हमारे पर्यवेक्षणों का कुछ मात्राओं से उतना सम्बन्ध नही है जितना कि इन मात्राओ में होने वाली अलग-अलग वृद्धि से है, और विशेषकर प्रत्येक वस्तु के लिए माँग वह सतत फलन है जिसका स्थिर साम्य की दशा में, सीमान्त[1] वृद्धि इसके उत्पादन की लागत मे होने वाली तदनुरूप वृद्धि से सतुलित होती है। इस सम्बन्ध मे गणितीय चिह्नों या आरेखों की सहायता के बिना निरन्तरता का स्पष्टरूप मे पूर्ण अवलोकन करना सरल नही है। पश्चादुक्त के उपयोग के लिए किसी विशेष ज्ञान की आवश्यकता नही होती और ये बहुधा गणितीय चिह्नो के उपयोग की अपेक्षा आर्थिक जीवन की दशाओं को अधिक सही रूप मे तथा अधिक सरल रूप मे व्यक्त करते है। अतः इस ग्रन्थ के फुट नोटों मे इनका अनुपूरक दृष्टान्तो के रूप मे प्रयोग किया गया है। मूल पाठ मे दिये गये तर्क उन पर कभी भी आश्रित नही है, और उन्हे छोड़ा भी जा सकता है, किन्तु अनुभव से यह प्रदर्शित हुआ है कि उनकी सहायता से उनका उपयोग न करने की अपेक्षा अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तो का अधिक ठोस रूप मे ज्ञान हो सकता है।

शुद्ध सिद्धान्त की ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जिन्हें कोई भी व्यक्ति, जिसने एक बार रेखाचित्रों का उपयोग करना सीख लिया है, कभी भी अन्य प्रकार से समझने की कोशिश नही करेगा।

आर्थिक प्रश्नों मे शुद्ध गणित का मुख्य उपयोग यह है कि इससे कोई व्यक्ति तेजी से, संक्षिप्त तथा यथार्थ रूप मे अपने उपयोग के लिए अपने कुछ विचारों को लिख सकता है: और इस निश्चय पर पहुँच सकता है कि अपने निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए उसके पास पर्याप्त और केवल पर्याप्त आधारभूत तथ्य है (अर्थात् उसके समीकरण की संख्य उसकी अज्ञात राशियों से न तो अधिक और न कम है)। किन्तु जब अनेक चिह्नों का उपयोग करना पड़ता है तो वे स्वयं लेखक के अतिरिक्त अन्य सभी के लिए दुर्बोध होते हैं। यद्यपि कुर्नो की मेधा से उनके द्वारा लिखे गये प्रत्येक चिह्न को एक नयी बौद्धिक क्रिया प्रदान होती है, और उनके समान योग्यता वाले गणितज्ञ आर्थिक सिद्धान्तो की उन कुछ कठिन समस्याओ के केन्द्र तक पहुँचने के लिए अपने लिए मार्ग तैयार कर सकते है जिनकी अभी तक केवल बाह्य सीमा पर ही प्रकाश डाला जा सका है, इस पर भी यह संदेहजनक विषय है कि क्या कोई व्यक्ति आर्थिक सिद्धान्तो के गणित के रूप मे किये गये लम्बे अनुवादो को पढ़ने मे अपना समय लगाता है। गणितीय भाषा के इन उपयोगो के कुछ नमूने जो स्वयं मेरे उद्देश्यों से सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं एक परिशिष्ट मे दिये गये है।

सिम्बर, १८९०,

---

1 मैंने वान थुनेन की Der isolirte staat, 1826–63 से 'सीमान्त' वृद्धि शब्द लिया है, और अब जर्मनी के अर्थशास्त्रियों द्वारा इसका साधारणतया उपयोग किया जाता है। जब जेवेन्स द्वारा लिखित Theory प्रकाशित हुई तो मैंने उसमें से 'अन्तिम' शब्द को ले लिया। किन्तु मैं धीरे-धीरे इस निश्चय पर पहुँच चुका हूँ कि 'सीमान्त' शब्द का प्रयोग करना अधिक उत्तम है।

आठवें संस्करण का प्राक्कथन

यह संस्करण सातवें संस्करण का ही पुनर्मुद्रण है, जो लगभग छठे संस्करण का ही पुनर्मुद्रण था, क्योंकि इसमें जो भी परिवर्तन किये गये हैं वे केवल विवरण की छोटी-छोटी बातों से ही सम्बन्धित है. इसका प्राक्कथन लगभग वही है जो कि सातवें संस्करण का था।

तीस वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में यह संकेत दिया गया था कि इस कृति को परिपूर्ण करने के लिए यथोचित समय में दूसरा ग्रन्थ प्रकाशित किया जायेगा। मैंने बहुत बड़ी योजना बनायी थी। आधुनिक पीढ़ी के अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति की लहर के साथ-साथ इस योजना के क्षेत्र का, विशेषकर वास्तविकता की ओर, विस्तार होता गया जिससे एक पीढ़ी पूर्व हुए परिवर्तनों से भी अधिक तीव्रता से तथा अधिक व्यापक रूप में परिवर्तन होने लगे। अतः कुछ ही समय पूर्व मुझे इस कृति को दो भागों में पूर्ण करने की आशा छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके पश्चात् मेरी योजना में परिवर्तन का कारण यह भी रहा है कि मैं अन्यत्र व्यस्त रहा तथा मेरी शक्ति भी कम हो गयी।

सन् 1919 में प्रकाशित Industry and Trade वास्तव में इस ग्रन्थ का ही अनुवर्तन है। (व्यापार, वाणिज्य तथा औद्योगिक भविष्य के ऊपर लिखी जाने वाली) तीसरी पुस्तक का कार्य बहुत आगे बढ़ चुका है। इन तीनों ग्रन्थों में, जहाँ तक सम्भव हो सका है, मैंने अर्थशास्त्र की सभी मुख्य समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

अतः यह ग्रन्थ अर्थ विज्ञान के अध्ययन का साधारण परिचय ही रह जाता है। यह यद्यपि सभी बातों में तो नहीं, किन्तु कुछ बातों में, रोशे तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थशास्त्र में अर्द्ध-स्वतन्त्र ग्रन्थों के वर्गों में सबसे अग्रगण्य ग्रन्थ Foundation (Grundlagen) से मिलता-जुलता है। इसमें मुद्रा, बाजारों का संगठन जैसे विशेष विषयों को शामिल नहीं किया गया है. और उद्योग के स्तर रोजगार की स्थिति तथा मजदूरी की समस्या विषयों के सम्बन्ध में इसमें मुख्यतया केवल सामान्य दशाओं पर ही विचार किया गया है।

आर्थिक विकास धीरे-धीरे हुआ है। इसकी प्रगति कभी-कभी राजनीतिक विनाश से अवरुद्ध हुई है या विपर्यस्त हुई है. किन्तु इसकी अग्रगामी गतियाँ कभी भी एकाएक उत्पन्न नहीं हुई हैं, क्योंकि पाश्चात्य संसार तथा जापान में भी यह आंशिक रूप से चेतन तथा आंशिक रूप से अचेतन आदत पर आधारित है। यद्यपि, यह प्रतीत हो सकता है कि किसी मेधावी आविष्कारक या प्रबन्धक या वित्तदाता ने किसी देश के आर्थिक ढाँचे में एकाएक संशोधन किये है, इस पर भी यह ज्ञात हुआ है कि उसके उस कार्य से, जिसे केवल ऊपरी तथा अस्थायी नहीं माना जा सकता, वह व्यापक रचनात्मक आन्दोलन ही केवल पूर्ण हो सका है जो कि बहुत लम्बे समय से सक्रिय रूप धारण कर रहा था। प्रकृति की बारम्बार दिखायी देने वाली अभिव्यक्तियाँ जो इतनी नियमानुकूल होती

हैं कि उन्हे निकट रूप मे देखा तथा समझा जा सकता है, अन्य वैज्ञानिक कृतियों के साथ-साथ आर्थिक कृतियों का भी आधार है। उन अभिव्यक्तियो पर साधारणतया बाद मे विशेषरूप से प्रकाश डाला जायेगा जो आकस्मिक है, यदाकदा दिखायी देती है तथा जिनका अवलोकन भी नहीं किया जा सकता। 'प्रकृति की गति अनियमित नही होती (Natura non facit saltum) यह लाक्षणिक महत्व का बार-बार प्रयुक्त वाक्य खण्ड अर्थशास्त्री की आधार शिलाओं पर लिखे गये किसी ग्रन्थ के लिए विशेष रूप मे उपयुक्त है।

इस ग्रन्थ तथा Industry and Trade नामक ग्रन्थ मे बडे-बडे व्यवसायो के विषय मे किये गये अध्ययन के वितरण से इस विपर्यय को निरूपित किया जा सकता है। जब उद्योग की किसी शाखा में नयी फर्मों के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रदान हो जिसमे वे प्रथम श्रेणी मे गिनी जाने लगे और कुछ समय पश्चात् उनका विनाश हो जाय तो इसमें लगी उत्पादन की प्रसामान्य लागत को किसी ऐसे प्रतिनिधि 'फर्म के प्रसग मे आँका जा सकता है जिसे किसी सुसगठित व्यक्तिगत व्यवसाय की आन्तरिक किफायतो में उचित हिस्सा प्राप्त है, तथा वे सामान्य एव बाह्य किफायतो भी प्राप्त है जो सम्पूर्ण क्षेत्र के सामूहिक सगठन के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस प्रकार की फर्म का अध्ययन तो सही रूप मे अर्थशास्त्र के आधारभूत विषय पर लिखे गये ग्रन्थ मे ही होना उचित है। उन सिद्धान्तो का अध्ययन भी इसी ग्रन्थ से सम्बन्धित है जिनके आधार पर किसी राजकीय विभाग या विशाल रेल विभाग द्वारा चलाये गये सुस्थापित एकाधिकार से मुख्यतया निजी आय की दृष्टि से वस्तुओं, सेवाओ की कीमते निर्धारित की जाती है, किन्तु इसमें ग्राहकों की हितवृद्धि को भी न्यूनाधिक मात्रा मे ध्यान मे रखा जाता है।

किन्तु जब न्यास किसी विशाल बाजार मे अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, जब विभिन्न उद्देश्यो वाले समुदायो की स्थापना की जाती है या वे भग हो जाते है, तथा जब किसी विशेष प्रतिष्ठान की नीति केवल अपनी व्यावसायिक सफलता की दृष्टि से अपितु किसी विशाल सट्टा बाजार के **दाँव-घात** के अनुसार या बाजारो के नियत्रण के लिए किये जाने वाले अभियान के अनुसार, नियत्रित हो तो इनका प्रसामान्य कार्य **गौण** महत्व का विषय बन जाता है। इस प्रकार के विषयो पर 'अर्थशास्त्र का आधारभूत विषय' पर लिखे गये किसी ग्रन्थ मे विवेचन करना उचित नही होता: ये तो इसके 'ऊपरी ढाँचे' के कुछ भाग पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ से सम्बन्धित है।

जीव विज्ञान, न कि गति विज्ञान अर्थशास्त्रियों का मक्का (प्रेरणा-स्रोत) है। किन्तु जीव विज्ञान सम्बन्धी सकल्पनाओं मे यंत्र विज्ञान की अपेक्षा अधिक जटिल है। 'अर्थशास्त्र के आधारभूत विषय' पर लिखे गये ग्रन्थ मे यान्त्रिकी समानताओ को अवश्य ही अपेक्षाकृत बड़ा स्थान मिलना चाहिए। इसमे 'साम्य' शब्द जोकि 'स्थैतिक' अवस्था के अनुरूप दशा को व्यक्त करता है, का बहुधा प्रयोग किया जाता है। इस तथ्य पर तथा आधुनिक युग मे जीवन की प्रसामान्य दशाओं पर इस ग्रन्थ मे प्रमुख रूप मे ध्यान दिये जाने के कारण, यह सुझाव मिलता है कि इसका मुख्य विचार 'स्थैतिक' है न कि 'गतिक'। किन्तु वास्तव मे यह सदैव गति प्रदान करने वाली शक्तियो से सम्बन्धित है: और इसका मूल आधार गतिक है, न कि स्थैतिक।

जिन शक्तियों पर प्रकाश डालना है वे इतनी असंख्य हैं कि एक बार कुछ ही शक्तियों पर विचार करना तथा हमारे मुख्य अध्ययन के सहायक अध्ययनों के रूप मे अनेक आंशिक हल निकालना, सर्वोत्तम होगा। इस प्रकार हम किसी वस्तु के सम्बन्ध में सम्भरण, माँग तथा कीमत के प्राथमिक सम्बन्धों को सर्वप्रथम विलग करेंगे। हम 'अन्य बातों के समान रहने पर' वाक्यांश का प्रयोग कर अन्य प्रभावों को निष्क्रिय बना देते हैं। हम यह कल्पना नही करते कि वे गतिहीन हैं, किन्तु हम कुछ समय के लिए उनके कार्य को ध्यान मे नही रखते। वैज्ञानिक युक्ति विज्ञान की अपेक्षा कही अधिक पुरानी है: यह वह प्रणाली है जिससे चेतन या अचेतन रूप में संवेदनशील व्यक्तियो ने साधारण जीवन की प्रत्येक कठिन समस्या का चिरकाल से हल निकाला है।

द्वितीय अवस्था मे सभी शक्तियो को इस प्रकार से निष्क्रिय न मानकर कुछ शक्तियो के प्रभाव का पता लगाया जाता है। कुछ विशेष वर्गो की वस्तुओ की माँग तथा उनके सम्भरण की दशाओ मे परिवर्तन होने लगता है, और उनकी जटिल पारस्परिक क्रियाओ का आभास होने लगता है। धीरे-धीरे गतिक समस्याओं का क्षेत्र बड़ा और अस्थायी स्थैतिक मान्यताओ का क्षेत्र छोटा होता जाता है। अन्त मे उत्पादन के असख्य उपादानो के बीच 'राष्ट्रीय लाभांश के वितरण' की महान केन्द्रीय समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस बीच 'प्रतिस्थापन' का गतिक सिद्धान्त निरन्तर कार्यशील रहता है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन के कुछ उपादानो की माँग तथा सम्भरण पर अप्रत्यक्ष रूप से अन्य उपादानो की तुलना मे माँग एवं सम्भरण मे होने वाले परिवर्तनो का प्रभाव पडता है चाहे वे उद्योग के दूरस्थ क्षेत्रो मे ही क्यो न लगे हों।

इस प्रकार अर्थशास्त्र का मुख्य सम्बन्ध मानव जाति से है जो परिवर्तन तथा प्रगति के लिए प्रेरित होती रही है, चाहे इसमे हित हो या अहित। गतिक—या वस्तुतः जीव विज्ञान सम्बन्धी—सकल्पनाओ के स्थान पर अंशात्मक स्थैतिक परिकल्पनाओ का अस्थायी रूप मे ही प्रयोग किया जाता है किन्तु अर्थशास्त्र का केन्द्र विषय जीवित शक्ति तथा उसकी गति होनी चाहिए, चाहे अर्थशास्त्र के आधारभूत विषय पर ही क्यो न विचार किया जा रहा हो।

सामाजिक इतिहास मे ऐसी अवस्थाएँ आयी हैं जब भूमि के ऊपर स्वामित्व होने के फलस्वरूप प्राप्त आय की विशेषताओ का ही मानवीय सम्बन्धो पर मुख्य प्रभाव पड़ा है। और सम्भवत ये पुन, महत्वपूर्ण हो सकती है। किन्तु वर्तमान युग मे भूमि तथा समुद्र मे यातायात के अल्प प्रभारों की सहायता से नये देशो की खोज के कारण 'क्रमागत उत्पत्ति ह्रास' की प्रवृत्ति इस अर्थ मे लगभग समाप्त हो चुकी है कि जिस माल्थस तथा रिकार्डो ने इस शब्द का प्रयोग किया था उस समय इंग्लैंड की साप्ताहिक मजदूरी अच्छे किस्म के गेहूँ के आधे बुशल की कीमत से भी बहुधा कम थी। इस पर भी यदि जनसंख्या की वृद्धि बहुत लम्बे समय तक वर्तमान दर की एक-चौथाई दर पर भी बढ़ती रहे तो भूमि का (जो राजकीय नियंत्रण से उतनी ही मुक्त मानी गयी जितनी की इस समय है) इसके सभी उपयोगो के लिए कुल लगान मूल्य भौतिक

सम्पत्ति के अन्य सभी रूपों से प्राप्त कुल आय से भी पुनः अधिक हो सकता है, भले ही उसमें अन्न की अपेक्षा बीस गुना श्रम क्यों न लगा हुआ हो।

अब तक के सभी संस्करणों में इन तथ्यों पर अधिकाधिक और जोर दिया गया है, और इस सहसम्बन्धित तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि उत्पादन तथा व्यापार की प्रत्येक शाखा में किसी एक सीमान्त तक उत्पादन के किसी भी उपादान का कुछ परिस्थितियों में अधिकाधिक प्रयोग करना लाभदायक होगा, किन्तु इस सीमान्त के बाद उसका प्रयोग करने से क्रमागत घटती हुई दर हमें प्रतिफल मिलेगा। जब मांग में *कुछ वृद्धि होने के साथ-साथ उत्पादन के अन्य उपादानों में भी उचित रूप में वृद्धि हो* तो इस सीमान्त के बाद क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति लागू नहीं होगी। इसी भांति इस पूरक तथ्य पर भी अधिकाधिक जोर दिया गया है कि सीमान्त का यह विचार सदैव समान या निरपेक्ष नहीं है: यह विचाराधीन समस्याओं की दशाओं, तथा विशेषकर प्रसंगगत समयावधि के अनुसार परिवर्तित होता है। ये नियम सार्वभौमिक हैं कि—

1. सीमान्त लागतों से कीमत नियंत्रित नहीं होती। 2. केवल सीमान्त पर ही कीमत को नियंत्रित करने वाली शक्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखायी देता है और 3. यह सीमान्त, जिसका दीर्घकाल तथा स्थायी परिणामों के प्रसंग से ही अध्ययन किया जाना चाहिए, उस सीमान्त से रूप एवं सीमा दोनों में ही भिन्न है *जिसका अल्पकाल तथा अस्थायी उतार-चढ़ावों के प्रसंग से ही अध्ययन किया जाना* चाहिए।

वास्तव में सीमान्त लागतों के रूप में होने वाले परिवर्तन अधिकांशतया इस सुविदित तथ्य के लिए उत्तरदायी रहे हैं कि किसी आर्थिक कारण के वे प्रभाव जिनका सरलतापूर्वक पता नहीं लगाया जा सकता, उन प्रभावों की अपेक्षा जो कि बाह्यरूप में दिखायी देते हैं तथा जिनकी ओर किसी भी व्यक्ति का ध्यान आकर्षित हो सकता है, बहुधा अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, तथा विपरीत दिशा में है। यह उन आधारभूत कठिनाइयों में से एक है जो निरन्तर विद्यमान रहीं तथा जिनके फलस्वरूप विगत काल में आर्थिक विश्लेषणों में बाधाएँ उत्पन्न हुईं। इसके पूर्ण महत्व को सम्भवतः अभी भी सामान्यतया स्वीकार नहीं किया गया है, और इसे पूर्ण रूप में समझने के लिए कहीं अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

अर्थशास्त्र की पर्याप्त रूप में भिन्न विषय-सामग्री में जहाँ तक भी सम्भव हो सकेगा इस नये विश्लेषण से धीरे-धीरे तथा अस्थायी रूप में अर्थशास्त्र में अल्पवृद्धि के विज्ञान (जिसे साधारणतया अवकलन गणित कहा जाता है) की उन प्रणालियों को लागू करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनके फलस्वरूप मनुष्य ने आधुनिक समय में भौतिक प्रकृति के ऊपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में नियंत्रण प्राप्त किया है। यह विश्लेषण अभी भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। इसके न तो कोई कट्टर मत हैं, और न कोई निश्चित रूढ़िवादिता ही है। इसमें अभी भी पूर्ण रूप से निश्चित पारिभाषिक शब्दों का संग्रह करने का अवसर भी नहीं मिल सका और शब्दों के सर्वोत्तम प्रयोग तथा अन्य गौण विषयों में कुछ न कुछ मतभेद होना इसके विकास का अच्छा

चिह्न है। वास्तव में उन लोगों में जो इस नयी प्रणाली से रचनात्मक कार्य कर रहे हैं मुख्य-मुख्य बातों मे उल्लेखनीय समानता एवं मतैक्य है, और विशेषकर उन बातों मे मतैक्य है जिनसे भौतिक शास्त्र के अधिक सरल तथा अधिक निश्चित और इसलिए अधिक प्रगतिशील समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव हुआ है। दूसरी पीढ़ी के समाप्त होने के पूर्व आर्थिक खोज के उस सीमित, किन्तु महत्वपूर्ण, क्षेत्र मे इसके प्रभुत्व के विषय मे सम्भवतः फिर कभी विवाद नहीं रहेगा।

इस ग्रन्थ के सभी संस्करणों मे मेरी पत्नी ने हर स्थान मे मेरी सहायता की है तथा मुझे सलाह दी है। प्रत्येक संस्करण मे उनकी सलाह उनकी सावधानी तथा उनके निर्णय के लिए मैं आभारी हूँ। डा० कीन्स तथा मि० एल० एल० प्राइस ने प्रथम संस्करण के प्रूफों को पढा तथा मुझे बडी सहायता दी। मि० एम० डब्ल्यू० फ्लक्स ने भी मुझे बड़ी सहायता दी है। उन अनेक लोगों ने जिन्होंने मुझे विशेष विषयों मे कभी-कभी तो अनेक संस्करणों मे, जो सहायता की ह उनमे विशेषकर प्रोफेसर एश्ले, कैनन, एजवर्थ, हैवरफील्ड, पीगू तथा टासिग का, तथा डा० वैरी, मि० सी० आर० फे, और स्वर्गीय प्रोफेसर सिजविक के नाम उल्लेखनीय है।

बैलिअल क्रौफ्ट,
6, मेडिंगले रोड, कैम्ब्रिज।
अक्टूबर, 1920

विषय-सूची

भाग 1

प्राथमिक सर्वेक्षण

भाग 2

कुछ आधारभूत विचार

भाग 3

आवश्यकताएं तथा उनकी संतुष्टि

के लिए आवश्यक सेवाएँ। 6. व्यवसायी के लड़के को व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए इतने लाभ प्राप्त होते हैं कि व्यावसायिक व्यक्तियों की एक जाति ही बन सकती है। इस परिणाम के न निकलने के कारण। 7. वैयक्तिक साझेदारी। 8, 9. संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ। राजकीय उपक्रम। 10. सहकारी संघ। लाभ-विभाजन। 11. श्रमिक के प्रगति के अवसर। पूँजी के अभाव के कारण उसके मार्ग मे उतना गतिरोध उत्पन्न नहीं होता जितना कि प्रथम दृष्टि मे दिखायी देता है, किन्तु ऋण-निधि तीव्रता से बढ रही है। व्यवसाय की बढ़ती हुई जटिलता उसके मार्ग मे बाधक है। 12. योग्य व्यवसायी अपनी पूँजी को तत्परतापूर्वक बढ़ाने का प्रयत्न करता है, और जो व्यवसायी योग्य नहीं होता उसका व्यवसाय जितना ही बढ़ा होगा वह अपनी पूँजी को साधारणतया उतनी ही तेजी से गँवा देगा। इन दोशक्तियो से पूँजी का इसके उचित उपयोग के लिए अपेक्षित योग्यता के अनुसार समायोजन होता है। इंग्लैंड जैसे देश में पूँजी के साथ-साथ व्यावसायिक योग्यता की सम्भरणकीमपर्याप्त रूप से निश्चित रहती है। पृष्ठ 291–310

अध्याय 13. निष्कर्ष। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्तियों का सह-सम्बन्ध: 1. इस भाग के बाद में आने वाले अध्यायों का संक्षिप्त विवरण। 2. उत्पादन की लागत ऐसे प्रतिनिधि फर्म की लेनी चाहिए जिसे सामान्य रूप मे उत्पादन की निश्चित मात्रा मे आन्तरिक एवं बाह्य किफायतें प्राप्त हों। क्रमागत उत्पत्ति समता नियम तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम। 3. जनसंख्या मे वृद्धि साधारणतया सामूहिक कार्य कुशलता मे होने वाली आनुपातिक वृद्धि से अधिक होती है। पृष्ठ 311–317

भाग 5

मांग, सम्भरण तथा मूल्य के सामान्य सम्बन्ध

अध्याय 1. परिचायक। आधार पर विचार: 1. प्रतिकूल शक्तियों के संतुलन के जीव-विज्ञान तथा यंत्र-विज्ञान सम्बन्धी विचार। इस भाग का विषय-क्षेत्र। 2. बाजार की परिभाषा। 3 दूरी के सम्बन्ध में बाजार की परिसीमाएँ। किसी वस्तु के बाजार की सीमा को प्रभावित करने वाली सामान्य दशाएँ। वर्गीकरण तथा प्रतिचयन सम्बन्ध औचित्य। सुवाह्यता। 4. अधिक सुसंगठित बाजार। 5. छोटे बाजार पर भी सुदूर स्थानों का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। 6. समय के सम्बन्ध में बाजार की परिसीमाएँ। पृष्ठ 318–324

अध्याय 2. माँग तथा सम्भरण का अस्थायी साम्य: 1. इच्छा तथा प्रयत्न के बीच साम्य। आकस्मिक वस्तु-विनिमय मे सामन्यता कोई भी सही साम्य नहीं होता। 2. स्थानीय अन्न बाजार में साधारणतया सही साम्य की स्थिति पायी जाती है, भले ही यह अस्थायी ही क्यों न हो। 3. प्रायः अन्न बाजार मे द्रव्य की आवश्यकता की तीव्रता में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होते, किन्तु श्रम बाजार मे अवश्य ही परिवर्तन होते है। परिशिष्ट 'च' देखिए। पृष्ठ 325–330

अध्याय 3. असामान्य माँग तथा संभरण का साम्य: 1. प्रायः जो वस्तुएँ अधिक

नाशवान नहीं होती उनके क्रय-विक्रय पर भविष्य सम्बन्धी गणनाओं का प्रभाव पड़ता है। 2. उत्पादन की वास्तविक तथा द्रव्यिक लागत। उत्पादन के खर्चे। उत्पादन के कारक। 3. प्रतिस्थापन सिद्धान्त। 4. प्रतिनिधि फर्म की उत्पादन लागत। 5. सम्भरण सारणी। 6 साम्य-मात्रा तथा साम्य-कीमत। किसी वस्तु की सम्भरण कीमत तथा उसकी वास्तविक उत्पादन लागत के बीच सम्बन्ध की शिथिलता। प्रसामान्य साम्य की स्थिति का सही महत्व। 'दीर्घ काल में' वाक्यांश का अर्थ। 7. अल्पकाल में मूल्य पर तुष्टिगुण का प्रभाव अधिक पड़ता है, किन्तु इस पर दीर्घकाल में उत्पादन की लागत का अधिक प्रभाव पड़ता है।

पृष्ठ 331–343

अध्याय 4. आय के साधनों का विनियोजन तथा वितरण · 1. अपने उपयोग के लिए किसी वस्तु को तैयार करने वाले व्यक्ति द्वारा किये गये पूँजी के विनियोजन को निर्धारित करने वाले प्रयोजन। भावी परितुष्टियों का वर्तमान परितुष्टियों के साथ सतुलन। 2. विगत के परिव्ययों एव प्राप्तियों का संचयन तथा भावी प्राप्तियों एव परिव्ययों की कटौती। चालू लेखा तथा पूँजीगत लेखा पर किये जाने वाले व्यय के बीच अन्तर प्रदर्शित करने की कठिनाई। 3. लाभकारिता का वह सीमान्त जिस पर प्रतिस्थापन सिद्धान्त लागू होता है, किसी एक दिशा मे खींची गयी रेखा पर स्थित बिन्दु नहीं है, अपितु यह वह रेखा है जो अनेक दिशाओं की ओर जाने वाली रेखाओं को विभक्त करती है। 4. घरेलू तथा व्यावसायिक अर्थव्यवस्था मे आय के साधनों के वितरण का सहसम्बन्ध। 5, 6. मूल्य तथा अनुपूरक लागतों के बीच विभाजन प्रसंगगत उद्यम की अवधि के अनुसार बदलता रहता है: और मूल्य तथा सीमान्त लागतों के सम्बन्धों के अध्ययन मे यह अन्तर ही मुख्य कठिनाई का कारण है। पृष्ठ 344–355

अध्याय 5 दीर्घ एवं अल्पकाल के संदर्भ में प्रसामान्य माँग तथा संभरण का साम्य, (पूर्वानुबद्ध) : 1. प्रसामान्य शब्द की लोच का प्रचलित तथा शैक्षणिक प्रयोग 2,3. प्रसामान्य मूल्य की जटिल समस्या का अनेक भागों मे विच्छेद कर अध्ययन किया जाना चाहिए। उस स्थिर अवस्था की कल्पना का सर्वप्रथम अध्ययन, जिसमे किये जाने वाले सशोधनों से हम सहायक स्थैतिक मान्यताओं द्वारा इस समस्या पर विचार कर सकते हैं। 4, 5. इस प्रकार प्रसामान्य माँग तथा सम्भरण के साम्य के विषय मे किये गये अध्ययनों को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन अध्ययनों मे विभाजित कर सकते है। 6. अल्पकाल मे उत्पादन के उपकरणों का भंडार प्राय: निश्चित रहता है और उनके उपयोग की मात्रा मे माँग के अनुसार परिवर्तन होता है। 7. किन्तु दीर्घकाल मे उत्पादन के उपकरणों को उन उपकरणों द्वारा उत्पादित माँग के अनुसार समायोजित किया जाता है। उत्पादन की इकाई एक प्रक्रिया है, न कि वस्तुओं का पार्सल। 8. मूल्य की समस्याओं का स्थूल वर्गीकरण। पृष्ठ 356–371

अध्याय 6. संयुक्त तथा मिश्रित माँग। संयुक्त तथा मिश्रित संभरण : 1. अप्रत्यक्ष व्युत्पन्न माँग: संयुक्त माँग। भवन निर्माण व्यवसाय मे श्रम विवाद से लिया

भाग 6

राष्ट्रीय आय का वितरण

के ब्याज के सम्बन्ध में भी बहुत अंशों में ऐसा ही था। एँडम स्मिथ तथा माल्थास ने इन बेलोच मान्यताओं में आंशिक रूप से कुछ लोचकता प्रदान की। वितरण पर माँग के प्रभाव के परिकल्पित दृष्टान्तों की श्रृंखला जिसे किसी ऐसे समाज से लिया गया है जिसमें पूँजी तथा श्रम के बीच के सम्बन्धों के विषय में कोई भी समस्या न हो। 7. किसी ऐसे प्रामान्य कार्य-कुशलता वाले श्रमिक द्वारा जिसे रोजगार देने में कोई भी परोक्ष व्यय नही करना पड़ता, किन्तु जिसके कार्य से मालिक को कुछ भी लाभ प्राप्त नही होता विशेष प्रकार के श्रम के निवल उत्पाद को स्पष्ट किया जा सकता है। 8. सामान्य रूप में पूँजी के लिए माँग। 9. अस्थायी संक्षिप्त वितरण। 10. राष्ट्रीय आय या लाभांश की अधिक व्यापक परिभाषा। पृष्ठ 489–508

अध्याय 2. **वितरण का प्रारम्भिक सर्वेक्षण, (पूर्वानुबद्ध)** : 1. उत्पादन के कारकों के सम्भरण को प्रभावित करने वाले कारणों का वितरण पर माँग को प्रभावित करने वाले कारणों के समतुल्य प्रभाव पड़ता है। 2–4. भाग 4 मे विवेचन किये गये उन कारणों का पुनरावर्तन जो विभिन्न प्रकार के श्रम एवं पूँजी के संभरण पर प्रभाव डालते है। पारिश्रमिक मे वृद्धि का किसी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले श्रम पर पड़ने वाला अनियमित प्रभाव। प्रसामान्य मजदूरी तथा जनसंख्या की गणना एव ओज की, विशेषकर पश्चादुक्त की, वृद्धि मे अधिक नियमित समानता। बचत करने से होने वाले लाभों का पूँजी तथा धन के नये रूपों के संचयन पर पड़ने वाले सामान्य प्रभाव। 5. वितरण मे माँग के प्रभाव तथा उत्पादन मे किसी व्यक्ति के आय के साधनों के प्रयोग, दोनों दृष्टियों मे, भूमि को पूँजी का विशेष रूप मानना चाहिए: किन्तु यह वितरण मे सम्भरण की शक्तियों के उस प्रसामान्य प्रभाव के सम्बन्ध में पूँजी से भिन्न आधार पर आधारित है, जिस पर हम इस अध्याय में विचार कर रहे है। तर्क की एक दशा का अस्थायी निष्कर्ष। 7. विभिन्न वर्गों के श्रमिकों का उपार्जन तथा उनकी कार्य-कुशलता का परस्पर सम्बन्ध। 8. हम इस पूरे अध्ययन में उद्यम, ज्ञान तथा प्रतिस्पर्द्धा की स्वतंत्रता को वस्तुतः उतने से अधिक नही मानते जितना कि इन विशेष वर्गों के श्रमिकों, मालिकों इत्यादि के लिए विचाराधीन समय एवं स्थान पर अपेक्षित है। 9. सामान्य श्रम तथा सामान्य पूँजी के बीच सम्बन्धों पर विचार। पूँजी से श्रम को सहायता मिलती है और यह रोजगार के क्षेत्र मे श्रम के साथ प्रतिस्पर्द्धा करती है: किन्तु इस वाक्यांश का सतर्कतापूर्वक विश्लेषण करना चाहिए। 10. वह सीमित अर्थ जिसमें यह कहना सही है कि मजदूरी पूँजीपति द्वारा श्रमिकों को उनके द्वारा तैयार की गयी वस्तुओं के विक्रय के पूर्व किये गये भुगतान पर निर्भर है। परिशिष्ट ञ, ट देखिए। पृष्ठ 509–526

अध्याय 3. **श्रम का उपार्जन** : 1. अध्याय 3-10 का विषय-क्षेत्र। 2. प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप समान प्रकार के रोजगारो मे साप्ताहिक मजदूरी की दरें बराबर बराबर नही होती, किन्तु ये श्रमिक की कार्य-कुशलता के अनुपात में होती हैं। समयानुसार उपार्जन। उजरत के रूप मे भुगतान। कार्य-कुशलता उपार्जन।

समयानुसार उपार्जनों में समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु कार्य-कुशलता के अनुसार प्राप्त उपार्जनों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है। 3, 4. वास्तविक मजदूरी तथा नकद मजदूरी। विचाराधीन श्रेणी के श्रम के उपभोग के विशेष सदम मे द्रव्य की क्रयशक्ति मे परिवर्तनों के लिए तथा व्यापारिक खर्चों और सभी आकस्मिक लाभ एवं हानियों के लिए अवश्य ही गुंजाइश रखनी चाहिए। 5. आशिक रूप से वस्तुओं के रूप में भुगतान की जाने वाली मजदूरी। जिन्स अदायगी पद्धति। 6. सफलता की अनिश्चितता तथा रोजगार की अनियमितता 7. अनुपूरक उपार्जन। पारिवारिक उपार्जन। 8. किसी पेशे का आकर्षण केवल इससे प्राप्त होने वाले द्रव्यिक उपार्जन पर नहीं, अपितु इससे प्राप्त निवल लाभ पर निर्भर है। वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय आचरण का प्रभाव। निम्नतम स्तर के श्रमिकों की विशेष दशाएँ: पृष्ठ 527–539

अध्याय 4. श्रम का उपार्जन (पूर्वानुबद्ध): 1. श्रम के सम्बन्ध में माँग एवं सम्भरण के कार्य की अनेक विशेषताओं का महत्व उनके प्रभावों के संचय पर बहुत निर्भर है। इस प्रकार यह प्रथा के प्रभाव के अनुरूप है। 2–4. पहली विशेषता श्रमिक अपना कार्य बेचता है किन्तु स्वयं उसकी अपनी कोई कीमत नहीं होती। परिणामस्वरूप उसमें पूँजी का विनियोजन उसके माता-पिताओं के साधनों, उनकी दूरदर्शिता तथा निस्वार्थ भावना से सीमित है। जीविका अर्जन के प्रारम्भ का महत्व। नैतिक शक्तियों का प्रभाव। 5. दूसरी विशेषता। श्रमिक को उसके कार्य से पृथक नहीं किया जा सकता। 6. तीसरी एवं चौथी विशेषताएँ। श्रम नाशवान है, और इसके विक्रेता को सौदाकारी में बहुत हानि उठानी पड़ती है। पृष्ठ 540–549

अध्याय 5. श्रम का उपार्जन, (पूर्वानुबद्ध). 1. श्रम की पाँचवी विशेषता विशेषीकृत योग्यता के अतिरिक्त सम्भरण में लगने वाली लम्बी समयावधि है। 2. माता-पिताओं को अपने बच्चों के लिए व्यवसायों का चयन करते समय सम्पूर्ण पीढ़ी को दृष्टि में रखना चाहिए। भविष्य के पूर्वानुमान की कठिनाइयाँ। 3. सामान्य योग्यता के लिए बढ़ती हुई माँग के परिणामस्वरूप प्रौढ श्रमिकों का महत्व बढ़ता जा रहा है। 4–6. असामान्य मूल्य के सदर्भ में दीर्घ एवं अल्पकालीन विभेद का सार। कुशलता एवं योग्यता से प्राप्त विशेष उपार्जन में तथा उस उपार्जन में होने वाले उतार-चढ़ाव में अन्तर जिससे किसी विशेष कार्य में लगने वाले श्रम की क्षतिपूर्ति होती है। 7. दुर्लभ प्राकृतिक योग्यताओं से प्राप्त उपार्जन पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण में लगने वाली लागत से अधिक होता है और यह कुछ दृष्टियों में लगान से मिलता जुलता है। पृष्ठ 550–557

अध्याय 6. पूँजी पर ब्याज: 1–3. हाल ही में ब्याज के सिद्धान्त के अनेक सूक्ष्म विवरणों में सुधार हुए हैं किन्तु इस सिद्धान्त में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है मध्ययुगों में, तथा रौडबर्टस एवं मार्क्स की इसके विषय में गलत धारणा थी। 4, 5. ऋणी द्वारा भुगतान किये जाने वाले सकल ब्याज में वास्तविक तथा वैयक्तिक दोनों प्रकार के जोखिम के लिए बीमा, प्रबन्ध का कुछ उपार्जन तथा

का मुख्य सिद्धान्त प्रायः भू-पट्टे की सभी प्रणालियों पर लागू होता है। किन्तु आधुनिक आंग्ल-पद्धति में भूस्वामी तथा काश्तकार के हिस्सों के बीच पायी जाने वाले विभाजन को स्थूल रेखा विज्ञान के लिए भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। परिशिष्ट 'ट' देखिए।

लिए भविष्य में प्राप्त होने वाले आय को बन्धक रखने के लिए बाजार कहाँ तक सुलभ है। 2, 3. पिछली शताब्दी में इंग्लैंड के विदेशी व्यापार के कारण आराम एवं विलासिता की वस्तुएँ प्राप्त करने की क्षमता बढ़ गयी और हाल ही में उसकी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने की क्षमता में बहुत वृद्धि हुई है। उसे विनिर्माण की प्रगति के फलस्वरूप जो प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हुए हैं वे प्रथम दृष्टि में जितने दिखायी देते हैं उससे कम ही हैं, किन्तु यातायात के नये साधनों के फलस्वरूप प्राप्त लाभ अपेक्षाकृत अधिक हैं। अन्न, मांस, निवास कक्ष, ईंधन, वस्त्र, जल, प्रकाश, समाचार तथा भ्रमण के श्रम मूल्यों में परिवर्तन। 6–8. प्रगति के कारण इंग्लैंड की शहरी तथा ग्रामीण दोनों ही प्रकार की भूमि के श्रम मूल्य में वृद्धि हुई है, यद्यपि इसके फलस्वरूप अधिकांश भौतिक उपकरणों के मूल्य में कमी हो गयी है। पूंजी में वृद्धि के फलस्वरूप इंग्लैंड की आनुपातिक आय में कमी हो गयी है, किन्तु कुल आय में कमी नहीं हुई है। 9, 10. विभिन्न औद्योगिक वर्गों के उपार्जनों में होने वाले परिवर्तनों का रूप तथा उनके कारण। 11. असाधारण योग्यता का उपार्जन। प्रगति के फलस्वरूप मजदूरी में प्रायः जितनी वृद्धि समझी जाती है इससे इसमें अधिक वृद्धि हुई है और इससे स्वतन्त्र श्रम के नियोजन की अस्थिरता बढ़ने की अपेक्षा संभवतः कम हो गयी है। पृष्ठ 643–661

अध्याय 13. प्रगति का जीवन के स्तरों से सम्बन्ध: 1, 2. क्रियाओं तथा आवश्यकताओं के स्तर: जीवन तथा आराम के स्तर। आराम के स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप इंग्लैंड में एक शताब्दी पूर्व जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करने में मजदूरी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई होती: किन्तु अन्य देशों से भोजन तथा कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो जाने के कारण इंग्लैंड में इस दिशा में बहुत कम प्रगति हुई। 3–6. कार्य के घण्टों में कमी कर क्रियाओं को नियंत्रित करने के प्रयत्न। कार्य के घण्टों का होना बहुत क्षयकारी है, किन्तु कार्य के साधारण घण्टों में कमी करने से प्रायः उत्पादन में कमी हो जायेगी। अतः चाहे इसके तुरन्त प्रभाव के कारण रोजगार में वृद्धि ही क्यों न हो, इससे शीघ्र ही अच्छी मजदूरी वाले रोजगार में तब तक कमी होती रहेगी जब तक इस आराम की अवधि का उच्चतर एवं बड़ी से बड़ी क्रियाओं के विकास के लिए उपयोग न किया जाय। पूंजी के बहिर्गमन से उत्पन्न संकट। पर्यवेक्षण पर आधारित तथ्यों के वास्तविक कारणों को निर्दिष्ट करने की कठिनाई। तुरन्त तथा अन्तिम परिणाम बहुधा विपरीत दिशाओं में होते हैं। 7–9. व्यापारिक संघों का मूल उद्देश्य जितना मजदूरी में वृद्धि करना था उतना ही कामगरों की स्वतन्त्रता तथा उनके जीवन के स्तर में वृद्धि करना था। इस प्रयत्न की सफलता उनके मुख्य शस्त्र—सार्वजनिक नियम—के महत्व का साक्षी है। किन्तु उस नियम का कठोर रूप में पालन करने से कार्य में मिथ्या मानकी कारण होने के कारण उद्यम बाधाएँ उत्पन्न होने, नयी पूंजी के व्यवसाय से दूर भागने और शेष देशवासियों के साथ-साथ श्रमिक वर्गों को अन्य प्रकार से क्षति पहुँचने की सम्भावना है। 10. द्रव्य की क्रय-शक्ति से, और विशेषकर साख में परिवर्तनों से, सम्बन्धित कठिनाइयाँ। 11–15. सामाजिक प्रगति की

शम्भावना के विषय में अस्थायी निष्कर्ष। राष्ट्रीय लाभांश के समान विभाजन के फलस्वरूप अनेक दस्तकार परिवारों की आय कम हो जायेगी। निम्न वर्गीय लोगों को विशेष सुविधाएँ प्रदान करने की आवश्यकता है: किन्तु अकुशल श्रम की मजदूरी को बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय सभी वर्गों के लोगों को आचरण तथा मेधा की इतनी गहन शिक्षा देना है जिससे एक ओर केवल अकुशल कार्य ही कर सकने वाले लोगो की संख्या मे बहुत कमी हो जाय तथा दूसरी ओर उस उच्चतर रचनात्मक कल्पना वाला कार्य कर सकने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो सके जो प्रकृति के ऊपर मानव विजय का मुख्य साधन है। किन्तु वास्तविक अर्थ में जीवन के ऊँचे स्तर पर तब तक नहीं पहुँचा जा सकता जब तक मनुष्य अवकाश का सदुपयोग करना न सीख ले। यह इन अनेक संकेतों में से एक है कि तीव्र आर्थिक परिवर्तनों से उस समय बुराई उत्पन्न होती है जब धीरे-धीरे होने वाले उस चारित्रिक परिवर्तन से ये परिवर्तन अधिक हो जाते हैं जो मानव जाति को युगों-युगों की स्वार्थपरायणता एवं संघर्ष द्वारा उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ है। पृष्ठ 662–693

परिशिष्ट (क)–स्वतन्त्र उद्योग तथा उद्यम का विकास: 1. सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं में, जिनकी कि गर्म जलवायु वाले देशों मे अवश्य ही अनेक अवस्थाएँ रही हैं, भौतिक कारणों का सार्वधिक प्रभाव पड़ता है। 2. स्वामित्व विभाजन के कारण प्रथा की शक्ति सुदृढ़ हो जाती है जिससे परिवर्तन के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होता है। 3. यूनान देशवासियो ने पूर्वीय संस्कृति में उत्तरीय देश की शक्ति का समावेश किया, किन्तु उन्होने उद्योगों को विशेषकर दासों का कार्य समझा। 4. रोम तथा आधुनिक संसार में आर्थिक दशाओ के बीच जो समरूपता दिखायी देती है वह ऊपरी समरूपता है। किन्तु बाद मे यूनानी अधिवक्ताओं के जितेन्द्रिय दर्शन तथा सर्वदेशीय अनुभव का आर्थिक विचार धारा पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। 5. ट्यूटानी लोगों की उन लोगों से ज्ञान प्राप्त करने की गति मन्द थी जिन पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी: सरासीनियों ने ज्ञान प्राप्त करने की परम्परा को जीवित देखा। 6, 7. लोगों द्वारा स्वायत्त शासन केवल शहरों मे ही बना रहा। 8. शूरवीरता तथा चर्च का प्रभाव। विशाल सेनाओं की वृद्धि के फलस्वरूप स्वतंत्र शहर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। किन्तु मुद्रण, ईसाई धर्मान्दोलन तथा नये ससार की खोज के फलस्वरूप प्रगति की आशाएँ पुनः बढ़ गयीं। 9. स्पेन के प्रायद्वीप को समद्री खोजों के लाभ सर्वप्रथम प्राप्त हुए, किन्तु ये शीघ्र ही हालैंड, फ्रान्स तथा इंग्लैंड को भी प्राप्त होने लगे। 10. आंग्ल लोगों के चरित्र मे व्यवस्थित कार्य करने की मेधा सर्वप्रथम दिखायी दी। कृषि की पूंजीगत संस्थाओं ने विनिर्माण का मार्गदर्शन किया। 11, 12. ईसाई धर्मान्दोलन का प्रभाव। 13. इंग्लैंड के उद्योग में समद्र पार उन उपभोक्ताओं की संख्या मे वृद्धि के फलस्वरूप प्रगति हुई जिन्हें सरल ढंग की बनी हुई चीजों की बहुत बड़े परिणाम मे आवश्यकता थी। उपक्रामियों ने उद्योग का निरीक्षण किये बिना सर्वप्रथम सम्भरण को ही व्यवस्थित किया किन्तु

बाद में अपने कारीगरों को फैक्टरियों में काम पर लगाया। 14, 15. इसके थी बाद विनिर्माण के कार्य में लगा हुआ श्रम थोक में मजदूरी पर नियुक्त किया गया। इस संस्था की अनेक बुराइयाँ थीं, किन्तु इनमें से अनेक बुराइयाँ अन्य कारणों के फलस्वरूप थीं। जब कि इस नयी प्रणाली के कारण ही इंग्लैंड फ्रान्स की सेनाओं के अधिकार में चले जाने से बच गया। 16, 17. अब तार तथा मुद्रणालयों ने इन बुराइयों को दूर करने के उपाय ढूँढ निकाले हैं, और हम अब धीरे-धीरे सामूहिक कार्य के उन रूपों की ओर बढ रहे हैं जो दृढ आत्म-अनुशासित व्यक्तित्व के कारण पहले से उच्चतर स्तर के होंगे। पृष्ठ 694–728

परिशिष्ट (ख)—अर्थ विज्ञान का विकास: 1. आधुनिक अर्थ विज्ञान प्राचीन विचारधारा का प्रत्यक्ष रूप में तो थोडा और अप्रत्यक्ष रूप में बहुत अधिक ऋणी रहा है। वणिकवादियों ने व्यापार पर प्रारम्भ में लगाये गये नियंत्रणों में कुछ ढील दी। 2, 3. कृषि अर्थशास्त्री। एडम स्मिथ ने उनके मुक्त व्यापार के सिद्धान्त का विकास किया और मूल्य के सिद्धान्त में ऐसे सामान्य केन्द्र को पाया जिससे अर्थ विज्ञान में समरूपता आयी। 4, 5 उनके बाद के विचारकों ने तथ्यों की अवहेलना की, भले ही उनमें से कुछ लोगों का तर्क की निगमन प्रणाली की ओर रुझान था। 6—8. इस पर भी उन्होंने इस बात के लिए अधिक गुंजाइश नहीं रखी कि मनुष्य का आचरण उसकी परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। इस दिशा में समाजवादी कामनाओं एवं जीव-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों का प्रभाव। जानस्टूवर्ट मिल। आधुनिक विचारधारा की विशेषताएँ। पृष्ठ 729–748

परिशिष्ट (ग)—अर्थशास्त्र का विषयक्षेत्र तथा इसकी प्रणाली: 1. एक एकीकृत सामाजिक विज्ञान वांछनीय है, किन्तु इसे प्राप्त करना सम्भव नहीं। काम्टे द्वारा दिये गये सुझावों का महत्व तथा उनके प्रत्याख्यान की कमियाँ। 2. अर्थशास्त्र, भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान की प्रणालियाँ। 3. स्पष्टीकरण तथा पूर्व सूचना समान प्रकार की, किन्तु विपरीत दिशा की प्रक्रिया है। विगत तथ्यों की केवल उन व्याख्याओं से भविष्य का अच्छा मार्ग दर्शन हो सकता है जो कि गहन विश्लेषण पर आधारित हैं। 4—6. अप्रशिक्षित व्यावहारिक समझ से बहुधा गहन विश्लेषण में सहायता मिलती है: किन्तु इससे कदाचित् गूढ कारणों का पता लगाया जा सकता है, और विशेषकर कारणों के कारण का पता लगाना कठिन है। विज्ञान की प्रणाली के कार्य। पृष्ठ 749–761

परिशिष्ट (घ)—अर्थशास्त्र में गढ़ तर्कों का प्रयोग :1. अर्थशास्त्र में निगमन तर्क प्रणाली का लगातार प्रयोग नहीं किया जा सकता। गणितीय प्रशिक्षण का रूप तथा इसकी परिसीमाएँ। 2, 3. किसी वैज्ञानिक कार्य में रचनात्मक कल्पना का विशेष महत्व है :इसकी शक्ति गूढ प्रकल्पना के विकास में प्रदर्शित नहीं होती, अपितु यह किसी विस्तृत क्षेत्र में वास्तविक आर्थिक शक्तियों के असंख्य प्रभावों में सहसम्बन्ध करने में दृष्टिगोचर होती है। पृष्ट 762–765

परिशिष्ट (ङ)—पूँजी की परिभाषाएँ: 1. व्यापारिक पूँजी में वह सम्पूर्ण धन शामिल नहीं होता जिससे श्रम को रोजगार मिलता है। 2, 3. पूर्वेक्षा तथा उत्पा-

दकता के दो आवश्यक गुणों के सापेक्षिक महत्व के विषय में विवाद पैदा करने की निरर्थकता। पृष्ठ 766–773

परिशिष्ट (च)—वस्तु विनिमय: वस्तु विनिमय में उस स्थिति की अपेक्षा, जिसमें द्रव्य का उपयोग होता है बाजार में सौदाकारी की अनिश्चितताएँ अधिक होती हैं। इसका आंशिक कारण यह है कि मनुष्य साधारणतया मूल्य को निश्चित मात्रा (न कि निश्चित प्रतिशत) को उसके सीमान्त तुष्टिगुणों में बहुत अधिक परिवर्तन किये बिना द्रव्य के रूप मे ले दे सकता है, किन्तु किसी एक वस्तु में इसका आदान-प्रदान करने से ऐसा सम्भव नही है। पृष्ठ 774–777

परिशिष्ट (छ)—स्थानीय शुल्कों का आपात तथा नीति सम्बन्धी कुछ सुझाव: 1. किसी शुल्क के अन्तिम आपात की मात्रा जनसंख्या के प्रवासी होने या न होने, और शुल्क के दुर्वह या हितकारी होने पर बहुत निर्भर है। परिस्थितियों में तीव्रता-पूर्वक परिवर्तन होने के कारण सही रूप में पूर्वानुमान लगाना असम्भव हो जाता है। 2. किसी सम्पत्ति का 'इमारती मूल्य' तथा स्थल मूल्य दोनों मिल कर उसके पूर्ण मूल्य के उस समय बराबर होते हैं जब इमारत उस स्थल के उपयुक्त हो, अन्यथा नही। 3. स्थल मूल्यों पर लगने वाले दुर्वह कर मुख्यतया मालिकों को ही देने पडते हैं: यदि उनका पहले से अनुमान न लगाया जा सकता हो तो वे पट्टेदारों को देने पड़ते हैं। 4, किन्तु इमारती मूल्यों पर लगने वाले वे दुर्वह कर जो देश भर मे समान दर पर लगाये जाते हैं मुख्यतया अधिभोगी को देने पड़ते है। असाधारण रूप से अधिक स्थानीय दुर्वह शुल्क अधिकांशतया मालिक (या पट्टेदार) को ही देने पडते हैं, चाहे ये इमारती मूल्यों पर ही क्यों न लगाये गये हों। 5. पुराने शुल्कों तथा करों को अधिभोगी से वसूल किये जाने पर इनके भार का वितरण बहुत कम प्रभावित होता है: किन्तु दुर्वह शुल्कों मे एकाएक वृद्धि होने के फलस्वरूप कर वसूल करने की वर्तमान पद्धति मे अधिभोगी पर, विशेषकर यदि वह दुकानदार हो, अत्यन्त भार पड़ता है। 6. खाली इमारती स्थलों पर उनके पूँजीगत मूल्य के आधार पर कर निर्धारित करना और इन करों को आंशिक रूप में इमारत की अपेक्षा स्थल मूल्यों के आधार पर स्थानान्तरित करना उस समय हितकारी होगा जब इनकी दर में उत्तरोत्तर वृद्धि हो और इमारतों की ऊँचाई तथा इनके आगे पीछे खुला स्थान छोडने के विषय में कोई बड़े कड़े नियम बनाये गये हों। 7. ग्रामीण शुल्कों के विषय मे कुछ अन्य पर्यवेक्षण । 8, 9. कुछ व्यावहारिक सुझाव । भूमि के सम्भरण की स्थायी परिसीमाओं तथा सामूहिक कार्य का इसके वर्तमान मूल्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ने के कारण कर के उद्देश्यों से भूमि को एक पृथक् श्रेणी मे वर्गीकृत करने की आवश्यकता है।

पृष्ठ 778–792

परिशिष्ट (ज)—क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि के सम्बन्ध में स्थैतिकीय कल्पनाओं के प्रयोग की परिसीमाएं: 1–4. बेलोच सम्भरण सारणी की परिकल्पना द्वारा स्थायी तथा अस्थायी साम्य की अनेक स्थितियाँ सम्भव है। किन्तु क्रमागत उत्पत्ति के सम्बन्ध मे यह नियम वास्तविक दशाओ से इतना भिन्न है कि इसे केवल प्रयोगात्मक

भाग 1
प्राथमिक सर्वेक्षण

अध्याय I

भूमिका

§1. राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था अथवा अर्थ-शास्त्र में मानव जाति के साधारण जीवन सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इसमें व्यक्ति तथा समाज के उन कार्यों का विश्लेषण किया जाता है जिनका समृद्धि के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति तथा उनके उपयोग से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

अर्थशास्त्र धन का अध्ययन है और मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।

इस प्रकार यह एक ओर तो धन का अध्ययन है, और दूसरी ओर, जो अधिक महत्वपूर्ण पहलू है, यह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है; क्योंकि मनुष्य का आचरण अन्य किसी कार्य की अपेक्षा उसके दैनिक कार्य तथा उससे प्राप्त होने वाले भौतिक साधनों से ढलता है। वास्तव मे विश्व के इतिहास की रचना के दो प्रमुख माध्यम धार्मिक और आर्थिक ही रहे है। यद्यपि कहीं-कही अल्प काल के लिए सैनिक उत्साह (Ardour) अथवा कला की भावना प्रधान रही है, किन्तु धार्मिक एवं आर्थिक प्रभावों की किसी भी समय प्रमुखता कम नही हुई है और वे प्रायः अन्य सभी प्रभावों के समन्वय के बावजूद भी सदैव अधिक प्रभावशाली रहे है। यद्यपि धार्मिक प्रयोजन आर्थिक प्रयोजनों से अधिक गहन है, किन्तु जीवन के व्यापक भाग पर उनका कदाचित् ही प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है; क्योंकि अधिकांशतया किसी मनुष्य का मस्तिष्क जितने समय तक सबसे उत्तम ढग से काम करता है उससे कही अधिक समय तक उसका मन उस व्यवसाय में लगा रहता है जिससे वह अपनी आजीविका कमाता है। इस अवधि मे अपने कार्य मे अपनी मेधा (Faculties) के उपयोग करने के ढंग और इससे उत्पन्न विचार एवं भावनाओ से तथा कार्यरत सहयोगियों के, चाहे वे मालिक हों या कर्मचारी, संसर्ग से उसके चरित्र का निर्माण होता है।

मनुष्य का आचरण उसके दैनिक कार्य-कलाप से बनता है।

बहुधा मनुष्य के चरित्र पर उसकी आय की मात्रा का आय अर्जित करने के ढंग की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम प्रभाव नही पडता। जब किसी परिवार की वार्षिक आय एक हजार पौंड या पाँच हजार पौंड हो तो इससे परिवार के सम्पूर्ण जीवन मे बहुत कम अन्तर आयेगा, किन्तु जब आय 30 पौंड या 150 पौंड हो तो इससे बहुत अधिक फर्क पड़ जायेगा: क्योंकि 150 पौंड से परिवार के पूर्ण जीवन के लिए भौतिक सुविधाएँ मिल सकती है, जबकि वे 30 पौंड से नही मिल सकती। यह सत्य है कि धर्म, पारिवारिक स्नेह और मित्रता से गरीब लोगों को भी अपनी उन अनेक मेधाओं के विकास का अवसर मिल सकता है जो परम आनन्द के मूल

गरीबी हीनता का कारण है।

स्रोत है। किन्तु जो परिस्थितियाँ अत्यधिक दरिद्रता को घेरे रहती है वे ही, विशेषकर अधिक घने बसे हुए स्थानो मे, उच्च भावनाओ का विनाश करने लगती है। हमारे बडे शहरों के निम्न-वर्ग (Residium) के लोगो को मित्रता के लिए थोडा ही अवसर मिलता है। वे सुशीलता और शान्ति के विषय मे कुछ भी नही जानते और पारिवारिक जीवन की एकता के बारे मे तो बहुत ही कम जानते हैं तथा धार्मिक भावना तो बहुधा उनमे पायी ही नही जाती। निस्सन्देह उनके शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकार आशिक रूप मे गरीबी के अतिरिक्त अन्य कारणो से भी होते है, किन्तु इनका मुख्य कारण गरीबी ही है।

इन निम्न-वर्ग के लोगो के अतिरिक्त शहरो एव गाँवो मे एक ऐसा वृहत् जनसमूह रहता ह जो अपर्याप्त भोजन, वस्त्र और निवास-स्थान की परिस्थितियो मे पला है, जो अपने विद्याध्ययन को पहले ही छोड चुका है जिससे कि वह मजदूरी के लिए काम करने जा सके, जो अपूर्ण विकसित शरीर से लम्बे घण्टो तक थकान पैदा करने वाले कठोर परिश्रम मे लगा हुआ है और इसीलिए उच्च कोटि की मानसिक शक्तियो के विकास के लिए उसके पास कोई समय नही होता है। उसका जीवन निश्चय ही अस्वस्थ या दुखी नही है। ईश्वर और मनुष्य के प्रति अनुराग मे आनन्दित होकर, और शायद विचारो की कुछ प्राकृतिक शुद्धता को धारण किये हुए, इस जनसमूह के लोग ऐसा जीवन-यापन करते है जो उन अनेक लोगो से कही कम अपूर्ण होता है जिनके पास भौतिक सम्पत्ति अधिक है। इस सबके अतिरिक्त उनकी निर्धनता उनके लिए घोर अभिशाप है। यहा तक कि स्वस्थ रहने पर भी उनकी थकान प्राय कष्टदायक होती है और उनके आनन्द के साधन थोडे ही होते है। बीमारी आने पर तो निर्धनता जनित क्लेश 10 गुना बढ जाता है। यद्यपि सन्तोष की भावना इन क्लेशो का आदी बनाने मे सहायक होती है, तो भी बहुत-से ऐसे क्लेश होते है जिनका निवारण नही किया जा सकता। काम के भार से दबे, कम शिक्षित, थके-माँदे और चिन्ताओं से ग्रस्त, शान्ति और विश्राम से वचित, उनको कोई अवसर ही नही मिलता कि वे अपनी मानसिक शक्तियो का भलीभाँति सदुपयोग कर सके।

क्या हम इस धारणा को नष्ट नहीं कर सकते कि निर्धनता आवश्यक है?

यद्यपि आमतौर पर गरीबी मे पायी जाने वाली अनेक बुराइयो का इसमे होना आवश्यक नही है, फिर भी मोटे तौर पर यह कह सकते है कि 'निर्धन लोगों के विनाश का कारण उनकी गरीबी है", और निर्धनता के कारणो का अध्ययन मानव-जाति के एक बडे भाग के पतन के कारणो का अध्ययन है।

§2 दासत्व को अरस्तू (Aristotle) ने प्रकृति का अध्यादेश (Ordinance) माना था, और सम्भवत प्राचीन काल मे स्वय दासो का भी यही विचार था। मानव की प्रतिष्ठा की घोषणा ईसाई धर्म ने की. इसे गत 100 वर्षो मे तेजी से स्वीकार कर लिया गया है, इधर वर्तमान मे शिक्षा के विस्तार के कारण ही अब हम इस वाक्याश का पूरा-पूरा अभिप्राय समझने लगे है। तो क्या अब हम गम्भीरतापूर्वक यह जानने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं कि 'निम्न श्रेणियो' का होना कहाँ तक आवश्यक है, अर्थात् क्या एक बडी सख्या मे लोगो को अपने-अपने जन्म से ही निरन्तर कठोर परिश्रम करना पड़ेगा जिससे वे दूसरो के सभ्य और सुसस्कृत जीवन की आवश्यकताएँ पूरी

कर सकें, जबकि स्वयं उन्हे निर्धनता और मेहनत के कारण उस जीवन मे कोई भी हिस्सा या अंश पाने से वंचित रखा जाय।

उन्नीसवी शताब्दी में श्रमिक वर्गो की सतत प्रगति से इस आशा को अधिक सहारा मिला है कि दरिद्रता और अज्ञान का शनैः-शनैः लोप हो सकता है। वाष्प-चालित यंत्रों ने उनको अत्यधिक थकान उत्पन्न करनेवाले और अपमानजनक कार्यों से छुटकारा दे दिया है। मजदूरी मे वृद्धि हो गयी है, शिक्षा मे सुधार हुआ है तथा यह अधिक सामान्य बन रही है। रेल और मुद्रण यन्त्र ने देश के विभिन्न भागों में एक ही व्यापार मे लगे हुए लोगो को यह सामर्थ्य दी है कि वे एक दूसरे से सरलतापूर्वक-सम्पर्क स्थापित करे और विस्तृत तथा दूरदर्शी नीति की रूपरेखा निर्धारित करे तथा उसे कार्यान्वित करे। दूसरी ओर, निपुण कार्य के लिए बढ़ती हुई माँग ने शिल्पी वर्ग की सख्या मे इतनी तेजी से वृद्धि की है कि उनकी सख्या उन लोगो से अधिक हो गयी है जिनका कार्य पूर्णतया अकुशल है। शिल्पी वर्ग का एक बड़ा भाग अब मूल रूप मे प्रयुक्त अर्थ मे 'निम्न श्रेणी' मे नही रहा और उनमे से कुछ तो इस प्रकार का अधिक सभ्य एव प्रतिष्ठित जीवन बिता रहे है, जो एक शताब्दी पूर्व उच्च श्रेणी के अधिकाश लोगो तक को उपलब्ध न था।

इस परिवर्तन ने अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा इस प्रश्न मे व्यावहारिक रुचि पैदा की है कि क्या वास्तव मे यह असम्भव है कि ससार मे सभी को एक सुसस्कृत जीवन विताने के लिए अनुकूल अवसर मिलना चाहिए, जोकि निर्धनता के दु:खो और यंत्रो के अत्यधिक उपयोग के कारण श्रम के स्थिरताजनक प्रभावो से मुक्त हो। युग के बढ़ते हुए उत्साह के कारण यह प्रश्न अग्रिम स्थान ग्रहण कर रहा है।

इस विषय का प्रतिपादन पूर्णतया अर्थ-विज्ञान से नही किया जा सकता, क्योंकि इसका उत्तर आशिक रूप मे मानव-स्वभाव की नैतिक एव राजनीतिक क्षमताओं पर निर्भर है और इन विषयो की जानकारी के लिए अर्थशास्त्री के पास कोई विशेष साधन नही है। उसे वैसा ही करना चाहिए जैसा अन्य लोग करते है, और जितना अच्छा अनुमान वह लगा सकता है, लगाना चाहिए। लेकिन अधिकाशत. इसका हल यथार्थ-ताओ और तर्कों पर निर्भर है जोकि अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत है, और यही बात आर्थिक अध्ययनो को विशेष एव उच्चकोटि की रोचकता प्रदान करती है।

अर्थविज्ञान के मन्द विकास के कारण।

§3. यह आशा की जाती होगी कि मानवजाति की समृद्धि के प्राणभूत प्रश्नो का अध्ययन करने वाले विज्ञान मे प्रत्येक युग के सुयोग्य विचारकों का ध्यान आकर्षित हुआ होगा और उसमे अब पर्याप्त प्रगति हुई होगी। इस कार्य की कठिनाई को दृष्टि में रखते हुए वास्तविक स्थिति यह है कि वैज्ञानिक अर्थशास्त्रियो की सख्या सापेक्षिक रूप मे हमेशा कम रही है, जिससे यह विज्ञान अब भी बाल्यावस्था मे ही है। इसका एक कारण यह है कि मनुष्य की उच्च समृद्धि को अर्थशास्त्र का आधार मानने के विषय की उपेक्षा की गयी है। वस्तुत. जिस विज्ञान की विषय-सामग्री धन हो उसे बहुधा बहुत से छात्र घृणा की दृष्टि से देखते है, क्योकि जो ज्ञान की वृद्धि के लिए भरसक प्रयत्न करते है वे धन होने के कारण उस पर अधिकार प्राप्त करने की कदाचित् ही अधिक चिन्ता करते है।

आर्थिक दशाओं की परिवर्तन-शीलता।

किन्तु इसका एक मुख्य कारण यह है कि औद्योगिक जीवन की जिन अनेक दशाओं, उत्पत्ति, वितरण तथा उपभोग की जिन अनेक प्रणालियो से आधुनिक अर्थशास्त्र सम्बन्धित है, वे स्वय ही निकट भूत की देन है। यह सत्य है कि विषय-सार मे कुछ दिशाओं मे इतना अधिक परिवर्तन नही होता जितना कि बाह्य रूप मे होता है, और आधुनिक आर्थिक सिद्धान्तो का बहुत-सा भाग पिछड़ी हुई जातियो पर घटित किया जा सकता है। किन्तु रूप मे बहुत विभिन्नता होने से विषय-सार मे समानता को ढूंढ़ निकालना सुगम नहा, और रूप मे परिवर्तनो के फलस्वरूप सभी युगो के लेखको को उतना लाभ नही हो पाता जितना वे अपने पूर्वजो की कृतियो से अन्यथा उठा सकते थे।

आधुनिक जीवन की आर्थिक दशाएँ अधिक जटिल होते हुए भी प्राचीन काल की दशाआ की अपेक्षा अनेक प्रकार से अधिक निश्चित हैं। व्यवसाय को अन्य रोजगारो से अधिक स्पष्ट रूप मे अलग किया जा सकता है। व्यक्तियो के, दूसरो तथा अपने समुदाय की तुलना मे, अधिकार अधिक विशद रूप मे परिभाषित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त रीति-रिवाज के बन्धनो से मुक्ति, स्वच्छन्द कार्य, निरन्तर सावधानी बर्तने तथा अविरत उद्यम करने मे वृद्धि से विभिन्न वस्तुओ तथा विभिन्न प्रकार के श्रम के सापेक्षिक मूल्यो को निर्धारित करने वाले कारणो को एक नया, यथार्थ और उत्कृष्ट रूप मिला है।

वर्तमान औद्योगिक जीवन का आधारभूत गुण प्रतिस्पर्धा नहीं है,

§4. बहुधा यह व्यक्त किया जाता है कि औद्योगिक जीवन का वर्तमान रूप प्राचीन काल का अपेक्षा अधिक प्रतिस्पर्धापूर्ण है। किन्तु यह कथन पूर्णतया सन्तोषजनक नही है। प्रतिस्पर्धा का ठीक-ठीक अभिप्राय तो एक व्यक्ति का दूसरे से किसी वस्तु के क्रय तथा विक्रय की घोषणा के विशेष प्रसग मे होड़ करना है। इस प्रकार की होड़ निस्सन्देह पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र है तथा अधिक विस्तार मे फैली है, किन्तु कोई भी पूणरूप से यह कह सकता है कि यह आधुनिक औद्योगिक जीवन के आधारभूत गुणो का केवल एक गौण तथा आकस्मिक परिणाम है।

अपितु आत्म-निर्भरता, स्वतंत्रता, सोच-समझ कर चुनाव करना तथा पूर्व विवेक है।

ऐसा कोई भी एक शब्द नही जो इन गुणो को यथोचित रूप मे व्यक्त कर सके। जैसा कि हम अभी देखेंगे, ये गुण है—अपने लिए उद्यम छाँटने की निश्चित स्वतन्त्रता तथा आदत, आत्म-निर्भरता, तर्क-वितर्क किन्तु फिर भी चुनाव तथा निर्णय मे शीघ्रता, भविष्य के बारे म पूर्व अनुमान लगाने तथा सुदूर लक्ष्यो के अनुसार अपना मार्ग निर्धारण करने की आदत। ये लोगो मे पारस्परिक प्रतियोगिता करवा सकते है और करवाते भी है, किन्तु दूसरी ओर, इनसे सहयोग तथा सभी प्रकार की अच्छाइयो एव बुराइयो का समन्वय हो सकता है, और वास्तव मे अब इनकी प्रवृत्ति ऐसी ही प्रतीत हो रही है। सामूहिक स्वामित्व एव सामूहिक कार्य की ओर प्रवृत्तियां आदिकालीन प्रवृत्तियो की अपेक्षा बिलकुल ही भिन्न है, क्योकि ये रीति-रिवाजो और पड़ोसियो से निश्चेष्ट ससर्ग के लिए रुझान होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न नही हुई है, अपितु ये प्रत्येक व्यक्ति की उस आचरण-पद्धति के स्वतन्त्र चुनाव के परिणाम है जो सावधानी से तर्क-वितर्क करने के पश्चात् उसे अपने लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए, चाहे वे स्वार्थयुक्त हो अथवा स्वार्थरहित हो, सबसे अधिक उपयोगी प्रतीत होती है।

'प्रतिस्पर्धा'

'प्रतिस्पर्द्धा' शब्द से एक कटु गुण का आभास होता है, और इसका अभिप्राय

एक विशेष स्वार्थपरायणता तथा दूसरों की समृद्धि के प्रति उदासीनता से होने लगा है। अब यह यथाकथित प्रतीत होता है कि उद्योग के प्रारम्भिक रूपों में आधुनिक रूपों की अपेक्षा जानबूझ कर रहने वाली स्वार्थ-भावना कम थी किन्तु तब जानबूझ कर रहने वाली निष्काम भावनाएँ भी कम थीं। यदि देखा जाय तो आधुनिक युग का विशेष गुण किसी चीज को जान-बूझ कर करना है, न कि स्वार्थपरायणता है।

से अभिप्राय बहुत अधिक तथा बहुत कम से है। मनुष्य अब प्रारम्भिक समयों की अपेक्षा अधिक स्वार्थी नहीं है।

उदाहरणार्थ, आदिकालीन समाज में जहाँ प्रथा परिवार की सीमाओं को विस्तृत करती है और पड़ोसियों के प्रति कुछ कर्तव्यों को निर्धारित करती है, जिनका बाद की सभ्यता में लोप हो गया है, वहाँ यह अपरिचित लोगों के प्रति क्रूरता का व्यवहार भी नियत करती है। आधुनिक समाज में पारिवारिक दया-भाव के बन्धन अधिक प्रबल होते जाते हैं, भले ही ये एक संकुचित क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं। पड़ोसियों को तो लगभग अजनबियों की भाँति ही समझा जाता है। इन दोनों के साथ साधारण व्यवहार में निष्कलकता और ईमानदारी का वर्तमान स्तर आदिकालीन लोगों द्वारा अपने पड़ोसियों के साथ किये गये व्यवहार में प्रदर्शित निष्कलकता एवं ईमानदारी के स्तर से निम्न है: किन्तु यह उन लोगों द्वारा अजनबियों के साथ किये गये व्यवहार के स्तर से पर्याप्त रूप में उच्चस्तर का है। इस प्रकार पड़ोस से मित्रता के बन्धन में ही केवल ढील हुई है: किन्तु पारिवारिक स्नेह के बन्धन विभिन्न प्रकार से अधिक सुदृढ़ हो गये हैं। पारिवारिक बन्धन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुदृढ़ है, परिवार का स्नेह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आत्म-त्याग एवं भक्ति की भावना को उत्पन्न करता है, और उन लोगों के प्रति जो हमारे लिए अपरिचित हैं दया-भाव का बढ़ना एक प्रकार की सुनिश्चित निरस्वार्थपरता है जो आधुनिक काल के पूर्व कभी भी विद्यमान न थी। जो देश आधुनिक प्रतियोगिता का जन्म-स्थल रहा है वह अन्य किसी देश की अपेक्षा अपनी आय का अधिकांश भाग दान-पुण्य के कार्य में लगाता है, अत. पश्चिमी द्वीप समूहों में दासों की स्वतन्त्रता खरीदने में उसने 2 करोड़ पौंड खर्च किये।

प्रत्येक युग में कवियों एवं समाज-सुधारकों ने पुराने समय के वीरों की मनोहर कहानियों द्वारा अपने-अपने समयों के लोगों को एक उत्कृष्ट जीवन बिताने के लिए उकसाने का प्रयत्न किया, किन्तु सावधानी से पढ़े जाने पर न तो ऐतिहासिक अभिलेख और न पिछड़ी हुई जातियों के तत्कालीन पर्यवेक्षण इस मत की पुष्टि करते हैं कि मनुष्य, सब कुछ विचारते हुए, पहले की अपेक्षा अधिक कठोर और अधिक निष्ठुर हो गया है। अथवा, यह कि उन अवस्थाओं में जहाँ कानून और प्रथा ने उसे अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करने के लिए स्वतन्त्र रखा है वह दूसरों के भले के लिए निजी समृद्धि को त्यागने के लिए अब की अपेक्षा पहले ही अधिक उद्यत था। उन जातियों में जिनकी बौद्धिक शक्ति अन्य किसी दिशा में नहीं बढ़ी है और जिनके पास एक आधुनिक व्यवसायी की प्रारम्भिक क्षमता नहीं है, बहुत-से ऐसे लोग पाये जायेंगे जो किसी बाजार में अपने पड़ोसियों के साथ भी कड़ी सौदागरी दिखलाने में अपनी कुबुद्धि प्रदर्शित करते हैं। कोई भी व्यापारी अभागे लोगों की मजदूरियों से लाभ उठाने में उतने अविवेकी नहीं हैं जितने कि पूर्व में स्थित देशों के अनाज के व्यापारी और महाजन थे।

मनुष्य जितना बेईमान पहले था उससे इस समय अधिक बेईमान नहीं है।

वस्तुत. आधुनिक युग ने व्यापार मे बेईमानी के प्रसार के लिए नये अवसर प्रदान किये है। ज्ञान के प्रसार ने वस्तुएँ वास्तव मे जैसी है उससे अधिक सुन्दर दिखायी देने की नयी विधियाँ ढूंढ निकाली है और मिलावट करने के लिए बहुत-से नये ढगो को सम्भव बना दिया है। *अब उत्पादक अन्तिम उपभोक्ता से बहुत दूर हो गया है और* उसके अवैध कार्य के लिए उसे वही अविलम्बित एव कठोर दड नही मिलता जो अपने पडोसियो मे किसी के साथ झूठा छल-कपट करने पर उस व्यक्ति को मिलता है जिसे अपने जन्मगत गाँव मे ही रहना है और वही मरना है। निस्सन्देह छल-कपट करने के लिए पहले से अधिक अवसर मिलने लगे है, किन्तु यह सोचना तर्कसगत नही है कि *अब लोग ऐसे अवसरो से पहले की अपेक्षा अधिक लाभ उठाते है।* इसके विपरीत व्यवसाय की आधुनिक रीतियो का अभिप्राय एक ओर विश्वासपूर्णता की आदत तथा दूसरी ओर छल-कपट के प्रलोभन को रोकने की शक्ति से है जो पिछड़ी हुई जातियां के लोगो मे नही पायी जाती। साधारण सत्य और व्यक्तिगत निष्ठा के उदाहरण सभी सामाजिक दशाओ मे मिलते है, किन्तु जिन लोगो ने किसी पिछडे हुए देश मे आधुनिक प्रकार के उद्योगो को स्थापित करने का प्रयास किया है, उन्होने यह देखा है कि विश्वसनीय पदो की पूर्ति के लिए वे उस देश की जनता पर निर्भर नही रह सकते। किसी ऐसे कार्य के लिए जिसमे कि बड़ी कुशलता तथा मानसिक योग्यता की आवश्यकता है बाहर से प्राप्त लोगो की सहायता को समाप्त करना कठिन है, किन्तु किसी ऐसे कार्य मे बाह्य सहायता को समाप्त करना और भी अधिक कठिन है जहाँ कि दृढ चारित्रिक बल की आवश्यकता है। *जब हम मध्य युग के ऐसे अनुचित कार्यो की विषमताओ पर विचार करते है,* जिनका उस समय पता नहीं लग सका था, तो यह प्रतीत होता है कि उस काल के व्यापार मे वस्तु मिलावट एव धोखादेही आश्चर्यजनक मात्रा मे विद्यमान थी।

अतीत के 'स्वर्ण' युग-के स्वप्न बड़े सुन्दर किन्तु भ्रान्तिजनक है।

मान स्वर्ण धातु की प्रबलता के अनुभव होने के पूर्व सभ्यता की प्रत्येक अवस्था मे जब भी मुद्रा की शक्ति प्रधान रही कवियो ने काव्य एव गद्य मे अतीत को निश्चय ही एक 'स्वर्ण युग' चित्रित करने मे आनन्द का अनुभव किया है। उनका वर्णनात्मक चित्रण बहुत सुन्दर रहा है और इससे उत्तम कल्पनाओ एव सकल्पो की वृद्धि हुई है, किन्तु इसमे ऐतिहासिक सत्य बहुत कम है। छोटे-छोटे जनसमुदाय, जिनकी साधारण आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए प्रकृति की ओर से पर्याप्त सुविधाएँ मिली थी, वास्तव मे कुछ समय तक अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति की चिन्ताओ से लगभग मुक्त रहे है, तथा निकृष्ट महत्वाकाक्षाओ की ओर प्रलोभित नही हुए है। किन्तु जब कभी हम अपने समय मे आदिकालीन अवस्था के एक घने बसे जनसमूह के आन्तरिक जीवन की गहराई तक पहुँचते हैं तो हमे पहले की अपेक्षा आवश्यकता मे सकीर्णता एव निष्ठुरता अधिक दिखाई देती है. और हमे पहले कभी इतने कम कष्ट से विस्तृत रूप मे उतना आराम मिलता नही दिखाई देता जितना कि आज-कल पाश्चात्य जगत मे देखने को मिलता है। अत. हमे आधुनिक सभ्यता को जन्म देने वाली शक्तियो को किसी ऐसे नाम से सम्बोधित नही करना चाहिए जो कलक का द्योतक हो।

आधुनिक

सम्भवतः इस प्रकार के सुझाव को प्रतियोगिता से सम्बद्ध करना तर्कसगत नही

प्रतियोगिता दो प्रकार की है: क्रियात्मक और विध्वंसात्मक।

है, किन्तु यथार्थ रूप में ऐसा ही किया जाता है। वस्तुतः जब प्रतियोगिता को दोषारोपित किया जाता है तो इसके असामाजिक रूपों को प्रबल बना दिया जाता है और इसके उन अन्य रूपों को जानने का बहुत कम प्रयत्न किया जाता है, जो क्रियाशीलता और नैसर्गिकता के पोषण मे इतने आवश्यक है कि उनका अन्त समाज की समृद्धि के लिए वास्तव मे हानिकारक हो सकता है। व्यापारी अथवा उत्पादक जब यह देखते है कि कोई प्रतियोगी वस्तुओ को उस कीमत से कम दाम पर बेच रहा है जिस पर उसको अच्छा लाभ हो सकता है तो वे उसके इस दुर्व्यवहार से क्रुद्ध हो जाते हैं और उसके द्वारा किये गये अपकार के विषय मे शिकायत करते है, चाहे यह सत्य हो कि व्यापारियों की अपेक्षा वस्तुओं को खरीदने वालों की जरूरत अधिक हो। व्यापारियों के प्रतियोगियों की क्रियाशीलता तथा साधन-सम्पन्नता एक सामाजिक लाभ है। अनेक दशाओं मे 'प्रतियोगिता का नियत्रण' एक भ्रान्तिजनक शब्द है जिसमे उत्पादकों के विशिष्ट अधिकार-प्राप्त वर्ग का सगठन छिपा रहता है जो बहुधा अपने से निम्न श्रेणी के किसी योग्य व्यक्ति के उन्नति करने के प्रयासो को विफल करने के लिए अपनी सयुक्त शक्ति का प्रयोग करता है। समाज-विरोधी प्रतियोगिता को नष्ट करने के बहाने वे अपने प्रतियोगी को अपने लिए जीवन-वृत्ति के एक ऐसे नये मार्ग निर्धारण की स्वतत्रता से वचित करते है जिससे उस वस्तु के उपभोक्ताओ को प्राप्त होने वाली सेवाएँ प्रतियोगिता का विरोध करने वाले अपेक्षाकृत छोटे से समुदाय को पहुँचने वाली क्षति से अधिक होती है।

परहित के लिए दिये जाने वाले आदर्श-सहयोग से क्रियात्मक प्रतियोगिता भी कम लाभदायक है।

यदि प्रतियोगिता का लोक-कल्याण के लिए किये गये निःस्वार्थ कार्य मे दृढ सहयोग से व्यतिरेक दिखाया जाय तो प्रतियोगिता के सर्वोत्तम रूप भी अपेक्षाकृत बुरे ही होगे, जबकि इसके अधिक कठोर और तुच्छ रूप घृणाजनक होंगे। उस लोक मे जहाँ सभी लोग पूर्णतया सदाचारी हों प्रतियोगिता का कोई अस्तित्व नही रहेगा; व्यक्तिगत स्वामित्व एव व्यक्तिगत अधिकार के हर एक रूप की भी यही दशा होगी। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने कर्तव्यो को सोचेगा, और कोई भी यह इच्छा नही करेगा कि जीवन के आराम तथा विलास मे उसका भाग उसके पडोसियो से अधिक हो। सबल उत्पादक सकट की किंचित् मात्रा को सरलता से सहन कर सकेंगे और इसलिए वे यह चाहेगे कि उनके अधिक निर्बल पडोसी कम उत्पादन करने पर भी अधिक उपभोग करे। इस विचार मे आनन्दित वे पूर्ण सामर्थ्य, आविष्कार-कुशलता एव अपने आतुर उपक्रम से सर्वसाधारण के हित के लिए कार्य करेंगे और मानव जाति हर दिशा मे प्रकृति से सघर्ष करने मे विजयी होगी। कवि एव स्वप्नदर्शी इस प्रकार के स्वर्ण-युग की ओर देख सकते है। किन्तु उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के परिचालन मे मानव-स्वभाव मे अभी भी जो अपूर्णताएँ पायी जाती है उनकी उपेक्षा करना अधिक मूर्खतापूर्ण होगा।

सामान्य रूप मे इतिहास से, और विशेषकर समाजवादी साहसिक कार्यो के इतिहासो से यह प्रदर्शित होता है कि साधारण लोगो मे विशुद्ध परमार्थवाद की क्षमता शायद ही एक विचारणीय अवधि के लिए रह सकती है। इसके अपवाद तभी मिल सकते हैं जब धर्म मे श्रद्धा रखने वालो का एक छोटा-सा सघ अपने अदम्य उत्साह से ऊँचे उद्देश्य की तुलना मे भौतिक विषयो को निरर्थक समझे।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि लोग अभी भी जो सेवाएँ अर्पित करते हैं उनसे कहीं अधिक निस्वार्थ सेवाएँ प्रदान कर सकते हैं: और अर्थशास्त्री का सबसे मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि इस छिपी हुई सामाजिक निधि का शीघ्रातिशीघ्र विकास कैसे किया जाय, और कैसे इसका बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया जाय। किन्तु विश्लेषण किये बिना उसे सामान्य रूप में प्रतियोगिता की भर्त्सना नहीं करनी चाहिए। जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि मानव-प्रकृति को देखते हुए प्रतियोगिता के नियन्त्रण का परिणाम प्रतियोगिता की अपेक्षा अधिक सामाजिक होगा, वह इसके किसी भी विशेष रूप के प्रति एक तटस्थ रुख ही अपनायेगा।

इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आधुनिक युग में औद्योगिक जीवन के विशेष गुणों का वर्णन करने के लिए 'प्रतियोगिता' शब्द का उपयोग उपयुक्त नहीं है। हमे एक ऐसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए जिसका अभिप्राय नैतिक गुणों से नहीं होता, चाहे वे अच्छे हो या बुरे हो, किन्तु जो इस अविवादपूर्ण सत्य का परिचायक है कि वर्तमान व्यवसाय एवं उद्योग की अधिक आत्मनिर्भर आदतें, अधिक पूर्व अनुमान लगाना, अधिक सोच-विचार और स्वतंत्र चुनाव करना विशेषताएँ हैं। इस आशा के लिए कोई एक उपयुक्त शब्द नहीं है।

आर्थिक स्वतंत्रता

किन्तु उद्योग एवं उद्यम की स्वतंत्रता, अथवा अधिक संक्षेप मे, आर्थिक स्वतंत्रता शब्द उसके सही अर्थ की ओर इंगित करते हैं, और अधिक अच्छे शब्द के अभाव में इन्हें ही प्रयोग में लाया जा सकता है। जब सहयोग अथवा संयोजन से इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करना सबसे उत्तम मालूम पड़े तब निस्सन्देह इस सोच-समझ कर किये गये और स्वतंत्र निर्णय से व्यक्तिगत स्वतंत्रता विचलित हो सकती है। साहचर्य (Association) के ये सुचिन्तित रूप जिनमें स्वतन्त्रता का जन्म हुआ था, कहाँ तक विनाश करने वाले हैं, और जन-कल्याण के कहाँ तक प्रेरक हैं, ये प्रश्न इस ग्रन्थ की परिधि से बाहर है।[1]

आर्थिक स्वतंत्रता एवं अर्थविज्ञान के विकास का सामान्य संक्षिप्त विवरण इस भाग से परिशिष्ट (क) और (ख) में

§5 पहले के संस्करणों मे इस परिचायक अध्याय के बाद दो संक्षिप्त विवरण दिये गये थे: जिनमे से एक स्वतंत्र उद्यम और सामान्यतया आर्थिक स्वतंत्रता के विकास से, और दूसरा अर्थ-विज्ञान के विकास से सम्बन्धित था, ये विवरण चाहे कितने ही सुगठित क्यों न हों, इन्हे किसी भी प्रकार क्रमबद्ध इतिहास नहीं समझा जा सकता है। उनका उद्देश्य केवल उस मार्ग में कुछ भू-चिह्नों को निर्दिष्ट करना है जिनसे होकर आर्थिक प्रणाली तथा आर्थिक विचारधारा अपने वर्तमान रूप में पहुँची हैं। इन्हें अब इस ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट (क) और (ख) मे स्थानान्तरित किया गया है, क्योंकि इनके पूर्ण प्रवाह को अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री से कुछ जानकारी होने के पश्चात् अधिक अच्छी तरह जाना जा सकता है। इसका आंशिक कारण यह भी है कि इनके लिखे जाने के बाद के पिछले २० वर्षों मे व्यापक शिक्षा (Liberal Education) मे आर्थिक एवं सामाजिक विज्ञान के अध्ययन की स्थिति के विषय मे जनमत पर्याप्त

---

1. बाद में प्रकाशित होने वाले 'Industry and Trade' नामक ग्रन्थों में समुचित रूप से इनकी चर्चा की गयी है।

रूप से विकसित हो गया है। अब पहले की अपेक्षा इस बात पर जोर देने की कम आवश्यकता है कि वर्तमान पीढ़ी की आर्थिक समस्याएँ बहुत कुछ अशो मे हाल ही के तकनीकी और सामाजिक परिवर्तनों से सम्बन्धित हैं, और उनका रूप तथा उनकी तीव्रता जनसमुदाय की प्रबल आर्थिक स्वतन्त्रता मे निरन्तर समान रही हैं।

स्थानान्तरित किया गया है।

आर्थिक स्वतंत्रता का विकास।

बहुत-से ग्रीस तथा रोमवासियों के अपने घरोपर काम करने वाले गुलामो से सम्बन्ध बड़े प्रिय और मानवोचित थे किन्तु ऐटिका (Attica) तक मे वहाँ के निवासियो के एक बडे भाग के शारीरिक एव नैतिक हित को नागरिकों का प्रधान उद्देश्य स्वीकार नही किया गया। जीवन के आदर्श ऊँचे थे, लेकिन उनका पालन कुछ ही लोग करते थे: मूल्य का सिद्धान्त जो आधुनिक काल मे जटिलताओ से भरा है, उस समय ऐसी योजना द्वारा, जो इस समय बनायी जा सकती है, केवल तभी प्रतिपादित किया जा सकता था जब लगभग सारा शारीरिक कार्य उन स्वचालित मशीनो से किया जाय जिन्हे केवल एक निश्चित मात्रा मे वाष्प-शक्ति तथा भौतिक पदार्थो की आवश्यकता है, और एक पूर्ण नागरिक जीवन की जरूरतो से जिनका कोई सम्बन्ध नही है। वास्तव मे आधुनिक अर्थशास्त्र के बहुत अशो का मान मध्य युगो के शहरो मे किया जा सकता था जहाँ कि प्रथम बार एक बुद्धिमत्तापूर्ण तथा साहसी भाव का धैर्यपूर्ण उद्यम से सगम हुआ था। किन्तु उन्हे शान्तिपूर्वक अपनी जीवन-वृत्ति खोज निकालने की स्वतन्त्रता नही दी गयी थी, और संसार को नये आर्थिक युग के अरुणोदय की तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक सारा जगत आर्थिक स्वतन्त्रता की कठिन परीक्षा (Ordeal) के लिए तैयार न हुआ। विशेषकर इग्लैंड इस कार्य को करने के लिए शनै. शनै तैयार हुआ, किन्तु अट्ठारहवी शताब्दी के अन्त की ओर वे परिवर्तन, जो तब तक धीमे तथा मन्द थे एकाएक तेज और तीक्ष्ण हो गये। यात्रिक आविष्कार, उद्योगो के केन्द्रीकरण और दूर स्थित बाजारो के लिए बडे पैमाने पर उत्पादन करने की प्रणाली ने उद्योग की प्राचीन परम्पराओं को तोड़ दिया, और प्रत्येक को अपनी सामर्थ्य के अनुसार सौदा करने के लिए उद्यत किया। साथ ही साथ, उन्होने जनसंख्या मे वृद्धि को प्रोत्साहन दिया जिसके लिए कारखानों तथा वर्कशापों मे खड़े रहने के अतिरिक्त और कोई सुविधा नही दी गयी थी। इस प्रकार स्वतंत्र प्रतियोगिता अथवा वस्तुत: उद्योग एव उद्यम की स्वतंत्रता को एक अप्रशिक्षित विशालकाय राक्षस की भाँति अपनी इच्छा के अनुसार चलने के लिए अनियत्रित छोड दिया गया। किन्तु असस्कृत व्यवसायियो द्वारा अपनी नूतन शक्ति का दुरुपयोग करने से प्रत्येक दिशा मे बुराइयों का जन्म हुआ। इसने माताओं को अपने कर्तव्य पालन के आयोग्य बना दिया, अधिक परिश्रम एव बीमारी के कारण बालको को अस्वस्थ बना दिया, और बहुत-से स्थानो मे मानव जाति का नैतिक पतन कर दिया। इसी बीच औद्योगिक अनुशासन की निष्ठुर असावधानी की अपेक्षा निर्धनों के निमित्त बनाये गये कानूनो मे सद्भावना के कारण की गयी लापरवाही से अंग्रेजो की नैतिक एव शारीरिक शक्तियो का बहुत पतन हुआ; क्योकि लोगो को उन गुणों से वंचित करने के कारण, जो उनको नूतन वातावरण के अनुरूप बनाते, इसने बुराइयों को बढ़ाया और स्वतंत्र उद्यम के प्रारम्भ से प्राप्त अच्छाइयो को कम किया।

इंग्लैंड में आर्थिक स्वतन्त्रता की प्रारम्भिक असमता।

अर्थविज्ञान का विकास। किन्तु जिस समय स्वतंत्र उद्यम की स्थिति अस्वाभाविक रूप से अरुचिकर थी ठीक उसी समय अर्थशास्त्री मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा कर रहे थे। इसका कारण कुछ अंशो मे तो यह था कि उन्होंने इसके द्वारा दूर किये गये रूढ़ियों के बोझ और कठोर अध्यादेश की क्रूरताओं को, जिन्हे हम बहुत अंशो मे भूल चुके हैं, स्पष्ट रूप से समझा और कुछ अंशो में अंग्रेजों की उस समय की यह प्रवृत्ति भी थी कि राजनैतिक एवं सामाजिक सभी विषयों मे सुरक्षा की क्षति के अतिरिक्त किसी भी मूल्य पर स्वतंत्रता रखना आवश्यक है। किन्तु आंशिक रूप मे इसका कारण यह भी था कि स्वतंत्र उद्यम से देश को जो उत्पादक शक्तियाँ मिल रही थी, उन्ही से नैपोलियन का सफल प्रतिरोध किया जा सकता था। अतः अर्थशास्त्रियों ने स्वतन्त्र उद्यम को वास्तव मे एक मिश्रित अच्छाई न समझ कर नियत्रण की अपेक्षा कम अशुभ वस्तु समझा जो कि उस समय व्यवहार मे लायी जा सकती थी।

मुख्यतया मध्य युगो के लेखकों द्वारा आरम्भ की गयी तथा अट्ठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे फ्रांसीसी और अंग्रेज दार्शनिको द्वारा जारी रखी गयी विचार-शृंखला का अनुसरण करते हुए रिकार्डों तथा उसके अनुयायियों ने स्वतंत्र उद्यम के कार्यों, सिद्धान्त (अथवा उनके कथनानुसार स्वतंत्र प्रतियोगिता) को आगे बढाया, जिसमे ऐसी सच्चाइयाँ निहित थी जो शायद जब तक संसार का अस्तित्व रहेगा तब तक महत्वपूर्ण रहेंगी। उनका कार्य, जिस सीमित क्षेत्र मे व्याप्त था, प्रशंसनीय रूप से पूर्ण है। किन्तु लगान तथा *अनाज के मूल्य से सम्बन्धित समस्याओं मे उनका कार्य* प्रशस्ततम रहा है। ये वे समस्याएँ थी जिनके निराकरण पर इंग्लैंड का भाग्य निर्भर था, किन्तु उनमे से बहुतों का, विशेषकर उस रूप का जिसमे रिकार्डो ने उनकी गणना की थी, वर्तमान परिस्थितियो से बहुत कम प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

इंग्लैंड की उस समय की विशिष्ट परिस्थितियो को ही एकमात्र ध्यान में रखने के कारण उनके अन्य कार्यों का बहुत सा भाग संकीर्ण हो गया है, और इस संकीर्णता ने प्रतिक्रिया को जन्म दिया है। अतः अब जब अधिक अनुभव, अधिक विश्राम और प्रचुर भौतिक साधनों ने हमें इस योग्य बना दिया है कि हम स्वतंत्र उद्यम को क्षति पहुँचाने वाली शक्तियो को कम करने और कल्याण करने वाली शक्तियो को बढाने के लिए इसे कुछ नियत्रण मे रखें, इसके विरुद्ध बहुत से अर्थशास्त्रियो में द्वेष बढ रहा है। यहाँ तक कि कुछ तो इसकी बुराइयो को बढा-बढा कर कहना चाहते हैं और अज्ञान तथा सताप को, जो कि बीते हुए युगों मे निरंकुशता या उत्पीड़न अथवा आर्थिक स्वतंत्रता की भ्रान्त धारणा एवं अव्यवस्था के परिणाम हैं, इस पर आरोपित करना चाहते हैं।

इन दो चरम सीमाओं के बीच अर्थशास्त्रियो का एक विशाल समुदाय है जो बहुत से विभिन्न देशो मे समान पद्धति पर कार्य कर अपने अध्ययनों मे सत्य को ढूँढ़ निकालने के लिए निस्स्वार्थ-भाव पैदा कर रहे हैं और एक लम्बे तथा बड़े काम के लिए, जिससे ही केवल किसी भी महत्व के वैज्ञानिक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं, तत्परता दिखा रहे है। मस्तिष्क, स्वभाव, प्रशिक्षण और अवसरो में विभिन्नता होने से वे भिन्न-भिन्न प्रकार से कार्य करते हैं, और किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं

पर मुख्य रूप से ध्यान देते है। अधिक या अल्प मात्रा में भूत और वर्तमान से सम्बन्धित तथ्य तथा आँकड़े सभी को एकत्रित और क्रम-बद्ध करने पड़ते है, और प्रायः सभी उन तथ्यों के आधार पर, जोकि उन्हे सुलभ है, उनके विश्लेपण एवं चिन्तन में व्यस्त है: किन्तु कुछ लोग तो पहले के कार्यों को अधिक आकर्षक और मनमोहक समझते हैं और अन्य लोग बाद के कार्य को। कुछ भी हो, श्रम-विभाजन से अभिप्राय लक्ष्य की समानता से है, उसके विरोध से नहीं। उन सबका कार्य उस ज्ञान में कुछ न कुछ वृद्धि करता है जो हमको मनुष्य के जीवन की दशा और उसके सामान्य स्तर पर उसके रोजी कमाने के ढग और उस रोजी के विशेप गुण के कारण पड़े हुए प्रभावों को समझने में समर्थ बनाता है।

अध्याय 2

अर्थशास्त्र का सार

व्यावसायिक जीवन के मुख्य उद्देश्यो को अप्रत्यक्ष रूप में मुद्रा से मापा जा सकता है।

§1. अर्थशास्त्र मनुष्यो के साधारण जीवन मे रहने, विचरने, तथा विचार करने की क्रियाओ का अध्ययन है। किन्तु इसका मुख्यत उन प्रयोजनों से सम्बन्ध है जो मनुष्य के व्यावसायिक जीवन मे उसके आचरण को अत्यन्त दृढता के साथ अविरत रूप मे प्रभावित करते है। प्रत्येक योग्य व्यक्ति किसी व्यवसाय मे प्रवेश करते समय अपने उत्तम गुणो को साथ ले जाता है और अन्य स्थानो की भाँति वहाँ भी वह अपने व्यक्तिगत स्नेह, कर्तव्य-निष्ठा तथा उच्च आदर्शों से प्रभावित होता है। यह सत्य है कि सुयोग्य आविष्कारको की तथा सुधरी हुई रीतियो एव उपकरणो के आयोजको की प्रशस्ततम शक्तियाँ सम्पत्ति की इच्छा की अपेक्षा उच्च श्रेणी की प्रतिस्पर्द्धा से अधिक प्रभावित हुई हैं। किन्तु इसके होते हुए भी किसी भी साधारण व्यावसायिक कार्य का मुख्य प्रयोजन वेतन प्राप्त करना है जो कि उस कार्य का भौतिक पुरस्कार है। वेतन को स्वार्थ अथवा निस्वार्थ भाव से अच्छे अथवा बुरे लक्ष्यो पर व्यय किया जा सकता है और ऐसा करने मे मानव स्वभाव मे पायी जाने वाली विभिन्नता का प्रभाव पड़ता है। किन्तु एक निर्दिष्ट धनराशि के कारण ही मनुष्य किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित होता है: और व्यावसायिक जीवन के इन अविरत प्रयोजनो का यही नियत और निश्चित आर्थिक माप है। इसके फलस्वरूप ही अर्थशास्त्र मनुष्य के अध्ययन की अन्य सभी शाखाओ से बहुत आगे बढ गया है। जिस प्रकार रसायनशास्त्रियो के बिलकुल ठीक तौलने के यन्त्र ने रसायन-शास्त्र को अन्य भौतिक विज्ञानो की अपेक्षा अधिक निश्चित बना दिया है, उसी प्रकार अर्थशास्त्री के इस स्थूल एव अपूर्ण मापदड ने अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान की अन्य शाखाओ की अपेक्षा अधिक निश्चित बना दिया है। किन्तु अर्थशास्त्र की यथार्थ भौतिक शास्त्रों से तुलना नही की जा सकती क्योकि यह मानव प्रकृति की सूक्ष्म एवं निरन्तर परिवर्तनशील शक्तियो से सम्बन्धित है।[1]

सामाजिक विज्ञान की अन्य शाखाओ की अपेक्षा अर्थशास्त्र की स्थिति अधिक अनुकूल होने का कारण यह है कि इसके विशेष कार्य-क्षेत्र मे निश्चित प्रणालियो के विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक अवसर मिलते हैं। इसका मुख्यत सम्बन्ध उन इच्छाओं, महत्त्वाकाक्षाओ तथा मानव प्रकृति की अनुरागपूर्ण भावनाओ से है जिनकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ कार्य के लिए इस रूप मे प्रेरक होती है कि प्रेरणाओ के प्रभाव या परिमाण को कुछ सत्यता के साथ अनुमानित किया जा सकता है तथा मापा जा सता है, अतएव इनका वैज्ञानिक उपकरणो द्वारा कुछ अंशो तक विवेचन किया जा सकता है।

---

1 अर्थशास्त्र के समाज-शास्त्रों से सम्बन्ध के विषय में परिशिष्ट (ग) अनुभाग 1, 2, में कुछ विचार प्रकट किये गये हैं।

किसी व्यक्ति के प्रयोजनो की शक्ति को—न कि स्वय उसके प्रयोजनो को—जैसे ही उस धनराशि द्वारा लगभग मापा जा सके, जिसे वह इच्छित सतोप प्राप्त करने के लिए प्रदान करता हे अथवा जिससे वह कुछ परिश्रम करने के लिए उद्यत होता है, तो उसी समय से वैज्ञानिक रीतियों एवं परीक्षणो का प्रयोग होना प्रारम्भ हो जाता है।

क्रियाशील बनाने की प्रेरणा-शक्ति से भी सामान्य सुख-दुखों की तुलना की जा सकती है, और इस प्रकार की तुलना सभी इच्छाओं पर घटित होती है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अर्थशास्त्री मस्तिष्क की किसी भी चाह को उसी रूप मे अथवा प्रत्यक्ष रूप में न माप कर उसके परिणाम द्वारा परोक्ष रूप मे मापते है। कोई भी व्यक्ति विभिन्न समयों मे एक दूसरे के प्रति अपनी ही मानसिक अवस्थाओं की सही रूप से तुलना एवं माप नही कर सकता, और दूसरों की मनो-अवस्थाओं का तो केवल परोक्ष रूप मे तथा उनके प्रभावो से ही अनुमान लगाया जा सकता है, अन्यथा नही। वास्तव मे, मनुष्य के प्रेम के अनेक रूपो का कारण उसके स्वभाव की उच्चतर अथवा निम्नतर दशा ही हे, यही कारण है कि उनमे भिन्नता पायी जाती है। भले ही हम अपना ध्यान एक ही प्रकार के भौतिक सुख-दुखों तक ही सीमित रखें, किन्तु उनकी उनके प्रभावों द्वारा केवल परोक्ष रूप में तुलना की जा सकती है। वास्तव मे, जब तक किसी व्यक्ति को उनके प्रभावो का एक साथ अनुभव न हो, इस प्रकार की तुलना भी कुछ अशों मे निश्चित रूप से कल्पित ही होती है।

उदाहरणार्थ, दो व्यक्तियो को धूम्रपान से मिलने वाले आनन्द की प्रत्यक्ष रूप मे तुलना नही की जा सकती, और न एक ही व्यक्ति को विभिन्न समयो पर मिलने वाले आनन्द की तुलना की जाती है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति इस असमंजस मे पड़ा हो कि उसे सिगरेट मे या एक प्याला चाय मे या घर तक पैदल चलने की अपेक्षा किसी सवारी मे बैठ कर जाने मे कुछ पैसे खर्च करने चाहिए, तो हम सामान्य व्यवहार के आधार पर यह कह सकते है कि वह इन सब से समान आनन्द प्राप्त करने की आशा करता है।

यहाँ भी हमें भौतिक संतुष्टि की प्रत्यक्ष रूप मे तुलना न कर कार्यशील बनाने की प्रेरणाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे तुलना करनी चाहिए। यदि समान परिस्थितियों मे रहने वाले सभी व्यक्ति दो प्रकार के आनन्दो मे से किसी एक की प्राप्ति के लिए एक घटे अतिरिक्त काम करने को प्रेरित हो जायें या समान आय तथा जीवन के समान स्तर के लोगो मे से प्रत्येक इनके लिए एक-एक शिलिंग देने को प्रस्तुत हो जाय, तो यह कहा जा सकता है कि उन दोनो प्रकार के आनन्दों मे समता है, क्योंकि उनको प्राप्त करने की इच्छाएँ एक-सी परिस्थितियो वाले लोगों को दृढ़तापूर्वक कार्य करने के लिए समान रूप से प्रेरणा देती है।

इस प्रकार यदि मानसिक अवस्था को गतिशील या कार्यशील बनाने की प्रेरणाओं से मापा जाय, जैसा कि सामान्य जीवन मे लोग करते है, तो इस तथ्य से कि उन सभी प्रयोजनों मे से, जिन पर हमे विचार करना है, कतिपय प्रयोजन मनुष्य के उच्चतर स्वभाव से तथा अन्य उसके निम्नतर स्वभाव से सम्बन्धित है, किसी नूतन समस्या का आह्वान नही होता।

यदि एक व्यक्ति जो थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे अनेक संतोषों को प्राप्त करने के विषय मे सदिग्ध है, कुछ समय बाद घर जाते समय मिलने वाले एक निर्धन बलहीन पुरुष के बारे मे सोचे और यदि वह कुछ समय यह सोचने मे लगाये कि उसे अपने

लिए भौतिक संतोष की चीजें जो लेनी चाहिए अथवा उस निर्धन व्यक्ति पर दया करके उसके संतोष मे स्वय भी आनन्दित होना चाहिए, तो उसके विचार जैसे-जैसे एक प्रकार के संतोष से दूसरे प्रकार के संतोष को प्राप्त करने के लिए बदलते है; उसकी मनो-अवस्थाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो जाती है, और दार्शनिक इस परिवर्तन का अवश्य ही अध्ययन करता है।

अर्थशास्त्र में साधारण वार्तालाप की परिपाटी का ही अनुसरण किया जाता है।

किन्तु अर्थशास्त्री मस्तिष्क की इन विभिन्न अवस्थाओ का इन्ही रूपों मे अध्ययन न कर इनकी अभिव्यक्तियो द्वारा इनका अध्ययन करता है, और यदि वह यह अनुभव करे कि इनसे कार्य करने की एक-सी प्रेरणाएँ मिलती हैं तो वह अपने उद्देश्यो के लिए इन्हे एक समान ही समझता है। वह प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य जीवन के दिन प्रतिदिन के कार्यकलापो का ध्यानपूर्वक तथा विचारपूर्वक अनुशीलन करता है, और इसमे अपेक्षाकृत अधिक सावधानी से काम लेता है। वह हमारे स्वभाव के उच्च स्नेह सम्बन्धों के वास्तविक मूल्य की निम्न स्नेह सम्बन्धो के मूल्य से तुलना नही करता : और न वह ख्याति प्राप्त करने की अभिलाषा तथा मनपसन्द भोजन प्राप्त करने की इच्छा को ही तोलता है। वह कार्य करने की प्रेरणाओ या उनके प्रभावो द्वारा उसी प्रकार अनुमान लगाता है जैसे सामान्य जीवन मे लोग लगाते हैं। उसका मार्ग साधारण वार्तालाप से मिलता-जुलता है। अन्तर केवल इतना ही है कि अर्थशास्त्री जैसे-जैसे आगे बढता है अपने ज्ञान की सीमाओ को स्पष्ट करने मे अधिक सावधानी रखता है। वह व्यक्ति-विशेष के मानसिक तथा आध्यात्मिक गुणो की गहराई का बिना अनुमान लगाये ही निश्चित परिस्थितियो मे सर्वसाधारण के अवलोकन मात्र से सामयिक निष्कर्ष निकालता है। किन्तु जीवन की आध्यात्मिक तथा बौद्धिक दशाओ की वह उपेक्षा नही करता। इसके विपरीत आर्थिक अध्ययनो के सकुचित प्रयोगो मे भी यह जानना आवश्यक है कि क्या उसकी इच्छाएँ एक दृढ तथा गुणवान चरित्र के निर्माण मे सहायता पहुँचाती है? व्यावहारिक समस्याओ के समाधान के लिए जब इन अध्ययनो का व्यापक प्रयोग किया जाता है तब अर्थशास्त्री को अन्य लोगो की भाँति मनुष्य के अन्तिम लक्ष्यों पर विचार करना चाहिए और उन संतोषो के वास्तविक मूल्य के अन्तर को ध्यान मे रखना चाहिए जो कार्य करने के लिए समान प्रेरणा देते है, और इसलिए जिनके आर्थिक माप समान है। इन मापो का अध्ययन करना अर्थशास्त्र का केवल आरम्भ बिन्दु है : किन्तु यह अवश्य ही आरम्भ बिन्दु है।[1]

---

1 किसी भी परिस्थिति में दो प्रकार के आनन्दों को समान मानने में कुछ दार्शनिकों ने जो आपत्ति प्रकट की है वह इस मुहावरे के प्रयोगों से सम्बन्धित है, और अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु आर्थिक शब्दावली के चिरप्रचलित प्रयोगों से दुर्भाग्यवश यह प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्री आनन्दवाद की या उपयोगितावाद की दार्शनिक पद्धति के अनुयायी रहे हैं। क्योंकि जहां उन्होंने इस बात को निश्चित समझा कि सबसे अधिक आनन्द अपने कर्तव्यों को पूरा करने से मिलता है, वहां उन्होंने यह भी बताया है कि 'सुख' और 'दुख' से ही सभी कार्यों को करने की प्रेरणा मिलती है और इस प्रकार उन्हें उन दार्शनिकों की घृणा का पात्र बनना पड़ा जो

§2. द्रव्य द्वारा मनुष्य के प्रयोजनों को मापने की अनेक और भी सीमाएँ है। इनका सबसे पहला कारण यह है कि इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि एक निश्चित धनराशि द्वारा ही विभिन्न लोगों को विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग मात्रा में सुख अथवा अन्य प्रकार का संतोष मिलता है।

यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति को एक समय मे दूसरे समय की अपेक्षा 1 शि० से अधिक आनन्द (या अन्य प्रकार का संतोष) मिलता है। इसका कारण या तो यह है कि उसके पास उस समय प्रचुर मात्रा मे द्रव्य है या उसकी मनोवृत्ति मे परिवर्तन आ गया है।[1]

एक ही कीमत से समान आय वाले लोगों के संतोष की विभिन्न मात्राओं को मापा जाता है।

जिन लोगों की पूर्वगत परिस्थितियाँ एक-सी हो और जो वाह्य रूप से एक दूसरे से मिलते-जुलते हों, उन पर समान घटनाओं का अलग-अलग प्रकार से प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए जब शहर के किसी स्कूल के विद्यार्थियों का एक समूह एक दिन

इस बात पर जोर देते थे कि अपना कर्तव्य पूर्ण करने की इच्छा आनन्द प्राप्ति की इच्छा से भिन्न है क्योंकि आनन्द तो कर्तव्य पूरा करने से भी मिल सकता है, किन्तु इसे 'आत्म तृप्ति' अथवा शाश्वत रूप से निजी तृप्ति की इच्छा कहना अनुचित न होगा। (उदाहरण के लिए टी० एच० ग्रीन(T. H. Green) की Prolegomena of Ethics पृष्ठ 165–66 को देखिए।)

आचार सम्बन्धी विवाद में किसी भी पक्ष को लेना अर्थशास्त्र का काम नहीं है; और इस बात को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया है कि कार्य के लिए उद्यत करने की सभी प्रेरणाओं को (जहां तक भी उन्हे चेतनामय इच्छाएँ समझा जा सकता है) बिना किसी त्रुटि के 'संतुष्टि' की इच्छाएँ कहा जा सकता है। अतः जब कभी सभी इच्छाओं के अंतिम लक्ष्यों को मनुष्य के उच्च या निम्न स्वभाव से बिना सम्बद्ध किये विचारा जाय तो 'आनन्द' की अपेक्षा इसी शब्द का प्रयोग करना शायद अच्छा होगा। संतुष्टि का विलोम शब्द 'असंतुष्टि' है : किन्तु इसके स्थान पर अधिक संक्षिप्त शब्द 'अहित' का प्रयोग करना अच्छा प्रतीत होता है।

यहां यह ध्यान रहे कि बेन्थम (Bentham) के कुछ अनुयायियों ने (शायद स्वयं बेन्थम ने ऐसा नहीं किया था) 'सुख-दुख' के पहले से ही किये गये विस्तृत प्रयोग द्वारा किसी स्वतंत्र विचार के सूत्रपात करने की आवश्यकता के बिना ही व्यक्तिगत आनन्दवाद से पूर्णतया नैतिक धर्म की ओर अग्रसर होने में पुल का काम लिया। इस नये विचार-क्षेत्र की आवश्यकता निरपेक्ष है भले ही इसके आकार-प्रकार के विषय में मतभेद हो। कुछ लोग तो इसे विवेक का आदेश समझेंगे, और अन्य लोग, चाहे हमारी नैतिक भावनाओं का कुछ भी उद्गम रहा हो, मानव समाज के अनुभवजनित इस कथन पर पूर्णतया विश्वास करते हैं कि वास्तविक सुख को आत्मसम्मान के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता, और आत्मसम्मान मानव जाति की उन्नति के लिए प्रयत्नशील होने से प्राप्त होता है।

1 ऐजवर्थ (Edgeworth) की Mathematical Physics से तुलना कीजिए।

की छुट्टी पर किसी गाँव मे जाता है तो शायद ही उनमे से किन्ही भी दो छात्रो को एक-सा या समान रूप से उत्कट आनन्द मिलेगा। एक ही प्रकार के शल्योपचार (चीर-फाड) से अलग-अलग लोगो को अलग-अलग मात्रा मे कष्ट का अनुभव होता है। ऐसा देखा गया है कि दो माँ-बाप जो अपने-अपने बच्चो को समान रूप से प्यार करते है अपने-अपने सबसे प्रिय पुत्र के निधन पर समान रूप से दुखी नही होते, उन पर भी किसी विशेष सुख या दुख का प्रभाव पडता है, *यद्यपि यह सम्भव है कि उनके स्वभाव* व उनकी शिक्षा मे अन्तर होने से एक व्यक्ति की दुखी या सुखी होने की कुल क्षमता दूसरे की अपेक्षा बहुत अधिक हो सकती है।

अत यह कहना निर्विवाद नही है कि समान आय वाले किन्ही भी दो व्यक्तियों को उस आय के प्रयोग से बराबर ही आनन्द मिलेगा, या इस आय मे कमी हो जाने से समान ही दुख मिलेगा। 300 पौं० वार्षिक आय वाले दो व्यक्तियों से जब 1 पौं० प्रति व्यक्ति के हिसाब से कर वसूल किया जाता है तो उनमे से हर एक 1 पौ० से मिलने वाले *उस आनन्द (या अन्य प्रकार के सतोष)* का परित्याग करना है जिसमे वह सबसे अधिक आसानी से कमी कर सकता है, अर्थात् वे दोनो 1 पौंड के बराबर आनन्द का भुगतान करते है, किन्तु इस पर भी सतोष मे होने वाली कमी की तीव्रता लगभग समान नही होती।

किन्तु, जब हम एक वृहत् जन-समुदाय का औसत लेते हैं तो संतोष में पाये जाने वाले इस अन्तर को सामान्यतया ध्यान में नहीं रखा जाता।

यह सब होते हुए भी यदि हम लोगो की वैयक्तिक विभिन्नताओ के संतुलन के लिए पर्याप्त रूप से व्यापक औसत ले तो किसी लाभ की प्राप्ति के लिए अथवा किसी क्षति को दूर करने के लिए समान आय वाले लोग जितना द्रव्य खर्च करते है वह उनके लाभ या क्षति का सतोषजनक माप होगा। यदि शेफील्ड और लीड्स मे एक-एक हजार लोग रहते हो और इनमे से प्रत्येक की वार्षिक आय 100 पौ० हो तथा उन पर 1 पौ० सालाना कर भी लगता हो तो कर लगने के कारण उन लोगो के आनन्द मे होने वाली कमी या इससे होने वाली अन्य प्रकार की क्षति का इन दोनों स्थानो मे लगभग समान ही महत्व होगा, और यदि किसी कारणवश उन लोगो की आय मे 1 पौ० की वृद्धि हो जाय तो इससे उन लोगो को दोनो शहरो मे बराबर ही आनन्द *तथा अन्य* लाभ प्राप्त होगे। यदि वे सभी एक ही व्यवसाय मे काम करने वाले नवयुवक हो तो इस तथ्य की सम्भाव्यता और अधिक होगी क्योंकि इससे अनुमानत उनकी विचार शक्ति, उनका स्वभाव, उनकी अभिरुचि एव शिक्षा लगभग एक-सी होगी। यदि हम परिवार को अपनी इकाई मान ले, और उन दोनो स्थानो मे 120 पौ० सालाना आय वाले 1000 परिवारो की आय मे 1 पौ० की कमी से आनन्द मे होने वाली क्षति की तुलना करे तो भी इस सम्भाव्यता मे बहुत अधिक कमी नही होगी।

एक दी हुई कीमत का महत्व एक धनवान् व्यक्ति की अपेक्षा

इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि एक धनवान व्यक्ति की अपेक्षा एक निर्धन व्यक्ति को किसी वस्तु के लिए एक निश्चित कीमत देने के लिए अत्यधिक प्रोत्साहित करना पड़ता है। एक धनी व्यक्ति को एक निर्धन की अपेक्षा 1 शि० से कम संतोष मिलता है, या इससे वह कम आनन्दित होता है। एक धनी व्यक्ति जब यह सोचता है कि सिगार की एक बत्ती पर उसे 1 शि० खर्च करना चाहिए या नही तब वह उसके महत्व को थोड़ा-थोड़ा आनन्द देने वाली छोटी-

मोटी वस्तुओं से तोलता है। किन्तु एक निर्धन व्यक्ति एक शि० की तम्बाकू लेने में, जो कि एक महीने तक चलेगा, खर्च करने में भी संशय में पड़ जाता है। 100 पौ० सालाना आय वाला एक लिपिक 300 पौ० आय वाले लिपिक की अपेक्षा भारी वर्षा में भी अपने काम पर पैदल ही चला जायेगा, क्योंकि ट्राम में या बहुउद्देशीय बस (Omnibus) में जाने में जो किराया लगेगा उसकी बचत से एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा एक निर्धन व्यक्ति का अधिक हित होता है। यदि निर्धन व्यक्ति इसमें कुछ खर्च कर भी दे तो वह इसके अभाव में धनी की अपेक्षा बाद में अधिक दुःखी होगा। निर्धन व्यक्ति धनी व्यक्ति की अपेक्षा अपने मन में वश में होने वाले खर्चे से अधिक लाभ आंकता है।

एक निर्धन के लिए अधिक होता है; किन्तु धनी तथा निर्धन व्यक्तियों के दो वर्गों की समान अनुपात में तुलना करने में यह बात विशेष महत्व की नहीं है।

जब हम बड़े पैमाने में लोगों के कार्यों एवं प्रयोजनों पर विचार करते हैं तो त्रुटि होने की उक्त सम्भावना कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, जब हम यह जानते हैं कि एक बैंक के फेल हो जाने से लीड्स के लोगों के दो लाख पौंड और शेफील्ड के लोगों के एक लाख पौंड हड़प लिये गये तो यह अच्छी तरह अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे लीड्स के लोगों को शेफील्ड में रहने वालों की अपेक्षा अनुमानतः दुगना कष्ट उठाना पड़ेगा। यह केवल उस समय सम्भव न होगा जब यह विश्वास करने का कोई विशेष कारण हो कि एक शहर में उस बैंक के हिस्सेदार दूसरे शहर की अपेक्षा अधिक धनवान हों, या इससे उत्पन्न बेरोजगारी का इन दोनों शहरों के श्रमिक वर्गों पर असमान प्रभाव पड़ा हो।

कभी-कभी भौतिक वस्तुओं में वृद्धि वास्तविक प्रगति की संतोषजनक माप है।

प्रायः अर्थशास्त्र से सम्बन्धित अधिकांश घटनाएँ समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों पर समान रूप से प्रभाव डालती हैं। इस कारण यदि दो घटनाओं से मिलने वाले सुख के मौद्रिक माप एक ही हों तो उन दोनों दशाओं में मिलने वाले सुख को एक ही समझना तर्क-संगत तथा सामान्य प्रचलन के अनुरूप होगा। और जैसा कि पश्चिमी देशों के दो भागों से बिना किसी विशेष पक्षपात के चुने हुए बहुत से लोगों के दो वर्ग जीवन के उच्चतर उपयोगों में द्रव्य का समान अनुपात मे प्रयोग करते हैं, इस बात की प्रत्यक्षतः कुछ सम्भावना है कि उनके भौतिक साधनों मे बराबर वृद्धि के फलस्वरूप जीवन की पूर्णता मे तथा मानव जाति की वास्तविक प्रगति मे समान रूप से वृद्धि होगी।

आदत अधिकांशतया मनुष्य के कार्यों को, और मुख्य तथा उसके व्यापार से सम्बन्धित कार्यों को प्रभावित करती है

§3. अब हम दूसरी अवस्था पर विचार करेंगे। किसी इच्छा से मिलने वाली प्रेरणा-शक्ति द्वारा उस इच्छा को मापा जाता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक कार्य जानबूझ कर ही किया जाता है। क्योंकि अन्य स्थानों की भाँति अर्थशास्त्र में भी मनुष्य के साधारण जीवन को ध्यान में रखा जाता है, और साधारण जीवन में कोई भी व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्य के प्रतिफल का चाहे उसके लिए उच्चकोटि की अथवा निम्नकोटि की किसी भी इच्छा से क्यों न प्रेरणा मिली हो, पहले से ही अनुमान नहीं लगाता।[1]

---

1 यह बात विशेषकर 'आखेट के आनन्दों' के सम्बन्ध में सत्य निकलती है। इनमें शिकार खेलने तथा खाइयों से होकर घुड़दौड़ करने की साधारण प्रसन्नता ही

अर्थशास्त्र का विशेषकर मनुष्य के उन कार्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिन्हें वह सोच-विचार कर करता है तथा जिनसे लाभ और हानि का वह बहुधा पहले ही अनुमान लगा लेता है। इसमें उसके जीवन के उस अंग का अध्ययन किया जाता है जिसमें मनुष्य बिना विचार किये उन आदतों एवं प्रथाओं के अनुसार कार्य करता है जो स्वयं निश्चित रूप से विभिन्न कार्यों के लाभ-हानि का सतर्कतापूर्वक विचार करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं। जब मनुष्य काम करने या सामाजिक समाओं में भाग लेने के पश्चात् अपने निवासस्थानों को लौटते हैं तो एक दूसरे से कहते हैं कि, "यह बात ठीक नहीं है, अच्छा होता कि अमुक काम किया जाता", इत्यादि। किंतु इस प्रकार के विचार उस विषय के दोनों पहलुओं की अच्छाई एवं बुराई पर विचार करके नहीं व्यक्त किये जाते। यदि किसी समस्या के निराकरण का एक उपाय दूसरे से अच्छा हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें निजी लाभ या भौतिक हित की भावना निहित है। कई बार यह तर्क किया जाता है कि, "यद्यपि इस या उस योजना को अपनाने में कम कठिनाई होती, या आर्थिक बचत होती, किन्तु ऐसा करना दूसरों के लिए अहितकर था", और "इसके कारण एक व्यक्ति तुच्छ मालूम देता था" या "वह अपने को तुच्छ समझने लगता था।"

निस्सन्देह जब कभी किन्हीं दी हुई परिस्थितियों में अंकुरित होने वाली आदतें तथा प्रथाएँ अन्य परिस्थितियों में भी अपना प्रभाव दिखाने लगती है तो उस समय किसी प्रयत्न और उससे प्राप्त होने वाली अभीष्ट वस्तु में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता। पिछड़े हुए देशों में अभी भी ऐसी बहुत सी आदतें एवं प्रथाएँ पायी जाती हैं जो वहाँ की परिस्थितियों के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुई है, उदाहरण के लिए अकेला पड़ा हुआ ऊदबिलाव भी अपने लिए एक बाँध बनाने का प्रयत्न करता है। ये सब बातें ऐतिहासिकों को अनेक प्रकार की सूचनाएँ देती है और विधानवेत्ताओं को भी उन्हें

शामिल नहीं है अपितु व्यावसायिक तथा वृत्तिक जीवन के अधिक जटिल संघर्ष भी सम्मिलित हैं। इस सम्बन्ध में मजदूरी, लाभ तथा औद्योगिक संगठन के विभिन्न रूपों को प्रभावित करने वाले कारणों की चर्चा करते समय विशेष ध्यान दिया जयेगा।

कुछ लोग चंचल प्रकृति के होते हैं और उन्हें अपने कार्यों के प्रयोजनों का भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। किन्तु किसी दृढ़ एवं विचारशील व्यक्ति की प्रेरणाएँ प्रायः उसकी अपनी जानबूझ कर डाली गयी आदतों के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। चाहे उसकी ये प्रेरणाएँ उच्चकोटि की प्रवृत्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न हों या नहीं, या इनका उदय उसके अपने विवेक से, समाजिक सम्बन्धों के दबाव से या उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से हो, वह इनको बिना किसी पूर्व विचार के अन्य विषयों की अपेक्षा कुछ अधिक महत्व देता है, क्योंकि वह पहले भी इन्हें जानबूझ कर अधिक महत्व देता आया है। किसी व्यक्ति के लिए एक प्रकार के कार्य का (उससे मिलने वाले लाभ का अनुमान लगाये बिना) अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक प्रलोभनीय होने का कारण यह है कि वह पहले भी लगभग इसी प्रकार की परिस्थितियों में स्वेच्छा से ऐसा ही निर्णय कर चुका है।

मानना पड़ता है। किन्तु आधुनिक संसार मे व्यापार सम्बन्धी विषयों में इस प्रकार की आदतों का बड़ी तीव्रता के साथ लोप हो रहा है।

इस प्रकार मनुष्यों का सबसे नियमित जीवन वह है जिससे वे अधिकांशतया अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। किसी उद्योग में लगे हुए व्यक्तियों के कार्यों की देख-रेख भली-भाँति की जा सकती है, इस सम्बन्ध में साधारण विचार भी व्यक्त किये जा सकते हैं तथा अन्य लोगों द्वारा किये गये निरीक्षणों के परिणामों से तुलना करके इनकी यथार्थता का पता लगाया जा सकता है। साथ ही साथ इनसे ये संख्यासूचक अनुमान भी लगाये जा सकते है कि उन कार्यों को करने की प्रेरणा देने के लिए द्रव्य या क्रय-शक्ति की कितनी आवश्यकता होती है।

किसी व्यक्ति की किसी वस्तु के उपभोग को स्थगित न करने तथा भविष्य के उपभोग के लिए उसकी बचत करने की भावना को संचित धन पर मिलने वाले ब्याज से मापा जाता है, क्योंकि इसी कारण मनुष्य भविष्य के लिए बचत करता है। इस माप में कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं, किन्तु उन पर यहाँ विचार नही किया गया है।

द्रव्य अर्जित करने के प्रयोजन श्रेष्ठ हो सकते हैं।

§4. अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि द्रव्य प्राप्त करने की इच्छा, चाहे एक व्यक्ति उसे अपने ही ऊपर क्यों न खर्च करता हो, अनिवार्य रूप से निम्नकोटि की भावनाओ से उत्पन्न नहीं होती। द्रव्य तो किसी उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन मात्र है और यदि उद्देश्य उत्तम हो तो इन्हे प्राप्त करने के साधनो को ढूँढ़ निकालने की इच्छाएँ भी उत्तमकोटि की होती है। उस बालक की उत्सुकता बुरी नही है जो भविष्य में विश्वविद्यालय के अध्ययन के खर्च के लिए कठोर परिश्रम करके कुछ पैसे बचाता है और द्रव्य अर्जित करने के लिए उत्सुक रहता है। सक्षेप मे, द्रव्य सामान्य क्रय-शक्ति है जिसका एक साधन के रूप मे सभी प्रकार के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उपयोग किया जाता है, चाहे वे उद्देश्य उच्च स्तर के हो या निम्न स्तर के, आध्यात्मिक हों या भौतिक।[1]

इस सामान्य धारणा में कोई तथ्य नहीं है कि अर्थशास्त्र में

अत. यह सत्य है कि 'द्रव्य' या 'सामान्य क्रय-शक्ति' या 'भौतिक सम्पत्ति के ऊपर अधिकार' ही वह केन्द्रबिन्दु है जिस पर अर्थशास्त्र का विज्ञान आधारित है। इसका यह अभिप्राय नही कि मनुष्य के कार्यों का मुख्य उद्देश्य द्रव्य या भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करना है, और न यह है कि अर्थशास्त्री इससे अपने अध्ययन की मुख्य सामग्री

---

1 The Love of Money पर क्लिफ लेस्ली (Clief Leslie) के सुन्दर निबन्ध को पढ़िए। हम कुछ ऐसे लोगों के विषय में भी सुनते हैं जो विशेषकर व्यवसाय में एक लम्बा जीवन बिताने के पश्चात् भी अन्त में बिना यह ध्यान दिये कि द्रव्य से क्या-क्या वस्तुएँ खरीदी जा सकती है केवल इसे द्रव्य होने के कारण ही प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु अन्य स्थानों की भांति यहां भी उस प्रयोजन के समाप्त हो जाने पर जिसके लिए इसका मूलरूप में प्रयोग किया गया था, उस कार्य को करने की आदत बनी रहती है। अपने पास धन होने से ये लोग अपने को अन्य लोगों से शक्तिशाली समझते हैं और इससे उन्हें अन्य लोगों से ईर्ष्यापूर्ण सम्मान भी मिलता है, जो यद्यपि इन्हें कुछ कड़वा लगता है, फिर भी इससे ये बड़े आनन्दित होते हैं।
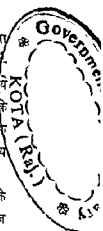
मनुष्य को धन प्राप्त करने के स्वार्थपूर्ण कार्यों में संलग्न समझा जाता है।

जुटाता है। द्रव्य तो आधुनिक संसार में बड़े पैमाने पर मनुष्य के प्रयोजनों को मापने का एक सरल साधन है। यदि प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने ही यह बात स्पष्ट कर दी होती तो उनकी इतनी कड़ी आलोचनाएँ नही की जाती। कार्लाइल (Carlyle) तथा रस्किन (Ruskin) द्वारा मानवीय कार्यों के उचित उद्देश्यो तथा सम्पत्ति के उचित उपयोगो पर दिये गये सुन्दर उपदेश अर्थशास्त्र की कड़ी आलोचना होने से प्रभावहीन नही हो जाते। इन सबका कारण इस गलत धारणा का प्रचलित होना था कि अर्थशास्त्र का केवल सम्पत्ति प्राप्त करने के स्वार्थपूर्ण प्रयोजनो से सम्बन्ध है, या इसके अध्ययन से मनुष्य मे स्वहित की नीच भावना उत्पन्न होती है।[1]

द्रव्य की इच्छा में और भी अनेक बातें निहित हैं, जैसे कि किसी काम को करने में मिलने वाला आनन्द, शक्तिशाली बनने की भावना, इत्यादि।

जब मनुष्य के किसी कार्य का उद्देश्य द्रव्य प्राप्त करना हो तो इसका यह अभिप्राय नही कि उसके मस्तिष्क मे अपने लाभ के अतिरिक्त और किसी प्रकार के विचार रहते ही नही। जीवन के पूर्णतया व्यापारिक सम्बन्धो मे भी सत्यता और सद्भाव का होना स्वाभाविक समझा जाता है, और उनमे से अनेक कार्यो मे यदि उदारता न भी मिले तो कम से कम अधम विचारो का निश्चय ही अभाव रहता है, और वे अपना कार्य अच्छी तरह चलाने मे गर्व का अनुभव करते है। इसके अतिरिक्त बहुत से कार्य जिनसे मनुष्य अपनी आजीविका प्राप्त करता है स्वय ही आनन्द प्रदान करते है, और समाजवादियो का यह कथन सत्य है कि इनसे और भी अधिक आनन्द मिल सकता है; यहाँ तक कि व्यापारिक कार्य मे भी, जो सर्वप्रथम अनाकर्षक प्रतीत होता है, वास्तव मे बहुत आनन्द मिलता है क्योकि इसमे मनुष्यो की आन्तरिक शक्तियो के विकास, दूसरो से होड़ करने तथा स्वय भी शक्तिशाली बनने के लिए पर्याप्त क्षेत्र रहता है। जिस प्रकार दौड़ का घोड़ा या एक खिलाड़ी किसी निश्चित स्थान पर अपने प्रतिद्वन्द्वियो से पहले पहुँचने के लिए अथक परिश्रम करता है, और उस कठोर परिश्रम को करने मे आनन्दित होता है, उसी प्रकार वस्तुओ का उत्पादक या व्यापारी अपनी सम्पत्ति मे वृद्धि करने की अपेक्षा अपने प्रतिद्वन्द्वियो के ऊपर विजय प्राप्त करने की भावना से अधिक प्रेरित होता है।[2]

अर्थशास्त्रियों ने भौतिक लाभ के अतिरिक्त किसी पेशे के अन्य लाभों को सदैव

§5. किसी काम-धधे से होने वाले सभी प्रकार के लाभो को, चाहे वे द्रव्य के रूप मे प्राप्त हो या न हो, अर्थशास्त्रियो ने सदा ही ध्यान मे रखा है। यदि अन्य बाते समान रहे तो लोग उस धधे को अपनाना पसन्द करेंगे जिसमे उनके हाथ-पावो पर मिट्टी न लगे, जिससे समाज मे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा बने, इत्यादि। यद्यपि इन अनेक लाभो का सभी व्यक्तियो पर बिलकुल एक-सा ही प्रभाव नही पड़ता, किन्तु अधिकाश लोग इनसे लगभग समान रूप मे प्रभावित होते है। किसी कार्य मे निहित इस प्रकार की आकर्षण-शक्ति को द्रव्य के रूप मे मिलने वाली मजदूरी से अनुमानित किया जाता

---

1 वास्तव में एक ऐसे ससार की कल्पना की जा सकती है जिसमें अर्थशास्त्र की ही भांति कोई विज्ञान हो, किन्तु उसमे किसी भी प्रकार के द्रव्य का चलन न हो। देखिए परिशिष्ट ख अनुभाग तथा घ 4 अनुभाग 2।

2 जर्मनी के विचारकों ने अर्थशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं उन पर परिशिष्ट घ, ङ में कुछ टीका-टिप्पणी की गयी है।

है और मापा जाता है। यहाँ यह मान लिया गया है कि किसी कार्य की आकर्षण-शक्ति उस कार्य को करने मे मिलने वाली मजदूरी के बराबर होती है।

ध्यान में रखा है। और उन्होंने वर्गीय सहानुभूति तथा पारिवारिक स्नेह को भी ध्यान में रखा है।

इसके अतिरिक्त दूसरे की स्वीकृति प्राप्त करने तथा पड़ोसियो के तिरस्कार से बचने की भावना से भी मनुष्य के कार्य प्रभावित होते है। किसी निश्चित समय और स्थान पर सभी वर्गो के लोग लगभग समान रूप से प्रभावित होते है। किन्तु स्थानीय एवं अल्पकालीन परिस्थितियो का प्रभाव केवल स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा पर ही नही अपितु उन सब व्यक्तियो पर भी पड़ता है जिनकी स्वीकृति वाछनीय है। उदाहरण के रूप मे, एक वृत्तिक व्यक्ति तथा शिल्पकार अपने साथियो की स्वीकृति या अस्वीकृति को अधिक ध्यान मे रखेगा, किन्तु अन्य व्यक्तियो की धारणा के विषय मे वह बहुत कम विचार करेगा। ऐसी अनेक आर्थिक समस्याएँ है जिनके विषय मे यदि इस प्रकार के प्रयोजनो की शक्तियो का ठीक-ठीक अनुमान नही लगाया गया या इनके अभीष्ट लक्ष्यो को ध्यान मे नहीं रखा गया तो उनका अध्ययन सर्वथा अवास्तविक होगा। जिस प्रकार मनुष्य की अपने साथियो को लाभ पहुंचाने वाले कार्यो को करने की इच्छा मे स्वार्थपूर्ण विचारो का आभास होता है, उसी प्रकार उसकी इस अभिलाषा मे कि उसके कुटुम्बीजन उसके जीवन-काल मे तथा मृत्युपर्यन्त सुखी और समृद्ध बने, व्यक्तिगत स्वाभिमान का अश रहता है। किन्तु पारिवारिक स्नेह निःस्वार्थता का इतना विशुद्ध रूप है कि यदि उनके कार्य पारिवारिक सम्बन्धो मे समता की दृष्टि से नहीं किये जाते तो उनमे बहुत कम नियमितता दिखायी देती। चूंकि ये कार्य पारिवारिक सम्बन्धो को समान समझ कर ही किये जाते है, अतः ये नियमित होते है, और इन पर विशेषकर पारिवारिक आय के विभिन्न सदस्यो मे वितरण करने, बच्चों के भविष्य के निर्माण मे होने वाले व्यय तथा धन अर्जित करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा संचित धन के उपभोग की दृष्टि से अर्थशास्त्रियो ने सदा ही पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किया है।

अतः तीव्र इच्छा के अभाव की अपेक्षा शक्तिहीन होने के कारण अर्थशास्त्री इस प्रकार के प्रयोजनो के प्रभावो पर भलीभांति विचार नहीं कर पाते। वे हृदय से इस बात का स्वागत करते है कि लोकहितैषी कार्यो का कुछ सांख्यकीय विवरण भी दिया जा सके और यदि पर्याप्त रूप से व्यापक औसत निकाले जाये तो इन्हे कुछ सीमा तक सिद्धान्त का रूप दिया जा सकता है। यद्यपि, शायद ही कोई ऐसा प्रयोजन होगा जो इस भांति अनियमित और अनिश्चित हो तथापि धैर्यपूर्वक प्रचुर अवलोकन करने के फलस्वरूप इस सम्बन्ध मे किसी न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जा सकता है। इस विषय का अभी भी भलीभांति अनुमान लगाया जा सकता है कि औसत सम्पत्ति वाले इग्लैंड के एक लाख निवासी हस्पतालो, गिरजाघरो और धर्म-प्रचार सम्बन्धी संस्थाओ के लिए कितना चन्दा देगे। जिस सीमा तक यह अनुमान सत्य निकलता है वहाँ तक हस्पताल की नर्सो, धर्म-प्रचारको एव पादड़ियो की सेवाओ की माँग और संभरण के विषय मे आर्थिक विचार प्रकट किये जा सकते है। यह सत्य है कि उन अधिकाश कार्यो को, जो अपने पड़ोसियो के प्रति कर्तव्य तथा स्नेह की भावना से उत्पन्न होते है, न तो वर्गीकृत किया जा सकता है, न सिद्धान्त ही माना जा सकता है, और

न उनको आका ही जा सकता है। यही कारण है कि इन्हें अर्थशास्त्र की परिधि से परे रखा गया है। अत. यह कहना त्रुटिमय है कि इन विषयो का स्वहित से संचालन न हो सकने के कारण अर्थशास्त्र मे अध्ययन नही हो सकता।

सामूहिक कार्यों को करने के प्रयोजनों का बड़ा महत्व है, और यह महत्व दिनप्रतिदिन और भी अधिक होता जा रहा है।

§6. सम्भवतः प्राचीन आग्ल अर्थशास्त्रियो ने अपना ध्यान व्यक्तिगत प्रयोजनों तक ही सीमित रखा। वस्तुतः समाजशास्त्र के अन्य विद्यार्थियों की भाँति अर्थशास्त्रियों का सम्बन्ध भी समाज का सदस्य होने के कारण मुख्यतया व्यक्तियो से ही रहता है। जिस प्रकार गिरजाघर केवल पत्थरो से बनी इमारत ही नही है, तथा जिस प्रकार मनुष्य केवल विचार और भावनाओ का समूह ही नही है, उसी प्रकार सामाजिक जीवन भी उसके सभी व्यक्तिगत सदस्यों के जीवन के योग से भिन्न है। यह सत्य है कि इकाई का कार्य उसके विभिन्न अंगो के कार्य पर आधारित होता है तथा बहुत सी आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण का सबसे उत्तम प्रारम्भ-बिन्दु उन प्रयोजनों में पाया जाता है जो किसी व्यक्ति को इक्के-दुक्के (Cisolated atoms) व्यक्ति की अपेक्षा किसी व्यापारिक या औद्योगिक वर्ग का सदस्य समझते है। जर्मन लेखकों ने उचित ही कहा है कि अर्थशास्त्र का सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व तथा मुख्य उद्देश्यों को सामूहिक रूप से प्राप्त करने के प्रयोजनो से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस युग की तत्परता से कार्य करने की भावना, जनसाधारण की विचार शक्ति, तार, मुद्रणालय एवं संचार के अन्य साधनो मे वृद्धि के फलस्वरूप जनहित के लिए सामूहिक कार्य का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा है। आर्थिक लाभ के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रयोजनों के प्रभाव से सहकारी आन्दोलन तथा अन्य प्रकार के ऐच्छिक सघो के विस्तार के साथ-साथ इन परिवर्तनो मे भी बराबर वृद्धि हो रही है। इनके फलस्वरूप अर्थशास्त्रियो को उन प्रयोजनो को मापने के अनेक सुअवसर प्राप्त होते है जिन्हें भूत काल मे किसी भी प्रकार से सिद्धान्त का रूप नही दिया जा सकता था।

वास्तव मे मनुष्य के प्रयोजनो की विभिन्नता, उनको म.पने की कठिनाइयाँ तथा उन्हे दूर करने के उपाय उन मुख्य विषयो मे से है जिन पर इस ग्रन्थ मे प्रकाश डाला गया है। जिन-जिन बातो पर इस अध्याय मे विचार किया गया है उनकी अर्थशास्त्र की मुख्य-मुख्य समस्याओ की दृष्टि से विस्तारपूर्वक चर्चा करनी आवश्यक है।

अर्थशास्त्री किसी व्यक्ति का औद्योगिक वर्ग के सदस्य के रूप में अध्ययन करते हैं। वे उसके प्रयोजनों को मांग

§7. सामयिक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्थशास्त्री व्यक्तियों के कार्यों का अध्ययन करते है किन्तु वे उसके व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन न करके सामाजिक जीवन का अध्ययन करते हैं। अतः स्वभाव तथा आचरण की निजी विशेषताओं से उनका बहुत कम सम्बन्ध है। वे मानव वर्ग के, कभी-कभी समूचे राष्ट्र के, कभी केवल एक जिले मे रहने वालो के, और बहुधा उन लोगो के आचरण को ध्यानपूर्वक दृष्टि मे रखते है जो एक निदिष्ट स्थान और समय पर किसी विशेष व्यापार मे लगे हैं। आँकड़ो की सहायता से, या किसी अन्य प्रकार से, वे इस बात का पता लगाते हैं कि औसत रूप मे उस विशेष वर्ग के सदस्य, जिन्हे वे दृष्टि मे रखते है, किसी इच्छित वस्तु के मूल्य के रूप मे कितना द्रव्य देने को तत्पर है, या किसी उद्यम को करने अथवा इच्छा के विपरीत कुछ वस्तुओ का उपभोग न करने की प्रेरणा देने के लिए उन्हे कितना द्रव्य दिया जाय। वास्तव मे प्रयोजनो को आँकने का इस प्रकार का माप पूर्णरूप से

यथार्थ नहीं हो सकता, क्योंकि यदि ऐसा सम्भव होता तो अर्थशास्त्र की गणना बहुत कम विकसित भौतिक विज्ञानों (जिनमें वास्तव में इनकी गणना की जाती है) की अपेक्षा अत्यधिक विकसित भौतिक विज्ञानों के साथ होती।

और संभरण के रूप में पहले-पहल साधारण दशाओं में और तत्पश्चात् जटिल दशाओं में मापते हैं।

तथापि यह माप इतना सही होता है कि अनुभवी व्यक्ति यह पहले ही ठीक-ठीक बता देते हैं कि इससे सम्बन्धित प्रयोजनों में परिवर्तनों के क्या परिणाम हो सकते है। उदाहरण के रूप मे, वे यह भलीभाँति अनुमान लगा सकते है कि किसी स्थान पर नये उद्यम को प्रारम्भ करने के लिए निम्न से निम्न तथा उच्च से उच्च सभी स्तरो के श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति के लिए कितनी पूँजी की आवश्यकता होगी। जब वे किसी ऐसी फैक्टरी को देखते है जिसे उन्होने पहले कभी नही देखा हो तो वे केवल यह देख कर कि किसी श्रमिक का काम-धन्धा कितना कुशल है और इसके कारण उसकी शारीरिक, मानसिक एव नैतिक शक्तियो पर कितना जोर पडता है, ठीक-ठीक बता देते है कि वह प्रति सप्ताह कितनी आय अर्जित करलेता है। वे प्राय. यथार्थ रूप मे यह बता देते हैं कि किसी वस्तु की पूर्ति में कमी होने के फलस्वरूप उसकी कीमत मे कितनी वृद्धि हो सकती है, और उस बढ़ी हुई कीमत की उस वस्तु की पूर्ति पर क्या प्रतिक्रिया होगी।

इस प्रकार के सरल विषयों पर विचार करने के पश्चात् अर्थशास्त्री अन्य जटिल विषयों पर विचार करते है, जैसे विभिन्न उद्योगो का स्थानीय विभाजन किन-किन कारणों पर आधारित है, दूर-दूर रहने वाले लोग एक दूसरे से किस प्रकार अपनी वस्तुओं का आदान-प्रदान करते है, इत्यादि, इत्यादि: वे न केवल यह स्पष्ट करते है कि साख में वृद्धि या कमी के फलस्वरूप वैदेशिक व्यापार पर क्या प्रभाव पडेगा या केवल यही नही बताते कि किसी कर का भार व्यापारियों पर से उपभोक्ताओ पर किस सीमा तक हटाया जा सकता है, वे इन विषयो के सम्बन्ध में पूर्वानुमान भी लगा लेते हैं।

अर्थशास्त्री मनुष्य के जीवन के एक पहलू का ही अध्ययन करते हैं, किन्तु यह अध्ययन वास्तविक मनुष्य के जीवन का है, न कि एक काल्पनिक मनुष्य का।

इन सब मे वे मनुष्य का यथावत् अध्ययन करते है : वे एक अमूर्त या आर्थिक मनुष्य का अध्ययन न कर एक हाड़-मांस के बने व्यक्ति का अध्ययन करते है। वे एक ऐसे मनुष्य का अध्ययन करते है जिसके व्यापारिक जीवन में अहंवादी भावनाओं का बहुत प्रभाव पडता है, किन्तु जो मिथ्याभिमान एवं अदूरदर्शिता से परे नही है और यह भी सही नहीं है कि वह अपने कार्य को निःस्वार्थ रूप से कार्य करने मे या अपने कुटुम्बीजनों, पडोसियो तथा राष्ट्र के हित के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करने मे आनन्दित नही होता, जो एक सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने मे आनन्द का अनुभव करता है। वे मनुष्य का जैसा वह है, उसी रूप मे अध्ययन करते है : किन्तु जीवन के उन पहलुओं से विशेष रूप से सम्बन्ध रखने के कारण जिन्हें लक्ष्य प्राप्ति का कार्य नियमित होने से पहले ही बतलाया जा सकता है, तथा जिन कार्यो को करने की प्रेरणाओं के अनुमान की उनके परिणामो से जाँच-पड़ताल हो सकती है, उन्होंने अपने विचारों को वैज्ञानिक रूप दिया है।

अर्थशास्त्र में आन्तरिक

सर्वप्रथम इसमें उन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जिनका अवलोकन किया जा सकता है तथा जिनकी मात्रा को मापा और लिपिबद्ध किया जा सकता है, जिससे

समानता होने तथा बाह्य परीक्षणों द्वारा निश्चित रूप में इसकी जांच-पड़ताल हो सकने के कारण इसे विज्ञान की संज्ञा दी जाती है।

जब कभी इस विषय में मतभेद हो तो सार्वजनिक एवं अन्य मान्य अभिलेखों द्वारा इनकी जांच की जा सकती है, और इस प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए ठोस आधार प्राप्त हो जाता है। दूसरी बात यह है, कि मुख्यतया मनुष्य के उस आचरण से सम्बन्ध रखने के कारण, जिस पर द्रव्य द्वारा मापे जाने वाले प्रयोजनों का प्रभाव पड़ता है जिन समस्याओं को आर्थिक समस्याओं की श्रेणी मे रखा जाता है उनमें बडी समानता मिलती है। यह सत्य है कि इनके विषय-सार में एक बडी मात्रा में समरूपता पायी जाती है: यह तो विषय से ही स्पष्ट हो जाती है। किन्तु सम्भवतया बहुत स्पष्ट न होने पर भी यह भी सत्य सिद्ध होगा कि सभी मुख्य समस्याओं में वास्तव मे एक आधारभूत सामंजस्य दिखायी देता है। अतः इन सबका एक साथ अध्ययन करने से उसी प्रकार की मितव्ययिता होती है जैसी कि किसी मुहल्ले की चिट्ठियों को डालने के लिए अलग-अलग पत्रवाहकों को भेजने की अपेक्षा इन्हें एक ही डाकिये को देने से होती है। इसका कारण यह है कि इन विषयो के किसी एक वर्ग के विषय मे जिन विश्लेषणो एव व्यवस्थित तर्कों की आवश्यकता होती है वे इनके अन्य वर्गों के लिए भी लाभदायक सिद्ध होते हैं।

अतः अच्छा होगा कि हम यह पता लगाने की शास्त्रीय जाँच कम करे कि अर्थशास्त्र मे किन-किन विषयो पर विचार किया जाता है और किन-किन पर नही। महत्वपूर्ण विषयों पर जहाँ तक हो सके अवश्य ही विचार करना चाहिए, किन्तु यदि यह विषय ऐसा हो कि उस पर लोग एकमत न हों, उसकी उस ज्ञान से जाँच न की जा सकती हो जो यथार्थ हो तथा पर्याप्त जानकारी पर आधारित हो, और यदि उस पर अर्थशास्त्र के सामान्य विश्लेषण एव तर्कों का कोई भी प्रभाव न पड़े तो आर्थिक अध्ययनों मे इन विषयों का पूर्णरूप से समावेश नही करना चाहिए। ऐसा करना इसलिए उचित है कि इन्हे शामिल करने से आर्थिक ज्ञान की निश्चितता तथा यथार्थता मे कमी आ जायेगी और इनसे इस कमी के बराबर लाभ नही होगा। इस सम्बन्ध मे यह स्मरण रहे कि अर्थशास्त्र तथा अन्य विज्ञानो द्वारा जब व्यवस्थित रूप मे प्राप्त तथ्यो तथा व्यावहारिक समस्याओ का अन्ततोगत्वा नैतिक भावनाओ एवं सामान्य विचार शक्ति द्वारा निराकरण किया जाता है तो उस समय इन विषयों को भी कुछ मात्रा मे अवश्य ही ध्यान मे रखा जाता है।

अध्याय 3

आर्थिक सामान्यीकरण अथवा नियम

अर्थशास्त्र में आगमन और निगमन दोनों प्रणालियों का विभिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न मात्राओं में प्रयोग किया जाता है।

§1. अन्य सभी विज्ञानों की भाँति अर्थशास्त्र का विषय तथ्यों को एकत्रित करना, उनको क्रमबद्ध करना, उनका विवेचन करना तथा उनके आधार पर निष्कर्ष निकालना है। "निरीक्षण एवं वर्णन, व्याख्या तथा वर्गीकरण इसका प्रारम्भिक कार्य है, किन्तु इनके द्वारा हम आर्थिक विषयो के एक दूसरे पर आश्रित होने का ज्ञान प्राप्त करते है, इत्यादि। जिस प्रकार चलने के लिए दाहिने और बाये दोनो पैरो की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार वैज्ञानिक विचारो के लिए आगमन और निगमन दोनो प्रणालियाँ आवश्यक है।"[1] इस दुहरे कार्य के लिए जिन विधियो की आवश्यकता होती है उनका प्रयोग केवल अर्थशास्त्र मे ही नही बल्कि सभी विज्ञानो मे होना है। कारण और परिणाम के पारस्परिक सम्बन्धो की खोज के लिए प्रयोग मे लाये जाने वाले उन सभी उपायो का अर्थशास्त्रियो को उपयोग करना पडता है जिनका वैज्ञानिक प्रणाली से सम्बन्धित ग्रन्थों मे वर्णन किया जाता है। अन्वेषण की कोई एक ऐसी प्रणाली नही है जिसे वास्तविक रूप मे अर्थशास्त्र की प्रणाली कहा जा सके। अत: प्रत्येक प्रणाली का उसके उपयुक्त स्थान पर एकमात्र अथवा अन्य प्रणालियो के साथ-साथ प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार शतरज की पाटी पर दोनो पक्षो की ओर से जिन ढगो से मुहरे चलाये जाते है वे इतने अधिक होते है कि कदाचित् ही कोई दो खेल एक ही प्रकार से खेले गये हों, उसी प्रकार कोई भी विद्यार्थी प्रकृति के छिपे हुए तथ्यो को जानने के लिए एक ही प्रकार के ढगो को समान रूप मे नही अपनाता।

किन्तु अर्थशास्त्र के अध्ययन की कुछ शाखाओ मे, और कुछ प्रयोजनो के लिए वर्तमान तथ्यो को पारस्परिक सम्बन्ध तथा विवेचन पर ध्यान एकाग्र करने की अपेक्षा नवीन तथ्यो का पता लगाना अधिक आवश्यक है, जबकि दूसरी शाखाओं मे अभी भी इतनी अनिश्चितता है कि किसी भी घटना से सम्बन्धित कारणो के विषय मे यह नही कहा जा सकता कि वे ही इसके वास्तविक एवं एकमात्र कारण है, और अधिक तथ्य प्राप्त करने की अपेक्षा यही अधिक आवश्यक है कि ज्ञात तथ्यो के विषय मे हम अपने विचारो पर ध्यानपूर्वक मनन करे।

विश्लेषणात्मक और ऐतिहासिक दोनों विचार धाराएँ आवश्यक हैं, क्योंकि ये

इस ओर अन्य कारणो के फलस्वरूप विभिन्न रुचियो एव उद्देश्यों वाले लोगो की, जिनमे कुछ तो केवल तथ्यो के पता लगाने मे और अन्य वैज्ञानिक विश्लेषण पर (अर्थात् जटिल समस्याओं को हिस्सों मे विभक्त कर उनके विभिन्न पहलुओ के पारस्परिक तथा सजातीय सम्बन्ध के अध्ययन पर) अधिक ध्यान देते है, सदा ही साथ-साथ आवश्यकता रही है और सम्भवतया भविष्य मे भी रहेगी। यह आशा की जाती है कि ये दोनों विचारधाराएँ सदा ही रहेगी और अपना-अपना कार्य भलीभाँति सम्पन्न

1 कोनराड (Conrad) के Handworterbuch में स्मोलर (Schmoller) द्वारा Volkswirtschaft पर लिखे गये लेख को देखिए।

दोनों एक दूसरे के अनुपूरक हैं।

करेंगी तथा एक दूसरे की सफलता से लाभ उठायेंगी। इस प्रकार से ही हम विगत काल के सम्बन्ध मे युक्तिपूर्ण सामान्यीकरण निकाल सक्ते है, और इससे भविष्य के विषय मे विश्वसनीय पथ-प्रदर्शन हो सकता है।

तथ्यों के व्यवस्थित अध्ययन को क्षाधार पर कल्पना द्वारा कथनों की सामान्य रचना होती है और इनमें से कुछ को 'नियम' को संज्ञा दी जाती है।

§2. सच पूछो तो वे सब भौतिक विज्ञान 'यथार्थ विज्ञान' नही हैं जिनका उस सीमा से कही अधिक विकास हो चुका है जहाँ तक मेधावी यूनानियों ने उन्हें पहुँचाया था, किन्तु उन सब का लक्ष्य यथार्थता का पता लगाना ही है। अर्थात्, उन सभी का उद्देश्य प्रचुर अवलोकन के फलस्वरूप उन सामयिक (अल्पकालीन) कथनों का निष्पादन करना है जो प्रकृति के अन्य पर्यवेक्षणों द्वारा जाँच के लिए पर्याप्त रूप से निश्चित किये जाते हैं। इन्हे प्रथम बार जनता के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने पर कदाचित ही बडी प्रामाणिकता मिलती है, किन्तु जब अन्य व्यक्तियो के पर्यवेक्षणों द्वारा इनकी जाँच हो जाती है, और मुख्यतया जब भविष्य मे होने वाली घटनाओं अथवा नये परीक्षणों के परिणामों की पूर्वसूचना देने मे उनका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है तब उन्हें 'नियम' कहा जाता है। किसी भी विज्ञान का उस समय विकास होता है, जब उसके नियमो की सख्या और उनकी यथार्थता मे वृद्धि हो और दिन-प्रतिदिन किये गये क्लिष्ट परीक्षणों द्वारा उनकी जाँच की जाय तथा उनके क्षेत्र का तब तक विकास किया जाय जब तक एक ही विस्तृत नियम अनेक सकुचित नियमो के स्थान पर स्थापित न हो जाय।

जहाँ तक किसी विज्ञान मे ऐसा किया जाता है, उसका अनुशीलन करने वाला व्यक्ति कुछ दशाओ मे अधिक अधिकारपूर्वक कह सकता है (सम्भवतया किसी ऐसे योग्य से योग्य विचारक से भी अधिक अधिकारपूर्वक कह सकता है जो अपने ही निष्कर्षों पर आश्रित रहता है, और अपने से पहले के अन्वेषणो द्वारा निकाले गये परिणामों की अवहेलना करता है) कि कुछ निश्चित दशाओ मे किस प्रकार के प्रतिफल की आशा की जानी चाहिए, अथवा किसी ज्ञात घटना के कौन से वास्तविक कारण हो सकते है।

यद्यपि कम से कम इस समय कुछ प्रगतिशील भौतिक विज्ञानो के विषय-सार को पूर्णरूप से ठीक-ठीक माप नही किया जा सकता, तथापि उनकी उन्नति उसमें काम करने वाले असख्य लोगो के पूर्ण सहयोग पर निर्भर है। वे अधिक से अधिक सूक्ष्म रूप मे अपने तथ्यो को मापते है और अपने कथनो की परिभाषा देते हैं: जिससे प्रत्येक अन्वेषक अपना कार्य उस स्थान से प्रारम्भ कर सके जहाँ पर उसके पहले उसी क्षेत्र मे काम करने वाले लोगो ने उस विषय को पहुँचाया था। विज्ञानो के इस वर्ग मे स्थान पाने के लिए अर्थशास्त्र पूर्णतया प्रयत्नशील है. यद्यपि इसके मापो द्वारा कभी-कभी ही पूर्णरूप से निश्चित परिणाम निकाले जाते है और वे परिणाम कभी भी अन्तिम नही होते, किन्तु फिर भी इसमे उन परिणामो को अधिक निश्चित रूप देने का निरन्तर प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार इसके विषय की सीमाएँ बढती जाती है जिससे इसका अनुशीलन करने वाला कोई भी व्यक्ति इस सम्बन्ध मे अधिकारपूर्वक अपने विचार व्यक्त कर सकता है।

विज्ञान के लगभग

§3 अब हम आर्थिक नियमो और उनकी परिसीमाओं पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। यदि मार्ग मे कोई बाधा न पड़े तो प्रत्येक कारण से किसी न किसी निश्चित

सभी नियम प्रवृत्तियों के वर्णन होते हैं।

फल निकलने की सम्भावना रहती है। गुरुत्वाकर्षण के कारण सभी वस्तुएँ भूमि पर गिरती है: किन्तु जब कोई गुब्बारा हवा से भी हलकी गैस से भरा हो तो गुरुत्वाकर्षण के फलस्वरूप उसके पृथ्वी पर गिरने की प्रवृत्ति के बावजूद भी हवा का दबाव उसे ऊपर आकाश को ले जाता है। गुरुत्वाकर्षण का नियम यह बतलाता है कि कोई भी दो वस्तुएँ एक दूसरे को किस प्रकार आकर्षित करती है, किस प्रकार वे एक दूसरे की ओर बढ़ती है, और यदि उनके मार्ग मे कोई बाधा न उत्पन्न हो तो वे किस प्रकार एक दूसरे की ओर जायेंगी। अतः गुरुत्वाकर्षण का नियम प्रवृत्तियो का वर्णन है।

साधारण विज्ञानों के यथार्थ नियम।

उक्त कथन बहुत सत्य है—यहाँ तक कि इसके आधार पर गणितज्ञ सागरीय पंचांग की गणना कर सकते हैं जिससे उन क्षणो का पता लगाया जा सकता है जब वृहस्पति नक्षत्र का प्रत्येक उपग्रह उसके पीछे छिप जायेगा। गणितज्ञ तो इस प्रकार की गणना बहुत वर्ष पूर्व ही कर लेते हैं, और पोतवाहक उसे अपने साथ समुद्र यात्रा में ले जाते है और इसकी सहायता से यह पता लगाते है कि वे किस स्थान पर है। परन्तु कोई भी ऐसी आर्थिक प्रवृत्तियाँ नही है जो गुरुत्वाकर्षण के नियम की भाँति निश्चित हो और जिन्हे इसकी भाँति मापा जा सकता हो; और परिणाम स्वरूप अर्थशास्त्र का कोई भी ऐसा नियम नहीं है जिसकी यथार्थता मे गुरुत्वाकर्षण के नियम से तुलना की जा सकती हो।

जटिल विज्ञानों के अनिश्चित नियम।

अब हम खगोल विज्ञान से कम निश्चित विज्ञान के विषय मे विचार करेंगे। ज्वार-भाटे का विज्ञान हमे यह बतलाता है कि सूर्य और चन्द्रमा की गति से किस प्रकार दिन में दो बार ज्वार-भाटा आता है. किस प्रकार द्वितीया और पूर्णिमा के दिन दीर्घ ज्वार आता है, और दोनो पक्षो की अष्टमी के दिन हलका ज्वार आता है, और सेवर्न नदी मे आने वाले ज्वार की तरह किस प्रकार बद जल-समोजक मे आने वाला ज्वार बहुत ऊँचा होता है इत्यादि, इत्यादि। इस प्रकार बृटिश द्वीप समूहो की भूमि की स्थिति तथा उनके चारो ओर फैले हुए जल का अध्ययन करने से यह पहले ही पता लगाया जा सकता है कि दिन मे लदन-ब्रिज पर अथवा ग्लारोस्टर पर सम्भवतः सबसे अधिक ऊँचा ज्वार कब आयेगा और वह कितना ऊँचा होगा। उपरोक्त विषय मे उन्हें **सम्भवतः** शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, जबकि वृहस्पति नक्षत्र के उपग्रहो के ग्रहण के विषय मे जब खगोलवेत्ता अपने विचार व्यक्त करते हैं तो उक्त शब्द का प्रयोग नही करते। यद्यपि वृहस्पति नक्षत्र तथा उसके उपग्रहो के ऊपर अनेक शक्तियाँ अपना प्रभाव डालती हैं, किन्तु हर एक शक्ति का प्रभाव एक निश्चित ढग से पड़ता है और इसका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है. किन्तु मौसम के विषय में किसी को भी इतना ज्ञान नही है कि वह यह पहले ही बता सके कि मौसम कैसा रहेगा। थेम्स (Thames) नदी की घाटी के ऊपरी भाग में भीषण वर्षा के फलस्वरूप अथवा जर्मन महासागर मे तीव्र उत्तर-पूर्वी वायु के कारण लंदन-ब्रिज पर आने वाले ज्वार-भाटे का रूप उस रूप से बहुत अधिक भिन्न हो सकता है जिसकी कि अन्यथा आशा की गयी हो।

मनुष्य से सम्बन्धित

अर्थशास्त्र के नियमों की तुलना गुरुत्वाकर्षण के सरल और यथार्थ नियमो की अपेक्षा ज्वार-भाटे के नियमों से होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि मनुष्य के

विज्ञान जटिल है और इसके नियम अनिश्चित हैं।

कार्य अनेक तथा अनिश्चित होते है जिससे उसके आचरणो के अध्ययन करने वाले शास्त्र के विषय में हम प्रवृत्तियो का जो भी सर्वोत्तम वर्णन करे वह स्वभावत अनिश्चित और त्रुटिपूर्ण होगा। इसके फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि ऐसे विषय के सम्बन्ध मे कुछ भी न कहना चाहिए, किन्तु इसका अर्थ तो जीवन से ही मुँह मोडना है। मानव-आचरण और उससे सम्बन्धित विचार और भावनाएँ ही जीवन की रूप-रेखा तैयार करती हैं। हम सब लोग चाहे उच्च कुल के हो या नीच, पडित हो या मर्ख, अपनी स्वाभाविक अन्तःप्रेरणाओ द्वारा मनुष्य की कार्य-पद्धतियो को विभिन्न मात्राओ मे समझने और उनको अपने स्वार्थपूर्ण अथवा निःस्वार्थ, श्रेष्ठ अथवा तुच्छ, उद्देश्यो के अनुकूल बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते है। चूँकि मनुष्यो के कार्यों की प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ धारणा बनाना आवश्यक है, अत हमे यह निर्णय करना है कि इन धारणाओ को असावधानी से बनावे अथवा सोच-विचार कर बनावे। कार्य जितना ही अधिक कठिन होगा हमे निश्चल और शान्तिपूर्ण जाँच की उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है जिससे अधिक विकसित भौतिक विज्ञानो द्वारा अर्जित अनुभव से लाभ उठाया जा सके तथा मानवीय क्रिया की प्रवृत्तियो के विषय मे अपनी ओर से सुचिन्तित अनुमान लगाये जा सके अथवा अस्थाई नियम बनाये जा सकें।

§ 4 इस प्रकार 'नियम' शब्द का अर्थ एक व्यापक कथन अथवा उन प्रवृत्तियो का वर्णन है जो प्राय विश्वसनीय और निश्चित हैं। इस प्रकार के वक्तव्य प्रत्येक विज्ञान मे मिलते है, किन्तु उन सबको हम एक यथार्थ रूप नही दे सकते और उन्हे नियम भी नही कह सकते। इन वक्तव्यो मे से कुछ को हमे चुनना आवश्यक है परन्तु इस प्रकार के चयन मे पूर्णरूप से वैज्ञानिक विचारो की अपेक्षा व्यावहारिक सुविधाओ का अधिक प्रभाव पडता है। यदि हम किसी सामान्य कथन को इतनी बार प्रयोग मे लाना चाहे कि अन्ततोगत्वा आवश्यकता पडने पर इसे उद्धृत करने की अपेक्षा उस विषय के विवेचन मे इसके लिए एक अतिरिक्त औपचारिक कथन या एक अतिरिक्त शास्त्रीय नाम देना अधिक सुविधापूर्ण हो तो इसे एक विशिष्ट नाम दिया जाता है, अन्यथा नही।[1]

सामाजिक नियम की परिभाषा।

इस प्रकार समाज-विज्ञान का नियम अथवा **सामाजिक नियम** सामाजिक प्रवृत्तियो का एक वर्णन है, अर्थात् इसमे इस बात का अध्ययन किया जाता है कि समाज के किसी वर्ग के व्यक्तियो से किन्ही खास परिस्थितियो मे किस प्रकार के कार्यों की आशा की जा सकती है।

---

1 "प्राकृतिक एवं आर्थिक नियमों" के सम्बन्ध का न्यूमन (Neumann) ने (Zeitschrift fur die gesamte Staatswissenschaft 1892) विस्तारपूर्वक विवेचन किया है, और उन्होंने (पृष्ठ 464) यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रवृत्ति के उन वर्णनों को व्यक्त कर के लिए नियम (Gesetz) के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपयुक्त शब्द नहीं है। जो प्राकृतिक तथा आर्थिक विज्ञानों में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैगनर (Wagner) (Grundlegung, §§ 86–91) को भी देखिए।

आर्थिक नियम या आर्थिक प्रवृत्तियों के वर्णन वे सामाजिक नियम है जो मनुष्य के व्यवहार के उन पहलुओ से सम्बन्धित है जिनमे मनुष्य के मुख्य-मुख्य प्रयोजनो की तीव्रता को द्रव्य द्वारा माप सकते है। इस प्रकार उन सामाजिक नियमो मे जिन्हें अर्थ-शास्त्र के नियम कह सकते है, और जिन्हें ऐसा नही कह सकते, कोई स्पष्ट भेद नही है, क्योकि सामाजिक नियमो की अनेक श्रेणियाँ है जिनमे से कुछ का सम्बन्ध उन उद्देश्यो से है जिनको द्रव्य द्वारा मापा जा सकता है और कुछ ऐसी भी है जिनमे इस प्रकार के उद्देश्यों का बहुत कम स्थान है। अतः वे अर्थशास्त्र के नियमो की अपेक्षा उतने ही कम यथार्थ और निश्चित हैं जितने कि आर्थिक नियम अधिक निश्चित भौतिक विज्ञानो की अपेक्षा कम यथार्थ और निश्चित है।

आर्थिक नियम की परिभाषा।

मूल 'नियम' के अनुरूप विशेषण 'कानून' है। किन्तु इस शब्द का प्रयोग सरकारी अध्यादेश के अर्थ मे होता है, न कि उस 'नियम' के सम्बन्ध मे जो कारण और परिणाम के सम्बन्ध का वर्णन करता है। इस कार्य के लिए जिस विशेषण का प्रयोग किया गया है वह 'नोर्मा' (Normo) शब्द से निकला है जिसका अर्थ 'नियम' ही समझना चाहिए, और इसका प्रयोग वैज्ञानिक विवेचनो मे 'नियम' के स्थान पर भलीभाँति किया जा सकता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के नियम की परिभाषा को ध्यान मे रखकर हम यह कह सकते है कि **कुछ दशाओं** मे एक औद्योगिक वर्ग के सदस्यो से जिस क्रियाविधि की आशा की जाती है वह उन परिस्थितियो मे उन लोगो की **प्रसामान्य क्रिया** है।

प्रसामान्य आर्थिक क्रिया की परिभाषा।

प्रसामान्य शब्द का इस प्रकार का अर्थ गलत समझा जाता है। यहाँ पर इस शब्द के विभिन्न प्रयोगो मे निहित एकता पर विचार करना अच्छा होगा। जब हम एक अच्छे और मजबूत आदमी के विषय मे विचार करते है तो इस प्रसग मे ज्ञात शारीरिक, मानसिक अथवा नैतिक गुणो की उत्तमता या प्रबलता की ओर सकेत करते है। एक विचारशील न्यायाधीश मे कदाचित् ही वे गुण होते है जो एक हृष्ट-पुष्ट नाविक मे होते है। एक अच्छे युवक (Jockey) मे सदा ही विशिष्ट गुण नही होते। उसी प्रकार प्रसामान्य शब्द के हर प्रयोग का अर्थ कुछ निश्चित प्रवृत्तियो की प्रधानता से है जो असाधारण और विरामी (Intermittant) प्रवृत्तियो की अपेक्षा अधिकाशतया अधिक स्थिर और चिरस्थायी होती हैं। बीमारी मनुष्य की एक असाधारण दशा है, किन्तु बिना बीमारी के एक लम्बा जीवन बिताना भी एक असाधारण-सी बात है। बर्फ के पिघलने पर राइन नदी के पानी का स्तर साधारण स्तर से ऊँचा हो जाता है, किन्तु शीत और शुष्क वसन्त ऋतु मे जब पानी का स्तर सामान्य स्तर से कम होता है तो उस समय यह कहा जाता है कि उसका स्तर वर्ष के उस काल मे असाधारणतया कम है। उन सभी दशाओ मे प्रसामान्य परिणाम वे है जो उन प्रवृत्तियों के प्रतिफल समझे जाते है जिनका उस प्रसग मे आभास मिलता है, अथवा, दूसरे शब्दो में, जो उन 'प्रवृत्ति के वर्णनो', नियमो तथा आदर्शो के अनुरूप होते है जो उस प्रसग में उचित हैं।

प्रसामान्य शब्द का अर्थ विचाराधीन परिस्थितियों में समानता से है।

इस दृष्टिकोण से यह कहा जाता है कि प्रसामान्य आर्थिक क्रिया वह है जिसकी एक औद्योगिक वर्ग के सदस्यो से किन्ही खास परिस्थितियो मे (बशर्ते कि परिस्थितियाँ

इस प्रकार प्रसामान्य

दशाओ से अभिप्राय अधिक या अल्प मजदूरी से होता है।

वही रहे) दीर्घ काल मे आशा की जाती है। यह साधारण बात है कि इंग्लैंड के अधिकाश भाग मे ईट तैयार करने वाले लोग 10 पेंस प्रति घन्टे पर काम करने को तैयार रहते है, परन्तु 7 पेंस प्रति घन्टे पर तैयार नही होते। जोहान्सवर्ग मे यह साधारण बात है कि एक ईट बनाने वाला 1 पौंड प्रति दिन से कम मिलने पर काम न करे। यदि वर्ष के किसी विशेष समय को ध्यान मे न रखा जाय तो विश्वसनीय ताजे अडों की सामान्य कीमत एक पेंस समझी जाती है, किन्तु फिर भी जनवरी के महीने में शहर मे यह कीमत 3 पेंस होगी, और अधिक गर्मी के कारण, जो साधारणतया उस मौसम मे नही होती, अडे की कीमत 2 पेंस तो असाधारणतया कम समझी जायेगी।

इनका अर्थ यह भी हो सकता है कि तीव्र प्रतियोगिता है या नहीं है।

एक और भ्रम, जिससे दूर रहने की आवश्यकता है, इस बात से उत्पन्न होता है कि वे ही आर्थिक परिणाम प्रसामान्य हैं जो बिना किसी बाधा के पूर्ण प्रतियोगिता के होने से पाये जाते है। किन्तु इस शब्द का प्रयोग अधिकाशतःया उन परिस्थितियो मे किया जाता है जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता नही है, और सम्भवतः इसके होने की कल्पना भी नही की जाती। और जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता बहुत अधिक मात्रा मे पायी जाती है, वहाँ भी प्रत्येक तथ्य और प्रवृत्ति की प्रसामान्य दशाओ मे उन मुख्य चीजों का समावेश होगा जो न तो प्रतियोगिता के अग है और न उसके अनुरूप हैं। उदाहरण के लिए, थोक और फुटकर व्यापार मे और सट्टे तथा रुई के बाजार मे अनेक सौदो का साधारण रूप इस बात पर आधारित है कि बिना किसी गवाह के ही मौखिक सविदाओ की प्रतिष्ठा की जायेगी, अर्थात् उनका प्रतिपालन किया जायेगा। जिन देशो में इस प्रकार की मान्यता को न्याय-सगत नही ठहराया गया है वहाँ पर पश्चिमी देशो में प्रचलित सामान्य मूल्य के सिद्धान्त का कुछ भाग लागू नही होगा। इसके अतिरिक्त सट्टे बाजार के ऋणपत्रो "पर प्रसामान्य रूप मे" न केवल साधारण विक्रेताओ के बल्कि दलालो के भी देश-प्रेम के विचारो का प्रभाव पड़ता है, इत्यादि।

प्रसामान्य कार्य को हमेशा ही ठीक कार्य नहीं समझा जाता।

अत मे कभी-कभी भ्रम के कारण यह समझा जाता है कि अर्थशास्त्र मे प्रसामान्य कार्य वह है जो नैतिक दृष्टि से ठीक हो। किन्तु ऐसा उसी समय समझना चाहिए जब प्रसग से यह मालूम हो कि वह कार्य नैतिक दृष्टि से विचारा जा रहा है। जब हम ससार के तथ्यो पर इस दृष्टि से विचार करते है कि "वे कैसे है", न कि "उन्हे कैसा होना चाहिए", तब इस पर विचार न करने के बहुत से ऐसे प्रयत्नो को जिन्हे हम रोकना चाहेंगे 'प्रसामान्य' समझना होगा। उदाहरणार्थ, एक बड़े शहर के अनेक अत्यधिक गरीब निवासियो की प्रसामान्य अवस्था उद्यमरहित होती है तथा वे स्वस्थ और कम निकृष्ट जीवन यापन करने के लिए अन्यत्र अवसरो का लाभ उठाने के लिए तैयार नही होते; उनमे इतनी शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक शक्ति नही होती कि वे अपने इस दयनीय वातावरण से छुटकारा पा सके। दियासलाइयो को कम दर पर तैयार करने के लिए बड़ी मात्रा मे श्रम की पूर्ति का होना उसी प्रकार प्रसामान्य है जैसे विषैली औषधि खाने के पश्चात् अगो का सिकुड़ना प्रसामान्य समझा जाता है। यह उन प्रवृत्तियो का एक हृदयविदारक परिणाम है जिसके नियमों का हमे अध्ययन करना है। इस उदाहरण मे अर्थशास्त्र की उस विशेषता को बतलाया गया है जो कुछ अन्य विज्ञानो मे भी पायी जाती है, जिनकी सामग्री के रूप को मनुष्य के प्रयत्नो द्वारा

बदला जा सकता है। विज्ञान उस रूप में सुधार करने के लिए नैतिक या व्यावहारिक मार्ग का प्रदर्शन करता है और इस प्रकार प्रकृति के नियमों के प्रभाव को परिवर्तित करता है। दृष्टान्त के रूप में, अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमे उन व्यावहारिक ढंगों का, जिनसे केवल दियासलाई बनाना जानने वाले लोगों के स्थान पर योग्य व्यक्तियों को रखा जा सके, उसी प्रकार ज्ञान होना है जिस प्रकार जीव-क्रिया विज्ञान से उन उपायों का पता लगता है जिनसे पशुओ की नस्ल को इस प्रकार सुधारा जाय कि वे अपेक्षाकृत पहले ही प्रौढ़ हो जायें, और अपने हलके शरीर पर अधिक मास ले जा सके। पूर्व सूचना देने की शक्ति मे पर्याप्त विकास के फलस्वरूप साख और कीमतो के उतार-चढ़ाव के नियमो मे अब बडे परिवर्तन हो गये है।

जब 'प्रसामान्य' कीमतों का अल्पकालीन या बाजार-कीमतों से मिलान किया जाता है तो इस शब्द का अभिप्राय दीर्घ काल मे दी हुई परिस्थितियो मे कुछ प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रधानता से है, किन्तु इससे कुछ कठिन प्रश्न उत्पन्न हो जाते है जिन पर यहाँ विचार नही किया गया है।[1]

सभी वैज्ञानिक सिद्धान्त अव्यक्त अथवा सांकेतिक रूप में कुछ निश्चित अवस्थाएँ मान लेते हैं, और इस अर्थ में वे काल्पनिक होते हैं।

§5. कभी-कभी यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र के नियम 'काल्पनिक' होते है। निस्सन्देह इसमे अन्य विज्ञानो की भाँति कुछ विशेष कारणो के परिणामो का इस शर्त से अध्ययन होता है कि **अन्य सब बातें यथावत रहें** तथा बिना किसी अवरोध के कारणों का पूर्ण फल निकल सके। लगभग हर एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का जब सावधानी के साथ तथा औपचारिक रूप से वर्णन किया जाता है तो उसमे ऐसे कुछ प्रावधान (Proviso) मिलेगे जिनमे यह बात निहित हो कि अन्य सभी बाते यथावत रहें। इसमे यह मान लिया जाता है कि केवल इन्ही कारणो का प्रभाव पड़ेगा। कुछ प्रभावो के यही कारण समझे जाते है, किन्तु ऐसा केवल इस प्रकल्पना के आधार पर किया जाता है कि दिये गये कारणो के अतिरिक्त और किसी कारण का प्रभाव नही पड़ता। यह सत्य है कि अर्थशास्त्र मे यह एक कठिन शर्त है कि कारणो के परिणामो को जानने के लिए पर्याप्त समय होना चाहिए, क्योकि जिस विषय पर इसमे विचार किया जाता है वह, और यहाँ तक कि उसके कारण भी, इस बीच बदल सकते है तथा जिन प्रवृत्तियो का वर्णन किया जा रहा है उन्हे अपना पूरा प्रभाव दिखलाने के लिए आवश्यकतानुसार 'लम्बा समय' नही मिल पाता। इस कठिनाई पर हम बाद मे विचार करेंगे।

किन्तु अर्थशास्त्र में उपलक्षित दशाओं पर अवश्य जोर दिया जाना चाहिए।

किसी नियम मे शर्त वाले वाक्यांशों को बार-बार नही दुहराया जाता, बल्कि इनके अनुशीलन करने वाले को ये चीजे उसकी अपनी समझ से स्वत. ही मालूम हो जाती हैं। अर्थशास्त्र मे अन्य विज्ञानों की अपेक्षा इनकी पुनरावृत्ति करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इसके सिद्धान्त को अन्य विज्ञानों की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियो द्वारा अधिक उद्धृत किया जाता है जिनको विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त नही होता और यह भी सम्भव है कि इनके विषय मे उन्होने किसी से सुना हो, वह भी बिना किसी सदर्भ के। साधारण बातचीत के वैज्ञानिक ग्रन्थ की अपेक्षा सरल होने का एक कारण यह है

---

1 उनका भाग V के विशेषकर अध्याय III और V में विवेचन किया गया है।

कि बातचीत मे हम शर्तवाले वाक्यांशो को आसानी से छोड सकते हैं, और श्रोता जब उन्हे अपनी ओर से नही जोडता तो हम तुरन्त जान लेते है कि वह गलत समझ रहा है और तब उसे सही मार्ग पर ले आते है। एडम स्मिथ और अर्थशास्त्र के अनेक पुराने लेखको ने बातचीत मे प्रयोग होने वाले साधारण शब्दों का ही प्रयोग किया, और शर्तवाले वाक्यांशो को छोड दिया। किन्तु इसके फलस्वरूप लोगो ने निरन्तर उन्हे गलत समझा। इसके कारण व्यर्थ के विवाद उत्पन्न हुए और बहुत सा समय नष्ट हुआ और मुसीबते उठानी पडी। उन्होने बाह्य रूप मे दिखायी देने वाली सरलता के लिए बहुत बडा मूल्य दिया।[1]

यद्यपि आर्थिक विश्लेषण और सामान्य तर्क एक बड़े पैमाने पर लागू होते हैं, किन्तु प्रत्येक युग और प्रत्येक देश की अपनी-अपनी समस्याएँ होती है, और सामाजिक परिस्थितियो मे हर परिवर्तन के कारण अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के नये विकास की आवश्यकता होती है।[2]

---

1 इसकी तुलना भाग II, के अध्याय I से कीजिए।

2 अर्थशास्त्र के कुछ भाग सापेक्षिक रूप से अमूर्त और वास्तविक होते हैं, क्योंकि उनका मुख्यतया सामान्य व्यापक प्रस्तावों से सम्बन्ध रहता है, क्योंकि किसी प्रस्ताव के व्यापक रूप में लागू होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कुछ विवरण दिये हुए हों: उसे स्वयं विशेष परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता है और यदि उससे किसी पूर्व सूचना का संकेत मिलता है तो उस पर किसी ऐसे दृढ़ शर्तवाले वाक्यांश का नियंत्रण होना चाहिए जिसमें "अन्य बातें समान रहें" वाक्यांश का अत्यधिक महत्व होना चाहिए।

इसके अन्य भाग प्रयुक्त (Applied) होते हैं, क्योंकि इनमें संकुचित प्रश्नों का अधिक विस्तार में अध्ययन किया जाता है। इनमें स्थानीय तथा अस्थाई तत्वों को अधिक ध्यान में रखा जाता है, और जीवन की अन्य दशाओं तथा आर्थिक दशाओं के अधिक पूर्ण और निकट के सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। इस प्रकार अधिक सामान्य अर्थ में बैंकिंग के प्रयुक्त विज्ञान तथा बैंकिंग की सामान्य कला के व्यापक नियमों अथवा आदेशों (Precepts) के बीच बहुत थोड़ा अन्तर है, जबकि बैंकिंग के प्रयुक्त विज्ञान की किसी विशेष स्थानीय समस्या का तत्सम्बन्धी व्यावहारिक नियम अथवा इस कला के आदेश से और भी निकट सम्बन्ध है।

अध्याय 4

आर्थिक अध्ययनों का क्रम तथा इनके उद्देश्य

द्वितीय और तृतीय अध्यायों का सारांश।

§1. यह देखा जाना है कि अर्थशास्त्री तथ्यों के लिए बहुत ही इच्छुक रहता है, किन्तु केवल तथ्यों से कुछ नहीं पता चलता। इतिहास से क्रमबद्ध घटनाओं तथा आकस्मिक संगठनों का पता लगता है, किन्तु तर्क के द्वारा ही उनका विश्लेषण किया जा सकता है। यह कार्य इतने विविध प्रकार है कि इसके सम्पादन मे मुख्यतया प्रशिक्षित तथा विवेकपूर्ण सामान्य ज्ञान का प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इसके द्वारा ही प्रत्येक व्यावहारिक समस्या का अन्तिम निर्णय प्राप्त किया जाता है। अर्थशास्त्र मे सुनिश्चित युक्तियों तथा सामान्य विवेक के उपकरणों की सहायता से सामान्य ज्ञान द्वारा कार्य-सम्पादन किया जाता है। इन उपकरणों से किन्ही विशेष तथ्यो को एकत्रित करने, उनको क्रमबद्ध करने तथा उनमे निष्कर्ष निकालने मे बड़ी सहायता मिलती है। यद्यपि इस विषय का क्षेत्र सीमित है, और सामान्य विवेक के अभाव मे इसका सम्पूर्ण अध्ययन निरर्थक है, तथापि इसके द्वारा कठिन समस्याओं का निराकरण किया जाता है जो कि अन्यथा असम्भव है।

आर्थिक नियम किन्ही विशेष परिस्थितियों मे मनुष्य के कार्यों की प्रवृत्तियो के वर्णनमात्र हैं। जिस अर्थ मे भौतिक विज्ञान के नियम काल्पनिक है उसी अर्थ मे अर्थशास्त्र के नियम भी काल्पनिक है: क्योंकि उन नियमों मे भी कुछ शर्तें निहित होती हैं या इनका आभास होता है। किन्तु अर्थशास्त्र में भौतिक शास्त्र की अपेक्षा इन शर्तों को स्पष्ट करना अधिक कठिन है और इन्हे स्पष्ट करने मे असफल रहने से अधिक हानि होती है। मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित नियम इतने सरल, निश्चित तथा पता लगाने योग्य नही होते जितने कि गुरुत्वाकर्षण के नियम होते हैं। किन्तु उनमें से बहुतों की गणना उन प्राकृतिक विज्ञानों से की जा सकती है जो जटिल विषयों का विवेचन करते हैं।

अर्थशास्त्र के पृथक् विज्ञान होने का मुख्य कारण (Raison d' etre) इसका मनुष्य के उन कार्यों से सम्बन्धित होना है जिनके प्रयोजन मापे जा सकते हैं और इस कारण जिनका क्रमबद्ध अध्ययन तथा विश्लेषण सुविधापूर्वक किया जा सकता है। वास्तव मे ऊँचे या नीचे प्रयोजनों को जिस रूप मे वे होते हैं उसी रूप मे नही मापा जा सकता है। हम तो केवल उस शक्ति को माप सकते हैं जो इन्हें क्रियान्वित करती है। द्रव्य इस शक्ति को मापने का कभी भी पूर्ण मापदंड नहीं रहा है। इसे तब तक एक सतोषजनक मापदंड नही समझना चाहिए जब तक उन परिस्थितियों पर सतर्कतापूर्वक विचार न किया जाय जिनमे इसका प्रयोग किया जा सकता है, और विशेषकर उन लोगों की सम्पन्नता अथवा निर्धनता पर अवश्य विचार कर लिया जाय जिनके कार्यों का यहाँ पर अध्ययन किया जा रहा है, किन्तु विशेष सावधानी बरतने से मुद्रा के मापदंड द्वारा उस शक्ति को अच्छी तरह मापा जा सकता है जो उन अधिकांश

प्रयोजनों की प्राप्ति के लिए मनुष्य को गतिशील बनाती है जिनसे मानव-जीवन की रूप-रेखा तैयार होती है।

सिद्धान्तों का तथ्यों के अनुरूप ही अध्ययन होना चाहिए और आधुनिक समस्याओं के अध्ययन करने में आधुनिक तथ्य ही सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि सुदूर पूर्व के आर्थिक लेखे कुछ दशाओं में अपर्याप्त और अविश्वसनीय होते हैं और प्राचीन काल की आर्थिक दशाएँ आधुनिक युग की आर्थिक दशाओं से, जिसकी स्वतंत्र उद्यम, सामान्य शिक्षा, पूर्ण प्रजातंत्र, वाष्प, सस्ते प्रेस तथा तार मुख्य विशेषताएँ हैं, बिलकुल ही भिन्न थी।

वैज्ञानिक खोजों को तत्सम्बन्धित विषयों के आधार पर, न कि व्यावहारिक उद्देश्यों के आधार पर, शृंखलाबद्ध करना चाहिए।

§2. अतः अर्थशास्त्र का पहला उद्देश्य ज्ञान को ज्ञान के लिए प्राप्त करना है और इसका दूसरा उद्देश्य व्यावहारिक विषयों पर प्रकाश डालना है। यद्यपि किसी भी विषय का अध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व हम उसके लाभों पर भलीभाँति विचार करते है, किन्तु हमारे अध्ययन की रूपरेखा का उन लाभो से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से जब कभी किसी विचार का हमारे मस्तिष्क मे स्थित किसी विशेष उद्देश्य से लगाव टूट जाता है तो हमारा विचार-क्रम तुरन्त ही अवरुद्ध हो जाता है: व्यावहारिक उद्देश्यो को प्रत्यक्ष रूप मे प्राप्त करने के लिए सभी विषयो का थोडा-थोडा ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है, जिनका उस समय के उद्देश्यो की पूर्ति के अतिरिक्त परस्पर कोई सम्बन्ध नही होता, और ये एक दूसरे पर बहुत कम प्रकाश डालते है। हमारी सम्पूर्ण बौद्धिक क्षमता एक विषय से अन्य विषयो तक पहुँचने मे ही क्षीण हो जाती है, और किसी भी विषय का गहन अध्ययन नही हो पाता। इस प्रकार से किसी भी प्रकार की वास्तविक प्रगति नही हो पाती।

विज्ञान की दृष्टि से सबसे उत्तम वर्गीकरण वह है जिसमे एक ही प्रकार के तथ्यों तथा युक्तियो का संकलन किया जाता है जिससे इनका अध्ययन करने से इनसे सम्बन्धित विषयो पर भी प्रकाश डाला जा सके। इस प्रकार एक लम्बे समय तक एक ही प्रकार के विचारो का अध्ययन करने से हम धीरे-धीरे उन आधारभूत समानताओ पर पहुँचते हैं जिन्हे प्रकृति के नियम कहते हैं: प्रारम्भ मे इनके प्रभावो को एक-एक करके जाना जाता है, तत्पश्चात् इनका मिश्रित रूप मे पता लगाया जाता है। इस प्रकार हम धीरे-धीरे निश्चित रूप से प्रगति-पथ की ओर अग्रसर होते है। अर्थशास्त्री को आर्थिक अध्ययनों के व्यावहारिक प्रयोगो को कभी भी नही भूलना चाहिए, किन्तु उसका विशेष कार्य तथ्यो का अनुशीलन तथा विवेचना करना है और यह पता लगाना है कि विभिन्न कारणों के, पृथक् रूप मे, या अन्य कारणों के सम्पर्क मे, क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं।

अर्थशास्त्री द्वारा पता लगाये गये विषय।

§3. अर्थशास्त्री जिन मुख्य प्रश्नो पर विचार करता है उनकी यहाँ पर गणना करके इस बात को स्पष्ट रूप से बताया जा सकता है। वह पता लगाता है कि:—

वे कौन-कौन से कारण हैं जो मुख्यतया आधुनिक ससार मे उपभोग और उत्पादन, धन के वितरण तथा विनिमय, उद्योग एवं व्यापार के संगठन, मुद्रा-बाजार, थोक एवं फुटकर व्यापार, विदेशी व्यापार तथा मालिक एवं कर्मचारियो के सम्बन्धों को प्रभावित करते है? किस प्रकार से ये सभी गतिविधियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती

है तथा स्वयं उनसे प्रभावित होती हैं ? किस प्रकार उनकी तात्कालिक प्रवृत्तियाँ अन्तिम प्रवृत्तियों से भिन्न है ?

किन-किन परिसीमाओं में किसी वस्तु की कीमत उसकी वांछनीयता की माप है ? समाज के किसी वर्ग के धन में वृद्धि होने के फलस्वरूप उनके कल्याण मे प्रत्यक्षतः कितनी वृद्धि होगी ? किसी वर्ग की अपर्याप्त आय का उसकी औद्योगिक क्षमता पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है ? किसी वर्ग की आय मे एक बार वृद्धि होने से उसकी कार्यकुशलता तथा आय अर्जित करने की शक्ति में कहाँ तक बार-बार वृद्धि होती रहेगी ?

आर्थिक स्वतत्रता का प्रभाव किसी स्थान अथवा समाज के किसी वर्ग, अथवा उद्योग के एक भाग पर कहाँ तक पड़ेगा (अथवा किसी समय कहाँ तक पड़ा है) ? इस प्रसग मे अन्य कौन से शक्तिशाली कारण दिखायी देते है, और इन सब कारणों का किस प्रकार मिश्रित प्रभाव पड़ता है ? विशेषकर आर्थिक स्वतत्रता के फलस्वरूप स्वतः ही कहाँ तक सयोजन (Combination) तथा एकाधिकार को प्रोत्साहन मिलता है और इनके क्या-क्या परिणाम होते हैं ? दीर्घकाल मे समाज के विभिन्न वर्गों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? जब अन्तिम परिणामो पर विचार किया जा रहा हो तो उस बीच इसके क्या परिणाम होगे, और इनसे प्रभावित अवधि को ध्यान मे रखते हुए इन अन्तिम तथा मध्यवर्ती वर्गों के प्रभावो का क्या सापेक्षिक महत्व होगा ? किसी कर-प्रणाली का क्या कर-भार होगा ? समाज के ऊपर इसका क्या भार पड़ेगा और इससे राज्य को कितनी आय प्राप्त होगी ?

§4. ऊपर दिये गये ये प्रश्न मुख्य प्रश्न हैं जिन पर अर्थशास्त्र मे प्रत्यक्ष रूप से विचार किया जाता है और इन्ही के आधार पर तथ्यो को एकत्रित करने, उनका विश्लेषण करने तथा उन पर तर्क करने के सभी मुख्य-मुख्य कार्यों को भी सम्बद्ध किया जाता है। अनेक व्यावहारिक कारण जो अर्थ-विज्ञान के विषय-क्षेत्र से अधिकांशतया परे होने पर भी अर्थशास्त्री के कार्य को अप्रत्यक्ष रूप मे बड़ा प्रोत्साहन देते है, उनमे समय-समय पर और स्थान-स्थान पर उन आर्थिक तथ्यो एव परिस्थितियो से भी अधिक परिवर्तन होता है जो उसके अध्ययन की सामग्री है। हमारे देश मे निम्नांकित समस्याएँ इस समय विशेष महत्व की है:—

वे व्यावहारिक समस्याएं जिन्हें इस समय आंग्ल अर्थशास्त्री अपने विषय क्षेत्र से परे होने पर भी जानने के लिए प्रेरित होता है।

हमे वे कौन से यत्न करने चाहिए जिनसे आर्थिक स्वतंत्रता की अच्छाइयो के न केवल अन्तिम रूप मे अपितु प्रगति-काल में भी वृद्धि हो सके, और इसकी बुराइयो का दमन किया जा सके ? यदि इसके अन्तिम परिणाम तो अच्छे हो, किन्तु प्रगति-काल में यह दुखदायी हो, तो यह कहाँ तक उचित है कि वे लोग, जो इस स्वतंत्रता की बुराइयों को तो झेलते है; किंतु इसकी अच्छाइयो का भोग नही कर पाते, दूसरो के हित के लिए स्वयं कष्ट सहे ?

यदि यह निश्चित रूप से मान लिया जाय कि धन का अधिक समान वितरण वांछनीय है, तो सम्पत्ति से सम्बन्धित नियमो मे परिवर्तन करना या स्वतंत्र उद्यम की प्रथा पर नियंत्रण रखना (जिससे कुल सम्पत्ति मे कमी होने की सम्भावना हो) कहाँ तक उचित सिद्ध होता है ? दूसरे शब्दो मे निर्धन वर्ग की आय मे कहाँ तक वृद्धि की जानी चाहिए और उनके कार्य में कितनी कमी होनी चाहिए ; भले ही ऐसा करने

से देश की भौतिक आय मे कमी होने की सम्भावना हो ? देश की प्रगति मे लगे हुए नेताओं की शक्ति को क्षीण किये बिना और किसी पर अन्याय किये बिना ऐसा कहाँ तक किया जा सकता है ? समाज के विभिन्न वर्गो मे कर-भार का किस प्रकार वितरण होना चाहिए ?

क्या हमे श्रम-विभाजन के वर्तमान रूपो से सतुष्ट रहना चाहिए ? क्या यह आवश्यक है कि अधिकाश लोग ऐसे कार्यो मे लगे रहें जो गौरवपूर्ण न हो ? क्या यह सम्भव है कि शिक्षा के द्वारा श्रमिको के विशाल समूह मे धीरे-धीरे उच्चकोटि के कार्यों को करने की एक नयी क्षमता पैदा की जा सकती है, और विशेषकर जिस व्यवसाय मे वे लगे हो उसकी सामूहिक रूप से व्यवस्था करने की क्या शिक्षा दी जा सकती है ?

सभ्यता की वर्तमान अवस्था मे व्यक्तिगत तथा सामूहिक कार्यो का क्या उचित सम्बन्ध है ? अनेक प्रकार की स्वय-सेवी सस्थाओ को चाहे वे पुरानी हो या नयी, उन सामूहिक कार्यों को कहाँ तक करना चाहिए जो उद्देश्यो की अधिक अच्छी तरह पूर्ति करते हैं ? समाज को केन्द्रीय अथवा स्थानीय सरकारो के माध्यम से किन-किन व्यावसायिक कार्यो को स्वय करना चाहिए ? उदाहरण के रूप मे, क्या हमने सामूहिक स्वामित्व की योजना, खुली जगहो, कला सम्बन्धी कृतियो, शिक्षा एव मनोरजन सम्बन्धी कार्यों के उपयोग को तथा सभ्य जीवन की उन आवश्यक भौतिक वस्तुओ, जैसे गैस, पानी और रेल, को यथेष्ट मात्रा मे आगे बढ़ाया है, जिनकी पूर्ति के लिए सयुक्त रूप मे कार्य करना आवश्यक है ?

जब सरकार स्वय प्रत्यक्ष रूप मे हस्तक्षेप न करे तो व्यक्तियो तथा निगमो को स्वेच्छानुसार अपने कार्यों को चलाने की कहाँ तक अनुमति देनी चाहिए ? रेल तथा अन्य व्यापारिक सस्थाओ के प्रबन्ध पर, जिन्हे कुछ अशो मे एकाधिकार प्राप्त हो, किस सीमा तक नियत्रण रखना चाहिए ? भूमि तथा अन्य चीजो पर भी, जिनकी मात्रा मनुष्य द्वारा बढ़ायी नही जा सकती, कहाँ तक नियत्रण रखना चाहिए ? क्या यह आवश्यक है कि सम्पत्ति के सभी वर्तमान अधिकारो को इसी रूप मे लागू होने दिया जाय, या जिन मूल आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए ये अधिकार प्रदान किये गये थे अब ये उनकी क्या कुछ सीमा तक पूर्ति नही करते ?

क्या सम्पत्ति के उपयोग करने के प्रचलित रूप न्यायोचित है ? उन आर्थिक सम्बन्धो मे, जिनमे राजकीय हस्तक्षेप की दृढता एव क्रूरता के फलस्वरूप लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक सम्भावना है, व्यक्तिगत कार्यों को सयत करने तथा उनका निर्देशन करने मे सामाजिक विचारो के नैतिक पहलू का क्या योगदान है ? आर्थिक विषयो मे राष्ट्रो के आपसी कर्तव्य एक ही देश के नागरिको के पारस्परिक कर्तव्यो से किन-किन दशाओ मे भिन्न होते है ?

आधुनिक पीढ़ी में अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य

इस प्रकार अर्थशास्त्र मनुष्य के राजनीतिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन के आर्थिक पहलुओ और परिस्थितियो का अध्ययन है, किन्तु इसमे उसके सामाजिक जीवन पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना है तथा जीवन के व्यावहारिक आचरण के विषय मे, और मुख्यतया सामाजिक जीवन के विषय मे, पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना है। पथ-प्रदर्शन की जितनी तीव्र आवश्यकता

अब अनुभव की जाने लगी है उतनी पहले कभी नहीं रही। भावी पीढ़ी के पास ऐसे अनुसन्धानों को करने के लिए हम लोगों की अपेक्षा अधिक समय होगा जो विद्यमान समस्याओं के निराकरण में तुरन्त ही सहायता पहुँचाने की अपेक्षा सैद्धान्तिक रूप से अस्पष्ट विषयों पर, अथवा विगत वर्षों के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

सामाजिक समस्याओं का हल निकालना है।

यद्यपि अर्थशास्त्र में व्यावहारिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है, किन्तु इसमें दल-संगठन की आवश्यक बातों तथा गृह एवं वैदेशिक कूटनीति के विषयों से सम्बन्धित उन विवादों पर विचार नहीं किया जाता जिनको राजनीतिज्ञ अपने देश के अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के उपायों पर विचार करते समय सदैव ध्यान में रखता है। इससे उसे केवल लक्ष्य-निर्धारण में ही सहायता नहीं मिलती, बल्कि यह भी जानने में सरलता रहती है कि किसी व्यापक नीति के वे कौन-कौन से सबसे उत्तम उपाय हैं जिनसे उस अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु इसमें ऐसे अनेक राजनीतिक विषयों पर विचार नहीं किया जाता, जो एक व्यावहारिक व्यक्ति की दृष्टि से अपरिहार्य होते हैं। अतः अर्थशास्त्र विज्ञान और कला की अपेक्षा एक शुद्ध और प्रयुक्त विज्ञान है। इसके लिए 'राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था' जैसे सीमित अर्थ वाले शब्द की अपेक्षा 'अर्थ-शास्त्र' जैसे व्यापक शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित होगा।

§5. अर्थशास्त्री को अनुभूति (Perception), कल्पना एवं तर्क, इन तीनों बौद्धिक प्रतिभाओं की आवश्यकता होती है। किन्तु इनमें कल्पना की प्रतिभा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे ही वह दृष्टिगोचर होने वाली घटनाओं के दूरवर्ती तथा गूढ़ कारणों को, तथा अनेक स्पष्ट कारणों के दूरवर्ती एवं गूढ़ परिणामों को मालूम कर सकता है।

अनुभूति, कल्पना एवं तर्क का अर्थशास्त्र में स्थान।

प्राकृतिक विज्ञानों में, और विशेषकर भौतिक विज्ञानों में, मनुष्य के कार्यों का अध्ययन करने वाले अन्य विज्ञानों की अपेक्षा एक विशेष गुण यह है कि इनमें अनुसन्धानकर्ता को ऐसे निश्चित निष्कर्षों को निकालना पड़ता है जो आगामी पर्यवेक्षकों एवं प्रयोगों से परखे जा सकते हैं। यदि वह कारणों एवं परिणामों के बाह्य स्वरूप पर ही विचार करे, या प्रकृति की शक्तियों की उस पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया पर कुछ भी ध्यान न दे जिसका चारों ओर की परिस्थितियों पर प्रभाव पड़ता है और जो स्वयं भी इनसे प्रभावित होती है, तो उसकी त्रुटि का शीघ्र ही पता लग जाता है। भौतिक शास्त्र का गहन अध्ययन करने वाला व्यक्ति केवल सामान्य विश्लेषण से ही संतुष्ट नहीं होता, वह तो उसे सदा ही सख्यात्मक रूप देने का प्रयत्न करता है और अपनी समस्या के प्रत्येक पहलू पर यथावश्यक विचार करता है।

मनुष्य से सम्बन्धित विज्ञानों में निश्चितता कम पायी जाती है। सबसे सुगम रास्ता अपनाना ही कभी-कभी ठीक मालूम देता है: इससे ही मनुष्य सदैव प्रलोभित होता है, और यद्यपि इससे उसे हमेशा ही धोखा होता है तथापि कठिन परिश्रम द्वारा एक विशेष हल निकाल सकने के बावजूद भी उसे इसी सुगम मार्ग को अपनाना ही अधिक रोचक प्रतीत होता है। इतिहास का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने वाला छात्र प्रयोग करने की प्रणाली को नहीं अपना सकता और यही नहीं उसके मार्ग में एक और बाधा यह भी उठती है कि वह सापेक्षिक अनुपात के अपने अनुमानों को किसी पदार्थ

बाह्य माप-दंड द्वारा अर्थशास्त्री भी कुछ सीमा तक किसी निर्णय पर स्थिर

रह सकता है ;

विषयक मापदंड से नही माप सकता। उसकी युक्तियों में इस प्रकार के अनुमान सदा ही सन्निहित रहते है। किन्तु वह किसी एक या अनेक कारणो के पारस्परिक महत्व का अव्यक्त रूप से अनुमान लगाये बिना इस निष्कर्ष पर नही पहुँच पाता कि इन पर अन्य कारणो का अधिक प्रभाव पड़ा है। किन्तु बहुत अधिक प्रयास करने से ही उसे इस बात का पता लगता है कि वह अपनी विषयगत धारणाओं पर कितना आश्रित है।

इस कठिनाई से अर्थशास्त्री भी उलझन मे पड़ जाता है, किन्तु मनुष्य के कार्य-कलापो का अध्ययन करने वाले अन्य छात्रो की अपेक्षा उसे कम बाधाओ का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि अर्थ-शास्त्री को कुछ अशों में भौतिक शास्त्र की तरह अपने कार्य मे यथार्थता एवं पदार्थनिष्ठता के लाभ प्राप्त हैं। जहाँ तक उसका वर्तमान तथा निकटभूत की घटनाओ से सम्बन्ध है, उसने ऐसे तथ्य ढूँढ़ निकाले हैं जिनका वर्गीकरण एक निश्चित अर्थ का द्योतक है और इस प्रकार का वर्णन सख्यात्मक रूप मे भी प्राय. यथार्थ निकलता है। इस प्रकार अस्पष्ट एव क्लिष्ट कारणो तथा उनके परिणामो को ढूंढ़ निकालने, जटिल परिस्थितियो के विभिन्न पहलुओ का विश्लेषण करने तथा इन अनेक पहलुओ से एक निश्चित धारणा बनाने में उसे विशेष सुविधा रहती है।

किन्तु उसे विचार-संयत कल्पना पर ही मुख्यतया आश्रित रहना चाहिए।

साधारण विषयो मे थोड़े से अनुभव से भी छिपी हुई बातो का पता लग जाता है। उदाहरण के लिए, जब लोग आवश्यकता से अधिक कंजूसी बरतने लगते हैं तो उससे हमेशा यह डर रहता है कि उनके आचरण और कुटुम्ब के जीवन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा, भले ही उन्हे ऐसा करने मे बाह्य रूप से केवल लाभ ही दिखायी दे। किन्तु रोजगार की नियमितता मे वृद्धि करने की अनेक सभाव्य योजनाओ के परिणामों का पता लगाने के लिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक प्रयत्न किये जायँ, अपना दृष्टिकोण भी व्यापक बनाया जाय और कल्पना को भी प्रभावपूर्ण रूप दिया जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि साख, घरेलू व्यापार, वैदेशिक व्यापारिक प्रतियोगिता, फसलो तथा मूल्यो के परिवर्तनो मे आपस मे कितना गहरा सम्बन्ध है। साथ ही साथ, यह भी देखना है कि ये सब बाते मिल कर नियमित रोजगार की अच्छाई अथवा बुराई को कहाँ तक प्रभावित करती है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पश्चिमी ससार के किसी भी भाग मे होने वाली महत्वपूर्ण आर्थिक घटना का ससार के अन्य भागो के व्यवसायो पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। यदि बेरोजगारी के केवल बाह्य रूप मे दिखायी देने वाले कारणो पर विचार किया जाय तो इस बुराई को दूर करने का कोई अच्छा सा उपाय नही निकल सकता। इससे तो कुछ ऐसी बुराइयाँ पैदा हो सकती है जिनकी हम कभी भी आशा नही करते। किन्तु हम यदि इसके गूढ़ कारणो को जानने का प्रयास करें और इन पर विवेकपूर्ण ढग से मनन करना चाहें तो हमे बहुत सोच-समझ कर काम करना पड़ेगा।

जब किसी 'आदर्श नियम' से, अथवा अन्य किसी कारण से किसी व्यापार में मजदूरी का स्तर ऊँचा रखा जाता है तो कल्पना की उड़ान मे मस्तिष्क मे उन सभी मनुष्यो के विषय मे विचार उत्पन्न होगे जो इन नियमो के लागू होने से किसी काम को करने मे समर्थ होते हुए भी उस मजदूरी पर काम नही कर सकेंगे, जिसे लोग उन्हे

देना चाहते हैं। क्या इन व्यक्तियों को ऊँची श्रेणी में रख दिया गया है, या इनको निम्न श्रेणी में ढकेल दिया गया है ? यदि कुछ व्यक्ति उच्च श्रेणी में, और अन्य निम्न श्रेणी में डाल दिये गये हैं, जैसाकि अधिकांशतया हुआ करता है, तो प्रश्न उठता है कि क्या अधिकांश लोग निम्न श्रेणी में डाल दिये जाते हैं, या स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है ? यदि हम इस दृष्टि से निकाले गये निष्कर्षों के ऊपरी रूप को देखें तो उनसे ऐसा ज्ञात होगा कि अधिकांश लोगों की प्रगति हुई है। किन्तु यदि हम वैज्ञानिक रूप से इस बात को जानने का प्रयास करें कि व्यापारिक संघ अथवा अन्य किसी संस्था के किसी भी प्रकार के निषेध से श्रमिक लोग कहाँ तक यथाशक्ति काम नहीं कर सकते और कहाँ तक अधिकतम रोजी अर्जित नहीं कर सकते, तो हम बहुधा इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अधिकांश लोग अपने स्थानों से नीचे आ गये है और ऐसे लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है जो वास्तव में प्रगति कर चुके हैं। आंशिक रूप में अंग्रेजों के प्रभाव से आस्ट्रेलेशिया के कुछ उपनिवेशों में बड़े साहसिक उद्यम किये जा रहे हैं जिनके परिणामस्वरूप श्रमिकों को तुरन्त ही बहुत आराम तथा सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी। आस्ट्रेलेशिया को भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिसके आधार पर बहुत अधिक मात्रा मे ऋण लिया जा सकता है: यदि प्रस्तावित सरल विधियों से कुछ औद्योगिक ह्रास हो तो उत्पादन में कमी अल्पकालीन होगी। किन्तु इस बात पर पहले से ही जोर दिया जा रहा है कि इंग्लैंड को ऐसे ही मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उसके लिए तो औद्योगिक ह्रास अधिक भयंकर सिद्ध होगा। अतः इस बात की इस समय बहुत अधिक आवश्यकता है कि समान स्तर की योजनाओं का समान स्तर के विद्वानों द्वारा बृहत् अध्ययन किया जाना चाहिए, अर्थात् जिस प्रकार इस समय कुछ वैज्ञानिक युद्ध सम्बन्धी जहाजों के ऐसे नये आकार बनाने के विषय में विचार कर रहे है जो कि खराब मौसम मे भी स्थिर रह सकें, उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी समान स्तर के लोगों द्वारा विशेष अध्ययन की आवश्यकता है।

उसकी सहानुभूति सक्रिय होनी चाहिए।

इस प्रकार की समस्याओं को हल करने के लिए पूर्ण रूप से बौद्धिक प्रतिभा की, और कभी-कभी तार्किक शक्ति की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। किन्तु अर्थशास्त्र के अध्ययन में सहानुभूति की आवश्यकता है, और इससे सहानुभूति मे भी वृद्धि होती है, विशेषकर उस सहानुभूति की शक्ति मे जिसके फलस्वरूप लोग अपने को, अपने साथियों के स्थान तक ही सीमित न रख कर, अन्य वर्गों के लोगों के हित के लिए न्यौछावर कर देते है। किन्तु इस प्रकार की सहानुभूति बहुत कम पायी जाती है। उदाहरण के लिए, इस वर्गीय सहानुभूति का विकास न केवल आचरण तथा आय, रोजगार की दशा तथा व्यय करने की आदतों के पारस्परिक प्रभावों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने से हुआ है अपितु इसके विकास में राष्ट्र की कार्यकुशलता को बढानेवाली रीतियों तथा सभी आर्थिक वर्गों के लोगों (अर्थात् सभी परिवारों, समान व्यवसायों मे लगे हुए मालिकों एवं कर्मचारियों, तथा एक ही देश के नागरिकों) को एक सूत्र में बाँधने के लिए विश्वास पैदा करने और प्रेमभाव को सुदृढ़ बनाने वाले उपायों के ज्ञान का भी अधिक हाथ रहा है। इनके अतिरिक्त वैयक्तिक निःस्वार्थता, व्यावसायिक शिष्टाचार तथा व्यापारिक संघों की प्रथाओं में निहित वर्गीय स्वार्थ-भाव

की अच्छाइयों एवं बुराइयों के ज्ञान से तथा उन गति-विधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने से, जिनसे हमारी बढ़ती हुई सम्पत्ति एवं सुविधाओं का वर्तमान तथा भावी सन्तति की हित-वृद्धि मे अत्युत्तम ढंग मे प्रयोग किया जा सकता है, इस वर्गीय सहानुभूति का अत्यधिक विकास हुआ है। इस प्रकार की जानकारी दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है।[1]

यह अधिकाधिक रूप में स्वीकार किये जाने के कारण कि हमारा ज्ञान सीमित है और हमारे वर्तमान सामाजिक आदर्श शाश्वत हैं, हमें सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

§6. अर्थशास्त्री को मुख्यतया अपने सिद्धान्तों के विकास के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है। किन्तु उसे सावधानी और गम्भीरता की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है, जिससे कहीं ऐसा न हो कि सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने मे वह अपने भविष्य सम्बन्धी पूर्व ज्ञान से आगे बढ़ जाय।

यह सम्भव है कि अनेक पीढ़ियों के बीत जाने के पश्चात् ऐसा प्रतीत हो कि हमारे वर्तमान आदर्श और कार्य करने के ढंग मनुष्य की प्रौढ़ अवस्था से, जब उसके विचार परिपक्व होते है, सम्बन्धित न होकर बाल्यावस्था से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से एक निश्चित प्रगति पहले से ही हो चुकी है। यह सर्व-विदित है कि प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता के लिए तभी तक योग्य है जब तक यह सिद्ध नहीं किया जा सके कि वह इतना निर्बल और पतित है कि इसका लाभ नहीं उठा पाता। किन्तु विश्वासपूर्वक यह अनुमान नहीं लगाया जा सका है कि इस प्रकार की जो प्रगति हो रही है वह किस लक्ष्य तक पहुँचायेगी। मध्य युग के अन्त मे औद्योगिक व्यवस्था का एक ऐसा प्रथमिक अध्ययन किया गया जिसमे ससार के सभी व्यक्तियो को सम्मिलित किया गया था। यद्यपि प्रत्येक पीढ़ी मे इस व्यवस्था का और आगे विकास हुआ है, किन्तु जितनी प्रगति इस पीढ़ी मे हुई है उतनी शायद ही कभी हुई हो। इस व्यवस्था का जिस उत्सुकता से अध्ययन किया गया है उसमे इसके विकास के साथ-साथ निरन्तर वृद्धि होती रही है। इस समय इसको समझने के लिए जितने प्रयत्न किये गये हैं, उतने भूतकाल मे कभी भी नहीं किये गये। इसका इतने विस्तारपूर्वक पहले अध्ययन भी नहीं किया गया था। किन्तु आधुनिक अध्ययनो का मुख्य परिणाम यह है कि हम किसी पुरानी पीढ़ी के लोगों की अपेक्षा इस बात को और अधिक अच्छी तरह समझने लगे हैं कि हमें प्रगति के कारणो के विषय मे कितना कम ज्ञान है और औद्योगिक व्यवस्था के अन्तिम रूप के विषय मे हम कितना कम पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्र के जन्मदाताओं के गुणों के

पिछली शताब्दी के प्रारम्भ मे कुछ निष्ठुर मालिको तथा राजनीतिज्ञों ने विशेष सुविधा-प्राप्त वर्ग के पक्ष मे अपने विचारो को व्यक्त करते समय यह सुविधाजनक समझा कि राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था के सिद्धान्तो को अपने विचारो के अनुरूप उद्धृत किया जाय और वे बहुधा अपने को "अर्थ-शास्त्री" कह कर पुकारने लगे। जन-शिक्षा के ऊपर उदारतापूर्वक किये गये व्यय के विरोधी लोग आज भी ऐसा ही दृष्टिकोण

---

1 यह अनुभाग 1902 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 'Plea for the creation of a Curriculum in Economics and associated branches of Political Science' पर दिये गये व्याख्यान से उद्धृत किया गया है, और इसको दूसरे वर्ष से मान लिया गया।

रखते है। आधुनिक अर्थशास्त्री एक स्वर मे यह कहते है कि इस प्रकार का व्यय पूर्ण-रूप से उचित है तथा राष्ट्र के दृष्टिकोण से ऐसा न करना अनुचित ही नहीं हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है। किन्तु कार्लाइल, रस्किन तथा अन्य अनेक लेखको ने जिनमे इनकी तरह कुशाग्र बुद्धि, शिष्टता तथा कवियो जैसी कल्पना-शक्ति नही थी, बिना विचारे ही विद्वान अर्थशास्त्रियों को उन कथनो एव कार्यों के लिए दोषी ठहराया है जिनसे उन्हें वास्तव मे घृणा थी। इसके परिणामस्वरूप इन बडे अर्थशास्त्रियो के विचारो तथा गुणो के विषय मे जनसाधारण मे गलत धारणाएँ और भी बढ गयी।

विषय में प्रचलित गलत धारणाएँ।

सच बात तो यह है कि आधुनिक अर्थशास्त्र के लगभग सभी जन्मदाताओ का स्वभाव शान्ति तथा सद्भावना पूर्ण था और उनमे मानवता की अनुरागपूर्ण भावना का स्पर्श था। उन्होने सम्पत्ति की अपने उपभोग के लिए बहुत कम चिन्ता की, किन्तु समाज मे उसके विस्तृत वितरण की ओर अधिक ध्यान दिया। उन्होंने समाज-विरोधी एकाधिकारो का, चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यो न थे, कड़ा विरोध किया। उन्होंने अनेक पीढियो मे वर्ग-व्यवस्था के उस विधान के विरुद्ध किये गये आन्दोलनो का समर्थन किया जिनके अनुसार व्यावसायिक सघो को वे अधिकार प्राप्त नही हो सकते थे जो मालिको के सघो को प्राप्त थे। उन्होने कृषि तथा अन्य उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको के हृदयो तथा निवास-गृहो मे पुराने **दरिद्रता सम्बन्धी नियमों** के फल-स्वरूप बीजारोपित विष को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होने कुछ राजनीतिज्ञो तथा मिल-मालिको द्वारा अपने को फैक्टरी-अधिनियमो का प्रतिनिधि ठहरा कर कडा विरोध करने पर भी इनका समर्थन किया। वे बिना किसी अपवाद के इस सिद्धान्त के अनुयायी थे कि सभी प्रकार के वैयक्तिक प्रयत्नो एव सरकारी नीतियो का अन्तिम उद्देश्य जन-कल्याण की समृद्धि होना चाहिए। उनका साहस अपार था और वे सावधानी बरतने मे दृढ थे। उनके उत्साहहीन प्रतीत होने का कारण यह था कि वे अनुभवहीन (अलक्षित) मार्गो पर तीव्र गति से बढने के पक्ष मे नही थे, क्योंकि इनमे आगे बढने मे सुरक्षा का एकमात्र साधन कुछ ऐसे लोगो का दृढ विश्वास था जिनकी कल्पना अधिक अनुकूल ज्ञात होती थी, किन्तु यह विश्वास न तो किसी सूक्ष्म ज्ञान पर और न विवेकपूर्ण विचारो पर आधारित था।

सम्भवतः उनकी सावधानी आवश्यकता से कुछ अधिक थी, क्योंकि उस युग के बडे-बड़े सिद्ध पुरुषो का दृष्टिकोण आजकल के शिक्षित व्यक्तियो के दृष्टिकोण की अपेक्षा कुछ सीमा तक सकुचित था। अब आशिक रूप मे प्राणिशास्त्र मे दिये गये सुझावों के आधार पर अधिकाशतया यह स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक विज्ञान का यह एक प्रमुख तथ्य है कि परिस्थितियाँ मनुष्य के आचरण पर प्रभाव डालती है। अत. अर्थशास्त्री अब मानव-उन्नति की सम्भाव्यताओ के विषय मे अधिक विस्तृत एव आशाजनक दृष्टिकोण अपनाने लगे है। वे अब यह विश्वास करने लगे है कि सतर्क विचारों द्वारा प्रेरित मानव-भावना परिस्थितियो को इस प्रकार बदल सकती है जिससे अधिकाशतया आचरण स्वय ही बदल जाता है। इस प्रकार जीवन की उन नयी परिस्थितियों को उत्पन्न किया जाता है, जो चरित्र-निर्माण की ओर अधिक अनुकूल होती हैं, और इनके फलस्वरूप जनता के आर्थिक एव नैतिक कल्याण मे वृद्धि होती है। विगत

मानव-जाति के भविष्य के लिए जीव-विज्ञान ने कई आशाएँ प्रदान की हैं।

वर्षों की भाँति वे अपना यह कर्तव्य समझते है कि अपने परम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन सब सम्भाव्य सरल उपायो का विरोध किया जाय जिनसे जीवन-शक्ति और उपक्रम के स्रोत मे ह्रास होने की सम्भावना रहती है।

किंतु यह अभी भी सत्य है कि सरल उपायों का परिणाम अहितकर होता है, प्रगति तो सतर्कता-पूर्वक तथा प्रयोगात्मक रूप में होनी चाहिए।

जिन प्रगाढ़ विद्वानों ने अर्थशास्त्र की रचना की है उन्होंने सम्पत्ति के अधिकार को ही सभी कुछ नही समझा, किन्तु कुछ लोगों ने गलत ढग से विज्ञान का सहारा लेकर यह दावा किया कि सम्पत्ति मे निहित अधिकारों का सभी उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है चाहे ये समाज-विरोधी ही क्यों न हो। अतः यह ध्यान में रखना उचित होगा कि अर्थशास्त्र के सतर्क अध्ययन के द्वारा वैयक्तिक पूँजी के अधिकार को किसी दुरूह सिद्धान्त पर आधारित न कर इस बात पर आधारित करना चाहिए कि गत वर्षो की ठोस प्रगति से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियो का यह कर्तव्य है कि वे सतर्कतापूर्वक तथा प्रयोगात्मक रूप से यह निश्चय करें कि ऐसे वे कौन से अधिकार है जो सामाजिक जीवन की आदर्श परिस्थितियों के अनुकूल प्रतीत नही होते और उनमे से किन-किन को समाप्त कर दिया जाय और किन-किन मे क्या-क्या परिवर्तन किये जायें।

भाग 2
कुछ आधारभूत विचार

अध्याय 1

भूमिका

§1. हम जानते है कि अर्थ-शास्त्र एक ओर 'धन का विज्ञान' है तथा दूसरी ओर, मनुष्य के सामाजिक कार्यों से सम्बन्धित सामाजिक विज्ञान का अंग है। इसका कार्य 'आवश्यकताओं' की पूर्ति के लिए किये गये 'प्रयत्नों' का उस सीमा तक अध्ययन करना है जहाँ तक धन अथवा द्रव्य के माप द्वारा आवश्यकताओं तथा प्रयत्नो का माप किया जा सके। इस भाग में हम उन आवश्यकताओं तथा प्रयत्नों के वर्णन, तथा उन कारणों के अध्ययन में मुख्यतया व्यस्त रहेंगे जिनसे आवश्यकताओं तथा प्रयत्नों को मापने वाली कीमतों मे सतुलन स्थापित किया जाता है। इस ध्येय से इस पुस्तक के भाग 3. मे हम मनुष्य की उन विभिन्न आवश्यकताओ से धन के सम्बन्ध का अध्ययन करेंगे जिन्हे इनसे संतुष्ट किया जाता है। भाग 4. में मनुष्य के विभिन्न प्रयत्नो से प्राप्त धन पर विचार करेंगे।

परिचायक अर्थशास्त्र में यह माना जाता है कि धन से आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, और यह मनुष्यों के प्रयत्नों का प्रतिफल है;

इस भाग में हमे पता लगाना है कि उन समस्त वस्तुओ मे जो मनुष्य के प्रयत्नो के प्रतिफल है तथा जिनसे मनुष्य की आवश्यकताओं की तृप्ति होती है, वे कौन-सी वस्तुएँ हैं जिन्हे हम 'धन' समझे। इसके अतिरिक्त यह भी पता करना है कि इन वस्तुओ को कितने वर्गों या भागो मे बाँटा जाय। स्वयं 'धन' तथा 'पूँजी' से सम्बन्धित ऐसे अनेक शब्द है जिनमें एक का अध्ययन दूसरे पर प्रकाश डालता है, परन्तु इन सब का एक साथ अध्ययन करने से अर्थशास्त्र के क्षेत्र तथा इसकी प्रणालियो का प्रत्यक्ष रूप मे क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है, और कुछ दशाओ मे यह इसका पूर्ण अध्ययन है। यद्यपि इसके पश्चात् आवश्यकताओ तथा उनसे सम्बन्धित धन का विश्लेषण करना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है; फिर भी यही अच्छा होगा कि इन शब्दों का अध्ययन सबसे पहले किया जाय।

किन्तु धन का प्राथमिक अध्ययन करना सर्वोत्तम होगा।

इस सम्बन्ध मे निश्चय ही हमे आवश्यकता तथा उन्हे सतुष्ट करने के प्रयत्नो की अनेकता को ध्यान में रखना होगा। किन्तु हम इस प्रकार की कोई भी कल्पना नही करेंगे जो न तो स्पष्ट हो और न सर्वसाधारण के समझने योग्य हो। परन्तु व्यवहार मे प्रयोग होने वाले कुछ शब्दो से अनेक सूक्ष्म अन्तरो को प्रदर्शित करना अर्थ शास्त्र की अपनी एक विशेष समस्या है। यही हमारे मार्ग की सबसे बड़ी वास्तविक कठिनाई है।

वर्गीकरण

§2. मिल (Mill) ने कहा है कि "वैज्ञानिक रूप से वर्गीकरण करने के प्रयोजनो

के सिद्धान्त।

की सबसे सुन्दर ढग से पूर्ति तब होती है जब उन वस्तुओ को, जिनके विषय मे बहुत सी सामान्य प्रस्थापनाएँ (Propositions) दी जा सकती हैं, अनेक वर्गों मे विभाजित किया जाता है। वे उन प्रस्थापनाओ से अधिक महत्वपूर्ण है जो इन वस्तुओ को किसी अन्य वर्ग मे सम्मिलित करने से पैदा होती हैं।"[1]

इस प्रकार के अध्ययन के प्रारम्भ मे ही यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि जो प्रस्थापनाएँ आर्थिक विकास की एक अवस्था में बहुत प्रबल हो वे किसी अन्य अवस्था मे लागू होने पर भी बहुत कम महत्वपूर्ण हो सकती हैं।

उन वस्तुओं के वर्गीकरण की कठिनाइयाँ जिनके गुण और उपयोग बदलते रहते हैं।

इस विषय मे अर्थशास्त्रियो को जीव-विज्ञान के हाल ही के नये अनुभवो से शिक्षा लेनी है, और इस सम्बन्ध[2] मे हमारी कठिनाइयो पर डार्विन का गूढ विवेचन पर्याप्त प्रकाश डालता है। उनका कहना है कि किसी चीज की रचना के वे अग जो प्रकृति के प्रत्येक जीव की आदतो तथा उसके सामान्य स्थान को निर्धारित करते हैं वे निश्चित रूप से इसके प्रारम्भ पर सबसे अधिक प्रकाश डालने की अपेक्षा बहुत कम प्रकाश डालते है। इसी कारण ऐसा ज्ञात होता है कि उन गुणो का हाल ही मे पता लगा है जिन्हें पशु पालने वाला या एक माली जानवरो या पौधो के अपने-अपने वातावरण मे बढ़ने के लिए अत्यन्त अनुकूल पाता है। उसी प्रकार एक आर्थिक सस्था के उन गुणो का भी, जो इसके द्वारा किये जाने वाले कार्य को सुचारु रूप से करने मे महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, अधिकाशत हाल ही मे पता लगा है।

मालिक और कर्मचारी, मध्यस्थ और उत्पादक, बैंकों के सचालकों और बैंकों से ऋण लेने वालो या बैंको को ऋण देने वाले लोगों के पारस्परिक सम्बन्धो मे इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाते है। 'सूदखोरी' के स्थान पर 'व्याज' शब्द का प्रयोग करने के कारण ऋण के रूप मे परिवर्तन हो गया है और इसने किसी वस्तु के उत्पादन की लागत को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्वो के विश्लेषण और वर्गीकरण को एक बिलकुल नया रूप दे दिया है। श्रम-विभाजन को कुशल और अकुशल वर्गो मे विभाजित करने की सामान्य प्रथा मे भी क्रमश परिवर्तन हो रहे है। 'लगान' शब्द का क्षेत्र कुछ दिशाओ मे विस्तृत और अन्य दिशाओ मे सीमित किया जा रहा है, इत्यादि।

दूसरी ओर, प्रयोग मे लाये जाने वाले शब्दो के इतिहास को हमे निरन्तर ध्यान मे रखना चाहिए, क्योकि पहले तो यह इतिहास स्वय ही महत्वपूर्ण है, और यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह समाज के आर्थिक विकास के इतिहास पर थोड़ा बहुत प्रकाश डालता है। यदि अर्थशास्त्र के अध्ययन का उद्देश्य केवल उस ज्ञान को प्राप्त करना हो जिसके द्वारा हम आवश्यक व्यावसायिक उद्देश्यो की पूर्ति कर सकें, तब भी हमे इन शब्दो का प्रयोग इसी प्रकार करना होगा जिससे कि ये भूतकाल मे अपनायी गयी परम्परा के अनुरूप हो सकें और अनुभवी पूर्वजो द्वारा दिये गये परोक्ष संकेतों एव मृदुल तथा सूक्ष्म चेतावनी को शीघ्रतापूर्वक समझ सकें।

---

1 Logic भाग IV, अध्याय VII का पैरा 2।

2 Origin of Species अध्याय XIV।

§3. किन्तु हमारा कार्य कठिन है। भौतिक विज्ञानों मे एक ही गुणो वाली चीजों को एक वर्ग मे रख कर उन्हे एक विशेष नाम से सम्बोधित किया जाता है, और जैसे ही एक नये मत का प्रतिपादन होता है, उसके लिए एक नया नाम ढूंढ लिया जाता है। किन्तु अर्थशास्त्र मे ऐसा होना सम्भव नही। इसके तर्कों को ऐसी भाषा मे व्यक्त करना चाहिए जो जनसाधारण की समझ मे आ सके। अतः ये दैनिक जीवन मे प्रयोग होने वाले शब्दो के अनुरूप होने चाहिए, और जहाँ तक सम्भव हो उन्ही अर्थो मे इनका प्रयोग होना चाहिए।

जहाँ तक सम्भव हो अर्थशास्त्र में दैनिक व्यवहार में आने वाले शब्दों का प्रयोग होना चाहिए,

दैनिक व्यवहार मे लगभग प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ निकलते है, अत संदर्भ के अनुकूल ही अर्थ समझना चाहिए। जैसा कि बेगहो ने कहा है, अर्थशास्त्र विज्ञान के विषय मे औपचारिक रूप से लिखने वाले लेखको को भी यही मार्ग अपनाना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करे तो लेखन-कार्य के लिए उनका शब्द भण्डार अपर्याप्त होगा, *किन्तु अभाग्यवश वे सदा यह स्वीकार नहीं करते कि वे इस मार्ग को अपना रहे है,* और कभी-कभी तो वे इस तथ्य से स्वयं भी अनभिज्ञ रहते हैं। जिन साहसपूर्ण एवं बेलोच परिभाषाओ से वे अपनी-अपनी प्रस्थापनाओ का प्रारम्भ करते है, उनसे पाठक को झूठा आश्वासन मिलता है। बिना इस चेतना के कि उन्हे बहुधा विशेष व्याख्यात्मक वाक्याश के संदर्भ को ध्यान मे रखना चाहिए, वे चीजो को पढकर उनका ऐसा अर्थ लगाते है जो लेखको के विचारो से भिन्न होता है, और सम्भवत इस कारण वे लेखको के कथनो को गलत रूप मे प्रदर्शित करते है और उन पर अज्ञानता के ऐसे झूठे आरोप लगाते है जिसके वे वास्तव मे दोषी नही होते।[1]

किन्तु सदैव ऐसा करना संगत (Consistent) और निश्चित नहीं है।

---

1 "सामान्य जीवन की भांति जहां प्रसंग एक प्रकार से अव्यक्त 'व्याख्यात्मक वाक्यांश' के रूप में हो वहां हमें अधिक लिखना चाहिए। राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था में साधारण वार्तालाप की अपेक्षा अधिक कठिन विषयों पर विचार प्रकट करने पड़ते हैं। अतः हमें अधिक सावधानी बरतनी चाहिए, और इसमें होने वाले किसी परिवर्तन की सूचना अधिक देनी चाहिए, और कभी-कभी उस पृष्ठ या विवेचन में 'व्याख्यात्मक वाक्यांश' को लिख देना चाहिए जिससे कोई भी गलती न हो। मैं समझता हूँ कि यह एक कठिन और नाजुक कार्य है और उसके पक्ष में मुझे यही कहना है कि परिवर्तनीय परिभाषाओं के संघर्ष की अपेक्षा व्यवहार में यही श्रेष्ठतर है। जो कोई भी व्यक्ति किसी निर्धारित अर्थ में प्रयुक्त होने वाले थोड़े से शब्द ज्ञान से जटिल विषयों के अनेक अर्थ लगाते हैं वे यह देखेंगे कि उनकी शैली बिना किसी यथार्थता के दुर्गम हो जाती है। उन्हें साधारण विचारों को व्यक्त करने के लिए बड़ा लम्बा वाग्जाल बिछाना पड़ता है, और अन्त में उनकी बात सच नहीं निकलती। वे आधा समय तो इस विचार में ही लगा देते हैं कि कौन-सा अर्थ उस विषय में सबसे अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यह अर्थ एक समय कुछ होता है, और दूसरे समय कुछ और ही होता है, तथा यह उसके कड़े अर्थ से हमेशा ही भिन्न होता है। जिस प्रकार अलग-अलग दशाओं में हम यह कहते हैं कि 'अ, ब, स के माने' यहां यह मान लें, और वहाँ यह मानलें, उसी प्रकार इस प्रकार के विवेचन में हमें यह जान लेना चाहिए कि अपनी इच्छानुसार परिभाषा

अर्थशास्त्र मे प्रयोग किये जाने वाले शब्दो मे पाया जाने वाला अन्तर किसी भिन्न प्रकार का न होकर केवल मात्रा मे भिन्न है। प्रारम्भिक अवलोकन से ऐसा ज्ञात होता है कि ये भिन्नताएँ 'प्रकार' सम्बन्धी भिन्नताएँ है और इनके रूप एक-दूसरे से स्पष्टत. भिन्न है, किन्तु सूक्ष्म अध्ययन करने से पता लगता है कि उनकी अविच्छिन्नता (Continuity) का कही भी अतिक्रमण नही हुआ है। यह उल्लेखनीय बार्ता है कि अर्थशास्त्र के विकास के फलस्वरूप गुण सम्बन्धी किसी वास्तविक विभेद का पता नही लगा, और इस प्रकार के गुण सम्बन्धी दृष्टिगत अन्तर को वे हमेशा ही केवल आंशिक अन्तर समझते आये है। यदि ऐसी वस्तुओ मे अन्तर दिखलाने के लिए विस्तृत तथा कडे विभाजन किये गये तथा निश्चित प्रस्थापनाएँ तैयार की गयी, जिन्हे प्रकृति ने इन आधारो पर कभी भी अलग नही किया, तो हमे अनेक बुराइयो का सामना करना पड़ेगा।

यह आवश्यक है कि विचारों को स्पष्ट रूप से परिमाणित किया जाय, न कि किसी बेलोच परिभाषा को अपनाया जाय।

§4. अत हमे अपने अध्ययन के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं के वास्तविक गुणों का भलीभांति विश्लेषण करना चाहिए। इससे बहुधा हमे यह पता लगेगा कि प्रत्येक शब्द का एक प्रयोग तभी उसका मुख्य प्रयोग कहलायेगा जब वह दूसरे प्रयोग से, जो सामान्यत व्यवहार से मिलता-जुलता है, इस आधार पर अधिक उत्तम हो कि वह आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। *यदि प्रसग मे इसके विपरीत न तो* कोई बात कही गयी हो, या ऐसा अभिप्राय ही निकलता हो तो इस शब्द का यही अर्थ लगाया जाय। किन्तु जब कभी इस शब्द का अन्य किसी व्यापक अथवा सकीर्ण अर्थ मे प्रयोग किया जाय तो इस परिवर्तन को सूचित करना आवश्यक है।

बहुत बड़े विचारशील लोग भी इस बात पर एकमत नही होते कि किन विशेष स्थानो पर परिभाषा सम्बन्धी कुछ बातो को तो कम से कम स्पष्ट कर दिया जाय। सामान्य इस प्रकार की समस्याओ का हल इस आधार पर करना चाहिए कि विभिन्न मार्ग अपनाने से क्या-क्या व्यावहारिक लाभ होगे। वैज्ञानिक तर्क द्वारा इस प्रकार के निर्णय न तो हमेशा माने जा सकते है और न तिरस्कृत किये जा सकते है, क्योकि ऐसा करने के पश्चात् भी वाद-विवाद के लिए स्थान रह जाता है। किन्तु विश्लेषण मे इस प्रकार की कोई सम्भावना नही रहती। यदि दो व्यक्तियो मे इस विषय मे

में परिवर्तन कैसे किया जाय। और यद्यपि इसका वे लेखक हमेशा ही पालन नहीं करते, किन्तु वास्तव में स्पष्टवादी तथा प्रभावशाली 'लेखकों का यही दस्तूर रहा है।" (बेगहो की Postulates of English Political Economy के पृष्ठ 78–79 देखिये)। कैरनेस ने भी (Logical Method of Political Economy के छठे व्याख्यान में) इस मान्यता का खण्डन किया है कि जिन गुणों पर किसी परिभाषा को आधारित किया जाता है उनके आंशिक भेद को ध्यान में नहीं रखना चाहिए, और उनका कहना है कि "सभी प्राकृतिक तथ्यों में इन गुणों के आंशिक परिवर्तन को ध्यान से रखा जाता है।"

मतभेद हो तो दोनों के ही विचार ठीक नहीं हो सकते। विज्ञान के विकास में मतभेद के फलस्वरूप इस प्रकार का विश्लेषण धीरे-धीरे बिलकुल निश्चित हो जायेगा।[1]

---

1 जब किसी शब्द के अर्थ को सीमित किया जाता है (अर्थात् तर्कसंगत भाषा में जब इसकी गहनता में वृद्धि करके इसके विस्तार को कम कर दिया जाता है) तो सामान्यतया विशेषतासूचक विश्लेषण पर्याप्त होगा, किन्तु निश्चित रूप से इसके विपरीत दिशा में इतनी सरलतापूर्वक कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। परिभाषा सम्बन्धी वादविवाद बहुधा इस प्रकार के होते हैं:—क और ख प्रकार के गुण बहुत-सी वस्तुओं में सामान्यतया पाये जाते हैं। इनमें से बहुत-सी चीजों में ग प्रकार का अतिरिक्त गुण भी मिलता है, और बहुतों में घ प्रकार का गुण विद्यमान होता है, जबकि कुछ में ग और घ दोनों प्रकार के गुण पाये जाते हैं। अब यह तर्क किया जा सकता है कि सब कुछ ध्यान में रखते हुए किसी चीज को इस प्रकार से परिभाषित करना सर्वोत्तम होगा कि इसमें वे सभी चीजें शामिल हो जायें जिनमें क और ख प्रकार के गुण मिलते हैं, या केवल क, ख, ग प्रकार के गुण मिलते हैं, या केवल वे जिनमें क, ख, घ प्रकार के गुण हैं, या फिर केवल जिनमें क, ख, ग, घ प्रकार के गुण मिलते हैं।- इन विभिन्न रूपों में निर्णय व्यावहारिक सुविधाओं को दृष्टि में रखते हुए करना चाहिए, और क, ख, ग, घ प्रकार के गुणों या उनके पारस्परिक सम्बन्धों के सतर्क अध्ययन से इसका बहुत कम महत्व है। किन्तु अभाग्यवश आंग्ल अर्थशास्त्र में परिभाषा सम्बन्धी विवादों को जितना स्थान दिया गया है उसकी अपेक्षा इस अध्ययन को बहुत कम स्थान है मिला है, और वास्तव में इससे यदा-कदा अप्रत्यक्ष रूप में वैज्ञानिक सत्य की खोज सम्पन्न हुई है, किन्तु ऐसा हमेशा ही चक्करदार मार्गों द्वारा और समय तथा श्रम की अत्यधिक क्षति के पश्चात् ही हुआ है।

अध्याय 2

धन

धन में वांछनीय चीजें या पदार्थ सम्मिलित की जाती हैं।

§1. सभी प्रकार के धन मे वाञ्छनीय चीजे अर्थात् वे चीजे शामिल की जाती है जो मनुष्य की आवश्यकाओ की प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप मे सतुष्टि करती है। इसका तात्पर्य यह नही कि सभी वाञ्छनीय वस्तुओ की गणना धन के साथ की जाती है। उदाहरण के लिए मित्रो का स्नेह समृद्धि का महत्वपूर्ण अग है, किन्तु कवियो के अतिरिक्त और कोई इसे धन के नाम से नही पुकारता। इसलिए सर्वप्रथम वाछनीय वस्तुओ का वर्गीकरण कर ले, और फिर यह विचार करे कि उनमे से किन्हे धन का अंग समझना चाहिए।

वाछनीय चीजो या ऐसी चीजो के लिए जो मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करती है साधारण व्यवहार मे किसी एक छोटे शब्द के प्रयोग न किये जाने के कारण हम इस अर्थ मे पदार्थ शब्द का प्रयोग करेंगे।

भौतिक पदार्थ

वाछनीय चीजे अथवा पदार्थ या तो भौतिक होते है या फिर व्यक्तिगत तथा अभौतिक होते है। **भौतिक पदार्थ** मे लाभदायक भौतिक चीजे तथा उनको रखने, प्रयोग करने अथवा उनसे लाभ उठाने, या उनको भविष्य मे प्राप्त करने के अधिकार शामिल है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत प्रकृति की भौतिक देन, भूमि तथा जलवायु, कृषि, खनन, मछली पकडना तथा शिल्पकला की वस्तुएँ, इमारते, मशीने और औजार, बन्धक तथा अन्य बांड, सरकारी तथा गैर सरकारी कम्पनियो के हिस्से, सभी प्रकार के एकाधिकार, राजकीय अधिकारपत्र (पेटेन्ट), पुनर्मुद्रण अधिकार (कापीराइट), मार्ग मे चलने का अधिकार तथा वस्तुओ के उपयोग के अधिकार शामिल है। अन्त मे, यात्रा करने की सुविधाएँ, अच्छे दृश्य देखने तथा अजायबघर इत्यादि मे प्रवेश प्राप्त करने की समर्थता, ये सभी भौतिक सुविधाओ के ही प्रतिरूप है जो व्यक्ति के लिए वाह्य वस्तुएँ है, यद्यपि उन्हे पसन्द करने की शक्तियाँ आन्तरिक और व्यक्तिगत होती है।

वाह्य तथा आन्तरिक पदार्थ।

किसी व्यक्ति के **अभौतिक पदार्थ** दो प्रकार के होते है। उनमे से एक मे मनुष्य के निजी गुण और उसकी कार्य करने तथा चीजो से आनन्द प्राप्त करने की क्षमता शामिल है, जैसे व्यापारिक दक्षता, व्यावसायिक निपुणता या अध्ययन अथवा सगीत से आनन्द प्राप्त करने की योग्यता। ये सब चीजें मनुष्य मे विद्यमान हैं, इसीलिए आन्तरिक कहलाती है दूसरे वर्ग की चीजे वाह्य कहलाती है, क्योकि ये अन्य व्यक्तियो के साथ मनुष्य के उन सम्बन्धो से मिलकर बनी हैं जो उसके लिए लाभदायक हैं। शासक वर्ग द्वारा अपने दासो और आश्रित लोगो से ली गयी श्रम की बेगार तथा अनेक प्रकार की निजी सेवाएँ इस प्रकार के उदाहरण हैं। किन्तु अब ये चीजे समाप्त हो गयी हैं। मालिक के लिए इस प्रकार लाभदायक सम्बन्धो के मुख्य उदाहरण आजकल,

व्यापारियों तथा व्यावसायिक वर्ग के लोगों के आपसी सद्भाव और व्यापारिक सम्बन्ध हैं।[1]

पदार्थ अन्तरणीय अथवा अनन्तरणीय होते है। अनन्तरणीय पदार्थों मे अनेक चीजे शामिल है, जैसे किसी मनुष्य के व्यक्तिगत गुण और उसकी कार्यशक्ति तथा आनन्द प्राप्त करने की क्षमता (अर्थात् उसके आन्तरिक पदार्थ); वे व्यापारिक सम्बन्ध जो उसके अपने निजी विश्वास पर आधारित हों तथा जो विक्रयशील व्यापारिक सद्भाव (गुड विल) के अंग के रूप में हस्तान्तरित नही किये जा सकते। इसके अतिरिक्त जल, वायु, प्रकाश, नागरिक अधिकार तथा सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयोग करने के अधिकार तथा सुविधाएँ भी इसी में शामिल है।[2]

अन्तरणीय तथा अनन्तरणीय पदार्थ।

---

1 धन के पांडित्यपूर्ण विश्लेषण को प्रारम्भ करते समय हर्मन (Harman) लिखते है, "किसी व्यक्ति के लिए कुछ पदार्थ वाह्य और अन्य आन्तरिक होते है। आन्तरिक पदार्थ वह चीजें है जो एक व्यक्ति अपने में प्रकृति की ओर से दी हुई पाता है, या जिन्हें वह स्वतंत्र प्रयास द्वारा अर्जित करता है, जैसे स्वास्थ्य, बौद्धिक प्राप्तियां। जो चीज किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए उसे वाह्य जगत से मिलती है, वह उसका वाह्य पदार्थ है।"

2 पदार्थ के उक्त वर्गीकरण को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:—
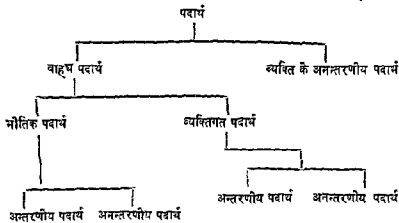
एक दूसरे प्रकार का वर्गीकरण कुछ प्रयोजनों के लिए अधिक सुविधाजनक है:
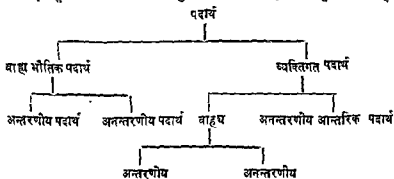
नैसर्गिक पदार्थ।

जिन पदार्थों पर किसी का स्वामित्व न हो और जो मनुष्य को प्रकृति से बिना श्रम के प्राप्त हो उन्हे **नैसर्गिक** पदार्थ कहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था मे भूमि प्रकृति की मुफ्त देन थी। किन्तु पूर्णरूप से बसे हुए देशो मे व्यक्ति के दृष्टिकोण से यह नैसर्गिक नही है। ब्राजील के कुछ जगलो से इस समय भी लकडियाँ नि शुल्क प्राप्त होती है। समुद्र से मछलियाँ भी अधिकाशतया नि शुल्क पकड सकते है, किन्तु कुछ समुद्रो मे मछलियाँ किसी राष्ट्र विशेष के लोगो के उपयोग के लिए सुरक्षित रखी जाती हैं, और राष्ट्रीय सम्पत्ति कहलाती है। मनुष्य के द्वारा तैयार किये हुए शुक्तितल (Oyster beds) किसी भी प्रकार नैसर्गिक नही समझे जाते। परन्तु यदि ये प्राकृतिक रूप से बन गये हो और इन पर किसी का स्वामित्व न हो तो सभी अर्थो मे नैसर्गिक कहलायेंगे। यदि इन पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व हो तो भी राष्ट्र के दृष्टिकोण से वे प्रकृति की देन ही हैं। किन्तु राष्ट्र की ओर से जब इन पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार मिल जाता है तो व्यक्ति के दृष्टिकोण से वे नैसर्गिक नही रहते। यही बात नदियो मे मछली पकडने के व्यक्तिगत अधिकारो के सम्बन्ध मे चरितार्थ होती हैं। किन्तु नैसर्गिक भूमि मे पैदा किये जाने वाले गेहूँ, तथा मछली पकडने के स्थानो से प्राप्त मछलियाँ नि शुल्क नही कही जा सकती, क्योकि वे मनुष्य के श्रम से प्राप्त हुई है।

§2 अब हम इस प्रश्न पर विचार करे कि मनुष्य के किन-किन पदार्थो को उसके धन का अग माना जाय, इस विषय मे लोगो मे कुछ मतभेद है। किन्तु तर्क तथा अधिकृत ज्ञान के आधार पर निम्न विचार अधिक ठीक प्रतीत होते है —

किसी मनुष्य का धन भौतिक तथा ऐसे वाहय अभौतिक पदार्थों का भण्डार है जिनसे भौतिक पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं।

बिना किसी विश्लेषणात्मक वाक्याश के जब कभी मनुष्य के केवल धन की चर्चा की जाती है तो इसमे दो प्रकार के पदार्थ निहित होते है।

पहले वर्ग मे वे भौतिक पदार्थ शामिल है जिनके ऊपर (कानून अथवा प्रथा से) उसका सम्पत्ति सम्बन्धी व्यक्तिगत स्वामित्व हो, जो हस्तान्तरित की जा सके और जो विनिमय साध्य भी हो। यह स्मरण रहे कि इसमे न केवल भूमि, मकान, फर्नीचर, मशीनें तथा अन्य भौतिक वस्तुएँ जिनके ऊपर उसका व्यक्तिगत अधिकार हो, शामिल होगी। अपितु उसके सरकारी कम्पनियो के हिस्से, ऋणपत्र (डिबेन्चर), बन्धक तथा *अन्य दायित्व भी जिनके कारण उसे दूसरो से द्रव्य अथवा पदार्थ प्राप्त हो सकते है,* सम्मिलित है। दूसरी ओर, उसके ऊपर दूसरो का ऋण उसका ऋणात्मक धन है जिसे उसके कुल स्वामित्व से घटाने पर उसके वास्तविक धन का पता लग जाता है।

जो सेवाएँ तथा अन्य पदार्थ पैदा होते ही नष्ट हो जाते है वे धन का अंग नही समझे जाते।[1]

दूसरे वर्ग मे वे अभौतिक पदार्थ शामिल है जिन पर मनुष्य का निजी स्वामित्व है, जो उसके वाह्य पदार्थ है तथा जिनके द्वारा वह भौतिक पदार्थो को प्राप्त कर सकता है। अत उसके निजी गुण तथा उसकी मेधाएँ, यहाँ तक कि वे आन्तरिक शक्तियाँ

1 किसी व्यापारिक कम्पनी के हिस्सों के मूल्य का वह भाग जो उसके चलाने वालों की व्यक्तिगत ख्याति तथा उनके सम्बन्धो का प्रतिफल है, उसे निजी वाहय पदार्थ के अन्तर्गत रखना चाहिए। किन्तु यह चीज किसी विशेष व्यावहारिक महत्व की नहीं है।

भी इसमे शामिल नही है जिनके द्वारा वह अपनी जीविका अर्जित करता है, क्योंकि ये 'आन्तरिक' हैं। उसका अन्य लोगो से वह व्यक्तिगत मैत्रीभाव, जिसका व्यापार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो, इसमे शामिल नही है। किन्तु इसमे उसके व्यापारिक एव व्यावसायिक सम्बन्ध, व्यापारिक सगठन तथा दासो (जहाँ पर यह प्रथा विद्यमान हो) के ऊपर उसका स्वामित्व तथा लोगो से श्रम की बेगार लेना, इत्यादि चीजे शामिल है।

इन दोनों वर्गों की वस्तुएँ मिल कर सम्मिलित रूप से 'आर्थिक पदार्थ' कहलाते हैं।

'धन' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग इसके व्यावहारिक प्रयोग से मिलता-जुलता है। फिर भी, इसमे केवल वे ही पदार्थ सम्मिलित है जो (प्रथम भाग मे दिये हुए) अर्थशास्त्र के विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत स्पष्ट रूप मे आते है, और इसलिए इन्हे **आर्थिक** पदार्थ कहा जा सकता है। क्योंकि इसमे वे सब बाह्य वस्तुएँ शामिल है जिन पर (i) किसी व्यक्ति का अपने पडोसियो की अपेक्षा अधिक अधिकार हो, तथा जिन्हे (ii) प्रत्यक्ष रूप मे द्रव्य द्वारा मापा जा सकता है। द्रव्य एक ऐसा माप है जो एक ओर तो उन प्रयत्नो तथा त्यागो को मापता है जिनसे इन्हे प्राप्त किया गया है, तथा दूसरी ओर, उन आवश्यकताओ को मापता है जिनकी इसकी सहायता से सन्तुष्टि की जाती है।[1]

कभी-कभी धन शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

§3. वास्तव मे कुछ उद्देश्यो के लिए धन के बारे मे व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, किन्तु ऐसे स्थानो मे भ्रम से बचने के लिए एक विश्लेषणात्मक वाक्यांश भी दे देना चाहिए। उदाहरण के लिए, बढ़ई के अपने औजारो की भाँति उसकी कारीगरी से अन्य लोगो की भौतिक आवश्यकताएँ प्रत्यक्ष रूप मे, तथा उसकी अपनी आवश्यकताएँ अप्रत्यक्ष रूप मे सतुष्ट होती है। अत यह उपयुक्त होगा कि इसकी ऐसी व्यापक परिभाषा दी जाय जिससे यह भी सम्पत्ति का अग बन सके। एडम स्मिथ[2] के द्वारा दिखाये

1 इसका अर्थ यह नहीं कि अन्तरणीय पदार्थों का स्वामी, उन्हें हस्तांतरित कर उनसे मुद्रा के रूप में उतना मूल्य वसूल कर लेता है जितना वह इनका अपने लिए मूल्य समझता है। उदाहरणार्थ शरीर पर ठीक बैठा हुआ कोट उस कीमत के योग्य होगा जो एक अधिक पैसा लेने वाला दर्जी कोटवाले से लेता है, क्योंकि उसे इसकी आवश्यकता है और वह इससे कम दाम पर नहीं सिला जा सकता। किन्तु यदि वह इसे बेचना चाहे तो यह सम्भव है कि उसे उसके आधे दाम भी न मिलें। एक सफल पूंजीपति जिसने मन, पसन्द मकान तथा जमीन पर ५०,००० पौंड खर्च कर दिये हैं, अपनी जायदाद की विवरण-सूची में एक दृष्टि से इसकी लागत-कीमत पर ठीक ही गणना करता है। किन्तु यदि वह उनकी इस कीमत पर गणना न करें तो साहूकार उसकी इस सम्पदा को उस मूल्य पर नहीं आकेंगे।

इसी तरह एक दृष्टि से किसी सौलिसिटर या चिकित्सक, थोक व्यापारी या उत्पादक के व्यापारिक सम्बन्धों से पूर्ण रूप से उतनी ही आय होने का अनुमान लगाते हैं जितनी कि उसे इस प्रकार के सम्बन्ध से वंचित कर दिये जाने पर क्षति होगी। तब भी हमें यह मानना होगा कि इसका विनिमय-मूल्य अर्थात् वह मूल्य जो वह इसे बेचने पर प्राप्त करता, उससे बहुत कम है।

2 Wealth of Nations भाग 2, अध्याय 2, से तुलना कीजिये।

गये उस मार्ग का अनुसरण करते हुए जिसे पश्चिमी यूरोपीय देशों के विद्वानों ने भी अपनाया है, हम **व्यक्तिगत धन** की परिभाषा इस प्रकार दें, जिससे इसमे मनुष्यों को औद्योगिक कार्यो मे प्रत्यक्ष रूप से कुशल बनाने वाली शक्तियाँ, योग्यताएँ तथा आदतें शामिल हों, साथ ही साथ वे सब व्यापारिक सम्बन्ध तथा अन्य प्रकार के संघ भी सम्मिलित हो जिन्हे सकुचित अर्थ मे हम पहले ही धन का अंग मान चुके हैं। औद्योगिक मेधाओ को आर्थिक कहलाने का एक कारण यह भी है कि उनके मूल्य को एक प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप मे मापा जा सकता है।[1]

विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत धन के लिए एक व्यापक शब्द।

इन्हें सम्पत्ति मानना या न मानना केवल सुविधा की बात है, चाहे इस प्रश्न को सैद्धान्तिक रूप देकर कितना ही तर्क-वितर्क क्यों न किया गया हो।

जब किसी व्यक्ति की औद्योगिक कुशलताओ के लिए 'धन' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसमे निश्चय ही भ्रम उत्पन्न हो जाता है। 'धन' का अर्थ केवल बाह्य धन ही समझना चाहिए। किन्तु 'भौतिक और व्यक्तिगत धन' वाक्यांश के यदा-कदा प्रयोग करने से हानि की अपेक्षा लाभ अधिक होने की सम्भावना है।

किन्तु फिर भी हमें सामूहिक धन के उस भाग पर विचार करना है जिस पर लोगों का व्यक्तिगत अधिकार होता है।

§4. किन्तु हमे उन भौतिक पदार्थों के विषय मे भी विचार करना है जिन पर एक व्यक्ति का तथा उसके पड़ोसियो का समान रूप से अधिकार है। अतः जब उस व्यक्ति के धन की पड़ोसियो के धन से तुलना की जाय तो इस प्रकार की वस्तुओ का उस प्रसग मे उल्लेख करना निरर्थक है। इसमे सन्देह नही कि कुछ कार्यों के लिए, विशेषकर दूरवर्ती स्थानो अथवा विगत समयो की आर्थिक दशाओ की तुलना करने मे, ये महत्वपूर्ण सिद्ध होते है।

इन पदार्थो मे वे लाभ शामिल है जो एक व्यक्ति किसी राज्य या जाति के सदस्य होने के नाते किसी स्थान पर किसी समय मे प्राप्त करता है। इनमे नागरिक एव सैनिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक धन एव सभी प्रकार की सस्थाओ के उपयोग करने के अधिकार तथा सुविधाएँ शामिल है। सड़क, गैस की रोशनी, इत्यादि, न्याय प्राप्त करने, अथवा निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार इनके उदाहरण है। नगर तथा ग्राम-निवासी सभी को अनेक लाभ नि शुल्क प्राप्त होते हैं, जो अन्य लोगो को या तो प्राप्त ही नही होते या होते भी हैं तो बहुत खर्च करने के पश्चात्। अन्य बातें समान रहें तो भी एक व्यक्ति का वास्तविक धन दूसरे व्यक्ति से अधिक होगा यदि उसके रहने के स्थान की जलवायु, सड़के, पानी तथा गन्दे पानी के निकास की व्यवस्था अधिक अच्छी हो, तथा अच्छे समाचार पत्रो, पुस्तको, शिक्षा तथा मनोरंजन के स्थानो का अधिक अच्छा प्रवन्ध हो। निवास-स्थान, भोजन तथा वस्त्र, जिनकी शीत जलवायु वाले स्थानो मे कमी रहती है, एक उष्ण जलवायु मे प्रचुर मात्रा मे सुलभ है: इसके विपरीत जो गर्मी मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओ को कम करती है तथा भौतिक धन की

---

1 डेवेनेन्ट ने 17वीं शताब्दी में कहा था 'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि किसी देश के लोग वहाँ की सबसे मूल्यवान निधि हैं।' जब कभी राजनीतिक विकास की प्रवृत्ति ने लोगों को इस बात के लिए आतुर किया है कि जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो तो अधिकांशतया इसी प्रकार के वाक्य प्रयोग में लाये गये हैं।

थोड़ी-सी सुविधा से लोगों को धनी बना देती है, उसी के कारण लोगों की सम्पत्ति उपार्जन करने की शक्ति क्षीण हो जाती है।

सामूहिक पदार्थ।

इनमें से अनेक चीजें सामूहिक पदार्थ हैं, अर्थात् वे पदार्थ है जिनके ऊपर किसी का व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होता। अतः हम सामाजिक दृष्टिकोण से, जो व्यक्तिगत दृष्टिकोण के विपरीत है, इस पर विचार करेंगे।

राष्ट्रीय धन के व्यापक दृष्टिकोण से नैसर्गिक पदार्थों को तथा समाज अथवा राज्य के संगठन को ध्यान में रखना आवश्यक है।

§5. अब हम राष्ट्र के धन के उन अंगों पर विचार करें जिन्हें राष्ट्र के नागरिकों के धन का अनुमान लगाते समय साधारणतया छोड़ दिया जाता है। सभी प्रकार के सार्वजनिक भौतिक धन, जैसे सड़कें, नहरें, इमारतें, पार्क, वातिशाला (गैस का कारखाना) तथा जल-कल इस प्रकार के धन के अधिक स्पष्ट रूप है। अभाग्यवश इनमें से बहुत-सी चीजें सरकारी ऋण से, न कि सरकारी बचत से, तैयार हुई और इनके विरुद्ध 'ऋणात्मक' धन के रूप मे एक बड़ी धनराशि रखनी पड़ती है।

किन्तु टेम्स नदी ने सभी नहरों, और सम्भवतः सभी रेलों की अपेक्षा इंग्लैंड के धन में अधिक वृद्धि की है। यद्यपि टेम्स (बड़ी नावों तथा जहाज चलाने के लिए इसमें किये गये सुधारों को छोड़ कर) प्रकृति की मुक्त देन है, और नहरें मनुष्य की देन हैं फिर भी अनेक उद्देश्यों के लिए हमें टेम्स को इंग्लैंड का धन समझना चाहिए।

जर्मन अर्थशास्त्री राष्ट्रीय धन के अभौतिक अंगों पर बहुधा जोर देते है और कुछ समस्याओं के सम्बन्ध मे ऐसा करना उचित भी है, परन्तु हमेशा ऐसा करना ठीक नहीं। वस्तुतः वैज्ञानिक ज्ञान, चाहे कहीं भी उसका पता लगे, सम्पूर्ण सभ्य संसार की सम्पत्ति हो जाता है, और इसे विशेषतः राष्ट्रीय धन की अपेक्षा सार्वदेशिक धन कहा जाना चाहिए। यांत्रिक खोज, संगीत तथा उत्पादन की विधियों में सुधार के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। यदि किसी साहित्य के अनुवाद से उसकी महत्ता का पूर्ण दिग्दर्शन न हो तो विशेष अर्थ में उसे उन देशों का धन समझना चाहिए जिनकी भाषाओं में वे लिखे गये हैं। एक स्वतंत्र और सुव्यवस्थित राज्य के संगठन को कुछ उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय धन का महत्वपूर्ण अंग समझना चाहिए।

देश के एक सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य को दिये गये ऋणों को ध्यान में नहीं रखना चाहिए।

राष्ट्रीय धन में इसके नागरिकों का वैयक्तिक तथा सामूहिक धन शामिल है। उनके कुल वैयक्तिक धन का अनुमान लगाने के लिए यदि हम राष्ट्र के सदस्यों के आपस के लेन-देन को छोड़ दें तो वह अधिक सुविधाजनक होगा। उदाहरणार्थ इंग्लंड का राष्ट्रीय ऋण तथा रेलों के बांड वहाँ के निवासियों के ही पास है, तो हम रेलों और सरकारी बांडों को बिलकुल ही छोड़कर रेलों को राष्ट्रीय धन का अंग मान लेते हैं। किन्तु आंग्ल सरकार अथवा वहाँ के निवासियों द्वारा व्यक्तिगत रूप में जारी किये गये उन बांडो को जिनके ऊपर विदेशी नागरिकों का अधिकार है घटाना होगा, और उन देशी बांडों को शामिल करना होगा जो इंग्लंड के निवासियों के पास हैं।[1]

---

[1] किसी व्यापार का मूल्य कुछ हद तक उसके एकाधिकार पर भी निर्भर है, चाहे यह किसी सरकारी आज्ञा-पत्र (पेटेन्ट) द्वारा प्राप्त पूर्ण एकाधिकार हो, या दूसरों

सार्वदेशिक धन।

जिस प्रकार राष्ट्रीय धन वैयक्तिक धन से भिन्न है, उसी भाँति सार्वदेशिक धन राष्ट्रीय धन से बहुत भिन्न है। इसका अनुमान लगाते समय एक देश के नागरिकों द्वारा, दूसरे देश के नागरिकों को दिये गये ऋण को सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

की समान रूप से अच्छी चीजों की अपेक्षा इन चीजों के बारे में अधिक जानकारी होने से प्राप्त आंशिक एकाधिकार हो। इस प्रकार के व्यापार से राष्ट्रीय आय में कोई वास्तविक वृद्धि नहीं होती। यदि एकाधिकार को समाप्त कर दिया जाय तो इसके मूल्य के लोप हो जाने से राष्ट्रीय धन में जो कमी होगी वह आंशिक रूप में प्रतिद्वन्द्वी व्यवसायों के मूल्य में वृद्धि तथा आंशिक रूप में समाज के लोगों के धन के रूप में द्रव्य की बढ़ी हुई क्रय-शक्ति के कारण कहीं अधिक पूरी हो सकेगी। (यहां यह भी ध्यान रहे कि कुछ दशाओं में जो इसके अपवाद हैं, एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादन होने से कीमत कम हो जाती है, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है, अतः यहा इनको छोड़ दिया गया है।)

व्यावसायिक सम्बन्ध तथा व्यापारिक प्रसिद्धि से राष्ट्रीय धन की उस सीमा तक वृद्धि होगी जहा इनसे किसी वस्तु के क्रेताओं तथा उन उत्पादकों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो सकें जो एक दी हुई कीमत पर उन लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहें, या दूसरे शब्दों में, इनसे उस सीमा तक वृद्धि होती है जहां सम्पूर्ण समाज के प्रयत्नों से समाज की आवश्यकताओं की तृप्ति की जा सके। तथापि जब हम राष्ट्रीय धन का अप्रत्यक्ष रूप से कुल व्यक्तिगत धन के रूप में अनुमान न लगा कर किसी अन्य रूप में अनुमान लगाते हैं तो हमें इन व्यवसायों के पूरे मूल्य को आकना चाहिए, भले ही आंशिक रूप में इसमें वह एकाधिकार भी शामिल है जो सार्वजनिक हित में प्रयोग नहीं होता। ऐसा करना इसलिए उचित है कि प्रतिद्वन्दी उत्पादकों को उनसे जो हानि होती है उसको उनके व्यवसायों का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा गया है, और उन वस्तुओं के दाम बढ़ जाने से उपभोक्ताओं को उन्हें खरीदने में जो हानि होती है उसको इस सम्बन्ध में उनके साधनों की क्रय-शक्ति का हिसाब लगाते समय ध्यान में रखा गया है।

साख का प्रबन्ध करना भी एक विशेष महत्व रखता है। इससे देश की उत्पादन-क्षमता बढ़ती है, और इस प्रकार राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है। साख प्राप्त करने की समर्थता किसी व्यापारी की एक महत्वपूर्ण निधि है। यदि किसी दुर्घटना के कारण उस व्यक्ति को व्यवसाय छोड़ना पड़े तो इससे राष्ट्रीय धन में उस परिसम्पत्ति (Asset) के मूल्य में होने वाली क्षति की अपेक्षा कम क्षति होगी, क्योंकि उसके व्यवसाय का कम से कम कुछ अंश तो अब अन्य लोग कर लेंगे; मुख्यतया उस पूंजी की सहायता से जिसे उसने भी उधार लिया होता। द्रव्य को राष्ट्रीय सम्पत्ति का कहां तक अंग समझना चाहिए, इस सम्बन्ध में इस प्रकार की अनेक कठिनाइयां हैं, किन्तु इसके विस्तारपूर्वक विवेचन के लिए द्रव्य के सिद्धान्त का बहुत कुछ ज्ञान होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार नदियाँ राष्ट्रीय धन के महत्वपूर्ण अग है, उसी प्रकार समुद्र भी ससार की मूल्यवान सम्पत्ति है। यदि देखा जाय तो राष्ट्रीय धन को समूचे ससार पर घटित करना ही सार्वदेशिक धन है।

धन के वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय अधिकारो का आधार नागरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून, अथवा कम से कम ऐसी प्रथाएँ है जिनका पालन कानून की ही भाँति किया जाता है। किसी स्थान अथवा समय की आर्थिक परिस्थितियों के सर्वांगीण अन्वेषण के लिए वहाँ के कानूनो और प्रथाओ के विषय मे जाँच करना आवश्यक है। अर्थ-शास्त्र उन सभी का बहुत ऋणी है जिन्होने इस दिशा मे काम किया है। किन्तु इसकी सीमाएँ पहले से ही विस्तृत है, और सम्पत्ति के ऐतिहासिक और न्यायिक आधार इतने विस्तृत है कि उनका अध्ययन अलग-अलग पुस्तको मे करना लाभदायक होगा।

धन प्राप्त करने के अधिकारों का न्यायिक आधार।

§6. मूल्य का धन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत इसके विषय मे यहाँ पर कुछ बतलाना आवश्यक है। एडम स्मिथ के शब्दो मे 'मूल्य के दो भिन्न अर्थ है —कभी-कभी तो इसका अर्थ किसी वस्तु के तुष्टि-गुण से है और कभी-कभी उसकी सहायता से अन्य पदार्थो के क्रय करने की शक्ति से है।' किन्तु अनुभव से यह पता लगा है कि इसका प्रयोग तुष्टि-गुण के अर्थ मे करना उचित नही है।

मूल्य कीमत से अभिप्राय सामान्य क्रयशक्ति से है।

किसी स्थान और समय पर किसी वस्तु का मूल्य, जिसे विनिमय मूल्य भी कहते है, दूसरी वस्तु की वह मात्रा है जो पहली वस्तु के बदले मे प्राप्त की जा सके। अत मूल्य एक सापेक्षिक शब्द है, और यह किसी विशेष स्थान और समय पर दो वस्तुओ के सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

सभ्य देशों मे सोना या चाँदी अथवा दोनो को मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता है। सीसा, टिन, लकडी, अनाज तथा अन्य वस्तुओ का मूल्य एक दूसरे के रूप मे व्यक्त न करके सर्वप्रथम हम उन्हे मुद्रा के रूप मे व्यक्त करते है। इस प्रकार व्यक्त किये गये प्रत्येक वस्तु के मूल्य को **कीमत** कहते है। यदि हमे ज्ञात हो कि किसी स्थान और समय पर एक टन सीसे के बदले मे 15 अशर्फियाँ, और एक टन टिन के बदले मे 90 अशर्फियाँ मिलतीं है तो हम यह कहेंगे कि उनकी कीमत क्रमश 15 पौंड और 90 पौंड है। अत हम जानते है कि एक टन टिन का मूल्य सीसे के रूप मे उस स्थान और समय पर 6 टन है।

प्रत्येक वस्तु की कीमत समय-समय पर और स्थान-स्थान पर घटती-बढती रहती है, और इस प्रकार के प्रत्येक परिवर्तन से उस वस्तु के रूप मे मुद्रा की क्रय-शक्ति बदलती रहती है। यदि मुद्रा की क्रय-शक्ति कुछ वस्तुओ के रूप मे बढे और उसी समय उसी मात्रा में समान रूप से महत्वपूर्ण वस्तुओ के रूप मे घटे तो इसकी सामान्य क्रय-शक्ति (अर्थात् सामान्य रूप मे वस्तुओ को खरीदने की शक्ति) स्थिर रहती है। इस वाक्यांश मे कुछ कठिनाइयाँ निहित है जिन पर हम बाद मे विचार करेंगे। किन्तु तब तक हम इसे इसके प्रचलित अर्थ मे, जो पर्याप्त रूप मे स्पष्ट है, प्रयोग करते है। इस भाग मे हम मुद्रा की सामान्य क्रय-शक्ति मे सम्भव परिवर्तनो पर ध्यान नही देंगे। अत: किसी

वस्तु की कीमत सामान्य वस्तुओं के रूप में इसके विनिमय मूल्य का प्रतीक है, या दूसरे शब्दों में यह इसकी सामान्य क्रय-शक्ति का प्रतीक है।[1]

यदि आविष्कारों के फलस्वरूप मनुष्य का प्रभुत्व प्रकृति के ऊपर अधिक हो गया हो तो कुछ उद्देश्यों के लिए मुद्रा का मूल्य वस्तुओं के स्थान पर श्रम द्वारा अधिक उत्तम ढंग से मापा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की कठिनाइयों का इस भाग में अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि इसमे 'अर्थशास्त्र के आधारभूत विषयों' का अध्ययन करना है।

---

1 कुर्नो (Cournot) ने बतलाया है (Principles Mathematiques de la Theorie des Richesses, अध्याय 2) कि मूल्य को मापने के लिए एक समान क्रय शक्ति के मानक का अस्तित्व मानने से वही सुविधा मिलती है जो खगोलशास्त्रियों को एक 'औसत सूर्य' की कल्पना से मिलती जो मध्याह्न रेखा को समान अन्तर पर पार करता है, जिससे घड़ी की सुई सूर्य के साथ बढ़ सकती है। परन्तु वास्तविक सूर्य मध्याह्न रेखा को घड़ी के अनुसार दोपहर से कभी तो पहले और कभी बाद में पार करता है।

अध्याय 3

उत्पत्ति, उपयोग, श्रम, आवश्यक वस्तुएँ

मनुष्य पदार्थ का उत्पादन नहीं करता, वह तो पदार्थ में निहित तुष्टिगुण का सृजन करता है।

§1. मनुष्य भौतिक वस्तुओं का उत्पादन नही कर सकता। वास्तव मे मानसिक और आध्यात्मिक संसार में वह नये विचारों को जन्म देता है। किन्तु जब यह कहा जाता है कि वह भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करता है तो वास्तव मे वह केवल तुष्टि-गुण का सृजन करता है। दूसरे शब्दों में, उसके प्रयास तथा त्याग के फलस्वरूप पदार्थ के रूप तथा बनावट इस प्रकार बदल जाते है कि उनसे आवश्यकताओं की अधिक अच्छी प्रकार से पूर्ति की जा सकती है। इस भौतिक ससार में वह या तो पदार्थ के रूप में परिवर्तन करता है जिससे वह अधिक उपयोगी सिद्ध हो, जैसे लकड़ी से मेज बनाना, या फिर उसको इस प्रकार रखता है कि प्रकृति उसे अधिक लाभदायक बनाती है, जैसे बीज को ऐसे स्थान पर बोना जहाँ पर प्रकृति की सहायता से वह उग सके।[1]

व्यापारी तुष्टिगुण उत्पन्न करता है।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि व्यापारी लोग उत्पादन नही करते; बढ़ई केवल फर्नीचर तैयार करता है, फर्नीचर का व्यापारी केवल तैयार की हुई वस्तुओं को बेचता है। किन्तु इस प्रकार का भेद किसी वैज्ञानिक आधार पर आधारित नही है। ये दोनों तुष्टि-गुण का उत्पादन करते है, और इसके अतिरिक्त और कुछ भी नही कर सकते। फर्नीचर का व्यापारी पदार्थ को ले जाकर उसे इस प्रकार ठीक-ठाक करता है कि वह पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। बढ़ई भी इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं करता। खान के भीतरी भाग में कोयला ढोने वाले व्यक्ति की तरह पोत-वाहक अथवा रेल कर्मचारी भी जो पृथ्वी के ऊपरी भाग मे कोयला ढोता है तुष्टिगुण का ही सृजन करता है। मछलियों का व्यापारी मछलियों को कम उपयोग के स्थानों से अधिक उपयोग के स्थानों में ले जाता है, और मछुवा भी इससे अधिक और कुछ नही करता। यह सच है कि बहुधा व्यापारियों की संख्या आवश्यकता से अधिक होती है और ऐसी परिस्थिति में इनके श्रम का दुरुपयोग होना स्वाभाविक है। यदि खेत एक व्यक्ति से जोता जा सकता हो तो वहाँ पर इस काम के लिए दो व्यक्तियो के लगने से श्रम की बरबादी होगी। इन दोनों दशाओं में जो लोग काम करते हैं वे सभी उत्पादन करते हैं, भले ही उनका उत्पादन बहुत कम ही क्यों न हो। कुछ लेखकों ने मध्यकालीन युग की तरह व्यापार की इस आधार पर आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया है कि इससे किसी वस्तु का उत्पादन नही होता। इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने वास्तविक

---

[1] बेकन ने Novum Organum, अध्याय 4, में कहा है कि "जहाँ तक कार्य का सम्बन्ध है इस भौतिक संसार में मनुष्य केवल वस्तुओं के रूप में या उनकी स्थिति में ही परिवर्तन कर सकता है। केवल प्रकृति ही मूलरूप में परिवर्तन कर सकती है।" (बोनार ने Philosophy and Political Economy के पृष्ठ 249 में इसे उद्धृत किया है।)

विषय को अपनी आलोचनाओं का लक्ष्य नहीं बनाया। वास्तव में उन्हें व्यापार की अपूर्ण व्यवस्था की ओर मुख्यतः फुटकर व्यापार की आलोचना करनी चाहिए थी।[1]

मनुष्य केवल तुष्टिगुण का सृजन करता है और उसी का उपभोग भी करता है।

उपभोग को ऋणात्मक उत्पादन समझा जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्य किसी वस्तु मे केवल तुष्टिगुण को ही उत्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार वह इसके तुष्टिगुण के अतिरिक्त और किसी वस्तु का उपभोग नही कर सकता। वह सेवाओं तथा अन्य अभौतिक वस्तुओ का उत्पादन तथा उपभोग कर सकता है। जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं का उत्पादन पदार्थ का केवल इस प्रकार विन्यास करना है कि उसमें नया तुष्टिगुण उत्पन्न हो जाय, उसी प्रकार उपभोग करने से उसके तत्व अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और इस कारण उसका तुष्टिगुण या तो कम हो जाता है या नष्ट हो जाता है। वास्तव मे अधिकांशतया जब यह कहा जाता है कि एक व्यक्ति वस्तुओं का उपभोग करता है तो वह उन वस्तुओं को केवल अपने उपभोग के लिए रखता है जबकि, जैसा सीनियर ने कहा है, 'वे धीरे-धीरे प्रभाव डालने वाले उन अनेक कारणों से नष्ट किये जाते हैं जिन्हें सामूहिक रूप मे **समय** कहा जाता है।'[2]

जिस प्रकार गेहूँ का 'उत्पादन करने वाला' वह व्यक्ति है जो बीज को ऐसे स्थान पर रखता है जहाँ पर वह प्रकृति के द्वारा अकुरित होकर बढता है, उसी प्रकार तस्वीरो, परदो, मकान अथवा क्रीडा-नौका का 'उपभोक्ता' स्वयं इन चीजो को बहुत कम नुकसान पहुँचाता है, वह तो केवल उनका उपयोग करता है और समय के कारण उनकी छीजन हो जाती है।

उपभोग तथा उत्पादक पदार्थ।

उपभोक्ता पदार्थों मे, जिन्हे **उपभोग के पदार्थ** या **प्रथम श्रेणी के पदार्थ** भी कहा जाता है, जैसे भोजन, कपडे, इत्यादि जो कि एक ओर आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप मे सतुष्ट करते है और दूसरी ओर **उत्पादक पदार्थों** मे, जिन्हें **उत्पादन के पदार्थ** या **साधक पदार्थ** अथवा **मध्यवर्ती पदार्थ** भी कहते हैं, (जैसे हल, कर्घे, कपास, जो प्रथम श्रेणी के पदार्थों के उत्पादन मे सहायता पहुँचाने से आवश्यकताओं की **अप्रत्यक्ष** रूप मे सतुष्टि करते है), अन्तर स्थापित करना भी उल्लेखनीय है, परन्तु यह संदिग्ध है और इसकी व्यावहारिक उपयोगिता बहुत कम है।[3]

---

1 संकुचित अर्थ में उत्पत्ति से उत्पादन का रूप और गुण बदलता है। व्यापार और यातायात से उनके वाह्य सम्बन्धों में परिवर्तन हो जाता है।

2 Political Economy-पृष्ठ 54, सीनियर 'उपभोग करने' की क्रिया के बदले में 'उपयोग करने' की क्रिया का प्रयोग करना पसन्द करते थे।

3 इस प्रकार उपभोक्ता के घर में आटे को जिससे रोटी बनायी जायेगी कुछ लोग उपभोक्ता पदार्थ समझते हैं, किन्तु एक हलवाई के यहां न केवल आटा बल्कि रोटी भी उत्पादक पदार्थ समझी जायेगी। कार्ल मेंजर Carl Menger (Nolkswirths Chaftslehre, अध्याय 1, अनुभाग 2) का कहना है कि डबल रोटी प्रथम श्रेणी, आटा द्वितीय श्रेणी, आटे की मशीन तृतीय श्रेणी की वस्तुएं हैं, इत्यादि। यदि कोई रेल-यात्रियों को आनन्द-दायक भ्रमण के लिए ले जाती है और साथ ही साथ कुछ बिस्कुटों के डिब्बे, पीसने की मशीन तथा इस मशीनरी को बनाने वाली अन्य मशीनें

§2. सभी प्रकार के श्रम का किसी न किसी उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाता है। जब परिश्रम केवल परिश्रम के लिए ही किया जाता है, जैसे मनोरंजन के लिए अथवा खेल के लिए तो इसे श्रम नहीं कहते। श्रम तो सभी प्रकार के मानसिक और शारीरिक परिश्रम को कहते हैं जिससे कार्य से प्रत्यक्ष रूप मे मिलने वाले आनन्द के अतिरिक्त आंशिक या पूर्ण रूप मे अन्य प्रकार का कल्याण होता है।[1] यदि इस पर पुनः विचार करना हो तो उस परिश्रम के अतिरिक्त जिससे उद्देश्य की पूर्ति न होने के कारण कुछ भी तुष्टिगुण उत्पन्न न हो, अन्य सभी प्रकार के श्रम को उत्पादक मानना सर्वोत्तम होगा। 'उत्पादक' शब्द के जो भी विभिन्न अर्थ रहे हो उन सभी का सम्बन्ध संचित सम्पत्ति से रहा है तथा इसमे तात्कालिक एवं क्षणिक आनन्द देने वाली वस्तुओं[2] पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। यहां तक कि कभी-कभी उनको बिलकुल ही

लगभग सभी प्रकार का श्रम किसी न किसी अर्थ में उत्पादक होता है।

भी ले जाती है तो ऐसा लगता है कि रेल उस समय प्रथम, दूसरी, तीसरी तथा चौथी श्रेणियों की वस्तु है।

1 यह परिभाषा जेवन्स के 'Theory of Political Economy' के अध्याय V में दी हुई है। इसमें अन्तर इतना ही है कि वह इसमें केवल कठोर परिश्रम को शामिल करते हैं। वह स्वयं यह बतलाते हैं कि बहुधा अकर्मण्यता कितनी दुःखद होती है। बहुत से लोग यदि यह सोचें की काम करने से प्रत्यक्ष रूप में आनन्द मिलेगा, तो वे जितना काम करते हैं उससे भी कहीं अधिक काम करें। किन्तु जहाँ व्यवस्था अच्छी है वहाँ मजदूरी पर किये जाने वाले काम में कष्ट की अपेक्षा आनन्द अधिक मिलता है। वास्तव में यह परिभाषा लोचदार है। एक खेतिहर मजदूर अपने बगीचे में सायंकाल काम करते समय अपने श्रम के फल को सोचता है। दिन भर सुस्त बैठा रहने वाला एक मिस्तरी जब अपनी बागवानी में आनन्दपूर्वक काम करता है तो उसे भी अपने श्रम के प्रतिफल को चिन्ता लगी रहती है। किन्तु इसी प्रकार के कामों में लगा हुआ एक धनवान व्यक्ति इन्हें अच्छी तरह से पूरा करने में यद्यपि गर्व का अनुभव करता है, किन्तु इनसे होने वाली आर्थिक बचत के बारे में शायद ही कभी सोचता है।

2 इस प्रकार व्यापारवादी लोग (Mercantilists) जो अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा मूल्यवान धातुओं को वास्तविक अर्थ में धन समझते थे (इसका कारण आंशिक रूप में यह भी था कि ये चीजें अविनाशी थीं) वे उन सभी प्रकार के प्रयत्नों को, जिनका लक्ष्य सोने और चाँदी के बदले में निर्यात की वस्तुओं का उत्पादन नहीं था, अनुत्पादक या 'फलहीन' श्रम समझते थे। कृषि-अर्थशास्त्री (Physiocrats) उस सभी श्रम को फलहीन समझते थे जिससे लागत के बराबर ही आय प्राप्त हो, और उन्होंने कृषकों को ही उत्पादक श्रमिक समझा क्योंकि उनकी धारणा के अनुसार निवल संचित धन केवल इन्हीं के श्रम से उत्पन्न होता था। एडम स्मिथ ने इन कृषि-अर्थशास्त्रियों की परिभाषा के विकृत रूप को कम किया, किन्तु उन्होंने भी यही माना कि कृषि-श्रम अन्य प्रकार के श्रमों से अधिक उत्पादक है। उनके अनुयायियों ने इस भेद को नहीं माना, परन्तु अधिकांश रूप में (यद्यपि उनमें बहुत-सी बातों में अन्तर है) यह स्वीकार किया कि उत्पादक श्रम वह है जिससे संचित धन में वृद्धि हो। यही विचार The Wealth

वह श्रम मुख्य रूप से उत्पादक कहलाता है जिससे वर्तमान की अपेक्षा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

छोड़ दिया गया है। एक अटूट परम्परा के कारण इस शब्द का प्रमुख अभिप्राय वर्तमान आवश्यकताओं की अपेक्षा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामग्री जुटाना है। यह सच है कि सभी उत्तम प्रकार के आनन्द, चाहे वे विलासिता से सम्बन्धित हों अथवा नही, सार्वजनिक अथवा वैयक्तिक कार्यों के अच्छे उद्देश्य हैं। यह भी सच है कि विलास की वस्तुओं के उपभोग के फलस्वरूप परिश्रम करने की प्रेरणा मिलती है और अनेक प्रकार की प्रगति होती है। किन्तु यदि औद्योगिक कुशलता एवं क्षमता समान रहें तो देश के वास्तविक हितों मे अधिकाशतः उस समय वृद्धि होती है जब अल्पकालीन विलास की वस्तुओं की इच्छा को दबा कर उन अधिक ठोस तथा स्थायी साधनो को प्राप्त किया जाता है जिनसे उद्योग को भविष्य मे प्रोत्साहन मिल सके और जीवन-व्यापार विभिन्न प्रकार से अधिक विस्तृत हो। ऐसा ज्ञात होता है कि आर्थिक सिद्धान्त के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे इस सामान्य विचार का हल निकाला जाता रहा है, और अनेक लेखकों ने इसके विभिन्न प्रकार के अत्यन्त कठोर भेदो को प्रतिपादित किया जिनके फलस्वरूप कुछ प्रकार के उद्यम उत्पादक तथा अन्य अनुत्पादक निश्चित किये गये।

घरेलू नौकरों का काम आवश्यक रूप से अनुत्पादक नहीं है।

उदाहरण के रूप में, आधुनिक काल मे अनेक लेखको ने एडम स्मिथ की परिभाषा को अपनाकर घरेलू नौकरों को अनुत्पादक कहा है। निस्सन्देह अनेक घरों में बहुत से नौकर है जिन्हे समाज के हित में अन्य कार्यों मे लगाया जा सकता है: किन्तु यही बात अधिकांशतः उन लोगों के विषय मे भी सत्य है जो व्हिस्की शराब को तैयार करके अपनी जीविका कमाते हैं। किन्तु किसी भी अर्थशास्त्री ने उन्हें अनुत्पादक नही कहा है। एक नानबाई के काम मे, जो लोगों के लिए डबल रोटी तैयार करता है, और एक रसोइये के काम मे, जो आलुओ को उबालता है, कार्य की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। यदि नानबाई एक हलवाई हो या विशिष्ट प्रकार की रोटी बनाने वाला तो सम्भवत. वह अनावश्यक आनन्द देने वाले श्रम मे, जो प्रचलित अर्थ मे अनुत्पादक कहलाता है, अपना उतना ही समय लगायेगा जितना एक घरेलू नौकर लगाता है।

'उत्पादक' शब्द की अस्थाई परिभाषा।

जब 'उत्पादन' शब्द का ही केवल प्रयोग किया जाता है तो इसका अर्थ उत्पादन के साधनों तथा आनन्द के चिरस्थायी स्रोतों को उत्पन्न करने से होता है। किन्तु इस शब्द का अर्थ सर्वथा निश्चित नही रहता। अतः जहाँ यथार्थता की आवश्यकता हो वहाँ पर इस शब्द का प्रयोग नही करना चाहिए।[1]

---

of Nations के 'On the Accumulation of Capital or on Productive and Unproductive Labour' नामक प्रसिद्ध अध्याय में लिखा न होते हुए भी उपलक्षित है। *Travers Twiss* की Progress of Political Economy-अनुभाग 6 तथा जे० एस० मिल (J. S. Mill) के निबन्धों में, तथा उनकी Principles of Political Economy नामक पुस्तक में 'उत्पादक शब्द' के विवेचन से तुलना कीजिये।)

1 उत्पत्ति के साधनों में श्रम की आवश्यक वस्तुएँ सम्मिलित को गयी है किन्तु विलास की क्षणभंगुर चीजें शामिल नहीं है। मेवों की बर्फ बनाने वाला चाहे एक विएटक

यदि इसका कभी किसी अन्य अर्थ में उपयोग करना हो तो इस प्रकार का वहाँ पर संकेत दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि श्रम के द्वारा आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन होता है, इत्यादि।

उत्पादन के लिए आवश्यक उपभोग।

जब उत्पादक **उपभोग** का पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयोग करते हैं तो उसका अर्थ सामान्यतया अतिरिक्त सम्पत्ति के उत्पादन के लिए किये गये प्रयोग से होता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं का उपभोग सम्मिलित न होकर केवल उन वस्तुओं का उपभोग शामिल है जो उनकी कार्यकुशलता के लिए आवश्यक है। सम्भवतः इस शब्द का उपयोग भौतिक सम्पत्ति के संचय से सम्बन्धित अध्ययन के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। किन्तु इसका प्रतिकूल अर्थ भी लगाया जा सकता है, क्योंकि उत्पादन का अन्तिम उद्देश्य उपभोग है। यद्यपि अनेक प्रकार की पौष्टिक वस्तुओं के उपभोग से भौतिक वस्तुओ का प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन नहीं होता, तथापि सभी प्रकार के स्वास्थ्यप्रद उपभोग से मनुष्य का हित होता है।[1]

बनाने वाले (Pastey cook) के साथ काम कर रहा हो या किसी ग्राम्य-आवास में एक नौकर की तरह काम कर रहा हो, अनुत्पादक समझा गया है। लेकिन एक राज को, जो रंगशाला के निर्माण में लगा हो, उत्पादक माना गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आनन्द मनाने के चिरस्थायी एवं क्षणभंगुर साधनों में इस प्रकार का विभाजन संदिग्ध है और निस्सार है। किन्तु ये चीजें ही ऐसी हैं, जिनमें इस प्रकार की समस्या बनी रहती है और किसी भी प्रकार की शब्द-योजना द्वारा इससे पूर्णरूप से बच निकलना कठिन है। बिना यह तय किये कि 5′–9″ से ऊपर वालों को या केवल 5′–10″से ऊपर वालों को लम्बे कद वालों में शामिल किया जाय, छोटों की अपेक्षा बड़ों की लम्बाई में वृद्धि के बारे में जाना जा सकता है। इसी प्रकार श्रम-विभाजन के किसी बेलोच, और इसलिये काल्पनिक आधार के बिना अनुत्पादक श्रमिकों के स्थान पर उत्पादक श्रमिकों में वृद्धि को जाना जा सकता है। यदि किसी विशेष प्रयोजन के लिए इस प्रकार के काल्पनिक भेद की आवश्यकता होती है तो यह पूर्ण रूप से उसी प्रयोजन से सम्बद्ध होना चाहिए। परन्तु ऐसे अवसर वास्तव में शायद ही कभी आते हैं।

1 जिन विशेष बातों के आधार पर उत्पादक शब्द का प्रयोग किया गया है वे कम महत्व के, और इस कारण कुछ अवास्तविक हैं। इनके विषय में अभी विचार करने से शायद ही कोई लाभ होगा, किन्तु इनके प्रयोग के कारणों का भी लम्बा इतिहास है, और इसलिए इनके एकाएक बहिष्कार करने की अपेक्षा यही उचित होगा कि इनका धीरे-धीरे प्रयोग कम कर दिया जाय।

जहाँ वस्तुओं में कोई वास्तविक भेद न हो, वहाँ इनमें अन्तर स्थापित करने के प्रयासों से बड़ी हानि हुई है। किन्तु 'उत्पादक' शब्द की यदाकदा जो बेलोच परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनसे सबसे अधिक विचित्र परिणाम निकले हैं। उदाहरणार्थ इनमें से कुछ से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी संगीत-नाटक में गाने वाला व्यक्ति अनुत्पादक है, किन्तु इसमें प्रवेश पाने के लिए टिकट छापने वाला व्यक्ति उत्पादक है। किसी सभा में लोगों को यथास्थान बैठाने वाला व्यक्ति अनुत्पादक है, किन्तु यदि वह

आवश्यक वस्तुएँ वे हैं जो ऐसी आवश्यकताओं की तृप्ति करती हैं, जिनकी पूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु इस प्रकार की व्याख्या अस्पष्ट है। 'आवश्यक वस्तुएँ' शब्द न्यून पद है।

§3. अब हम आवश्यक आवश्यकताओं के विषय मे विचार करते है। साधारणतया आवश्यक, आराम तथा विलास की वस्तुओं मे भेद का पता लगाया जाता है। प्रथम वर्ग मे वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं जो आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करती है जब कि अन्य वर्गो मे वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं जो अपेक्षाकृत कम आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। किन्तु यह कथन अत्यधिक अस्पष्ट है। जब हम यह कहते हैं कि किसी आवश्यकता की अवश्य ही पूर्ति की जाय तो हम किन-किन परिणामो को ध्यान मे रखते हैं जो उस आवश्यकता के सतुष्ट न होने पर उत्पन्न हो सकते हैं। क्या इन परिणामों मे मृत्यु भी शामिल है, या ये केवल शक्ति और शौर्य के ह्रास तक ही सीमित है ? दूसरे शब्दो मे, क्या आवश्यक वस्तुएँ वे है जो जीवन के लिए आवश्यक है या वे है जो कार्य-कुशलता के लिए आवश्यक है ?

उत्पादक शब्द की भाँति आवश्यक आवश्यकता शब्द का भी न्यून पद (Elliptical) के रूप मे प्रयोग हुआ है (अर्थात् इसमे वास्तविक अर्थ का लोप हो जाता है), अत. जिस विषय की चर्चा हो रही हो उसका अनुमान पाठक को स्वयं ही लगाना पड़ता है। विषय मे निहित अभिप्राय के बदल जाने के कारण पाठक कभी-कभी अपनी ओर से इसका ऐसा अर्थ लगा लेता है जिससे लेखक का तनिक भी अभिप्राय न हो। अतः वह लेखक की विचार-गति का विपरीत अर्थ लगाता है। इसमे तथा इससे पहले दिये गये विषय मे भ्रम को मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सशययुक्त स्थान पर पाठक के लिए उपयुक्त भाव को स्पष्ट रूप मे बता देना चाहिए।

जीवनार्थ तथा कार्य-कुशलता के लिए आवश्यक वस्तुएँ।

प्राचीन काल मे आवश्यक वस्तुओ से अभिप्राय उन वस्तुओ से था जो श्रमिकों तथा उनके कुटुम्बीजनो की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त थी। एडम स्मिथ तथा उनके अधिक विचारशील अनुयायियो ने आराम तथा 'शिष्टाचार' के माप मे अनेक प्रकार के अन्तर पाये और उन्होने इस बात को स्वीकार किया कि जलवायु तथा प्रथाओ की विभिन्नता के फलस्वरूप जो वस्तुएँ कुछ स्थानो मे अनावश्यक है, वे अन्य स्थानो मे आवश्यक समझी जाती है?[1] किन्तु एडम स्मिथ के ऊपर कृषि अर्थ-

कार्य-सूचियों को बेचने वाला हो तो वह उत्पादक है। सीनियर (Senior) ने कहा है—"यह भी नहीं कहा जाता है कि रसोइया कबाब बनाता है, बल्कि यह कहा जाता है कि वह उसे 'भूनता' है बल्कि यह कहा जाता है कि वह पकवान 'बनाता' है—एक दर्जी कपड़े से कोट 'बनाता' है, परन्तु यह नहीं कहा जाता है कि रंगसाज बिना रंगे कपड़ों को रंगा हुआ 'बनाता' है। यद्यपि दर्जी की अपेक्षा रंग वाला कपड़े के रूप में अधिक परिवर्तन करता है किन्तु दर्जी के यहां से आकर कपड़े का नाम बदल जाता है। कपड़ों के रंगने वाले के हाथों में जाकर इसका नाम नहीं बदलता। रंगसाज इसका नया नाम पैदा नहीं करता और इसलिए एक नयी चीज पैदा नहीं करता।" Political Economy पृष्ठ 51–52,

1. कार्वर (Carver) की Principles of Political Economy, 478) से इसकी तुलना कीजिये। इसने हमारा ध्यान एडमस्मिथ के इस कथन की ओर आकर्षित किया कि सभी प्रकार के चिरप्रचलित शिष्टाचार वस्तुतः आवश्यक होते हैं।

शास्त्रियों के तर्कों का प्रभाव पड़ा था। ये विचार अठारहवी शती के फ्रांस के निवासियों की दशा पर आधारित थे, जब कि अधिकाश लोग जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को आवश्यक नही समझते थे। अधिक खुशहाल काल में अधिक विचारशील विश्लेषण के फलस्वरूप यह स्पष्ट हो गया है कि उद्योग के प्रत्येक वर्ग के लिए किसी समय और स्थान पर अपने कुटुम्बीजनों के जीवन-निर्वाह के लिए लगभग एक निश्चित आय आवश्यक है तथा उनकी कार्य-कुशलता को पूर्णरूप बनाये रखने के लिए इससे अधिक आय की आवश्यकता होती है।[1]

इस सम्बन्ध में स्थान, समय तथा रहन-सहन की दशा को भी ध्यान में रखना चाहिए।

यह सत्य है कि यदि कोई औद्योगिक वर्ग अपनी आय को पूर्ण बुद्धिमत्ता के साथ व्यय करे तो यह आय उनकी बढ़ी हुई कार्य क्षमता को बनाये रखने के लिए पर्याप्त होगी। किन्तु आवश्यक वस्तुओं के प्रत्येक अनुमान का किसी स्थान और समय से सम्बन्ध होता है और जब तक इस विचार के विपरीत दशाओं मे किसी विशेष विश्लेषणात्मक वाक्यांश का प्रयोग न किया जाय, यह मान लिया जाता है कि श्रमिक वर्ग अपनी आय को उतनी ही बुद्धिमत्ता, पूर्व विचार तथा नि स्वार्थ भावना से खर्च करेगा जो वास्तव मे उस वर्ग मे पायी जाती है। इस बात को ध्यान मे रख कर हम यह कह सकते है कि उद्योगों में काम करने वाले किसी भी वर्ग की आय उस समय आवश्यक आवश्यकताओं के स्तर से कम होगी जब उनकी आय मे किसी वृद्धि के फलस्वरूप उनकी कार्य-क्षमता में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हो। आदतो मे परिवर्तन होने के फलस्वरूप उपभोग मे मितव्ययिता की जा सकती है, किन्तु आवश्यक आवश्यकताओं को पूर्ण न करना भी अनिष्टकर होता है।[2]

---

1 इंग्लैंड के दक्षिणी भाग में प्रवास को ध्यान में रखते हुए जनसंख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। किन्तु श्रम की कार्यकुशलता जो यहाँ पुराने समय में उत्तरी इंग्लैंड की तरह बहुत अधिक थी, अब उत्तरी इंग्लैंड की अपेक्षा कम हो गयी है। इस कारण दक्षिण का कम मजदूरी लेने वाला श्रमिक उत्तर के अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी लेनेवाले श्रमिक से महँगा पड़ता है। जब तक हम यह नहीं जानते कि इन दो अर्थों में से किस अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण के श्रमिकों को आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की गयी है। उनके पास केवल मात्र जीवित रहने की आवश्यक वस्तुएँ हैं और उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है, किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि उन्हें कार्य-कुशलता बढ़ाने वाली आवश्यक वस्तुएँ सुलभ नहीं। यह ध्यान रहे कि दक्षिण के अधिक शक्तिशाली श्रमिक निरन्तर उत्तर की ओर जा बसे हैं, और आर्थिक स्वतंत्रता में तथा उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करने की आशा में अधिक हाथ होने के कारण उत्तर में रहने वालों की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध में फरवरी 1891 के Charity Organisation Journal मे (Mackey) के लेख को पढ़िए।

2 यदि हम असाधारण योग्यता वाले व्यक्ति पर विचार करें तो हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि सामाजिक दृष्टि से उसके काम के वास्तविक मूल्य और उसको इससे प्राप्त होनेवाली आय में वह निकटतम एकरूपता नहीं मिलती जो किसी औद्यो-

अकुशल श्रमिकों की आवश्यक आवश्यकताएँ।

§4. कुशल श्रमिकों की पूर्ति को निर्धारित करने वाले कारणों का पता लगाते समय यह आवश्यक हो जाता है कि श्रमिकों के विभिन्न वर्गों की कार्य-क्षमता को बढाने वाली आवश्यक वस्तुओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाय। यदि यहाँ पर यह विचार किया जाय कि इस पीढ़ी में इंगलैंड में कृषि मे काम करने वाले साधारण मजदूर अथवा नगर मे काम करने वाले अकुशल श्रमिक और उसके कुटुम्बीजनों की कार्य-क्षमता को बढाने वाली कौन-कौन सी आवश्यक वस्तुएँ हैं तो इससे हमारे विचारों में कुछ निश्चितता आ जायेगी। कुशलता बढ़ाने वाली आवश्यक वस्तुओं मे गन्दे पानी के अच्छे निकासवाला तथा अनेक कमरो का मकान, गरम कपडे, कुछ अण्डरवियर तथा बनियान, शुद्ध जल, पर्याप्त खाद्यान्न, थोडा बहुत मास और दूध, थोडी चाय, इत्यादि, कुछ शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाएँ और उसकी पत्नी को अपने बच्चो तथा अपने घर की देखभाल के लिए पर्याप्त समय का मिलना सम्मिलित है। यदि किसी जिले में अकुशल श्रमिक को ये वस्तुएँ सुलभ न हो तो इससे उसकी कार्य-क्षमता पर उसी प्रकार बुरा प्रभाव पड़ेगा, जैसे भली भाँति तीमारदारी न होने पर घोड़े पर, अथवा पर्याप्त कोयला न होने से भाप द्वारा चलने वाले इजन पर पडता है। इस सीमा तक सभी प्रकार का उपभोग उत्पादक उपभोग कहलायेगा। इस प्रकार के उपभोग मे किसी भी प्रकार की कंजूसी करना मितव्ययिता पूर्ण न होकर अनिष्टकर होगा।

आवश्यक-मात्रा से कम उपभोग करना अहितकर है।

सामाजिक आवश्यकताएँ।

इनके अतिरिक्त अनेक स्थानो मे सम्भवत शराब और तम्बाकू पीना तथा फैशन के कपडे पहनना मनुष्यो की आदत का अग बन गया है, जिसके फलस्वरूप ये वस्तुएँ सामाजिक दृष्टि से आवश्यक हो गयी हैं। औसत रूप मे सभी लोग इन्हे प्राप्त करने के हेतु कुशलता के लिए आवश्यक चीजों का त्याग करने को तैयार रहते है। अत: जब तक उसकी आय आवश्यक उपभोग के अतिरिक्त कुछ मात्रा में सामाजिक आवश्यकताओं के लिए भी पर्याप्त न हो, तब तक वह उस मात्रा से कम होगी जो उसकी कार्यक्षमता को बढाने के लिए आवश्यक है।[1]

यदि उत्पादक श्रमिक समाज की दृष्टि से आवश्यक वस्तुओं का उपभोग करता

गिक वर्ग के एक साधारण व्यक्ति के कार्य में मिलती है। हमें यह मानना पड़ेगा कि जब तक उसकी कुशलता में होने वाली कमी का उसके लिए अथवा वाह्य जगत के लिए जो वास्तविक मूल्य है वह उपभोग में कमी के फलस्वरूप होने वाली बचत से अधिक है, तब तक उसका सारा उपभोग पूर्ण रूप से उत्पादक है और आवश्यक है। यदि न्यूटन या वाट (Watt) की कुशलता में उनके व्यक्तिगत खर्चों को दुगना करने से सौवें हिस्से के बराबर भी वृद्धि होती तो उनके उपभोग में होने वाली यह वृद्धि वास्तव में उत्पादक साबित होती। जैसा हम बाद में देखेंगे, यह विषय इस तथ्य के ही अनुकूल है कि एक उर्वर भूमि में जिसका लगान भले ही अधिक हो अधिक खेती करनी चाहिए, क्योंकि यद्यपि इससे होने वाली प्राप्ति पहले की लागत की अपेक्षा कम होती है तथापि यह बहुत लाभदायक है।

1 'भौतिक एवं राजनीतिक आवश्यक वस्तुओं' के बीच विभेद को जेम्स स्टुअर्ट की 1767 ईसापूर्व की Inquiry, भाग II, अध्याय XXI से तुलना कीजिये।

है तो उस उपभोग को साधारणतया उत्पादक कहा जाता है, किन्तु वास्तव में यह उचित नहीं है। अतः संशयात्मक स्थानों में इस प्रकार के विशेष विश्लेषणात्मक वाक्यांश का होना आवश्यक है जो यह स्पष्ट कर सके कि ये वस्तुएँ उसमे शामिल है या नही।

यह ध्यान मे रखना चाहिए कि जो वस्तुएँ वास्तव मे अनावश्यक विलास की चीजे है वे कुछ सीमा तक आवश्यक वस्तुएँ भी होती है; और उस समय यदि उनका प्रयोग उत्पादक वर्ग के लोग करते हैं तो उसे उत्पादक उपभोग समझना चाहिए।[1]

---

1 इस प्रकार मार्च के महीने में हरी मटर का एक विशिष्ट भोजन जिसके दाम दस शिलिंग हैं, एक अनावश्यक विलास की वस्तु है, किन्तु तब भी यह स्वास्थ्यप्रद भोजन है, और शायद यह तीन पेंस की बन्द गोबी का काम करती है, या जैसा कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपयोग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है, अतः इससे कुछ और अधिक हित होता है। अतः इसे शायद चार पेंस के बराबर मूल्य के लिए आवश्यक वस्तुओं की श्रेणी में रखा जा सकता है और शेष 9 शि० 8 पेंस के मूल्य के लिए इसे अनावश्यक वस्तुओं की श्रेणी में रखा जायेगा। इसका चालीसवाँ हिस्सा वास्तविक अर्थ में उत्पादक समझा जायेगा। कुछ अपवादसूचक दशाओं में यदि यह मटर अपाहज व्यक्ति को दी जाय तो इन दस शिलिंग का सदुपयोग होगा और इनसे इतने मूल्य का पुनरुत्पादन होगा।

विचारों को यथार्थ रूप देने के लिए यह उत्तम होगा कि आवश्यक वस्तुओं का एक स्थूल अंकन किया जाय। सम्भवतः प्रचलित दामों पर एक औसत कृषक परिवार की आवश्यक वस्तुएँ पन्द्रह शि० या अठारह शि० प्रति सप्ताह से पूरी हो सकती है। सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए पाँच शि० की और अधिक आवश्यकता होती है। शहर में रहने वाले एक अकुशल श्रमिक को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए इनको कुछ अधिक आवश्यकता होती है। शहर में रहने वाले कुशल कारीगर के परिवार की आवश्यक वस्तुओं की संतुष्टि के लिए लगभग पच्चीस शि० या तीस शि० की आवश्यकता होगी, और सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दस शि० की अतिरिक्त धनराशि चाहिए। किसी ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे निरन्तर थकावट देने वाला मस्तिष्क-सम्बन्धी काम करना पड़ता है, साल में कुँवारा होने पर दो सौ पौंड या दो सौ पच्चास पौंड अत्यन्त आवश्यक रूप में चाहिए, और यदि उसे एक खर्चीले परिवार को शिक्षा-दीक्षा भी देनी हो तो उन्हें आवश्यक रूप में इससे दुगुने से भी अधिक पौंड चाहिए। उसको सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक धनराशि इस बात पर निर्भर है कि किस श्रेणी के लोग उससे मिलते-जुलते हे।

अध्याय 4

आय पूँजी

§1. आदिकालीन समाज का प्रत्येक कुटुम्ब प्राय स्वावलम्बी होता था। वह अपने भोजन, वस्त्र तथा घर के लिए फर्नीचर की आवश्यकताओ को स्वय पूरा कर लेता था। कुटुम्ब की आय अथवा उसे प्राप्त होने वाली वस्तुओ का बहुत कम भाग द्रव्य के रूप मे होता था। उनकी आय पर विचार करते समय लोग इसकी गणना उसके भोजन बनाने के बर्तनो से मिलने वाली सुविधा या इनसे मिलने वाले लाभ से करते थे, और इसे लगभग उतना ही समझा जाता था, जितना कृषि के लिए हल का प्रयोग करने से लाभ होता था इस प्रकार उनकी पूँजी तथा उनके शेष सचित भण्डार के बीच, जिसमे भोजन बनाने के बर्तन तथा हल समान रूप से शामिल थे, कोई भेद नही किया गया।[1]

आय का व्यापक अर्थ में प्रयोग।

द्रव्य-अर्थव्यवस्था के विकास के फलस्वरूप इस प्रवृत्ति ने जोर पकडा कि आय से अभिप्राय केवल उस आमदनी से होना चाहिए जो द्रव्य के रूप मे प्राप्त होती है। इसमे वस्तुओ के रूप मे होने वाले भुगतान (जैसे मकान का नि शुल्क प्रयोग, कोयला, गैस तथा पानी की नि शुल्क प्राप्ति) जो कर्मचारी को द्रव्य के बदले मे उसकी वृत्ति के अग के रूप मे दी जाती हैं, सम्मिलित है।

'मौद्रिक आय' के अनुरूप शब्द 'व्यापारिक पूंजी' है।

आय के इस अर्थ के अनुरूप ही साधारण भाषा मे मनुष्य की पूँजी उसके धन का वह अग है जिसे वह द्रव्य के रूप मे आय प्राप्त करने के लिए लगाता है, या जिसे अधिकाशतया व्यापार के फलस्वरूप प्राप्त करता है। कभी-कभी इसे उसकी **व्यापारिक पूँजी** कहना अधिक सुविधाजनक होगा, और इसे परिभाषित करते समय यह कहा जा सकता है कि इसमे वे बाह्य वस्तुएँ सम्मिलित है जिनको एक व्यक्ति अपने व्यापार मे या तो द्रव्य के रूप मे बेचने के लिए रखे रहता है या इसलिए रखता है कि वह उनके द्वारा उन वस्तुओ का उत्पादन कर सके जो द्रव्य के बदले मे बेचे जाते है। इसमे अनेक चीजे सम्मिलित है, जैसे कि फैक्टरी तथा उत्पादक का कारोबार, अर्थात् मशीनें, कच्चा माल, कोई भी खाद्यान्न, वस्त्र तथा निवास-स्थान जिन्हे वह अपने कर्मचारियो के उपयोग के लिए तथा अपने व्यवसाय की ख्याति के लिए रखता है।

व्यापारिक पूंजी के, प्रमुख अंग

---

1 इस प्रकार के तथ्यों के आधार पर कुछ लोगो ने केवल यही कल्पना नहीं की कि वितरण और विनिमय के आधुनिक विश्लेषण के कुछ भागों को किसी प्रारम्भिक समाज में घटित नहीं किया जा सकता, जो वास्तव में सच भी है, अपितु यह भी सोचा कि इसके कोई भी ऐसे मुख्य अंग नहीं है जिनको उस पर लागू किया जा सके, किन्तु यह धारणा गलत है। यह उन घातक परिणामों का एक ज्वलन्त उदाहरण है जो विभिन्न प्रकार की विषय-सामग्री में एकता ढूँढ निकालने के लिए कठिन परिश्रम से दिल चुराकर हमें केवल शब्दों का दास बनाने से उत्पन्न होती है।

उसकी अधिकृत वस्तुओं मे वे चीजे भी शामिल की जानी चाहिए जिनके ऊपर उसका अधिकार हो तथा जिनसे वह आय प्राप्त करता हो: इनमे बधक के आधार पर अथवा अन्य किसी रूप मे दिये गये ऋण तथा आधुनिक 'द्रव्य बाजार' के जटिल रूपो मे सम्भव सभी प्रकार के पूँजी पर प्राप्त अधिकार सम्मिलित है। परन्तु इनमे से उन सभी ऋणो को कम करना होगा जिनका उसे भुगतान करना है।

साधारण प्रयोग में पूँजी की यह परिभाषा वैयक्तिक अथवा व्यापारिक दृष्टि-कोणों से पूर्णतया मान ली गयी है। इस ग्रन्थ मे जब कभी हम व्यवसाय से सम्बन्धित समस्याओं पर सामान्य रूप से, अथवा आम बाजार में विक्रय के लिए आयी हुई किसी वर्ग विशेष की वस्तुओ पर मुख्य रूप से विचार करे, तो उक्त परिभाषा को ही प्रयोग में लायेंगे। इस अध्याय के पूर्वार्द्ध मे व्यक्तिगत व्यवसाय के दृष्टिकोण से आय तथा पूँजी पर विचार करेंगे, और तत्पश्चात् इस पर सामाजिक दृष्टिकोण से विचार किया जायेगा।

निबल आय।

§2. यदि कोई व्यक्ति व्यवसाय मे लगा हो तो उसे कच्चा माल खरीदने, मजदूरों को किराये पर रखने, इत्यादि मे आवश्यक रूप से कुछ व्यय करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में उसकी निबल आय का पता लगाने के लिए उसकी कुल आय मे से 'इसके उत्पादन के लिए किये गये भुगतानो को घटाना होगा।'[1]

एक व्यक्ति के वे सभी कार्य, जिनके लिए उसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे द्रव्य के रूप मे भुगतान किया जाता है, उसकी नकद आय मे वृद्धि करते है। किन्तु यदि वह किसी कार्य को केवल अपने ही लिए करता है तो उसे अधिकाशतया उसकी नकद आय का अंग नही समझा जाता। यदि इन वस्तुओ की मात्रा बहुत कम हो तो इन्हे छोड़ देना ही उत्तम होगा। किन्तु जब ये कार्य इस प्रकार के हो कि इनके बदले मे लोग साधारणतया दूसरो को भुगतान करते है, तो विचारो मे समरूपता के लिए इन्हे भी शामिल कर लेना चाहिए। अतः यदि कोई औरत अपने कपडे सिलती है, या कोई व्यक्ति अपने बगीचे मे खुदाई करता है, अथवा अपने घर की मरम्मत करता है; तो उसे इन कार्यो से आय प्राप्त होती है और उसका कार्य (यदि उसको इन कामो के लिए रखा जाय), क्रमशः दर्जी, माली, अथवा बढ़ई की तरह का ही होती है।

'निबल सुलाभ' (Advantage) की अस्थाई परिभाषा।

इस सम्बन्ध मे हम एक नये शब्द को प्रस्तुत करते है जिसका इसके पश्चात् बराबर प्रयोग किया जायेगा। इस प्रकार के शब्द के प्रयोग करने का कारण यह है कि प्रत्येक पेशे मे जहाँ एक ओर उसमे होने वाली थकावट के अतिरिक्त अनेक और असुविधाएँ भी होती है, वहाँ दूसरी ओर, द्रव्य के रूप मे मजदूरी मिलने के अतिरिक्त उसमे अनेक सुविधाएँ भी प्राप्त होती है। किसी पेशे से श्रमिको को जो वास्तविक पारिश्रमिक मिलता है उसे आँकने के लिए उसमे प्राप्त होने वाली सभी सुविधाओ के मौद्रिक मूल्य में से उसमे होने वाली असुविधाओ के मौद्रिक मूल्य को कम करना चाहिए। हम इस वास्तविक पारिश्रमिक को उस पेशे से होनेवाला निबल सुलाभ कहेंगे।

---

1 आय-कर पर विलायती मण्डल कमेटी, (Committee of the British Association) की सन् 1878 की रिपोर्ट पढ़िए।

पूंजी पर ब्याज।

ऋणी द्वारा प्राय. एक साल के लिए किसी ऋण के उपयोग करने के बदले में किये गये भुगतान को ऋण के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिसे ब्याज कहते है। और अधिक व्यापक अर्थ मे इस शब्द का उपयोग पूंजी से द्रव्य के रूप मे प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण आय के अर्थ मे भी होता है। इसे अधिकाशत. ऋण के 'मूलधन' के एक निश्चित अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जाता है। जब ऐसा किया जाता है तो पूंजी को सामान्य वस्तुओ का भण्डार नही समझना चाहिए। इसे एक विशेष वस्तु, अर्थात् मुद्रा का भण्डार समझना चाहिए जिससे ये सभी चीजे प्राप्त हो सकती है। अतः 100 पौंड को 4 प्रतिशत ब्याज पर, अर्थात् 4 पौंड प्रतिवर्ष ब्याज पर उधार दिया जा सकता है। यदि एक व्यक्ति अपने व्यवसाय मे विभिन्न प्रकार का 10,000 पौंड का अनुमानित माल लगाता है तो 4 प्रतिशत ब्याज की दर पर उस पूंजी का ब्याज प्रतिवर्ष 400 पौंड होगा। यह ब्याज इस आधार पर अनुमानित किया गया है कि जिन वस्तुओ से मिलकर यह पूंजी बनी है, उनके मौद्रिक मूल्य मे इस बीच कोई अन्तर नही हुआ। वह अपने व्यवसाय को आगे उसी समय चालू करेगा जब उससे होने वाली वास्तविक आय उस धनराशि से अधिक हो जो चालू दर पर उसकी पूंजी के ब्याज के फलस्वरूप उसे मिलती है। उसकी इस लब्धि को 'लाभ' कहा जाता है।

लाभ

'मुक्त' या 'चल' floating पूंजी।

द्रव्य द्वारा प्राप्त वस्तुओ को, जिनका किसी भी कार्य के लिए उपयोग किया जा सके, प्राय. 'मुक्त' या 'चल' पूंजी कहते है।[1]

प्रबन्ध के उपार्जन।

व्यवसाय मे लग हुए व्यक्ति, का किसी साल का लाभ उसके व्यवसाय से प्राप्त आमदनी तथा उसमे हुए परिव्यय (Outlay)के अन्तर के बराबर होता है। साल के अन्त तथा प्रारम्भ मे मशीनरी तथा उपकरणो, इत्यादि के मूल्य में अन्तर को उनके मूल्य में वृद्धि या कमी के अनुसार उसकी आय या व्यय का अग समझना चाहिए। चालू दर पर उसकी पूंजी के ब्याज को उसके लाभ मे से कम करने के पश्चात् (आवश्यकतानुसार बीमे को भी घटा कर) जो शेष बचता है उसे उस कार्यभार को सम्भालने या प्रबन्ध से उपार्जित आय कहते हैं। उसके वार्षिक लाभ को उसकी पूंजी के अनुपात के रूप मे व्यक्त करने को लाभ की दर कहते हैं। किन्तु ब्याज से सम्बन्धित वाक्याश की भांति यहां भी मान लिया गया है कि उसकी पूंजी में सम्मिलित वस्तुओ का मुद्रा के रूप मे मूल्य आंका गया है। परन्तु इस प्रकार के अनुमान लगाने मे अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं।

लगान तथा आभास लगान।

जब मकान, पियानो या सिलाई की मशीन को किराये पर दिया जाता है तो उससे प्राप्त किराया लगान कहलाता है। अर्थशास्त्री जब वैयक्तिक व्यापारी के दृष्टि-

---

1 प्रो० क्लार्क (Clark) ने विशुद्ध पूंजी (Pure Capital) तथा उत्पादक पदार्थों (Capital goods) के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक सलाह दी है। उनका कहना है कि विशुद्ध पूंजी एक झरने की भांति है जो सदा स्थिर रहता है। झरने के पानी की बूंदों की भांति जो इससे होकर बहती है उत्पादक पूंजी भी उन चीजों से बनी है जो व्यवसाय में आती-जाती रहती है। वह निस्सन्देह विशुद्ध पूंजी से ही ब्याज लेता है, उत्पादक पूंजी से नहीं।

कोण से इस प्रकार की आय पर विचार करते है तो विना किसी कठिनाई के इसी पद्धति को अपनाते है। यदि व्यक्ति की अपेक्षा समाज के दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा हो तो लगान शब्द का प्रयोग उस आय के लिए करना अधिक लाभप्रद होगा जो प्रकृति की मुक्त देनों से प्राप्त हो। यह बात शीघ्र ही आगे दिये हुए वर्णन से स्पष्ट हो जायेगी। इसी कारण इस ग्रन्थ मे आभास-लगान का प्रयोग द्वारा निर्मित मशीनों तथा उत्पादन के अन्य उपकरणो से प्राप्त होने वाली आय के अर्थ में किय जायगा, अर्थात एक मशीन से प्राप्त होने वाली आय लगान की भाँति है, और कभी-कभी इसे लगान भी कहा जाता है। यद्यपि सभी बातो को ध्यान मे रखते हुए इसे आभास लगान कहना ही लाभप्रद होगा। किन्तु हम सही रूप में यह नही कह सकते कि मशीन से कितना ब्याज मिलता है। यदि हमें 'ब्याज' शब्द का प्रयोग ही करना है तो उसका मशीन से सम्बन्ध स्थापित न करके उसके मौद्रिक मूल्य से करना होगा। उदाहरण के रूप मे, यदि 100 पौंड की लागत की मशीन से साल में 4 पौंड के बराबर निबल काम हो, तो उस मशीन से 4 पौंड का आभास लगान प्राप्त होगा जो उसकी मूल लागत के 4% ब्याज के बराबर होगा : किन्तु यदि वह मशीन अब केवल 80 पौंड के योग्य हो तो उसके इस समय के मूल्य पर 5% ब्याज मिल रहा होगा। इससे सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ कठिन प्रश्न उठ खड़े होते हैं जिन पर पाँचवें भाग मे विचार किया जायगा।

§3. इसके पश्चात् पूंजी से सम्बन्धित कुछ बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। पूंजी को उपभोग पूंजी तथा सहायक अथवा साधक पूंजी में वर्गीकृत किया गया है : और यद्यपि इन दो वर्गो में कोई स्पष्ट भेद नही है, फिर भी यह ध्यान मे रखते हुए कि ये शब्द अस्पष्ट है, इनका प्रयोग करना कभी-कभी सुविधाजनक होता हैं। जहाँ निश्चित रूप से विचार करने की आवश्यकता हो, वहाँ इन शब्दों का प्रयोग नही करना चाहिए और सभी बाते स्पष्ट रूप में निर्दिष्ट की जानी चाहिए। सामान्य विचारो के आधार पर इन शब्दों के उपयोग करने मे जो भेद पाया जाता है वह निम्नांकित परिभाषाओं से स्पष्ट हो जायेगा :—

उपभोग पूंजी

उपभोग पूंजी में वे वस्तुएँ सम्मिलित है जो मनुष्य की आवश्कताओं की प्रत्यक्ष रूप मे पूर्ति करती हैं, अर्थात् वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिनसे श्रमिकों का प्रत्यक्ष रूप में पोषण होता है, जैसे भोजन, वस्त्र, निवास-स्थान, इत्यादि।

सहायक अथवा साधक पूंजी।

सहायक और साधक पूंजी मे वे वस्तुएं सम्मिलित है जो श्रमिको को उत्पादन मे मदद करती हैं। इनमे औजार, मशीने, फैक्ट्री रेल, नौकागार जहाज, इत्यादि तथा सभी प्रकार के कच्चे माल सम्मिलित है। किन्तु कपड़ो से मनुष्य को आराम प्राप्त होता है तथा वे उसके कार्य मे सहायक होते है। इसी प्रकार अपनी फैक्ट्री की इमारत से उसे वे प्रत्यक्ष लाभ होते हैं जो उसे अपने घर के मकान से मिलते है।[1]

चल (Circulating) तथा अचल पूंजी।

चल और अचल पूंजी मे भेद जानने के लिए हम मिल का अनुकरण करेंगे। उनके अनुसार चल पूंजी वह है 'जिसका एक बार उत्पादन मे उपयोग होने से सम्पूर्ण

---

1 भाग 2, अध्याय 3 अनुभाग 1 देखिए।

अस्तित्व समाप्त हो जाता है।' अचल पूँजी वह है 'जो स्थायी होती है तथा जिससे एक लम्बी अवधि तक लाभ प्राप्त होता है।'[1]

आय के सामाजिक दृष्टिकोण पर विचार।

§4. अर्थशास्त्री बाजार के लिए उत्पादित वस्तुओ पर तथा उनके विनिमय-मूल्य पर विचार करते समय अपनी सुविधानुसार जो दृष्टिकोण अपनाता है, व्यापारी भी उसी को व्यवहार मे अंगीकार करता है। यदि व्यापारी, जो अर्थशास्त्री से किसी भी भांति कम नही है, सम्पूर्ण समाज के भौतिक कल्याण पर प्रभाव डालने वाले कारणों का अध्ययन करे तो उसका दृष्टिकोण काफी व्यापक होना चाहिए। साधारण बातचीत में बिना किसी सकेत के मनुष्य एक दृष्टिकोण से दूसरे दृष्टिकोण को अपना लेता है, क्योकि इसके फलस्वरूप यदि कोई भ्रम उत्पन्न हो जाय तो उसका शीघ्र ही पता लग जाता है, और उस सम्बन्ध में कोई प्रश्न पूछने पर अथवा स्वेच्छा से दिये गये प्रत्युत्तर से वह भ्रम दूर हो जाता है। किन्तु अर्थशास्त्री को इस प्रकार का जोखिम नही लेना चाहिए। जब भी वह अपने दृष्टिकोण को बदले, अथवा शब्दो का विभिन्न अर्थो में प्रयोग करे तो उसे यह स्पष्ट कर देना चाहिए। यह सच है कि इस प्रकार के संकेत न देने से उस समय उसका कार्य सरल प्रतीत होता है, किन्तु दीर्घकाल में उनके अधिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि जहाँ कही भ्रम उत्पन्न हो, वहा इस बात को स्पष्ट कर दिया जाय कि उन शब्दो का वहाँ पर क्या अर्थ है।[2]

इस अध्याय के शेष भाग मे हम जानबूझ कर वैयक्तिक दृष्टिकोण के स्थान पर सामाजिक दृष्टिकोण को अपनायेंगे : सारे समाज के उत्पादन तथा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुल निबल आय पर विचार करेंगे। इससे अभिप्राय यह है कि हम लगभग उन आदिवासियो के दृष्टिकोण को अपनायेंगे जिनका वाछनीय वस्तुओ के उत्पादन तथा उनके प्रत्यक्ष उपभोग से सम्बन्ध था और जिनका विनिमय तथा वस्तुओ के क्रय-विक्रय से बहुत कम सम्बन्ध था।

व्यावहारिक मामलों में संद्धान्तिक पूर्णता बड़ी कठिनाई से लायी जा सकती है।

इस दृष्टिकोण से आय मे वर्तमान तथा भूतकाल मे अर्जित किये गये वे सभी लाभ सम्मिलित है जिन्हे मनुष्य प्रकृति के साधनो का अपने हित के लिए उपयोग करने के फलस्वरूप प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध मे इन्द्र-धनुष की सुन्दरता, अथवा प्रातःकाल की स्वच्छ तथा सुगन्धयुक्त वायु से प्राप्त आनन्द की गणना नही की जाती। इसका कारण यह नही कि ये महत्वपूर्ण नही है, और न यह कि इनको सम्मिलित करने से आय का गलत

1 अचल और चल पूंजी के बीच एडम स्मिथ ने जो अन्तर बतलाया है वह इस प्रश्न पर आधारित है कि क्या 'वस्तुओं से हस्तान्तरित हुए बिना कुछ लाभ प्राप्त होते हैं', या नहीं। रिकार्डो ने इनके अन्तर को इस बात पर निश्चित किया है कि क्या उनका 'मन्द उपभोग होता है या उनके पुनरुत्पादन की बहुधा आवश्यकता होती है', किन्तु वे ठीक ही कहते हैं कि इस प्रकार का 'विभाजन आवश्यक नहीं है और इसमें सीमा-रेखा को यथार्थ रूप में निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता।' आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मिल के संशोधनों को सामान्यतया स्वीकार कर लिया है।

2 भाग 2, अध्याय 1, अनुभाग 3 से इसकी तुलना कीजिए।

अनुमान लग जाता है, वरन् केवल यह है कि इनको शामिल करने से कोई विशेष लाभ नही होता । इससे केवल वाक्यों में वृद्धि होगी और इनका विवेचन आवश्यक रूप से लम्बा हो जायेगा । ऐसे ही कारणों से उन सेवाओ को भी सम्मिलित करना उचित नही जो एक व्यक्ति अपने लिए करता है, (जैसे कपड़ा पहनना), भले ही कुछ लोग दूसरो से इस प्रकार की सेवाएं लेने के कारण उनको इनके लिए भुगतान करते हैं। इस प्रकार के कार्यों की गणना न करना किसी सिद्धान्त पर आधारित नही है, अतः इस विषय पर विवाद करना निरर्थक है। यहाँ केवल 'नियम मे सूक्ष्म पहलुओं पर विचार नही किया जाता' (De menimis noncuratilex) की कहावतें चरितार्थ होती है। जब एक मोटर ड्राइवर सड़क पर भरे हुए पानी को देखे बिना इसके बीच से अपनी मोटर निकालता है, और इससे पानी की छींटे उछल कर सडक पर चलने वाले यात्रियों पर गिरती है तो कानून के अनुसार वह उन यात्रियो को नुकसान पहुँचाने का अपराधी नही होता । वैसे यदि देखा जाय तो उसके कार्यो में तथा एक ऐसे व्यक्ति के कार्यों मे, जो बिना ध्यान दिये हुए किसी व्यक्ति को कोई गम्भीर क्षति पहुँचाता है, सिद्धान्त की दृष्टि से कोई भेद नही है।

जब मनुष्य अपने श्रम का उपयोग स्वयं करता है तो उस श्रम के फलस्वरूप उसे कुछ आय प्राप्त होती है। यदि उसके इस व्यावसायिक श्रम का उपयोग कोई अन्य व्यक्ति करता तो इस प्रकार के श्रम के लिए उसे भुगतान किया गया होता। उसी प्रकार यदि उसने गत वर्षों मे किसी लाभदायक चीज को तैयार किया हो, या इसे कही से अर्जित किया हो, या सम्पत्ति के वर्तमान अधिकारों के अनुसार उसे दूसरो से प्राप्त हुई हो, तो यह साधारणतया प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे उसके भौतिक लाभ का एक साधन है । यदि वह इसे व्यवसाय मे लगाये तो उसे मुद्रा के रूप मे आय प्राप्त होगी। किन्तु इस शब्द के व्यापक अर्थ लगाने की यदाकदा ही आवश्यकता पडती है, और इसमें पूंजी के स्वामित्व से प्राप्त होने वाले सभी प्रकार के लाभ व आमदनियाँ सम्मिलित होंगी, चाहे पूंजी का किसी भी रूप में उपयोग किया गया हो। उदाहरण के लिए, इसमें अपने पियानों से प्राप्त होने वाले लाभ, अथवा पियानो को किराये पर देने से प्राप्त आय भी सम्मिलित हैं। यद्यपि साधारण जीवन मे प्रयुक्त भाषा का आय के इस प्रकार के व्यापक अर्थ से, चाहे सामाजिक समस्याओं की चर्चा क्यों न हो रही हो, कोई सम्बन्ध नही है, फिर भी मौद्रिक आय के अतिरिक्त आय के अनेक रूपो का इसमे स्वभावतः समावेश हो गया है।

अपने मकान मे रहने वाले मकान मालिक को यद्यपि प्रत्यक्ष रूप मे इसमे मिलने वाले आराम से आय प्राप्त होती है, किन्तु आय-कर आयुक्त (Income Tax Commissioner) इसे कर योग्य आय का भाग मानते है. उनका ऐसा करना किसी कल्पित सिद्धान्त पर आधारित नही है बल्कि कुछ-कुछ अंशो मे मकान के कमरों की व्यावहारिक उपयोगिता, मकान के स्वामित्व को व्यवसाय के रूप में समझने और उससे प्राप्त होने वाली वास्तविक आय के आसानी से अनुमान लगाये जा सकने की सुविधा पर आधारित है। वे इस बात का दावा नही करते कि उनके ये नियम इतने स्पष्ट हैं कि इनसे यह पता लग जाय कि कौन-कौन सी वस्तुएं इनके अन्तर्गत

शामिल की जाती हैं और कौन-कौन सी चीजें इनकी परिधि से बाहर रह जाती हैं।

जेवन्स ने इस समस्या को पूर्ण रूप से गणितीय दृष्टिकोण से समझते हुए उपभोक्ताओं के पास की सभी प्रकार की वस्तुओं की पूंजी के वर्ग में ठीक ही रखा। किन्तु कुछ लेखकों ने इस विचार को बुद्धिमत्तापूर्वक आगे बढ़ाते समय एक बड़े सिद्धान्त का रूप दिया, अतः उनका इस प्रकार का कदम ठीक मालूम नहीं देता। विचारों में समुचित संतुलन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि उन गौण महत्व की वस्तुओं के अनावश्यक वर्णन से विषय को अरुचिकर न बनाया जाय जिन पर साधारण व्यवहार में बहुत कम बातचीत की जाती है और जो प्रचलित परम्पराओं से भिन्न हैं।

आय और पूंजी का सह-सम्बन्ध।

§5. अब हम पूंजी शब्द पर सम्पूर्ण समाज के भौतिक कल्याण के दृष्टिकोण से विचार करेंगे। एडम स्मिथ ने कहा था कि मनुष्य की पूंजी **उसके भंडार का वह अंग है जिससे वह आय प्राप्त करता है।** पूंजी शब्द जिन-जिन अर्थों में प्रयोग किया जाता है, लगभग उन्हीं अर्थों में आय शब्द का भी प्रयोग होता है: और सभी उपयोगों में पूंजी मनुष्य के उत्पादक वस्तुओं के भण्डार का वह अंग है जिससे वह आय प्राप्त कर सकता है।

सामाजिक दृष्टिकोण से पूंजी शब्द का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग यह पता लगाने में किया जाता है कि उत्पादन के तीनों साधन, अर्थात् भूमि (प्राकृतिक साधन), श्रम तथा पूंजी, मिल कर राष्ट्रीय आय का (जिसे आगे चल कर राष्ट्रीय लाभांश कहेंगे) किस प्रकार सृजन करते हैं, और किस प्रकार उस आय का उत्पत्ति के साधनों में वितरण किया जाता है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण के आलावा सामाजिक दृष्टिकोण से 'पूंजी' और 'आय' के सह-सम्बन्ध को स्थापित करने का यह एक अतिरिक्त कारण है।

सामाजिक दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ में पूंजी तथा भूमि शब्दों का अर्थ।

अतः इस ग्रन्थ मे सामाजिक दृष्टिकोण से पूंजी मे भूमि के अतिरिक्त उन सब वस्तुओं को सम्मिलित किया गया है जिनसे साधारण बोलचाल की भाषा में आय प्राप्त होती है। इसमें इस प्रकार की सभी सार्वजनिक सम्पत्ति, जैसे सरकारी फैक्टरियाँ, सम्मिलित हैं: 'भूमि' शब्द में प्रकृति की उन सभी मुक्त देनों को शामिल किया गया है जिनसे आय प्राप्त होती है, जैसे खानें, मछली पकड़ना, इत्यादि।

अतः पूंजी में वे सभी वस्तुएं शामिल हैं जिनको व्यापारिक उपयोग मे लाया जाता है, जैसे मशीनरी, कच्चा माल अथवा तैयार माल, थियेटर, होटल, घर तथा घर की कृषि-भूमि, किन्तु लोगों के अपने उपयोग में लाये गये फर्नीचर, तथा कपड़े इसमें सम्मिलित नहीं है। इसका कारण यह है कि संसार के लोग सामान्यतया यह मानते हैं कि आय प्रथम वर्ग की वस्तुओं से, न कि द्वितीय वर्ग की वस्तुओं से प्राप्त होती है। आयकर आयुक्तों ने इसी परिपाटी को अपनाया है।

पूंजी शब्द का उक्त प्रयोग अर्थशास्त्रियों के नित्यप्रति के प्रयोग के अनुकूल है, और इसी कारण वे सामाजिक समस्याओं पर प्रारम्भ में मोटे तौर पर विचार करते हैं, और उनके सूक्ष्म विवरण को बाद में विचार करने के लिये छोड़ देते हैं। इस शब्द का प्रयोग उस सामान्य दैनिक व्यवहार से भी मिलता-जुलता है जिसके अनुसार श्रम में केवल उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जिनसे मोटे तौर पर आय प्राप्त

होती है। इस प्रकार उक्त अर्थों में श्रम, पूंजी और भूमि उस आय के स्रोत हैं जिसकी राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाते समय साधारणतया गणना की जाती है।[1]

§6. किसी राष्ट्र की अथवा उसके किसी वर्ग की सामाजिक आय का अनुमान लगाने के लिए उस समाज के व्यक्तियों की आय को जोड़ा जाता है। किन्तु ऐसा करते समय एक वस्तु की गणना दो बार नही होनी चाहिए। यदि किसी कालीन का मूल्य पूरा आँका गया हो, तो उसके बनाने में उपयोग किये गये धागे अथवा श्रम के मूल्य को भी कालीन के मूल्य में सम्मिलित कर लिया गया है। अत इन्हे दुबारा गिनने की आवश्यकता नही। यदि कालीन बनाने के लिए आवश्यक ऊन पिछले साल के उस भण्डार से ली गयी है, जो वर्ष के प्रारम्भ मे विद्यमान था, तो उस वर्ष की निवल आय का पता लगाने के लिए कालीन के मूल्य से उस ऊन का मूल्य कम कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त मशीन और अन्य औजारो के प्रयोग किये जाने से उनमे जो टूट-फूट होती है उसके मूल्य को भी कम कर देना चाहिए। ऐसा करना उस सर्वमान्य नियम पर आधारित है, जिसके अनुसार सही या निवल आय का पता लगाने के लिए कुल आय में से उत्पादन के लिए आवश्यक व्यय को कम कर देना चाहिए।

यदि कालीन को घर के नौकरों ने साफ किया हो अथवा भाप की मशीनो द्वारा साफ किया गया हो, तो उनसे सम्बन्धित श्रम के मूल्य को अलग से सम्मिलित कर लेना चाहिए, अन्यथा इस श्रम से प्राप्त सेवाएँ उन नयी उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओ के भण्डार में सम्मिलित नही होंगी जिनसे किसी देश की वास्तविक आय आँकी जाती है। पारिभाषिक अर्थ मे, घर के नौकरों का कार्य भी 'श्रम' कहलाता है और उसका मूल्य उनको भुगतान किये गये द्रव्य अथवा सभी प्रकार की सेवाओं द्वारा आँका जा सकता है। इसे भी सम्मिलित करने में कोई बड़ी सांख्यकीय कठिनाई नही उठानी पड़ती। किन्तु जिस घर में नौकर नही रखे जाते वहां गृहणियों, अथवा घर के अन्य सदस्यों द्वारा किये गये कठिन काम को इसमें सम्मिलित न करने से कुछ असामञ्जस्य पैदा हो जाता है। यदि एक जमीदार जिसकी आय 10,000 पौंड प्रति वर्ष हो, 500 पौंड के वेतन पर एक निजी सचिव रखता है और यह सचिव भी 50 पौंड की मजदूरी पर एक नौकर रखता है तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जब इन तीनों व्यक्तियों की आय को देश की निवल आय के एक अंग के रूप मे सम्मिलित किया जाय, तो इनमें कुछ व्यक्तियों की आय दो बार और कुछ व्यक्तियों की तीन बार सम्मिलित हो जायेगी। किन्तु वास्तव मे बात ऐसी नही है। जागीरदार अपने सचिल की सेवा

1 जिस प्रकार व्यावहारिक मामलों में यह उचित है कि हम प्रातःकाल अपने टोप को ब्रुश से साफ करने के श्रम से मिलने वाली 'आय' को आंकने की उलझन म न पड़ें, उसी प्रकार ब्रुश में लगी हुई पूंजी की मात्रा पर यदि विचार न भी करें तो कोई हानि नहीं होगी। किन्तु किसी गूढ़ विवेचन में इस प्रकार की कोई बात उत्पन्न नहीं होती। अतः जेवन्स का साधारण रूप में व्यक्त यह तर्कसंगत वाक्य, कि 'उपभोक्ताओं के पास की उपयोगी वस्तुएँ भी पूंजी हैं', आर्थिक सिद्धान्तों को गणितीय रूप देने में कुछ लाभदायक सिद्ध होता है और इससे कोई नुकसान नहीं होता।

के बदले में भूमि के उत्पादन से प्राप्त आय के एक भाग को उसे हस्तान्तरित कर देता है। सचिव भी इसके एक भाग को अपने नौकर को उसकी सेवाओं के बदले में दे देता है। जागीरदार को लगान के रूप में प्राप्त भूमि में उत्पन्न वस्तुएं उत्पन्न वस्तुएँ, सचिव के काम से जागीरदार को मिलने वाली सहायता, तथा नौकर के काम से सचिव को मिलने वाली सहायता, ये तीनो देशो की आय के अलग-अलग अंग है। अतः देश की आय का अनुमान लगाते समय उक्त चीजो के मुद्रा के रूप मे प्रतिफल को, अर्थात् 10,000 पौड, 500 पौंड तथा 50 पौंड की आय को, राष्ट्रीय आय में सम्मिलित कर लेना चाहिए। किन्तु यदि जागीरदार अपने पुत्र को प्रतिवर्ष 500 पौंड देता हो तो उसे अलग से सम्मिलित नही करना चाहिए, क्योंकि वह इसके बदले में किसी भी प्रकार की सेवाएं प्रदान नही करता, और इस पर आय-कर भी नही लगता।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति को ब्याज, इत्यादि के रूप मे जो निवल भुगतान होते हैं, (अर्थात् उसे होने वाले कुल भुगतानों में से दूसरो को दी जाने वाली धनराशि घटाकर जो बचता है) वह उसकी आय का अंग है, उसी प्रकार किसी देश को अन्य देशों से निवल रूप में मिलने वाली कुल मुद्रा तथा वस्तुएँ उसकी आय के तुल्य हैं।

सामान्य आर्थिक समृद्धि को आंकने के लिए राष्ट्रीय आय राष्ट्रीय धन की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

§7 मौद्रिक आय से अथवा धन की प्राप्ति से राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि को मापा जा सकता है। यह माप यद्यो अविश्वसनीय होने पर भी धन के भण्डार के मूल्य की अपेक्षा कई दशाओं में अच्छा है।

आय में सम्मिलित सभी वस्तुओं से प्रत्यक्ष रूप में सुख मिलता है, जबकि राष्ट्रीय धन का अधिकांश भाग उत्पादन के उन साधनों से मिल कर बना है जो उपभोग की जानेवाली वस्तुओं का उत्पादन करते है तथा इस प्रकार राष्ट्र के लिए उपयोगी है। इसके अतिरिक्त एक छोटा सा कारण यह है कि उपभोग की वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक अधिक आसानी से भेजा जा सकता है और उनकी कीमत उत्पादन के काम में आने वाली वस्तुओं की अपेक्षा संसार के सभी देशो में लगभग समान रहती है। उदाहरण के लिए एक बुशल गेहूँ के दाम मे मोनेटोबा और कैण्ट में जो अन्तर पाया जाता है उससे इन स्थानो में अच्छी किस्म की एक एकड़ भूमि की कीमत मे अधिक अन्तर पाया जाता है।

यदि हम केवल देश की आय पर ही विचार करें तो आय प्राप्त करने के स्रोतो मे होनेवाले मूल्य ह्रास को घटा लेना चाहिए। यदि मकान पत्थर की अपेक्षा लकडी का बना हो तो घर से प्राप्त होनेवाली आय मे से मकान के मूल्य-ह्रास के लिए अधिक कमी करनी पड़ेगी। यद्यपि लकडी के घर से पत्थर के घरो की भांति समान-रूप से अच्छा निवास-स्थान प्राप्त होता है, किन्तु पत्थर के मकानो के होने से देश अधिक धनी समझा जायेगा। एक खान से कुछ समय तक अधिक आय प्राप्त हो सकती है, किन्तु उस दशा मे इसका भण्डार कुछ ही वर्षों में समाप्त हो जायेगा। ऐसी परिस्थिति मे इसे किसी खेत अथवा मछली पकडने के स्थान की भांति समझना चाहिए जिससे, यद्यपि सालाना बहुत कम आय प्राप्त होती है, किन्तु यह आय निरन्तर प्राप्त होती है।

भविष्य में लाभ की आशा और उत्पादकता दोनों पूंजी की मांग और पूर्ति को नियंत्रित करते हैं।

§8. पूर्णतया गूढ और विशेषकर गणितीय तर्क-प्रणाली में पूंजी और धन शब्द पर्यायवाची अर्थ मे प्रयोग किये जाते है; किन्तु कुछ कारणो से 'भूमि' को पूंजी में सम्मिलित नही किया जाता। यह निश्चित परम्परा चली आ रही है कि वस्तुओं को उत्पादन के कारकों के रूप मे मानते समय पूंजी शब्द का प्रयोग किया जाय और उन पर उत्पादन के परिणाम के रूप मे, उपभोग की वस्तुओ के रूप मे, तथा अपने पास रखने से आनन्द प्रदान करने वाली चीज के रूप मे विचार किया जाता है तो उन्हे धन समझा जाय। अत पूंजी का माँग का मुख्य कारण उसकी उत्पादकता है, अथवा, उदाहरण के लिए, उससे प्राप्त होनेवाली वे सेवाएँ है जिनके फलस्वरूप ऊन की कताई-बुनाई हाथ की अपेक्षा आसानी से हो सकती है, या जिसकी सहायता से पानी को अभीष्ट स्थानों तक घड़ों पर कठिनाई से न ले जाकर आसानी से ले जाया जा सकता है। (यद्यपि पूंजी के और भी उपयोग है, जैसे इसको फिजूल खर्च करने वाले व्यक्ति को देने पर होनेवाले उपयोग, किन्तु इन्हे यहाँ इस मद मे आसानी से शामिल नही किया जा सकता)। दूसरी ओर, पूंजी की पूर्ति इस बात पर निर्भर हे कि इसका समन्वय करने के लिए लोग भविष्य को आशाजनक समझे उन्हे भविष्य मे उपयोग करने के लिए 'प्रतीक्षा' करनी चाहिए और 'बचत' करनी चाहिए, और उन्हे भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए वर्तमान उपभोग को स्थगित कर देना चाहिए।

इस भाग के प्रारम्भ मे ही यह कहा गया था कि अर्थशास्त्री को प्राविधिक *शब्दो का प्रयोग पूर्णरूप से त्याग देना चाहिए*। उसे अपने निश्चित विचारो को व्यक्त करते समय साधारण व्यवहार मे प्रयुक्त होनेवाले शब्दो का प्रयोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे वह अर्थ स्पष्ट करने के लिए विशेषतासूचक विशेषणो तथा अन्य सूचको की सहायता भी ले सकता है। यदि वह किसी शब्द का एक काल्पनिक रूप मे निश्चित प्रयोग करता है, जिसके साधारण बोलचाल मे अनेक अनिश्चित अर्थ निकलते है, तो उससे व्यापारियो को भ्रम उत्पन्न हो सकता हे, और स्वय अर्थशास्त्री भी अपने को कटु आलोचनायो से अछूता नही पा सकता। 'आय' तथा 'पूँजी' शब्दो को सामान्य रूप मे उपयोग मे लाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग द्वारा इनकी पहले जॉच की जाय।[1]

---

1 भविष्य के इस कार्यक्रम का एक संक्षिप्त पूर्वानुमान यहाँ पर दिया जा सकता है। इस प्रसंग में पूंजी पर इसके प्रयोग से होनेवाले कुल हित तथा इसके उत्पादन के लिए आवश्यक कुल श्रम एवं बचत करने में लगी लागत की दृष्टि से विचार करना होगा: और यह स्पष्ट करना पड़ेगा कि इन दोनों में संतुलन कैसे स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार भाग 5' अध्याय 4, जिसे एक दृष्टि से इसी अध्याय का अग्रभाग समझा जा सकता है, के कुछ भाग में रौबिंसनक्रूसो के सम्बन्ध में प्रत्यक्षरूप में, तथा-अधिकांश भाग में एक आधुनिक व्यापारी के सम्बन्ध में द्रव्य के रूप में, पूर्व सूचना देते समय इनका संतुलन दिखाया गया है। इन दोनों दशाओं में पूंजी से होने वाली हित-वृद्धि तथा उत्पादन के लिए इसके संचय में होनेवाले व्यय एक ही समय से सम्बद्ध होने चाहिए। जो हित या व्यय इस निश्चित समय से बाद में हुए हों उन्हें कुल हित

अथवा कुल लागत से 'कम' कर देना चाहिए, और जो इससे पहले हुए हों उन्हें 'इसमें शामिल' कर लेना चाहिए।

पूंजी से होनेवाले लाभ तथा इसके संचय करने में लगी लागत का इस प्रकार का संतुलन स्थापित करना किसी सामाजिक अर्थव्यवस्था का एक अपरिहार्य भाग होगा: यद्यपि इस सम्बन्ध में यह बात सत्य है कि धन के असमान वितरण के कारण सामाजिक दृष्टिकोण से इस संतुलन का उतने स्पष्ट और विशद रूप में अनुमान नहीं लगाया जा सकता जितना रौबिन्सन क्रूसो, या किसी आधुनिक व्यापारी के दृष्टिकोण से अनुमान लगाया जा सकता है।

उत्पादक साधनों के संचय तथा प्रयोग को नियंत्रित करने वाले कारणों का विवेचन करते समय यह ज्ञात होगा कि इस प्रकार का कोई भी सार्वभौमिक नियम नहीं है कि उत्पादन के चक्रवत नियम इसके प्रत्यक्ष नियमों से अधिक उपयोगी होते हैं, या यह कि कुछ परिस्थितियों में मशीनों को प्राप्त करने के प्रयत्न तथा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खर्चीले साधनों को जुटाना दीर्घ काल में मितव्ययी होता है, और अन्य परिस्थितियों में ऐसा नहीं होता।

पूंजी का संचय एक ओर तो मनुष्य की भावी आशाओं के अनुपात में तथा दूसरी ओर उत्पादन की उन चक्रवत (Round about) प्रणालियों के अनुपात में होता है जिनमें पूंजी लगाने से पर्याप्त प्रतिफल मिलता है। इस सम्बन्ध में विशेषकर भाग 4, अध्याय 7, अनुभाग 8; भाग 5, अध्याय 4; भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 8 तथा भाग 4, अध्याय 6, के अनुभाग 1 को विशेषकर देखिए।

पूंजी के उत्पादन को सामान्य रूप में नियंत्रित करने वाली व्यापक शक्तियों का तथा राष्ट्रीय आय में इससे होने वाले अंशदान का भाग 4, अध्याय 7 तथा 9 से लेकर 11 तक में वर्णन किया गया है। वस्तुओं से होनेवाले हित तथा व्यय की, कुल मात्रा के मुद्रा के रूप में आँकने के अपूर्ण ढंगों पर मुख्यता भाग 3, अध्याय 3 से लेकर 5 तक में, भाग 4, अध्याय 7 में और भाग 6, अध्याय 3 से लेकर 8 तक में विवेचन किया गया है। श्रम तथा पूंजी के कुल उत्पादन से प्राकृतिक साधनों की सहायता से प्राप्त भाग पर जिसे पूंजी में शामिल किया जाता है, भाग 6, के अध्याय 1, 2, 6 से लेकर 8, 11 तथा 12 में विचार किया गया है।

पूंजी की परिभाषा सम्बन्धी कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का परिशिष्ट ङ (E) में उल्लेख किया गया है।

भाग 3
आवश्यकताएँ और उनकी संतुष्टि

अध्याय 1
परिचायक

§1. अर्थशास्त्र की पुरानी परिभाषाओं के अनुसार इसका धन के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग से सम्बन्ध है। विगत के अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि वितरण और विनिमय की समस्याओं का एक दूसरे से इतना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इन्हे एक दूसरे से अलग रखने से कोई लाभ नही है। मूल्य-निर्धारण की समस्याओं का आधार होने तथा आर्थिक विचारो के मुख्य सिद्धान्त मे एकता और अनुरूपता उत्पन्न करने मे आधार-स्तम्भ के रूप में कार्य करने के कारण माँग और सम्भरण के सम्बन्ध मे अनेक सामान्य विचार व्यक्त किये जाते है। इसके विस्तार और सामान्यता के कारण ही यह वितरण और विनिमय की अधिक यथार्थ समस्याओं पर आश्रित होते हुए भी उनसे भिन्न है। अतः इसे भाग 5 में 'माँग और सम्भरण के सामान्य सिद्धान्त' के अन्तर्गत रखा गया है, जिसके आधार पर 'वितरण तथा विनिमय या मूल्य' का सुचारु रूप से अध्ययन किया गया है।

इस ग्रन्थ के शेष भाग से इस भाग का सम्बन्ध।

किन्तु इससे पहले अभी तीसरे भाग में आवश्यकताओं और उनकी संतुष्टि, अर्थात् माँग और उपभोग का अध्ययन किया गया है इसके पश्चात् चौथे भाग मे उत्पादन के साधनों का, अर्थात् उन साधनों का जिनसे आवश्यकताओं की पूर्ति होती है(इसमे मनुष्य भी, जो उत्पादन का प्रमुख साधन तथा अन्तिम लक्ष्य है, शामिल है), अध्ययन किया गया है। चौथा भाग सामान्य रूप मे उत्पादन के उस विवेचन से सम्बन्धित है जिसे गत दो पीढ़ियों में सामान्य अर्थशास्त्र पर लिखे गये लगभग सभी आंग्ल ग्रन्थों मे विशेष स्थान दिया गया है, परन्तु इनमे माँग और सम्भरण के साथ उत्पादन के सम्बन्ध को भलीभाँति स्पष्ट नही किया गया है।

§2. अभी हाल तक माँग तथा उपभोग के विषय की कुछ अवहेलना की गयी थी। यद्यपि यह महत्वपूर्ण है कि अपने साधनो का अधिकाधिक उपयोग कैसे किया जाय तथापि जहाँ तक व्यक्तिगत व्यय का सम्बन्ध है, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उस पर पूर्णरूप से घटित नही होते। एक अनुभवी मनुष्य को इस विषय में सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण की अपेक्षा उनके सामान्य ज्ञान से अधिक पथ-प्रदर्शन मिलता है, और अभी हाल तक अर्थशास्त्रियों ने इस विषय पर बहुत कम विचार व्यक्त किये थे, क्योंकि उनके पास कहने को ऐसी कोई नयी बात नही थी जिसे अन्य समझदार लोग नही जानते

अनेक कारणों से उपभोग का अध्ययन महत्वपूर्ण हो गया है।

हो। किन्तु इधर अनेक कारणों के फलस्वरूप यह विशेष आर्थिक विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है।

प्रथम कारण

पहली बात यह है कि लोगों में इस प्रकार का विश्वास बढ़ रहा है कि रिकार्डो ने विनिमय-मूल्य को निर्धारित करने वाले तत्वों का विश्लेषण करते समय उत्पादन की लागत पर आवश्यकता से अधिक जोर देकर इस अध्ययन को क्षति पहुँचायी है। यद्यपि रिकार्डो तथा उसके प्रमुख अनुयायियों को इस बात का ज्ञान था कि मूल्य के निर्धारण मे मांग का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है जितना समरण का, किन्तु उन्होने ये विचार स्पष्टरूप मे व्यक्त नही किये। इसका परिणाम यह हुआ कि गहन अनुशीलन करने वाले व्यक्तियो के अतिरिक्त अन्य सभी लोगो ने उनके विचारो का गलत अर्थ लगाया।

द्वितीय कारण

दूसरी बात यह है कि अर्थशास्त्र मे निश्चित ढग से विचार करने की आदतें प्रबल होती जा रही है जिससे लोग पहले की अपेक्षा सोच-विचार कर यह स्पष्ट रूप मे बता देते है कि वे किस विषय पर तर्क कर रहे हैं। इस प्रकार की विशेष सावधानी का कारण कुछ अशो मे यह है कि कुछ लेखको ने गणितीय भाषा का प्रयोग करना तथा अपने विचार मे भी इसी प्रकार की यर्थाथता लाना प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव मे यह सन्देहात्मक है कि गणित के जटिल सूत्रो से बहुत अधिक लाभ हुआ है। किन्तु विचारो मे गणित की सी यथार्थता का विकास करने से बहुत कुछ प्रगति हुई है, क्योकि इसके फलस्वरूप अर्थशास्त्री किसी समस्या पर अपने विचार तभी व्यक्त करते हैं, जब वे उस विषय को भलीभांति समझ लेते हैं। वे उस विषय मे आगे बढने से पूर्व यह जानना चाहते है कि उन्हे कौन-कौन-सी बाते माननी हैं और किन-किन बातो का मानने की आवश्यकता नही है।

इसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र के सभी प्रमुख विचारो का, और मुख्यतया माग का, अधिक विचारपूर्वक विश्लेषण करना आवश्यक हो गया है क्योकि किसी वस्तु की माग का स्पष्ट रूप से अनुमान मात्र लगाने से अर्थशास्त्र को मुख्य समस्याओ के नये पहलुओ का पता लग जाता है। यद्यपि माग के सिद्धान्त का अधिक विकास नही हुआ है, किन्तु फिर भी हम देखते है कि उपभोग सम्बन्धी आकड़ो को इस प्रकार से एकत्रित करना तथा सजाना सम्भव है जिससे जन-कल्याण से सम्बन्धित अधिक महत्वपूर्ण समस्याओ पर प्रकाश डाला जा सके।

तृतीय कारण

अन्त मे, इस युग की तीव्र भावना के कारण प्रत्येक व्यक्ति इस प्रश्न पर सूक्ष्म रूप से विचार करने लगा है कि हमारी बढती हुई सम्पत्ति से होनेवाले जन-कल्याण मे अधिक वृद्धि क्यो न की जाय। इसके फलस्वरूप हमे आवश्यक रूप मे यह पता लगाना पडता है कि सामूहिक अथवा व्यक्तिगत उपयोगों मे आनेवाली वस्तुओं के विनिमय-मूल्य द्वारा उसके सुख और समृद्धि मे होनेवाली वृद्धि को सही रूप मे कैसे अनुमानित किया जाय।

अब हम आवश्यकताओं और

इस भाग मे हम विभिन्न प्रकार की मानवीय आवश्यकताओ का मनुष्य के प्रयासों तथा कार्यो से सम्बन्ध का सक्षेप मे वर्णन करेंगे। यद्यपि मनुष्य के प्रगतिवादी विचारों मे एकता पायी जाती है, किन्तु उसके जीवन के केवल आर्थिक पहलू पर अस्थाई रूप से कुछ समय के लिए विचार करना लाभप्रद होगा। यहाँ इस बात की विशेष

सावधानी रखनी चाहिए कि एक ही दृष्टिकोण से उसके सम्पूर्ण अंग पर एक साथ विचार किया जा सके। इस बात पर यहाँ जोर देने का विशेष कारण यह है कि रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों द्वारा अन्य लोगों की तुलना मे आवश्यकताओ की अधिक अवहेलना करने मे जो प्रतिक्रिया हुई, उसके फलस्वरूप इनका अधिकाधिक मात्रा मे अध्ययन किया जा रहा है। जिस महान सत्य पर उन्होने एक प्रकार से अत्यधिक अनन्यता से विचार किया, उस पर आज भी बल देना आवश्यक है। वह सत्य यह है कि कम विकसित प्राणियो मे उनकी आवश्यकताएँ उनके जीवन को नियत्रित करती है, किन्तु मानव जाति के इतिहास की मुख्य घटनाओं का पता लगाते समय उनके प्रयत्नो तथा कार्यो के रूप में जो परिवर्तन हुए हैं, उन पर अवश्य ही विचार करना चाहिए।

तत्सम्बन्धित प्रयत्नों का अध्ययन करेंगे।

अध्याय 2

आवश्यकताओं तथा क्रियाओं का सम्बन्ध

जंगली आवस्था में मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक प्रकार की वस्तुओं की इच्छा स्वयमेव होने लगती है।

§1. मनुष्य की आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ अगणित तथा विभिन्न प्रकार की होती हैं : किन्तु सामान्यतः वे सीमित होती है और उनकी पूर्ति की जा सकती है। वास्तव मे असभ्य व्यक्ति की आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ नितान्त जानवर की अपेक्षा अधिक नहीं होती। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ व्यक्ति की आवश्यकताएँ अनेक प्रकार से बढ़ती जाती हैं और उनकी पूर्ति के नये-नये उपाय निकलते आते हैं। जिन वस्तुओ के उपभोग का वह आदी है, उन्ही की अधिक मात्रा की उसे आवश्यकता नही होती, अपितु उसे उनसे अच्छी श्रेणी की वस्तुओं की भी आवश्यकता होती है। वह अपनी मन-पसन्द चीज छाटने के लिए यह चाहता है कि उसके सम्मुख विभिन्न प्रकार की ऐसी वस्तुएँ हों, जो *उसकी बढ़ती हुई नयी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सके।*

यद्यपि पाशविक प्रकृति तथा जगली अवस्था मे रहने वाले मनुष्यों को अच्छा भोजन पसन्द है, किन्तु किसी को भी अनेक प्रकार के भोजन की अधिक चिन्ता नही। जब मनुष्य अधिक सभ्य होने लगता है, जब उसके मस्तिष्क का विकास होने लगता है, जब उसकी पाशविक इच्छाओ का मानसिक क्रियाओं से सम्बन्ध स्थापित होने लगता है, तो उसकी आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की तथा अधिक सूक्ष्म हो जाती हैं। प्रथाओ के चंगुल से जानबूझ कर बचने से पूर्व ही वह अपने जीवन मे पग-पग पर परिवर्तन मात्र के लिए नयी-नयी वस्तुएं चाहता है। इस दिशा मे सबसे पहला बडा कदम आग उत्पन्न करने से प्रारम्भ होता है। इसके परिणाम स्वरूप वह विभिन्न प्रकार से तैयार कि े गये भाति-भाति के भोजन तथा पेय वस्तुओं के उपयोग करने का आदी हो जाता है। थोड़े समय मे इन वस्तुओं के निरन्तर उपयोग करने से नीरसता उत्पन्न हो जाती है जो कि दु:खदायी प्रतीत होती है। और एक परिस्थितियो से विवश होकर वह अधिक समय तक केवल एक या दो प्रकार के भोजन पर निर्भर रहता है तो उसे बहुत कठिनाई उठानी होती है।

मनुष्य की भोजन करने की शक्ति सीमित है, किन्तु विशिष्टता प्राप्त करने की आकांक्षा, जिसके फलस्वरूप वह कीमती वस्त्रों की इच्छा करता है, सीमित नहीं है।

जैसे-जैसे मनुष्य की सम्पदा मे वृद्धि होती है उसका भोजन तथा उसकी पेय वस्तुए बढ़ती जाती हैं और वे *अधिक खर्चीले होते जाते हैं। किन्तु प्रकृति ने उसकी* क्षुधा को सीमित रखा है, अतः जब वह अपने भोजन पर आवश्यकता से अधिक खर्च करता है तो उसका उद्देश्य निजी सुख-ऐश्वर्य का भोग न होकर बहुधा आदर सत्कार तथा आडम्बर की भावना की पूर्ति करना है।

हम सीनियर की भाँति यह कह सकते हैं कि 'यद्यपि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की प्राप्ति करने की इच्छा उत्कट होती है, फिर भी' यह विशिष्टता प्राप्त करने की भावना की अपेक्षा कम प्रबल होती है। यदि इस भावना की सार्वभौमिकता निरन्तरता, तथा इस बात पर विचार करें कि यह सभी मनुष्यों को सभी कालों में

जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करती है, तो इसे हम मानवीय उत्कंठाओं में सबसे शक्तिशाली कह सकते है।' जब हम अनेक प्रकार के भोजन की विभिन्न प्रकार के पहनने के कपड़ों से तुलना करें तो इस महान अर्द्ध-सत्य की पुष्टि हो जाती है।

§2. प्राकृतिक कारणों से वस्त्रों की आवश्यकता होती है। जलवायु तथा मौसम की विभिन्नता के कारण, तथा कुछ सीमा तक मनुष्य के काम-धन्धों की असमानता के कारण वस्त्रों का एकसा उपयोग नही होता, किन्तु वस्त्रों के उपयोग करने में प्राकृतिक आवश्यकताओं की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताएँ अधिक प्रबल होती है। *सभ्यता की अनेक प्रारम्भिक अवस्थाओं में कानून तथा प्रथाओं द्वारा प्रत्येक जाति* अथवा औद्योगिक वर्ग के सदस्यों के लिए व्यय सम्बन्धी कड़े आदेश निर्धारित किये गये थे। इनके अनुसार इन सदस्यों के वस्त्र पहनने के ढग तथा उन पर व्यय करने का न्यूनतम स्तर (जिस सीमा तक खर्च किया जाना चाहिए) तथा उच्चतम स्तर (जिससे अधिक खर्च करने की आवश्यकता नही) निश्चित किये गये थे। यद्यपि इन आदेशो मे तीव्रतापूर्वक परिवर्तन होते आये है तथापि इनकी यथार्थता आंशिक रूप मे आज भी विद्यमान है। उदाहरण के रूप में एडमस्मिथ के समय मे स्काटलैंड मे यह प्रथा थी कि लोग बिना जूते और लम्बे मोजे पहने विदेशों को जा सकते थे, किन्तु अब ऐसा नहीं होता। स्काटलैंड मे बहुत से लोग भले ही अभी भी ऐसा करे किन्तु इंग्लैंड मे वे ऐसा नही करेंगे। इंग्लैंड मे इस समय एक सम्पन्न मजदूर से यह आशा की जाती है कि वह इतवार के दिन काला कोट पहन कर, और कुछ स्थानों मे रेशमी टोप पहने हुए भी, दिखायी देगा। किन्तु यदि कुछ समय पहले वह ऐसा करता तो उसकी हँसी उड़ाई जाती। रीति-रिवाज के आधार पर विभिन्न प्रकार के वस्त्रो तथा उन पर किये जाने वाले व्यय की जो न्यूनतम तथा अधिकतम सीमाएँ निर्धारित की गयी थी, उनमे निरन्तर वृद्धि हो रही है। अच्छे वस्त्र पहन कर बड़े आदमी बनने की प्रथा इंग्लैंड के सभी निम्नश्रेणी के लोगों में बढ़ रही है।

उच्च वर्ग के लोगों के वस्त्र (यद्यपि औरतों के वस्त्र अभी भी अनेक प्रकार के तथा कीमती होते है) कुछ समय के पूर्व यूरोप के देशवासियों और इस समय के पूर्वी देशों मे रहने वाले लोगो के वस्त्रो की अपेक्षा साधारण और कम मूल्य के होते हैं। जो लोग अपनी योग्यता के कारण विशिष्ट पद प्राप्त कर चुके है उन्हें कपड़ा पहन कर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के ढगों से स्वभावतः घृणा है और उन्होने इस प्रकार का फैशन ही चला दिया है।[1]

---

1 एक औरत अपने धन का प्रदर्शन करती है, किन्तु वह अपने वस्त्रों द्वारा केवल धन का ही प्रदर्शन नहीं करती; यदि वह ऐसा करती है तो उसे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसे न केवल सम्पत्ति को बल्कि अपने आचरण की विशिष्टता का परिचय देना होगा, क्योंकि यद्यपि उसका पहिनावा उसकी अपेक्षा उनको मिलने वाले पर अधिक निर्भर है। तब भी एक परम्परा से यह स्वीकार किया गया है कि बाह्य मामलों मे पुरुषों की अपेक्षा कम व्यस्त रहने से औरतों के पास अपने वस्त्रों के विषय में सोचने के लिए अधिक समय रहता है। आजकल के फैशनों

निवास-कक्ष।

§3. मनुष्य को मौसम की खराबी से बचने के लिए निवास-कक्ष की आवश्यकता होती है। किन्तु निवास-कक्ष की प्रभावोत्पादक माँग (Effective demand) मे इस प्रकार की आवश्यकता को बहुत कम महत्व दिया जाता है। यद्यपि अच्छे ढग से बनी हुई एक छोटी सी कुटिया (Cabin) अत्यन्त सुन्दर आश्रम-स्थल का काम करती है तथापि इसमे अनेक बुराइयाँ है, जैसे कि इसका गला घुटने वाला वातावरण, इसमे आवश्यक रूप मे पायी जाने वाली गन्दगी, और शान्तिपूर्ण जीवन एव शिष्टाचार का अभाव। इससे उत्पन्न होने वाली शारीरिक असुविधाएं ही विशेष बुराइयाँ नही हैं, वरन् इनसे उनकी प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो जाता है और उनके उत्कृष्ट कार्यों की सख्या भी सीमित हो जाती है। इन कार्यो मे वृद्धि के कारण बडे कमरे वाला मकान अत्यन्त आवश्यक हो गया है।[1]

अत' मकान का कुछ बडा और सुसज्जित कमरा समाज के सबसे निम्नवर्ग के लोगो की कुशलता की वृद्धि के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है,[2] और भौतिक साधनो के स्वामित्व के रूप मे समाज मे सम्मान प्राप्त करने का सबसे सुविधाजनक तथा प्रत्यक्ष उपाय है। उन वर्गो मे जिनके पास अपने तथा कुटम्बीजनो के उच्चतर कार्यो के विकास के लिए मकान मे पर्याप्त स्थान है उन्हे भी समाज सम्बन्धी बहुत से श्रेष्ठ कार्यो को करने के लिए और अधिक स्थान की बडी आवश्यकता होती है।

क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली आवश्यकताएं।

§4. इसके अतिरिक्त समाज के प्रत्येक वर्ग की क्रियाओ को करने तथा उनमे प्रगति पाने की स्वाभाविक भावना से विज्ञान, साहित्य एव कला मे नये ज्ञान की प्राप्ति ही नही होती बल्कि उन लोगो की कृतियो के लिए माँग अधिकाधिक बढती है जो इनको पेशे के रूप मे अपनाते है। लोग निष्क्रिय रूप मे बैठे रह कर अवकाश का बहुत कम दुरुपयोग करते है, और खेलकूद एव यात्रा के सदृश मनोरजनों के लिए उनकी इच्छा बढी हुई है। इससे विषय-वासनाओ मे अभिरुचि की अपेक्षा क्रियाशीलता मे वृद्धि होती है।[3]

से प्रभावित होते हुए भी जो लोग अपनी प्रतिभाओं एवं योग्यताओ के कारण विशिष्टता प्राप्त करना चाहते हं, 'कीमती वस्त्र पहनने' को अपना युक्तिसंगत गौण उद्देश्य समझते हं। यदि फैशन की अनियंत्रित कुटिलताओं का कुप्रभाव समाप्त हो जाय तो ऐसा करना और भी अधिक ठीक समझा जायेगा। आवश्यकताओ के अनुरूप अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्रों को और भी सुन्दर बनाना एक महान कार्य है। इसको उसी वर्ग में रखा जा सकता है जिसमें एक सुन्दर चित्र में रंग-लेपन के कार्य को रखा जाता है, किन्तु इसमें इसका वही स्थान नहीं जो रंग-लेपन का है।

1 यह सत्य है कि बहुत से सक्रिय कार्यपरायण लोग गाँव के अनेक कमरों वाले मकान को अपेक्षा शहर के आक्षेपयुक्त कमरे में रहना पसन्द करते है, क्योकि उनकी उन अनेक कार्यों में तीव्र अभिरुचि होती है जिनके लिए ग्रामीण वातावरण में सुविधाएं प्राप्त नहीं होतीं।

2 भाग 2 के, अध्याय 3 का, अनुभाग 3 देखिए।

3 एक छोटा-सा कारण यह भी है कि वे नशीले पेय-पदार्थ जो मानसिक

वास्तव मे उत्कृष्टता प्राप्त करने की भावना का क्षेत्र लगभग उतना ही विशाल है जितना विशेषता प्राप्त करने की साधारण इच्छा का। जिस प्रकार उत्कृष्टता प्राप्त करने की भावना का प्रारम्भ उन लोगों की महत्वाकाक्षा से होता है जो यह चाहते है कि उनका सभी कालों और सभी देशो मे लोग नाम जाने, और यह भावना उस ग्रामीण लडकी की आशाओ मे भी पायी जाती है जो यह चाहती है कि ईस्टर मे उसके द्वारा बालो मे बान्धे हुए रिबन को उसके सभी पडोसी देखे, उसी प्रकार उत्कृष्टता की भावना न्यूटन या स्ट्रैडिमैरियस (Stradivarius) सरीखे व्यक्ति से लेकर उस मछुवे तक मे पायी जाती है जो (जब न तो उसे कोई देखता है और न वह जल्दी मे हो) अपनी सुन्दर बनी हुई तथा इच्छानुकूल दिशा मे सुगमतापूर्वक चलने वाली नाव को भलीभाँति खेने मे बडा आनन्द लेता है। इस प्रकार की इच्छाएँ उच्चतम प्रतिभाओ के विकास को तथा बडी-बड़ी नयी खोजो को प्रभावित करती है, और माँग की दृष्टि से भी ये कम महत्व की नही है। अत्यधिक व्यावसायिक कुशलता चाहने वाले विभागो तथा यात्रिको के सर्वोत्तम कार्य की अधिकाश माँग इस कारण उत्पन्न होती है कि लोगो को अपनी आन्तरिक शक्तियो के प्रशिक्षण मे तथा सावधानी से तैयार किये गये तथा शीघ्र ही प्रवृत्त होने वाले औजारो का उपयोग करने में आनन्द आता है।

उत्कृष्टता प्राप्त करने की इच्छा की श्रेणियां।

स्थूल रूप मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ में मनुष्य की आवश्यकताएँ तदनुरूप क्रियाओ को जन्म देती है, किन्तु बाद मे सभ्यता के विकास के साथ-साथ नयी-नयी आवश्यकताएँ नये-नये प्रयत्नो को जन्म न देकर स्वयं नयी-नयी क्रियाओ के फलस्वरूप पैदा होती हैं। ये सब चीजे उस समय स्पष्ट हो जायेगी जब हम उन स्थलो से अपना ध्यान हटा ले जहाँ परिस्थितियाँ स्वस्थ-जीवन के अनुकूल हो तथा जहाँ पर निरन्तर नये-नये कार्य किये जा रहे हो, और पश्चिमी द्वीप-समूह के निग्रो को देखे जो अपनी नयी-नयी स्वतत्रता और धन का अपनी आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए उपयोग न करके आराम रहित निष्क्रिय जीवन बिताने मे उपयोग करता है, अथवा तीव्रता से घटते हुए आग्ल श्रमिक वर्ग को देखे जिन्हे अपनी प्रतिभाओ तथा कार्यो के विकास के लिए न तो कोई महत्वाकाक्षा है, और न इनमे कोई गर्व है या आनन्द की प्राप्ति होती है, और जो निकृष्ट जीवन-यापन की न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति करने के बाद मजदूरी के बचे हुए पैसो को नशीली चीजो में व्यय करते है

समृद्धशाली अवस्था में नयी-नयी क्रियाओं के फलस्वरूप नयी-नयी आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं।

अतः यह कहना ठीक नही है कि 'उपभोग का सिद्धान्त अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक आधार है।'[1] आवश्यकताओ के विज्ञान मे जो अधिक रोचक बात मिलती है उसका अधिकांश भाग परिश्रम तथा प्रयत्नो के विज्ञान पर आधारित है। ये दोनों एक दूसरे

आवश्यकता के सिद्धान्त को आर्थिक

क्रियाओं को उत्तेजना देते हैं, एक बड़े पैमाने में उन क्रियाओं का स्थान ग्रहण कर रहे है जो केवल इन्द्रीय सुख प्रदान करती है। चाय का उपयोग बड़ी तीव्रता से बढ़ रहा है किन्तु मद्यसार का उपयोग पूर्ववत् है, और समाज के विभिन्न वर्गों में घटिए तथा अधिक उत्तेजना देने वाले मद्यसार के विभिन्न प्रकारों की माँग घट रही है।

1 इस सिद्धान्त का बेन्फील्ड (Banfield) ने प्रतिपादन किया था और

प्रयत्नों के सिद्धान्त से अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता।

के पूरक है, एक दूसरे के अभाव मे अपूर्ण है। किन्तु यदि यह प्रश्न उठे कि मनुष्य के इतिहास के आर्थिक पहलू का या अन्य किसी क्षेत्र का कौन अधिक परिचायक है, तो यह कहा जा सकता है कि आवश्यकता के सिद्धान्त की अपेक्षा आर्थिक प्रयत्नों का सिद्धान्त इस बात की अधिक पुष्टि करता है। मैक्कुलोक (Mc Culloch) ने 'मनुष्य के प्रगतिवादी स्वभाव'[1] का विवेचन करते समय उनके सही सम्बन्ध को बतलाया और कहा कि 'किसी आवश्यकता अथवा इच्छा की पूर्ति तो किसी नये कार्य का आरम्भ मात्र है। अपनी प्रगति की प्रत्येक अवस्था मे वह स्वाभाविक रूप से विचार करता है, नयी खोज करता है तथा नये-नये कार्यों को करता है और इनके सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वह नवीन शक्ति से अन्य कार्यों का श्रीगणेश करता है।'

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे अध्ययन की वर्तमान अवस्था मे माँग का जो भी वर्णन सम्भव है, वह इसका सम्पूर्ण रूप से केवल औपचारिक एव प्रारम्भिक रूप होगा। उपभोग का गहन अध्ययन आर्थिक विश्लेषण के मुख्य अग के बाद मे, न कि पहले, होना चाहिए। यद्यपि इसका अर्थशास्त्र के क्षेत्र से ही प्रारम्भ हो सकता है, किन्तु इसके निष्कर्ष इसी तक सीमित न होकर अन्य क्षेत्रो मे भी व्यापक रूप से घटित होने चाहिए।[2]

जेवन्स ने इसे मूल सिद्धान्त के रूप में अपनाया था। यह खेद की बात है कि अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी जेवन्स अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक व्यक्त करते समय ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचे जो गलत है और जिससे बड़ी क्षति हुई है, क्योंकि उन्होंने प्राचीन अर्थशास्त्रियों को वास्तविकता से कहीं अधिक दोषी ठहराया है। बेन्फोल्ड के कथनानुसार 'उपभोग के सिद्धान्त की पहली बात यह है कि निम्न-श्रेणी की प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता पूर्ण होने पर उससे अच्छी किस्म की वस्तु के लिए इच्छा उत्पन्न होती हैं'। यदि यह कथन सत्य होता तो इस पर आधारित उक्त सिद्धान्त भी प्रामाणिक सिद्ध होता, जैसा कि जेवन्स ने अपनी Theory के द्वितीय संस्करण में पृष्ठ 59 पर स्वय उल्लेख किया है, यह कथन सत्य नहीं है : और उन्होंने इस कथन की, यह कह कर प्रतिस्थापना की, कि कम महत्वपूर्ण आवश्यकता के तृप्त होने के फलस्वरूप अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता के उत्पन्न होने के आसार दिखायी देते हैं। यह विचार सत्य है और पहले के कथन से मिलता-जुलता है : किन्तु इससे उपभोग के सिद्धान्त को सर्वोत्कृष्ट नहीं समझा जा सकता।

1 Political Economy, अध्याय 2.

2 आवश्यकताओं का वर्गीकरण करना एक रोचक कार्य है, किन्तु हमारे अध्ययन में इस प्रकार के वर्गीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर लिखी गयी आधुनिक से आधुनिक कृतियाँ भी हर्मन (*Hermann*) की *Staatswirthschaftliche* Untersuchungen के अध्याय 2 पर आधारित है। इसमें आवश्यकताओं का 'पूर्ण तथा सापेक्ष, अधिक महत्वपूर्ण तथा कम महत्वपूर्ण, अत्यावश्यक तथा स्थगित की जा सकने वाली, सकारात्मक तथा नकारात्मक, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, समान्य तथा विशिष्ट, निरन्तर तथा कभी-कभी उत्पन्न होने वाली, स्थायी तथा अस्थायी

साधारण तथा असाधारण, वर्तमान तथा भविष्य से सम्बन्धित, वैयक्तिक तथा सामूहिक सरकारी तथा गैर सरकारी आवश्यकताओं के रूपों से वर्गीकरण किया गया है।'

फ्रांस तथा यूरोप के अन्य देशों में पिछली पीढ़ी तक के अर्थशास्त्र पर लिखे गये अनेक ग्रन्थों में आवश्यकताओं तथा इच्छाओं का थोड़ा बहुत विश्लेषण मिलता है। किन्तु आंग्ल अर्थशास्त्रियों ने इस विज्ञान की एक कड़ी सीमा निर्धारित कर इन पर कोई प्रकाश नहीं डाला। यद्यपि Principles of Morals and Legislation तथा Table of the Spring of Muman Action में इन पर बेन्थम के विशद विश्लेषण का बड़ा प्रभाव पड़ा है, किन्तु यह एक विशेष महत्व का विषय है कि बेन्थम की Manual of Political Economy में इनकी ओर कोई संकेत नहीं है। हर्मन ने बेन्थम का अध्ययन किया था और दूसरी ओर बेन्फील्ड ने (जिन्होंने किसी आंग्ल विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम ऐसे व्याख्यान दिये थे जिन पर जर्मन आर्थिक विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था) हर्मन के प्रति विशेष आभार प्रदर्शित किया था। इंग्लैंड में जेवन्स की आवश्यकताओं के सिद्धान्त पर लिखी हुई अत्युत्तम पुस्तक के लिए स्वयं बेन्थम ने, सीनियर ने (इनकी इस विषय पर दी हुई संक्षिप्त टिप्पणियाँ दूरव्यापी संकेतों से पूर्ण हैं), बेन्फील्ड तथा आस्ट्रेलिया के हर्न (Hearn) ने पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान की थीं। हर्न की Plutolgy या Theory of the Efforts to Satisfy Human Wants बहुत सरल और सारगर्भित है: इसमें उन उपायों के प्रशंसनीय प्रमाण मिलते हैं जिनसे एक विस्तृत विश्लेषण द्वारा युवकों को बहुत ऊँचे स्तर का प्रशिक्षण मिलता है, और यह उनको जीवन की आर्थिक दशाओं से सुन्दर ढंग से परिचित कराती है। इसमें उन अधिक कठिन समस्याओं के जिन पर वे स्वयं स्वतन्त्र रूप से कोई धारणा नहीं बना सके, किसी विशेष समाधान को स्वीकार करने के लिए उन्हें बाध्य नहीं किया गया है। जिस समय जेवन्स की Theory प्रकाशित हुई थी लगभग उसी समय कार्लमेंजर (Carl Menger) ने आस्ट्रियन विचारधारा द्वारा किये गये आवश्यकता तथा तुष्टिगुण के सम्बन्ध में सूक्ष्म और रोचक अध्ययन को अधिक प्रोत्साहन दिया: जैसा कि इस ग्रन्थ के प्राक्कथन में बतलाया गया है वॉन थूनेन (Von Thunen) ने इन पर पहले से ही विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।

अध्याय 3

उपभोक्ताओं की माँग की श्रेणियाँ

उपभोक्ताओं की माँग व्यापारियों की माँग को नियंत्रित करती है।

§1 जब कोई व्यापारी या उत्पादक किसी चीज को उत्पादन मे प्रयोग करने के लिए या दुबारा बेचने के लिए खरीदता है तो उसकी माँग उस वस्तु से प्राप्त होने वाले लाभ की आशा पर निर्भर रहती है। यह लाभ हमेशा सट्टे के जोखिमों पर तथा अन्य कारणो पर निर्भर रहते हैं और इन पर बाद में विचार किया जायेगा। किन्तु दीर्घकाल मे व्यापारी अथवा उत्पादक किसी वस्तु के लिए जो कीमत दे सकते हैं वह इस बात पर निर्भर है कि उपभोक्ता उस वस्तु के लिए अथवा उसकी सहायता से तैयार की गयी वस्तुओ के लिए कितना भुगतान करते है। अत उपभोक्ताओ की माँग ही अन्तिम रूप मे सभी प्रकार की माँगो को नियन्त्रित करती है। इस भाग मे माँग पर ही पूर्णरूप से विचार किया जायेगा।

तुष्टिगुण तथा आवश्यकता एक दूसरे से सम्बन्धित शब्द है और इनका नैतिक अथवा विवेकशील गुणो से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तुष्टिगुण का इच्छाओ अथवा आवश्यकताओ से परस्पर सह-सम्बन्ध समझा जाता है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इच्छाओ को प्रत्यक्ष रूप मे नही मापा जा सकता, किन्तु इन्हे परोक्ष रूप मे बाह्य चीजो से मापा जाता है जो इनके कारण उत्पन्न होते है, और जिन विषयो मे अर्थशास्त्र मुख्यतया सम्बन्धित है उनमे यह माप उस कीमत द्वारा व्यक्त होती है जिसे एक व्यक्ति अपनी इच्छा की पूर्ति अथवा सतुष्टि के लिए देने को तैयार रहता है। उसकी अनेक इच्छाएँ एव कामनाएं ऐसी हो सकती है जिनकी पूर्ति के लिए वह जानबूझ कर विशेष प्रयत्न नही करता : किन्तु यहाँ पर अभी मुख्यतया उन इच्छाओ और कामनाओ पर विचार किया जायेगा जिनको सतुष्ट करने के लिए वह प्रयत्नशील रहता है। यहाँ यह मान लिया गया है कि इन इच्छाओ अथवा कामनाओ की सतुष्टि से मिलने वाला सन्तोष समानरूप मे उस सन्तोष के बराबर होगा जिसकी उस वस्तु को खरीदते समय आशा की गई थी।[1]

---

1 इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि इच्छाओ अथवा इनकी संतुष्टि से मिलने वाले सन्तोष को प्रत्यक्ष रूप में या स्वयं मापना यदि अचिन्तनीय न भी है तो असम्भव अवश्य है। यदि इनको मापा जा सकता है तो इनके लिए दो लेखे रखने होंगे, एक इच्छाओ को मापने के लिए और दूसरा इनसे मिलने वाले सन्तोष को मापन के लिए। यह भी हो सकता है कि इन दोनों में बहुत अन्तर हो क्योकि ऊँची-ऊँची कल्पनाओं को चाहे छोड़ भी दें, परन्तु अर्थशास्त्र में मुख्यतया जिन इच्छाओं पर विचार किया जाता है वे, और विशेषकर प्रतिस्पर्धापूर्ण इच्छाएँ, मनोवेग पर निर्भर रहती हैं। बहुत सी इच्छाएं तो केवल आदतो के कारण उत्पन्न होती हैं, कुछ तो बिलकुल विकृत होती हैं और इनसे अपकार ही होता है, और बहुत सी इच्छाएँ ऐसी आशाओ पर आधारित होती हैं जो कभी भी पूर्ण नहीं हो पातीं। (भाग 1 के अध्याय 2 के 3, 4 अनुभागों को देखिए।) निस्सन्देह अनेक प्रकार के सन्तोष सामान्य सुखों की भांति नहीं होते, किन्तु इनसे मनुष्य के उत्तम

आवश्यकताएँ विविध प्रकार की होती है। किन्तु प्रत्येक आवश्यकता की सीमा होती है। मनुष्य के स्वभाव की इस परिचित तथा आधारभूत प्रवृत्ति को सन्तुष्ट की जा सकने वाली आवश्यकताओं अथवा तुष्टिगुण–ह्रास नियम द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है : किसी वस्तु से किसी व्यक्ति को मिलने वाली कुल तुष्टिगुण (अर्थात् उनसे प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण आनन्द अथवा अन्य प्रकार का लाभ) उस वस्तु की मात्रा मे वृद्धि होने के साथ-साथ बढ़ता जाता है, किन्तु इस वृद्धि की गति उस वस्तु की मात्रा मे होने वाली वृद्धि से कम होती है। यदि उसके भण्डार मे समान मात्रा में वृद्धि हो तो उससे प्राप्त होने वाला लाभ अपेक्षाकृत घटती हुई दर पर होगा। दूसरे शब्दो मे, एक मनुष्य के पास किसी वस्तु की जितनी मात्रा हो उसमे निश्चित वृद्धि के फलस्वरूप उस व्यक्ति को जो अतिरिक्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है वह उसकी मात्रा मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ कम होता जाता है।

संतुष्ट की जा सकने वाली आवश्यकताओं का अथवा तुष्टिगुण ह्रास नियम।

कुल तुष्टिगुण

किसी वस्तु का केवल वह भाग जिसे एक व्यक्ति खरीदने के लिए प्रलोभित होता है उसका **सीमान्त क्रय** कहलाता है, क्योंकि उसे सन्देह है कि उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उतना व्यय करना उसके हित मे है या नही। इस **सीमान्त क्रय** से मिलने वाला तुष्टिगुण उसके लिए उस वस्तु का **सीमान्त तुष्टिगुण** कहलाता है। यदि वह उस वस्तु को खरीदने की अपेक्षा स्वयं ही उसे बनाये तो उसका सीमान्त तुष्टिगुण उस भाग के तुष्टिगुण के बराबर होगा जिसे वह बनाने योग्य समझता है। इस नियम को तब इस प्रकार परिभाषित किया जायेगा —किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु की जितनी मात्रा होती है उसमे ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है उस व्यक्ति के लिए उसका सीमान्त तुष्टिगुण क्रमशः घटता जाता है।[1]

सीमान्त क्रय।

स्वभाव का विकास होता है या ये 'परमानन्द' से सम्बन्धित होते है, और कुछ आंशिक रूप में आत्मोत्सर्ग से भी उत्पन्न होते हैं। (भाग 1 अध्याय 2, अनुभाग 1 देखिए।) इस प्रकार ये दोनों अनुमान भिन्न-भिन्न हो सकते है। किन्तु इन दोनों में से कोई भी सम्भव नहीं है, अतः अर्थशास्त्र के ही प्रयोजनों अथवा क्रियाशील बनाने वाली शक्तियों को मापने के ढंगों का सहारा लिया गया है; और इसकी कमियों के बावजूद भी हम इच्छाओं (जो आर्थिक प्रयत्नों के लिए प्रेरित करती हैं) तथा आर्थिक प्रयत्नों से होने वाली सन्तुष्टि को इससे ही मापने का प्रयत्न करते हैं। (प्रो० पीगू (Pigou) के मार्च 1903 के Economic Journal में दिये गये 'Some remarks on Utility' से इसकी तुलना कीजिए।)

[1] इस ग्रन्थ के अन्त में गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 1 को देखिए। इस नियम का भूमि के 'क्रमागत उत्पत्ति-ह्रास' नियम से अधिक महत्व है, भले ही अर्द्धगणितीय रूप में उत्पत्ति ह्रास-नियम पर सर्वप्रथम कड़ा विश्लेषण होने के समय की दृष्टि से इस पर सबसे पहले विचार किया गया था। इस पूर्व-विचार के कारण यदि इसमें से कुछ शब्दों को हम तुष्टिगुण ह्रास-नियम में अपना लें तो यह कह सकते हैं कि किसी वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त मात्रा के उपभोग से जो आनन्द प्राप्त होता है वह

यहाँ यह मान लिया गया है कि उस वस्तु के प्रति उपभोक्ता के दृष्टि-कोण में इस अवधि में कोई परि-वर्तन नहीं होता है।

इस नियम मे एक शर्त निहित है जिसे यहाँ पर स्पष्ट करना उचित होगा; शर्त यह है कि हम यह मान लेते हैं कि मनुष्य के दृष्टिकोण और उसके स्वाद मे परि-वर्तन होने के लिए समय का कुछ भी अन्तर नही रखा जाता। अत. निम्न बातें जैसे कि एक व्यक्ति जितने अच्छे गाने को सुनता है उसकी उसको और अधिक सुनने की भावना तीव्र होती जाती है। लालच और महत्वाकाक्षा को अधिकाशतः सतुष्ट नही किया जा सकता; अथवा स्वच्छ रहने का गुण तथा नशीले पेयों की बुरी आदते एक बार सतुष्ट की जाने पर फिर स्वतः ही बढने लगती हैं, इस नियम के अपवाद नही है। इन सब विषयों मे हमारा पर्यवेक्षण एक निश्चित समय से सम्बन्धित रहता है और इसमे मनुष्य का स्वभाव जो प्रारम्भ मे था, अन्त तक वही नही रहता। यदि हम मनुष्य को जैसा वह है उसी रूप मे समझे, और उसके स्वभाव मे परिवर्तन के लिए समयान्तर न रखें तो जिस किसी वस्तु का वह उपभोग कर रहा हो उसकी हर बढी हुई इकाई से जो तुष्टिगुण मिलेगा वह क्रमश घटता जाता है।[1]

घटता जाता है, और अन्त में एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब उस वस्तु की अधिक 'मात्रा' को ग्रहण करने से कोई प्रतिफल नहीं मिलता।

सीमान्त तुष्टिगुण' शब्द का इस प्रसंग में सर्वप्रथम आस्ट्रियन विचारधारा के वीजर ने प्रयोग किया था। प्रो॰ विक्स्टीड (Wicksteed) ने भी इसको अप-नाया था। यह शब्द जेवन्स द्वारा प्रयोग किये गये 'अन्तिम' शब्द के ही अनुरूप है और और इसके लिए वीजर ने अपने प्राक्कथन में (आंग्ल संस्करण के 23 पृष्ठ पर) जेवन्स के प्रति आभार प्रदर्शित किया है। उसके सिद्धान्त के पूर्व विचारकों की सूची में गोसें (Gossen), 1854 का सर्वप्रथम नाम है।

यद्यपि यह बात अधिक महत्व की नहीं है तथापि यह ध्यान रहे कि यदि किसी वस्तु की थोड़ी सी मात्रा से किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति न की जा सके और उस वस्तु का उपभोक्ता वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उस वस्तु की और अधिक मात्रा प्राप्त करें तो उसे अनुपात से अधिक आनन्द मिलेगा। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति के कमरे की सभी दीवारों को मढ़ने के लिए 10 की अपेक्षा 12 दीवारी कागजों की आवश्यकता हो तो उस व्यक्ति को इसके 12 तावों की अपेक्षा 10 तावों से कम सन्तोष होगा। इसी भाँति बहुत थोड़े सह-संगीत, या अवकाश से इच्छित मन बहलाव तथा मनोरंजन नहीं होता। यदि इन चीजों के लिए दुगुना समय मिले तो इनसे पहले मिलने वाले आनन्द के दुगुने से भी अधिक आनन्द मिल सकता है। यह विषय जिस पर हम क्रमागत उत्पत्ति-ह्रास नियम की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में विचार करेंगे, इस तथ्य के ही अनुरूप है कि यदि किसी भूमि की सम्पूर्ण शक्तियों के विकास के लिए उस पर लगायी हुई पूंजी तथा श्रम अपर्याप्त हों, तो उस पर कृषि करने के प्रचलित ढंगों से ही अधिक लागत लगाने पर अनुपात से अधिक उत्पादन होगा। कृषि के प्रचलित ढंगों में सुधार से इस प्रवृत्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अतः तुष्टिगुण ह्रास-नियम के सम्बन्ध से जिन मान्यताओं को हमने अपनाया है उन्हें यहाँ भी समानरूप से स्वीकार करना होगा।

§2. अब सीमान्त तुष्टिगुण ह्रास नियम की व्याख्या कीमत के रूप में की जायेगी। उदाहरण के लिए चाय को लीजिए जिसकी माँग निरन्तर रहती है और जो थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खरीदी जा सकती है। यहाँ यह मान लें कि एक विशेष प्रकार की चाय 2 शिलिंग प्रति पौंड के भाव से मिलती है। एक व्यक्ति चाय पीने से वंचित रहने की अपेक्षा 1 पौंड चाय के लिए साल में एक बार 20 शि० देना चाहे, और यदि उसे चाय मनचाही मात्रा में मुफ्त मिल सकती है तो सम्भवतः वह साल में 30 पौ० से अधिक चाय नहीं पियेगा, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वह सम्भवतः 10 पौ० प्रति वर्ष खरीदता है। इसका अर्थ यह हुआ कि 9 पौं० की अपेक्षा 10 पौ० चाय खरीदकर पीने से उसे जो अधिक सन्तोष होता है उसके लिए वह केवल 2 शि० देने को तयार है। चाय के ग्यारहवें पौंड को वह इसलिए नहीं खरीदता है कि उससे मिलने वाला तुष्टिगुण इसके लिए 2 शि० के अतिरिक्त भुगतान के बराबर नहीं होता अर्थात् 2 शि० प्रति पौंड के भाव से चाय की अन्तिम या सीमान्त मात्रा की खरीद से उसको मिलने वाला तुष्टिगुण मापा जाता है। यदि चाय के किसी पौंड के लिए दी जाने वाली कीमत को हम **माँग कीमत** कहें तो 2 शि० उसकी **सीमान्त माँग कीमत** होगी। और इस नियम की निम्न परिभाषा होगी:—

कीमत के रूप में नियम की व्याख्या।

सीमान्त माँग कीमत

एक मनुष्य के पास किसी वस्तु की मात्रा जितनी अधिक होती जाती है, अन्य बातों के समान रहने पर (अर्थात् द्रव्य की क्रय-शक्ति तथा उसके पास इसकी मात्रा पूर्ववत् रहने पर), वह इनकी अतिरिक्त इकाइयों को प्राप्त करने के लिए उतनी ही कम कीमत देता है, अथवा दूसरे शब्दों मे, इस वस्तु के लिए उसकी सीमान्त माँग कीमत कम होती जाती है।

उसकी माँग तभी **प्रभावशाली** होगी जबकि जिस दाम पर वह किसी चीज को खरीदना चाहता है उस पर लोग उसे बेचने के लिए तत्पर हों।

इस अन्तिम वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता मे या उसकी सामान्य क्रय-शक्ति मे होने वाले परिवर्तनों को अभी तक ध्यान में नहीं रखा गया है। मनुष्य के भौतिक साधनों मे एक ही समय मे अन्तर न होने से उसके लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता निश्चित होती है जिससे दो वस्तुओं के लिए जो वह देना चाहता है उनका आपस मे अनुपात वही हो जो उन दोनों वस्तुओं से प्राप्त होने वाले तुष्टिगुणों में होगा।

§3. एक धनवान व्यक्ति की अपेक्षा एक निर्धन व्यक्ति किसी चीज को खरीदने के लिए तभी प्रेरित होगा जब उससे अधिक तुष्टिगुण मिलता हो। एक क्लर्क जिसे 100 पौं० सालाना मिलता है, उस क्लर्क की अपेक्षा जिसे 300 पौंड सालाना मिलता है, बड़ी तेज वर्षा में भी काम करने के लिए बाहर निकल जाता है।[1] यद्यपि एक निर्धन मनुष्य एक धनवान व्यक्ति की अपेक्षा अपने मन मे 2 पेंस से अधिक तुष्टिगुण मिलने या प्राप्त होने का हिसाब लगाता है तब भी यदि अमीर साल मे 100 बार घुड़सवारी करता है और गरीब 20 ही बार करता है और यदि अमीर 2 पौं० के बराबर

निर्धन लोगों के लिए द्रव्य का सीमान्त तुष्टिगुण अमीरों की अपेक्षा

1 भाग 1, अध्याय 2, अनुभाग 2 देखिए।

अधिक होता है। तुष्टिगुण मिलने से सौवी बार घुड़सवारी करने को प्रेरित हो तो गरीब आदमी बीसवीं बार ही घुड़सवारी तब करेगा जब उसे 2 पैंस के बराबर तुष्टिगुण मिले। इन दोनों व्यक्तियों के सीमान्त तुष्टिगुण को 2 पैंस में मापा गया है किन्तु धनवान की अपेक्षा निर्धन का सीमान्त तुष्टिगुण अधिक है।

दूसरे शब्दों में, ज्यों-ज्यों एक व्यक्ति अधिक धनी होता जाता है त्यों-त्यों उसके लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है। उसके साधनों में प्रत्येक वृद्धि के फलस्वरूप वह किसी निश्चित लाभ से प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक कीमत देने को प्रस्तुत होता है। और इसी प्रकार उसके साधनों मे हर कमी के साथ-साथ उसके लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है, और वह किसी लाभ के लिए जो कीमत देने को प्रस्तुत रहता है वह कम होती जाती है।[1]

किसी व्यक्ति की माँग की अधिक निश्चित व्याख्या। §4. किसी व्यक्ति की माँग के विषय मे पूर्वज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पता लगाना होगा कि एक व्यक्ति विभिन्न कीमतो पर उस वस्तु की कितनी मात्रा खरीदना चाहेगा। दृष्टान्त के रूप मे, उसकी चाय की माँग को निर्धारित करने वाली परिस्थितियों को कीमतों की एक ऐसी सूची से अर्थात् चाय की अलग-अलग मात्राओं के लिए उनकी विभिन्न माँग कीमतों से अभिव्यक्त किया जा सकता है जिनका भुगतान करने को वह तत्पर है। (इस प्रकार की सूची को **माँग की सारणी** कहा जाता है)।

इस प्रकार किसी व्यक्ति की चाय की माँग-सारणी इस प्रकार हो सकती है:—

50 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 6 पौंड चाय खरीदेगा,
40 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 7 पौंड चाय खरीदेगा,
33 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 8 पौंड चाय खरीदेगा,
28 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 9 पौंड चाय खरीदेगा,
24 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 10 पौंड चाय खरीदेगा,
21 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 11 पौंड चाय खरीदेगा,
19 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 12 पौंड चाय खरीदेगा,
17 पैंस प्रति पौंड कीमत पर वह 13 पौंड चाय खरीदेगा,

माँग में वृद्धि का अर्थ। यदि इनके बीच की विभिन्न मात्राओं के लिए इसी प्रकार के दाम दिये हुए हों तो उस व्यक्ति की माँग का पूर्ण विवरण ज्ञात हो जायेगा।[2] हम एक व्यक्ति की वस्तु के लिए माँग को उसके द्वारा क्रय की जाने वाली उस वस्तु की मात्रा से अथवा उसकी उस वस्तु को क्रय करने की आतुरता के द्वारा स्पष्ट नहीं कर सकते जब तक इस बात का पता न हो कि वह किस भाव पर उस वस्तु की एक निश्चित मात्रा को

---

1 गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 2 देखिए।

2 इस प्रकार की माँग की सारणी को एक रेखा द्वारा जिसे 'माग वक्र' कहते हैं प्रदर्शित किया जा सकता है, और अब इसका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मान लीजिए कि ख ग और क ख दो रेखाएँ क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर खींची गयी हैं। ख ग रेखा पर एक इंच में 10 पौं० चाय की मात्रा प्रदर्शित की गयी है, और क ख रेखा पर एक इंच में 40 पैं० कीमत प्रदर्शित की गयी है।

या इससे अधिक मात्रा को खरीद लेना चाहता है। इसे कीमतों की उस सूची से स्पष्ट रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है जिन पर वह किसी वस्तु की विभिन्न मात्रा को खरीदना चाहता है।[1]

एक इंच के दसवें भाग			एक इंच के चालीसवें भाग	
ख $मा_1$ =	6	मानकर	$मा_1$ $प_1$ = 50	खींचिए
ख $मा_2$ =	7	मानकर	$मा_2$ $प_2$ = 40	खींचिए
ख $मा_3$ =	8	मानकर	$मा_3$ $प_3$ = 33	खींचिए
ख $मा_4$ =	9	मानकर	$मा_4$ $प_4$ = 28	खींचिए
ख $मा_5$ =	10	मानकर	$मा_5$ $प_5$ = 24	खींचिए
ख $मा_6$ =	11	मानकर	$मा_6$ $प_6$ = 21	खींचिए
ख $मा_7$ =	12	मानकर	$मा_7$ $प_7$ = 19	खींचिए
ख $मा_8$ =	13	मानकर	$मा_8$ $प_8$ = 17	खींचिए
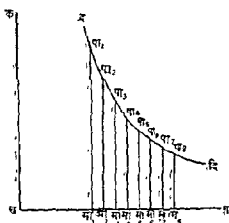
रेखाचित्र 1

$मा_1$ को ख ग रेखा पर स्थिति मानकर इस पर $मा_1$ $पा_1$ लम्ब खींचें और ऐसा शेष दशाओं में भी करें। अब उस व्यक्ति को चाय की माँग रेखा पर $पा_1$, $पा_2$ ···$पा_8$ बिन्दु या 'माँग' बिन्दु होंगे। यदि चाय की सभी सम्भव मात्राओं को इन माँग बिन्दुओं से प्रदर्शित किया जाय तो चित्र में दिखायी गयी द दि रेखा बनेगी। माँग की सारणी और रेखा का उक्त वर्णन अस्थायी है। इस सम्बध में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उन पर यहाँ की अपेक्षा अध्याय 5 में विचार किया गया है।

1 मिल के कथनानुसार 'माँग से अभिप्राय माँग की गयी मात्रा से होता है और यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह मात्रा सदैव एक ही नहीं रहती अपितु सामान्यतया मूल्य में परिवर्तन के साथ-साथ इसमें भी परिवर्तन होते हैं।' (Principles, III, II, 4) सार रूप में उक्त निरूपण वैज्ञानिक है किन्तु स्पष्ट रूप में

जब यह कहा जाता है कि किसी वस्तु के लिए एक व्यक्ति की माँग बढ़ गयी है तो इसका यह अभिप्राय है कि वह उसी कीमत पर पहले की अपेक्षा उसे अधिक खरीदेगा और इससे अधिक कीमत पर उतना ही खरीदेगा जितना पहिले खरीदता था। उसकी मांग में सामान्य वृद्धि के फलस्वरूप वह प्रचलित कीमत पर न केवल उस वस्तु की और अधिक मात्रा खरीदने को तत्पर होगा किन्तु

व्यक्त नहीं किये जाने के कारण इसका गलत अर्थ लगाया गया है। कैरनेस के अनुसार 'मांग से अभिप्राय उन वस्तुओं तथा सेवाओं की इच्छा से है जिसकी संतुष्टि के लिए वे सामान्य क्रय-शक्ति का भुगतान करते हैं और संभरण का अर्थ सामान्य क्रय-शक्ति को प्राप्त करने के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रदान करने से है।' उन्होंने मांग की उक्त परिभाषा इसलिए दी है कि वे मांग और संभरण में एक अनुपात या समानता स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु दो व्यक्तियों से सम्बन्धित दो प्रकार की इच्छाओं की प्रत्यक्ष रूप में तुलना नहीं की जा सकती, इनके मापों की तुलना तो की जा सकती है, किन्तु इन इच्छाओं की नहीं। वास्तव में कैरनेस स्वयं यह कहने को बाध्य हो जाते हैं कि संभरण 'बिक्री के लिए प्रदर्शित की गयी विशेष वस्तुओं की मात्राओं से, और मांग उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत की गयी क्रय-शक्ति की मात्रा से मापित की जाती है।' किन्तु विक्रेताओं के पास बिना किसी शर्त के प्रचलित कीमत पर बिक्री के लिए विभिन्न वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा नहीं होती। क्रेताओं के पास भी चाहे वे उन वस्तुओं के लिए कितना ही अधिक भुगतान क्यों न करें क्रय-शक्ति की एक निश्चित मात्रा नहीं होती जिसे वे कुछ विशेष वस्तुओं पर खर्च करने को तैयार रहते हैं। कैरनेस के विचारों से समता स्थापित करने के लिए इन दोनों दशाओं में क्रय-शक्ति की मात्रा तथा कीमतों के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करना चाहिए, और यदि ऐसा किया जाय तो इससे मिल द्वारा अपनायी गयी रीतियों का स्मरण होता है। उनका यह कथन है कि 'मिल ने मांग की जो परिभाषा दी है उससे अभिप्राय क्रय-शक्ति की उस मात्रा से नहीं होता (जैसा कि मेरी परिभाषा के अनुसार यह आवश्यक है) जिसे वस्तुओं की इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है, इससे तो अभिप्राय वस्तुओं की उस मात्रा से है जिसके लिए क्रय-शक्ति का भुगतान किया जाता है।' यह सत्य है कि 'मैं 12 अंडे खरीदूंगा' तथा 'मैं 1 शि० के बराबर उपयोगी अंडे खरीदूंगा', इन दोनों कथनों में बड़ा अन्तर है, किन्तु 'मैं 1 पें० प्रति अंडे की दर से 12 अंडे खरीदूंगा' तथा $1\frac{1}{2}$ पें० की दर पर केवल 6 अंडे खरीदूंगा', तथा 1 पें० प्रति अंडे की दर पर मैं अंडों पर 1 शि० खर्च करूंगा, किन्तु यदि इनकी कीमत $\frac{3}{4}$ पें० प्रति अंडा हो तो मैं उन पर 9 पेंस खर्च करूंगा', इन कथनों वाक्यों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। अतः कैरनेस का कथन पूर्ण होने पर भी सार रूप में मिल के विचारों की तरह हैं। किन्तु इसका वर्तमान रूप अधिक भ्रमजनक है। अप्रैल 1876 के Fortnightly Review में वर्तमान लेखक के द्वारा मिल की Theory of Value पर लिखे गये लेख को देखिए।

माँग की सारणी में दी गयी विभिन्न कीमतों से अधिक कीमत पर भी वह उनको खरीदेगा।[1]

§5. अभी तक एक व्यक्ति की माँग पर विचार किया गया है। किसी व्यक्ति की चाय की भाँति किसी अन्य विशेष वस्तु की माँग सारे बाजार की सामान्य माँग का पर्याप्त रूप से प्रतिरूप है क्योंकि चाय की निरन्तर माँग रहती है और इसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खरीदने की सुविधा होने के कारण इसकी कीमत में परिवर्तन का क्रय की जाने वाली मात्रा पर भी प्रभाव पड़ता है। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनका निरन्तर प्रयोग होता है, और इनकी कीमतों में बारबार थोड़ी-थोड़ी वृद्धि के फलस्वरूप इनकी माँग में तदनुसार निरन्तर परिवर्तन नहीं होते किन्तु कुछ समय के पश्चात् इनमें एक साथ बड़ी मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के रूप में टोपों या घड़ियों की कीमत में थोड़ी-सी कमी के कारण प्रत्येक के दृष्टिकोण में अन्तर नहीं आ जायगा। इससे केवल उन्हीं लोगों को इन्हें खरीदने का प्रलोभन होगा जो इस असमंजस में पड़े थे कि नया टोप, या नयी घड़ी खरीदी जाय अथवा नहीं।

किसी वर्ग विशेष अथवा बाजार की माँग पर विचार।

कुछ वस्तुओं के लिए एक व्यक्ति की माँग अस्थिर तथा अनियमित होती है। विवाह के लिए आवश्यक केक, अथवा कुशल सर्जन की सेवाओं की व्यक्तिगत माँग-सूची नहीं बनायी जा सकती। किन्तु अर्थशास्त्रीं का मनुष्य के जीवन की कुछ विशेष घटनाओं से बहुत कम सम्बन्ध है। वह तो 'उन कार्यों का अध्ययन करता है जिनकी औद्योगिक वर्ग के सदस्य से कुछ विशेष परिस्थितियों में आशा की जाती है।' किन्तु इसमें उनके सभी कार्य सम्मिलित न होकर केवल वे कार्य शामिल हैं जिनके प्रयोजन को द्रव्य द्वारा मापा जा सकता है। इन व्यापक परिणामों में व्यक्तिगत कार्यों की विविधता एवं अनिश्चितता का अलग से आभास नहीं हो पाता क्योंकि वे अनेक मनुष्यों के अपेक्षाकृत सम्मिलित रूप में नियमित कार्यों में अन्तर्निहित हो जाते हैं।

कुछ वस्तुओं के लिए एक व्यक्ति की निरन्तर माँग नहीं रहती।

अतः बड़े-बड़े बाजारों में जहाँ धनी, निर्धन, वृद्ध, युवा, पुरुष, स्त्रियाँ तथा विभिन्न प्रकार की रुचि, स्वभाव तथा धंधों में लगे व्यक्ति आपस में साथ-साथ रहते हैं वहाँ यदि कुल माँग को नियमित रूप से विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जाय तो आवश्यकताओं की व्यक्तिगत विशेषताएँ स्वयं ही इस अन्तर को दूर कर देता है। यदि अन्य सब बातें यथावत् रहें तो सामान्य प्रयोग में आने वाली किसी वस्तु के मूल्य में थोड़ी सी कमी होने के फलस्वरूप उस वस्तु की अधिक मात्रा क्रय की जायगी। यह निष्कर्ष वैसा ही है जैसा कि पतझड़ में खराब मौसम होने के कारण एक शहर में एक ओर तो अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हो किन्तु बहुतों पर इसका तनिक भी प्रभाव न पड़े। अतः यदि हमें आवश्यक ज्ञान हो तो कीमतों की एक ऐसी सूची तैयार की जा सकती है

यदि अनेक व्यक्तियों की कुल माँग को दृष्टि में रखा जाय तो किसी वस्तु की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उस वस्तु

1 कभी-कभी यह कहना अधिक सुविधाजनक होता है कि इससे उसकी माँग की सारणी ऊपर उठ जाती है। रेखागणित द्वारा उसकी माँग की रेखा को उठाने से या इसके रूप में कुछ सुधार करके इस रेखा को दाहिनी ओर बढ़ाने से इस वृद्धि को प्रदर्शित किया जाता है।

की माँग कीमत घटती जायेगी।

जिसके आधार पर यह बताया जा सकता है कि किसी स्थान पर किसी वर्ष में किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं को खरीदने के लिए कितने क्रेता मिल सकते है।

दृष्टान्त के रूप मे किसी स्थान पर चाय की कुल माँग वहाँ रहने वालो की इसकी कुल माँग के बराबर होगी। हम जिस उपभोक्ता की माँग पर नीचे विचार कर रहे है उसकी अपेक्षा कुछ लोग अधिक धनी और कुछ अधिक निर्धन होगे। कुछ लोग चाय को अधिक, और कुछ कम पसन्द करते होगें। यदि यह मान लिया जाय कि उस स्थान पर चाय खरीदने वाले 10 लाख व्यक्ति है और उनका विभिन्न दामो पर चाय का औसत उपभोग उस व्यक्ति की भाँति है तो उस स्थान पर 1 पौ॰ चाय के स्थान पर 10 लाख पौंड चाय पर विचार करने पर भी उसकी माँग को कीमतों की पहले की सूची से ही अभिव्यक्त किया जायेगा।[1]

माँग का नियम

अत: माँग का यह सामान्य नियम है कि विक्रय की जाने वाली वस्तु की जितनी ही अधिक मात्रा होगी उतनी ही उसकी कीमत कम होनी चाहिए जिससे कि इन्हे खरीदने के लिए लोग तैयार हो, या दूसरे शब्दो मे कीमत मे कमी होने के कारण उस वस्तु की माग बढ़ जाती है और कीमत मे वृद्धि के कारण यह कम हो जाती है। कीमत मे कमी और माग मे वृद्धि का कोई समान सम्बन्ध नहीं है। कीमत मे दसवे हिस्से के बराबर कमी होने से बिक्री मे बीसवे या एक चौथाई हिस्से के बराबर वृद्धि हो सकती है, या यह भी हो सकता है कि बिक्री दुगुनी हो जाय। किन्तु माँग की सारणी के बायी और के कालमो की सख्याएँ हमेशा घटेगी।[2]

---

1 पहले चित्र मे प्रदर्शित की गयी माँग रेखा की भांति यहाँ भी माँग को उसी रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है। अन्तर केवल इतना ही है कि ख ग रेखा पर 1 इंच का माप 10 पौं॰ को निरूपित न कर 1 करोड़ पौं॰ को निरूपित करता है। अब किसी वस्तु की बाजार मे माग रेखा की इस प्रकार औपचारिक परिभाषा दी जा सकती है—किसी निश्चित समय में किसी वस्तु की एक बाजार में रेखा इसके माँग बिन्दुओ का बिन्दुपथ है, अर्थात् इस रेखा पर यदि किसी प बिन्दु से प म रेखा को ख ग रेखा पर लम्बवत खीचा जाय तो प म उस कीमत को निश्चित करेगी जिस पर ख म द्वारा प्रदर्शित की गयी वस्तु की मात्रा को खरीदने के लिए क्रेता रहेंगे।
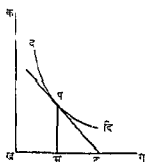
रेखाचित्र 2

2 इस रेखा पर यदि कोई बिन्दु क ख रेखा से दूर होता जाय तो धीरे-धीरे रेख ग खा तक पहुँच जायेगा। अतः यदि द दि रेखा को प बिन्दु पर और ख ग रेखा को ट बिन्दु पर छूती हुई एक सीधी रेखा प ट खीची जाय तो प ट ग अधिकोण बनेगा। इस तथ्य को व्यक्त करने का कोई संक्षिप्त रूप ढूंढ़ निकाला जाय तो वह अधिक लाभप्रद होगा। यदि यह कहा जाय कि प ट रेखा का रूप

किसी वस्तु की कीमत उसके क्रेताओं के व्यक्तिगत रूप में सीमान्त तुष्टिगुण को मापती है। यह नहीं कहा जा सकता है कि सामान्य रूप मे कीमत वस्तुओ के सीमान्त तुष्टिगुण को मापती है क्योंकि विभिन्न लोगो की आवश्यकताएँ और परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है।

किसी प्रतिस्पर्द्धा करने वाली वस्तु के उत्पादन का माँग पर प्रभाव।

§6. किसी दिये हुए समय मे और किन्ही दी हुई परिस्थितियो मे माँग कीमते वे है जिन पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओ को बाजार मे बेचा जा सकता है। यदि इन परिस्थितियों मे किसी भी रूप मे कोई अन्तर आ जाय तो सम्भवतया कीमतों में भी आवश्यक रूप मे परिवर्तन होगा, और जब कभी रीति-रिवाजो के परिवर्तन से, या किसी प्रतिस्पर्द्धा करने वाली वस्तु की पूर्ति अधिक हो जाने से या नयी वस्तुओं की खोज हो जाने से, किसी वस्तु की भौतिक रूप मे माँग बदल जाती है तो इस प्रकार का परिवर्तन निरन्तर करना पड़ता है। उदाहरण के रूप मे चाय के लिए माँग कीमतो की सूची इस मान्यता पर बनायी जाती हे कि काफी के दाम ज्ञात हैं, किन्तु काफी की फसल खराब हो जाने से चाय के दाम बढ जायेंगे। जिस प्रकार बिजली से प्रकाश करने के ढगो मे सुधार हो जाने से यह अवश्यम्भावी हो जाता है कि गैस की माँग कम हो जाय, उसी प्रकार एक विशेष प्रकार की चाय की कीमत में कमी होने से यह हो सकता है कि इससे घटिया किस्म की, किन्तु सस्ती चाय के बदले मे लोग इसका प्रयोग करने लगे।[1]

ऋणात्मक है तो उक्त लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है। अतः माँग रेखा इस सार्वभौमिक नियम की पुष्टि करती है कि अपने सम्पूर्ण विस्तार में इसकी प्रवृत्ति ऋणात्मक होती है।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि 'माँग का नियम' सट्टेबाजों के दो वर्गों के माँग सम्बन्धी आन्दोलन पर घटित नहीं होता। इनका एक वर्ग यदि बाजार से किसी वस्तु की मात्रा को घटाना चाहता है तो वह स्वयं खुले आम इनकी कुछ मात्रा खरीदने लगता है और जब वह किसी वस्तु की कीमत को बढ़ाने में सफल हो जाता है तो वह छिपे-छिपे अनजान लोगों के माध्यम से वस्तु की एक बड़ी मात्रा को बेचने का प्रबन्ध करता है। प्रो० टॉसिग (Taussig) द्वारा मई 1921 के Quarterly Journal of Economics के 402 पृष्ठ पर लिखे गये लेख को देखिए।

1 यह सम्भव न होते हुए भी विचारणीय है कि सभी प्रकार की चाय की कीमतो में कुछ अनुपात में एक साथ कमी होने से चाय की कुछ किस्मों की माँग कम हो जायेगी। जो लोग चाय के अधिक सस्ती होने पर पहले से अच्छी किस्म की चाय खरीदते हे उनकी संख्या उन लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है जो पहले से घटिया किस्म की चाय के बदले में इस चाय का अधिक प्रयोग करेंगे। विभिन्न वस्तुओं के बीच विभेद की समस्या का उस विशेष प्रसंग से होने वाली सुविधा के अनुसार निराकरण करना चाहिए। भारतीय तथा चीनी चायों को, या सौचांग (Souchong) तथा पीको (Pekoe) चायों को कुछ दृष्टियों से अलग-अलग समझना श्रेयस्कर है। उनमें से प्रत्येक की माँग की सारणी अलग-अलग होनी चाहिए। उन वस्तुओ जिनमें बहुत थोड़ा ही भेद हो, जैसे कि गो मांस तथा भेड़ का मांस, चाय तथा काफी,

अगले अध्याय का पिछले अध्याय से सम्बन्ध।

इसके पश्चात् हम उन महत्वपूर्ण वस्तुओं की माँग की सामान्य विशेषताओं के विषय में विचार करेंगे जो तुरन्त उपभोग के लिए उपलब्ध हैं। अतः आवश्यकताओं की विभिन्नता तथा उनको संतुष्ट करने की क्षमता पर पिछले अध्ययन को हम जारी रखेंगे। किन्तु अब हम इस बात पर वस्तुतः अलग ही दृष्टिकोण से, अर्थात् कीमत अंकों (Price Statistics) की दृष्टि से विचार करेंगे।[1]

उन्हें यद्यपि कुछ दृष्टिकोणों से एक साथ मिलाना सबसे अच्छा है, किन्तु ऐसी दशाओं में एक ऐसी परिपाटी अपनानी चाहिए जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि एक पौं० काफी, चाय के कितने औंसों के बराबर होती है।

इसके अतिरिक्त किसी वस्तु की एक बार में अनेक प्रयोगों के लिए माँग की जा सकती है, जैसे चमड़े के जूते तथा पोर्ट मेंटो (चमड़े के थैले) बनाने के लिए 'संयुक्त माँग' हो सकती है। एक वस्तु की माँग वहाँ पर उन अन्य वस्तुओं की पूर्ति पर निर्भर है जिनके बिना इस वस्तु से कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा सकता। दृष्टान्त के रूप में रुई और रुई कातने वालों के लिए 'संयुक्त माँग' होगी। यही नहीं जो व्यापारी वस्तुओं को पुनः बेचने के लिए पुनः खरीदते हैं उनकी माँग यद्यपि इनके अन्तिम उपभोक्ताओं की माँग से गुप्त रूप से संचालित होती है तथापि इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। इन सब पर बाद में विचार करना सर्वोत्तम होगा।

1 किसी वस्तु की मात्रा में किंचित वृद्धि का इनके लिए दी गयी कुल कीमत में किंचित वृद्धि से सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए साधारणतया अर्द्ध गणितीय भाषा का प्रयोग करने तथा इस धारणा के फलस्वरूप कि कीमतों में होने वाली थोड़ी-थोड़ी वृद्धि से आनन्द में होने वाली वृद्धि को मापा जाता है, आर्थिक विचारों की परिपाटी में इस पीढ़ी में बहुत परिवर्तन हो गये हैं। इन दोनों में पहला विषय अधिक महत्वपूर्ण है और इस ओर कुर्नो ने (Recherches sur les Principes Mathematiques de la Theorie des Richesses, 1838) सर्वप्रथम कदम उठाये थे। दूसरे विषय पर डुपिट (De la Mesure d'utilite des travaux Publics) तथा गोसें (Entwickelung der Gesetze des menschlichen Verkehrs, 1854) ने सर्वप्रथम प्रयास किया था। किन्तु लोग इनके कार्य को भूल गये। जेवन्स तथा कार्ल मेंजर ने सन् 1871 ई० में इसके कुछ भाग पर अलग से विचार किया और विकसित कर लगभग एक साथ ही प्रकाशित किया। वालरस ने कुछ समय बाद इन्हें विकसित रूप देकर प्रकाशित किया। जेवन्स ने अपनी अद्भुत स्पष्ट एवं रोचक शैली द्वारा शीघ्र ही जन-साधारण का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्होंने 'अन्तिम तुष्टिगुण' शब्द का इतनी कुशलता से प्रयोग किया कि वे लोग जो गणितशास्त्र के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे वे भी दो ऐसी वस्तुओं की मात्राओं में थोड़ी-थोड़ी वृद्धि के सामान्य सम्बन्ध को भलीभाँति समझने लगे जिनका एक दूसरे से आकस्मिक संसर्ग धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहा हो। उनकी त्रुटियों ने भी उन्हें सफल बनाने में सहायता पहुँचायी, क्योंकि उनका यह वास्तविक विश्वास था कि संतुष्ट की जा सकने वाली आवश्यकताओं

के नियम (law of satiable Wants) पर बल न देने के कारण रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों ने मूल्य को निर्धारित करने वाले कारणों का बिलकुल ही गलत वर्णन किया, और इससे बहुत से लोगों को ऐसा सोचने का आभास दिया कि वे एक बड़ी भारी भूल को सुधार रहे हैं, जबकि वास्तव में उन्होंने केवल कुछ महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण ही दिये थे। उन्होंने ऐसे तथ्य पर, जो कि किसी भी दशा में कम महत्वपूर्ण नहीं था, अधिक बल देकर बहुत ही सुन्दर काम किया, क्योंकि उनके पूर्वविचारक, यहाँ तक कुर्नो भी, इस बात को बिलकुल ही स्पष्ट समझते थे कि किसी बाजार में एक वस्तु की माँग की मात्रा में कमी से आशय अलग-अलग उपभोक्ताओं की आवश्यताओं की संतुष्टि के कारण उस वस्तु की इच्छा की तीव्रता में कमी से होता है। अपने प्रिय मुहावरों की सार्थकता को बढ़ा-चढ़ा कर चित्रण करके तथा (Theory के द्वितीय संस्करण में 105 पृष्ठ पर) बिना किसी शर्त के इस कथन से कि किसी वस्तु की कीमत से न केवल व्यक्ति विशेष का (जिसका यह माप कर सकती है) अपितु किसी 'व्यापारिक संस्था' (जिका यह माप नहीं कर सकती) का अन्तिम तुष्टिगुण मापा जा सकता है, अपने अनेक अध्ययन कर्ताओं को आनन्दवाद (Hedonics) तथा अर्थशास्त्र की सीमाओं के बारे में भ्रम में डाल दिया। रिकार्डो के 'मूल्य के सिद्धान्त' पर दिय गये परिशिष्ट 'झ' में इन विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। यहाँ यह भी बतला दें कि प्रो० सेलिगमैन ने (1903 ई० के Economic Journal के 356-362 पृष्ठों में) यह प्रदर्शित किया है कि प्रो० डब्ल्यू० एफ० लौयड (W. F. Lloyd) ने 1833 में आक्सफोर्ड में दिये गये अपने व्याख्यान में (जिसे बहुत पहले ही विस्मृत किया जा चुका है) तुष्टिगुण के आधुनिक सिद्धान्त के मुख्य-मुख्य विचारों पर पहले ही प्रकाश डाला था।

प्रो० फिशर (Fisher) ने बेकन (Bacon) द्वारा किये गये कुर्नो के अनुसन्धानों के अनुवाद के परिशिष्ट में गणितीय अर्थशास्त्र की बड़ी सुन्दर ग्रन्थ-सूची दी है। अर्थशास्त्र पर लिखे गये गणितीय विषयों तथा एजवर्थ, पेरेटो, विक्स्टीड, औस्पिज, लिबेन तथा अन्य लेखकों की कृतियों के अधिक विस्तृत अध्ययन के लिए पाठकों को इसे देखने की सलाह दी जाती है। पेंटालिओनी (Pantaleoni) के Pure Economics में दी गयी उत्कृष्ट विचार-सामग्री से गोसें के कुछ गूढ़, किन्तु अत्यधिक मौलिक एवं ओजपूर्ण तर्क, प्रथमबार सर्वसाधारण के समझने योग्य हुए हैं।

अध्याय 4

आवश्यकताओं की लोच

मांग की लोच की परिभाषा।

§1 किसी व्यक्ति की किसी वस्तु की इच्छा के सम्बन्ध मे यही सार्वभौमिक नियम है कि अन्य बातो के समान रहने पर उसके पास उस वस्तु का सम्भरण जितना अधिक बढता जाता है उसके लिए उसकी इच्छा उतनी ही कम होती है। किन्तु इसमे कमी या तो तीव्र गति से होती है या फिर धीरे-धीरे होती है। यदि यह कमी मन्द गति से हो, तो उसके पास वस्तु के सम्भरण मे पर्याप्त वृद्धि होने पर भी वह उसके लिए जो दाम देगा उसमे अधिक कमी नही होती, और यदि उसके भाव थोडे से गिर जायें तो भी वह उसकी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा खरीदेगा। किन्तु यदि उस वस्तु के लिए इच्छा तीव्रता से कम होती हो तो भाव मे कुछ कमी होने पर वह उसकी थोडी ही अधिक मात्रा खरीदेगा। पहली दशा मे थोडे से ही प्रलोभन से उसकी उस वस्तु को खरीदने की तत्परता मे बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। अत यह कहा जा सकता है कि उस वस्तु की आवश्यकता की लोच अधिक है। दूसरी दशा मे, भाव मे कमी के फलस्वरूप उससे जो अतिरिक्त प्रलोभन मिलता है उससे शायद ही वह उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने को तत्पर हो। अत यह कह सकते है कि उसकी माँग की लोच थोड़ी है। यदि मान लिय जाय कि चाय की कीमत 16 पैस की अपेक्षा 15 पैंस प्रति पौंड होने से वह उसकी बहुत अधिक मात्रा खरीदे, तो इसकी कीमत 15 पेन के बजाय 16 पेस० होने पर वह इसकी बहुत कम मात्रा खरीदेगा। अर्थात् यदि कीमत मे कमी की दृष्टि से माँग लोचदार है तो कीमत मे वृद्धि की दृष्टि से भी वह लोचदार होगी।

जो बाते एक व्यक्ति की माग से सम्बन्ध रखती हैं वही पूरे बाजार की माँग पर चरितार्थ की जा सकती है। अत सामान्यरूप मे हम यह कह सकते है कि—

किसी बाजार मे किसी वस्तु की माँग की लोच या प्रतिक्रिया का अधिक या कम होना इस बात पर निर्भर है कि उस वस्तु की कीमत मे कुछ कमी होने से माँग बहुत या थोडी बढती है, और उसकी कीमत मे कुछ वृद्धि होने से उस वस्तु की माँग अधिक या कम घटती है।[1]

---

1 यदि कीमत में कुछ कमी के फलस्वरूप किसी वस्तु की क्रय की जानेवाली मात्रा में समान अनुपात में वृद्धि हो, या मोटे शब्दों में, यदि कीमत के 1% घट जाने के कारण कुल बिक्री में 1% की वृद्धि हो तो यह कहा जा सकता है कि माँग की लोच 1 है। यदि कीमत में 1% की कमी होन के फलस्वरूप क्रय की गयी मात्रा में 2% या ½% की वृद्धि हो तो माँग की लोच क्रमशः 2 या ½ होगी, इत्यादि। (उक्त कथन स्थूल रूप में ही सत्य है क्योंकि 98 का 100 के साथ वही अनुपात नहीं होता जो 100 का 102 के साथ होता है।) निम्न नियम के आधार पर माँग

एक वस्तु की कीमत किसी निर्धन व्यक्ति के लिए इतनी अधिक हो सकती है कि उसके लिए निषेधात्मक सिद्ध हो, किन्तु अमीर व्यक्ति को इस अधिकता का आभास तक नहीं होता। उदाहरण के लिए एक निर्धन व्यक्ति कभी भी मद्यपान नहीं करता। किन्तु एक धनी व्यक्ति इसकी कीमत का तनिक भी विचार न करते हुए इसे इच्छानुकूल मात्रा मे पी सकता है। अतः माँग की लोच के सम्बन्ध मे अधिक स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए हम समाज के विभिन्न वर्गो का एक-एक करके अध्ययन करेगे। निस्सन्देह धनी व्यक्तियो की धन-सम्पन्नता की और निर्धन व्यक्तियो की निर्धनता की अपनी-अपनी अनेक श्रेणियाँ है, किन्तु यहाँ पर हम इन छोटी-छोटी उप-श्रेणियो पर विचार नही करेगे।

माँग की लोच के परिवर्तन का सामान्य सिद्धान्त, तथा कीमत में होने वाले परिवर्तनों में इसकी आनुसंगिक प्रतिक्रिया।

जब किसी वस्तु की कीमत समाज के किसी भी वर्ग के लिए बहुत अधिक हो तो लोग उस वस्तु की थोडी ही मात्रा खरीदेगे। और कुछ दशाओ मे इस वस्तु की कीमत बहुत कम हो जाने पर भी रीति-रिवाज तथा आदत के कारण लोग इसका स्वतंत्रतापूर्वक उपभोग नही कर सकते। यह भी हो सकता है कि इनको किन्ही विशेष अवसरों पर या अत्यन्त रुग्ण अवस्था मे उपयोग मे लाने के लिए अलग से रख दिया जाय इत्यादि। यद्यपि ऐसी दशाएँ बहुधा देखने को मिलेगी तथापि इन्हे सामान्य नियम का रूप नही दिया जा सकता। किन्तु जैसे ही किसी वस्तु का किसी भी कारण-

की लोच को माँग वक्र द्वारा बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित किया जा सकता है। मान लीजिए कि कोई सीधी रेखा माँग-रेखा को प बिन्दु पर छूती हुई ख ग रेखा को ट बिन्दु पर क ख रेखा को टा बिन्दु पर काटती है तो 'प बिन्दु पर माँग की लोच को प ट और प टा के अनुपात द्वारा मापा जा सकता है।' यदि प ट, प टा की दुगुनी हो तो कीमत में 1%का ह्रास हो जाने से माँगी जाने वाली मात्रा में 2% की वृद्धि होगी। माँग की लोच तब 2 के बराबर होगी। किन्तु यदि प ट, प टा की एक-तिहाई हो तो कीमत के 1% घट जाने से माँग में $\frac{1}{3}$% की वृद्धि होगी; तब माँग की लोच एक-तिहाई ही होगी, इत्यादि। इसी प्रकार के निष्कर्ष को प्राप्त करने का एक दूसरा उपाय इस प्रकार है—प बिन्दु पर माँग की लोच को प ट के प टा से अनुपात द्वारा अर्थात् म ट के म ख से अनुपात द्वारा मापा जा सकता है। (क्योंकि प म को ख म पर लम्बवत् खींचा गया है।) अतः जब ∠ट प म, ∠ख प म के बराबर हो तो माँग की लोच इकाई के बराबर होगी, और जैसे-जैसे ∠ ट प म, ∠ख प म की अपेक्षा बढ़ता जायगा वैसे-वैसे माँग की लोच भी इकाई से बढ़ती जायेगी, और इसके विपरीत जब ∠ट प म, ∠ख प म से छोटा होता जायगा, माँग की लोच इकाई से कम होती जायेगी। गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 3 को भी देखिए।

रेखाचित्र 3

वश सामान्य रूप मे प्रयोग होने लगता है, इसकी कीमत मे अधिक कमी के फलस्वरूप इसकी माँग मे बहुत वृद्धि हो जाती है। ऊँची कीमतो वाली वस्तुओ की माँग की लोच अधिक होती है, मध्यम कीमतो मे भी यह पर्याप्त रहती है, किन्तु यह कीमत के गिरने पर कम होने लगती है, और यदि कीमत इतनी कम हो जाय कि पूर्ण तुष्टि हो चुकी हो तो धीरे-धीरे इसका लोप हो जाता है।

यह नियम लगभग सभी वस्तुओ तथा सभी वर्गों की माँग के सम्बन्ध मे चरितार्थ होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि जिस स्तर पर ऊँची कीमतो का कम होना रुक *जाता है तथा कम कीमतो का बढ़ना आरम्भ हो जाता है वह समाज के विभिन्न वर्गों* के लिए भिन्न-भिन्न होता है। वैसे यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाय तो इस सम्बन्ध मे अनेक विभिन्नताएँ दिखायी देगी। इसका मुख्य कारण यह है कि कुछ वस्तुओ के उपभोग करने मे आसानी से ही तृप्ति हो जाती है जबकि कुछ अन्य वस्तुओ को, मुख्यतया प्रदर्शन से सम्बन्धित वस्तुओ को, प्राप्त करने की इच्छा असीमित होती है। दूसरे प्रकार की वस्तुओ की माँग की लोच पर्याप्त होती है, भले ही कीमते कितनी ही क्यो न गिर जाएँ, किन्तु प्रथम श्रेणी की वस्तुओ के सम्बन्ध मे ऐसा देखा गया है कि जैसे ही कीमतें एक नीच स्तर पर पहुँचती हैं इनके लिए माँग की लोच प्राय. समाप्त हो जाती है।[1]

---

1 हम यहाँ पर एक ऐसे शहर में, जहाँ एक ही बाजार में सभी प्रकार की सब्जियाँ खरीदी व बेची जाती हैं, मटर की माँग का उदाहरण लेकर इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। फसल तैयार होने से पहले शायद 100 पौंड मटर बाजार में लायी जायेगी, और 1 शि० प्रति पौंड के हिसाब से बेची जायेगी, फिर यह प्रतिदिन 500 पौंड बाजार में आने लगेगी और 6 पेंस प्रति पौंड की दर पर बिकेगी, फिर 1,000 पौंड प्रतिदिन बाजार में आयेगी और 4 पेंस की दर पर बिकेगी। कुछ समय बाद बाजार में इसके 5000 पौंड आने लगेंगे और 2 पेंस प्रति पौंड की दर पर बिकेगी और (जैसे ही फसल अच्छी तरह तैयार हो जायगी) 10,000 पौंड मटर प्रतिदिन बाजार में आयेगी और $1\frac{1}{2}$ पेंस प्रति पौंड की दर पर बिकेगी। इस प्रकार रेखाचित्र 4 में ख ग रेखा पर एक इंच में 5,000 पौंड और क ख रेखा पर एक इंच में 10 पेंस को प्रदर्शित कर माँग को दिखलाया गया है।
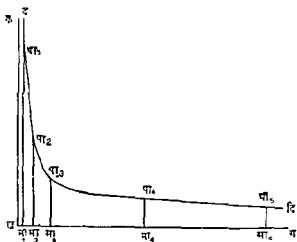
रेखाचित्र 4

मांस, दूध तथा मक्खन, ऊन, तम्बाकू, आयात किये गये फल तथा चिकित्सा सम्बन्धी साधारण उपचारों के प्रचलित मूल्य ऐसे है कि इनमें होने वाले हरएक परि-

ख मा$_1$ = 0·02 इंच म$_1$ प$_1$ = 1·2 इंच
ख मा$_2$ = 0·1 इंच म$_2$ प$_2$ = 0.6 इंच
ख मा$_3$ = 0·2 इंच म$_3$ प$_3$ = 0.4 इंच
ख मा$_4$ = 1·0 इंच म$_4$ प$_4$ = 0·2 इंच
ख मा$_5$ = 2·0 इंच म$_5$ प$_5$ = 0.15 इंच

तब, जैसा कि ऊपर के चित्र से स्पष्ट है, पा$_1$ पा$_2$ ⋯ पा$_5$ कुल मांग रेखा बनेगी। किन्तु इस कुल मांग में धनी, मध्यम श्रेणी वाले, और निर्धन व्यक्ति, सभी की मांग सम्मिलित होगी। इन सभी श्रेणियों के लोगों की अलग-अलग रूप में जितनी भी तीव्र मांगें होंगी उन्हें सम्भवतः निम्न सारणियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

प्रति पौं० कीमत (पेंस में)	क्रय की जाने वाली मात्रा (पौंड में) धनी वर्ग द्वारा	मध्यम वर्ग द्वारा	निर्धन वर्ग द्वारा	योग
12 पें०	100	0	0	100
6 पें०	300	200	0	500
4 पें०	500	400	100	1,000
2 पें०	800	2,500	1,700	5,000
1½ पें०	1,000	4,000	5,000	10,000

इन सारणियों को रेखाचित्र 5, 6, 7 रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो क्रमशः धनी, मध्यम तथा निर्धन वर्गों के व्यक्तियों की मांग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार उदाहरण के रूप में, अ ह, ब झ तथा च ल में से प्रत्येक 2 पेंस के बराबर कीमत व्यक्त होती है और
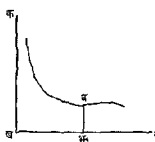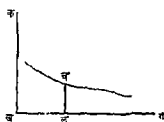
रेखाचित्र 5 रेखाचित्र 6 रेखाचित्र 7

प्रत्येक की लम्बाई 2 इंच है। ख ह ·16 इंच के बराबर है और इससे 800 पौंड के बराबर भार प्रदर्शित होता है। ख झ ·5 इंच के बराबर है और इससे 2,500 पौंड के बराबर भार प्रदर्शित किया जाता है। ख ल ·35 के बराबर है और इससे 1,700 पौंड चाय प्रदर्शित की गयी है। ख ह, ख झ तथा ख ल का योग 1 इंच अर्थात् रेखाचित्र 4 में दिए गये ख मा$_4$ के बराबर है। यह उस उपाय का एक दृष्टान्त है जिसके

वर्तन से श्रमिक वर्गों तथा मध्यम श्रेणी के निम्न अर्द्धांग (Lower half) में आने वाले व्यक्तियो द्वारा उपयोग की जाने वाली मात्रा मे बडा अन्तर आ जाता है, किन्तु धनी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत उपभोग मे अधिक वृद्धि नही करेगे चाहे ये कितनी ही सस्ती क्यो न उपलब्ध होती हों। दूसरे शब्दो मे, इन वस्तुओ के लिए श्रमिक वर्ग तथा मध्यम श्रेणी के निम्न अर्द्धभाग मे आने वाले व्यक्तियो की प्रत्यक्ष माँग अत्यधिक लोचदार होती है, परन्तु धनी वर्ग के सम्बन्ध मे ऐसी बात नही होती। किन्तु श्रमिक वर्ग असख्य मात्रा मे होने से धनी व्यक्तियो की अपेक्षा उन वस्तुओ का कही अधिक उपभोग करते है जो उनकी सामर्थ्य के अन्तर्गत होती है, और यही कारण है कि इस प्रकार की सभी वस्तुओं की कुल माँग बहुत अधिक लोचदार होती है। कुछ समय पूर्व चीनी इसी प्रकार की वस्तुओ की श्रेणी मे आती थी, किन्तु अब इसकी कीमत इतनी घट चुकी है कि श्रमिक वर्गों की दृष्टि से भी यह कम ही है और इस कारण इसकी माँग लोचदार नही है।[1]

भित्तिफल (Wall-fruits), अच्छी किस्म की मछलियो तथा साधारण व्यय वाली विलास की वस्तुओ के प्रचलित भाव ऐसे हैं कि इनमे थोड़ी-सी कमी आ जाने से मध्यम वर्ग के लोग इनका अधिकाधिक उपभोग करने लगते है। दूसरे शब्दो मे, मध्यम श्रेणी मे आने वाले लोगो की इन वस्तुओ की माँग लोचदार होती है। किन्तु धनी तथा श्रमिक वर्गों की इन वस्तुओ की माँग कम लोचदार होती है क्योंकि धनी वर्ग की इन्हे प्राप्त करने की इच्छाएँ पहले से ही तृप्त होती है, और श्रमिक वर्ग के लिए इनकी कीमते तब भी (कीमते गिरने पर भी) बहुत ही ऊँची होती है।

अनुसार एक ही पैमाने पर खींची गयी असंख्य माँग रेखाओं को कुल माँग रेखाओं का रूप देने के लिए एक दूसरे के ऊपर आधारवत् रखने से इन आंशिक माँग रेखाओं का योग प्रदर्शित किया जा सकता है।

1 हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी भी वस्तु के लिए माँग सारणी का आकार-प्रकार बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होता है कि उसकी प्रतियोगी वस्तुओं की कीमतें क्या निश्चित मान ली गयी हैं या इसके साथ बदलती रही हैं। यदि गोमांस और भेंड़ के मांस की माँग को अलग-अलग व्यक्त किया जाय, और यदि भेंड़ के मांस का भाव निश्चित हो और गोमांस का भाव बढ़ाया गया हो तो गोमांस की माँग अत्यधिक लोचदार होगी, क्योंकि गोमांस के भाव में थोड़ी-सी कमी आने के फलस्वरूप लोग भेंड़ के मांस के बदले गोमांस लेने लगेंगे और इससे उसका उपभोग बहुत बढ़ जायेगा: जबकि दूसरी ओर गोमांस के दाम थोड़े भी बढ़ जाने पर बहुत से लोग गोमांस को लगभग बिलकुल भी न खरीदकर भेंड़ के मांस को ही खरीदेंगे। किन्तु सभी प्रकार के ताजे मांस की माँग सारणी पर यह मान कर विचार करें कि उनकी पारस्परिक कीमतों में एक ही आनुपातिक सम्बन्ध बना रहेगा और यह सम्बन्ध प्रायः वही होगा जो इंग्लैंड में इस समय है, तो हम देखेंगे कि यह केवल साधारण लोच प्रदर्शित करती है। भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 6 में दी गयी टिप्पणी से इसकी तुलना कीजिए।

दुर्लभ शराब, बेमौसमी फल, अत्यन्त कुशल चिकित्सा तथा कानूनी सहायता, इत्यादि के मूल्य इतने ऊँचे होते है कि धनी व्यक्तियों की अपेक्षा अन्य लोग इनकी बहुत कम माँग करते है। किन्तु माँग जितनी भी हो पर्याप्त मात्रा मे लोचदार होती है। अधिक खर्चीले भोजन पदार्थों के लिए माँग कुछ मात्रा मे सामाजिक उत्कृष्टता प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होती है और उसे कदाचित् ही तृप्त किया जा सकता है।[1]

आवश्यक वस्तुओं की माँग।

§4. आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध मे यह बात चरितार्थ नही होती। यदि यह मान लिया जाय कि गेहूँ अल्पमात्रा मे उपलब्ध होने पर भी मनुष्य का सबसे सस्ता भोजन है, और जब यह प्रचुर मात्रा में मिलता है तब इसका किसी अन्य प्रकार से उपभोग नही होता तो इसके भाव के बहुत तेज या पर्याप्त रूप से मन्द होने पर इसके लिए माँग बहुत कम लोचदार होती है। 4 पौंड की डबलरोटी के दाम यदि 6 पेंस हो जायँ तो इससे शायद ही डबलरोटी का उपभोग बढ़ेगा। किन्तु इसके विपरीत की स्थिति के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहना अधिक कठिन होगा, क्योंकि इग्लैंड मे अनाज के व्यापार सम्बन्धी कानूनों के खडन के पश्चात् दुर्लभता की अवस्था कभी भी नही आयी है। किन्तु कम सुखद समयो मे हमें जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसकी सहायता से हम यह कल्पना कर सकते है कि सम्भरण मे ·1, ·2, ·3 ·4 या ·5 की कमी हो जाने से कीमतों मे क्रमशः ·3, ·8, 1·6, 2·8 या 4·5 की वृद्धि हो जायेगी।[2] कीमतो मे

---

1 इस भाग के अध्याय 2 के पहले अनुभाग को देखिए। उदाहरण के रूप में अप्रैल 1894 में टिटिहरियों (Plovers) के ऋतु के सबसे पहले के 6 अंडे लन्दन में 10 शि० 6 पें० प्रति अंडे की दर पर बेचे गये। दूसरे दिन कुछ और अंडे आ जाने से कीमत घट कर 5 शि० प्रति अंडा हो गयी। इसके दूसरे दिन यह 3 शि० हो गयी, और एक सप्ताह बाद यह केवल 4 पेंस रह गयी।

2 साधारणतया इसका अनुमान सम्भवतः ग्रिगरी किंग (Gregory King) ने लगाया था। लार्ड लौडरडेल (Lord Lauderdale) ने (Inquiry के पृष्ठ 51–53) में इस बात का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है कि यह माँग के नियम पर आधारित है। रेखाचित्र 8 में माँग वक्र द दि द्वारा इसे प्रदर्शित किया गया है। इसमें बिन्दु अ साधारण कीमत को निरूपित करता है। यदि हम यह विचार करें कि जहाँ कहीं गेहूँ का भाव बहुत कम हो वहाँ इस कीमत को उस गेहूँ के सम्बन्ध में समझा जा सकता है जो जानवरों, भेंड़ों तथा सुअरों को खिलाया जाता है, तथा जिसका अर्क उतारने और शराब बनाने में प्रयोग किया जाता है, उदाहरण के लिए सन् 1834 में ऐसा किया गया था, इस वक्र के
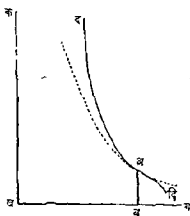
रेखाचित्र 8

इससे भी अधिक परिवर्तन का होना कोई असामान्य बात नही है। सन् 1335 मे इंग्लैंड मे गेहूँ 10 शि० प्रति बुशल बेचा गया था किन्तु उसके दूसरे ही वर्ष यह 10 पेंस प्रति बुशल के भाव पर बिका था[1]।

वे वस्तुएँ जिनका कुछ उपभोग करना आवश्यक होता है।

वे वस्तुएँ जो आवश्यक नही होती (विशेषकर यदि वे शीघ्र नष्ट होने वाली हो और उनकी माँग बेलोच हो) उनकी कीमतों मे और भी अधिक तीव्रता से परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार मछलियो की कीमत किसी दिन तो बहुत तेज हो सकती है किन्तु उसी के दो-तीन दिन बाद ये मुफ्त मे भी उपलब्ध हो सकती है।

पानी उन इनी-गिनी वस्तुओ मे से एक है जिसकी धनी से धनी तथा निर्धन से निर्धन सभी व्यक्तियो को किसी भी कीमत पर आवश्यकता होती है। मामूली-सी कीमत पर इसकी माँग बडी लोचदार होती है। किन्तु जिन-जिन उपयोगों में इसे लाया जाता है उन्हे भलीभाँति पूरा किया जा सकता है। और जैसे ही इसकी कीमत शून्य की ओर प्रवृत्त होती है इसकी माँग बेलोच होती जाती है। नमक के विषय मे भी प्रायः ऐसा ही कहा जा सकता है। इग्लैंड मे इसकी कीमत इतनी नीची है कि भोजन के एक पदार्थ के रूप मे इसकी माँग बहुत बेलोच है, किन्तु भारत मे इसकी कीमत अपेक्षाकृत अधिक होने से इसकी माँग अपेक्षाकृत लोचदार है।

दूसरी ओर निवास-कक्ष का किराया उन परिस्थितियो के अतिरिक्त जबकि किसी स्थान के निवासी उस स्थान को छोड कर अन्यत्र चले जायें, कभी भी बहुत कम नही हुआ है। जहाँ कही सामाजिक अवस्था विकार-रहित हो तथा जहाँ सामान्य प्रगति मे कोई रोक न हो वहाँ इन वास्तविक सुविधाओ के प्राप्त होने से तथा समाज मे इससे मिलने वाले विशिष्ट स्थान के कारण निवास-कक्ष की माँग लोचदार प्रतीत होती है। उन सभी प्रकार के वस्त्रो की माँग को सतुष्ट किया जा सकता है जो बाह्य प्रदर्शन की दृष्टि से नही पहने जाते। जब इनकी कीमत थोडी होती है तब इनकी माँग की लोच बहुत कम होती है।

चेतना तथा रुचि और अरुचि का प्रभाव।

उच्च श्रेणी की वस्तुओ की माँग लोगो की चेतना शक्ति पर बहुत निर्भर होती है। कुछ लोगो को शराब की पर्याप्त मात्रा दे दी जाय तो वे विशिष्ट स्वाद वाली शराब की तनिक भी परवाह नही करते। अन्य लोग अच्छी किस्म की शराब के लिए बड़े लालायित रहते है और थोड़ी-सी मात्रा से ही तृप्त हो जाते है। उन भागो मे

निचले भाग का आकार लगभग बिन्दुओं द्वारा अंकित रेखा के सदृश होगा। और यह मान लेने पर कि कीमत बहुत ऊँची होने पर उसके लिए कम कीमत वाली स्थानापन्न वस्तुएँ सुलभ हो सकती हैं, इस रेखा के ऊपरी भाग का आकार प्रायः बिन्दुओं से बनी रेखा के ऊपरी भाग के ही सदृश होगा।

1 क्रनिकन प्रेसिओसम (Chron'con Preciosum) (1745 ईसा शताब्दी बाद) का कहना है कि 1336 में इंग्लंड में गेहूं के दाम इतने अधिक गिरे हुए थे कि 2 शि० से एक क्वार्टर (8 बुशल) गेहूं खरीदे जाते थे: और इनके दाम लैसेस्टर (Leicester) में एक शनिवार के दिन 40 शि० थे और इसके बाद वाले शुक्रवार को 14 शि० थे।

जहाँ साधारण श्रमिक वर्ग रहते है अच्छे तथा घटिया किस्म की बोटियाँ (Joints) लगभग एक ही भाव पर बेची जाती हैं। किन्तु इंग्लैंड के उत्तरी भाग मे कुछ अच्छी आय वाले शिल्पकारों ने सबसे अच्छे किस्म के मांस के लिए अपनी रुचि बढाई है और वे इसके लिए उतनी ही ऊँची कीमत देते है जितनी लन्दन के पश्चिमी भाग मे दी जाती है जहाँ घटिया किस्म की बोटियो को अन्यत्र भेज देने के कारण इनकी कीमत कृत्रिम रूप से ऊँची रहती है। किसी वस्तु के प्रयोग से रुचि तथा अरुचि दोनों पैदा हो सकती है। वे उदाहरण जो किसी पुस्तक को बहुत से अध्ययन कर्ताओं की दृष्टि मे रोचक बनाते है कुछ ऐसे लोगों को जिन्हे इससे अच्छी रचनाओं की जानकारी है अरुचिकर लगते है। किसी बड़े शहर में रहने वाला एक व्यक्ति जिसमे उच्चकोटि के संगीत के प्रति अनुराग की भावनाएँ जागृत है, निम्नकोटि की संगीत-मंडली मे जाना पसन्द नही करेगा, किन्तु यदि वह किसी ऐसे छोटे शहर मे रह रहा हो जहाँ अच्छे संगीत के आयो-जन करने मे होने वाले खर्चे को पूरा करने के लिए लोग ऊँची कीमते देने को तैयार हो, और इस कारण उच्चकोटि के संगीत को सुनना कठिन हो तो वह इन साधारण संगीत-मंडलियों मे भी प्रसन्नतापूर्वक जाना पसन्द कर सकता है। केवल बड़े-बड़े शहरों में ही प्रथम श्रेणी के संगीत की प्रभावपूर्ण माँग (Effective demand) लोच-दार होती है, किन्तु द्वितीय श्रेणी के संगीत की माँग बड़े तथा छोटे सभी शहरो में लोचदार होती है।

किसी वस्तु के विभिन्न प्रयोगों का प्रभाव।

साधारणतया अनेक उपयोगो मे लायी जाने वाली वस्तुओं की माँग लोचदार होती है। उदाहरण के रूप मे पानी का सबसे पहिले पीने, तत्पश्चात् भोजन बनाने, अनेक प्रकार की धुलाई तथा अन्य अनेक कार्यो मे उपयोग किया जाता है। जब किसी विशेष प्रकार की अनावृष्टि न हो किन्तु पानी घड़ो मे भर कर बिकता हो तो कीमत इतनी कम हो सकती है कि निर्धन वर्गो के लोग भी मनचाही मात्रा मे इसे पी सकते है, जबकि भोजन बनाने के लिए वे उसी पानी को कभी-कभी दो बार प्रयोग मे लाते हैं, धुलाई के कार्य में वे इसकी बहुत थोड़ी मात्रा का प्रयोग करते है। मध्यम वर्ग के लोग इसका भोजन बनाने मे सम्भवतः दूसरी बार थोड़ा भी उपयोग नही करेंगे। यदि उन्हें पानी असीमित मात्रा में उपलब्ध हो तो वे धुलाई के कार्यो के लिए एक घड़े की अपेक्षा बहुत-सा पानी प्रयोग में लायेंगे। यदि पानी नलों द्वारा प्राप्त हो, और बहुत कम दर पर मीटर के अनुसार इसके मूल्य का भुगतान करना पड़े तो बहुत से लोग धुलाई के लिए भी आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग करते है। और जब पानी मीटर के हिसाब से न मिल कर साल मे एक निश्चित धन-राशि देने पर मिलता हो और जहाँ कहीं पानी की आवश्यकता हो वहाँ नल द्वारा पहुँचाया जा सकता हो तो प्रत्येक कार्य के लिए इसका आवश्यकतानुसार पूर्णरूप से उपयोग किया जाता है।[1]

---

1 जिस प्रकार विभिन्न पूंजी वाले समाज के एक वर्ग की किसी ऐसी वस्तु की माँग, जिसको एक ही प्रकार के उपयोग में लाया जा सकता है, उस वर्ग में शामिल होने वाले प्रत्येक सदस्य की माँगों का योग है उसी प्रकार किसी एक व्यक्ति की पानी जैसी वस्तुओं की कुल (या मिश्रित) माँग इसके प्रत्येक उपयोग के लिए की गयी माँग

बेलोच माँग।

इसके विपरीत सामान्यतया एक तो निरपेक्ष आवश्यकताओ की माँग (सामाजिक आवश्यकताएँ तथा कार्यक्षमता के लिए आवश्यक वस्तुएँ इसमे सम्मिलित नही है) और दूसरे धनी-वर्ग की उन विलास की वस्तुओ की माँग जिनमे उनकी आय का थोड़ा ही भाग खर्च होता है, बहुत अधिक बेलोचदार होती है।

सांख्यिकीय अध्ययन में आने वाली कठिनाइयाँ, समय का प्रभाव।

§5. अभी तक हमने माँग कीमतो की यथार्थ सूची को प्राप्त करने मे आने वाली कठिनाइयों और उनके उचित विश्लेषण की ओर ध्यान नही दिया था। इसमे से पहली समस्या जिस पर हमे विचार करना है, समय के प्रभाव के कारण उत्पन्न होती है; समय के प्रभाव के कारण अर्थशास्त्र की अनेक समस्याएँ जन्म लेती है।

इस प्रकार अन्य बातो के समान रहने पर बिक्री की मात्रा मे परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप किसी वस्तु की कीमतों मे होने वाले उन परिवर्तनो को (माँग-कीमतो की सूची से) प्रदर्शित किया जाता है जिन पर वह वस्तु बेची जा सकती है। किन्तु पूर्ण तथा विश्वसनीय साख्यिकी को एकत्रित करने के लिए पर्याप्त रूप से जिस लम्बी अवधि की आवश्यकता होती है उसमे कदाचित् ही अन्य बाते समान रहती है। बहुधा कुछ-न-कुछ विघ्न बाधाएँ उठ खड़ी होती है जिनके प्रभाव उन प्रभावो से मिश्रित हो जाते है, तथा अलग भी नही किये जा सकते, जिनका हम पृथक् से अध्ययन करना चाहते है। यह कठिनाई इस बात से और भी अधिक गम्भीर रूप धारण कर लेती है कि अर्थशास्त्र मे किसी कारण के सभी परिणाम शीघ्र ही ज्ञात नही हो जाते किन्तु ये बहुधा तभी दृष्टि-गोचर होते है जब उस कारण का कोई भी अस्तित्व नही रहता।

द्रव्य की स्थायी अथवा अस्थायी क्रय शक्ति में परिवर्तन।

सर्वप्रथम हम देखते हैं कि द्रव्य की क्रय शक्ति मे निरन्तर परिवर्तन होते जा रहे है और इससे उन निष्कर्षों मे सशोधन करना अनिवार्य हो गया है जो इस कल्पना पर आधारित है कि द्रव्य का मूल्य समान रहता है। इस कठिनाई पर हम बहुत कुछ विजय प्राप्त कर सकते है क्योंकि हम द्रव्य की क्रय शक्ति मे होने वाले बड़े-बड़े परिवर्तनों का पर्याप्त यथार्थता के साथ पता लगा सकते है ।

का योग है। भाग 5. अध्याय 6, अनुभाग 3 देखिए)। जिस प्रकार धनी वर्ग की एक बहुत ऊँची कीमत पर भी मटर की माँग पर्याप्त होती है, किन्तु निर्धन वर्ग के उपभोग की दृष्टि से ऊँची कीमत पर इसकी सम्पूर्ण लोच समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार किसी व्यक्ति की पीने के लिए पानी की माँग बहुत ऊँची कीमत पर भी पर्याप्त होती है, किन्तु घर धोने के लिए पानी के लिए वह जो कीमत देना चाहता है उससे कीमत अधिक होने पर इसके लिए उसकी माँग की लोच बिलकुल भी नहीं रहती। पुनः जिस प्रकार विभिन्न वर्गों के लोगों की मटर की कुल माँग किसी व्यक्ति विशेष की माँग की अपेक्षा कीमत की विस्तृत सीमा तक लोचदार रहती है उसी प्रकार किसी व्यक्ति की एक ही उपयोग की अपेक्षा अनेक उपयोगों के लिए पानी की माँग कीमतों की विस्तृत सीमा (Range) तक लोचदार होती है। जे० बी० क्लार्क (J.B. Clark) द्वारा Harvard Journal of Economics खण्ड 8 में Universol Law of Varation पर लिख गये लेख से इसकी तुलना कीजिए।

इसके पश्चात् सामान्य समृद्धि तथा सम्पूर्ण समाज की कुल क्रय-शक्ति मे होने वाले परिवर्तन है। इन परिवर्तनो का प्रभाव महत्वपूर्ण है, किन्तु सम्भवतः साधारणतया इन्हे जितने महत्व का समझा जाता है उससे ये कुछ कम ही महत्व के होते हैं। इसका कारण यह है कि जब प्रगति की लहर उतरने लगती है तो कीमते घटने लगती है, और इससे निश्चित आय वाले लोगों के साधनों मे वृद्धि होती है, जबकि व्यापार से प्राप्त लाभ से आय घटती है। समृद्धि मे होने वाले इस अधोमुखी परिवर्तन को इस अन्तिम वर्ग को होने वाली प्रत्यक्ष क्षति से पूर्णतया मापा जाता है, किन्तु चाय, चीनी, मक्खन, ऊन, इत्यादि जैसी वस्तुओं के कुल उपभोग के सांख्यिकी इस बात की पुष्टि करते हैं कि लोगों की कुल क्रय-शक्ति मे अधिक तीव्र गति से कमी नही होती, किन्तु इसमे कुछ-न-कुछ कमी तो होती ही है, अतः इसके कारण जो समायोजन (Adjustment) किया जाय वह अधिक से अधिक वस्तुओ के उपभोग तथा उनकी कीमतों की तुलना करके निर्धारित करना चाहिए।

इसके पश्चात् जनसंख्या तथा सम्पत्ति की क्रमिक वृद्धि के कारण होने वाले परिवर्तन आते है। तथ्यो के ज्ञात होने पर इन्हें सरल संख्यासूचक सुधारो द्वारा जाना जा सकता है[1]।

---

1 जब एक लम्बी वर्षावधि में कोई सांख्यिकी तालिका किसी वस्तु के उपभोग की क्रमिक वृद्धि प्रदर्शित करती है तो हम विभिन्न वर्षों में होने वाली प्रतिशत वृद्धि की तुलना कर सकते हैं। थोड़े से अभ्यास द्वारा इसे बड़ी सरलतापूर्वक किया जा सकता है किन्तु जब अंकों को एक सांख्यिकी चित्र के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तो चित्र को पुनः अंकों में व्यक्त किये बिना इस प्रकार की तुलना करना सरल नहीं है, और इस कारण भी बहुत से संख्याशास्त्री रेखाचित्र की प्रणाली को अच्छा नहीं समझते। किन्तु एक सरल नियम के ज्ञान से चित्रों द्वारा प्रदर्शन करने की प्रणाली इस प्रश्न को हल करने में उपयोगी हो सकती है। यह नियम इस प्रकार है—मान लो कि किसी वस्तु की उपभोग की गयी मात्रा (या व्यापार की मात्रा, या लगाये गये कर की मात्रा) को रेखाचित्र 9 में ख ग के समानान्तर क्षतिज रेखाओं द्वारा मापा गया है, जबकि इनके सम्बन्धित वर्षों को नित्य की भाँति घटते हुए क्रम पर समान दूरी पर क ख रेखा पर प्रांकित (Ticked off) किया गया है। किसी प बिन्दु पर वृद्धि की दर को मापने के लिए किसी स्केल को इस प्रकार रखो कि वह वक्र को प बिन्दु पर छुए। इसे क ख रेखा पर स्थित ट बिन्दु से मिला दो। क ख रेखा पर प के बराबर लम्बवत् ऊँचाई का न बिन्दु अंकित करो। तब क ख रेखा पर न ट दूरी से पृथक् किये गये वर्षों की संख्या उस वस्तु की मात्रा में होने वाली वार्षिक वृद्धि के भाग की प्रतिलोम होगी। अर्थात् यदि न ट 20 वर्षों को प्रदर्शित करती है तो उस वस्तु की मात्रा में $\frac{1}{20}$ अर्थात् 5% की दर से वार्षिक वृद्धि होगी। यदि न ट 25 वर्षों की अवधि को इंगित करती है तो यह वार्षिक वृद्धि $\frac{1}{25}$ अर्थात् 4% होगी, और आगे

क ट न प ख ग
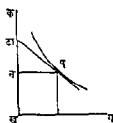
रेखाचित्र 9

आदतों और नयी वस्तुओं के रसास्वादन तथा उनको उपयोग में लाने की विधियों में होने वाले उत्तरोत्तर परिवर्तन।

§6 इसके पश्चात् फैशन, स्वाद तथा आदतों[1] में होने वाले परिवर्तनों, किसी वस्तु के उपयोग करने के नय ढगो के विकास तथा इसके साथ उन्ही उपयोगो मे लायी जाने वाली उन अनेक वस्तुओ की खोज करने, या उनमे सुधार करने या उनको सस्ता बनाने के लिए अवश्य ही गुजाइश रखनी चाहिए। इन सभी विषयो मे किसी आर्थिक कारण तथा उसके प्रभाव के बीच व्यतीत होने वाले समय के लिए छूट रखने मे बडी कठिनाई होती है। क्योकि किसी वस्तु की कीमत मे वृद्धि मे उसके उपयोग पर पूर्ण प्रभाव पड़ने के लिए समय की आवश्यकता होती है। उपभोक्ताओ को उन स्थानापन्न वस्तुओ की जानकारी के लिए जिन्हे वे इसके बदले मे प्रयोग कर सकते हैं समय चाहिए, और सम्भवत उपभोक्ताओ को भी उन वस्तुओ को पर्याप्त मात्रा मे पैदा करने मे समय लगता है। नयी वस्तुओ के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने तथा उनके मितव्ययता-पूर्ण उपयोग करने के ढंगो को खोज निकालने की आदतो को बढ़ाने मे भी समय लगता है।

दृष्टान्त।

उदाहरण के रूप मे जब इग्लैंड मे लकड़ी और लकड़ी का कोयला महँगा हो गया था तो पत्थर के कोयले का ईंधन के रूप मे धीरे-धीरे ही प्रचार हुआ, अँगीठियो को धीरे-धीरे ही इसके प्रयोग के योग्य बनाया गया, और यहाँ तक कि इसका सुसगठित व्यापार उन स्थानो को भी शीघ्र ही प्रारम्भ न हो सका जहाँ इसे पानी द्वारा आसानी से ले जाया जा सकता था। शिल्प-निर्माण सम्बन्धी उद्योगो मे लकड़ी के कोयले के स्थान पर इसे प्रयोग करने की प्रक्रियाओ की खोज और भी धीरे-धीरे हुई, और वास्तव मे यह अभी भी शायद ही पूरी हो सकी है। पुन, जब हाल मे ही कुछ वर्षो से पत्थर के कोयले का भाव ऊँचा हो गया तो इसके उपयोग मे, विशेषकर लोहे तथा वाष्प के उत्पादन मे, मितव्ययता करने के उपायो की खोज को बडा प्रोत्साहन दिया गया, किन्तु इनमे से कुछ ही आविष्कारो से इन ऊँची कीमतो के समाप्त होने के बाद तक अनेक व्यावहारिक सफलताएँ मिलती रही। और भी, जब कभी एक नयी ट्रामगाड़ी या उप-पौर रेलगाड़ी चलनी प्रारम्भ हो जाती है तो यहाँ तक कि उन लोगो को भी जो इनके मार्ग के निकट ही बसते है शीघ्र ही इसका उपयोग उठाने की आदत नही पड़ती, और उन लोगो को भी जिनके कार्य करने के स्थान इसके मार्गों के एक छोर पर बसे हो अपने निवास-स्थानो को इनके दूसरे छोर के पास बदलने मे और भी अधिक समय लगता है। इसके अतिरिक्त जब पेट्रोल पहले-पहल प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हुआ तो इसका स्वतन्त्र रूप से प्रयोग करने के लिए कुछ ही लोग तैयार थे। धीरे-धीरे पेट्रोल

भी यही क्रम चलता रहेगा। लेखक द्वारा Journal of London Statistical Society के जून 1885 के जयन्ती अंक में प्रकाशित एक लेख को, तथा गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 4 को देखें।

1 फैशन के प्रभाव के उदाहरणों के लिए (Economic Journal के खण्ड III में मिस फौले (Miss Foley) के लेखों को, तथा Nineteenth Century के खण्ड XIII में मिस हीदर बिग (Miss Herther Bigg) के लेखों को देखिए।

और पेट्रोल के लैम्प समाज के सभी वर्गों में प्रचलित हो गये। इसके प्रयोग में वृद्धि का श्रेय इस के मूल्य मे तब से होने वाली कमी को ही दिया जायगा।

कुछ वस्तुओं की माँगों को अन्य वस्तुओं की माँगों की अपेक्षा अधिक सरलता से स्थगित किया जा सकता है।

इसी प्रकार की एक अन्य कठिनाई इस बात से उत्पन्न होती है कि कुछ वस्तुओ की खरीद को कुछ समय के लिए आसानी से स्थगित किया जा सकता है, किन्तु एक लम्बी अवधि तक ऐसा नही किया जा सकता। कपडों तथा उन अन्य वस्तुओ के सम्बन्ध में जो धीरे-धीरे घिसती हैं, और जिनका कीमतो के ऊँचे होने के कारण नित्य की अपेक्षा कुछ अधिक लम्बे समय तक प्रयोग किया जा सकता है, बहुधा ऐसा ही होता है। दृष्टान्त के रूप में जब कपास का अधिकाधिक अभाव होने लगा था तब इंग्लैंड में इसका लिपिबद्ध उपभोग बहुत कम दिखाया गया था। इसका कारण आंशिक रूप से यह था कि फुटकर व्यापारियों ने अपने स्टाक में कमी कर दी थी, किन्तु इसका मुख्य कारण लोगों का यह संकल्प था कि जहाँ तक हो सके नयी कपास की वस्तुओं को खरीदे बिना ही काम चलाया जाय। सन् 1864 मे बहुत लोगों ने यह अनुभव किया कि और अधिक समय तक प्रतीक्षा करना उनके लिए सम्भव नही और उस वर्ष अन्य वर्षों की अपेक्षा घरेलू उपभोग के लिए कपास का बहुत बड़ी मात्रा मे प्रयोग किया गया, यद्यपि उससे पिछले वर्षो की अपेक्षा उस वर्ष कीमतें बहुत ऊँची थी। इससे तो यही अभिप्राय निकलता है कि इस प्रकार की वस्तुओं का एकाएक अभाव हो जाने से कीमतें शीघ्र ही पूर्ण रूप से उस स्तर तक नही बढती जहाँ तक सम्भरण मे कमी हो जाने के कारण इन्हे वास्तव में बढ़ना चाहिए था।

इसी प्रकार सन् 1873 में संयुक्तराज्य अमेरिका में वाणिज्य सम्बन्धी मन्दी के बाद यह देखा गया कि सामान्य कपडों के व्यापार की अपेक्षा जूतों का व्यापार अधिक शीघ्र पुनः जीवित हुआ क्योकि कोटो तथा टोपो का एक बहुत बड़ा सुरक्षित भंडार होता है जिन्हे खुशहाली के दिनों मे फटा हुआ मान कर अलग फेंक दिया जाता है, किन्तु बूटो का इतना अधिक स्टाक नही रखा जाता।

सांख्यिकी की अपूर्णताएँ।

§7. ऊपर उल्लेख की गयी कठिनाइयाँ आधारभूत हैं, किन्तु कुछ और भी ऐसी कठिनाइयाँ है जो प्रायः हमारे सांख्यिकी विवरणों की अवश्यम्भावी त्रुटियो के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होती है। यदि सम्भव हो तो हम कीमतो की एक ऐसी सूची बनाना चाहते है जिस पर किसी बाजार में किसी निश्चित समय में किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओ को खरीदने के लिए क्रेता तैयार रहते हैं। पूर्ण बाजार एक क्षेत्र है जो चाहे बडा हो या छोटा, जिसमें अनेक क्रेता और विक्रेता होते है जो इतने अधिक सतर्क और एक दूसरे की गतिविधियो से इतने अधिक सुपरिचित रहते है जिससे समूचे क्षेत्र मे किसी वस्तु की कीमत व्यावहारिक रूप मे समान ही रहती है। किन्तु ऐसी परिस्थिति मे जब लोग अपने निजी उपभोग के लिए, न कि व्यापार के लिए, किसी वस्तु को खरीदते है और सदैव बाजार मे होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में नहीं रखते, तो उस समय कोई भी ऐसा माध्यम ज्ञात नही होता जिससे निश्चित रूप से यह पता लग सके कि बहुत से सौदों के लिए क्या-क्या कीमतें दी जाती हैं। पुनः किसी बाजार की भौगोलिक सीमाएँ कदाचित ही स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं, इन्हे केवल उन्ही स्थितियो मे जाना जा सकता है जब ये समुद्र या आयात-कर स्थान के कटघरे में अंकित होकर

गुजरती है, और कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ स्वदेशीय उपभोग के लिए उत्पादित वस्तुओं के सच्चे सांख्यिकी उपलब्ध हों।

व्यापारियों के भंडार में वृद्धि का उपभोग में वृद्धि के रूप में अनुचित अर्थ लगाया जाता है।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार के सांख्यिकी एकत्रित किये जाते हैं उनमें भी सामान्यतः कुछ संदिग्धता रहती है। इनसे साधारणतया यह प्रतीत होता है कि जैसे ही वस्तुएँ व्यापारियों के पास जाती हैं उनका उपभोग हो जाता है, और परिणामतः व्यापारियों के भंडार मे होने वाली वृद्धि को उपभोग मे होने वाली वृद्धि से आसानी से अलग नही किया जा सकता। किन्तु ये दोनों अलग-अलग कारणो से प्रभावित होती है। किसी वस्तु की कीमत मे वृद्धि से उस वस्तु का उपभोग कम हो जाता है, किन्तु यदि कीमतें बढती हुई दिखयी दे तो सम्भवतः, जैसा कि पहले भी देख चुके हैं, व्यापारी लोग अपने भंडारो मे वृद्धि करने लगेंगे।[1]

वस्तु के गुण म परिवर्तन।

इसके पश्चात् निश्चित रूप से यह पता लगाना कठिन है कि जिन वस्तुओं का उल्लेख किया गया है वे एक ही प्रकार की है। किसी शुष्क ग्रीष्म ऋतु के बाद का गेहूँ असाधारण रूप मे अच्छा होता है, और इसके बाद वाले सस्य वर्ष में कीमतें वास्तविक कीमतो से ऊँची प्रतीत होती हैं। इस बात के लिए इस समय गंजाइश रखना सम्भव है जब विशेष कर कैलीफोर्निया का शुष्क गेहूँ एक प्रकार का मान स्थापित करता है। किन्तु अनेक प्रकार के शिल्प-निर्माण सम्बन्धी वस्तुओ के गुणो मे परिवर्तन के लिए उचित छूट देना बिलकुल असम्भव है। यही कठिनाई चाय जैसी वस्तुओ के सम्बन्ध में भी उत्पन्न होती है। आधुनिक वर्षों में चीन की हल्की चाय के बदले मे भारत की अधिक तेज चाय का प्रयोग करने के कारण चाय के उपभोग मे जो वास्तविक वृद्धि हुई है वह आँकड़ो द्वारा प्रदर्शित वृद्धि से अधिक है।

उपभोग की सांख्यिकी पर टिप्पणी

मांग के नियमों का आरंभिक

बहुत से राष्ट्रों द्वारा वस्तुओं के कुछ निश्चित वर्गों के सम्बन्ध मे उपभोग के सामान्य सांख्यिकी प्रकाशित किए जाते हैं। किन्तु आंशिक रूप से अभी उल्लेख किये गये कारणों द्वारा कीमतों तथा क्रय की मात्राओ में परिवर्तनो के आकस्मिक सम्बन्ध

---

1 कर के प्रभावों की समीक्षा करते समय कर लगने के पूर्व तथा इसके पश्चात् उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की तुलना करने का प्रचलन है। किन्तु ऐसा करना विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि व्यापारी लोग जब यह प्रत्याशा करते है कि कर लगने वाला है तो वे कर लगने के पूर्व ही बहुत बड़े भंडार एकत्र कर लेते हैं और उन्हें कुछ समय बाद तक थोड़ी ही मात्रा क्रय करने की आवश्यकता होती है। जब किसी कर की मात्रा घटा दी जाती है तब स्थिति इसके विपरीत होती है। यही नहीं ऊँचे करों के लगने से झूठे विवरणों को प्रोत्साहन मिलता है। दृष्टान्त के रूप में सन् 1766 में रौकिंघम मंत्रालय द्वारा कर की मात्रा 6 पेंस के स्थान पर 1 पेंस प्रति गैलन कर देने से बोस्टन में सीरा (Molasses) का सामान्य आयात 50 गुना बढ़ गया। किन्तु इसका मुख्य कारण यह था कि कर के केवल 1 पेंस प्रति गैलन होने से इसका चोरी से आयात करने की अपेक्षा कर देकर आयात करना अधिक सस्ता था।

का पता लगाने मे, या अनेक प्रकार के उपभोग की वस्तुओं को समाज के विभिन्न वर्गों में वितरित करने में, हम इनसे बहुत थोड़ा ही लाभ उठा पाते है।

अध्ययन कठिन है, किन्तु व्यापारी लोग अपने लेखों का विश्लेषण करके इसके अध्ययन को बहुत आगे बढ़ा सकते हैं।

जहाँ तक पहले उद्देश्य का, अर्थात् कीमत में परिवर्तनों के फलस्वरूप उपभोग में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित नियमों को ढूंढ निकालने का प्रश्न है, इसे जेवन्स द्वारा (Theory, पृष्ठ 11–12 मे) दुकानदार के बहीखातों के बारे में दिये गये संकेत से भलीभाँति अनुमानित किया जा सकता है। एक दुकानदार या किसी सहकारी गोदाम का प्रबन्धक किसी औद्योगिक नगर के श्रमिक के निवास-स्थान से पर्याप्त सत्यता के साथ यह पता लगा सकता है कि उसके ग्राहकों के विशाल समूह की वित्तीय स्थिति कैसी है। वह यह मालूम कर सकता है कि कितनी फैक्टरियाँ कार्य कर रही है, और हफ्ते मे कितने घंटे काम किया जाता है। और वहाँ उसे मजदूरी की दर में जो भी मुख्य परिवर्तन हुए हों, ज्ञात हो जावेंगे। वस्तुतः ऐसा करना उसका अपना एक नित्य का कार्यक्रम हो जाता है। और एक नियम की भाँति उसके ग्राहक अपने साधारण उपभोग की वस्तुओं के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों का शीघ्र ही पता लगा लेते हैं। अतः वह बहुधा यह देखेगा कि किसी वस्तु की कीमत के घटने से उसके उपभोग में वृद्धि होगी। यदि कोई अन्य वाधकारक कारण न उत्पन्न हों तो कीमत की कमी का प्रभाव शीघ्रतापूर्वक पड़ेगा। जहाँ-कहीं मार्ग में विघ्न-बाधाएँ पहुँचने वाले कारण विद्यमान हों, वहाँ उनके प्रभावों को आँकने में वह बहुधा समर्थ होगा। दृष्टान्त के रूप मे, वह जान लेगा कि जैसे ही शीतऋतु का आगमन होगा, मक्खन तथा सब्जियों के दाम बढ़ जायेंगे किन्तु मौसम ठंडा होने के कारण लोग पहले की अपेक्षा मक्खन की अधिक चाह करेंगे और सब्जियों की कम। और इस कारण जब जाड़ों मे मक्खन तथा सब्जी दोनो के भाव तेज हो जाते है तो यह सब्जियों के उपभोग में केवल कीमतों के बढ़ जाने के कारण होने वाली कमी की अपेक्षा अधिक कमी की आशा करेगा, किन्तु मक्खन के उपभोग मे वह इतनी कमी की आशा नही करेगा। यदि दो निकटवर्ती शीत ऋतुओं में उसके ग्राहक लगभग समान रूप से अगणित रहे हों और उन्हे लगभग समान दर पर मजदूरी मिलती हो, और यदि इनमें से एक में दूसरे की अपेक्षा मक्खन के दाम कही अधिक ऊँचे रहे हो तो उसके दोनों शीत-ऋतुओं के बहीखातो की तुलना करने से कीमत मे परिवर्तनो का उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव को अच्छी तरह निदर्शित किया जा सकता है। वे दुकानदार जो समाज के अन्य वर्गों को वस्तुएँ देते हैं उन्हे भी इस स्थिति में होना चाहिए कि वे यदा-कदा अपने ग्राहकों के सम्बन्ध में इस प्रकार के तथ्यों को प्रस्तुत कर सकें।

निर्धन व्यक्तियों द्वारा सस्ती वस्तुओं का उपभोग करने से इस बात

यदि समाज के विभिन्न वर्गों के लोग पर्याप्त सख्या मे माँग की तालिकाओं को एकत्रित कर सकें तो इनसे कीमतों के अधिकतम अन्तर के कारण कुल माँग में होने वाले परिवर्तन को अप्रत्यक्ष रूप में मापा जा सकेगा, और इस प्रकार उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकेगा जिसे अन्यथा प्राप्त करना असम्भव है। क्योकि सामान्य नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत दो सकुचित सीमाओं के बीच उतरती-चढ़ती रहती है, और अतएव सांख्यिकी द्वारा प्रत्यक्ष रूप से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि यदि इस वस्तु की कीमत 5 गुनी अथवा इसके पाँचवें भाग के बराबर होती तो

का संकेत मिलता है कि इस वस्तु के महँगे हो जाने पर धनीवर्ग में सम्भवतः कितना परिवर्तन आ जायेगा।

इस वस्तु का कितना उपभोग किया जाता। किन्तु यदि इसकी कीमत बहुत ऊँची होती तो इसका केवल धनी व्यक्ति उपभोग करते, और यदि इसकी कीमत बहुत कम होती तो इसका उपभोग अधिकांश रूप में श्रमिक वर्ग ही करते। यदि वर्तमान कीमत मध्यम वर्ग अथवा श्रमिक वर्गों की आय की दृष्टि से अधिक ऊँची हो तो वर्तमान कीमतों पर उनके माँग के नियमों के आधार पर हम धनी व्यक्तियों की उस अवस्था में माँग का अनुमान लगा सकते है जब कि कीमतें यहाँ तक कि उनकी आय के अनुपात से बहुत ऊँची हों। इसके विपरीत यदि वर्तमान कीमत धनी व्यक्तियों की आय के साधनों के अनुपात मे साधारण हो तो उनकी माँग के अनुसार हम श्रमिक वर्ग की आय को दृष्टि मे रखते हुए साधारण कीमतो पर इसकी माँग का अनुमान लगा सकते है। माँग के आंशिक नियमो को इस प्रकार सम्मिश्रित करने से ही हम पूर्णतया भिन्न-भिन्न कीमतो के सम्बन्ध मे एक सही नियम तक पहुँचने की आशा कर सकते है। (अर्थात् किसी वस्तु की सामान्य माँग रेखा को प्रचलित कीमत के बिलकुल ही निकट रखने के अतिरिक्त तब तक विश्वासपूर्वक चित्रित नही किया जा सकता जब तक समाज के विभिन्न वर्गों की आंशिक माँग रेखाओ से इसे मिला न दिया जाय। इस अध्याय के दूसरे अनुभाग से इसकी तुलना कीजिए।)

जब शीघ्र उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की माँग को किसी निश्चित नियम द्वारा कुछ अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है तब ही न कि इसके पहले इन पर आश्रित उन गौण माँगो के सम्बन्ध मे—अर्थात् शिल्पकार तथा अन्य लोगों के श्रम, मशीनो, फैक्टरियो, रेलवे के सामान और उत्पादन के अन्य साधनो की माँग के सम्बन्ध में जो बिक्री की वस्तुओ के उत्पादन मे सहयोग देते हैं—इसी प्रकार का विचार करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। चिकित्सा कार्य मे लगे व्यक्तियो, घरेलू नौकरो तथा उन सभी लोगो के कार्य की माँग जो सीधे उपभोक्ताओ के लिए सेवाएँ प्रदान करते हैं, शीघ्र उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की माँग की ही भाँति होती हैं, और इसी भाँति इसके नियमो का भी पता लगाया जा सकता है।

विभिन्न वर्गों के लोगों के आय-व्ययकों को संग्रहीत करना एक और भी विधि है।

यह पता लगाना है कि समाज के विभिन्न वर्गों के लोग अपने व्यय को आवश्यक तथा आराम एवं विलास की वस्तुओ के बीच, केवल वर्तमान समय मे सुख देने वाली वस्तुओ तथा भौतिक एवं नैतिक शक्तियों को समृद्धि करने वाली वस्तुओ के बीच, तथा अन्तिम रूप मे उन वस्तुओ के बीच जो निम्नतर आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और जो उच्चतर *आवश्यकताओ को उद्दीप्त तथा चेतना प्रदान करती है,* कैसे विभाजित करते है, बहुत महत्वपूर्ण है, और एक कठिन कार्य भी है। गत वर्षों मे यूरोप में इस दिशा मे अनेक प्रयास किये गये है, और अभी हाल ही मे न केवल वही अपितु अमेरिका और इंग्लैंड मे भी इस विषय मे तीव्र रुचि से खोजबीन की जा रही है।[1]

---

1 प्रसिद्ध संख्याशास्त्री ऐंजिल (Engel) द्वारा सन् 1857 में सैक्सोनी में निम्न, मध्यम तथा श्रमिक वर्गों के उपभोग को प्रदर्शित करने के लिए बनायी गयी सारणी को यहाँ पर उद्धृत किया जा सकता है, क्योंकि इसने बाद में होने वाले अध्ययनों का पथ-प्रदर्शन किया है, और यह तुलना का एक माध्यम भी रही है। यह इस प्रकार है:—

व्यय की मदें	किसी ऐसे श्रमिक के परिवार के खर्चों का अनुपात जिसकी वार्षिक आय—		
	45 पौंड से 60 पौंड तक हो	90 पौंड से 120 पौंड तक हो	150 पौंडसे 200 पौंड तक हो
1. केवल भोजन	62%	55·0	50·0%
2. वस्त्र	16%	18·0	18·0%
3. निवास	12%	12·0	12·0%
4. प्रकाश तथा ईंधन	5%	5.0	5·0%
5. शिक्षा	2%	3.5	5·5%
6. कानूनी संरक्षण	1%	2·0	3·0%
7. स्वास्थ्य निगरानी	1%	2·0	3·0%
8. आराम तथा मनोरंजन	1%	2.5	3·5%
कुल	100%	100·0%	100·0%

श्रमिक लोगों के आय-व्ययकों को बहुधा संग्रहीत किया गया है और उनकी तुलना की गयी है। किन्तु इन आंकड़ों में भी यह कमी है कि वे लोग जो स्वेच्छानुसार इस प्रकार के विवरण बनाने का कष्ट करते हैं औसत व्यक्ति नहीं होते। वे लोग भी औसत व्यक्ति नहीं होते जो सतर्कतापूर्वक अपना लेखा तैयार रखते हैं, और जब लेखे स्मरण शक्ति के आधार पर अनुपूरित किये जाते हैं, विशेषकर जब इन लेखों को दूसरों के देखने के लिए एक साथ रख दिया जाता है, तब यह स्वाभाविक है कि स्मरणशक्ति भी इस प्रकार के विचारों से प्रभावित हो जाय कि द्रव्य को कैसे खर्च करना चाहिए। घरेलू तथा सार्वजनिक अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्रों के बीच एक ऐसा सीमा-स्थल है जिसके सम्बन्ध में वे लोग अद्भुत कार्य कर सकते हैं जो अधिक सामान्य तथा गूढ़ चिन्तन (Abstract speculation) में रुचि नहीं रखते।

बहुत समय पूर्व हेरीसन (Harrison), पेट्टी (Petty), कॅंटिलन (Cantillon) (जिसके खोये हुए 'Supplement' में कुछ श्रमिकों के आय-व्ययक निहित प्रतीत होते हैं), आर्थर यंग (Arthur Young) माल्थस (Malthus) तथा अन्य विचारकों ने इस विषय से सम्बन्धित कुछ जानकारी प्राप्त की थी। गत शताब्दी के अन्त में इडन (Eden) ने श्रमिक लोगों के आय-व्ययकों का संग्रह किया था, और 'निर्धन-सहायता, फॅक्टरियों, आदि के आयोगों की बाद की रिपोर्टों' में श्रमिक वर्गों के व्यय के सम्बन्ध में बहुत-सी विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः इन विषयों की हमारी जानकारी में प्रति वर्ष सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत सूत्रों से कुछ-न-कुछ अभिवृद्धि होती रहती है।

यह ध्यान रहे कि ले प्ले (le Play) की वृहत् और चिरस्थायी Les Ouvriers Europeens की रीति में कुछ सतर्कतापूर्वक छांटे गये परिवारों के घरेलू जीवन

के सभी विवरणों का गहन अध्ययन किया गया है। इस कार्य के सुचारुरूप से संचालन में विषय-चयन के निर्णय तथा उनके विश्लेषण में अन्तर्दृष्टि एवं सहानुभूति की भावना के अनुपम सम्मिश्रण की आवश्यकता होती है। यदि सर्वोत्तम ढंग से ऐसा किया जाय तो सभी रीतियों में यह सबसे उत्तम प्रतीत होती है, किन्तु जन-साधारण के हाथों में इससे निकलने वाले सामान्य निष्कर्ष उन निष्कर्षों से कहीं अधिक अविश्वसनीय हो सकते हैं जो अधिक तेजी से विस्तृतरूप में असंख्य पर्यवेक्षणों को संग्रहीत कर, उन्हें यथासम्भव सांख्यिकी रूप में संक्षिप्त कर, और उन व्यापक औसतों को निकाल कर प्राप्त किये जाते हैं जो अशुद्धियों एवं स्वभावगत विलक्षणताओं के प्रभावों को कुछ सीमा तक विफल कर देते हैं।

अध्याय 5,

एक ही वस्तु के अनेक उपयोगों में चयन

तात्कालिक तथा आस्थगित उपयोग

§1. आदिकालीन गृहस्वामिनी जब यह देखती है कि साल के कर्तन (Shearing) से लच्छियों की एक सीमित संख्या प्राप्त होती है तो वह सम्पूर्ण परिवार के कपड़ों की आवश्यकताओं पर विचार करती है, और सूत का इस प्रकार वितरण करने का प्रयत्न करती है कि उससे परिवार का अधिकतम कल्याण हो। इसके वितरण करने के पश्चात् यदि वह यह देखे कि अन्तरवस्त्रों (Vests) की अपेक्षा मोजो के लिए उसने सूत का अधिक प्रयोग नही किया तो वह यह अनुभव करेगी कि वह इसका समुचित वितरण करने मे असफल रही। इसका अभिप्राय यह हुआ कि वह यह ठीक-ठीक अनुमान न लगा सकी कि उसे मोजों तथा अन्तरवस्त्रों को बनाने मे सूत का प्रयोग कहाँ पर बन्द कर देना चाहिए था। उसने अन्तरवस्त्रो को बनाने मे सूत का बहुत अधिक प्रयोग किया, किन्तु मोजे बनाने मे इसका पर्याप्त रूप में प्रयोग नही किया, और इस प्रकार जिस स्तर पर उसने वास्तव में सूत का प्रयोग बन्द किया उस स्तर पर मोजों मे प्रयुक्त सूत का तुष्टिगुण अन्तरवस्त्रों मे लगे सूत के तुष्टिगुण की अपेक्षा अधिक था। किन्तु इसके विपरीत यदि वह ठीक स्तर पर मोजो और अन्तरवस्त्रो का उत्पादन बन्द कर दे तो वह ठीक उतने ही मोजे तथा अन्तरवस्त्र बनायेगी जिनसे मोजो तथा अन्तरवस्त्रों के उत्पादन मे प्रयुक्त सूत की अन्तिम खेप मे समान तुष्टिगुण प्राप्त हो। यह एक सामान्य सिद्धान्त को चित्रित करता है जिसका वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है:—

किसी व्यक्ति के आय के साधनों का विविध आवश्यकताओं की तुप्ति में वितरण।

यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु है जिसका अनेक प्रकार से प्रयोग किया जा सके तो वह इसका अनेक प्रयोगों मे इस प्रकार वितरण करेगा कि इससे सीमान्त तुष्टिगुण प्रत्येक प्रयोग मे समान हो, क्योकि यदि एक प्रयोग की अपेक्षा दूसरे प्रयोग में इसका सीमान्त तुष्टिगुण अधिक हो तो इसका *कुछ अंश द्वितीय प्रयोग से निकाल* कर प्रथम प्रयोग मे लगाने पर उसे लाभ होगा।[1]

आदिकालीन अर्थव्यवस्था, जिसमे बहुत कम स्वतंत्र विनिमय होता है, की एक बड़ी हानि यह है कि एक व्यक्ति एक वस्तु, उदाहरण के लिए ऊन, को इतनी अधिक मात्रा में सहज मे ही प्राप्त कर लेता है कि इसका सभी सम्भव प्रयोगों मे उपयोग हो

किन्तु किसी व्यक्ति के पास सभी प्रयोगों के

---

1 हमारे उदाहरण का सम्बन्ध वास्तव में घरेलू उपभोग की अपेक्षा घरेलू उत्पादन से है। किन्तु ऐसा होना लगभग अवश्यमभावी था, क्योंकि तुरत उपभोग की बहुत कम ऐसी वस्तुएं होती हैं जो विविध प्रकार के प्रयोगों में काम आ सकती हैं। विभिन्न प्रयोगों में साधनों के वितरण का सिद्धान्त सम्भरण विज्ञान की अपेक्षा मांग विज्ञान में कम महत्वपूर्ण एवं कम रोचक रहता है। दृष्टान्त के रूप में भाग 5, अध्याय 3 का अनुभाग 3 देखिए।

लिए एक वस्तु की बहुत अधिक तथा दूसरी वस्तु की बहुत कम मात्रा हो सकती है।

जाने के पश्चात् प्रत्येक उपयोग मे सीमान्त तुष्टिगुण कम होता है; और ठीक इसी समय वह किसी दूसरी वस्तु, उदाहरणतः लकडी, को इतनी कम मात्रा मे प्राप्त करता है कि इसका उसके लिए सीमान्त तुष्टिगुण बहुत अधिक होता है। इसी बीच उसके कुछ पड़ोसियो को ऊन की बड़ी आवश्यकता हो सकती है, तथा उनके पास आवश्यकता से अधिक लकड़ी भी है। यदि प्रत्येक अपने पास से वह वस्तु दे दे जिसका तुष्टिगुण उसके लिए कम हो और बदले मे अधिक तुष्टिगुण वाली वस्तु ले ले तो इस प्रकार के विनिमय से प्रत्येक को लाभ होगा। किन्तु वस्तु विनिमय से इस प्रकार का समायोजन करना उकता देने वाला कठिन काम होता है।

वस्तु-विनिमय एक आंशिक उपाय है।

जहाँ कुछ ऐसी साधारण वस्तुएँ होती है जिनमे से प्रत्येक को घरेलू कार्य के द्वारा अनेक प्रयोगो मे लाया जा सकता है वहाँ वास्तव मे वस्तु-विनिमय की कठिनाई इतनी अधिक नही होती। उदाहरण के लिए, बुनकर-पत्नी तथा कतकर-पुत्रियाँ ऊन के विभिन्न प्रयोगों के सीमान्त तुष्टिगुणो का ठीक प्रकार समायोजन करती है, जब कि पति तथा पुत्र ऐसा ही लकडी के सम्बन्ध मे करते हैं।

द्रव्य का प्रत्येक उपयोग में इस प्रकार वितरण किया जा सकता है जिससे प्रत्येक प्रयोग में इसका सीमान्त तुष्टिगुण समान रहे।

§2. किन्तु जब वस्तुएँ बहुत अधिक तथा अति विशिष्ट प्रकार की होती हैं तब द्रव्य अथवा सामान्य क्रय-शक्ति के स्वतन्त्र प्रयोग की अविलम्ब आवश्यकता होती है, *क्योंकि केवल उसी का असीमित प्रकार की खरीददारियो मे सुविधापूर्वक प्रयोग किया* जा सकता है। किसी द्रव्यिक अर्थ व्यवस्था मे व्यय की प्रत्येक मद मे अनिश्चितता की सीमा को इस भाँति समायोजित करके अच्छा प्रबन्ध किया जाता है जिससे एक शिलिंग मूल्य वाले माल का सीमान्त तुष्टिगुण प्रत्येक दशा मे समान हो। और प्रत्येक व्यक्ति इस प्रतिफल को निरन्तर यह देखकर प्राप्त करेगा कि कोई ऐसी वस्तु तो नही है जिसमे वह इतना अधिक व्यय कर रहा है कि व्यय की उस मद मे से तनिक बचत करके उसे दूसरी मद मे लगाने से उसको लाभ होगा।

उदाहरण।

उदाहरणत. इस प्रकार जब एक लिपिक इस शका मे हो कि क्या वह शहर तक सवारी मे जाय या पैदल जाय और इस प्रकार बचायी गयी धनराशि से दोपहर के भोजन के साथ कुछ अतिरिक्त चीजें ग्रहण करे, तो *वह धन व्यय करने के दो विभिन्न तरीको* के सीमान्त तुष्टिगुण को एक दूसरे के प्रति मापता है। और जब एक अनुभवी गृह-स्वामी किसी तरुण दम्पति से घर के लेखे को रखने के महत्व को समझाता है तो इस सलाह का मुख्य प्रयोजन यह है कि वे फर्नीचर एवं अन्य वस्तुओ पर आवेग में आकर अधिक धनराशि खर्च करने से बचे, क्योंकि यद्यपि इन वस्तुओ की कुछ मात्रा वास्तव मे आवश्यक है तथापि जब इनको पर्याप्त मात्रा मे खरीदा जाता है तो इनसे इनकी लागत के अनुपात में अधिक (सीमान्त) तुष्टिगुण नही मिलता और जब एक नव-दम्पति वर्ष के अन्त में अपने वार्षिक आय-व्ययक पर दृष्टि डालते है, और सम्भवतः वही पर अपने व्यय में कमी करना आवश्यक समझते है, तब वे विभिन्न वस्तुओ के (सीमान्त) तुष्टिगुण की तुलना करते हैं। एक वस्तु पर एक पौंड व्यय कम करने से इसके तुष्टिगुण मे होने वाली हानि को दूसरी वस्तु पर उतना ही व्यय कम करने से होने वाली हानि से माप कर वे इनका इस प्रकार चयन (Parings) करते हैं जिससे तुष्टिगुण

घरेलू लेखों का एक प्रयोग।

की कुल हानि न्यूनतम हो, तथा उनके पास बचे हुए तुष्टिगुण का सम्पूर्ण योग अधिकतम हो।[1]

भावी लाभों को वर्तमान लाभों से संतुलित करना।

§3. किसी वस्तु का जिन विभिन्न प्रयोगों मे वितरण किया जाता है उन सबका तत्काल प्रयोग होना जरूरी नही है, कुछ का उपयोग वर्तमान मे तथा कुछ का भविष्य मे हो सकता है। एक जागरूक व्यक्ति अपनी आय के साधनों को उनके अनेकों, वर्तमान एवं भावी, प्रयोगों में इस प्रकार वितरित करने का प्रयत्न करेगा कि उसको प्रत्येक प्रयोग से समान सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त हो। किन्तु दूर भविष्य मे प्राप्त होने वाले आनन्द के वर्तमान तुष्टिगुण का अनुमान लगाते समय एक तो उसकी अनिश्चितता को (यह एक **विषयगत** सम्पत्ति है जिसका अनुमान सभी जानकार लोग एक ही विधि से लगाते है) और दूसरा सुदूर आनन्द तथा वर्तमान आनन्द के मूल्य मे अन्तर को (यह एक **आत्मगत** सम्पत्ति है जिसका अनुमान विभिन्न व्यक्ति अपने वैयक्तिक आचरणों एवं तत्कालीन परिस्थितियो के अनुसार विभिन्न प्रकार से लगाते है) ध्यान में रखना चाहिए।

भावी हितों में विभिन्न दरों पर 'कटौती' की जाती है।

यदि लोग भविष्यगत हितो को अपने वर्तमान समय के वैसे ही हितों के समान आवश्यक समझे तो सम्भवतः वे अपने आनन्दो एव अन्य सन्तोषो का जीवन पर्यन्त समान वितरण करने का प्रयास करेंगे और वे प्रायः अपने वर्तमान आनन्दो का भविष्य में प्राप्त होने वाले ऐसे समान आनन्दो के लिए, जिनकी प्राप्ति के बारे मे वे निश्चित हो, त्याग करने के इच्छुक होंगे। किन्तु वास्तव मे मानव प्रकृति एसी बनी है कि किसी भावी हित के वर्तमान मूल्य को आँकते समय बहुत से लोग प्रायः उसके भावी मूल्य मे से बट्टे के रूप मे दूसरी कटौती करते है। यह बट्टा इस लाभ को भविष्य के लिए स्थगित करने की अवधि के साथ-साथ बढ़ता जाता है। एक व्यक्ति किसी भविष्यगत लाभ का मूल्य उतना ही निश्चित करता है जितना वह वर्तमान लाभ का करता है, जबकि दूसरा व्यक्ति, जिसमे भविष्य को पहिचानने की कम शक्ति है, तथा धैर्य एवं

---

1 अध्याय 4 के अनुभाग 8 में उल्लेख किये गये श्रमिक वर्ग के आय-व्ययक लोगों को अपने साधनों को विभिन्न प्रयोग में बुद्धिमत्तापूर्वक वितरित करने के लिए सहायता पहुँचाने में बहुत महत्वपूर्ण सेवाएँ अर्पित करते हैं जिससे प्रत्येक प्रयोग में समान सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त हो सके। घरेलू अर्थ-व्यवस्था की महत्वपूर्ण समस्याओं का जितना सम्बन्ध विवेकशील व्यय के साथ है उतना ही बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से भी होता है। एक फ्रांसीसी गृहणी की अपेक्षा अँग्रेज तथा अमरीकी गृहणियाँ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आय के सीमित साधनों का कम उपभोग कर पाती हैं। इसका कारण यह नहीं कि वे क्रय करना नहीं जानतीं बल्कि यह है कि वे फ्रांसीसी गृहणियों की तुलना में कम खर्चीली बोटियों (Joints) तथा सब्जियों, आदि जैसे कच्चे माल से अच्छे किस्म की तैयार वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकतीं। घरेलू अर्थ-व्यवस्था का सम्बन्ध उपभोग विज्ञान से बहुधा बताया जाता है: किन्तु यह पूर्णतया सत्य नहीं है। सभी दशाओं में अंग्रेज जाति के (Anglo-Saxon) श्रमिक वर्गों के विनम्र लोगों की घरेलू अर्थ व्यवस्था के सर्वाधिक दोष उपभोग की अपेक्षा उत्पादन के ही दोष हैं।

आत्मनियनण की भी कमी है, भविष्य मे मिलने वाले लाभ की अपेक्षाकृत कम सोचेगा। और एक ही व्यक्ति की मनोवृत्ति समयानुसार भिन्न-भिन्न होती है, वह कभी तो वर्तमान आनन्द के प्रति धैर्यहीन एवं लालची बन जाता है, किन्तु कभी वह भविष्य को ही अधिक महत्व देता है और वह भविष्य के लिए उन सभी आनन्दो को स्थगित करने को इच्छुक रहता है जिन्हे सुविधानुसार बाद मे सतुष्टि के लिए स्थगित किया जा सकता है। कभी वह किसी भी अन्य वस्तु के विषय मे न सोचने की मनोवृत्ति मे होता है तो कभी उन बच्चो के समान बन जाता है जो अपने भोजन में से आलूबुखारों को खाने के लिए तुरन्त उठा लेते है, और कभी उन बच्चो के समान व्यवहार करता है जो उनको अन्त मे खाने के लिए एक ओर रख देते हैं। और प्रत्येक परिस्थिति मे भविष्य-गत लाभ मे कटौती की दर की गणना करते समय हमे सम्भावित आनन्दो के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए।

आनन्द के शाश्वत साधनों को प्राप्त करने एवं उन पर स्वामित्व होने की इच्छा।

विभिन्न लोग जिन दरो से भविष्य के प्रति बट्टा काटते है उनसे न केवल उनकी बचत करने की प्रवृत्ति प्रभावित होती है, जैसी कि इस सम्बन्ध मे आम धारणा है, अपितु अधिक, किन्तु क्षणभगुर, आनन्द प्रदान करने वाली वस्तुओ की अपेक्षा उन वस्तुओ को खरीदने की पद्धति भी प्रभावित करती है जो स्थायी आनन्द की मूल जड है, जैसे मदिरा पान करने की अपेक्षा नया कोट खरीद लेना, अथवा शीघ्र टूटने वाले चमकदार फर्नीचर लेने की अपेक्षा साधारण किस्म का टिकाऊ फर्नीचर पसन्द करना।

विशेषकर ऐसी ही वस्तुओ के सम्बन्ध मे स्वामित्व का आनन्द अनुभव होता है। बहुत से लोगो को सकीर्ण अर्थ मे सामान्य आनन्दो से प्राप्त होने वाले सन्तोष की अपेक्षा केवल स्वामित्व होने की भावना से अधिक सन्तोष प्राप्त होता है। उदाहरण के रूप मे किसी भूमि के स्वामित्व से उपलब्ध प्रसन्नता बहुधा लोगो को उस भूमि के लिए इतना अधिक मूल्य चुकाने के लिए प्रेरित करती है कि उन्हे अपने विनियोजन के लिए बहुत कम प्रतिफल मिलता है। भूमि के स्वामित्व मे कभी तो केवल स्वामित्व की भावना से ही तथा कभी उससे प्राप्त होने वाले विशिष्ट स्थान के कारण प्रसन्नता होती है। पहले कारण की अपेक्षा दूसरे कारण से उत्पन्न प्रसन्नता कभी तो अधिक होती है और कभी कम, और सम्भवत इन दोनो के बीच निश्चित अन्तर जानने मे कोई भी व्यक्ति न अपने को, न अन्य लोगो को, पर्याप्त समर्थ समझता है।

किन्तु वास्तव में हम भविष्य में होने वाले हित की 'मात्रा' को आंक नहीं सकते।

§4. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हम किसी व्यक्ति द्वारा विभिन्न समयों पर उपभोग किए जाने वाले दो हितो की मात्राओ मे तुलना नही कर सकते। जब कोई व्यक्ति एक आनन्ददायक कार्य को स्थगित करता है तो वह आनन्द को स्थगित नही करता, वस्तुत वह एक प्रस्तुत आनन्द का त्याग कर उसके बदले मे दूसरे आनन्द को ग्रहण करता है, अथवा भविष्य मे ग्रहण करने की प्रत्याशा करता है और जब तक हमे इस विषय की सभी परिस्थितियो से जानकारी नही हो जाती, हम यह नही कह सकते कि वह स्थगित किये जाने वाले तात्कालिक आनन्द की अपेक्षा भविष्य मे अधिक आनन्द मिलने की प्रत्याशा करता है। इस प्रकार यद्यपि हम उस दर को जानते हैं जिससे वह भावी आनन्ददायक घटनाओ मे कटौती करता है, जैसे कि शीघ्र तृप्ति होने

के निमित्त एक पौंड व्यय करना, तथापि हम यह नहीं जान पाते कि वह किस दर से अपने भावी आनन्दों मे कटौती करता है।[1]

किन्तु हम उस दर का जिससे वह दो पूर्व धारणाओ के आधार पर अपने भावी हितों मे कटौती करता है एक कृत्रिम माप प्राप्त कर सकते है। पहली पूर्वधारणा यह है कि वह भविष्य में उतना ही अधिक धनी रहने की प्रत्याशा करता है जितना कि वह अब है, और दूसरी पूर्वधारणा यह है कि धन से क्रय करने की उसकी समर्थता कुछ दशाओं में बढने एव घटने पर भी कुल मिला कर अपरिवर्तित ही रहती है।

भावी लाभों में कटौती

इन पूर्व धारणाओ के आधार पर यदि वह एक वर्ष पश्चात् (अपने एवं अपने उत्तराधिकारियों के प्रयोग के लिए) एक गिन्नी (21 शि०) प्राप्त करने की निश्चिन्तता

---

1 कुछ आनन्दों को अन्य की अपेक्षा अधिक 'तुरत' मानने में बहुधा लोग यह भूल जाते हैं कि एक आनन्द देनेवाली घटना के स्थगित किये जाने से उन परिस्थितियों में परिवर्तन हो सकता है जिनके अन्तर्गत यह घटना घटित होती है, और इससे आनन्द के रूप में भी परिवर्तन आ सकता है। उदाहरण के रूप में यह कहा जाता है कि एक युवा पुरुष अपने ऐसे अल्पाइन (Alpine) पर्यटनों के आनन्दों को कम महत्व देता है जिनकी वह अपने भाग्योदय के पश्चात् व्यवस्था करने की आशा करता है। वह तो बाद की अपेक्षा अभी पर्यटन करना चाहेगा, क्योंकि अब इनसे उसको कहीं अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

पुनः यह भी हो सकता है कि एक आनन्ददायक घटना के स्थगित होने से समय की दृष्टि से एक अनिश्चित वस्तु का असमान वितरण होता है, और इस विशेष वस्तु के सम्बन्ध में सीमान्त तुष्टिगुण का ह्रासनियम अधिक दृढ़ता से लागू होता है। उदाहरण के लिए बहुधा यह कहा जाता है कि खाने का आनन्द विशेष रूप से अविलम्बनीय होता है, और यह निःसन्देह सत्य है कि यदि एक व्यक्ति सप्ताह में 6 दिन बिना भोजन (Dinner) के रहे और सातवें दिन 7 बार भोजन करे तो उसको बहुत हानि होगी, क्योंकि जब वह 6 दिनों के भोजन को स्थगित करता है तो वह 6 प्रकार के भोजनों को खाने से प्राप्त होने वाले आनन्द को ही स्थगित नहीं करता अपितु उनके स्थान पर एक दिन के अधिक खाने के आनन्द की प्रतिस्थापना करता है। पुनः जब कोई व्यक्ति अंडों को शीत-ऋतु के लिए रखता है तो वह यह प्रत्याशा नहीं करता कि वे इस समय की अपेक्षा तब सुवासित (flavoured) हो जायेंगे, अपितु उसको आशा है कि वे तब दुर्लभ हो जायेंगे, और इस प्रकार इस समय की अपेक्षा तब उनसे अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होगा। यह एक भावी आनन्द को कम महत्व देने तथा किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा से भविष्य में मिलने वाले आनन्द में बट्टा काटने के सम्बन्ध में एक व्यक्ति के दृष्टिकोण में स्पष्ट अन्तर दिखाने के महत्व को दर्शाता है, क्योंकि बादवाली दशा में हमें किसी वस्तु से दो अलग-अलग समयों में प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण के अन्तर को ध्यान में रखना होता है किन्तु पहली दशा में हम आनन्द की मात्रा का आंकन करते समय इसे एक बार ही ध्यान में रखते हैं, और इस पर दुबारा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

की दर का कृत्रिम माप।

से अपने वर्तमान व्यय मे से एक पौंड वचत करने का इच्छुक है, किन्तु केवल इच्छुक मात्र है, तो हम कहते है कि वह अपने पूर्ण सुरक्षित भावी हितो मे (केवल मनुष्य की मृत्यु की दशाओ को छोड कर) 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कटौती करता है। और इन पूर्वधारणाओ के आधार पर जिस दर से वह अपने भावी (निश्चित) लाभों मे कटौती करता है, उसी दर से वह मुद्रा बाजार मे द्रव्य मे कटौती कर सकता है।[1]

---

1 यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि उन पूर्वधारणाओं के अतिरिक्त द्रव्य के गुण पर कटौती की दर तथा भावी आनन्दों में कटौती की दर के बीच कोई सीधा सम्पर्क नहीं है। एक व्यक्ति विलम्ब से इतना अधीर हो सकता है कि 10 वर्ष पश्चात् प्राप्त होने वाले आनन्द की आशा उसे किसी ऐसे वर्तमान आनन्द को त्यागने के लिए प्रेरित न करे जिसे वह भावी आनन्द के एक-चौथाई के बराबर समझता है। किन्तु शीतऋतु के लिए अंडों की बचत के सिद्धान्त की ही भाँति यदि उसे 10 वर्ष पश्चात् द्रव्य के इतना कम हो जाने का भय है (और उसके सीमान्त तुष्टिगुण के इतने बढ़ने की सम्भावना है) कि इस समय के एक पौंड की अपेक्षा उस समय के आधा क्राउन से उसको अधिक आनन्द मिले, अथवा एक पौंड से जितना कष्ट दूर होता है उससे अधिक कष्ट का निवारण हो तो वह भविष्य के लिए कुछ भी नहीं बचायेगा, भले ही उसे इसका निसंचय (hoarding) करना पडे। किन्तु यहाँ पर हम ऐसे प्रश्नों में भटक रहे हैं जिनका माँग की अपेक्षा संभरण के साथ अधिक निकट सम्पर्क है। हमको इन पर धन के संचयन तथा तत्पश्चात् ब्याज की दर को निर्धारित करने वाले कारणों से सम्बन्धित विभिन्न बातों के आधार पर पुनः विचार करना होगा।

किन्तु हम यहाँ पर यह विचार करेंगे कि किसी भावी आनन्द के वर्तमान मूल्य को किस प्रकार इस कल्पना के आधार पर संख्यात्मक रूप में मापा जा सकता है कि हम (i) उसकी मात्रा, (ii) यदि वह प्राप्त की जा सकती है तो उसे प्राप्त करने की तिथि (iii) उसके प्राप्त होने की सम्भावना तथा (iv) उस दर को जानते हैं जिसके अनुसार सम्बन्धित व्यक्ति अपने भावी आनन्दों में कटौती करता है।

यदि किसी आनन्द के उपभोग की सम्भावना 3:1 हो जिससे चार में से तीन अवसर इसके पक्ष में हों तो उसकी प्रत्याशा का मूल्य उसके निश्चित मूल्य का तीन-चौथाई होगा। यदि उसके प्राप्त होने की सम्भावना केवल 7:5 हो जिससे बारह में से केवल सात अवसर इसके पक्ष में हों तो उसकी प्रत्याशा का मूल्य उसके निश्चित मूल्य का $\frac{7}{12}$ होगा, और आगे भी ऐसा ही क्रम चलता रहेगा। (यह इसका जीवनांकिक (actuarial) मूल्य है; किन्तु इस तथ्य को भी ध्यान में रखना पड़ता है कि किसी व्यक्ति के लिए किसी अनिश्चित लाभ का सही मूल्य साधारणतया उसके जीवनांकिक मूल्य से कम होता है। यदि पूर्व अनुमानित आनन्द अनिश्चित एवं बहुत समय के बाद प्राप्त होने वाला हो तो हमें इसके पूर्ण मूल्य में से दो प्रकार की कटौती करनी चाहिए। उदाहरण के लिए यह मान लें कि कोई व्यक्ति किसी संतुष्टि के वर्तमान में मिलना निश्चित होने पर उसके लिए 10 शि० देने को तैयार है किन्तु यह संतुष्टि एक वर्ष पश्चात् मिलेगी और उसके प्राप्त होने की सम्भावना 3:1 है। यह भी मान लीजिए कि

अब तक हमने प्रत्येक आनन्द पर अलग से विचार किया है, किन्तु लोगों द्वारा खरीदी जाने वाली बहुत-सी वस्तुएँ स्थायी होती हैं, अर्थात् उनका एक बार के प्रयोग में ही उपभोग नहीं किया जाता। पियानों की भाँति एक स्थायी वस्तु बहुत से आनन्दों का, जो प्रायः दुर्लभ होते हैं, सम्भावित स्रोत है, और एक खरीददार के लिए इसका मूल्य इसकी अनिश्चितता एवं दूरी को विचारते हुए, इसके कुल उपयोग अथवा इससे प्राप्त सभी आनन्दों के बराबर होता है[1]।

स्थायी वस्तुओं के स्वामित्व से भावी आनन्दों की प्रत्याशा।

यह भविष्य की संतुष्टि पर 20 प्र० श० की कटौती करता है। ऐसी स्थिति में उसके लिए उस आनन्द की प्रत्याशा का मूल्य केवल $\frac{3}{4} \times \frac{80}{100} \times 10$ शि० $=6$. शि० होगा। जेवन्स द्वारा रचित Theory of Political Economy के परिचायक अध्याय से इसकी तुलना कीजिए।

1. वास्तव में मोटे ज्ञान से ही यह अनुमान लगाया जाता है, और यदि इसको संख्यात्मक विशुद्धता प्रदान करने का प्रयास किया जाय (गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 5 को देखिए) तो हमें अलग-अलग समयों में मिलने वाले आनन्दों, अथवा अन्य सन्तोषों की सही-सही रूप में तुलना करने की असम्भवता के सम्बन्ध में पिछले एवं इस भाग में उल्लेख की गयी बातों को ध्यान में रखना चाहिए। हमें यहाँ पर भावी आनन्दों पर होने वाली कटौती में घातीय नियम (*Exponential law*) के लागू होने की समान कल्पना को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अध्याय 6

मूल्य तथा तुष्टिगुण

कीमत तथा तुष्टिगुण

§1. अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि वास्तव में किसी वस्तु के लिए जो कीमत दी जाती है वह उस वस्तु को पास में रखने से प्राप्त होने वाले तुष्टिगुण का कहाँ तक प्रतिनिधित्व करती है। यह विषय बहुत विस्तीर्ण है और इससे आर्थिक विज्ञान (Economic science) का बहुत थोडा सम्बन्ध है, किन्तु इस थोडे से सम्बन्ध का भी कुछ महत्व है।

प्राय. यह देखा जा चुका है कि एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए जिस कीमत का भुगतान करता है वह उस कीमत से कभी भी अधिक नही हो सकती, और उसके बराबर भी कदाचित् ही होती है, जिसे वह उस वस्तु से वञ्चित रहने की अपेक्षा देने को तत्पर रहता है। इस कारण इस वस्तु के क्रय करने से उसे जो तृप्ति मिलती है वह सामान्यतया वस्तु की कीमत देने पर इससे होने वाले तृप्ति के त्याग से अधिक होती है, और इस प्रकार उस वस्तु को खरीदने से उसको अतिरिक्त सन्तोष प्राप्त होता है। किसी वस्तु के उपभोग से वञ्चित रहने की अपेक्षा उस वस्तु के लिए उपभोक्ता जो कीमत देने को तैयार रहता है और जो वह वस्तुत. देता है उनका अन्तर इस तृप्ति की बचत का आर्थिक माप है। इसको **उपभोक्ता की बचत** कहा जाता है।

उपभोक्ता की बचत उस लाभ का एक भाग है जो किसी व्यक्ति को अपने 'वातावरण' अथवा संयोग से प्राप्त होता है।

यह स्पष्ट है कि कुछ वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचतें अन्य वस्तुओं से होने वाली इन बचतों की अपेक्षा कही अधिक होती है। ऐसी अनेक आराम तथा विलास की वस्तुएँ हैं जिनकी कीमतें उन कीमतों से बहुत अधिक नीची होती है जिन पर बहुत से लोग उपभोग से वचित रहने की अपेक्षा उन वस्तुओं को खरीदने के लिए तैयार रहते हैं, और अतएव इनसे बहुत अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। दियासलाई, नमक, सस्ता अखबार, अथवा डाक टिकट इसके अच्छे उदाहरण हैं।

उपभोक्ता यदि उन वस्तुओं को कम कीमत पर प्राप्त करता है जिनके उपभोग से वञ्चित रहने की अपेक्षा वह एक ऊँची कीमत देने को तैयार था तो उससे जो लाभ मिलता है उसे अच्छे **अवसरों** द्वारा, अथवा उसके **वातावरण** द्वारा, अथवा कुछ शताब्दी पूर्व प्रयोग किये जाने वाले शब्द की पुनरावृत्ति करते हुए उसके संयोग[1] (Conjuncture)

---

1 यह शब्द जर्मनी के अर्थशास्त्र में बहुत प्रचलित है और आंग्ल अर्थशास्त्र में तीव्र रूप से अनुभव की गयी कमी को पूरा करता है, क्योंकि 'अवसर' तथा 'वातावरण', जो इस शब्द के बदले में प्रयोग किये जाते है, वस्तुतः कभी-कभी ही पथभ्रष्ट करते हैं। वेग्नर (Wagner) का कथन है कि (Grundlegung, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 387) 'संयोग' से "हमारा अभिप्राय सभी तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक तथा कानूनी अवस्थाओं के योग से है, जो श्रम विभाजन तथा वैयक्तिक सम्पत्ति विशेषकर व्यक्तिगत भूमि तथा उत्पादन के भौतिक साधनों पर आधारित होकर राष्ट्रीय जीवन

द्वारा प्राप्त लाभ समझना चाहिए। इस अध्याय में उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की सहायता से मोटेतौर पर उन लाभों मे से कुछ का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया गया है जो एक व्यक्ति अपने वातावरण अथवा अपने संयोग से अर्जित करता है।

उपभोक्ता की बचत और किसी व्यक्ति की मांग का सम्बन्ध।

§2. अपने विचारों को विपद रूप मे व्यक्त करने की दृष्टि से हम यहाँ पर घरेलू उपभोग के लिए क्रय की गयी चाय का उदाहरण लेते है। हम यह भी मान लेते हैं कि यदि चाय की कीमत 20 शि॰ प्रति पौंड हो तो एक व्यक्ति साल मे केवल 1 पौंड खरीदने को प्रेरित होगा। यदि कीमत 14 शि॰ प्रति पौंड हो तो वह 2 पौंड खरीदने के लिए लालायित होता। कीमत के 10 शि॰ होने पर 3 पौंड, 6 शि॰ होने पर 4 पौंड, 4 शि॰ होने पर 5 पौं॰, और 3 शि॰ होने पर वह 6 पौं॰ खरीदता, किन्तु कीमत के वास्तव मे 2 शि॰ प्रति पौंड होने से वह 7 पौंड चाय खरीदता है। अतः 2 शि॰ प्रति पौंड के भाव पर चाय के प्राप्त होने से हमे उसकी उपभोक्ता की बचत का पता लगाना है।

कीमत के 20 शि॰ होने पर उसके 1 पौंड चाय खरीदने के लिए प्रेरित होने से इस बात की पुष्टि होती है कि चाय के उस 1 पौंड से उसे उतना ही अधिक आनन्द अथवा सन्तोष मिलता है जितना उन 20 शि॰ को अन्य वस्तुओं पर खर्च करने से मिलता। जब कीमत घट कर 14 शि॰ हो जाती तो वह यदि चाहे तो केवल 1 पौंड खरीदता रहे। तब 14 शि॰ से वह उस वस्तु को प्राप्त करेगा जो उसके लिए कम से कम 20 शि॰ के मूल्य के बराबर होगी। और उसे इस प्रकार कम-से-कम 6 शि॰ के मूल्य के बराबर अतिरिक्त सन्तोष मिलेगा, या दूसरे शब्दो मे, उसकी उपभोक्ता की बचत कम-से-कम 6 शि॰ होगी। किन्तु अपनी पसन्द से वास्तव मे वह चाय का दूसरा पौंड भी खरीद लेता है जिससे यह प्रकट होता है कि इससे कम-से-कम उसको 14 शि॰ के मूल्य के बराबर तुष्टिगुण मिलता है, और चाय के इस दूसरे पौंड से प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण इसके अतिरिक्त है। वह 28 शि॰ देकर 20+14 शि॰, अर्थात् 34 शि॰ के बराबर तुष्टिगुण प्राप्त करता है। सभी दशाओं में उसका शेष सन्तोष उस वस्तु को खरीदने से घटता नही है किन्तु कम-से-कम 6 शि॰ के मूल्य के बराबर सन्तोष उसे मिलता रहता है। चाय के दो पौंड से कम-से-कम 34 शि॰ के मूल्य के बराबर तुष्टिगुण मिलता है और उसकी उपभोक्ता की बचत कम-से-कम 6 शि॰ के बराबर होती है[1]। क्रय की गयी हर अतिरिक्त मात्रा का पूर्व निश्चित क्रयों से प्राप्त

(Volkswirthschaft) के रूप में वस्तुओं की माँग एवं उनके सम्भरण, और अतः उनके विनिमय मूल्य को, निर्धारित करती है। इस प्रकार का निर्धारण नियमानुसार अथवा कम-से-कम मुख्यतया, स्वामी की इच्छा, उसकी क्रियाओं एवं अकर्मण्यता से परे रहता है।"

1 इस कथन की कुछ और अधिक व्याख्या की जा सकती है, यद्यपि ऐसा करने से जो कुछ अभी तक कहा जा चुका है उसको अन्य शब्दों में दुहराना ही होगा। मूल-पाठ में दी गयी इस शर्त का महत्व कि वह स्वेच्छा से चाय के दूसरे पौंड को खरीदता है, इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि यदि उसे इस शर्त पर कि 14 शि॰ प्रति पौंड

तुष्टिगुण पर जो प्रभाव पड़ता है उसे इस प्रकार की सारणी को बनाते समय ध्यान में रखा गया है, और अतः इनकी दूसरी बार गणना नहीं की जानी चाहिए।

के भाव पर 2 पौंड चाय खरीदने को कहा जाय, तो उसे यह चुनाव करना होगा कि 20 शि० देकर 1 पौंड चाय खरीदी जाय या 28 शि० देकर 2 पौंड चाय खरीद ली जाय: और तब उसके द्वारा 2 पौंड चाय खरीदने से इस बात की पुष्टि नहीं होती कि उसने दूसरे पौंड को अपने लिए 8 शि० से अधिक मूल्य का समझा। किन्तु स्थिति यह है कि वह दूसरे पौंड को बिना किसी शर्त के 14 शि० देकर खरीदता है, और इससे यह सिद्ध होता है कि यह उसके लिए कम-से-कम 14 शि० के बराबर उपयोगी है। (यदि 1 पेनी प्रति बन्द के भाव से उसे बन्द प्राप्त हो सकें किन्तु 7 बन्द 6 पेंस में मिल जायें और वह 7 बन्द खरीदने का निश्चय करे तो हम समझते हैं कि वह अपना छठा पेंस छठें और सातवें बन्द को खरीदने के लिए खर्च करने को तैयार है किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि सातवें बन्द को निश्चय ही खरीदने के लिए वह कितना देने को तैयार होगा।)

कभी-कभी यह भी विरोध प्रकट किया जाता है कि जैसे-जैसे वह अपनी क्रय की मात्राओं को बढ़ाता जाता है, उसकी पहले क्रय की गयी वस्तुओं के लिए आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है और उनका तुष्टिगुण कम होता जाता है। अतः जैसे-जैसे हम माँग कीमत की सूची में निम्न कीमतों की ओर बढ़ते हैं हमें अपनी माँग कीमतों की सूची के पहले के भाग को निरंतर एक निम्नतर पर तैयार करना चाहिए (अर्थात् जैसे-जैसे हम दाहिनी ओर बढ़ते हैं अपनी माँग वक्र को पुनः एक निचले स्तर पर खींचते हैं)। किन्तु इससे उस योजना के सम्बन्ध में गलत धारणाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसके आधार पर कीमतों की सूची तैयार की जाती है। यह आपत्ति निःसन्देह उस समय सार्थक हो सकती थी जब चाय के पौंडों की हर संख्या के साथ दी गयी माँग कीमतों से उन विभिन्न मात्राओं से मिलने वाले औसत तुष्टिगुण का ज्ञान होता। क्योंकि यह सत्य है कि यदि 1 पौंड के लिए वह 20 शि० खर्च करे और दूसरे के लिए केवल 14 शि० खर्च करे तो वह उन दोनों के लिए 34 शि० देगा, अर्थात् औसत रूप में 17 शि० प्रति पौंड देगा। यदि इस सूची में उन औसत कीमतों का प्रसंग होता जिन्हें वह देगा और दूसरे पौंड की कीमत 17 शि० होती तो निःसन्देह जैसे-जैसे हम चाय खरीदते जाते हमें इस रेखा को पुनः पुनः खींचना पड़ता। क्योंकि उसने जब चाय का तीसरा पौंड खरीद लिया तब उनमें से प्रत्येक का औसत तुष्टिगुण उसके लिए 17 शि० से कम होगा। यदि हम यह मान लें कि तीसरे पौंड के लिए वह केवल 10 शि० देगा तो वास्तव में तुष्टिगुण 14 शि० 8 पें० होगा। किन्तु इस समस्या का माँग कीमतों को निर्धारित करने की योजना बनाने से, जिसे यहाँ पर अपनाया गया है, पूर्णरूप से निराकरण हो सकता है। इसके अनुसार चाय के दूसरे पौंड से उसे 17 शि० के मूल्य के बराबर तुष्टिगुण मिलने की अपेक्षा, जो इन 2 पौं० का औसत तुष्टिगुण है, उसे 14 शि० के बराबर तुष्टिगुण मिलेगा जो उसे दूसरे पौं० से मिलने वाले 'अतिरिक्त' तुष्टिगुण के बराबर है। जब वह तीसरा पौंड खरीद लेता है तो दूसरे पौंड से प्राप्त

जब कीमत घट कर 10 शि० हो जाय तो यदि वह व्यक्ति चाहे तो केवल 2 पौंड ही खरीदता रहे, और जो वस्तु उसके लिए 34 शि० के मूल्य के बराबर थी उसे केवल 20 शि० में ही प्राप्त कर ले और इस प्रकार 14 शि० के मूल्य के बराबर और अधिक सन्तोष प्राप्त कर ले। किन्तु वास्तव में वह चाय का तीसरा पौंड खरीदना पसन्द करता है, और जैसा कि वह स्वेच्छा से ऐसा करता है, उसके शेष सन्तोष मे कमी नही होती। अब वह 30 शि० देकर 3 पौंड चाय खरीदता है। इसमे चाय के पहले पौंड से उसे 20 शि०, दूसरे से 14 शि० और तीसरे से कम-से-कम 10 शि० के बराबर तुष्टिगुण मिलता है। चाय के इन 3 पौंड से उसे 44 शि० के मूल्य के बराबर तुष्टिगुण प्राप्त होता है, उसकी उपभोक्ता की बचत कम-से-कम 14 शि० हुई, तथा इसी प्रकार आगे भी।

जब अन्ततोगत्वा कीमत केवल 2 शि० हो जाती है तो वह 7 पौंड चाय खरीदता है जिनका उसके लिए अलग-अलग मूल्य है। किन्तु 20, 14, 10, 6, 4, 3 और 2 शि०, अर्थात् कुल 59 शि० से कम नही है। इस योग से उसे प्राप्त होने वाले कुछ तुष्टिगुण को मापा जाता है और उसकी उपभोक्ता की बचत (कम-से-कम) उन 14 शि० से अधिक है जो उन्हें (45 शि० को)प्राप्त करने के लिए वह वास्तव मे खर्च करता है। चाय को खरीदने से मिलने वाले सन्तोष का यह अतिरिक्त मूल्य है जो उसे 14 शि० को उन वस्तुओं पर खर्च करने से मिलता है जिनको वह प्रचलित भावों पर खरीदना लाभदायक नही समझता, और यदि वह उन अन्य वस्तुओ को उन कीमतो पर खरीदता है तो उसे कुछ भी उपभोक्ता की बचत नही मिलती। अन्य शब्दो में, विशेषकर चाय के सम्बन्ध में संयोग से तथा वातावरण को अपनी आवश्यकताओं के

तुष्टिगुण कम नहीं होता, इस तीसरे पौंड के अतिरिक्त तुष्टिगुण को 10 शि० से मापा जाता है।

चाय के पहले पौंड से सम्भवतः उसे 20 शि० से अधिक तुष्टिगुण मिलता था। हम तो केवल यही जानते हैं कि इससे उसको 20 शि० से कम तुष्टिगुण नहीं मिलता था। यह हो सकता है कि उसमें भी उसे थोड़ी बचत हुई हो। पुनः दूसरे पौंड से सम्भवतः उसे 14 शि० से अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता था। हम केवल यह जानते हैं कि इससे उसे कम-से-कम 14 शि० के बराबर, न कि 20 शि० के बराबर, तुष्टिगुण प्राप्त होता था। अतः इस स्थिति में उसे कम-से-कम 6 शि० के बराबर अतिरिक्त सन्तोष मिलेगा, सम्भवतः इससे थोड़ा अधिक ही मिले। गणितज्ञ यह भलीभाँति जानते हैं कि जब कभी हम प्रति पौंड चाय के तुष्टिगुण में 20 शि० से 14 शि० होने की भाँति उल्लेखनीय परिवर्तनों के प्रभाव, को देखते हैं, तो इस प्रकार की असमानता सदा विद्यमान रहती है। यदि हम एक बहुत ऊँची कीमत से प्रारम्भ करें, और प्रति पौंड चाय की अत्यन्त अल्पमात्रा की कीमत में सूक्ष्मातिसूक्ष्म गिरावट को ध्यान में रखकर आगे बढ़ते और एक समय में एक पौंड की उपभोग की जाने वाली बहुत थोड़ी मात्रा में अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों को देखते तो पहले जो थोड़ी बहुत असमानता दिखायी देती थी वह भी दूर हो जाती।

अनुकूल बनाने से उसे 45 शि० के मूल्य के बराबर लाभ हुआ। यदि वह अपने को वातावरण के अनुकूल न बना सका, और चाय किसी भी कीमत पर उपलब्ध न हो तो उसके सन्तोष मे कम-से-कम उतनी कमी होगी जितनी ऐसी वस्तुओं की अतिरिक्त मात्रा पर 45 शि० खर्च करने से होती जिनका तुष्टिगुण उनके लिए दी जाने वाली कीमतों के बराबर है।[1]

बाजार की माँग।

इसी भाँति यदि कुछ समय के लिए हम इस तथ्य को ध्यान मे न रखें कि द्रव्य की एक ही मात्रा से विभिन्न लोगो को विभिन्न मात्रा मे सन्तोष प्राप्त होता है, तब उदाहरण के लिए लन्दन के बाजार मे चाय की बिक्री से मिलने वाले अतिरिक्त सन्तोष को उस मात्रा के योग से मापेंगे जिस पर चाय की माँग कीमतो की सूची मे प्रदर्शित कीमते विक्रय कीमत से अधिक हो।[2]

---

1 प्रो० निकोल्सन (Nicolson) ने (Principles of Political Econom y, खंड I तथा Economic Jorrnal, खंड IV में) उपभोक्ता की बचत के विचार के प्रति आपत्तियाँ प्रस्तुत की है, और ऐजवर्थ ने उसी 'पत्रिका' में उनका उत्तर दे दिया है। प्रो० निकोल्सन का विचार है 'यह कहने का भला क्या अर्थ है कि (उदाहरण के रूप में) 100 पौंड की कुल वार्षिक आय का तुष्टिगुण साल में 1,000 पौं० के मूल्य के बराबर है।' ऐसा कहने से कोई प्रयोजन नहीं निकलता, किन्तु जब मध्य अफ्रीका के जीवन की इंग्लैंड के जीवन से तुलना की जाय तो यह कहना सार्थक होगा कि भले ही मध्य अफ्रीका में द्रव्य से जो कुछ खरीदा जाय औसत रूप में वह इंग्लैंड की भाँति ही सस्ता है तथापि अनेक ऐसी भी वस्तुएं हैं जिन्हें मध्य अफ्रीका में कदापि भी खरीदा नहीं जा सकता और वहाँ 1,000 पौंड वार्षिक आय वाला उतना सुखी नहीं है जितना कि इंग्लैंड में 300 या 400 पौंड की आय वाला व्यक्ति सुखी रहता है। यदि एक व्यक्ति किसी पुल पर 1 पेंस चुंगी को देकर एक शि० लागत वाले चक्करदार भ्रमण से बच जाता है तो यह नहीं कहा जाता कि 1 पेंस का 1 शि० के बराबर मूल्य होता है, किन्तु पुल की सहायता से 1 पें० देकर (उसके संयोग में इसका जो भी अंशदान हो) उस दिन उसका 1 शि० के मूल्य के बराबर काम बन जाता है। यदि किसी दिन जब उसे पुल से होकर जाना हो पुल बह जाय तो उसे ऐसा लगेगा कि मानों उसके 1 पेंस और अधिक खर्च हो गये है।

2. अब हम किसी बड़े बाजार में चाय की माँग रेखा द दि पर विचार करें। माना कि अ ह कीमत पर प्रत्येक वर्ष ख ह मात्रा बेची जाती है; यहाँ 1 वर्ष को समय की इकाई माना गया है। ख ह पर म बिन्दु से माँग रेखा को छूती हुई म प एक ऊर्ध्वाधर रेखा खींची गयी है। र बिन्दु पर अ बिन्दु को मिलाती हुई एक क्षैतिज रेखा खींची गयी है। यहाँ पर चाय के असंख्य पौंडों की अनेक क्रेताओं की क्रय करने की उत्सुकता के अनुसार गणना की गयी है। किसी व्यक्ति की चाय के किसी पौं० के लिए उत्सुकता को उस कीमत द्वारा प्रदर्शित किया गया है जिसे वह उस पौंड को खरीदने के लिए देने को प्रस्तुत है। इस रेखाचित्र से यह ज्ञात होता है कि उस वस्तु की ख म मात्रा

यह विश्लेषण अपने नये नामों से तथा विस्तृत प्रक्रिया से प्रथम दृष्टि में मनगढ़न्त तथा अवास्तविक दिखायी देता है। इसका अधिक सूक्ष्म अध्ययन करने से यह ज्ञात होगा कि इसमे कुछ नयी कठिनाइयाँ उत्पन्न नही होती और न इस सम्बन्ध मे कुछ नयी पूर्व धारणाएँ बनाने की आवश्यकता है, किन्तु यहाँ उन कठिनाइयो एव पूर्वधारणाओ को जो बाजार की सर्वसाधारण की भाषा में अन्तर्निहित है, प्रकाश मे लाना है। क्योंकि अन्य दशाओ की भाँति इसमे भी प्रचलित मुहावरो मे जो सरलता दिखाई देती है उसमे एक वास्तविक उलझन छिपी रहती है, और विज्ञान का यह उद्देश्य है कि वह इस अन्तर्निहित उलझन को स्पष्ट करे, उसका सामना करे और जहाँ तक सम्भव हो सके उसे कम करने की कोशिश करे जिससे आगे चलकर उन कठिनाइयों का दृढ़तापूर्वक सामना किया जा सके जो सामान्य जीवन की भाषा तथा विचारों के अधिक प्रभाव पड़ने से भलीभाँति समझ मे नही आ सकती।

इस विश्लेषण का उद्देश्य केवल परिचित विचारों को निश्चित रूप से अभिव्यक्त करना है।

को प म कीमत पर बेचा जा सकता है, किन्तु इससे किसी ऊँची कीमत पर बिलकुल इतने ही पौंड नहीं खरीदे जा सकते। ऐसी स्थिति में वहाँ कोई ऐसा भी व्यक्ति होगा जो प म कीमत पर, जितना वह इससे ऊँची कीमत पर खरीदता, उससे भी कुछ अधिक खरीदेगा, और हम समझते हैं कि उस व्यक्ति को ख म वाँ पौंड बेचा गया। दृष्टान्त के रूप में प म 4 शि० को इंगित करती है और ख म से 10 लाख पौंड प्रदर्शित किये जाते हैं। जिस क्रेता का मूल पाठ में जिक्र किया गया है वह चाय के पाँचवें पौंड को 4 शि० प्रति पौंड की दर पर लेने को तैयार है, और यह कहा जा सकता है कि उसे ख म वाँ अथवा दस लाखवाँ पौंड बेच दिया गया है। यदि अ ह, और अतएव र म,
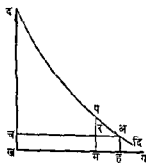
रेखाचित्र 10

2 शि० को प्रदर्शित करती है तब ख म वें पौंड से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत प म (4 शि०) कीमत, जिस पर वह उस मात्रा को खरीदने के लिए तैयार था और र म (2 शि०), जिस पर वह उसे मिल जाती है, के अन्तर के बराबर होगी। मान लो कि एक बहुत पतला-सा ऊर्ध्वाधर समानान्तर चतुर्भुज खींचा गया है जिसकी ऊँचाई प म है और आधार ख ग रेखा है जिस पर किसी इकाई अर्थात् चाय के एक पौंड को मापा गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि चाय की ख म वीं मात्रा से प्राप्त होने वाले सन्तोष को (या मूलपाठ के अन्तिम पैराग्राफ में स्वीकार की गयी कल्पनाओं को) म प मोटी रेखा से प्रदर्शित किया जा सकता है। चाय के इस पौंड के लिए दी गयी कीमत को म र मोटी सीधी रेखा प्रदर्शित करती है और इस पौंड से मिलने वाले उपभोक्ता की बचत को मोटी सीधी रेखा र प प्रदर्शित करती है। अब हम यह कल्पना करें कि इस प्रकार का पतला समानान्तर चतुर्भुज या इस प्रकार की सीधी मोटी रेखाएँ चाय के हर एक पौंड के सम्बन्ध में ख और ह के बीच म की सभी स्थितियों से खींची जा सकती हैं। इस प्रकार से ख ग रेखा से माँग रेखा तक खींची गयी प्रत्येक मोटी

सामान्य जीवन मे यह साधारणतया कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के लिए किसी वस्तु के वास्तविक तुष्टिगुण को उस वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत से नही आँका जाता, जैसा कि यद्यपि नमक की अपेक्षा एक व्यक्ति चाय मे बहुत अधिक खर्च करता है तब भी नमक का वास्तविक तुष्टिगुण उसके लिए बहुत अधिक रहता है, और ज्यो ही नमक का मिलना बन्द हो जाय यह बात स्पष्ट रूप से अनुभव की जाने लगेगी। जब यह कहा जाता है कि किसी वस्तु के सीमान्त तुष्टिगुण से उससे मिलने वाले कुल तुष्टिगुण का विश्वसनीय रूप मे संकेत नही मिलता, इस प्रकार की तार्किक प्रणाली को यथार्थ रूप मे केवल प्राविधिक रूप दे दिया जाता है। जब किसी ध्वस्त जलयान के यात्रियो के पास जो यह सोच रहे हो कि उन्हे बचाने मे साल लग जायेगा, कुछ पौंड चाय हो और आपस मे बाँटने के लिए उतना ही पौंड नमक हो तब वे नमक को अधिक महत्त्व देंगे, क्योंकि जब एक व्यक्ति यह आशा करता हो कि साल मे उसे थोडा ही नमक मिलेगा तो समान परिस्थितियो मे चाय की अपेक्षा नमक का सीमान्त तुष्टिगुण अधिक होगा। किन्तु साधारण परिस्थितियो मे नमक की कीमत कम होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति इसकी उतनी ही मात्रा खरीदता है जिससे नमक के एक अतिरिक्त पौंड से प्राप्त सन्तोष मे थोड़ी-सी वृद्धि होगी। यद्यपि यह सच है कि उसके लिए नमक का कुल तुष्टिगुण बहुत अधिक है किन्तु तब भी इसका सीमान्त तुष्टिगुण कम ही रहता है। इसके विपरीत, क्योंकि चाय महँगी है, बहुत से लोग इसका थोडा ही प्रयोग करते हैं और उन परिस्थितियो की अपेक्षा जब नमक की भाँति चाय भी कम दामो मे मिल

रेखा चाय के 1 पौंड से मिलने वाले सन्तोष का प्रतिनिधित्व करेगी, और यदि इन सब का योग कर लिया जाय तो इससे द ख ह अ का सारा भाग पूर्णरूप से भर जाएगा। अतः यह कहा जा सकता है कि द ख ह अ क्षेत्र से चाय पीने से मिलने वाले कुल सन्तोष का निरूपण किया जाता है। म र की भाँति ख ग से ऊपर अ च तक खींची गयी प्रत्येक रेखा से चाय के प्रत्येक पौंड के लिए दी गयी कीमत प्रदर्शित होती है। ये सभी सीधी रेखाएँ मिलकर च ख ह अ क्षेत्र बनाती हैं और अतएव चाय के लिए दी गयी कुल कीमत प्रदर्शित होती है। अन्त में अ च से जिस प्रकार र प रेखा खींची गयी है उसी प्रकार यदि माँग रेखा तक ऊपर की ओर सीधी रेखा खींची जाय तो प्रत्येक रेखा से चाय के तदनुरूप पौंड से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत प्रदर्शित की जायेगी। ये सभी रेखाएँ एक साथ मिलकर द च अ क्षेत्र बनाती हैं, अतः इस क्षेत्र से अ ह कीमत पर चाय से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत निरूपित की जाती है। किन्तु यह पुनरावृत्ति करना आवश्यक है कि इस प्रकार का ज्यामितिक माप इन लाभों के मापों का समुच्चय (Aggregate) मात्र है जिन्हें मूलपाठ में व्यक्त की गयी मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर नहीं मापा जा सकता। जब तक इस प्रकार की कल्पना न कर ली जाय इस क्षेत्र से केवल सम्पूर्ण सन्तोष ही प्रदर्शित होता है, इसकी विभिन्न मात्राओं को अलग से यथार्थ रूप में नहीं मापा जा सकता। केवल इसी मान्यता के आधार पर इसके क्षेत्र से चाय के विभिन्न क्रेताओं को इसके उपयोग से मिलने वाले कुल 'निवल' सन्तोष को मापा जा सकता है।

सके, वे इसमें पानी को कुछ अधिक देर तक मिलाते रहेंगे। उनकी चाय की इच्छा को कदाचित ही तृप्त किया जा सकता है क्योंकि इसका सीमान्त तुष्टिगुण सर्वदा अधिक रहता है और वे इसके हर अतिरिक्त औंस के लिए उतना देने को तैयार रहेंगे जितना नमक के एक अतिरिक्त पौंड के लिए देने को इच्छुक हों। साधारण जीवन के जिस सामान्य कथन से हमने यह चर्चा प्रारम्भ की थी उससे यद्यपि इन सभी बातों का सबोधन होता है; किन्तु बाद की कृतियों मे बहुधा लागू किये जाने वाले किसी कथन के लिए आवश्यक यथार्थता तथा निश्चितता इसमे नही पायी जाती। प्रारम्भ मे ही पारिभाषिक शब्दों को प्रयोग करने से ज्ञान में किंचित भी वृद्धि नही होती: किन्तु इससे परिचित ज्ञान को एक सुदृढ एवं सुसम्बद्ध आकृति दी जा सकती है जो आगे के अध्ययन का आधार होगा।[1]

विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में जहाँ कहीं आवश्यक हो उनकी संवेदनशीलता तथा उनके धन में पाये जाने वाले अन्तर को ध्यान में रखन आवश्यका है:

या किसी वस्तु की वास्तविक क्षमता को किसी एक व्यक्ति की दृष्टि की अपेक्षा सर्वसाधारण की दृष्टि से विचारा जा सकता है और इस प्रकार स्वाभाविक रूप से यह मान लिया गया है कि 'प्रारम्भ में' और 'जब तक कोई इसके प्रतिकूल कारण न दिखाई दें' एक आग्ल देशवासी को 1 शि० के बराबर मिलने वाली परितुष्टि किसी दूसरे को 1 शि० के बराबर मिलने वाली परितुष्टि के बराबर होगी। किन्तु सम्भवत. यह सभी जानते है कि ऐसा समझना तभी सार्थक हो सकता है जब यह कल्पना की जाय कि चाय तथा नमक के उपभोक्ता एक ही प्रकार के वर्ग के लोग है, और इसमे विभिन्न स्वभाव वाले व्यक्ति सम्मिलित है।[2]

---

1 हैरिस (Harris) ('On Coins 1757') कहते हैं 'सामान्यरूप में वस्तुओं का मूल्यांकन मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति में इनके वास्तविक उपयोग पर निर्भर न रह कर भूमि, श्रम तथा कुशलता के अनुपात पर आधारित होता है जो इनके उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। वास्तव में लगभग इसी बात के कारण चीजों अथवा वस्तुओं का एक दूसरे से विनिमय किया जाता है, और इसी पैमाने के आधार पर बहुत-सी वस्तुओं का मुख्यतया आन्तरिक मूल्य अनुमानित किया जाता है। पानी को *बड़ी उपयोगिता* है और *तब भी साधारणतया इसका थोड़ा ही अथवा कुछ भी मूल्य* नहीं होता, क्योंकि बहुत से स्थानों में जल का प्रवाह इतनी प्रचुर मात्रा में अविरल गति से होता है कि इसे व्यक्तिगत सम्पत्ति की सीमाओं के अन्तर्गत भी सीमित नहीं किया जा सकता। यदि परिस्थितिवश आवश्यक हो तो इसे लाने अथवा ले जाने में लगने वाले खर्च के अतिरिक्त किसी अन्य खर्च के बिना ही इसकी पर्याप्त मात्रा सुलभ हो सकती है। दूसरी ओर हीरों की मात्रा बहुत स्वल्प होने के कारण बड़ा मूल्य है, भले ही ये अधिक उपयोगी नहीं है।'

2 अनुमानतः ऐसी विशेष प्रकृति के व्यक्ति भी हो सकते हैं जो मुख्यतया या तो चाय के या नमक के अभाव होने से पीड़ित हो जायें अथवा जो सामान्यतया चेतनाशील (Sonistive) हों और जीवन की समान स्थिति वाले अन्य लोगों की अपेक्षा अपनी आय के कुछ निश्चित भाग की क्षति होने पर अधिक दुःखी हो जायें। किन्तु यहाँ यह मान लिया गया है कि व्यक्तियों को इस प्रकार की विभिन्नताओं पर ध्यान

इस बात मे यह विचार निहित है कि एक सामान्य निर्धन व्यक्ति के लिए 1 पौड के बराबर सन्तोष का महत्व एक सामान्य धनी व्यक्ति के लिए 1 पौड के बराबर सन्तोष के महत्व से बहुत अधिक है। और यदि चाय और नमक की तुलना करने की अपेक्षा जिन्हे समाज के सभी वर्गो के लोग बहुत अधिक मात्रा मे प्रयोग करते है, हम उनमे से किसी एक की तुलना शैम्पेन (एक प्रकार की शराब) या अनन्नास से करे तो इस प्रकार की गणना मे महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पडेगे। इससे हमारे अनुमान की सम्पूर्ण स्थिति ही बदल जायेगी। पिछली पीढी मे बहुत से नेताओ और यहाँ तक कि कुछ अर्थशास्त्रियो ने, विशेषकर कर निर्धारण के सम्बन्ध मे, इस वर्ग पर विचार करते समय कोई विशेष रियायत नही की और उनके शब्दो से या उनके कार्यो से निर्धन लोगो की पीडाओ के प्रति किसी प्रकार की सद्भावना दृष्टिगोचर नही होती थी, यद्यपि बहुधा इसका कारण यह था कि उन लोगो ने इस ओर कभी विचार नही किया।

किन्तु लोगों के असंख्य समूहों के सम्बन्ध में विचार करते समय इसकी कदाचित ही आवश्यकता होती है।

सब कुछ देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र मे जितनी अधिक समस्याओ पर विचार किया जाता है वे समाज के विभिन्न वर्गो को प्रायः समान अनुपात मे प्रभावित करती है जिससे यदि दोनो मे प्राप्त होने वाले सुख के मौद्रिक माप समान हो तो सामान्य रूप मे दोनो दशाओ मे प्राप्त सुख मे कोई अधिक विशेष अन्तर न होगा, और इस तथ्य के कारण किसी बाजार मे उपभोक्ता की बचत का यथार्थ माप एक अत्यधिक सैद्धान्तिक अभिरुचि का विषय बन चुका है और यह अत्यधिक व्यावहारिक महत्व भी प्राप्त कर सकता है।

यह स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक वस्तु की माँग कीमते जिनके आधार पर इसके कुल तुष्टिगुण तथा उपभोक्ता की बचत के अनुमान आधारित है, यह मान लेती है कि अन्य बाते समान रहती है, जबकि इसकी कीमत दुर्लभता मूल्य तक बढ़ती जाती है, और जब समान उद्देश्य की पूर्ति करने वाली दो वस्तुओ के कुल तुष्टिगुण की इसी आधार पर गणना की जाती है तब यह नही कह सकते कि उन दोनो का एक साथ कुल तुष्टिगुण इन वस्तुओ के अलग-अलग तुष्टिगुणो के योग के बराबर होगा[1]।

न दिया जाय, क्योंकि हम दोनों दशाओं में असंख्य लोगों के औसत पर विचार कर रहे हैं। वास्तव में यह विचार करना आवश्यक हो सकता है कि क्या यह विश्वास करने के कुछ विशेष कारण थे कि जिन लोगों को चाय अधिक प्रिय थी वे एक विशेष प्रकार के चेतनाशील व्यक्ति थे ? यदि ऐसा करना सम्भव हो तो आर्थिक विश्लेषण के निष्कर्षों को नैतिकशास्त्र या राजनीति शास्त्र की व्यावहारिक समस्याओं पर प्रयोग करने से पूर्व इसके लिए अलग से गुंजाइश रखनी पड़ेगी।

1 पिछले कुछ संस्करणों में दी गयी कुछ संदिग्ध उक्तियों से ऐसा लगता है कि कुछ पाठकों ने इनका विपरीत अर्थ लगाया। किन्तु सम्पूर्ण धन के तुष्टिगुण के योग को प्राप्त करने के लिए सभी वस्तुओं के कुल तुष्टिगुण को एक साथ जोड़ने का कार्य किसी सुसम्बद्ध गणितीय सूत्र की परिधि के अतिरिक्त अन्य सभी की परिधि के बाहर है। कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने इसका निरूपण करने का प्रयास किया था जिससे वर्तमान लेखक को यह विश्वास हो गया कि भले ही यह कार्य सैद्धान्तिक रूप से सम्भव हो इसके

§4. यदि हम इस तथ्य को ध्यान में रखे कि एक व्यक्ति किसी वस्तु पर जितना अधिक व्यय करता जाता है, उसकी उस वस्तु की या अन्य वस्तुओ की मात्रा को क्रय करने की क्षमता कम होती जाती है, और उसके लिये द्रव्य का मूल्य बढ़ता जाता है (प्राविधिक भाषा मे किसी व्यक्ति के लिए प्रत्येक व्यय से द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है) तो हमारे तर्क के सार मे इसका कोई बुरा प्रभाव नही पड़ेगा। किन्तु यद्यपि इसका सार पूर्ववत् रहेगा परन्तु इसका रूप बिना किसी तदनुरूपी लाभ के अधिक पेचीदा हो जायगा क्योंकि ऐसी व्यावहारिक समस्याएँ बहुत थोड़ी है जिनमे इस शीर्ष (Head) में कुछ सुधार करना किसी महत्व का हो।[1]

क्रेता को द्रव्य सम्बन्धी प्रभुता में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखना कदाचित ही आवश्यक है।

निष्कर्ष इतने अधिक प्रकल्पनाओं से उलझे होंगे कि इसकी कुछ भी व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रहेगी।

पृष्ठ 95 तथा पृष्ठ 102 की पादटिप्पणियों में इस विषय की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है कि कुछ उद्देश्यों के लिए चाय तथा काफी जैसी वस्तुओं को एक साथ शामिल कर लिया जाय; और यह स्पष्ट है कि यदि चाय सुलभ न हो सके तो लोग काफी पानी बढ़ा लेंगे, और इसके विपरीत, काफी के दाम बढ़ने पर लोग चाय का प्रयोग बढ़ा लेंगे। लोगों को यदि चाय तथा काफी दोनों चीजों में से एक भी न मिले तो उनको जो कुछ क्षति पहुँचेगी वह उस क्षति के योग से अधिक होगी जो कभी एक चीज और कभी दूसरी चीज न मिलने पर होगी, और इसलिए चाय और काफी का कुल तुष्टिगुण चाय और काफी के उन तुष्टिगुणों के योग से अधिक होगा जो इस मान्यता पर अनुमानित की गयी है कि लोग चाय के स्थान पर काफी का और काफी के स्थान पर चाय का सरलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। दो 'प्रतिद्वन्द्वी' वस्तुओं को एक सामान्य माँग सारणी के अन्तर्गत एक साथ मिला देने पर सैद्धान्तिक दृष्टि से इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि हमने ईंधन की कुल उपयोगिता का यह ध्यान रखते हुए अनुमान लगाया है कि इसके बिना हम चाय की पत्तियों से पेय चाय के लिए गरम पानी प्राप्त नहीं कर सकते, तो यदि हमने उस उपयोगिता में चाय की पत्तियों के कुल तुष्टिगुण को जोड़ा हो जिसका इसी प्रकार अनुमान लगाया गया हो, तो हमें कुछ चीजों को दुबारा गिनना चाहिए। पुनः कृषि उपज के कुल तुष्टिगुण में हलों से प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण भी सम्मिलित है, और इन दोनों को एक साथ जोड़ा नहीं जा सकता भले ही किसी एक समस्या को सम्मुख रखते हुए हलों से प्राप्त होने वाले तुष्टिगुण पर विवेचन किया जा सकता है और किसी दूसरी समस्या को दृष्टि में रखते हुए गेहूँ के तुष्टिगुण को जाना जा सकता है। इन कठिनाइयों के अन्य पहलुओं पर भाग 5, अध्याय 6 में विचार किया गया है।

प्रो० पैटेन (Patten) ने अपने कुछ कुशल एवं सांकेतिक लेखों में इस बात पर जोर दिया है कि अभी बाद में बताये गये दो तुष्टिगुणों को नहीं जोड़ना चाहिए। किन्तु सभी प्रकार के धन की कुल उपयोगिता को व्यक्त करने में उनके इस प्रयास में बहुत-सी कठिनाइयों पर ध्यान नहीं दिया गया है।

1 गणितीय भाषा में सामान्यतया छोटी मात्राओं की द्वितीय श्रेणी की वस्तुओं की उपेक्षा की जाती है, और यदि प्रो० निकोल्सन ने इस सम्बन्ध में आपत्ति न की

किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। दृष्टान्त के रूप मे, जैसा सर आर० गिफन ने इंगित किया है, डबलरोटी की कीमत मे वृद्धि होने से निर्धन श्रमिक परिवारो के आय के साधनो मे इतनी अधिक कटौती हो जाती है और उनकी द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता इतनी बढ जाती है कि वे मास तथा कुछ अधिक खर्चीले चूर्णमय भोज्य पदार्थों के अपने उपभोग मे कमी करने के लिए बाध्य हो जाते हैं: और डबलरोटी सबसे सस्ता भोजन होने के कारण जिसे वे खरीद सकते है और खरीदेंगे, वे इसका कम उपभोग करने की अपेक्षा अधिक उपभोग करेंगे। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। जब कभी हम इनका अनुभव करते हैं तो इनमे से प्रत्येक का इसके गुण-दोष के आधार पर निरूपण करना चाहिए।

मांग कीमतों की पूर्ण सूची को हम कदाचित ही प्राप्त कर सकते हैं और बहुधा इनकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

यह पहले ही विचार किया जा चुका है कि हम यह थोड़ा भी ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते कि लोग किसी वस्तु के लिए जो कीमतें देते आये हैं उनसे अधिक भिन्न कीमतो पर किसी वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेंगे; अथवा अन्य शब्दो मे, जिस मात्रा मे ये अधिकाशतया बिकती है उससे भिन्न मात्राओ मे इस वस्तु की कितनी मांग-कीमतें होंगी। अतः मांग कीमतो की हमारी सूची प्रचलित कीमतो के प्राय. निकट होने के अतिरिक्त अत्यधिक मात्रा मे अनुमानित है, और किसी वस्तु के सम्पूर्ण तुष्टिगुण के सम्बन्ध मे जो भी सर्वोत्तम अनुमान लगा सकते है उनमे बड़ी-बड़ी मात्रा मे त्रुटि का होना सम्भव है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह कठिनाई कोई महत्वपूर्ण नही है, क्योकि उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के प्रमुख प्रयोगो का इसमे होने वाले उन परिवर्तनो से सम्बन्ध है जो सम्बन्धित वस्तु की प्रचलित कीमत के निकट की कीमत मे परिवर्तन के साथ-साथ बदलती है अर्थात् हमे काफी अच्छी तरह से प्राप्त सूचना का ही उपयोग करना है। आवश्यक वस्तुओ के सम्बन्ध मे ये अभिवचन विशेष रूप से लागू होते हैं।[1]

होती तो उस परिचित वैज्ञानिक ढंग की वैधता का जिसके कारण उनकी उपेक्षा की जाती है कोई भी प्रश्न खड़ा नहीं होता। प्रो० ऐजवर्थ ने मार्च 1804 के Economic Journal में उन्हें इसका एक छोटा-सा उत्तर दिया था और इसका अधिक पूर्ण उत्तर प्रो० बेरोन (Barone) ने सितम्बर 1894 की Giornale degli Economisti में दिया था। मि० सेंगर (Sanger) ने 1895 के *Economic Journal* में इसका कुछ विवरण दिया है। जैसा कि गणितीय परिशिष्ट की टिप्पणी 6 में उल्लेख किया गया है, यदि चाहें तो द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता में होने वाले परिवर्तनों का औपचारिक लेखा तैयार किया जा सकता है। यदि हमने सभी पदार्थों के कुल तुष्टिगुण का योग करने का प्रयत्न किया तो हमें ऐसा करना ही पड़ेगा; किन्तु यह कार्य व्यावहारिक नहीं है।

1. उपभोक्ता बचत के नियम से यहाँ हमें थोड़ी सहायता मिल सकती है; और जब हमारे सांख्यिकी ज्ञान में अधिक प्रगति हो जाय तो हम पर्याप्त रूप से यह निश्चय कर सकते हैं कि चाय में प्रति पौंड 6 पें० के अतिरिक्त कर लगाने से, या रेल के भाड़े में 10% की वृद्धि होने से जनता का कितना अहित होगा। उपभोक्ता की बचत

§5. अब एसे वर्ग पर विचार करना शेष रह गया है जिनकी हित-वृद्धि की भौतिक सम्पत्ति पर निर्भरता का अनुमान लगाने की उपेक्षा की जानी स्वाभाविक है। किसी व्यक्ति की प्रसन्नता उसकी बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा न केवल उसके भौतिक, मानसिक तथा नैतिक शक्तियों पर बहुत कुछ निर्भर है: किन्तु इनमे से बहुत-सी दशाओं के जो उसकी वास्तविक प्रसन्नता के लिए महत्वपूर्ण है उसकी सम्पत्ति की विवरण सूची मे सम्मिलित न की जाने की सम्भावना हो सकती है। कुछ तो प्रकृति की मुक्त देन हैं, और यदि ये प्रत्येक व्यक्ति के लिए वही हो तो बिना किसी महान् क्षति के इनकी अवहेलना की जा सकती है, किन्तु ये स्थान-स्थान पर बदलती रहती हैं। इनमे से अधिकांश तो सामूहिक सम्पत्ति के तत्व है और व्यक्तिगत सम्पत्ति की गणना करने मे इन्हें बहुधा सम्मिलित नही किया जाता किन्तु जब आधुनिक सभ्य ससार के विभिन्न भागों

सामूहिक सम्पत्ति के तत्वों की उपेक्षा की जानी प्रसंगोचित है।

के विचार का कुछ महत्व इस बात से कम हो जाता है कि यह हमें उस क्षति का अनुमान लगाने में सहायता नहीं पहुँचायेगा जो चाय में 30 शि० प्रति पौंड कर लगाने से, या रेल-भाड़े को 10 गुना बढ़ा देने से होगा।

पीछे दिये गये आरेख में हम इस बात को यह कह कर व्यक्त कर सकते है कि यदि बाजार में नित्य-प्रति बिकने वाली राशि को प्रदर्शित करने वाली रेखा पर कोई अ बिन्दु हो तो अ की दोनों दिशाओं में रेखा को कुछ दूरी तक पर्याप्त यथार्थता के साथ खींचने के लिए आंकड़े प्राप्त हो सकते हें; यद्यपि इस रेखा को द बिन्दु तक ठीक-ठीक खींचना सम्भव नहीं है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि मूल्य के सिद्धान्त के मुख्य व्यावहारिक प्रयोगों में हमें मांग वक्र के पूर्ण आकार के ज्ञान का, यदि यह हमें उपलब्ध हो, बहुत कम उपयोग करना चाहिए। हमें वे ही चीजें चाहिए जिन्हें हम प्राप्त कर सकें, अर्थात हमें अ बिन्दु के पास इस मांग वक्र के आकार का पर्याप्त रूप में यथार्थ ज्ञान होना चाहिए। हमें द च अ क्षेत्र का पता लगाने की कदाचित ही आवश्यकता है। हमारे अधिकांश उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यही पर्याप्त है कि हमें उन परिवर्तनों का ज्ञान हो जाय जो कि इस रेखा पर अ बिन्दु के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूर में बढ़ने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। तथापि अस्थायी रूप से यह मान लेना लाभदायक होगा, पूर्णतया सैद्धान्तिक विषयों में भी इसी प्रकार की स्वतंत्रता होती है, कि यह वक्र पूर्ण रूप खींची गयी है।

किन्तु उन वस्तुओं कुल तुष्टिगुण का अनुमान लगाने में एक विशेष कठिनाई है जिसका कुछ भाग जीवन के लिए आवश्यक है। यदि इनका अनुमान लगाने का कोई प्रयास किया गया तो सम्भवतः सबसे अच्छी योजना यह होगी कि इनके लिए आवश्यक सम्भरण का उपलब्ध होना अनिवार्य मान लिया जाय, और केवल वस्तुओं के उस भाग के कुल तुष्टिगुण का अनुमान लगाया जाय जो इस मात्रा से अधिक हो। किन्तु हमें यह अवश्य स्मरण रखना है कि हमारी किसी वस्तु के लिए इच्छा उस वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं की सुलभता पर भी बहुत कुछ निर्भर है। (गणितीय परिशिष्ट टिप्पणी 6 देखिए।

की हम तुलना करते हैं तो ये भी महत्वपूर्ण बन जाती है, और यह महत्व तब और भी अधिक बढ जाता है जबकि हम अपने युग के प्राचीन समयो से तुलना करते हैं।

उपभोक्ताओं के संघ उत्पादन के विषय-क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

सार्वजनिक कल्याण की दृष्टि से जो सामूहिक कार्य किये जाते है, जैसे कि सडको पर प्रकाश का प्रबन्ध करना तथा जल छिडकना, उन पर इन परिप्रश्नो के पूर्ण हो जाने पर विचार किया जायगा। व्यक्तिगत उपभोग के लिए सहकारी सस्थाओ ने अन्य स्थानो की अपेक्षा इग्लैड मे अधिक प्रगति की है किन्तु कृषको तथा अन्य लोगो द्वारा व्यापारिक उद्देश्यो के लिए क्रय करने से सम्बन्धित सस्थाओ की स्थिति अभी कुछ दिनों पूर्व तक पिछडी हुई थी। इन दोनो प्रकार की सस्थाओ को कभी-कभी उपभोक्ता-सस्थाएँ कहा जाता है किन्तु वास्तव मे व्यवसाय के कुछ विशेष भागो मे मितव्ययितापूर्वक कार्य करने मे ये सहायक हुई है और ये उपभोग के विषय-क्षेत्र के अन्तर्गत न आकर उत्पादन के विषय-क्षेत्र के अन्तर्गत आती है।

हमारा अभिप्राय यहाँ पर बड़ी आयों से है न कि अत्यधिक मात्रा में वस्तुओं के स्वामित्व से।

§6 जब मनुष्य के कल्याण की भौतिक सम्पत्ति पर निर्भरता व्यक्त की जाती है तो इसका अभिप्राय कल्याण के प्रवाह या धारा से है जिसे प्राप्त होने वाली सम्पत्ति के प्रवाह या उसकी धारा से तथा उसके फलस्वरूप किये गये उपयोग तथा उपभोग की क्षमता से मापा जाता है। किसी व्यक्ति के सम्पत्ति के भण्डार के उपयोग तथा अन्य प्रकार से उसे प्रसन्नता होती है, इसमे नि सन्देह उस सम्पत्ति पर स्वामित्व होने के कारण प्राप्त होने वाला आनन्द भी सम्मिलित है किन्तु उस वस्तु के भण्डार के योग तथा उसकी प्रसन्नता के योग के बीच प्रत्यक्ष रूप मे बहुत थोड़ा-सा सम्बन्ध है। और इसी कारणवश स्वामित्व के स्थान पर इस अध्याय मे तथा इसके पिछले अध्यायों मे भी हमने धनी, मध्यम तथा निर्धन वर्गो को क्रमश अत्यधिक आय वाले, मध्यम आय वाले तथा थोडी आय वाले वर्ग का नाम दिया है।[1]

बर्नूली का सुझाव

डेनियल बर्नूली (Daniel Bernoulli) के सुझाव के अनुसार किसी व्यक्ति को अपनी आय से तभी सन्तोष प्राप्त होगा जब उसके पास जीवन-यापन के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध हो, और इसके पश्चात् उसकी आय मे होने वाली हर उत्तरोत्तर समान प्रतिशत वृद्धि से उसके सन्तोष मे बराबर ही वृद्धि हो, और आय की क्षति होने पर स्थिति इसके विपरीत हो।[2]

---

1 परिशिष्ट में टिप्पणी 7 देखिए।

2 कहने का अभिप्राय यह है कि यदि आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए 30 पौंड चाहिए तो किसी व्यक्ति को अपनी आय के इसी बिन्दु पर पहुँचने के बाद आनन्द मिलेगा, और जब आय 40 पौंड हो जाय तो हर अतिरिक्त एक पौंड से उन 10 पौंड में $\frac{1}{10}$ के बराबर वृद्धि होगी जो उसकी समृद्धि बढ़ाने की शक्ति के द्योतक हैं। किन्तु यदि उसकी आय 100 पौंड हो, अर्थात् आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए आवश्यक आय से 70 पौंड अधिक हो तो हर अतिरिक्त 7 पौं० से उसकी समृद्धि में उतनी ही वृद्धि होगी जितनी उसकी आय के 40 पौं० होने पर 1 पौंड से होती; और जब उसकी आय 10,000 पौंड हो तो पहले के बराबर ही आनन्द प्राप्त करने के लिए उसे प्रत्येक बार अतिरिक्त 1,000 पौंड की आवश्यकता होगी। (परि-

किन्तु कुछ समय पश्चात् नये वैभवों का आकर्षण भी प्राय: कम हो जाता है। आंशिक रूप से इसका कारण इनसे अधिक परिचित होना है क्योंकि इससे उन आराम तथा विलास की वस्तुओं से लोगों को अधिक आनन्द मिलना प्राय समाप्त हो जाता है जिनके वे आदी हो जाते है, यद्यपि इनके उपलब्ध न होने पर उन्हे अत्यधिक कष्ट होता है। आंशिक रूप से इसका कारण यह भी है कि धनाढ्यता के बढने के साथ-साथ या

अभ्यस्तता से आनन्द उपार्जन की क्षमता दुर्बल हो जाती है।

शिष्ट में दी गयी टिप्पणी 8 से इसको तुलना कीजिए।) निःसन्देह इस प्रकार के अनुमान बहुत अधिक अनिश्चित होते हैं और व्यक्तिगत जीवन की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाये जा सकते। जैसा कि बाद में ज्ञात हो जायेगा, कर-निर्धारण की आजकल विस्तृत रूप से प्रचलित सभी प्रणालियों का सामान्यतया बर्नूली की सलाह-पद्धति ने पथ-प्रदर्शन किया है। प्राचीन प्रणालियाँ ऐसी थी कि उन्होंने निर्धन लोगों से इस योजना द्वारा निर्धारित मात्रा से भी कहीं अधिक कर वसूल किया। बर्नूली द्वारा आवश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में किये गये संशोधन के पश्चात् भी आरोही कर निर्धारण (Graduated taxation) की प्रणालियाँ, जिन्हें बहुत से देशों में आरम्भ करने के पूर्व-संकेत मिल रहे हैं, कुछ सीमा तक इस मान्यता पर आधारित हैं कि कम आय में 1% की वृद्धि की अपेक्षा किसी बड़ी आय में 1% की वृद्धि से सम्बन्धित व्यक्ति के कल्याण में कम वृद्धि होगी।

इस सामान्य नियम से कि किसी भी व्यक्ति के पास पहले से जितने भी पौंड हैं उनमें हर अतिरिक्त पौंड की वृद्धि से उसके लिए इसकी उपयोगिता गिरती जाती है, दो महत्वपूर्ण व्यावहारिक सिद्धान्त निकलते हैं। पहला तो यह है कि जुआ खेलने से आर्थिक क्षति पहुँचती है चाहे यह पूर्णतया सच्चे तथा समानरूप से मान्य शर्तों से ही क्यों न खेला जाता हो। दृष्टान्त के रूप में, एक व्यक्ति जिसके पास 600 पौंड हों, वह यदि 100 पौंड का न्याय-संगत पण (bet) लगाये तो उसकी प्रसन्नता की आधी आशा तो इसके 700 पौंड हो जाने से प्राप्त आनन्द के बराबर और आधी इसके केवल 500 पौंड ही रह जाने से प्राप्त आनन्द के बराबर होगी, और यह प्रसन्नता इस परिकल्पना से कि 600 पौंड तथा 500 पौंड से प्राप्त प्रसन्नता का अन्तर 700 पौंड तथा 600 पौंड से मिलने वाली प्रसन्नता के अन्तर से अधिक होता है, 600 पौंड से मिलने वाली किसी निश्चित प्रसन्नता से कम होगी। परिशिष्ट में टिप्पणी 9 से तथा जेवन्स के छोटे छापे में लिखे गये अध्याय 4 से तुलना कीजिए। दूसरा सिद्धान्त, जो पहले सिद्धान्त का प्रत्यक्ष रूप से प्रतिलोम है, यह है कि सैद्धान्तिक रूप से जोखिमों के बदले में एक न्याय-संगत बीमा सर्वदा आर्थिक लाभ है, किन्तु वास्तव में प्रत्येक बीमा कार्यालय सैद्धान्तिक रूप से न्यायसंगत प्रीमियम की गणना करने के पश्चात् इसके अतिरिक्त अपनी ही पूंजी के लाभ तथा अपने कार्य संचालन में होने वाले व्यय की पूर्ति में (जिसमें बड़े-बड़े विज्ञापनों पर किये जाने वाले व्यय तथा जालसाजी से होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए रखी गयी धनराशि भी सम्मिलित है) हिस्सा बटाता है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में कि बीमा कम्पनियों द्वारा निर्धारित प्रीमियम देना उचित है या नहीं, प्रसंग विशेष के गुण-दोष को ध्यान में रख कर निर्णय करना चाहिए।

तो जीवन काल की थकान बढ़ती है या कम-से कम तांत्रिक भार (Nervous strain) मे वृद्धि होती है और सम्भवतः इससे जीवन निर्वाह की वे आदतें भी पड़ने लगती हैं जो भौतिक जीवन शक्ति को कम करती है और आनन्द अनुभव करने की क्षमता मे भी कमी करती हैं।

अवकाश तथा विश्राम का महत्व। सभी सभ्य देशो मे महात्मा बुद्ध के इस सिद्धान्त के अनेक अनुयायी मिलेंगे कि जीवन का सर्वोत्तम आदर्श उदात्त प्रशान्तता है, बुद्धिमान व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने स्वभाव से यथाशक्ति अधिक से अधिक आवश्यकताओं एव इच्छाओ का परित्याग कर दे। वास्तविक वैभव वस्तुओ के प्रचुर मात्रा मे होने मे निहित न होकर आवश्यकताओ के कम होने मे निहित रहता है। ठीक इसके विपरीत ऐसे भी लोग हैं जिनकी यह धारणा है कि नयी-नयी आवश्यकताओ एवं इच्छाओ की वृद्धि बहुत लाभदायक है क्योंकि यह लोगो को अधिकाधिक परिश्रम करने के लिए प्रेरित करती है। जैसा कि हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) ने कहा है कि ऐसा लगता है कि उन लोगों ने यह कल्पना करके त्रुटि की है कि जीवन कार्य करने के लिए है न कि जीवन के लिए कार्य।[1]

साधारण कार्य द्वारा अर्जित साधारण आय की महत्ता। मानव प्रकृति की जैसी रचना की गयी है कि इससे इस सत्य की पुष्टि होती है कि यदि मनुष्य के पास कुछ कठिन काम करने को न हो, कुछ कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करनी न हो, तो अधिकाशतया उसके स्वजातीय गुणो का पतन होने लगता है, और भौतिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य निर्माण के लिए कुछ कठोर परिश्रम करना अनिवार्य है। जीवन की पूर्णता अधिक से-अधिक तथा उच्च से उच्च सभी सम्भव प्राकृतिक शक्तियों के विकास तथा उनके क्रियान्वित होने मे लक्षित होती है। किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कठोर से कठोर यत्न करने मे अत्यधिक आनन्द मिलता है चाहे यह उद्देश्य व्यवसाय मे सफलता प्राप्त करना हो, विज्ञान तथा कला की उन्नति हो, या अपने साथियो की दशा मे सुधार करना हो। सभी प्रकार के उत्पादन कार्यों को बहुधा अधिक परिश्रम तथा शिथिलता एव गतिहीनता के समयानुसार बारी-बारी से बदल कर करना चाहिए। किन्तु सामान्य लोगो के लिए, सुदृढ़ आकाक्षाओ से रहित व्यक्तियो के लिए चाहे वे निम्नतर या उच्चतर किसी भी प्रकार के कार्य मे लगे हों, साधारण तथा प्रायः नियमित कार्य द्वारा अर्जित की गयी सामान्य आय शरीर, मस्तिष्क, तथा भावना के विकास के लिए जिसमे ही केवल वास्तविक प्रसन्नता विद्यमान है, सर्वोत्तम अवसर प्रदान करती है।

बाह्य प्रदर्शन पर व्यय। समाज के सभी वर्गों के लोग धन का कुछ दुरुपयोग करते हैं। सामान्य रूप मे यद्यपि यह कहा जा सकता है कि श्रमिक वर्गों की आय मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि से मानव जीवन की पूर्णता और उत्कर्ष की अभिवृद्धि होती है क्योंकि इसे मुख्यतया वास्तविक आवश्यकताओ की तृप्ति में लगाया जाता है, किन्तु इंग्लैंड मे यहाँ तक दस्तकारो मे, और सम्भवतः नये-नये देशो मे धन प्रदर्शन के साधन के रूप मे प्रयोग करने की अनुपयुक्त इच्छा बढ़ रही है जो सभ्य देशो मे सम्पन्न वर्गों के विनाश का मुख्य कारण है।

---

1 The Gospel of Relaxation में उनके भाषण को देखिए।

विलासपूर्ण जीवन-यापन के विरुद्ध बनाये गये कानून निष्फल हो गये है किन्तु यह लाभदायक सिद्ध होगा यदि समाज की नैतिक मनोभावनाएँ लोगों को यह प्रेरणा दें कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के सभी प्रकार के प्रदर्शनों का परित्याग कर दें। यदि प्रचुर सम्पत्ति का बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयोग किया जाय तो निस्सन्देह उससे यथेष्ट मात्रा में सच्चा तथा उचित आनन्द प्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि ये आनन्द एक ओर किसी प्रकार के व्यक्तिगत मिथ्याभिमान से और दूसरी ओर किसी प्रकार के ईर्ष्याभाव से अछूते हों तो ये सबसे उत्कृष्ट होंगे, जैसा कि सार्वजनिक इमारतों, सार्वजनिक उपवनों, उच्चकोटि की कलाकृतियों के सार्वजनिक संकलनों और सामूहिक खेल-कूदों तथा मनोविनोद में ये चीजें दृष्टिगोचर होती है। जब तक धन का प्रत्येक परिवार के जीवन तथा संस्कृति की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है और जब तक सामूहिक उपयोग के लिए मनोरञ्जन के उच्चकोटि के साधन प्रचुर मात्रा मे मिलते है, तब तक धन प्राप्त करने के प्रयत्न श्लाघनीय हैं, और इससे जो आनन्द प्राप्त होते हैं वे उन उच्चकोटि के कार्यो की प्रगति के साथ बढ़ते जाते हैं जिन्हें इससे प्रोत्साहन मिलता है।

धन के व्यक्तिगत प्रयोग की अपेक्षा इसके सामूहिक प्रयोग की उत्कृष्टता।

ज्यों ही एक बार जीवन की आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हों तो प्रत्येक को यह चाहिए कि वह उन वस्तुओं की संख्या या उनकी उत्कृष्टता में वृद्धि न कर अपने पास की सभी वस्तुओं की सुन्दरता को बढ़ाने का यत्न करे। फर्नीचर तथा कपड़ों में कुछ कलात्मक सुधारों के फलस्वरूप उनके निर्माण करने वालों को उच्चकोटि की शक्तियों को प्रशिक्षण मिलता है और इससे उन वस्तुओं के प्रयोग करने वालों को अधिकाधिक प्रसन्नता होती है। किन्तु यदि उच्चतर की सुन्दर वस्तुओं को न खरीदकर हम अपने बढ़ते हुए साधनों को ऐसे घरेलू वस्तुओं पर व्यय करें जो अधिक पेचीदे हों और दुर्बोध हों तो इससे हमें किसी प्रकार का वास्तविक लाभ नहीं होता, कोई चिरस्थायी प्रसन्नता नही होती। संसार की प्रगति अधिक सुखदायक होगी यदि प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी मात्रा मे साधारण वस्तुओं को खरीदे, और उनके वास्तविक अस्तित्व को देखते हुए उनका चयन करे। ऐसा करने मे निस्सन्देह वह जो कुछ खर्च करे उसके बदले मे अधिक वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए सचेत रहना चाहिए, किन्तु उसे कम वेतन प्राप्त श्रमिकों द्वारा बुरी तरह बनायी गयी अनेक वस्तुओं को लेने की अपेक्षा अधिक वेतन प्राप्त करने वाले श्रमिकों की अच्छी तरह बनायी हुई थोड़ी-सी चीजों को लेना पसन्द करना चाहिए।

उत्पादक सुस्वाद-क्रेता से शिक्षा ग्रहण करता है। इस प्रकार हम ऐसे व्यापक परिप्रश्नों तक पहुँचते हैं जिनका अध्ययन यहाँ स्थगित कर देना चाहिए।

किन्तु इस भाग की उचित सीमा से हम आगे बढ़ रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति के अपनी आय को खर्च करने के ढंग का सामान्य कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा करना अर्थशास्त्र के उन अनेक प्रयोगों में अधिक महत्वपूर्ण है जिनका रहन-सहन के ढंग पर प्रभाव पड़ता है।

भाग 4
भूमि, श्रम, पूँजी तथा व्यवस्था

अध्याय 1
परिचायक

उत्पादन के कारकों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, किन्तु कुछ उद्देश्यों से इन्हें दो ही श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

§2. साधारणतया उत्पादन के कारको को भूमि, श्रम तथा पूंजी के रूप मे वर्गीकृत किया जाता है। भूमि से अभिप्राय उन भौतिक साधनो तथा शक्तियों से है जिन्हे 'प्रकृति' भूमि तथा पानी के रूप मे, वायु और प्रकाश तथा ऊष्मा (Heat) के रूप मे मनुष्य की सहायता के लिए स्वतत्र रूप से प्रदान करती है। श्रम से अभिप्राय मनुष्य के आर्थिक कार्य से है, चाहे यह हाथ से अथवा मस्तिष्क से किया जाय।[1] पूंजी से अभिप्राय भौतिक वस्तुओ के उत्पादन तथा साधारणतया आय के अंश के रूप में गिने जाने वाले हितो की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार की सचित सुविधाओ से है। यह धन का मुख्य भण्डार है जिसे परितुष्टि के प्रत्यक्ष स्रोत की अपेक्षा उत्पादन का एक कारक माना जाता है।

पूंजी ज्ञान तथा व्यवस्था के एक बड़े भाग से मिल कर बनी है इसका कुछ भाग तो निजी सम्पत्ति है, परन्तु शेष भाग निजी सम्पत्ति नही है। ज्ञान उत्पादन का सबसे शक्तिशाली साधन है। यह हमें प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने मे समर्थ बनाता है और प्रकृति को हमारी आवश्यकताओ की तृप्ति करने के लिए बाध्य करता है। व्यवस्था ज्ञान की सहायक है तथा इसके अनेक रूप हैं, जैसे कि एक व्यवसाय की व्यवस्था, एक ही प्रकार के व्यापार मे अनेक व्यवसायो की व्यवस्था, अनेक व्यापारों की सापेक्षिक रूप मे पारस्परिक व्यवस्था तथा राज्य की व्यवस्था जिससे सभी की

---

1 श्रम को तभी आर्थिक माना जाता है जब इसे 'प्रत्यक्ष आनन्द की प्राप्ति के अतिरिक्त आंशिक या पूर्णरूप से किसी वस्तु की प्राप्ति की दृष्टि से किया जाता है।' पृष्ठ 59 तथा इसमें दी गयी पादटिप्पणी को देखिए। जब तक हमारा ध्यान उत्पादन के साधारण अर्थ में होने वाले प्रयोग तक सीमित है, मस्तिष्क से किये जाने वाले ऐसे किसी भी प्रकार के श्रम को जिससे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में भौतिक उत्पादन में वृद्धि नहीं होती, जैसे किसी छात्र का अपने पढ़ने लिखने में मस्तिष्क का प्रयोग करना, ध्यान में नहीं रखा जाता। यदि श्रम का अर्थ श्रमिकों से अर्थात् मानव, जाति से लगाया जाय तो कुछ दृष्टिकोणों से, न कि सभी दृष्टिकोणों से भूमि, श्रम पूंजी वाक्यांश अधिक सममित (Symme rical) होगा। वालरस की Economie Politique Pure, Lecon 17 तथा प्रो० फिशर द्वारा, Economic Journal, VI पृष्ठ 529 में लिखे गये लेख को देखिए।

सुरक्षा हो सके तथा अनेक लोगों की सहायता की जा सके। ज्ञान तथा व्यवस्था की दृष्टि से सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के बीच अन्तर का बड़ा महत्व है और इसकी महत्ता बढ़ती जा रही है: कुछ दृष्टियो मे तो यह भौतिक वस्तुओं मे सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के विभेद से भी अधिक महत्वपूर्ण है और आंशिक रूप से इस कारण कभी-कभी व्यवस्था को उत्पादन के विशेष कारक के रूप मे अलग से गणना करनी सर्वोत्तम प्रतीत होती है। इस विषय पर बहुत बाद मे ही पूर्ण रूप से विचार करना सम्भव होगा, किन्तु इस भाग मे भी इस सम्बन्ध मे कुछ कहना आवश्यक है।

एक अर्थ मे केवल प्रकृति और मानव ही उत्पादन के दो कारक है। पूंजी तथा व्यवस्था प्रकृति की सहायता के फलस्वरूप मनुष्य के कार्य के परिणाम हैं, और इनके लिए भविष्य के विषय मे उसकी अनुमान लगाने की शक्ति और इसके लिए आयोजन करने की तत्परता से प्रेरणा मिलती है। यदि प्रकृति तथा मानव के स्वरूप और इनकी शक्तियाँ ज्ञात हो तो इनसे सम्पत्ति, ज्ञान तथा व्यवस्था की उसी प्रकार स्वतः वृद्धि होने लगती है जिस प्रकार कारण से परिणाम स्वतः ही निकलने लगता है। किन्तु दूसरी ओर स्वय मनुष्य अपने चारो ओर के वातावरण से, जिसमे प्रकृति का बहुत हाथ रहता है, मुख्यतया प्रभावित होता है: इस प्रकार प्रत्येक दृष्टिकोण से मानव उत्पादन तथा उपभोग की सभी समस्याओ तथा इन दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो से उत्पन्न समस्या का, जिसे वितरण तथा विनिमय का नाम दिया जाता है, केन्द्र है।

मानव उत्पादन का लक्ष्य भी है और कारक भी है।

सख्या, स्वास्थ्य एव शक्ति, ज्ञान, योग्यता तथा चरित्र की उत्तमता से मानव जाति की वृद्धि हमारे सभी अध्ययनो का लक्ष्य है, किन्तु यह वह लक्ष्य है जिसमें अर्थशास्त्र कुछ महत्वपूर्ण तत्वो को जोड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। अतः यदि अर्थशास्त्र पर लिखे गये किसी भी ग्रन्थ के किसी भाग से इसका सम्बन्ध है तो व्यापक अर्थो मे यह इस वृद्धि के लक्ष्य से होगा: किन्तु यहाँ भी यह इससे उचित रूप मे सम्बन्धित नही है। फिर भी उत्पादन मे मनुष्य के प्रत्यक्ष योगदान की तथा उन परिस्थितियो की जो उत्पादक के रूप मे उसकी योग्यता को प्रभावित करती हैं, हम अवहेलना नही कर सकते। और सब कुछ विचारते हुए आग्ल प्रथा की भाँति जनसंख्या मे तथा लोगों के आचरण मे वृद्धि को उत्पादन के सामान्य विवेचन के अंश के रूप मे सम्मिलित करना सम्भवतः सबसे अधिक सुविधाजनक होगा।

साधारण श्रम को दृष्टान्त के रूप में लेते हुए मांग तथा सम्भरण में अस्थायी विरोध।

§2. यहाँ पर मांग तथा सम्भरण उपभोग तथा उत्पादन के सामान्य सम्बन्धो के विषय मे बहुत थोड़ी ही सूचना दी जा सकती है। किन्तु अभी कुछ ही पहले तुष्टिगुण तथा मूल्य का विवेचन करने से इस सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान ताजा होने के कारण यह अच्छा होगा कि मूल्य तथा उस तुष्टिहीनता या कष्ट के सम्बन्धों पर थोड़ा विचार कर लें जिसे उन वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए दूर करना है जिनमे शीघ्र ही आवश्यक होने तथा दुष्प्राप्य होने के कारण मूल्य निहित रहता है। यहाँ पर जो कुछ भी विचार व्यक्त किये जायेगे वे अस्थायी होगे, और हो सकता है कि इनसे ऐसा प्रतीत हो कि समस्याओ का निराकरण न होकर उनमे वृद्धि हो रही है: और जिस क्षेत्र पर हमें विचार करना है उसका हमारे सम्मुख एक खाका होना लाभदायक होगा, भले ही इसकी रूपरेखा बहुत हल्की और टूटी-फूटी ही हो।

माँग वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा पर आधारित है जबकि सम्भरण 'कष्ट' सहने की अनिच्छा पर विजय प्राप्त करने पर आधारित है। इनको सामान्यतया दो श्रेणियों—श्रम तथा उपभोग को स्थगित करने में किया जाने वाला त्याग—में विभक्त किया जा सकता है। सम्भरण में साधारण श्रम के महत्व के विषय में कुछ चर्चा करनी पर्याप्त होगी। इसके पश्चात् यह देखा जायगा कि प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य तथा उत्पादन के साधनों को एकत्रित करने में निहित प्रतीक्षा में त्याग के विषय पर भी इसी प्रकार की (कभी-कभी ही, निरन्तर नहीं) टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

श्रम के प्रयोजनों की भाँति इसमें होने वाले कष्ट भी अनेक होते हैं।

श्रम से मिलने वाला कष्ट शारीरिक अथवा मानसिक थकान से, या अस्वास्थ्यकर वातावरण में अथवा अवाञ्छित सहयोगियों के साथ काम करने से, या मनोरंजन अथवा सामाजिक या बौद्धिक खोजों के लिए आवश्यक समय को इसमें लगाने से उत्पन्न होता है। किन्तु इस कष्ट का चाहे जो भी रूप हो, श्रम की कठिनता तथा इसकी अवधि के बढ़ने के साथ इसकी तीव्रता प्रायः हमेशा ही बढ़ती जाती है।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि बहुत कुछ प्रयास प्रयासमात्र के लिए ही किये जाते हैं, जैसे उदाहरण के रूप में पर्वतारोहण, खेल खेलने तथा साहित्य, कला एवं विज्ञान की खोज में लगा हुआ श्रम, अन्य लोगों को लाभ पहुँचाने की इच्छा से भी बहुत से कठिन कार्य किये जाते हैं।[1] किन्तु जिस अर्थ में हमने इस शब्द का प्रयोग किया है उसमें इसका अधिकांशतया मुख्य प्रयोजन कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा से है। समाज की वर्तमान अवस्था में द्रव्य की कुछ मात्रा की प्राप्ति के रूप में प्राय यह इच्छा प्रकट होती है। यह सत्य है कि जब कोई व्यक्ति पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिए कोई कार्य करता है तो वह उसमें बहुधा आनन्द का अनुभव करता है:

---

1 हम (भाग 3, अध्याय 6, अनुभाग 1 में) देख चुके हैं कि यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण खरीददारी को उस कीमत पर करता है जिस पर कि वह क्रय की जाने वाली वस्तु की अन्तिम मात्राओं को खरीदने के लिए तत्पर होगा तो उसे इससे पहले क्रय की गयी मात्राओं में कुछ अतिरिक्त संतुष्टि मिलती है, क्योंकि वह उन्हें न खरीदने की अपेक्षा उनके लिए जो कीमत देने को तत्पर था उससे कम कीमत देता है। अतः यदि किसी कार्य को करने के लिए उसे मिलने वाला पारिश्रमिक उस भाग के लिए उचित पारितोषिक है जिसे वह कार्य करने की इच्छा के न होने पर भी करता है, और यदि, जैसा कि अधिकांशतया होता है, काम के उस भाग के लिए जिसे वह पहले की अपेक्षा कुछ कम अनिच्छा के होते हुए भी करता और जिसकी उसके लिए वास्तविक लागत अपेक्षाकृत कम है, पहले, के ही बराबर भुगतान किया जाय तो उस भाग से उसे उत्पादक अधिशेष (Producer's Surplus) मिलेगा। इस विचार से सम्बन्धित कुछ कठिनाइयों के विषय में परिशिष्ट ट (k) में विचार किया गया है।

श्रमिक की अपने श्रम को इसकी सामान्य कीमत से कम पर बेचने की अनिच्छा विनिर्माताओं की कम कीमत पर वस्तुएँ बेच कर बाजार भाव को बिगाड़ने की अनिच्छा से मिलती-जुलती है, भले ही विनिर्माता किसी विशेष सौदे में अपनी मशीनों को खाली छोड़ने की अपेक्षा वस्तुतः कम कीमत लेना स्वीकार कर लें।

किन्तु इस काम के पूरा होने से पहले ही वह इतना थक जाता है कि काम खत्म करने की घड़ी आते ही उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। शायद कुछ समय तक काम से अलग हो जाने के बाद वह जहाँ तक उसके तुरन्त मिलने वाले आराम का प्रश्न है, कुछ भी काम न करने की अपेक्षा वस्तुतः मुफ्त में ही काम करने लगे, किन्तु वह अपने (श्रम) बाजार को एक ऐसे उत्पादक की अपेक्षा अधिक बिगाड़ना पसन्द न करेगा जो बिक्री के लिए रखी हुई सभी वस्तुओं को उनकी सामान्य कीमत से बहुत नीची कीमत पर बेचने को भी तैयार रहता है, इस सम्बन्ध मे दूसरे खण्ड मे बहुत कुछ कहने की आवश्यकता होगी।

पारिभाषिक वाक्यांश के रूप मे इसे श्रम की सीमान्त तुष्टिहीनता कहा जा सकता है। क्योकि जिस प्रकार किसी वस्तु की मात्रा मे होने वाली हर वृद्धि के साथ-साथ उसका सीमान्त तुष्टिगुण कम होता जाता है और जिस प्रकार किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा मे होने वाली हर कमी के साथ-साथ उस वस्तु की सम्पूर्ण मात्रा के लिए, न कि उसके अन्तिम भाग के लिए, मिलने वाली कीमत मे कमी आ जाती है, उसी प्रकार साधारणतया श्रम की मात्रा मे होने वाली हर वृद्धि के साथ उसकी सीमान्त तुष्टिहीनता बढ़ती जाती है।

यद्यपि अधिकांश कार्य आनन्ददायक होता है तिस पर भी कुछ निश्चित कल्पनाओं के आधार पर इस कार्य को करने की तत्परता इसके लिए मिलने वाले पारिश्रमिक से नियंत्रित होती है।

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति की जो पहले से ही किसी धन्धे मे लगा है अपने श्रम को बढ़ाने की अनिच्छा, साधारण परिस्थितियो मे मानव-स्वभाव के आधारभूत सिद्धान्तो पर निर्भर है और अर्थशास्त्री को इन्हे अन्तिम तथ्यों के रूप मे स्वीकार करना पड़ता है। जेवन्स के मतानुसार[1] कार्य में लगने से पूर्व बहुधा कुछ आन्तरिक प्रतिरोध पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। कार्य को प्रारम्भ करते समय कुछ कष्ट मालूम होता है किन्तु यह धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है, और बाद मे कार्य करने मे आनन्द का अनुभव होता है और इस आनन्द मे कुछ समय तक वृद्धि होती है, किन्तु यह वृद्धि एक निम्न अधिकतम बिन्दु तक ही सीमित रहती है। इसके पश्चात् यह कम होने लगती है और इसकी मात्रा शून्य तक पहुँच जाती है, और तदनन्तर थकान बढ़ती जाती है तथा मनबहलाव एवं परिवर्तन के लिए मनुष्य की उत्कट इच्छा भी बढ़ती जाती है। बौद्धिक कार्यों मे जब एक बार आनन्द तथा उत्तेजना होने लगती है तो यह बहुधा बढ़ती जाती है और प्रगति मे रुकावट तभी आती है जब ऐसा करना आवश्यक हो या बुद्धिमत्तापूर्ण हो। प्रत्येक स्वस्थ्य व्यक्ति के पास शारीरिक शक्ति का कुछ भण्डार रहता है जिसका वह उपयोग कर सकता है, किन्तु केवल विश्राम करने से ही यह स्थानान्तरित हो सकता है। अन्यथा यदि एक लम्बे समय तक उसका व्यय उसकी आय से अधिक हो तो उसका स्वास्थ्य बहुत ही गिर जाता है। नियोजक बहुधा यह अनुभव करते है कि बहुत अधिक आवश्यकता के काल मे श्रमिको के वेतन मे अस्थायी वृद्धि होने से वे लोग उतना कार्य करने के लिए प्रेरित होगे जितना वे एक लम्बे समय में बराबर नही कर सकते है,

---

1 Theory of Political Economy, अध्याय V। आस्ट्रिया के तथा अमरीका के अर्थशास्त्रियों द्वारा इस सिद्धान्त पर अधिक जोर दिया गया है और उन्होंने ही इसे अधिक विस्तार में आगे बढ़ाया है।

चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही भुगतान क्यों न किया जाय। इसका एक कारण तो यह है कि जब काम के घण्टों में इतनी वृद्धि हो कि ये एक निश्चित सीमा को पार कर लें तो काम करने के घण्टों में जितनी अधिक वृद्धि होगी विश्राम करने की इच्छा भी उतनी ही अधिक प्रबल होती जायेगी। अतिरिक्त काम करने के लिए अरुचि आंशिक रूप से इसलिए बढ़ती है कि जैसे-जैसे विश्राम तथा अन्य कार्यों के लिए समय घटता जाता है, स्वच्छन्द रूप से कुछ अधिक समय व्यतीत करने की रुचि बढ़ती जाती है।

इन तथा कुछ अन्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए स्थूल रूप से यह सत्य है कि श्रमिकों का समूह जो कठोर परिश्रम करता है वह उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक में वृद्धि या कमी के साथ बढ़ता या घटता जाता है। जिस प्रकार किसी वस्तु की एक दी हुई मात्रा के लिए खरीददारों को आकर्षित करने वाली कीमत एक वर्ष या किसी अन्य निश्चित समय में उस मात्रा की मांग-कीमत कहलाती है, उसी प्रकार किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए आवश्यक परिश्रम के लिए जिस पारिश्रमिक का मिलना आवश्यक है उसे उसी समय में उतनी मात्रा का सम्भरण पारिश्रमिक कहा जा सकता है। यदि कुछ देर के लिए हम मान लें कि कार्य में लगे हुए तथा प्रशिक्षित श्रमिकों की एक निश्चित संख्या द्वारा किये गये परिश्रम पर ही उत्पादन निर्भर है तो हमें मांग-कीमतों की सूची के अनुरूप ही, जिस पर विचार किया जा चुका है, सम्भरण-पारिश्रमिक की एक सूची बना लेनी चाहिए। सैद्धान्तिक रूप में अंकों के एक कालम में इस सूची से परिश्रम की ओर इस कारण उत्पादन की विभिन्न मात्राएँ प्रकट की जायेंगी, और इसके समानान्तर कालम में वे पारिश्रमिक दिखाये जायेंगे जो कार्य के लिए मिलने वाले श्रमिकों को इतना परिश्रम करने के लिए प्रेरित करें।[1]

सम्भरण पारिश्रमिक

वास्तविक जीवन में इस समस्या की कठिनाई की पूर्व सूचना।

किसी भी प्रकार के श्रम की पूर्ति, और इसके फलस्वरूप इस श्रम द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के सम्भरण पर इस सरल विधि द्वारा विचार करते समय यह मान लिया गया है कि जो लोग इस कार्य को करने के योग्य हैं उनकी संख्या निश्चित है। इस प्रकार की मान्यता समय की एक छोटी अवधि में ही उचित हो सकती है। सम्पूर्ण जनसंख्या अनेक कारणों के फलस्वरूप बदलती रहती है। इन कारणों में से कुछ ही आर्थिक कारण होते हैं, किन्तु इनमें मजदूर की औसत कमाई का प्रमुख स्थान है, भले ही इस कमाई का मजदूरों की संख्या में होने वाली वृद्धि पर पड़ने वाला प्रभाव अनिश्चित और अनियमित हो।

किन्तु जनसंख्या के अलग-अलग व्यापारों में विभाजन पर आर्थिक कारणों का अधिक प्रभाव पड़ता है। दीर्घकाल में किसी भी व्यापार में श्रम की पूर्ति इसकी मांग के लगभग बराबर होती है: विचारशील माता-पिता अपने बच्चों को उन सबसे अधिक लाभकारक धन्धों में लगाते हैं जिनमें उनकी पहुंच होती है, अर्थात् ऐसे धन्धों में लगाते हैं जिनमें कम कठिन तथा अच्छे ढंग के कार्य के बदले में मजदूरी या अन्य प्रकार के लाभों के रूप में अधिकतम पारितोषिक मिलता है। मांग तथा पूर्ति में श्रम का इस प्रकार का समायोजन कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। मांग में होने वाले परिवर्तन कुछ समय

1 भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 4 देखिए।

के लिए, यहाँ तक कि अनेक वर्षों के लिए, इसे उस समायोजन की अपेक्षा जो कि माता-पिता को अपने बच्चों के लिए उसी वर्ग के किसी अन्य व्यवसाय की अपेक्षा उसी व्यवसाय को छाँटने के लिए प्रेरित करने में पर्याप्त होता, बहुत बड़ा या बहुत छोटा बना सकते हैं। अतः यद्यपि किसी समय किसी भी प्रकार के काम से मिलने वाले पारितोषिक का उस काम के लिए आवश्यक कुशलता को कठोर परिश्रम, अरुचि, तथा आराम की कमी इत्यादि से प्राप्त करने की कठिनाई से अवश्य ही कुछ सम्बन्ध है, तथापि इसमें अनेक विघ्न उत्पन्न हो सकते है। इन विघ्न-बाधाओं का अध्ययन करना कठिन काम है, और इस पर आगे चल कर विचार किया जायेगा। किन्तु यह भाग मुख्यतया वर्णनात्मक है और इसमें थोड़ी ही कठिन समस्याओं पर विचार किया गया है।

अध्याय 2

भूमि की उर्वरता

यह विचार कि भूमि प्रकृति की मुक्त देन है जब कि भूमि की उपज मनुष्य के कार्य का प्रतिफल है, एक असंगत बात है: किन्तु इसमें एक सत्य निहित है।

§1. उत्पादन के लिए आवश्यक चीजों को साधारणतया भूमि, श्रम तथा पूंजी के नाम से पुकारा जाता है: वे भौतिक वस्तुएँ जो मानवीय श्रम के कारण उपयोगी होती हैं पूंजी कहलाती हैं, और जिनमे मानवीय श्रम का बिलकुल भी हाथ नही रहता भूमि कहलाती हैं। इनमे विभेद निश्चय ही असयत प्रतीत होता है: क्योकि ईंट मिट्टी को एक प्रकार का अच्छा रूप देने के अतिरिक्त और कुछ नही है, और पुराने बसे हुए देशो के अधिकाश भाग की मिट्टी के ऊपर मनुष्य ने अनेक बार काम किया है, और भूमि का आधुनिक रूप मनुष्य के कार्यों का परिणाम है। किन्तु इस भेद मे एक वैज्ञानिक सिद्धान्त निहित है। मनुष्य के पास पदार्थ के उत्पादन करने की शक्ति नही है, वह वस्तुओ को एक उपयोगी रूप देकर उनमे तुष्टिगुण का सृजन करता है।[1] उसके द्वारा जिन तुष्टिगुणो का उत्पादन किया जाता है उनके सम्भरण को इनके लिए माँग के बढने पर बढाया जा सकता है: इनकी एक सम्भरण कीमत होती है। किन्तु कुछ ऐसी भी उपयोगी वस्तुएँ है जिनके सम्भरण पर उसका कोई नियन्त्रण नही रहता, ये प्रकृति द्वारा एक निश्चित मात्रा मे प्रदान की जाती हैं और इसलिए इनकी कोई सम्भरण कीमत नही होती। अर्थशास्त्रियो ने भूमि शब्द का इतने व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया है कि इसमें इन तुष्टिगुणो[2] के सभी स्थायी स्रोत शामिल हैं, चाहे ये (साधारण प्रयोग की भाषा मे) भूमि मे, या समुद्र तथा नदियो मे, धूप या वर्षा मे, हवा तथा झरनों में, कही भी पाये जायें।

यह पता लगा लेने के बाद कि वह क्या चीज है जो भूमि को उन भौतिक चीजो से अलग करती है जिन्हें हम भूमि का उत्पादन कहते है, हम देखेंगे कि भूमि का आधारभूत गुण इसका विस्तार है। भूमि के एक टुकडे को उपयोग मे लाने का अधिकार एक निश्चित स्थान—पृथ्वी के धरातल के कुछ निश्चित भाग—के ऊपर नियन्त्रण रखने की शक्ति प्रदान करता है। पृथ्वी का क्षेत्रफल निश्चित है: इसके किसी निश्चित भाग के अन्य भागो के साथ ज्यामितिक सम्बन्ध निश्चित है। मनुष्य का उनके ऊपर कोई

---

1 भाग 2, अध्याय 3, देखिए।

2 रिकार्डो के प्रसिद्ध वाक्यांश में इसे 'मिटटी की मूल तथा अविनाशी शक्तियाँ' कहेंगे। थौन व्यूनेन ने लगान के सिद्धान्त के आधार तथा एडम स्मिथ और रिकार्डो द्वारा इस सम्बन्ध में ली गयीं स्थितियों के विषय में एक विचारणीय विवेचन में 'मिट्टी अपनी प्राकृतिक अवस्था में' (Der Boden an sich) का प्रयोग किया है। इस वाक्यांश का दुर्भाग्यवश अनुवाद नहीं किया जा सकता, किन्तु इसका अर्थ मिट्टी के प्राकृतिक रूप से है, यदि मनुष्य के कार्य द्वारा इसमें परिवर्तन न किया गया हो (Der Isolirte Staat, 1,1,5.)

नियंत्रण नहीं है। इन पर माँग का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। इनकी कुछ भी उत्पादन लागत नहीं है, कोई भी ऐसी सम्भरण कीमत नहीं है जिस पर इनका उत्पादन किया जा सके।

किसी भी काम को करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पृथ्वी के धरातल के कुछ भाग का उपयोग करे। इससे उसे उस क्षेत्र में प्रकृति द्वारा दी गयी उष्णता तथा प्रकाश, वायु तथा वर्षा के आनन्द के साथ अपने कार्यों को करने का अवसर मिलता है, और इससे अन्य वस्तुओं तथा अन्य व्यक्तियों से उसकी दूरी तथा एक बडी मात्रा में उसके सम्बन्ध निर्धारित होते है। हम यह देखेंगे कि 'भूमि' का यही वह गुण है जो भूमि तथा अन्य चीजों में अर्थशास्त्र के सभी लेखकों द्वारा किये जाने वाले विभेद का अन्तिम कारण है, भले ही इसे अभी भी अपर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है। आर्थिक विज्ञान में जो सबसे रोचक तथा सबसे कठिन चीज है उसके अधिकांश भाग की यही बुनियाद है।

पृथ्वी के धरातल के कुछ भागों से, मुख्यतया नाविक को मिलने वाली सेवाओं से, उत्पादन में सहायता मिलती है: अन्य भागों का खान में काम करने वाले लोगों के लिए बहुत महत्व है तथा अन्यों का—यद्यपि इस प्रकार का चुनाव प्रकृति की अपेक्षा स्वयं मनुष्य को करना पड़ता है—निर्माणकर्ता के लिए विशेष महत्व है। किन्तु जब भूमि की उत्पादकता की बात कही जाती है तो हमारे मस्तिष्क में सर्वप्रथम कृषि के लिए इसके उपयोग किये जाने के विचार आते है।

उर्वरता की दशाएं।

§2. कृषक के लिए भूमि का कोई क्षेत्र शाक-सब्जी उगाये जाने का साधनमात्र ही नही है अपितु यह अन्ततोगत्वा पशुओं के जीवन-निर्वाह का भी साधन है। इस उद्देश्य से मिट्टी मे कुछ भौतिक तथा रासायनिक गुणों का होना आवश्यक है।

भौतिक रूप से, मिट्टी ऐसी होनी चाहिए कि पौधों की सुन्दर जड़ें इसमे बिना किसी बाधा के नीचे को बढ सकें, किन्तु साथ ही साथ यह इतनी मजबूत भी हो कि पौधों को अच्छी तरह खड़ा रख सके। यह रेतीली मिट्टी की भाँति भी नही होनी चाहिए जिनसे पानी आसानी से निकलता जाय। क्योंकि ऐसा होने से मिट्टी शुष्क होगी और पौधों का भोजन मिट्टी में डाले जाने के बाद तैयार होते ही घुल जायेगा। इसे सख्त मिट्टी की तरह भी नही होना चाहिए, क्योंकि इससे पानी बिना किसी बाधा के अन्दर नही घुल सकता। ताजे पानी की लगातार पूर्ति, तथा मिट्टी से होकर अपने साथ हवा को ले जाने की क्रिया पौधे के लिए बहुत आवश्यक है: बार-बार पानी के मिलते रहने से जो खनिज तथा गैस अन्यथा बेकार रहती या जहरीली होती, वह पौधे के भोजन के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ताजी हवा तथा पानी और तुषार का प्रभाव यह होता है कि मिट्टी की प्राकृतिक जुताई हो जाती है, और बिना किसी मिलावट के भी पृथ्वी के किसी भी भाग का धरातल ठीक समय पर पर्याप्त उपजाऊ हो सकता है बशर्ते इनसे जो मिट्टी बनती है वह जहाँ थी वही पड़ी रहे, और बनते ही वर्षा तथा अत्यधिक तेज धारा से ढलान में बह न जाय। किन्तु मनुष्य मिट्टी की इस प्रकार की भौतिक बनावट में बड़ी सहायता पहुँचाता है। उसका जुताई करने का मुख्य उद्देश्य प्रकृति को सहायता पहुँचाना है जिससे मिट्टी पौधे की जड़ों को हल्के से, किन्तु मजबती के साथ

पकड़ने मे समर्थ हो सके, और इसमे हवा तथा पानी आसानी से जा सके। गोबर की खाद चिकनी मिट्टी का उपविभाजन करती है और उसको हल्का और अधिक खुला बनाती है, जबकि रेतीली मिट्टी की बनावट में इससे आवश्यकतानुसार बहुत मजबूती आ जाती है, और भौतिक तथा रासायनिक रूप से पौधों की खुराक की सामग्री को जो अन्यथा उसमें से शीघ्र ही बह जाती, रोके रहने मे सहायता मिलती है।

उर्वरता की रासायनिक दशाएँ।

रासायनिक रूप से मिट्टी मे वे अजैव (Inorganic) तत्व होने चाहिए जिनकी पौधों को रसीले रूप मे आवश्यकता होती है। कुछ दशाओं में मनुष्य केवल थोड़े से श्रम से बड़े-बड़े परिवर्तन कर सकता है। क्योंकि वह किसी अनुपजाऊ मिट्टी मे इसे उर्वर बनाने के लिए आवश्यक वस्तुओं की थोडी मात्रा मिलाने से, उसे उपजाऊ मिट्टी मे बदल सकता है। वह अधिकांशतया चूने का इसके अनेक रूपों में से कुछ रूपों मे प्रयोग करता है, या फिर उन कृत्रिम खादों को डालता है जो आधुनिक रसायन विज्ञान के फलस्वरूप अनेक रूपो मे उपलब्ध हैं: और अब तो अपने इस कार्य में वह जीवाणुओ (Bacteria) की भी सहायता लेता है।

मनुष्य की मिट्टी के गुण में परिवर्तन करने की शक्ति।

§3 इन सब साधनो से मिट्टी की उर्वरा शक्ति मनुष्य के नियंत्रण मे आ सकती है। वह पर्याप्त श्रम द्वारा लगभग किसी भी प्रकार की भूमि मे अत्यधिक फसल उगा सकता है। वह जो कुछ भी फसल अगली बार उगाना चाहता है उसके लिए मिट्टी को भौतिक तथा रासायनिक रूप से तैयार कर सकता है। वह मिट्टी की बनावट के अनुसार ही उसमे अनुकूल फसल उगाता है और विभिन्न फसलों मे आपस मे ऐसा हेर-फेर करता है कि प्रत्येक फसल भूमि को ऐसी अवस्था मे, और वर्ष के ऐसे समय पर, छोड़ती है जबकि समय की बरबादी के बिना ही इसे आसानी से आगामी फसल उगाने के अनुकूल बनाया जा सकता है। यहाँ तक वह मिट्टी मे से निरर्थक जल बहा कर, या इसमें अन्य प्रकार की मिट्टी को मिला कर जो कि इसकी कमियों को पूरा कर देगी, मिट्टी के स्वरूप मे स्थायी परिवर्तन कर सकता है। अब तक यह सब कुछ बहुत थोडे परिमाण मे किया गया है। केवल खेतो के ऊपर खड़िया तथा चूने, चिकनी तथा चूनेदार मिट्टी की हल्की-सी परत डाल दी जाती है। बगीचो तथा अन्य विशेष प्रकार के उपयोग मे लाये गये स्थानो के अतिरिक्त शायद ही कहीं पूर्णरूप से नयी मिट्टी बनायी गयी है। किन्तु यह सम्भव है, और कुछ लोग इसे सम्भावित सोचते हैं कि जो मशीने रेलो के निर्माण तथा अन्य बड़े बाँधो को बाँधने मे काम आती हैं उनका भविष्य मे दो भिन्न प्रकार की, किन्तु एक दूसरे की कमियों को दूर करने वाली, मिट्टियों को मिला कर उपजाऊ मिट्टी तैयार करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जायेगा।

विगत समय की अपेक्षा भविष्य मे इन सभी प्रकार के परिवर्तनो के अधिक विस्तार मे और अधिक गहन रूप मे किये जाने की सम्भावना है। किन्तु आज भी पुराने बसे हुए देशों मे मिट्टी के अधिकाश भाग का स्वरूप मानवीय क्रियाओं का परिणाम है। धरातल के नीचे जो कुछ भी है उसमे पूँजी का अंश जो कि मनुष्य के विगत श्रम की उपज है, अधिक है। प्रकृति की जिन नैसर्गिक देनो को रिकार्डो ने मिट्टी के 'स्वाभाविक' तथा 'अविनाशी' गुणों मे वर्गीकृत किया, उनमे बड़े-बड़े परिवर्तन हो गये हैं।

मनुष्यों के अनेक पीढ़ियों के काम से इन्हे पहले की अपेक्षा आंशिक रूप से अधिक निर्धन और आंशिक रूप से अधिक धनी बना दिया गया है।

किन्तु यह पृथ्वी के ऊपर जो कुछ है उससे भिन्न है। प्रत्येक एकड़ से इरो प्रति-वर्ष प्राकृतिक रूप से ताप तथा प्रकाश, वायु तथा नमी प्राप्त होती है, और इन पर मनुष्य का बहुत कम नियंत्रण है। इसमें कोई सन्देह नही कि मनुष्य विस्तारपूर्वक जल-निकासी द्वारा या जगलो को लगाकर, अथवा उन्हे काट कर जलवायु मे थोड़ा बहुत परिवर्तन कर सकता है। किन्तु प्रकृति की ओर से प्रत्येक खेत को सूर्य, हवा तथा वर्षा से कुल मिला कर एक निश्चित वार्षिक अनुदान मिलता है। भूमि के ऊपर स्वामित्व होने से इस वार्षिक अनुदान को रखने का अधिकार मिलता है: और यह वनस्पति के उगने तथा पशुओ के जीवन-यापन एव विचरने के लिए भी स्थान प्रदान करती है। इस स्थान का मूल्य इसकी भौगोलिक स्थिति से बहुत मात्रा मे प्रभावित होता है।

भूमि के मौलिक तथा कृत्रिम गुण।

अतः हम भूमि के प्रकृति से प्राप्त मूल अथवा स्वाभाविक गुणो और मनुष्य के कार्यो के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले कृत्रिम गुणो के बीच साधारण विभेद को आगे भी इस शर्त पर मान सकते है कि हम यह याद रखे कि मूल अथवा स्वाभाविक गुणो मे भूमि के किसी खेत की स्थिति तथा प्रकृति द्वारा सूर्य, वायु तथा वर्षा के रूप मे दिये गये वार्षिक अनुदान शामिल है। अनेक दशाओ मे तो मिट्टी के स्वाभाविक गुणो मे से ये ही मुख्य है। वास्तव मे इन्ही के कारण कृषि भूमि के स्वामित्व की अनोखा महत्ता है, और लगान के सिद्धान्त का विशेष रूप भी इन्ही पर निर्भर है।

अन्य दशाओं की अपेक्षा कुछ दशाओं में मूल गुणों का अधिक और कृत्रिम गुणों का कम महत्व होता है।

§4. किन्तु इस प्रश्न पर कि किसी मिट्टी की उर्वरता कहाँ तक प्रकृति द्वारा दिये गये मूल गुणो पर और कहाँ तक मनुष्य द्वारा इसमे लाये गये परिवर्तनो पर निर्भर है, तब तक पूर्णरूप से विवेचन नही किया जा सकता जब तक इसमे उगाई गयी उपज की किस्म को ध्यान मे नही रखा जाय। सभी फसलो की अपेक्षा कुछ फसलो के उत्पादन को बढ़ाने मे मनुष्य बहुत अधिक सक्रिय रूप से सहयोग दे सकता है तुला के एक ओर तो जगल के पेड़ है। एक बाँज के पेड़ को जो ठीक ढग से लगा हुआ है और जिसके फैलने के लिए पर्याप्त स्थान है, मनुष्य की सहायता से बहुत थोड़ा ही लाभ होता है. इसमे पर्याप्त प्रतिफल की आशा मे श्रम को लगाने का कोई भी रास्ता नही है। अधिक उपजाऊ मिट्टी वाली नदियों की तलहटी पर, जहाँ जल-निष्कासन का भी अच्छा प्रबन्ध रहता है, उगी हुई घास के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही कहा जाता है। जगली जानवर मनुष्य की तनिक भी परवाह न करते हुए मनुष्य की भाँति ही इसकी अच्छी तरह जुताई करेंगे। इग्लैंड की जो सबसे अधिक उपजाऊ कृषि भूमि है (जिस पर 6 पौंड प्रति एकड़ और इससे भी ऊपर लगान पड़ता है) वह किसी प्रकार की सहायता के बिना प्रकृति को लगभग उतना ही प्रतिफल देती जितना कि इनसे अब मिलता है। इसके पश्चात् वह भूमि आती है जो यद्यपि बहुत अधिक उपजाऊ नही होती किन्तु स्थायी चरागाहो के रूप मे रखी जाती है। और इसके बाद वह जोतने योग्य भूमि आती है जिस पर मनुष्य प्रकृति के बीजारोपण पर विश्वास नही करता, और प्रत्येक फसल की विशेष जरूरतो को पूरा करने के लिए भूमि तैयार करता है, स्वयं बीज बोता है और इसको आघात पहुँचाने वाले पौधो को उखाड़ फेंकता है। वह जिन बीजों को बोता है उनमे

वे गुण विद्यमान हैं जिनसे उसके लिए सबसे उपयोगी भाग शीघ्र तैयार हो जाय और उसका पूर्ण विकास हो जाय। और यद्यपि इस प्रकार के चयन करने की आदत आधुनिकतम है, और अभी सामान्यतया ऐसा किया भी नही जाता, तिस पर भी हजारो वर्षों के सतत प्रयास द्वारा उसने इन पौधों को ऐसा रूप दिया है कि ये अपने जगली रूप से बहुत कम मेल खाते हैं। अन्त मे, उपज की जो किस्मे मानवीय श्रम तथा निगरानी के लिए सबसे अधिक ऋणी है उनमे उत्कृष्ट प्रकार के फल, फूल तथा शाक-सब्जी और पशुओ की किस्मे है। विशेषकर वे जो स्वय अपनी नस्ल को सुधारने के काम में लाये जाते है। क्योकि जहाँ अकेली प्रकृति उन चीजो का चयन करेगी जो अपनी तथा अपने सन्तति की स्वय देखभाल कर सके, वहाँ मनुष्य उनका चयन करेगा जो उन चीजो की सबसे अधिक पूर्ति करे जिनकी उसे बहुत अधिक आवश्यकता है और बहुत से सर्वोत्तम प्रकार के उत्पादनो का बिना मनुष्य के यत्न के अस्तित्व ही नही रह सकता।

सभी दशाओं में पूंजी तथा श्रम की अतिरिक्त मात्राओं से मिलने वाला प्रतिफल कभी न कभी अवश्य ही घटने लगेगा।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के कृषि-उत्पादन को बढ़ाने मे मनुष्य प्रकृति की अनेक प्रकार से सहायता करता है। वह तब तक किसी कार्य को करता रहेगा जब तक कि पूंजी और श्रम की अतिरिक्त मात्रा का प्रतिफल इतना न घट जाय कि इनका और अधिक उपयोग करना उसके लिए लाभप्रद न हो। जहाँ यह स्थिति शीघ्र ही आ जाती है वहाँ वह प्रकृति पर ही लगभग सारा कार्य छोड़ देता है। जहाँ वही उत्पादन मे उसका हिस्सा अधिक रहता है। उसका कारण यह है कि वह इस सीमा तक पहुँचे बिना कार्य करने मे समर्थ है। इस प्रकार अब हमे उत्पत्ति-ह्रास नियम पर विचार करना होगा।

यहाँ इस प्रतिफल को मूल्य की अपेक्षा उत्पादन की मात्रा से मापा गया है।

यहाँ पर यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि पूंजी तथा श्रम के प्रतिफल को, जिस पर यहाँ विचार किया जा रहा है, उत्पादन की मात्रा से मापा जाता है। इसमे इस अवधि मे उस वस्तु के विनिमय मूल्य मे या उत्पादन की कीमत मे होने वाले परिवर्तनो पर विचार नही किया गया है। उदाहरण के रूप मे पड़ोस मे एक नयी रेल की लाइन के बन जाने से या देश की जनसख्या के अधिक बढ़ जाने से और कृषि-उपज के सरलतापूर्वक आयात न किये जा सकने के कारण इस प्रकार के परिवर्तन होते हैं। जब हम उत्पत्ति-ह्रास नियम से अनुमिति (Inference) निकालते है, और विशेषकर जब बढ़ती हुई जनसख्या या जीवन-निर्वाह के साधनो के ऊपर पड़ने वाले दबाव का विवेचन करते है, तब इन परिवर्तनो का बहुत अधिक महत्व होता है। किन्तु ये इस *नियम* पर ही आधारित नही है, क्योकि इसका सम्बन्ध वस्तुओ की उत्पादित मात्रा के मूल्य से न होकर केवल इनकी मात्रा से ही है।[1]

1 किन्तु भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 8 का पिछला भाग, तथा भाग 4, अध्याय 13, अनुभाग 2 को देखिए।

अध्याय 3

भूमि की उर्वरता (पूर्वानुबद्ध) । क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति

§1. **उत्पत्ति ह्रास के नियम या इसकी प्रवृत्ति के वर्णन** को औपबन्धिक रूप से इस प्रकार परिभाषित किया जाता है : सामान्यतया भूमि पर खेती करने मे पूंजी तथा श्रम की अधिक मात्रा लगाने से उत्पादन की मात्रा मे अनुपात से कम वृद्धि होती है, यदि इस बीच कृषि करने की प्रणाली मे सुधार न हुए हों।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के सम्बन्ध में अस्थायी कथन।

इतिहास से तथा अवलोकन करने से हम यह सीखते हैं कि प्रत्येक युग और प्रत्येक जलवायु मे एक कृषक पर्याप्त भूमि पर खेती करना चाहता है। यदि उसे यह भूमि नि:शुल्क रूप में न मिले और यदि उसके पास साधन हों तो वह इसके लिए भुगतान भी करेगा। यदि वह सोचे कि भूमि के एक छोटे से टुकड़े पर अपनी सारी पूंजी तथा पूरा श्रम लगाने से उसे समान रूप से अच्छा प्रतिफल मिल सकता है तो वह भूमि के एक छोटे से टुकड़े के लिए ही भुगतान करेगा।

भूमि कम कृष्ट हो सकती है, और इस कारण इसमें अतिरिक्त पूंजी तथा श्रम को लगाने से बढ़ती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा। किन्तु इस दर के एक अधिकतम बिन्दु पर पहुँचने के पश्चात् इस दर में पुनः कमी होने लगेगी।

यदि ऐसी भूमि नि:शुल्क प्राप्त हो सकती है जिसमे सफाई करने की आवश्यकता नहीं रहती तो प्रत्येक व्यक्ति उतनी ही मात्रा का उपयोग करता है जिससे उसकी पूंजी तथा श्रम का अधिकाधिक प्रतिफल मिल सकता है। उसकी खेती 'भू-प्रधान' है, न कि 'श्रम-प्रधान'। उसका लक्ष्य किसी एक एकड़ भूमि से अनाज के अनेकों बुशल प्राप्त करना नहीं है, क्योंकि ऐसी दशा मे वह कुछ ही एकड़ भूमि मे खेती करेगा। उसका उद्देश्य बीज तथा श्रम के एक निश्चित खर्च पर कुल उत्पादन को अधिक-से अधिक बढ़ाना है। अतः वह जितनी एकड़ भूमि मे हल्की जुताई कर सकता है उतने मे बीज बोता है। वह अपने काम को केवल इतने क्षेत्र तक भी सीमित रख सकता है जिससे उसे थोड़ी-सी जगह पर ही पूंजी तथा श्रम को लगाने से अधिक फायदा हो। और इन परिस्थितियों मे यदि प्रत्येक एकड़ पर लगाने के लिए उसके पास पूंजी तथा श्रम की अधिक गुंजाइश हो तो भूमि से उत्पादन **बढ़ती हुई दर** पर होगा, अर्थात् उसके वर्तमान व्यय की अपेक्षा उसे अधिक अनुपात मे अतिरिक्त प्रतिफल मिलेगा। यदि उसने ठीक ढंग से गणना की है तो वह उतनी ही जमीन पर जुताई करेगा जिससे उसे अधिकतम प्रतिफल मिल सके और इससे कम क्षेत्र पर पूंजी तथा श्रम को लगाने से उसे कुछ हानि उठानी पड़ेगी। यदि उसके पास अधिक पूंजी तथा श्रम को लगाने की शक्ति हो और वह अपनी वर्तमान भूमि पर इन्हें अधिक लगाने वाला हो तो इन्हें और अधिक ली गयी भूमि पर लगाने की अपेक्षा इसी पर लगाना कम लाभदायक होगा। श्रम तथा पूंजी की अन्तिम मात्राओं से उसे घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा, अर्थात् इनकी अन्तिम मात्राओं से उसे अब जो प्रतिफल मिलता है उसके अनुपात मे इस अतिरिक्त प्रतिफल की मात्रा कम होगी। किन्तु इसमे यह शर्त निहित है कि इस बीच उसकी कृषि सम्बन्धी निपुणता मे कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुए हैं। जैसे-जैसे उसके बच्चे बड़े होंगे उनके

पास भूमि पर लगाने के लिए पूँजी तथा श्रम की मात्रा अधिक होगी और क्रमागत उत्पत्ति ह्रास से बचने के लिए वे अधिक भूमि पर खेती करना चाहेंगे। किन्तु यह सम्भव है कि तब तक पड़ोस की सारी भूमि मे पहले से ही खेती हो रही हो, अतः कुछ अधिक भूमि प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होगा कि वे यह जमीन खरीदें या इसके उपयोग करने के लिए लगान दे, या उस जगह को छोड़ कर कही ऐसी जगह बस जायें जहाँ उन्हे भूमि निःशुल्क प्राप्त हो सके।[1]

यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक कृषक अपनी सम्पूर्ण पूँजी और श्रम को भूमि के एक छोटे से टुकड़े पर लगाकर लगान के अधिकांश भाग को बचा लेता।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति ही अब्राहम (Abraham) के लाट[2] (Lot) से अलग होने तथा इतिहास मे वर्णित अधिकाश प्रवसनो (migrations) का कारण थी। और जहाँ कही भूमि पर खेती करने के अधिकार प्राप्ति की अधिक माँग हो वहाँ निश्चय ही क्रमागत उत्पत्ति ह्रास ही प्रवृत्ति पूर्णरूप से दिखायी देगी। यदि यह प्रवृत्ति लागू नही होती तो प्रत्येक किसान थोड़ी-सी भूमि के अतिरिक्त सारी भूमि को छोड़ कर, और इसमे अपनी सारी पूंजी तथा मेहनत को लगाकर लगभग अपने सारे लगान को बचा सकता था। यदि उस पूंजी तथा मेहनत से जो भूमि के इस छोटे से टुकड़े पर लगायी जाती उसे अनुपात मे उतना ही अच्छा प्रतिफल मिलता जितना कि भूमि के एक बड़े भाग पर इन्हे लगाने से मिलता है तो उसके उस प्लाट (भूमि के टुकड़े) से उतना ही उत्पादन होता जितना कि उसे सारे फार्म से अब मिलता है। और भूमि के उस टुकड़े के लिए दिये जाने वाले लगान के अतिरिक्त जिसे उसने अपने पास रख लिया हो, उसे सारी लगान का निवल लाभ (net gain) होगा।

यहाँ यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि किसान जितनी भूमि का भलीभाँति प्रबन्ध कर सकते है उससे अधिक भूमि को अपनी महत्वाकाक्षा के कारण अपने अधिकार मे कर लेते हैं और वास्तव मे आर्थर यग (Arthur Young) से लेकर आगे के सभी बड़े कृषि-प्राधिकारियो ने इस त्रुटि के विरुद्ध बहुत कुछ बुरा-भला कहा है। किन्तु जब वे किसी कृषक को यह बतलाते है कि उसे एक कम क्षेत्रफल मे अपनी सारी पूंजी तथा मेहनत लगाने से फायदा होगा तो उनका आवश्यक रूप मे यह अभिप्राय नही होता कि उसका कुल उत्पादन पहले का अपेक्षा अधिक होगा, उनके तर्क करने के लिए यह

---

1 जिस प्रकार बड़े पैमाने पर विनिर्माण करना लाभप्रद होता है उसी प्रकार आदि कालीन अवस्था में आशिक रूप में सगठन की मितव्ययिता के कारण उत्पत्ति में क्रमागत वृद्धि हुई। किन्तु आशिक रूप से इसका कारण यह भी है कि जहाँ खेती में बहुत हल्की जुताई हुई हो वहाँ स्वतः उत्पन्न होने वाले घास-पात के कारण कृषक की फसले नष्ट हो जाती है। क्रमागत उत्पत्तिह्रास तथा क्रमागत उत्पत्ति-वृद्धि के नियमो के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध के विषय में आगे चलकर इस भाग के अन्तिम अध्याय में विचार किया गया है।

2 'भूमि से इतना अधिक उत्पादन नहीं हो सकता था कि वे दोनों साथ-साथ रह सकें; वे दोनों इतने बड़े थे कि साथ-साथ नहीं रह सकते थे।'

Genesis अध्याय XII. 6.

पर्याप्त है कि इससे लगान मे जो बचत होगी वह सारी भूमि से मिलने वाले कुल प्रतिफल मे होने वाली कमी को बराबर करने से भी अधिक होगी। यदि एक किसान अपने उत्पादन का चौथाई भाग लगान के रूप मे देता हो तो उसे अपनी पूँजी तथा मेहनत को पहले से कम भूमि तक ही सीमित रखने मे फायदा होगा बशर्ते प्रत्येक एकड़ मे पूँजी तथा मेहनत की जो अतिरिक्त मात्रा लगी है उससे अनुपात मे पहले की भाँति तीन-चौथाई से भी अधिक उत्पादन हो।

उन्नत प्रणालियों से कृषि करने में अधिक पूंजी और मेहनत को लगाना लाभप्रद हो सकता है।

और यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि इग्लैंड की तरह एक अधिक विकसित देश मे भी अधिकांश भूमि पर इतनी अकुशलता से खेती की जाती है कि यदि वर्तमान पूंजी और श्रम की दुगनी मात्रा का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाय तो कुल वर्तमान उत्पादन के दुगुने से भी अधिक उत्पादन बढाया जा सकता है। यह सम्भव है कि वे लोग सही है जो यह मानते हैं कि यदि इंग्लैंड के सभी किसान सबसे अच्छे किसानों की तरह योग्य, बुद्धिमान और शक्तिशाली हों तो खेती पर अब जितनी पूँजी और मेहनत लगायी जाती है उससे दुगुनी पूंजी और मेहनत को वे बडे लाभ के साथ लगा सकते हैं। यदि मान ले कि लगान वर्तमान उत्पादन का चौथाई है तो जहाँ अब तक उत्पादन चार हण्ड्रेडवेट था वहाँ सात हण्ड्रेडवेट हो जायेगा, यह भी सम्भव है कि इनसे भी अधिक उन्नत तरीकों से उत्पादन को आठ हण्ड्रेडवेट या इससे भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। किन्तु परिस्थितियाँ जैसी है उनसे यह सिद्ध नही होता कि भूमि पर पूँजी और श्रम की अधिकाधिक मात्रा लगाने से क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि होगी। किसानों के पास वास्तव मे जो योग्यता और शक्ति है उसे ध्यान मे रखते हुए हम विश्वव्यापी अवलोकन करने से यह अनुभव करते है कि यह तथ्य है कि अपनी भूमि के अधिकाश भाग को त्याग कर शेष भाग में अपनी सारी पूंजी और मेहनत को लगा कर और उस शेष भाग के अतिरिक्त भूमि के लिए दिये जाने वाले लगान को बचा कर अमीर बनने का सरल मार्ग उनके लिए खुला नही है। उत्पत्ति ह्रास नियम से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे ऐसा क्यों नही कर सकते। जैसा पहले बतलाया जा चुका है इस प्रतिफल को इसकी मात्रा से, न कि इसके विनिमय मूल्य से मापा जाता है।

इस नियम की अस्थायी परिभाषा देते समय 'सामान्यतया' शब्द से जिन सीमित अर्थों का बोध होता था उन्हे अब हम स्पष्ट रूप से बतलावेंगे। यह नियम एक प्रवृत्ति का वर्णन है जिसको, उत्पादन की प्रणालियो मे सुधार करने से तथा मिट्टी की सम्पूर्ण शक्तियों का असमान विकास करने से, लागू होने से रोका जा सकता है। किन्तु यदि उत्पादन के लिए माँग बहुत अधिक मात्रा मे बढ़ती है तो यह अन्त मे बेरोक हो जाती है। अतः इस प्रवृत्ति के हमारे अन्तिम कथन को दो भागों मे इस प्रकार बाँटा जा सकता है।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति का अन्तिम वर्णन।

पूँजी तथा श्रम की किसी निश्चित मात्रा से सामान्यतया जो प्रतिफल मिलता है उसकी दर मे यद्यपि कृषि करने की प्रणालियों मे सुधार करने से वृद्धि हो सकती है और यद्यपि भूमि के किसी टुकड़े पर लगायी गयी पूंजी तथा श्रम की मात्रा इसकी सारी शक्तियों के विकास के लिए इतनी अपर्याप्त हो सकती है कि यहाँ तक कि कृषि करने की विद्यमान प्रणालियों से ही इसमे कुछ अधिक व्यय करने पर अनुपात से अधिक

प्रतिफल मिलेगा, किन्तु एक प्राचीन देश में ये सभी दशाएँ बहुत कम पायी जाती है: और जहाँ ये दशाएँ पायी जाती है उनके अतिरिक्त सभी जगहों पर (इस बीच प्रत्येक कृषक की कुशलता मे वृद्धि न होने पर) भूमि मे पूँजी और श्रम की अधिकाधिक मात्रा लगाने से उत्पादन की मात्रा मे अनुपात से कम वृद्धि होती है। दूसरी बात यह है कि कृषि करने की प्रणालियों मे भविष्य मे जो कुछ भी उन्नति हो, भूमि में अतिरिक्त पूँजी तथा श्रम का लगातार प्रयोग करने से अन्ततोगत्वा पूँजी तथा श्रम की अतिरिक्त मात्रा लगाने से मिलने वाले अतिरिक्त प्रतिफल मे अवश्य ही कमी होगी।

पूँजी तथा श्रम की मात्रा।

§2. जेम्स मिल (James Mill) द्वारा बतलाये गये शब्द का प्रयोग करते हुए भूमि पर लगायी जाने वाली पूँजी और श्रम की क्रमिक मात्राओं[1] (doses) को समान मान ले। जैसा कि हमने देखा है, पहली कुछ मात्राओ को लगाने से जो प्रतिफल मिलता है वह शायद थोडा ही हो और इनकी अधिक मात्राओ को लगाने से अनुपात मे अधिक प्रतिफल मिल सकता है। विशेष दशाओ मे इनकी क्रमिक मात्राओ से मिलने वाला प्रतिफल बारी-बारी से अधिक तथा कम भी हो सकता है। किन्तु इस नियम से यह बात व्यक्त होती है कि कभी-न-कभी (यह कल्पना करते हुए कि इस बीच कृषि करने की प्रणालियो मे कोई परिवर्तन नही होता) एक ऐसी स्थिति अवश्य आयेगी जिसके बाद लगायी जाने वाली सभी मात्राओ से इस स्थिति के पूर्व लगायी जाने वाली मात्राओ की अपेक्षा अनुपात मे कम प्रतिफल मिलेगा। भूमि पर लगायी जाने वाली यह मात्रा हमेशा पूँजी तथा श्रम की मिश्रित मात्रा होगी, चाहे यह मात्रा स्वयं एक किसान द्वारा, जो कि बिना किसी सहायता के अपने खेतो मे काम करता है, लगायी जाती हो या किसी पूँजीपति कृषक के खर्च पर लगायी गयी हो जो स्वय शारीरिक श्रम नही करता। किन्तु दूसरी दशा मे परिव्यय का अधिकाश भाग द्रव्य के रूप मे होता है और जब आग्ल दशाओ की दृष्टि से कृषि की व्यावसायिक अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे विचार किया जाता है तो बहुधा श्रम को इसके बाजार मूल्य पर मुद्रा के रूप मे आँकना और पूँजी तथा श्रम की मात्राओ की अपेक्षा केवल पूँजी की मात्रा का ही उल्लेख करना अधिक सुविधाजनक होगा।

सीमान्त मात्रा, सीमान्त प्रतिफल, कृषि का सीमान्त।

जिस मात्रा को खेती पर लगाने से कृषक को पारिश्रमिक मात्र ही मिलता है उसे **सीमान्त मात्रा** कहा जाता है और उससे जो प्रतिफल मिलता है उसे **सीमान्त प्रतिफल** कहते है। यदि पड़ोस मे ऐसी भूमि हो जिस पर खेती की जाती हो किन्तु जिसमे लागत के बराबर ही उत्पादन होता हो और इस प्रकार लगान के लिए इससे कुछ भी बचत न होती हो, तो हम इस मात्रा को इसमे लगी हुई मान सकते है। तब हम यह कह सकते है कि इस पर जो मात्रा लगायी गयी है वह ऐसी भूमि पर लगायी गयी है जो कि **कृषि के सीमान्त** पर है, और इसे इस प्रकार व्यक्त करने का लाभ यह है कि यह बहुत सरल है। किन्तु तर्क के लिए यह कल्पना करना आवश्यक नही कि इस प्रकार की भूमि वहाँ पर अवश्य पायी जाती है हम तो सीमान्त मात्रा से मिलने वाले प्रतिफल

1 इस शब्द के विषय में अध्याय के अन्त में दी गयी टिप्पणी को देखिए।

पर विचार करना चाहते हैं। इस मात्रा को अनुपजाऊ भूमि पर या उपजाऊ भूमि पर लगाने से कोई अन्तर नही पडता। इसके लिए तो यह आवश्यक है कि उस भूमि पर यही अन्तिम मात्रा है जिसे लगाना लाभदायक हो सकता है।[1]

यह आवश्यक नहीं कि सीमान्त मात्रा को समय की दृष्टि से अन्त में ही लगाया जाय।

जब सीमान्त, अथवा अन्तिम मात्रा को भूमि पर लगाने की चर्चा की जाती है तो हमारा अभिप्राय समय की दृष्टि से अन्तिम मात्रा से नही होता, हमारा अभिप्राय तो उस मात्रा से होता है जो लाभदायक व्यय के सीमान्त पर हो, अर्थात् जिसे कृषक को पूंजी तथा श्रम के बदले मे साधारण प्रतिफल प्राप्त करने के लिए लगाया जाता है और इसमे किसी प्रकार की बचत नही होती। हम एक वास्तविक उदाहरण लें और ऐसे किसान की कल्पना करे जो गुडाई करने वालो को खेतो मे दुबारा भेजने की सोच रहा हो और कुछ संकोच के बाद वह इस निर्णय पर पहुँचे कि ऐसा करना यद्यपि लाभदायक है किन्तु ऐसा करने मे लगने वाली लागत के बराबर ही लाभ प्राप्त होगा। दुबारा गुडाई करने मे पूंजी और श्रम की जो मात्रा लगेगी वह हमारे इस अर्थ की दृष्टि से अन्तिम मात्रा होगी, यद्यपि फसल को काटने मे इनकी ओर भी विभिन्न मात्राएँ लगानी पडेगी। यह सच है कि इस अन्तिम मात्रा से मिलने वाले प्रतिफल को अन्य मात्राओ से अलग नही किया जा सकता, किन्तु हम उत्पादन के उस सारे भाग को इसमे शामिल करते है जिसे किसान द्वारा अतिरिक्त गुडाई न करने का निर्णय करने के कारण उत्पन्न नही किया जा सकता था।[2]

1 रिकार्डो इससे भलीभाँति परिचित थे। यद्यपि उन्होंने इस पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया तथापि उनके सिद्धान्त के उन विरोधियों ने उनके तर्क को समझने में भूल की जिन्होंने यह माना कि यह सिद्धान्त वहाँ लागू नहीं होता जहाँ सभी प्रकार की भूमि के लिए लगान दिया जाता है।

2 पूंजी और श्रम की सीमान्त मात्रा के प्रतिफल के विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिए अभिलिखित प्रयोगों में से एक दृष्टान्त लेना सुविधाजनक रहेगा। अरकान्सस के प्रयोग केन्द्र (Experimental station) ने यह सूचना दी कि एक-एक एकड़ के चार खण्डों (Plots) से जिनमें हल चलाने तथा पटेला फेरने के अतिरिक्त *अन्य सभी कार्य समान रूप में किये गये थे, निम्न परिणाम निकले:—*

खण्ड	जुतायी	प्रति एकड़ फसल का उत्पादन बुशल में
1.	एक बार हल चलाने से	16
2.	एक बार हल चलाने तथा एक बार पटेला फेरने से	$18\frac{1}{2}$
3.	दो बार हल चलाने तथा एक बार पटेला फेरने से	$21\frac{2}{3}$
4.	दो बार हल चलाने तथा दो बार पटेला फेरने से	$23\frac{1}{4}$

इससे यह ज्ञात होता है कि भूमि के एक एकड़ पर, जिसकी कि दो बार जुताई हो चुकी है, दूसरी बार पटेला फेरने में पंजी और श्रम की मात्रा लगाने से $1\frac{7}{12}$ बुशल

चूँकि कृषि के सीमान्त पर पूँजी तथा श्रम की मात्रा को लगाने से जो प्रतिफल मिलता है वह कृषक के केवल पारिश्रमिक के ही बराबर होता है, अतः इसका यह अभिप्राय है कि उसने जितनी बार पूँजी तथा श्रम की मात्राओं को खेती पर लगाया है उनसे सीमान्त प्रतिफल को गुणा कर देने से जो भजनफल निकलता है वह उसकी सारी पूँजी तथा काम के पारिश्रमिक के ठीक बराबर होगा। उसे इससे अधिक जो कुछ भी मिलता है वह भूमि का अधिशेष उत्पादन है। यदि कृषक स्वयं भूमि का स्वामी हो तो यह अधिशेष कृषक के पास ही रहेगा[1]।

अधिशेष उत्पादन।

का प्रतिफल मिला। फसल को काटने में होने वाले खर्च इत्यादि को घटा कर यदि फसल का मूल्य श्रम तथा पूंजी की मात्रा के लिए किये गये भुगतान के ही ठीक बराबर हो तो वह सीमान्त मात्रा होगी, भले ही समय की इकाई की दृष्टि से इस मात्रा को लगाना अन्तिम न था, क्योंकि फसल को काटने में लगने वाला श्रम या पूंजी इसके बाद ही लगायी जायेगी। (18 नवम्बर, 1889 के The Times को देखिए)।

1 हम एक लेखाचित्र द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। यह स्मरण रहे कि लेखाचित्रीय प्रदर्शन प्रमाण नहीं होते। ये तो कुछ वास्तविक समस्याओं की मुख्य अवस्थाओं को स्थूल रूप में प्रदर्शित करने वाली केवल आकृतियां हैं। इनमें बहुत से विचारों को, जो अलग-अलग व्यावहारिक समस्याओं में बदलते रहते हैं और जिनका कृषक स्वयं अपने विशेष प्रसंग में पूरा लेखा रखते हैं, ध्यान में नहीं रखा जाता है और इस कारण इनकी रूपरेखा बहुत स्पष्ट होती है। यदि किसी खेत पर 50 पौंड खर्च किये जायें तो इससे कुछ उत्पादन होगा। यदि इस पर 51 पौंड खर्च किये जायें तो पहले की अपेक्षा उत्पादन कुछ अधिक होगा। उत्पादन की इन दो मात्राओं में अन्तर इक्यावनवें पौंड के कारण है; और यदि हम यह मान लें कि पूंजी उत्तरोत्तर एक पौंड की मात्रा में लगायी जाती है तो उत्पादन में यह अन्तर इक्यावनवीं मात्रा के कारण होता है। माना कि ख द रेखा के उत्तरोत्तर बराबर भागों से इन मात्राओं को क्रमपूर्वक प्रदर्शित किया जाता है। इस रेखा के एक भाग से इक्यावनवीं मात्रा म को प्रदर्शित करने वाली म प रेखा खींची गयी जो ख द रेखा पर लम्बवत् है। इस रेखा की चौड़ाई उनमें से किसी भी भाग की लम्बाई के बराबर है, और इसकी लम्बाई इक्यावनवीं मात्रा से उत्पन्न होने वाली उपज को प्रदर्शित करती है।
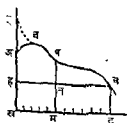
रेखाचित्र 11

अब यह भी मान लें कि प्रत्येक अलग-अलग भाग के लिए उस अन्तिम मात्रा तक ऐसा ही किया गया है जिसको भूमि पर लगाना लाभप्रद होगा। द बिन्दु पर एक सौ दसवीं मात्रा अन्तिम मात्रा है, और द च इसके अनुरूप प्रतिफल है जिससे कृषक को ठीक पारिश्रमिक ही मिलता है। अ प च वक्र पर इन रेखाओं की अधिकतम सीमाएँ निहित हैं। इन रेखाओं के कुल योग से सकल उत्पादन प्रदर्शित होता है: अर्थात्, चूंकि

यह ध्यान मे रखना चाहिए कि अधशेष उत्पादन के इस प्रकार के वर्णन को लगान का सिद्धान्त नही कहा जा सकता: हम इसे बहुत बाद मे ही लगान का सिद्धान्त मानेगे। यहाँ पर केवल यही कहा जा सकता है कि कुछ विशप अवस्थाओ मे यह अधिशेष उत्पादन लगान बन सकता है जब कि भूमि का स्वामी अपने किरायदार से भूमि के प्रयोग के बदले मे इसे माँगता है। किन्तु जैसा कि हम इसके बाद देखेगे, एक प्राचीन देश मे किसी फार्म का सारा लगान तीन अवयवो से मिलकर बना है. पहला प्रकृति द्वारा मिट्टी की बनावट के मूल्य पर, दूसरा मनुष्य द्वारा इस मिट्टी मे किये गये सुधारो पर, और तीसरा जो कि बहुधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, घनी तथा धनी आबादी की वृद्धि और सार्वजनिक मार्गो, रेल लाइनो, इत्यादि के सचार सम्बन्धी सुविधाओ मे वृद्धि पर निर्भर है।

अधिशेष उत्पादन का यह वर्णन लगान का सिद्धान्त नहीं है।

यह भी स्मरण रहे कि एक प्राचीन देश मे सर्वप्रथम कृषि करने के पूर्व भूमि की मूल स्थिति क्या थी इसका पता लगाना भी असभव है। मनुष्य के कुछ कार्यो के परिणाम, चाहे वे भले और बुरे, भूमि मे ही विद्यमान रहते है, और प्रकृति के कार्यो के परिणाम से इन्हे अलग नही किया जा सकता. इनमे विभद की रेखा अस्पष्ट है और इसे बहुत कुछ स्वेच्छा से ही निर्धारित कर लेना चाहिए। किन्तु कृपक की कृषि की गणना करने से पूर्व अधिकाश रूप से यह मान लेना सबसे अच्छा रहेगा कि प्रकृति का सामना करने मे जो सबसे पहले कठिनाइयाँ थी उन पर मनुष्य ने बहुत अच्छी तरह विजय प्राप्त कर ली है। इस प्रकार पूँजी तथा श्रम की पहली मात्राओ को लगाने से जो प्रतिफल मिलते है वे सामान्यतया सबसे अधिक होते है, और शीघ्र ही उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति लागू हो जाती है। मुख्यतया इग्लैंड की कृषि को दृष्टिकोण मे रखते हुए रिकार्डो की भाँति हम इसे एक अनूठा विषय मान सकते हैं।[1]

रिकार्डो ने अपना सारा ध्यान एक प्राचीन देश की परिस्थितियों तक ही सीमित रखा।

प्रत्येक रेखा की मोटाई उस भाग की लम्बाई के बराबर है जिस पर यह खड़ी हे, अतः ख द च अ क्षेत्र से इसे प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि च त ह, द ख के समानान्तर खींची गयी हो, और यह प म को त बिन्दु पर काटे तो म त च द के बराबर होगी। और चूंकि द च से किसी मात्रा को लगाने से कृषक को मिलने वाला पारिश्रमिक मात्र ही व्यक्त किया जाता है, अतः म त से इनकी दूसरी मात्रा लगाने पर कृषक को मिलने वाला केवल पारिश्रमिक ही व्यक्त होता है: और ख द तथा ह च के बीच अलग से काट ली गयी सभी मोटी आड़ी रेखाओं से ऐसा ही व्यक्त किया जाता है। अतः इन सब के योग, अर्थात् ख द च ह क्षेत्र से उत्पादन का वह भाग इंगित होता है जो उसे पारिश्रमिक के रूप में दिया जायेगा। और जो भाग शेष बचेगा, अर्थात् अ ह त च प अ क्षेत्र, अधिशेष उत्पादन होगा जो कुछ दशाओं में लगान कहलाता है।

1 अर्थात्, (रेखाचित्र 11 सें ली गयी) ब अ रेखा के स्थान पर ब इ बिन्दु-रेखा को प्रतिस्थापित किया जा सकता है और इ ब प च को इंग्लैंड की कृषि में लगायी गयी पूंजी तथा श्रम के प्रतिफल को प्रदर्शित करने वाली उपलक्षक रेखा माना जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गेहूँ तथा अन्य साल भर रहने वाले पौधों की फसल पर्याप्त श्रम के बिना किसी भी प्रकार नहीं उगायी जा सकती। किन्तु ˈकृतिक घास

पूंजी और श्रम के बदले में प्रकृति से मिलने वाले प्रतिफल की लोच मिट्टी तथा फसलों के अनुसार बदलती रहती है।

§3. अब हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि पूंजी तथा श्रम की उत्तरोत्तर मात्राओं को लगाने से जो प्रतिफल मिलता है उसकी कमी की या वृद्धि की दर किस चीज पर निर्भर है। हम देख चुके हैं कि उत्पादन के उस हिस्से में जिसे मनुष्य अपने कार्य के अतिरिक्त परिणाम होने का दावा करता है तथा उस मात्रा में जिसे प्रकृति बिना किसी की सहायता से उत्पन्न करती, बहुत अधिक अन्तर है। और कुछ फसलों तथा मिट्टियों और जुताई की विधियों में अन्य शक्तियों की अपेक्षा मनुष्य का हिस्सा बहुत अधिक है। इस प्रकार स्थूल रूप में हम यह कह सकते हैं कि जैसे ही हम जंगली भूमि से चरागाहों की भूमि की ओर, चरागाहों से कृषि योग्य भूमि की ओर, और हल से जोतने योग्य भूमि से फावड़े से खोदने योग्य भूमि की ओर बढ़ते हैं मनुष्य के श्रम का हिस्सा बढ़ता जाता है। इसका कारण यह है कि प्रायः प्रतिफल में कमी होने की दर

जो बिना किसी श्रम के स्वतः उगती है, साधारण प्रकार के पशुओं की वृद्धि में सहायक होगी।

(भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 1 में) पहले ही देखा जा चुका है कि उत्पत्ति ह्रास नियम का माँग के नियम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूंजी तथा श्रम की किसी मात्रा को भूमि पर लगाने से जो प्रतिफल मिलता है उसे भूमि द्वारा उस मात्रा के लिए दी जाने वाली कीमत समझा जा सकता है। पूंजी तथा श्रम के लिए भूमि से मिलने वाले प्रतिफल को हमें इसकी प्रभावोत्पादक माँग कहना चाहिए: इनकी किसी मात्रा के लिए इससे जो प्रतिफल मिलता है वह उस मात्रा की मांग कीमत है, और इनकी क्रमिक मात्राओं के लिए उससे प्राप्त होने वाले प्रतिफल की सूची को उसकी माँग सारणी माना जा सकता है: किन्तु भ्रम को दूर करने के लिए हम इसे 'प्रतिफल सारणी' कहेंगे। मूलपाठ (text) में भूमि के सम्बन्ध में दिया गया वर्णन एक ऐसे मनुष्य पर भी चरितार्थ हो सकता है जो अपने कमरों की सभी दीवालों को ढक देने वाले कागज के लिए एक ऐसे कागज की अपेक्षा जिससे आधी ही दीवालें ढकी जा सकें, अनुपात में अधिक कीमत देने को इच्छुक होगा, और ऐसी अवस्था में इसकी बढ़ी हुई मात्रा के लिए इसकी मांग कीमत कम होने की अपेक्षा कुछ समय के लिए बढ़ जायेगी। किन्तु बहुत से व्यक्तियों की कुल माँग में इस प्रकार की असमानताएँ एक दूसरे को नष्ट कर देती हैं जिससे लोगों के किसी समूह की कुल मांग सारणी से यह प्रदर्शित होता है कि सदैव वस्तु के सम्भरण में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ मांग कीमत धीरे-धीरे कम हो जाती है। इसी भांति भूमि के अनेक टुकड़ों को एक साथ मिलाने से हम एक प्रतिफल सारणी प्राप्त कर सकते हैं जो भूमि पर पूंजी और श्रम की अधिकाधिक मात्राओं को लगाने से निरन्तर घटते हुए प्रतिफल को प्रदर्शित करेगी। किन्तु मनुष्यों की अपेक्षा भूमि के टुकड़ों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत मांग में होने वाले परिवर्तन का पता लगाना अधिक सरल है, और कुछ दशाओं में इसे ध्यान में रखना अधिक महत्वपूर्ण है। और इसलिए हमारी उपलक्षक प्रतिफल सारणी (typical return schedule) से प्रतिफल में होने वाली कमी को उतना सम तथा एक सार प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जितना हमारी उपलक्षक मांग सारणी मांग कीमतों को करती है।

जंगलो मे सब से अधिक है, चरागाहों मे यह अपेक्षाकृत कम है, कृषि योग्य भूमि मे यह इससे भी कम है और फावड़े के योग्य भूमि मे सबसे कम है।

परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार दो खेतों की सापेक्षिक उर्वरता बदल सकती है।

भूमि की उर्वरता या इसके उपजाऊपन का कोई निरपेक्ष माप नही है। यहाँ तक कि यदि उत्पादन की प्रणाली मे कोई भी परिवर्तन न हो, तो उपज की माँग मे तनिक वृद्धि के कारण दो एक साथ मिले हुए भूमि के टुकड़ो की उर्वरता का क्रम पलट सकता है। यदि भूमि के इन दोनो टुकड़ो मे समान रूप से जुताई कम होती हो तो भूमि का वह टुकड़ा जिससे अपेक्षाकृत कम उपज मिलती थी दूसरे से आगे हो सकता है और जब इन दोनो मे समान रूप से भलीभाति जुताई की जाती है तब इसकी अधिक उपजाऊ भूमि मे गणना करना ठीक है। अन्य शब्दो मे, भूमि के अनेक टुकड़े जो केवल विस्तृत खेती के होने पर सबसे कम उपजाऊ होते है वे गहरी खेती के होने पर सबसे अधिक उपजाऊ बन जाते है। उदाहरण के रूप मे, ऐसे चरागाहो की भूमि जहाँ जल अपने आप ही निष्कासित होता है वहाँ पूंजी और श्रम की बहुत थोड़ी मात्रा लगाने से अनुपात मे अधिक प्रतिफल मिलता है, किन्तु यदि इसमे आगे भी व्यय किया जाये तो इससे मिलने वाला प्रतिफल शीघ्रता से कम होता है जैसे-जैसे जनसख्या मे वृद्धि होती है, धीरे-धीरे यह लाभदायक हो सकता है कि कुछ चरागाहो को नष्ट कर दिया जाय और उनमे भूमि के भीतर उत्पन्न होने वाली चीजो, अनाज तथा विभिन्न प्रकार की घास उगायी जाय। तब पूंजी और श्रम की अगली मात्राओ के प्रतिफल मे कम तेजी से कमी होगी।

अन्य प्रकार की भूमि मे अच्छे चरागाह नही बनाये जा सकते। किन्तु यदि इनमे जुताई करने मे तथा खाद डालने मे पूंजी तथा श्रम की एक बड़ी मात्रा लगायी जाय तो इससे अधिकाशतः पर्याप्त प्रतिफल मिलेगा। श्रम और पूंजी की प्रारम्भिक मात्राओ के लगाने पर उनके बदले मे जो प्रतिफल मिलते है वे यद्यपि बहुत अधिक नही होते किन्तु वे धीरे-धीरे कम होते जाते है।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की भूमि मे दलदल है। इससे पूर्वी इग्लैड की दलदली भूमि की भाँति बेत (Osiers) तथा जगली चिड़ियो के अतिरिक्त प्राय कुछ भी उत्पन्न नही होता। अथवा अनेक उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रो की भाँति, इसमे प्रचुर वनस्पति उत्पन्न हो सकती है। किन्तु यह मलेरिया से इतनी आच्छादित रहती है कि मनुष्य के लिए वहाँ रहना कठिन हो जाता है, और वहा कार्य करना तो और भी मुश्किल हो जाता है। इन दशाओ मे प्रारम्भ मे पूंजी और श्रम के लिए मिलने वाले प्रतिफल बहुत थोड़े होते है, किन्तु जैसे-जैसे जल-निष्कासन मे प्रगति होती है, इनमे वृद्धि होती है। सम्भवतः बाद मे इनमे फिर से कमी होने लगती है।[1]

---

1. इसे रेखाचित्रों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि उत्पादन के वास्तविक मूल्य में जो वृद्धि होती है वह स हि के ख ह के साथ अनुपात के बराबर हो (जिससे किसान को पूंजी और श्रम की एक मात्रा को लगाने के लिए जो पारितोषिक मिलता था वह ख ह से घट कर ख हि हो जाय) तो अधिशष उत्पादन बढ़ कर अ हि चि हो जाता है जो पहली दशा का प्रतिनिधित्व करने वाली इसकी पिछली मात्रा अ ह च

किन्तु जब इस प्रकार के सुधार एक बार हो जाते हैं तो भूमि पर लगायी गयी पूंजी फिर हटाई नहीं जा सकती और कृषि के प्रारम्भिक इतिहास को दुहराया नहीं

से बहुत अधिक नहीं है। रेखाचित्र 12 में दी गयी दूसरी दशा को रेखाचित्र 13 में जहाँ उपज की कीमत में इसी प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप नया अधिशेष उत्पादन अ हि चि पिछले अधिशेष अ ह च से लगभग तिगुना अधिक हो जाता है, प्रदर्शित किया गया है, और तीसरी दशा को रेखाचित्र 14 में दिखाया गया है। भूमि पर सबसे पहले लगायी गयी पूंजी और श्रम की मात्रा से इतना कम प्रतिफल मिलता था कि जब तक कृषि को आगे बढ़ाने का विचार न हो तब तक इनका प्रयोग करना लाभदायक नहीं था।

किन्तु बाद में प्रयोग की जाने वाली मात्राओं से बढ़ती हुई दर पर प्रतिफल मिलता है जो कि प बिन्दु पर अधिकतम होती है, और इसके पश्चात् प्रतिफल की दर घटने लगती है। यदि उपज के लिए जिस कीमत का मिलना जरूरी है वह इतनी कम हो कि किसान को पूंजी और श्रम की मात्रा लगाने के लिए पारिश्रमिक के रूप में ख हु मात्रा देनी पड़े तब उस भूमि में खेती करना लाभदायक मात्र हो होगा। क्योंकि तब दु बिन्दु तक कृषि की जायेगी। पहले लगायी गयी मात्राओं पर हु अ यु द्वारा प्रदर्शित भाग के बराबर घाटा होगा और बाद में लगायी जाने वाली मात्राओं में यु प चु द्वारा प्रदर्शित क्षेत्र के बराबर अधिशेष मिलेगा: और जैसा कि ये दोनों लगभग बराबर हैं, तब तक भूमि पर जुताई करने से केवल खर्च ही निकल सकेगा। किन्तु यदि उपज के दाम तब तक बढ़ते जायें जब तक ख ह श्रमिक को उसकी पूंजी और श्रम का पारि-

रेखाचित्र 12 रेखाचित्र 13 रेखाचित्र 14
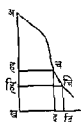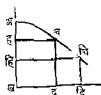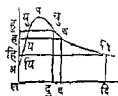
श्रमिक देने के लिए पर्याप्त न हो तो इनकी पहली मात्राओं पर से मिलने वाला घाटा कम होकर ह अ य के बराबर रह जायेगा, और बाद वाली मात्राओं से मिलने वाला अधिशेष बढ़ कर य प च के बराबर हो जायेगा: य प च, ह अ य से जितना अधिक होगा वह निबल अधिशेष (यदि भूमि लगान पर उठा दी गयी हो तो यही वास्तविक लगान) होगा। जब तक ख हि कृषक को पूंजी और श्रम की मात्रा के लिए पारिश्रमिक देने के लिए पर्याप्त है तब तक यदि कीमत और अधिक बढ़ जाय तो इस निबल अधिशेष की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जायेगी जिसे यि प चि की हि अ यि से अधिकता द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

जा सकता। फलस्वरूप श्रम और पूँजी की लगाने से प्राप्त उत्पादन मे क्रमागत ह्रास की प्रवृत्ति दिखायी देती है[1]।

पहले से ही जोती गयी भूमि मे भी उसी प्रकार के यद्यपि कुछ कम उल्लेखनीय परिवर्तन हो सकते है। उदाहरण के लिए भूमि पर यद्यपि दलदल न हो किन्तु वहाँ ऐसी सुविधाओ की आवश्यकता हो जिससे वहाँ का जमा हुआ पानी बाहर निकल सके और स्वच्छ जल तथा वायु भीतर आ सके। अथवा नीचे की मिट्टी ऊपरी भाग की मिट्टी से प्राकृतिक रूप से अधिक उपजाऊ हो, अथवा यद्यपि यह स्वय उपजाऊ न हो किन्तु इसमे वे सब गुण मिलते हो तो जो ऊपर की मिट्टी मे नही मिलते, तो उस समय भाप की सहायता से चलाये जाने वाले हलो से गहरी जुताई कर भूमि के स्वरूप को सदा के लिए बदला जा सकता है।

अत. हमे यह नही मान लेना चाहिए कि श्रम और पूँजी की अतिरिक्त मात्रा लगाने से मिलने वाला प्रतिफल जब घटने लगता ह तो यह बराबर घटता ही रहेगा। यह सभी जानते है कि कृषि करने की रीति मे सुधार होने के फलस्वरूप श्रम तथा पूँजी की किसी भी मात्रा को लगाने से अधिक प्रतिफल प्राप्त हो सकता है, किन्तु यहाँ पर इसका अर्थ यह नही लगाना चाहिए। हमारा यहाँ पर अभिप्राय यह है कि उसके ज्ञान मे चाहे जो भी वृद्धि हो किन्तु यदि वह उन्ही रीतियो को अपना रहा है जिनसे वह पूर्व परिचित है तो पूँजी और श्रम की अतिरिक्त मात्रा के लगाने से खेती की किसी बाद की अवस्था मे भी कभी-कभी उत्पत्ति मे क्रमागत वृद्धि हो सकती है।[2]

यह ठीक ही कहा गया है कि जैसे किसी जजीर की मजबूती इस की सबसे कमजोर कडी की मजबूती पर निर्भर होती है उसी प्रकार भूमि की उर्वरता सबसे कम उत्पादक तत्व से सीमित होती है। जो लोग जल्दी मे हो वे किसी ऐसी जजीर को लेना पसन्द नही करेगे जिसकी एक या दो कडियाँ बहुत कमजोर हो भले ही अन्य कडियाँ कितनी ही मजबूत क्यो न हो. और इसकी अपेक्षा वे एक ऐसी जजीर को लेना अधिक पसन्द

---

1 इस प्रकार की किसी अन्य दशा में यह बिलकुल निश्चित है कि पहले लगायी जाने वाली मात्राएँ निश्चय ही भूमि पर लगायी जायेंगी और यदि भूमि को लगान पर दे दिया गया हो तो जो वास्तविक लगान दिया जायेगा उसमें इस प्रकार दिखाये गये अधिशेष उत्पादन या वास्तविक लगान के अतिरिक्त इनसे प्राप्त लाभ भी सम्मिलित होंगे। भूमि के मालिक को पूंजी के बदले में मिलने वाले प्रतिफल को भी आरेखों (Diagrams) द्वारा सरलतापूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है।

2 निस्सन्देह उसे जो प्रतिफल मिलता है उसमें कमी हो सकती है और बाद में यह बढ़ने लगता है, और तत्पश्चात् पुनः क्रमशः घटने लगता है। और इसके बाद भी यदि इसमें बड़े पैमाने पर परिवर्तन हो सकें तो प्रतिफल में वृद्धि होती है जैसा कि रेखाचित्र 15 में प्रदर्शित किया गया है। किन्तु रेखाचित्र 15 में दिखायी गयी स्थितियां बहुत कम नहीं पायी जाती हैं।
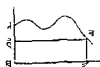
रेखाचित्र 15

करेंगे जो अपेक्षाकृत हल्की हो किन्तु जिसमें कोई खराबी न हो। किन्तु यदि उन्हें कुछ कठोर काम करना हो और जंजीर की मरम्मत करने के लिए समय हो तो वे लम्बी वाली जंजीर को ठीक कर लेंगे और यह दूसरी जंजीर की अपेक्षा अधिक मजबूत हो जायगी। कृषि के इतिहास मे जो कुछ अद्भुत बाते दिखायी देती है उनका इसमें विश्लेषण निहित है।

प्रारम्भ में बसने वाले लोग प्रायः ऐसी भूमि को लेना नहीं चाहते थे जिसे सम्भवतः एक अंग्रेज किसान खेती के लिए पसन्द करें।

किसी नये देश मे बसने वाले लोग साधारणतया ऐसी भूमि को लेना पसन्द नही करते जिस पर तुरन्त खेती न की जा सके। वे एसी भूमि को भी नही जोतना चाहते जिसमे इस किस्म की प्राकृतिक वनस्पति प्रचुर मात्रा मे उगी हो जिसे वे न चाहते हो। वे कठोर भूमि पर जुताई करने की कोशिश भी नही करते भले ही भलीभाँति जुताई करने पर यह अधिक उपजाऊ बनायी जा सकती हो। जलग्रस्त भूमि को तो वे छुएँगे भी नही। वे प्राय ऐसी हल्की भूमि को छाँटते हैं जिसे दो बार हल चलाने पर फसल उगाने योग्य बनाया जा सके, और इसके बाद इसमे दूर-दूर बीज बोते है जिससे पौधों को उगाने पर पर्याप्त प्रकाश तथा हवा मिल सके, और वे अधिक विस्तृत क्षेत्र से अपना भोजन सग्रहीत कर सके।

अमरीका मे जब लोग सबसे पहले बसे थे तब बहुत से कृषि सकार्य (operation) जो कि अब अश्व-यन्त्रो से किय जाते है हाथ से ही किय जाते थे। और यद्यपि अब किसान प्रेरीज की मैदान भूमि को जिसमे कटे हुए वृक्ष के ठूँठ और पत्थर नही हैं, जहाँ उनकी मशीनें सरलतापूर्वक बिना किसी जोखिम के चल सकती हैं, लेना अधिक पसन्द करते हैं, किन्तु तब पहाडी भूमि को लेने मे भी उन्हे कोई बडी आपत्ति नही होती थी। एकड के अनुपात मे उनकी फसले कम होती थी, किन्तु फसलो को उगाने मे लगने वाली पूँजी और श्रम की मात्रा के अनुपात मे बहुत अधिक होती थीं।

उर्वरता निरपेक्ष न होकर स्थान और समय के अनुसार बदलती है।

हम भूमि के एक टुकडे को दूसरे की अपेक्षा तब तक अधिक उपजाऊ नही कह सकते जब तक हमे इस पर खेती करने वाले किसानों की कुशलता और उनके उद्यम के विषय मे, तथा उनके पास पूँजी और श्रम की मात्रा के सम्बन्ध मे जानकारी न हो, और हमे यह मालूम हो कि इसकी उपज के लिए माँग ऐसी है कि उनके पास जो साधन उपलब्ध है उनसे गहरी खेती करना अधिक लाभदायक होगा। यदि ऐसा हो तो भूमि के वे टुकडे सबसे अधिक उपजाऊ होंगे जिनसे श्रम और पूँजी की अत्यधिक मात्रा लगाने पर सबसे अधिक औसत प्रतिफल मिलता हो। यदि ऐसा न हो तो वह भूमि सबसे अधिक उपजाऊ होगी जिससे श्रम और पूँजी की कुछ प्रारम्भिक मात्राओ को लगाने से सबसे अच्छा प्रतिफल मिले। उर्वरता का सम्बन्ध केवल किसी निश्चित समय और स्थान की विशेष परिस्थितियों के प्रसग से ही है।

यद्यपि इसका इतने सीमित अर्थ मे प्रयोग होना है किन्तु इसके प्रयोग करने मे कुछ अनिश्चितता का अश निहित है। कभी-कभी तो इसका अभिप्राय मुख्यतया गहरी खेती करने के फलस्वरूप भूमि के पर्याप्त प्रतिफल देने की शक्ति से होता है और इस प्रकार इससे प्रति एकड अत्यधिक फसल पैदा होती है, और कभी-कभी इसका अभिप्राय उस शक्ति से होता है जिसके कारण अत्यधिक अधिशेष उत्पादन अथवा लगान मिलता

है, भले ही कुल उत्पादन बहुत अधिक न हो। इस प्रकार इंग्लैंड में अब कृषि योग्य उर्वर भूमि पहले वाले अर्थ में बहुत उपजाऊ है, तथा उर्वर चरागाह दूसरे अर्थ मे बहुत उपजाऊ हैं। अनेक उद्देश्यों की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नहीं है कि इसका कौन-सा अर्थ लगाया गया है: कुछ दशाओं में जहाँ इनका अलग अर्थ लगाने से बडा अन्तर पड़ जाता है वहाँ प्रसंग में एक विश्लेषणात्मक वाक्यांश अवश्य दे देना चाहिए।[1]

भूमि के विभिन्न टुकड़ों के सापेक्षिक मूल्यों में भिन्नता के अन्य कारण।

§4 इसके अतिरिक्त, उत्पादन की प्रणाली तथा विभिन्न फसलों के सापेक्षिक मूल्यो के परिवर्तन के फलस्वरूप विभिन्न फसलों की उर्वरता के क्रम में परिवर्तन होना अनिवार्य है। इस प्रकार जब पिछली शताब्दी के अन्त मे मिस्टर कोक (Coke) ने यह प्रदर्शित किया कि हल्की भूमि पर सर्वप्रथम तिपतिया घास (clover) उगा कर किस प्रकार गेहूँ उगाया जा सकता है। इसके पश्चात् लोगो ने चिकनी मिट्टी वाली भूमि पर खेती प्रारम्भ की। इस समय यद्यपि भूमि पुरानी प्रथा के आधार पर कभी-कभी अनुपजाऊ कहलाती है किन्तु फिर भी उसके कुछ भागों का मूल्य अधिक है और वे उस भूमि से अधिक उपजाऊ है जिन पर प्राकृतिक अवस्था मे मनुष्य सावधानी से खेती करते थे।

मध्य यूरोप मे जलाने तथा इमारत बनाने के लिए लकडी की बढती हुई माँग के कारण अन्य प्रकार की प्रत्येक भूमि की अपेक्षा चीड़ से ढके हुए पर्वतो के ढालो का मूल्य बढ गया। किन्तु इग्लैंड मे इसके दाम न बढ़ने का कारण कोयले का लकड़ी के स्थान पर ईंधन का काम करना तथा लोहे का लकड़ी के स्थान पर जहाजों मे प्रयोग होना और अन्त में, इंग्लैंड में लकडी के आयात की विशेष सुविधाओं का होना था। जो भूमि जलमग्न थी और जिस पर अन्य फसले उगायी जा सकती थी, धान और जूट होने के कारण उनका मूल्य बहुत बढ गया। उस कृषि योग्य भूमि कामूल्य जिसमे

---

1 यदि उपज की कीमत ऐसी हो कि किसान को श्रम और पूंजी की एक मात्रा को लगाने के लिए ख ह (रेखाचित्र 12, 13, 14) मात्रा देनी पड़े तो द बिन्दु तक कृषि को बढ़ाया जायेगा और इससे जो उत्पादन मिलेगा, अ ख द च, वह रेखाचित्र 12 में सबसे अधिक, 13 में पहले से कम और 14 में सबसे कम होगा। यदि कृषि उत्पादन के लिए माँग इतनी बढ़ जाय जिससे किसान की श्रम और पूंजी की इकाई पर लगायी लागत ख हि के बराबर हो तो उत्पादन दि तक किया जायेगा, और इससे अ ख दि चि मात्रा का उत्पादन होगा जो रेखाचित्र 14 में सबसे अधिक, 13 में इससे कम, और 12 में सबसे कम होगा। यदि हमने उसे अधिशेष उत्पादन पर विचार किया होता जो किसान को श्रम और पूंजी की मात्रा के लिए पर्याप्त भुगतान करने के बाद शेष रहता है, और जो कुछ दशाओं में भूमि के लगान का रूप धारण कर लेता है, तो इनमें और भी अधिक अन्तर होता। रेखाचित्र 12 और 13 में पहली दशा में अधिशेष उत्पादन अ ह् च के बराबर और दूसरी दशा में अ हि चि के बराबर है। रेखाचित्र 14 में पहली दशा में इसे अ ख द च प अ को ख द च ह् से अधिकता, अर्थात् प य च की अ ह् य से अधिकता द्वारा, और दूसरी दशा में प यि चि की अ हि यि से अधिकता द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

अन्न के बाद चारा उगाया जा सकता था चिकनी मिट्टी वाली भूमि की अपेक्षा अधिक बढ गया। इंग्लैंड मे अनाज के नियमों के हटाये जाने के बाद अन्न की अपेक्षा मांस तथा अन्य तैयार की गयी वस्तुओं के दाम बढ गये। जिस कृषि योग्य भूमि में अन्न के बाद घनी चारे वाली फसले उगाई जा सकती थी उनका मूल्य ठंडे स्थानो पर चिकनी मिट्टी वाली भूमि की अपेक्षा अधिक बढा और जनसंख्या की वृद्धि के कारण स्थायी चरागाहो के मूल्य कृषि योग्य भूमि की अपेक्षा जो अधिक कम हुई थी वह कुछ अंशों मे दूर हो गयी।[1]

जैसे-जैसे जनसंख्या का दबाव बढ़ता है घटिया किस्म की भूमि का सापेक्षिक मूल्य बढ़ जाता है।

वर्तमान फसलों तथा विशेष प्रकार की भूमि मे खेती करने के ढगों की उपयुक्तता मे परिवर्तन होने पर भी विभिन्न प्रकार की भूमि के मूल्य मे समान होने की प्रवृत्ति रहती है। यदि कोई विशेष कारण न हो तो जनसंख्या तथा सम्पत्ति मे वृद्धि के फलस्वरूप घटिया किस्म की भूमि का उपजाऊ भूमि की अपेक्षा महत्व अधिक हो हो जायगा। जो भूमि एक समय बेकार पडी रहती थी उस पर अधिक श्रम लगा कर अच्छी फसलें उगायी जाती है। इस भूमि को अच्छी भूमि के बराबर ही प्रति वर्ष प्रकाश, गर्मी तथा वायु प्राप्त होती है। किन्तु श्रम के उपयोग से इसके दोष बहुत अशों मे कम हो जाते है।[2]

जिस प्रकार भूमि की उर्वरता का कोई निरपेक्ष माप नही है वैसे ही अच्छी खेती का कोई भी माप नही होता, उदाहरण के लिए चेनल द्वीप समूह (Channel Islands) के सबसे अधिक उपजाऊ भाग मे सबसे अच्छी जुताई मे प्रति एकड़ पूंजी और श्रम

---

1 रोजर्स (Rogers) ने यह हिसाब लगाया है कि अनाज के रूप में उपजाऊ चरागाह का मूल्य पांच या छः शताब्दी पहले लगभग वही था जो आज है, किन्तु कृषि योग्य भूमि का मूल्य अनाज के रूप में इस अवधि में पाँच गुना बढ़ गया है। (Six Centuries of Work and Wages पृष्ठ 73), इसका आंशिक कारण यह था कि उस समय पौधों की जड़ों तथा पशुओं के लिए आधुनिक प्रकार के शीतकालीन चारे की जानकारी न होने से सूखी घास का बड़ा महत्व था।

2 इस प्रकार रेखाचित्र 16 तथा 17 में प्रदर्शित किये गये भूमि के दो टुकड़ो की हम तुलना कर सकते है। इन दोनों टुकड़ों में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम समानरूप से लागू होता है जिसके कारण इनके उत्पादन वक्रों का एक-सा ही रूप है किन्तु गहरी खेती की दृष्टि से भूमि का पहला टुकड़ा दूसरे टुकड़े की अपेक्षा हर प्रकार से अधिक उर्वर है। भूमि के मूल्य को सामान्यतया इसके अधिशेष उत्पादन अथवा लगान से प्रदर्शित किया जा सकता है जो श्रम तथा पूंजी की मात्रा के बदले में ख ह मात्रा के दिये जाने पर हर दशा में अ ह च से मापा गया है। जनसंख्या तथा धन की वृद्धि के कारण जब ख हि उत्पादन में लगे श्रम तथा पूंजी के भुगतान के लिए पर्याप्त हो तो अधिशेष उत्पादन अ हि चि के बराबर होगा। यह स्पष्ट है कि रेखाचित्र 17 के अ ह च की रेखाचित्र 16 के अ ह च से तुलना करने की अपेक्षा रेखाचित्र 17 के अ हि चि की रेखाचित्र 16 के अ हि चि से तुलना करना अधिक अनुकूल है। इसी प्रकार से, यद्यपि इसी सीमा तक नहीं, रेखाचित्र 17 के अ ख द च की रेखाचित्र 16 के

की अत्यधिक मात्रा लगती है: क्योंकि ये अच्छे बाजारों के निकट हैं तथा वहाँ पर अधिकांश रूप में समान जलवायु रहती है।

अच्छी खेती का कोई निरपेक्ष माप नहीं होता है।

यदि भूमि को प्रकृति के सहारे ही छोड़ दिया जाय तो भूमि अधिक उर्वर नहीं होगी, क्योंकि यद्यपि इसमें अनेक अच्छे तत्व पाये जाते हैं तथापि इसमें दो कमजोर कड़ियाँ हैं। (इस भूमि में फास्फोरस अम्ल तथा पोटाश कम होता है) किन्तु आंशिक रूप में इसके तटीय भागों में प्रचुर समुद्री घास होने के कारण, इन कड़ियों को अधिक मजबूत बनाया जा सकता है, और इस प्रकार से बनी जंजीर असाधारण रूप से मजबूत होती है। गहरी खेती से या जैसा कि इंग्लैंड में सामान्यता कहा जाता है अच्छी खेती से एक एकड़ से पहले पैदा होने वाले 100 पौंड के बराबर मूल्य के आलू पैदा होंगे। किन्तु पश्चिमी अमरीका में यदि किसान प्रति एकड़ में इसके बराबर खर्च करे

अ ख द च से तुलना करने की अपेक्षा इन दोनों रेखाचित्रों के अ ख दि चि भाग की जो कुल उत्पादन को प्रदर्शित करता है तुलना करनी अधिक अनुकूल होगी। (विकस्टिड के Co-ordinates of Laws of Distribution पृष्ठ 51-52, में बुद्धिमत्ता से यह तर्क किया गया है कि लगान ऋणात्मक भी हो सकता है। निस्सन्देह कर
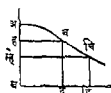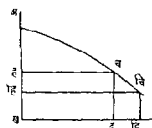
रेखाचित्र 16

रेखाचित्र 17

लगाकर सारा लगान लिया जा सकता है। किन्तु जिस भूमि पर खेती करना लाभदायक न हो वहाँ पेड़-पौधे या साधारण किस्म की घास उगायी जायेगी (ऊपर दिये गये अनुभाग 3 के पहले 4 पैराग्राफ देखिए)।

लेरोय ब्यूल्यू (Leroy Beaulieu) ने (Repartition des Richesses, अध्याय II में) अनेक तथ्य संग्रहीत किये हैं जिनसे उन्होंने यह प्रदर्शित किया है कि घटिया किस्म की भूमि के मूल्य में अच्छी भूमि के मूल्य की अपेक्षा वृद्धि होने की प्रवृत्ति रहती है। वे नीचे दिये गये आँकड़ों को उद्धृत करते हैं जो क्रमशः 1829 तथा 1852 में Departements de l' Eure et de l' Oise के अनेक ताल्लुकों (Communes) में पाँच प्रकार की भूमि के प्रति हैक्टर ($2\frac{1}{2}$ एकड़) को फ्रैंक्स में प्रदर्शित करते हैं।

	श्रेणी I	श्रेणी II	श्रेणी III	श्रेणी IV	श्रेणी V
1829 ई० पू०	58	48	34	20	8
1852 ई० पू०	80	78	60	50	40

तो वह नष्ट हो जायेगा। उसकी परिस्थितियो को देखते हुए इसे अच्छी जुताई की अपेक्षा बुरी जुताई माना जायेगा।

रिकार्डो ने इस नियम की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की।

§5. रिकार्डो ने क्रमागत उत्पत्ति-ह्रास नियम की जो परिभाषा दी थी वह निश्चित नही थी। यह सम्भव है कि यह त्रुटि अविवेकपूर्ण विचार के कारण न होकर लिखने की असावधानी के कारण हो गयी हो। कुछ भी हो उनका यह विचार करना युक्तिसगत होता कि जब उन्होने इस नियम के सम्बन्ध मे लिखा था तब इंग्लैंड की विशेष परिस्थितियो मे इन दशाओ का अधिक महत्व न था। यही नही, उनके सामने जो विशेष व्यावहारिक समस्याएँ थी उनके सम्बन्ध मे भी ऐसा विचार करना ठीक रहता। निस्सन्देह वह यह प्रत्याशा नही कर सकते थे कि एक के बाद एक जो बडे-बडे आविष्कार होगे उनसे संभरण के नये-नये स्रोत निकल आयेगे, और स्वतत्र व्यापार की सहायता से इंग्लैंड की कृषि मे आमूल परिवर्तन किये जा सकेंगे। किन्तु सम्भवतः इंग्लड तथा अन्य देशो के कृषि के इतिहास से प्रभावित होकर परिवर्तन की सम्भाव्यता पर अधिक जोर दिया।[1]

रिकार्डो का यह कथन कि पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि में कृषि की गयी थी, उनके अभिप्राय के अनुकूल है।

उन्होने कहा कि किसी नये देश मे पहले पहल बसने वाले लोग निश्चित रूप से सबसे अधिक उपजाऊ भूमि को छाटेंगे, और जनसख्या की वृद्धि के साथ घटिया तथा उससे भी घटिया भूमि पर धीरे-धीरे खेती होने लगेगी। उनके इस प्रकार असावधान कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि की उर्वरता के माप निरपेक्ष होते है। किन्तु जैसा कि हम देख चुके है जब भूमि नि शुल्क प्राप्त हो तो प्रत्येक व्यक्ति उस भूमि को पसन्द करेगा जिससे उसके उद्देश्य की पूर्ति हो सके तथा सभी बाते ध्यान मे रखते हुए जिस पर श्रम तथा पूंजी लगाने से सबसे अधिक प्रतिफल मिल सके। अत वह ऐसी भूमि ढूंढता है जिस पर तुरन्त खेती हो सके और उस भूमि को जिसमे यद्यपि कुछ और विशेषताएँ हो, किन्तु जो कम उपजाऊ हो, छोड देता है। मलेरिया से बचने के अतिरिक्त उसे बाजार तक आने-जाने के साधनो तथा उनके लिए आवश्यक अपनी आर्थिक क्षमता पर विचार करना आवश्यक है। कुछ परिस्थितियो मे तो दुश्मनो तथा जगली जानवरों से बचने की भावनाएँ सबसे अधिक प्रबल होती हैं। अतः यह हमेशा आवश्यक नही कि जिस भूमि पर लोगो ने सबसे पहले खेती प्रारम्भ की वह बाद मे भी सबसे अधिक उपजाऊ सिद्ध हुई हो। रिकार्डो ने इस बात पर विचार नही किया और इसी कारण

---

1 जैसा कि (Political Economy अनुभाग CLV में) रोशर कहते हैं, रिकार्डो के कार्य का मूल्यांकन करते समय यह नहीं भूल जाना चाहिए कि उनका विचार 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' के विज्ञान पर एक पाठ्य पुस्तक लिखने का नहीं था, किन्तु केवल अपने अन्वेषणों के परिणामो को यथासम्भव संक्षिप्त रूप में उस विषय के विद्वानो तक पहुँचाना था। इसी कारण वे बहुधा लिखते समय कुछ निश्चित मान्यताएँ स्वीकार कर लेते हैं, अतः यथोचित रूप से विचार करने के बाद ही अन्य दशाओं में उनके शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, या बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल बनाने के लिए वस्तुतः इन्हें दुबारा लिखना चाहिए।

केरे तथा अन्य व्यक्तियों ने उनकी आलोचना की। यद्यपि यह आलोचना बहुत अंशों में रिकार्डो के विचारों को गलत ढग से प्रस्तुत करने के कारण थी किन्तु फिर भी इसमें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य था।

नये देशों में उस भूमि पर जिसे एक अंग्रेज किसान कम उपजाऊ समझता हो उस भूमि की अपेक्षा जिसे वह अधिक उपजाऊ समझता है कभी-कभी पहले खेती की जाती है। यह रिकार्डो के सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है। यद्यपि कुछ विदेशी लेखक इसे प्रतिकूल ही समझते है। इसका व्यावहारिक महत्व उन परिस्थितियों के कारण है जिनमे जीवन निर्वाह के साधनों पर जनसंख्या की वृद्धि दबाव डालती है। इसके कारण कृषक के उत्पादन की मात्रा के स्थान पर उन वस्तुओ के विनिमय मूल्य पर ध्यान केन्द्रित किया जायगा जिन्हे पड़ोस के उद्योगो में लगे हुए लोग इसके लिए देते है।[1]

किन्तु इसका गलत अर्थ लगाया जा सकता है, जैसा कि केरे ने भी लगाया।

---

1 केरे ने यह दावा किया है कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि 'संसार के प्रत्येक भाग में कृषि पहाड़ों के ढाल से जहाँ मिट्टी सबसे कम उपजाऊ थी, प्रारम्भ हुई, और जहाँ भौगोलिक स्थिति से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक लाभ भी सबसे कम थे। यह देखा गया है कि धन तथा जनसंख्या की वृद्धि के साथ साथ घाटी के दोनों ओर के ऊँचे पहाड़ी भागों से लोग नीचे उतर कर घाटी तक आ गये।' Principles of Social Science, अध्याय IV, अनुभाग 4)। उन्होंने (इसी पुस्तक के अध्याय V, अनुभाग 3 मे) यहाँ तक तर्क किया कि जब कभी एक घना बसा देश बर्बाद हो जाता है, "जब कभी जनसंख्या, धन तथा संघ बनाने की शक्ति क्षीण हो जाती है तो लोग अधिक उपजाऊ भूमि को छोड़ कर कम उपजाऊ भूमि पर खेती करने लगते है।" अधिक उपजाऊ भूमि पर जंगलों के तेजी से बढ़ने के कारण रहना कठिन तथा भयावह हो जाता है क्योंकि इनमें जंगली जानवरों तथा डाकुओं और लुटेरों को शरण मिलती है, और सम्भवतः मलेरिया भी फैलता है। दक्षिणी अफ्रीका तथा अन्य स्थानों में बसने वाले लोगों का जो अनुभव है उससे केरे के इन निष्कर्षों की, जो अधिकांशतया गर्म जलवायु वाले देशों से सम्बन्धित तथ्यों पर आधारित हैं, पुष्टि नहीं होती। किन्तु ऊष्ण कटिबन्धीय देशों के आकर्षण अधिकांश रूप में भ्रम पैदा करने वाले हैं: इनमें कठोर परिश्रम का बहुत अधिक प्रतिफल मिलता है। यद्यपि चिकित्सा तथा जीवाणु विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप इस दिशा में कुछ परिवर्तन हो सकता है, किन्तु अभी इनमें कठोर परिश्रम करना सम्भव नहीं है। एक ओजस्वी जीवन के लिए शीतल तथा स्फूर्तिदायक हवा उतनी ही आवश्यक है जितना कि भोजन। वह भूमि जिसमें भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो किन्तु जहाँ की जलवायु शक्ति को क्षीण बनाने वाली हो वह मानव कल्याण के लिए उतनी ही उत्पादक नहीं जितनी कि एक ऐसी भूमि जिसमें भोजन सामग्री कम पैदा होती है किन्तु जहाँ की जलवायु शक्तिदायक होती है। भूतपूर्व आर्जिल के ड्यूक ने यह वर्णन किया कि ऊँचे पहाड़ी प्रदेशों की घाटियों में खेती होने के पूर्व पहाड़ों पर की गयी खेती पर असुरक्षा तथा निर्धनता का क्या प्रभाव था (Scotland as it is and was II—74.5.)

किन्तु केरे ने यह प्रदर्शित किया है कि रिकार्डो ने घनी जनसंख्या से खेती को प्राप्त होने वाली परोक्ष सुविधाओं को कम महत्व दिया।

§6 क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम से यह निकर्ष निकालने में रिकार्डो तथा उनके समय के अर्थशास्त्रियों ने बहुत जल्दी की, और संगठन के फलस्वरूप मिलने वाली शक्ति को पूर्णरूप से ध्यान मे नही रखा। तथ्य यह है कि प्रत्येक किसान को अपने पड़ोसियों से सहायता मिलती है चाहे वे किसान हो अथवा नगर मे रहने वाले हों[1]। यद्यपि उनमे से अनेक उसकी भाँति कृषक ही क्यो न हो, वे धीरे-धीरे अच्छी सड़कों तथा सचार की सुविधाओ को देने मे उसके सहायक होते है। वे उसके लिए बाजार सुलभ करते है जहाँ वह अपने तथा कुटुम्ब के लिए उचित दाम पर जीवन की आवश्यक, आरामदायक एवं विलास की वस्तुएँ, तथा खेती के लिए आवश्यक सामग्री खरीद सकता है। उसको ज्ञान प्राप्त करने की सुविधाएँ सुलभ करते है: उसके घर पर ही उसे चिकित्सा, शिक्षा तथा मनोरजन की सुविधाएँ प्राप्त होती है। उसके मस्तिष्क का अधिक विकास हो जाता है जिससे अनेक दिशाओ मे उसकी कार्यक्षमता बढ जाती है। और यदि पास की मडी वाला कस्बा बढ कर एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र बन जाय तो उसे और भी अधिक लाभ होगा। उसके उत्पादन का मूल्य बढ जायेगा। जिन चीजो को वह फेक देता था उनके लिए भी उसे अच्छे दाम मिलने लगेंगे। उसे दुग्ध व्यवसाय प्रारम्भ करने तथा सब्जी इत्यादि उगा कर बेचने का अवसर मिलता है। इस प्रकार अनेक प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के फलस्वरूप वह फसलो को इस हेर-फेर से उगाता है जिससे उसकी भूमि की उर्वरता का कोई भी अंश नष्ट न होने पाये।

जैसा कि हम बाद मे देखेंगे जनसख्या की वृद्धि के कारण व्यापार तथा उद्योग के सगठनो मे वृद्धि होने लगती है। अत किसी क्षेत्र की अपेक्षा किसी फार्म पर लगायी जाने वाली पूंजी और श्रम की कुल मात्रा पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम अधिक तीव्रता से लागू होता है। खेती के उस अवस्था तक पहुँचने पर भी जब श्रम और पूंजी की प्रत्येक क्रमिक मात्रा से पहले की अपेक्षा कम प्रतिफल मिले, जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप जीवन यापन के साधनों मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हो सकती है। यह सच है कि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना कुछ समय के लिए केवल स्थगित हो जाता है किन्तु स्थगित अवश्य होता है। यदि जनसख्या की वृद्धि अन्य कारण से न रुके तो कच्चे माल को प्राप्त करने की असुविधाओ के कारण अन्त में अवश्य ही रुक जायगी। किन्तु पूर्ति के नये क्षेत्रों के सुलभ होने, रेल तथा भाप द्वारा चलने वाले जहाजो के किराये मे कमी होने तथा संगठन और ज्ञान मे वृद्धि के फलस्वरूप क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृत्ति के विद्यमान रहने पर भी जीवन निर्वाह के साधनो पर पडने वाले जनसंख्या के दबाव को बहुत समय तक रोका जा सकता है।

स्वच्छ वायु, प्रकाश, जल तथा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य का महत्व।

इन सुविधाओ के साथ-साथ घने बसे हुए स्थानो मे स्वच्छ वायु, प्रकाश तथा कभी-कभी स्वच्छ जल प्राप्त करने की बढती हुई कठिनाइयो को भी ध्यान मे रखना चाहिए। लोकाचार के अनुरूप स्थान के प्राकृतिक दृश्यो का प्रत्यक्ष मौद्रिक मूल्य होता

---

1 इस प्रकार की सहायता के फलस्वरूप मनुष्य एक नये देश में उस उर्वर भूमि पर खेती करने लगता है जिस पर वह दुश्मनों तथा मलेरिया के भय के कारण अन्यथा न करता।

जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती, किन्तु सुन्दर एवं विविध प्रकार के दृश्यों के बीच मे मनुष्यों, स्त्रियों तथा बच्चों को टहलने से मिलने वाले वास्तविक आनन्द का अनुमान लगाना सरल नहीं।

मत्स्य उद्योग की उत्पादन शक्ति।

§7. जैसा कि पहले कहा गया है अर्थशास्त्र मे भूमि के अन्तर्गत नदियाँ तथा समुद्र भी शामिल है। नदियों के मत्स्य उद्योग मे अतिरिक्त श्रम तथा पूंजी के लगाने से प्राप्त होने वाले प्रतिफल मे शीघ्रता से कमी होती है, किन्तु समुद्र के विषय मे विचारो मे विभिन्नता पायी जाती है। इसका विस्तार बहुत बड़ा है और इसमे मछलियाँ भी प्रचुर मिलती है, और कुछ लोगों का यह विचार है कि समुद्र मे पायी जाने वाली मछलियो को अधिक मात्रा मे कम किये बिना ही प्राय: किसी भी मात्रा मे समुद्र से निकाला जा सकता है। अन्य शब्दों में समुद्र के मत्स्य उद्योग पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम कभी भी लागू नही होता। अन्य लोग यह सोचते है कि अनुभवो से यह ज्ञात होता है कि जिन मत्स्य-केन्द्रों में अत्यधिक मात्रा में मछलियाँ पकडी जाती है, विशेष कर भाप से चलने वाले मछली पकडने के जहाजों से, उनकी उत्पादकता कम हो जाती है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योंकि मछलियो की प्राप्त होने वाली मात्रा तथा उनके प्रकार के कारण संसार की भावी जनसंख्या पर बहुत बडा प्रभाव पडेगा।

जिस अर्थ में एक फार्म पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है उस अर्थ में यह किसी खान पर लागू नहीं होता।

यह कहा जाता है कि खानो के उत्पादन मे जिनमें पत्थर की खाने तथा ईट बनाने के क्षेत्र भी सम्मिलित हैं, क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, किन्तु यह कथन भ्रामक है। खनन प्रणाली मे सुधार तथा पृथ्वी के गर्भ मे पायी जाने वाली चीजों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी के कारण प्रकृति के भडार पर अधिक नियंत्रण हो जाता है किन्तु इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों को अधिक मात्रा मे प्राप्त करने के लिए निस्सन्देह हमें निरन्तर बढती हुई कठिनाइयों का सामना करना पडता है। और यह भी सच है कि अन्य बातों के समान रहने पर खानों में पूँजी और श्रम के बराबर लगाये जाने पर उत्पादन क्रमश: घटता जाएगा। किन्तु यह विशुद्ध उत्पादन उस प्रतिफल के अनुरूप नही है जिस पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम मे विचार किया जाता है। प्रतिफल तो निरन्तर प्राप्त होने वाले आय का अंश है किन्तु खानो के उत्पादन से उनके भंडार मे निश्चित रूप मे कमी होगी। खेत का उत्पादन उसकी मिट्टी नही है क्योंकि जिस खेत पर भली भाँति कृषि की जाती है उसकी उत्पादन शक्ति बनी रहती है किन्तु खान का उत्पादन तो उसका एक अंश ही है।

दूसरे शब्दों में, कृषि तथा मछलियो का उत्पादन निरन्तर होता रहता है। खाने तो प्रकृति के भंडार है, जितना भंडार कम होता जाता है इनको निकालने मे उतना ही अधिक श्रम लगाना पड़ता है। यदि एक व्यक्ति इस भडार को 10 दिन मे खाली कर दे तो 10 मनुष्य इसे एक दिन मे खाली कर देगें। इसके एक बार खाली हो जाने पर फिर इससे कुछ भी नही प्राप्त हो सकता। अत. जिन खानो से पहली बार खनिज निकालने का काम इस वर्ष प्रारम्भ हो रहा है उनमे सरलतापूर्वक यह काम बहुत वर्ष पहले ही किया जा सकता था : यदि पहले से योजना बनायी गयी होती और आवश्यक विशिष्ट प्रकार की पूँजी तथा कुशलता सुलभ हो सकती तो बिना कठिनाई के 10 वर्ष मे निकाली जाने वाली कोयले की मात्रा एक वर्ष मे ही निकाली जा सकती थी। जब

एक बार किसी खनिज शिरा के सभी खनिज निकाल लिये जाते हैं तो इससे फिर कुछ भी नही निकल सकते है। यह अन्तर इस तथ्य से स्पष्ट है कि फार्म की अपेक्षा खान का लगान किसी अन्य सिद्धान्त पर आँका जाता है। किसान भूमि को जिस दशा मे लेता है वैसे ही लौटाने का वादा करता है किन्तु एक खनिक कर्म में लगी कम्पनी ऐसा नही कर सकती। और खेती के लगान को जहाँ वार्षिक रूप मे निश्चित किया जाता है वहाँ खानों का लगान रायल्टी के रूप मे होता है जिसे प्रकृति के भंडार से निकाले गये खनिज की मात्रा के आधार पर आँका जाता है।[1]

भूमि पर इमारतों के बनाने में अधिक पूंजी के लगाने के साथ-साथ इससे प्राप्त सुविधा क्रमशः कम होती जाती है।

इसके विपरीत भूमि मे मनुष्य को रहने तथा काम करने के लिए स्थान, प्रकाश तथा वायु की जो सेवाएँ मिलती हैं उनमे पूर्णरूप मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। विशेष स्थिति वाली भूमि पर चाहे यह प्रकृति की दी हुई अथवा मनुष्य द्वारा प्राप्त की हुई हो, निरन्तर अधिकाधिक पूँजी लगाना लाभदायक होता है। ऊँची इमारतो मे प्राकृतिक प्रकाश तथा वायु संवातन (ventilation) की कमी को कृत्रिम रूप से पूरा किया जाता है, और भाप से चलने वाले लिफ्ट से सबसे ऊपर के तल मे रहने की असुविधाएँ कम हो जाती है। इस प्रकार के व्यय करने से अतिरिक्त सुविधाएँ अवश्य मिलती हैं किन्तु व्यय के अनुपात मे क्रमश कम होती जाती हैं। एक सीमा के पश्चात् मंजिल के ऊपर मंजिल बनाने की अपेक्षा भूमि पर अधिक जगह के लिए ज्यादा लगान देना अच्छा होगा भले ही भूमि का लगान कितना ही ऊँचा क्यो न हो। किसान भी यह अनुभव करता है कि एक सीमा के बाद जब अधिक गहरी खेती करने पर लागत की अपेक्षा कम प्रतिफल मिले तो पुरानी भूमि पर पूँजी और श्रम की अधिक मात्रा लगा कर घटती दर पर प्रतिफल प्राप्त करने की अपेक्षा अतिरिक्त भूमि के लिए ऊँचा लगान देना अधिक लाभदायक होगा।[2]

---

1 (Principles, अध्याय II में) रिकार्डो कहते है: "खान अथवा पत्थर की खान के लिए जो क्षतिपूर्ति की जाती है वह उनमें से निकाले गये कोयले अथवा पत्थर के मूल्य के लिए होती है और इसका भूमि की मूल अथवा अविनाशी शक्तियो से कोई सम्बन्ध नहीं होता"। किन्तु वह तथा अन्य अनेक अर्थशास्त्री क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के खानो पर लागू होने के सम्बन्ध में विचार करते समय इन विभेदों को ध्यान में नहीं रखते। रिकार्डो ने एडमस्मिथ के लगान के सिद्धान्त की जो आलोचना की है उसके सम्बन्ध में ऐसा विशेष रूप से कहा जा सकता है (Principles अध्याय XXIV)।

2 वास्तव में इमारत पर खर्च की गयी पूंजी की पहली मात्राओं पर मिलने वाला प्रतिफल बढ़ता है। यहाँ तक कि उन स्थानों में जहाँ भूमि लगभग निःशुल्क प्राप्त हो सकती है वहाँ एक मंजिल की अपेक्षा दो मंजिल वाले मकानो को बनाना सस्ता बैठता है और इस समय तो फैक्ट्रियों को चार मंजिल बनाना सबसे सस्ता माना गया है। किन्तु अमरीका में यह विश्वास बढ़ रहा है कि जहाँ भूमि महँगी नहीं है वहाँ फैक्ट्रियों को केवल दो मंजिला बनाना चाहिए। इसका आंशिक कारण यह है कि इससे कम्पन

इससे स्पष्ट है कि भूमि के लगान तथा फार्म के लगानो मे कोई अन्तर नही। इस तथा इसी प्रकार के तथ्यों से हम मिल तथा रिकार्डो के सिद्धान्त को सरल कर सकेंगे और उनका विस्तार कर सकेंगे।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास तथा लगान सम्बन्धी नियमों की लोच का पूर्व आभास होना।

जो बात इमारतों के विषय में सत्य है वही अन्य अनेक विषयों मे घटित होती है। यदि किसी निर्माता के पास रन्दा करने की तीन मशीनें हो तो उनसे एक सीमा तक ही काम लिया जा सकता है। यदि उसे अधिक काम लेना हो तो उसे साधारण काम कराने के समय मे अधिक बचत करनी चाहिए और यहाँ तक काम के समय के बाद भी काम करना चाहिए। इस प्रकार जब इन मशीनों का सुचारु रूप मे उपयोग होने लगें तो उन पर उत्तरोत्तर श्रम लगाने से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा। अन्त में प्रतिफल इतना कम होगा कि पुरानी मशीनो से अधिक काम लेने की अपेक्षा चौथी मशीन खरीदना अधिक सस्ता सिद्ध होगा। इसी प्रकार एक किसान को जिसने अपनी भूमि पर पर्याप्त रूप से जुताई करली हो इस समय की अपनी भूमि से अधिक उत्पादन करने की अपेक्षा कुछ नयी भूमि पर खेती करने मे कम लागत लगानी पड़ेगी। भाग 5 से स्पष्ट होगा कि निश्चय ही कुछ स्थानो मे मशीनो से प्राप्त होने वाली आय लगान के समान होती है।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम पर टिप्पणी

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की लोच पर पुनः विचार।

§8. यहाँ पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम पर विस्तारपूर्वक विचार नही किया जा सकता क्योकि यह पूंजी के विनियोजन मे आर्थिक साधनो के वितरण की उस बडी सामान्य समस्या का प्रमुख अग है जो भाग 5 मे दिये गये मुख्य तर्क का आधार है। किन्तु यहाँ पर इस विषय पर कुछ शब्द लिखना आवश्यक है क्योकि प्रो० कार्वर[1] (Carver) के योग्य तथा शिक्षणात्मक नेतृत्व मे इस पर अधिक जोर दिया गया है।

यदि कोई विनिर्माता अनुचित रूप से एक बडी धनराशि मशीनों पर खर्च करे जिससे वे बहुत समय तक बेकार पडी रहे, अथवा इमारतों पर व्यय करे जिससे बहुत सी जगह खाली पड़ी रहे, अथवा कर्मचारियो पर व्यय करे जिससे उनमे से कई व्यक्तियों को सुचारु रूप से काम न मिल सके तो इन सब दिशाओं मे उसके द्वारा किया गया व्यय उतना फलदायक नही होगा जितना पहले किया जाने वाला व्यय फलदायक होता और इसलिए यह कहा जा सकता है कि उससे प्राप्त होने वाला "प्रतिफल क्रमशः घटता जाता" है। किन्तु ऐसा कहना यद्यपि बिलकुल ठीक है किन्तु सावधानी के अभाव में इससे भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है। क्योंकि भूमि पर पूँजी और श्रम

के बुरे प्रभावों को दूर किया जा सकता है, तथा एक ऊँची इमारत में इससे बचाव के लिए बुनियाद पर तथा दीवारों पर जो अत्यधिक खर्च करना पड़ता है उसे बचाया जा सकता है। अर्थात् भूमि पर दो मंजिल वाले भवन के निर्माण के लिए आवश्यक श्रम तथा पूंजी के खर्च हो जाने के बाद निवास स्थान से मिलने वाले प्रतिफल में स्पष्टतया कमी हो जाती है।

1 प्रो० बुलोक (Bullock) तथा प्रो० लाण्ड्री (Laundry) के लेखों को भी देखिए।

की अधिक मात्रा को लगाने से घटती हुई दर पर प्रतिफल प्राप्त होता है। इस प्रवृत्ति को यदि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की उस सामान्य प्रवृत्ति का विशेष उदाहरण समझा जाय जिसमें उत्पादन के एक साधन को अन्य साधनो की अपेक्षा बहुत बड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है, तो इससे यह मान लिया जाता है कि दूसरे साधनों की मात्रा में वृद्धि हो सकती है। अर्थात् यह सम्भव है कि कोई भी व्यक्ति इस स्थिति को अंगीकार न करे कि पुराने देश में कृषि योग्य भूमि की कुल मात्रा निश्चित होती है। यह स्थिति क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचन का मुख्य आधार है जिस पर अभी विचार करते आ रहे हैं। एक किसान भी अपनी इच्छानुसार अपने फार्म के पास 10 अथवा 50 एकड़ भूमि को अत्यधिक दाम दिये बिना प्राप्त नही कर सकता। इस दशा मे वैयक्तिक दृष्टिकोण से भी भूमि उत्पादन के अन्य साधनो से भिन्न है। एक किसान के लिए इस प्रकार का अन्तर किसी महत्व का नहीं, किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से अथवा जनसंख्या से सम्बन्धित आगे के अध्यायो की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। अब हम इस प्रकार विचार करेंगे।

उत्पादन में उपकरणों के अवांछनीय उपयोग के कारण उत्पत्ति में क्रमशः कमी होती जाती है।

उत्पादन की किसी शाखा का प्रत्येक प्रावस्था मे उत्पादन के साधनो का व्यय की विभिन्न मदो मे इस प्रकार का वितरण होता है जिससे किसी अन्य प्रकार की अपेक्षा अधिक उत्पादन होता है। व्यवसाय के नियंत्रण मे मनुष्य जितना अधिक योग्य होता है उतना ही अधिक वह पूर्ण वितरण के आदर्श तक पहुँचने मे सफल होता है। उसी प्रकार कुटुम्ब के ऊन के भंडार पर आदिम गृहस्वामिनी का जितना ही अधिक अच्छा नियंत्रण होगा वह कुटुम्ब की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग की जाने वाली ऊन का उतना ही आदर्श वितरण करने मे समर्थ होगा।[1]

यदि उसका व्यवसाय बढ़ जाय तो वह उचित अनुपात मे उत्पादन के लिए आवश्यक साधनो की मात्रा बढा देगा। किन्तु जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है इनमे समान

---

1 इसमें वह अधिकांशतया अधिक अनुकूल साधनों का कम अनुकूल साधनों के स्थान पर "प्रतिस्थापन" करने के सही स्तर से नीचे ही प्रतिस्थापन करेगा। इस पैराग्राफ से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित विवेचन भाग 3, अध्याय 5 अनुभाग 1–3; भाग 4, अध्याय 7, अनुभाग 8, तथा अध्याय 13, अनुभाग 2; भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 3, अध्याय 4, अनुभाग 1–4, अध्याय 5, अनुभाग 6–8, अध्याय 8, अनुभाग 1–5; अध्याय 10, अनुभाग 3; भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 7, तथा अध्याय 2, अनुभाग 5 में मिलेगा।

क्रमागत तुष्टिगुण ह्रास तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्तियाँ क्रमशः मानव के स्वाभाविक गुणों तथा उद्योग की तकनीकी दशाओं पर आधारित होती हैं। किन्तु साधनों के जिन वितरणों की ओर इनका संकेत मिलता है वे निश्चित रूप से इसी प्रकार के नियमों से नियंत्रित होते हैं। गणितीय वाक्यांश में उनसे उत्पन्न होने वाली महत्तम (maxima) तथा न्यूनतम (minima) की समस्याओं को उन्हीं सामान्य समीकरणों द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसा कि गणितीय टिप्पणी XIV को देखने से स्पष्ट होता है।

अनुपात में वृद्धि नहीं होगी। उदाहरण के रूप में शारीरिक श्रम का मशीन के काम से जो अनुपात एक छोटी फैक्टरी में ठीक समझा जायेगा वह बड़ी फैक्टरी में उचित न होगा। यदि वह उत्पादन के साधनों का सर्वोत्तम वितरण करे तो उसके व्यवसाय से उसे उत्पादन के प्रत्येक उपकरण से सबसे अधिक (सीमान्त) प्रतिफल मिलेगा। यदि वह किसी एक साधन का ही अत्यधिक उपयोग करे तो उससे उसे क्रमशः घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा क्योंकि उत्पादन के अन्य साधन उत्पादन को बढ़ाने में पूर्ण रूप से सहायक नहीं हो पाते। इस प्रकार उत्पादन के क्रमशः ह्रास की तुलना उस क्रमागत उत्पादन ह्रास से की जाती है जो भूमि पर गहरी खेती करने से होती है। यदि किसान को अपनी पुरानी भूमि के लिए दिये जाने वाले लगान की दर पर अधिक भूमि मिल सके तो वह खेती के लिए अधिक भूमि ले लेगा क्योंकि ऐसा न करने पर वह अकुशल किसान कहलायेगा। इससे यह स्पष्ट है कि किसान के वैयक्तिक दृष्टिकोण से भूमि पूँजी का ही एक रूप है।

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का वर्णन करते समय वैयक्तिक कृषक के दृष्टिकोण के साथ-साथ समूचे राष्ट्र के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा। यदि राष्ट्र के पास रंदा करने की मशीनों, अथवा हलों का भंडार अपेक्षाकृत अधिक अथवा कम हो तो यह अपने साधनों का पुनर्वितरण कर सकता है। जिन साधनों की मात्रा अधिक हो उन्हें कम कर सकता है: किन्तु भूमि के सम्बन्ध में ऐसा नहीं किया जा सकता: यह (राष्ट्र) गहरी खेती कर सकता है किन्तु अधिक भूमि नहीं प्राप्त कर सकता। इस कारण पुराने अर्थशास्त्रियों ने उचित ही जोर दिया है कि सामाजिक दृष्टिकोण से भूमि को उत्पादन के उन उपकरणों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता जिनकी मात्रा किसी भी सीमा तक बढ़ायी जा सकती है।

एक घने बसे हुए देश की राष्ट्रीय कृषि में उत्पादन के प्रमुख उपकरणों के किसी एक के भंडार में सबसे अधिक निश्चितता पायी जाती है।

निस्सन्देह एक नये देश में जहाँ प्रचुर मात्रा में बिना जोती गयी उपजाऊ भूमि उपलब्ध हो वहाँ भूमि के निश्चित होने का कोई महत्व नहीं। अमरीका के अर्थशास्त्री अधिकांश रूप में यह कहते हैं कि भूमि का मूल्य अथवा लगान उसकी उर्वरता की अपेक्षा अच्छे बाजारों से इनकी दूरी के अनुपात में बदलता है, क्योंकि इस समय भी उनके देश में ऐसी बहुत सी उपजाऊ भूमि है जिस पर खेती नहीं होती। इसी प्रकार वे इस बात पर बहुत कम जोर देते हैं कि इंग्लैंड जैसे देश में कुशल श्रमिकों द्वारा भूमि पर सामान्य रूप से श्रम तथा पूँजी के लगाने के फलस्वरूप जो क्रमशः घटता हुआ प्रतिफल मिलता है उसे उसी श्रेणी में नहीं रख सकते जिसमें उस प्रतिफल को रख सकते हैं जो अकुशल किसानों अथवा उत्पादकों द्वारा हलों अथवा रंदा करने की मशीनों में बहुत बड़ी मात्रा में अपने साधनों को अनुचित रूप में लगाने से (घटती हुई दर पर) मिलता है।

श्रम और पूँजी की मात्रा को मापने तथा विभिन्न

यह सत्य है कि जब क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को सामान्य रूप दिया जाय तो प्रतिफल को उत्पादन की मात्रा की अपेक्षा उसके मूल्य के रूप में व्यक्त किया जाता है। फिर भी यह मान लेना पड़ेगा कि बहुधा प्रतिफल को उत्पादन की मात्रा के रूप में आँकने की पुरानी प्रणाली में श्रम तथा पूँजी की इकाई को मुद्रा के अभाव में मापना कठिन है: यद्यपि ऐसा करना एक व्यापक प्रारंभिक सर्वेक्षण में उपयोगी होगा

प्रकार के उत्पादन को समान इकाई के रूप में आंकने की कठिनाई।

किन्तु अन्य कार्यो के लिए इसका अधिक प्रयोग नही किया जा सकता। किन्तु यदि हम विभिन्न समयों तथा स्थानों मे पायी जाने वाली भूमि की उर्वरता को मुद्रा की सहायता से एक सामान्य माप के रूप में व्यक्त करना चाहे तो इसमे मुद्रा के रूप मे वस्तुओ को आँकने पर भी सफलता नही मिलती। अतः हमे अवश्य ही मापने के उन स्थल, और थोड़े बहुत काल्पनिक ढगों का आश्रय लेना चाहिए जिनसे सख्यात्मक निश्चितता तो प्राप्त नही हो सकती किन्तु जो इतिहास के व्यापक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए पर्याप्त हैं। हमें इन बातों को ध्यान मे रखना चाहिए कि श्रम तथा पूंजी की मात्रा इनके विभिन्न अनुपात से मिल कर बनी है: यद्यपि कृषि की उन्नतिशील अवस्था मे ब्याज की दर बहुत कम पायी जाती है फिर भी विकसित अवस्थाओ की अपेक्षा अविकसित अवस्थाओं में पूंजी के ब्याज का महत्व कम रहता है। क्योकि अधिकाश उद्देश्यों के लिए यह सम्भवतः सबसे अच्छा होगा कि एक निश्चित कार्यक्षमता वाले अकुशल श्रमिक के काम को सामान्य माप समझा जाय। इस प्रकार हम मान लेते है कि श्रम और पूंजी की मिश्रित मात्रा मे विभिन्न प्रकार के श्रम की अमुक मात्रा तथा पूँजी के उपयोग तथा प्रतिस्थापन के लिए उतना आवश्यक व्यय सम्मिलित है जो दस दिन के श्रम के बराबर हो। श्रम और पूंजी के सापेक्षिक अनुपात और इस श्रम के रूप मे इसके विभिन्न मूल्य प्रत्येक समस्या की विशेष परिस्थितियो के आधार पर निश्चित किये जाते है।[1]

विभिन्न परिस्थितियो मे श्रम तथा पूंजी से प्राप्त प्रतिफल की तुलना करने मे इसी प्रकार भी कठिनाई होती है। जब तक फसले समान प्रकार की हो तो एक प्रतिफल की मात्रा की दूसरे प्रतिफल की मात्रा से तुलना की जाती है। किन्तु यदि वे विभिन्न *प्रकार की हों तो उनकी तब तक आपस मे तुलना नहीं हो सकती जब तक उन्हें मूल्य* के समान मापदंड के रूप में न आँका जाय। उदाहरण के रूप में जब यह कहा जाता है कि भूमि पर श्रम तथा पूंजी लगाने से उस समय अधिक अच्छे प्रतिफल प्राप्त होगे जब अन्य किसी फसल की अपेक्षा अमुक फसल को अथवा फसलो को हेर-फेर कर उत्पन्न किया जाय तो उससे यह अभिप्राय समझना चाहिए कि यह कथन उस समय के प्रचलित भावो के आधार पर ही ठीक उतरेगा। यदि यह मान लें कि फसलों के हेर-फेर के प्रारम्भ तथा अन्त मे भूमि की स्थिति में कोई परिवर्तन नही हो तो ऐसी परिस्थिति मे हेर-फेर के पूरे समय को ध्यान मे रखना चाहिए और सभी फसलो पर लगायी गयी पूंजी तथा श्रम की मात्रा और उनसे प्राप्त कुल प्रतिफल की गणना करनी चाहिए।

हिसाब-किताब के विभिन्न ढंगों के आधार

यहाँ यह स्मरण रहे कि यहाँ पर श्रम तथा पूंजी की किसी मात्रा को लगाने से मिलने वाली प्रतिफल मे पूँजी का पूरा मूल्य सम्मिलित नही है। उदाहरण के लिए यदि फार्म पर उपयोग की जाने वाली पूंजी मे दो वर्ष की आयु के बैल शामिल हैं तो साल मे उपयोग किये जाने वाले श्रम तथा पूंजी से प्राप्त प्रतिफल मे साल के अन्त में पाये जाने वाले इन बैलों का वजन सम्मिलित न होगा किन्तु केवल उतना ही वजन शामिल

---

1 श्रम और पूंजी की मात्रा में श्रम के अंश से तात्पर्य कृषि श्रम से है, और पूंजी के अंश से तात्पर्य विभिन्न प्रकार तथा विभिन्न क्षमता वाले श्रमिकों के विगत समयों के श्रम के प्रतिफल से है। इसमें "प्रतीक्षा" करने का प्रतिफल भी शामिल है।

किया जायेगा जितना साल भर मे बढ़ा। पुनः जब यह कहा जाता है कि एक किसान प्रति एकड़ 10 पौंड की पूंजी लगाता है तो इसका अर्थ यह है कि उसकी पूंजी मे उन सभी वस्तुओं का मूल्य शामिल है जो उसके फार्म पर विद्यमान है। किन्तु किसी फार्म पर प्रायः एक वर्ष मे श्रम तथा पूँजी की जो कुल मात्राएँ लगायी जाती है उनमे मशीनो तथा घोड़ों जैसी अचल पूंजी का पूरा मूल्य सम्मिलित नही है। अपितु उतना ही मूल्य शामिल है जो पूंजी के उपयोग मे से ब्याज, मूल्य-ह्रास तथा मरम्मत पर किये गये व्यय को घटा कर बचता है। किन्तु इसमे बीज जैसी चल सम्पित्ति का पूरा मूल्य सम्मिलित है।

पर एक ही वस्तु को पूंजी अथवा उत्पादन माना जा सकता है, परन्तु प्रत्येक ढंग को अपनाने में अनुरूपता बरतनी चाहिए।

सामान्यतया पूंजी को मापने का यही ढग अपनाया जाता है और किसी संदर्भ मे यदि इसके विपरीत कुछ और न कहा जाय तो यह समझना चाहिए कि यही ढग अपनाया जा रहा है। कभी-कभी यह कहना अधिक सरल है कि वर्ष के प्रारम्भ अथवा बीच में लगायी गयी पूंजी चल पूंजी है : इसके फलस्वरूप वर्ष के अन्त मे फार्म पर पायी जाने वाली सभी वस्तुएँ उत्पादन के ही अंग है। अत. छोटे जानवर को कच्चे माल की तरह समझा जाता है जिन्हे मास तैयार करने के लिए मोटा बनाया जाता है। फार्म के औजारो को भी ऐसा ही समझना चाहिए। वर्ष के आरम्भ मे उनके मूल्य को फार्म पर लगी हुई चल पूंजी का तथा वर्ष के अन्त मे उत्पादन का एक निश्चित अग समझना चाहिए। इस प्रकार के मूल्य ह्रास, इत्यादि के सम्बन्ध मे शर्त वाले वाक्याशो की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नही होगी, तथा सक्षेप मे ही भाव को व्यक्त किया जा सकेगा। किसी दुर्बोध प्रकार के सामान्य तर्कों के विषय मे, मुख्यकर यदि उन्हे गणितीय रूप मे व्यक्त किया गया हो, तो यही ढग सर्वोत्तम है।

प्रत्येक घने बसे देश मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का विचारशील व्यक्तियो मे गहन अध्ययन किया होगा जैसा प्रो० कैनन ने बताया है। तुर्गो ने स्पष्ट शब्दों मे सर्वप्रथम इसे व्यक्त किया था (Euvres, सस्करण Daire, I पृष्ठ 470, 1) और रिकार्डो ने इसका विभिन्न क्षेत्रों में मुख्य रूप मे उपयोग किया।

अध्याय 4

जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या तथा उत्पादन।

§1. सम्पत्ति का उत्पादन मनुष्य की जीविका, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति, उसकी माँगो की तुष्टि तथा उसके भौतिक, मानसिक तथा नैतिक विकास सम्बन्धी कार्यों का साधन मात्र है। किन्तु वह स्वय उस सम्पत्ति का मुख्य माध्यम है जो उसी के लिए उत्पन्न की जाती है। इस और अगले दो अध्यायों मे श्रम की पूर्ति के अध्ययन अर्थात् जनसख्या, उसकी शक्ति, उसके ज्ञान के स्तर तथा आचरण पर विचार किया जायेगा।

पशुओं की संख्या में वृद्धि वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित होती है किन्तु मनुष्यो की संख्या भूतकाल के रीति-रिवाज तथा भविष्य के विषय में पूर्वानुमान से प्रभावित होती है।

पशु तथा वनस्पति जगत मे इनकी सख्या पर एक ओर तो प्रत्येक की जातीय वर्ग की वृद्धि करने की प्रवृत्ति का तथा दूसरी ओर जीवन के लिए किये जाने वाले उस सघर्ष का प्रभाव पडता है जिससे छोटी आयु वालो की सख्या बड़े होने के पूर्व ही कम हो जाती है। मानव जाति मे ही केवल दो विरोधी शक्तियो का अन्तर्द्वन्द्व अन्य प्रभावों के कारण जटिल हो जाता है। दूसरी ओर भविष्य को ध्यान मे रखने के कारण, कभी माँ-बाप होने के कारण अपने कर्त्तव्यो को भलीभाँति निवाहने के लिए और कभी-कभी उदाहरण के लिए साम्राज्यवादी रोम मे, तुच्छ प्रयोजनो के लिए अनेक व्यक्ति अपने प्राकृतिक आवेग पर नियत्रण करते हैं। इसके विपरीत, धार्मिक, नैतिक और कानूनी स्वीकृति द्वारा समाज व्यक्तियों पर कभी तो जनसख्या की वृद्धि को तीव्र करने और कभी मन्द करने के उद्देश्य से दबाव डालता है।

जनसख्या की वृद्धि के अध्ययन के विषय मे व्यक्त किये गये विचारो से बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक आधुनिक अध्ययन है। किन्तु विचारशील पुरुषों ने सारे ससार मे सभी युगों मे इस पर न्यूनाधिक अस्पष्टता से यह विचार किया। इस वृद्धि का प्रभाव अप्रकाशित था और इसे कभी-कभी तो स्पष्ट मान्यता भी नही मिली। वास्तव मे उन नियमों, प्रथाओ तथा उत्सवो के कारण अधिकाशतया जनसख्या की वृद्धि हुई जिन्हें पूर्व तथा पाश्चात्य जगत मे कानून बनाने वालो, सदाचारपरायण व्यक्तियो तथा उन बिना नाम वाले विचारको ने प्रतिपादित किया जिनकी दूरदर्शिता का प्रभाव राष्ट्र के नागरिको की आदतो पर पड़ा। शक्तिशाली जातियो मे, तथा महान सैनिक संघर्ष के समय उनका उद्देश्य लड़ने योग्य व्यक्तियो की पूर्ति को बढ़ाना था। प्रगति की उच्चतर अवस्थाओ मे उन्होने मानव जीवन की पवित्रता के प्रति अधिक सम्मान की भावना का संचार किया, किन्तु निम्नतर अवस्थाओं में उन्होंने अशक्त तथा वृद्ध लोगों को, और कभी-कभी छोटी-छोटी लड़कियों के कुछ भाग के नृशंस संहार को बढ़ावा दिया, और यहां तक कि इसके लिए बाध्य भी किया।

जनसंख्या की समस्याएँ सभ्यता से भी प्राचीन हैं।

राज्य द्वारा बड़े परिवारों को बढ़ावा

प्राचीन यूनान तथा रोम मे जब उपनिवेशवाद की भावना तीव्र थी और निरन्तर युद्ध की सभावना विद्यमान थी, तब नागरिको की संख्या मे वृद्धि होना जनशक्ति का स्रोत माना जाता था, तथा जनमत द्वारा, और अनेक बार तो कानून द्वारा भी, विवाह

पद्धति को प्रोत्साहन मिला था : यद्यपि उस समय भी विचारशील व्यक्तियों को यह ज्ञात था कि यदि माता-पिता को उत्तरदायित्व भारस्वरूप न प्रतीत हो तो इसके विपरीत कार्य करना आवश्यक होगा[1]। बाद मे जैसा कि रोशे (Roscher) ने कहा है[2] इस प्रश्न पर निरन्तर विचारों में उतार-चढ़ाव होते रहे कि राज्य जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन दे या न दें। ट्यूडर वंश के पहले दो राजाओं के शासन काल मे इन विचारों का पूर्ण बोलबाला था, किन्तु सोलहवी शताब्दी मे इनमे कमी आने लगी और इनका उतार प्रारम्भ हुआ। उस समय धार्मिक आदेशों द्वारा प्रतिपादित अविवाहित अवस्था के उन्मूलन तथा देश मे अधिक सुव्यवस्था के फलस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन मिला। इस बीच मे भेड़ों के लिए चरागाहों के क्षेत्र मे विस्तार होने के कारण तथा मठ-सम्बन्धी अधिष्ठानों (monastic establishments) द्वारा स्थापित उद्योगो के नष्ट हो जाने से श्रम के लिए प्रभावोत्पादक माँग कम हो गयी। बाद मे अठारवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे गेहूँ के मुख्य खाद्यान्न के रूप मे सर्वसाधारण द्वारा अपनाये जाने के फलस्वरूप आराम के स्तर मे वृद्धि होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि रुक गयी। उस समय लोगो को यहाँ तक डर था कि वास्तव मे जनसंख्या घट रही है, यद्यपि बाद मे की गई जाँच पड़ताल से यह बात निराधार सिद्ध हुई। पेट्टी (Petty)[3] ने कैरे (Carey) और वेकफील्ड (Wakefield) द्वारा प्रतिपादित घनी जनसंख्या के लाभो से सम्बन्धित कुछ तर्कों का पहले ही उल्लेख कर दिया था। चाइल्ड (Child) ने यह तर्क किया था कि "जिस किसी कारण से किसी देश की जनसंख्या में कमी हो उससे वह देश निर्धन होता जायेगा," तथा "संसार के सभ्य भागो के सभी देशों का थोड़ा बहुत अमीर या गरीब होना इस बात पर निर्भर है कि वहाँ पर जनसंख्या कम है या अधिक, न कि

देने के प्रश्न पर विचारों में मतभेद।

---

1 इस प्रकार अरस्तु (Aristotle) ने अपनी पुस्तक (Politics II. 6) में प्लेटो (Plato) द्वारा सम्पत्ति के समान वितरण और निर्धनता को दूर करने की योजना पर इस आधार पर आपत्ति की कि जब तक राज्य जनसंख्या पर पूर्ण नियन्त्रण न करें तब तक यह योजना सफल नहीं हो सकती। जैसा कि जोवेट (Jowett) ने कहा है, प्लेटो इससे पहले से ही अवगत थे (Laws. V. 740 तथा अरस्तु द्वारा लिखित Politics, VII, 16 को देखिए)। पहले की इस धारणा पर कि यूनान की जनसंख्या (ईसा पूर्व) सातवीं शताब्दी से और रोम में तीसरी शताब्दी से घटने लगी, अब हाल ही में आपत्ति प्रकट की गयी है। एडौअर्ड मेयर (Edouard Meyer) द्वारा Handworterbuch der Staatswissenschaften में 'Die Bevolkerung des Altertums"

2 Political Economy 254. को देखिए।

3 उनका यह तर्क है कि फ्रांस की अपेक्षा हालैंड जैसा दिखायी देता है उससे अधिक धनी देश है, क्योंकि कम उपजाऊ भूमि पर निर्भर रहने के कारण दूर-दूर रहने वाले लोगों की अपेक्षा यहाँ के निवासियों को अनेक सुविधाएँ सुलभ है। "समान लगान की एक कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक उपजाऊ भूमि अधिक अच्छी है।" Political Arithmetick, अध्याय 1.

इस बात पर कि वहाँ की भूमि कितनी अनुपजाऊ अथवा उपजाऊ है[1]। जिस समय संसार के अन्य देशों का फ्रान्स के साथ संघर्ष चरम सीमा तक पहुँच चुका था, जब सेना को अधिकाधिक बढ़ने की माँग निरन्तर बढ़ रही थी, और जब उद्योगपतियों को नयी मशीनों पर काम करने वाले और अधिक आदमियों की आवश्यकता थी तो शासक वर्ग बढ़ती हुई जनसंख्या का समर्थन करने लगा। यह विचारधारा यहाँ तक फैली कि सन् 1796 ई० में पिट (pitt) ने यह घोषणा की जिस व्यक्ति ने अनेक बच्चे उत्पन्न कर देश को धनी बनाया है वह सरकारी सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है। सन् 1806 ई० की सेना सम्बन्धी परेशानियों के समय पास किये गये कानून को, जिससे दो से अधिक बच्चे उत्पन्न करने वाले एक ही माँ-बाप द्वारा दिये जाने वाले करों में छूट मिलती थी, उस समय रद्द कर दिया गया जब नेपोलियन को सेंट हेलेना (St. Helena) द्वीप में सुरक्षित पहुँचा दिया गया[2] था।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रति-

§2 किन्तु जिन लोगों ने इस काल में सामाजिक समस्याओं पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार किया उनमें इस बात की भावना बढ़ती गयी कि जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से, चाहे उससे राज्य शक्तिशाली हो अथवा नहीं, महान कष्ट का होना

---

1 Discourses on trade, अध्याय X, हैरिस ने Coins पर लिखे गये लेख पृष्ठ 32, 3 में इसी प्रकार का तर्क दिया है, और "समाज के निम्न वर्गों में बच्चे वालों को कुछ विशेष सुविधाएँ देकर एक दूसरे के साथ विवाह करने के लिए प्रोत्साहन देने का" सुझाव दिया है, इत्यादि।

2 पिट ने कहा "जहाँ अनेक बच्चे हों वहाँ हमें कुछ सहायता देनी चाहिए। इस कार्य को तिरस्कार अथवा घृणा की दृष्टि की अपेक्षा अधिकारयुक्त तथा सम्माननीय समझना चाहिए। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े परिवारों का होना अभिशाप की अपेक्षा वरदान माना जायगा, और इससे अपने श्रम द्वारा पर्याप्त मात्रा में जीविका उपार्जन करने वाले लोगों और उन लोगों में जिन्होंने अनेक बच्चे उत्पन्न कर देश को धनी बना कर बच्चों के पालन के लिए अपने को सरकारी सहायता प्राप्त करने का अधिकारी बनाया हो भलीभाँति विभेद किया जा सकता है। निस्सन्देह उनकी यह इच्छा थी कि जहाँ सहायता की आवश्यकता न हो वहाँ इसे प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। नेपोलियन प्रथम ने सात बालकों वाले कुटुम्ब के एक बच्चे के भार वहन करने की घोषणा की थी। लुइ चौदहवें (louis XIV) ने, जो मनुष्यों के वध करने में उनके पूर्ववर्ती शासक थे, उन सभी लोगों को सरकारी करों से छूट दी थी जिनका विवाह बीस वर्ष की आयु के पहले हुआ हो तथा जिनकी दस वा सन्तानें हों। 1885 में फ्रान्स की अपेक्षा जर्मनी की जनसंख्या में अधिक वृद्धि होने के कारण फ्रान्स के कानून बनाने वाले सदन ने यह नियम बनाया कि जरूरतमन्द कुटुम्बों में प्रत्येक सातवें बच्चे की शिक्षा और भोजन का भार सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए; और सन् 1913 में एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार बड़े कुटुम्ब वाले माँ-बाप को कुछ परिस्थितियों में सरकारी सहायता मिल सकती थी। सन् 1909 के ब्रिटिश बजट विधेयक में बड़े कुटुम्ब वाले पिताओं को आय-कर में कुछ छूट दी गयी थी।

आवश्यक है : और शासकों को इस बात का कोई अधिकार न था कि वे वैयक्तिक सुख को राज्य के उत्थान की अपेक्षा कम महत्व दे जैसा कि हम देख चुके हैं, विशेष-कर फ्रांस में पागलपन से भरे हुए उस स्वार्थ के कारण प्रतिक्रिया हुई जिससे राजदरबार तथा उसके समर्थकों ने अपने निजी विलास तथा सैनिक ख्याति के लिए जन-कल्याण का परित्याग किया। यदि कृषि अर्थशास्त्रियों की मानवीय सहानुभूति ने फ्रांस के विशेष सुविधा प्राप्त वर्गों की नीचता और कटुता पर विजय प्राप्त की होती तो अठारहवी शताब्दी का अन्त उपद्रव व रक्तपात से भरा न होता, इग्लैंड मे स्वतत्रता की लहर की गति रुक न गयी होती, और एक पीढी पूर्व ही अपेक्षाकृत कही अधिक प्रगति हुई होती। ऐसी परिस्थितियों मे क्वेसने (Quesnay) के इस बचावयुक्त, किन्तु प्रभावपूर्ण, विरोध पर बहुत कम ध्यान दिया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य राष्ट्रीय आय की वृद्धि की अपेक्षा जनसख्या मे वृद्धि कम करना होना चाहिए, क्योकि अच्छी आय मे मिलने वाली अधिक आराम की स्थिति उस स्थिति से अधिक अच्छी है जिसमे आय की वृद्धि की अपेक्षा जनसख्या की वृद्धि अधिक हो और लोगो को जीवन यापन के साधनो की निरतर अत्यधिक आवश्यकता बनी रहे।[1]

पादित सिद्धान्त। कृषि-अर्थ-शास्त्री।

---

1 जनसंख्या की जीवनयापन के सीमान्त तक बढ़ने की प्रवृति के सम्बन्ध में कृषि अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त को टुर्गो (Turgot) के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:—नियोजक को "काम करने वाले अनेक मनुष्यों में से चयन करने की सुविधा होने के कारण वह उस व्यक्ति को कार्य के लिए छाँटेगा जो सस्ती दर पर काम करे। इस प्रकार पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण श्रमिक अपनी मजदूरी की दर कम करने को बाध्य हो जाते हैं। और सभी प्रकार के श्रम के सम्बन्ध में यही परिणाम होगा—यह वास्तव में होता भी है—कि श्रमिक की मजदूरी उस दर तक ही सीमित रहती है जिस पर उसे केवल जीविका उपार्जन की चीजें उपलब्ध हों।" (Sur la formation et la distribution des richesses, VI)

इसी प्रकार सर जेम्स स्टुवर्ट (*Sir James Steuart*) ने कहा है (*Inquiry*, भाग I, अध्याय III), "जन उत्पादक शक्ति की तुलना एक ऐसे तराजू से की जा सकती है जिस पर भार रखा हो और जो दबाव में होने वाली कमी के अनुसार सदा काम करता हो: यदि खाद्यान्न की मात्रा में कुछ समय तक कोई भी परिवर्तन न हो तो उस पीढ़ी में जनसंख्या अधिकाधिक बढ़ेगी। यदि इसके पश्चात् खाद्यान्न में कमी हो जायें तो तराजू रूपी जन उत्पादक शक्ति प्रभावहीन हो जायेगी। इसकी शक्ति शून्य से भी कम हो जायेगी और निवासियों की संख्या में इस परिवर्तन के अनुसार कमी होगी। इसके विपरीत यदि खाद्यान्न में वृद्धि हो तो तराजू रूपी जन उत्पादक शक्ति जो शून्य के बराबर थी दबाव के कम होने पर अपना प्रभाव दिखाने लगेगी। लोगों को अच्छा भोजन मिलने लगेगा, उनकी संख्या में वृद्धि होगी, तथा जिस अनुपात में उनकी वृद्धि होगी उसी अनुपात में खाद्यान्न में पुनः कमी होगी। जेम्स स्टुवर्ट मिल पर कृषि अर्थशास्त्रियों का बहुत प्रभाव पड़ा था और वास्तव में कुछ अंशों में राज्य सम्बन्धी आंग्ल विचारों की अपेक्षा यूरोपीय विचारों से वे प्रभावित हुए थे: और जनसंख्या पर

एडमस्मिथ

एडमस्मिथ ने जनसंख्या के बारे में बहुत थोडे ही विचार व्यक्त किये, क्योंकि उन्होंने वास्तव में आंग्ल श्रमिक वर्गों की प्रगति की चरम अवस्था के समय इस सम्बन्ध मे लिखा था, किन्तु उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह बुद्धिमत्तापूर्ण और सुसंतुलित है तथा आधुनिक शैली मे व्यक्त किया गया है। कृषि अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त को अपना आधार मान कर उन्होंने यह आग्रह कर इसमें सुधार किया कि जीवन की आवश्यकताएँ निश्चित नहीं हैं, और इनकी मात्रा निर्धारित की हुई नहीं है, अपितु इनमें स्थान-स्थान पर और समय समय पर बड़े परिवर्तन हुए हैं, और इनसे भी अधिक परिवर्तन हो सकते हैं। किन्तु उन्होंने इस संकेत का पूर्ण विश्लेषण नहीं किया है और कृषि अर्थशास्त्रियों की दूसरी बड़ी कमी का वे अनुमान न लगा सके। अब अमेरिका के मध्य भाग से लिवरपूल तक गेहूँ को उस खर्च से कम दर पर ले जाने के कारण जो इंग्लैंड के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले जाने मे होता था, कृषि अर्थशास्त्रियों का यह सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

अठारहवीं शताब्दी का अन्त हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी निराशामय वातावरण से प्रारम्भ हुई।

अठारहवी शताब्दी का अन्त होने लगा और उन्नीसवी शताब्दी प्रारम्भ हुई, वर्ष प्रति वर्ष इंग्लैंड मे श्रमिक वर्गों की दशा अधिक निराशामय होने लगी। बुरी फसलों के आश्चर्यजनक क्रम[2], अत्यधिक मात्रा मे देश को क्षीण करने वाले युद्ध[3], औद्योगिक प्रणाली मे परिवर्तन जिसके फलस्वरूप पुराने सम्बन्ध विछिन्न हो गये, तथा विवेकहीन दरिद्रता सम्बन्धी कानून से श्रमिक वर्गों की दशा अत्यधिक दयनीय हो गयी। इतनी दयनीय दशा तो इंग्लैंड के सामाजिक इतिहास मे मिलने वाले विश्वसनीय प्रमाणों के प्रारम्भ से कभी न हुई थी।[4] और इन सबके ऊपर यह था कि अच्छी नीयत वाले पुरुष

नियंत्रण रखने की उनकी कृत्रिम योजना इस समय के विचारों से काफी भिन्न मालूम होती है। Inquiry, भाग I, अध्याय XII देखिये, जिसका शीर्षक है :—"Of the great advantage of combining a well-digested Theory and a perfect Knowledge of Facts with the Practical Part of Government in order to make a People multiply."

1 Wealth of Nations भाग I अध्याय VIII तथा भाग V अध्याय II देखिए। ऊपर भाग 2, अध्याय 4 भी देखिए।

2 सन् 1771–1780 की जिस दशाब्दि में एडमस्मिथ ने लिखा था उस समय गेहूँ का औसत भाव 34 शि० 7 पे० था। सन् 1781–1790 में यह 37 शि० 1 पें० था, सन् 1791–1800 में 63 शि० 6 पें०, 1801–1810 में 83 शि० 11 पें० और 1811–1820 में यह 87 शि० 6 पें० था।

3 गत शताब्दी के प्रारम्भ में केन्द्रीय कर (Imperial taxes)—अधिकांश रूप में युद्धकाल में लगाये गये कर—देश की कुल आय के पाँचवें भाग के बराबर थे, जब कि अब ये इसके बीसवें भाग से बहुत अधिक नहीं हैं, और यहाँ तक कि इसका भी बहुत कुछ भाग शिक्षा तथा अन्य लोकहित के कार्यों में खर्च किया जाता है जिन्हें सरकार तब इन कार्यों में खर्च करने में असमर्थ थी।

4 आगे दिये गये अनुभाग 7 तथा भाग 1, अध्याय 3 के अनुभाग 5, 6 को देखिए।

ने मुख्यकर जो फ्रांस के प्रभाव में थे, साम्यवादी योजनाओं का सुझाव दिया जिनके फलस्वरूप जनसाधारण अपने बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व समाज के ऊपर डाल सके।[1]

इस प्रकार जब श्रमिकों की भर्ती करने वाले सार्जेण्ट तथा श्रमिकों के नियोजक ऐसे ढंगो के अपनाये जाने की माँग कर रहे थे जिनसे जनसंख्या में वृद्धि हो तो अधिक दूरदर्शी व्यक्ति यह सोचने लगे कि यदि जनसख्या वर्तमान की भाँति निरंतर बढ़ती गयी तो क्या इससे जाति का पतन नही होगा ?

माल्थस

इस प्रकार की जाँच करने वाले लोगों में माल्थस प्रमुख थे और इस विषय से सम्बन्धित आधुनिक विचारधारा का प्रारम्भ माल्थस के Essay on the Principle of Population से होता है।

उनका तर्क तीन भागों में बँटा हुआ है। पहला। दूसरा।

§3. माल्थस के तर्क को तीन भागो में बाँट सकते हैं जिन्हें एक दूसरे से अलग रखना आवश्यक है। पहले का सम्बन्ध श्रम की पूर्ति से है। तथ्यो का सावधानी के साथ अध्ययन कर उन्होंने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक राष्ट्र, जिसके इतिहास के विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध हों, इतना अधिक प्रजननशील (prolific) रहा है कि यदि जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अभाव या किसी अन्य कारण अर्थात् बीमारी, युद्ध, शिशु-हत्या या अन्त मे स्वेच्छा से किये गये संयम से उनकी सख्या की वृद्धि पर नियंत्रण न हुआ तो उनकी संख्या मे वृद्धि कहीं अधिक तीव्र और निरन्तर होती।

उनके तर्क के दूसरे भाग का सम्बन्ध श्रम की माँग से है। पहले की भाँति यह भी तथ्यो पर किन्तु भिन्न प्रकार के तथ्यों पर आधारित है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि उनकी पुस्तक के लिखने के समय तक बहुत घनी जनसख्या हो जाने के बाद कोई भी देश रोम अथवा वेनिस (Venice) जैसे शहर की भाँति जीवन की आवश्यक वस्तुओं की प्रचुर मात्रा प्राप्त नही कर सका। मनुष्य के श्रम के फलस्वरूप प्रकृति से जो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं उनसे जनसंख्या की प्रभावोत्पादक माँग निर्धारित होती है: और उन्होंने यह बतलाया कि इस समय तक जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप इसके घनी हो जाने के कारण माँग में आनुपातिक वृद्धि नही हुई।[2]

---

1 विशेपकर गाडविन ने अपनी Inquiry concerning Political Justice (1792) में ऐसा विचार व्यक्त किया है। माल्थस द्वारा इस लेख (भाग III, अध्याय II) की की गयी आलोचना की प्लेटो के Repblic पर अरस्तु द्वारा दी गयी समालोचना से तुलना करनी रोचक सिद्ध होगी (विशेपकर Politics अध्याय II, अनुभाग देखिए।

2 किन्तु उन्होंने जिस स्वच्छंदता से अपने विचार व्यक्त किये उनके आलोचक उसे बहुत ही कम समझते हैं। वे इस प्रकार के लेखांशों को भूल गये हैं:—"प्राचीन काल में समाज की अवस्था का आधुनिक सामाजिक व्यवस्था से तुलना करते समय वास्तविक कारण को पूर्णरूप से जानकारी न होने के कारण यद्यपि उसमें कुछ कठिनाई होगी, तथापि में निश्चित रूप से कह सकता हूं कि जनसंख्या के सिद्धान्त से उत्पन्न होने वाली बुराइयां बढ़ने की अपेक्षा घट हो गयी हैं। यदि हम यह आशा भी करें कि इस

तीसरा। अपने तीसरे तर्क में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो भूतकाल में हुआ सम्भवतः वही भविष्य मे भी होगा। और यदि जनसख्या पर ऐच्छिक संयम द्वारा नियंत्रण न किया गया तो उसकी वृद्धि निर्धनता अथवा अन्य किसी कष्टदायक कारण से रुक जायेगी। अतः उन्होंने यह आग्रह किया कि लोग संयम का पालन करे तथा नैतिक पवित्रता का जीवन बिताएँ और बाल-विवाह न करें।[1]

प्रकार की अज्ञानता का धीरे-धीरे अन्त हो जायेगा तो इस प्रकार की आशा करना तर्कहीन न होगा कि ये बुराइयाँ और भी अधिक कम हो जायेंगी। कुल जनसंख्या में निश्चय ही जो वृद्धि होगी उसकी प्रवृत्ति तो प्रत्यक्ष रूप में इस प्रत्याशा को कम करने की होगी किन्तु ऐसा बहुत कम हो पायेगा, क्योंकि प्रत्येक चीज जनसंख्या तथा भोजन के सापेक्षिक अनुपातों पर न कि कुल जनसंख्या पर निर्भर होती है। इस कृति के प्रारम्भिक भाग से इस बात का पता लगता है कि जिन देशों की जनसंख्या बहुत कम है उनमें जनसंख्या के सिद्धान्त के प्रभाव सबसे अधिक बुरे पड़े हैं" Essay भाग IV, अध्याय VII।

1 माल्थस ने 1798 ई० में अपने निबन्ध के प्रथम संस्करण में तथ्यों के विस्तृत वर्णन के बिना अपने तर्कों को प्रस्तुत किया। यद्यपि प्रारम्भ से ही उन्होंने यह स्वीकार किया कि सीधे तथ्यों के अध्ययन के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिए। जैसा कि उनके द्वारा प्राइम (Pryme) को (जो कि बाद में कैम्ब्रिज में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के पहले प्रोफेसर नियुक्त हुए) कहे गये इन शब्दों से स्पष्ट है:—"जब वह अपने पिता के साथ अन्य देशों के विषय में तर्कपूर्ण बात कर रहे थे तो उस समय उनके मस्तिष्क में इस सिद्धान्त के विषय में विचार उत्पन्न हुए।" (प्राइम द्वारा लिखित Recollections, पृष्ठ 66) अमेरिका के अनुभव से ज्ञात होता है कि यदि जनसंख्या पर नियंत्रण न किया जाय तो वह लगभग 25 वर्ष में दुगुनी हो जायेगी। उन्होंने यह तर्क दिया कि इंग्लैंड जैसे घने बसे हुए 70 लाख की आबादी वाले देश की जनसंख्या के दुगुने होने से जीवन निर्वाह के साधन यदि दुगुने न भी हों किन्तु फिर भी उनके इतने होने की कल्पना की जा सकती है: किन्तु श्रम को यदि दुगुना किया जाय तो उससे उत्पादन दुगुना नहीं होगा। "अतः हमें इसे निर्देश के रूप में मान लेना चाहिए, भले ही ऐसा करना सही नहीं है। और यह मान लेना चाहिए कि हर 25 वर्ष में (अर्थात् प्रत्येक बार जनसंख्या के दुगुने होने पर) इंग्लैंड की पैदावार दुगुनी हो जायेगी", अथवा दूसरे शब्दों में, समान्तर क्रम (Arithmetical progression) से बढ़ेगी। जैसा कि वैग्नर ने जनसंख्या के अध्ययन सम्बन्धी उत्कृष्ट भूमिका में कहा है (Grundlegung, संस्करण 3, पृष्ठ 400-453) उन्होंने अपने विचारों को दूसरों के द्वारा स्पष्ट रूप में समझे जाने की भावना के कारण अपने सिद्धान्त में बहुत बारीकी लाने की कोशिश की और उसका सम्पूर्ण रूप में प्रतिपादन किया।" वह कहने लगे कि उत्पादन में समान अन्तर से वृद्धि होती है, और अनेक लेखकों का यह विचार है कि माल्थस ने इस वाक्यांश पर ही जोर दिया; जब कि वास्तव में उन्होंने अपने विचारों को केवल संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने के लिए ऐसा किया और एक तर्कसंगत व्यक्ति उनसे अधिक

जनसंख्या की पूर्ति के सम्बन्ध मे जिससे इस अध्याय मे हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, उनके विचार पर्याप्त रूप से युक्तिसगत रहे है। घटना-क्रम से जनसख्या के सिद्धान्त मे जो परिवर्तन हुए वे मुख्यकर उनके तर्क के दूसरे और तीसरे भाग से सम्बन्धित हैं। हम देख चुके हैं कि गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आंग्ल अर्थशास्त्रियो ने बढती हुई जनसख्या की प्रवृत्ति के जीवन निर्वाह के साधनो पर बढ़ते हुए भार को वास्तविकता से अधिक आंका और इसमे माल्थस की कोई त्रुटि नही कि वे जमीन व समुद्र मे वाष्पचलित आवागमन मे होने वाली महान प्रगति का अनुमान न लगा सके जिसके फलस्वरूप इस पीढ़ी के अंग्रेज लोग पृथ्वी के सबसे अधिक उपजाऊ भूभाग की उपज को तुलनात्मक रूप मे कम लागत पर प्राप्त कर सकते है।

बाद में जो घटनाएँ घटी उनसे उनके तर्कों के दूसरे और तीसरे भाग की प्रामाणिकता पर बुरा प्रभाव पड़ा, किन्तु पहले भाग पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

किन्तु इन परिवर्तनो का पूर्वानुमान न लगाने के कारण उनके तर्क का दूसरा और तीसरा भाग कुछ पुराना पड गया है, यद्यपि अब भी एक बड़ी मात्रा मे सार रूप में ये भाग युक्तिसंगत है। यह सत्य है कि उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे जनसख्या की वृद्धि पर जो नियंत्रण लगाये गये उनमे सब कुछ विचारते हुए जब तक वृद्धि न कर दी जाय (उन स्थानो मे जो अभी तक पूर्ण रूप से सभ्य नही हुए है वहाँ इनका स्वरूप निश्चित रूप से बढ़ सकता है) तब तक पश्चिमी यूरोप मे आराम की जो आदते पड़ी

इतनी ही आशा कर सकता था। प्रचलित भाषा में उनका अभिप्राय यह था कि इंगलैंड में उत्पादन के दुगुने होते ही उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति, जो उनके तर्क में बराबर निहित है, तीव्रता से लागू होने लगेगी। श्रम के दुगुने होने पर उत्पादन दुगुना हो सकता है, किन्तु उसके (श्रम के) चौगुने होने पर उत्पादन तिगुना भी नहीं होगा, और आठ गुने श्रम से उत्पादन चार गुना भी नहीं होगा।

1803 ई० के दूसरे संस्करण में उन्होंने तथ्यों का इतनी व्यापक सतर्कता से वर्णन किया कि उन्हें भी ऐतिहासिक अर्थशास्त्र के निर्माताओं में गिना जा सकता है। उन्होंने अपने पुराने सिद्धान्तों को "अनेक बारीकियों" को अधिक सरल रूप दिया और उनका विवेचन किया, यद्यपि उन्होंने "समान्तर अनुपात" वाक्यांश का प्रयोग करना नहीं छोड़ा, जैसा कि इस कृति के पहले के संस्करणों से स्पष्ट है। विशेषकर मानवजाति के भविष्य के विषय में उन्होंने कम निराशाजनक दृष्टिकोण अपनाया और यह आशा की कि नैतिक संयम से जनसंख्या की वृद्धि पर रोकथाम हो सकेगी। "दुर्गुण तथा क्लेश" का, जिनका उन्होंने जनसंख्या के नियंत्रण के लिए पहले उल्लेख किया था, कुछ समय के लिए प्रभाव टल जायेगा। फ्रांसिस प्लेस (Francis Place) जो माल्थस की बहुत कुछ त्रुटियों को समझते थे, ने 1822 में उनकी ओर से एक स्पष्टीकरण लिखा जो उत्कृष्ट स्वर में और विवेकपूर्ण था। बोनर द्वारा लिखे गये Malthus and his Work कैनन के Production and Distribution 1776-1848, और निकोलसन की Political Economy भाग I, अध्याय XII में उनकी कृति का अच्छा वर्णन मिलता है।

हुई हैं, वे सम्पूर्ण संसार मे नही फैल सकती और तब तक ये आदतें सैकड़ों वर्षो तक नही बनी रह सकती । किन्तु इसके सम्बन्ध मे इसके बाद विचार किया जायेगा।[1]

प्राकृतिक वृद्धि।

§4. किसी देश की जनसख्या मे वृद्धि पहले तो प्राकृतिक वृद्धि, अर्थात् मृत्यु सख्या की अपेक्षा जन्म संख्या की अधिकता पर, तथा दूसरे प्रवसन पर निर्भर रहती है।

जन्म संख्या प्रमुखत: विवाह सम्बन्धी आदतों पर निर्भर रहती है जिनका प्रारम्भिक इतिहास शिक्षाप्रद रहा है । किन्तु यहाँ पर हम अपने अध्ययन को आधुनिक सभ्य देशों मे विवाह की दशाओं तक ही सीमित रखेगे ।

विवाह पर जलवायु तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण की कठिनाई का प्रभाव पड़ता है।

विवाह करने की आयु जलवायु के अनुसार बदलती रहती है । ऊष्ण जलवायु वाले देशो मे बच्चे कम आयु मे पैदा होने लगते है, और स्त्रियो की प्रजननशक्ति भी जल्दी ही रुक जाती है । शीत जलवायु मे यह देर से ही प्रारम्भ होती है, और देर मे ही समाप्त होती है ।[2]

किन्तु प्रत्येक दशा मे देश के लिए उपयुक्त आयु के पश्चात् विवाह जितने अधिक समय तक के लिए स्थगित किये जाये, जन्मदर मे उतनी ही कमी होती है । इस सम्बन्ध मे पत्नी की आयु पति की आयु की अपेक्षा वास्तव मे अधिक महत्वपूर्ण होती है ।[3]

---

1 संसार की वर्तमान जनसंख्या को 1 अरब 50 करोड़ मान कर और यह कल्पना कर कि इसमें होने वाली वर्तमान वृद्धि की दर (वर्ष में लगभग 8 व्यक्ति प्रति हजार, 1890 में ब्रिटिश संघ में सम्मुख पढ़े गये रेवनस्टीन (Ravenstein) के लेख को देखिए) आगे भी रहेगी, हम यह पायेंगे कि 200 वर्षों से कम की अवधि में यह 6 अरब हो जायेगी। अथवा पर्याप्त उपजाऊ भूमि पर 200 व्यक्ति प्रति वर्ग मील रहेंगे। (रेवनस्टीन की गणना के अनुसार 2 करोड़ 80 लाख वर्गमील भूमि उपजाऊ किस्म की और 1 करोड़ 40 लाख वर्गमील भूमि घास उगाने वाली है। बहुत लोगों के विचार से पहला अनुमान बहुत ऊँचा है: किन्तु इसके लिए छूट रखते हुए कम उपजाऊ भूमि जिसका कोई भी उपयोग हो, मिला कर कुल भूमि, जैसा कि पहले माना गया है, लगभग 3 करोड़ वर्गमील होगी। इस बीच में कृषि करने की प्रणाली में सम्भवतः बहुत सुधार हो जायेंगे, और यदि ऐसा हो तो जनसंख्या का जीवन निर्वाह के साधनों पर पड़ने वाला दबाव लगभग 200 वर्षों के लिए रुक जायेगा, इससे अधिक काल के लिए नहीं।

2 किसी पीढ़ी के काम का जनसंख्या की वृद्धि पर निश्चय ही प्रभाव पड़ता है। यदि एक स्थान पर एक पीढ़ी की अवधि 25 वर्ष और दूसरे स्थान पर 20 वर्ष हो तथा प्रत्येक स्थान पर जनसंख्या दो पीढ़ियों की अवधि में दुगुनी हो जाय तो पहले स्थान में यह वृद्धि 10 लाख गुनी और दूसरे स्थान पर 3 करोड़ गुनी हो जायेगी।

3 डा० ओगल (Dr. Cgle) ने Statistical Journal, खण्ड 53 में यह गणना की कि यदि इंग्लैंड में औरतों का विवाह की औसत आयु के 5 वर्ष बाद विवाह हो तो हर विवाह सम्बन्ध से बच्चों की संख्या जो अब 4.2 है घट कर 3.1 रह जायेगी। कोरोसी (Korosi) ने बुडापेस्ट की अपेक्षाकृत अधिक गर्म जलवायु

निश्चित जलवायु मे विवाह के औसत आयु मुख्यतः इस बात पर निर्भर होती है कि युवक लोग कितनी सुगमता के साथ आत्म निर्भर हो सकते हैं, तथा अपने कुटुम्ब के रहन-सहन का स्तर वैसा ही कर सकते है जैसा कि उनके मित्रो एव परिचित व्यक्तियों का है। इसलिए जीवन की विभिन्न अवस्थाओं मे विवाह की आयु भिन्न-भिन्न होती है।

मध्यम वर्ग के लोग देर में तथा अकुशल श्रमिक जल्दी विवाह करते हैं।

मध्यम वर्ग मे किसी व्यक्ति की 40 वर्ष अथवा 50 वर्ष की आयु मे ही आय सबसे अधिक होती है, और उसके बच्चों के पालन-पोषण पर किया गया व्यय भारी होता है और बहुत वर्षो तक चलता रहता है। एक शिल्पी यदि उन्नति के किसी उत्तरदायी स्थान पर पहुँच जाय तो 21 वर्ष की आयु मे ही सबसे अधिक कमाता है, इस आयु तक पहुँचने के पूर्व वह अधिक नही कमाता: उसके बच्चे लगभग 15 वर्ष की आयु तक (यदि वे किसी कारखाने मे नही भेजे गये हैं जहाँ वे बहुत कम आयु ही मे अपने निर्वाह व्यय को स्वयं वहन कर लेते है) उस पर पर्याप्त भार बने रहते है। अन्त मे श्रमिक को 18 वर्ष की आयु मे पूरी मजदूरी मिलने लगती है जब कि उसके बच्चे छोटी उम्र से ही अपने निर्वाह-व्यय को स्वय ही वहन करने लगते है। इसके फलस्वरूप विवाह के समय औसत आयु मध्यम वर्ग मे सबसे अधिक, शिल्पियो मे कम और अकुशल श्रमिको मे उससे भी कम होती है।[1]

के आधार पर यह मालूम किया कि औरतों की 18–20 वर्ष और पुरुषों की 24–26 वर्ष की आयु में बहुत अधिक बच्चे उत्पन्न होते हैं किन्तु वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विवाह को इस आयुकाल के बाद के लिए स्थगित करना मुख्यकर इसलिए उचित है कि 20 वर्ष से कम उम्र की औरतों के बच्चों को जीवन शक्ति अधिकांशतया कम होती है। Proceedings of Congress of Hygiene and Demography लंदन 1892 तथा Statistical Journal खंड 57 को देखिए।

2 इस प्रसंग में विवाह शब्द का काफी व्यापक अर्थ लगाना चाहिए जिससे इसके अन्तर्गत केवल कानूनी विवाह ही नहीं बल्कि वे सब अनौपचारिक सहवास भी शामिल हो सकें जो इतने स्थायी हों कि इनमें अनेक वर्षो तक वैवाहिक जीवन के ही उत्तरदायित्व निभाने पड़ें। अधिकांशतः इस प्रकार के विवाह कम आयु में ही तय हो जाते हैं और बहुधा कुछ वर्षों के बाद कानूनी विवाह में परिवर्तित हो जाते हैं। इस कारण व्यापक अर्थ में विवाह के समय की औसत आयु जिसका हम यहाँ अध्ययन कर रहे हैं, कानूनी ढंग से किये गये विवाह की आयु से कम होती है। सभी श्रमिक वर्गों के लिए इस आधार पर हमें सम्भवतः बहुत छूट रखनी होगी, किन्तु अन्य किसी वर्ग की अपेक्षा अकुशल श्रमिकों के सम्बन्ध में तो बहुत अधिक होगी। नीचे दिये गये सांख्यिकी का विश्लेषण करते समय ऊपर व्यक्त किये किये विचार तथा तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इंग्लैंड में संस्कार द्वारा एकत्रित किये गये अंक-पत्रों (returns) में श्रमिकों के वर्गीकरण में विशेष सावधानी न रखने के कारण औद्योगिक सांख्यिकी में त्रुटियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। रजिस्ट्रार जनरल की उन्नीसवीं वार्षिक रिपोर्ट में यह बतलाया गया है कि 1884–85 में कुछ निश्चित क्षेत्रों में विवाह सम्बन्धी विवरणों के निरीक्षण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं: प्रत्यक धन्धे के बाद दी गयी संख्या इसमें लगे कुवारों

जब अकुशल श्रमिक इतने निर्धन नही होते कि उनको वास्तविक आवश्यकताओ से वंचित रहना पडे और जब किसी बाह्य कारण से उन पर प्रतिबन्ध न हो तो उनकी संख्या मे वृद्धि करने की शक्ति इतनी अधिक होती है कि वे 30 वर्ष की अवधि मे दुगुने हो जाते है। अर्थात् वे 600 वर्षो मे 10 लाख गुने और 1200 वर्षो मे 100 अरब गुने अधिक हो जाते है और अत इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सम्भवतः उनकी किसी उल्लेखनीय समय तक कभी भी बिना नियंत्रण के वृद्धि नही हुई है। सभी देशो के इतिहास के अध्ययन से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि मध्य युगो मे समस्त यूरोप मे तथा इस समय तक भी इसके कुछ भागो मे अविवाहित श्रमिक सदा खेतो पर बने मकानो मे अथवा अपने माता-पिता के साथ सोया करते हैं, जब कि विवाहित दम्पत्ति को साधारणत अपने लिए अलग मकान की आवश्यकता होती है। जब कि एक गाँव मे उतने ही व्यक्ति रहते है जिनको वहाँ सुगमता से कार्य मिल सकता है तो मकानो की सख्या मे वृद्धि नही होती और युवको को अलग मकान प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा करनी पडती है।

स्थिर जन-संख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों में अल्पायु में होने वाले विवाह में बाधाएँ।

आजकल भी यूरोप के अनेक भागो मे कानून के समान माने जाने वाले रीति-रिवाज प्रत्येक परिवार के एक से अधिक लडको को विवाह करने से रोकते है। जिस लडके का विवाह किया जाता है वह प्राय सबसे बडा होता है, किन्तु कुछ स्थानो मे सबसे छोटा भी होता है यदि परिवार मे कोई अन्य लडका विवाह करे तो उसे गाँव छोडना पडता है। जब पुराने ससार मे पुरानी रीतियो को अपनाने वाले लोगो मे महान भौतिक उन्नति और अत्यधिक दरिद्रता का अभाव पाया जाय तो इसका कारण इस प्रकार की प्रथा ही है जिसमे इसकी भाँति अनेक दोष है तथा लोगो को अनेक *कठिनाइयो का सामना करना पडता है।*[1]

की विवाह के समय की औसत आयु है तथा इसके बाद कोष्ठकों में दी गयी संख्या उन अविवाहित स्त्रियों की है जिन्होंने इन व्यक्तियो के साथ विवाह किया:—खनिक 24·06 (22·46), बुनकर (textile hand) 24·38 (23·43), मोची, दर्जी 24·92 (24·31), दस्तकार 25·35 (23·70), श्रमिक 25·56 (23·66), वाणिज्य में काम करन वाले लिपिक 26·25 (24·43), दुकानदार व उनके कर्मचारी 26·67 (24·22), किसान तथा उनके लड़के 29.23 (26·91), व्यवसायी तथा स्वतन्त्र वर्ग के लोग 31·22 (26·40)।

डा० ओगल के लेख से, जिसका उल्लेख पहले किया गया है, यह स्पष्ट है कि इंग्लैंड के उन भागो में अधिकांशतया विवाह-दर सबसे अधिक है जहाँ उद्योगों में काम करने वाली 15 से 25 वर्ष की आयु वाली स्त्रियों की संख्या सबसे अधिक है। जैसा कि उन्होंने कहा है इसका कारण कुछ अंशों में यह है कि मनुष्य चाहते हैं कि उनकी स्त्रियां काम कर उनकी मौद्रिक आय को बढ़ाएँ तथा कुछ अंशो में यह है कि उन क्षेत्रों में विवाह योग्य स्त्रियों की संख्या अधिक है।

1. जब 1880 में लोग जर्वेनो घाटी में (जो बावारिया (Bavaria) के आल्प्स पर्वत में है) गये तो वहां पर उन्होंने इस प्रथा को पूर्ण रूप से प्रचलित पाया।

यह सत्य है कि इस प्रथा की गंभीरता मे प्रवसन के कारण कमी आ जाय, किन्तु मध्य युगों मे लोगों के स्वतंत्र आवागमन में उस समय के कठोर नियमों मे बाधा पहुँची थी। वस्तुतः स्वतंत्र शहरों ने बहुधा ग्रामीण क्षेत्र से आप्रवास (immigration) को प्रोत्साहित किया : किन्तु ग्राम समितियों के नियम कुछ सीमा तक अपने पुराने घरों को त्यागने का प्रयत्न करने वाले लोगों के प्रति उतने ही कठोर होते थे जितने सामन्त-शाही जागीरदारों द्वारा स्वयं लागू किये गये नियम।[1]

§5. इस संबध मे वेतन पर काम करने वाले खेतिहर मजदूर की स्थिति बहुत बदल गयी है। अब शहर उसके लिए एवं उसके बच्चो के लिए सदा खुले रहते है, और यदि वह अपने को नये जगत की रीतियो के अनुसार ढाल लेता है तो उसे उत्प्रवासियो के अन्य वर्गो की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है। किन्तु दूसरी ओर भूमि के मूल्य मे क्रमिक वृद्धि और उसकी बढती हुई कमी से कुछ ऐसे क्षेत्रो मे जनसख्या की वृद्धि नियंत्रित हो रही है जिनमे कृपक-सम्पत्ति की पद्धति पायी जाती है और जहां नवीन धन्धों को प्रारंभ करने के लिए अथवा उत्प्रवास के लिए अधिक क्षेत्र नही है, और माता-पिता यह अनुभव करते हैं कि उनके बच्चो का सामाजिक जीवन स्तर उनकी भूमि की मात्रा पर निर्भर होगा। वे कृत्रिम रूप से अपने विवाह को लगभग एक व्यावसायिक संविदा के रूप मे मानते है, और सदैव यह प्रयत्न करते है कि उनके लडके ऐसी लड़कियों से विवाह करे जो सदैव पैत्रिक सम्पत्ति की उत्तराधिकारी हो। फ्रान्सिस गाल्टन ने यह बताया है कि यद्यपि अंग्रेज सामन्तों के कुटुम्ब प्राय. बड़े होते है तथापि पैत्रिक संम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी युवती से, जिसकी सम्भवत. जनन-शक्ति क्षीण होती है, अपने ज्येष्ठ पुत्र का विवाह करने तथा कभी-कभी कनिष्ठ पुत्रो को विवाह न करने देने की उनकी आदत के फलस्वरूप अनेक सामन्त वर्ग समाप्त हो चुके है। फ्रान्स के कृपको मे पायी जाने वाली इसी प्रकार की आदतो तथा छोटे कुटुम्बो को पसन्द करने की प्रवृत्ति के कारण उनकी संख्या लगभग स्थिर रहती है।

भूमिधर कृषकों (peasant proprietors) में जन्मदर बहुत कम पायी जाती है।

दूसरी ओर नये देशों के कृषि प्रधान क्षेत्रों मे जो परिस्थितियाँ पायी जाती है उनसे बढ कर कोई भी परिस्थितियाँ नही है जिनसे जनसख्या मे तेजी से वृद्धि हो सके। इन नये देशों में भूमि प्रर्याप्त होती है, रेल एवं समुद्री जहाज खेती की उपज को यहाँ से अन्य स्थानों को ले जाते हैं, तथा बदले मे विकसित औजार तथा आराम एवं विला-

किन्तु अमेरिका के किसानों में जन्म-दर कम नहीं है।

यहाँ के लोग अपने उन जंगलों के मूल्य में जिनके सम्बन्ध में उन्होंने दूरदर्शी नीति अपनायी थी, हाल ही में वृद्धि होने के कारण बड़े-बड़े घरों में खुशहाली से रहते थे, और उनके छोटे भाई-बहन उनके पुराने घरों पर अथवा अन्य स्थानों में नौकरी करते थे। वे पड़ोस की घाटियों में काम करने वाले लोगों से, जो निर्धनता तथा कठिनाई का जीवन बिताते थे और यह सोचते थे कि जर्चेनो में भौतिक समृद्धि बहुत बड़े त्याग के फलस्वरूप प्राप्त हुई है, भिन्न जाति के थे।

1 उदाहरण के लिए रोजर्स (Rogers) की पुस्तक Six Centuries के पृष्ठ 106,7 देखिए।

सिता की अनेक वस्तुएँ लाते हैं। अमेरिका मे भूमिधर जिसे वहाँ "किसान" कहते हैं, अनुभव करता है कि बड़ा कुटुम्ब उसके लिए भारस्वरूप नही है अपितु सहायक के रूप मे है। वह तथा उसके कुटुम्बीजन स्वस्थ एवं परिश्रमी जीवन व्यतीत करते है। वहाँ जनसंख्या नियमित करने की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु उक्त वृद्धि मे तेजी लाती है, और प्राकृतिक वृद्धि मे उत्प्रवास से भी तेजी आती है। बावजूद इसके कि अमेरिका मे बडे शहरों में निवास करने वाले कुछ वर्गो के लोग, जैसा कि कहा जाता है, अनेक बच्चे होने के विरुद्ध हैं, वहाँ की जनसख्या मे पिछले सौ वर्षो मे सोलह गुनी वृद्धि हुई है।[1]

सामान्य निष्कर्ष।

संक्षेप में यह सिद्ध होता है कि अपने एव कुटुम्बियो के भविष्य के लिए कम व्यवस्था करने वाले एव सक्रिय जीवन-निर्वाह करने वाले लोगो की अपेक्षा सम्पन्न

---

1 स्थिर अवस्था में भूमिधर कृषकों की अत्यधिक बुद्धिमत्ता को माल्थस समझते थे। उनके द्वारा किये गये स्विटजरलैंड के वर्णन को देखिए (Essay, भाग II, अध्याय V)। एडमस्मिथ ने यह कहा था कि ऊँचे पहाड़ों पर रहने वाली स्त्रियों के बहुधा 20 बच्चे होते हैं, किन्तु उनमें से मुश्किल से 2 बच्चे युवावस्था तक पहुँचते हैं। (Wealth of Nations, भाग I, अध्याय VIII), और डबलडे (Doubleday) ने The True Law of Population में इस बात पर जोर दिया है कि आवश्यकता से उत्पादकता बढ़ती है। सडलर (Sadler) द्वारा लिखे गये Law of Population को भी देखिए। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) यह सम्भव समझते थे कि सभ्यता के विकास के फलस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि पर पूर्णरूप से नियंत्रण हो जायगा: किन्तु डारविन (Darwin) ने माल्थस के इस कथन को कि सभ्य जातियों की अपेक्षा जंगली जातियों में प्रजनन शक्ति कम होती है, पशु तथा वनस्पति जगत पर भी अधिकांशतया लागू किया।

चार्ल्स बूथ (Charles Booth) ने (Statistical Journal, 1893), लंदन को 27 क्षेत्रों में विभाजित किया है (मुख्य रूप में ये रजिस्ट्रेशन क्षेत्र थे), और उनको निर्धनता, अधिक घनी आबादी, ऊँची जन्मदर तथा ऊँची मृत्युदर के क्रम में रखा। उन्हें यह पता लगा कि अधिकांशतया ये चारो क्रम सभी क्षेत्रों में समान हैं। बहुत समृद्धशाली तथा बहुत निर्धन, दोनों प्रकार के क्षेत्रों में मृत्युदर की अपेक्षा जन्मदर सबसे अधिक पाया गया।

इंग्लैंड और वेल्स में शहरों तथा देहात, दोनों में जन्म-दर समान मात्रा में नाम-मात्र कम हो रही है। किन्तु नवयुवकों के गाँवों से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर निरन्तर जाने के कारण वहाँ विवाहित नवयुवतियों की संख्या कम हो गयी है। जब इस बात को ध्यान में रखा जाय तो हमें यह पता लगता है कि शहरों की अपेक्षा गाँवों में जनन करने योग्य स्त्रियों के अधिक बच्चे उत्पन्न होते है। यह बात में 1907 रजिस्ट्रार जनरल द्वारा प्रकाशित निम्न सारणी से स्पष्ट है।

लोगों में प्रायः जन्मदर कम होती है : और जीवन की विलासितापूर्ण आदतों के कारण प्रजनन-शक्ति (fecundity) में ह्रास हो जाता है। सम्भवत. इसमे अत्यधिक मानसिक श्रम से भी ह्रास होता है, अर्थात् यदि माता-पिता की प्राकृतिक शक्ति ज्ञात हो

शहर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में औसत वार्षिक जन्मदर

शहर

1901 की जनगणना के दिन कुल 9,742,404 जनसंख्या वाले 20 बड़े शहर

अवधि	कुल जनसंख्या के आधार पर गणना करने से		15 से 45 वर्ष की आयु वाली स्त्रियों की संख्या के आधार पर गणना करने से	
	दर प्रति 1000	1870-72 की दर को 100 मानकर जन्मदर की तुलना करने पर	दर प्रति 1000	1870-72 की दर को 100 मान कर जन्मदर की तुलना करने पर
1870–72	36·7	100·0	143·1	100·0
1880–82	35·7	97·3	140 6	98·3
1890–92	32·0	87·2	124·6	87·1
1900–1902	29·8	81·2	111·4	77·8

गाँव

(1901 की जनगणना के दिन कुल 1,330,309 जनसंख्या वाले 112 पूर्णरूप से ग्रामीण रजिस्ट्रेशन क्षेत्र)

1870–72	31·6	100·0	158·9	100·0
1880–82	30·3	95·9	153·5	96·6
1890–92	27 8	88·0	135·6	85·3
1900–1902	26·0	82·3	120·7	76 0

फ्रान्स में जनसंख्या के परिवर्तनों का बड़ी होशियारी के साथ अध्ययन किया गया है: तथा फ्रान्स के अतिरिक्त अन्य देशों के विषय में लेवास्यो (Levasseur) द्वारा लिखित La Population Francaise नामक महान कृति में फ्रान्स के अतिरिक्त अन्य देशों के सम्बन्ध में सब प्रकार का विवरण मिलता है। मॉटेस्क्यू ने सम्भवतः कुटुम्ब के बच्चों की संख्या में कमी होने के कारण उस समय फ्रान्स में प्रचलित पिता की मृत्यु के पश्चात् बड़े पुत्र के उत्तराधिकारी होने के नियम को दुहराया। ले प्ले

तो मानसिक थकान के कारण उनके कुटम्ब के बड़े होने की प्रत्याशा में कमी आ जाती है। वस्तुतः उस वर्ग के सभी लोगों मे जो उच्चकोटि का मानसिक कार्य करते हैं, शारीरिक एव तांत्रिक शक्ति औसत से अधिक होती है, और गाल्टन ने सिद्ध किया है कि अधिक मानसिक कार्य करने वाले लोगो के सारे वर्ग की प्रजनन-शक्ति कम नही है। किन्तु वे सामान्यतः देर में विवाह करते हैं।

इंग्लैंड की जनसंख्या।

§6. संयुक्त आंग्ल राज्य (United Kingdom) की अपेक्षा इंग्लैंड की जनसख्या की वृद्धि का इतिहास अधिक स्पष्ट है और इसमे होने वाले मुख्य परिवर्तन हमारे लिए कुछ रोचक सिद्ध होगे।

मध्य युग।

मध्य युगो मे जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए इग्लैंड मे भी वही सयम अपनाये गये जो कि अन्य स्थानों मे अपनाये गये। अन्य स्थानों की भाँति इग्लैंड मे जिन लोगो का विवाह नही होता था उन्हे धार्मिक सघो मे आश्रय मिल जाता था और धर्मानुकूल अविवाहित जीवन को, जिससे निस्सन्देह कुछ सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि को स्वतत्र रूप से नियन्त्रित किया गया था, मुख्यकर वह उपाय समझना चाहिए जिससे जनसख्या की वृद्धि की अपेक्षा उस पर नियत्रण रखने वाली व्यापक प्राकृतिक शक्तियो को स्पष्ट किया जाता है। जीवन की गन्दी आदतो से, जो दक्षिणी यूरोप की अपेक्षा

(le Play) ने पैतृक सम्पत्ति के अनिवार्य विभाजन को दोषी बताया। लेवस्यो ने इस विरोध की ओर ध्यान आकर्षित किया, और कहा कि नागरिक नियमो के फलस्वरूप जनसंख्या पर जिन प्रभावों के पड़ने की माल्थस ने आशा की थी वे ले प्ले की जाँच की अपेक्षा मौंटेस्क्यू की जाँच से मिलते-जुलते थे। किन्तु वस्तुतः फ्रान्स के विभिन्न भागो में जन्मदर में बहुत अन्तर है। अधिकांशतया जहाँ पर लोगो का भूमि पर स्वामित्व है वहाँ जन्मदर अधिक तथा जहाँ नहीं है वहाँ कम है। मृत्यु के बाद छोड़ी हुई सम्पत्ति (Valeurs Successorales par tete d' habitant) के बढ़ते हुए क्रम के हिसाब से यदि फ्रान्स के विभिन्न विभागो को वर्गों में क्रमानुसार रखा जाय, तो उनसे सम्बद्ध जन्मदर में लगभग समानरूप से कमी होती जायेगी। फ्रांस के ऐसे दस विभागो में जहाँ मृत्यु के समय छोड़ी गयी सम्पत्ति 48 से 57 फ्रैंक के बीच है वहाँ 15 और 50 वर्ष के बीच जन्मदर प्रति सौ विवाहित औरतो पर 23 है, और सीन (Seine) में जहाँ छोड़ी गयी सम्पत्ति 412 फ्रैंक है जन्मदर 13·2 है तथा पेरिस के उन भागो में जहाँ धनी लोग रहते हैं दो बच्चो से अधिक वाले कुटुम्बों की संख्या उन भागों की अपेक्षा अधिक होगी जहाँ निर्धन लोग रहते है। आर्थिक दशाओ और जन्मदर के सम्बन्ध में लेवस्यो ने जो सतर्क विश्लेषण किया है वह बड़ा रोचक है। उनका यह सामान्य निष्कर्ष था कि इन दोनो का सम्बन्ध प्रत्यक्ष नहीं किन्तु अप्रत्यक्ष है, क्योंकि जीवन के ढंग तथा आदतों पर उनका पारस्परिक प्रभाव पड़ता है। उनका यह विचार था कि चाहे राजनीतिक और सैनिक दृष्टिकोण से पड़ोस के अन्य देशो को अपेक्षा फ्रान्स के लोगों की संख्या में होने वाली कमी खेदपूर्ण है, किन्तु इस बुराई में अच्छाई भी शामिल है जो भौतिक सुख और यहाँ तक कि सामाजिक प्रगति को भी प्रभावित करती है।

इंग्लैंड में अधिक थीं, कम या अधिक पैमाने पर सक्रामक बीमारियाँ फैली। फसलों के अच्छे न होने से तथा संचार की व्यवस्था की कठिनाइयों के फलस्वरूप अकाल पड़े, भले ही यह बुराई इंग्लैंड में अन्य स्थानों की अपेक्षा कम थी।

अन्य स्थानों की भाँति ग्रामीण जीवन मे लोगो की आदते कठोर थी। नव युवकों का घर बसा कर रहना उस समय तक कठिन था जब तक अन्य किसी विवाहित दम्पत्ति की मृत्यु के कारण स्थान खाली न हो जाय, क्योंकि बस्ती छोड़ कर अन्य बस्ती मे जाकर बसने की बात सोचना साधारण परिस्थितियो मे कोई भी खेतिहर मजदूर नही सोचता था। अतः ताऊन अथवा युद्ध अथवा दुर्भिक्ष के कारण जब जनसख्या कम हो जाती थी तो विवाह करने वाले उन व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक हो जाती थी जो इस प्रकार खाली हुए घरो मे रहना चाहते थे। नव विवाहित औसत दम्पत्ति की अपेक्षा अधिक जवान तथा तन्दुरस्त होने के कारण इनके परिवार बड़े थे।[1]

उन स्थानों मे भी खेतिहर मजदूर गये जहाँ पर पास के स्थानों की अपेक्षा महामारी, दुर्भिक्ष, तथा युद्ध का प्रकोप अधिक था। इसके अतिरिक्त दस्तकार, विशेषकर वे जो इमारतो को बनाने व धातु तथा लकड़ी के काम मे लगे हुए थे, अन्य स्थानों को बहुधा जाते रहते थे, यद्यपि इसमे सन्देह नही कि ये लोग युवावस्था मे ही बाहर जाते थे, और इस बाहर रहने की अवधि की समाप्ति पर अपने जन्म-स्थानो मे बस जाते थे। इसके अतिरिक्त, अपनी भूमि को हस्तान्तरित न करने वाले उच्च वर्ग के लोग, मुख्यकर बड़े-बड़े सामन्त जिनकी जागीरें देश के विभिन्न भागो मे फैली हुई थी, भी एक स्थान से दूसरे स्थानो को जाते रहते थे। समय के बीतने पर व्यापारिक सघो मे अकेले रहने की स्वार्थपरायणता के बावजूद भी इग्लैंड मे अन्य देशो की भाँति शहरो मे उन लोगो को आश्रय मिला जिन्हे अपने निवास स्थान पर काम करने तथा विवाह करने की सुविधा नही मिली। इस प्रकार मध्ययुग की आर्थिक व्यवस्था मे कुछ लोचकता आ गयी तथा ज्ञान की वृद्धि, कानून तथा व्यवस्था की स्थापना तथा समुद्री व्यापार के फलस्वरूप धीरे-धीरे श्रम के लिए बढ़ती हुई माँग से बहुत लोगो को रोजगार मिल गया।[2]

---

1 इस प्रकार यह बताया जाता है कि सन् 1349 ई० की महामारी के बाद बहुत से विवाहों से अधिक बच्चे उत्पन्न हुए। (रोजर्स Histroy of Agriculture and Prices, खंड I, पृष्ठ 301)।

2 अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्व इंग्लैंड की जनसंख्या के घनत्व के बारे में कुछ निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता, किन्तु स्टेफेन (Steffen) की पुस्तक (Geschichte der englischen Lohn-arbeiter, I पृष्ठ 463) से उद्धृत नीचे दिये गये अनुमान अब तक के अनुमानों में सबसे अच्छे हैं। डोम्सडे बुक (Domesday Book) यह सलाह देते हैं कि सन् 1086 ई० में इंग्लैंड की जनसंख्या 20 और 25 लाख के बीच थी। 1348 ई० की महामारी के कुछ ही पहले यह 35 तथा 45 लाख के बीच रही होगी, और इसके तुरन्त बाद में यह 25 लाख रह गयी। इसमें शीघ्र ही पुनः वृद्धि हुई। किन्तु सन् 1400 और 1500 के बीच यह वृद्धि मन्द रही। वस्तुतः इसके बाद के 100 वर्षों में इसमें तेजी से वृद्धि हुई, और सन् 1700

बन्दोबस्त के नियम।

सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे केन्द्रीय सरकार ने बन्दोबस्त के नियम बनाये और जिनके अनुसार किसी बस्ती मे चालीस दिनों से रहने वाले व्यक्ति का भार उसी बस्ती को वहन करना पड़ेगा यद्यपि इन चालीस दिनों के भीतर उस व्यक्ति को अपने घर भेजा जा सकता था। केन्द्रीय सरकार द्वारा पास किये गये इन नियमो के कारण श्रम की माँग और पूर्ति के समायोजन मे बाधाएँ उत्पन्न हुई।[1] भूमिधर तथा किसान अपनी बस्ती मे बन्दोबस्त सम्बन्धी अधिकार से दूसरों को वचित रखने के लिए इतने उत्सुक थे कि उन्होंने घरो के बनने में अनेक बाधाएँ डाली और यहाँ तक कि बने हुए मकानो को गिरा दिया। इसके परिणामस्वरूप सन् 1760 ई० मे समाप्त होने वाले सौ वर्षो मे इग्लैड की खेतिहर जनसख्या स्थिर रही,

अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जनसंख्या में

में यह 55 लाख तक पहुँच गयी। यदि हम हैरीसन (Harrison) के द्वारा लगाये गये अनुमान को स्वीकार करें तो (Description of England, भाग II, अध्याय XVI) 1574 में कार्य करने में समर्थ व्यक्तियो की संख्या 1,172, 674 थी।

महामारी ही केवल इंग्लैंड की सबसे बड़ी विपत्ति थी। यूरोप के अन्य देशों की भाँति वहाँ तीस सालों की लड़ाई, जिससे जर्मनी की आधे से अधिक जनसंख्या मृत्यु के घाट उतर गयी और जिसकी क्षतिपूर्ति करने में एक शताब्दी से भी अधिक समय लगा, की भाँति तहस-नहस करने वाली कोई लड़ाइयाँ नहीं हुईं। स्कोनबर्ग (Schoenberg) के Handbuch में रुमेलिन (Rumelin) के Bevolkerungslehre पर लिखे गये शिक्षाप्रद लेख को देखिए।

1 इस पर एडमस्मिथ का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। (Wealth of Nations, भाग I, अध्याय X, खंड II और भाग IV, अध्याय II देखिए)। इस अधिनियम के अनुसार (14 Charles II, कैंटो (Canto) 12, ईसा बाद सन् 1662) "कानून में कुछ खराबी होने के कारण गरीब लोगों को एक बस्ती से दूसरी बस्ती को जाने से नहीं रोका जा सकता, और इस कारण वे अवश्य ही उन बस्तियों में बसने की कोशिश करते है जहाँ वस्तुओं का सबसे अधिक भंडार उपलब्ध हो, मकान बनाने के लिए बेकार पड़ी हुई या जनसाधारण की भूमि पर्याप्त मात्रा में सुलभ हो और जलाने तथा नष्ट करने के लिए अधिकांश जंगल हों, इत्यादि", और इसलिए यह आदेश दिया गया कि ऊपर बताये गये दस पौं० से कम वार्षिक मूल्य वाले भाग में बसने के लिए आया हुआ या आये हुए व्यक्तियों के विरुद्ध उनके आने के समय से लेकर चालीस दिन के भीतर यदि शिकायत की जाय तो शान्ति स्थापित करने वाले किन्हीं दो मजिस्ट्रेटों को इस प्रकार के व्यक्ति या व्यक्तियों को वहाँ से हटाकर उस बस्ती में पहुँचाने का न्यायसंगत अधिकार होगा जहाँ वह या वे पहले वैधानिक रीति से बसाये गये थे। इसकी कठोरता को कम करने के आशय से एडमस्मिथ के समय से पहले अनेक अधिनियम पास किये गये, किन्तु उनका कोई भी प्रभाव न पड़ा। 1795 में यह आदेश दिया गया कि जब तक किसी को वास्तव में दोषी न ठहराया जाय तब तक किसी को भी नहीं हटाया जाना चाहिए।

जबकि बढ़ी हुई जनसंख्या को रोजगार देने के लिए उद्योगो मे पर्याप्त वृद्धि नही हुई थी। जनसंख्या की वृद्धि की मन्द गति का यह आँशिक कारण था, तथा इसके फलस्वरूप रहन-सहन के स्तर में आँशिक रूप से वृद्धि हुई। इसकी यह विशेषता थी कि लोगों ने घटिये खाद्यान्न के स्थान पर गेहूँ का साधारणतया अधिक उपयोग करना प्रारम्भ किया।[1]

कम वृद्धि हुई और रहन-सहन का स्तर बढ़ गया।

सन् 1760 ई० से आगे जिन लोगो को घर पर काम न मिल सका उन्हे नये औद्योगिक अथवा खनिक क्षेत्रों मे, जहाँ श्रमिको के लिए बढती हुई माँग के कारण स्थानीय अधिकारी बन्दोबस्त कानून के प्रतिबन्ध सम्बन्धी अंशो को लागू न कर सके, रोजगार ढूंढने में कोई विशेष कठिनाई नही हुई। इन क्षेत्रों में युवक लोग स्वच्छन्दता-पूर्वक रहने लगे और यहाँ जन्मदर बहुत अधिक बढ गयी। इसके साथ-साथ मृत्युदर भी बढ़ी। इस सबके फलस्वरूप जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई। शताब्दी के अन्त में जब माल्थस ने इस विषय मे लिखा तो उस समय 'निर्धन कानून' का विवाह की आयु पर पुनः प्रभाव पड़ा। किन्तु इस बार इसके प्रभाव के फलस्वरूप विवाह की आयु कम हो गयी। अनेक दुर्भिक्षों तथा फ्रान्स के युद्ध के कारण श्रमिक वर्ग को अनेक मुसीबतें उठानी पड़ी जिनके फलस्वरूप उन्हे कुछ सहायता देना आवश्यक हो गया। थल तथा जल सेनाओं मे भर्ती बढाने के लिए उदार हृदय वाले लोगों ने बडे कुटुम्ब वाले लोगो को बडी मात्रा मे सहायता दी जिसके फलस्वरूप बिना काम किये ही ऐसे लोगों को वे सुविधाएँ प्राप्त हो सकीं जो उन्हे अधिक काम करने पर या अपने कुटुम्ब के छोटे होने पर ही सुलभ हो सकती थी। जिन लोगों को ये सुविधाएँ प्राप्त हुई वे निश्चय ही सबसे अधिक आलसी तथा नीच व्यक्ति थे जिनमें न तो काम करने की भावना थी और न स्वाभिमान ही था। यद्यपि औद्योगिक नगरो मे मृत्युदर, विशेष कर बच्चो में बहुत अधिक थी, किन्तु इस पर भी जनसख्या मे तेजी से वृद्धि हुई। उनमे 'नये निर्धन कानून' के पास होने के समय तक गुणो की दृष्टि से बहुत कम प्रगति हुई। जैसा कि अगले अध्याय मे स्पष्ट की गया है मदिरानिषेध, चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान तथा सार्वजनिक स्वच्छता तथा उसके लिए किये गये उचित प्रबन्ध द्वारा उस समय से नगरों की जनसंख्या मे वृद्धि के कारण मृत्युदर मे वृद्धि होने की प्रवृत्ति रुक गयी। उत्प्रवास बढ गया, विवाह की आयु मे थोडी वृद्धि हुई और पहले की अपेक्षा विवाहित लोगों का अनुपात कुछ कम हो गया।[2] किन्तु, इसके विपरीत, बच्चो के पैदा होने की सख्या का विवाह से अनुपात अधिक हो गया और जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होती गयी।[3] अब हम हाल में हुए परिवर्तन पर अधिक ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

उत्तरार्द्ध में होने वाले परिवर्तन।

---

1 इस विषय पर एडन (Eden) ने कुछ रोचक विचार व्यक्त किये हैं। History of the Poor, पृष्ठ 560-4

2 किन्तु आँकड़ो से जो वृद्धि दिखायी देती है उसका आंशिक कारण जन्म के आँकड़ों के रजिस्ट्रेशन में सुधार होना है। (फार, Vital Statistics पृष्ठ 97)।

3 नीचे दी गयी तालिकाएँ अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इंग्लैंड और वेल्स की जनसंख्या की वृद्धि को प्रदर्शित करती हैं। सन् 1801 ई० से पहले के आंकड़े जन्म और मृत्यु के रजिस्टरों तथा हर व्यक्ति एवं कुटुम्ब पर लगने वाले कर के अंक-

इस शताब्दी के पूर्व भाग में फसल के अच्छे या खराब होने के साथ

§7. इस शताब्दी के प्रारम्भ मे जब मजदूरी की दर कम थी और गेहूँ महँगा था, श्रमिक वर्गों के लोग अधिकांशतया अपनी आय का आधे से अधिक भाग डबल रोटी खरीदने मे खर्च करते थे और इसके कारण गेहूँ के दाम बढ़ने से उनमे होने वाले विवाहो की संख्या कम हो गयी, अर्थात् जनता मे पूर्व घोषित विवाहों की संख्या में बहुत कमी हुई। किन्तु इससे अनेक सम्पन्न परिवारो की आय मे वृद्धि हुई अतः अनुज्ञा-पत्र (licence) द्वारा होने वाले विवाहो की सख्या मे बहुधा वृद्धि हुई।[1] इस प्रकार

पत्रों के आधार पर आंके गये हैं। सन् 1801 ई० से ये जनगणना के अंकपत्रों से लिये गये है। इससे यह ज्ञात होता है कि सन् 1760 ई० के बाद के 20 वर्षों में जनसंख्या में उतनी ही वृद्धि हुई है जितनी इसके पहले के 60 वर्षों में हुई थी। सन् 1790 ई० तथा सन् 1801 ई० के बीच बड़ी-बड़ी लड़ाइयों और अनाज की ऊँची कीमतों के प्रभाव के कारण जनसंख्या में वृद्धि मन्द रही। अपेक्षाकृत अधिक भार के बावजूद भी बिना किसी भेदभाव के निर्धनों को मिलने वाले भत्तों का यह प्रभाव पड़ा कि बाद के 10 वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि में तेजी होने लगी और सन् 1821 ई० में समाप्त होने वाली दशाब्दी में जब इस पर भार हट गया था तब जनसंख्या में पहले से भी अधिक वृद्धि हुई।

वर्ष	जनसंख्या (1000) में	प्रतिशत वृद्धि	वर्ष	जनसंख्या (1000) में	प्रतिशत वृद्धि
1700	4575	—	8801	8892	2 5
1710	5240	4 9*	1811	10164	14 3
1720	5565	6 2	1821	12000	18 1
1730	5796	4 1	1831	13897	15·8
1740	6064	4 6	1841	15909	14·5
1750	6467	6 6	1851	17928	12 7
1760	6736	4 1	1861	20066	11 9
1770	7428	10 3	1871	22712	13 2
1780	7953	7 1	1881	25974	14 4
1790	8675	9 1	1891	29002	11·7
			1901	32527	11·7

* जनसंख्या घट गयी, किन्तु पहले के ये आँकड़े विश्वसनीय नहीं हैं।

हाल ही में उत्प्रवास (emigration) में होने वाली अत्यधिक वृद्धि के कारण अन्त की तीन दशाब्दियों के अंकों में सुधार करना महत्वपूर्ण है जिससे इनसे "प्राकृतिक वृद्धि" अर्थात् मृत्यु की अपेक्षा जन्म की अधिकता को प्रदर्शित किया जा सके। सन् 1871-81 ई० तथा सन् 1881-91 ई० की दो दशाब्दियों में संयुक्त राज्य (U.K.) से वास्तविक उत्प्रवास क्रमशः 14,80,000 और 17,47,000 हुआ।

1 फार द्वारा रजिस्ट्रार जनरल की हैसियत से लिखी गयी सत्रहवीं वार्षिक रिपोर्ट अथवा Vital Statistics में (पृष्ठ 72–5 पर) इसकी समीक्षा को देखिए।

के विवाहों की संख्या कुल विवाहों का केवल थोड़ा ही अनुपात होने के कारण वस्तुतः विवाह-दर कम हो गयी।[1] किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, गेहूँ सस्ता हुआ और मजदूरी में वृद्धि हुई, अब तक श्रमिक वर्ग के लोग डबल रोटी पर औसत रूप मे अपनी आय के चौथाई अंश से कम ही खर्च करते थे और इसके फलस्वरूप वाणिज्य के विकास में होने वाले परिवर्तनों का विवाह-दर पर बहुत अधिक प्रभाव पडना स्वाभाविक था।[2]

विवाह की दर में परिवर्तन हुए। बाद में वाणिज्य में होने वाले परिवर्तनों का अधिक प्रभाव पड़ा।

सन् 1873 ई० से यद्यपि इंग्लैंड के निवासियों की औसत आय मे वृद्धि होती गयी किन्तु यह वृद्धि पिछले वर्षों की अपेक्षा कम थी। इस काल मे वस्तुओं के दाम निरन्तर घटते गये, अतः समाज के अनेक वर्गों की मौद्रिक आय मे बराबर कमी होती गयी। अब लोग विवाह करने के लिए मौद्रिक आय की क्रयशक्ति की विस्तृत गणना करने की

1 उदाहरणार्थ गेहूँ की कीमत को शि० में और इंग्लैंड तथा वेल्स में विवाहों की संख्या को हजारों में व्यक्त करते हुए सन् 1801 ई० में गेहूँ की कीमत 119 और विवाहों की संख्या 67 और सन् 1803 में गेहूँ की कीमत 59 और विवाहों की संख्या 94 थी। सन् 1805 ई० में ये संख्याएं 90 और 80, सन् 1807 में 75 और 84 सन् 1812 ई० में 126 और 82, सन् 1815 ई० में 66 और 100, सन् 1817 ई० में 97 और 88 और सन् 1822 ई० में 45 और 99 थीं।

2 सन् 1820 से गेहूँ की औसत कीमत कदाचित ही 60 शि० से अधिक हुई होगी, और 75 शि० से अधिक तो कभी भी नहीं हुई। और वाणिज्य में होने वाली क्रमशः स्फीतियाँ जो सन् 1826, 1836-9, 1848, 1856, 1866 और 1873 ई० में चरम सीमा पर पहुँच गयी और उनके बाद तेजी से कम हुई उनसे विवाह-दर में अनाज की कीमत में होने वाले परिवर्तनों के बराबर प्रभाव पड़ा। जब इन दो कारणों का साथ-साथ प्रभाव पड़ता है तो इससे अनूठे परिणाम निकलते हैं। इस प्रकार सन् 1829 और सन् 1834 के बीच पुनः प्रगति हुई और इसके साथ-साथ क्रमबद्ध रूप में गेहूँ की कीमत में कमी हुई, और विवाहों की संख्या 104 हजार से बढ़ कर 121 हजार हो गयी। सन् 1842 तथा 1845 ई० के बीच जब पहले के वर्षों की अपेक्षा गेहूँ की कीमत थोड़ी-सी कम थी, और जब देश का व्यापार पुनः प्रगति कर रहा था तब विवाह की दर में तेजी से वृद्धि हुई। और फिर इसी प्रकार की परिस्थितियों में सन् 1847 और 1853 ई० के बीच तथा सन् 1862 और सन् 1865 ई० के बीच यह तेजी से बढ़ी।

दिसम्बर, 1885 ई० के Statistical Journal में सर रासन (Rawson) ने स्वीडन के सन् 1749 से सन् 1883 ई० तक की विवाह दरों को वहाँ की फसलों के साथ तुलना की है। फसल के पूरे प्रभाव का मान, उस समय तक नहीं होता जब तक विवाहों का वर्ष समाप्त नहीं हो जाता। अनाज के भंडारों के होने के कारण फसलों की असमानताएँ कुछ सीमा तक दूर हो जाती हैं और इसलिए किसी एक फसल के आँकड़े विवाह-दर के अधिक अनुरूप नहीं होते। किन्तु जब अनेक अच्छी और बुरी फसलें साथ-साथ होती हैं तब विवाह-दर को बढ़ाने या घटाने पर पड़ने वाला प्रभाव स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है।

अपेक्षा इस बात की गणना करते हैं कि उनकी मौद्रिक आय कितनी होगी और इसलिए सम्भवतः आंग्ल इतिहास के अन्य किसी समय की अपेक्षा श्रमिक वर्ग के रहन सहन का स्तर इस समय अधिक तेजी से बढ रहा है: मुद्रा के रूप मे उनका घरेलू खर्च प्रायः समान रहा है किन्तु वस्तुओ के रूप मे उसमे तीव्र वृद्धि हुई है। इस काल में गेहूँ के भी बहुत दाम गिर गये हैं, और गेहूँ के दामो मे पर्याप्त कमी होने के साथ-साथ विवाह-दर मे भी कमी हुई है। अब विवाह-दर आँकते समय दो व्यक्तियो को ध्यान में रखा जाता है क्योंकि प्रत्येक विवाह मे दो व्यक्ति होते हैं। इंग्लैंड मे विवाह की दर सन् 1873 ई० में 17·6 प्रति हजार थी जो घट कर सन् 1886 ई० में 14·2 रह गयी। सन् 1899 ई० मे यह 16·5 हो गयी तथा सन् 1907 ई० मे 15·8 और सन् 1908 ई० मे केवल 14·9 रह गयी।[1]

स्काटलैंड

स्काटलैंड एवं आयरलैंड की जनसख्या के इतिहास से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। स्काटलैंड के निचले भागों मे शिक्षा के उच्चस्तर, खनिज संसाधनो (resources) *के विकास तथा पडोस मे इंग्लैंड के अपेक्षाकृत धनी लोगो से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के* कारण वहाँ की बढती हुई जनसख्या की औसत आय मे अधिक वृद्धि हुई। इसके

आयरलैंड

विपरीत आयरलैंड मे सन् 1847 ई० के आलूओ के अकाल के पहले जनसंख्या मे हुई अत्यधिक वृद्धि तथा इसके पश्चात् इसमे हुई निरतर कमी आर्थिक इतिहास मे सदा संस्मरणीय रहेगी।

---

1 निर्यात के आँकड़ों से वाणिज्य सम्बन्धी साख तथा औद्योगिक कार्यों में होने वाले उतार-चढ़ाव को सरलतापूर्वक जान सकते हैं: और पहले उद्धृत किये गये लेख में ओगल ने विवाह-दर और प्रति व्यक्ति निर्यात के बीच अनुरूपता दिखलायी देती है। लेवेस्यो (Levasseur) के La Population Francaise के खंड II, पृष्ठ 12 में दिये गये ओरेखों की तुलना कीजिए। मसाचूसेट के विषय में विलकोक्स (Willcox) की Political Science Quarterly खंड VIII पृष्ठ 76—82 को देखिए। जनवरी सन् 1898 ई० में मंनचस्टर सांख्यिकी संघ (Manchester Statistical Society) में आर० एच० हूकर (R H Hooker) द्वारा पढे गये लेख में ओगल के अनुसन्धानो को और आगे बढ़ाया गया है और उनमें सुधार किया गया है। वह यह बतलाते हैं कि यदि विवाह-दर में उतार-चढ़ाव होते रहे तो विवाह की बढ़ती हुई प्रावस्था (phase) में यह सम्भव है कि जन्मदर विवाह-दर की उस प्रावस्था के अनुरूप न हो कर उसके पहले की प्रावस्था के अनुरूप होगी जब विवाह-दर गिर रही थी, और इसी प्रकार इसके विपरीत भी। अतः जब विवाह-दर बढ़ रही हो तब जन्म का विवाह के साथ अनुपात कम होता है और जब विवाह-दर में कमी आ जाती है तो यह अनुपात बढ़ जाता है। जन्म और मृत्यु के अनुपात को प्रदर्शित करने वाली कोई वक्र विवाह-दर की प्रतिकूल दिशा में जायगी। वे यह कहते हैं कि जन्म और विवाह के अनुपात में अधिक कमी नहीं हुई है और अवैधानिक जन्म-संख्या में जो तेजी से कमी हो रही है उसके द्वारा इसे जाना जा सकता है। वैधानिक जन्म और विवाह के अनुपात में कोई विशेष कमी नहीं हो रही है।

विभिन्न देशवासियों[1] की आदतों की तुलना करने से यह ज्ञात होता है कि केन्द्रीय तथा उत्तरीय यूरोप के ट्यूटानी देशों में विवाह देर मे होते है क्योंकि कुछ अंशों मे लोगों का प्रारम्भिक युवाकाल सेना मे काम करने मे बीतता है। किन्तु रूस मे विवाह बहुत जल्दी हो जाता है क्योंकि पुराने शासन में कुटुम्ब के लोगों ने सदैव ही इस बात पर जोर दिया कि लड़का जल्दी विवाह करे जिससे उसकी पत्नी घर के काम काज में सहायता कर सके, भले ही उसे अपनी आजीविका कमाने के लिए पत्नी को घर पर छोड कर बाहर जाना पड़े। संयुक्त आँग्ल राज्य तथा अमरीका मे जहाँ सेना मे काम करना अनिवार्य नही है, वहाँ लोग जल्दी विवाह करते हैं। फ्रान्स मे सामान्य भावना के विपरीत भी मनुष्यो के कम आयु मे कुछ विवाह होते रहे हैं। किन्तु अन्य किसी देश की अपेक्षा जिससे सम्बन्धित आंकड़े सुलभ हैं 'स्लेवानिक' देशों के अतिरिक्त, जहाँ पर इनकी संख्या सबसे अधिक है, औरतों का अपेक्षाकृत अधिक जल्दी विवाह होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय जन्म-मृत्यु के आँकड़े।

प्रायः प्रत्येक देश मे विवाह-दर, जन्म-दर तथा मृत्यु-दर मे कमी हो रही है। किन्तु अधिक जन्म-दर वाले स्थानों मे सामान्य मृत्यु-दर अधिक पायी जाती है। उदाहरण के रूप मे स्लेवानिक देशो मे ये दोनों ही अधिक हैं और उत्तरीय यूरोप के देशो मे कम है। आस्ट्रेलेशिया मे मृत्यु-दर कम है और "प्राकृतिक" रूप मे होने वाली वृद्धि बहुत अधिक है, यद्यपि जन्म-दर कम है तथा उसमे तेजी से कमी हो रही है। वास्तव मे सन् 1881 ई० से सन् 1901 ई० के काल मे विभिन्न राज्यो मे इसमे 23 से 30 प्रतिशत तक कमी हुई।[2]

---

1 आगे दिये गये कथन मुख्यतया उन आंकड़ों पर आधारित हैं जिन्हें स्वर्गीय सिगनोर बोडियो (Signor Bodio) ने एकत्रित किया, तथा जो एम० लेवेस्यो द्वारा लिखित (La Population Francaise) तथा इगलैंड के रजिस्ट्रार जनरल की 1907 की रिपोर्ट में मिलते हैं।

2 इस अध्याय से सम्बन्धित अधिकांश ज्ञानवर्धक तथा संकेतपूर्ण सामग्री सन् 1909 ई० में स्थानीय शासन बोर्ड द्वारा प्रकाशित Statistical Memoranda and Charts relating to Public Health and Social Conditions में मिलती है (कमाण्ड पेपर 6471)।

अध्याय 5

जनसंख्या का स्वास्थ्य तथा उसकी शक्ति

औद्योगिक कार्य-कुशलता का आधार

§ 1. अब हमे इन स्थितियों का अध्ययन करना है जिन पर लोगों का स्वास्थ्य तथा उनकी मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक शक्ति निर्भर है। वे ही औद्योगिक कार्य-कुशलता के आधार पर हैं और उन पर भौतिक धन का उत्पादन निर्भर है, जबकि दूसरी ओर से भौतिक धन का मुख्य महत्व इस तथ्य मे निहित है कि यदि इसका बुद्धिमत्ता से उपयोग किया जाय तो यह मानव समाज के स्वास्थ्य को तथा उसकी शारीरिक मानसिक एवं नैतिक शक्ति को बढाती है।

शारीरिक परिश्रम के लिए तंत्रिका (nervous) एवं पेशीय शक्ति की आवश्यकता होती है।

बहुत से धधो मे औद्योगिक कार्य-कुशलता के लिए शारीरिक शक्ति, अर्थात् पेशीय शक्ति, सुदृढ शरीर के गठन तथा परिश्रम करने की आदतों के अतिरिक्त कुछ और भी अपेक्षित होता है। औद्योगिक कार्यों के लिए पेशीय शक्ति अथवा किसी अन्य प्रकार की शक्ति का अनुमान लगाते समय हमे दिन मे उन घण्टो, वर्ष मे उन दिनों, तथा जीवन काल मे उन वर्षों की सख्या को भी दृष्टि मे रखना चाहिए जिनमें उक्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु इन बातों को दृष्टिकोण मे रख कर मनुष्य अपने काम मे शक्ति द्वारा एक पौंड वजन को जितने फीट ऊँचा उठाये अर्थात् जितने "फुट पाउण्ड" के रूप मे वह काम करे उससे उसकी पेशीय शक्ति को मापा जा सकता है।[1]

---

1 इस माप का प्रत्यक्ष रूप से अधिकांश प्रकार के खुदाई एवं ढुलाई के कार्य में तथा परोक्षरूप से अनेक प्रकार के कृषि कार्य में प्रयोग किया जा सकता है। दक्षिणी एवं उत्तरी इंग्लैंड में कृषि की महान तालाबन्दी के पश्चात् अकुशल श्रमिकों की सापेक्षिक दक्षता के सम्बन्ध में जो विवाद उत्पन्न हुआ उससे जो सबसे अधिक विश्वसनीय माप अपनाया गया वह यह था कि एक व्यक्ति दिन भर में गाड़ी पर किसी वस्तु को कितनी मात्रा लाद सकता है। काटी हुई फसलों वाली भूमि का क्षेत्र अथवा फसल से प्राप्त अनाज की मात्रा आदि अन्य माप हैः किन्तु ये माप, विशेषकर कृषि की विभिन्न स्थितियों की तुलना करने में असन्तोषजनक है क्योंकि प्रयोग में आने वाले औजारों में, फसल के स्वरूप में, तथा कार्य करने की विधि में बहुत अन्तर है। जब तक हमारे पास ऐसे साधन न हों जिनसे कृषि की प्रणालियों में होने वाले परिवर्तनों के प्रभावों का पता लगाया जा सके तब तक इस प्रकार कटाई, आदि की मजदूरी के आधार पर मध्ययुग तथा आधुनिक युग के कार्य तथा इनसे प्राप्त मजदूरी की परस्पर सभी तुलनाएं निरर्थक होंगी। उदाहरण के लिए यदि किसी फसल को, जिससे सौ बुशल अनाज प्राप्त हो, हाथ से काटने में पहले की अपेक्षा आजकल कम लागत लगती है

यद्यपि अधिक पेशीय थकान सहन करने की शक्ति मनुष्य के शरीर-गठन एवं अन्य शारीरिक स्थितियों पर आश्रित है तथापि यह उसकी इच्छा एवं चारित्रिक बल पर भी निर्भर रहती है। इस प्रकार की शक्ति को शारीरिक शक्ति न समझ कर मानव शक्ति समझा जाता है और यह शारीरिक होने की अपेक्षा नैतिक होती है, किन्तु फिर भी यह तन्त्रिका-शक्ति की भौतिक स्थितियों पर निर्भर है। मनुष्य की अपनी यह शक्ति, यह संकल्प, बल तथा आत्म-प्रभुत्व, अथवा संक्षेप में यह "ओज" ही समस्त उन्नति का स्रोत है और इसका महान कार्यों, महान विचारों तथा सच्चे धार्मिक भावों को समझने की क्षमता में प्रदर्शन होता है।[1]

तो इसका कारण यह है कि इसमें प्रयोग में लाये जाने वाले औजार पहले की अपेक्षा आजकल अधिक अच्छे हैं: किन्तु एक एकड़ भूमि पर अनाज से फसल की कटाई करने में लागत के कम होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि पहले की अपेक्षा अब फसलें अधिक अच्छी होती हैं। पिछड़े हुए देशों में, विशेषकर जहाँ घोड़ों अथवा अन्य बोझ ढोने वाले पशुओं का अधिक प्रयोग नहीं होता, पुरुषों तथा स्त्रियों के कार्य के एक बड़े भाग को उसमें लगाये गये उनके शारीरिक परिश्रम द्वारा मापा जा सकता है। किन्तु इंग्लैंड में अब औद्योगिक वर्ग के लोगों की संख्या का $\frac{1}{6}$ से भी कम भाग इस प्रकार के कार्य में लगा हुआ है, जबकि इस दिशा में प्रयोग किये जाने वाले भाप से चलने वाले इंजनों की शक्ति सभी आंग्लवासियों की शारीरिक शक्ति के 20 गुने से भी अधिक है।

1 इसे घबराहट से भिन्न समझना चाहिए, जो कि अधिकांशतया तंत्रिका-शक्ति की सामान्य हीनता को प्रकट करती है, यद्यपि यह कभी-कभी घबड़ाहट के कारण उत्पन्न चिड़चिड़ेपन से, अथवा संतुलन के अभाव से उत्पन्न होती है। एक मनुष्य को कुछ दिशाओं में अधिक तंत्रिका-शक्ति होती है तथा अन्य दिशाओं में कम होती है। बहुधा कलात्मक स्वभाव से एक प्रकार की तंत्रिकाओं का दूसरे प्रकार की तंत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक विकास होता है, किन्तु यह कुछ तंत्रिकाओं की निर्बलता है, न कि अन्य तंत्रिकाओं की सबलता, जो अधीरता को जन्म देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे अधिक शुद्ध कलात्मक प्रकृति के मनुष्य अधीर नहीं होते: उदाहरणतः लीओनार्डो-ड-विन्सी (Leonardo-da-Vinci) तथा शेक्सपियर। ऐंञ्जिल ने दक्षता के तत्वों का (क) शरीर, (ख) तर्क तथा (ग) हृदय में जो महान विभाजन किया है उसके अनुसार "तंत्रिका-शक्ति" शब्द कुछ सीमा तक हृदय शब्द से मिलता-जुलता है। (Leib, Verstand und Herz) वे कार्यों को क, कख, कग, कखग, कगख; ख, खक, खग, खगक, खकग, ग, गक, गख, गकख, गखक के क्रमचय (permutation) के अनुसार विभाजित करते हैं: प्रत्येक दशा में सापेक्षिक महत्व के अनुसार इन्हें क्रमबद्ध किया गया है तथा जहाँ कहीं शब्द के समरूप का बहुत कम महत्व है वहाँ उस शब्द का बिलकुल ही उपयोग नहीं किया गया है। सन् 1870 ई० के युद्ध में बर्लिन विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जो एक औसत सैनिक से भी निर्बल प्रतीत होते थे अधिक थकान सहन करने में समर्थ पाये गये।

मनुष्य का ओज इतने अधिक रूपो मे कार्य करता है कि इसका कोई साधारण माप सम्भव नही। किन्तु हम निरन्तर मनुष्य के ओज का अनुमान लगाते है और एक व्यक्ति को दूसरे की तुलना मे अधिक बलवान अथवा शक्तिशाली समझते हैं। यहाँ तक कि विभिन्न धन्धों में लगे हुए व्यावसायिक व्यक्ति, विभिन्न अध्ययनो मे व्यस्त विश्वविद्यालय के छात्र एक दूसरे की शक्ति का अधिक निकटता से अनुमान लगा लेते हैं। यह भी शीघ्र मालूम हो जाता है कि किस विषय मे दूसरे की अपेक्षा प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिए कम शक्ति की आवश्यकता होगी।

जलवायु एवं जाति का प्रभाव।

§ 2. जनसख्या की वृद्धि की चर्चा करते समय प्रासगिक रूप से जीवन की अवधि को निर्धारित करने वाले कारणो पर भी तनिक प्रकाश डाला जा चुका है, किन्तु वे मुख्यतया वही कारण हैं जो शारीरिक शक्ति एव बल को निर्धारित करते हैं और हम उन पर इस अध्याय मे पुन. विचार करेंगे।

इन कारणो मे से प्रथम जलवायु है। गरम देशों में विवाह जल्दी होते है और जन्म-दर अधिक होती है, और इसके फलस्वरूप वहाँ मनुष्य के जीवन के प्रति श्रद्धा कम हो जाती है, और यही सम्भवत. उच्च मृत्यु-दर के एक बड़े अंश का कारण रहा है जिसे साधारणतया जलवायु की अनुपयुक्तता का परिणाम समझा जाता है[1]।

शक्ति आशिक रूप से जातीयगुणों पर निर्भर होती है, किन्तु ये गुण, जहाँ तक इनकी व्याख्या की जा सकती है, मुख्यत. जलवायु की देन प्रतीत होते हैं[2]।

---

1 गरम जलवायु शारीरिक शक्ति को क्षीण करती है। यह उच्च बौद्धिक एवं कलात्मक कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती, किन्तु यह लम्बी अवधि तक लोगों को किसी भी प्रकार की थकान सहन करने में असमर्थ बनाती है। शीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में शीत ऋतु में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक कार्य किया जा सकता है, और सबसे अधिक कार्य इंग्लैंड एवं उसी के प्रतिरूप न्यूज़ीलैंड जैसे देश में किया जा सकता है जहाँ समुद्री हवाएँ तापमान को लगभग समान रखती हैं। यूरोप तथा अमेरीका के अनेक भागों में औसत तापमान सामान्य रहता है किन्तु वहाँ भी ग्रीष्म ऋतु की गर्मी तथा शीत ऋतु की सर्दी के कारण कार्य करने की दृष्टि से वर्ष में लगभग 2 माह के बराबर कार्यकाल घट जाता है। लगातार घोर सर्दी के कारण कार्य करने की शक्ति में ह्रास हो जाता है, यह सम्भवतः इसलिए होता है कि लोग सर्दी के कारण अपना अधिकांश समय बन्द तथा निश्चित स्थानों में व्यतीत करते हैं। साधारणतया ध्रुव-प्रदेशो के निवासी लम्बी अवधि तक लगातार कठिन परिश्रम करने में असमर्थ होते हैं। इंग्लैंड में लोकमत के अनुसार क्रिसमस के समय यदि गर्म हो तो बहुत से आदमी गर्मी से मरेंगे किन्तु आँकड़ो द्वारा यह पूर्ण रूप से सिद्ध हो गया है कि इसका प्रभाव प्रतिकूल होता है: औसत मृत्यु-दर शीत ऋतु में घोर ठंडक पड़ने पर सबसे अधिक, होती है कम ठंडक पड़ने पर कम होती है और गरम मौसम रहने पर इससे भी कम होती है।

2 अर्थशास्त्रियों के लिए जातीय इतिहास का अध्ययन एक आकर्षक किन्तु निराशाजनक विषय होता है, क्योंकि साधारणतया विजयी लोग हारे हुए लोगों की

§3. जलवायु का भी जीवन की आवश्यकताओं, जिनमें भोजन प्रथम है, के निर्धारण पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भोजन के समुचित रूप से बनाये जाने पर बहुत कुछ निर्भर रहता है, और एक अकुशल गृहिणी की अपेक्षा जिसके पास हफ्ते भर के भोजन पर व्यय करने के निमित्त २० शि० है एक कुशल गृहिणी 10 शि० से ही अपने कुटुम्ब के स्वास्थ्य एवं शक्ति मे अधिक अच्छी तरह से वृद्धि कर सकेगी। निर्धन जन समुदाय में बच्चों की अधिक मृत्यु का कारण एक बड़ी सीमा तक उनकी समुचित देखभाल की कमी तथा उनके भोजन बनाने मे विवेक का अभाव है, और जो बच्चे इस मातृ-स्नेह के अभाव के कारण न मरे तो वे बहुधा बड़े होने पर शारीरिक रूप से कमजोर होंगे।

जीवन की आवश्यकताएँ, भोजन।

वर्तमान युग को छोड़ कर विश्व के सभी युगों मे भोजन का अभाव लोगों के व्यापक विनाश का कारण रहा है। सत्तरहवीं एवं अट्ठारहवीं शताब्दियों मे लन्दन तक मे उन वर्षों की अपेक्षा जबकि अनाज सस्ता होता था, महँगाई के वर्षों मे मृत्यु-दर 8 प्रतिशत अधिक थी।[1] किन्तु बढ़ी हुई सम्पत्ति तथा संचार के विकसित साधनों के प्रभाव को धीरे-धीरे सारे संसार के लोग अनुभव करने लगे है। यहाँ तक कि भारत जैसे देश मे अकाल की कठोरता कम हो गयी है और यूरोप मे तथा विश्व के नये विकसित देशों मे उन कठिनाइयों को कोई जानता तक नहीं है। आजकल इंग्लैंड मे भोजन के अभाव के कारण प्रत्यक्षरूप से शायद ही मृत्यु होती है, किन्तु यह बहुधा उस प्रणाली की सामान्य निर्बलता का कारण है जो शरीर को बीमारी का सामना करने मे असमर्थ बना देती है, और यही औद्योगिक अकुशलता का मुख्य कारण है।

वस्तुओं का अभाव जिससे मृत्यु-दर में वृद्धि होती है।

यह तो हम पहले ही देख चुके है कि कुशलता के लिए जीवन की आवश्यकताएँ काम के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, किन्तु अब हमे इस विषय का तनिक अधिक गहराई से अध्ययन करना चाहिए।

जहाँ तक विशेष रूप से पेशीय कार्य का प्रश्न है मनुष्य को प्राप्त खाद्य सामग्री तथा शक्ति मे निकट का सम्बन्ध है। यदि कुछ गोदी श्रमिकों के काम की भाँति यह काम भी स्थायी हो तो सस्ते किन्तु पौष्टिक अनाज का बना भोजन पर्याप्त होगा। किन्तु बोझ ढोने तथा कठिन खुदाई जैसे कामों मे जहाँ निरन्तर अत्यधिक थकान होती है ऐसे भोजन की आवश्यकता होती है जिसका शरीर के थका होने पर भी आसानी से पाचन हो सके। उन उच्च वर्गीय श्रमिकों के लिए जिनके कार्य का उनकी तन्त्रिका-शक्ति पर अधिक जोर पड़ता है, भोजन मे इस गुण का होना और भी अधिक अत्यावश्यक है, यद्यपि उनको साधारणतया भोजन की कम मात्रा मे आवश्यकता होती है।

वस्तुओं का अभाव जिससे शक्ति में कमी होती है।

नारियों को अपना लेते थे, वे बहुधा अपने प्रवसन की अवधि में स्त्रियों और पुरुषों को दास बनाकर अपने साथ ले जाते थे, और ये दास स्वतंत्र लोगों की अपेक्षा युद्ध में कम मारे जाते थे। वे अपेक्षाकृत सन्यासी जीवन भी कम ही अपनाते थे। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक जाति में दासों का अर्थात् मिला-जुला खून अधिक मात्रा में पाया जाता था, और चूंकि औद्योगिक वर्ग के लोगों में मिले हुए खून की मात्रा सबसे अधिक होती थी इसलिए इनका जातीय इतिहास होना असम्भव प्रतीत होता है।

1 फार (Farr) ने एक शिक्षाप्रद सांख्यिकी युक्ति के द्वारा बाधा डालने वाले कारणों को दूर कर इसे सिद्ध किया था (Vital statistics, पृष्ठ 139)।

कपड़े, मकान एवं ईंधन।

भोजन के पश्चात्, कपड़े, मकान तथा ईंधन जीवन एवं श्रम की अन्य आवश्यकताएँ हैं। जब इनमे कमी होती है तो मस्तिष्क चेतनाहीन हो जाता है तथा अन्त मे शरीर दुर्बल हो जाता है। जब कपड़े की अत्यधिक कमी हो तो एक ही कपड़े को साधारणतया कई दिन पहनते हैं और शरीर पर मैल की तह जम जाती है।

मकान तथा ईंधन की कमी के कारण लोग एक दूषित वातावरण में रहते हैं जो उनके स्वास्थ्य एवं शक्ति के लिए हानिकर है। किन्तु कोयले के सस्ते होने के कारण इग्लैंड के निवासियों मे यह विशेषकर अच्छी आदत है कि वे जाड़े मे भी कमरों को गरम कर हवादार रखते है। बुरे ढग से बने हुए मकान जिनकी जल-निकासी की व्यवस्था त्रुटिपूर्ण होती है ऐसी बीमारियो को पैदा करते है जो मामूली होने पर भी मनुष्य की शक्ति को आश्चर्यजनक रूप से क्षीण कर देती है, और जनसंख्या की अधिक भीड़ के कारण उन नैतिक बुराइयो का जन्म होता है जो लोगो की संख्या कम करती है तथा उनके चरित्र का पतन करती है।

विश्राम।

शक्तिशाली जनसख्या की वृद्धि के लिए विश्राम उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन, कपड़ा, आदि भौतिक वस्तुएँ आवश्यक है। प्रत्येक प्रकार के अतिश्रम से शक्ति का ह्रास होता है, जबकि चिन्ता परेशानी तथा अत्यधिक मानसिक थकान का यह घातक प्रभाव पड़ता है कि इससे शरीर क्षीण हो जाता है, बच्चे जनन करने की शक्ति कम हो जाती है, तथा जाति की शक्ति घट जाती है।

आशावादिता, स्वतन्त्रता तथा परिवर्तन।

§4 इसके पश्चात् शक्ति की तीन परस्पर सम्बद्ध दशाओ, अर्थात् आशावादिता स्वतन्त्रता तथा परिवर्तन, का स्थान है। सम्पूर्ण इतिहास अकुशलता के ऐसे वर्णन से भरा हुआ है जो विभिन्न मात्राओ मे दासता, कृषक-दासता तथा अन्य प्रकार के व्यावहारिक एवं राजनीतिक अत्याचार व दमन की देन है[1]।

सभी युगो मे उपनिवेशो मे बसने वाले लोग स्फूर्ति एवं शक्ति में अपनी मातृभूमि से भी आगे रहे हैं। इसका आंशिक कारण भूमि की प्रचुरता और आवश्यक वस्तुओं का सस्ते दाम पर मिलना है। इसका आंशिक कारण सबसे अधिक बलवान लोगों

---

1 स्वतन्त्रता एवं आशा न केवल एक व्यक्ति की इच्छा शक्ति में ही वृद्धि करती है अपितु उसकी कार्यशक्ति को भी बढ़ाती हैं। शरीरशास्त्री यह बताते हैं कि यदि कोई निर्दिष्ट कार्य कष्ट की अपेक्षा आनन्द प्राप्ति की आशा से किया जाय, तो वह कम तंत्रिका-शक्ति के प्रयोग से ही हो जायेगा और कोई भी उद्यम आशा के बिना नहीं हो सकता। व्यक्ति की एवं सम्पत्ति की सुरक्षा इस आशावादिता तथा स्वतन्त्रता की दो शर्तें हैं, किन्तु सुरक्षा के कारण हमेशा स्वतन्त्रता में कमी होती है, और इस बात का पता लगाना सभ्य संसार की सबसे कठिन समस्याओं में से एक है कि सुरक्षा जो स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है, स्वयं स्वतन्त्रता का बहुत त्याग किये बिना कैसे प्राप्त की जा सकती है। कार्य, दृश्य तथा व्यक्तिगत साहचर्य में परिवर्तन नवीन विचारों को जन्म देते हैं, प्राचीन विधियों की अपूर्णताओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, "आध्यात्मिक असंतोष" को बढ़ाते हैं तथा प्रत्येक प्रकार से रचनात्मक शक्ति में वृद्धि करते हैं।

का साहसिक जीवन को स्वभाव से ही पसन्द करना है तथा आंशिक कारण जातियों के वर्णसंकर होने से सम्बन्धित शरीर विज्ञान सम्बन्धी कारण है। किन्तु इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण सम्भवतः उनके जीवन में विद्यमान आशावादिता, स्वतंत्रता एवं परिवर्तन है।[1]

अभी तक स्वतन्त्रता का अर्थ बाह्य बंधनों से मुक्ति होना ही समझा गया है। किन्तु आत्म प्रभुत्व से उत्पन्न स्वतन्त्रता महान होती है और यही उच्चतम प्रकार के कार्य के लिए बहुत आवश्यक है। जीवन के आदर्शों की जिस श्रेष्ठता पर यह निर्भर है उसके एक ओर तो राजनीतिक एव आर्थिक कारण है और दूसरी ओर वैयक्तिक एवं धार्मिक प्रभाव है, जिनमें बाल्यावस्था के प्रारम्भ मे माता का प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है।

पेशे का प्रभाव।

§5. मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्ति पर उसके पेशे का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।[2] इस शताब्दी के प्रारम्भ मे कारखानों में कार्य करने की स्थितियाँ सब के लिए, विशेषकर तरुण बच्चों के लिए, निश्चय ही अस्वस्थ तथा दमनकारी थी। किन्तु फैक्ट्री एवं शिक्षा अधिनियमों ने कारखानों से इन बुराइयों को दूर कर दिया है यद्यपि इनमें से अनेक बुराइयाँ अब भी घरेलू उद्योगों एवं छोटे वर्कशापों में विद्यमान है।

---

1 विभिन्न स्थानों से आये हुए तथा विभिन्न रीति-रिवाजों वाले लोगों के साथ बातचीत द्वारा यात्री लोग विचार अथवा कार्य की ऐसी अनेक आदतों को परखना सीख जाते हैं जिनको वे अन्यथा प्रकृति के नियम की भाँति मूक रूप से स्वीकार कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त स्थान परिवर्तन से अधिक शक्तिशाली एवं मौलिक विचार वाले लोगों को अपनी शक्तियों के विकास तथा उच्च पदों तक पहुँचने के लिए पूरा अवसर मिलता है: जबकि वे लोग जो घरों में ही रहते हैं, बहुधा एक ही पद पर पर्याप्त समय तक रह जाते हैं। अपने क्षेत्र में बहुत कम लोग सिद्ध होते हैं, साधारणतया पड़ोसी तथा रिश्तेदार न तो उनके दोषों को क्षमा करते हैं और न उन लोगों के गुणों को मानते हैं जो अपने चारो ओर के लोगों की अपेक्षा अधिक विनीत एवं उद्यमी होते हैं। निःसन्देह इस कारण इंग्लैंड के लगभग प्रत्येक भाग में बहुत बड़ी मात्रा में वे लोग अधिक स्फूर्तिवान और उद्यमी होते हैं जो अन्य देशों में पैदा हुए थे।

किन्तु परिवर्तन अपेक्षित सीमा से अधिक हो सकते हैं और जब लोग इतनी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं कि व्यक्ति सदा अपनी ख्याति को खो देता है तो वह उच्च चरित्र के निर्माण के लिए आवश्यक बाह्य सहायक साधनों से वंचित हो जाता है। जो लोग नित्य नये-नये देशों में भ्रमण करते हैं वे अत्यधिक आशावादी एवं चंचल प्रकृति के होते हैं। इसके कारण वे न तो पूर्णरूप से कुशल बन सकते हैं और न किसी कार्य को ही पूरा कर पाते हैं, वे सदा एक व्यवसाय छोड़कर दूसरे व्यवसाय को अपनाते हैं जिसके फलस्वरूप उनका बहुत-सा समय नष्ट हो जाता है।

2 धार्मिक पुरोहितों तथा अध्यापकों कृषक वर्गों तथा कुछ अन्य उद्योगों जैसे कि पहिया बनाने, जहाज बनाने के उद्योगों में तथा कोयले की खानों में मृत्यु-दर कम

गाँव की अपेक्षा शहरो मे ऊँची मजदूरी, अधिक बुद्धि तथा अच्छी चिकित्सा की सुविधाओ के कारण बच्चों की मृत्यु कम होती है। किन्तु बच्चों की मृत्यु-दर प्रायः ऐसे स्थानो मे अधिक होती है जहाँ विशेषकर माताएँ अधिक सख्या मे अपने पारिवारिक कर्तव्यो को छोड कर मजदूरी के लिए बाहर जाती है।

शहरी जीवन का प्रभाव।

§ 6 लगभग सभी देशो मे गाँवो से लोग शहरो मे लगातार जाते रहते है।[1] बडे शहरो मे विशेषकर लन्दन मे शेष समस्त इग्लैड से उत्तम नस्ल के लोग आकर

पायी जाती है। शीशे तथा टीन की खानो, रेती बनाने तथा मिट्टी के बर्तन बनाने के उद्योगों में यह अधिक होती है। किन्तु इनमें अथवा अन्य किसी नियमित व्यावसायो में इतनी मृत्यु-दर नही होती जितनी लंदन में सामान्य मजदूरों तथा फेरी वालों में पायी जाती है। किन्तु सबसे अधिक मृत्यु-दर सराय में काम करने वाले कर्मचारियों में होती है। यद्यपि इन काम-धन्धों का प्रत्यक्ष रूप में स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पडता, किन्तु इनमे अधिकांश ऐसे लोग काम करते है जिनका शरीर दुर्बल है तथा चाल-चलन गिरा हुआ है और ये लोग अनियमित आदतों को प्रोत्साहन देते है। काम धन्धो का मृत्यु दर पर जो प्रभाव पड़ता है उसका सुन्दर वर्णन रजिस्ट्रार जनरल की पैंतालीसवी वार्षिक रिपोर्ट (सन् 1885) के पूरक भाग में पृष्ठ XXV LXIII देखिए। फार द्वारा लिखित Vital Stat st cs के पृष्ठ 392—411, जून 1887 के Statistical Journal में हम्फ्री द्वारा Class Mortality Statistics पर लिखे गये लेख, तथा सामान्य रूप से फैक्ट्री अधिनियम से सम्बन्धित साहित्य को भी देखिए।

1 ग्रीगोरी किंग (Gregory King) का अनुकरण करते हुए डावनेण्ट (Davenant) ने यह सिद्ध किया है (Balance of Trade ईशाबाद सन् 1699, पृष्ठ 20) कि सरकारी अंकों के अनुसार लन्दन में एक वर्ष में जन्म-संख्या से मृत्यु-संख्या 2000 अधिक है, किन्तु बाहर से आकर वहाँ बसने वालों की संख्या 5000 है, जो देश की जनसंख्या की वास्तविक वृद्धि के आधे से अधिक है, यद्यपि उनका इस प्रकार की गणना आपत्तिजनक है। उन्होंने गणना की है कि 350,000 लोग लन्दन में, 870,000 अन्य नगरो एवं मण्डियों मे तथा 4,100,000 लोग गांवों तथा झोपड़ियो में निवास करते हैं। इन आँकड़ो की तुलना इंग्लैंड तथा वेल्स में सन् 1901 में की गयी जनगणना के आँकड़ों से कीजिए, जिनके अनुसार हमें ज्ञात होता है कि लन्दन की जनसंख्या 4,500,000 से अधिक है, पाँच अन्य नगरों की औसत जनसंख्या 50,000 से अधिक है तथा 60 अन्य नगर 50,000 से अधिक किन्तु औसत में 100,000 जनसंख्या वाले हैं। यह जनसंख्या का पूर्ण विवरण नहीं है: क्योंकि अनेक उपनगरीय क्षेत्र, जहाँ जनगणना नहीं हुई, बहुधा बड़े नगरोंके ही भाग होते हैं, और कुछ मामलों में निकट स्थित अनेक नगरो के उपनगरीय क्षेत्र एक दूसरें की सीमा तक फैल जाते हे और उनको एक विशाल तथा अलग-अलग फैले हुए नगर का रूप प्रदान करते हैं। मैनचेस्टर का एक उपनगर जिसकी जनसंख्या 220,000 है एक बड़ा नगर समझा जाता है और यही बात लन्दन के एक 275,000 जनसंख्या वाले उपनगर वेस्ट हेम (West Ham) के विषय में भी है। कुछ बड़े नगरों की

बस गये है। सबसे अधिक उद्यमी, सर्वाधिक प्रतिभाशाली, सर्वोत्तम स्वास्थ्य एवं चरित्र वाले लोग अपनी व्यक्तिगत योग्यताओ के विकास के लिए वहाँ जाते है। सबसे अधिक योग्य और चारित्रिक शक्ति वाले लोग एक बढती हुई सख्या मे उप-नगरीय क्षेत्रो मे निवास करते है जहाँ जल-निकास तथा पीने के पानी एव प्रकाश की व्यवस्था के साथ-साथ अच्छे प्रकार के विद्यालय तथा खुली वायु मे खेलने के अवसर मिलने से ऐसे वातावरण की रचना होती है जो ग्रामीण क्षेत्रो की भाँति शक्ति मे वृद्धि करने मे सहायक सिद्ध हो. और यद्यपि वहाँ अब भी ऐसे अनेक उप-नगरीय क्षेत्र हैं जिनका वातावरण व्यक्ति के लिए उतना हानिकर नही होता जितना कुछ समय पूर्व बडे शहरो का वातावरण प्राय होता था, तथापि सब कुछ ध्यान मे रखते हुए जनसख्या की बढती हुई सघनता कुछ समय के लिए कम हानिकारक प्रतीत होती है। उद्योग एव व्यापार के मुख्य केन्द्रो से बहुत दूर बसे हुए स्थानो मे जीवन की सुविधाओ मे हाल ही मे हुई वृद्धि की गति कुछ समय मे कम हो जायेगी। किन्तु इन क्षेत्रो से हटकर उप-नगरीय क्षेत्रो तथा यहाँ तक कि नये उद्यान-नगरो (Garden Cities) मे उद्योग स्थापित

सीमाओं का अनियमित रूप से समय-समय पर विस्तार किया जाता है जिससे कि उनमें इस प्रकार के उपनगर सम्मिलित किये जा सकें, और परिणामस्वरूप एक बड़े नगर की वास्तविक जनसंख्या तेजी से बढ़ सकती है जबकि उसके पूर्ववर्ती क्षेत्र की जनसंख्या धीमी गति से बढ़ती है, अथवा घटती है और फिर सहसा बहुत बढ़ जाती है। अतः लिवरपुल के पूर्ववर्ती क्षेत्र की जनसंख्या सन् 1881 में 552,000; सन् 1891 में 518,000 और सन् 1901 में 685,000 थी।

इसी प्रकार के परिवर्तन अन्यत्र भी हो रहे है। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस की जनसंख्या की अपेक्षा पेरिस की जनसंख्या बारह गुनी अधिक तेजी से बढ़ी है। जर्मनी के नगरों की जनसंख्या में, ग्रामीण जनसंख्या की अपेक्षा, प्रति वर्ष $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत वृद्धि होती है। सन् 1800 में संयुक्त राष्ट्र अमेरीका में एक भी नगर एसा नहीं था जिसकी जनसंख्या 75,000 से अधिक हो, सन् 1905 में वहाँ तीन शहर ऐसे थे जिनकी जनसंख्या कुल मिला कर 7,0 0,000 से अधिक थी और 11 ऐसे नगर थे जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 300,(00 से अधिक थी। आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रान्त की जनसंख्या का एक तिहाई भाग मेलबोर्न में बसा हुआ है।

यह स्मरण रहे कि नगर एवं उसके उप-नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ शहरी जीवन की विशेषताएँ तीव्रता से बढ़ती है चाहे उनका प्रभाव अच्छा हो अथवा बुरा। ताजी खुली वायु को एक छोटे शहर के निवासी की अपेक्षा एक साधारण लन्दन वासी तक पहुँचने में उनको दुर्गन्धियुक्त स्थानों से होकर बहना पड़ता है। लन्दन निवासी को साधारणतया ग्रामीण क्षेत्र के स्वतन्त्र, शान्तिपूर्ण एवं सुन्दर वातावरण तक पहुँचने के लिए पर्याप्त दूर जाना होगा। इसलिए एक 45,000 जनसंख्या वाले नगर की तुलना में, लन्दन अपनी 4,500,000 जनसंख्या के साथ इंग्लैंड के शहरी जीवन के स्वरूप मे एक सौ गुने से अधिक योग देता है।

कर कठिन काम करने वाले लोगो की तलाश करने की प्रवृत्ति में कोई कमी होती नही दिखाई देती।

सांख्यकीय आँकडे वास्तव में शहरी वातावरण के अत्यधिक अनुकूल होते है। इसका कारण आंशिक रूप मे यह है कि शक्ति को कम करने वाली बहुत-सी शहरी स्थितियो का वहाँ की मृत्युदर पर अधिक प्रभाव नही पड़ता और इसका कारण आशिक रूप में यह है कि शक्ति को कम करने वाली बहुत सी शहरी स्थितियो का वहाँ की मृत्युदर पर अधिक प्रभाव नही पड़ता और इसका आशिक कारण यह भी है कि शहरों मे बाहर से आये अधिकाश प्रवासी शक्तिशाली युवक होते है और उनमे औसत से अधिक स्फूर्ति और साहस होता है, जबकि जिन युवको के माता-पिता गाँव मे ही रहते है वे अपने घर प्राय तभी जाते हैं जब उनके माता-पिता बहुत बीमार पड़ जाते है।[1]

---

1 इस प्रकार के कारणों से वेल्टन (Welton) ने ऐसा सुझाव दिया है कि विभिन्न नगरों की मृत्युदरों की तुलना करने के लिए 15 से 35 वर्ष की आयु के बीच के लोगों को छोड़ देना चाहिए। लन्दन में मुख्यतया इस कारण 15 से 35 वर्ष के बीच की आयु वाली महिलाओं में बहुत कम मृत्युदर है। किन्तु यदि किसी नगर की जनसंख्या स्थिर हो तो उसके जन्म-मृत्यु सम्बन्धी आंकड़ों का अधिक सुगमता से विश्लेषण किया जा सकता है। कोवण्ट्री (Coventry) को एक नमूने का नगर मान कर गालटन (Galton) ने यह गणना की कि नगरों में निवास करने वाले दस्तकारों के वयस्क बच्चों की संख्या स्वस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले श्रमिकों के बच्चों की संख्या के आधे से तनिक अधिक है। जब किसी स्थान का आर्थिक पतन हो रहा हो तो युवक, शक्तिशाली एवं स्वस्थ लोग अपने पीछे वृद्धों एवं निर्बलों को छोड़ कर वहाँ से दूर चले जाते हैं, परिणामस्वरूप वहाँ की जन्मदर साधारणतया कम हो जाती है। दूसरी ओर एक औद्योगिक केन्द्र में जो लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है जन्मदर बहुत ऊँची होती है, क्योकि यहाँ पर अपेक्षाकृत अधिक स्फूर्ति वाले लोग रहते हैं। यह बात ऐसे शहरों में विशेष रूप से लागू होती है, जहाँ कोयला तथा लोहा सम्बन्धी कार्य होता है, क्योकि वहाँ कपड़े की मिलो वाले नगरों की भाँति पुरुषों की कमी नहीं होती है, और खानों से काम करने वाले सभी लोग जल्दी विवाह करते हैं। कुछ नगरों में यद्यपि मृत्युदर ऊँची होती है तथापि वहाँ मृत्युदर से जन्मदर प्रति 1000 जनसंख्या पर 20 अधिक होती है। दूसरी श्रेणी के नगरों में मृत्युदर साधारणतया सबसे ऊँची होती है, इसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ पर सफाई की व्यवस्था अभी इतनी अच्छी नहीं है जितनी बहुत बड़े नगरों में पायी जाती है।

प्रो० हेक्राफ्ट (Prof. Haycraft) ने इसके प्रतिकूल तर्क किया है (Darwinisim and Race Progress)। वह तपेदिक एवं कंठमाला (Scrofula) जैसी बीमारियों के कारण मानव जाति में होने वाले ह्रास के खतरों की ओर उचित ध्यान देते हैं। ये बीमारियाँ मुख्यतः शारीरिक रूप से निर्बल व्यक्तियों को होती हैं और इन बीमारियों का यदि तदनुरूप अन्य दिशाओं में साथ-साथ सुधार न हो तो कमजोर

सार्वजनिक एवं निजी धन का सबसे अच्छा प्रयोग यही है कि उसे बड़े शहरों में सार्वजनिक उद्यान एवं खेल के मैदानों की व्यवस्था करने, कामगरो (Workmen) के लिए स्वयं उनके द्वारा चलायी जाने वाली रेलों की संख्या बढाने तथा उन श्रमिक वर्ग के लोगों को, जो ऐसा करने के निमित्त बड़े शहरो को छोड़ने तथा अपने उद्योगो को भी साथ मे ले जाने के इच्छुक है, सहायता देने मे व्यय किया जाय।

प्रकृति में निर्बलों को समाप्त करने की प्रवृत्ति पायी जाती है, किन्तु मनुष्य ने उसके इस कार्य मे बाधा डाली है।[1]

§7. अभी चिन्ता के और भी कारण होते है। क्योंकि संघर्ष एव प्रतियोगिता का चयनात्मक प्रभाव आंशिक रूप मे कम ही गया है जिसके फलस्वरूप सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे सर्वाधिक बल एवं शक्ति वाले लोग अपने पीछे अधिक सन्तान छोड़ जाते थे और जिससे, किसी अन्य एक कारण की अपेक्षा, मानव जाति का अधिक विकास हुआ है। सभ्यता के बाद की अवस्थाओं में उच्च श्रेणी के लोगो मे विवाह देर में करने का नियम बहुत लम्बे समय तक रहा है और परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग के लोगों की अपेक्षा उनके कम बच्चे होते है: किन्तु इस कमी की पूर्ति इस तथ्य से हो जाती है कि स्वयं श्रमिक वर्गों के लोगो के अधिक बच्चे उत्पन्न होते है। इस प्रकार एक ओर तो उच्च वर्ग के लोगो मे सामूहिक शक्ति का ह्रास हो रहा है, तथा दूसरी ओर श्रमिक वर्ग के लोगो मे से निरन्तर प्रस्फुटित होने वाली शक्ति के नवीन स्रोत से उसकी क्षतिपूर्ति हो जाती है। किन्तु एक लम्बे समय से फ्रान्स में तथा हाल ही मे इंग्लैंड और अमेरीका मे श्रमिक समाज के कुछ अधिक योग्य एवं बुद्धिमान लोगो ने बड़े कुटुम्बों के प्रति अपनी उदासीनता प्रदर्शित की है, और इससे कभी भी क्षति पहुँच सकती है।[2]

इस प्रकार इस भय के कारण बढते जा रहे है कि जहाँ चिकित्सा विज्ञान एवं सफाई मे उन्नति से शारीरिक एव मानसिक रूप से निर्बल लोगो के बच्चों की एक निर-

व्यक्तियों की संख्या बहुत कम हो जाती है। किन्तु तपेदिक के सभी रोगियों की मृत्यु नहीं होती और यदि रोगियों को निर्बल बनाने की इसकी शक्ति में कमी की जा सके तो इससे वास्तविक लाभ होगा।

1 फरवरी, 1884 में (Contemporary Review) में प्रकाशित इसी लेखक के Where to House the London Poor शीर्षक वाले लेख को देखिए।

2 अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में शारीरिक श्रम श्वेत व्यक्ति के लिए अपमानजनक हो गया था, जिससे यदि श्वेत व्यक्ति स्वयं दास रखने में असमर्थ हो तो वह एक अविकसित जीवन व्यतीत करता था और कदाचित ही विवाह करता है। पुनः प्रशान्त महासागर की ओर के ढलानों में एक समय इस भय के उचित कारण थे कि सब प्रकार के कुशल कार्य चीनियों के हाथों में चले जायेंगे और श्वेत व्यक्ति ऐसा बनावटी जीवन निर्वाह करेंगे जिसमें उनके परिवार उन पर महान आर्थिक बोझ बन जायेंगे। इस विषय में अमेरीकी जीवन के स्थान पर चीनियों के जीवन की स्थापना होगी और मानव जाति के साधारण गुणों में कमी हो जायेगी।

न्तर बढती हुई सख्या का मृत्यु से बचाव किया जा रहा है वहाँ अधिक बुद्धिमान तथा स्फूर्ति वाले, उद्यम एव आत्मनियत्रण से पूर्ण, बहुत से लोग अपने विवाहो को स्थगित कर रहे है तथा अन्य विधियो से बच्चो की सख्या सीमित कर रहे हैं। बहुधा यह प्रवृत्ति उनके स्वार्थमय भावनाओ के कारण उत्पन्न होती है और यह सर्वथा उचित ही है कि कठोर एवं ओछे लोगो के मरने के बाद उनके समान प्रवृत्ति वाले कम बच्चे रहे। किन्तु बहुधा वे अपने बच्चो के लिए सम्मानयुक्त सामाजिक स्थान की प्राप्ति की इच्छा से ऐसा करते हैं। उनकी इस इच्छा मे अनेक ऐसे तत्त्व शामिल हैं जो मनुष्य के लक्ष्यों के उच्चतम सिद्धान्तो के अनुरूप नही है, और कुछ मामलो मे, वे स्पष्टत: तुच्छ हैं, किन्तु फिर भी यह उन्नति के मुख्य साधनो मे से एक साधन है और जो लोग इससे प्रभावित हुए है उनके बच्चे सम्भवत अपनी जाति मे सर्वोत्तम तथा सबसे अधिक शक्तिशाली है।

स्वस्थ बच्चों वाले बड़े परिवारों से राज्य को अधिक लाभ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बडे परिवारो के सदस्य एक दूसरे को शिक्षा देते है, वे छोटे परिवारो के सदस्यो की अपेक्षा प्राय अधिक हँसमुख एव तेजस्वी तथा बहुधा प्रत्येक प्रकार से अधिक शक्तिशाली होते है। निःसन्देह आशिक रूप मे इसका कारण यह है कि उनके माता-पिता असाधारण शक्ति के व्यक्ति थे, और इसी कारण अपनी बारी मे उनके भी बडे तथा शक्तिशाली परिवार होगे। बाहरी रूप मे दिखायी देने की अपेक्षा किसी जाति की उन्नति बहुत अधिक सीमा तक असाधारण रूप मे बडे तथा शक्तिशाली परिवारो के वशजो पर निर्भर करती है।

छोटे बच्चो के मरने से बुराइयां।

किन्तु दूसरी ओर इसमे सन्देह नही कि माता-पिता बड़े परिवार की अपेक्षा छोटे परिवार का पालन-पोषण अच्छी तरह कर सकते है। अन्य बातो के समान रहने पर पैदा होने वाले बच्चो की सख्या मे वृद्धि होने के कारण उनकी मृत्युदर मे बढोत्तरी होती है, और यह एक बडी बुराई है। ऐसे बच्चो का जन्म माता के लिए अनावश्यक अतिश्रम पैदा करता तथा शेष परिवार के लिए आघात बन जाता है जो देखभाल तथा प्रचुर साधनों के अभाव से जल्दी ही भर जाते है।[1]

---

1 निवारण योग्य कारणों से होने वाली बाल-मृत्युदर की सीमा इस तथ्य से ज्ञात हो जाती है कि साधारणतया ग्रामीण क्षेत्रो की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में एक वर्ष की आयु से कम वाले बच्चों की प्रतिशत मृत्युदर लगभग एक तिहाई ज्यादा होती है और तथापि यह अनेक सम्पन्न जनसंख्या वाले शहरी क्षेत्रों में समस्त देश की औसत मृत्युदर से कम होती है (Registar General's Report for 1905, पृष्ठ 42–45 देखिए)। कुछ वर्ष पूर्व यह ज्ञात हुआ कि पांच वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की वार्षिक मृत्युदर सामन्त परिवारो में लगभग 2% प्रतिशत, उत्तम वर्गों के समस्त लोगों में 3% प्रतिशत से कम और समस्त इंग्लैंड में 6–7% प्रतिशत थी। दूसरी ओर प्रो० लेरोय ब्यूल्यू (Prof Leroy Beaulieu) कहते हैं कि फ्रान्स में एक अथवा दो बच्चों के माता-पिता उनको बड़े लाड़-प्यार से प्रसन्न रखते हैं और उनके प्रति बहुत अधिक सावधान रहते हैं चाहे इससे बच्चों में साहस, उद्यम एवं सहनशीलता का ह्रास ही क्यों न हो। (*Statistical Journal*, खंड 54, पृष्ठ 378–9 देखिए)।

व्यावहारिक निर्णय।

§8. इसके अतिरिक्त अन्य बातों को भी ध्यान मे रखना चाहिए; किन्तु जहाँ तक इस अध्याय में वर्णित बातों का प्रश्न है यह प्रत्यक्षतः उपयुक्त प्रतीत होता है कि लोगों को तब तक बच्चे पैदा नही करने चाहिए जब तक वे उनको कम से कम इतनी अच्छी शारीरिक एव मानसिक शिक्षा न दे सके जितनी उन्होने स्वय प्राप्त की है। तनिक जल्दी विवाह करना सर्वोत्तम होता है बशर्ते लोगो मे बिना नैतिक नियमो का उल्लघन किये बच्चो की सख्या को सीमित रखने के लिए पर्याप्त आत्म-नियत्रण की शक्ति विद्यमान हो। कार्य करने के इन सिद्धान्तों को सामान्य रूप से अपनाये जाने के साथ साथ यदि शहरी जनता के लिए ताजी हवा एवं स्वस्थ वातावरण की पर्याप्त व्यवस्था हो तो उससे जाति की शक्ति एव स्फूर्ति मे वृद्धि होना स्वाभाविक है। हम इस समय इस विश्वास के कारणो से परिचित हो जायेंगे कि यदि जाति की शक्ति एव स्फूर्ति मे वृद्धि हो तो लोगो की सख्या मे वृद्धि के कारण उनकी औसत वास्तविक आय मे लम्बे समय तक कमी नहीं होगी।

अच्छाई और बुराई की शक्तियों में कमी अथवा वृद्धि।

इस प्रकार ज्ञान मे, विशेषकर चिकित्सा विज्ञान मे उन्नति, स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी मामलो मे सरकार के निरन्तर बढते हुए कार्य एव समझदारी, तथा भौतिक धन मे वृद्धि से मृत्युदर कम हो जाती है, स्वास्थ्य एव शक्ति मे वृद्धि होती है तथा जीवनकाल लम्बा होता है। दूसरी ओर शहरी लोगो की सख्या मे तीव्र वृद्धि होने के कारण, तथा जनसंख्या के निम्न वर्ग की अपेक्षा उच्च वर्ग के देर मे विवाह करने एव कम बच्चे पैदा करने की प्रवृत्ति के कारण जन्मदर मे कमी और मृत्युदर मे वृद्धि होती है। यदि केवल पहले प्रकार के कारण विद्यमान हो, किन्तु ये इस प्रकार नियमित हो कि उनसे जनसख्या की वृद्धि का खतरा न हो तो यह सम्भव है कि मनुष्य शीघ्र ही ऐसी शारीरिक एव मानसिक उत्कृष्टता तक पहुँच जाय जिसके बारे मे विश्व अभी तक अनभिज्ञ है। यदि दूसरे प्रकार के कारण अनियंत्रित रूप से कार्य करे तो मनुष्य का शीघ्र ही पतन हो जायेगा।

पहले प्रकार के कारणों की अपेक्षाकृत अधिकता है।

वर्तमान स्थिति के अनुसार ये दोनो प्रकार के कारण एक दूसरे को सतुलन मे रखते हैं यद्यपि प्रथम प्रकार के कारणो की अपेक्षाकृत अधिकता है। यद्यपि इग्लैंड की जनसख्या मे क्रमश अधिक वृद्धि हो रही है तथापि उन लोगो की सख्या, निश्चित रूप से समस्त जनसख्या का एक बढता हुआ भाग नही है जो शारीरिक एव मानसिक रूप से निर्बल है, और शेष लोगो की भोजन एव वस्त्र-व्यवस्था अपेक्षाकृत अच्छी है और केवल अधिक भीड-भाड वाले औद्योगिक क्षत्रो को छोड कर उनकी शक्ति मे साधारणतया वृद्धि हो रही है। कई वर्षो से पुरुषो एव महिलाओ दोनो के औसत जीवन की अवधि निरन्तर बढ रही है।

अध्याय 6

औद्योगिक प्रशिक्षण

§1 एक बडी एवं शक्तिशाली जनसख्या मे वृद्धि के कारणों पर विचार करने के पश्चात् अब हम आगे उस प्रशिक्षण पर विचार करेंगे जो औद्योगिक कुशलता जो के लिए अपेक्षित है।

प्राकृतिक शक्ति का रूप पर्याप्त सीमा तक प्रशिक्षण पर निर्भर है।

प्राकृतिक शक्ति किसी व्यक्ति को किसी एक दिशा मे महान् सफलता प्राप्त करने के योग्य बनाती है वह उसको अन्य दिशाओं मे भी सफलता प्राप्त करने मे प्रायः सहायता देती है। किन्तु इस नियम के अपवाद भी है। उदाहरण के रूप मे, कुछ लोग जन्म से ही केवल कलात्मक जीवन के लिए उपयुक्त प्रतीत होते हैं और वे किसी अन्य प्रकार के जीवन के लिए उपयुक्त नही दिखायी देते। कभी-कभी एक महान् व्यावहारिक योग्यता वाले व्यक्ति मे कलात्मक चेतना का बिलकुल ही अभाव पाया जाता है। किन्तु एक अधिक पेशीय शक्ति (Nervous strength) वाली जाति मे साधारणतया कुछ पीढ़ियो की अवधि मे लगभग प्रत्येक प्रकार की योग्यता मे, जिसको कि वह सम्मानित दृष्टि से देखती है, वृद्धि होती है। जिस जाति ने युद्ध मे अथवा साधारण प्रकार के उद्योगों में शक्ति प्राप्त कर ली हो वह कभी-कभी एक उच्च प्रकार की बौद्धिक एव कलात्मक शक्ति को अधिक शीघ्रता से प्राप्त कर लेती है। प्राचीन काल एव मध्ययुग मे लगभग प्रत्येक साहित्यिक तथा कलात्मक युग का आरम्भ उन महान् पेशीय शक्ति वाले लोगों के कारण हुआ है जिनमे आराम तथा विलासिता की कृत्रिम वस्तुओं के प्रति अधिक रुचि उत्पन्न होने से पूर्व उच्च प्रकार के विचारो का समावेश हो चुका है।

हमारे अपने युग की त्रुटियों को संभवतः बढ़ा-चढ़ा कर अनुमानित किया गया है।

वर्तमान युग मे ही इस रुचि मे वृद्धि होने से हम उन अवसरो से पूर्ण लाभ प्राप्त करने से वंचित हो गये है जो हमारे पर्याप्त रूप से बढे हुए संशोधनो से हमे मनुष्य जाति की उच्चतम योग्यताओ के अधिकतर भाग को मनुष्य जीवन के महानतम ध्येयो के प्रति समर्पित करने से प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु सम्भवत. वैज्ञानिक अनुसन्धानो मे वृद्धि के परिणामस्वरूप वर्तमान युग की बौद्धिक शक्ति वास्तविकता से कम प्रतीत होती है। क्योकि कला और साहित्य मे बहुधा एक प्रतिभावान व्यक्ति को चित्त को आकर्षित करने वाली युवावस्था मे ही सफलता प्राप्त होती है। किन्तु आधुनिक विज्ञान मे मौलिकता के निमित्त इतने अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती है कि छात्र विश्व मे अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर सकने के पूर्व ही अपने मस्तिष्क की प्रारम्भिक सजीवता को खो बैठता है, और इसके अतिरिक्त उसके कार्य का वास्तविक मूल्य इतना अधिक नही होता जितना कि प्राय: किसी चित्र अथवा कविता का होता है।[1] इसी प्रकार आधुनिक

---

1 इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना उचित होगा कि एक ऐतिहासिक विचार के पूर्ण महत्व का अनुभव बहुधा उसी पीढ़ी में नहीं होता। यह विचार विश्व के

यंत्रो से कार्य करने वाले शिल्पी के उच्च गुणों का मध्ययुग के दस्तकार के साधारण गुणों से कम मूल्य आँका जाता है[1] इसका अधिक कारण यह है कि हम व्यक्ति के उन श्रेष्ठ गुणों को साधारण समझते है जिनकी हमारे समय मे प्रचुरता है और इस तथ्य को भूलजाते है कि 'अकुशल-श्रमिक' शब्द का अर्थ निरन्तर बदल रहा है।

कुशल एवं अकुशल श्रमिक।

§2. बहुत पिछड़ी हुई जातियाँ किसी भी प्रकार के कार्य को लम्बे समय तक करने मे असमर्थ होती है, और यहाँ तक कि साधारण प्रकार का कार्य जिसे हम अकुशल समझते है उनके लिए अपेक्षाकृत कुशल कार्य होता है, क्योकि उनमे अपेक्षित गम्भीर मनोयोग का अभाव है और वे इसको एक लम्बे प्रशिक्षण द्वारा ही प्राप्त कर सकते है। किन्तु जहाँ अनिवार्य शिक्षा होती है वहाँ उस धन्धे को भी अकुशल समझा जा सकता है जिसके लिए लिखने-पढने के कुछ ज्ञान की आवश्यकता होती है पुन जिन क्षेत्रो मे उत्पादक लोग बहुत पहले बस गये है वहाँ कीमती यत्रो एव अन्य सामग्रियो के सचालन मे सभी लोगो मे उत्तरदायित्व, सावधानी एव शीघ्रता की आदत पायी जाती है, और तब मशीनो को चलाने का कार्य पूर्णतया यान्त्रिकीय एव अकुशल समझा जाता है और उसके लिए किसी भी प्रकार की उच्च मानवीय योग्यता की आवश्यकता नही होती। किन्तु वास्तव मे विश्व की वर्तमान जनसख्या के दसवे भाग से अधिक लोगो मे वह मानसिक एव नैतिक योग्यता, बुद्धि तथा आत्मनियन्त्रण की शक्ति नही होती जो इसके लिए आवश्यक है और दो पीढियो तक निरन्तर प्रशिक्षण देने पर भी आधे से अधिक लोग कार्य जो ठीक प्रकार से नही कर सकेंगे। यहाँ तक कि उत्पादक लोगो मे से बहुत कम लोग उन अनेक कार्यो को करने मे समर्थ होते है जो प्रथम दृष्टि मे पूर्णतया मानसिक थकान देने वाले प्रतीत होते है। उदाहरण के लिए यद्यपि मशीन पर कपडा बुनने का कार्य सरल प्रतीत होता है तथापि इसको ऊँचे एव नीचे वर्गों मे विभक्त किया जाता है। निम्न वर्गो के अधिकाश श्रमिको मे रग-बिरगे कपडो को बुनने के लिए अपेक्षित "योग्यता" नही होती। यह अन्तर उन उद्योगो मे और अधिक हो जाता है जहाँ ठोस सामग्री, लकडी, धातु एव मिट्टी के बर्तन बनाने की कला को काम मे लाया जात है।

साधारण ज्ञान एवं

एक किस्म के धन्धों मे कुछ प्रकार के हाथ से किये जाने वाले कार्यों के लिए लम्बे और निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है, किन्तु ऐसे मामले अधिक नही हैं

विचारों को एक नवीन दिशा की ओर प्रवाहित करता है, किन्तु इस दिशा-परिवर्तन का आभास तब तक नहीं होता जब तक कि मोड़ बिन्दु पर्याप्त पीछे न रह जाय। इसी प्रकार प्रत्येक युग के यांत्रिकी-आविष्कारों का महत्व उससे पहले के युगों के आविष्कारों की अपेक्षा कम होता है। क्योंकि एक नया आविष्कार तब तक व्यावहारिक प्रयोजन के लिए पूर्ण लाभप्रद (प्रभावशाली) नहीं होता जब तक कि अनेक छोटे-छोटे सुधार एवं सहायक आविष्कार न हो गये हों: ऐतिहासिक घटना को उत्पन्न करने वाला आविष्कार प्रायः उस घटना से एक पीढ़ी पहले होता है। अतः प्रत्येक पीढ़ी पिछली पीढ़ी द्वारा प्रतिपादित विचारों को व्यवस्थित रूप देने में लगी रहती है, और लोगों को अपने विचारों का पूर्ण महत्व भली-भाँति नहीं महसूस होता।

चारित्रिक शक्ति की तुलना में केवल हस्त-कौशल का महत्व कम हो रहा है।

और उनमे और भी कमी हो रही है, क्योकि मशीनें अब निरन्तर उस कार्य को करने लगी है जिसके लिए इस प्रकार के हस्त-कौशल की आवश्यकता होती है। यह वास्तव मे सत्य है कि मनुष्य का अपनी अँगुलियो के प्रयोग पर सामान्य नियत्रण होना औद्योगिक कुशलता का एक महत्वपूर्ण अग है, किन्तु यह आदत पेशीय शक्ति एव आत्म अधिकार के फलस्वरूप पैदा होती है। प्रशिक्षण से इसमे नि सन्देह विकास होता है, किन्तु इसका अधिकतर भाग सामान्य प्रकार का होता है, और किसी विशेष धधे से इसका खास सम्बन्ध नही रहता। जिस प्रकार एक अच्छा क्रिकेट का खिलाडी शीघ्र ही अच्छी तरह टेनिस खेलना सीख जाता है उसी प्रकार एक कुशल दस्तकार बहुधा एक धन्धे से दूसरे धन्धे मे जा सकता है, और इससे उसकी कुशलता को कोई महान एव स्थायी क्षति नही पहुँचती।

जो हस्त-कौशल विशेष प्रकार का हो और एक धन्धे से दूसरे धन्धे मे जिसका हस्तान्तरण नही हो सकता हो उसका महत्व उत्पादन के साधन के रूप मे शनै शनैः कम हो रहा है। कलात्मक चिन्तन एव कलात्मक सृजन की शक्तियो को इस समय ध्यान मे न रख कर हम यह कह सकते है कि मुख्य रूप से साधारण समझदारी एव शक्ति मे श्रेष्ठता, जिनकी किसी एक धन्धे के लिए ही विशेष आवश्यकता नही होती, किसी धन्धे को दूसरे धन्धे की अपेक्षा उच्चतर बनाती है और किसी शहर एव देश के श्रमिको को अन्य शहरो अथवा अन्य देशो के श्रमिको की अपेक्षा अधिक कुशल बनाती हैं।

एक ही समय अनेक बातो को स्मरण रखना, माँग जाने पर प्रत्येक वस्तु को प्रस्तुत करना, कोई बात गलत हो जाने पर शीघ्रता से कार्य करना एवं अपनी औद्योगिक बुद्धि का प्रदर्शन करना, सम्पादित कार्य के विवरण मे परिवर्तनो के अनुसार अपने को ढालना, धैर्यवान एवं विश्वसनीय होना, सदा अपने अन्दर एसी शक्ति का भण्डार रखना जिसे आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सके—ये वे गुण है जो एक श्रेष्ठ औद्योगिक समाज की रचना करते हैं। ये गुण किसी एक धन्धे की ही विशषताएँ नही है अपितु इनकी सभी धन्धो मे आवश्यकता होती है। और यदि एक धन्धे से किसी अन्य सजातीय धन्धो मे सुगमता से इनका सदैव स्थानान्तरण नही किया जा सकता तो इसका मुख्य कारण यह है कि इन गुणो के साथ-साथ उन अन्य धन्धो मे प्रयुक्त सामग्री का ज्ञान तथा वहाँ की विशेष प्रक्रियाओ की जानकारी होना भी आवश्यक है।

सामान्य एवं विशिष्ट योग्यता।

अब हम सामान्य योग्यता शब्द का प्रयोग उन मानसिक शक्तियो तथा उस सामान्य ज्ञान एव बुद्धि के लिए करेग जो विभिन्न मात्राओ मे उच्च स्तर के सभी उद्योगो की सामान्य सम्पत्ति है जबकि अलग-अलग धन्धो मे विशिष्ट प्रयोजनो के निमित्त आवश्यक हस्त-कौशल तथा उनसे सम्बन्धित सामग्री एव प्रक्रियाओ की जानकारी को विशिष्ट योग्यता कहा जा सकता है।

सामान्य योग्यता के

§3 प्राय सामान्य योग्यता बाल्यावस्था एव युवावस्था के वातावरण पर निर्भर है। इनमे माता का प्रभाव सर्वप्रथम एव सर्वाधिक शक्तिशाली होता है।[1] दूसरे स्थान

---

1 गाल्टन के अनुसार इस कथन में कि महान पुरुषों की महान माताएँ होती हैं अतिशयोक्ति है: किन्तु इससे यह प्रदर्शित होता है कि बच्चे पर पड़ने वाले माता

पर यह साधारण योग्यता पिता, अन्य बालको तथा कुछ मामलो मे नौकरों से प्रभावित होती है।[1]

सम्भरण को निर्धारित करने वाले कारण। घर।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है एक श्रमिक का बच्चा जो कुछ अपने चारों ओर देखता तथा सुनता है उससे पर्याप्त शिक्षा ग्रहण करता है। यदि हम जीवन यात्रा प्रारम्भ करने के उन लाभो की जाँच करे जो सम्पन्न वर्ग के लोगो के बच्चो को दस्तकारों के बच्चों की तुलना मे प्राप्त है, और जो दस्तकारो के बच्चो को अकुशल श्रमिकों के बच्चों की तुलना में प्राप्त है, तब हमे घर के वातावरण के इन प्रभावों पर अधिक विस्तार से विचार करना पड़ेगा। किन्तु इस समय हम बच्चो पर विद्यालय की शिक्षा से पड़ने वाले अधिक सामान्य प्रभावो पर विचार करते हैं।

विद्यालय।

सामान्य शिक्षा के सम्बन्ध मे अधिक कुछ लिखने की आवश्यकता नही, भले ही इसका भी औद्योगिक कुशलता पर पडने वाला प्रभाव जितना हमे प्रतीत होता है उससे अधिक है। यह सत्य है कि श्रमिको के बच्चो को बहुधा उस समय विद्यालय छोड़ देना होता है जब उन्होने पढने-लिखने, हिसाब तथा रेखाचित्र सम्बन्धी केवल प्रारम्भिक बाते सीख ली हो। कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि इन विषयो को पढने मे लगाये गये थोड़े से समय का उपयोग व्यावहारिक कार्यों को सीखने मे अच्छी प्रकार किया जा सकेगा। किन्तु विद्यालय मे की गयी प्रगति का उतना अधिक महत्व नही होता जितना कि विद्यालय की शिक्षा से प्राप्त भविष्य मे प्रगति करने की शक्ति का होता है। क्योकि सही रूप मे उदार सामान्य शिक्षा मनुष्य के मस्तिष्क की सर्वोत्तम शक्तियों को व्यवसाय मे लगाने तथा स्वयं व्यवसाय की संस्कृति के उत्थान के एक साधन के रूप मे प्रयोग करने का आदी बना देती है। भले ही इसका सम्बन्ध विशेष

के प्रभाव से अन्य प्रभाव समाप्त नहीं होते। इससे यह प्रदर्शित नहीं होता कि वह अन्य प्रभावों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली नहीं होता। वह कहते हैं कि धर्म-दार्शनिकों (theologicians) एवं वैज्ञानिकों में उनकी माता का प्रभाव अधिक सुगमता से विदित हो जाता है क्योंकि उत्सुक माँ अपने बच्चों को महान बातों के सम्बन्ध में गम्भीरता से अध्ययन करना सिखाती है और एक बुद्धिमान माता बच्चों की उस जिज्ञासा को दबाने की अपेक्षा प्रोत्साहित करती है जो उनके विचारों के वैज्ञानीकरण में कच्चे माल का कार्य करती है।

1 घरेलू नौकरों में भी बहुत से लोग अच्छी प्रकृति वाले होते हैं। किन्तु जो लोग अधिक धनी घरों में काम करते हैं उनको सुख-भोगने की आदत पड़ जाती है। वे लोग धन को अधिक महत्व देने लगते हैं और जीवन में निम्न उद्देश्यों को ही महान मानने लगते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति आत्मनिर्भर रहने वाले श्रमिक वर्ग में सामान्य रूप में नहीं पायी जाती। साधारण घरों में बच्चों को जो संगति मिलती है वह उस संगति से अधिक श्रेयस्कर है जो हमारे कुछ सर्वोत्तम घरों के बच्चों को प्राप्त है। फिर भी इन घरों में जब तक नौकर विशेष योग्यता प्राप्त न हो तब तक उसे कुत्ते अथवा घोड़े के बच्चे की देखभाल का भार नहीं सौंपा जाता।

व्यवसायो के आन्तरिक पहलुओ से नही है: क्योकि यह तो तकनीकी शिक्षा से सम्बन्धित है।[1]

तकनीकी शिक्षा।

§4 इसी भाँति आधुनिक वर्षो मे तकनीकी शिक्षा के उद्देश्य बढ़ गये हैं। पहले इसका उद्देश्य ऐसी शारीरिक चतुरता तथा मशीने एव प्रक्रियाओ (processes) के एसे साधारण ज्ञान देने से कुछ ही अधिक था जिसे कोई बुद्धिमान बालक अपने कार्य के प्रारम्भ होते ही समझ लेता है। यद्यपि न सीखा हुआ होने की अपेक्षा वह इसे पहले से सीखा हुआ होने के कारण प्रारम्भ मे सम्भवत. कुछ अधिक धन प्राप्त कर सकता है, किन्तु इस प्रकार की शिक्षा प्रतिभा का विकास नही करती अपितु यह उसके विकास को रोकती है। एक बालक जिसने अपने लिए ज्ञान प्राप्त कर लिया है ऐसा करने से अपने को शिक्षित बना लेता है, और भविष्य मे किसी ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा जो इस प्रकार की पुरानी पद्धति वाली पाठशाला मे पढा है, अधिक अच्छी प्रगति कर सकता है। तकनीकी शिक्षा मे उत्तरोत्तर त्रुटियो की कमी होती जा रही है, और इसका प्रथम उद्देश्य आँखों तथा अगुलियो के प्रयोग पर सामान्य अधिकार प्राप्त करना है (यद्यपि इस बात का सकेत मिलता है कि यह कार्य सामान्य शिक्षा द्वारा भी होने लगा है जिससे कि यह यथार्थ रूप मे सम्बन्धित है)। इसका दूसरा उद्देश्य कलात्मक कुशलता एव ज्ञान तथा अन्वेषण की प्रणालियों का ज्ञान प्रदान करना है जो विशेष धन्धों मे लाभदायक हैं, किन्तु जिन्हें प्रयोगात्मक कार्य की अवधि मे कदाचित् ही भली-

---

1 मध्य वर्गों के पुराने लैटिन व ग्रीक की शिक्षा देने वाले विद्यालय की सीमित शिक्षा की भाँति ही श्रमिक वर्गों के बच्चों के लिए सतर्क सामान्य शिक्षा का अभाव औद्योगिक प्रगति के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। वास्तव में अभी हाल तक केवल इसी से प्रत्येक औसत पाठशाला के अध्यापक ने अपने शिष्यो को ऐसी चीज में उनके मस्तिष्क का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जो ज्ञान के लगन से बढ़ कर हो। अतः इसे उदार शिक्षा कहना ठीक ही था, क्योंकि इससे बढ़ कर और कुछ प्राप्त भी नहीं हो सकता था। किन्तु यह नागरिको को प्राचीनता के विचारों से अवगत कराने के उद्देश्य में सफल न हो सकी। साधारणतया विद्यालय के समय के समाप्त होने के बाद विद्यार्थी इसे भूल जाते थे। इसके फलस्वरूप व्यवसाय तथा संस्कृति के बीच सक्रिय विरोध उत्पन्न हुआ जो क्षतिकारक था। अब ज्ञान के प्रसार से लैटिन व ग्रीक की शिक्षा के पाठ्यक्रम की विज्ञान तथा कला के प्रयोग से पूर्ति सम्भव हुई है, और इसकी शिक्षा से समर्थवान लोगों को, अर्थात् उन लोगो की जो इसका खर्च वहन कर सकते हैं, सर्वोत्तम प्रतिभाओ का विकास हुआ है, और इसके फलस्वरूप वे उस विचारधारा का अनुगमन करते हैं जिनसे बाद के जीवन में उनके मस्तिष्क की उच्चतर क्रियाओं को प्रोत्साहन मिले। अक्षरों की लिखावट सीखने में जो समय लगता है वह लगभग पूर्णतया नष्ट ही हो जाता है। अन्य भाषाओं की भाँति यदि आंग्ल भाषा में अक्षरों की लिखावट तथा उनके उच्चारण में सामंजस्य स्थापित हो जाय तो बिना किसी अतिरिक्त लागत के पाठशाला की प्रभावोत्पादक शिक्षा में लगभग एक वर्ष की वृद्धि हो जायेगी।

भाँति जाना जा सकता है। यह ध्यान रहे कि स्वचालित मशीनो मे परिशुद्धता एव परिवर्तनशीलता मे प्रगति होने पर शारीरिक कार्य का क्षेत्र जिसमे हाथ तथा आँख पर अधिकार होने का बड़ा महत्व है, सकुचित हो जाता है। यह भी ध्यान रहे कि जिन प्रतिभाओ को सर्वोत्तम रूप मे सामान्य शिक्षा से प्रशिक्षित किया जाता है उनका निरन्तर महत्व बढ रहा है।[1]

आंग्ल शिक्षा में सुधार के उद्देश्य।

सबसे अच्छी आग्ल धारणाओं के आधार पर तकनीकी शिक्षा का उद्देश्य सामान्य शिक्षा की भाँति उद्योग की उच्चतर श्रेणियो के लिए प्रतिभा का प्राय निरन्तर विकास करना है। प्रगाढ सामान्य शिक्षा की भाँति ही इसका भो ऐसा ही आधार होना चाहिए, किन्तु इसे कुछ निश्चित व्यवसायो के लाभ के लिए ज्ञान की विशेष शाखाओं का विस्तार मे विश्लेषण करना चाहिए।[2] हमारा उद्देश्य उस वैज्ञानिक प्रशिक्षण को, जिसमे पश्चिमी यूरोप के देश हमसे आगे हैं ऐसी साहसपूर्ण एव अस्थिर शक्ति तथा ऐसी व्यावहारिक प्रवृत्तियो के साथ मिलाना है जिनका युवावस्था के सबसे अच्छे वर्षो को कारखाने मे व्यतीत करने पर ही विकास होता है। हमे हमेशा यह स्मरण रखना चाहिए कि सुचालित कारखानों में प्रत्यक्ष अनुभव से एक युवक अपने आप जो कुछ सीखता है उससे उसे अधिक शिक्षा मिलती है और उसकी मानसिक क्रिया को उस स्थिति की अपेक्षा अधिक उत्तेजना मिलती है जिसमे उसे किसी तकनीकी पाठशाला मे नमूने के औजारो मे अध्यापक द्वारा शिक्षा मिली है।[3]

---

1 जैसा कि नासमिथ (Nasmyth) कहते हैं: यदि एक बालक बिना सोचे समझे मटर के दो दानों को एक मेज पर डालने के पश्चात् तीसरे दाने को उन दोनों दानों के बीच एक सीधी रेखा में आसानी से रख सकता है तो वह एक अच्छा मिस्त्री बनेगा। इंग्लैंड के साधारण खेलों में आँख तथा हाथ पर शिशु-विहार (K nder-garten) के विनोदप्रिय कार्य से किसी भाँति कम नियंत्रण नहीं होता। चित्रकला का स्थान सदा ही ठीक कार्य तथा खेल की सीमा पर रहा है।

2 तकनीकी शिक्षा की सबसे बड़ी कमियों में एक कमी यह है कि इससे सापेक्ष सम्बन्ध की भावना (Sense of proportion) तथा विवरण की सरलता की शिक्षा नहीं मिलती। अंग्रेजों ने, और उनसे भी अधिक अमेरीका के लोगों ने, वास्तविक व्यवसाय में मशीनों तथा प्रक्रियाओं की उन विषमताओं को दूर करने की प्रतिभा प्राप्त करली है, जिन पर अपेक्षाकृत बहुत व्यय हुआ है। इस प्रकार की व्यावहारिक अतः प्रेरणा के कारण वे महाद्वीप के अधिक अच्छे शिक्षित प्रतिद्वन्द्वियों से प्रतियोगिता करने में बहुधा सफल हुए हैं।

3 यह अच्छी योजना है कि स्कूल छोड़ने के बाद अनेकों वर्षों तक जाड़ों के छः महीनों में कालेज में विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की जाय और ग्रीष्म के छः महीनों को बड़े कारखानों में अच्छे विद्यार्थियों की भांति व्यतीत किया जाय। इस योजना को वर्तमान लेखक ने चालीस वर्ष पूर्व ब्रिस्टल विश्वविद्यालय के कालेज में (जो कि अब ब्रिस्टल विश्वविद्यालय है) प्रस्तुत किया था। किन्तु इसमें व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं जिन्हें कालेज के अधिकारियों के साथ बड़ी फर्मों के प्रधानों के हार्दिक तथा उदार

शिक्षणावस्था। (apprenticeship) प्राचीन शिक्षा-प्रणाली आधुनिक दशाओं के पूर्णतया अनुकूल नही है और इसका अब लोप होने लगा है, किन्तु इसके स्थान पर एक प्रतिस्थापक प्रणाली की आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षो मे बहुत से सुयोग्य उत्पादको ने यह फैशन प्रारम्भ कर दिया है कि लडके उस व्यवसाय की हर अवस्था से होकर काम करे जिसका अन्ततोगत्वा नियंत्रण करना है। किन्तु इस प्रकार की अत्युत्तम शिक्षा कुछ ही लोगो को प्राप्त हो सकती है। किसी भी बडे आधुनिक उद्योग की इतनी अधिक, तथा अनेक प्रकार की शाखाएँ हैं कि नियोजको के लिए पहले की भाँति यह उत्तरदायित्व निभाना असम्भव है कि उनके साथ काम करने वाला प्रत्येक युवक सभी प्रकार की शाखाओं का काम सीख ले। वास्तव मे सामान्य योग्यता वाला युवक तो इस प्रकार की शिक्षा से घबड़ा जायेगा। किन्तु शिशा-प्रणाली को एक सशोधित रूप मे पुन. जीवित करना अव्यावहारिक प्रतीत होगा।[1]

इस समय तक प्राय इगलैंड मे ही उद्योगो मे युगान्तरकारी महान आविष्कार

सहयोग से दूर किया जा सकता है। दूसरी उत्कृष्ट योजना मैचेस्टर में सर्वश्री माथर (Mather) और प्लाट (Platt)के उद्योग से सम्बन्धित एक पाठशाला में अपनायी गयी थी। "वर्कशाप में जो कुछ कार्य चल रहा हो उसी के आलेखन (Drawings) विद्यालय में बनाये जाते हैं। एक दिन अध्यापक आवश्यक विवरणों एवं गणनाओं से अवगत करा देते हैं और उसके दूसरे दिन अध्यापक द्वारा बतलायी गयी बातों को छात्र प्रायः प्रयोगात्मक रूप में देखते हैं।"

1 नियोजक यह उत्तरदायित्व लेता है कि शिक्षु को अपने व्यवसाय के एक बहुत बड़े प्रभाग के सभी उप-विभागों के विषय में कारखाने में पूरी शिक्षा मिले, न कि वह किसी एक उप-विभाग को सीखे, जैसा कि प्रायः इस समय हो रहा है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का प्रशिक्षण बहुधा इतना ही व्यापक होगा कि मानों उसे उस व्यवसाय की कुछ पीढ़ी पूर्व की स्थिति के विषय में पूरी शिक्षा दी जा रही हो। किसी तकनीकी पाठशाला में उस विषय की सभी शाखाओ के सैद्धान्तिक ज्ञान की शिक्षा से इसे अनुपूरित किया जा सकता था। पुरानी शिक्षा-प्रणाली से मिलती-जुलती प्रणाली हाल ही में उन अंग्रेज युवकों के लिए प्रचलन में आयी है जो एक नये देश की विशेष दशाओं में कृषि के व्यवसाय को सीखने के इच्छुक हैं: ऐसे संकेत मिलते हैं कि इस देश में कृषि व्यवसाय में, जिसके लिए यह बहुत उपयुक्त है, यह योजना लागू की जायेगी। किन्तु कृषकों तथा कृषि मजदूरो के लिए उपयुक्त बहुत कुछ शिक्षा कृषि कालेजों तथा डेरी-पाठशालाओं में सर्वोत्तम ढंग से दी जा सकती है।

फिलहाल युवकों की तकनीकी शिक्षा के लिए बहुत बड़ी एजेंसियाँ, जैसे सार्वजनिक प्रदर्शनियाँ, व्यापारिक संगठन एवं सम्मेलन और व्यापारिक पत्रिकाएँ, तीव्रता से प्रगति कर रही हैं। इनमें प्रत्येक का कार्यक्षेत्र भिन्न है। कृषि तथा कुछ अन्य व्यवसायों में सार्वजनिक प्रदर्शन से सम्भवतः प्रगति में सबसे अधिक सहायता मिलती है। किन्तु उन उद्योगों में जो अधिक विकसित हैं, तथा अध्ययनशील आदतों वाले व्यक्तियों के हाथों में हैं, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान का व्यापारिक पत्रिकाओं से विशेष रूप से प्रसार होता है। उद्योग की इन प्रणालियो तथा सामाजिक दशाओं में

हुए हैं। किन्तु अब इस दौड मे अन्य देश भी आ गये है। अमेरीका की साधारण पाठशालाओ की उत्कृष्टता, उनके जीवन की विविधता, विभिन्न जातियो मे आपस मे विचारों के आदान-प्रदान, तथा उनकी कृषि की विशेष दशाओ के कारण वहाँ खोज करने की एक अशान्त भावना का प्रादुर्भाव हुआ है। अब तकनीकी शिक्षा का भी बडे जोरो के साथ विस्तार हो रहा है। इसके विपरीत, जर्मनी के मध्य तथा श्रमिक वर्गो के बीच वैज्ञानिक ज्ञान के फैलने, तथा साथ ही साथ आधुनिक भाषाओ से परिचित होने तथा ज्ञान के खोज मे उनके भ्रमण करने की आदतो के कारण वे अंग्रेज तथा अमेरीका के मिस्त्रियों का मुकाबला करने मे समर्थ हुए है और व्यवसाय मे रसायनशास्त्र के अनेक प्रकार से प्रयोग करने मे आगे बढ गये है।[1]

इंग्लैंड तथा अन्य देशों में आविष्कार।

§5. यह सत्य है कि अनेक प्रकार के ऐसे कार्य है जो शिक्षित श्रमिक की भाँति अशिक्षित व्यक्ति द्वारा समान कुशलता से सम्पादित किये जा सकते है, और नियोजको और फोरमैन तथा अपेक्षाकृत थोडे से जुलाहो के अतिरिक्त शिक्षा की उच्चतर शाखाओ का कोई भी प्रत्यक्ष उपयोग नही करता। किन्तु अच्छी शिक्षा से साधारण श्रमिक को भी बडे अप्रत्यक्ष लाभ होते है। इससे उसकी मानसिक क्रिया को उत्तेजना मिलती है, उसमे बुद्धिमता-पूर्ण जिज्ञासा की आदत बढती है। यह उसके साधारण कार्य मे उसे अधिक बुद्धिमान, अधिक तत्पर, अधिक विश्वसनीय बनाती है। यह काम मे तथा बाद मे भी उसके जीवन की भावना को ऊँचा उठाती है। इस प्रकार यह भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधान है। साथ ही साथ अतिम लक्ष्य होने के कारण यह किसी ऐसी चीज से घटिया नही है जो भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन का माध्यम है।

उच्च शिक्षा से किसी उद्योग के निचले वर्गों की कुशलता प्रत्यक्ष रूप से न बढ़ कर अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ेगी।

जनसमूह के सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा मे सुधार होने से राष्ट्र को जो तुरन्त ही आर्थिक लाभ प्राप्त होता है उसके एक अश, सम्भवत बडे अश का पता लगाने के लिए हमें दूसरी दिशा मे विचार करना चाहिए। हमे श्रमिक वर्गो के सामान्य लोगो के साथ होने वाले लोगो के विषय मे उतना अधिक ध्यान नही देना चाहिए जितना कि उन लोगो पर देना चाहिए जो साधारण घर मे जन्म लेकर उच्च श्रेणी के कुशल दस्तकार, फोरमैन अथवा नियोजक बनते है, और विज्ञान की सीमाओ का प्रसार करते है, अथवा राष्ट्रीय सम्पत्ति की कला एव इसके साहित्य मे सम्भवत. वृद्धि करते है।

जिन कारणों से व्यक्ति मेधावी बनता है उनको नही जाना जा सकता। यह सम्भव है कि श्रमिक वर्गो के उन बच्चो का प्रतिशत जिन्हे उच्चतम कोटि' की प्राकृतिक योग्यता मिली है इतना अधिक नही है जितना उन लोगो के बच्चो का जिन्होंने समाज

परिवर्तनों के होने से व्यापार की गुप्त बातें ज्ञात होने लगती है, और इससे कम साधनों वाले व्यक्तियों को अपने अधिक धनी प्रतिद्वंदियों का मुकाबला करने में मदद मिलती है

1 यूरोप में प्राय सभी प्रगतिशील फर्मों के प्रधानों ने विदेशी भूमि में विभिन्न प्रक्रियाओं तथा मशीनों का सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया है। अंग्रेज लोग बहुत भ्रमण करने वाले होते हैं, किन्तु सम्भवतः अन्य भाषाओंका ज्ञान न होने के कारण उन्होंने शायद ही तकनीकी शिक्षा को, जो भ्रमण का सदुपयोग करने से प्राप्त हो सकती है, बहुमूल्य समझा।

राष्ट्र की सबसे अच्छी प्रकृतिदत्त योग्यता अधिकतर श्रमिक वर्गों में ही मिलती है, किन्तु अब इसका अधिकांश-तया दुरुप-योग होता है।

मे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है या जिन्हे यह उत्तराधिकार के रूप मे मिला है। किन्तु श्रमिक वर्गों की सख्या ग्रन्य सभी वर्गों के कु ा योग का चार या पाँच गुन है। अतः यह असमव नही है क देश मे पैद ह ने वाले सब से अच्छे मेधावी व्यक्तियो का आधा भाग इन्ही वर्गों मे पाया जाता है और इसका अधिक भाग अवसर के अभाव मे बेकार हो जाता है। राष्ट्रीय धन के विकास के लिए कोई भी अपव्यय इतना हानिकारक नही जितनी वह असावधानी है जिसके फलस्वरूप नीच कुल मे पैद। होने वाले मेधावी नीच कार्यों मे लग रहते हैं। भौतिक धन मे, किसी भी परिवर्तन से इतनी तीव्र वृद्धि नही हो सकती है जितनी पाठशालाओ मे, और विशेष कर मध्यम श्रेणियो की पाठशालाओं मे, सुधार होने से हो सकती है। किन्तु इसमे छात्रवृत्ति की एक व्यापक पद्धति का होना आवश्यक है जिससे श्रमिक का चतुर बालक धीरे-धीरे एक पाठशाला से दूसरी पाठशाला मे तब तक आगे बढ सके जब तक वह उस काल की सबसे अच्छी सैद्धान्तिक तथा व्याव-हारिक शिक्षा न प्राप्त कर ले। मध्य युगो मे स्वतत्र शहरो तथा आजकल स्काटलैंड की अधि न श प्रगति श्रमिक वर्गों की योग्यता के कारण हुई है। यहाँ तक की इग्लैंड मे भी इसी प्रकार की शिक्षा मिलती है देश के उन भागों मे प्रगति सबसे तीव्र हुई है, जहाँ औद्योगिक नेताओ मे अधिक श भाग श्रमिक लोगो के लडको का है। दृष्टान्त के रूप मे विनिर्माण (manufacturing) युग के प्रारम्भ के समय इंग्लैंड के उत्तरी भाग की अपेक्षा दक्षिणी भाग मे साम जिक भेदभाव अधिक देखने को मिलता था और उनकी नीव काफी दृढ थी। दक्षिण मे जातीय भावना के समतुल्य विचारों के कारण श्रमिकों को तथा उनके बच्चों को अधिकार के पद प्राप्त न हो सके। पुराने समय के परि-वारो में मस्तिष्क की उस लोच तथा नवीनता का अभाव था जो सामाजिक लाभों के कारण किसी भी प्रकार प्राप्त नही हो सकती, तथा जो प्रकृति की ही देन है। इस जातीय भावना, तथा औद्योगिक नेताओं मे इस नये रक्त के अभाव के कारण इनका अस्तित्व बना रहा, और इग्लैंड के दक्षिणी भाग मे एसे अनेक शहर हैं जिनके पतन का, जहाँ तक हमे याद है, मुख्यत. यही कारण है।

कला की शिक्षा।

§6 कला की शिक्षा का आधार गहन चिन्तन की शिक्षा से कुछ भिन्न है : क्योंकि पश्चात्कुल से जहाँ प्राय आचरण निरन्तर शक्तिशाली होता है वहाँ पूर्वोक्त से बहुधा एसा नही होता, तथ पि लोगो की कलात्मक प्रतिभाओ का विकास ही सबसे बड़ा लक्ष्य है और यह औद्योगिक कुशलता का एक प्रमख कारण रहा है।

यहाँ हमारा कला को केवल उन शाखाओ से सम्बन्ध है जो आँखो को प्रिय हैं। क्योंकि यद्यपि साहित्य तथा सगीत जीवन की पूर्णता के लिए इतना ही नही बल्कि इससे भी अधिक योगदान देते हैं, तथापि उनके विकास का न तो व्यवसाय की प्रणालियो, विनिर्माण की प्रक्रियाओ तथा दस्तकारो की कुशलता पर सीधा प्रभाव पड़ता है और न वे इन पर निर्भर हैं।

जहाँ सामा-जिक तथा औद्योगिक परिवर्तन मंद हो वहाँ

मध्य युगों मे यूरोप के तथा अब पूर्वीय देशों के दस्तकार को वास्तव मे अपनी मौलिकता से अधिक साख प्राप्त हुई है। दृष्टान्त के लिए पूर्वीय देशों मे बने हुए गलीचों मे मध्यकला का दिग्दर्शन होता है। किन्तु यदि हम किसी एक स्थान की अनेक शता-ब्दियो की कला से चयन किये गये अनेक उदाहरणो को देखें तो बहुधा हमे उनके आधार-भूत विचारो मे बहुत ही कम अन्तर दिखायी देगा। किन्तु तीव्र परिवर्तन के आधुनिक

युग में जहाँ कुछ परिवर्तन फैशन से तथा कुछ औद्योगिक एवं सामाजिक प्रगति की हितकारी गतिविधियों के कारण होते हैं—प्रत्येक स्वच्छन्द रूप से नये प्रकार के मार्ग जो अपनाने लगता है, प्रत्येक को मुख्यकर अपने ही साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है: उसे मार्ग दिखलाने के लिए ऐसी कोई सार्वजनिक आलोचना नही है जो धीरे-धीरे परिपक्व हुई हो।[1]

पर कला परिपक्व भावनाओं से संचालित होती है, और बड़ी मात्रा में योग्य व्यक्ति कला की ओर आकर्षित होते हैं।

हमारे युग मे कलात्मक अभिकल्प को केवल यही, सम्भवत: यही, प्रमुख कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। यह विश्वास करने का कोई भी विशेष कारण नही है कि मध्य युगों मे साधारण श्रमिकों के बच्चों मे आजकल के साधारण ग्रामीण बढ़इयो अथवा लोहारों के बच्चों से कलात्मक आविष्करण (origination) की शक्ति अधिक थी। किन्तु यदि दस हजार मे से एक व्यक्ति मेधावी निकलता था तो उसकी बुद्धिमत्ता उसके काम में निखर आती थी तथा उसे संघों (gilds) की प्रतियोगिता से तथा अन्य प्रकार से प्रोत्साहन मिलता था। किन्तु आधुनिक दस्तकार मशीन के प्रबन्ध मे सम्भवत. लगा रह सकता है, और जिन प्रतिभाओं का वह विकास करता है वे चाहे अधिक ठोस हों और दीर्घकाल मे मानवजाति की उच्चतम प्रगति मे अपने मध्यकालीन पूर्वज की रुचि तथा कल्पना की अपेक्षा अधिक सहायक हों, तथापि वे कला की प्रगति मे प्रत्यक्ष रूप से योगदान नही देती। यदि वह अपने को अन्य साथियों की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर की योग्यता वाला अनुभव करे तो वह सम्भवत: व्यापारिक सघ अथवा अन्य समिति के प्रबन्ध में प्रमुख भाग लेने का प्रयत्न करेगा अथवा कुछ सम्पत्ति का संग्रह करेगा, और जिस व्यवसाय की उसे शिक्षा मिली थी उसमे उन्नति करेगा। ये उद्देश्य बुरे नही हैं, किन्तु उसकी महत्वाकांक्षा सम्भवत: ससार के हित के लिए अधिक प्रशंसनीय तथा अधिक लाभदायक होती यदि वह अपने पुराने ही व्यवसाय मे लगा रहता और ऐसी सुन्दर चीजों को बनाने का प्रयास करता जो उसके मृत्यु पर्यन्त भी विद्यमान रहती।

---

1 वास्तव में आदि काल में प्रत्येक अभिकल्पी (Designer) पहले की घटनाओं से प्रभावित होता है: केवल अत्यधिक साहसी लोग ही नयी पद्धति अपनाते हैं। यह पद्धति पुरानी पद्धतियों से बहुत भिन्न नहीं होती, और उनके प्रवर्तनों (Innovations) को अनुभव से परखा जाता है जो दीर्घकाल में दोषरहित निकलते हैं। क्योंकि यद्यपि लोग कुछ समय तो समाज में अपने से उत्कृष्ट व्यक्तियों के आदेश पर कला तथा साहित्य के अत्यधिक असंस्कृत तथा उपहासजनक आचार को स्वीकार कर लेंगे, किन्तु केवल वास्तविक कलात्मक उत्कृष्टता के कारण *आल्हा (Ballad)* अथवा मधुर संगीत, पहिनने के कपड़ों का ढंग अथवा एक प्रकार का फर्नीचर, सारे देश में अनेक पीढ़ियों तक लोकप्रिय रहेगा। इन प्रवर्तनों में जो प्रवर्तन कला की वास्तविक भावना के प्रतिकूल थे उन्हें तो दबा दिया गया और जो सही दिशा में थे उनको अछूता रखा गया, और यही आगे की प्रगति के आरम्भ बिन्दु बन गये। इस प्रकार परम्परागत भावनाओं ने पूर्वीय देशों से और कुछ सीमा में मध्यकालीन यूरोप में औद्योगिक कलाओं की शुद्धता को बनाये रखने में बहुत योगदान दिया।

किन्तु आधुनिक समय में अभिकल्प संकुचित व्यवसाय तक ही सीमित है और यह फैशन के अनुकूल है।

यह मानना ही होगा कि ऐसा करने मे उसे बड़ी कठिनाइयां होंगी। सजावट की कलाओं में अल्पकालीन परिवर्तन इतने हानिकारक नही होते जितने कि शायद ऐसे परिवर्तन जो संसार के अधिक क्षेत्रो मे हुए हैं। इसके फलस्वरूप अभिकल्पी जो अपने काम को परिस्थितिवश करता था, वैसा करना भी कठिन समझता है क्योंकि उसे कला की चीजों की माँग तथा उनके सम्भरण के सम्बन्ध मे ससार की गतिविधियों को निरन्तर ध्यान मे रखना पडता है। दस्तकार के लिए ऐसा काम करना बहुत कठिन है। इसके परिणामस्वरूप आजकल एक सामान्य दस्तकार अगवाई न कर अनुकरण करना सर्वोत्तम समझता है। स्वयं लाइन्स (Lyons) के जुलाहे की पूर्वजो से प्राप्त उत्तम कुशलता अब पूर्णत सूक्ष्म हेर-फेर की शक्ति तथा रग की सुन्दर अनुभूति (perception) तक ही सीमित रह गयी है जिसके फलस्वरूप वह व्यावसायिक अभिकल्पियो के विचारों को पूर्णतया अभिव्यक्त करने मे समर्थ होता है।

धन मे वृद्धि होने के कारण लोग सभी प्रकार की चीजों को अपने पहनने की शक्ति की अपेक्षा मुख्यत इच्छापूर्ति के लिए खरीदते है। इससे सभी प्रकार के वस्त्रो तथा फर्नीचर की बिक्री के सम्बन्ध मे यह कहना अधिक सत्य होगा कि वस्तुओ की बिक्री उनके प्रतिमान (pattern) पर निर्भर है। स्वय फ्रांसीसियो ने यह स्वीकार किया है कि इग्लैंड मे तैयार किये गये कुछ निश्चित प्रकार के कपडे तथा सजावट की वस्तुएँ प्रथम श्रेणी की हैं। इसका कारण यह है कि स्वर्गीय विलियम मौरिस तथा अन्य लोगो के प्रभाव से तथा साथ ही साथ इंग्लैंड के अभिकल्पियो को पूर्वीय देशो, और विशेषकर फारस तथा भारत के रग मे प्रवीण व्यक्तियो से अगवानी प्राप्त हुई थी, किन्तु अन्य दिशाओं मे फ्रास का स्थान सर्वोच्च है। कुछ अग्रेज उत्पादको का जो प्रतियोगिता मे ससार मे डटे हुए है ऐसा कहा जाता है, बाजार मे कोई अस्तित्व ही नही रह जाता यदि वे वस्त्रो के उत्पादन मे आग्ल नमूनो तक ही सीमित रहते। इसका आशिक कारण यह है कि औरतो के वस्त्रो मे वंशानुगत तीव्र एव सूक्ष्म अभिरुचि के कारण पेरिस फैशन मे अग्रगामी रहा है। पेरिस का अभिकल्प आने वाले फैशनो के अनुरूप होगा और अन्य स्थानों के समान आन्तरिक मूल्य वाले अभिकल्प की अपेक्षा अधिक बिकेगा।[1]

---

1 फ्रांस के अभिकल्पी पेरिस में रहना ही सर्वोत्तम समझते हैं: यदि वे फैशन की केन्द्रीय गतिविधियों के सम्पर्क से अधिक समय तक दूर रहें तो अपने को पिछड़ा पाते है। यद्यपि उनमें अधिकांश लोगों को कलाकार बनने की शिक्षा मिली है, किन्तु अपनी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा की पूरा पूरने में वे सफल हुए। केवल अपवादजनक दशाओं में ही जैसा कि उदाहरण के लिए सेवर्स के चाइना बर्तनों को बनाने के लिए, कलाकारों के रूप में सफल हुए व्यक्ति आकल्पन करना लाभदायक समझते हैं। अंग्रेज लोग पूर्वीय बाजारों के आकल्पन में सफल हुए है और इस बात का प्रमाण मिलता है कि अंग्रेजों में कम से कम फ्रान्सीसियों के बराबर तो मौलिकता होती ही है; भले ही वे एक प्रभावपूर्ण परिणाम प्राप्त करने के लिए विभिन्न रूप में व रंगों को शीघ्रता से मिश्रित करने की कला में पिछड़े हुए है (Report on Technical Educatin) खंड I, पृष्ठ 256, 261, 324, 325 तथा खंड III, पृष्ठ 151, 152, 202, 203, 211

यद्यपि तकनीकी शिक्षा से विज्ञान अथवा व्यापार में जितनी मेधा-शक्ति बढ़ती है उसकी अपेक्षा कला मे प्रत्यक्षरूप मे इसकी अधिक वृद्धि नही होती तथापि यह बहुत-सी प्राकृतिक कलात्मक मेधा को नष्ट होने से बचा सकती है। इस प्रकार की कार्य-पद्धति और भी अधिक आवश्यक है क्योकि पुराने प्रकार के हस्तशिल्प के प्रशिक्षण को बड़े पैमाने पर पुनर्जीवित नही किया जा सकता।[1]

शिक्षा राष्ट्रीय विनियोजन है, और उसे देना माँ-बाप का कर्तव्य है।

§7 अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत निधि को शिक्षा पर व्यय करने की बुद्धिमत्ता को केवल इससे मिलने वाले प्रत्यक्ष लाभो से ही नही म पा जा सकता। केवल विनियोजन के रूप मे ही जनसमूह को जितनी सुविधाएँ साधारणतया स्वयं मिल सकती हैं उनसे बहुत अधिक सुविधाएँ प्रदान करना लाभदायक होगा। क्योकि इस प्रकार से बहुत से लोगो को जिन्हे कोई बाद मे जानता भी नही अपनी छिपी हुई योग्यताओ के प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक अवसर मिल जाता है। एक महान औद्योगिक मेधावी का आर्थिक मूल्य सारे शहर मे शिक्षा पर खर्च होने वाली धनराशि को पूरा करने के लिए पर्याप्त है, क्योकि बसेमर (Bessemer) के मुख्य आविष्कार की भाँति एक नये विचार से इग्लैंड की उत्पादक शक्ति मे उतनी ही वृद्धि होती है जितनी एक लाख लोगो के श्रम से हो सकती है। गणित अथवा प्राणि-विज्ञान के समान वैज्ञानिक कार्य से, भले ही अधिक भौतिक सुख-समृद्धि के लिए प्रत्यक्ष फल मिलने में अनेक पीढ़ियाँ लग जायँ, तथा जुनर (Jenner) अथवा पास्चर (Pasteur) की चिकित्सा सम्बन्धी खोजो से उत्पादन मे मिलने वाली वह सहायता यद्यपि कम प्रत्यक्ष है जो हमारे स्वास्थ्य और कार्य करने की शक्ति को बढ़ाती है, तथापि इसका कम महत्व नही है। अनेक वर्षों तक लोगो को उच्चतर शिक्षा के साधन प्रदान करने मे जो खर्च करना पड़ा उसका उचित भुगतान हो जायगा यदि इससे एक और

तथा उसके बाद के सभी पृष्ठों को देखिए)। यह सम्भव है कि आधुनिक अभिकल्पी का व्यवसाय अभी अपनी क्षमता के अनुकूल सर्वोत्तम स्थिति तक नहीं पहुँचा। क्योकि इस पर एक देश का ही अपेक्षाकृत बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, और यह वह देश है जिसकी कला की श्रेष्ठतम शाखाओं से सम्बन्धित कृतियों को कदाचित ही अन्य देशो में प्रतिरोपित किया जा सकता है। वास्तव में अन्य देशो ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा इन्हें अपनाया है, किन्तु ये अभी तक शायद ही बाद की पीढ़ियो की सुन्दरतम कृति के आधार रहे हैं।

1 स्वयं रंगसाजों ने रूपचित्रों की वीथी (गैलरी) में यह तथ्य लिपिबद्ध कर दिया है कि मध्यकालीन समयो में, और बाद में भी, उनकी कला ने बुद्धिमान लोगों के एक बड़े भाग को आज की अपेक्षा अधिक आकर्षित किया, आजकल तो आधुनिक व्यवसाय की उत्तेजना से युवकों की महत्वाकांक्षा को प्रलोभन मिलता है। आधुनिक विज्ञान की खोजों में नष्ट न होने वाली प्रतिभा के लिए पर्याप्त क्षेत्र विद्यमान है, और अंत में, अनेक लोगों को सामयिक साहित्य (Periodical Literature) में जल्दी में लिखे गये अपूर्ण विचारो से तुरन्त आमदनी होने के कारण सर्वोत्तम बुद्धि मूर्खतावश ऊँचे लक्ष्यों से विचलित हो जाती है।

न्यूटन या डारविन, शेक्सपियर या बीथोवन (Beethoven) जैसा व्यक्ति उत्पन्न हो जाय।

बच्चो की शिक्षा पर होने वाले खर्च को माँ-बाप तथा राज्य के बीच किस प्रकार विभाजित किया जाय, इस समस्या के अतिरिक्त कुछ ही ऐसी व्यावहारिक समस्याएँ है जिनमे अर्थशास्त्री को अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष रुचि होती है। किन्तु अब हमे उन दशाओ पर विचार करना चाहिए जिनसे माता-पिता के हिस्से मे आने वाले व्यय को चाहे यह कितना ही हो, वहन करने की शक्ति एव इच्छा निर्धारित होती है।

अधिकाश माता-पिता अपने बच्चो के लिए वह सब कुछ करने को तत्पर रहते है जो कि उनके माता-पिता ने उनके लिए किया था, और सम्भवतः वे इससे भी कुछ और अधिक करेंगे यदि वे ऐसे पड़ोसियो के बीच मे हो जिनके रहन-सहन का स्तर वस्तुतः अधिक ऊँचा हो। किन्तु इससे अधिक करने के लिए स्वार्थहीनता के नैतिक गुणो तथा सहृदयतापूर्ण स्नेह के अतिरिक्त, जिनका शायद अभाव नही है, मस्तिष्क की एक खास आदत का होना आवश्यक है जो अभी तक अधिक सामान्य नही है। इसके लिए भविष्य को स्पष्ट रूप से पहचानने, सुदूर की घटनाओं को (भविष्य का नीची व्याज की दर पर बट्टा काटते हुए) लगभग निकट की ही भाँति महत्वपूर्ण समझने, की आदत का होना आवश्यक है। यह आदत निश्चय ही सभ्यता की मुख्य उपज है और इसका मुख्य कारण है, और अधिक उन्नतिशील देशों के मध्य तथा उच्च वर्गों के अतिरिक्त इसका कदाचित ही पूर्ण विकास हुआ है।

विभिन्न श्रेणियों के बीच तथा श्रेणियों के भीतर गतिशीलता।

§8. माता-पिता साधारणतया अपने बच्चो को अपनी श्रेणी के काम धन्धो मे ही शिक्षित करते है, और अतएव एक पीढ़ी मे किसी एक श्रेणी मे श्रम की कुल पूर्ति उससे पहले की पीढ़ी मे उस श्रेणी मे काम करने वालों की सख्या से बहुत कुछ निर्धारित होती है। फिर भी एक श्रेणी के काम के अन्दर अधिक गतिशीलता है। यदि इसमे से किसी एक पेशे के लाभ औसत से बढ जाते है तो उसी श्रेणी मे पाये जाने वाले पेशो से युवक लोग तुरन्त ही उसमे आना आरम्भ कर देते हैं। एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी मे ऊँचे पदो की ओर आना-जाना कदाचित ही अधिक तीव्र अथवा अधिक बड़े पैमाने पर होता है। किन्तु यदि किसी व्यवसाय के लाभ इसके लिए आवश्यक कार्य की कठिनाई की अपेक्षा अधिक हो जाते हैं तो नवयुवक तथा युवक दोनों के बहुत से छोटे-छोटे रेले इस ओर उमडने लगते है, और यद्यपि इसमे से कोई भी बहुत बड़ा नही है तथापि सभी रेले मिलकर उस श्रेणी की श्रम के लिए बढ़ी हुई माँग को कुछ ही समय मे पूरा करने के लिए पर्याप्त हैं।

अस्थाई निष्कर्ष।

हम किसी स्थान की उन दशाओ का तथा समय की उन बाधाओं का जो श्रम की गतिशीलता तथा अपने पेशे को बदलने या अपने लड़के को किसी अन्य पेशे के लिए शिक्षित करने की प्रेरणा देने मे बाधाएँ पहुँचाती हैं, बाद मे विषद अध्ययन करेंगे। किन्तु पर्याप्त अवलोकन के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अन्य बातो के समान रहने पर, मजदूरी की दर मे वृद्धि होने से इसकी मात्रा मे भी वृद्धि होती है, अथवा अन्य शब्दो में, इसकी माँग कीमत मे वृद्धि से इसकी पूर्ति भी बढ़ती है। यदि ज्ञान, नैतिक, सामाजिक तथा घरेलू आदतों का स्तर ज्ञात हो तो सभी लोगों के ओज

का, यदि उनकी संख्या का न भी हो, और किसी विशेष व्यवसाय मे काम करने वाले लोगों की संख्या की तथा उनके ओज की इस अर्थ मे सभरण कीमत होगी कि माँग कीमत क. एक ऐसा निश्चित स्तर है जिस पर ये स्थिर रहेगी और एक ऊँची कीमत पर ये बढ़ने लगेगी तथा नीची कीमतो पर घटने लगेगी। इस प्रकार आर्थिक कारण जनसंख्या की वृद्धि तथा किसी निश्चित श्रेणी मे श्रम की पूर्ति को प्रमावित करते है। किन्तु सम्पूर्ण जनसंख्या पर उनका प्रभाव अधिकतर अप्रत्यक्ष होता है और यह जीवन की नैतिक, सामाजिक तथा घरेलू आदतों द्वारा पडता है। क्योकि स्वय ये आदते आर्थिक कारणो से अधिक प्रभावित होती हैं भले ही ऐसा धीरे-धीरे होता है, तथा ऐसे ढंगो से होता है जिनमे से कुछ का पता लगाना कठिन है, और उनके विषय मे तो अनुमान लगाना ही असम्भव है।[1]

---

1 मिल माता-पिता को अपने बच्चे को अपने से बिलकुल ही भिन्न प्रकार के पेशे के लिए शिक्षित करने के प्रयास में होने वाली कठिनाइयों से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने यह कहा (Principles, भाग II, अध्याय XIV, अनुभाग 2):—"वास्तव में विभिन्न श्रेणियों में श्रमिकों का एक दूसरे से अलगाव अब तक इतना अधिक रहा है तथा इनके बीच विभाजन की रेखा इतने दृढ़ रूप में अंकित रही है कि यह जाति के वंशानुगत भेदभाव में मिलता है। हर एक प्रकार का रोजगार मुख्यतया इनमें पहले से काम करने वाले लोगों अथवा सामाजिक गणना में समान ही श्रेणी के लोगों, अथवा उन लोगों के बच्चों को मिलता था जो मूलरूप में निम्नस्तर के थे, किन्तु जो अपने श्रम द्वारा अपने को उठाने में सफल हो गये थे। उदार पेशों में अधिकांशतया या तो पेशीय वर्गों अथवा बेरोजगार वाले वर्गों के बच्चे जाते हैं: अधिक कुशलता एवं शारीरिक श्रम वाले रोजगारों में या तो कुशल दस्तकारों के लड़कों की अथवा समान श्रेणी के व्यापारिक वर्गों के बच्चों की नियुक्ति की जाती है। निम्न वर्गों के कुशल रोजगारों में यही स्थिति है और यदाकदा के अपवादों के अतिरिक्त कुशल श्रमिक पिता से लेकर पुत्र तक आदिम अवस्थाओं में ही रहते हैं। परिणामस्वरूप अब तक प्रत्येक वर्ग की मजदूरी देश की सामान्य जनसंख्या की अपेक्षा अपने वर्ग की जनसंख्या में वृद्धि से नियंत्रित होती रही है।" किन्तु वह आगे कहते हैं कि 'प्रयोग तथा विचारों में अब जो तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं उनसे इन सभी विभेदों का महत्व कम हो रहा है।"

उनके लिखने के समय से इस समय तक के परिवर्तनों से उनके भावी ज्ञान की पुष्टि हो जाती है। विभाजन की जिन स्थूल रेखाओं को उन्होंने बतलाया था वे कुछ ऐसे कारणों के तीव्र अभाव के कारण लुप्त हो गयी हैं जिनसे, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा था, कुछ धन्धों के लिए आवश्यक कुशलता तथा योग्यता की मात्रा में कमी हो गयी है तथा अन्य धन्धों में उसकी वृद्धि हुई है। हम अब अधिक समय तक विभिन्न धन्धों को चार श्रेणियों में बँटा हुआ नहीं मान सकते किन्तु हम उनको सम्भवतः असमान विस्तार की उन सीढ़ियों की पंक्ति से मिलता-जुलता मान सकते हैं जिनमें से कुछ इतने अधिक चौड़े हैं कि ये उतरने के मंच का काम कर सकते हैं। या इससे भी बढ़ कर यह होगा कि हम अपने मस्तिष्क में सीढ़ियों की दो पंक्तियों का चित्रण कर

लें जिनमें से एक को 'अधिक कुशल उद्योगों' का और दूसरे को 'कम कुशल 'उद्योगों' का प्रतीक समझें, क्योंकि इन दोनों के बीच के ऊर्ध्वाधर (vertical) विभाजन वास्तव में उतना ही व्यापक और स्पष्ट अंकित है जितना किन्हीं दो श्रेणियों का क्षैतिज (horizental) विभाजन।

मिल के वर्गीकरण का महत्व उस समय प्रायः समाप्त हो गया था जब कैरनेस ने इसे अपनाया था (Leading Principles पृष्ठ 72)। इस समय की दशाओं के अधिक अनुकूल वर्गीकरण को गिडिंस (Giddings) ने प्रस्तुत किया था (Political Science Quarterly, खंड II, पृष्ठ 69–71)। इसकी यह आलोचना की गयी है कि इसमें यहाँ पर स्थूल विभाजन किया गया है जहाँ पर प्रकृति इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं करती। किन्तु सम्भवतः यह विभाजन उतना ही उत्तम है जितना कि किसी उद्योग का चार श्रेणियों में विभाजन करना। उनके वर्गीकरण इस प्रकार हैं:—(1) स्वचालित शारीरिक श्रम जिसमें साधारण श्रमिक तथा मशीन के टेंडर शामिल हैं; (2) उत्तरदायित्वपूर्ण शारीरिक श्रम, जिसमें वे लोग शामिल हैं जिन्हें कुछ उत्तरदायित्व तथा स्वयं निदेशन का भार सौंपा जा सकता है; (3) स्वचालित बुद्धिजीवी जैसे कि मुनीम, और (4) उत्तरदायित्वपूर्ण बुद्धिजीवी, जिनमें, संचालक तथा निदेशक शामिल हैं।

जनसंख्या के एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में, बड़े पैमाने पर तथा निरन्तर ऊपर-नीचे होने की गति की दशाओं तथा प्रणालियों का आगे भाग 6 के अध्याय 4, 5 तथा 7 में अधिक विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

लड़कों द्वारा अपने पिता के पेशे को चलाने तथा अन्य ऐसे कामों को करने के लिए बढ़ती हुई माँग के कारण जिनमें शिक्षा का महत्व नहीं होता, इस बात का भय बढ़ गया है कि कहीं माता-पिता अपने लड़कों को ऐसे कामों में न लगायें जिनका बाद में रोजगार की दृष्टि से अच्छा भविष्य हो: और सार्वजनिक संस्थाओं तथा पुरुषों एवं स्त्रियों की वैयक्तिक संस्थाओं द्वारा अपनी आस्था तथा शक्ति के कारण 'सम्पन्न बनाने में असमर्थ' व्यवसायों के विरुद्ध सचेत रहने के कुछ संकेत मिलते रहे हैं, और ये शिशुओं को कुशल कार्य के लिए तैयार करने में सहायक हुए हैं। इन प्रयत्नों का राष्ट्रीय मूल्य बहुत अधिक है। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि श्रमिक वर्गों के उच्चतर कुलों के लोगों को भी आवश्यकता पड़ने पर निम्नतर कुलों की भाँति इस प्रकार की सहायता तथा पथप्रदर्शन मिल सके जिससे जाति का पतन न हो।

अध्याय 7

धन की वृद्धि

§1. इस अध्याय मे उन विभिन्न दृष्टिकोणो पर विचार करना आवश्यक नही जिनमे धन को या तो उपयोग की वस्तु समझा जाता है अथवा उत्पादन का कारक माना जाता है। हमारा उद्देश्य केवल धन की वृद्धि पर विचार करना है, अतः इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नही कि इसके उपयोगो को ही पूँजी कहा जाता है।

असभ्य राष्ट्रों में धन के रूप।

आदिकाल मे शिकार करने तथा मछलियाँ मारने के लिए उपयोग किये जानेवाले औजार और निजी आभूषणो तथा ठण्डे देशो मे कपड़े और झोपडियाँ सम्भवतः धन के विभिन्न रूप थे।[1] इस काल मे लोगो ने जानवरो को पालना आरम्भ किया, किन्तु प्रारम्भ में उनको केवल इसलिए पाला गया कि वे देखने मे सुन्दर थे, अतः उन्हे रखना आनन्ददायक था। वे निजी आभूषणो की भाँति समझे जाते थे और उन्हे इसलिए नही पाला जाता था कि उन्हें पालने से भविष्य की किसी आवश्यकता की पूर्ति होगी, अपितु उन्हे पालने से तुरन्त आनन्द मिलता था।[2] क्रमशः पालतू जानवरो का झुण्ड बढने लगा। चरागाह के युग मे लोग उन्हे रखने मे आनन्द तथा गर्व का अनुभव करते थे, क्योंकि इससे समाज मे व्यक्ति के स्थान का पता लगता था, और भविष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उन्हे धन के रूप मे एकत्र किया जाता था।

सभ्यता के प्रारम्भिक

जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गयी लोग खेती के काम मे लग गये, और खेतिहर भूमि का धन की सूची मे प्रथम स्थान हो गया। भूमि मे सुधार के फलस्वरूप (जिनमे

---

1 आदिकाल में सम्पत्ति के रूप में होने वाली वृद्धि तथा जीवन के सुन्दर ढंगों का संक्षिप्त तथा सांकेतिक अध्ययन टाइलर (Tylor) द्वारा लिखी गयी पुस्तक (Anthropology) में मिलता है।

2 गाल्टन ने जंगली जातियों द्वारा पालतू जानवर रखने के विषय में जिन तथ्यों को एकत्रित किया था बैगटोट ने उन्हें (Economic Studies पृष्ठ 163–5) में उद्धृत करते हुए यह दर्शाया कि इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एक जंगली जाति अपने भविष्य के लिए चाहे कितनी ही लापरवाह क्यों न हो, कुछ न कुछ अवश्य ही प्रबन्ध करती है। धनुष तथा मछली के जाल का जिससे दिन का भोजन भलीभाँति प्राप्त हो सकता है, बहुत दिनों तक उपयोग किया जा सकता है। एक घोड़ा अथवा नाव जिन पर बैठकर लोग दिन में भली भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं उनसे भविष्य में बहुत समय तक आनन्द प्राप्त हो सकता है। नृशंस जंगली लोग यद्यपि भविष्य के विषय में बहुत कम सोचते हैं, किन्तु वे बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी कर सकते हैं क्योंकि ये उनके वर्तमान धन तथा शक्ति के प्रतीक हैं।

काल में धन के रूप।

कुओं द्वारा सबसे अधिक सुधार हुआ) इसके मूल्य में जो वृद्धि हुई वह संकुचित अर्थ मे सम्पत्ति का मुख्य अंग बन गयी। महत्व के दृष्टिकोण से मकान, पालतू जानवर तथा कुछ स्थानो मे नावो तथा जहाजों का स्थान इसके बाद मे आता है। किन्तु उत्पादन के औजारों का महत्व बहुत समय तक कम रहा है—चाहे ये औजार खेती में उपयोग किये जाते रहे हों अथवा घरेलू उद्योगों मे। कुछ स्थानों में आरम्भ में ही लोग कीमती पत्थरों तथा कीमती धातुओ को विभिन्न रूपों मे प्राप्त करने के लिए अत्यन्त इच्छुक होने लगे और इन रूपो मे धन का संचय करने लगे। राजाओं के महलों के विषय मे तो कुछ कहना ही नही। अनेक अपेक्षाकृत असभ्य जातियों मे सार्वजनिक उपयोग के लिए बनायी गयी इमारते मुख्यकर धार्मिक कार्य के लिए बनायी गयी इमारते, अथवा सड़के, पुल, नहर, अथवा सिंचाई के साधन सामाजिक धन के रूप समझे जाने लगे।

अभी हाल तक कीमती सहायक पूंजी का बहुत कम उपयोग किया जाता था।

हजारों वर्षो तक सचित धन मुख्यतया इन्ही रूपों मे पाया गया। कस्बों मे मकान तथा घरेलू फर्नीचर को धन मे पहला स्थान मिलता था और इसका बहुत बड़ा अंश कीमती कच्चे माल के भडार के रूप मे भी पाया जाता था। यद्यपि शहरो के निवासियों के पास गाँव में रहने वालो की अपेक्षा प्रति व्यक्ति अधिक धन था परन्तु उनकी सख्या कम थी और उन सबका कुल धन गाँव मे पाये जाने वाली धन की अपेक्षा कम था। इस काल मे वस्तुओं को ले जाने के लिए जल यातायात मे ही केवल कीमती औजारो का उपयोग किया जाता था· जुलाहे के करघे, किसान के हल तथा लोहार की निहाइयाँ साधारण ढग के बने हुए थे, अत. सामान ढोने वाले जहाजों के अतिरिक्त इन साधारण औजारों का कुल मिला कर मूल्य बहुत कम था। किन्तु इग्लैंड मे कीमती औजारों का प्रयोग अट्ठारहवी शताब्दी मे आरम्भ हुआ।

किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इनका उपयोग बहुत बढ़ गया है।

इग्लैंड मे किसानों के कीमती औजारों की सख्या मे बहुत समय तक उत्तरोतर वृद्धि होती गयी, परन्तु अट्ठारहवी शताब्दी मे इनमे तीव्रता से प्रगति हुई। कुछ समय के बाद पहले जल-शक्ति, बाद मे वाष्प-शक्ति के प्रयोग होने के कारण उत्पादन के एक विभाग से दूसरे विभाग मे हाथ के बने हुए सस्ते औजारों के स्थान पर कीमती मशीनो का उपयोग होने लगा। प्राचीन काल मे जिस प्रकार जहाज तथा कभी-कभी नौपरिवहन तथा सिंचाई के काम मे आने वाली नहरें कीमती उपकरण समझी जाती थी, उसी प्रकार इस समय भी सामान्य रूप मे गमनागमन (Locomotion) के साधन—रेल, ट्राम, नहरे, नौकागार और जहाज, तार तथा टेलीफोन व्यवस्था, जलकल—अधिक कीमती है। यहाँ तक गैस के कारखाने भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं क्योकि संयत्र के अधिकाश भाग को गैस के वितरण के काम मे लाया जाता है। इनके बाद खानो तथा लोहे एव रासायनिक कारखानो, जहाज बनाने के यार्ड (yards), छापाखानो तथा अन्य बडी फैक्टिरियों में प्रयोग की जाने वाली कीमती मशीनों का स्थान आया।

जिस ओर भी हम देखें यह पता लगता है कि प्रगति तथा ज्ञान के विस्तार के फलस्वरूप उत्पादन की नयी विधियों को अपनाया जा रहा है, तथा नये प्रकार की मशीनों का निरन्तर प्रयोग किया जा रहा है। इससे मनुष्य के श्रम की बचत होती है, किन्तु अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्नों में कुछ न कुछ श्रम का उपयोग

करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रगति को सही-सही मापना कठिन है, क्योंकि इस समय पाये जाने वाले अनेक उद्योग पुराने जमाने में नहीं थे। किन्तु अब हम उन चार उद्योगों की भूत तथा वर्तमान दशाओं पर विचार करें जिनके उत्पादन के सामान्य स्वरूप में परिवर्तन नहीं हुआ है: ये इस प्रकार है:—कृषि, भवन निर्माण, वस्त्र उद्योग तथा यातायात के काम। इन पहले दो प्रकार के उद्योगों मे इस समय भी हाथ से काम अधिक होता है, किन्तु इन में कीमती मशीनों का अधिक प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए, भारतीय किसान द्वारा अभी भी प्रयोग किये जाने वाले पुराने ढंग के औजारों की इंग्लैंड के निचले भागों में रहने वाले प्रगतिशील किसानों के औजारों के साथ तुलना कीजिए![1] अब हम ईंट तथा जोड़ने का मसाला बनाने, लकड़ी की चिराई करने, उसे समतल बनाने, आधुनिक ढंग से इमारत बनाने के लिए काम मे आने वाली ढालने की तथा स्वचालित छेदवाली मशीनों, भाप से चलने वाली क्रेन तथा बिजली की रोशनी पर विचार करेंगे।

यदि हम कपड़े के उद्योगों अथवा साधारण वस्तुओं को तैयार करने वाले उद्योगो पर विचार करें तो यह पता लगता है कि प्रारम्भिक काल मे प्रत्येक मशीन पर काम करने वाला उतने ही औजारों से सन्तुष्ट रहता था जिनका मूल्य उसके कुछ महीनों के वेतन के बराबर था, किन्तु यह अनुमान लगाया गया है कि आधुनिक युग में प्रत्येक पुरुष, स्त्री अथवा काम करने वाले बालक के पीछे 200 पौ० से अधिक संयन्त्र के रूप मे पूँजी पायी जाती है जो उनके पाँच साल के वेतन के बराबर होगी। भाप से चलने वाले जहाज का मूल्य उस पर काम करने वाले लोगों के लगभग 15 वर्ष के

---

1 प्रथम श्रेणी के एक किसान के कुटुम्ब में जिसमें 6–7 प्रौढ़ पुरुष हों खेती के औजारों में लकड़ी के बने साधारण हल तथा कुदाल शामिल हैं। इनका कुल मूल्य लगभग 13 रु० अथवा उनके लगभग एक महीने के श्रम के मूल्य के बराबर होता है (सर जी० फियर (Sir G. Pheur) द्वारा लिखित Aryan Village, पृष्ठ 233 को देखिए), जबकि एक बड़े कृषि योग्य आधुनिक फार्म पर पायी जाने वाली मशीन का मूल्य लगभग 3 पौं० प्रति एकड़ (जे० सी० मार्टन द्वारा सम्पादित Equipment of the Form देखिए) अथवा एक कर्मचारी की वार्षिक मजदूरी के बराबर होगा। इनमें भाप से चलने वाला इंजन, संगड़, हल्के तथा गहरी खुदाई करने वाले हल, जिनमें कुछ वाष्प शक्ति तथा कुछ अश्व शक्ति से चलाये जाते हैं, खुरपी, पटेला, रोलर, मिट्टी के ढेलों को तोड़ने वाली मशीनें, बीज तथा खाद डालने की मशीन, बड़े कुदाल, पाँचा, घास फैलाने, सुखाने, काटने की मशीनें, वाष्प अथवा अश्व शक्ति की सहायता से दाना निकालने (Threshing), चरी काटने, शलजम काटने, घास को दबाने वाली तथा अन्य विभिन्न प्रकार की मशीनें शामिल हैं। अभी संग्रह-भंडार तथा बन्द बाड़े के बढ़ते हुए प्रयोग, डेरी (Dairy) तथा अन्य निवास स्थान के साज-सामान में हो रहे सुधारों से दीर्घ काल में श्रम की अधिक बचत होगी, किन्तु इनके अधिकांश भाग को कृषि उपज को बढ़ाने के प्रत्यक्ष काम में लगाने की आवश्यकता है।

और उनमें वृद्धि होते रहने की सम्भावना है।

वेतन के बराबर होता है। इंग्लैंड तथा वेल्स में रेलों में लगभग 100 करोड़ पौंड की पूंजी लगी है जो इसमें काम करने वाले तीन लाख श्रमिकों के 200 वर्ष के वेतन के बराबर होगी।

§2. सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं और उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए नये तथा खर्चीले तरीकों को अपनाया जाता है। यद्यपि कभी-कभी प्रगति धीमी हुई है और यदाकदा यहाँ तक कि इसमें ह्रास भी हुआ है, किन्तु अब तीव्र गति से प्रगति हो रही है और इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि प्रगति कहाँ रुक जायेगी। प्रत्येक दिशा में नये-नये क्षेत्रों का पता लगेगा जिनके फलस्वरूप हमारे सामाजिक तथा औद्योगिक जीवन में परिवर्तन होगा और पूंजी के अपार भंडार को नयी आवश्यकताओं की तृप्ति करने में लगाया जायेगा तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं पर खर्च कर श्रम की नये प्रकार से बचत की जायेगी। यह विश्वास करने का कोई विशेष आधार नहीं कि हम स्थिर अवस्था के निकट हैं जिसमें न ही कोई नयी आवश्यकता ही उत्पन्न होगी और न उसकी पूर्ति ही करनी पड़ेगी। इसमें भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वर्तमान काम का विनियोजन करना लाभदायक नहीं होगा और धन के संचय के फलस्वरूप किसी लाभ की आशा भी नहीं की जा सकती। मनुष्य के सम्पूर्ण इतिहास से यह स्पष्ट है कि उसके धन एवं ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं।[1]

---

1 दृष्टान्त के लिए अमेरीका के कुछ शहरों में हाल ही में जो सुधार हुए हैं उनसे यह पता लगता है कि पूंजी के पर्याप्त परिव्यय से प्रत्येक मकान के लिए आवश्यक सामग्री रखी जा सकती है और जिस किसी सामान को इसमें रखने की आवश्यकता नहीं होती उसे अब की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से हटाया जा सकता है, जिससे कि अधिकांश जनसंख्या शहरों में रह सके और शहरी जीवन की अनेक वर्तमान बुराइयों से दूर रहे। इसमें पहला कदम यह है कि सभी राजमार्गों के नीचे लम्बी-लम्बी सुरंगें बनाना है, जिनमें बहुत से नल तथा तारों को अगल-बगल में बिछाया जा सकता है, तथा उनके खराब होने पर सामान्य यातायात में बिना किसी बाधा के तथा बिना अधिक खर्च के उनकी मरम्मत की जा सकती है। चालन-शक्ति (Motive Power) तथा सम्भवतः यहाँ तक कि ताप भी शहरों से काफी दूरी पर, कुछ दशाओं में कोयले की खानों में, पैदा की जा सकती है, और जहाँ कहीं इसकी आवश्यकता हो वहाँ पहुँचायी जा सकती है। हल्के एवं चश्मे के पानी को और शायद समुद्र के पानी को भी तथा आक्सीजनयुक्त वायु को अलग-अलग नलों द्वारा प्रायः सभी मकानों तक पहुँचाया जा सकता है। भाप के नलों का सर्दियों में ताप पैदा करने के लिए और संदाबित (Compressed) वायु का ग्रीष्म ऋतु के ताप को कम करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अथवा विशेष प्रकार के नलों में अत्यधिक ताप शक्ति वाली गैस से ताप पहुँचाया जा सकता है, इसी प्रकार विशेष रूप से अनुकूल गैस से अथवा बिजली से प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है और प्रत्येक घर का शहर के अन्य भाग से विद्युत सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। घरों में जलायी जाने वाली आग से उत्पन्न धुएँ

पूंजी के विनियोजन के नये क्षेत्रों में वृद्धि होने के कारण आवश्यक-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किये गये व्यय के अतिरिक्त अधिशेष (Surplus) उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इसी से लोगों में बचत करने की क्षमता उत्पन्न होनी है। जब उत्पादन की प्रणालियाँ दोषपूर्ण थी तो अधिशेष बहुत कम प्राप्त होता था, बशर्ते कि शक्तिशाली सत्ताधारियों ने लोगों को केवल जीवन की अत्यावश्यक वस्तुएँ देकर उनसे कठोर परिश्रम न कराया हो, अथवा देश की जलवायु ही ऐसी हो जिससे लोगों की आवश्यकताएँ कम हो तथा उनकी पूर्ति आसानी से हो जाय। किन्तु उत्पादन के ढंगों मे सुधार तथा भावी उत्पादन मे श्रमिक को सहायता पहुँचाने वाली संचित पूंजी में वृद्धि होने के साथ-साथ अधिशेष की मात्रा भी बढ़ने लगी जिससे धन का अधिक संचय करना सम्भव हो सका। कुछ समय बाद सम-शीतोष्ण तथा यहाँ तक कि शीत-प्रधान जलवायु मे भी सभ्यता का प्रसार होने लगा। भौतिक धन में उन दशाओं में भी वृद्धि सम्भव थी जब श्रमिक को कार्य करने के लिए कोई प्रोत्साहन नही मिलता था, और इसलिए जिन चीजों पर सभ्यता निर्भर रहती है उनका विनाश नही हुआ।[1] इस प्रकार धन तथा ज्ञान मे क्रमश. वृद्धि हुई और प्रत्येक बार धन की बचत करने और ज्ञान के प्रसार करने की शक्ति मे वृद्धि हुई है।

इस काल में संचय करने की क्षमता मे भी समान रूप में वृद्धि हुई तथा भविष्य में भी ऐसा ही होने की सम्भावना है।

§3. मानव के इतिहास से यह पता लगता है कि भविष्य को स्पष्ट रूप से समझने और उसके लिए बचत करने की आदत का धीरे-धीरे तथा अनियमित रूप से विकास हुआ है। भ्रमण करने वाले लोग उन आदिम जातियों के विषय मे बतलाते है जो अपने श्रम को बिना बढाये केवल अपनी शक्ति एवं ज्ञान के अनुसार साधनो को कुछ पहले लगा देने से इन साधनों और आनन्द मे दुगुनी वृद्धि कर सकते है। उदाहरण के रूप मे, सब्जी के छोटे-छोटे खेतो मे जगली जानवरो के प्रवेश को रोकने के लिए बाड़ा लगा कर वे अपने साधनो एव आनन्द को बढ़ा सकते है।

भविष्य के लिए बचत करने की आदत का मन्द तथा अनियमित विकास।

किन्तु इस प्रकार की उदासीनता का पाया जाना उतना आश्चर्यजनक नही जितना कि इग्लैंड मे बहुत से वर्गो मे पायी जाने वाली बरबादी है। ऐसे उदाहरण कम नही है, जब प्रति सप्ताह 2 या 3 पौ० कमाने वाले कुछ लोग कभी-कभी भूखे मरते है: काम मे लगे रहने पर इनके लिए एक शि० का मूल्य उतना नही होता जितना कि बेकारी मे एक पेंस का। किन्तु फिर भी वे मुसीबत के काल के लिए कोई आयोजन

समेत सभी प्रकार की अस्वास्थ्यप्रद वायु को शुद्ध करने के लिए प्रचंड वायु प्रवाह द्वारा लम्बी नलियों से होकर बड़ी भट्टियों में पहुँचाया जा सकता है तथा वहाँ से बड़ी चिमनियों द्वारा ऊँचे आसमान में ले जाया जा सकता है। इंग्लैंड के शहरों में इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए रेलों में लगी हुई पूंजी से भी अधिक परिव्यय की आवश्यकता है। यह हो सकता है कि शहरों के सुधार से सम्बन्धित अन्तिम लक्ष्य के बारे में इस प्रकार का अनुमान सत्य न निकले किन्तु इससे उन अनेक उपायों में से एक का पता लगता है जिनमें विगत के अनुभव से वर्तमान प्रयत्नों को भावी आवश्यकताओं की संतुष्टि के साधन जुटाने में लगाने के व्यापक अवसरों का पता लगता है।

1 परिशिष्ट क से तुलना कीजिए।

नहीं करते।[1] इसके दूसरी ओर कजूस लोग आते हैं जिनमे से कुछ लोगों में पागलों की भाँति बचत करने की तीव्र भावना पायी जाती है। यहाँ तक कि भूमिधारी तथा कुछ अन्य वर्गों में बहुधा ऐसे व्यक्ति भी हैं जो इतनी अधिक बचत करते हैं कि उनकी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति तक नही होती और इससे उनकी काम करने की शक्ति मे ह्रास होता है। इस प्रकार उन्हे निरन्तर हानि उठानी पड़ती है: वे जीवन का कभी भी वास्तविक आनन्द नही उठा पाते। यदि उन्होंने भौतिक वस्तुओं के रूप मे संचित धन को अपने ऊपर ही लगाया होता तो उनकी आय अर्जित करने की शक्ति मे सचित धन से प्राप्त होने वाली आय से अधिक वृद्धि होती।

भारत मे, तथा उससे कुछ कम मात्रा मे आयरलैंड मे, अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने तुरन्त मिलने वाले आनन्द के लिए वस्तुओ का उपभोग न कर बहुत बड़े आत्मत्याग से एक बड़ी धनराशि की बचत करते हैं, किन्तु अपनी सारी बचत को मृत्यु तथा विवाह के समय बड़ी-बड़ी दावतें देकर खर्च कर देते हैं। वे निकट भविष्य के लिए कभी-कभी ही प्रबन्ध करते हैं, किन्तु सुदूर भविष्य के लिए कदाचित ही कुछ स्थायी आयोजन करते हैं. जिन बड़े-बड़े इंजीनियरी के कारखानो से उत्पादन के साधनों मे इतनी अधिक वृद्धि हुई है वे सब अंग्रेज जाति की पूँजी से ही तैयार हुए हैं, जो अपेक्षाकृत अपने उपभोग मे बहुत कम कमी करती हैं।

इस प्रकार धन के सचय पर नियंत्रण रखने वाले कारण विभिन्न देशों तथा युगों मे भिन्न-भिन्न होते हैं। न तो वे दो जातियो मे ही और न एक ही जाति के दो सामाजिक वर्गों मे समान होते हैं। वे धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओ पर बहुत कुछ निर्भर रहते हैं। यह उल्लेखनीय है कि जब लोगो को एक सूत्र मे बाँधने की प्रथा की शक्ति कम हो गयी है तो समान दशाओ मे पले होने पर भी अन्य बातो की अपेक्षा (व्यक्तिगत आचरण मे अन्तर होने के कारण) फिजूल खर्च करने अथवा बचत करने की आदतो मे अधिक अन्तर होता है और इनमे अधिक बार परिवर्तन होता है।

बचत के लिए सुरक्षा का होना आवश्यक है।

§4 प्राचीन काल मे फिजूलखर्ची का कारण यह था कि उस समय सुरक्षा की कमी थी जिससे लोगो को यह निश्चय नही था कि वे भविष्य के लिए आयोजित धनराशि का उपयोग कर सकेंगे जो लोग पहले से धनी थे वे ही इतने शक्तिशाली थे कि अपनी सचित पूँजी की रक्षा कर सकते थे। एक शक्तिशाली व्यक्ति द्वारा किसी परिश्रमी तथा बचत करने वाले व्यक्ति की थोड़ी-बहुत सचित की हुई पूँजी का अपहरण होने से उसके पड़ोसियों को यह सचेतना (warning) मिलती थी कि वे अपनी चीजों तथा विश्राम के समय का यथासम्भव उपभोग कर लें। इंग्लैंड तथा स्काटलैंड के समीपवर्ती ग्रामीण भाग मे, जब तक वहाँ बाहरी आक्रमणो का निरन्तर भय बना रहा, बहुत कम प्रगति हुई। अट्ठारहवी शताब्दी मे फ्रास के किसानो ने बहुत कम बचत की, क्योंकि कर वसूल करने वालो की लूट से बचने के लिए उन्हे गरीबी का रहन-सहन अपनाना आवश्यक था। उसी प्रकार आयरलैंड के कुटीर कृषकों ने भूस्वामियों द्वारा अत्यधिक मात्रा

---

1 वे भावी लाभों में (भाग 3, अध्याय 5, अनुभाग 3 को देखिए) अनेक हजार प्रतिशत की दर से "बट्टा" काटते हैं।

में माँगे जाने वाले लगान से बचने के लिए, यहाँ तक चालीस वर्ष पहले ही, रियासतों में रहते हुए भी गरीबी का ढंग अपनाया।

बहुधा इस प्रकार की असुरक्षा अब सभ्य संसार से प्रायः समाप्त हो चुकी है। इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाये जाने वाले 'निर्धन रक्षा कानूनों' का प्रभाव जिनसे श्रमिक वर्गों में एक नये प्रकार की असुरक्षा उत्पन्न हो गयी थी, अब भी विद्यमान है। क्योंकि इसमें मजदूरों की मजदूरी के एक अंश को उन्हें निर्धन अवस्था में सहायता के रूप में देने का आयोजन किया जाता है, और इसका उन लोगों में उनके परिश्रम, बचत तथा पूर्वविचार करने की शक्ति के प्रतिकूल अनुपात में वितरण किया जाता है। इसके कारण भविष्य के लिए आयोजन करना अनेक व्यक्तियों को बुद्धिमत्ता-पूर्ण नहीं दिखायी देता था। इस कटु अनुभव के फलस्वरूप जिन परम्पराओं और भावनाओं को प्रोत्साहन मिला है वे इस समय भी श्रमिक वर्ग की प्रगति में बाधक हैं और इस सिद्धान्त का कि राज्य को केवल गरीबी को ही, न कि योग्यता को, ध्यान में रखना चाहिए इसी दिशा में यद्यपि अपेक्षाकृत कम, प्रभाव पड़ा है, क्योंकि वर्तमान 'निर्धन रक्षा कानून' का भी कम से कम नाममात्र के लिए यही आधार रहा है।

अब इस प्रकार की असुरक्षा कम होती जा रही है: सरकार तथा व्यक्तियों के गरीबों के प्रति कर्तव्यों के विषय में बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों के विकास के कारण यह बात प्रति-दिन और अधिक सत्य सिद्ध होने लगी है कि समाज सुस्त तथा विचारशून्य व्यक्तियों की अपेक्षा उन लोगों की अधिक चिन्ता करेगा जो स्वावलम्बी है तथा जिन्होंने अपने भविष्य के लिए आयोजन करने का प्रबन्ध किया है। किन्तु इस दिशा में प्रगति अभी भी मन्द है और आगे बहुत कुछ करने की आवश्यता है।

अर्थ व्यवस्था में द्रव्य के अधिक प्रचलन के कारण अधिक व्यय करने के लिए नयी प्रेरणाएँ मिलती है।

§5. अर्थ व्यवस्था में द्रव्य के अधिक प्रयोग तथा व्यवसाय की आधुनिक प्रणालियों के विकास के कारण वास्तव में धन के सचय में बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि जो लोग जीवन में अधिक व्यय करने के इच्छुक है उन्हें ऐसा करने के लिए और नये प्रलोभन मिल जाते है। पुराने समय में जब कोई नये मकान में रहना चाहता था तो उसे ऐसा मकान स्वयं बनाना पड़ता था। इस समय उसे बहुत से अच्छे मकान किराये पर मिल जाते हैं। पहले जब वह अच्छी शराब चहता था तो उसे शराब बनाने के लिए अच्छे स्थान का भी आयोजन करना पड़ता था। अब वह स्वयं बनाने की अपेक्षा सस्ते दामों पर बाजार से पहले से अच्छी शराब खरीद सकता है। इस समय वह पुस्तकों को खरीदने की अपेक्षा पुस्तकालय से उधार ले सकता है, और मकान को सजाने में फर्नीचर इत्यादि के लिए भुगतान करने से पहले ही अपने कमरे को सुसज्जित कर सकता है। इस प्रकार खरीदने तथा बेचने, उधार देने तथा उधार लेने की आधुनिक प्रणालियों तथा नयी-नयी आवश्यकताओं के उत्पन्न होने के कारण लोग अनेक प्रकार से फिजूल खर्च करते है, और इसमें वर्तमान के हितों को भविष्य के हितों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।

किन्तु इससे यह भी निश्चित हो

इसके विपरीत, अर्थ व्यवस्था में द्रव्य के अधिक प्रचलन होने से भविष्य में किये जाने वाले व्यय का अनेक प्रकार से उपयोग किया जा सकता है, समाज की प्रारम्भिक अवस्था में रहने वाला व्यक्ति जो भविष्य की आवश्यकताओं के लिए कुछ वस्तुओं का

जाता है कि बचत द्वारा भविष्य के लिए आवश्यक चीजें वास्तव में सुलभ हो सकेंगी।

संग्रह करता है, यह अनुभव कर सकता है कि वास्तव में उसे इन वस्तुओं की उतनी आवश्यकता नही होती जितनी कि उन अन्य वस्तुओं की होती है जिनका उसने संग्रह नही किया। ऐसी अनेक भविष्य सम्बन्धी आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति के लिए वस्तुओं का इस समय संचय करना असम्भव है। किन्तु जिस किसी ने द्रव्य के रूप में आय प्राप्त करने के लिए पूंजी का संचय किया वह आवश्यकताओं के उत्पन्न होने पर उनकी पूर्ति कर सकता है।[1]

इसके फलस्वरूप वे लोग जिनमें व्यवसाय करने की योग्यता नहीं है, अपनी बचत का पूरा लाभ उठा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त जिन लोगों को किसी व्यवसाय को करने की अच्छी सुविधाएँ प्राप्त नही हैं,—यहाँ तक कृषि मे भी नही है, जहाँ कि कुछ दशाओं में भूमि एक विश्वसनीय बचत बैंक का काम करती है, वे भी व्यवसाय की आधुनिक प्रणालियों के कारण पूंजी का जोखिम रहित विनियोजन कर सकते हैं जिससे कि उन्हें आय प्राप्त हो सके। इन नयी सुविधाओं के कारण जो लोग अपनी वृद्धावस्था के लिए बचत करने का प्रयत्न नही करते वे भी ऐसा करने के लिए प्रेरित होने लगे है। धन की वृद्धि पर इसी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है तथा इसके कारण एक व्यक्ति अपनी स्त्री तथा बच्चों के लिए अपनी मृत्यु के बाद सुरक्षित धनराशि का बहुत आसानी से आयोजन कर सकता है: क्योकि, आखिरकार पारिवारिक स्नेह ही बचत करने का मुख्य प्रयोजन है।

कुछ ही लोग अपने लिए बचत करते हैं: किन्तु बचत करने का सबसे मुख्य प्रयोजन पारिवारिक स्नेह है।

§6 वास्तव में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपने पास के संचित धन को बढ़ता हुआ देख कर अति आनन्दित होते हैं। उन्हें इस बात का किंचित भी ख्याल नहीं आता कि स्वयं या अन्य लोगों द्वारा इसके प्रयोग किये जाने पर कितनी प्रसन्नता मिल सकती है। वे आंशिक रूप से धन एकत्रित करने, अपने प्रतिद्वन्द्वियों से आगे बढ़ने की इच्छा, धन प्राप्त करने की योग्यता दिखलाने की महत्वाकांक्षा तथा इसके पास मे होने से प्रभुता एवं समाज में सम्मान प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होते हैं। कभी-कभी ऐसे समय से धन संचित करने की आदत के पड जाने के कारण जब कि उन्हें वास्तव में द्रव्य की अवश्यकता थी, वे धन के कारण ही इसे संचित करने में एक काल्पनिक तथा मूर्खता से भरे आनन्द का अनुभव करते हैं। किन्तु यदि धन उपार्जन पारिवारिक स्नेह के लिए नहीं किया जाता तो बहुत से लोग जो अब कठिन परिश्रम करते है, सोच समझ कर बचत करते है वे वर्ष में उतने से अधिक आय अर्जित करने का यत्न नही करते जितने से वे स्वयं सुखपूर्वक रह सके। ऐसा करने के लिए वे या तो बीमा कम्पनी से पैसा लेते है, या कार्य से अवकाश प्राप्त करने पर अपनी पूंजी के कुछ भाग को तथा अपनी सारी आय को प्रतिवर्ष खर्च कर देते है। एक दशा में तो वे अपने पीछे कुछ भी नही छोडते: दूसरी दशा में वे अपनी वृद्धावस्था के लिए संग्रह की गयी सामग्री ही छोडते हैं जो कि उनको प्रत्याशित समय से पहले मृत्यु हो जाने के कारण पूर्णरूप से खर्च नहीं हो सकी। यह कहना कि लोग अपनी अपेक्षा मुख्यतया अपने परिवारों के लिए श्रम व बचत करते हैं, इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि लोग कार्य से अवकाश मिलने पर कदाचित् ही उतने से अधिक आय खर्च नही करते जितनी कि उनको बचत के फलस्वरूप उन्हें मिलती है। वे अपनी संचित पूंजी को अपने परिवारों के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। केवल इस देश में ही बीमा की पालिसी के रूप में दो करोड़ पौ० की प्रति

[1] भाग 3, अध्याय 5, अनुभाग 2 देखिए।

वर्ष बचत की जाती है और ये पौण्ड बचत करने वाले लोगों की मृत्यु के पश्चात् ही मिल सकते हैं।

किसी मनुष्य के लिए जीवन में प्रगति करते रहने, तथा जिस सामाजिक स्तर से उसने जीवन प्रारम्भ किया था उससे ऊँचे स्तर पर अपने परिवार को छोड़ने की आशा से बढ़कर शक्ति और उद्यम प्राप्त करने की ओर कोई प्रबल प्रेरक शक्ति नहीं हो सकती। इसके फलस्वरूप उसमें एक अविजित जोश भी उत्पन्न हो सकता है जो आराम तथा सभी साधारण प्रकार के आमोद-प्रमोद की इच्छा को समाप्त कर देता है, और कभी-कभी तो इससे मनुष्य की सुन्दरतर विचारशीलता तथा अधिक अच्छी कामनाएँ भी नष्ट हो जाती है। किन्तु जैसा कि वर्तमान युग में अमेरीका में धन की अद्भुत वृद्धि से स्पष्ट होता है, इससे व इस शर्त पर शक्तिशाली उत्पादक तथा वैभव को एकत्रित करने वाला बन जाता है कि वह अपने धन से मिलने वाली सामाजिक स्थिति को अपनाने में अत्यधिक जल्दबाजी न करे: क्योंकि हो सकता है कि उस की महत्वाकांक्षा के कारण वह उतनी ही अधिक फिजूलखर्ची करने लगे जितनी कि एक फिजूल खर्च करने वाला तथा सुख-भोगी स्वभाव वाला व्यक्ति करता है।

वे लोग सबसे अधिक बचत करते हैं जो कठोर परिश्रम करते हैं और निर्धनता में पले है, जो व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने पर भी अपनी आदतों को सरल बनाये रखते हैं, और प्रदर्शन के लिए व्यय करने से घृणा करते हैं तथा अपनी मृत्यु के समय जितना लोग उन्हे समझते थे उससे अधिक धनी होने की इच्छा रखते हैं। इस प्रकार का आचरण प्राचीन किन्तु शक्तिशाली देशों के अधिक शान्त भागों में बहुधा देखने को मिलता है, और फ्रान्स के महान युद्ध के दबाव तथा इसके फलस्वरूप अत्यधिक करों के लगने के एक पीढ़ी से अधिक समय बाद तक इंग्लैंड के ग्रामीण क्षेत्रों में मध्य वर्ग के लोगों में यह गुण साधारणतया पाया गया।

§7. इसके बाद हम संचय के स्रोतों पर विचार करेंगे। बचत करने की शक्ति इस बात पर निर्भर है कि किसी व्यक्ति की आय उसके आवश्यक व्यय से कितनी अधिक है, और यह शक्ति धनी व्यक्तियों में सबसे अधिक पायी जाती है। इंग्लैंड में अधिकांशतया बहुत बड़ी आय का तथा कुछ अंशों में बहुत छोटी आय का भी पूंजी स्रोत ही है। इस शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ग्रामीण व्यक्तियों तथा श्रमिक वर्गों की अपेक्षा वाणिज्य में लगे वर्गों की बचत करने की आदत बहुत अधिक थी। इन कारणों के फलस्वरूप अधिकांशतया पिछली पीढ़ी के आंग्ल अर्थशास्त्रियों ने बचत को पूर्ण रूप से पूँजी के लाभ पर ही आधारित माना है।

अतिरिक्त आय ही संचय का स्रोत है, चाहे वह पूँजी अथवा लगान अथवा व्यावसायिक व्यक्तियों तथा मजदूरी पर काम करने वाले

किन्तु आधुनिक इंग्लैंड में भी लगान तथा व्यावसायिक व्यक्तियों एवं मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों की आय को संचय का महत्वपूर्ण स्रोत समझा गया है[1] और सभ्यता की सभी पुरानी अवस्थाओं में ये बचत के मुख्य स्रोत समझे गये थे। इसके अतिरिक्त मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों ने, विशेषकर व्यावसायिक वर्गों ने, अपने बच्चों

---

1 रिचार्ड जोन्स की Principles of Political Economy से तुलना कीजिए।

श्रमिकों की आय से संचित की जाय।

की शिक्षा पर पूंजी लगाने के लिए (अपनी आय का एक अंश बचाकर) उपभोग की अनेक वस्तुओं से अपने को वंचित रखा। श्रमिक वर्ग के व्यक्तियों की मजदूरी का बहुत बड़ा अंश बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य तथा शक्ति को बढ़ाने में लगाया जाता है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने इस बात को बहुत कम ध्यान मे रखा कि मानव की आन्तरिक शक्तियां उत्पादन के उसी प्रकार महत्वपूर्ण साधन हैं जैसे कि अन्य प्रकार की पूंजी। अत. हम इनकी विचारधारा के प्रतिकूल यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि अन्य बातो के समान रहने पर, यदि धन के वितरण से मजदूरी पर काम करने वालों को अधिक और पूँजीपतियों को कम आय प्राप्त हो तो, भौतिक उत्पादन मे तेजी से वृद्धि और भौतिक धन के संचय मे प्रत्यक्ष रूप मे कमी होगी। निस्सन्देह, अन्य बातें उस समय समान न होंगी जब हिंसात्मक ढग से ऐसे परिवर्तन हों जिनसे जन-सुरक्षा को बहुत बडा भय उत्पन्न हो जाय, किन्तु अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से अल्पकाल के लिए भौतिक धन के सचय मे कुछ कमी होना बुरा नही। यदि ऐसा शान्तिपूर्वक तथा बिना किसी बाधा के हो तो उससे अधिकाश लोगों को अधिक अच्छी सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इनके फल-स्वरूप ऐसी आदतों का विकास होगा जिनसे आगामी पीढ़ी मे बहुत अधिक कार्य-कुशल वर्ग की वृद्धि होगी। क्योकि दीर्घकाल मे इससे फैक्टिरियों तथा भाप के इजनो की बहुत अधिक वृद्धि न होकर यहाँ तक कि भौतिक धन मे भी वृद्धि होगी।

प्रजातंत्रों का सार्वजनिक संचय।

जिस देश मे धन का अच्छी प्रकार से वितरण होता है और जिसकी महत्वाकाक्षाएँ बहुत ऊँची होती है वह सम्भवतया बहुत अधिक सार्वजनिक धन का सचय कर सकता है। और कुछ समृद्ध प्रजातंत्रो मे केवल इस रूप मे जो बचत होती है उसका इस युग को अपने पूर्वजो से प्राप्त अच्छे वैभव मे कोई कम महत्वपूर्ण स्थान नही है।

सहकारिता।

इस युग को अपने पूर्वजों से मिले हुए भवन-निर्माण समितियो, मैत्री की समितियो, व्यापारिक संघो, कर्मचारियो के बचत बैंक, इत्यादि सभी रूपो मे सहकारिता आन्दोलन के विकास से यह ज्ञात होता है कि जहाँ तक भौतिक सम्पत्ति के तुरन्त वचित किये जाने का प्रश्न है, देश के साधन पुराने समय के अर्थशास्त्रियो की कल्पना के प्रतिकूल मजदूरी के भुगतान मे खर्च किये जाने पर पूर्ण रूप से समाप्त नही होते।[1]

अब हमें किसी वस्तु के वर्तमान

§8. बचत तथा धन की प्रणालियो के विकास पर दृष्टि डालने के पश्चात् हम वर्तमान तथा भविष्य मे प्राप्त होने वाली सतुष्टियो के सम्बन्धो के उस विश्लेषण पर विचार करेंगे जिस पर हमने माँग से सम्बन्धित अपने अध्ययन में दूसरे दृष्टिकोण से विचार किया था।[2]

---

1 यह मानना ही पड़ेगा कि सार्वजनिक सम्पत्ति से आशय बहुधा केवल निजी धन से होता है जिसे भविष्य में प्राप्त होने वाले सार्वजनिक राजस्व को बन्धक में रखकर उधार लिया जा सकता है। दृष्टान्त के लिए, नगरपालिका की वातिशालाएँ (Gas Works) साधारणतया सार्वजनिक सम्पत्ति के संचय के परिणामस्वरूप नहीं बनायी जातीं। इनका निर्माण तो निजी व्यक्तियों द्वारा बचाये गये धन से किया जाता है, और इसे सार्वजनिक लेखों में ऋण पर लिया जाता है।

2 भाग 3 अध्याय 5 देखिए।

हम वहाँ यह देख चुके हैं कि जिस किसी के पास अनेक उपयोगों मे काम आने वाली एक वस्तु का भंडार पड़ा हो, वह उनमे इसका इस प्रकार से वितरण करने का प्रयत्न करता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि मिलती है। यदि वह यह सोचे कि उसके कुछ भाग को एक उपयोग से दूसरे उपयोग मे डालने से उसे अधिक सतुष्टि मिल सकती है तो वह ऐसा ही करेगा। अतः यदि वह इसका ठीक ढंग से वितरण करता है तो वह विभिन्न प्रकार के उपयोगों में इसका उस बिन्दु तक प्रयोग करेगा जहाँ उसे इनमें प्रयोग करने के लिए उत्सुक मात्र होने से बराबर ही संतुष्टि मिलती है। (अन्य शब्दों में विभिन्न प्रकार के उपयोगों मे वह इसका इस प्रकार से वितरण करता है कि हर एक दशा मे समान तुष्टिगुण मिलता है)।

तथा भविष्य में होने वाले उपयोगों में वितरण पर पुनः विचार करना चाहिए।

हम यह भी देख चुके है कि उक्त सिद्धान्त एक-सा ही रहता है चाहे इसका अभी सभी उपयोगों मे प्रयोग किया जाय या कुछ उपयोगो मे अभी प्रयोग किया जाय और अन्य मे भविष्य मे उपयोग किया जाय: किन्तु बाद वाली दशा मे कुछ नये विचार भी शामिल हैं। इनमे सबसे पहली मुख्य बात यह है कि सतुष्टि को भविष्य के लिए स्थगित करने में आवश्यक रूप से यह अनिश्चितता आ जाती है कि क्या इससे कभी आनन्द भी प्राप्त हुआ है, और दूसरी बात यह है कि मानव प्रकृति के अनुसार वर्तमान तृप्ति इसके बराबर ही प्रत्याशित तृप्ति से साधारणतया, यदि सदैव नही भी, अधिक अच्छी मानी जाती है, और यह मनुष्य जीवन मे अन्य किसी चीज की भाँति ही निश्चित होती है।

एक बुद्धिमान व्यक्ति जिसने यह सोचा था कि वह अपने जीवन की सभी अवस्थाओ मे आय के समान साधनों से समान तृप्ति प्राप्त करेगा,सम्भवतः अपने सम्पूर्ण जीवन काल मे इन साधनों को समानरूप से वितरित करने का प्रयत्न करेगा: और यदि वह यह सोचे कि उसकी भविष्य मे आय अर्जित करने की शक्ति के कम होने का भय है तो वह निसन्देह अपनी आय के कुछ भाग की भविष्य के लिए बचत करेगा। वह न केवल यह सोचने पर कि उसकी बचत में वृद्धि होगी, अपितु यह सोचने पर पर भी बचत करेगा कि उसके साधनों मे कमी हो सकती है। वह कुछ फल तथा अण्डों को जाडो के लिए सुरक्षित रखेगा क्योंकि तब वे वस्तुएँ स्वल्प हो जावेंगी, यद्यपि अभी से रखने से उनमे कोई सुधार नही होगा। यदि वह व्याज तथा लाभ प्राप्ति के लिए अपनी आय का किसी व्यवसाय मे विनियोजन करना या इसे ऋण पर देना लाभप्रद नहीं समझता तो वह हमारे कुछ पूर्वजों का अनुकरण करेगा जिन्होंने गिन्नियों का एक छोटा सा संग्रह किया और जिसे वे क्रियात्मक जीवन से अवकाश मिलने पर देहातों को ले गये। उन्होंने यह अनुमान लगाया कि जिस समय उनके पास द्रव्य तेजी से आ रहा था उस समय कुछ और अधिक गिन्नियां खर्च करने से उन्हे जो अतिरिक्त तृप्ति मिली वह उनके उस आराम से कम उपयोगी सिद्ध हुई जो उन गिन्नियो को वृद्धावस्था में खर्च करने से मिलती। गिन्नियों को सुरक्षित रखने मे उन्हें बहुत अधिक कठिनाई उठानी पड़ी और इसमें कोई सन्देह नही कि वे किसी को भी कुछ थोड़ा-सा प्रभार देने के लिए इच्छुक हो गये होते जो उन्हें किसी प्रकार के जोखिम में डाले बिना इस कष्ट से मुक्ति दे देता।

एक व्यक्ति बचत कर सकता है चाहे वह भविष्य की अपेक्षा वर्तमान तृप्ति को अधिक पसन्द क्यों न करता हो और वह परीक्षा करके अपने आय के साधनों को नहीं बढ़ाता।

अतः ब्याज के ऋणात्मक होने पर भी कुछ बचत का किया जाना स्वाभाविक था, किन्तु यह भी समान रूप से सत्य है कि कुछ काम निषेधात्मक होने पर भी किये गये।

अतः हम ऐसी अवस्था की कल्पना कर सकते है जिसमें संचित धन का थोड़ा ही अच्छा उपयोग किया गया हो, जिसमे बहुत से लोग अपने भविष्य के लिए साधन जुटाना चाहते हों, जब कि वस्तुओ को उधार लेने के इच्छुक लोगो मे ऐसे थोडे से ही लोग थे जो भविष्य मे उनको या उनके बराबर वस्तुओ को लौटाने के लिए अच्छी सुरक्षा दे सकते थे। ऐसी अवस्थाओं मे आनन्द को भविष्य के लिए स्थगित करना और उसकी प्रतीक्षा करना एक ऐसा कार्य था जिसके बदले मे पुरस्कार मिलने की अपेक्षा दण्ड मिला· अपने आय के साधनो को सुरक्षित रखने के लिए दूसरो को देकर एक व्यक्ति केवल ऋण पर दी गयी धनराशि से कुछ कम प्रतिफल प्राप्त करने की प्रत्याशा कर सकता था. ऐसी स्थिति मे ब्याज की दर ऋणात्मक होगी।[1]

अतः हम ब्याज को प्रतीक्षा का प्रतिफल कह सकते हैं: न कि उपयोग-स्थगन का प्रतिफल।

इस प्रकार की स्थिति का होना स्वाभाविक है, किन्तु यह भी विचारणीय और समान रूप से सम्भावित है कि लोग काम करने के लिए इतने इच्छुक हों कि उनको अवकाश मे काम करने के लिए कुछ दण्ड तक भोगना पडे क्योंकि जिस प्रकार एक बुद्धिमान व्यक्ति स्वयं अपने कुछ साधनों का उपयोग स्थगित करना नही चाहेगा उसी प्रकार एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के लिए कुछ काम करना स्वत· ही एक वांछनीय कार्य है। उदाहरण के लिए राजनीतिक कैदी सामान्यतया काम करने की बहुत थोडी इजाजत मिलने को कृपा दृष्टि समझते हैं। मानव प्रकृति को देखते हुए हम यह उचित ही कह सकते हैं कि पूंजी का ब्याज भौतिक साधनो के आनन्द की प्रतीक्षा मे निहित त्याग का प्रतिफल है। क्योंकि बिना कुछ प्रतिफल मिले थोडे ही लोग अधिक बचत करेंगे। इसी कारण मजदूरी को श्रम का प्रतिफल मानते हैं, क्योकि बिना कुछ प्रतिफल मिले थोडे ही लोग कठिन परिश्रम करेंगे।

अर्थशास्त्रियो ने भविष्य के लिए वर्तमान आनन्द के त्याग को उपभोग-स्थगन की सज्ञा दी है। किन्तु इस शब्द का गलत अर्थ लगाया गया है· क्योंकि धन के सबसे अधिक सचय करने वाले अमीर लोग होते हैं जिनमे कुछ लोग विलासपूर्ण जीवन बिताते हैं, और निश्चित रूप से व्यवहार मे उस अर्थ मे उपभोग-स्थगन नही करते जिस अर्थ मे यह शब्द मिताहारिता मे रूपान्तरित किया जाता है। अर्थशास्त्रियो का अभिप्राय यह· था कि जब एक व्यक्ति भविष्य के लिए अपने साधनो मे वृद्धि करने के उद्देश्य से किसी भी ऐसी वस्तु के उपभोग को स्थगित करता है जिसका उपभोग करने की उसमे शक्ति है तो उस निश्चित वस्तु के उपभोग-स्थगन से धन के सचय मे वृद्धि होती है। चूंकि इस शब्द का गलत अर्थ भी लगाया जा सकता है, अत· हम इसका प्रयोग न करना अधिक लाभदायक समझते हैं, और यह कह सकते हैं कि धन का सचयन साधारणतया आनन्द को भविष्य के लिए स्थगित करने, या इसकी प्रतीक्षा का परिणाम है।[2] अथवा

---

1 ब्याज की दर की मात्रा स्वाभाविक रूप से ऋणात्मक हो सकती है, इस राय का फौक्सवेल ने Some Social Aspects of Banking नामक लेख में विवेचन किया जिसे जनवरी सन् 1886 ई० में बैंक संस्था (Banking Institute) के सम्मुख पढ़ा गया था।

2 कार्लमार्क्स तथा उनके अनुयायियों को बैरन रोठ्सचाइल्ड (Baron

अन्य शब्दों में, यह मनुष्य की पूर्वेक्षा (Prospectiveness) अर्थात् उसकी भविष्य को पहिचानने की प्रतिभा पर आश्रित है।

संचयन की "माँग कीमत", अर्थात् वह भावी आनन्द जो मनुष्य को अपने आस-पास के वातावरण से भविष्य के लिए काम करने तथा उसकी प्रतीक्षा करने से मिलता है, अनेक प्रकार का होता है: किन्तु सार हमेशा ही एक-सा रहता है। एक किसान जिसने मौसम के प्रभाव को सहने वाली झोपड़ी बनायी है इसके उपयोग से उन लोगों की अपेक्षा अतिरिक्त आनन्द प्राप्त करता है जिन्होने अपनी झोपड़ियों को बनाने में कम समय लगाया है और इसलिए जिनकी झोपड़ियों मे बर्फ छेद कर देती है। यही अतिरिक्त आनन्द उसके काम करने तथा प्रतीक्षा करने की कीमत है। यह सुदूर की अनिष्ट वस्तुओं के विरुद्ध, अथवा शीघ्र ही सतुष्ट करने के संवेगशील लालच से तृप्त की जाने वाली आवश्यकताओं की तुलना में भावी आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए बुद्धिमत्ता से किये गये प्रयत्नो की अतिरिक्त उत्पादकता का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार यह सभी आधारभूत बातो मे एक अवकाश प्राप्त चिकित्सक की एक फैक्टरी या खान को मशीन के सुधार के लिए अपनी पूंजी उधार देने से प्राप्त होने वाले ब्याज की भांति है, और सख्यात्मक दृष्टि से निश्चित रूप में व्यक्त किये जाने के कारण हम इस याज को अन्य रूपो मे एक प्रकार का धन कहेंगे और इन्ही के उपयोग का यह प्रतिनिधित्व करती है।

"हमारे तुरत उद्देश्य पर इस बात का कोई प्रभाव नही पड़ता कि मनुष्य ने जिस आनन्द की प्रतीक्षा की है उसे प्राप्त करने की शक्ति प्रत्यक्ष रूप मे श्रम से, जो प्रायः सभी प्रकार के आनन्द का मूल स्रोत है, प्राप्त की है, अथवा विनिमय या उत्तराधिकार से, वैध व्यापार अथवा सिद्धान्त रहित सट्टे से, लूटपाट अथवा छल-कपट से दूसरों से प्राप्त की है: अभी हमारा केवल इन बातों से सम्बन्ध है कि धन की वृद्धि के फलस्वरूप आमतौर पर ऐसे आनन्द को जानबूझ कर प्रतीक्षा करनी पड़ती है जिसे निकट वर्तमान में (उचित या अनुचित रूप से) प्राप्त करने की उस व्यक्ति मे शक्ति है, और प्रतीक्षा करने के लिए उसकी तत्परता उसकी भविष्य को स्पष्ट रूप से जानने और उसके लिए यथोचित प्रबन्ध करने की आदत पर निर्भर है।

§9 किन्तु हमे मानव-प्रकृति को देखते हुए इस कथन पर अधिक गहराई से ध्यान देना चाहिए कि वर्तमान समय मे किये गये एक निश्चित त्याग के फलस्वरूप भावी

वर्तमान त्याग से

Rothschild) के उपभोग-स्थगन के परिणामस्वरूप संचित धन पर चिन्तन करने में बड़ा मनोविनोद मिला। वे एक ऐसे श्रमिक की फिजूलखर्ची से इसका भेद प्रदर्शित करते हैं जो सात सदस्यों के एक परिवार को खिलाने में प्रति सप्ताह 7 शि० खर्च करता है, और अपनी सारी आय पर जीवित रहने के कारण कुछ भी आर्थिक उपभोग-स्थगन नहीं करता। मैकवेन (Macvane) ने जुलाई, 1887 ई० के हार्वड के Journal of Economics में यह तर्क दिया कि यह 'उपभोग-स्थगन' न होकर 'प्रतीक्षा' करना है जिसके लिए ब्याज मिलता है और यह उत्पादन का एक कारण है।

लाभ की दर जितनी ही अधिक होगी बहुधा बचत भी अधिकाधिक होती जायेगी, किन्तु हमेशा नहीं।

आनन्द में होने वाली वृद्धि से सामान्यतया लोगों के वर्तमान त्याग की मात्रा बढ़ जायेगी। दृष्टान्त के रूप मे मान लीजिए कि गाँव वालों को अपने मकान बनाने के लिए जंगलों से इमारती लकड़ी लानी पड़ती है, अतः ये जगल जितने ही अधिक दूर होगे, लकड़ी को लाने मे प्रत्येक दिन के काम से मिलने वाले भावी आराम का प्रतिफल उतना ही कम होगा, और सम्भवत. प्रत्येक दिन के काम से सचित धन से मिलने वाला भावी लाभ भी उतना ही कम होगा: और वर्तमान के किसी त्याग से मिलने वाले भावी आनन्द के प्रतिफल के कम होने के कारण वे अपने मकानो की लम्बाई-चौड़ाई को अधिक नही बढ़ा सकेंगे, और इससे इमारती लकड़ी को लाने मे लगने वाले श्रम मे भी कमी हो जायेगी। किन्तु ऐसा नही है कि इस नियम के अपवाद न हों। क्योंकि यदि प्रथा के कारण वे एक ही प्रकार के मकानो मे रहने के आदी हों तो जगलों से अधिकाधिक दूर होने पर और एक दिन के काम का प्रतिफल कम होने पर वे अधिक दिनों तक काम करेंगे।

अतः ब्याज की दर जितनी ही अधिक होगी बचत भी निश्चित रूप से उतनी ही अधिक होगी।

और इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वयं उपयोग न कर इसे ब्याज पर लगाना चाहे तो ब्याज की दर जितनी ही अधिक होगी बचत करने के लिए उसे मिलने वाला प्रतिफल भी उतना ही अधिक होगा। यदि अच्छे विनियोजनो से *मिलने वाले ब्याज की दर 4 प्रतिशत हो और वह अब 100 पौंड के मूल्य के मनो-*विनोद का परित्याग करे तो वह 4 पौंड के मूल्य के बराबर वार्षिक मनोविनोद की प्रत्याशा कर सकता है। किन्तु यदि ब्याज की दर 3 प्रतिशत हो तो उसे 3 पौंड के मूल्य के बराबर आमोद-प्रमोद की ही प्रत्याशा करनी चाहिए। ब्याज की दर मे कुछ कमी आने से सामान्यतया उस सीमान्त मे भी कमी आ जायेगी जिस पर कोई व्यक्ति उन भावी आनन्दों के लिए वर्तमान आनन्दो का त्याग करना उचित नही समझता जिन्हें अपनी आय के कुछ साधनों की बचत करके प्राप्त किया जाता है। अतः इसके फलस्वरूप सामान्यतया लोग अब पहले से कुछ अधिक उपभोग करेंगे, और भावी मनोविनोद के लिए कम आयोजन करेंगे। किन्तु यह नियम अपवाद रहित नही है।

किन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं।

दो शताब्दियो से अधिक पूर्व सर जोसीआ चाइल्ड (Sir Josiah Child) ने यह मत प्रकट किया कि जिन देशो मे ब्याज की दर ऊँची होती है 'व्यापारी लोग प्रचुर धन प्राप्त कर लेने पर व्यापार करना बन्द कर देते हैं" और अपने द्रव्य को ब्याज पर उधार देते है, "क्योंकि इससे मिलने वाला लाभ सरल, निश्चित और बड़ा होता है, जबकि अन्य देशो मे जहाँ ब्याज की दर नीची होती है लोग पीढ़ी दर पीढ़ी व्यापारी बने रहते हैं और अपने आप को तथा देश को धनी बनाते हैं।" यह तब की भाँति अब भी उतना ही सत्य है कि बहुत से लोग जीवन की युवा अवस्था मे ही व्यवसाय चलाना बन्द कर देते हैं। वास्तव मे इसी अवस्था मे मनुष्यो तथा वस्तुओं के बारे में उनकी जानकारी उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक कुशलता से व्यवसाय चलाने योग्य बनाती है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि सरगंट (Sargent) ने बतलाया है, यदि एक व्यक्ति ने तब तक काम करने तथा बचत करने का निश्चय किया हो जब तक वह अपनी

वृद्धावस्था या मृत्यु के बाद अपने परिवार के लिए निश्चित आय का प्रबन्ध न कर ले तो उसे ब्याज की दर के ऊँची होने की अपेक्षा नीची होने पर अधिक बचत करनी होगी। दृष्टान्त के लिए यह मान लीजिए कि वह व्यवसाय से अवकाश प्राप्त करते समय 400 पौंड की आय का प्रबन्ध करना चाहता है, या अपनी मृत्यु के पश्चात् अपनी पत्नी तथा बच्चों के लिए 400 पौंड प्रति वर्ष बीमे द्वारा सुरक्षित कराना चाहता है: यदि तब ब्याज की चालू दर 5 प्रतिशत हो तो उसे 8000 पौंड सुरक्षित रखने पड़ेंगे, या 8000 पौंड का जीवन बीमा कराना पड़ेगा, किन्तु यदि ब्याज की दर 4 प्रतिशत हो तो उसे 10,000 पौंड बचाने पड़ेंगे, या अपने जीवन का 10,000 पौंड का बीमा कराना पड़ेगा।

किन्तु अपवादों के बावजूद भी ब्याज की दर में कमी होने पर इसमें कमी न होने की अपेक्षा कम बचत होगी।

यह सम्भव है कि ब्याज की दर मे निरन्तर कमी होने के फलस्वरूप विश्व की पूंजी में निरन्तर वार्षिक वृद्धि होगी। किन्तु यह भी सत्य है कि भविष्य के लिए किये जाने वाले श्रम और प्रतीक्षा की एक निश्चित मात्रा से मिलने वाले सुदूर के लाभो में कमी के कारण मनुष्यो द्वारा भविष्य के लिए किये जाने वाले प्रबन्ध मे कुल मिला कर कमी आ जाती है। एक आधुनिक वाक्यांश के रूप मे यह कह सकते है कि ब्याज की दर मे कमी आ जाने से धन का सचय होना रुक जाता है। क्योंकि यद्यपि प्रकृति के साधनो मे मनुष्य के बढ़ते हुए अधिकार के कारण ब्याज की दर बहुत कम होने पर भी काफी बचत होती रहेगी, तिस पर भी मानव-स्वभाव के समान रहने के कारण ब्याज की दर मे होने वाली प्रत्येक कमी से सम्भवतया अधिक बचत होने की अपेक्षा और भी अधिक लोग उससे भी कम बचत करेंगे जो कि वे अन्यथा करते।[1]

अस्थायी निष्कर्ष।

§10. धन के संचयन तथा ब्याज की दर से इसके सम्बन्धों को नियंत्रित करने वाले कारणों का आर्थिक विज्ञान के विभिन्न अंगों से अनेक बातो में इतना सम्बन्ध है कि उन सब का एक ही भाग मे साथ-साथ अध्ययन नही किया जा सकता। इस भाग में यद्यपि हमारा संभरण से ही मुख्यतया सम्बन्ध है, तो भी, पूंजी की माँग और संभरण के सामान्य सम्बन्धों के बारे मे अस्थायी रूप में कुछ बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है। हम यह देख चुके हैं कि:—

सम्पत्ति के संचय पर विभिन्न प्रकार के कारणों, अर्थात् प्रथा, आत्मनियन्त्रण की आदतों, भविष्य को जानने, तथा इन सबके ऊपर पारिवारिक स्नेह की शक्ति, का प्रभाव पड़ता है। इसके लिए सुरक्षा का होना अति आवश्यक है, और ज्ञान तथा बुद्धि की प्रगति से इसका अनेक प्रकार से विकास होता है।

पूंजी के लिए दिये जाने वाले ब्याज की दर से, अर्थात् बचत की माँग कीमत में वृद्धि से, बचत की मात्रा बढ़ती है। क्योंकि इस तथ्य के बावजूद भी थोड़े बहुत लोग जिन्होंने अपने लिए या अपने परिवार के लिए एक खास निश्चित राशि की आय सुर-

---

1 भाग 6, अध्याय 6 भी देखिए। यहाँ पर यह बतलाना उपयुक्त होगा कि पुराने लेखकों ने "भावी वस्तुओं" के ऊँचे अनुमानों पर पूंजी की वृद्धि की निर्भरता का अतिशय वर्णन किया है, न कि कम, जैसा कि प्रो० बौह्म बावर्क ने मत प्रकट किया है।

क्षित करने का निश्चय कर लिया है, वे ब्याज की कम दर की अपेक्षा ऊँची दर पर कम बचत करेंगे। यह प्रायः सार्वभौमिक नियम है कि ब्याज की दर मे वृद्धि होने से बचत करने की इच्छा बढ़ती है और बहुधा इससे बचत करने की शक्ति बढ़ती है, अथवा यह वस्तुतः हमारे उत्पादक साधनों की बढ़ी हुई क्षमता को इंगित करती है: किन्तु पुराने अर्थशास्त्री यह बतलाने मे सीमा से परे चले गये कि यदि ब्याज (या लाभ) मे वृद्धि, मजदूरी को कम करके हो तो बचत करने की शक्ति हमेशा बढेगी: वे यह भूल गये कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण से श्रमिक के बच्चे मे धन का विनियोजन उतना ही उत्पादक है जितना कि इसका घोड़ों तथा मशीनों मे विनियोजन करना है। यह स्मरण रहे कि धन का वार्षिक विनियोजन पहले से ही विद्यमान भडार का एक छोटा-सा हिस्सा है, और इसलिए किसी एक वर्ष मे बचत की वार्षिक दर मे उल्लेखनीय वृद्धि के बावजूद भी इसके भडार मे कोई प्रत्यक्ष वृद्धि नही होगी।

धन की वृद्धि की सांख्यिकी पर टिप्पणी

राष्ट्रीय धन के सम्बन्ध में लगाये गये अनुमान कदाचित् ही प्रत्यक्ष होते हैं।

§11. धन की वृद्धि का सांख्यिकीय इतिहास एकमात्र निर्जीव और श्रम मे डालने वाला है। इसका आंशिक कारण धन के उस सख्यात्मक माप की स्वाभाविक कठिनाइयाँ है जो विभिन्न स्थानो और समयो मे लागू होगा, और आंशिक रूप से इसका कारण आवश्यक तथ्यो को एकत्रित करने के लिए नियमित प्रयत्नों का अभाव है। सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार वास्तव मे प्रत्येक व्यक्ति के धन के विवरण माँगती है, और यद्यपि इस प्रकार से प्राप्त किये गये निष्कर्ष संतोषजनक नही होते तो भी हमारे पास जो कुछ है उसमे वे सम्भवतः सबसे अच्छे हैं।

वे सामान्यतया आय के अनुमानों पर आधारित होते हैं।

अन्य देशो के धन के अनुमान पूर्णतया राष्ट्रीय आय के अनुमानो पर आधारित होते हैं, जिन्हे अनेक वर्षों के क्रय के मूलधन मे परिणत किया जाता है। इस संख्या का निर्धारण एक तो (1) उस समय प्रचलित ब्याज की सामान्य दर के प्रसग मे किया जाता है और दूसरा (2) किसी खास रूप मे धन के उपयोग से अर्जित की गयी आय को (क) स्वयं धन की स्थायी आय पैदा करने की शक्ति तथा (ख) या तो इसमे लगने वाले श्रम या स्वय धन के ह्रास की सीमा के प्रसग मे किया जाता है। लोहे के कारखाने के सम्बन्ध मे जिनका मूल्य-ह्रास तेजी से होता है इस अन्तिम मद का विशेष महत्व है, और उन खानो के सम्बन्ध मे जो तीव्रगति से खत्म होती जा रही हैं इसका और भी अधिक महत्व है। इन दोनो को ही कुछ वर्षों के क्रय के मूलधन मे परिणत किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, भूमि की आय पैदा करने की शक्ति मे वृद्धि होने की सम्भावना है, और जहाँ यह स्थिति हो, वहाँ भूमि से होने वाली आय को अनेको वर्षों के क्रय के मूलधन मे परिणत करना चाहिए (इसे मद (2ख) मे ऋणात्मक आयोजन माना जा सकता है)।

स्वल्प होने के कारण भूमि का द्रव्यिक मूल्य

भूमि, मकान, तथा पशु-धन के तीन रूप हैं जिन्हे हमेशा ही और सभी स्थानो में प्रथम श्रेणी की महत्ता प्रदान की जाती है। किन्तु भूमि अन्य चीजों से इस बात मे भिन्न है कि इसके मूल्य मे वृद्धि बहुधा मुख्यरूप से इसकी स्वल्पता मे वृद्धि होने से होती है। अतः यह आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के बढ़ते हुए साधनों को न माप

कर वस्तुतः बढ़ती हुई आवश्यकताओं को मापती है। सन् 1880 ई० में संयुक्त राज्य (अमेरिका) की भूमि का मूल्य संयुक्त आंग्ल राज्य (U.K.) की भूमि के मूल्य के बराबर और फ्रांस की भूमि के मूल्य के लगभग आधे के बराबर था। सौ वर्ष पहले इसके आर्थिक मूल्य का कोई महत्व न था, और यदि संयुक्त राज्य (अमेरिका) में दो या तीन सौ वर्ष पश्चात् जनसंख्या का घनत्व लगभग वही रहे जो संयुक्त आंग्ल राज्य मे है, तो संयुक्त राज्य (अमेरिका) की भूमि का मूल्य संयुक्त आंग्ल राज्य की भूमि के मूल्य के बीस गुने के बराबर होगा।

बढ़ जाता है।

मध्य युग के प्रारम्भ मे इंग्लैड की कुल भूमि का सारा मूल्य कुछ छोटे कद के ऐसे जानवरो के मूल्य से भी बहुत कम था जिनमे सर्दियो मे भूखे रहने के कारण अस्थि-पंजर ही शेष रह जायें. अब यद्यपि सबसे अच्छी किस्म की भूमि मकान, रेल की पटरियों इत्यादि के अन्तर्गत आती है, यद्यपि पशुओं का कुल वजन सम्भवतः पहले से दस गुने से भी अधिक हो गया है और उनकी नश्ल भी पहले से अच्छी है, और यद्यपि अब अनेक ऐसी किस्म की कृषि पूंजी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है जिसके बारे मे पहले कोई भी जानकारी नही थी, किन्तु इन सबके होने पर भी कृषि-भूमि का अब मवेशियो के मूल्य से तिगुना अधिक महत्व है। फ्रान्स के महान युद्ध के भारस्वरूप कुछ वर्षो मे इग्लैंड की भूमि का सामान्य मूल्य प्रायः दुगुना हो गया। तब से स्वतत्र व्यापार, यातायात मे सुधार, नये देशो की खोज तथा अन्य कारणो से कृषि के काम मे लायी जाने वाली भूमि का सामान्य मूल्य कम हो गया है। इनके फलस्वरूप इस महाद्वीप की अपेक्षा इग्लैंड मे वस्तुओ के रूप मे द्रव्य की सामान्य क्रयशक्ति बढ गयी। पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में 25 फ्रेंक से फ्रान्स तथा जर्मनी मे इग्लैंड के एक पौड की अपेक्षा वस्तुएँ, विशेषकर श्रमिक वर्ग के लिए आवश्यक वस्तुएँ, अधिक खरीदी जा सकती थी। किन्तु अब लाभ विपरीत दिशा मे हो रहा है और इसके कारण फ्रान्स तथा जर्मनी के धन मे हाल मे जो प्रगति हुई है वह इग्लैंड की अपेक्षा वास्तविकता से अधिक प्रतीत होती है।

जब इस वर्ष के तथ्यों को तथा इस तथ्य को भी ध्यान मे रखा जाय कि ब्याज की दर मे कमी होने से उन वर्षों के क्रय मे वृद्धि होती है जिस पर किसी आय को मूलधन के रूप मे परिणत किया जाता है, और इस कारण निश्चित आय प्रदान करने वाली सम्पत्ति के मूल्य मे वृद्धि हो जाती है, तो राष्ट्रीय धन के विषय मे लगायें गये अनुमान बहुत अधिक भ्रम मे डालने वाले होंगे, चाहे आय के आँकडे जिन पर वे आधारित हों, सत्य ही क्यों न हों। किन्तु तब भी ऐसे अनुमानों का मूल्य पूर्णरूप से शून्य नहीं है।

देश तथा आगणक का नाम	भूमि (दस लाख पौ०)	मकान इत्यादि (दस लाख पौ०)	कृषि पूंजी (दस लाख पौ०)	अन्य धन दस लाख पौ०)	कुल धन (दस लाख पौ०)	प्रति व्यक्ति (धन पौ०)
इंग्लैंड						
1679 (पेट्टी) (Petty)	144	30	36	40	250	42
1690 (ग्रेगरीकिंग) (Gregory King)	180	45	25	70	320	58
1812 (Colquhoun)	750	300	143	653	1846	180
1885 (गिफन)	1333	1700	382	3012	6427	315
सयुक्त आग्ल राज्य						
1812 Colquhoun	1200	400	228	908	2736	160
1855 (ऐडल्सटन) (Edleston)	1700	550	472	1048	3760	130
1865 (गिफन) (Giffen)	1864	1031	620	2598	6113	200
1875	2007	1420	668	4453	8548	260
1885	1691	1927	522	5897	10037	270
1905 (मोने) (Money)	966	2827	285	7326	11413	265
सयुक्त राज्य (अमेरिका)						
1880 (जनगणना)	2040	2000	480	4208	8728	175
1890					13200	208
1900					18860	247
फ्रान्स						
1892 (de Foville) (डि फाविले)	3000	2000	400	4000	9400	247
इटली						
1884 (पेण्टालियोनी) (Pentaleoni)	1160	360			1920	65

उक्त सारणी मे दिये गये बहुत से अंकों के बारे में सर आर० गिफन की (Growth of Capital) और मि० च्योत्सा मोने (Chiozza Money) की Riches and Poverty मे सुझावपूर्ण विवेचन मिलते हैं। किन्तु उनके मतभेद इन सब अनुमानों की महान संदिग्धता दर्शाते हैं। श्री मोने द्वारा लगाया गया भूमि अर्थात् कृषि भूमि, जिसमे खेतिहरों के निवास-स्थान बने हों, के मूल्य का अनुमान सम्भवतः बहुत ही कम है। सर आर० गिफन के अनुसार सार्वजनिक धन का मूल्य 50 करोड़ पौंड के बराबर है और वह इसमें देश के अन्दर लिये जाने वाले सार्वजनिक ऋणों

को इस आधार पर सम्मिलित नही करते कि इनको शामिल करने से ये एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देंगे, सार्वजनिक सम्पत्ति के मद मे जितना घटाया जायेगा उतना ही व्यक्तिगत सम्पत्ति के मद में जमा कर दिया जायेगा। लेकिन मोने सार्वजनिक सड़कों, पार्कों, मवनों, पुलों, नालों, बिजली तथा पानी, ट्रामों, इत्यादि के मूल्य की गणना 165 करोड़ पौंड के बराबर करते हैं: और इसमें से सार्वजनिक ऋण के लिए 120 करोड़ पौंड घटाने के बाद सार्वजनिक सम्पत्ति मूल्य 45 करोड पौंड ही रह जाता है, और इस प्रकार वह देश के अन्दर लिये गये सार्वजनिक ऋणो को व्यक्तिगत सम्पत्ति में शामिल करते हैं। वह विदेशी शेयरों के ऋण-पत्रों तथा संयुक्त आंग्ल राज्य मे लगायी गयी अन्य विदेशी सम्पत्ति का 1821 करोड़ पौंड के बराबर अनुमान लगाते है। धन के ये अनुमान मुख्यतया आय के अनुमानो पर आधारित है। और जहाँ तक आय की सांख्यिकी का प्रश्न है, इस सम्बन्ध मे बावले के National Progress Since 1882 तथा The Economic Journal, सितम्बर, 1904 में दिये गये शिक्षात्मक विश्लेषण की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

सर आर० गिफन 1903 मे ब्रिटिश साम्राज्य के धन (Statistical Journal, खण्ड 66, पृष्ठ 54) का इस प्रकार अनुमान लगाते हैं.

	करोड़ पौंड में
संयुक्त आंग्ल राज्य	1500
कनाडा	135
आस्ट्रेलिया	110
भारत	300
दक्षिण अफ्रीका	60
शेष यूरोप	120

रोजर्स ने अनेक देशों के कर निर्धारण के आधार पर इंग्लैंड के विभिन्न भागों के सापेक्षिक धन के परिवर्तनो का एक प्रयोगात्मक इतिहास तैयार किया है। फ्रान्स के सम्बन्ध मे Le Vicomte d' Avenel की L' Histoire Economique de la Propriete & c 1200—1800 मे काफी समाग्री मिलती है। लेवस्यो, लेरौय ब्यूल्यू (Leroy Beaulieu), नेमार्क (Neymorck) तथा मि० फोवी ने फ्रान्स तथा अन्य देशों मे धन की वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया है। मार्च, 1919 मे बैंक सस्था (Institute of Bankers) में भाषण देते समय क्रैमोण्ड (Crammond) ने संयुक्त आंग्ल राज्य के राष्ट्रीय धन को 2400 करोड पौंड के बराबर तथा राष्ट्रीय आय को 360 करोड़ पौंड के बराबर आंका। उन्होंने यह भी गणना की कि देश मे हाल ही में 160 करोड़ पौंड के बराबर ऋण-पत्रों के विक्रय तथा 140 करोड़ पौंड उधार लेने के पश्चात् देश के वैदेशिक विनियोजन का वास्तविक मूल्य गिर कर 100 करोड़ पौंड के बराबर रह गया है। शेष धनराशि के आधार पर इंग्लैंड 260 करोड़ पौंड के बराबर धनराशि की लेनदार दिखाय देती है: किन्तु इस धनराशि के अधिकाश भाग को समुचित रूप से सुरक्षित नही समझा जा सकता है।

अध्याय ८

औद्योगिक संगठन

संगठन से कार्यक्षमता बढ़ती है, एक पुराना सिद्धान्त है।

§1. प्लेटो के समय से लेकर बाद के समाज विज्ञान के लेखकों ने संगठन से बढ़ने वाली श्रमिकों की कार्यकुशलता पर सहर्ष विचार किया। किन्तु अन्य दशाओं की भाँति एडमस्मिथ ने दार्शनिक गहराई से इसकी व्याख्या कर, और व्यावहारिक ज्ञान से उदाहरणों सहित इसे समझा कर इस पुराने सिद्धान्त को एक नया रूप दिया, और यह पहले से अधिक महत्वपूर्ण हो गया। श्रम-विभाजन के लाभों पर जोर डालने, तथा यह बतलाने के बाद कि उनसे लोग अधिक सख्या मे किस प्रकार एक सीमित क्षेत्र मे सुविधापूर्वक रह सकते है, उन्होंने यह तर्क दिया कि जीवन-निर्वाह के साधनों पर जनसख्या के दबाव पड़ने के कारण वे जातियाँ समाप्त हो जाती है जो सगठन के अभाव मे या अन्य किसी कारणवश अपने निवास स्थानों से अधिकतम फायदा नही उठा पातीं।

जीवशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों ने अपेक्षाकृत अधिकमय स तक जीवित रहने के कठोर प्रयास का संगठन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया है।

एडमस्मिथ की पुस्तक का अधिक प्रचलन नही हुआ था कि जीवशास्त्री पहले से ही सगठन के उस अन्तर के वास्तविक रूप को समझने के लिए बहुत प्रयत्नशील थे जिसके कारण उच्च प्रकार के जीवधारियों को निम्न प्रकार के जीवधारियों से अलग किया जा सकता है। इसके बाद दो और शताब्दियाँ बीतने से पहले ही माल्थस द्वारा जीवन के सघर्ष के सम्बन्ध मे दिये गये ऐतिहासिक वर्णन से डारविन ने प्रेरित होकर पशु तथा वनस्पति जगत में जीवन के अस्तित्व के लिए किये जाने वाले ऐसे सघर्ष के प्रभावों की खोज करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि प्रकृति मे निरतर चयनात्मक प्रवृत्ति पायी जाती है। प्राणी-विज्ञान का अर्थशास्त्र पर भी बहुत प्रभाव पडा, और अर्थशास्त्रियों को भी एक ओर सामाजिक तथा विशेषकर औद्योगिक संगठन का तथा दूसरी ओर उच्च प्रकार के पशुओं के प्राकृतिक सगठन के बीच पायी जाने वाली अनेक अत्यधिक समानताओं का इसी से ही भान हुआ। वस्तुत. कु दशाओं में अधिक सूक्ष्म जाँच-पडताल के बाद पहले दिखायी देने वाली समानताएँ अन्तर्धान हो गयी: किन्तु उन अनेक समानताओं को जो पहली दृष्टि मे अत्यधिक विचित्र प्रतीत होती थी, अधिकाशतया अन्य समानताओं द्वारा धीरे-धीरे अनुपूरित किया गया है, और अन्त मे इनसे यह सिद्ध हुआ है कि प्राकृतिक तथा नैतिक संसार मे प्रकृति के नियमों के बीच मौलिक एकता पायी जाती है। इस केन्द्रीय एकता की, जिसके सम्बन्ध मे बहुत अधिक अपवाद नही है, इस सामान्य नियम के रूप मे व्याख्या की गयी है कि सामाजिक अथवा प्राकृतिक ढाँचे के विकास के कारण एक ओर तो इसके कार्यों का उसके अलग-अलग भागों मे उप-विभाजन बढ जाता है, तथा दूसरी ओर उनमे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है।[1] प्रत्येक भाग अपनी समृद्धि के लिए अन्य भागों पर अधिक

---

1 प्रो॰ हेकेल (Haekel) द्वारा "मानव तथा पशुपालन कार्य का विभाजन" (Arbeitstheilung in Menschen-und Thierleben) पर लिखे गये

से अधिक निर्भर रहने के लिए कम से कम आत्मनिर्भर होता है, जिससे अत्यधिक विकसित ढाँचे में होने वाली किसी भी प्रकार की अव्यवस्था का अन्य भागो पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

विशिष्टीकरण तथा एकीकरण।

कार्यों का उप-विभाजन, या 'विशिष्टीकरण' उद्योग के सम्बन्ध मे श्रम-विभाजन, तथा विशेष प्रकार की कुशलता, ज्ञान तथा मशीनरी के विकास के रूप मे पाया जाता है: जबकि 'एकीकरण', अर्थात् औद्योगिक गठन के अलग-अलग भागो के सम्बन्धो मे घनिष्ठता एवं दृढ़ता, वाणिज्य सम्बन्धी साख, समुद्र, सड़को तथा तार, डाक तथा मुद्रणालय के द्वारा सचार के साधनों एवं आदतो की स्थिरता मे वृद्धि के रूपो मे दिखायी देता है।

यह सिद्धान्त कि वे औद्योगिक ढाँचे, जो अभी पहले प्रयोग किये गये अर्थ मे अत्यधिक विकसित है, वे है, जो जीवन के सघर्ष मे सम्भवतया अतिजीवित रहते है, अभी स्वय ही विकास की अवस्था मे है। इसके जैवकीय अथवा आर्थिक सम्बन्धो पर अभी पूर्णरूप से विचार नही किया गया है। किन्तु अब हम अर्थशास्त्र मे इस नियम के मुख्य आधार का अध्ययन करेंगे कि जीवन के सघर्ष के कारण ऐसे औद्योगिक ढाँचो का अभ्युदय होता है जो वातावरण से लाभ उठाने के सबसे अधिक अनुकूल होते है।

अतिजीवन के लिए संघर्ष के नियम का सावधनी से विश्लेषण करना चाहिए।

इस नियम को सावधानी से विश्लेषण करने की आवश्यकता है: क्योकि नैतिक अथवा भौतिक संसार मे किसी वस्तु के अपने वातावरण के लिए लाभदायक मात्र होने से ही उसका अस्तित्व नही बना रहता। 'योग्यता की अतिजीविता' (Survival of the fittest) के नियम के अनुसार उन्ही औद्योगिक ढाँचो का अस्तित्व बना रहता है जो अपने उद्देश्यो के लिए वातावरण का उपयोग करने मे सबसे अधिक अनुकूल होते हैं। वातावरण का सबसे अधिक उपयोग करने वाले औद्योगिक ढाँचो से बहुधा अपने चारो ओर की चीजों को सबसे अधिक लाभ पहुँचता है, किन्तु कभी-कभी ये हानिकारक भी होते हैं।

इसके विपरीत, अतिजीवन के सघर्ष के होने पर भी यह हो सकता है कि बहुत से लाभदायक ढाँचों की नीव तक न पड़े: और आर्थिक जगत मे औद्योगिक विन्यास की माँग से ही इसे स्थापित करना तब तक निश्चित नही है जब तक यह विन्यास की इच्छा या आवश्यकता मात्र से कुछ बढ कर न हो। यह माँग प्रभावकारी होनी चाहिए, अर्थात् इसकी पूर्ति करने वालो को अवश्य ही उचित भुगतान या कुछ अन्य लाभ होने चाहिए।[1] कर्मचारियो की प्रबन्ध मे तथा जिस फैक्टरी मे वे काम करते है उसके लागो

बहुत सुन्दर लेख को तथा शेफ्ले (Schaffle) की "सामाजिक प्राणी का गठन तथा जीवन" Bau und Leben des sacialen Korpers को देखिए।

1 इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों की भाँति, इसका विश्लेषण करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि किसी क्रेता की प्रभावशाली माँग उसके आय के साधनों तथा उसकी आवश्यकताओ पर निर्भर रहती है: एक निर्धन की तीव्र आवश्यकता की अपेक्षा एक धनी व्यक्ति की साधारण आवश्यकता से संसार के व्यावसायिक विन्यास को अधिक नियंत्रित किया जाता है।

वंश परम्परा के सिद्धान्त के कारण इसकी कठोरता कुछ कम हो गयी है।

मे हिस्सा होने की इच्छा या, होशियार नव युवकों के लिए अच्छी तकनीकी शिक्षा का होना उस अर्थ में माँग नहीं है जिस अर्थ मे यह कहते समय इस शब्द का प्रयोग किया जाता है कि सम्भरण प्राकृतिक एव निश्चित रूप से माँग का अनुसरण करता है। यह विचार कटु होने पर भी सत्य प्रतीत होता है: किन्तु इसकी कटुता इस तथ्य के कारण कम हो गयी है कि वे जातियाँ जो एक दूसरे को बिना प्रत्यक्ष प्रतिदान (Recompence) के सेवाएँ अर्पित करती है, न केवल कुछ समय के लिए प्रगति करती हैं, अपितु एक बड़ी मात्रा मे ऐसे वशजों को जन्म देती हैं जो इन *हितकारी गुणों* को उत्तराधिकार के रूप मे पाते हैं।

जातियों (Species) के अतिजीवन पर पैतृक देखरेख का प्रभाव।

§2. यहाँ तक कि वनस्पति जगत मे भी पौधो की एक जाति चाहे इसकी वृद्धि कितनी ही प्रबलता से क्यो न होती हो अपने बीज की ओर ध्यान न देने पर शीघ्र ही पृथ्वी से लुप्त हो जायेगी। बहुधा पशु जगत मे परिवार का स्तर तथा अपनी जाति के प्रति कर्तव्य-परायणता ऊँची होती है, और यहाँ तक कि वे हिंसक पशु भी जिन्हे हम खूँखार समझते हैं, और जो वातावरण का निर्दयता से उपयोग करते है और इसके बदले कुछ भी उपकार नही करते, निजी तौर पर अपनी सन्तान के हित के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। परिवार के हित के सकुचित दृष्टिकोण से आगे बढ कर यदि हम जाति के हित की दृष्टि से विचार करें तो यह देखेंगे कि सामाजिक पशुओ मे, जैसे कि मधु-मक्खियो तथा चीटियो मे, उन्ही जातियो का अस्तित्व बना रहता है जिनमे प्रत्येक स्वय प्रत्यक्ष रूप मे किसी प्रकार का लाभ प्राप्त किये बिना समाज के लिए विभिन्न प्रकार की सेवाएँ सबसे अधिक अर्पित करती हैं।

मनुष्य जान-बूझ कर आत्मत्याग करता है, और यही जाति की शक्ति का आधार है।

किन्तु जब हम वाणी तथा तर्क करने की शक्ति से युक्त व्यक्तियो के विषय मे विचार करें तो हमे अपने *वश को मजबूत बनाने की जातीय कर्तव्यनिष्ठा* के विभिन्न प्रभाव दिखायी देते हैं। यह सत्य है कि मानव जीवन की क्रूर अवस्थाओ मे एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियो को जो सेवाएँ अर्पित करता था वे मधु-मक्खियो तथा चीटियो की भाँति वश परम्परा की आदतो तथा अविवेकपूर्ण भावनाओ से प्रेरित थी। किन्तु शीघ्र ही विवेकपूर्ण और इसलिए नैतिक, आत्मत्याग की भावना का उदय हुआ। पैगम्बरो तथा पुरोहितो और विधानकर्त्ताओं के दूरदर्शी निदेशन से इसका विकास हुआ, और लोकोक्तियो तथा पौराणिक गाथाओ से इसे लोगो के मस्तिष्क मे बैठाया गया। जगली आदमियो मे जो युक्तिहीन दया भाव था, वह धीरे-धीरे बढता गया और इसे लोग निश्चिन्तता के साथ अपने कार्य का आधार मानने लगे जगली जातियो की स्नेह भावना जो प्रारम्भिक रूप मे भेड़ियो के झुड मे अथवा डाकुओ के गिरोह मे पायी जाने वाली स्नेह की भावना से बढ कर न थी, धीरे-धीरे एक ऊँची देश-भक्ति की भावना मे परिणत हो गयी। धार्मिक आदर्शों का स्तर ऊँचा उठ गया तथा उनमे परिशोधन हुआ। जिन जातियो मे इन गुणो का सबसे अधिक विकास हुआ है वे, अन्य बातों के समान रहने पर, निश्चित रूप से युद्ध मे तथा अकाल और बीमारियो का सामना करने मे *सबसे अधिक शक्तिशाली रहेंगी*, और अन्ततोगत्वा इन्ही का बोलबाला होगा। इस प्रकार जीवन के लिए संघर्ष करने के कारण दीर्घकाल मे वे ही जातियाँ अतिजीवित रहती हैं जिनमे व्यक्ति अपने चारो ओर रहने वालों के हित के लिए अपना सर्वस्व

लगाने के लिए सबसे अधिक तत्पर रहता है, और परिणामस्वरूप ये जातियाँ सामूहिक रूप से अपने वातावरण का लाभ उठाने के लिए सबसे अनुकूल होती हैं।

अभाग्यवश जिन गुणों के कारण एक जाति दूसरी जाति के ऊपर छायी रहती है उन सभी से मानव जाति का हित नही होता। निस्सन्देह इस बात पर अधिक जोर देना गलत होगा कि बहुधा लड़ाकू आदतो के कारण अर्ध जंगली जातियो ने उन अन्य जातियो को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया है जो हर प्रकार के शान्तिपूर्ण गुणों मे इनसे बढ़कर थे, क्योकि इस प्रकार की विजयो के कारण धीरे-धीरे संसार की भौतिक शक्ति, तथा महान कार्यो को करने की क्षमता मे वृद्धि हुई है, और सम्भवत. इसने अन्ततः क्षति की अपेक्षा लाभ अधिक पहुँचाया है। किन्तु इस कथन के लिए कोई ऐसी विशेषता आवश्यक नही कि एक जाति केवल इस बात के कारण ससार मे अच्छा स्थान प्राप्त नही कर सकती कि इसकी अन्य जातियो के बीच मे अथवा उनके कारण प्रगति हुई है। क्योकि, यद्यपि प्राणी-विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान समान रूप से यह प्रदर्शित करते है कि दूसरो पर आश्रित रहने वाले लोग कभी-कभी जिस जाति की कृपा से फलते-फूलते है उसे अप्रत्याशित रूप मे लाभ पहुँचाते है, किन्तु फिर भी अनेक दशाओ मे वे उस जाति की विशेषताओ को अपने उद्देश्यो के अनुकूल बनाते है और इससे कोई अच्छा प्रतिफल नही मिलता। इस तथ्य से कि यहूदी तथा अर्मेनियाँ के द्रव्य के व्यापारियो की सेवाओ के लिए पूर्वी यूरोप तथा एशिया मे, या चीनी श्रमिको के लिए कैलिफोर्निया मे, आर्थिक माँग है, न तो यह बात स्वय ही सिद्ध हो जाती है, और न इससे यह दृढ़तापूर्वक विश्वास किया जा सकता है कि इस प्रकार के विन्यास से समूचे मानवीय जीवन के गुणो मे वृद्धि हो सकती है। क्योकि यद्यपि अपने ही साधनों पर पूर्णरूप से निर्भर रहने वाली एक जाति की तब तक बहुत कम प्रगति होती है जब तक यह सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक सद्गुणो से पर्याप्तरूप मे सम्पन्न न हो जाय फिर भी एक जाति जिसमे ये गुण नही है और जो स्वतंत्र रूप से महान बनने मे समर्थ नही है, अन्य जातियो के साथ अपने सम्बन्धो से पनप सकती है। किन्तु सब कुछ ध्यान मे रखकर और अनेक महत्वपूर्ण अपवादो के साथ यह कहा जा सकता है कि जिन जातियो मे सबसे अच्छे गुणो का अत्यधिक विकास होता है उनका अस्तित्व बना रहता है और उनकी प्रभुता छायी रहती है।

किन्तु अच्छाई में बुराई का भी समावेश रहता है, विशेषकर यह कथन दूसरों पर आश्रित रहने वाली जाति पर लागू होता है।

§3. वश-परम्परा का सबसे उल्लेखपूर्ण प्रभाव सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है। उसका निश्चय ही धीरे-धीरे विकास होना स्वाभाविक है क्योकि यह विकास अनेक शताब्दियों की देन है: यह प्रभाव अवश्य ही एक ऐसे बड़े जनसमुदाय के रीति-रिवाजो और स्वाभाविक रुझान पर आधारित है जिसमे शीघ्र परिवर्तन की क्षमता नही है। प्रारम्भिक काल मे जब धार्मिक, समारोह सम्बन्धी, राजनीतिक, सैनिक तथा औद्योगिक संगठनो का घनिष्ठ सम्बन्ध था, और वस्तुतः ये एक ही चीज के अलग-अलग पहलू थे, तब लगभग उन सभी देशो ने जो संसार की प्रगति मे अग्रगण्य थे न्यूनाधिक रूप मे वर्ण-व्यवस्था को अपना लिया. और स्वय इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि वर्ण-विभेद वातावरण के अनुकूल था, और कुल मिला कर इसने उन जातियो अथवा देशो को सुदृढ़ बनाया जिन्होंने इसे अपनाया था। जीवन का एक नियत्रक कारक (Control-

उस समय वर्ण-व्यवस्था उपयोगी थी किन्तु इसमें बुराइयाँ भी थीं।

ling factor) होने के कारण इसे जिन देशो ने अपनाया था वे अन्य देशो के ऊपर साधारणतया तब तक व्याप्त नही हो सकते थे जब तक इसका भाव मुख्यरूप मे हितकारी सिद्ध न हो। वर्ण-व्यवस्था की उत्कृष्टता से यह बात सिद्ध नही हुई कि इसमे बुराइयाँ नही थी अपितु इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रगति की उस विशिष्ट अवस्था को दृष्टि मे रखते हुए इसकी सर्वोत्तमता इसकी बुराइयो से अधिक थी।

इसके अतिरिक्त हम यह जानते है कि पशु अथवा वनस्पति की एक जाति अपने प्रतिद्वन्दियो से इस बात मे भिन्न हो सकती है कि इसमे दो प्रकार के गुण पाये जाते है, जिसमे से एक इसके लिए बहुत अधिक लाभदायक है, जबकि दूसरा महत्वपूर्ण नही है; सम्भवत. यह थोड़ा बहुत हानिकारक हो सकता है। पहले वाले गुणो के कारण उस जाति को दूसरे प्रकार के गुणो के विद्यमान रहने पर भी सफलता प्राप्त होगी: इस दशा मे इसके अतिजीवन से यह बात सिद्ध नही होती कि यह हितकारी है। इसी प्रकार जीवन के सघर्ष के बाद भी मनुष्य जाति मे कुछ ऐसे गुण तथा स्वभाव जीवित रहे हैं जो स्वय किसी प्रकार लाभदायक न थे, किन्तु जिनका अन्य गुणो के साथ, जो कि शक्ति के महान स्रोत रहे है, थोड़ा बहुत स्थायी सम्बन्ध था। उन देशो मे जहाँ सैनिक विजयो के फलस्वरूप प्रगति होती है वहाँ, निरकुश बर्ताव तथा धैर्य के साथ काम करने के प्रति, घृणा की प्रवृत्ति पायी जाती है। यही नही, वाणिज्य व्यवसाय मे लगे देशो मे धन की अत्यधिक चिन्ता करने और उसका प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। किन्तु व्यवस्था सम्बन्धी मामलो मे इस प्रकार के उल्लेखनीय उदाहरण मिलेंगे। जिस विशेष कार्य को करने के लिए वर्ण-व्यवस्था को अपनाया गया था उसके फलस्वरूप इसकी बुराइयो, जिनमे इसकी कठोरता, समाज के हितो या वस्तुत. समाज की विशेष आवश्यकता के लिए व्यक्ति के हितो का त्याग मुख्य है, के बावजूद इसका बहुत विकास हुआ।

यही बात आधुनिक पाश्चात्य जगत में विभिन्न औद्योगिक वर्गों के आपसी सम्बन्धों के विषय में सत्य है।

यदि हम बीच की अवस्थाओ को एकदम छोड़ कर पश्चिमी देशो की आधुनिक व्यवस्था पर विचार करे तो यह देखेंगे कि वर्ण-व्यवस्था मे अब पहले से आश्चर्यजनक अन्तर है, और इनमे पायी जाने वाली समानता भी विस्मयकारी है। एक ओर इसकी कठोरता का स्थान नमनीयता (plasticity) ने ले लिया है: उद्योग की जो प्रणालियाँ उस समय रूढिबद्ध थी वे अब आश्चर्यजनक रूप मे बदल रही है। विभिन्न वर्गों के सामाजिक सम्बन्ध, और व्यक्ति का अपने वर्ग मे स्थान जो कि तब प्रथाओ के नियमो द्वारा ही निश्चित किया जाता था, अब पूर्णरूप से परिवर्तनीय है, और समय की बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार इनके स्वरूप मे परिवर्तन हो रहे है। किन्तु दूसरी ओर, भौतिक धन के उत्पादन के सम्बन्ध मे व्यक्ति द्वारा समाज की आवश्यकताओ के लिए किया गया त्याग कुछ दशाओ मे पूर्वजो के कार्यो से मेल खाता है, यह वह दशा है जो वर्ण-व्यवस्था के समय से बहुत पहले विद्यमान थी: क्योकि उद्योग के विभिन्न कार्यों मे तथा एक ही प्रकार के कार्य मे विभिन्न व्यक्तियो मे श्रम का विभाजन इतना विपद् और बेमेल हो गया है कि कभी-कभी कुछ भौतिक उत्पादन मे वृद्धि करने के निमित्त उत्पादक को इस प्रकार काम करना पड़ता है जिससे उसके वास्तविक हितो को आघात पहुँचने की आशंका रहती है।

§4. एडमस्मिथ ने उस समय अपूर्व तीव्रता से बढ़ते हुए श्रम-विभाजन और सूक्ष्म औद्योगिक संगठन के साधारण लाभों पर जोर देते समय बहुत-सी ऐसी दशाएँ बतलायीं जहाँ यह प्रणाली सफल न हो सकी, और इसके कारण अनेक आकस्मिक बुराइयाँ उत्पन्न हुई।[1] किन्तु उनके अनेक अनुयायियों ने, जिनमें उनसे कम दार्शनिक अन्तर्दृष्टि थी, और जिन्हें कुछ दशाओं में संसार का वास्तविक ज्ञान भी कम था बड़े जोरों से यह तर्क दिया कि जो कुछ भी है, ठीक है। उदाहरण के लिए उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि एक व्यक्ति के पास व्यवसाय के प्रबन्ध करने की योग्यता हो तो वह निश्चय ही उस योग्यता का मानव जाति की भलाई के लिए उपयोग करना चाहेगा: इस बीच अपनी ही रुचि के कार्य में लगे रहने के कारण दूसरे लोग उसके उपयोग के लिए इतनी पूँजी देंगे जितने का वह अधिकतम उपयोग कर सके, और यह उसके हित में होगा कि वह अपने यहाँ काम करने वालों से ऐसा काम ले जिससे प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुकूल अधिक काम कर सके, और उसे उनसे अन्य प्रकार का कार्य नहीं करवाना चाहिए। इसके कारण वह सारी मशीनों तथा उत्पादन में सहायक वस्तुओं को खरीद कर प्रयोग करे जिनके द्वारा लागत की अपेक्षा संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन अधिक होगा।

एडमस्मिथ की नरमी, उनके कुछ अनुयायियों की उच्छृंखलता।

प्राकृतिक संगठन के इस सिद्धान्त में मानव जाति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण सत्य निहित है जो सम्भवतः ऐसे लोगों की समझ के परे हो जो गम्भीर सामाजिक समस्याओं का बिना पर्याप्त अध्ययन के विवेचन करते है, और उत्साही तथा विचारशील लोगों के लिए यह अनुपम आकर्षण का विषय रहा है। इसकी अतिशयोक्ति से बहुत हानि हुई, विशेषकर उन लोगों को जिन्हे इससे बड़ा आनन्द मिलता था। क्योंकि इसके कारण वे अपने चारों ओर होने वाले परिवर्तनों की अच्छाई से गुथी हुई बुराइयों को न देख सके और इसके फलस्वरूप उन्हे दूर भी नहीं कर सके। इससे वे यह भी पता न लगा सके, यहाँ तक कि आधुनिक उद्योग की अनेक व्यापक विशेषताएँ कही परिवर्तन की अवस्था में न हों जिसमें वे वर्ण-व्यवस्था की भाँति अपने समय में लाभदायक सिद्ध हों, किन्तु इसी के अनुरूप होने के कारण वे एक अधिक सुसम्पन्न युग के विन्यास के लिए मुख्यरूप से अगुवा बनने में सहायक हो सके। इससे इसके विरुद्ध अतिरंजित प्रतिक्रिया का जन्म हुआ जिससे अवश्य ही हानि हुई।

§5. इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में उस ढंग पर विचार नहीं किया गया जिसके अनुसार इन्द्रियों के प्रयोग के कारण उनकी शक्ति बढ़ जाती है। हर्बर्ट स्पेंसर ने इस नियम पर अधिक बल दिया है कि यदि शारीरिक अथवा मानसिक अभ्यास से आनन्द मिलता है एतदर्थ इसलिए इसे अनेक बार किया जाता है तो अभ्यास के करने में लगने वाली शारीरिक अथवा मानसिक इन्द्रियों का बड़ी तेजी से विकास होता है। वास्तव में निम्न प्रकार के जन्तुओं में इस नियम का प्रभाव योग्यतम की अतिजीविका के नियम से इतने घनिष्ठ रूप से गुथा हुआ है कि इन दोनों के अन्तर पर जोर देने की

उन्होंने उन दशाओं पर बहुत कम ध्यान दिया जिनमें आन्तरिक शक्तियों का

[1] इस पुस्तक के भाग I, अध्याय 4, अनुभाग 6, और परिशिष्ट ख, अनुभाग 3 और 6 देखिए।

सर्वोत्तम विकास होता है।

आवश्यकता नहीं; जैसा कि सम्भवतः अनुमान लगाया जा सकता है और जैसा कि निरीक्षण से सिद्ध होता है, अतिजीवन के लिए संघर्ष के फलस्वरूप पशु उन कार्यों का अभ्यास करने में आनन्द प्राप्त नहीं करते जो उनकी समृद्धि मे सहायक न हों।

किन्तु मनुष्य दृढ व्यक्तित्व के कारण अधिक स्वतन्त्र है। वह अपनी प्रतिभाओं को प्रयोग करने मे आनन्द का अनुभव करता है, कभी वह यूनानी लोगों की भाँति बड़े उत्साह से अथवा महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त करने के सुचिन्तित एवं सतत् प्रयत्नों के नियंत्रण से उन प्रतिभाओ का प्रशसनीय प्रयोग करता है और कभी उनका निकृष्ट प्रयोग करता है। जैसे शराब पीने के स्वाद मे विकृत रूप मे वृद्धि होने पर करेगा। किसी उद्योग के विकास के लिए आवश्यक धार्मिक नैतिक, बौद्धिक तथा कलात्मक शक्तियो को केवल उनसे प्राप्त हो सकने वाली चीजो के लिए ही उपार्जित नही किया जाता, किन्तु इनसे अपने आप जो आनन्द तथा प्रसन्नता मिलती है उसके लिए अभ्यास करने से इनका विकास किया जाता है. और इसी प्रकार सुव्यवस्थित राज्य का सगठन जो आर्थिक प्रगति का महान कारण है, असंख्य प्रकार के प्रयोजनो की देन है। इनमें से अनेको का राष्ट्रीय धन की प्राप्ति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही।[1]

निस्सन्देह यह सत्य है कि माता-पिता अपने जीवन काल मे जो शारीरिक विशेषताएँ अर्जित करते हैं वे उनके बच्चों तक शायद ही कभी पहुँचती है। किन्तु यह स्वीकार करने के लिए कोई निर्णयात्मक आधार नही मिलता कि जो लोग शारीरिक तथा नैतिक दृष्टियो से हृष्ट-पुष्ट है उनके बच्चे उस स्थिति की अपेक्षा अधिक दृढ़ गठन के नही होंगे जब वही माता-पिता ऐसे अस्वास्थ्यप्रद प्रभावो मे पले होते जिनसे उनके मस्तिष्क तथा शरीर के तंतु कमजोर पड जाते। पहली दशा मे दूसरी दशा की अपेक्षा यह निश्चित है कि अधिक स्वस्थ आन्तरिक भावनाओं को प्राप्त करने के लिए जन्म के बाद बच्चों का सम्भवत. अधिक अच्छा पालनपोषण होगा, और उनको अच्छे किस्म का प्रशिक्षण मिलेगा। उनमे वह आत्म-सम्मान तथा दूसरे के प्रति श्रद्धा की भावना भी अधिक होगी जिससे मुख्यकर मानव प्रगति हुई है।[2]

1 मनुष्य अपने विभिन्न प्रयोजनों में से जहाँ किसी एक विशेषता का जानबूझ कर अधिक विकास करता है, वहाँ वह किसी अन्य विशेषता की वृद्धि को रोकने के लिए भी इनका प्रयोग कर सकता है: मध्य युगो में प्रगति के मन्द होने का आंशिक कारण यह था कि लोग जानबूझ कर ज्ञान प्राप्त करने से घृणा करते थे।

2 गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 11 देखिए। इस वर्ग से सम्बन्धित विचारो को चूहों जैसे जानवरों के विकास पर घटित नहीं किया जा सकता, और मटर तथा अन्य प्रकार की सब्जियों में इन विचारों को बिलकुल ही लागू नहीं किया जा सकता। अतः इन दशाओं में वंश-परम्परा से सम्बन्धित जो अद्भुत अंकगणितीय निष्कर्ष निकाले गये है (जो हमेशा अस्थायी है) उनका वंशानुगत सारी समस्याओ से, जिनसे सामाजिक विज्ञान के छात्र सम्बन्धित हैं, बहुत कम सम्बन्ध है: और प्रसिद्ध मेण्डेल के अनुयायियों द्वारा व्यक्त किये गये कुछ नकारात्मक विचारो में वाक्संयम का कुछ अभाव मिलता है। इस विषय पर सबसे अच्छे अभिवचनों के लिए प्रो० पीगू की Wealth and Welfare, भाग I, अध्याय IV देखिए।

अतः उत्साहपूर्वक यह पता लगाने की आवश्यकता है कि वर्तमान औद्योगिक संगठन में इस प्रकार से सुधार करना क्या लाभदायक न होगा जिससे किसी उद्योग के घटिये किस्म के काम करने वालों को अपनी छिपी हुई मानसिक शक्तियों के प्रयोग करने, इनसे आनन्द प्राप्त करने, तथा प्रयोग द्वारा इन्हें दृढ़ बनाने की सुविधाएँ प्राप्त हों। इस तर्क को अप्रामाणिक मान लिया जाय कि यदि सुविधाओं में परिवर्तन करना लाभदायक होता तो अतिजीवन के संघर्ष के फलस्वरूप ये परिवर्तन कर दिये गये होते। मनुष्य अपने जन्मजात गुण के फलस्वरूप भविष्य की पूर्वसूचना देकर तथा आगे के लिए मार्ग तैयार कर प्राकृतिक विकास पर यद्यपि सीमित मात्रा में ही नियन्त्रण रखता है, किन्तु यह प्रभावपूर्ण होता है।

औद्योगिक ढाँचे में मनुष्य के विकास के बाद ही परिवर्तन होने चाहिए और अतः ये परिवर्तन या तो धीरे-धीरे या अस्थायी होने चाहिए

चिन्तन तथा कार्य द्वारा, जाति की सुसंतति विज्ञान (Eugenics) के सिद्धान्त को उपयोग कर नीची जाति की अपेक्षा ऊँची जाति में व्यक्तियों की संख्या बढ़ाने, तथा पुरुष एवं स्त्री दोनों की आन्तरिक शक्तियों के उचित शिक्षण, प्रगति की गति में वृद्धि की जा सकती है: किन्तु चाहे इसमें कैसे ही वृद्धि क्यों न हो, गति धीरे-धीरे तथा अपेक्षाकृत मन्द गति से ही होगी। प्रगति की वृद्धि की अपेक्षा मनुष्य की कार्यपद्धति, तथा प्रकृति की शक्तियों पर अधिकार प्राप्त करने से साहस तथा सावधानी, सूझबूझ तथा धैर्य, सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि तथा विचारों की व्यापकता में निरन्तर वृद्धि हुई है। एक नये आधार पर समाज की शीघ्र ही पुनर्व्यवस्था करने के निरन्तर बढ़ते हुए सुझावों से लाभ उठाने के लिए इसकी गति पर्याप्त रूप से धीमी होनी चाहिए। वास्तव में प्रकृति के ऊपर नियंत्रण रखने के इन नये ढंगों से यद्यपि औद्योगिक व्यव कुछ समय पूर्व सोची जाने वाली योजनाओं की अपेक्षा अधिक बड़ी योजनाओं के लिए मार्ग खुल गया है किन्तु इससे उन लोगों पर भी अधिक उत्तरदायित्व आ गया है, जो सामाजिक तथा औद्योगिक ढांचे में नये-नये सुधार करने का अनुरोध करते हैं क्योंकि यद्यपि संस्थाओं में तेजी से परिवर्तन हो सकते है, फिर भी उनकी स्थिरता के लिए यह अवश्यक है कि वे मनुष्य की प्रगति के अनुकूल हों: यदि जिस गति से मनुष्य की प्रगति हो रही है उससे, इनकी गति अधिक है तो वे अधिक समय तक टिक नही सकती। इस प्रकार स्वयं प्रगति से यह चेतना देने की आवश्यकता बढ़ जाती है कि आर्थिक जगत में प्रकृति की गति अनियमित नही होती। (Natura non facit saltum)।[1]

प्रगति अवश्य ही मन्द गति से होनी चाहिए। किन्तु यहाँ तक कि केवल भौतिक दृष्टिकोण से भी यह स्मरण रखना चाहिए कि जिन परिवर्तनों से उत्पादन की कार्यक्षमता में तुरन्त वृद्धि हो उन्हें इस शर्त पर अपनाना लाभदायक होगा कि मानव जाति उन्हें अपनाने के लिए तैयार है और वे एक संगठन के लिए उपयुक्त हों। इससे धन का अधिक तीव्रता से उत्पादन होगा, और इसका वितरण भी पहले से अधिक न्यायपूर्ण होगा। और जिस किसी प्रणाली में उद्योग के निम्न वर्गों में काम करने वालों की उच्च आन्तरिक शक्ति का दुरुपयोग हो, उसकी उपयुक्तता बहुत अधिक संदेहात्मक है।

---

1 परिशिष्ट 'क' अनुभाग, 16 से तुलना कीजिए।

अध्याय 9

औद्योगिक संगठन (पूर्वानुबद्ध) श्रम विभाजन मशीनों का प्रभाव

इस तथा इसके बाद के तीन अध्यायों में किये गये अध्ययन का विषय।

§1. उद्योग के कुशल सगठन की सबसे पहली शर्त यह है कि इसमे प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे काम मे लगाया जाय जिसे वह अपनी योग्यता तथा प्रशिक्षण से अच्छी तरह कर सकता है, और इसमे व्यक्ति को अपने काम के लिए सबसे अच्छी मशीनरी तथा अन्य उपकरण मिलने चाहिए। हम इस समय एक ओर-तो सभी प्रकार के उत्पादन के कार्य मे लग हुए लोगो तथा दूसरी ओर सामान्य प्रबन्ध के कार्य मे लगे हुए तथा जोखिमो को वहन करने वाले लोगो के बीच कार्य के वितरण पर विचार करेग, और हम विशष-कर मशीन के प्रभाव के प्रसंग मे, विभिन्न प्रकार के कर्मचारी वर्गो के बीच श्रम के वर्गीकरण तक ही अपने विचारो को सीमित रखेगे। इसके बाद के अध्याय मे हम श्रम के विभाजन तथा उद्योग के स्थानीयकरण के पारस्परिक प्रभावो पर विचार करेंगे। तीसरे अध्याय मे हम यह पता लगायेगे कि श्रम विभाजन के लाभ कहाँ तक बड़ी-बडी मात्रा मे पूँजी के व्यक्तिगत रूप मे या फर्मो के पास ही रहने पर या, जैसा कि साधारणतया कहा जाता है, बड़े पैमाने पर उत्पादन पर निर्भर है। और अन्त मे व्यावसायिक सगठन के कार्य के बढ़ते हुए विशिष्टीकरण पर विचार करेंगे।

अभ्यास करने से ही उसमें पूर्णता आती है।

प्रत्येक व्यक्ति इस तथ्य से परिचित है कि 'अभ्यास करने से ही पूर्णता आती है।' इससे एक ऐसा कार्य जो कि सर्वप्रथम कठिन प्रतीत होता है कुछ समय पश्चात् अपेक्षाकृत थोड़े से परिश्रम द्वारा किया जा सकता है, और तिस पर भी ये पहले से अधिक अच्छी तरह किया जाता है और क्रिया-विज्ञान (Physioslogy) से यह तथ्य कुछ मात्रा मे स्पष्ट हो जाता है। क्योकि इसमे यह विश्वास करने के लिए तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि परिवर्तन न्यूनाधिक रूप से प्रतिवर्ती (reflex) क्रिया अथवा स्वचालित क्रिया वाली नयी आदतों के धीरे-धीरे विकास के कारण होता है। पूर्णरूप से प्रतिवर्ती क्रिया, जैसे कि सुप्तावस्था मे साँस लेना, स्थानीय स्नायु-केन्द्रो के उत्तरदायित्व पर वृहद् मस्तिष्क में स्थित विचार शक्ति के सर्वोच्च केन्द्रीय अधिकारी से सम्बन्ध स्थापित किये बिना की जाती है। किन्तु सभी स्वेच्छित हाव-भाव के लिए मुख्य केन्द्रीय अधिकारी का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है यह स्नायु केन्द्रों से या स्थानीय अधिकारियों तथा कुछ दशाओं मे सीधे ही चेतना की स्नायुओं से सूचना प्राप्त करती है, और स्थानीय अधिकारियो को या कुछ दशाओं मे सीधे पेशीय स्नायुओ को विस्तृत एवं जटिल आदेश वापस भेजती है, और इस प्रकार वांछित परिणामो के लिए उनके कार्य का समन्वय करती है।[1]

क्रिया-विज्ञान सम्बन्धी स्पष्टीकरण।

---

1 दृष्टान्त के लिए जब एक व्यक्ति सर्वप्रथम स्केट चलाने का प्रयत्न करता है तो उसे अपना सारा ध्यान संतुलन बनाये रखने में ही लगाना चाहिए। उसके

ज्ञान तथा बौद्धिक क्षमता।

क्रिया-विज्ञान सम्बन्धी विशुद्ध मानसिक कार्य के आधार को अभी तक अच्छी तरह नहीं समझा गया है, किन्तु मस्तिष्क के ढाँचे के बारे में जो कुछ भी थोड़ा-बहुत

वृहत्-मस्तिष्क को प्रत्येक हाव-भाव के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखना पड़ता है, और अन्य चीजों के लिए उसके पास कोई बौद्धिक शक्ति शेष नहीं बची। किन्तु बहुत कुछ अभ्यास के पश्चात् यह क्रिया अर्ध-स्वचालित हो जाती है, स्थानीय स्नायु केन्द्र ही पेशियों के नियंत्रण का लगभग सारा कार्य करते हैं, और बृहत्-मस्तिष्क को इससे अवकाश मिल जाता है, जिससे वह व्यक्ति स्वतंत्र रूप से सोच भी सकता है। यहाँ तक कि वह अपने मार्ग में आये हुए किसी रोड़े से बचने के लिए अपना मार्ग भी बदल सकता है या थोड़ी-सी असमतल भूमि के कारण संतुलन न रहने पर अपने विचार-क्रम को किसी भी प्रकार अवरुद्ध किये बिना पुनः संतुलन ला सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोच-विचार करने की शक्ति के, जो कि बृहत्-मस्तिष्क में रहती है, तुरत निदेशन पर स्नायु शक्ति के अभ्यास से धीरे-धीरे अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, जिससे सम्भवतः स्नायुओं तथा सम्बन्धित स्नायु-केन्द्रों में एक स्पष्ट भौतिक परिवर्तन हो गया है और इन नये सम्बन्धों को स्नायु शक्ति की एक प्रकार की पूँजी कह सकते हैं। सम्भवतः यहाँ स्थानीय स्नायु-केन्द्रों की एक प्रकार की सुव्यवस्थित केन्द्र चालित शासन पद्धति काम करती है: अन्तस्था (Medulla), मेरुदंड (Spinal axis) तथा बड़ी नस की ग्रन्थि (Ganglia) साधारणतया प्रान्तीय अधिकारियों का काम करती है, और कुछ समय बाद सर्वोच्च सरकार को कष्ट दिये बिना जिला तथा ग्रामीण अधिकारियों के ऊपर नियंत्रण करने में समर्थ होती है। यह अधिक सम्भव है कि वे जो कुछ हो रहा हो उसका समाचार ऊपर भेजती है: किन्तु यदि कोई असामान्य घटना न घटे तो इनका अधिक काम नहीं रहता। जब एक नये असाधारण काम को पूरा करना होता है, जैसे कि पीछे की ओर स्केट चलाना तो उस समय सारी विचार करने की शक्ति की आवश्यकता होगी, और अब स्नायुओं तथा स्नायु केन्द्रों की विशेष स्केट संस्थाओं की सहायता से, जिनका साधारण प्रकार के स्केट चलाने में निर्माण हुआ था, वे इस कार्य को करने में समर्थ होंगी जो इस प्रकार की सहायता के बिना बिलकुल ही असम्भव था।

अब हम एक अधिक महत्वपूर्ण उदाहरण लेंगे : जब एक कलाकार अपनी भरसक कोशिश से रंग भरता है तो उसका वृहत्-मस्तिष्क अपने काम में पूर्ण रूप से व्यस्त रहता है: उसकी सारी मानसिक शक्ति इसमें लग जाती है और यह थकान इतनी अधिक होती है कि ऐसा अधिक समय तक करना कठिन है। कुछ घण्टों की प्रसन्नतामय प्रेरणा से वह ऐसे विचारों को व्यक्त कर सकता है जिनका आगामी पीढ़ियों के आचरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। किन्तु उसकी विचार व्यक्त करने की शक्ति असंख्य घंटों के अध्यवसाय से अर्जित की गयी है जिसमें उसने धीरे-धीरे आँख तथा हाथ के बीच ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया है जो उन वस्तुओं के अच्छे आरम्भिक रेखाचित्र बनाने के लिए पर्याप्त है जिनसे वह थोड़ा बहुत परिचित है। यहाँ तक कि जब कभी वह किसी से बातचीत में व्यस्त होता है तो उसे कदाचित् ही यह पता लगता है कि उसके हाथ में पेंसिल है।

हम जानते है उससे यह पता लगता है कि किसी भी प्रकार के विचार करने से मस्तिष्क के विभिन्न भागो मे नये सम्बन्धो का विकास होता है। कुछ भी हो, हम इस तथ्य को जानते हैं कि अभ्यास के कारण एक व्यक्ति जिन प्रश्नो का कुछ समय पूर्व यहाँ तक कि अपने अधिकतम प्रयास से भी बहुत ही अपूर्ण हल निकाल सकता था उन्हे अब शीघ्र ही और बिना किसी उल्लेखनीय परिश्रम के हल करने मे समर्थ हो गया है। व्यापारी, वकील, चिकित्सक तथा वैज्ञानिक के मस्तिष्क मे धीरे-धीरे ज्ञान के भडार अन्तर्ज्ञान (Intuition) की प्रतिभा का समावेश होता है। ये चीजे तो किसी भावशाली विचारक के अनेक वर्षों तक एक प्रकार से कुछ सीमित श्रेणी के प्रश्नो पर ही निरन्तर भरसक चिन्तन करने से प्राप्त की जा सकती हैं। यह सच है कि मस्तिष्क दिन मे कई घटो तक एक ही दिशा मे कठिन कार्य नही कर सकता: और एक अधिक परिश्रमी व्यक्ति कभी-कभी ऐसे कार्य से मनोरजन प्राप्त करता है जो कि उसके व्यवसाय से सम्बन्धित नही है, किन्तु यदि किसी व्यक्ति को यही कार्य दिन भर करना पडे तो यह बहुत अधिक थकान देने वाला होगा।

बहुधा कार्य में परिवर्तन करना एक प्रकार का विश्राम है।

वास्तव मे कुछ समाज सुधारको की यह धारणा है कि वे लोग जो सबसे महत्वपूर्ण मस्तिष्क का काम करते हैं अपनी ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति अथवा कठिन प्रश्नो को विचारने की शक्ति मे कमी किये बिना, शारीरिक श्रम मे भी पर्याप्त रूप से हाथ वटा सकते है। किन्तु अनुभव से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक थकान दूर करने का सबसे अच्छा उपाय उन धन्धो मे पाया जाता है जिन्हे इच्छानुकूल काम करने के विचार से प्रारम्भ किया जाता है, और मन न लगने पर छोड़ दिया जाता है, अर्थात्, जिन्हे प्रचलित भावना के अनुसार 'मन बहलाने वाले' कार्य के रूप मे वर्गीकृत किया जाता है। जिस किसी धन्धे को एक व्यक्ति कभी-कभी इच्छा के बल पर बाध्य होकर करते रहने की सोचता है उसका तत्रिका शक्ति पर प्रभाव पड़ता है, और इससे पूर्णरूप मे मन बहलाव नही होता . अत समाज के दृष्टिकोण से यह तब तक मितव्ययिता पूर्ण नही है जब तक इसका मूल्य उसके मुख्य कार्य मे हुई क्षति से पर्याप्त रूप मे अधिक न हो।[1]

---

1 जे० एस० मिल ने यहाँ तक कहा है कि इण्डिया आफिस (India Office) में काम करने से उनके दार्शनिक ज्ञान की खोज में किसी किस्म की बाधा नहीं पड़ी थी। किन्तु यह सम्भव प्रतोत होता है कि उनकी नवीनतम शक्तियों के अन्यत्र उपयोग किये जाने से उनके सर्वोत्तम विचारों के रूप में उनकी जानकारी से कहीं अधिक कमी हुई। और यद्यपि इससे उस पीढ़ी में उनके उल्लेखनीय योगदान में कुछ ही कमी.र्द्द किन्तु सम्भवतः इससे उनकी उस कार्य शक्ति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा वांपस पीढ़ियों में विचार क्रम को प्रभावित करती है। केवल उसकी थोड़ी-सी करती है ेत के प्रत्येक परमाणु का उपयोग कर ही डार्विन ठीक उसी प्रकार के बहुत ——को करने में सफल हुए : और यदि कोई समाजसुधारक समाज को ओर ार्विन के विश्राम के घंटों को लाभदायक काम में लगाने में सफल हुआ होता तो है समाज का बहुत सहित किया होता।

§2. कार्य की उच्चतम शाखाओं में कहाँ तक विशिष्टीकरण करना चाहिए, यह एक कठिन तथा अनिश्चित प्रश्न है। विज्ञान का यह नियम सही प्रतीत होता है कि युवाकाल में अध्ययन का क्षेत्र व्यापक होना चाहिए और आयु के बीतने के साथ-साथ इसे धीरे-धीरे कम कर देना चाहिए। एक चिकित्सक जिसने पूर्ण रूप से एक ही प्रकार की बीमारी की ही हमेशा चिकित्सा की हो वह सम्भवत: अपने विशेष विषय में भी किसी ऐसे अन्य व्यक्ति की अपेक्षा कम बुद्धिमतापूर्ण सलाह देगा जिसने अधिक विस्तृत अनुभव से उन बीमारियों से सामान्य स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उनमें धीरे-धीरे अपने अध्ययन को अधिकाधिक केन्द्रित किया है और अनेक प्रकार के विशेष अनुभवों तथा सूक्ष्म भावनाओं का प्रचुर संग्रह किया है। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि अत्यधिक मात्रा में बढ़ी हुई कार्यक्षमता को श्रम विभाजन द्वारा उन धन्धों में प्राप्त किया जा सकता है जहाँ केवल शारीरिक श्रम की ही बहुत अधिक माँग हो।

कार्य की उच्चतर श्रेणियों में अत्यधिक विशिष्टीकरण से हमेशा ही कार्यक्षमता नहीं बढ़ती।

ऐडमस्मिथ ने यह बतलाया कि एक बालक जिसने अपने सम्पूर्ण जीवन में केवल कीलें ही बनायी वह एक प्रथम श्रेणी के लोहार की अपेक्षा, जो यदाकदा ही कील बनाने का काम आरम्भ करता है, दुगुनी कीलें बनायेगा। जिस किसी को प्रतिदिन बिलकुल एक ही आकार की वस्तुओं में बिलकुल एक ही प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती है, वह धीरे-धीरे अपनी अँगुलियों को सही ढंग से चलाना सीख लेता है। इसमें उसके हाथ स्वचालित क्रिया की भाँति तेजी से कार्य करते हैं और प्रत्येक हावभाव के लिए मन से मिलने वाले आदेशों की कम प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कपड़े की मिल में बच्चों द्वारा धागे को बाँधना इसका एक दृष्टान्त है। पुन: एक कपड़े अथवा बूट की फैक्टरी में एक व्यक्ति जो हाथ या मशीनों से चमड़े या एक ही आकार के कपड़े के टुकड़ों को हर घंटे बाद, हर दिन बाद एक ही प्रकार की सीवन (Seam) मिलाता है वह पूरे कोट या पूरे बूट को बनाने में अभ्यस्त श्रमिक की अपेक्षा, जो आँख तथा हाथ की बहुत अधिक दक्षता से तथा उच्चस्तर की सामान्य कुशलता से कार्य करता है, इन्हें बहुत कम प्रयत्न से तथा कहीं अधिक तेजी से कर सकता है।[1]

किन्तु कार्य के संकुचित क्षेत्र में ऊँची शारीरिक कुशलता प्राप्त करना सरल है।

---

[1] सबसे अच्छे तथा सबसे कीमती कपड़े अधिक कुशल तथा अधिक वेतन प्राप्त करने वाले दर्जियों द्वारा बनाये जाते हैं। इनमें से प्रत्येक पहले एक वस्त्र को सम्पूर्ण रूप में तैयार कर दूसरा वस्त्र तैयार करता है, जब कि सबसे सस्ते तथा सबसे घटिया किस्म के कपड़े अकुशल औरतों द्वारा आधे पेट भर की मजदूरी (Starvation Wages) पर बनाये जाते हैं। ये औरतें कपड़ों को अपने घरों में ले जाती हैं और स्वयं ही हर प्रकार के सिलाई के काम को करती हैं। किन्तु बीच की किस्म के कपड़े वर्कशापों या फैक्टरियों में बनाये जाते हैं जहाँ कर्मचारियों की संख्या के आधार पर श्रम का विभाजन तथा उपविभाजन किया जाता है। और प्रतिद्वंदी प्रणाली की लागत पर यह प्रणाली हो अन्य दो किस्म के कपड़ों के सम्बन्ध में भी तीव्रता से प्रचलन में आ रही है। लार्ड लौडरडेल (Lauderdale) (Inquiry, पृष्ठ 282 में) जेनोफोन (Xenophon) के इस तर्क को उद्धृत करते हैं कि सबसे अच्छा काम तब किया

लकड़ी तथा धातु के धंधों में अनेक प्रक्रियाओं की समानता।

पुनः लकडी तथा धातु के उद्योगों मे यदि एक व्यक्ति को एक ही प्रकार के सामान से बार-बार बिलकुल एक ही प्रकार का काम करना पड़े तो जिस ढंग से इसे चलाना चाहिए ठीक उसी ढग से चलाने की आदत पड जाती है। उसे औजारों तथा अन्य चीजो को जिन्हे कि उसे इन सभी दशाओ मे काम मे लाना पड़ता है इस ढंग से सजा कर रखने की आदत पड़ जाती कि बिना थोड़ा-सा भी समय नष्ट किये तथा अपने शरीर के हिलने-डुलने मे बिना किसी शक्ति को नष्ट किये वह एक के बाद एक औजार को उपयोग मे लाता है। उन्हे सदैव एक ही स्थान पर तथा एक क्रम से उठाने का अभ्यस्त होने के कारण उसके हाथ बिलकुल अपने आप ही एक दूसरे के साथ सामंजस्य से कार्य करते हैं और अधिक अभ्यास से पेशीय शक्ति के व्यय की अपेक्षा उसकी तंत्रिका शक्ति का व्यय अधिक तेजी से कम होता है।

शारीरिक श्रम तथा मशीनरी के क्षेत्र।

किन्तु कोई कार्य जब इस प्रकार से नित्य प्रति का कार्य बन जाता है तो यह लगभग उस अवस्था मे पहुँच जाता है जब कि इसे मशीन द्वारा किया जा सके। इस दिशा मे जिस मुख्य कठिनाई पर विजय प्राप्त करनी है वह यह है कि मशीन पदार्थ को जोर से सही स्थिति मे किस प्रकार पकडे जिससे मशीन चालित औजार ठीक तरह से काम कर सके। और मशीन द्वारा उस पदार्थ को पकड़ने मे अधिक समय नष्ट न हो। किन्तु साधारणतया ऐसा तभी किया जा सकेगा जब इस पर कुछ श्रम तथा व्यय करना लाभदायक समझा जायेगा, और तब सारी क्रिया बहुधा एक ही व्यक्ति से नियन्त्रित की जा सकती है जो कि मशीन के सामने बैठा रहता है, और अपने बाये हाथ से ढेर मे से लकडी या धातु के एक टुकड़े को उठाता है और साकेट (Socket) मे डालता है, जब कि अपने दाहिने हाथ से वह लीवर को नीचे खीचता है, या अन्य किसी प्रकार से मशीन औजार को चलाता है, और अन्त मे अपने बाँये हाथ से किसी दूसरे ढेर की ओर उस पदार्थ को फेकता है जिसे एक निश्चित ढाँचे के अनुसार काट दिया गया हो या जिसमे छेद कर दिया गया हो या कील ठोकी गयी हो या एक नमूने के अनुसार समतल किया गया हो। विशेषकर इन्ही उद्योगो मे आधुनिक श्रमिक सघो की रिपोर्ट इस शिकायत से भरी है कि अकुशल श्रमिक, और यहां तक कि उनकी औरतें तथा उनके बच्चे ऐसे काम पर लगा दिये जाते है जिसके लिए एक प्रशिक्षित मिस्त्री की कुशलता एव जाँच की आवश्यकता होती है, किन्तु जिसे मशीन मे सुधार तथा

जाता है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक साधारण विभाग तक ही सीमित रखता है; जैसे जब एक व्यक्ति पुरुषों के लिए तथा दूसरा महिलाओं के लिए ही जूते बनाता है, या इससे भी अच्छा यह होगा कि एक व्यक्ति केवल जूतों को या वस्त्रों को सीये और दूसरा उनकी काट-छांट करें। अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा सम्राट् का भोजन बनाने का काम कहीं अधिक अच्छा है, क्योंकि उसके यहाँ एक रसोइया केवल उबालने का काम करता है, दूसरा केवल कबाब बनाता है। एक व्यक्ति केवल मछलियों को उबालता है, दूसरा केवल इन्हें भूनता है। सभी प्रकार की डबलरोटियों को बनाने के लिए एक ही आदमी नहीं होता, किन्तु विशेष किस्मों को बनाने के लिए विशेष व्यक्ति होते हैं।

श्रम उपविभाजन की निरन्तर बढ़ती हुई सूक्ष्मता के कारण नित्यप्रति के कार्य की भाँति बना दिया गया है।

मशीन के विकास के सम्बन्ध में श्रम का विभाजन।

§3. इस प्रकार हम एक ऐसे सामान्य नियम पर पहुँचते हैं जिसका विनिर्माण की कुछ शाखाओं में अन्य शाखाओं की अपेक्षा अधिक प्रभाव पडता है, किन्तु जो सभी मे लागू होता है। यह नियम इस प्रकार है कि विनिर्माण की जिस क्रिया को एक समान बनाया जा सके जिससे केवल एक ही चीज को ठीक उसी ढग से बार-बार करना पडे उसे कभी न कभी निश्चित रूप से मशीन द्वारा किया जा सकेगा। इसमे विलम्ब हो सकता है तथा कठिनाइयाँ भी हो सकती है, किन्तु यदि इसके द्वारा किया जाने वाला कार्य वडे पैमाने पर हो तो इस काम में बिना किसी सीमा के तब तक द्रव्य तथा आविष्कारक शक्ति लगायी जायेगी जब तक इसे प्राप्त न कर लिया जाये।[1]

इस प्रकार मशीनों मे सुधार तथा श्रम के बढते हुए उपविभाजन के दोनो परिवर्तन साथ-साथ हुए हैं और कुछ मात्रा इनमे परस्पर सम्बन्ध है। किन्तु यह सम्बन्ध उतना अधिक घनिष्ठ नही है जितना कि साधारणत. समझा जाता है। बाजारो की विशालता, एक ही प्रकार की अनेकों वस्तुओं के लिए बढी हुई माँग तथा कुछ दशाओ

---

1 एक ऐसी अफवाह है कि किसी महान आविष्कारक ने वस्त्र बनाने की मशीन से सम्बन्धित प्रयोगों में 30 000 पौंड खर्च किये थे और ऐसा कहा जाता है कि उसके परिव्यय का उसे प्रचुर रूप में प्रतिफल मिला। उसके कुछ आविष्कार इस प्रकार के थे कि उन्हें एक मेधावी व्यक्ति कर सकता था। और चाहे कितनी ही तीव्र आवश्यकता क्यों न होती वे आविष्कार तब तक नहीं हुए होते जब तक कि इनके लिए एक उपयुक्त व्यक्ति न मिलता। उसने अपने प्रत्येक झाड़न तैयार करने की मशीन (Combing machine) के लिए 1000 पौंड की जो रायल्टी ली वह अनुचित नहीं थी और वर्स्टेड के विनिर्माता ने जिसके पास बहुत अधिक काम था, एक अतिरिक्त मशीन खरीदना अधिक लाभदायक समझा और पेटेण्ट की अवधि के खत्म होने के केवल छः महीने पूर्व ही इसके लिए इस अतिरिक्त प्रभार को देना उपयुक्त समझा। किन्तु इस प्रकार की घटनाओं को इसके अपवाद समझना चाहिए : प्रायः पेटेण्ट वाली मशीनें अधिक कीमती नहीं होतीं। कुछ दिशाओं में विशेष मशीन द्वारा एक स्थान पर उनके उत्पादन करने की किफायत इतनी अधिक थी कि पेटेण्ट कराने वाला उन्हें घटिया किस्म की मशीनों (जिन्हें कि वे विस्थापित करती हैं) को पुरानी कीमत से कम कीमत पर बेचना अपने हित में समझता है। क्योंकि उस पुरानी कीमत पर उसे इतना अधिक लाभ मिला कि उसे नये उपयोगों तथा नये बाजारों में इन मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए इनकी कीमत को और अधिक कम करना उसके लिए लाभप्रद है। लगभग प्रत्येक व्यावसाय में बहुत-सी चीजें हाथ से ही बनायी जाती है, यद्यपि यह भलीभाँति ज्ञात है कि उस या अन्य किसी व्यवसाय में पहले से ही उपयोग में लायी जाने वाली मशीनों में कुछ परिवर्तन कर इन कार्यों को सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इसका कारण केवल यह है कि अभी तक इन मशीनों के प्रयोग के लिए काम नहीं है जिससे इनके बनाने में होने वाले कष्ट तथा व्यय का प्रतिफल मिल सके।

मशीन विशुद्ध शारीरिक कुशलता को विस्थापित करती है और इस प्रकार श्रम विभाजन के कुछ लाभों को कम कर देती है: किन्तु इसके क्षेत्र को बढ़ा देती है।

में अधिक यथार्थता से बनायी हुई चीजों के कारण श्रम का उपविभाजन हुआ है। मशीनो में सुधार का सबसे मुख्य प्रभाव किसी ऐसे कार्य को सस्ता तथा अधिक सही बनाना है जिसका किसी न किसी भाँति उपविभाजन हुआ है। दृष्टान्त के लिए, "सोहो (Soho) में विनिर्माण की व्यवस्था करते हुए बोल्टन (Boulton) तथा वाट (Watt) ने अधिकतम व्यावहारिक सीमा तक श्रम का विभाजन करना आवश्यक समझा। उस समय न तो ढाल की खराद (Slide lathes), न रन्दा करने की मशीनें और न छेद करने के औजार थे जिनसे अब निर्माण की यांत्रिकी शुद्धता पूर्णरूप से निश्चित रहती है। उस समय प्रत्येक चीज मिस्त्री के आँख तथा हाथ की शुद्धता पर निर्भर रहती थी और मिस्त्री भी साधारणतया अब की अपेक्षा कम कुशल थे। बोल्टन तथा वाट ने इस कठिनाई के ऊपर आंशिक रूप से विजय प्राप्त करने के लिए अपने कर्मचारियों को विशेष श्रेणियों के काम तक सीमित रखने की योजना बनायी, और जहाँ तक सम्भव हो सका उनमें उन्हें प्रवीण बनाने का निर्णय किया। एक ही औजार को काम में लाने तथा एक ही प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करने में होने वाले नित्यप्रति के अभ्यास से उन्होंने इस प्रकार बड़ी व्यक्तिगत प्रवीणता प्राप्त की।[1]" इस प्रकार मशीन निरन्तर ही उस विशुद्ध शारीरिक कुशलता का स्थान ले लेती है और उसे अनावश्यक बना देती है जिसे, यहाँ तक कि ऐडमस्मिथ के समय तक भी, प्राप्त करना श्रम विभाजन का मुख्य लाभ समझा जाता था। किन्तु विनिर्माण के पैमाने मे वृद्धि तथा इसे अधिक जटिल बनाने की प्रवृत्ति से उक्त बुराई से कही अधिक लाभ होता है। अतः इसके फलस्वरूप सभी प्रकार के श्रम के विभाजन, और विशेषकर व्यावसायिक प्रबन्ध के मामलों में सुविधाएँ बढ़ जाती हैं।

मशीन की बनी हुई मशीनों से ऐसे नये युग का प्रादुर्भाव हो रहा है जब विभिन्न पुरजों की अदला बदली की जा सकती है।

§4 सम्भवतः धातु के उद्योगों की कुछ शाखाओं में जहाँ 'अन्तर्बदल पुर्जों' की प्रणाली तीव्र गति से विकसित हो रही है वहाँ, मशीन की ऐसे कार्य को करने की शक्तियाँ सबसे अधिक स्पष्ट हैं जिसमें हाथ से बहुत अधिक यथार्थता लाने की आवश्यकता पड़ती है। हाथ से केवल लम्बे प्रशिक्षण तथा अत्यधिक चिन्तन एवं श्रम से ही धातु का एक टुकड़ा यथार्थ रूप में बनाया जा सकता है जो दूसरे से मिलता हो या दूसरे मे लग सकता हो. और इस सब के बावजूद भी इसमें पूर्ण यथार्थता नही होगी। किन्तु यह ठीक वह कार्य है जिसे ठीक प्रकार से बनायी गयी मशीन अत्यधिक सरलता या पूर्णता से कर सकती है। दृष्टान्त के रूप में यदि बीज बोने तथा फसल काटने की मशीनें हाथ से बनानी पड़ती तो सबसे पहले उनकी लागत बहुत ऊँची होती, और जब कभी उनका कोई भाग टूट जाता तो मशीन को विनिर्माता के पास वापस भेजकर या मशीन के पास एक बहुत अधिक योग्य मिस्त्री को लाकर इसका विस्थापन करने में बहुत बड़ी लागत लगती। किन्तु व्यवहार में विनिर्माता भंडार मे टूटे हुए टुकड़ों के बशत से प्रतिरूप (Facsimites) रखता है जिन्हें उसी मशीन से बनाया गया था और अतः जिनकी इससे अदला-बदली की जा सकती है। अमेरीका के उत्तर पश्चिमी भाग मे एक किसान सम्भवतः किसी अच्छे मिस्त्री की दूकान से सौ मील की दूरी पर रह कर भी

1 स्माइल्स की Boulton and Watt, पृष्ठ 170 देखिए।

विश्वास के साथ जटिल मशीनों का प्रयोग कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि मशीन के नम्बर तथा इसके किसी भी टूटे हुए भाग के नम्बर को तार द्वारा भेज कर लौटती हुई रेल से नये भाग को, जिसे कि वह स्वय ही इसके स्थान पर लगा सकता है, प्राप्त कर सकता है। 'अन्तर्बदल पुर्जों' के इस सिद्धान्त के महत्व को केवल हाल ही मे समझा गया है। इस बात के बडे लक्षण दिखायी देते है कि अन्य किसी की अपेक्षा इससे मशीन द्वारा बनायी गयी मशीनो को उत्पादन की प्रत्येक शाखा तक, जिसमे घरेलू तथा कृषि-कार्य भी शामिल है, फैलाया जायेगा।[1]

घड़ी बनाने के धन्धे के इतिहास से लिया गया दृष्टान्त।

आधुनिक उद्योग के रूप पर मशीनो के जो प्रभाव पडते हैं वे घडियो के विनिर्माण मे अधिक स्पष्ट है। कुछ वर्ष पूर्व फ्रांसीसी स्विटजरलैंड इस व्यवसाय का मुख्य केन्द्र रहा। वहाँ श्रम का अपेक्षाकृत अधिक उपविभाजन किया गया था, भले ही अधिकाश कार्य को थोडी-बहुत दूर-दूर फैली हुई जनसख्या द्वारा किया जाता था। वहाँ इस धन्धे की लगभग पचास अलग-अलग प्रकार की शाखाएँ थी जिनमे से प्रत्येक इस कार्य के एक छोटे से भाग मे लगी थी। लगभग उन सभी मे विशेष प्रकार की शारीरिक कुशलता की आवश्यकता थी, किन्तु निर्णय की शक्ति थोडी ही चाहिए थी। इनसे होने वाली आय साधारणतया हुत नीची थी, क्योंकि इसमे लगे हुए लोगो का इस पर एकाधिकार नही हो सकता था। इसका कारण यह था कि यह धन्धा वहाँ बहुत पहले से ही प्रारम्भ हो चुका था, और एक साधारण बुद्धि के बच्चे को इतनी शिक्षा देना कोई कठिन न था। किन्तु इस उद्योग मे अब मशीन द्वारा घडी बनाने की अमेरिका की प्रणाली को प्रोत्साहन मिल रहा है जिसमे विशेष प्रकार की शारीरिक कुशलता की बहुत कम आवश्यकता पडती है। वास्तव मे प्रतिवर्ष मशीनरी अधिकाधिक स्वचालित होती जा रही है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि मनुष्य के हाथो की कम से कम सहायता ली जाये· किन्तु मशीन की शक्ति जितनी ही अधिक सूक्ष्म होगी, इस पर निगरानी रखने वाले लोगो की जाच तथा सावधानी की अधिकाधिक आवश्यकता होगी। दृष्टान्त के लिए, एक सुन्दर मशीन को लीजिए जो एक छोर पर इस्पात के तार को अपने आप ग्रहण करती है और दूसरी छोर से अत्युत्तम प्रकार के स्क्रू निकालती है। इससे बहुत से कारीगर जिन्होंने वास्तव मे एक बहुत ऊँची एव विशिष्ट प्रकार की शारीरिक कुशलता प्राप्त कर ली थी विस्थापित हो जाते है। किन्तु ये लोग सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से देखकर अपनी आँखों की ज्योति को कम करने तथा अपने काम मे अँगुलियो के प्रयोग के ऊपर अधिकार प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रतिभा का बहुत कम विकास कर पाते थे और इस कारण निष्क्रिय जीवन बिताते थे। किन्तु मशीन बड़ी जटिल तथा कीमती होती है और जो व्यक्ति इस पर काम करे उसमे ऐसी बुद्धि एव प्रभावपूर्ण

मशीनरी के जटिल होने के कारण जाँच तथा सामान्य बुद्धि की माँग बढ़ जाती है,

1 इस प्रणाली का उदय अधिकांश रूप में सर जोसेफ ह्विटवर्थ (Sir Joseph Whitworth) के मानक माप (Standard gauges) के कारण हुआ है, किन्तु इस पर अमेरिका में बड़े उद्यम के साथ तथा पूर्णता से काम हुआ है। ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में मानवीकरण बहुत लाभदायक रहता है जिन्हें अन्य लोगों द्वारा जटिल मशीनों, इमारतों, पुलों इत्यादि के रूप में बनाया जाता है।

उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिए जो एक अच्छे आचरण के निर्माण में बहुत कुछ सहायता पहुँचाती है, और जो यद्यपि पहले से अधिक साधारण रूप में पायी जाती है *किन्तु इससे बहुत कम दशाओं में ही ऊँचे दर पर वेतन प्राप्त किया जा सकता है।* इसमे संदेह नही कि यह एक चरम अवस्था को व्यक्त करती है और एक घड़ी बनाने की फैक्टरी में किया जाने वाला अधिकाश कार्य बहुत सरल होता है। किन्तु प्राचीन प्रणाली की अपेक्षा अब इसके अधिकाश काम मे उच्चतर प्रतिभाओ की आवश्यकता होती है, और इसमें लगे हुए लोग औसत रूप मे पहले से ऊँची मजदूरी पाते है। साथ ही साथ इसमे से एक विश्वसनीय घडी की कीमत समाज के सबसे निर्धन वर्गो की पहुँच के अन्दर निर्धारित की जा चुकी है, और इसमे ऐसे लक्षण भी दिखायी दे रहे है कि यह शीघ्र ही उच्चतम कोटि के कार्य को पूरा कर सकेगी।[1]

और कुछ दशाओं में विभिन्न व्यवसायों को विभाजित करने वाली सीमाओं को शिथिल बना देती है।

वे लोग जो घडी के विभिन्न भागों को एक साथ मिलाते हैं और इसे पूर्ण करते हैं उनमे सदैव बहुत विशिष्ट प्रकार की कुशलता होनी चाहिए' किन्तु एक घडी की फैक्टरी में जो मशीनें प्रयोग मे लायी जाती हैं वे सामान्यरूप मे अन्य किसी हलके धातु के धन्धों में प्रयोग की जाने वाली मशीनो से भिन्न नही होतीं: वास्तव मे उनमे बहुत-सी मशीनें तो मोड़ की खराद और काटने, छेद करने, रन्दा करने, आकार बनाने, पीसने तथा कुछ अन्य मशीनों के केवल सुधरे हुए रूप हैं, जो कि सभी प्रकार के इंजीनियरी के धन्धे मे पाये जाते हैं। यह इस तथ्य को अच्छी तरह चित्रित करता है कि श्रम का उपविभाजन जहाँ निरन्तर बढ रहा है, नाममात्र के लिए भिन्न धन्धों मे विभाजन की अनेक रेखाएँ अधिक सकुचित हो रही हैं और अब इन्हें अपनाना कठिन नही रह गया है। पुराने समयों में जो घडीसाज अपनी बनायी हुई वस्तुओं के लिए घटी हुई माँग का अनुभव करते थे उन्हें यह सुनकर बहुत कम आनन्द मिलता था कि बन्दूक बनाने के धन्धे में अतिरिक्त श्रमिकों की कमी है। किन्तु एक घड़ी की फैक्टरी मे अधिकांश कारीगर यदि वे कभी बन्दूक बनाने या सिलाई की मशीन की फैक्टरी या वस्त्र बनाने की मशीनों को बनाने की फैक्टरियों मे भूले-भटके चले गये हों तो यह पायेंगे कि वहाँ मशीनें उन मशीनों से मिलती-जुलती हैं जिनसे वे परिचित हैं। एक घड़ी बनाने की फैक्टरी को इसमे काम करने वाले कर्मचारियों सहित बिना किसी अत्यधिक हानि के सिलाई की मशीन बनाने की फैक्टरी मे परिवर्तित किया जा सकता है: इसमे केवल यही शर्त होगी कि इस नयी फैक्टरी मे किसी को भी ऐसा काम नही दिया जायेगा जिसके लिए पहले से *अभ्यस्त कार्य की अपेक्षा एक उच्चतर स्तर की सामान्य बुद्धि की आवश्यकता हो।*

---

1 मशीनों ने जिस पूर्णता को प्राप्त कर लिया है वह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1885 में लंदन में हुई आविष्कार नुमाइश अमेरिका के घड़ी की फैक्टरी के प्रतिनिधि ने विनिर्माण की पुरानी प्रणाली के एक अंग्रेज प्रतिनिधि के सम्मुख पचास घड़ियों के पुर्जे अलग-अलग कर दिये और इनके विभिन्न भागों को विभिन्न ढेरों में फेंकने के बाद उनसे कहा कि वे उसके लिए क्रमानुसार प्रत्येक ढेर से एक-एक भाग उठायें। इसके बाद उसने इन पुर्जों को किसी एक घड़ी के आवरण में जोड़ा, और उन्हें पूर्णरूप से ठीक अवस्था में एक घड़ी तैयार कर लौटा दिया।

मुद्रण व्यवसाय से लिया गया दृष्टान्त।

§5 मुद्रण व्यवसाय एक दूसरा उदाहरण है जिसमें मशीन में सुधार तथा उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि से श्रम का विस्तृत रूप से उपविभाजन होता है। प्रत्येक व्यक्ति अमेरिका के नये बसे हुए क्षेत्रों के अग्रगामी समाचार पत्र के सम्पादक से परिचित हैं, जो टाइप जमाकर अपने लेखों को तैयार करता है, और एक लड़के की सहायता से कागज के ताव पर छापता है तथा अपने दूर-दूर बसे हुए पड़ोसियों तक पहुँचाता है। जब मुद्रण व्यवसाय का रहस्य नया था, मुद्रक को यह सभी कुछ अपने आप करना पड़ता था, तथा साथ ही साथ उसको अपने यंत्र भी बनाने पडते थे।[1] उसको अब ये चीजें अन्य 'सहायक' धन्धों से प्राप्त होती हैं, जिनसे यहाँ तक सुदूर वन प्रदेश मे मुद्रक प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकता है जिसकी कि उसे जरूरत हो। बाहर से प्राप्त होने वाली इस सहायता के बावजूद भी एक बहुत बड़े मुद्रण संस्थान को विभिन्न वर्गों के बहुत से कर्मचारियों के लिए अपने यहाँ ही रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। उन लोगो के विषय में हमे कुछ नही कहना है जो व्यवसाय का प्रबन्ध एवं इसकी व्यवस्था करते हैं, जो इसके कार्यालय का काम चलाते हैं और इसके गोदाम को रखते हैं। कुशल 'प्रूफ-संशोधक' जो 'प्रूफ' में की गयी त्रुटियों को सुधारते हैं, इंजीनियर तथा मशीन की मरम्मत करने वाले, साँचा तैयार करने वाले, और छपाई के फलक को बनाने तथा इस में सुधार करने वाले, तथा गोदाम के मालिकों तथा उन्हें मदद पहुँचाने वाले लड़के व लड़कियों, तथा अन्य बहुत से छोटे-छोटे वर्गों के विषय में भी हमें कुछ नहीं कहना है। टाइप का ढाँचा तैयार करने वाले कम्पोजीटरों को तथा इनसे छपाई करने वाले मशीन चालक व मुद्रण कर्मचारियों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है। इन दोनों वर्गों में से प्रत्येक अनेक छोटे-छोटे वर्गों मे बटा हुआ है, और यह बात मुद्रण व्यवसाय के बड़े-बड़े केन्द्रों मे विशेषकर सत्य है। दृष्टान्त के लिए, लन्दन मे कोई मशीन चालक जो एक प्रकार की मशीन से परिचित था या कोई कम्पोजीटर जो एक प्रकार के कार्य से अभ्यस्त था, नौकरी से निकाल दिये जाने पर अपनी विशिष्ट प्रकार की कुशलता का परित्याग नही करेगा, और अपने व्यवसाय के साधारण ज्ञान का सहारा लेकर किसी अन्य प्रकार की मशीन पर अथवा अन्य प्रकार के काम को ढूँढ़ेगा।[2] किसी धंधे के सूक्ष्म उपविभाजन के बीच की इन बाधाओं का उद्योग के

आधुनिक उद्योग में श्रम विभाजन के सूक्ष्म भेदों को प्रकट करने वाले अनेक

---

1 "टाइप संस्थापक सम्भवतः सबसे पहला था जिसने इस कारोबार से सम्बन्ध विच्छेद किया। उसके बाद मुद्रकों ने मुद्रणालयों के निर्माण कार्य को अन्य लोगों को सौंप दिया। उसके पश्चात् रोशनाई तथा रोलर के काम में अलग-अलग विनिर्माता लगे, और व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग जैसे, मुद्रण यंत्रों के कारीगर, मुद्रण जाइनर, तथा मुद्रण इंजीनियर का उदय हुआ जिन्होंने अन्य व्यवसायों से सम्बन्धित होते हुए भी मुद्रण यन्त्रों के निर्माण में विशेषता प्राप्त की।" (Encyclopaedia Britannica में Typography पर साउथवर्ड का लेख देखिए)।

2 दृष्टान्त के लिए मि० साउथवर्ड बतलाते हैं कि "एक माइण्डर (Minder) [केवल पुस्तकें छापने वाली मशीन को ही या समाचार पत्रों की मशीन को ही समझ सकता है। वह उन्हीं मशीनों के बारे में सब कुछ जान सकता है जो समतल से छापती

दृष्टान्त जिन्हें आसानी से छोड़कर आगे बढ़ा जा सकता है।

विशिष्टीकरण की आधुनिक प्रवृत्ति के अनेक विवरणो मे बहुत महत्व है, और कुछ हद तक इनके महत्व का बढ़ना उचित भी है, क्योकि उनमे से बहुतो मे यद्यपि इतना कम अन्तर है कि एक व्यक्ति किसी उपविभाग से काम से निकाल दिये जाने पर अपने किसी एक निकटतम उपविभाग मे बिना अपनी क्षमता का ह्रास किये प्रवेश कर सकता है, फिर भी वह तब तक ऐसा नही करेगा जब तक वह अपने पुराने व्यवसाय मे ही रोजगार पाने के लिए थोड़ा बहुत प्रयत्न न कर ले। और इसलिए जहाँ तक व्यापार में सप्ताह मे होने वाले छोटे-मोटे परिवर्तनो का प्रश्न है, ये बाधाएँ भी उतनी ही प्रभावशील हैं जितनी कि अधिक बड़ी बाधाएँ किन्तु ये सब बाधाएँ उस गहरे एवं व्यापक बँटवारे से बिलकुल ही भिन्न प्रकार की हैं जिसके कारण मध्यकालीन हस्तकला मे लगे हुए लोगो के एक वर्ग को दूसरे से पृथक् किया जा सकता था और जिसके कारण व्यवसाय से छूटने पर खादी बुनने वाले जुलाहो को जीवन पर्यन्त यातनाएँ सहन करनी पड़ी।[1]

है या रोलर से छापती है, या वह रोलर से छापने वाली मशीनों की किसी एक ही किस्म के बारे में जान सकता है। बिलकुल ही नयी मशीनों से दस्तकारों के एक नये वर्ग का सृजन होता है। ऐसे भी लोग है जो दो रंगों की या बारीक पुस्तक मुद्रण (Book printing) की मशीनों से बिलकुल अपरिचित होने पर भी वाल्टर के मुद्रणालय का पूर्णरूप में प्रबन्ध कर सकते है। कम्पोजीटर के विभाग में श्रम का और अधिक सूक्ष्मरूप से विभाजन किया जाता है। एक पुरानी प्रणाली वाला मुद्रक बिना विशेष ध्यान दिये ही इश्तिहार, शीर्षक पृष्ठ, या पुस्तक को छापता जाता है, किन्तु आजकल छोटे-मोटे कार्य के लिए, पुस्तक छापने के लिए या समाचार पत्र छापने के लिए अलग-अलग व्यक्ति नियुक्त किये जाते है। छोटे-मोटे काम करने वाले ऐसे भी व्यक्ति है जो केवल पोस्टर ही तैयार करते है। पुस्तक के कलाकार वे है जो शीर्षक तथा पुस्तक के प्रधान अंग तैयार करते है। इन बाद वालों में भी एक व्यक्ति टाइप लगाता है, दूसरा, जो बनावट तैयार करने वाला होता है, पृष्ठों को क्रमबद्ध करता है।"

1 अब हम मशीन द्वारा कुछ दिशाओं में शारीरिक श्रम को निष्कासित करने तथा अन्य दशाओं में इसके प्रयोग के नये क्षेत्र ढूंढ निकालने में हुई प्रगति पर और आगे विचार करेंगे। अब हम उस प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक देखेंगे जिसके फलस्वरूप एक बड़े समाचार पत्र के बहुत अधिक संस्करण तैयार किये जाते है और चन्द घंटों में ही छाप दिये जाते है। सर्वप्रथम, टाइप लगाने का बहुत अधिक भाग बहुधा स्वयं मशीन से ही किया जाता है, किन्तु प्रत्येक दशा में टाइप सबसे पहले समान तल में किया जाता है और इसमें से अधिक तेजी से छापना असंभव है। अतएव इसके पश्चात् दूसरा कार्य लुगदी (Papier mache) का साँचा तैयार करना है जो एक रोलर की ओर झुका होता है, और इसके बाद इसे एक साँचे के रूप में प्रयोग किया जाता है जहाँ एक नयी धातु की प्लेट डाली जाती है जो मुद्रण मशीन के रोलर में ठीक बैठती है। इनमें ठीक बैठा दिये जाने के बाद यह बारी-बारी से स्याही देने वाले रोलर तथा कागज के सम्मुख घूमती है। कागज को मशीन के तले एक बहुत बड़े ढेर के रूप में सजाकर रख दिया

मशीन के प्रयोग के कारण उच्च स्तर की प्रतिभावों की बढ़ी हुई माँग से सम्बन्धित दृष्टान्त।

घड़ी के धन्धे की भाँति मुद्रण धन्धों मे भी यान्त्रिक एव वैज्ञानिक उपकरणो द्वारा ऐसे परिणाम निकाले गये है जो अन्यथा असम्भव थे। साथ ही साथ इनमे निरन्तर ऐसे कार्य भी किये जाने लगे है जिनमे शारीरिक कुशलता एव निणता की आवश्यकता होती है, किन्तु अधिक निर्णय की आवश्यकता नही होती। उनमे मनुष्य के लिए उन सभी कार्यों को छोड़ दिया जाता है जिनमे निर्णय करने की आवश्यकता होती है, और ऐसे हर प्रकार के नये-नये धन्धो को प्रारम्भ किया जाता है जिनमे इसकी बहुत अधिक माँग रहती है। मुद्रक के उपकरणो मे सुधार होने तथा इनके सस्ते होने के साथ साथ पाठक के निर्णय करने की शक्ति एव उसके विवेक तथा साहित्यिक ज्ञान मे वृद्धि हुई है। इससे उन लोगों की कुशलता तथा रुचि की भी अधिक माँग होने लगी जो यह जानते है कि एक सुन्दर शीर्षक पृष्ठ को कैसे तैयार किया जाय अथवा कागज के ताव को जिसमे नक्कासी छापनी होती है कैसे तैयार किया जाय जिससे प्रकाश तथा छाया का उचित विभाजन हो सके। इससे उन मेधावी तथा अत्यधिक प्रशिक्षित कारीगरो की माँग बढ जाती है जो लकड़ी एवं पत्थर तथा धातु पर नक्कासी करते है, तथा उन लोगो की भी माँग बढ जाती है जो दस मिनट मे दिये गये वक्तव्य के साराश को सक्षेप मे सही रूप से लिख सकते है—इस बौद्धिक कौशल की कठिनाई को हम बहुधा कम महत्व का समझते है क्योकि इस प्रकार का कार्य अनेक बार किया जाता है। अतः इसके कारण फोटोग्राफर, विद्युत्-मुद्रांकन करने वालो (Electrotypers) सीसा पट्टी वालो (Stereotypers), मुद्रक की मशीन बनाने वालो, तथा अन्य बहुत से लोगों की माँग बढ जाती है। ये लोग छापे की मशीन मे कागज देने, उनको निकालने तथा समाचार पत्रो को मोडने मे लगे हुए लोगो की अपेक्षा (जिनका कार्य लोहे की

जाता है, और इसमें से यह पहले तो अवमंदन (damping) रोलरों के सामने और तत्पश्चात् छापने के रोलरों के सामने अपने आप निकलता जाता है, जिससे से पहले से इसमें एक ओर तथा दूसरे से दूसरी ओर छपाई होती है: इसके बाद यह काटने वाले रोलर में जाता है जो इसे बराबर लम्बाई में काटता है, और इसके बाद ही मोड़ने वाले उपकरण पर रखा जाता है जो इसे बिक्री के लिए तैयार रूप में मोड़ता है।

अभी हाल ही में टाइप लगाने का कार्य नयी प्रणालियों से किया जाने लगा है। कम्पोजीटर टाइप-राइटर की भाँति कुंजी बोर्ड (Key board) पर हाथ चलाता है और तदनुरूप शब्द का ठप्पा (Matrix) लाइन पर पहुँच जाता है: अक्षरों के बीच रिक्त स्थान रखने के बाद ठप्पों की लाइन में पिघला हुआ सीसा डाल दिया जाता है, और टाइप की एक ठोस रेखा तैयार हो जाती है, और आगे प्रत्येक अक्षर को इसके ठप्पे से अलग-अलग करके निकाला जाता है। मशीन अक्षरों से लिये जाने वाले स्थान का अनुमान लगाती है, एक पंक्ति में पर्याप्त अक्षरों के हो जाने पर रुक जाती है, और शब्दों के बीच की आवश्यक दूरी में रिक्त स्थान को विभाजित कर देती है, और अन्त में एक पंक्ति तैयार करती है। ऐसा दावा किया जाता है कि एक कम्पोजीटर दूर-दूर नगरों में स्थित इस प्रकार की असंख्य मशीनों के ऊपर विद्युत् धाराओं से साथ-साथ काम कर सकता है।

अँगुलियों एवं लोहे की भुजाओं ने करना आरम्भ कर दिया है) अपने कार्य से उच्च स्तर का प्रशिक्षण तथा उच्च स्तर की आय प्राप्त करते है।

मशीनों के कारण मानव की मांस पेशियों का भार हलका हो जाता है।

§6. अब हम मशीन द्वारा उस अत्यधिक पेशीय भार को दूर किये जाने के प्रभावों पर विचार करेंगे, जो कुछ शताब्दियो पूर्व यहाँ तक कि इंग्लैंड जैसे देश मे आधे से अधिक श्रमिको को वहन करना पड़ता था। मशीन की शक्ति के अद्भुत दृष्टान्त बड़े पैमाने के लोहे के कारखानों (Iron works) मे मिलते है विशेषकर कवच की प्लेट को बनाने के कार्य मे जहाँ इ नी अधिक शक्ति लगाने की आवश्यकता होती है कि मनुष्य की पेशियो का कोई महत्व ही नही और जहाँ क्षैतिज (Horizontal) अथवा उर्ध्वाधर (Vert.cal) हर प्रकार की गति द्रव अथवा वाष्प-शक्ति से प्रभावित होती है और मनुष्य समीप मे मशीन का सचालन करने के लिए तथा राख को हटाने के लिए या इसी प्रकार के गौण कार्यो को करने के लिए प्रस्तुत रहता है।

इस श्रेणी की मशीनो से प्रकृति के ऊपर हमारा नियन्त्रण बढ़ गया हैकिन्तु इसके कारण मनुष्य के कार्य के स्वभाव मे प्रत्यक्ष रूप मे अधिक परिवर्तन नही हुआ है, क्योकि मशीनो के प्रयोग मे उसके काम मे जो भी परिवर्तन हुआ है उसे वह इनकी सहायता के अभाव मे नही कर सकता था। किन्तु अन्य धन्धो मे मशीन से मनुष्य का श्रम हलका हो गया है। दृष्टान्त के लिए मकान के बढ़ई अपने लिए बहुत कम श्रम छोड़ कर उसी प्रकार की चीजे बनाते हैं जो हमारे पूर्वजो द्वारा प्रयोग मे लायी जाती थी। वे अब स्वय इस कार्य के उन्ही भागो को करते है जो सबसे अधिक आनन्ददायक तथा सबसे अधिक रोचक हैं, जब कि हर देहाती कस्बे मे तथा प्रत्येक गाँव मे चिरायी करने, रंदा लगाने तथा साँचे बनाने के कार्य वाष्पमिलो द्वारा किये जाते हैं। इन कार्यो को स्वयं ही करने के कारण कुछ ही समय पूर्व तक दुखदायी थकान के कारण वे लोग समय के पहले ही वृद्ध हो जाते थे।[1]

विनिर्माण में कभी न कभी सभी प्रकार के नीरस कार्य

आविष्कार होने के बाद साधारणतया नयी मशीन के लिए अत्यधिक देखरेख एवं ध्यान की आवश्यकता होती है। किन्तु इस पर काम करने वाले कर्मचारियो का कार्य निरन्तर बदलता रहता है, जो कार्य एक-सा तथा नीरस होता है वह धीरे-धीरे मशीन से होने लगता है और इस प्रकार मशीन धीरे-धीरे अधिकाधिक स्वचालित एवं स्वय संचालित होती है। अन्त मे केवल कुछ निश्चित समय के पश्चात् कच्चा माल देने

---

1 फर्श के लिए लम्बे चिकने तख्ते बनाने तथा अन्य प्रयोगों के लिए काम में लाये जाने वाले रंदा से हृदय रोग हो जाते थे, जिसके कारण चालीस वर्ष की आयु में ही बढ़ई निश्चित रूप से वृद्ध हो जाते थे। एडमस्मिथ बतलाते हैं कि "उदार रूप से भुगतान किये जाने पर श्रमिक अपनी क्षमता से अधिक कार्य करते हैं और इससे उनका स्वास्थ्य तथा शरीर गठन कुछ ही वर्षों में नष्ट हो जाता है। इंग्लैंड तथा कुछ अन्य स्थानों में एक बढ़ई से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपने अधिकतम जोश को आठ वर्षों से अधिक समय तक बनाये रहेगा। प्रायः सभी वर्गों के कारीगरों को अपने विशेष प्रकार के कार्य में अत्यधिक श्रम करने से कुछ खास प्रकार की दुर्बलता आ जाती है।" Wealth of Nations, भाग I, अध्याय VII।

तथा तैयार होने पर माल ले जाने के अतिरिक्त हाथ के कार्य के लिए कुछ शेष नही बचता इसके बाद भी निरीक्षण करने का यह उत्तरदायित्व रहता है कि मशीन अच्छी अवस्था मे तथा ठीक ढंग से काम कर रही है या नही। किन्तु स्वचालित गति की मशीनों का आरम्भ होने से, जिसमें कुछ खराबी आ जाने पर मशीन स्वतः ही रुक जाती है, उक्त कार्य भी बहुधा हल्का हो गया है।

मशीन द्वारा किये जाते है।

पुराने समय में सादे कपड़े के बुनकर के धन्धे से बढ़ कर कोई भी काम अधिक संकुचित अथवा नीरस नही था। किन्तु अब एक औरत चार या इससे अधिक करघों को चलाती है, जिसमें से प्रत्येक से प्रतिदिन पुराने करघे की अपेक्षा कई गुना अधिक काम किया जा सकता है। इसलिए अब प्रत्येक सौ गज बुने हुए कपडे के लिए मनुष्य द्वारा किया गया बिलकुल नीरस कार्य शायद पूरे कार्य का बीसवाँ हिस्सा भी नहीं होता।[1]

कपड़े के उद्योगों से लिया गया दृष्टान्त।

बहुत से धन्धों के हाल ही के इतिहास मे इस प्रकार के तथ्य मिलते हैं: और जब हम उद्योग के आधुनिक संगठन की उस प्रवृत्ति पर विचार करते है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति का कार्य-क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है तथा इस कारण नीरस बनता जा रहा है तो, इनका महत्व बहुत अधिक हो जाता है। क्योंकि उन धन्धों मे कार्य का सबसे अधिक उपविभाजन होता है जिनमें मुख्य पेशीय शक्ति के भार को निश्चित रूप से मशीन द्वारा करना सम्भव है, और इस प्रकार नीरस कार्य का यह हानिकारक स्रोत बहुत कम हो जाता है। जैसा कि रोसर ने कहा है, कार्य की नीरसता की अपेक्षा जीवन की नीरसता से कहीं अधिक आतंकित होना चाहिए: कार्य की नीरसता केवल तभी प्रथम श्रेणी की अशुभ वस्तु समझी जा सकती है जब इससे जीवन भी नीरस बन जाता है। अब जब एक व्यक्ति के रोजगार के लिए बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता है तो वह उस कार्य को करने के बाद कुछ भी करने के समर्थ नही रहता, और जब तक उसकी मानसिक प्रतिभावों को उसके कार्य मे प्रकट करने का अवसर न मिले, उनके विकसित होने की बहुत ही थोड़ी सम्भावना है। किन्तु जिस फैक्टरी मे कभी भी अत्यधिक शोरगुल नही होता और जहाँ श्रम के घण्टे अधिक लम्बे नही होते वहाँ साधारण कार्य में तंत्रिका शक्ति अधिक नष्ट नही होती। फैक्टरी के जीवन के सामाजिक वातावरण से कार्य की अवधि तथा छुट्टी के बाद सदैव ही मानसिक क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है और फैक्टरी मे काम करने वाले जिन कर्मचारियो के पेशे देखने में सबसे अधिक नीरस लगते हैं उनमें से अनेक के पास पर्याप्त बुद्धि एवं मानसिक साधन होते हैं।[2]

इस प्रकार यह कार्य की नीरसता से जीवन को नीरस होने से बचाती है।

---

1 पिछले सत्तर वर्षों में बुनने में श्रम की कार्यकुशलता बीस गुनी और कातने में छः गुनी बढ़ गयी है। इसके पूर्व के सत्तर वर्षों में बुनने में हुए सुधारों से श्रम की कार्यकुशलता दो सौ गुनी पहले ही बढ़ चुकी थी। एलिसन (Ellison) द्वारा लिखित Cotton Trade of Great Britain, अध्याय IV और V देखिए)।

2 सम्भवतः कपड़े के उद्योग ऐसे कार्य का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो पहले हाथ से किया जाता था और अब मशीन से किया जाता है। ये इंग्लैंड

यह सत्य है कि अमेरिका का कृषक एक योग्य व्यक्ति है, और उसके बच्चे संसार में तीव्रता से प्रगति करते हैं किन्तु आंशिक रूप से इस कारण कि वहाँ भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और वह साधारणतया जिस फार्म को जोतता है उसका मालिक भी होता है, अंग्रेजो की अपेक्षा उसकी सामाजिक दशाएँ अधिक अच्छी है। उसे सदैव अपने विषय मे ही सोचना पड़ता है और उसने बहुत पहले से ही जटिल मशीनो का प्रयोग किया है तथा उनकी मरम्मत की है। अंग्रेज खेतिहर मजदूर को उनके साथ प्रतिस्पर्द्धा करने मे अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है। अभी हाल ही मे वह बहुत कम शिक्षित था और बहुत हद तक एक अर्द्ध सामंतशाही शासन मे काम करता था, जिसमे ऐसी बात न थी कि लाभ न हो किन्तु उस शासन ने उद्यम तथा कुछ मात्रा मे स्वाभिमान को भी दबा दिया था। सकीर्णता के ये कारण अब दूर हो गये है। वह अब युवावस्था मे

में विशेषकर प्रसिद्ध है जहाँ कि इनसे लगभग पाँच लाख पुरुषों और पाँच लाख से अधिक महिलाओं को अथवा उन दस व्यक्तियों में से एक से अधिक को रोजगार मिलता है जो स्वतन्त्र आय अर्जित करते है। मानवीय पेशियो से यहाँ तक कि सुविधाजनक सामग्री को बनाने में जिस भार को दूर कर दिया गया है वह इस तथ्य से प्रदर्शित होता है कि इन दस लाख कारीगरों में से प्रत्येक वाष्प की एक अश्वशक्ति का प्रयोग करता है अर्थात् वे सभी हृष्टपुष्ट होने पर स्वयं जितना श्रम करते है उसके लगभग दस गुनी शक्ति का केवल एक व्यक्ति प्रयोग करता है। इन उद्योगों के इतिहास से हमें यह स्मरण होगा कि जो लोग विनिर्माण के कार्य के अधिक नीरस भागों को करते है वे प्रायः ऐसे कुशल श्रमिक नहीं होते जो पहले उच्चतर श्रेणी के कार्य में लगे हो. अपितु वे ऐसे अकुशल कर्मचारी होते है जो प्रगति करके यहाँ तक पहुँचे है। लंकाशायर की सूत की मिलों में काम करने वाले अधिकांश लोग आयरलैंड के निर्धनता पीड़ित क्षेत्रो से आये हुए है, जबकि अन्य लोग निर्धन तथा दुर्बल शरीर वाले लोगों के वंशज है। ये लोग सबसे अधिक निर्धन कृषि क्षेत्रों के जीवन की बहुत ही अधिक दयनीय दशाओ के कारण पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में बहुत बड़ी संख्या में यहाँ भेजे गये थे। इन कृषि-क्षेत्रों में श्रमिकों का भोजन एवं उनके रहने की दशा उन पशुओं की दशाओ से भी अधिक बुरी थी जिनको वे पालते थे। पुनः जब यह अफसोस प्रकट किया जाता है कि नये इंगलैंड की सूती फैक्टरी में काम करने वाले श्रमिकों में संस्कृति का वह उच्च-स्तर नहीं है जो एक शताब्दी पूर्व था तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि फैक्टरी में काम करने वाले उन श्रमिकों के वंशज उच्चतर एवं अधिक उत्तरदायित्व वाले पदो में पहुँच गये है और इनमें अमेरिका के बहुत से योग्यमत एवं धनाढ्य नागरिक भी सम्मिलित है। जिन लोगों ने उनके स्थान ग्रहण किये है वे और अधिक उठने की अवस्था में है। ये मुख्यतया कनाडा में बसे फ्रांसीसी तथा आयरलैंड के रहने वाले है जो यद्यपि अपने नये निवास स्थानों में सभ्यता के कुछ दुर्गुणों को सीख सकते है किन्तु तिस पर भी जो अधिक सुसम्पन्न है और जिनके पास अपने प्राचीन निवास-स्थानों की अपेक्षा अपने तथा अपने बच्चों को उच्चतर प्रतिभाओं के विकास की अधिक सुविधाएँ है।

बहुत अच्छी तरह शिक्षित हो जाता है, और विभिन्न प्रकार की मशीनों को चलाना सीख लेता है। वह अब किसी जागीरदार या किसानों के विशेष वर्ग की सद्भावना पर कम आश्रित रहता है, और चूँकि उसका कार्य अधिक भिन्न प्रकार का है, और उनसे नगर के निम्नतम श्रेणी के कार्य करने की अपेक्षा अधिक बौद्धिक शक्ति का विकास होता है अतः वह निरपेक्ष तथा सापेक्ष दोनों प्रकार से प्रगति करने के लिए प्रवृत्त होता है।

§7. अब हम उन दशाओं पर विचार करेंगे जिनमें श्रम विभाजन के कारण प्राप्त होने वाली उत्पादन की किफायतें सबसे अधिक हों। यह स्पष्ट है कि किसी विशिष्ट प्रकार की मशीन अथवा विशिष्ट प्रकार की कुशलता के आर्थिक उपयोग की पहली शर्त इसकी कार्य-क्षमता है। दूसरी शर्त यह है कि इसे पूर्णरूप से व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त कार्य मिलना चाहिए, जैसा कि बैबेज (Babbege) ने बतलाया है कि एक बड़ी फैक्टरी मे "प्रवीण विनिर्माता कार्य का विभिन्न प्रक्रियाओ मे जिनमे से प्रत्येक के लिए कुशलता अथवा शक्ति की विभिन्न मात्राओ की आवश्यकता होती है, विभाजन करने से इन दोनों की उस नितान्त यथार्थ मात्रा को खरीद सकता है जो इनमे से प्रत्येक प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। किन्तु यदि सम्पूर्ण कार्य एक ही श्रमिक द्वारा सम्पन्न किया जाये तो उस व्यक्ति मे उस कार्य के सबसे कठिन कार्य को करने के लिए कुशलता होनी चाहिए और सबसे अधिक कष्टदायक भाग को पूरा करने के लिए पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए।" उत्पादन की मितव्ययिता के लिए केवल यही आवश्यक नही है कि प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर किसी कार्य के संकीर्ण क्षेत्र मे ही लगा रहे, अपितु यह भी आवश्यक है कि जब उसके लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को करना आवश्यक हो तो प्रत्येक कार्य ऐसा होना चाहिए जिसमे यथासम्भव उसकी कुशलता एवं योग्यता को प्रकट किया जा सके। ठीक इसी प्रकार मशीन की किफायत के लिए यह आवश्यक है कि एक शक्तिशाली परावर्तन खराद (Turning lathe) को जब एक प्रकार के कार्य के लिए विशेष रूप से काम मे लाया जाय तो उस कार्य मे ही जितना सम्भव हो लगाया जाय और यदि इसे अन्य कार्य मे लगाने का अवसर मिले तो वह कार्य ऐसा होना चाहिए जिसमें खराद को लगाना उचित है, न कि ऐसा जिसे एक अधिक छोटी मशीन से उसी भाँति किया जा सके।

विशिष्ट प्रकार की कुशलता एवं मशीन के आर्थिक उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि उनका पूर्णरूप से उपयोग किया जाए

यहाँ अब, जहाँ तक उत्पादन की अर्थव्यवस्था का प्रश्न है मनुष्य तथा मशीनें बहुत कुछ समान हैं: किन्तु जहाँ मशीन उत्पादन का केवल एक औजार मात्र है, वहाँ मानव कल्याण भी इसका अन्तिम लक्ष्य है। हम इस प्रश्न पर पहले ही विचार कर चुके हैं कि सम्पूर्ण मानव जाति को कार्य के उस विशिष्टीकरण को, जिसके कारण कुछ ही लोगों द्वारा सारा कठिन कार्य किया जाता है, एक चरमसीमा तक ले जाने मे क्या प्राप्त हुआ है: किन्तु अब हमें इसे व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य के विशेष प्रसंग मे अधिक घनिष्ठतापूर्वक विचार करना है। अगले तीन अध्यायों का मुख्य प्रयोजन इस बात का पता लगाना है कि वे कौन से कारण हैं जो व्यावसायिक प्रबन्ध के विभिन्न रूपों को उनके वातावरण से लाभ उठाने के सबसे अधिक उपयुक्त बनाते हैं और अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक प्रचलन मे हैं, किन्तु फिलहाल यह अच्छा है कि हमारे मस्तिष्कों मे

किन्तु मनुष्य का उत्पादन के साधन के रूप में सबसे अधिक आर्थिक उपयोग व्यर्थ है यदि स्वयं उसका ही

इससे विकास न हो।

यह प्रश्न रहे कि वे अपने वातावरण को लाभ पहुँचाने के लिए अनेक प्रकार से कहाँ तक उपयुक्त हैं।

विशिष्ट प्रकार की कुशलता एवं मशीनरी के प्रयोग मे होने वाली अनेक किफायतें जिन्हे साधारणतया बहुत बड़े संस्थानों की पहुँच के अन्दर माना जाता है, अलग-अलग फैक्टिरियो के आकार पर निर्भर नही हैं। कुछ किफायते तो पड़ोस मे उस किस्म की वस्तुओ के कुल उत्पादन पर निर्भर है, जब कि अन्य, विशेषकर वे जो ज्ञान की वृद्धि तथा कला की प्रगति से सम्बन्धित है, मुख्यतया सम्पूर्ण सभ्य ससार से उत्पादन की कुल मात्रा पर निर्भर है। इसके पश्चात् हम दो पारिभाषिक शब्दो का परिचय देंगे।

बाह्य एवं आन्तरिक किफायतें।

हम किसी भी प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि करने से उत्पन्न होने वाली किफायतो को दो श्रेणियों मे विभाजित कर सकते है—सर्वप्रथम वे किफायते जो उद्योग के सामान्य विकास पर आश्रित है, और दूसरी वे जो इसमे लगे हुए व्यक्तिगत व्यापार गृहो के साधनो, उनकी व्यवस्था एव उनके प्रबन्ध की कार्यक्षमता पर निर्भर है। इसमे से पहले को हम **बाह्य किफायतें** और बाद वाली को **आन्तरिक किफायतें** कहेंगे। इस अध्याय मे हम मुख्य रूप से आतरिक किफायतो पर ही विचार करते आये है, किन्तु अब हम उन मुख्य बाह्य किफायतो पर विचार करेंगे जो किन्ही निश्चित स्थानो मे बहुत से समान प्रकार के छोटे व्यवसाओ के केन्द्रित होने से बहुधा प्राप्त की जा सकती हैं: अथवा, जैसा कि साधारणतया कहा जाता है, उद्योग के स्थानीकरण से प्राप्त की जा सकती हैं।

अध्याय 10

औद्योगिक संगठन (पूर्वानुबद्ध)। कुछ स्थानों में विशेष प्रकार के उद्योगों का केन्द्रीकरण

§1. सम्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ जल यातायात की विशेष सुविधाएँ थी, प्रत्येक स्थान के निवासियों को अपने उपभोग की अधिकाश भारी सामग्री के लिए उस स्थान मे उपलब्ध साधनों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। किन्तु आवश्यकताओ और प्रथाओं मे धीरे-धीरे परिवर्तन हुए: और इसके फलस्वरूप उत्पादकों के लिए उन उपभोक्ताओ की आवश्यकताओं की सरलतापूर्वक पूर्ति करना सरल हो गया जिनसे उनका थोड़ा बहुत ही सम्पर्क था। इससे अपेक्षाकृत निर्धन लोग दूर के स्थानो से इस आशा मे कुछ मूल्यवान वस्तुएँ मँगा सके कि उन्हे उनके जीवन काल मे ही नही किन्तु आगे की दो-तीन पीढ़ियो मे भी त्यौहारो एव छुट्टियो मे उनके उपयोग से अधिक आनन्द मिल सके। इसके परिणामस्वरूप पहनने तथा निजी शृगार की हलकी तथा अधिक मूल्यवान वस्तुएँ, मसाले और धातु के बने औजार, जिन्हे समाज के सभी वर्गों के लोग प्रयोग करते थे, और अन्य अनेक चीजें जो धनी लोगो के विशेष प्रयोग की थी, बहुधा दूर-दूर स्थानों से आने लगी। इनमे से कुछ वस्तुएँ तो कुछ ही स्थानों मे या यहाँ तक कि किसी खास स्थान मे ही उत्पन्न की जाती थी, और आंशिक रूप से मेलो तथा पेशेवर फेरीवालो[1] के माध्यम से और आशिक रूप मे स्वयं उत्पादको द्वारा, जो अपनी वस्तुओ को बेचने तथा ससार को देखने के लिए हजारों मील पैदल चल कर अपने काम मे परिवर्तन लाते थे, ये वस्तुएँ सारे यूरोप मे फैल गयीं। इन हृष्ट-पुष्ट भ्रमण करने वाले व्यापारियो ने अपने छोटे-मोटे व्यवसाय का जोखिम अपने ऊपर ले लिया था। दूर स्थित ग्राहकों की जरूरतो को पूरा करने के लिए वे कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओ का उचित ढग से उत्पादन करते रहे। उन्होने मेलों अथवा उपभोक्ताओं के अपने घरो मे दूर स्थानो की बनी हुई नयी वस्तुओ को दिखा कर उनकी (उपभोक्ताओ की) नयी आवश्यकताओ को जन्म दिया। जो उद्योग किन्ही निश्चित स्थानों में ही केन्द्रित हो उसे साधारणतया, (यद्यपि सम्भवतः ऐसा कहना बिलकुल ठीक नही है) स्थानिक (localised) उद्योग कहा जाता है।[2]

यहाँ तक कि सम्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं में कुछ के तथा कीमती वस्तुओं के उत्पादन का स्थानीकरण हो गया था।

---

1 इस प्रकार 'स्टोरब्रिज के मेले' (Stourbridge Faire) के लिखित प्रमाणों से जो कि कैम्ब्रिज के निकट लगा था, यह पता लगता है कि वहाँ पूर्व तथा भूमध्यसागर की सम्यता के अधिक पुराने स्थानों से असंख्य प्रकार की हलकी तथा कीमती वस्तुएँ आयी थीं। कुछ तो इटली के जहाजों से लायी गयी थीं, और अन्य चीजें जमीन से होकर उत्तरी सागर जैसे सुदूर स्थानों से आयी थीं।

2 अधिक समय पहले की बात नहीं है कि पश्चिमी टयरोल (Tyrol) से भ्रमण करने वालों ने इम्स्ट (Imst) नामक गाँव में इस प्रकार के विचित्र एवं विशेष

उद्योग के इस प्रारम्भिक स्थानीकरण के फलस्वरूप धीरे-धीरे यांत्रिकी कला और व्यापार संगठन में पाये जाने वाले श्रम विभाजन मे अनेक आधुनिक सुधार हुए हैं। आज भी हम देखते हैं कि मध्य यूरोप के एकान्त गाँवों मे प्राचीन किस्म के उद्योगों का स्थानीकरण हुआ है और वहाँ की बनी हुई साधारण किस्म की वस्तुएँ उन स्थानों को भी भेजी जाती है जहाँ आधुनिक उद्योग पनपे हुए हैं। रूस मे परिवार का एक गाँव के रूप मे विस्तार हो जाने के कारण उद्योग का स्थानीकरण हुआ है, और वहाँ ऐसे असंख्य गाँव हैं जो उत्पादन की केवल एक शाखा मे अथवा यहाँ तक कि इसकी एक शाखा के किसी एक ही भाग के उत्पादन में लगे हैं।[1]

उद्योगों के स्थानीकरण के विभिन्न मूल करण: भौतिक दशाएँ।

§2. उद्योगों का स्थानीकरण अनेक कारणों से हुआ, किन्तु इनमे मुख्य कारण भौतिक दशाएँ है, जैसे जलवायु तथा मिट्टी की बनावट, समीप मे या ऐसे स्थानों पर खनिज पदार्थ का मिलना अथवा पत्थर की खानों का होना, जहाँ भूमि अथवा जल से होकर आसानी से जाया जा सके। इस प्रकार धातु के उद्योग सामान्यतया या तो खानों के निकट या फिर उन स्थानों में स्थापित हुए हैं जहाँ ईंधन सस्ता मिल जाता था। इग्लैंड में लोहे के उद्योग सबसे पहले उन क्षेत्रों मे पनपे जहाँ लकडी का कोयला प्रचुर मात्रा में मिल जाता था और इसके पश्चात् ये कोयले की खानों के समीप स्थापित

अवशेष (Relic) देखे गये। वहाँ के ग्रामवासियों ने किसी प्रकार कनारी चिड़ियां (Canaries) के अभिजनन (Breeding) की एक विशेष कला सीख ली थी: और युवक लोग कन्धे पर एक डंडे में इनके लगभग 50 छोटे-छोटे पिंजड़े लटका कर यूरोप के दूर-दूर के भागों का दौरा करते थे, और तब तक घूमते रहते थे जब तक कि वे सब बिक न जाएँ।

1 उदाहरण के रूप में 500 से अधिक गाँव लकड़ी के काम की विभिन्न शाखाओं में लगे हैं। एक गाँव वाले केवल गाड़ियों के पहिए के स्पोक बनाते हैं, दूसरे गाँव वाले केवल इसका ढाँचा (Body) बनाते हैं। पूर्वीय देशों की सभ्यता के इतिहास तथा यूरोप के मध्य युगों के विवरणों में इसी प्रकार की बातों का संकेत मिलता है। दृष्टान्त के रूप में (रोजर्स की Six Centuries of Work and Wages, अध्याय IV में) सन् 1250 के लगभग किसी वकील द्वारा लिखी गयी एक पुरानी पुस्तक का उल्लेख मिलता है जिसमें लिंकोन (Lincoln) में लाल रंग के कपड़े, ब्लिघ (Bligh) में कम्बल, बेवरले में एक प्रकार का फलों के पौधों (Burnet), कोल्चेस्टर में भटमैले कपड़ों, शेफट्सबरी, लेवेस और औल्शाम (Aylsham) में लिनन के कपड़ों, वारविक तथा ब्रिडपोर्ट में धागे, मारस्टेड में चाकुओं, विल्टन में सुइयों, लेसेस्टर में रेजर, कोवेन्टरी में साबुन, डोंकास्टर में घोड़े की तंग (Girths), चेस्टर तथा श्रुसबरी में छाल और समूर इत्यादि का जिक्र किया गया है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैंड में उद्योगों के स्थानीकरण के बारे में डेफो (Defoe) की Plan of English Commerce, पृष्ठ 85-7; English Tradesman अध्याय II, पृष्ठ 282-3 में बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है।

हुए।[1] स्टेफोर्डशायर में विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बरतन बनाये जाते हैं जिसके लिए सारा सामान काफी दूरी से आयात किया जाता है; किन्तु भारी मिट्टी के सन्दूक बनाने के लिए, जिसमें मिट्टी के बर्तनों को पकाने के लिए रखा जाता है, यहाँ सस्ता कोयला तथा बहुत सुन्दर किस्म की मिट्टी मिलती है। ब्यडफोर्डशायर सिलिका (Silex) के उचित अनुपात मे होने के कारण रस्सी बटने का प्रमुख केन्द्र है क्योंकि वहाँ पुआल मे मजबूती रहती है और टुटहापन नही पाया जाता और वाइकोम्ब (Wycombe) मे कुर्सी बनाने के काम के लिए बकिंघमशायर के पास समुद्र के किनारों पर बहुत सामग्री मिलती है। शेफील्ड का चाकू का व्यापार मुख्यतया इसके सानो (Grindstones) के ऊपर सुन्दर दानों (Grit) के कारण पनपा है।

राज्य दरबार द्वारा प्रोत्साहन,

उद्योगो के स्थानीकरण का दूसरा मुख्य कारण राज्य दरबार द्वारा दिया गया प्रोत्साहन है। वहाँ अमीर व्यक्तियो के एकत्रित होने के कारण विशेष प्रकार की ऊँची किस्म की वस्तुओ की माँग होने लगी, और इससे कुछ दूरी पर रहने वाले कुशल श्रमिक आकर्षित हुए और वहाँ रहने वालो को इनके उत्पादन की शिक्षा मिलने लगी। जब पूर्व के किसी सम्राट् ने अपना निवास-स्थान बदला—और आंशिक रूप मे स्वच्छता की दृष्टि से निरन्तर ऐसा किया गया—तो उस वीरान शहर मे जहाँ दरबारो के होने के कारण भी उद्योगो का स्थानीकरण हुआ, विशेष प्रकार के उद्योगों का विकसित होना स्वाभाविक था। किन्तु बहुधा शासकों ने जानबूझ कर दूर स्थित दस्तकारों को आमंत्रित किया और उन सब को साथ-साथ बसा दिया। इस प्रकार लंकाशायर की यांत्रिक शक्ति का कारण नारमंडी के शिल्पियों का प्रभाव था जिन्हें विजेता विलियम (William the Conqueror) के समय मे ह्यूगो डी लूपस (Hygo de Lupus) ने वारिंगटन में बसाया था। कपास तथा भाप के युग के प्रारम्भ होने से पूर्व इंग्लैंड के शिल्पनिर्माण उद्योग का अधिकांश भाग फ्लेमिश तथा अन्य जुलाहों की बस्ती बसाये जाने से प्रभावित हुआ, और बहुत कुछ अंशो मे प्लैण्टाजेनेट तथा ट्यूडर वंशी राजाओं के निकट के निर्देशन मे ऐसा किया गया। इन आप्रवासियों ने इंग्लैंड वालों को गरम तथा वर्स्टेड का सामान बुनना सिखलाया, यद्यपि काफी समय तक इसका सामान कलफ देने तथा रंगने के लिए नेदरलैंड भेजा गया। उन्होंने हेरिंग मछली में मसाला मिला कर उसे तैयार करने, रेशम का उत्पादन करने, जालीदार कपड़ा, शीशा, और कागज बनाने तथा इंग्लैंड वालों की अनेक आवश्यकताओ की चीजों को उत्पन्न करने की प्रणालियाँ बतलायीं।[2]

शासकों का सुचिन्तित निमंत्रण।

---

1 सर लोथियन ब्येल (Sir Lowthian Bell) द्वारा व्यापार तथा उद्योग की मन्दी के हाल ही के आयोग के सम्मुख पेश की गयी सारणियों में वेल्स, स्टेफोर्डशायर तथा श्रोपशायर से स्काटलैंड तथा उत्तरी इंगलैंड को लोहे के उद्योग के बाद के संचरणों (Wanderings) को अच्छी तरह प्रदर्शित किया गया है। उनकी 'Social Report', भाग I, पृष्ठ 320 देखिए।

2 फुलर बतलाते हैं कि फ्लेमिंग ने नोर्विच में कपड़े तथा मोटे सूती कपड़े का, सडबरी में लम्बे रोओं वाला ऊनी कपड़ा, कोल्चेस्टर तथा टॉटन में सर्ज के कपड़े का,

विभिन्न देशों का औद्योगिक विकास तत्सम्बन्धी सुविधाओं तथा लोगों के स्वभाव पर निर्भर है।

किन्तु इन आप्रवासियों ने यह कुशलता कैसे सीखी ? भूमध्य सागर के तटों पर तथा सुदूर पूर्व में प्राचीन सभ्यता की परम्परागत कलाओ के फलस्वरूप निस्संदेह उनके पूर्वजो को लाभ हुआ था: क्योकि लगभग सभी प्रकार का ज्ञान विस्तृत तथा सूक्ष्म होता है और इसमे बाद में समय-समय पर वृद्धि होती है। ज्ञान की ये सीमाएँ इतने विस्तार मे फैली थी, और इनसे इतने तेजस्वी जीवन की प्रेरणा मिलती थी, कि प्राचीन संसार का शायद ही कोई ऐसा भाग होगा जहाँ बहुत पहले ही लोगो के स्वभाव तथा उनके सामाजिक एव राजनीतिक संस्थाओ के सहयोग से अनेक सुन्दर तथा अत्यधिक कुशलता वाले उद्योग विकसित न हुए हो। किसी घटना से यह निर्धारित किया जा सकता है कि किसी शहर मे कोई उद्योग विकसित हुआ है या नही। यह भी सम्भव है कि देश के लोगो का औद्योगिक स्वभाव, उस देश की मिट्टी की उर्वरता और उसकी खानो, और वाणिज्य की सुविधाओं पर निर्भर रहा हो। यह भी हो सकता है कि स्वय इस प्रकार के प्राकृतिक लाभो से ही मुक्त उद्योग एव उद्यम को प्रोत्साहन मिला हो: किन्तु इन अन्तिम बातो का होना, चाहे इनका कैसे भी विकास हुआ हो, जीवन की कला के सुन्दर रूपो के विकास की सबसे बड़ी शर्त है। मुक्त उद्योग तथा उद्यम के इतिहास का वर्णन करते समय हम उन कारणो पर आनुसंगिक रूप से पहले से ही प्रकाश डाल चुके हैं जिनसे ससार का औद्योगिक नेतृत्व कभी एक देश के हाथ में रहा है तो कभी दूसरे के। हम देख चुके हैं कि मनुष्य की शक्तियो पर प्रकृति का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, किस प्रकार वह शक्ति प्रदान करने वाली जलवायु से उत्तेजित होता है, और किस प्रकार वह अपने कार्य के लिए नये उपजाऊ क्षेत्रो के मिलने से बड़े साहसी कार्यों को करने के लिए उत्साहित होता है. किन्तु हम यह भी देख चुके हैं कि इन लाभो का उपयोग करना किस प्रकार जीवन के आदर्शो पर निर्भर है, और अतः संसार के इतिहास के धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलू कितने जटिल रूप मे गुथे हुए हैं, जब कि सम्मिलित रूप में इन पहलुओं को महान राजनीतिक घटनाओ तथा व्यक्तियो के उच्च व्यक्तित्व के कारण अलग-अलग दिशा मे प्रभावित किया गया है।

ससार के विभिन्न देशो की आर्थिक प्रगति को निर्धारित करने वाले कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अध्ययन से सम्बन्धित हैं और इसलिए इन पर यहाँ विचार नही किया जायेगा। किन्तु अभी उद्योगो के स्थानीकरण की इन व्यापक गतिविधियो को हमे अलग छोड़ देना चाहिए और उन कुशल श्रमिकों के वर्गो की समृद्धि पर विचार करना चाहिए जो एक औद्योगिक नगर अथवा घने बसे हुए औद्योगिक क्षेत्र की संकुचित सीमाओ के अन्दर एकत्रित किये जाते हैं।

कैंट, ग्लोसेस्टरशायर, वोरसेस्टरशायर, वेस्ट मोरलैंड, योर्कशायर, हण्ट्स, बर्क्स और सुसेक्स में कपड़े का, डेवनशायर में पट्टू का, और लंकाशायर में पूर्वी देशों के कपास का उत्पादन प्रारम्भ किया। स्माइल्स की Huguenots in England and Ireland पृष्ठ 109 तथा लेकी की History of England in Eighteenth Century, अध्याय II देखिए।

§3. जब कोई उद्योग किसी स्थान पर स्थापित हो जाता है, तो यह वहाँ लम्बे समय तक स्थापित रहता है: उन लोगो को जो इसी कौशलपूर्ण धन्धे में लगे हुए है एक दूसरे के निकट होने के कारण बहुतों का लाभ होता है। उस व्यापार के रहस्य फिर रहस्य नही रहते, अपितु वातावरण में इनके विषय मे इतनी अधिक जानकारी हो जाती है कि बच्चे भी उनमे से अधिकाश को अनजाने ही सीख लेते हैं। अच्छे कार्य की उचित प्रशसा होती है, मशीनो, व्यापार की पद्धतियो तथा इसकी सामान्य व्यवस्था मे जो आविष्कार तथा सुधार किये जाते है उनकी अच्छाइयो पर शीघ्रता से विचार-विमर्श किया जाता है. यदि कोई एक नये विचार को जन्म देता है तो अन्य लोग इसे ग्रहण कर लेते हैं और इसमे वे अपने सुझाव भी शामिल कर लेते है, और इस प्रकार इससे आगे के नये विचारो का उद्‌गम होता है। इस बीच पडोस में सहायक उद्योग पनप जाते हैं जिनसे इसे औजार तथा सामग्री मिलती है, इसकी व्यवस्था होती है, और अनेक प्रकार से इसमे प्रयोग की जानेवाली सामग्री की किफायत होती है।

स्थानिक उद्योगों के लाभ: वंश परम्परागत कुशलता,

सहायक धन्धों की वृद्धि,

इसके अतिरिक्त, किसी क्षेत्र मे जहाँ एक ही प्रकार की वस्तु का एक बड़ी मात्रा मे उत्पादन होता है, भले ही किसी एक धन्धे मे लगी पूँजी अधिक न हो, वहाँ कभी-कभी कीमती मशीनो का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग किया जाता है। क्योंकि वे सहायक उद्योग जो उत्पादन की छोटी-छोटी शाखाओ मे लगे हैं, और अपने असख्य पडोसियो के लिए उत्पादन करते हैं, सबसे विशिष्ट प्रकार की मशीनो का निरन्तर प्रयोग करने और इनके खर्चे निकालने में समर्थ रहे हैं, यद्यपि इनकी मूल लागत बहुत अधिक होती है और इसमे ह्रास भी बडी तेजी से होता है।

अधिक विशिष्ट मशीनों का प्रयोग।

पुनः आर्थिक प्रगति की सबसे प्राचीन अवस्थाओं के अतिरिक्त सभी मे किसी एक स्थान पर बसे हुए उद्योग को इस तथ्य से बहुत लाभ होता है कि यहाँ कुशल कार्य का निरन्तर क्रय-विक्रय होता है। नियोजक जहाँ कही अपनी आवश्यकता के अनुसार विशेष कुशल श्रमिकों को देखते है सम्भवत वही से उन्हे काम पर बुला लेते है, जबकि रोजगार की तलाश करने वाले लोग स्वाभाविक रूप से उन स्थानो को जाते है जहाँ ऐसे अनेक नियोजक मिलते है जिन्हे उनकी कुशलता की आवश्यकता होती है, और अतः जहाँ उनके श्रम की अच्छी माँग रहती है। किसी एकान्त पर बसी हुई फैक्टरी का मालिक चाहे उसे सामान्य श्रमिक पर्याप्त सख्या मे मिल सकते हैं, विशेष रूप से कुछ कुशल श्रमिको के अभाव मे बडे चक्कर मे पड जाता है, और एक कुशल श्रमिक को भी जब इस रोजगार से अलग कर दिया जाता है तो उसे सरलतापूर्वक काम नही मिल पाता। यहाँ आर्थिक शक्तियो के साथ सामाजिक शक्तियो का सहयोग रहता है: बहुधा नियोजकों तथा कर्मचारियो मे घनिष्ठ मित्रता रहती है: किन्तु उनमे से दोनो ही यह नही सोचते कि उनमे किसी अरुचिकर घटना के घटने पर उन्हें एक दूसरे की गलतियो को भूल जाना चाहिए: दोनो ही पक्ष पुराने सम्बन्धो के कटु हो जाने पर उन्हें सहज में ही तोड़ देना चाहते हैं। जिस किसी व्यवसाय मे विशेष प्रकार की कुशलता की आवशयक्त होती है, किन्तु जो व्यवसाय इस प्रकार के व्यवसायों के निकट नही हो, उसकी सफलता मे अभी भी इन बाधाओ से बड़ा रोड़ा अटक जाता है: रेल, छापाखाना तथा तार की सुविधाओं के कारण ये बाधाएँ अब कम होती जा रही हैं।

विशेष प्रकार की कुशलता का स्थानीय बाजार।

कभी-कभी किसी एक स्थान पर बसे हुए उद्योग में किसी एक प्रकार के श्रम के लिए अत्यधिक माँग होती है।

इसके विपरीत श्रम के बाजार की दृष्टि से उद्योग के किसी स्थान पर सीमित होने मे उस समय कुछ अहित होता है जब इसमे मुख्यतया एक ही प्रकार का काम होता हो, जैसे इसमें केवल ऐसा काम किया जाता हो जिसे हृष्ट-पुष्ट आदमी ही कर सकते हैं। लोहा उत्पादन करने वाले जिन क्षेत्रो मे स्त्रियो एव बच्चो को रोजगार देने के लिए कोई भी सूती या अन्य प्रकार की फैक्टरियाँ न हों वहाँ मजदूरी की दर ऊँची होती है और नियोजक को श्रम की लागत अधिक पड़ती है, किन्तु हर परिवार की औसत द्रव्यिक आय कम होती है। इस बुराई के दूर करने का उपाय स्पष्ट है और यह है समीप मे पूरक उद्योगो की वृद्धि करना। इस प्रकार कपड़े के उद्योगो का खनिज तथा इंजीनियरी की फैक्टरियो के निकट ही लगातार जमाव हुआ है। कुछ दशाओ मे प्राय: अप्रत्यक्ष कारणों से ये आकर्षित हुए हैं, अन्य दशाओ मे, जैसा कि बैरो मे, इन उद्योगों को जानबूझ कर एक बड़े पैमाने पर ऐसे स्थान मे विभिन्न प्रकार का रोजगार देने के लिए किया गया जहाँ पहले स्त्रियो तथा बच्चो के श्रम के लिए बहुत थोड़ी ही माँग रहती थी।

इग्लैंड के कुछ औद्योगिक शहरो मे विभिन्न प्रकार के रोजगार तथा उद्योगो के स्थानीकरण के लाभ साथ-साथ पाये जाते हैं और इसी कारण इनकी लगातार वृद्धि हुई है। किन्तु इसके विपरीत किसी बड़े शहर के बीच के स्थानो का व्यापारिक दृष्टि से अधिक मूल्य होने के कारण वहाँ फैक्टरी की स्थापना करने की अपेक्षा जमीन के किराये के रूप में अधिक आय प्राप्त होती चाहे वहाँ प्राप्ति हो सकने वाले उक्त प्रकार के मिश्रित लाभों को ही ध्यान में क्यों न रखा जाये:और व्यापारिक संस्थाओ तथा फैक्टरियो मे
लाभों को ही ध्यान मे क्यो न रखा जाय: और व्यापारिक सस्थाओं तथा फैक्टरीयो मे
काम करने वाले कर्मचारियों के निवास-स्थानों के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की प्रतियोगिता होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब फैक्टरियाँ बड़ शहरों की अपेक्षा उनकी बाह्य सीमा पर और विनिर्माण क्षेत्रो के निकट स्थापित होने लगी हैं।[1]

पड़ोस में ही विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना हो जानें से एक दूसरे की मन्दी की अवस्था दूर हो जाती है।

जो क्षेत्र मुख्य रूप से एक ही उद्योग पर आश्रित रहता है वहाँ इसके उत्पादन के लिए माँग घट जाने या इसे कच्चे माल की मात्रा न मिलने के कारण बहुत बड़ी मंदी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। उन बड-बडे शहरों अथवा बड़े-बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में जहाँ अनेक प्रकार के असंख्य उद्योग को तेजीसे आगे बढ रहे है वहाँ इस बुराई को एक बड़े पैमाने पर दूर करना सम्भव हुआ है। इन स्थानों में यदि कोई उद्योग कुछ समय के लिए असफल हो जाता है तो दूसरे उद्योगों से अप्रत्यक्ष रूप मे आय मिलना

---

1 कपड़े के उत्पादकों का संचरण विशेषरूप से महत्वपूर्ण रहा है। अभी भी मैंचेस्टर, लीड्स तथा ल्योंन्स ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों के व्यापार के प्रमुख केन्द्र हैं, किन्तु जिन वस्तुओं के उत्पादन के कारण इनका विशेष महत्व है उनके अधिकांश भाग को ये स्वयं उत्पन्न नहीं करते। इसके विपरीत लंदन तथा पेरिस का संसार के सबसे बड़े उत्पादक शहरों में अभी भी स्थान है। फिलाडेल्फिया का इनमें तीसरा स्थान है। हौसन की Evolution of Capitalism में उद्योग के स्थानीकरण के कारण पारस्परिक प्रभावों, शहरों तथा शहरी आदतों के विकास तथा मशीनों के विकास का अच्छा विवेचन मिलता है।

सम्भव है। इसके फलस्वरूप स्थानीय दुकानदार, इन उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों की मदद करते रहते हैं।

दुकानों का स्थानीकरण

अब तक हमने उत्पादन की मितव्ययिता की दृष्टि से स्थानीकरण पर विचार-विमर्श किया। किन्तु हमें ग्राहकों को इससे होने वाली सुविधा पर भी विचार करना चाहिए। एक क्रेता किसी साधारण-सी खरीद के लिए सबसे नजदीक की दुकान में जायेगा, किन्तु किसी महत्वपूर्ण खरीद के लिए वह शहर के उस भाग में जाने का कष्ट करेगा जहाँ वह जानता है कि उसके मतलब की अच्छी दुकान है। इसके फलस्वरूप कीमती तथा मनपसन्द चीजें (Choice objects) की दुकानें साथ-साथ इकट्ठी होने लगती है, और जो घरेलू जरूरतों की सामान्य चीजों को बचती है उनका एक साथ जमाव नहीं होता।[1]

उद्योगों के भौगोलिक वितरण पर संचार के सुधरे हुए साधनों का प्रभाव।

§4. संचार के साधनों के सस्ते होने के साथ-साथ, दूर-दूर स्थानों में विचारों के आदान-प्रदान की नयी सुविधा के कारण उद्योगों के स्थानीकरण की शक्ति के प्रभाव में अन्तर आ जाता है। मोटे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रशुल्क (Tariff), अथवा वस्तुओं के परिवहन की दरों के घट जाने से प्रत्येक स्थान के लोग अपनी इच्छित वस्तुओं को दूर स्थित स्थानों से अधिक मात्रा में खरीदते हैं, और इस प्रकार खास प्रकार के उद्योग किन्हीं विशेष स्थानों में ही केन्द्रित होने लगते हैं किन्तु इसके विपरीत जिस किसी कारण से लोगों की एक स्थान से दूसरे स्थान को स्वेच्छा से प्रवास करने की शक्ति बढ़ती है उससे ही कुशल जुलाहे अपने शिल्प उद्योग को उन क्रेताओं के समीप चलाते हैं जो उनके द्वारा बनायी गयी वस्तुओं को खरीदें। इंग्लैंड के लोगों के आधुनिक इतिहास में इन विपरीत प्रवृत्तियों को सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है।

इंग्लैंड के आधुनिक इतिहास से लिये गये दृष्टान्त।

एक ओर तो भाड़े की दरों में कमी होने, अमेरिका तथा भारत में खेतिहर क्षेत्रों से समुद्र-तट तक रेल की लाइनों के बिछ जाने के कारण, और इंग्लैंड द्वारा व्यापार की नीति अपनाये जाने के कारण यहाँ कच्चे माल का अधिक आयात किया जाता है। किन्तु दूसरी ओर विदेशी यात्रा के सस्ते, बढ़ने तथा सुविधाजनक होने के कारण इसके प्रशिक्षित व्यापारी और कुशल दस्तकार अन्य देशों में नये-नये उद्योगों को सबसे पहले प्रारम्भ करने और वहाँ के निवासियों को अपने लिए उन वस्तुओं के उत्पादन करने में सहायता पहुँचाने के लिए प्रेरित हुए हैं जिन्हें वे इंग्लैंड से खरीदने के अभ्यस्त हैं। इंग्लैंड के मिस्त्रियों ने लगभग संसार के सभी देशों के लोगों को इंग्लैंड की बहुत मशीनों का प्रयोग करना सिखलाया है, और यहाँ तक कि इसी प्रकार की मशीनों को बनाने का ढंग भी बतलाया है, और यहाँ के खनिक कर्म करने वालों ने कच्ची धातु की खानों से खनिज निकाले हैं जिनके कारण वहाँ के बने हुए बहुत से सामान के लिए विदेशी माँग घट गयी है।

किसी देश की औद्योगिक विशिष्टता के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात, जिसकी कि इतिहास में संकेत मिलता है, यह है कि हाल में इंग्लैंड की गैर खेतिहर जनसंख्या

1 हॉब्सन की कृति (जिसका जिक्र पहले हो चुका है), पृष्ठ 114 से तुलना कीजिए।

में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। इस प्रकार के परिवर्तन के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में गलत धारणा का होना सम्भव है, और इसका स्वयं अपने लिए और पिछले तथा इस अध्याय में जिन सामान्य सिद्धान्तों का हम विवेचन करते आ रहे हैं उनकी व्याख्या करने के लिए इतना अधिक महत्व है कि इस पर भी यहाँ पर थोड़ा विचार करना लाभदायक होगा।

इंग्लैंड की कृषि करने वाली जनसंख्या में प्रथम दृष्टि में दिखाई देने वाली कमी से कम कमी हुई है।

सबसे पहले, इंग्लैंड के खेतिहर उद्योगों में जो वास्तविक कमी हुई है वह उतनी नही जितनी प्रथम दृष्टि में दिखायी देती है। इसमें सन्देह नहीं कि मध्य युगों में तीन चौथाई जनसंख्या को खेतिहर माना गया था, और पिछली जनगणना में नौ में से एक को कृषि के अन्दर शामिल किया गया, और सम्भवतः अगली जनगणना में कृषि मे बारह मे से एक ही व्यक्ति लगा होगा। किन्तु यह ध्यान रहे कि मध्य युगों में जिस जनसंख्या को खेतिहर माना जाता था, वह वास्तव में पूर्णरूप से कृषि मे लगी हुई नही थी। वे लोग अपने लिए उस अधिकांश काम को स्वयं करते थे जिसे कि अब शराब बनाने वाले, डबलरोटी बनाने वाले, सूत कातने वाले एवं बुनकर, राज और बढ़ई, पोशाक बनाने वाले तथा दर्जी एवं अन्य अनेक व्यवसायों मे लगे हुए लोग करते हैं। ये आत्मनिर्भर रहने की आदतें धीरे-धीरे लुप्त हो गयी, किन्तु उनमे से अधिकाश का पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में लोप हुआ है। और यह सम्भव है कि इस समय भूमि पर जो श्रम लगाया जाता था वह मध्य युगों की अपेक्षा देश के उद्योगो का बहुत बड़ा अश न था: क्योकि इसके ऊन तथा गेहूँ के निर्यात के समाप्त हो जाने के बावजूद भी इसकी भूमि से इतनी अधिक उपज की गयी कि यहाँ के कृषकों की कृषि करने की प्रणालियो मे तेजी से होने वाले सुधारो से मुश्किल से ही कभी क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से रुक पाया। किन्तु धीरे-धीरे खेती से बहुत-सा श्रम खेती के उद्देश्यो के लिए कीमती मशीनें बनाने मे लगाया गया। जिन लोगों की खेतिहर लोगों मे गणना की गयी थी उन पर इस परिवर्तन का तब तक पूरा प्रभाव न पड़ा जब तक मशीनो को घोडो द्वारा खींचना प्रारम्भ न हुआ: क्योकि उनकी तीमारदारी करने तथा उन्हे चारा देने का काम कृषि से सम्बन्धित है। किन्तु हाल ही मे खेतो मे वाष्प शक्ति के प्रयोग मे तेजी से वृद्धि के साथ-साथ खेती की उपज का आयात भी बढ़ा है। कोयले की खानो मे काम करने वाले जो लोग इन भाप के इंजनों के लिए कोयला भेजते है, और वे मिस्त्री जो इन्हें बनाते हैं और खेतो मे सही स्थिति मे चलते रहने की व्यवस्था करते हैं उनकी खेती मे लगे रहने वालो मे गणना नही की जाती, यद्यपि उनके श्रम का अन्तिम लक्ष्य कृषि मे वृद्धि करना है। अतः इंग्लैंड की कृषि में लगी जनसंख्या मे उतनी अधिक कमी नही हुई जितनी कि सर्वप्रथम प्रतीत होती है, किन्तु इसके वितरण मे परिवर्तन हुआ है। बहुत से कार्य जो कभी खेतिहर मजदूरो द्वारा किये जाते थे, अब कुछ विशेष प्रकार के श्रमिको द्वारा किये जाते है जिन्हे इमारत, सड़क बनाने के उद्योग तथा बोझा ढोने इत्यादि कार्यों मे लगे व्यक्तियो मे वर्गीकृत किया जाता है। आशिक रूप से इस कारण उन लोगों की सख्या शायद ही कभी तेजी से कम हुई है जो पूर्णरूप से खेतिहर क्षेत्रों मे रहते है, और इसमे बहुधा वृद्धि हो हुई है, यद्यपि खेती मे लगे हुए लोगो की सख्या तेजी से घट रही है।

दरेश के अन्दर कृषि में लगी जनसंख्या के वितरण में परिवर्तन।

कृषि उपज के आयात के कारण भूमि के विभिन्न टुकड़ों के सापेक्षिक मूल्य मे जो परिवर्तन होता है उस पर ध्यान आकर्षित किया जा चुका है: उस भूमि का मूल्य सबसे अधिक गिर रहा था जिसमे मुख्यतया गेहूँ का ही उत्पादन किया जाता था, और जो प्राकृतिक रूप से उर्वर न थी, यद्यपि कृषि की खर्चीली प्रणालियो द्वारा इनसे काफी अच्छी फसल पैदा की जा सकती थी। जिन क्षेत्रों मे इस प्रकार की जमीन ज्यादा होती है, वहाँ से बड़ शहरो को अपेक्षाकृत बहुत लोगों ने प्रव्रजन किया है, और इस प्रकार देश के अन्दर उद्योगों के भौगोलिक वितरण को और भी अधिक परिवर्तित किया गया है। यातायात के नये साधनो के प्रभाव का एक उल्लेखनीय दृष्टान्त सयुक्त आग्ल राज्य के अत्यधिक दूर स्थित उन चरागाह के क्षेत्रो मे मिलता है जहाँ से दूध की बनी हुई चीजे तेज चलने वाली रेल गाड़ी से लदन तथा अन्य बड़े शहरों को भेजी जाती है, जो इस बीच अटलाटिक के आगे के किनारो, या यहाँ तक कि प्रशान्त महासागर से स्वय अपनी जरूरतो के लिए गेहूँ मँगाते है।

जो लोग कृषि छोड़ कर आये हैं वे उत्पादन की अपेक्षा मुख्यतः उन उद्योगों में लगे हैं जहाँ श्रम की कुशलता में कोई बड़ी वृद्धि नहीं हुई है।

किन्तु हाल ही के परिवर्तनो से इग्लैंड के विनिर्माण मे लगे निवासियों के अनुपात मे, जैसा कि प्रथम दृष्टि मे सम्भव प्रतीत होता है, कोई वृद्धि नही हुई है। इग्लैंड के शिल्प-निर्माण का समस्त उत्पादन निश्चय ही अब भी उतना ही अधिक है जितना कि पिछली शताब्दी के मध्य मे था। किन्तु जो लोग हर प्रकार के शिल्प-निर्माण मे लगे थे उनका सन् 1851 की जनसख्या का अनुपात सन् 1801 की भाँति अधिक था, यद्यपि उन लोगो के कारण जो उन मशीनो तथा औजारो को बनाते है जिनसे इग्लैंड की कृषि का अधिकाश काम किया जाता है, उत्पादको की सख्या बढ़ गयी है।

इस परिणाम का मुख्य कारण हाल ही मे मशीन की शक्ति मे आश्चर्यजनक रूप मे वृद्धि होना है। इसके फलस्वरूप इग्लैंड इस योग्य बन गया है कि वह अपने प्रयोग तथा निर्यात के लिए मशीन चालकों की सख्या मे अधिक वृद्धि किये बिना हर प्रकार के उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि कर सके। इसी कारण कृषि को छोड़ कर लोग उन आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे लगे है जिनसे मशीनों में सुधार करने से कुछ मदद मिल सकती है: मशीनों की कार्यक्षमता के कारण इग्लैंड मे केन्द्रित उद्योग उतने यात्रिक नही हो पाये जितने कि वे अन्यथा होते। इग्लैंड मे सन् 1851 के बाद कृषि की लागत पर जिन प्रमुख धन्धों में तेजी से वृद्धि हुई है वे खनिक कर्म, इमारत, व्यापार तथा सड़को और रेलो द्वारा यातायात के अतिरिक्त केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारो की सेवाएँ, सभी वर्गों की शिक्षा, चिकित्सा सेवाएँ, सगीत, थियेटर तथा अन्य मनोरजन है। इनमे से किसी मे भी नये आविष्कारो से बहुत अधिक प्रत्यक्ष सहायता नही मिली है: एक शताब्दी पहले इनमे मानवीय श्रम मे जितनी कार्यक्षमता थी, अब उससे बहुत अधिक कार्यक्षमता नही है: और इसलिए जिन आवश्यकताओ के लिए वे साधन जुटाते हैं वे यदि हमारे सामान्य धन के अनुपात में बढ़े तो यही आशा की जा सकती है कि वे औद्योगिक जनसख्या के बढ़ते हुए अनुपात को आत्मसात कर लेंगे। कुछ वर्षो तक घरेलू नौकरो की सख्या तेजी से बढ़ती गयी, और अब इन्हे जो कुल काम करना पड़ता है वह पहले से अधिक तेजी से बढ़ रहा है। किन्तु अब बहुधा इसका अधिकाश भाग मशीनो की सहायता से उन कर्मचारियों द्वारा किया जाता है जो सभी प्रकार के बजाजो, होटलो

के मालिकों, हलवाइयों के यहाँ काम करते हैं और यहाँ तक कि माल खरीदने के आदेश माँगने वाले पंसारियों, मछली बेचने वालो तथा अन्य लोगो के सन्देशवाहक भी अब तक कि ये टेलीफोन द्वारा न भेजे जायें, यह काम मशीनो की सहायता से करते हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उद्योगो के विशिष्टीकरण तथा स्थानीकरण मे वृद्धि हुई है।

अब अगले अध्याय के विषय पर विचार किया जायेगा।

उद्योगो के भौगोलिक वितरण पर आधुनिक शक्तियो के इस प्रभाव की व्याख्या को यही समाप्त कर हम यह पता लगाने की कोशिश करे कि एक ही प्रकार के बहुत से छोटे-छोटे व्यवसायो को एक ही स्थान पर केन्द्रित करने से श्रम-विभाजन की पूर्ण किफायतो को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। और किस प्रकार केवल अपेक्षाकृत थोड़े से धनी तथा शक्तिशाली फर्मो के हाथों मे देश के अधिकांश व्यवसाय दे देने से, अथवा, जैसा कि साधारणतया कहा जाता है, बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से, इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। अथवा, अन्य शब्दों मे हम यह पता लगायेंगे कि बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की किफायते कितनी अवश्य ही आन्तरिक होनी चाहिए, और कितनी बाह्य हो सकती है।[1]

---

1 संयुक्त राज्य (इंगलिस्तान) मे कपड़े के उद्योग में लगी जनसंख्या का प्रतिशत जो सन् 1881 में 3·13 था गिर कर सन् 1901 में 2·43 रह गया। इसका आंशिक कारण यह था कि अर्द्ध-स्वचालित मशीनों के कारण उनके द्वारा किया जाने वाला कार्य इतना सरल बन गया है कि इसे वे लोग जो कि सापेक्षिक रूप से पिछड़ी औद्योगिक दशाओं में विचर रहे है, काफी अच्छी तरह से कर सकते है। आंशिक रूप से इसका कारण यह भी है कि कपड़े की मुख्य-मुख्य चीजें अब भी उतनी ही सरल है जितनी कि तीस या यहाँ तक कि तीन हजार वर्ष पहले थीं। इसके विपरीत लोहे तथा इस्पात का उत्पादन (जहाज बनाने का काम भी इसमे सम्मिलित है) इतना अधिक जटिल हो गया है और इसके उत्पादन की मात्रा इतनी बढ़ गयी है कि इनमें जनसंख्या का प्रतिशत जो सन् 1881 में 2·39 था बढ़ कर 1901 में 3.01 हो गया, हालाकि इस बीच कपड़े के उद्योगों की अपेक्षा इनमे प्रयोग की जाने वाली मशीनो तथा प्रणालियों में भी कही अधिक प्रगति हुई है। शेष शिल्प निर्माण के उद्योगो में सन् 1901 में उतने ही प्रतिशत लोग लगे थे जितने कि सन् 1881 में लगे थे। इसी समय ब्रिटेन के बन्दरगाहों से ब्रिटेन के जहाजों द्वारा डेढ़ गुने भार का आर्थिक मात्रा में सामान ले जाया गया और गोदी (Dock) में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या दुगुनी हो गयी, किन्तु पोतवाहको की संख्या कुछ कम हो गयी। इन तथ्यो का आंशिक रूप से जहाजों तथा इनसे सम्बन्धित सभी उपकरणों में हुए बड़े-बड़े सुधारो द्वारा, तथा आंशिक रूप में पोतभार को चढ़ाने-उतारने से सम्बन्धित उस सम्पूर्ण कार्य के गोदी श्रमिको के पास आ जाने के कारण स्पष्टीकरण किया जा सकता है जिसका अभी हाल ही तक कुछ भाग कर्मीदल (crew) किया करते थे। इसके अतिरिक्त उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ है कि स्त्रियो को कुल मिला कर उत्पादन में अधिक काम मिला है, यद्यपि इनमें विवाहित स्त्रियो की संख्या घट गयी है, और बच्चों की संख्या तो बहुत ही कम हो गयी है।

सन् 1915 में प्रकाशित The Summary Tables of the Census of 1911 में सन् 1901 से आगे वर्गीकरण सम्बन्धी इतने अधिक परिवर्तन हुए हैं कि हाल की प्रगति के विषय में कोई भी सामान्य दृष्टिकोण नहीं बनाया जा सकता। किन्तु इस रिपोर्ट की सारणी सं० 64 में और दिसम्बर 1914 में रायल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी के सम्मुख पढ़े गये प्रो० डी० कारडोग जोन्स के लेख में यह प्रदर्शित किया गया है कि सन् 1901–1911 के बीच जो प्रगति हुई, वह इसके पहले के वर्षों से सामान्य-रूप में भिन्न न होकर विवरण की दृष्टि से ही भिन्न है।

अध्याय 11

औद्योगिक संगठन (पूर्वानुबद्ध)। बड़े पैमाने पर उत्पादन

विनिर्माण में लगे उद्योगों को हम यहाँ विशिष्ट उद्योग मानेंगे।

§1. विनिर्माण में बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लाभ सबसे अच्छी तरह प्रदर्शित किये जा सकते हैं। इसमें हम उन सभी व्यवसायों को शामिल करते हैं जो कच्ची सामग्री का रूप परिणत कर उसे दूर-दूर स्थित बाजारों में बेचने के अनुकूल बनाते हैं। विनिर्माण में लगे उद्योगों की जिस विशेषता के कारण इनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ साधारणतया सबसे अधिक प्राप्त होते हैं वह यह है कि इन्हें स्थापित करने के स्थान का स्वतन्त्रतापूर्वक चयन किया जा सकता है। इस प्रकार एक ओर तो ये उद्योग कृषि तथा अन्य निस्सारक (Extractive) उद्योगों (खनिक कर्म, खान से खोदकर पत्थर निकालने, मछली पकड़ने इत्यादि) से भिन्न है जिनका भौगोलिक वितरण प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है, और दूसरी ओर उन उद्योगों से भिन्न है जिनमें व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की विशेष जरूरतों को पूरा करने के लिए वस्तुएं बनायी जाती हैं या उनकी मरम्मत की जाती हैं, और इन्हें उपभोक्ताओं से बहुत दूर हटाने में बड़ी क्षति होती है।[1]

सामग्री की किफायत।

बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के सबसे मुख्य लाभ कार्य-कुशलता, मशीनों तथा अन्य सामग्री की किफायतें हैं: किन्तु पहले प्रकार की किफायतों की तुलना में अन्तिम प्रकार की किफायतों का महत्व बड़ी तेजी से कम हो रहा है। यह सत्य है कि एक एकान्त स्थान में काम करने वाला श्रमिक बहुधा ऐसी छोटी-मोटी वस्तुओं को फेंक देता है जिन्हें किसी फैक्टरी में इकट्ठा किया जाता है और उचित उपयोग में लाया जाता है,[2] किन्तु किसी स्थानिक विनिर्माण में, चाहे वह साधारण लोगों के हाथ में ही क्यों न हो, इस प्रकार की बरबादी शायद ही कभी होती है। आधुनिक इंग्लैंड में कृषि तथा घरेलू रसोईघरों के अतिरिक्त उद्योग की किसी भी शाखा में इस प्रकार की बरबादी अधिक नहीं होती। निस्सन्देह आधुनिक वर्षों में बेकार जाने वाले पदार्थों का उपयोग करने से महत्वपूर्ण प्रगतियाँ हुई है, किन्तु यह प्रगति साधारणतया किसी ऐसे विशिष्ट रासायनिक अथवा यान्त्रिक आविष्कार के फलस्वरूप हुई है जिसे वास्तव में श्रम के

---

1 "विनिर्माण" एक ऐसा शब्द है जिसका इसके मूल प्रयोग से बहुत पहले ही सम्बन्ध टूट गया है: और इसका अब उत्पादन की उन शाखाओं में प्रयोग होता है जहाँ हाथ के काम की अपेक्षा मशीन का काम अधिक प्रमुख है। रोशर ने फैक्टरी वाले उद्योगों के बजाय घरेलू उद्योगों के सम्बन्ध में लागू कर इसे इसके पुराने प्रयोग के निकट लाने की कोशिश की: किन्तु ऐसा करने का अब समय नहीं रहा।

2 बवाज (Babbage) द्वारा सींग के विनिर्माण का दृष्टान्त देखिए। Economy of Manufactures, अध्याय XXII

सूक्ष्म उप-विभाजन के कारण अधिक प्रयोग में लाया गया है किन्तु जो इस पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर नहीं है।[1]

इसके अतिरिक्त, यह सत्य है कि जब फर्नीचर या कपड़े के 100 जोड़े एक ही प्रकार के बनाने हों तो इस बात पर ध्यान देना लाभदायक होगा कि काठ के तख्ते को *या कपड़े को इस ढंग से काटने की योजना बनायी जाय* कि इनके कुछ ही टुकड़े बेकार जायँ। किन्तु यह सही अर्थ में कुशलता से प्राप्त होने वाली किफायत है। एक प्रकार की योजना से अनेक कार्यों की पूर्ति की जाती है, और अतः इसे अच्छी तरह से और सोच समझ कर तैयार करना चाहिए। अब हम मशीनों की किफायत के विषय में विचार करेंगे।

बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली फैक्टरी को विशेष प्रकार की मशीनों के प्रयोग से लाभ।

§2. जहाँ किसी धन्धे की एक ही शाखा में लगी हुई अनेक फैक्टरियाँ एक ही पड़ोस[2] में स्थापित हो जाती है वहाँ छोटे-छोटे विनिर्माताओं को सहायक उद्योगों से मदद मिलने के बावजूद भी मशीनों की बढ़ती हुई किस्मों तथा कीमतों से बड़ी हानि उठानी पड़ती है। क्योंकि एक बड़े कारखाने में बहुधा अनेक कीमती मशीनों का प्रयोग होता है जिनमें से प्रत्येक से एक छोटा-सा काम लिया जाता है। प्रत्येक को अच्छे प्रकाश वाली जगह की जरूरत होती है, और इस प्रकार फैक्टरी के किराये तथा सामान्य खर्चों में प्रत्येक का पर्याप्त अंश रहता है। ब्याज तथा मशीन की मरम्मत करने के खर्चों के अतिरिक्त अधिक समय बीतने के पूर्व ही इसमें सुधार हो जाने के कारण मूल्य-ह्रास के रूप में बहुत अधिक आयोजन करना पड़ता है।[3] इसलिए एक छोटे उत्पादक को बहुत सी चीजें हाथ से अथवा अपूर्ण मशीनों से करनी पड़ती है, यद्यपि वह यह जानता है कि विशेष प्रकार की मशीनों के लिए बराबर काम मिलते रहने पर उन्हें किस प्रकार अच्छी तरह से तथा सस्ते दामों पर बनाया जा सकता है।

सुधरे किस्म की मशीनों

किन्तु एक छोटा उत्पादक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सबसे अच्छी प्रकार की मशीनों से हमेशा ही परिचित नहीं होता। यह सत्य है कि जिस उद्योग में वह लगा

1 कपास, ऊन, रेशमी तथा अन्य कपड़े के सामान में बरबाद होने वाला अंश और धातुशोधन (Metallurag cal) सम्बन्धी उद्योगों में सोडा तथा गैस के उत्पादन में, तथा अमेरिका के खनिज तेल तथा मांस को डिब्बों में बन्द करने के उद्योगों में गौण-उत्पादन (by-product) का उपयोग करना इसके उदाहरण हैं।

2 पिछले अध्याय का अनुभाग 3 देखिए।

3 अनेक धन्धों में किसी मशीन को बदलने की औसत अवधि पंद्रह साल से अधिक नहीं है, जब कि कुछ व्यवसायों में तो इसे दस साल या इससे भी कम समय में ही बदलना पड़ता है। बहुधा किसी मशीन के प्रयोग से जब तक प्रति वर्ष इसकी लागत का बीस प्रतिशत अंश अर्जित न कर लिया जाय तब तक हानि होगी, और जब 500 पौंड की लागत वाली मशीन के चालू होने पर इससे उत्पादन किये जाने वाले पदार्थ के मूल्य में सौवें अंश के बराबर ही वृद्धि हो—और यह एक असामान्य दशा नहीं है तो इसके प्रयोग में तब तक हानि उठानी पड़ेगी जब तक इससे वर्ष में कम से कम 10,000 पौंड के बराबर मूल्य वाली वस्तुएँ उत्पन्न न की जायें।

से लाभ।

है वह यदि बहुत पहले ही बड़े पैमाने पर चल रहा हो तो बाजार की सबसे अच्छी मशीन को खरीदने की क्षमता होने पर वह जिस मशीन का प्रयोग करेगा वह उपयुक्त किस्म की होगी। दृष्टान्त के रूप में, कृषि तथा कपास के उद्योग में लगभग पूर्णरूप में मशीन बनाने वालों द्वारा ही मशीनों में सुधार किये जाते हैं। पेटेण्ट के अधिकार के लिए रायल्टी देने पर तो वे सभी को ही सुलभ हो सकते है। किन्तु जो उद्योग अभी भी विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे है, या जिनका स्वरूप तेजी से बदल रहा है (जैसे कि रासायनिक उद्योग, घड़ी बनाने का उद्योग तथा जूट तथा रेशम विनिर्माण की कुछ शाखाएँ) तथा उन अनेक धन्धों मे जो किसी नयी आवश्यकता की पूर्ति या किसी नये पदार्थ का अनुसन्धान करने के लिए निरन्तर स्थापित की जा रही हैं, स्थिति ऐसी नही है।

छोटे विनिर्माता के पास प्रयोग करने की गुंजायश नहीं होती।

इन सभी धन्धो मे अधिकतर विनिर्माता अपने ही उपयोग के लिए नयी मशीनें तथा उत्पादन की नयी प्रणालियाँ ढूंढ निकालते है नित्यप्रति की अपेक्षा किसी नयी प्रणाली को अपनाना एक प्रकार का प्रयोग है जो असफल भी हो सकता है। जिन प्रयोगों से सफलता मिलती है उनमे अवश्य ही इतना लाभ होना चाहिए जिससे स्वयं उन प्रयोगो पर तथा अन्य असफल प्रयोगों पर लगी लागत पूरी हो सके। एक छोटा विनिर्माता यद्यपि इसमे सुधार करने का ढग ढूंढ निकाल सकता है परन्तु उसे पहले आजमायशी तौर पर ही ऐसा करना चाहिए। उसे इसमे निहित पर्याप्त जोखिम व खर्च तथा इसके फलस्वरूप अपने अन्य कामो मे पडने वाली रुकावट को भी ध्यान मे रखना चाहिए और यदि वह इसमे अधिकतम सुधार कर भी ले तो भी सम्भवत इससे पूरा लाभ नही उठा सकता। उदाहरण के रूप मे हो सकता है कि उसने एक ऐसी विशेषता ढूंढ निकाली हो जिस ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करने पर उसकी बिक्री को बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है: किन्तु इसके लिए भी हजारो पौंड खर्च करने की आवश्यकता है और ऐसी स्थिति मे सम्भवत उसे इस ओर पीठ फेर देनी होगी। रोशर के अनुसार आधुनिक विनिर्माता मे जिस गुण की आवश्यकता है उसका उसमे पाया जाना नितान्त असम्भव है। आधुनिक विनिर्माओं को चाहिए कि वे लोगो को वे चीजे दिखाकर नयी आवश्यकताओं का सृजन करे जिन्हे प्राप्त करने की उन्होने कल्पना तक नही की थी किन्तु जिनके विषय मे जानकारी प्राप्त हो जाने के बाद वे उन्हे शीघ्र ही प्राप्त करना चाहते है। उदाहरण के रूप मे, मिट्टी के बर्तन बनाने के धन्धे मे छोटे विनिर्माता के पास इतनी भी गुंजायश नही होती कि वह नयी प्रणालियो तथा नये आकार के प्रयोगो को कर सके। जिन वस्तुओ के लिए पहले से ही अच्छी माँग हो उन्हे बनाने मे सुधार करने से उसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ होने की सम्भावना है। किन्तु यहाँ पर भी जब तक वह अपने आविष्कारो को पेटेण्ट नही करा लेता, और इसे प्रयोग करने के अधिकार को नही बेचता, या कुछ पूंजी उधार लेकर अपने व्यवसाय को नहीं बढ़ाता या अपनी पूंजी को विनिर्माण की केवल उस अवस्था मे नही लगाता जिस पर इसके सुधार लागू होते हैं, तब तक वह इनका पूरा लाभ नही उठा सकता। किन्तु कुछ भी हो ऐसी दशाएँ इसके अपवाद है: विभिन्न प्रकार की तथा कीमती मशीनों के विकास के फलस्वरूप सभी जगह छोटे विनिर्माता को कठिनाई उठानी पड़ रही है। इसके कारण वह

कुछ व्यवसाय पूर्णरूप से छोड़ चुका है और अन्य व्यवसायों को भी तेजी से छोड़ने के लिए बाध्य हो रहा है।[1]

कुछ ऐसे भी धन्धे है, जिनमे एक बड़ी फैक्टरी को मशीनों से होने वाली किफायतों से जो लाभ होते है वे इसका आकार घटकर मध्यम स्तर का हो जाने पर तुरन्त लुप्त हो जाते है। दृष्टान्त के लिए कपास कातने और छीट का कपड़ा बुनने के धन्धे मे एक अपेक्षाकृत छोटी फैक्टरी का भी अस्तित्व बना रहेगा और यह प्रत्येक प्रक्रिया के लिए सर्वोत्तम मशीनों का निरन्तर उपयोग करती रहेगी जिससे कोई बड़ी फैक्टरी एक ही छत के नीचे एक ही प्रकार की अनेक छोटी-छोटी फैक्टरियों का ही रूप होगी, और वास्तव मे कपास कातने के धन्धों मे लगे कुछ लोग अपने कारखाने को बढाते समय उसी में एक बुनाई का विभाग भी शामिल करना सबसे अच्छा समझते हैं। ऐसी दशाओं मे किसी बड़े व्यवसाय मे भी मशीनो से होने वाली किफायत से थोडा ही अथवा कुछ भी फायदा

किन्तु कुछ धन्धों में सामान्य आकार की फैक्टरी में सबसे अच्छी मशीनें हो सकती हैं।

---

1 बहुत से व्यवसायों में जो सुधार किये जाते हैं उनके एक थोड़े से प्रतिशत को पेटेण्ट किया जाता है। ये सुधार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अनेक प्रकार के होते हैं और पेटेण्ट कराने के लिए इतनी अधिक कार्यवाही करनी पड़ती है कि एक-एक चीज को अलग से पेटण्ट कराना लाभप्रद नहीं होता। अथवा पेटेण्ट करने का मुख्य उद्देश्य किसी विशेष प्रकार की चीज को अवश्य करना है, और ऐसा करने की किसी एक ही प्रणाली के पेटेण्ट करने का अभिप्राय दूसरों को ऐसा करने की अन्य प्रणालियों को, जिनकी पेटेण्ट द्वारा रक्षा नहीं की जा सकती, ढूंढ़ निकालने का अवसर देना है। जब एक प्रणाली का पेटेण्ट करा लिया जाता है तो अन्य लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ करने से 'रोकने' के लिए इसी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचने की अन्य प्रणालियों का भी पेटेण्ट कराना आवश्यक हो जाता है। पेटेण्ट करने वाला इन अन्य प्रणालियों का स्वयं प्रयोग करने को प्रत्याशा नहीं करता किन्तु वह अन्य लोगों को इनका प्रयोग करने से वंचित रखना चाहता है। इनके कारण चिन्ताएँ उत्पन्न होती हैं और समय तथा द्रव्य की क्षति होती है और बड़े-बड़े विनिर्माता अपने द्वारा किये गये सुधारों को अपने तक ही सीमित रखना पसन्द करते हैं और इसके प्रयोग करने से जो कुछ भी लाभ हों उन्हें स्वयं प्राप्त करना चाहते हैं। यदि एक छोटा उत्पादन कोई पेटेण्ट करे तो उसका अतिलंघन (infringements) किये जाने के कारण सम्भवतया उसे परेशान किया जा सकता है और भले ही जिन कार्यों को करने के लिए वह अपना बचाव करता है उनमें उसे सफलता मिल जाय और उसकी सारी लागत वसूल हो जाय, किन्तु यदि बहुत अधिक बार अतिलंघन किये जायें तो उसका सर्वनाश होना निश्चित है। अधिकांशतया सर्वसाधारण के हित में यह है कि जो कोई सुधार किया जाय उसे प्रकाशित कर दें, भले ही इसके साथ ही साथ इसका पेटेण्ट भी कर दिया जाय। यदि इसका पेटेण्ट इंग्लैंड में किया जाय और अन्य देशों में न किया जाय, जैसा कि बहुधा होता है तो इंग्लैंड के उत्पादक इसका प्रयोग नहीं कर सकते भले ही वे स्वयं भी इसके पेटेण्ट होने से पहले इसे अपने लिए लगभग ढूंढ़ ही चुके हों, जबकि विदेशी उत्पादक इसके बारे में सब कुछ सीख लेते हैं और स्वतन्त्र रूप से इसका प्रयोग कर सकते हैं।

नहीं हो पाता, किन्तु तब भी उनमें इमारतों की विशेषकर रोशनदानों की, और वाष्प-शक्ति की किफायत होती है, तथा इंजन और मशीनों के प्रबन्ध एवं मरम्मत के रूप में भी कुछ बचत होती है। मुलायम वस्तुओं का उत्पादन करने वाली बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में बढ़इयों और मिस्त्रियों की दुकानें होती हैं जिनसे मरम्मत करने की लागत कम हो जाती है और संयंत्र में होने वाली दुर्घटना में विलम्ब होने से बचाव हो जाता है।[1]

किसी बड़े व्यवसाय को, या विभिन्न व्यवसायों के संगठन को क्रय और विक्रय में होने वाले फायदे।

किसी बड़ी फैक्टरी को या किसी भी प्रकार के बड़े व्यवसाय को छोटी फैक्टरी या व्यवसाय की अपेक्षा अभी ऊपर सबसे अन्त में बतलाये गये फायदों की भांति और भी अनेक फायदे होते हैं। एक बड़े व्यवसाय में बहुत बड़ी मात्रा में चीजें खरीदी जाती हैं अतः वे सस्ती मिलती हैं, इसे भाड़ा भी कम देना पड़ता है और वस्तुओं को इधर-उधर लाने-ले जाने में बचत होती है, विशेषकर यदि यह रेल की लाइन के निकट हों। बहुधा यह वस्तुओं को बड़ी-बड़ी मात्राओं में बेचती है जिससे उनके विक्रय की बहुत कुछ परेशानी बच जाती है, और साथ ही साथ इसके लिए कीमत भी अच्छी मिल जाती है, क्योंकि इससे ग्राहक भी बहुत बड़े स्टाक में वस्तुओं को छांट सकता है, और विभिन्न प्रकार के आदेशों को शीघ्र ही पूरा कर सकता है। इसकी ख्याति के कारण उसे इसमें पूरा विश्वास हो जाता है। यह वाणिज्य के लिए इधर-उधर भ्रमण करने वाले लोगों द्वारा और अन्य प्रकार से विज्ञापन करने के लिए प्रचुर धनराशि खर्च कर सकती है। इसके एजेण्ट इसे दूरस्थ स्थानों में व्यापार तथा निजी मामलों से सम्बन्धित विश्वसनीय सूचनाएँ देते हैं, और इसकी अपनी चीजें ही एक दूसरे का विज्ञापन करती हैं।

बहुत अधिक सुव्यवस्थित क्रय-विक्रय से होने वाली किफायतें उन प्रमुख कारणों में से हैं जिनके कारण आजकल एक ही उद्योग या धन्धों में लगे हुए बहुत से व्यवसायों का एक ही विशाल संघ के रूप में विलय हो रहा है। विभिन्न प्रकार के व्यापारिक

1 यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि कपास तथा कुछ अन्य सूती फैक्टरियाँ इस सामान्य नियम के प्रतिवाद हैं कि एक छोटी फैक्टरी की अपेक्षा एक बड़ी फैक्टरी में साधारणतया प्रति कर्मचारी अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि एक बड़ी फैक्टरी में बहुत से कामों को कीमती मशीनों द्वारा किया जाताहै, जब कि एक छोटी फैक्टरी में इन्हें हाथ से ही किया जाता है। इसके फलस्वरूप एक छोटी फैक्टरी में एक बड़ी फैक्टरी की अपेक्षा जहां मजदूरी का बिल उत्पादन के अनुपात से कम होता है, वहां मशीनों का मूल्य तथा मशीनों द्वारा फैक्टरी में घेरा जाने वाला स्थान अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता है। किन्तु सूती उद्योग की सरलतर शाखाओं में छोटे-छोटे कारखानों में भी वैसी ही मशीनें होती हैं जैसी कि बड़े-बड़े कारखानों में होती हैं, और चूंकि भाप के छोटे इंजन, इत्यादि बड़े इंजनों के अनुपात में अधिक कीमती होते हैं, अतः उन्हें बड़ी फैक्ट्रियों की अपेक्षा उत्पादन के अनुपात में अधिक अचल पूंजी की आवश्यकता होती है, और उन्हें सम्भवतः चल पूंजी की भी अनुपात से अधिक जरूरत पड़ती है।

मंडलों पर भी जिनमें जर्मनी के उत्पादक संघ (Cartel) और केन्द्रीकृत सहकारी संघ भी शामिल हैं, यही बात लागू होती है। इन्होंने भी व्यावसायिक जोखिमों को बड़े-बड़े पूंजीपतियों के हाथों में ही सीमित रखने की योजना को प्रोत्साहित किया है।[1] जो साधारण पूंजी वाले लोगों द्वारा चलाये जाने वाले कार्यों को स्वयं ही करने लगते थे।

बड़ी फैक्टरी को विशेष प्रकार की कुशलता, प्रमुख व्यक्तियों के छँटाव, इत्यादि से सम्बन्धित फायदे।

§3. इसके बाद कुशलता से सम्बन्धित किफायत पर विचार किया जाता है। एक बड़े प्रतिष्ठान (Establishment) को अत्यधिक विशिष्ट मशीनों का प्रयोग करने की क्षमता होने के कारण जो लाभ प्राप्त होते हैं उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है इसमें प्रत्येक कर्मचारी को निरंतर उस सबसे कठिन काम में लगाये रखा जा सकता जिसे करने की उसमें क्षमता हो, और इस पर भी उसके कार्य का क्षेत्र इतना सीमित किया जा सकता है कि उसे अपने काम में वह सुविधा तथा विशिष्टता प्राप्त हो सके जो लम्बे समय तक निरन्तर अभ्यास करने से प्राप्त होती है। किन्तु श्रम विभाजन के लाभों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है: और हम अब एक ऐसे महत्वपूर्ण, यद्यपि अप्रत्यक्ष, लाभ पर विचार करेंगे जो किसी विनिर्माता को अपने रोजगार में अनेक व्यक्तियों के लगे होने से मिलता है।

बड़े विनिर्माता को छोटे विनिर्माता की अपेक्षा अपने सबसे अधिक कठिन काम में, जिस पर उसके प्रतिष्ठान का यश मुख्तया निर्भर है, ऐसे व्यक्तियों को रखने का अधिक अवसर मिलता है जिनमें विशिष्ट प्राकृतिक योग्यता होती है। जहाँ तक उन धन्धों का प्रश्न है जिनमें अधिक रुचि तथा मौलिकता की आवश्यकता होती है, जैसे कि, दृष्टान्त के लिए, घर को छाजने का काम, और जिनमें विशिष्ट प्रकार की सुन्दर कारीगरी की आवश्यकता होती है, जैसे कि सूक्ष्म कल-पुर्जे के विनिर्माता का काम व केवल हाथ की कारीगरी के सम्बन्ध में यह यदाकदा महत्वपूर्ण है।[2] किन्तु अधिकांश व्यवसायों में इसकी मुख्य महत्ता उन सुविधाओं में निहित है जिनसे नियोजक योग्य और

---

1 अगले अध्याय का अनुभाग 3 देखिए।

2 सन् 1770 में जब बोल्टन (Boulton) के यहाँ 700 या 800 व्यक्ति कछुवे के खपड़े (Shell), पत्थर, सीसे, और मीनाकारी के काम में श्रमिकों के रूप में तथा धातु के कलाकारों के रूप में काम करते थे, वह लिखते हैं: — मैंने बहुत से सीधे-साधे ग्रामीण युवकों को अच्छे श्रमिकों के रूप में प्रशिक्षित किया है और मैं और अधिक लोगों को प्रशिक्षित कर रहा हूँ, और जहाँ कहीं मैं कुशलता एवं योग्यता के आसार देखता हूँ, मैं उनको प्रोत्साहित करता हूँ। मैंने इसी तरह यूरोप के सभी वाणिज्य में लगे शहरों (Mercantile towns) से सम्पर्क स्थापित किया है और मुझे लगातार सर्वसाधारण की माँग की कुल वस्तुओं के आदेश मिल रहे हैं जिसके फलस्वरूप मैं इतने श्रमिकों को रोजगार देने में समर्थ हूँ कि कार्य की अधिक उत्कृष्ट शाखाओं के लिए मनपसन्द कलाकार छाँट सकता हूँ: और इस प्रकार केवल अधिक अच्छी वस्तुओं के उत्पादन के लिए लोगों को रोजगार देने की अपेक्षा में एक अधिक विस्तृत उपकरण खड़ा करने और प्रयोग में लाने के लिए प्रोत्साहित हुआ हूँ। स्माइल (Smile) की Life of Boulton, पृष्ठ 128 देखिए।

परीक्षित व्यक्तियों को अर्थात् ऐसे व्यक्तियो को जिन पर वह विश्वास करता हो और जो उस पर विश्वास करते हो, फोरमैन तथा विभागों के प्रमुखों के रूप मे नियुक्त कर सकते है। इस प्रकार हमें उद्योग की आधुनिक व्यवस्था की मुख्य समस्या पर अर्थात् उस समय विचार करना पडता है जिसका व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य के उपविभाजन से होने वाले हित तथा अहित से सम्बन्ध रहता है।

व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य का उपविभाजन: बड़े उत्पादकों को होने वाले लाभ।

§4. एक बड़े पैमाने का प्रमुख अपने धन्धे की सबसे वृहत् और सबसे मौलिक समस्याओ के निराकरण के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को सुरक्षित रख सकता है: वास्तव मे उसे अपने आप को यह विश्वास दिलाना होता है कि उसके प्रबन्धक, लिपिक और फोरमैन अपने-अपने कार्य को करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति है, और वे अपने कार्य को अच्छी तरह कर रहे है। किन्तु उसे इससे अधिक विस्तार मे जानने की कोशिश नही करनी चाहिए। वह अपने व्यवसाय की सबसे कठिन और महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करने, बाजारो की अधिक व्यापक गतिविधि, देश एवं विदेश में हाल ही की घटनाओ के अब तक के अविकसित परिणमों का अध्ययन करने, तथा अपने व्यवसाय के आन्तरिक एवं बाह्य सम्बन्धों की व्यवस्था मे सुधार करने के लिए अपने मस्तिष्क को तरोताजा और स्पष्ट रख सकता है।

इस प्रकार अधिकाश कार्य के लिए छोटे नियोजक के पास योग्यता होते हुए भी समय का अभाव होता है। वह अपने धन्धे का इतना व्यापक सर्वेक्षण नही कर सकता, या इतने आगे की नही सोच सकता। बहुधा उसे दूसरो की अगुवायी के अनुकरण मे ही संतोष करना पडता है और अपना बहुत सा समय ऐसे काम मे व्यतीत करना पड़ता है जो उसके लिए घटिया किस्म का है, क्योंकि यदि उसे सफलता प्राप्त करनी है तो उसका मस्तिष्क कुछ बातो मे ऊँची श्रेणी का होना चाहिए और इसमे आविष्कार करने (Originating) एव सगठन करने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए। किन्तु इसके बावजूद भी उसे नित्य-प्रति का बहुत सा कार्य स्वय करना चाहिए।

छोटे उत्पादकों को होने वाले लाभ।

इसके विपरीत एक छोटे नियोजक को कुछ लाभ भी होते हैं। छोटे व्यवसाय मे मालिक की नजर सब जगह रहती है। उसमे फोरमैन या अन्य कोई श्रमिक काम चोरी नही कर सकता, उत्तरदायित्व विभाजित नही होता, अधूरे समझे गये सदेशों को एक विभाग को दूसरे विभाग को आगे-पीछे नही भेजा जाता। एक बड़े फार्म के कार्य के लिए आवश्यक बहीखाते तैयार करने और सभी प्रकार की दुष्कर नियंत्रण-प्रणाली से उसे बहुत कुछ छुटकारा मिल जाता है। इसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाला व लाभ उन धन्धो मे बहुत अधिक महत्वपूर्ण है जिनमे अधिक कीमती धातुओं तथा अन्य प्रकार की खर्चीली सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि उसे सूचना प्राप्त करने तथा प्रयोग (Experiments) करने में हमेशा ही बहुत नुकसान होता है, तिस पर भी इस दृष्टि से प्रगति की सामान्य गति उसके पक्ष मे है। 'व्यापारिक ज्ञान' की सभी बातों मे 'आन्तरिक' की अपेक्षा 'बाह्य' क्रियाओं का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है: समाचारपत्र, और सभी प्रकार के व्यापारिक तथा तकनीकी प्रकाशन अनवरत रूप से उसके लिए स्काउट की भांति कार्य कर रहे हैं और

उसे बहुत कुछ आवश्यक ज्ञान प्रदान कर रहे है। यह ज्ञान कुछ समय पूर्व उन लोगों को किसी भी प्रकार प्राप्त नही हो सकता था जो अनेक दूरस्थित स्थानों मे अच्छे वेतन पर एजेंट नही रख सकते थे। इसके अतिरिक्त, यह उसके भी हित में है कि व्यवसाय की गुप्त बाते मोटे तौर पर कम होती जा रही है, और किसी प्रणाली में होने वाले महत्वपूर्ण सुधार प्रयोगात्मक अवस्था के समाप्त होते ही बहुत अधिक समय तक गुप्त नही रहते है। यह उसके हित मे है कि निर्माण मे होने वाले परिवर्तन केवल अनुभव पर आधारित नियम पर कम और वैज्ञानिक सिद्धान्तो के व्यापक विकास अधिक पर निर्भर है, और इनमे से अनेक परिवर्तन तो छात्रो द्वारा ज्ञान अर्जित करने की अवधि मे ही किये जाते है, और इन्हें सामान्य हित के लिए तुरन्त ही प्रकाशित कर दिया जाता है अतः यद्यपि एक छोटा उत्पादक कदाचित ही प्रगति की दौड़ मे आगे रहता है, तथापि यदि उसके पास ज्ञान प्राप्त करने की आधुनिक सुविधाओ से लाभ उठाने का समय हो और योग्यता हो तो य आवश्यक नही कि वह इससे बहुत पीछे रहेगा। किन्तु यह सत्य है कि व्यवसाय के छोटे, किन्तु आवश्यक, विवरणो की अवहेलना किये बिना वह ऐसा तभी कर सकेगा जब वह असाधारण रूप मे शक्तिशाली हो।

कुछ धन्धों में, जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन करने में बहुत किफायतें होती हैं, फर्मों का तेजी से विकास।

§5. कृषि तथा अन्य धन्धो मे जहाँ मनुष्य को उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने से कोई बड़ी नयी किफायतें नही होती, वहाँ बहुधा व्यवसाय का आकार चाहे अनेक पीढ़ियों तक वही न रहे किन्तु अनेक वर्षो तक लगभग वही रहता है। किन्तु उन धन्धों मे जहाँ व्यवसाय के बड़े पैमाने पर होने पर ऐसे बहुत महत्वपूर्ण लाभ हो सकते है जो कि एक छोटे व्यवसाय को किसी भी प्रकार उपलब्ध नही हो सकते, स्थिति इसके विपरीत है। ऐसे धन्धे मे आगे बढते हुए किसी नये व्यक्ति को अपनी शक्ति परिवर्तनशीलता एवं अपने उद्योग तथा छोटे विवरणों के प्रति सतर्कता से अपने प्रतिद्वन्द्वियों को मिलने वाली अधिक व्यापक किफायतों का प्रतिरोध करना पडता है जिनके पास अपेक्षाकृत अधिक पूंजी है, जिन्हे मशीन एव श्रम मे अधिक विशेषता प्राप्त है तथा जिनके व्यापारिक सम्बन्ध भी अधिक विस्तृत हैं। यदि वह तब अपने उत्पादन को दुगुना कर सके, और किसी भी वस्तु को पुरानी दर पर बेच सके तो उसका लाभ दुगुने से भी अधिक हो जायेगा। इससे बैंक वालो तथा अन्य चतुर ऋणदाताओं के साथ उसकी साख बढ जायेगी, और वह अपने व्यवसाय को और आगे बढा सकेगा जिसके फलस्वरूप उसे और भी किफायतें होने लगी और पहले से अधिक लाभ होगा : इससे पुनः उसका व्यवसाय बढ़ेगा, और उपरोक्त क्रम लागू होगा। सर्वप्रथम ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई भी बिन्दु निश्चित नही होता जहाँ पर उसे रुक जाना चाहिए। यह सत्य है कि यदि व्यवसाय के बढ़ने पर उसकी प्रतिभा मे भी तदनुरूप वृद्धि हो, और अनेक वर्षों तक उसकी मौलिकता, सर्वतोमुखी प्रतिभा, तथा उपक्रम करने की शक्ति, सतत उद्यमशीलता तथा व्यवहार-कुशलता पूर्ववत बनी रहे और उसका भाग्य साथ देता जाय तो वह उस धन्धे की अपनी शाखा मे इन गुणो के कारण उस क्षेत्र के सम्पूर्ण उत्पादन को अपने हाथो मे ले सकता है। यदि उसकी वस्तुओ के ले जाने मे कठिनाई का सामना न करना पड़े और बाजार की कठिनाई भी न हो तो वह इस क्षेत्र को बहुत विस्तार मे फैला सकता है और एक प्रकार का सीमित एकाधिकार अर्थात् ऐसा एकाधिकार प्राप्त कर

सकता है जो इस दृष्टि से सीमित है कि कीमत बहुत ऊँची होने पर प्रतिद्वन्दी उत्पादक भी उसका उत्पादन करना प्रारम्भ कर सकते है।

किन्तु इस लक्ष्य तक पहुँचने के बहुत पहले ही उसकी प्रगति, उसकी प्रतिभा के घटने के कारण, चाहे न भी घटे किन्तु शक्तिमय काम की इच्छा के घटने के कारण अवरुद्ध हो सकती है। यदि वह बिलकुल अपने समान ही शक्तिमय उत्तराधिकारी को अपने व्यवसाय का कार्य सौंप दे तो उसकी फर्म की प्रगति की अवधि में वृद्धि की जा सकती है।[1] किन्तु उसकी फर्म की निरन्तर बड़ी तीव्र प्रगति होते रहने के लिए जिन दो शर्तों का होना आवश्यक है उन्हे एक ही उद्योग मे कदाचित ही एक साथ पूरा किया जा सकता है। ऐसे बहुत से धन्धे हैं जिनमे अकेला उत्पादक अपने उत्पादन में बडी वृद्धि करके बहुत सी बढ़ी हुई 'आन्तरिक' किफायते प्राप्त कर सकता है, और बहुत से ऐसे धन्धे है जिनमे वह उस उत्पादन का सरलतापूर्वक क्रय-विक्रय कर सकता है, किन्तु कुछ ऐसे भी धन्धे है जिनमे वह ये दोनों चीजे कर सकता है। और यह एक आकस्मिक परिणाम न होकर प्राय: आवश्यक परिणाम हैं।

जहाँ विपणन करना सरल है, वहां बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की किफायतें अधिकांश-तया सामान्य आकार की फर्मों को ही मिल सकती है।

क्योंकि उन बहुत से धन्धो मे जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की किफायतों का सर्वाधिक महत्व है वहाँ वस्तुओं का विज्ञापन करना कठिन है। निस्सन्देह इसके बहुत से महत्वपूर्ण अपवाद भी हैं। दृष्टान्त के लिए एक उत्पादक उन वस्तुओ के संपूर्ण बाजार पर अधिकार प्राप्त कर सकता है जो इतनी अधिक सरल और समान है कि उनका बहुत बडी मात्रा मे थोक मे विक्रय किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की सबसे अधिक वस्तुएँ कच्चे माल के रूप मे होती है, और लगभग सभी शेष वस्तुएँ जैसे इस्पात की सरिया या छीट का कपडा, सरल और साधारण होती है, और सरल तथा साधारण होने के कारण इनका उत्पादन नित्य-प्रति की भांति हो सकता है। अत: जिन उद्योगों मे इनका उत्पादन किया जाता है वहाँ किसी भी फर्म को तब तक विशेष किफायतें नही हो सकती जब तक अपने मुख्य कार्य के लिए लगभग नवीनतम किस्म के खर्चीले उपकरणो का प्रयोग न करे जब कि गौण कार्य सहायक उद्योगो द्वारा पूरे किये जा सकते हैं। सक्षेप मे किसी बडी और बहुत बड़ी फर्मों को प्राप्त होने वाली किफायतो मे बहुत अधिक अन्तर नही होता, और बहुत बड़ी फर्मों की छोटी फर्मो को नष्ट कर देने की प्रवृत्ति पहले ही इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि उन शक्तियो की अधिकाश क्षमता नष्ट हो गयी है जिनसे मूल रूप मे इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला था।

किन्तु विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं का विपणन कठिन होता है।

किन्तु वे बहुत सी वस्तुएँ जिनमे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम की प्रवृत्ति बहुत अधिक लागू होती है, न्यूनाधिक रूप मे विशेष प्रकार की वस्तुएँ हैं: इनमे से कुछ नयी आवश्यकता का सृजन करती है, अथवा किसी पुरानी आवश्यकता की नये ढग से पूर्ति करती है। कुछ विशेष रुचियो के अनुरूप होती है और इनका कभी भी बहुत बड़ा बाजार नही हो सकता, और कुछ वस्तुओ के गुणो की सरलतापूर्वक जांच की जा सकती और इन्हे धीरे-धीरे सामान्यरूप मे पसन्द किया जाना चाहिए। इन सभी दशाओ मे

1 अगले अध्याय के उत्तरार्द्ध में इस लक्ष्य के साधनों तथा उनकी व्यावहारिक परिसीमाओं का विवेचन किया गया है।

प्रत्येक व्यवसाय का विक्रय थोड़ा बहुत परिस्थितियों एवं उस निश्चित बाजार के अनुसार सीमित होता है जिसे इसने धीरे-धीरे बहुत कुछ व्यय करने के पश्चात् प्राप्त किया है, और यद्यपि स्वयं उत्पादन को मितव्ययितापूर्वक बहुत तेजी से बढाया जा सकता है किन्तु बिक्री नही बढ़ायी जा सकती।

अन्त मे, किसी उद्योग की जिन खास दशाओं से किसी नयी फर्म को शीघ्र ही उत्पादन की नयी किफायते प्राप्त होती है, उन्ही के फलस्वरूप शीघ्र ही उससे भी छोटी फर्मो द्वारा अपनी उससे भी नयी उत्पादन प्रणाली द्वारा उसे जड से उखाड दिया जा सकता है। विशेषकर जहाँ किसी बडे पैमाने पर उत्पादन करने की महत्वपूर्ण किफायतो का नये उपकरणों तथा नयी प्रणालियों के प्रयोग से सम्बन्ध है वहाँ जिस फर्म के पास अब वह विशेष शक्ति नही है जिसके कारण उसका अभ्युदय हुआ था, वह कुछ ही समय बाद शीघ्र ही नष्ट होने लगती है, और एक बडी फर्म की कुल अवधि कदाचित ही बहुत लम्बी होती है।

जिन कारणों से फर्मों का शीघ्रतापूर्वक उत्थान होता है उन्हीं से उनका पतन भी शीघ्र होता है।

§6. एक बडे व्यवसाय को एक छोटे व्यवसाय की अपेक्षा जो लाभ होते है उनका उत्पादन मे बडा महत्व है, क्योकि, जैसा हम देख चुके है, इसे थोडे से क्षेत्र मे बहुत कुछ कार्य करने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। किन्तु अन्य बहुत से उद्योगो मे बडे-बडे प्रतिष्ठान छोटे प्रतिष्ठानो को प्राय. नष्ट कर देते है। विशेषकर खुदरा व्यापार रूपान्तरित हो रहा है, और छोटे दुकानदार का प्रतिदिन अस्तित्व मिट रहा है।

अन्य प्रकार के बड़े-बड़े व्यवसायों के लाभ।

अब हम एक बडी दुकान या स्टोर को अपने से छोटे पडोसियों से प्रतिस्पर्धा करने मे होने वाले लाभो पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम यह स्पष्ट रूप से अच्छी शर्तो पर क्रय कर सकती है, इसकी वस्तुओं को अधिक सस्ते दामों मे ले जाया जा सकता है, और ग्राहकों की रुचि को पूरा करने के लिए यह विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्रस्तुत कर सकती है। इसके बाद, इसे दक्षता की बडी किफायत होती है एक छोटा दुकानदार एक छोटे विनिर्माता की भाँति नित्य-प्रति के काम मे जिसमे किसी निर्णय की आवश्यकता नही रहती, अवश्य ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है' जब कि एक बड़े प्रतिष्ठान का प्रमुख, और कुछ दशाओं मे यहाँ तक कि उसके मुख्य सहायक भी, अपना सारा समय विवेक के प्रयोग करने मे व्यतीत करते हैं। अभी हाल ही मे छोटे दुकानदारों को अपने ग्राहको के दरवाजों तक अपनी वस्तु ले जाने, उनकी विभिन्न रुचियो के अनुसार संतुष्ट करने और उनके विषय मे व्यक्तिगत रूप से बहुत कुछ जानकारी रखने जिससे वह साख पर वस्तुएँ बेचकर अपनी पूँजी उधार दे सकना है, की अधिक सुविधाओं के कारण इन लाभो का महत्व साधारणतया कम हो गया है।

खुदरे व्यापार में नकद भुगतान होने के कारण तथा साधारण माँग की वस्तुओं की बढ़ती हुई किस्म के कारण इन लाभों से वृद्धि हो रही है।

किन्तु हाल के कुछ वर्षो मे बहुत से परिवर्तन हुए है जिनका बडे प्रतिष्ठानो के पक्ष मे प्रभाव पड़ा है। साख पर वस्तुएँ खरीदने की आदत लुप्त हो रही है, और दुकानदार तथा ग्राहक के बीच के व्यक्तिगत सम्बन्ध अधिक दूर के हो रहे हैं। पहला परिवर्तन आगे के लिए एक बड़ा कदम है: दूसरा कुछ दृष्टि से खेदजनक है, किन्तु सभी दृष्टि से नही, क्योकि आंशिक रूप से अधिक धनी वर्गो मे वास्तविक स्वाभिमान की वृद्धि के कारण वे अब उस अधीनस्थ व्यक्तिगत ध्यान की परवाह नहीं करते जिसकी उन्हें पहले आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त समय के बढ़ते हुए मूल्य के कारण लोग अब पहले

की अपेक्षा खरीददारी में अनेक घण्टे कम व्यतीत करना चाहते हैं। वे अब बहुधा मित्र तथा विस्तृत कीमत,-सूची से आर्डर की एक लम्बी सूची लिखने में चन्द मिनट खर्च करना अधिक पसन्द करते हैं। आर्डर देने तथा डाक द्वारा तथा अन्य प्रकार से पार्सल प्राप्त करने की बढती हुई सुविधाओं के कारण वे सरलतापूर्वक ऐसा करने में समर्थ हुए है। वे जब खरीददारी के लिए जाते हैं तो ट्रामकार तथा स्थानीय रेलगाडियाँ उनको आसानी से तथा सस्ते मे ही पडोस के शहर की बडी केन्द्रीय दुकानों में ले जाने के लिए प्रायः पास ही मे मिल जाती है। इन सभी परिवर्तनो के कारण पहले की अपेक्षा एक छोटे दुकानदार को अपने व्यवसाय की रक्षा करना और भी कठिन हो गया है और यहाँ तक कि रसद के व्यापार मे तथा अन्य प्रकार के व्यापारों में जहाँ अनेक किस्म के स्टाक की आवश्यकता नही होती, यही स्थिति पायी जाती है।

किन्तु बहुत से व्यवसायो मे वस्तुओं की निरन्तर बढती हुई किस्मो तथा फैशन के उन तीव्र परिवर्तनो के कारण जिनके हानिकारक प्रभाव समाज की हर एक श्रेणी पर पड़ने लगे है, स्थिति छोटे व्यापारियो के और भी विरुद्ध हो गयी है, क्योंकि वे मन पसन्द किस्म की चीजें छाँटने के लिए वस्तुओ का पर्याप्त भण्डार प्रस्तुत नही कर सकते, और यदि वे फैशन की किसी गति का घनिष्ठता के साथ अनुकरण करना चाहें तो उनके भण्डार का अधिकांश भाग फैशन के कम होते हुए ज्वार के कारण बडे दुकानदार के भण्डार की अपेक्षा अधिक सकट मे पड जायेगा। पुन कपड़े तथा फर्नीचर और अन्य व्यापारो मे मशीन की बनी हुई वस्तुओं के दाम अधिकाधिक सस्ते होने के कारण लोग उन्हें पडोस के एक छोटे निर्माता तथा व्यापारी के यहाँ से बनवाने की अपेक्षा पहले से ही बनी हुई वस्तुओ को खरीदने के लिए उद्यत हो रहे है। इसके अतिरिक्त, बडा दुकानदार विनिर्माता के यहाँ से आने वाले फेरीवालो से सन्तुष्ट न होकर स्वयं अथवा अपने एजेट द्वारा देश तथा विदेश के सबसे अधिक विनिर्माण करने वाले क्षेत्रों का दौरा करता है, और इस प्रकार वह बहुधा अपने तथा विनिर्माता के बीच के मध्यस्थो की सेवाओं को तिलांजलि दे देता है। साधारण पूँजी से एक दर्जी अपने ग्राहको को नये से नये कपड़ों के सैंकडो नमूने दिखाता है, और सम्भवत. पसन्द किये गये कपडो को पार्सल द्वारा भेजे जाने के लिए तार द्वारा आर्डर भेजता है। पुन. औरते बहुधा अपनी सामग्री सीधे विनिर्माताओ से ही खरीदती है और उन्हे ऐसे कपडे सिलने वालो से बनवाती है जिनके पास शायद ही कुछ पूँजी हो। ऐसा लगता है कि छोटे दुकानदारों ने हमेशा ही छोटी-मोटी मरम्मत करने का कुछ काम अपने पास ही रखा है: और उनका शीघ्र नष्ट होने वाले भोजन के पदार्थों को, विशेषकर श्रमिक वर्गों को, बेचने का काम बहुत अच्छा चला है, क्योंकि इसका कारण अ.शिक रूप से यह रहा है कि वे अपनी वस्तुएँ साख पर बेच सकते हैं और छोटे-मोटे ऋणो की वसूली कर सकते हैं। अनेक धन्धों मे बडी पूँजी वाली फर्म एक ही बडी दुकान की अपेक्षा बहुत सी छोटी-छोटी दुकाने खोलना पसन्द करती है। क्रय, तथा जितना भी उत्पादन व.छनीय है उसका सारा कार्य एक केन्द्रीय प्रबन्ध के मातहत रखा जाता है, और विशेष माँगों को एक केन्द्रीय भंडार से पूरा किया जाता है, जिससे प्रत्येक शाखा के पास बहुत बड़े भडार को रखे बिना ही प्रचुर साधन रहते है। शाखा प्रबन्धक को ग्राहकों के अतिरिक्त अन्यत्र

कहीं ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती, और यदि वह कर्मठ व्यक्ति हो जिसे अपनी शाखा की सफलता मे प्रत्यक्ष रुचि है तो वह छोटे दुकानदार का दुर्जेय प्रतिद्वन्दी सिद्ध हो सकता है, जैसा कि भोजन तथा वस्त्र से सम्बन्धित अनेक व्यवसायों में प्रदर्शित किया जा चुका है।

माल ढोने वाले धन्धे।

§7. इसके पश्चात् हम उन उद्योगों पर विचार करेंगे जिनकी भौगोलिक स्थिति उनके काम के ढंग से निर्धारित होती है। देहाती वाहक तथा कुछ कोचवान ही केवल ढोने वाले धन्धे के छोटे उद्योग मे अनिर्जीवित रहे हैं। रेल तथा ट्रामगाडी का आकार निरन्तर बढता जा रहा है, और उन्हें चलाने के लिए आवश्यक पूँजी इससे भी अधिक दर पर बढ रही है। वाणिज्य के अधिक जटिल होने तथा इसकी विविधता के बढने के कारण एक प्रबन्ध के मातहत के एक बडे जहाजी बेडे को अनेक बन्दरगाहों मे वस्तुओं को तेजी से तथा उत्तरदायित्व के साथ सौंपने की शक्ति से मिलने वाले लाभों मे वृद्धि हो रही है। और जहां तक स्वय जहाजों का प्रश्न है, समय अब बड़े जहाजों, विशेषकर यात्रियों को ले जाने के काम मे लगे जहजो के लिए अनुकूल है।[1] परिणामस्वरूप ढोने वाले धन्धे की कुछ शाखाओं में केवल कूड़ा-करकट फेंकने तथा पानी, गैस, इत्यादि लाने के संयुक्त कारोबार के अतिरिक्त अन्य किसी शाखा की अपेक्षा राज्य द्वारा व्यवसाय को चलाने के पक्ष मे दिये जाने वाले तर्क अधिक ठोस हैं।[2]

खानें तथा पत्थर की खानें।

छोटी तथा बडी खानो तथा पत्थर की खानों के बीच की कोई प्रवृत्ति स्पष्ट रूप में नहीं दिखायी देती। खानो के राज्य द्वारा किये गये प्रबन्ध का इतिहास पूर्णरूप से अंधकारमय है, क्योंकि खनन कर्म का व्यवसाय राज्य के कर्मचारियों के अच्छे प्रबन्ध के अन्दर इसके प्रबन्धकों की ईमानदारी तथा विस्तार की बातों एवं सामान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध मे उनकी शक्ति तथा उनके विवेक पर बहुत ही निर्भर है: और इसी कारण

1 जहाज की भारवहन-शक्ति अपने विस्तार के त्रिघात के अनुसार बदलती है, जब कि पानी द्वारा पैदा की जाने वाली रुकावट इसके विस्तार के द्विघात से कुछ ही अधिक तेजी से बढ़ती है जिसके फलस्वरूप छोटे जहाज की अपेक्षा बड़े जहाज में इसके टनभार (Tonnage) के अनुपात में कम कोयले की आवश्यकता होती है। इसमें श्रम की भी, विशेषकर नौचालन से सम्बन्धित श्रम की, कम जरूरत पड़ती है: जब कि यात्रियों को इससे अधिक आराम तथा सुरक्षा मिलती है, साथ ढूंढने के लिए अधिक लोग मिलते हैं और योग्य कर्मचारियों द्वारा देखभाल भी अधिक की जाती है। संक्षेप में, जिन बन्दरगाहों में बड़े जहाज आसानी से प्रवेश कर सकते हैं और जिनमें इनके भरने के लिए शीघ्रता से पर्याप्त मातायात मिलता है, वहाँ छोटा जहाज बड़े जहाज से प्रतियोगिता नहीं कर सकता।

2 पिछले 100 वर्षों के महान आर्थिक परिवर्तन की यह विशेषता है कि पहले-पहल रेलवे के बिल पास किये गये तो इनमें सड़कों तथा नहरों की भाँति लोगों को अपनी-अपनी सवारी चलाने देने की गुंजाइश रखी गयी थी, और अब हम यह कल्पना करना अधिक कठिन समझते है कि लोगों ने कैसे यह आशा की होगी, जैसा कि उन्होंने निश्चय ही ऐसी आशा की थी कि यह योजना व्यावहारिक हो सकती है।

अन्य बातों के समान रहने पर, यह आशा की जा सकती है कि एक छोटी खान या पत्थर की खान बड़ी खान के सामने प्रतियोगिता मे टिकी रहेगी। किन्तु कुछ दशाओं में गहरी सुरंगों, मशीनों तथा संचार के साधनों को प्राप्त करने का खर्च केवल एक बड़े व्यवसाय द्वारा ही वहन किया जा सकता है।

कृषि के विषय में बाद में विचार किया जायेगा।

कृषि में श्रम का विभाजन अधिक नही है, और एक बड़े पैमाने पर उत्पादन भी नही किया जाता, क्योंकि यहाँ जिसे "बडी फर्म" कहा जाता है वह साधारण विस्तार वाली फैक्टरी मे काम करने वाले लोगों के दशवें अंश के बराबर लोगो को भी काम नही दे सकती। ऐसा आशिकतया प्राकृतिक कारणो, ऋतुओ के परिवर्तन तथा किसी एक स्थान मे अत्यन्त श्रम को लगाने की कठिनाई से होता है, किन्तु भूमि के पट्टे की विविधता से सम्बन्धित कारणों से भी आशिकतया ऐसा होता है। और इन सबका तब तक विवेचन स्थगित करना सर्वोत्तम होगा जब तक कि हम इस पुस्तक के छठे भाग मे भूमि के सम्बन्ध मे माँग तथा सम्भरण का अध्ययन न कर ले।

अध्याय 13

औद्योगिक संगठन (पूर्वानुबद्ध)। व्यावसायिक प्रबन्ध

§1. अब तक हम मुख्यतया विनिर्माण के कार्य अथवा ऐसे अन्य व्यवसाय के प्रबन्ध के विषय मे विचार करते रहे हैं जिसमे बहुत शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है। किन्तु अब हमें इस बात पर सतर्कतापूर्वक विचार करना है कि व्यावसायिक व्यक्तियों के क्या-क्या कार्य हैं और उनका बड़े व्यवसायों तथा व्यवसायों के उत्पादन एवं विपणन से सम्बद्ध शाखाओं मे सहयोग देने वाले विभिन्न प्रबन्धकों मे किस प्रकार उत्तरदायित्व निर्धारित किया जाता है। प्रसगवश हमे यह पता लगाना है कि किस प्रकार कम से कम विनिर्माण मे प्रत्येक व्यक्तिगत व्यवसाय, जब तक उसका ठीक प्रकार से प्रबन्ध होता है, जितना ही बढ़ता जाता है उतना ही अधिक शक्तिशाली होता जाता है और यद्यपि प्रथम दृष्टि मे हम यह आशा कर सकते है कि बड़ी फर्मे उद्योग की बहुत सी शाखाओं से छोटी-छोटी फर्मों को पूर्णरूप से निष्कासित करेगी, तिस पर भी वास्तव में वे ऐसा नही करती।

समस्याएँ जिनको हल करना है।

यहाँ पर 'व्यवसाय' मे मोटे तौर पर दूसरों की आवश्यकता के लिए इस प्रत्याशा पर रखी गयी सभी सामग्री सम्मिलित है कि जिन लोगों को इससे लाभ पहुँचता है वे इसके बदले मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे भुगतान करेंगे। इस प्रकार इसका प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी आवश्यकताओं के लिए जुटायी गयी सामग्री तथा मित्रता एवं पारिवारिक स्नेह के कारण की जाने वाली दयालुतापूर्ण सेवाओं से विपर्यय प्रदर्शित किया गया है।

आदिकालीन हस्तशिल्पी अपने सम्पूर्ण व्यवसाय का स्वयं ही संचालन करता था। किन्तु चूंकि कुछ अपवादों के अतिरिक्त उसके निकट के पड़ोसी ही उसके ग्राहक होते थे, चूंकि उसे बहुत थोड़ी पूंजी की आवश्यकता होती थी, चूंकि उसके लिए उत्पादन की योजना प्रथा द्वारा तैयार की जाती थी, और चूंकि अपने कुटुम्ब के लोगों के काम के अतिरिक्त उसे बाहर के किसी मजदूर के काम की देखभाल नही करनी पड़ती थी इसलिए इन कार्यों से उसे कोई भी विशेष मानसिक थकान नही होती थी। तब वह अटूट वैभव का भोग नही कर सकता था क्योंकि युद्ध तथा अकाल का उस पर तथा उसके पड़ोसियों पर निरन्तर दबाव पड़ रहा था जिससे उसके काम मे गतिरोध पैदा हो रहा था और उसकी वस्तुओं के लिए उनकी मांग समाप्त हो रही थी। किन्तु वह सौभाग्य तथा दुर्भाग्य को धूप तथा वर्षा की तरह अपने नियंत्रण से परे की चीज मानता था: वह अपने हाथों से निरंतर कार्य करता था, किन्तु उसका मस्तिष्क कदाचित् ही थकता था।

आदिकालीन हस्तशिल्पी उपभोक्ता से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्ध रखता था और प्रायः उन व्यवसायों में आज भी ऐसा ही किया जाता है जिनमें

यहाँ तक कि आधुनिक इंग्लैंड मे हम बहुधा ग्रामीण दस्तकारों को आदिकालीन प्रणालियों को अपनाते हुए, तथा अपने पड़ोसियों को बेचने के लिए स्वयं ही चीजें बनाते

शिक्षा की जरूरत पड़ती है।

हुए पाते हैं। वे अपने व्यवसाय का स्वयं संचालन करते हैं और इसके जोखिमों को स्वयं सहन करते हैं। किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं: विद्या-वृत्ति सम्बन्धी व्यवसाय प्राचीन प्रणालियों को अपनाने के अधिक ज्वलंत दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि प्रायः एक चिकित्सक अथवा सालिसिटर अपने व्यवसाय का स्वयं ही संचालन करता है और इसके सारे कार्य को करता है। यह योजना दुर्गुणों से मुक्त नही है: प्रथम श्रेणी की योग्यता वाले कुछ ऐसे व्यावसायिक व्यक्तियों का जिनमें व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने की विशेष रुचि नही होती, बहुत मूल्यवान कार्य व्यर्थ चला जाता है या वे उसका थोडा ही लाभ उठा पाते हैं। यदि किसी प्रकार के मध्यस्थ द्वारा उनके लिए कार्य की व्यवस्था कर दी जाय तो उनको अधिक आय प्राप्त होगी, वे अधिक सुखी जीवन बिताएँगे और संसार को अधिक अच्छी सेवाएँ प्रदान करेंगे। किन्तु सभी पहलुओं को दृष्टि में रखते हुए स्थिति जैसी भी है वैसी ही सम्भवतः सबसे अच्छी है: इस प्रचलित धारणा के पीछे ठोस कारण है कि उन व्यवसायों में जहाँ उच्चतम एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक गुणों का होना आवश्यक है, और जिनमें पूर्ण व्यक्तिगत विश्वास होने पर ही पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकता है, मध्यस्थ लोग अवैध रूप से प्रवेश नही कर सकते।

किन्तु इनके भी अपवाद हैं।

अंग्रेज सोलिसिटर, चाहे नियोजकों अथवा उपक्रामियों (Undertakers) की तरह काम न भी करें तो भी वे कानून व्यवसाय की उस उच्चतम कोटि की शाखा में, जिसमे अधिकतम मानसिक थकान मिलती है, लोगों को काम दिलाने में एजेंट का काम करते हैं। पुनः युवकों के अनेक श्रेष्ठ प्रशिक्षक प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं को अपनी सेवाएँ न बेचकर किसी कालेज या पाठशाला की प्रबन्ध संस्था को या प्रधानाध्यापक को, जो उनकी नियुक्ति का आयोजन करता है, अपनी सेवाएँ बेचते हैं: नियोजक अध्यापक को उसके श्रम के लिए बाजार प्रस्तुत करता है, और स्वयं उससे यह आशा की जाती है कि वह नियोक्ता को जिसे स्वयं शिक्षण के विषय में ठीक ज्ञान नही है, उसके शिक्षण के बारे मे किसी न किसी प्रकार की गारंटी दे।

पुनः हर एक प्रकार के कलाकार चाहे वे कितने ही ख्याति प्राप्त हों बहुधा ग्राहकों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की नियुक्ति करना अपने हित मे समझते हैं, जबकि कम प्रख्यात कलाकार कभी-कभी अपनी आजीविका के लिए धनी व्यापारियों पर निर्भर रहते हैं जो स्वयं तो कलाकार नही होते, किन्तु यह समझते हैं कि कलात्मक वस्तु को अधिकतम लाभ पर कैसे बेचा जा सकता है।

बहुत से व्यवसायों में उपक्रामियों के एक विशेष वर्ग की सेवाएँ बीच में आ जाती हैं।

§2. किन्तु आधुनिक संसार में व्यवसाय के अधिकाश भाग मे उत्पादन को इस प्रकार से संचालित करने के कार्य का कि निश्चित श्रम द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, विभाजन करना पड़ता है और इसे नियोजकों या, अधिक सामान्य शब्द को प्रयोग करते हुए, व्यावसायिक लोगों की एक विशिष्ट प्रकार की संस्था के हाथों मे दे दिया जाता है। वे ही "साहसिक कार्य" करते हैं या इसके जोखिम "उठाते हैं"। वे काम के लिए आवश्यक पूंजी तथा श्रम का आयोजन करते हैं, वे इसकी सामान्य योजना तैयार करते हैं या करवाते हैं और इसके सूक्ष्म विषयों पर निगरानी रखते हैं। व्यावसायिक व्यक्तियों को हम एक दृष्टिकोण से बहुत कुशल औद्योगिक श्रेणी मे

रख सकते हैं, और दूसरे दृष्टिकोण से शारीरिक श्रम करने वाले तथा उपभोक्ताओं के बीच आने वाले मध्यस्थ कह सकते है।

कुछ ऐसे भी व्यावसायिक व्यक्ति है जो महान जोखिम लेते है और जिन वस्तुओं का वे व्यापार करते हैं उनके उत्पादकों एवं उपभोक्ताओ के कल्याण पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं, किन्तु ये पर्याप्त मात्रा मे श्रम के प्रत्यक्ष नियोजक नही होते। इनमें अन्तिम रूप उनका है जो स्टाक ऐक्सचेंज या उत्पादन बाजार मे लगे है, जिनके प्रतिदिन के क्रय-विक्रय का आकार बहुत बडा होता है और इस पर भी उनकी न तो कोई फैक्टरी है और न उनके पास कोई मालगोदाम ही है, किन्तु अधिक से अधिक एक कार्यालय होता है जिसमें कुछ ही लिपिक कार्य करते है। इस प्रकार के सट्टे वालों के कार्यों के अच्छे या बुरे प्रभाव बड़े जटिल होते हैं, और अभी हम व्यवसाय के इन्हीं रूपों पर ध्यान देंगे जिनमे प्रशासन का अधिक और सट्टे के सूक्ष्म रूपों का बहुत कम महत्व है। अतः हमें अब व्यवसाय के अधिक सामान्य रूपो के उदाहरण लेने चाहिए, और यह विचार करना चाहिए कि जोखिम लेने का व्यावसायी व्यक्ति के अन्य कार्यों से क्या सम्बन्ध है।

गृह-निर्माण से लिया गया उदाहरण।

§3. गृह-निर्माण का धन्धा हमारे उद्देश्य के लिए बहुत उपयुक्त है, क्योंकि आंशिक रूप से इसमे कुछ मामलों मे व्यवसाय की आदिकालीन विधियों का अनुसरण किया जाता है। कालातीत मध्ययुग मे बिना प्रवीण भवन-निर्माता की सहायता के गैर सरकारी व्यक्ति के लिए निजी मकान बनाना एक साधारणसी बात थी और अभी भी यह रीति सर्वथा समाप्त नही हुई है। जो व्यक्ति अपने भवन के निर्माण का स्वयं उत्तरदायित्व संभालता है उसे अपने सभी कर्मचारियो को पृथक् रूप से नियुक्ति करनी चाहिए। उन पर निगरानी रखनी चाहिए तथा उनकी मजदूरी के भुगतान करने की मांग को रोकना चाहिए। उसको अपनी सामग्री अलग-अलग स्थानों से खरीदनी चाहिए तथा उसे खर्चीली मशीनें किराये पर लेनी चाहिए या उनके प्रयोग किये बिना कार्य चला लेना चाहिए। सम्भवतः वह प्रचलित मजदूरी से ज्यादा भुगतान करता है, किन्तु यहां उसकी जो हानि होती है उससे दूसरों को लाभ होता है। लोगों के साथ सौदा करने मे, उनकी परीक्षा लेने मे तथा अपने अपूर्ण ज्ञान से उनका मार्ग निदेशन करने मे उसका बहुतसा समय नष्ट होता है। इनके अतिरिक्त उसका समय इन कामो मे भी नष्ट होता है कि उसे किस प्रकार की सामग्री कितनी मात्रा मे और कहां से अच्छी तरह प्राप्त करनी चाहिए, इत्यादि। पेशे के रूप मे भवन निर्माण का कार्य करने वाले व्यक्ति को इन सूक्ष्म विवरणो के निरीक्षण का कार्य तथा पेशेवर वास्तुशास्त्री को योजना बनाने का कार्य सौंप देने से यह क्षति बचायी जा सकती है।

निम्न धन्धों में कभी-कभी मुख्य जोखिम उठाने व विस्तृत करने के कार्य

जब मकान उसमे बसने वाले लोगो के खर्चे से नही बनाये जाते बल्कि सट्टेबाजी के लिए बनाये जाते है तो बहुधा इससे भी श्रम विभाजन किया जाता है। जब यह काम विस्तृत पैमाने पर किया जाता है, उदाहरण के लिए एक उप-नगर का निर्माण करना, तो इसमें इतनी बड़ी पूंजी लगाने की आवश्यकता होती है कि यह उच्चतर के साधारण व्यावसायिक योग्यता रखने वाले किन्तु सम्भवतः भवन निर्माण के बारे में अधिक तकनीकी ज्ञान न रखने वाले शक्तिशाली पूंजीपतियों के लिए एक आकर्षक कार्यक्षेत्र प्रस्तुत

अलग-अलग लोगों के हाथ में रहते हैं :—भवन निर्माण के धन्धे,

करता है। वे विभिन्न प्रकार के मकानों की सम्भावित माँग व पूर्ति के सम्बन्ध में अपने ही निर्णय पर विश्वास करते हैं। किन्तु वे दूसरों को विविध प्रकार के प्रबन्ध का कार्य सौंपते हैं। वे वास्तुशास्त्रियों व सर्वेक्षकों को अपने सामान्य निदेशन के अनुसार योजनाएँ बनाने के कार्य के लिए नियुक्त करते है, और इसके पश्चात् इनको कार्यान्वित करने के लिए पेशेवर भवन निर्माताओं को ठेके देते हैं। किन्तु वे अपने व्यवसाय के प्रमुख जोखिमों को अपने आप उठाते हैं, और इसकी साधारण दिशा को स्वयं नियंत्रित करते हैं।

सूती कपड़े के धन्धे,

§4 यह भलीभाँति ज्ञात है कि उत्तरदायित्व का यह विभाजन बड़ी-बड़ी फैक्टरियों के शुरू होने से पहले ऊनी उद्योग मे काफी प्रचलित था। सट्टेबाजी का काम तथा खरीदने व बेचने का जोखिम अधिकतर उन उपक्रामियों द्वारा किया जाता था जो स्वयं मजदूरो की नियुक्ति का काम नही करते थे, जबकि कार्य का निरीक्षण करने तथा निश्चित ठेको को कार्यान्वित करने के छोटे-मोटे जोखिम छोटे अधिकारियो को सौंप दिये जाते थे।[1] अभी भी यह पद्धति कपड़े के व्यवसाय की कुछ शाखाओ में, विशेषकर उनमे जिनके बारे मे भविष्यवाणी करना बहुत कठिन है, व्यापक रूप से अपनायी जाती है। मैनचेस्टर के मालगोदाम के मालिक फैशन की गति, कच्चेमाल के बाजार, व्यापार, मुद्रा बाजार व राजनीति की सामान्य स्थिति तथा अन्य सभी कारणो का अध्ययन करते है जिनमे आने वाली ऋतु मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ की कीमतों पर प्रभाव पड़ता है। आवश्यकता पडने पर अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए वे (पहली दशा मे भवन निर्माण के सट्टेबाजो द्वारा वास्तुशास्त्रियो की नियुक्ति की भाँति) कुशल आकल्पी नियुक्त करने के पश्चात् विश्व के विभिन्न विनिर्माताओ को उन वस्तुओं को बनाने के लिए ठेके देते है जिन पर उन्होंने अपनी पूँजी लगाने के जोखिम को उठाने का निश्चय किया है।

गृहउद्योग,

विशेषकर कपड़े सिलने के धन्धो मे "गृह उद्योग" का, जो बहुत पहले वस्त्र उद्योगों मे प्रचलित था, पुनरुत्थान हुआ है। इस पद्धति मे बड़े-बड़े उपक्रामी ऐसे लोगों को कुटीरो तथा बहुत छोटे-छोटे वर्कशापो मे काम करने के लिए देते है जो अकेले या अपने परिवार के सदस्यो की सहायता से काम करते है, या वेतन पर रखे गये दो या तीन सहायकों की सहायता से अपना कार्य चलाते हैं।[2] इंग्लैंड के लगभग प्रत्येक काउण्टी

---

1 परिशिष्ट क, अनुभाग 13 से तुलना कीजिए।

2 जर्मनी के अर्थशास्त्री इसे 'फैक्टरी की तरह' (Fabrikmässing) का गृह उद्योग कहते हैं, और यह 'राष्ट्रीय' गृह उद्योग से, जिसमें अन्य कार्यों से मिलने वाले अवकाश के समय का (विशेषकर शीतऋतु में कृषि सम्बन्धी अवरोध के फलस्वरूप प्राप्त समय का) सूती कपड़े तथा अन्य वस्तुओं को बनाने में उपयोग किया जाता है, भिन्न है। स्कौनवर्ग (Schönberg) की Handbuch में Gewerbe नामक अध्याय को देखिए)। इस अन्तिम श्रेणी के घरेलू कर्मचारी मध्ययुगों में सारे यूरोप में साधारणतया पाये जाते थे किन्तु अब ये पहाड़ी तथा पूर्वी यूरोप के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में कम होते जा रहे है। उन्हें कार्य के चयन करने में सदैव ही अच्छी सलाह नहीं मिलती, और वे जो कुछ भी तैयार करते है उससे अच्छी चीज बहुत कम श्रम पर

(County) में बहुत से उपक्रामियों के एजेंट सुदूर गाँवों में कुटीर वासियों को सभी प्रकार की वस्तुएँ विशेषरूप से कपड़े, जैसे कमीजे, कालर व दस्ताने, बनाने के लिए आंशिक रूप से तैयार सामग्री वितरित कर देते हैं और माल के तैयार हो जाने पर वापिस ले लेते है। विश्व के बड़े-बड़े शहरों व अन्य विशाल नगरो मे, विशेषकर प्राचीन नगरो मे, जहाँ पर्याप्त मात्रा मे अकुशल व असगठित श्रमिक (जिनका स्वास्थ्य एव चरित्र निम्न श्रेणी का होता है) मिलते है, वहाँ मुख्यकर कपडे के उद्योग मे जिसमें केवल लदन मे ही दो लाख लोगों को रोजगार मिला है, यह पद्धति पूर्णरूप से विकसित है। सस्ते फर्नीचर बनाने के धन्धो मे भी यह पद्धति पूर्ण विकसित है। फैक्टरी व घरेलू पद्धतियो के बीच समय-समय पर प्रतियोगिता होती रहती है। कभी एक पद्धति उन्नति करती है तो कभी दूसरी: दृष्टान्त के लिए वर्तमान समय मे वाष्प-शक्ति से चलने वाली सिलाई की मशीनो के बढते हुए प्रयाग से बूट बनाने वाली फैक्टरियो की स्थिति सुदृढ हो रही है, जब कि फैक्टरियो व वर्कशापो मे दर्जी का धन्धा अधिक पनप रहा है। दूसरी ओर हाथ से बुनने वाली मशीनो मे आधुनिक सुधारो के फलस्वरूप मोजे, बनियान, इत्यादि, बनने का कारोबार फिर से घरेलू उद्योग का रूप धारण कर रहा है, और यह सम्भव है कि गैस, तेल एवं विद्युत्-इजनों से शक्ति को वितरित करने की नयी विधियो के फलस्वरूप बहुत से अन्य उद्योगो मे इसी प्रकार का प्रभाव पड़े।

शेफील्ड के धन्धे,

अथवा इनमे फैक्टरी व घरेलू उद्योगो के बीच के उद्योगो की स्थापना की प्रवृत्ति पायी जाती है, जैसा कि शेफील्ड के उद्योग-धन्धो मे पायी जाती है। दृष्टान्त के लिए छुरे-काँटे, इत्यादि बनाने वाली बहुत सी फर्में अपने कारोबार से शान चढाने व अन्य प्रकार का काम अमानी पर श्रमिको को देते हैं, और ये श्रमिक या तो उसी फर्म से जिससे उन्होंने ठेका लिया हो या किसी अन्य फर्म से इसके लिए आवश्यक वाष्प-शक्ति किराये पर लेते है: ये कर्मचारी अपनी सहायता के लिए कभी तो दूसरो से भी काम लेते है और कभी अकेले ही काम करते है।

जहाज बनाने के धन्धे,

पुनः बहुधा विदेशी व्यापारी के पास अपने जहाज नही होते, किन्तु वह अपने मस्तिष्क को व्यापार की गति के अध्ययन करने मे लगाता है तथा इसके मुख्य जोखिमो का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। वह सामान ढोने का कार्य उन लोगो से कराता है जिनमे प्रशासनिक योग्यता की अधिक आवश्यकता होती है, परन्तु व्यवसाय की सूक्ष्म गतिविधियो के बारे मे भविष्यवाणी करने की तदनुरूप क्षमता नही होती। यद्यपि यह सत्य है कि जहाज के ग्राहक के रूप मे उन्हें भी बडे एव कठिन व्यवसायिक जोखिम उठाने पड़ते हैं। पुनः, किसी पुस्तक को छापने का व्यापक जोखिम, सम्भवतः लेखक

फैक्टरी में बनायी जा सकती थी, अतः आम बाजार में इसे लाभ पर नहीं बेचा जा सकता था: किन्तु अधिकतर वे लोग अपने या पड़ोसी के उपयोग के लिए चीजें बनाते थे और इस प्रकार बहुत से मध्यस्थों को प्राप्त होने वाले लाभ की बचत करते थे। गोनर (Gonner) द्वारा Economic Journal, खंड II में लिखे गये Survival of Domestic Industries से इसकी तुलना कीजिए।

तथा पुस्तक लेखन इत्यादि।

के साथ-साथ, प्रकाशक द्वारा वहन किया जाता है, जब कि मुद्रक श्रमिकों की नियुक्त करता है और व्यवसाय के लिए कीमती टाइप तथा मशीनें देता है। धातु कारोबारों की कई शाखाओं मे तथा फर्नीचर बनाने व कपड़ों की सिलाई करने से सम्बन्धित व्यवसायों मे प्रायः इसी प्रकार की पद्धति अपनायी जाती है।

यह योजना लाभप्रद है, किन्तु इसका दुरुपयोग हो सकता है।

इस प्रकार की बहुत सी युक्तियाँ है जिनमें क्रय-विक्रय के प्रमुख जोखिम उठाने वाले व्यक्ति अपने श्रमिकों के निवास व उनको देखभाल करने के कष्ट से मुक्त हो सकते है। उन सभी युक्तियों के अपने-अपने लाभ है, तथा यदि श्रमिक शेफील्ड की भाँति उच्च चरित्र वाले व्यक्ति हों तो कुल मिलाकर इनके परिणाम असंतोषजनक नही होते। किन्तु दुर्भाग्यवश बहुधा श्रमिको का सबसे दुर्बल वर्ग ही, जिसके पास सबसे कम साधन होते है तथा आत्मसंयम भी सबसे कम होता है, इस प्रकार के धन्धे को अपनाता है। उपक्रमी जिस लोच के कारण इस पद्धति को अपनाना उचित समझता है उससे वास्तव मे वह यदि चाहे, अपने कर्मचारियों पर अवांछनीय दबाव डाल सकता है।

यद्यपि फैक्टरी की सफलता अधिकतर उन कारीगरो पर निर्भर रहती है जो स्थायी रूप से इसमे ही लगे रहते है तथापि पूँजीपति, जो कार्य को घरों मे करने के लिए देता है, बहुत से लोगो से काम लेना अपने हित मे समझता है। वह समय-समय पर उनमे से प्रत्येक को कभी-कभी थोडा बहुत काम देने के लिए प्रलोभित होता है तथा उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध लड़ाता रहता है। वह ऐसा आसानी से कर सकता है, क्योंकि श्रमिक एक दूसरे को नही जानते, अतः सामूहिक कार्यवाही भी नही कर सकते।

एक आदर्श विनिर्माता अनेक प्रकार के विशिष्ट कार्यों को एक ही व्यक्ति को सौंपता है: उसके लिए आवश्यक प्रतिभाएँ।

§5. जब व्यापार के लाभो पर विचार किया जाता है तो साधारणतया लोग इनका सम्बन्ध रोजगार देने वाले व्यक्ति से लगाते हैं : बहुधा 'नियोजक' शब्द से अभिप्राय *एक प्रकार से व्यापार के लाभो को प्राप्त करने वाले व्यक्ति से होता है*। किन्तु जिन दृष्टान्तो पर अभी हमने विचार किया था उनसे यह पर्याप्त रूप से व्यक्त हो जाता है कि श्रम का प्रबन्ध करना व्यावसायिक कार्य का केवल एक पहलू है, और प्रायः यह इसका सबसे प्रमुख पहलू नही है। 'नियोजक' जो अपने व्यवसाय के सारे जोखिम को उठाता है, वास्तव मे समाज की ओर से दो बिलकुल भिन्न सेवाएँ अर्पित करता है, और इस कार्य के लिए उसमे दुगुनी योग्यता होने की आवश्यकता हैं।

पहले विचार की गयी समीक्षाओं की पुनरावृत्ति करने पर (भाग 4, अध्याय 9, अनुभाग 4 और 5) यह ज्ञात होता है कि जो विनिर्माता वस्तुओ को विशेष आदेशों की पूर्ति के लिए न बना कर साधारण बाजार के लिए बनाता है उसे अवश्य ही एक सौदागर तथा उत्पत्ति के प्रबन्धक की तरह अपने व्यवसाय की 'चीजों' के बारे में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसमें उत्पत्ति तथा उपभोग मे होने वाले व्यापक परिवर्तनों के विषय में पूर्वानुमान लगाने, तथा यह पता लगाने की क्षमता होनी चाहिए कि एक नयी वस्तु की पूर्ति बढाने का कहाँ अवसर मिल सकता है जिससे वास्तविक आवश्यकता की संतुष्टि होगी या किसी पुरानी वस्तु के उत्पादन की योजना में सुधार होगा। उसमे सतर्कतापूर्वक जाँच करने तथा जोखिमों को साहसपूर्वक उठाने की योग्यता भी होनी चाहिए। उसे अपने धन्धे में प्रयोग की जाने वाली सामग्रियों व मशीनों के बारे में भी अवश्य ही जानकारी होनी चाहिए।
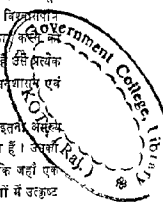
किन्तु दूसरी ओर नियोजक का कार्य भार उठाने के लिए उसे लोगों का स्वाभाविक नेता होना चाहिए। उसमें पहले अपने सहायकों को चुनने, तथा फिर उनमें पूर्ण विश्वास रखने व उनमें व्यवसाय के प्रति रुचि उत्पन्न करने तथा उनका विश्वासपात्र बनने की क्षमता होनी चाहिए, ताकि उनमें जो कुछ भी साहस व आविष्कार करने की शक्ति हो वह प्रकाश में आ जाय। जहां तक स्वयं उसके कार्य का प्रश्न है उसे प्रत्येक वस्तु पर सामान्य नियंत्रण रखना चाहिए तथा व्यवसाय के मुख्य कार्य में अनुशासन एवं एकता बनाये रखना चाहिए।

आदर्श नियोजक बनने के लिए आवश्यक योग्यताएँ इतनी बड़ी व इतनी असंख्य हैं कि बहुत थोड़े व्यक्ति ही उन सबको बड़ी मात्रा में प्रदर्शित कर सकते हैं। उनकी सापेक्षिक महत्ता उद्योग के स्वभाव व आकार के अनुसार बदलती है। क्योंकि जहाँ एक नियोजक एक प्रकार के गुणों में आगे होता है तो दूसरा दूसरे प्रकार के गुणों में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लेता है, और शायद ही दो नियोजकों की सफलता ठीक एक ही प्रकार के गुणों के कारण हुई है। कुछ लोग तो केवल सद्गुणों के कारण ही प्रगति करते है, जबकि अन्य लोगों की प्रगति के कारण ऐसे गुण हैं जो अधिक प्रशंसा योग्य तो नही होते किन्तु इनमे लक्ष्य पूर्ति के लिए सूक्ष्म दर्शन एवं शक्ति होती है।

व्यावसायिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक योग्यता की पूर्ति की चर्चा की जा सकती है।

व्यावसायिक प्रबन्ध का कार्य सामान्यतया इस प्रकार का होने के कारण, अब हमें यह पता लगाना है कि विभिन्न वर्गों के लोगों को व्यावसायिक योग्यता के विकास की क्या सुविधाएँ मिली है, और इसे प्राप्त करने के बाद उन्हें इसके विस्तार के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त करने की क्या सुविधाएँ हैं। हम अब इस अध्याय के प्रारम्भ मे बतलायी गयी समस्या के कुछ अधिक निकट पहुँचते हैं, और अनेक पीढ़ियों में लगातार व्यावसायिक फर्म की प्रगति की गति का अवलोकन कर सकते है। इस विषय का व्यावसायिक प्रबन्ध के विभिन्न रूपों की कुछ जांच करने से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। अब हमने अपने स्थूल रूप से केवल उस रूप पर विचार किया है जिसमे एक ही व्यक्ति के हाथों में सारा उत्तरदायित्व एवं नियंत्रण रहता है। किन्तु अब इसके स्थान पर उन अन्य रूपों का अस्तित्व बढ़ रहा है जिनमें अनेक साझेदारी या यहाँ तक कि बहुत से हिस्सेदारों में, यह उच्चतम अधिकार बँटा हुआ रहता है। निजी फर्म, तथा संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ, सहकारी समितियाँ तथा सार्वजनिक निगम व्यवसाय के प्रबन्ध में निरन्तर अधिकाधिक भाग ले रहे हैं और इसका एक मुख्य कारण यह है कि ये अच्छी व्यावसायिक योग्यता वाले व्यक्तियों को, जिन्हें कोई महान व्यावसायिक सुविधा प्राप्त नही है, आकर्षक क्षेत्र प्रदान करते हैं।

व्यवसायी व्यक्ति का लड़का अच्छी स्थिति से जीवन प्रारम्भ

§6. यह स्पष्ट है कि व्यवसाय मे पहले से ही अच्छी स्थिति पर पहुँचे हुए व्यक्ति के लड़के के पास, अन्य लोगों की अपेक्षा कार्य को प्रारम्भ करने के लिए बहुत अधिक सुविधाएँ होती हैं। उसे अपनी युवा अवस्था से ही लेकर अपने पिता के व्यवसाय के प्रबन्ध के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने तथा इसके लिए आवश्यक प्रतिभाओं के विकास के लिए विशेष सुविधाएं प्राप्त होती है . वह शान्तिपूर्वक एवं अचेतन रूप मे अपने पिता के धन्धे तथा उसमें काम करने के ढंग को सीख लेता है। उसे यह भी पता रहता है कि व्यवसाय के लिए चीजें कहाँ से खरीदी जाती हैं तथा कहाँ बेची जाती

करता है।

हैं। वह अपने पिता की विभिन्न समस्याओं एवं चिन्ताओं के सापेक्षिक एवं वास्तविक महत्व को जान जाता है और व्यवसाय की प्रक्रियाओं एवं मशीन के बारे में तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर लेता है।[1] वह जो कुछ सीखता है उसका थोड़ा-बहुत अंश ही उसके पिता के व्यवसाय में लागू होगा, किन्तु अधिकांश भाग उससे सम्बन्धित किसी भी व्यवसाय में काम देगा। वह निर्णय करने तथा सूझबूझ, उद्यम तथा सावधानी, दृढ़ता एवं नम्रता की सामान्य प्रतिभाओं में प्रायः किसी भी व्यवसाय का प्रबन्ध कर सकता है, क्योंकि ये चीजें किसी एक ही धन्धे के अपेक्षाकृत बड़े विषयों को नियंत्रित करने वाले लोगों के साहचर्य से प्रशिक्षित हो जाती हैं। उन लोगों के अतिरिक्त जो पालन-पोषण एवं शिक्षा के फलस्वरूप व्यापार में अनुरक्ति नहीं रखते और इसलिए इसके लिए अयोग्य सिद्ध होते हैं, सफल व्यावसायिक व्यक्तियों के लड़के अधिक पूँजी से व्यवसाय प्रारम्भ करते हैं: और यदि वे अपने पिता के कार्य को चालू रखें तो उन्हें यह भी अतिरिक्त लाभ है कि उनके व्यापारिक सम्बन्ध पहले से ही बने हुए रहते हैं।

किन्तु व्यवसायी लोग अपनी एक जाति नहीं बनाते, क्योंकि उनके बच्चों को इनकी योग्यताएँ और रुचियाँ सदैव उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त नहीं होतीं।

यह सर्वप्रथम सम्भव प्रतीत होता है कि व्यवसायी लोगों को अपनी एक प्रकार की जाति बना लेनी चाहिए। उन्हें शासन के मुख्य स्थानों को अपने बच्चों में विभाजित करना चाहिए, और वंशानुगत उत्तराधिकार की ऐसी बुनियाद डालनी चाहिए जो कि अनेक पीढ़ियों तक व्यापार की कुछ शाखाओं को नियंत्रित करे। किन्तु वास्तविकता बहुत ही भिन्न है। क्योंकि जब किसी व्यक्ति का बहुत बड़ा व्यवसाय चलने लगता है तो उसके वंशज बहुत अधिक लाभप्रद अवस्था में होते हुए भी इसे पहले की भाँति सफलतापूर्वक चलाने के लिए ऊँची योग्यताओं का तथा मस्तिष्क एवं स्वभाव के विशेष प्रकार के रुझान का विकास नहीं कर पाते। वह व्यक्ति तो सम्भवतया स्वयं दृढ़ तथा उत्साही माता-पिता द्वारा पाला-पोसा गया था, और उसे उनके व्यक्तिगत प्रभावों से तथा उनके द्वारा जीवन के प्रारम्भिक काल में कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष करने में शिक्षा मिली थी। किन्तु उसके बच्चे, यदि वे उसके धनी होने के पश्चात् पैदा हुए हों, और उसके पोते तो निश्चय ही घरेलू नौकरों की देखरेख में ही छोड़ दिये जाते हैं, और उनमें उस व्यक्ति के माता-पिता की भाँति, जिनके संसर्ग में उसे शिक्षा मिली थी, उसी प्रकार के ऊँचे गुण नहीं पाये जाते। जहाँ उस व्यक्ति की सबसे ऊँची महत्त्वाकांक्षा व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने की थी, वहाँ उसके लड़के कम से कम सामाजिक अथवा विश्वविद्यालयीय विशिष्टता प्राप्त करने के लिए भी समान रूप से उत्सुक रहेंगे।[2]

---

1 हम पहले ही देख चुके हैं कि आधुनिक समय में केवल विनिर्माताओं के लड़कों की शिल्पशिक्षण की अवस्था पूर्ण होती है। ये लगभग उस प्रत्येक महत्वपूर्ण क्रिया को करते हैं जिसे उन कार्यों में बाद के वर्षों में किया जाता है। ऐसा करने का अभिप्राय यह होता है कि इससे उनके सभी कर्मचारियों की कठिनाइयों को पर्याप्त रूप से जाना जा सकता है, और उनके कार्य के विषय में ठीक-ठीक निर्णय किया जा सकता है।

2 अभी हाल तक इंग्लैंड में विश्वविद्यालयीय अध्ययनों एवं व्यवसाय में एक प्रकार का विरोध रहा है। यह अब हमारे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में भावनाओं की

वास्तव मे कुछ समय तक सारा कार्य ठीक ही चलेगा। उसके लड़के को सुदृढ व्यापारिक सम्बन्ध पहले से ही स्थापित मिलेंगे, और सम्भवतः इससे भी महत्वपूर्ण यह बात पायेंगे कि उनके सहायकों का स्टाफ अच्छी प्रकार से चुना हुआ होगा और उनकी व्यवसाय मे उदार रूप से रुचि होगी। केवल अत्यधिक शिष्टाचार एव सतर्कता से उस फर्म की परम्पराओं का उपयोग करते हुए वे लम्बे समय तक व्यवसाय को सगठित रख सकेंगे। किन्तु एक पूरी पीढी के समाप्त होने पर व्यवसाय की पुरानी परम्पराओं को अपनाये रखना हितकारक न होने पर और उन बन्धनो के नष्ट हो जाने पर जिनसे पुराना स्टाफ एक सूत्र मे बँधा हुआ था वह व्यवसाय लगभग निश्चित रूप से छिन्न-भिन्न हो जायेगा। यह स्थिति केवल तब उत्पन्न नही होगी जब व्यावहारिक रूप से इनका प्रबन्ध उन नये लोगो के हाथो मे चला जाय जो इस बीच उस फर्म मे साझेदार बन जाते है।

किन्तु अधिकांश दशाओ मे उसके वंशज इस स्थिति मे अधिक जल्दी पहुँच जाते है। वे अनवरत परिश्रम एवं चिन्ता से प्राप्त हो सकने वाली दुगुनी आय की अपेक्षा यह अधिक अच्छा मानते है कि उन्हे बिना कुछ श्रम किये प्रचुर आय प्राप्त हो जाय। वे गैरसरकारी लोगों अथवा संयुक्त पूँजी कम्पनियो को उस व्यवसाय को बेच देते हैं अथवा इसमे निष्क्रिय रूप से साझेदार बन जाते है अर्थात् वे इसके जोखिमों एव लाभों मे हिस्सा बटाते है किन्तु इसके प्रबन्ध के कार्य मे भाग नही लेते: इन दोनों दशाओं मे ही उनकी पूँजी के ऊपर सक्रिय नियंत्रण का कार्य मुख्यतया नये लोगो के हाथों में चला जाता है।

कुछ समय पश्चात् किसी न किसी प्रकार से इसमें नये रक्त का संचार होना चाहिए।

§7. व्यवसाय की शक्तियो को पुनर्जीवित करने की सबसे पुरानी एव सरलतम योजना यह है कि इसके कुछ योग्यतम कर्मचारियो को इसमे साझेदार बना दिया जाये। एक विशाल विनिर्माण अथवा व्यापारिक सस्था का एकतन्त्रीय मालिक एव प्रबन्धक यह अनुभव करता है कि जैसे-जैसे वर्ष बीतते जाते है, उसे अपने मुख्य सहायकों मे अधिकाधिक उत्तरदायित्व सौप देना चाहिए। इसका आशिक कारण कार्य का बढना है और आंशिक कारण स्वय उसकी शक्ति मे अपेक्षाकृत कमी होना है। इस पर भी उच्चतम नियंत्रण उसके हाथो मे ही रहता है, क्योकि उसकी शक्ति एव ईमानदारी पर बहुत कुछ निर्भर रहता है: अतः यदि उसके लड़के अधिक प्रौढ़ न हो या अन्य किसी कारण उसके कन्धों से बोझ हटाने मे सहायता पहुँचाने के लिए तत्पर न हो तो वह अपने विश्वसनीय सहायको मे से किसी एक को साझेदार बनाने का निश्चय कर लेता है।

व्यक्तिगत साझेदारी की प्रणाली।

व्यापकता तथा हमारे मुख्य व्यापारिक केन्द्रों में कालेजों की वृद्धि के कारण कम हो रहा है। व्यवसायियों के लड़के जब विश्वविद्यालयों में भेजे जाते है तो वे अपने पिताओं के व्यवसायो से उतनी अधिक घृणा करना नहीं सीखते जितनी कि वे एक पीढ़ी पूर्व घृणा किया करते थे। वास्तव में उनमें से बहुत से तो ज्ञान की सीमाओं के विस्तार करने की इच्छा से व्यवसाय छोड़ देते हैं। किन्तु मानसिक क्रिया के उच्चतर रूप जो आलोचनात्मक होने के साथ-साथ रचनात्मक भी होते हैं, वे ठीक प्रकार से किये गये व्यावसायिक कार्य की अच्छाई की अधिक उचित प्रशंसा करते हैं।

इस प्रकार वह स्वयं अपने बोझ को हलका करता है। और साथ ही साथ उसे यह विश्वास भी हो जाता है कि उसके जीवन में किये गये इस कार्य को वे लोग जारी रखेंगे जिनकी आदतों को उसने अपने अनुकूल ढाल दिया है, और जिनके लिए उसे पिता जैसा प्यार है।[1]

किन्तु अब पहले की भाँति व्यक्तिगत साझेदारी अधिक समान शर्तों मे की जाने लगी है। इसमे समान धन एवं योग्यता वाले दो या दो से अधिक लोग अपने साधनो को किसी बड़े तथा कठिन कारोबार को चलाने के लिए एक साथ मिला लेते हैं। ऐसी दशाओं मे बहुधा प्रबन्ध के कार्य को विशेष प्रकार से विभाजित किया जाता है: दृष्टान्त के रूप मे *विनिर्माण मे कभी एक साझेदार स्वयं कच्चामाल खरीदने तथा पक्का माल* बेचने के काम मे लग जाता हैं, जब कि दूसरा फैक्टरी के प्रबन्ध का उत्तरदायी होता है: और एक व्यापारिक संस्थान मे एक साझेदार थोक विभाग पर तथा दूसरा फुटकर विभाग पर नियंत्रण करेगा। इन तथा अन्य रूपो मे व्यक्तिगत साझेदारी विभिन्न प्रकार की समस्याओं के अनुकूल है: यह बहुत दृढ़ तथा बहुत लोचदार है। विगत काल मे इसने एक बहुत बड़ा कार्य किया है और यह अब भी सजीव है।

संयुक्त पूंजी कम्पनियों की प्रणाली।

§8. किन्तु मध्य युगो के अन्त से लेकर आज तक कुछ प्रकार के धन्धों मे सार्वजनिक संयुक्त पूंजी कम्पनियों का प्रतिस्थापन हुआ है, क्योंकि इनके शेयर खुले बाजार मे किसी भी व्यक्ति को बेचे जा सकते हैं। व्यक्तिगत कम्पनियो के शेयर सभी सम्बन्धित लोगों के छोड़े विना हस्तातरित नही किये जा सकते। इस परिवर्तन के प्रभाव के कारण लोग, जिनमे से बहुतो को उस धन्धे का विशेष ज्ञान नहीं होता, अपने द्वारा नियुक्त किये गये अन्य लोगो के हाथो मे पूंजी को देने के लिए प्रोत्साहित हुए हैं: और इस *प्रकार से व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य के विभिन्न अंगो का नये प्रकार से वितरण* हुआ है।

हिस्सेदार जोखिम वहन करते है, निदेशक प्रबन्धकों पर, जो कार्य

किसी संयुक्त पूंजी कम्पनी द्वारा उठाये गये जोखिमो को अततोगत्वा इसके हिस्सेदार वहन करते हैं, किन्तु वे प्राय व्यवसाय की स्थापना करने तथा इसकी सामान्य नीति के नियंत्रण में अधिक सक्रिय भाग नही लेते। वे इसके विस्तृत पहलुओं की व्यवस्था करने मे बिलकुल भी भाग नही लेते। जब व्यवसाय अपने मूल स्थापको के हाथो से निकल जाता है तो इसके नियंत्रण का भार मुख्यतया ऐसे निदेशको के हाथों मे आ जाता है जिनका, यदि कम्पनी बहुत बड़ी हो, सम्भवत: इसके शेयरो के एक थोड़े से

---

1 जीवन का सबसे प्रसन्नतामय प्रणय, तथा इंग्लैंड के सामाजिक इतिहास में मध्ययुगों से लेकर आज तक मिलने वाली सबसे सुन्दर चीज इस वर्ग के लोगों की व्यक्तिगत साझेदारी की कहानी से सम्बन्धित है। बहुत से युवक वीर गाथाओं के प्रभाव से जिनमें एक विश्वसनीय शिक्षा (जो सम्भवत: अपने नियोजक की लड़की के साथ विवाह करने के बाद साझेदार बना दिया जाता है) की कठिनाइयों एवं उसकी अन्तिम विजय का वर्णन किया जाता है, वीरतापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय आचरण को प्रभावित करने के लिए इनके अतिरिक्त कोई भी ऐसे अन्य महत्वपूर्ण कारण नहीं है जो महत्वाकांक्षी युवकों के लक्ष्यों को पूरा कर सकें।

अनुपात मे हिस्सा होता है। अधिकाश निदेशको को इसमे किये जाने वाले कार्य के बारे मे अधिक तकनीकी ज्ञान नही होता। सामान्यतया उनसे यह आशा भी नही की जाती कि वे अपना सम्पूर्ण समय इसमे लगायेंगे। किन्तु उनसे यह आशा की जाती है कि वे इसे विस्तृत सामान्य ज्ञान तथा तर्क सगत निर्णय से अवगत करायें जिनके ऊपर उसकी नीति की व्यापक समस्याएँ निर्भर करती हैं। इसके साथ ही साथ इससे यह निश्चित करने मे भी सहायता मिलेगी कि कम्पनी के 'प्रबन्धक' अपने कार्य को अच्छी तरह से कर रहे है।[1] प्रबन्धकों तथा उनके सहायक कर्मचारियो के हाथो मे व्यवसाय की स्थापना करने की अधिकाश जिम्मेदारी रहती है, और इसकी व्यवस्था का सम्पूर्ण कार्य उन्हीं लोगो को करना पड़ता है: किन्तु उन्हे इसमे पूँजी लगाने की आवश्यकता नही होती, और यह आशा की जाती है कि उनकी, उनके उत्साह तथा उनकी योग्यता के अनुसार, छोटे पदो से बड़े पदो मे पदोन्नति की जायेगी। चूंकि सयुक्त राज्य (U.K.) मे सयुक्त पूँजी कम्पनियाँ देश मे किये जाने वाली सभी प्रकार के व्यवसायो के बहुत बड़े भाग को स्वयं करती है, अतः वे व्यावसायिक प्रबन्ध के लिए प्राकृतिक प्रतिभायुक्त व्यक्तियो को, जिन्हे उत्तराधिकार के रूप मे कोई भी भौतिक पूँजी या किसी प्रकार का व्यावसायिक सम्बन्ध पहले से स्थापित नहीं मिला है, बहुत अधिक सुविधाएँ प्रदान करते है।

के विस्तृत पहलुओं का निरीक्षण करते है, नियंत्रण रखते हैं।

§9. सयुक्त पूँजी कम्पनियो मे बड़ी लोचकता होती है और जब उनके कार्य के लिए व्यापक क्षेत्र मिलता है तो वे असीमित रूप से फैल सकती है, और प्राय. सभी दिशाओ मे इनका महत्व बढ़ रहा है। किन्तु इनमे सबसे बड़ी कमी यह है कि शेयर-होल्डर, जो कि व्यवसाय का जोखिम उठाते है, व्यवसाय के बारे मे पर्याप्त जानकारी नही रखते। यह सत्य है कि एक बड़ी निजी फर्म का प्रधान, व्यवसाय के मुख्य जोखिमो को उठाता है, और इसके बहुत से कार्य को दूसरो को सौंपता है, किन्तु उसकी स्थिति इस बात से सुरक्षित रहती है कि उसमे यह प्रत्यक्ष निर्णय करने की शक्ति है कि उसके अधीन काम करने वाले कर्मचारी विश्वासपूर्वक तथा होशियारी से कार्य करते है या नही। यदि जिन लोगो को उसने अपने लिए वस्तुओ के क्रय-विक्रय करने का कार्य सौंपा है वे उन लोगो से कमीशन ले जिनके साथ उनका सम्पर्क पड़ता है, तो वह इस बात का पता लगा सकता है और धोखेबाजी करने वाले को दड दे सकता है। यदि वे पक्षपात दिखावें और अपने अयोग्य सम्बन्धियो अथवा दोस्तो की पदोन्नति करे, और

जो लोग जोखिम वहन करते हैं वे हमेशा यह निर्णय नहीं कर सकते कि व्यवसाय का ठीक प्रकार से प्रबन्ध हो रहा है।

1 बेगेहो यह सुन्दर तर्क देते है (दृष्टान्त के लिए English Constitution, अध्याय VII देखिए) कि कैबिनेट मत्री अपने विभाग के कार्य के तकनीकी ज्ञान के अभाव से बहुधा कुछ लाभ प्राप्त करता है। क्योकि वह स्थायी सचिव तथा अन्य कर्मचारियों से जो कि उसके मातहत कार्य करते है, विस्तार में सूचना प्राप्त कर सकता है। और जहाँ उन लोगों को उस कार्य की जानकारी होने के कारण वह मंत्री साधारणतया उन लोगों के निर्णय के विपरीत निर्णय नहीं दे सकता, वहाँ सार्वजनिक नीति से सम्बन्धित व्यापक प्रश्नों में उसका निष्पक्ष साधारण ज्ञान अधिकारित्व की परम्पराओं को दबा देगा: और ठीक इसी प्रकार एक कम्पनी के हितों में ऐसे निदेशकों द्वारा सबसे अधिक वृद्धि होगी जिन्हें इसके कार्य के विवरणों का तकनीकी ज्ञान सबसे कम होता है।

यदि स्वयं वे सुस्त बन जायें और अपने कार्य से जी चुराये, या यदि वे अद्भुत योग्यता दिखलाने की प्रतिज्ञा को पूर्ण न करे जिसके कारण उनकी तरक्की की गयी थी तो वह इस बात का पता लगा सकता है कि त्रुटि कहाँ है और इसे कैसे ठीक किया जा सकता है।

आजकल व्यावसायिक नैतिकता के विकास के कारण ही यह पद्धति कार्य रूप में परिणत हुई है।

किन्तु इन सभी मामलों मे सयुक्त पूंजी कम्पनी के शेयर होल्डरों की एक बडी संस्था, कुछ अपवाद-जनक दृष्टान्तों के अतिरिक्त, लगभग शक्तिहीन होती है। इन अनेक शेयर होल्डरो मे से कुछ इस बात का पता लगाने का प्रयत्न करते है कि व्यवसाय का कार्य कैसे चल रहा है, और इस प्रकार से वे व्यवसाय के सामान्य प्रबन्ध मे प्रभावपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण नियत्रण कर सकते है। हाल ही मे वाणिज्यिक मामलों मे ईमानदारी तथा सच्चाई की भावना मे हुए अद्भुत विकास से यह बात दृढ़ता से साबित होती है कि बडी-बडी सार्वजनिक कम्पनियो के प्रमुख अधिकारी वर्ग छल-कपट के अत्यधिक प्रलोभनो से बहुत कम प्रभावित होते हैं। यदि वे पिछली सभ्यताओ के वाणिज्यिक इतिहास मे उल्लेख किये गये छल-कपट के अवसरों को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो तो उनमे किये गये विश्वास का इतना अधिक दुरुपयोग होगा कि व्यवसाय के इस प्रजातात्रिक रूप का विकास रुक जाता। यह आशा करना तर्कसंगत है कि विगत काल की भाँति भविष्य मे भी व्यापारिक गोपनीयता मे कमी होगी तथा हर प्रकार के प्रकाशन की सहायता से व्यापारिक नैतिकता मे वृद्धि होती रहेगी। इस प्रकार व्यावसायिक प्रबन्ध के सामूहिक तथा प्रजातात्रिक रूपो का उन अनेक दिशाओं मे भी विकास होगा जहाँ ये अब तक असफल रहे थे, और इनसे उन लोगों को जिन्हें ऊँचे कुल मे जन्म लेने के कारण मिलने वाले लाभ प्राप्त नही हैं, जीविकोपार्जन की पहले से भी कही अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती है।

राजकीय कारोबार।

यही बात केन्द्रीय सरकार तथा स्थानीय सरकार के कारोबारो के सम्बन्ध मे कही जा सकती है: उनके सम्मुख भी विशाल भविष्य हो सकता है, किन्तु अभी तक करदाता, जो कि अन्तिम जोखिम उठाता है, व्यवसायो मे प्रभावशाली नियंत्रण रखने मे साधारणतया सफल नही हुआ है। उसे ऐसे अधिकारी भी नही मिल सके है जो निजी प्रतिष्ठानो के अधिकारियो की भाँति शक्ति तथा उद्यम के साथ काम करते है।

नौकरशाही प्रणालियो के सामाजिक संकट।

विशाल सयुक्त पूंजी कम्पनी के प्रशासन तथा राजकीय व्यवसाय की समस्याओ के सम्बन्ध मे अनेक जटिल विवाद उठ खड़े होते है जिन पर हम यहाँ विचार नही कर सकते। विवाद के ये विषय बहुत आवश्यक है, क्योकि हाल ही मे बड़े-बड़े व्यवसायो मे तीव्रता से प्रगति हुई है, भले ही यह प्रगति इतनी अधिक तीव्र नहीं है जितनी कि साधारणतया समझी जाती है। यह सम्पूर्ण परिवर्तन मुख्यतया विनिर्माण तथा खनन कार्य, यातायात तथा बैंको की प्रक्रियाओ एव प्रणालियो के विकास के फलस्वरूप हुआ है क्योंकि यह कार्य केवल बहुत बड़ी पूंजी से ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त बाजारो के क्षेत्र एव कार्यों मे वृद्धि तथा बहुत बड़े पैमाने पर वस्तुओ के व्यापार मे तकनीकी सुविधाओ के फलस्वरूप भी यह परिवर्तन हुआ है। राजकीय उद्यम मे प्रजातात्रिक तत्व पहले-पहल प्रायः सजीव था, किन्तु अनुभव से यह ज्ञात होता है कि राजकीय कारोबार मे व्यावसायिक विधि तथा व्यावसायिक व्यवस्था मे उत्पादक विचारो एव प्रयोगो का अभाव रहता है, और उन निजी उद्योगो मे जो लम्बे समय से चले आ रहे है तथा

जिनका आकार विस्तृत हो चुका है और इस कारण जिनमे नौकरशाही प्रणाली की प्रवृत्तियाँ पैदा हो गयी है वहाँ भी ये चीजें साधारणतया नहीं पायी जाती। इस प्रकार उद्योग के क्षेत्र के संकुचित होने पर जहाँ कि छोटे-छोटे व्यवसाय उमग भरे उपक्रम के फलस्वरूप सफल हो सकते हैं वहाँ एक नये सकट के उत्पन्न होने का भय रहता है।

ट्रस्ट तथा उत्पादक संघ।

उत्पादन सबसे बड़े पैमाने पर मुख्यतया संयुक्त राज्य (अमेरिका) मे किया जाता है, जहाँ कुछ एकाधिकार प्राप्त विशाल व्यवसायों को साधारणतया 'ट्रस्ट' कहा जाता है। इनमे से कुछ ट्रस्टों का उदय एक ही प्रकार के व्यवसाय से हुआ है। किन्तु इनमे से अधिकाश का विकास बहुत से स्वतंत्र व्यवसायों के मिलने से हुआ है, और उद्योग के इस प्रकार एक-दूसरे के साथ मिलने के प्रथम प्रयास को साधारणतया संघ, या, जर्मन शब्द को प्रयोग करते हुए, 'उत्पादक संघ' कहा जाता है।

संयुक्त पूंजी कम्पनियों के मुख्य संकटों को आदर्श प्रकार के सहकारी संघ की स्थापना द्वारा दूर किया जा सकता है।

§10. सहकारिता की पद्धति का लक्ष्य व्यावसायिक प्रबन्ध की इन दोनो प्रणालियो की बुराइयों को दूर करना है। उस आदर्श प्रकार की सहकारी समिति मे जिसके लिए बहुत से लोग चाव से आशा किये हुए है, किन्तु व्यवहार मे जिसका अभी तक भी अस्तित्व नहीं है, व्यवसाय मे जोखिम लेने वाले शेयर होल्डरों का कुछ भाग या सम्पूर्ण भाग ही इसमे नौकरी करेगा। कर्मचारियों का चाहे वे व्यवसाय की भौतिक पूंजी मे योगदान देते हों या नही, इस लाभ में हिस्सा होगा और उन्हे इसकी सामान्य सभाओ मे, जहां इसकी नीति की व्यापक रूपरेखा निश्चित की जाती है तथा उस नीति को कार्यान्वित करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है, मत देने की कुछ शक्ति होगी। इस प्रकार वे लोग ही अपने प्रबन्धों तथा फोरमैनो को नियुक्त करने वाले तथा उनके मालिक होते है। वे यह भलीभाँति निर्णय कर सकते है कि व्यवसाय की स्थापना करने का उच्चतर कार्य ईमानदारी तथा कुशलता के साथ किया जा रहा है या नही, और उन्हें इसके विस्तृत प्रशासन मे शिथिलता तथा अयोग्यता का पता लगाने के लिए सबसे अच्छी सुविधाएँ प्राप्त होती है। अन्त मे, अन्य प्रतिष्ठानो के लिए आवश्यक कुछ छोटे-मोटे निरीक्षण के कार्य को वे अनावश्यक बना देते है, क्योंकि अपने ही आर्थिक हितों तथा अपने व्यवसाय की सफलता मे गर्व अनुभव करने के कारण वे तथा उनके साथ काम करने वाले कर्मचारी काम से जी नहीं चुराते।

इस प्रणाली में व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य में कठिनाइयां होती हैं, किन्तु इनमें से कुछ कठिनाइयों को इससे दूर किया

किन्तु अभाग्यवश इस पद्धति की अपनी ही बहुत बड़ी कठिनाइयाँ हैं। क्योंकि मानव स्वभाव को देखते हुए, स्वयं कर्मचारी सदैव अपने फोरमैनो तथा प्रबन्धकों के सबसे अच्छे सम्भाव्य मालिक नहीं होते। दोषारोपण के कारण उत्पन्न ईर्ष्या तथा परेशानी उस रेत की तरह कार्य करती है जो एक बड़ी तथा जटिल मशीन के बेयरिंग (Bearing) मे तेल के साथ मिल गयी है। सामान्यतया व्यावसायिक प्रबन्ध का सबसे कठिन कार्य वह है जिसमे सबसे कम बाह्य प्रदर्शन किया जाता है। जो लोग अपने हाथों से काम करते हैं वे व्यवसाय की स्थापना करने के उच्चतम कार्य मे होने वाली थकान की तीव्रता को कम महत्व का समझते हैं, और यह सम्भव है कि वे इनके लिए उस दर पर भुगतान किये जाने पर आपत्ति प्रकट करें जो कि अन्यत्र प्राप्त हो सकती है। वास्तव मे किसी सहकारी समिति के प्रबन्धकों मे उतनी सतर्कता, आविष्कार करने की शक्ति, तथा सर्वतोमुखी प्रतिभा नहीं होती जितनी उन लोगों में होती

जा सकता है। — है जो अनिजीवन के लिए संघर्ष के कारण इस कार्य के लिए छाँटे गये हैं, और जो व्यक्तिगत व्यवसाय के उन्मुक्त एवं निरंकुश उत्तरदायित्व से प्रशिक्षित हुए हैं। आंशिक रूप से इन कारणों के फलस्वरूप सहकारिता की पद्धति को कदाचित् ही पूर्ण रूप से अपनाया गया है, और श्रमिक लोगों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के फुटकर व्यापार के अतिरिक्त इसके आंशिक उपयोग में कदाचित् ही महत्वपूर्ण सफलता मिली है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से वास्तविक उत्पादन संघों, अथवा "साझेदारी" की सफलता के अधिक आशाजनक चिह्न दिखायी दे रहे हैं।

वास्तव मे वे काम करने वाले लोग जिनके स्वभाव दृढ़ रूप से व्यक्तिवादी होते है, और जिनके मस्तिष्क अपने ही कामों मे लगभग पूर्णरूप से केन्द्रित रहते है वे सम्भवत शीघ्रातिशीघ्र तथा सबसे अधिक आनन्ददायक मार्ग से भौतिक सफलता प्राप्त करने के लिए व्यवसाय की छोटे स्वतत्र 'उपक्रामियो' के रूप मे या एक प्रगतिशील निजी फर्म अथवा सार्वजनिक कम्पनी के रूप मे प्रारम्भ करते है। किन्तु सहकारिता मे उन लोगो के लिए विशेष आकर्षण होता है जिनके स्वभाव मे सामाजिक तत्त्व अधिक दृढ रहता है, और जो अपने पुराने साथियों से अपने को अलग करने इच्छा नही करते किन्तु उनके बीच उनके नेताओ के रूप मे काम करना चाहते है। सहकारिता मे निहित कामनाएँ कुछ दशाओ मे इसके व्यावहारिक रूप से उच्चतर होती है, किन्तु यह निश्चय ही एक बहुत बडी मात्रा मे नैतिक प्रयोजनो पर आधारित है। वास्तविक सहयोगी (Co-operator) व्यक्ति तीक्ष्ण व्यावसायिक बुद्धि एव एकाग्र विश्वास भरी भावना के साथ काम करता है, और कुछ सहकारी समितियो मे मानसिक एव चारित्रिक दोनो दृष्टियो से महान मेधावी व्यक्तियो ने उत्कृष्ट सेवाएँ अर्पित की है। इन लोगो ने सहकारिता के प्रति अपने मे निहित विश्वास से बडी योग्यता एव शक्ति तथा पूर्ण साधुता के साथ काम किया है। ये लोग हमेशा ही उस वेतन से कम पर ही सतुष्ट रहे है जो कि इन्हे अपने कार्य मे या निजी फर्म मे व्यावसायिक प्रबन्धको के रूप मे काम करने से मिल सकता था। अन्य धन्धो की अपेक्षा सहकारी समितियों के अधिकारियो मे इस प्रकार के लोग साधारणतया अधिक मिलते है, और यद्यपि यहाँ भी ये साधारणतया बहुत अधिक नही है, तथापि यह आशा की जाती है कि सहकारिता (Co-operation) के वास्तविक सिद्धान्तो के अधिक अच्छे ज्ञान के प्रसार तथा सामान्य शिक्षा मे वृद्धि के फलस्वरूप नित्य-दिन व्यावसायिक प्रबन्ध की जटिल समस्याओ के हल के लिए सहकारिता के अन्तर्गत काम करने वालो की सख्या अधिकाधिक बढेगी।

लाभ में हिस्सा-विभाजन। — इस बीच सहकारिता के सिद्धान्त के अनेक आशिक प्रयोगो को विभिन्न प्रकार की दशाओ मे अपनाया जा रहा है। इसमे से प्रत्येक से व्यावसायिक प्रबन्ध के कुछ नये पहलू को प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार लाभ मे हिस्सा बँटाने की योजना मे एक निजी फर्म अपने व्यवसाय के निरंकुश प्रबन्ध को बनाये रखने के साथ-साथ अपने कर्मचारियो को बाजार की दर पर पूर्ण मजदूरी (चाहे यह समय के आधार पर दी जाती है या कार्य के अनुसार दी जाती है) देती है, और इस बात के लिए भी सहमत है कि यदि एक निश्चित न्यूनतम मात्रा से अधिक लाभ प्राप्त हो तो उनका कुछ निश्चित

भाग उनमे बाँट दिया जायेगा। इससे यह आशा की जाती है कि कर्मचारियो तथा फर्म के बीच मतभेद कम होगा, कर्मचारियो मे ऐसी छोटी-मोटी चीजो को करने की तत्परता बढ़ेगी जो उनकी अपेक्षा फर्म के लिए अधिक लाभदायक होती है, और अन्त मे औसत से अधिक योग्यता एवं उद्यम वाले कर्मचारी इस ओर आकर्षित होगे, और ये चीजें ही उस फर्म को प्राप्त होने वाले भौतिक तथा नैतिक पुरस्कार है।[1]

आंशिक सहकारिता।

दूसरी आंशिक सहकारी योजना ओल्डम (Oldham) के कुछ सूती मिलो से सम्बन्धित है: वास्तव मे ये संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ है। किन्तु इनके शेयर होल्डरो में बहुत से ऐसे कर्मचारी हैं जिन्हें उस धन्धे का विशेष ज्ञान प्राप्त है यद्यपि वे बहुधा उन मिलों मे काम करना पसन्द नही करते जिनके वे आंशिक रूप से मालिक होते है। एक और भी ऐसी ही आंशिक सहकारी योजना उत्पादक सस्थानो से सम्बन्धित है जिन पर सहकारी भण्डारों की मुख्य सस्था सहकारी थोक समितियों के माध्यम से स्वामित्व रखती है। स्काटलैंड की 'थोक समितियो' मे कर्मचारियो का प्रबन्ध के कार्य तथा उस उद्यम के लाभो मे कुछ हिस्सा होता है, किन्तु इग्लैंड मे ऐसा नही है।

कुछ आगे चल कर हमे व्यवसाय के इन सभी सहकारी तथा उप-सहकारी रूपों का अधिक विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा, और थोक एव फुटकर, कृषि, विनिर्माण एवं व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के व्यवसायो की सफलता अथवा असफलता के कारण का पता लगाना होगा। किन्तु इस समय मे इस विषय की अधिक चर्चा नही करनी चाहिए। इस बात को प्रदर्शित करने के लिए बहुत कुछ कहा जा चुका है कि संसार सहकारी आन्दोलन के उच्चतर कार्य के लिए अभी-अभी ही तैयार हुआ है। अतः इसके विभिन्न रूपो को विगत की अपेक्षा भविष्य मे अधिक सफलता प्राप्त होने की आशा करना तर्कसगत है। इसके अतिरिक्त यह भी आशा करना उचित है कि इससे इसमे काम करने वाले कर्मचारियो को स्वय व्यवसाय के प्रबन्ध करने, अन्य लोगो का विश्वासपात्र बनने, और धीरे-धीरे ऐसे पदो पर पहुँचने का सर्वोत्तम अवसर मिलेगा जिनमे उनकी व्यावसायिक योग्यताओ के विकास के लिए क्षेत्र है।

भविष्य के लिए आशाएँ।

पूँजी के अभाव से कार्य करने वाले व्यक्ति का उत्थान उतना नहीं रुकता जितना कि पहले-पहल प्रतीत होता

§11. किसी कार्यरत व्यक्ति को उस पद तक जिसमे कि वह अपनी व्यावसायिक योग्यता का पूर्ण प्रदर्शन कर सकता है, पहुँचने मे होने वाली कठिनाई का जिक्र करते समय साधारणतया उसके पास पूँजी की कमी होने का मुख्यतया जिक्र किया जाता है: किन्तु यह सदैव ही उसकी मुख्य कठिनाई नही है। दृष्टान्त के रूप मे सहकारी वितरण समितियों ने प्रचुर सम्पत्ति सचित कर ली है, और उन्हे इस पर उचित दर पर ब्याज मिलना कठिन मालूम देता है, और इसे वे उन लोगो को ऋण पर देना पसन्द करेंगे जो यह प्रदर्शित करे कि उनके पास कठिन व्यावसायिक समस्याओं को हल करने की क्षमता है। वे सहयोगी (Co-operator) जिनके पास एक तो उच्च श्रेणी की व्यावसायिक योग्यता एव सत्यता होती है और दूसरी अपने साथियों के बीच इन गुणों के लिए महान ख्यातिरूपी 'व्यक्तिगत' पूँजी होती है, उन्हें पर्याप्त कारोबार के लिए

1 स्कलोस (Schloss) के Methods of Industrial Remuneration तथा गिल्मन (Gilman) के A Dividend to Labour से तुलना कीजिए।

है, क्योंकि ऋण-निधि रोजगार के आकार तथा उत्सुकता के साथ बढ़ती है।

प्रचुर भौतिक पूँजी पर अधिकार प्राप्त करने में कोई भी कठिनाई नहीं होगी : वास्तविक कठिनाई तो चारों ओर के अनेक व्यक्तियों को यह विश्वास दिलाने में होती है कि उनके पास इस प्रकार के दुर्लभ गुण हैं। जब कोई व्यक्ति व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए साधारण स्रोतों से पूंजी ऋण के रूप मे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो उन्हें भी लगभग इसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

यह सत्य है कि लगभग प्रत्येक व्यवसाय मे अधिक अच्छे प्रारम्भ के लिए निरन्तर अधिकाधिक पूँजी लगाने की आवश्यकता होती है, किन्तु उन लोगो की निजी पूँजी मे इससे भी बढ़कर तीव्र वृद्धि होती है जो स्वय इसका उपयोग नही करना चाहते और इसे ऋण पर देने के लिए इतने अधिक इच्छुक रहते है कि इसके लिए निरन्तर घटती हुई दर पर ब्याज लेना स्वीकार कर लेते है। इस पूँजी का बहुत कुछ भाग बैंक वालो के हाथो मे जाता है जो इसे तुरन्त ही किसी ऐसे व्यक्ति को दे देते है जिसकी व्यावसायिक कुशलता एवं ईमानदारी मे उन्हे विश्वास है। अनेक व्यवसायो मे उन लोगो से साख प्राप्त करने की बात को कहना ही क्या जो आवश्यक कच्ची सामग्री तथा बिक्री के माल का सम्भरण करते रहते है। अब प्रत्यक्ष उधार लेने के इतने अधिक अवसर मिलने लगे है कि जिस व्यक्ति ने इसका सदुपयोग करने की ख्याति प्राप्त करने मे होने वाली प्रारम्भिक कठिनाई पर विजय प्राप्त कर ली है उसके मार्ग मे व्यवसाय को चलाने के लिए आवश्यक पूँजी मे साधारण वृद्धि करना कोई बहुत गम्भीर समस्या नही है।

व्यवसाय की बढ़ती हुई जटिलता के कारण उसके मार्ग में बहुत रुकावट आती है।

किन्तु सम्भवत कार्यरत व्यक्ति के उत्थान मे व्यवसाय की बढ़ती हुई जटिलता अधिक रुकावट पैदा करती है यद्यपि यह कम महत्वपूर्ण है। व्यवसाय के प्रधान को अब बहुतसी ऐसी चीजो के विषय मे सोचना पड़ता है जिन पर प्राचीन काल मे विचार करने की कभी भी आवश्यकता ही नही हुई। ये ठीक इसी प्रकार की कठिनाइयाँ हैं जिनके लिए वर्कशाप मे प्रशिक्षण प्राप्त करने से बहुत कम तैयारी होती है। इसके लिए कार्यरत व्यक्ति को न केवल विद्यालय से मिलने वाली शिक्षा मे तीव्र सुधार से लाभ पहुँच सकता है, अपितु उसे इससे भी महत्वपूर्ण लाभ जीवन मे प्रवेश करने पर समाचार पत्रो, सहकारी समितियो एव व्यापारिक संघो तथा अन्य प्रकार से प्राप्त हो सकता है।

किन्तु वह इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

इग्लैड की सम्पूर्ण जनसख्या का लगभग तीन-चौथाई भाग मजदूरी प्राप्त करने वाले वर्गो का है। अब उन्हें हमेशा ही ठीक प्रकार से भोजन मिलता है, ठीक प्रकार से रहने तथा शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त है तो उनमे वह तात्त्विक शक्ति पर्याप्त अंश मे पायी जाती है जो व्यावसायिक योग्यता का आधार है। वे अपने नित्य प्रति के कार्यकलाप के अतिरिक्त कुछ भी न करने पर भी ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से व्यवसाय के अधिकारयुक्त पदों के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। एक साधारण श्रमिक योग्य होने पर साधारणतया फोरमैन बन जाता है, जहाँ से वह उन्नति कर प्रबन्धक के पद पर पहुँच सकता ; और अपने मालिक के साथ साझेदार भी बन सकता है। अथवा स्वयं थोडी बहुत बचत करने के पश्चात् वह एक ऐसी छोटी दुकान खोल सकता है जो कि श्रमिक

के अपने निवासस्थान मे भलीभाँति चलायी जा सकती है, जिसमे मुख्यतया साख पर सामान लेकर रखा जा सकता है, और जिसमे दिन मे तो उसकी पत्नी और सायंकाल मे स्वयं वह बैठ सकता है। इन तथा अन्य प्रकारो से वह अपनी पूँजी मे इतनी वृद्धि कर सकता है जिससे वह एक छोटे से कारखाने, या फैक्टरी को चला सके। एक बार इसे अच्छी तरह प्रारम्भ कर लेने पर उसे बैंक उदाररूप से ऋण देने के लिए इच्छुक हो जायेंगे। उसके पास समय होना चाहिए, और चूँकि आधी आयु तक यह सम्भव नही है कि वह व्यवसाय प्रारम्भ करे अतः उसके पास पर्याप्त जीवन काल होना चाहिए और उसके विचारों मे दृढता होनी चाहिए। किन्तु इसके साथ-साथ यदि वह 'धैर्यवान, मेधावी तथा भाग्यशाली' हो तो यह बिलकुल निश्चित है कि वह अपनी मृत्यु से पहले ही प्रचुर पूँजी पर अधिकार प्राप्त कर लेगा।[1] किसी फैक्टरी मे हाथ से काम करने वाले लोगों को जिल्दसाजों तथा सामाजिक परम्परा से उच्चतर स्थान प्राप्त किये हुए अनेक व्यक्तियों की अपेक्षा अधिकार के पदों तक प्रगति करने की अधिक अच्छी सुविधाएँ मिलती हैं किन्तु व्यापारिक संस्थानों मे स्थिति इसके प्रतिकूल है। उनमे किया जाने वाला शारीरिक श्रम प्रायः शिक्षाप्रद नही होता, जब कि कार्यालय मे काम करने का अनुभव विनिर्माण सम्बन्धी व्यवसाय की अपेक्षा वाणिज्यिक व्यवसाय के प्रबन्ध के लिए व्यक्ति को उपयुक्त बनाने मे अधिक अनुकूल है।

उत्थान में एक पीढ़ी की अपेक्षा

इस प्रकार निम्नस्तर से ऊपर की ओर अग्रसर होने की गति व्यापक होती है। सम्भवतः पहले की भाँति बहुत से लोग श्रमिकों की स्थिति से नियोक्ताओ की स्थिति मे शीघ्र ही नही पहुँच सकते: किन्तु ऐसे लोग अधिक है जो पर्याप्त रूप से आगे बढ

---

1 जर्मनी के लोग कहते हैं कि व्यवसाय में सफलता के लिए " Geld, (द्रव्य), Geduld (धैर्य), Genie (सूझ) तथा Gluck (भाग्य) की आवश्यकता होती है। एक कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रगति के लिए मिलने वाले अवसर उसके कार्य के स्वभाव से भी कुछ बदलते हैं। ये उन धन्धों में सबसे अधिक मिलते हैं जिनमें विस्तृत बातों का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और जहाँ विज्ञान अथवा विश्व की सट्टे की गतियों के सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान का सबसे कम महत्व है। इस प्रकार दृष्टान्त के रूप में 'मितव्ययिता तथा व्यावहारिक विवरण सम्बन्धी ज्ञान' मिट्टी के बर्तन बनाने के व्यवसाय के साधारण कार्य में सफलता के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं। परिणामस्वरूप जिन लोगों ने इस कार्य में प्रगति की है वे "जोसीया वेजवुड (Josiah Wedgwood) की तरह साधारण स्थिति से ऊँचे उठ गये हैं" (तकनीकी शिक्षा के आयोग के सम्मुख जी० वेजवुड के प्रमाण को देखिए)। शेफील्ड के अनेक धन्धों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का कथन सत्य है। किन्तु कुछ श्रमिक वर्ग सट्टेबाजी के जोखिमों को लेने की महान क्षमता का विकास करते हैं, और यदि उन्हें उन तथ्यों का ज्ञान प्राप्त हो जाये जिनसे सफल सट्टे प्रभावित होते हैं तो वे बहुधा अपने ऊपर के प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय प्राप्त कर लेंगे। मछली तथा फलों की भाँति शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के सबसे सफल थोक विक्रेताओं ने बाजार के पल्लेदारों के रूप में जीवन प्रारम्भ किया है।

दो पीढ़ियाँ लग सकती हैं।

कर अपने लड़कों को सबसे ऊँचे पदों को प्राप्त करने का सुअवसर देते हैं। अधिकांशतया पूर्ण प्रगति एक ही पीढ़ी मे नही होती। यह अधिकतर दो पीढ़ियों की अवधि मे फैली होती है किन्तु प्रगति की ओर बढ़ने की गति की कुल मात्रा सम्भवतः पहले की अपेक्षा अधिक है और शायद प्रगति की अवधि का दो पीढ़ियों मे फैलाना सम्पूर्ण समाज के लिए अधिक अच्छा है। पिछली शताब्दी के प्रारम्भ मे जो श्रमिक बड़ी संख्या मे नियोक्ताओं के स्थान पर पहुँच गये थे वे कदाचित् ही अधिकार के पदों के लिए उपयुक्त थे : अधिकांशतया उनका व्यवहार कठोर एवं अत्याचारपूर्ण था, वे अपना आत्मनियंत्रण खो बैठते थे, और न तो सही अर्थ मे सज्जन थे और न सही अर्थ मे सुखी थे, जब कि उनके बच्चे बहुत तेज स्वभाव के, खर्चीले तथा सुख-सुविधा प्रिय थे, और अपने धन को नीच तथा अश्लील आमोद-प्रमोद मे उडाते थे, और इस प्रकार उनमें प्राचीनतर सामन्तवर्ग की सबसे बुरी बुराइयाँ थी और अच्छाइयों का लेशमात्र भी न था। फोरमैन अथवा व्यवस्थापक की, जिसे अभी भी आज्ञापालन करना तथा साथ ही साथ आदेश देना भी है, किन्तु जो प्रगति कर रहा है और अपने बच्चो को और आगे प्रगति करते हुए देखना चाहता है, कुछ प्रकार से पहले के छोटे से मालिक की अपेक्षा अधिक ईर्ष्या की जाती है। उसकी सफलता कम महत्वपूर्ण है, किन्तु उसका कार्य बहुधा उच्चतर है और विश्व के लिए अधिक उपयोगी है, जब कि उसका आचरण अधिक सभ्य और शिष्टाचारयुक्त तथा दृढ होता है। उसके बच्चे ठीक प्रकार मे प्रशिक्षित होते हैं, और वे धन प्राप्त करने पर सम्भवतया उसका अधिक अच्छा उपयोग करते हैं।

यदि केवल कार्यालय के कार्य का भय दूर किया जा सके तो यह एक मिश्रित बुराई है।

यह स्वीकार करना होगा कि विशाल व्यवसायो के तीव्र विस्तार के फलस्वरूप, और विशेषकर उद्योग की बहुतसी शाखाओ मे सयुक्त पूंजी कम्पनियो के विस्तार के फलस्वरूप, योग्य एव मितव्ययी श्रमिक अपने बच्चों के प्रति ऊँची महत्वाकाक्षाएँ रखते हुए उन्हे कार्यालय के काम मे लगाना चाहते हैं। इसमे यह भय है कि वे हाथ से किये जाने वाले उत्पादक कार्य मे निहित शारीरिक ओज तथा आचरण की शक्ति को खो न बैठें और अपने पतन के फलस्वरूप निम्नतर मध्यम वर्ग की श्रेणी मे न आ जायें। किन्तु यदि वे अपनी शक्ति मे किसी भी प्रकार की कमी न आने दे तो वे सम्भवतया ससार के नेताओ मे गिने जाने लगेंगे, यद्यपि साधारणतया अपने पिता के उद्योग मे वे इस स्थान पर नही पहुँच सकेंगे। अत. उन्हें विशेषरूप से उपयुक्त परम्पराओं एवं योग्यता का लाभ होगा।

एक योग्य व्यवसायी व्यक्ति अपने अधिकार में आयी हुई पूंजी को तेजी से बढ़ाना चाहता है।

§12. जब कोई महान योग्यता वाला व्यक्ति एक बार किसी स्वतंत्र व्यवसाय के शिखर पर पहुँच जाता है, चाहे वह किसी भी मार्ग से उस स्थिति पर पहुँचा हो तो यह थोड़ी बहुत पूंजी की सहायता से शीघ्र ही पूंजी को अच्छे रूप मे परिणत करने की शक्ति को प्रदर्शित कर सकेगा जिसके फलस्वरूप वह किसी न किसी प्रकार से लगभग इच्छित मात्रा मे पूँजी उधार ले सकेगा। अच्छे लाभ अर्जित कर वह अपनी ही पूंजी बढ़ाता है, और उसकी यह अतिरिक्त पूँजी और अधिक ऋण लेने के लिए भौतिक सुरक्षा प्रदान करती है। इस तथ्य से कि उसने स्वयं इसे अर्जित किया है ऋणदाता ऋणों के लिए पूर्ण सुरक्षा देने पर कम जोर देते हैं। इसमें सन्देह नही कि व्यवसाय में भाग्य का बहुत हाथ रहता है : एक सुयोग्य व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है कि चीजें उसके प्रतिकूल

हो रही है। उसे व्यवसाय में हानि होने से उसकी ऋण उधार लेने की शक्ति घट जाती है। यदि वह आंशिक रूप से उधार ली हुई पूँजी से व्यवसाय चला रहा हो तो हो सकता है कि जिन लोगों ने उसे ऋण दिया हो वे फिर से उधार देना बन्द कर दें और इस प्रकार उसे दुर्भाग्य का शिकार होना पड़े। यदि वह अपनी खुद की पूँजी में काम करता होता[1] तो शायद इस प्रकार की विपत्ति अल्पकालीन विपत्ति ही सिद्ध हुई होती। उन्नति के लिए संघर्ष करने में हो सकता है कि उसे बड़ा संघर्षमय जीवन बिताना पड़ता और बड़ी चिन्ताओं और यहाँ तक कि दुर्भाग्यों से भरा जीवन व्यतीत करना पड़ता। किन्तु ऐसी स्थिति में वह दुर्भाग्य तथा सफलता दोनों में अपनी योग्यता को प्रदर्शित कर सकता है: मानव प्रकृति आशावादी होती है, और यह बात तो बड़ी प्रचलित है कि लोग उन लोगों को प्रचुर मात्रा में देने के इच्छुक होते हैं जिन्होंने वाणिज्यिक संकट का सामना करते हुए अपनी व्यावसायिक ख्याति पर आँच न लगने दी। इस प्रकार, उत्थान एवं पतन के बावजूद भी सुयोग्य व्यवसायी सामान्यतया यह देखता है कि दीर्घकाल में पूँजी योग्यता के अनुपात में बढ़ती है।

जिस व्यक्ति के पास कोई महान व्यावसायिक योग्यता नहीं होती, उसका व्यवसाय जितना ही बड़ा होगा उतनी ही शीघ्रता से उसकी पूंजी नष्ट हो जायेगी।

जैसा कि हमने देखा है, इस बीच जिस व्यक्ति के पास बहुत पूँजी होती है किन्तु योग्यता कम होती है वह इसे तेजी से खो बैठता है सम्भवतः वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जो एक छोटे व्यवसाय का सम्मान के साथ प्रबन्ध कर सकता था और इसे अधिक मजबूत बना सकता था: किन्तु यदि उसके पास बड़ी समस्याओं के हल के लिए मेधा नहीं है तो उसका व्यवसाय जितना ही बड़ा होगा उतनी ही तेजी से वह नष्ट हो जायेगा। क्योंकि प्रायः एक बड़े व्यवसाय को केवल ऐसे सौदों से बनाये रखा जा सकता है जिनमें साधारण जोखिमों के लिए छूट रखने के पश्चात् प्रतिशत लाभ बहुत थोड़ा हो। तेजी से बहुत बड़ी मात्रा में बिक्री द्वारा प्राप्त थोड़े से लाभ से योग्य व्यक्तियों को बहुत बड़ी आय मिल सकती है: उस बहुत बड़ी पूंजी के लिए क्षेत्र प्रदान करने वाले व्यवसायों में प्रतिस्पर्द्धा से साधारणतया आवर्त पर लाभ की दर बहुत कम हो जाती है। एक ग्रामीण व्यापारी अपने अधिक योग्य प्रतिद्वन्द्वी की अपेक्षा पाँच प्रतिशत कम लाभ कमा सकता है और तिस पर भी वह नष्ट होने से बच सकता है, किन्तु उन विशाल विनिर्माण एवं व्यापारिक व्यवसायों में जिनमें प्रतिफल शीघ्र ही मिलता है और जिनका नित्य का क्रम भी सरल होता है उनमें सम्पूर्ण बिक्री पर मिलने वाला कुल लाभ इतना थोड़ा होता है कि किसी व्यक्ति को अपने प्रतिद्वन्द्वियों से कुछ ही प्रतिशत लाभ कम

---

1 ठीक ऐसे समय में जब कि ऋण लेने की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है फिर से ऋण न मिल सकने के भय के कारण उसकी स्थिति उन लोगों की अपेक्षा जो केवल अपनी ही पूंजी का प्रयोग करते हैं, कमजोर होती है और उसे उधार ली गयी पूंजी पर दिये जाने वाले ब्याज से कहीं अधिक हानि उठानी पड़ती है: और जब हम वितरण के सिद्धान्त के उस भाग पर प्रकाश डालते हैं जिसका प्रबन्ध से होने वाली आय से सम्बन्ध है, तो हम पायेंगे कि अन्य कारणों के साथ इस कारण लाभ प्रबन्ध की निवल आय तथा ब्याज अर्थात् व्यावसायिक व्यक्तियों की योग्यताओं के फलस्वरूप प्राप्त आय से अधिक होते हैं।

होने पर हर एक बार एक बहुत बड़ी धनराशि की हानि उठानी पड़ती है। जब कि उन व्यवसायों में से जो कठिन होते हैं और जहाँ एक-सा कार्य नहीं किया जाता, और जिनमे प्रबन्ध अच्छा होने पर ऊँचे लाभ मिल सकते हैं उनमे साधारण योग्यता से कार्य चलाने वाले किसी भी व्यक्ति को बिलकुल भी लाभ प्राप्त नहीं हो सकते।

इन दो शक्तियों के कारण पूंजी का इसके अच्छे प्रयोग के लिए आवश्यक योग्यता के अनुसार समायोजन हो जाता है।

इन दो प्रकार की शक्तियों के कारण जिनमे से एक तो सुयोग्य व्यक्तियों के अधिकार मे पूँजी मे वृद्धि करती है और दूसरी अयोग्य व्यक्तियों के पास पायी जाने वाली पूँजी को नष्ट करती है, यह सिद्ध हो जाता है कि व्यावसायिक व्यक्तियों की योग्यता तथा उनके अधिकार मे होने वाले व्यवसायो के आकार मे घनिष्ठ सम्बन्ध है जो कि पहले पहल इतना सम्भव प्रतीत नहीं होता था। जब इस तथ्य के साथ-साथ हम उन सभी प्रणालियों को ध्यान मे रखते हैं जिनका कारण एक महान प्राकृतिक योग्यता वाला व्यक्ति किसी व्यक्तिगत फर्म या सार्वजनिक कम्पनी में काम करता हुआ उच्च स्थान पर पहुँच जाता है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इग्लैंड के सदृश देश मे जहाँ कही एक बडे पैमाने पर करने के लिए कार्य रहता है वहाँ इसके लिए आश्वयक योग्यता एवं पूँजी तेजी से सुलभ हो जाती है।

आगे जिस प्रकार औद्योगिक कुशलता एवं योग्यता, नित्य प्रति निर्णय करने की क्षमता, तत्परता, साधन, सतर्कता तथा उद्देश्य की स्थिरता पर, उन योग्यताओं पर जो किसी व्यापार मे विशेष रूप से लागू नही होती, किन्तु सभी व्यवसायों में थोड़े बहुत उपयोग मे लायी जाती है, अधिकाधिक आश्रित होती जा रही है। यही बात व्यावसायिक कुशलता के सम्बन्ध में भी सत्य है। वास्तव मे व्यावसायिक योग्यता मे छोटे स्तर की औद्योगिक कुशलता एव योग्यता की अपेक्षा में अविशिष्ट शक्तियाँ अधिक शामिल हैं: और व्यावसायिक योग्यता का स्तर जितना ऊँचा होता है इसको उतने ही विभिन्न प्रयोगों मे लगाया जा सकता है।

इंग्लैंड जैसे देश में पास में पूंजी होने के साथ ही साथ यदि व्यावसायिक योग्यता भी हो तो इसकी पर्याप्त रूप से निश्चित पूर्ति कीमत होती है।

इसके फलस्वरूप पूंजी पर अधिकार होने के साथ ही साथ व्यावसायिक योग्यता होने पर इसे एक ऐसे व्यापार मे जिसमे कि आवश्यकता से अधिक लोग लगे हैं एक दूसरे व्यापार मे जहाँ इसके प्रारम्भ के लिए अच्छा अवसर होता है, सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है: और चूंकि यह सरलतापूर्वक ऊर्ध्वाधर भी बढ़ती है, क्योंकि *अधिक योग्य व्यक्ति अपने काम मे उच्चतर पदों पर पहुँचते हैं, हमें अपने अध्ययन की* प्रारम्भिक अवस्था मे यह विश्वास करने के लिए अच्छे तर्क मिलते हैं कि आधुनिक इंग्लैंड मे प्रायः पूँजी पर अधिकार होने के साथ माँग के अनुसार व्यावसायिक योग्यता प्राप्त हो जाती है, और इस प्रकार इसकी पूर्ति कीमत पर्याप्त रूप से स्पष्ट होती है।

अन्त मे पूंजी के साथ-साथ व्यावसायिक योग्यता होने की पूर्ति कीमत तीन तत्वों मे बनी होती है। इसमे सबसे पहला तत्त्व पूँजी की पूर्ति कीमत है। व्यावसायिक योग्यता एव शक्ति की पूर्ति कीमत दूसरा तत्त्व है, और तीसरा त व उस संगठन की पूर्ति है जिसके फलस्वरूप उचित व्यावसायिक योग्यता तथा व्यवसाय को चलाने के लिए आवश्यक पूँजी मे सामंजस्य स्थापित किया जाता है। इन तीन तत्त्वों में सबसे पहले की कीमत को ब्याज, केवल दूसरे की कीमत को प्रबन्ध की निवल आय, दूसरे और तीसरे की मिश्रित कीमत को प्रबन्ध की सकल आय कहेंगे।

प्रबन्ध की निवल तथा सकल आय।

अध्याय 13

निष्कर्ष। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्तियों का सहसम्बन्ध

इस भाग के बाद के अध्यायों का इससे पहले के अध्यायों से सम्बन्ध।

§1. इस भाग के प्रारम्भ में हमने देखा कि श्रम तथा पूँजी की बढ़ी हुई मात्रा लगाने से किस प्रकार दीर्घकाल में, अन्य बातों के समान रहने पर, कच्चे उत्पादन का अतिरिक्त प्रतिफल घटने लगता है। इस भाग के शेष अंश में तथा विशेषकर अन्तिम चार अध्यायों में हमने इस विषय के दूसरे पक्ष पर विचार किया और यह देखा कि मनुष्य द्वारा किये जाने वाले काम की मात्रा में वृद्धि के साथ उसकी उत्पादक कार्य की शक्ति किस प्रकार बढ़ती है। सर्वप्रथम श्रम की पूर्ति को नियन्त्रित करने वाले कारणों पर विचार करते हुए हमने देखा कि किस प्रकार एक देश की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक ओज में वृद्धि होने से, अन्य बातों के समान रहने पर, बहुत से ओजस्वी बच्चों का सम्भवतया युवावस्था तक अधिक पालन-पोषण होगा। इसके पश्चात् धन की वृद्धि पर प्रकाश डालते हुए हमने यह देखा कि किस प्रकार धन में होने वाली हर वृद्धि से पहले की अपेक्षा अधिक वृद्धि करना अनेक प्रकार से सरल है। अन्त में हमने यह देखा कि धन तथा लोगों की संख्या एवं बुद्धि में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से किस प्रकार एक ऐसे अत्यधिक विकसित औद्योगिक संगठन की सुविधाएँ बढ़ायी जा सकती हैं, जिसके फलस्वरूप श्रम तथा पूँजी की सामूहिक कार्यकुशलता में बहुत अधिक वृद्धि होती है।

इस भाग के बाद के अध्यायों का सारांश।

प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि से मिलने वाली किफायतों पर अधिक ध्यानपूर्वक विचार करते समय हमने यह देखा कि इनका दो वर्गों में विभाजन किया जा सकता है—वे जो उद्योग के सामान्य विकास पर निर्भर है, और वे जो इसमें लगे हुए अलग-अलग व्यवसाय-गृहों के आय के साधन पर तथा उनके प्रबन्ध करने की योग्यता, अर्थात् आन्तरिक एवं बाह्य किफायतों पर निर्भर हैं।

सारांश।

हमने यह भी देखा कि किसी भी व्यवसाय-गृह में किस प्रकार आन्तरिक किफायतों में परिवर्तन हो सकते है। एक योग्य व्यक्ति सम्भवतः भाग्यवश अपने व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक जुट जाता है, वह कठिन परिश्रम करता है और मितव्ययिता से रहता है। उसकी अपनी पूँजी तेजी से बढ़ती है और पूँजी उधार लेने की साख इससे भी अधिक तीव्रतापूर्वक बढ़ती है। वह अपने चारों ओर असाधारण उत्साह तथा योग्यता वाले कर्मचारियों को इकट्ठा कर लेता है। जैसे-जैसे उसका व्यवसाय बढ़ता है वे भी उसके साथ प्रगति करते जाते है। वे उस पर विश्वास करते हैं और वह उन पर विश्वास करता है। उनमें से प्रत्येक ठीक उसी काम में अपनी शक्ति लगाता है जिसके लिए वह विशेष रूप से योग्य है, और इसके फलस्वरूप साधारण कार्य में किसी बड़ी योग्यता का अपव्यय नहीं होता, और अकुशल व्यक्तियों को कोई कठिन काम नहीं सौंपा जाता। उसके व्यवसाय की कुशलता की इस प्रकार शनैः शनैः बढ़ती हुई किफायत के अनुरूप

प्रगति से विशिष्ट प्रकार की मशीनों तथा सभी प्रकार के संयन्त्रों में इसी प्रकार की किफायतें होने लगती है। हर सुधरी हुई प्रक्रिया को शीघ्र ही अपना लिया जाता है और इसके आधार पर आगे भी सुधार किये जाते है। सफलता से उसे साख प्राप्त होती है और साख से सफलता मिलती है। साख एवं सफलता से उसे पुराने ग्राहकों को बनाये रखने में तथा नये ग्राहक बनाने मे सहायता मिलती है। व्यापार मे वृद्धि होने के फलस्वरूप उसे क्रय करने मे बहुत लाभ होता है। उसकी वस्तुएँ एक दूसरे का विज्ञापन करती हैं और इस प्रकार उनके प्रकाशन की कठिनाई को कम करती है। उसके व्यवसाय की मात्रा मे वृद्धि से उसे अपने प्रतिद्वन्द्वियो से तेजी से अधिक लाभ प्राप्त होते है, और वह कम कीमत पर वस्तुएँ बेच सकता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक उसकी शक्ति एवं उसका उद्यम, उसकी अन्वेषण तथा व्यवस्था करने की शक्ति पूर्णरूप से बनी रहती है, और व्यावसायिक जोखिम से उसे अत्यधिक क्षति नही होती। यदि वह व्यक्ति सौ वर्ष तक उस उद्योग मे लगा रहा तो वह और उसकी भाति कुछ अन्य लोग उद्योग की उस सम्पूर्ण शाखा को, जिसमे कि वह लगा हैं, आपस मे बाँट लेंगे। उत्पादन के बड़े पैमाने पर चलने के कारण उसे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा अधिक किफायते होंगी और यदि वे पूरी क्षमता से आपस मे प्रतिस्पर्द्धा करे तो इन किफायतो के मुख्य लाभ आम लोगों को होंगे, और उस वस्तु की कीमत बहुत गिर जायेगी।

किन्तु यहाँ हमे जगल के छोटे वृक्षों से जो कि अपने पुराने प्रतिद्वन्द्वियों की शक्तिहीन करने वाली छाया से संघर्ष करते हुए ऊपर बढते हैं, सबक लेना चाहिए। बहुत से वृक्ष ऊपर उठने से पहले ही दब जाते हैं और केवल थोड़े ही ऊपर तक पहुँच पाते है। उन केवल थोड़े से वृक्षो को जो प्रतिवर्ष अधिक मजबूत होते जाते हैं, अपनी ऊँचाई मे वृद्धि होने के साथ प्रकाश तथा वायु अधिक मिलती है और अन्त मे वे भी अपने समीप के वृक्षो के ऊपर मँडराने लगते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमेशा ही बढते जायेंगे और बढने के साथ-साथ निरन्तर अधिक मजबूत होते जायेगे। किन्तु वे हमेशा ही नही बढेंगे। एक वृक्ष दूसरे की अपेक्षा अधिक समय तक पूर्ण शक्ति बनाये रखेगा और अधिक फैलेगा। किन्तु कभी न कभी आयु का उन पर प्रभाव पड़ता ही है। यद्यपि अधिक लम्बे वृक्षो को अपने प्रतिद्वन्द्वियो की अपेक्षा प्रकाश तथा वायु अधिक प्राप्त होती है, किन्तु उनकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है, और वे एक के बाद एक अन्य वृक्ष को स्थान दे देते है जो भौतिक शक्ति के कम होने पर भी तरुण अवस्था के तेज से भरे रहते हैं।

वृक्षों के बढने के सम्बन्ध मे जो बात सत्य है वही प्राय ऐसी विशाल मिश्रित पूँजी कम्पनियों के महान आधुनिक विकास के पूर्व के व्यवसायों के सम्बन्ध में भी सत्य है जिनकी प्रगति बहुधा अवरुद्ध हो जाती है किन्तु सहज मे ही नष्ट नही होती। अब यह नियम सार्वभौमिक नही रहा, किन्तु अभी भी बहुत से उद्योगो एवं व्यापारों मे लागू होता है। अभी भी प्रकृति निजी व्यवसाय मे मूल संस्थापकों के जीवन काल को सीमित कर, तथा उनके जीवन के उस भाग को जिनमे उनकी प्रतिभाएँ पूर्ण शक्ति को बनाये रखती हैं और भी अधिक संकुचित कर दबाव डालती है। इस प्रकार कुछ समय बाद

व्यवसाय का प्रबन्ध ऐसे व्यक्तियों के हाथों में आ जाता है जिनमें चाहे व्यवसाय की समृद्धि के विषय में अपने पूर्ववर्ती लोगों से किसी प्रकार कम सक्रिय रुचि नहीं होती किन्तु जो अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली तथा कम रचनात्मक मेधावाले होते हैं। यदि यह व्यवसाय एक मिश्रित पूंजी कम्पनी में परिवर्तित हो जाय तो इसे श्रम विभाजन, विशेष प्रकार की कुशलता एवं मशीनों से प्राप्त लाभ मिलते रहेंगे : इसकी पूंजी में और आगे वृद्धि होने से ये लाभ भी अधिक बढ़ सकते हैं, और परिस्थितियों के अनुकूल होने पर इसे उत्पादन के कार्य में एक स्थायी एवं प्रमुख स्थान प्राप्त हो सकता है। किन्तु इसकी लोचकता एवं उत्तरोत्तर वृद्धि करने की शक्ति में सम्भवतया इतनी कमी हो जाती है कि अपेक्षाकृत कम प्रौढ़ तथा अधिक छोटे प्रतिद्वन्द्वियों से प्रतिस्पर्द्धा करने में इसे ही सभी लाभ नहीं मिलते।

इस प्रकार जब हम धन तथा जनसंख्या की वृद्धि से उत्पादन की किफायतों पर पड़ने वाले परिणामों पर विचार करते हैं तो हमारे निष्कर्षों का सामान्य रूप इन तथ्यों से बहुत अधिक प्रभावित नहीं होता कि इनमें से अनेक किफायतें प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन में लगे व्यक्तिगत अधिष्ठानों के आकार पर निर्भर हैं, तथा यह कि लगभग प्रत्येक धन्धे में बड़े व्यवसायों में निरन्तर उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, किसी एक समय कुछ फर्म आरोही तथा अन्य समय अवरोही अवस्था में होती है। क्योंकि औसत समृद्धि के समय किसी एक दिशा में होने वाले पतन से दूसरी दिशा में होने वाली प्रगति निश्चय ही कहीं अधिक होती है।

इसी बीच कुल उत्पत्ति में वृद्धि से वास्तव में उन किफायतों में वृद्धि होती है जो कि व्यक्तिगत व्यापार गृहों के आकार पर प्रत्यक्ष रूप में निर्भर नहीं होती। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण किफायतें उद्योग की सहसम्बन्धित शाखाओं की वृद्धि से उत्पन्न होती हैं जो सम्भवतः एक ही क्षेत्र में केन्द्रित होने के कारण एक दूसरे की सहायता करती हैं, किन्तु वाष्प यातायात, तार तथा मुद्रणालय द्वारा प्रदान की गयी संचार की आधुनिक सुविधाओं का लाभ उठाती हैं। इस प्रकार के स्रोतों से उत्पन्न होने वाली किफायतें जो उत्पादन की किसी भी शाखा को प्राप्त हो सकती हैं, पूर्णतया इस उद्योग के ही विकास पर निर्भर नहीं रहती : किन्तु फिर भी इसके विकास के साथ इनमें निश्चित रूप में तीव्रता से तथा अविरत रूप से वृद्धि होती है और इसका पतन होने पर इनमें भी सभी दशाओं में न भी हो, तो कुछ दशाओं में अवश्य ही कमी हो जायेगी।

एक प्रतिनिधि फर्म में उत्पादन की लागत का पूर्वानुमान।

§2. इन परिणामों का किसी वस्तु के सम्भरण मूल्य को नियंत्रित करने वाले कारणों के विवेचन के प्रसंग में बहुत महत्व है। हमें किसी वस्तु की किसी निश्चित मात्रा के उत्पादन की असामान्य लागत का सतर्कतापूर्वक विश्लेषण करना होगा और इस उद्देश्य के लिए हमें किसी प्रतिनिधि उत्पादक द्वारा उत्पादन की उस मात्रा पर किये जाने वाले खर्चों का अध्ययन करना होगा। हम न तो कठिनाई से अपना व्यवसाय चलाने वाले किसी ऐसे नये उत्पादक को प्रतिनिधि उत्पादक मानेंगे जिसे अनेक असुविधाएँ झेलनी पड़ती हैं और कुछ समय तक थोड़े से अथवा बिना किसी लाभ के ही काम करना पड़ता है, किन्तु जिसे यह संतोष है कि वह अपने सम्बन्ध स्थापित कर रहा है तथा एक सफल व्यवसाय का निर्माण करने के लिए अग्रसर हो रहा है, और न दूसरी

और हम एक ऐसी फर्म को प्रतिनिधि मानना चाहेंगे जिसने बहुत लम्बे समय से प्राप्त क्षमता तथा अच्छी दशा के कारण एक विशाल व्यवसाय स्थापित कर लिया हो, और जिसका बहुत बड़ा सुव्यवस्थित वर्कशाप हो जिससे इसका प्राय: सभी प्रतिद्वन्द्वियों में उच्च स्थान बना रहता है। किन्तु हमारी प्रतिनिधि फर्म ऐसी होनी चाहिए जिसने पर्याप्त रूप से लम्बा जीवनकाल बिताया हो, और जिसे पर्याप्त सफलता मिली हो, जिसकी प्रसामान्य योग्यता से व्यवस्था की जाती हो और जिसे वे आन्तरिक एवं बाह्य प्रसामान्य किफायतें प्राप्त हों जिनका कुल उत्पादन की मात्रा से सम्बन्ध हो। इस सम्बन्ध में उत्पादन की गयी वस्तुओं की श्रेणी, विपणन की दशाओं तथा सामान्य आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखा जाता है।

इस प्रकार प्रतिनिधि फर्म एक अर्थ में औसत फर्म है। किन्तु किसी व्यवसाय के सम्बन्ध में 'औसत' शब्द के अनेक अर्थ लगाये जा सकते हैं। एक प्रतिनिधि फर्म वह विशेष प्रकार की औसत फर्म है जिसमें हम यह पता लगाना चाहते हैं कि एक बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की आन्तरिक एवं बाह्य किफायतें कहाँ तक उस उद्योग तथा देश में भी मिलने लगी हैं। हम कोई भी एक या दो फर्मों को देख कर यह नहीं बतला सकते; किन्तु एक विस्तृत सर्वेक्षण के पश्चात् निजी अथवा संयुक्त-पूँजी प्रबन्ध वाली किसी एक, अथवा यह और भी अच्छा होगा कि, एक से अधिक फर्म छाँटकर बहुत अच्छी तरह पता लगा सकते हैं कि सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कौन-सी फर्म इस निश्चित औसत का प्रतिनिधित्व करती है।

इस भाग के सामान्य तर्क से यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु के कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होने से सामान्यता इस प्रतिनिधि फर्म के आकार में वृद्धि होगी, और इसलिए इसे प्राप्त होने वाली आन्तरिक किफायतें भी बढ़ेंगी। इससे इस फर्म को मिल सकने वाली सभी बाह्य किफायतों में भी वृद्धि होगी और यह श्रम और त्याग की पहले की अपेक्षा अनुपात में कम लागत पर उत्पादन कर सकेगी।

'क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति समता के नियम।'

अन्य शब्दों में, हम स्थूल रूप में यह कह सकते हैं कि जहाँ प्रकृति द्वारा उत्पादन में दिये जाने वाले योगदान में ह्रास की प्रवृत्ति होती है वहाँ मनुष्य द्वारा दिये जाने वाले योगदान से उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति मिलती है। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि के नियम की इस प्रकार शब्द रचना की जा सकती है:— श्रम एवं पूँजी की वृद्धि से सामान्यता व्यवस्था में सुधार होता है जिससे श्रम एवं पूँजी की कार्य-कुशलता बढ़ती है।

अत: जो उद्योग कच्चा माल उत्पन्न करने में नहीं लगे हैं उनमें श्रम एवं पूँजी की वृद्धि से मिलने वाले प्रतिफल में सामान्यता अनुपात से अधिक वृद्धि होती है, और इस सुधरे हुए प्रबन्ध के कारण प्रकृति द्वारा कच्चे माल की अधिक मात्रा उत्पन्न करने में किया गया अवरोध घटने लगता है या यहाँ तक कि समाप्त हो जाता है। यदि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि एवं उत्पत्ति ह्रास के नियमों में संतुलन हो जाय तो यह क्रमागत उत्पत्ति समता नियम कहलाता है, और श्रम एवं त्याग के अनुपात से ठीक इतनी ही मात्रा में वृद्धि कर उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त की जा सकती है।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की दोनों प्रवृत्तियाँ निरन्तर एक दूसरे के विरुद्ध दबाव डालती हैं। दृष्टान्त के लिए एक पुराने देश में जो कि स्वतंत्र

तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्तियों की एक दूसरे की ओर खींचतान।

रूप में व्यक्त नहीं कर सकता, गेहूँ तथा ऊन के उत्पादन में बाद वाली प्रवृत्ति का लगभग पूर्ण आधिपत्य रहता है। गेहूँ को आटे के रूप में अथवा ऊन को कम्बलों के रूप में परिवर्तित करने से कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि से कुछ नयी किफायतें मिलती हैं किन्तु अधिक नहीं, क्योंकि आटा पीसने तथा कम्बल बनाने के धन्धे पहले से ही इतने बड़े पैमाने पर चल रहे हैं कि वे जिन किन्हीं नयी किफायतों को प्राप्त करते हैं वे सम्भवतया सुधरे हुए प्रबन्ध की अपेक्षा नये आविष्कारों के प्रतिफल हैं। किसी ऐसे देश में जहाँ कम्बल बनाने का धन्धा थोड़ा ही विकसित हो, इन बाद वाली किफायतों का अधिक महत्व है और तब यह हो सकता है कि कम्बलों के कुल उत्पादन में वृद्धि से उत्पादन की आनुपातिक कठिनाई ठीक उतनी ही कम हो जाय जितनी कि कच्चे माल को बढ़ाने से बढ़ जाती है। उस दशा में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास तथा क्रमागत वृद्धि के नियमों का प्रभाव एक दूसरे के प्रभाव को ठीक निष्फल कर देता है और कम्बलों के उत्पादन में क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होगा। किन्तु उत्पादन की अधिक सूक्ष्म शाखाओं में, जहाँ कच्चे माल की लागत बहुत थोड़ी होती है, तथा बहुत से आधुनिक यातायात उद्योगों में बिना किसी बाधा के क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।[1]

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि मात्राओं के सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि एक ओर तो प्रयत्न एवं त्याग की मात्रा तथा दूसरी ओर उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। मात्राओं को ठीक प्रकार से नहीं आँका जा सकता है, क्योंकि उत्पादन की बदलती हुई प्रणालियों के कारण नयी मशीनों तथा नये प्रकार के कुशल एवं अकुशल श्रम की आवश्यकता होती है, और इनको अलग-अलग अनुपात में लगाना पड़ता है। किन्तु एक व्यापक दृष्टिकोण से हम सम्भवतः मोटे शब्दों में यह कह सकते हैं कि उद्योग में श्रम एवं पूंजी की किसी मात्रा से होने वाला उत्पादन पिछले बीस वर्षों में एक चौथाई या एक तिहाई बढ़ गया है। परिव्यय तथा उत्पादन को द्रव्य के रूप में मापना बड़ा आकर्षक लगता है किन्तु इस प्रकार का मार्ग अपनाना घातक है : क्योंकि द्राव्यिक परिव्यय की द्राव्यिक प्रतिफल से तुलना करने से सम्भवतः पूंजी से प्राप्त होने वाले लाभ की दर का अनुमान लग सकता है।[2]

---

1 1902 के Quarterly Journal of Economics में "उत्पादक शक्तियों में परिवर्तन" नामक लेख में प्रोफेसर बुलक (Bullock) ने यह सुझाव दिया है कि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की "व्यवस्था की किफायत" शब्द से प्रतिस्थापना की जानी चाहिए। वह यह स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं कि जिन शक्तियों के कारण क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है उनका स्तर उन शक्तियों के बराबर नहीं है जिनके कारण क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है : और निःसन्देह ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं जब वस्तुतः परिणामों की अपेक्षा कारणों का वर्णन कर और गहरी खेती के प्रति 'प्रकृति की बेलोच' प्रतिक्रिया से 'व्यवस्था की किफायत' का विपर्यय दिखाकर इस अन्तर पर जोर देना अधिक अच्छा है।

2 ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है कि जिन उद्योगों में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि होती है उनमें लाभ भी बढ़ता जाता है। निःसंदेह एक शक्तिशाली फर्म में जो अपने

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि कुछ दशाओं में अनिष्टकर है, किन्तु अन्य दशाओं में नहीं।

§3. अब हम अस्थायी रूप से औद्योगिक विस्तार के सामाजिक हित-वृद्धि से सम्बन्धों के सारांश में आवृत्ति कर सकते हैं। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से घने बसे हुए शहरों में बहुधा लोगों की आदतें अस्वास्थ्यकर हो जाती है तथा शरीर शक्तिहीन होता जाता हैं। कभी-कभी इसका प्रारम्भ इतना बुरा हुआ है कि इसमें लोगों के भौतिक साधनो की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई है, तथा खराब उपकरणों द्वारा भूमि से अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न किया गया है। इस कारण कच्चे माल के सम्बन्ध में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम क्रूर रूप मे लागू हुआ है और इस क्रूरता मे किसी प्रकार की कमी नही हुई है। इस प्रकार निर्धनता का जीवन प्रारम्भ करने के बाद जनसंख्या मे अधिक वृद्धि होने से आचरण निरन्तर बिगड़ता जाता है और इससे वह देश बहुत अधिक व्यवस्थित उद्योग के विकास के लिए अयोग्य हो जाता है।

इनसे बहुत गम्भीर संकट उत्पन्न हो सकते है: किन्तु फिर भी यह सत्य है कि निश्चित मात्रा मे औसत व्यक्तिगत शक्ति तथा क्षमता वाले देश की सामूहिक कार्य कुशलता उस देश मे जनसख्या की वृद्धि के अनुपात से अधिक बढ़ सकती है। यदि वे आसान शर्तों मे भोजन तथा अन्य कच्चे उत्पादन का आयात कर कुछ समय तक क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के दबाव से बचे रहें, यदि उनका धन महायुद्धों मे समाप्त न हो, और कम से कम उतनी तीव्रता से बढ़े जितनी तीव्रता से जनसख्या मे वृद्धि हो, तथा यदि वे जीवन की ऐसी आदतों को छोड दें जो उन्हे दुर्बल बनायेंगी, तो उनकी संख्या मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि से कुछ समय तक उनकी भौतिक वस्तुओ को प्राप्त करने की शक्ति मे अनुपात से अधिक वृद्धि होगी। क्योंकि इससे वे विशिष्ट प्रकार की कुशलता तथा विशिष्ट प्रकार की मशीनरी, स्थानिक उद्योगो तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की अनेक विभिन्न प्रकार की किफायतें प्राप्त कर सकते है: इसके फलस्वरूप उन्हे सभी प्रकार के संचार की बढ़ी हुयी सुविधाएं मिल सकती है, जबकि उनके समीप मे ही होने से उनके बीच के प्रत्येक प्रकार के यातायात मे लगने वाले श्रम तथा खर्च मे कमी हो जाती है, और उन्हे सामाजिक मनोरंजन तथा संस्कृति से विभिन्न रूपों मे मिलने वाले आराम तथा विलास की नयी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। नि:सन्देह एकान्त तथा शान्ति और यहाँ तक कि शुद्ध वायु के मिलने मे होने वाली कठिनाइयो के लिए, जो कि निरन्तर बढ़ रही है, अवश्य कुछ कटौती करनी चाहिए: किन्तु अधिकांश दशाओं में कुछ न कुछ अच्छाई शेष रह जाती है।[1]

कारोबार के पैमाने को बढ़ाती है और उसमें विशेषरूप से मिलने वाली महत्वपूर्ण (आन्तरिक) किफायतें प्राप्त करती है उसमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि होगी और लाभ की दर बढ़ती जायेगी, क्योंकि इसके बढ़ते हुए उत्पादन से इसके उत्पादन की कीमत में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होगा। किन्तु लाभ कम होते जायेंगे जैसा कि हम आगे चलकर केवल बुनायी के उद्योगों में देखेंगे (भाग 6, अध्याय 8, अनुभाग 1–2), क्योंकि उनकी विशाल मात्रा के कारण उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था इतनी अधिक बढ़ गयी है कि उसमें नित्यप्रति की बातों का अधिक प्रभुत्व रहता है।

1 मिल नाम के अंग्रेज ने सुन्दर दृश्य में अकेले ही घूमने के आनन्दों का वर्णन

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जनसंख्या के बढ़ते हुए घनत्व के कारण सामान्यता नये सामाजिक आनन्द प्राप्त किये जा सकते है, हम इस कथन को वस्तुतः अधिक व्यापक रूप दे सकते हैं और यह कह सकते है : जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ आनन्द के भौतिक साधनों तथा उत्पादन में सहायता पहुँचाने वाली चीजों में समान वृद्धि होने से विभिन्न प्रकार के आनन्दों की कुल प्राप्ति में अनुपात से अधिक वृद्धि का होना सम्भव है। इसमें सबसे पहली शर्त यह है कि कच्चे माल की पर्याप्त मात्रा बिना अधिक कठिनाई के प्राप्त की जा सकती है, और दूसरी शर्त यह है कि वहाँ इतनी अधिक भीड़ नही है जिसके कारण स्वच्छ वायु एवं प्रकाश तथा अच्छे व उल्लासपूर्ण मनोरंजन के अभाव मे नवयुवकों की शारीरिक एवं नैतिक शक्ति में कोई क्षति पहुँचे।

जनसंख्या में तथा इसके साथ साथ धन में होने वाली वृद्धि के प्रभावों को सतर्कतापूर्वक पृथक् करना चाहिए।

इस समय सभ्य देशों के संचित धन में जनसंख्या से अधिक तेजी से वृद्धि हो रही है : और यद्यपि यह सत्य हो सकता है कि जनसंख्या मे इतनी तीव्रता से वृद्धि न होने पर प्रतिव्यक्ति धन मे कुछ अधिक तेजी से वृद्धि होगी तिस पर भी वास्तव में जनसंख्या की वृद्धि के साथ उत्पादन मे सहायता पहुँचाने वाली भौतिक वस्तुओं मे सम्भवतया अनुपात से अधिक वृद्धि होती रहेगी : इस समय इंग्लैंड मे विदेशों से सरलतापूर्वक प्रचुर मात्रा मे कच्चा माल मँगाये जा सकने के कारण जनसंख्या मे वृद्धि होने से प्रकाश, स्वच्छ वायु, इत्यादि की आवश्यकता के अतिरिक्त मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के साधनों में अनुपात से अधिक वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि का अधिकांश भाग औद्योगिक कार्य कुशलता मे वृद्धि के कारण न होकर धन की वृद्धि के कारण है जो इसके साथ ही साथ बढ़ी है : और अतएव इससे उन लोगों को लाभ होना आवश्यक नही है जिनका उन धन मे कोई भी हिस्सा नही है। इंग्लैंड को विदेशों से मिलने वाले कच्चे माल की मात्रा भी किसी भी समय अन्य देशों के व्यापारिक नियत्रणों मे परिवर्तन होने के कारण रुक सकती है, और एक महायुद्ध छिड़ जाने के कारण बिलकुल ही समाप्त हो सकती है। इस अन्तिम जोखिम से देश को पर्याप्त रूप से सुरक्षित रखने के लिए नौसेना तथा सेना पर जो व्यय करना आवश्यक हो जायेगा उससे भी क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के प्रभाव के कारण इस देश को मिलने वाले लाभो मे बड़ी कटौती कर दी जायेगी।

करते समय अस्वाभाविक उत्साह दिखलाया (Political Economy, भाग IV अध्याय XI, अनुभाग 2) : और बहुत से अमेरिकी लेखक मानव जीवन की उस बढ़ती हुई धनाढ्यता का बड़ा उत्साहपूर्वक वर्णन करते हैं जब जंगली आदमी अपने चारों ओर पड़ोसियों को बसते हुए देखता है, जब भीतरी वन-प्रदेश का बसाव गाँव के रूप में, और गाँव एक बड़े शहर के रूप में विकसित होता है। (दृष्टान्त के रूप में कैरे की Principles of Social Science तथा हेनरी जार्ज की Progress and Poverty को देखिए)।

भाग 5

माँग, सम्भरण तथा मूल्य के सामान्य सम्बन्ध

अध्याय I

परिचायक—बाजार पर विचार

प्रतिकूल शक्तियों के संतुलन के जीव-विज्ञान तथा यंत्र-विज्ञान सम्बन्धी विचार।

§1 एक व्यावसायिक फर्म प्रारम्भ में बढ़ती है और बड़ी शक्ति प्राप्त कर लेती है तत्पश्चात् सम्भवत: उसकी प्रगति रुक जाती है और उसका पतन हो जाता है। परिवर्तन-बिन्दु पर उत्थान तथा पतन की शक्तियों में सन्तुलन अथवा साम्य रहता है। लोगों के अथवा उद्योग एवं व्यापार की किसी प्रणाली के विकास तथा पतन की शक्तियों में इस प्रकार के संतुलन का वर्णन मुख्यतया भाग 4 के अन्त में किया गया है। जैसे-जैसे हम अपने कार्य की श्रेष्ठतर अवस्थाओं तक पहुँचते जाते हैं हमें सोचने की अधिकाधिक आवश्यकता होगी कि आर्थिक शक्तियाँ उन दशाओं के अनुरूप हैं जिनसे एक युवा व्यक्ति यौवनावस्था प्राप्त करने की स्थिति तक अधिक शक्तिशाली होता जाता है, किन्तु उसके पश्चात् वह धीरे-धीरे हठी और अकर्मण्य होता जाता है, और अन्त में किसी अन्य अधिक ओजस्वी व्यक्ति के लिए स्थान रिक्त करने के लिए उसका देहावसान हो जाता है। किन्तु इस विकसित अध्ययन के लिए मार्ग तैयार करने की दृष्टि से हम पहले उन शक्तियों के सरल सन्तुलन पर दृष्टि डालना चाहते हैं जो एक लोचदार रस्सी पर लटकते पत्थर के अथवा एक तसले में एक दूसरे के सहारे पड़े हुए कई गेंदों के यान्त्रिकीय सतुलन के अनुरूप है।

इस भाग का विषय-क्षेत्र।

अब हमें माँग और सम्भरण के सामान्य सम्बन्धों पर और विशेषकर उन सम्बन्धों पर विचार करना है जिनका इनमें परस्पर "सन्तुलन" रखने वाली कीमत में होने वाले समायोजन से सम्बन्ध है। "सन्तुलन" शब्द का सामान्यतया प्रयोग किया जाता है और इस समय किसी विशेष व्यवस्था के बिना इसका प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु इससे सम्बन्धित अनेक कठिनाइयाँ हैं जिनका धीरे-धीरे ही निवारण किया जा सकता है: और वस्तुत. इन पर इस भाग के एक बड़े अंश में विचार किया जायेगा।

कभी आर्थिक समस्याओं के एक वर्ग से और कभी दूसरे वर्ग से उदाहरण लिये जायेंगे, किन्तु तर्क के मुख्य क्रम को उन पूर्वधारणाओं से अलग रखा जायेगा जो किसी एक वर्ग से विशेष रूप में सम्बन्धित हैं।

इस प्रकार इस भाग का विषय न तो वर्णनात्मक है और न इसका वास्तविक समस्याओं से रचनात्मक सम्बन्ध है। किन्तु यह मूल्य से सम्बन्धित विषयों के हमारे ज्ञान की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि की रचना करता है, और इस प्रकार यह अगले भाग में प्रारम्भ होने वाले रचनात्मक अध्ययन के लिए मार्ग तैयार करता है। इसका

ध्येय ज्ञान प्राप्त करना उतना नहीं है जितना कि दो प्रतिकूल दिशाओं में कार्य करने वाली शक्तियों के सम्बन्ध मे, अर्थात् उन दो शक्तियों के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करना तथा उसे सुसम्बद्ध करना है जिनमे से एक व्यक्ति को आर्थिक प्रयत्न एवं त्याग करने को प्रेरित करती है, और दूसरी उसे इस दिशा की ओर प्रवृत्त होने से रोकती है।

हम बाजारों के एक छोटे और अस्थायी विवरण से अध्ययन प्रारम्भ करते है, क्योंकि इस भाग मे तथा इसके अगले भागों मे विचारों की यथार्थता के लिए ऐसा करना आवश्यक है। किन्तु बाजारों के संगठन का द्रव्य, साख तथा वैदेशिक व्यापार के साथ, कार्य एवं कारण, दोनों ही रूपों मे गहरा सम्बन्ध है, अतः इसका पूर्ण अध्ययन बाद के खण्ड के लिए स्थगित कर देते है, और वहाँ पर इस पर व्यापारिक एवं औद्योगिक उतार-चढ़ाव तथा उत्पादकों एवं व्यापारियों, मालिकों एवं कर्मचारियों के सघों के सम्बन्ध में विचार किया जायेगा।

यहाँ पर बाजारों का केवल अस्थायी वर्णन किया गया है।

§2. जब माँग और सम्भरण के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख किया जाता है तो जिन बाजारों की ओर वे संकेत करते है वे एक ही होने चाहिए। जैसे कुर्नो कहते है, "**बाजार** शब्द से अर्थशास्त्रियों का अभिप्राय किसी विशेष बाजार-स्थान से नहीं है जहाँ पर वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है, वरन् उस समस्त क्षेत्र से है जहाँ पर क्रेताओं तथा विक्रेताओं में परस्पर ऐसी स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है जिससे किसी एक वस्तु की कीमतें सुगमता एवं शीघ्रता से समान ही रहती हैं"।[1] अथवा आगे जैसे जवोंस (Jevons) कहते है, "प्रारम्भ मे बाजार एक शहर मे वह सार्वजनिक स्थान था जहाँ पर भोजन सामग्री तथा अन्य वस्तुएँ विक्रय के निमित्त प्रदर्शित की जाती थीं, किन्तु अब इस शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया जाता है जिसमे इसका अभिप्राय व्यक्तियों के उस समुदाय से होता है जिनके परस्पर निकट वाणिज्यिक सम्बन्ध है तथा जो किसी वस्तु के विस्तृत सौदे करते हैं। एक बड़े शहर मे उतने ही बाजार हो सकते हैं जितनी वहाँ पर महत्वपूर्ण व्यापारिक शाखाएँ है, और इन बाजारों का स्थानीकरण हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है। किसी बाजार का केन्द्रीय स्थान सार्वजनिक विनिमय स्थल मण्डी या नीलाम-घर है, जहाँ पर व्यापारी लोग मिलते हैं अथवा व्यापारिक सौदे करते है। लन्दन मे 'शेयर बाजार', 'अनाज बाजार', 'कोयला बाजार', 'चीनी बाजार' तथा अन्य बहुत से बाजार अलग-अलग स्थित है। मैनचेस्टर मे 'कपास बाजार', 'कपास छीजन बाजार' तथा अन्य अनेक बाजार स्थित है। किन्तु स्थान का यह विभेद आवश्यक नहीं है। किसी वस्तु के व्यापारी सारे शहर मे अथवा देश के समस्त क्षेत्र मे फैल सकते हैं और उस समस्त क्षेत्र को एक बाजार का रूप दे सकते है यदि उनके बीच मेलों, बैठकों, प्रकाशित मूल्य-सूचियों, डाकघरों अथवा अन्य माध्यमों से निकटतम सम्पर्क रहता है"।[2]

बाजार की परिभाषा

---

1 Recherches Sur less Princ pes Mathematiques de la Theorie des R chesses के अध्याय IV तथा इस पुस्तक के भाग 3, अध्याय 4, अनुभाग 7 देखिए।

2 Theory of Political Economy, अध्याय IV.

इस प्रकार एक बाजार जितना अधिक प्रतियोगितापूर्ण होता है, उतना ही उस बाजार के सभी भागों में एक समय पर एक वस्तु की एक ही कीमत होने की प्रवृत्ति दृढ़तर होती है। किन्तु यदि बाजार का क्षेत्र बड़ा हो तो विभिन्न क्रेताओं तक वस्तु के पहुँचने मे किये गये व्यय को भी ध्यान में रखना होगा। ऐसी स्थिति में प्रत्येक क्रेता उस वस्तु के बाजार-भाव के अतिरिक्त उसके परिवहन व्यय के कारण एक और विशेष भार वहन करता है।[1]

बाजार की सीमाएँ।

§3. आर्थिक तर्कों को कार्यरूप में परिणित करने समय यह मालूम करना बहुधा कठिन होता है कि किसी एक स्थान पर माँग और सम्भरण की स्थिति दूसरे स्थान के माँग और सम्भरण की स्थितियो से कितनी प्रभावित होती है। यह स्पष्ट है कि तार, मुद्रणालय तथा वाष्प-यातायात (steam traffic) में इन प्रभावों को दूर तक फैलाने तथा अधिक शक्तिशाली बनाने की सामान्य प्रवृत्ति पायी जाती है। अनेक प्रकार के शेयर बाजार ऋणपत्रों अधिक मूल्यवान धातुओ, तथा अपेक्षाकृत कम सीमा तक ऊन एवं कपास और यहाँ तक कि गेहूँ के लिए भी समस्त पाश्चात्य जगत को एक प्रकार से एक ही बाजार माना जा सकता है। इसके लिए परिवहन व्यय, जिसमे उन सीमा-शुल्क केन्द्रों द्वारा लगाये गये कर भी सम्मिलित किये जा सकते है जहाँ से होकर माल को जाना पड़ता है, के लिए उचित छूट रखनी होगी, क्योंकि इन सभी दशाओं में सीमा-शुल्क सहित परिवहन के खर्चे इतने अधिक नहीं होते कि ये एक ही प्रकार की वस्तुओं के लिए पाश्चात्य जगत के सभी भागो के क्रेताओ को आपस में प्रतियोगिता करने से रोक सकें।

बहुत विस्तृत बाजारो के उदाहरण।

किसी विशेष वस्तु के बाजार को विस्तृत अथवा सीमित करने के अनेक विशेष कारण है: किन्तु जिन वस्तुओ का बाजार अधिक विस्तृत होता है लगभग उनमे से सभी की माँग विश्वव्यापी होती है और उनका वर्णन भी सुगमता एवं स्पष्टता के साथ किया जा सकता है।

किसी वस्तु के बाजार की सीमा को प्रभावित करने वाली सामान्य शर्तें।

इस प्रकार उदाहरण के रूप मे कपास, गेहूँ तथा लोहा उन आवश्यकताओ की पूर्ति करते है जिन्हे तुरन्त सन्तुष्ट करना पड़ता है तथा जो लगभग विश्वव्यापी हैं। उनका सरलतापूर्वक वर्णन किया जा सकता है जिससे लोग न केवल एक दूसरे से दूर रह कर अपितु उन वस्तुओ से भी दूर रह कर उनका क्रय-विक्रय कर सकते है। आवश्यकता होने पर उनमे से नमूने लिये जा सकते हैं जो उनकी पूरी मात्रा का सही प्रतिनिधित्व करते हैं और यहाँ तक कि किसी स्वतन्त्र प्राधिकारी द्वारा उनको "वर्गीकृत" किया जा सकता है, जैसा कि अनाज के सम्बन्ध मे व्यावहारिक रूप मे अमेरिका मे किया जाता है, ताकि क्रेता को यह विश्वास हो जाये कि वह जिस वस्तु को खरीद रहा

---

1 इस प्रकार प्रायः यह देखा जाता है कि एक बन्दरगाह से जहाज पर लादी गयी भारी वस्तुओं की कीमतों के सम्बन्ध में "जहाज तक निःशुल्क" लिखा रहता है और सम्‍ेक क्रेता को उन वस्तुओं को अपने घर तक लाने के लिए परिवहन व्यय का स्वयं हुमान लगाना पड़ता है तथा इसकी व्यवस्था करनी पड़ती है।

भाग

है वह एक निर्दिष्ट स्तर की है। यद्यपि उसने क्रय किये जाने वाले माल के नमूने को कभी भी नहीं देखा, और यदि देखा भी हो तो भी वह स्वयं उसके सम्बन्ध में कोई राय निश्चित करने में सम्भवतः समर्थ न होगा।[1]

वर्गीकरण तथा प्रतिचयन सम्बन्धी औचित्य।

जिन वस्तुओं का बाजार बहुत विस्तृत होता है वे दूर तक ले जाये जाने के योग्य होनी चाहिए: वे कुछ टिकाऊ होनी चाहिए तथा उनका मूल्य-निर्धारण उनकी मात्रा के अनुपात के अनुसार होना चाहिए। यदि कोई वस्तु इतनी भारी है कि उसे उत्पादन-स्थान से बहुत दूरी पर बेचने से उसकी कीमत बहुत अधिक बढ़ जाती है तो एक नियम के रूप में उस वस्तु का बाजार सीमित होगा। उदाहरण के रूप में साधारण किस्म की ईंटों का बाजार वास्तव में उनके निर्माण-स्थल के निकटवर्ती क्षेत्र तक ही सीमित रहता है: वे एक ऐसे क्षेत्र तक पहुँचने में, जिसकी अपनी ईंट की भट्टियाँ नहीं हैं, अधिक परिवहन व्यय वहन नहीं कर सकती। किन्तु कुछ विशेष प्रकार की ईंटों के बाजार इंग्लैंड के बहुत बड़े भाग में फैले हुए है।

सुवाह्यता।

§4. अब हम उन वस्तुओं के बाजारों का अधिक ध्यान से अध्ययन करेंगे जिनकी माँग के सामान्य होने तथा जिनकी आसानी से पहचाने जाने तथा सुगम होने की शर्तें असाधारण रूप से पूरी होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, शेयर बाजार ऋणपत्र तथा अधिक मूल्यवान धातुएँ इस प्रकार की वस्तुएँ है।

अधिक सुसंगठित बाजारों की शर्तों का शेयर बाजारों के प्रसंग में स्पष्टीकरण।

सार्वजनिक कम्पनी के किसी एक हिस्से या बाण्ड का अथवा किसी सरकारी बाण्ड का मूल्य ठीक वही होगा जो समान निकासी वाले किसी अन्य हिस्से अथवा बाण्ड का होगा: किसी क्रेता को इन दोनों में से किसी को भी क्रय करने से कोई अन्तर नही पडता। कुछ ऋण-पत्रों के लिए, विशेषकर अपेक्षाकृत छोटी खनिक, जहाजरानी तथा अन्य कम्पनियों के ऋण-पत्रों के लिए स्थानीय ज्ञान अपेक्षित होता है, और उनका क्रय-विक्रय उनके निकटतम पड़ोसी क्षेत्र के बड़े शहरों के शेयर बाजारों के अतिरिक्त कही अन्यत्र आसानी से क्रय-विक्रय नही होता। किन्तु आग्ल रेलवे के हिस्सों एवं ऋणपत्रों के लिए सारा इंग्लैंड ही एक बाजार है। सामान्य समय में कोई व्यापारी स्वयं अपने पास न होने पर भी मिडलैण्ड रेलवे के शेयरों का विक्रय करेगा, क्योंकि वह जानता है कि वे नित्य बाजार में आते रहते है और उसे उन्हें क्रय करने की अपनी सामर्थ्य पर विश्वास है।

किन्तु ऋण-पत्रों का सबसे अधिक महत्व है और इन्हें "अन्तर्राष्ट्रीय" कहा जाता है, क्योंकि विश्व के प्रत्येक भाग में इनकी माँग है। ये बडी सरकारों के तथा स्वेज नहर

1 इस प्रकार किसी सार्वजनिक अथवा निजी "उत्पादन-यंत्र" (elevator) के प्रबन्धक किसान से अनाज लेते हैं, उसको विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करते हैं, और किसान को प्रत्येक श्रेणी के उतने बुशल (Bushels) का प्रमाणपत्र वापस करते हैं जितने उसने दिये हैं। तत्पश्चात् उसके अनाज को अन्य किसानों के अनाजों से मिला लिया जाता है। उसके प्रमाणपत्र उस क्रेता तक पहुँचने से पूर्व जो यह माँग करता है कि वह अनाज वास्तव में उसको दिया जाय, अनेक बार विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में जाते हैं, और वह क्रेता जो अनाज लेता है उसका प्रमाणपत्र पाने वाले मूल किसान के खेत की उपज से बहुत कम, अथवा कुछ भी सम्बन्ध, नहीं होता।

एवं न्यूयार्क केन्द्रीय रेलवे जैसी विशाल सार्वजनिक कम्पनियों के बाण्ड होते हैं। तार-पत्र इस वर्ग के बाण्डों की कीमतों को विश्व के सभी शेयर बाजारों में लगभग समान स्तर पर रखते है। यदि उनमें किसी एक का मूल्य न्यूयार्क अथवा पेरिस में, लण्डन अथवा बर्लिन मे बढ़ता है, तो उक्त वृद्धि के केवल समाचार से ही अन्य बाजारो में भी मूल्य मे वृद्धि हो जाती है। यदि किसी कारणवश अन्य बाजारो मे मूल्य वृद्धि होने में विलम्ब हो जाये तो अन्य बाजारो से इस विशेष प्रकार के बाण्डो को तार द्वारा आदेश देकर उन बाजारों मे बिक्री के लिए शीघ्र ही प्रस्तुत किया जाता है जहाँ कीमतें बहुत ऊँची हों। इस समय ऊँची कीमतों वाले बाजार के व्यापारी भी तार द्वारा अन्य बाजारो मे इन बाण्डो को खरीदेंगे। एक ओर बाण्डो के क्रय तथा दूसरी ओर उनके विक्रय से प्रत्येक स्थान पर उनके मूल्यो के समान होने की प्रवृत्ति सुदृढ हो जाती है, और यदि कुछ बाजार असाधारण स्थिति मे न हो तो इस प्रवृत्ति का लागू होना अनिवार्य हो जाता है।

शेयर बाजार मे एक व्यापारी प्राय. यह विश्वास करता है कि जिस कीमत पर वह शेयर खरीदता है लगभग उसी कीमत पर उनको बेच भी सकेगा, और वह बहुधा प्रथम श्रेणी के शेयरो को जिस कीमत पर उसी समय बेचने के लिए प्रस्तुत करता है, उसके $\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{8}$ या यहाँ तक कि कुछ दशाओं मे $\frac{1}{16}$ प्रतिशत कम मूल्य पर उन्हें खरीदने को तैयार हो जाता है। यदि दो ऋण-पत्र समान रूप से अच्छे हों किन्तु उनमे से एक सरकार के ऋण-पत्रों की छोटी निकासी मे से हो, जिससे प्रथम प्रकार के ऋण-पत्र बराबर बाजार मे आ रहे हों और द्वितीय प्रकार के कभी-कभी आते हों तो केवल इसी बात के कारण व्यापारियों को प्रथम प्रकार के ऋण-पत्रों की अपेक्षा द्वितीय प्रकार के ऋण-पत्रों के सम्बन्ध मे अपने क्रय-भाव तथा विक्रय-भाव में अधिक अन्तर रखने की आवश्यकता होती है।[1] यह इस महत्वपूर्ण नियम की व्याख्या करता है कि जिस वस्तु का बाजार जितना ही विस्तृत होता है उसके भाव मे साधारणतया उतने ही कम उतार-चढाव आते है, और उस व्यवसाय को करने मे व्यापारी पूँजी के आवर्त के लिए उतना ही कम प्रतिशत लाभ लेते है।

मूल्यवान धातुओं के लिए विश्व बाजार।

शेयर बाजारों के आधार पर बहुत प्रकार की ऐसी वस्तुओं के व्यापार के लिए बाजार स्थापित किये गये हैं और किये जा रहे हैं जिनका सुगमता एवं यथार्थता के साथ वर्णन किया जा सकता है, जो परिवहनीय होते है तथा जिनकी सामान्य माँग रहती है। केवल सोना और चाँदी ही वे भौतिक वस्तुएँ हैं जिनमें ये गुण बड़ी मात्रा मे

1 कोई व्यापारी बहुत छोटी-छोटी तथा कम प्रख्यात कम्पनियों के ऋण-पत्रों को जिस कीमत पर खरीदना चाहेगा और जिस पर उन्हें बेचेगा उनमें विक्रय मूल्य के 5 प्रतिशत के बराबर या इससे भी अधिक अन्तर होता है। यदि वह इन्हें खरीदता है तो उसे उससे खरीदकर ले जाने वाले व्यक्ति की बड़े लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, और हो सकता है कि इस अवधि में इसका मूल्य कम हो जाय; जब कि यदि वह किसी ऐसे ऋण-पत्र को देने का वायदा करे जो कि स्वयं उसके पास नहीं है और जो बाजार में भी नित्य-विक्रय हेतु नहीं आता है तो वह बिना अत्यधिक कष्ट उठाये तथा खर्च किये उस संविदा को पूरा नहीं कर सकेगा।

विद्यमान हैं। इसी कारण उनको लोक सम्पत्ति से द्रव्य के रूप में प्रयोग करने तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया है। इनके लिए विश्व-बाजार सर्वाधिक सुसंगठित है, और इसमें उन नियमों के प्रभावों के अनेक व्यापक दृष्टान्त मिलेंगे जिनकी हम यहाँ पर चर्चा कर रहे हैं।

§5 अन्तर्राष्ट्रीय शेयर बाजार ऋण-पत्रों तथा अधिक मूल्यवान धातुओं के दूसरे छोर में सबसे पहले वे वस्तुएँ आती हैं जो व्यक्तियों के इच्छानुसार उनके आदेश पर बनायी जाती हैं, जैसे ठीक सिले हुए कपड़े, और दूसरे स्थान पर ताजी तरकारियों जैसी नाशवान एवं भारी वस्तुएँ आती हैं जिनको दूर तक ले जाना लाभप्रद नहीं होता। इनमें से प्रथम प्रकार की वस्तुओं का थोक बाजार नहीं हो सकता। उनके क्रय एवं विक्रय की शर्तें ही उनका मूल्य निर्धारित करती हैं, और उन शर्तों का अध्ययन इस समय स्थगित किया जा सकता है।[1]

फुटकर व्यापार के विषय को एक ओर रखकर अब हम एक ऐसे बाजार का अध्ययन करते हैं जिसका क्षेत्र सीमित है।

दूसरे वर्ग की वस्तुओं के लिए वास्तव मे थोक बाजार है, किन्तु उनका क्षेत्र सीमित है। एक ग्रामीण शहर मे सामान्य प्रकार की सब्जियों का विक्रय इसका एक विशिष्ट उदाहरण है। सम्भवतः समीप के सब्जी विक्रेता शहरवासियो को बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के अपनी सब्जियाँ बेचने का उत्तरदायित्व लेते हैं। एक ओर विक्रय की शक्ति तथा दूसरी ओर क्रय करने की शक्ति इनके भावो मे अत्यधिक कमी अथवा अत्यधिक वृद्धि को रोकती है। किन्तु सामान्य परिस्थितियो में उक्त नियन्त्रण प्रभावहीन हो जाता है, और ऐसा भी हो सकता है कि ऐसी परिस्थितियों में विक्रेता परस्पर मिल जायें, और एक कृत्रिम एकाधिकार कीमत निश्चित कर दें, अर्थात् एक ऐसा भाव निश्चित कर दें जिसके निर्धारण में उत्पादन की लागत का बहुत कम सीधा सम्बन्ध हो, किन्तु जो मुख्यतः बाजार के रुख को दृष्टि में रखकर निर्धारित की गयी हो।

यद्यपि इसमें भी सुदूर स्थित स्थानों का परोक्ष रूप में प्रभाव

दूसरी ओर यह हो सकता है कि कुछ तरकारी विक्रेता एक ग्रामीण शहर के लगभग उतने निकट रहते हों जितने दूसरे शहर के, और अपनी सब्जियों को कभी एक शहर में तथा कभी दूसरे शहर में भेजते हों। इसी प्रकार कुछ ऐसे क्रेता भी हो सकते हैं जो यदाकदा एक ही शहर मे खरीददारी करते हों, किन्तु जो दूसरे शहर मे भी क्रय करने के लिए समान रूप से जा सकते है। कीमत मे न्यूनतम अन्तर होने पर भी वे सस्ते बाजार में जाना पसन्द करेंगे, और इस प्रकार वे दोनों शहरों के सौदों को कुछ सीमा

---

1 कोई व्यक्ति थोड़ी-थोड़ी मात्रा में फुटकर क्रय कर अधिक परेशानी नहीं उठायेगा। वह एक कागज की दुकान में कागज के एक पैकट के लिए 2½ शिलिंग देता है जिसे वह दूसरी दुकान में केवल 2 शि० में ही प्राप्त कर सकता है, किन्तु थोक भावों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। एक विनिर्माता कागजों के 20 दस्तों को (एक रिम को) 6 शि० के भाव से नहीं बेच सकता यदि उसका पड़ोसी उन्हें 5 शि० के भाव पर बेच रहा हो, क्योंकि कागज के व्यापारियों को यह भलीभाँति ज्ञात है कि इसे कम से कम किस कीमत पर क्रय किया जा सकता है जिससे अधिक वे कभी नहीं देंगे। विनिर्माता को इसे बाजार भाव अर्थात् ठीक उस भाव पर बेचना पड़ता है जिस पर उस समय कोई दूसरा विनिर्माता इसे बेचता है।

पड़ता है। तक एक दूसरे के ऊपर अवलम्बित कर देंगे। यह हो सकता है कि इस दूसरे शहर का लन्दन अथवा किसी अन्य केन्द्रीय बाजार के साथ निकट सम्पर्क हो जिससे उसके भाव केन्द्रीय बाजार के भावों द्वारा नियंत्रित हों, और उस स्थिति में प्रथम शहर के भाव पर्याप्त सीमा तक दूसरे शहर के भावों के अनुरूप होने चाहिए। जिस प्रकार कोई समाचार अनेक व्यक्तियों से होकर एक ऐसी अफवाह का रूप ले लेता है जो पर्याप्त दूरी तक फैल जाती है किन्तु जिसके उद्गम का पता नहीं रहता, उसी प्रकार किसी एकान्त स्थान पर स्थित बाजार पर ऐसे परिवर्तनों का प्रभाव पड़ जाता है जिनका बाजार के परिवर्तनों के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, अर्थात् ऐसे परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है *जिनका उद्गम स्थल पर्याप्त दूर हो और जो विभिन्न बाजारों* मे धीरे-धीरे फैले हों।

इस प्रकार एक सिरे पर विश्व के बाजार हैं जिनमे विश्व के सभी भागो से *प्रत्यक्ष प्रतियोगिता होती* है, और *दूसरे सिरे पर वे एकान्त स्थित बाजार हैं जिनमें* बाहर की प्रत्यक्ष प्रतियोगिता के लिए द्वार बन्द रहते है, भले ही परोक्ष तथा संचारित (Transmitted) प्रतियोगिता का अनुभव इन बाजारो मे भी होता है। इन दोनों चरमावस्था वाले बाजारो के बीचोबीच अधिकाश बाजार हैं जिनका अध्ययन अर्थशास्त्री एवं व्यवसायी व्यक्तियो को करना पड़ता है।

बाजार की समय सम्बन्धी परिसीमाएँ (Limitations) उन कारणों को प्रभावित करती हैं जिन्हें हमें ध्यान में रखना है।

§6. पुन: माँग और सम्भरण की शक्तियो के साम्य मे लगने वाले समय की अवधि तथा बाजारो के विस्तार के क्षेत्र के अनुसार भी बाजारों मे अन्तर पाया जाता है। स्थान की अपेक्षा अब समय के इस प्रभाव का अधिक ध्यानपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। क्योंकि स्वय साम्य का तथा इसे स्थापित करने वाले कारणों का रूप बाजार की अवधि पर निर्भर है। यह देखा गया है कि यदि समय की अवधि छोटी हो तो किसी वस्तु का सम्भरण उसके विद्यमान भण्डार तक ही सीमित रहता है। यदि अवधि लम्बी हो तो उस वस्तु का सम्भरण न्यूनाधिक रूप मे उसके उत्पादन की लागत से प्रभावित होगा, और यदि यह अवधि बहुत लम्बी हो तो यह लागत भी, उस वस्तु के उत्पादन के लिए अपेक्षित श्रम तथा भौतिक वस्तुएँ तैयार करने की लागत से प्रभावित होगी। ये तीनो वर्ग वास्तव मे अति सूक्ष्म मात्राओ मे एक दूसरे मे मिल जाते हैं। हम सबसे पहले प्रथम वर्ग पर विचार करेंगे, और अगले अध्याय मे माँग और सम्भरण के उन अस्थायी सन्तुलनो का अध्ययन करेंगे जिनमे "सम्भरण" का अभिप्राय उस समय विक्रय के लिए सुलभ भण्डार से है जिससे यह उत्पादन की लागत से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित न हो सके।

अध्याय 2

मांग तथा सम्भरण का अस्थायी साम्य

§1. जब कोई व्यक्ति अपनी किसी आवश्यकता की स्वयं प्रत्यक्ष कार्य द्वारा तृप्ति कर ले तो इच्छा और प्रयत्न में संतुलन अथवा साम्य की यह सबसे सरल स्थिति होगी। जब कोई बालक अपने ही खाने के लिए काले बेर तोड़ता है तो कुछ समय तक बेर तोड़ने का काम भी उसे बड़ा ही आनन्ददायक प्रतीत होता है, और कुछ समय पश्चात् इनको खाने का स्वाद इन्हें तोड़ने के कष्ट से अधिक प्रिय लगता है। किन्तु जब वह इन्हें पर्याप्त मात्रा में खा लेता है तो उसकी इन्हें और अधिक खाने की इच्छा घटती जाती है, जब कि इन्हें तोड़ने के कार्य में थकान मालूम देती है जो वास्तव में श्रम से उत्पन्न थकान न होकर उकताहट के कारण पैदा होने वाली भावना होती है। अन्त में जब उसकी खेलने की आतुरता तथा इन्हें तोड़ने की अरुचि खाने की इच्छा के बराबर हो जाती है तो साम्य स्थापित हो जाता है। इन फलों को तोड़ने से उसे जो सन्तोष मिलता है वह अब अपनी अधिकतम सीमा पर पहुँच जाता है, क्योंकि उस समय तक हर ताजे फल को तोड़ने से उसे कष्ट होने की अपेक्षा आनन्द अधिक मिलता है और इसके पश्चात् यदि वह इन्हें तोड़ता रहे तो प्रत्येक बार इन्हें तोड़ने से आनन्द होने वाली वृद्धि की अपेक्षा इसमें कमी अधिक होगी।[1]

इच्छा तथा प्रयत्न में साम्य का सरल दृष्टान्त।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जो आकस्मिक वस्तु-विनिमय करता है, दृष्टान्त के रूप में जब कोई दो आरण्यक (backwoodsmen) एक डोंगी (छोटी नाव) के बदले एक राइफल का विनिमय करे, तो इसे सम्भरण और मांग का संतुलन कहना कदाचित् ही उचित होगा। यह सम्भव है कि इसमें दोनों पक्षों के लिए संतोष की कुछ गुंजाइश रहती हो, क्योंकि हो सकता है कि किसी व्यक्ति को यदि केवल राइफल देकर डोंगी न मिल सकती हो तो वह डोंगी के लिए राइफल के अतिरिक्त भी कुछ और देने को इच्छुक हो और दूसरी ओर आवश्यकता पड़ने पर दूसरा व्यक्ति भी राइफल के लिए डोंगी के अतिरिक्त भी कुछ और देने को तैयार हो सकता है।

आकस्मिक वस्तु-विनिमय में सामान्यतया कोई भी सही साम्य नहीं होता।

वास्तव में वस्तु-विनिमय प्रणाली में भी सही साम्य स्थापित किया जा सकता है। इतिहास के प्रारम्भिक काल में क्रय-विक्रय की अपेक्षा वस्तु-विनिमय कुछ दशाओं में अधिक जटिल था, परन्तु सभ्यता के अधिक प्रगतिशील युग के बाजार में सही साम्य मूल्य की सरलतम दशाएँ दिखायी देती हैं।

व्यवस्थित वस्तु-विनिमय पर विचार-विमर्श बाद के लिए स्थगित कर दिया जाय।

हम व्यवहार में आने वाली वस्तुओं के एक वर्ग पर जिसकी बहुत अधिक चर्चा की जा चुकी है कम व्यावहारिक महत्व का विषय मानकर अधिक विचार नहीं करेंगे। इनका सम्बन्ध प्राचीन दक्ष कलाकारों द्वारा निर्मित चित्रों, दुष्प्राप्य सिक्कों तथा अन्य

---

[1] भाग 4 के अध्याय 1 के अनुभाग 2 और गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 12, को देखिए।

दुर्लभ अथवा अनोखी वस्तुओं का बाजार।

वस्तुओं से है जिनको किंचित् मात्र भी "श्रेणीकृत" नहीं किया जा सकता। इन वस्तुओं की बिक्री कीमत इस बात पर निर्भर है कि इनके विक्रय के समय वहाँ पर कोई ऐसा व्यक्ति तो उपस्थित नहीं है जिसकी इनमें अभिरुचि हो। यदि वहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति न हो तो ये वस्तुएँ सम्भवतया उन व्यापारियों द्वारा खरीदी जायेंगी जो यह हिसाब लगा लेते हैं कि इन्हें लाभ पर बेच सकेंगे और यदि इन पर पेशेवर क्रेताओं के नियमित प्रभाव न पड़े तो क्रमिक नीलामों में एक ही वस्तु की कीमतों में पाया जाने वाला अन्तर, जो कभी-कभी बहुत अधिक होता है, और भी अधिक हो जायेगा।

किसी स्थानीय अन्न के बाजार में लिया गया सही किन्तु अस्थायी साम्य का दृष्टान्त।

§2. अब हम आधुनिक जीवन के सामान्य व्यवहार के विषय में विचार करते हैं और किसी ग्रामीण शहर में अन्न के बाजार का उदाहरण लेते हैं, और सरलता की दृष्टि से यह भी मान लेते हैं कि सम्पूर्ण बाजार में एक ही किस्म का अनाज है। कोई कृषक या कोई अन्य विक्रेता किसी कीमत पर अनाज की कितनी मात्रा बेचने को तैयार रहता है यह इस बात पर निर्भर है कि स्वयं उसे द्रव्य की कितनी आवश्यकता है तथा बाजार की वर्तमान तथा भावी स्थितियों के विषय में उसका क्या अनुमान है। कुछ कीमतों को तो कोई भी विक्रेता स्वीकार नहीं करेगा, किन्तु कुछ कीमतें ऐसी होती हैं जिनको कोई मना भी नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त कुछ मध्यवर्ती कीमतें होती हैं जिन्हें थोड़ी-बहुत मात्रा में अधिकांश या सभी विक्रेता स्वीकार कर लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति बाजार की स्थिति का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता है और वह उसी स्थिति के अनुसार अपने कार्य को नियंत्रित करता है। अब यह मान लें कि उस बाजार में जिन मालिकों के पास वस्तुतः 600 क्वार्टर अन्न है वे इसे 35 शिलिंग प्रति क्वार्टर की कीमत पर बेचने को तैयार हैं, किन्तु अन्य 100 क्वार्टर अन्न के मालिक इसके लिए 36 शिलिंग प्रति क्वार्टर लेने के इच्छुक हैं, और अनाज के अन्य 300 क्वार्टर के मालिक इसे 37 शिलिंग प्रति क्वार्टर से कम पर नहीं बेचना चाहते हैं। यह भी मान लें कि कीमत 37 शिलिंग प्रति क्वार्टर होने पर केवल 600 क्वार्टर अनाज के लिए क्रेता मिल सकते हैं, तथा इसके अतिरिक्त 100 क्वार्टर 36 शिलिंग के भाव पर बेचे जा सकते हैं, और शेष 200 क्वार्टर 35 शिलिंग के भाव पर बिक सकते हैं। इन तथ्यों को हम एक सारणी के रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:—

कीमत प्रति क्वार्टर	मालिक बेचने को तैयार हैं	क्रेता क्रय-करने के लिए तैयार हैं
37 शि०	1000 क्वार्टर	600 क्वार्टर
36 शि०	700 क्वार्टर	700 क्वार्टर
35 शि०	600 क्वार्टर	100 क्वार्टर

वस्तुतः उनमें से कुछ लोग जो बाजार में कुछ भी बिक्री न करने की अपेक्षा 36 शिलिंग पर भी अनाज बेचने के लिए तैयार हैं वे शीघ्र ही यह संकेत नहीं देंगे, कि उन्हें वह कीमत स्वीकार है, और इसी भाँति क्रेतागण भी खरीददारी टालने का प्रयत्न करेंगे और वे अनाज के लिए वास्तविक रूप में जितने इच्छुक होंगे उससे कम ही उत्सुकता दिखायेंगे। अतः बैडमिंटन की चिड़िया की भाँति कीमत भी बाजार के "भाव-ताव और सौदा" करने में एक पक्ष की दूसरे पक्ष पर विजय के साथ-साथ कभी

इधर और कभी उधर होती रहती है। किन्तु दृष्टान्त के रूप में जब तक वे असमान प्रतिद्वन्द्वी नहीं हों, जब तक एक पक्ष बहुत साधारण न हो अथवा दूसरे पक्ष की शक्ति का अनुमान लगाने में असमर्थ हों, तब तक कीमत कभी भी 36 शिलिंग से अधिक भिन्न नहीं हो सकती, और यह अधिक सम्भव है कि बाजार के बन्द होने समय यह 36 शिलिंग के बिलकुल ही निकट हो। क्योंकि यदि अनाज का मालिक यह सोचे कि खरीददार 36 शिलिंग के भाव पर जितना भी अनाज चाहे खरीद लेने में समर्थ होगा तो वह उसके किसी ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करने से नहीं चूकेगा जिसमें वह इस कीमत से ऊँची कीमत देने को तैयार हो।

क्रेतागण भी अपने हित में इसी प्रकार की गणनाएँ करेंगे, और यदि किसी समय भाव 36 शिलिंग से अधिक हो जाय तो वे यह तर्क करेंगे कि उस भाव पर माँग से सम्भरण कहीं अधिक होगा। अतः वे लोग भी जो उन्हें लेने से वंचित रहने की अपेक्षा वस्तुतः उस भाव पर खरीददारी कर लेना पसन्द करते थे वे कुछ और प्रतिक्षा करेंगे और इससे भाव में कमी आ जायेगी। इसके विपरीत यदि भाव 36 शिलिंग से बहुत अधिक नीचा हो तो वे विक्रेता जो अपने अनाज को न बेचने की अपेक्षा उस भाव को स्वीकार कर लेते हैं, यह तर्क करेंगे कि उस भाव पर माँग सम्भरण की अपेक्षा अधिक होगी। अतः वे कुछ समय तक विक्रय करना स्थगित कर देंगे और इस प्रकार बेचना बन्द कर के भावों के चढ़ने में सहायता पहुँचाएँगे।

अतः 36 शिलिंग प्रति क्वार्टर के भाव को कुछ दृष्टि से सही साम्य-भाव कहा जा सकता है : क्योंकि यदि यह भाव प्रारम्भ में ही निश्चित हो जाता और बाद तक यही भाव बना रहता तो इससे माँग और सम्भरण में सतुलन स्थापित हो जाता (अर्थात् उस भाव पर क्रेता जितनी मात्रा खरीदना चाहते वह लगभग उस मात्रा के बराबर ही होती जिसे उस भाव पर विक्रेता बेचने को तैयार थे)। इसका एक कारण यह भी है कि प्रत्येक व्यापारी जिसे बाजार की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान है यह आशा करता है कि अन्त में वही भाव निश्चित होगा। जब वह यह देखता है कि भाव 36 शिलिंग से अधिक भिन्न है तो वह यह आशा करता है कि शीघ्र ही कुछ न कुछ परिवर्तन होंगे और उसकी प्रत्याशा इसी भाव के निर्धारित होने में सहायता पहुँचाती है।

इस तर्क की दृष्टि में यह आवश्यक नहीं कि व्यापारियों को बाजार की गतिविधियों का पूर्ण ज्ञान हो। बहुत से क्रेतागण सम्भवत विक्रेताओं की बिक्री करने की तत्परता का कम अनुमान लगाते हैं, और इसका यह परिणाम होता है कि कुछ समय के लिए कीमतें ऊँची रहती है। इस पर अनेक क्रेता मिल सकते है, और इस प्रकार के भाव के 37 शिलिंग से गिरने के पूर्व अनाज के 500 क्वार्टर बिक सकते हैं। किन्तु इसके पश्चात् भावों में अवश्य ही कमी आ जाती है और इसके फलस्वरूप अनाज के 200 अतिरिक्त क्वार्टर बिक सकते हैं। बाजार के बन्द होने तक भाव 36 शिलिंग के बराबर हो जायेगा। किन्तु जब अनाज के 700 क्वार्टर बिक चुके हों तब कोई भी विक्रेता 36 शिलिंग से अधिक के भाव के अतिरिक्त इसकी और अधिक मात्रा नहीं बेचेगा, और कोई भी क्रेता 36 शिलिंग से कम के भाव के अतिरिक्त इसकी और अधिक मात्रा क्रय करने का इच्छुक नहीं होगा। इसी प्रकार यदि विक्रेता

क्रेताओं की अधिक कीमत देने की तत्परता का वास्तविकता से कम अनुमान लगायें तो उनमें से कुछ लोग अपने अनाज को अपने ही पास रखे रहने की अपेक्षा निम्नतम कीमत पर भी बेचना प्रारम्भ कर देंगे, और इस अवस्था में 35 शिलिंग के भाव पर अनाज की बहुत अधिक मात्रा बिक जायेगी। किन्तु बाजार सम्भवतः 36 शिलिंग के भाव पर बन्द होगा और कुल 700 क्वार्टर की बिक्री होगी।[1]

यह अव्यक्त पूर्वधारणा कि विक्रेताओं की द्रव्य खर्च करने की तत्परता लगभग सदैव एक-सी ही रहती है साधारणतः अनाज बाजार के सम्बन्ध में तो मान्य है, किन्तु श्रम-बाजार में इसके अपवाद बहुधा महत्वपूर्ण हैं।

§3 इस दृष्टान्त मे एक ऐसी पूर्वधारणा का भी समावेश है जो अधिकांश बाजारों के वास्तविक दशाओं के अनुरूप है, किन्तु जहाँ ऐसा करना तर्कसंगत नही है वहाँ इसके अनावश्यक प्रयोग के लिए इस सम्बन्ध में स्पष्ट बोध होना अत्यावश्यक है। यहाँ बिना किसी स्पष्टीकरण के यह मान लिया गया था कि 700 वे क्वार्टर के लिए क्रेतागण जितनी धनराशि देना चाहते है, और विक्रेता जितनी धनराशि लेने को इच्छुक हैं उसका इस प्रश्न पर कि पहले के सौदे अधिक या कम दर पर तय किये गये थे कुछ भी प्रभाव न पडेगा। क्रय की गयी मात्रा मे वृद्धि होने के साथ-साथ क्रेताओं की अनाज की आवश्यकता मे (उनके लिए इसके सीमान्त तुष्टिगुण में) होने वाली न्यूनता को ध्यान मे रखा गया है। किन्तु उनकी द्रव्य (इसकी सीमान्त उपयोगिता) का त्याग करने की इच्छा मे होने वाले किसी भी परिवर्तन को ध्यान मे नही रखा गया है। यहाँ हमने मान लिया है कि यह व्यावहारिक रूप मे समान ही होगी चाहे पहले के भुगतान ऊँचे या नीचे किसी भी दर पर किये गये हों।

यह पूर्वधारणा बाजार के बहुत से सौदों मे जिन से हमारा व्यावहारिक सम्बन्ध है, तर्कसंगत सिद्ध हुई है। जब कोई व्यक्ति अपने निजी उपभोग के लिए किसी वस्तु को खरीदता है तो वह अधिकांशतया अपने कुल साधनो का एक थोडा सा भाग इसमे खर्च करता है। किन्तु जब वह व्यापार के उद्देश्य से इसको खरीदता है तो इसे पुनः बेचने की सोचता है और इसलिए उसके सम्भाव्य साधनों मे कमी नही होती। इन दोनों मे से किसी भी दशा मे उसकी द्रव्य त्यागने की तत्परता मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही होता। वस्तुतः वहाँ ऐसे भी कुछ व्यक्ति हो सकते हैं जिनके सम्बन्ध मे यह बात सत्य सिद्ध न होती हो, किन्तु यह बात असन्दिग्धरूप से सत्य है कि वहाँ कुछ व्यापारी ऐसे हैं जिनके पास बहुत बडी मात्रा मे द्रव्य है, और उनके प्रभाव के कारण बाजार मे स्थिरता व्याप्त रहती है।[2]

---

1 व्यापारियों के कार्य में, और तदनुसार बाजार के भाव में, "धारणा" के प्रभाव का एक सरल रूप इस दृष्टान्त में प्रदर्शित किया गया है: हम इससे अधिक जटिल रूपों के विषय में बाद में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

2 दृष्टान्त के रूप में कभी-कभी कोई क्रेता नकद द्रव्य के न होने से बड़ा तंग हो जाता है, और इस कारण वह उन निवेदों (offers) पर ध्यान नहीं दे सकता जो उन निवेदों से किसी भी प्रकार निकृष्ट नहीं होते जिन्हें उसने सहर्ष स्वीकार किया था: अपने कोष के समाप्त हो जाने पर सम्भवतः वह केवल ऐसी शर्तों पर ही उधार ले सकता है जिनके अनुसार उसे वे लाभ प्राप्त नहीं हो सकेंगे जो कि उस सौदे में सर्व-

वस्तुओं के बाजारों में इसके बहुत कम अपवाद है और ये महत्वपूर्ण भी नहीं हैं, किन्तु श्रम-बाजार में इनकी संख्या अधिक है और ये महत्वपूर्ण भी है। जब किसी श्रमिक को भूखे रहने की अशंका हो तो उसकी द्रव्य की आवश्यकता (द्रव्य का उसके लिए सीमान्त तुष्टिगुण) बहुत अधिक होती है, और यदि प्रारम्भ मे उसे सौदाकारी मे बड़ी असफलता मिले और निम्न मजदूरी पर काम पर नियुक्त किया जाय तो द्रव्य की आवश्यकता तीव्र ही बनी रहती है, और वह अपने श्रम को एक निम्न मजदूरी की दर पर बेच जाता है। यह सम्भावना इस बात से और भी बढ़ जाती है कि वस्तुओं के एक बाजार मे जहाँ किसी सौदे से प्राप्त होने वाले लाभ की दोनों पक्षों मे अधिक अच्छे ढंग से विपरीत होने की सम्भावना रहती है वहाँ श्रम-बाजार मे यह लाभ श्रम बेचने वालों की अपेक्षा श्रम लेने वालो को अधिक मिलता है। श्रम-बाजार और वस्तुओं के बाजार मे अन्तर का दूसरा कारण यह है कि श्रम के प्रत्येक विक्रेता को केवल श्रम की एक ही इकाई का विसर्जन करना पड़ता है। हम आगे चलकर यह देखेंगे कि ये दो तथ्य उन अनेक तथ्यों मे से है जिनमे श्रमिक वर्ग द्वारा अर्थशास्त्रियो की, विशेषकर नियोजक वर्ग की, श्रम को केवल एक वस्तु की भाँति मानने और श्रम-बाजार को अन्य बाजारों की भाँति समझने की प्रवृत्ति के विरुद्ध उठायी गयी अनेक स्वाभाविक आपत्तियों का स्पष्टीकरण मिलता है। यद्यपि इन दोनो दशाओं मे पाये जाने वाले

सिद्धान्त एवं व्यवहार में इस अंतर के परिणामों का बड़ा महत्व है।

प्रथम दिखायी देते थे। किन्तु यदि यह सौदा वास्तव में अच्छा हो तो इसे कोई अन्य व्यक्ति ले लेगा जो इस प्रकार की तंगी में न हो।

आगे, यह भी सम्भव है कि उनमें से बहुत से लोग जिनकी 36 शि० के भाव पर अनाज बेचने के लिए इच्छुक विक्रेताओं में गणना की गयी थी केवल इस कारण अनाज बेचने के लिए तत्पर हों कि उन्हें नकद द्रव्य की बड़ी तीव्र आवश्यकता थी। यदि वे कुछ अनाज ऊँचे भाव पर बेचने में समर्थ हुए हों तो यह स्पष्ट है कि उनके लिए नकद द्रव्य के सीमान्त तुष्टिगुण में कुछ कमी आ जायेगी, और इस कारण हो सकता है वे 36 शि० प्रति क्वार्टर के भाव पर उस सारे अनाज को बेचना स्वीकार न करें जिसे सभी जगहों में 36 शि० का भाव होने पर वे बेच चुके होते। इस दशा में बाजार के प्रारम्भ से ही सौदाकारी की लाभदायक स्थिति में होने के कारण विक्रेता अन्त तक साम्य-कीमत से ऊँची कीमत रखने में समर्थ हो सकते हैं। जिस भाव पर बाजार बन्द हुआ, वह साम्य-भाव होगा, और यद्यपि इसे सही अर्थ में साम्य-भाव नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह उस भाव से कदाचित् ही भिन्न होगा।

इसके विपरीत, यदि बाजार विक्रेताओं के हितों के अधिक प्रतिकूल प्रारम्भ हुआ हो, और वे थोड़ा-बहुत अनाज अधिक सस्ता बेच चुके हों जिससे उन्हें नकद द्रव्य की अत्यधिक आवश्यकता हो तो उनके लिए द्रव्य का अन्तिम तुष्टिगुण इतना अधिक रहेगा कि वे 36 शि० से कम के भाव पर भी उस वस्तु को उतनी मात्रा बेच देंगे जितनी क्रेतागण खरीदना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में सही साम्य-भाव के कभी निर्धारित हुए बिना ही बाजार बन्द हो जायेगा, किन्तु बाजार में जो अन्तिम भाव रहेगा वह इसके निकट ही होगा।

अन्तर सैद्धान्तिक दृष्टि से आधारभूत नही है तथापि इन्हें स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है, और व्यावहारिक जीवन मे इनका बडा महत्व है।

वस्तु-विनिमय पर दिये गये परिशिष्ट का प्रसंग।

अत जब सीमान्त तुष्टिगुण की द्रव्य तथा किसी वस्तु की मात्रा पर निर्भरता को ध्यान मे रखा जाता है तो क्रय एवं विक्रय करने का सिद्धान्त और भी अधिक जटिल बन जाता है। इस विचार का बडा अधिक व्यावहारिक महत्व नही है, किन्तु परिशिष्ट 'च' मे वस्तु-विनिमय तथा उन सौदो मे विरोध प्रदर्शित किया गया है जिनमे विनिमय का एक पक्ष सामान्य क्रयशक्ति के रूप मे होता है। वस्तु-विनिमय मे किसी व्यक्ति को विनिमय की जाने वाली दोनो वस्तुओ के भण्डार को अपनी वैयक्तिक आवश्यकतानुसार अधिकाधिक अनुकूल बनाना पडता है। यदि उसका भण्डार अत्यधिक मात्रा मे हो तो वह इसका सदुपयोग नही कर सकता। यदि उसका भण्डार आवश्यक मात्रा से बहुत कम हो तो उसे किसी व्यक्ति को ढूँढने मे कठिनाई होगी जो सरलतापूर्वक उसकी आवश्यकता की वस्तुओ को उसे दे और बदले मे उससे उन वस्तुओ को ले जिनकी उसके पास आवश्यकता से अधिक मात्रा हो। किन्तु एक व्यक्ति जिसके पास सामान्य क्रय-शक्ति का भण्डार हो, वह जैसे ही किसी एक ऐसे व्यक्ति से मिलता है जिसके पास उसकी इच्छित वस्तु प्रचुर मात्रा मे हो तो वह उसी से वह वस्तु प्राप्त कर लेता है। उसे तब तक भटकते रहने की आवश्यकता नही जब तक कि किसी व्यक्ति से "दुहरा संयोग" न हो जाय, अर्थात् ऐसा व्यक्ति न मिल जाय जो, जो कुछ व चाहता है उसे दे सकता है और इसके बदले मे जो कुछ वह बचा सकता है उसे लेना भी चाहता है। इसके फलस्वरूप यह प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर पेशेवर व्यापारी, के हित मे है कि वह द्रव्य के एक बडे भण्डार पर अधिकार प्राप्त करे और वह द्रव्य के अपने भण्डार को समाप्त किये बिना या इसके सीमान्त-मूल्य मे अधिक परिवर्तन किये बिना यथेष्ट मात्रा मे खरीददारी कर सकता है।

अध्याय 3

प्रसामान्य माँग और सम्भरण का साम्य

§1. इसके पश्चात् यह भी जानना आवश्यक है कि सम्भरण कीमतें अर्थात् वे कीमतें जिन्हें व्यापारी वस्तुओं की विभिन्न मात्राओं के लिए लेने को तैयार हैं, किन-किन कारणों द्वारा नियंत्रित होती है। पिछले अध्याय मे केवल एक ही दिन के कार्य-व्यापार का अध्ययन किया गया था, और यह कल्पना की गयी थी कि बिक्री के लिए प्रस्तुत किया गया भण्डार पहले से ही विद्यमान है। किन्तु वस्तुतः यह भण्डार पूर्वगत वर्ष में बोयी गयी गेहूँ की मात्रा पर निर्भर है, जो कि स्वयं भी अधिकांशरूप मे कृषकों के इन अनुमानों से प्रभावित होती है कि उन्हे चालू वर्ष मे इसके लिए क्या कीमतें मिलेंगी। इस अध्याय में इसी विषय पर विचार किया जायेगा।

प्रसामान्य मूल्यों की ओर

बाजार के दिन यहाँ तक कि किसी ग्रामीण शहर के अनाज की मण्डी मे भी उत्पादन और उपभोग के भावी सम्बन्ध के विषय मे लगायी गयी गणनाओं से साम्य कीमत प्रभावित होती है। अमेरिका और यूरोप की प्रमुख अनाज की मण्डियों मे भावी सुपुर्दगी से सम्बन्धित सौदों का पहले ही से बोलबाला है और इनमे सम्पूर्ण जगत के अनाज के मुख्य व्यापार तंतुओं को शीघ्रता से एक जाल मे बुनने का प्रयत्न किया जा रहा है। "भविष्य" के इन सौदों में कुछ तो केवल सट्टेबाजी की चालों से सम्बन्धित घटनाएँ हैं, किन्तु ये सौदे मुख्यतया एक ओर तो विश्व के उपभोग तथा दूसरी ओर उस समय विद्यमान अनाज के भण्डारों, तथा उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में आने वाली फसलों के सम्बन्ध में की जाने वाली गणनाओं से नियंत्रित होते हैं। व्यापारी हर प्रकार के अनाज के बोये गये क्षेत्र, फसल की भावी उपज तथा उसके भार, अन्न के बदले मे प्रयोग की जा सकने वाली वस्तुओं तथा उन वस्तुओं के सम्भरण को ध्यान मे रखते हैं जिनकी अन्न द्वारा प्रतिस्थापना की जाती है। इस प्रकार जौ को खरीदते तथा बेचते समय वे चीनी आदि जैसे वस्तुओं को, जो इसकी प्रतिस्थापक वस्तु की भाँति मद्य-निर्माण कार्य मे प्रयोग की जाती हैं, तथा उन सभी भोज्य पदार्थ के सम्भरण को ध्यान मे रखते हैं जिनके अभाव के कारण उपभोग के लिए फार्म मे जौ का मूल्य बढ़ जाता है। जब यह अनुभव किया जाता है कि संसार के किसी भी भाग मे किसी भी अन्न के उत्पादकों को इसमें द्रव्य की क्षति उठानी पड़ रही है और वे भविष्य मे उगायी जाने वाली फसल को सम्भवतया कम क्षेत्र में बोयेंगे तो यह तर्क दिया जाता है कि उस फसल के उगने ही और सभी लोगों को इसकी कमी का स्पष्ट रूप में आभास होते ही कीमतों के शीघ्र ही बढ़ जाने की सम्भावना रहती है। कीमतों मे होनेवाली इस प्रकार की वृद्धि की प्रत्याशा से भविष्य मे सुपुर्दगी से सम्बन्धित वर्तमान सौदे प्रभावित होते हैं, और तत्पश्चात् इससे नकद कीमतें प्रभावित होती हैं। इस प्रकार ये कीमतें अनाज की अतिरिक्त मात्रा के उत्पादन के खर्चों के अनुमान से अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती हैं।

प्रायः अधिक नाशवान वस्तुओं के अतिरिक्त सभी वस्तुओं के व्यापारों पर भविष्य सम्बन्धी गणनाओं का प्रभाव पड़ता है। हम अब सम्भरण एवं माँग से होने वाले मन्द तथा क्रमिक समायोजनों पर विचार करेंगे।

किन्तु इसमे तथा इसके बाद के अध्यायों मे हमारा मुख्य ध्येय उस समयावधि से अधिक लम्बी अवधि में कीमतों के उतार-चढाव का अध्ययन करना है जिसकी सबसे अधिक दूरदर्शी व्यापारी अपने भविष्य से सम्बन्धित सौदे तय करने मे अधिकाशतया गणना तय करते है : हमे बाजार की दशाओ के अनुसार उत्पादन की मात्रा मे स्वत: होने वाले असमायोजनो पर विचार करना है। प्रसामान्य माँग और प्रसामान्य सम्भरण के स्थायी साम्य पर प्रसामान्य कीमत निर्धारित होती है।

सम्भरण कीमतों का कुछ अधिक स्पष्टीकरण।

§2. इस विवेचन मे उत्पादन की लागत तथा खर्चे शब्दों का अनेक बार प्रयोग करना पडेगा, और इस सम्बन्ध मे और आगे विचार-विमर्श करने के पूर्व इन शब्दो के विषय मे कुछ जानकारी कराना आवश्यक है।

हम किसी वस्तु की सम्भरण कीमत तथा माँग कीमत की समानता पर पुन: विचार करेगे। कुछ देर के लिए यह मान लेने से कि उत्पादन की दक्षता केवल श्रमिकों के परिश्रम पर ही आश्रित है, हमने यह देखा कि "किसी वस्तु की निश्चित मात्रा के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम के लिए दी जाने वाली कीमत, समय की किसी निश्चित इकाई के प्रसंग मे उस वस्तु की उतनी मात्रा की सम्भरण कीमत कहलाती है।"[1] किन्तु अब हमे यह बात ध्यान मे रखनी है कि किसी वस्तु के उत्पादन मे साधारणतया विभिन्न प्रकार के श्रम तथा अनेक प्रकार की पूंजी के प्रयोग की आवश्यकता होती है। किसी वस्तु के उत्पादन मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे लगे हुए विभिन्न प्रकार के श्रम तथा इसे तैयार करने मे लगी पूंजी को बचाने के लिए आवश्यक उपभोग-स्थगन अथवा प्रतीक्षाओ मे निहित सभी प्रयत्न तथा त्याग मिल कर उस वस्तु की वास्तविक उत्पादन लागत कहलाएगी।

उत्पादन की वास्तविक तथा द्रव्यिक लागत।

इन प्रयत्नो तथा त्यागो के लिए कुल जितना द्रव्य व्यय किया जायेगा उसे या तो इसके उत्पादन की द्रव्यिक लागत या, सक्षेप मे, इसके उत्पादन के खर्चे कहेंगे। यही वे कीमते है जो उन प्रयत्नो एवं प्रतीक्षाओ की पर्याप्त पूर्ति प्राप्त करने के लिए दी जाती हैं जिनकी इसके उत्पादन मे आवश्यकता होती है, अथवा अन्य शब्दों में, ये इसकी सम्भरण कीमते है।[2]

---

1 भाग 4, अध्याय 1, अनुभाग 2 देखिए।

2 मिल तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों ने सामान्य प्रयोग की भांति 'उत्पादन की लागत' के दो अर्थ लगाये। कभी तो उन्होंने इसे किसी वस्तु के उत्पादन करने की कठिनाई के द्योतक के रूप में, और कभी लोगों को इस कठिनाई को दूर करने तथा इसका उत्पादन करने के लिए प्रेरित करने में होने वाले द्रव्य के परिव्यय को व्यक्त करने के अर्थ में प्रयोग किया। किन्तु बिना किसी स्पष्ट सूचना के शब्द के एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग को अपनाने के कारण उन्होने अनेक गलत धारणाएँ पैदा कर दीं और व्यर्थ के विवाद में डाल दिया। (कैरनेस के Leading Principles में) मिल के 'उत्पादन की लागत का मूल्य से सम्बन्ध' सिद्धान्त की जो आलोचना की गयी है वह मिल के मरणोपरान्त प्रकाशित हुई, और दुर्भाग्यवश कैरनेस ने मिल के शब्दों का जो अर्थ निकाला उसे अधिकृत माना गया, क्योंकि उन्हें मिल का अनुयायी समझा जाता था।

मूतकाल के सम्बन्ध मे किसी वस्तु के उत्पादन के खर्चो का किसी मी सीमा तक विश्लेषण किया जा सकता है, किन्तु इस दिशा मे अधिक दूर तक जाना शायद ही उपयोगी होगा। दृष्टान्त के लिए किसी विनिर्माण मे लगे विभिन्न प्रकार के कच्चे माल की सम्भरण कीमत को बहुधा अन्तिम तथ्यो के रूप मे मान लेना पर्याप्त होगा। और यह विश्लेषण करने की आवश्यकता नही कि इन सम्भरण कीमतो मे क्या-क्या चीजे शामिल हैं। अन्यथा इस प्रकार के विश्लेषण का कही अन्त नही होगा। अतः हम वस्तु को बनाने के लिए सभी आवश्यक चीजो को कुछ सुविधाजनक वर्गो मे शृंखलाबद्ध कर सकते है, और इन्हे हम उस वस्तु के उत्पादन के कारक कहेंगे। उस वस्तु की किसी निश्चित मात्रा के उत्पादन मे जो खर्चा लगेगा वह उसमे लगे उत्पादन के कारकों की मात्रा की सम्भरण कीमतो के बराबर होगा, और इन कीमतो का योग ही उस वस्तु की उस मात्रा की सम्भरण कीमत होगी।

उत्पादन के कारक।

§3. आधुनिक काल में वह बाजार विशिष्ट बाजार है जहाँ उत्पादक थोक व्यापारियो को ऐसी कीमतो पर माल बेचते है जिनमे केवल थोड़े ही व्यापारिक खर्चे शामिल होते है। किन्तु एक अधिक दृष्टिकोण अपनाते हुए हम यह कह सकते है कि किसी वस्तु की सम्भरण कीमत वह कीमत है जिस पर इसे उस वर्ग के लोगों को विक्रय के लिए सौंप दिया जायेगा जिनकी उस वस्तु की माँग पर हम यहाँ विचार कर रहे हैं, अथवा अन्य शब्दो मे, जिसे हमारे दृष्टिकोण के अन्तर्गत आने वाले बाजार मे विक्रय के लिए रखा जायेगा। उस बाजार के आकार-प्रकार पर ही यह बात निर्भर करेगी कि सम्भरण कीमत मे कितने व्यापारिक खर्चे शामिल किये जायें।[1] दृष्टान्त के रूप मे, कनाडा के जंगलो के निकट लकड़ी की सम्भरण कीमत बहुधा लकड़हारों के श्रम की कीमत के ही पूर्णतया बराबर होती है: किन्तु लन्दन के थोक बाजार मे उसी लकड़ी की सम्भ-

उत्पादन की लागत के विभिन्न तत्वों के सापेक्षिक महत्व से बड़ी विभिन्नता है।

किन्तु मिल की Theory of Value पर इस पुस्तक के लेखक ने (अप्रैल 1876 की Fortnightly Review में) जो लेख प्रकाशित किया उसमें यह सिद्ध किया गया है कि कैरनेस ने मिल के अर्थ का गलत अभिप्राय लगाया और वास्तव में मिल के विचारों में उन्होंने अधिक सच्चाई देखने की अपेक्षा कम ही सच्चाई देखी।

कच्चे माल की किसी मात्रा के उत्पादन के खर्चों का "उत्पादन के सीमान्त" के प्रसंग में जिसके लिए कोई लगान नहीं दिया जाता अधिक अच्छी प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु उन वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, ऐसा कहना कंटकमय है। अभी यहाँ पर इस विषय का उल्लेख मात्र करना ही सर्वोत्तम होगा: इसका पूर्ण विवेचन बाद में, मुख्यतया अध्याय 12 में किया जायेगा।

[1] (भाग 2, अध्याय 3) में हम पहले ही देख चुके हैं कि 'उत्पादन' शब्द के आर्थिक प्रयोग के अन्तर्गत किसी वस्तु को इसकी कम आवश्यकता वाले स्थान से अधिक आवश्यकता वाले स्थान को ले जाने से अथवा उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं की तुष्टि करने में सहायता पहुँचाने से पैदा होने वाले नये तुष्टिगुण सम्मिलित हैं।

रण कीमत मे उसको वहाँ तक ले जाने का भाड़ा भी शामिल किया जायेगा। इंग्लैंड के किसी शहर मे एक छोटे से फुटकर त्रेता के लिए उसी लकड़ी की सम्भरण कीमत मे आधे से अधिक तो रेल तथा दलालो के खर्चे शामिल होंगे जो उसके घर तक इच्छित वस्तुएँ पहुँचा देते है, और उसके लिए उस वस्तु का स्टाक रखते है। पुनः किसी विशेष प्रकार के श्रम की पूर्ति-कीमत को कुछ उद्देश्यों से श्रमिक के पालन-पोषण, उसकी सामान्य शिक्षा तथा विशेष प्रकार की व्यापारिक शिक्षा मे होने वाले खर्चो मे विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार के सभव समन्वयो की संख्या असंख्य है, और यद्यपि प्रत्येक समन्वय के अपने-अपने कारण हो सकते है जिन पर इससे सम्बन्धित किसी समस्या का पूर्ण हल निकालने के लिए अलग से विचार करने की आवश्यकता होती है तथापि जहाँ तक इस भाग की सामान्य युक्तियो का सम्बन्ध है, इन सभी कारणो की अवहेलना की जा सकती है।

किसी वस्तु के उत्पादन के खर्चों की गणना करते समय हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्पादित वस्तु की मात्रा मे परिवर्तन होने के साथ कोई नया आविष्कार न होने पर भी उत्पादन के असख्य कारको की सापेक्षिक मात्रा मे परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। दृष्टान्त के लिए, जब उत्पादन का स्तर बढता है तो शारीरिक श्रम के स्थान पर अश्वशक्ति अथवा वाष्पशक्ति का प्रयोग होने लगता है। उत्पादन सामग्री भी अधिक दूरी से और अधिक मात्रा मे लायी जाती है और इस प्रकार उत्पादन के उन खर्चो मे वृद्धि होती है जो वाहकों, दलालो तथा सभी प्रकार के व्यापारियो के कार्यों मे सम्बन्धित हैं।

प्रतिस्थापन सिद्धान्त। उत्पादक अपने ज्ञान तथा व्यावसायिक साहस का अधिकाधिक उपयोग करते हुए प्रत्येक दशा मे उत्पादन के उन्ही कारको का चयन करते है जो उनके उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम सिद्ध होते है। यह मानी हुई बात है कि उत्पादन के जिन कारको का उपयोग किया जाता है उनकी सम्भरण कीमतो का योग उन अन्य कारकों की सम्भरण कीमतो के योग से हमेशा ही कम होगा जिनका इनके बदले प्रतिस्थापन किया जा सकता था और उत्पादक जब कभी यह देखें कि स्थिति वास्तव मे ऐसी नही है तो वे निश्चित रूप से कम खर्चीले ढग को अपनाना प्रारम्भ कर देंगे। आगे चलकर हम यह देखेंगे कि लगभग इसी प्रकार से समाज भी किस प्रकार दक्षता के अनुपात मे अधिक प्रभार लेने वाले उपक्रामी के बदले मे दूसरे का प्रतिस्थापन करता है। प्रसंग की सुविधा की दृष्टि से इसे हम प्रतिस्थापन सिद्धान्त कह सकते हैं।

यह सिद्धान्त प्राय आर्थिक अध्ययनों के सभी क्षेत्रों मे लागू होता है।[1]

यहाँ पर हमारे अध्ययन का विषय। §4. इस अध्याय मे जिस विषय पर हम विचार करना चाहते हैं वह इस प्रकार है. हम प्रसामान्य माँग और प्रसामान्य सम्भरण के साम्य का इनके सर्वाधिक सामान्य रूपो मे पता लगाना चाहते हैं। हम उन विशेषताओ की यहाँ पर उपेक्षा कर रहे हैं जो अर्थ-विज्ञान के कुछ निश्चित भागों मे ही विशेष रूप से पायी जाती हैं और यहाँ हम अपना ध्यान उन व्यापक सम्बन्धों तक ही सीमित रखना चाहते हैं जो लगभग सम्पूर्ण

1 भाग 3, अध्याय 5 तथा भाग 4, अध्याय 7, अनुभाग 8 देखिए।

अर्थशास्त्र में सामान्य रूप में पाये जाते है। इस प्रकार हम मान लेते है कि माँग और सम्भरण की शक्तियों में परस्पर स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है, और किसी भी पक्ष के व्यापारियों में किसी भी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, अपितु प्रत्येक अपने हित के अनुसार कार्य करता है, और उनमें अत्यधिक स्वतंत्र प्रतियोगिता पायी जाती है, अर्थात् क्रेता अन्य क्रेताओ के साथ और विक्रेता अन्य विक्रेताओ के साथ अधिकतया स्वतंत्र रूप से प्रतियोगिता करते हैं। यद्यपि प्रत्येक अपने हित के अनुसार कार्य करता है किन्तु उसे यह भी पर्याप्त ज्ञान होता है कि अन्य लोग क्या कर रहे है जिससे कोई भी किसी अन्य की अपेक्षा न तो कम कीमत लेता है और न अधिक कीमत देता है। अस्थायी रूप से यह मान लिया गया है कि तैयार माल तथा उसके उत्पादन के कारकों, मजदूर के पारिश्रमिक तथा पूंजी उधार लेने के सम्बन्ध मे भी स्थिति ऐसी ही है। कुछ सीमा तक हमने पहले भी पता लगाया है और हमे आगे भी पता लगाना होगा कि ये मान्यताएँ किस सीमा तक जीवन के वास्तविक तथ्यों के अनुरूप हैं। किन्तु अभी हम इसी कल्पना के अनुसार आगे बढ़ेगे। हम यह मान लेते है कि एक समय मे किसी बाजार मे एक ही कीमत रहेगी (यहाँ यह स्मरण रहे कि बाजार के विभिन्न भागो मे स्थित व्यापारियों को माल पहुँचाने मे होने वाले खर्चों के अन्तर के लिए आवश्यकतानुसार अलग से छूट रखी जाती है और यदि वह बाजार खुदरा बाजार हो तो इन खर्चों मे खुदरे बाजार के विशेष खर्चों को भी शामिल किया जाता है)।

यहाँ पर बाजार में माँग और सम्भरण की स्वतंत्र प्रतियोगिता की कल्पना की गयी है।

ऐसे बाजार मे किसी वस्तु की प्रत्येक मात्रा की माँग कीमत होती है, अर्थात् ऐसी कीमत होती है जिस पर उस वस्तु की हर निश्चित मात्रा के लिए एक दिन या एक सप्ताह या एक वर्ष मे अनेक खरीददार रहते है। उस वस्तु की किसी निश्चित मात्रा की कीमत पर जिन-जिन परिस्थितियों का नियंत्रण रहता है वे हर समस्या के साथ बदलती रहती है। किन्तु सभी दशाओ मे किसी वस्तु की जितनी ही अधिक मात्रा विक्रय के लिए बाजार मे आती है उसके लिए उतनी ही कम कीमत पर खरीददार मिलते है, या अन्य शब्दो मे, किसी बुशल या गज की माँग-कीमत विक्रय की जाने वाली मात्रा मे वृद्धि के साथ-साथ घटती जाती है।

माँग की सामान्य दशाएं।

हर एक समस्या की विशेष परिस्थिति को ध्यान मे रख कर ही समय की इकाई का चयन किया जा सकता है यह एक दिन, एक महीना, एक वर्ष या यहाँ तक कि एक पीढ़ी भी हो सकती है। किन्तु प्रत्येक दशा मे यह विचाराधीन बाजार की अवधि की तुलना मे कम होनी चाहिए। यहाँ यह मान लेना होगा कि इस समस्त अवधि मे बाजार के सामान्य वातावरण मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होता, अर्थात् दृष्टान्त के रूप मे, फैशन, रुचि मे कोई परिवर्तन नही होता, कोई ऐसी प्रतिस्थापक वस्तु भी नही मिलती जिससे माँग प्रभावित हो जाये और कोई नया आविष्कार भी नही होता जो सम्भरण मे उलट-पुलट कर दे।

प्रसामान्य सम्भरण की दशाएं कम निश्चित होती है, और बाद मे आने वाले अध्यायों मे इनका निश्चित रूप से पूर्ण अध्ययन किया जायेगा। विचाराधीन समय की अवधि के अनुसार ही इन दशाओ मे अधिक परिवर्तन होगे। इसका मुख्य कारण यह है कि मशीनों तथा अन्य व्यापारिक सयंत्रों की भौतिक पूंजी और व्यावसायिक

सम्भरण की दशाएं प्रसंगानुकूल समय की अवधि के अनुसार

बदलती रहेंगी। कुशलता तथा योग्यता एवं व्यवस्था की अभौतिक पूंजी दोनों की ही धीरे-धीरे वृद्धि होती है और इनका ह्रास भी धीरे-धीरे होता है।

किन्तु अस्थायी रूप से प्रसामान्य सम्भरण कीमत को किसी प्रतिनिधि फर्म के उत्पादन के उन खर्चों के बराबर समझा जा सकता है जिसमें प्रबन्ध की सकल (gross) आय भी सम्मिलित होती है।

अब हम एक "प्रतिनिधि फर्म" का स्मरण करें जिसके उत्पादन की आन्तरिक तथा वाह्य सभी किफायतें इसके द्वारा बनायी गयी वस्तु के उत्पादन के कुल परिणाम पर निर्भर हैं,[1] और इस निर्भरता के विषय मे अधिक अध्ययन किये बिना ही हम यह मान लेते है कि उस वस्तु की किसी भी मात्रा की प्रसामान्य सम्भरण कीमत उस फर्म की उस वस्तु के उत्पादन होने वाले प्रसामान्य खर्चों (जिसमें प्रबन्ध की सकल आय भी शामिल है)[2] के बराबर होगी। अर्थात् हम यह मान लेते है कि इस कीमत की प्रत्याशा के कारण ही उत्पादन की कुल मात्रा को पूर्ववत् रखा जा सकता है। इस बीच कुछ फर्में तो प्रगति करेंगी और अपनी निकासी को बढ़ायेंगी, तथा अन्य फर्मों का पतन होने लगेगा, और उनकी निकासी भी घट जायेगी, किन्तु कुल उत्पादन में कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। सम्भरण कीमत से ऊँची कीमत के होने पर उदीयमान फर्मों की प्रगति बढ़ जायेगी और पतनशील फर्मों का विनाश, यद्यपि पूर्णत रुक नहीं जायेगा किन्तु मन्द हो जायेगा। इसका निवल परिणाम यह होगा कि कुल उत्पादन मे वृद्धि हो जायेगी। इसके विपरीत कीमत के इससे (सम्भरण कीमत से) कम होने पर पतनशील फर्मों का विनाश अधिक शीघ्रता से होने लगेगा, और उदीयमान फर्मों का विकास मन्द पड़ जायेगा तथा इससे उत्पादन घट जायेगा। कीमत के बढ़ने-घटने से उन बड़ी-बड़ी संयुक्त पूंजी कम्पनियों पर भी इसी भाँति किन्तु भिन्न मात्रा मे प्रभाव पड़ेगा जिनमे बहुधा गतिरोध आ जाता है किन्तु जो कदाचित ही लुप्त होती हैं।

कीमतों की उस सूची का निर्माण जिस पर किसी वस्तु का संभरण निर्भर है, अथव इसकी संभरण सारणी।

§5. अपने विचारों को एक निश्चित रूप देने के लिए हम ऊन के व्यापार से एक दृष्टान्त लेते हैं। हम यह कल्पना करते हैं कि एक व्यक्ति जिसे ऊन के व्यापार का समुचित ज्ञान है, स्वयं यह पता लगाने का प्रयत्न करता है कि प्रतिवर्ष किसी विशेष प्रकार के कपड़े के कुछ निश्चित दस लाख गजों की क्या प्रसामान्य सम्भरण कीमत होगी। उसे (i) ऊन कोयला तथा इसे बनाने में लगने वाली अन्य सामग्री की कीमत (ii) इमारतों, मशीन तथा अन्य अचल पूंजी की टूट-फूट तथा उनके मूल्य ह्रास, (iii) सम्पूर्ण पूंजी के ब्याज तथा बीमा (iv) फैक्टरियों में काम करने वालों की मजदूरी, तथा (v) जोखिम लेने वालों, कार्य का संचालन तथा निरीक्षण करने वालों के प्रबन्ध की सकल आय (जिसमे हानि की सम्भावना से किया गया बीमा भी सम्मिलित है) की गणना करनी होगी। निस्सन्देह वह कपड़े के विभिन्न उत्पादन के कारकों की सम्भरण कीमतो को उनकी अलग-अलग मात्राओं की जरूरत के अनुसार तथा इस कल्पना के आधार पर आँकेगा कि सम्भरण की दशाएँ प्रसामान्य हैं, और कपड़े की सम्भरण कीमत निकालने के लिए वह इन सभी कीमतों का योग करेगा।

अब हम सम्भरण कीमतो (या सम्भरण सारणी) की एक ऐसी सूची की कल्पना करते है जो माँग कीमतो की सूची के ही समान आधार पर बनायी गयी है[3]: एक वर्ष या

---

1 भाग 4, अध्याय 13, अनुभाग 2 देखिए।

2 भाग 4, अध्याय 12 के अन्तिम पैराग्राफ को देखिए।

3 भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 4 देखिए।

समय की किसी अन्य इकाई में उस वस्तु की हर एक मात्रा की जो संभरण कीमत होगी उसे उस मात्रा के सामने लिया गया है।[1] जब किसी वस्तु का प्रवाह या इसकी

---

1 माँग वक्र की भाँति वस्तु की मात्राओं को ख ग रेखा पर और कीमतों को क ख रेखा के समानान्तर मापते हुए हम ख ग रेखा के म बिन्दु पर समकोण बनाती हुई एक म प रेखा खीचते हैं जो ख म मात्रा की सम्भरण कीमत प्रदर्शित करती है, और प बिन्दु को जो अधिकतम कीमत का प्रतिरूप है सम्भरण बिन्दु कहा जा सकता है। म प कीमत वस्तु की ख म मात्रा के विभिन्न कारकों की सम्भरण कीमतों के योग से बनी है। प के बिन्दु-पथ (Locus) को सम्भरण वक्र कहा जा सकता है।
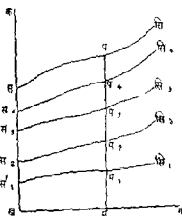
रेखाचित्र 18

दृष्टान्त के लिए मान लें कि कपड़े की ख म मात्रा बनाने में हम प्रतिनिधि फर्म के उत्पादन के खर्चों को निम्न पाँच शीर्षों में विभाजित करते हैं। (i) म प₁ ऊन तथा अन्य चल पूंजी की सम्भरण कीमत है जो इसके निर्माण में लग जायेगी, (ii) प₁ प₂ इस सम्बन्ध में इमारतों, मशीन तथा अन्य अचल पूंजी की टूट-फूट तथा इसका मूल्य ह्रास है, (iii) प₂ प₃ संपूर्ण पूंजी पर पड़ने वाले व्याज तथा इसके बीमे के खर्चे हैं, (iv) प₃ प₄ फैक्टरी में कार्य करने वाले कर्मचारियों की मजदूरी है, और (v) प₄ प जोखिम लेने वालों तथा कार्य का संचालन करने वालों के प्रबन्ध की सकल आय, इत्यादि है। इस प्रकार जैसे ही म बिन्दु ख बिन्दु के दाहिनी ओर बढ़ता जाता है, प₁, प₂, प₃, प₄, में से प्रत्येक एक-एक वक्र बनायेंगी, और अन्त में प से होती हुई सम्भरण वक्र बनेगी जो कपड़े के विभिन्न उत्पादन के कारकों की संभरण कीमतों को एक दूसरे के ऊपर रखने से बनी होगी।

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये सम्भरण कीमतें उन विभिन्न कारकों की इकाइयों की सम्भरण कीमतें नहीं हैं अपितु ये एक गज कपड़े के निर्माण के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों की सम्भरण कीमतें हैं। इस प्रकार, दृष्टान्त के रूप में, प₃ प₄ श्रम की किसी निश्चत मात्रा की कीमत नहीं है अपितु यह कपड़े के कुल ख ग गजों के उत्पादन होने पर एक गज कपड़े के निर्माण में लगी श्रम की कीमत है। (इसी अध्याय का अनुभाग 3 देखिए)। हमें अभी यहाँ यह विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि फैक्टरी की जमीन के भाड़े को ही गया किसी अलग श्रेणी में रखा जा सकता है: यह विषय उन प्रश्नों से सम्बन्धित है जिन पर बाद में विचार किया जायेगा। हम उन शुल्कों तथा करों पर भी यहाँ ध्यान नहीं दे रहे हैं जिनके विषय में निश्चय ही उसे लेखा-जोखा रखना होगा।

(वार्षिक) मात्रा बढ़ती जाती है तो इसकी सम्भरण कीमत बढ़ भी सकती है, घट भी सकती है, या यह वैकल्पिक रूप से बढ़ती और घटती है ।[1] क्योंकि यदि प्रकृति से कच्ची सामग्री की ओर अधिक मात्रा निकालने के मानव प्रयत्नों का प्रकृति कड़ा विरोध करे और उस अवस्था में उत्पादन में नयी महत्वपूर्ण किफायतें करने की अधिक गुजाइश न हो तो सम्भरण कीमत बढ़ेगी। किन्तु यदि उत्पादन का परिणाम अधिक हो तो सम्भवतः यह लाभदायक होगा कि हाथ के काम मशीन द्वारा और पेशीय बल की वाष्पशक्ति द्वारा प्रतिस्थापन किया जाय। इससे उत्पादन के परिणाम में वृद्धि होने से प्रतिनिधि फर्म के उस वस्तु के उत्पादन के खर्चे कम हो जायेंगे। किन्तु जब वस्तु की मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ सम्भरण कीमतें घटती जाती है इसमें कुछ भी कुछ विशेष कठिनाइयाँ है, और उन पर यहाँ पर विचार न करके इस भाग के अध्याय 12 मे विचार किया जायेगा।

साम्य का अर्थ।

§6 (समय की किसी इकाई मे) जब किसी वस्तु के उत्पादन की मात्रा इतनी हो कि उसके लिए सम्भरण कीमत से माँग कीमत अधिक हो तो विक्रेताओं को वहाँ बेचने के लिए वस्तुएँ लाने से अन्यथा जो लाभ होता उससे कही अधिक लाभ होगा। इस परिस्थिति मे इस सक्रिय शक्ति के कार्य करने से विक्रय के लिए लायी गयी मात्रा मे वृद्धि होती जाती है। दूसरी ओर, यदि उत्पादन की मात्रा ऐसी हो कि उस पर माँग कीमत सम्भरण कीमत से कम हो तो विक्रेताओं के लिए बाजार मे (उतनी मात्रा मे) वस्तुएँ लाना लाभप्रद नही होगा। इसके परिणामस्वरूप जो उत्पादक इस दुविधा मे थे कि उत्पादन करते रहना चाहिए या नही, वे उत्पादन करना बन्द कर देंगे और एक ऐसी प्रवृत्ति सक्रिय रूप से कार्य करेगी जिसके फलस्वरूप विक्रय के लिए लायी गयी मात्रा में कमी हो जायेगी। जब माँग कीमत सम्भरण कीमत के बराबर होती है तो उत्पादित मात्रा मे न तो वृद्धि की और न कमी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है, और इसमें साम्य स्थापित हो जाता है।

साम्य-मात्रा तथा साम्य-कीमत।

जब माँग और सम्भरण मे साम्य रहता है तो समय की किसी इकाई मे जितनी मात्रा का उत्पादन किया जाता है उसे **साम्य-मात्रा**, और जिस कीमत पर इसका विक्रय किया जाता है उसे **साम्य-कीमत** कहा जाता है।

स्थिर साम्य।

इस प्रकार का साम्य **स्थिर** (Stable) रहता है, अर्थात् यदि इससे कीमत कुछ भिन्न हो तो लोलक (pendulum) की भाँति, जो अपने निम्नतम बिन्दु पर दोलन (oscilate) करता है, इसमे भी पुनः इसी अवस्था में आने की प्रवृत्ति पायी जाती है, और सभी स्थिर साम्यों का यह गुण है कि उनमे साम्य मात्राओं से कम मात्राओं की माँग कीमत सम्भरण कीमत से अधिक होती है, तथा इसका प्रतिलोम। क्योंकि जब

---

1 अर्थात् सम्भरण वक्र के दाहिनी ओर बढ़ता हुआ कोई बिन्दु या तो ऊपर की ओर बढ़ेगा या फिर नीचे चला जायेगा, या यह भी हो सकता है कि यह वैकल्पिक रूप से ऊँचा उठता या गिरता जाय। दूसरे शब्दों में सम्भरण वक्र का झुकाव धनात्मक या ऋणात्मक या कुछ देर तक धनात्मक और ऋणात्मक हो सकता है। पृष्ठ 94 में फुटनोट 2 देखिए।

माँग कीमत सम्भरण कीमत से अधिक होती है तो उत्पादन की मात्रा बढ़ती है। अतः यदि साम्य मात्रा से कम मात्राओं पर माँग कीमत सम्भरण कीमत से अधिक हो तो उत्पादन की मात्रा में उस साम्य मात्रा से अस्थायी रूप से कुछ कमी होने पर पुन साम्य मात्रा के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जायेगी। इस प्रकार इस दिशा में होने वाले विस्थापनों (displacements) में साम्य स्थिर रहता है। यदि साम्य मात्रा से कम मात्राओं के लिए माँग कीमत सम्भरण कीमत से अधिक हो तो इस मात्रा से कुछ ही अधिक मात्राओं के लिए माँग कीमत निश्चय ही सम्भरण कीमत से कम होगी : और अत यदि उत्पादन के पैमाने को साम्य स्थिति से भी कुछ आगे बढ़ा दिया जाय तो इसमें साम्य स्थिति की ओर प्रत्यागमन की प्रवृत्ति पायी जायेगी, और इस दिशा में भी होने वाले विस्थापनों में साम्य स्थिर होगा।

स्थिर साम्य की स्थिति के निकट दोलन कदाचित् ही तालबद्ध होते हैं।

जिस प्रकार किसी डोरी से लटकते हुए पत्थर को यदि उसकी साम्य स्थिति से विस्थापित कर दिया जाय तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति शीघ्र ही उसे पुन. साम्य स्थिति पर ले आती है, उसी प्रकार जब माँग और सम्भरण में स्थिर साम्य विद्यमान हो और यदि किसी घटनावश उत्पादन की मात्रा साम्य स्थिति से भिन्न हो जाय तो तुरन्त ही वे शक्तियाँ कार्य करने लगती हैं जो इसे साम्य स्थिति की ओर ले आती है। उत्पादन की मात्रा की अपनी साम्य स्थिति के समीप की गतिविधियाँ भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की होती हैं।[1]

---

1 भाग 5, अध्याय 1, अनुभाग 1 से तुलना कीजिए। माँग और सम्भरण के साम्य को ज्यामिति द्वारा प्रदर्शित करने के लिए, जैसा रेखाचित्र 19 में किया गया है, हम माँग और सम्भरण वक्रों को साथ-साथ खींचते हैं।

रेखाचित्र 19

यदि ख र उत्पादन की वास्तविक दर को प्रदर्शित करे और माँग कीमत, र दा, सम्भरण कीमत, र सा, से अधिक हो तो उत्पादन अत्यधिक लाभदायक होगा और इससे वृद्धि की जायेगी। र 'जो वस्तु की मात्रा का सूचकांक' है दाहिनी दिशा की ओर बढ़ेगा। इसके विपरीत, यदि र दा, र सा से कम हो तो र की गति बायीं दिशा की ओर होगी। यदि र दा और र सा आपस में बराबर हों, अर्थात् र, वक्र प्रतिच्छेद (intersection of the curve) के किसी बिन्दु के नीचे लम्बवत् हो तो माँग और सम्भरण से साम्य होगा।
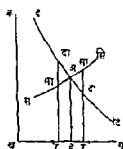
किसी ऐसी वस्तु के स्थिर साम्य के सम्बन्ध से जिसमें उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, यह एक विशेष आरेख (diagram) है। यदि हमने स सि को एक आधारवत् सीधी रेखा का रूप दिया होता तो यह "क्रमागत उत्पत्ति समता नियम" सम्बन्धी विषय होता और इसमें सम्भरण कीमत वस्तु की सभी मात्राओं के लिए एक ही रहती।

यदि स सि ऋणात्मक रूप से झुकी हुयी हो किन्तु इसका ढाल द दि से कम हो (इस अवस्था की आवश्यकता बाद में चलकर अधिक अच्छी तरह मालूम हो जायेगी)

किन्तु वास्तविक जीवन में इस प्रकार के दोलन कदाचित ही उतने तालबद्ध होते है जितने की किसी डोरी से अबाधरूप से लटकते हुए पत्थर के होते है। इन दोनों की तुलना उस समय अधिक यथार्थ होगी जब इस डोरी को हिलोरें मारती हुई किसी चक्की मे आने वाली ऐसी जलधारा मे लटकता हुआ मान लिया जाता जिसकी धारा को कभी तो बिना किसी बाधा के बहने दिया जाता है और कभी इसमे आंशिक रूप से कमी कर दी जाती है। ये उलझनें भी उन बाधाओ को पर्याप्त रूप से व्यक्त नही करती जिनका अर्थशास्त्री और व्यापारी दोनो को ही समान रूप से सामना करना पड़ता है। यदि वह व्यक्ति जो डोरी पकड़े हुए है अपने हाथ को आंशिक रूप से तालबद्ध तथा आंशिक रूप से स्वच्छन्द गतियो से हिलायें-डुलाये तो इस दृष्टान्त से मूल्य की कुछ बहुत वास्तविक तथा व्यावहारिक समस्याओं से सम्बन्धित कठिनाइयो का सही चित्रण होगा। क्योकि वास्तव मे मांग और सम्भरण सारणियाँ एक लम्बे समय तक व्यावहारिक रूप मे अपरिवर्तित नही रहती, अपितु इनमे समय-समय पर परिवर्तन होते रहते है, और इनमे होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के फलस्वरूप साम्य मात्रा तथा साम्य कीमत बदलती रहती है, और इस प्रकार उन केन्द्रो को जिनके समीप वस्तु की मात्रा तथा उसकी कीमत दोलन करती है नयी स्थितियां प्रदान होती है।

सम्भरण कीमत तथा उत्पादन की वास्तविक लागत का असम्बद्ध सम्बन्ध।

ये बाते माग और सम्भरण के सम्बन्ध मे, जिस पर हम अब विचार करेंगे, समय की अत्यधिक महत्ता को व्यक्त करती है। हम धीरे-धीरे इस सिद्धान्त मे कि जिस कीमत पर कोई वस्तु उत्पन्न की जाती है वह उसकी वास्तविक उत्पादन लागत का निरूपण करती है, विभिन्न प्रकार की अनेक त्रुटियो का पता लगायेंगे। क्योकि वर्तमान युग की भाँति तीव्र परिवर्तन के किसी युग मे प्रसामान्य माँग और सम्भरण के साम्य तथा किसी वस्तु के उपभोग से प्राप्त कुल आनन्द तथा उस वस्तु के उत्पादन मे लगे कुल प्रयत्नो एव त्यागो मे कोई विशेष समानता नही पायी जाती. इनमें उस समय भी यथार्थ सादृश्य नही स्थापित किया जा सकता जब प्रसामान्य आय तथा ब्याज से प्रयत्नो एव त्यागो को यथार्थ रूप से मापा जा सकता है, भले ही ये इन्ही के लिए किये गये द्रव्यिक भुगतान है।

'प्रसामान्य साम्य' और 'दीर्घकाल में' वाक्यांशों की महत्ता।

एडमस्मिथ तथा अन्य अर्थशास्त्रियो के अत्यधिक उद्धृत तथा अत्यधिक गलत समझे गये सिद्धान्त का यही वास्तविक भाव है कि किसी वस्तु के प्रसामान्य अथवा प्राकृतिक मूल्य को दीर्घकाल मे आर्थिक शक्तियो द्वारा निर्धारित किया जाता है। यदि जीवन की सामान्य दशाएँ इतनी लम्बी अवधि तक स्थिर रहे कि सभी के पूर्ण परिणामो की गणना की जा सके तो यह वह औसत मूल्य है जिसे आर्थिक शक्तियाँ निर्धारित करेंगी।[1]

तो यह किसी ऐसी वस्तु के स्थिर साम्य का विषय होगा जिसमें क्रमागत उत्पत्ति-वृद्धि-नियम लागू होता है। दोनों दशाओ में ऊपर दी गयी युक्तियाँ पूर्णतया सत्य सिद्ध हुई हैं, किन्तु अन्तिम विषय में कुछ समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिन पर यहां विचार नहीं किया जायेगा।

1 भाग 5, अध्याय 5, अनुभाग 2 तथा परिशिष्ट ज (H) अनुभाग 4 देखिए।

किन्तु हमें भविष्य का पूरा-पूरा पूर्वज्ञान नहीं हो सकता। अप्रत्याशित घटना घट सकती है, और वर्तमान प्रवृत्तियों के पूर्ण प्रभाव पड़ने के पूर्व ही उनमें सुधार किये जा सकते है। जीवन की सामान्य दशाएं स्थिर नहीं होने के कारण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई है जिनका आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक समस्याओं में लागू करने से निवारण होता है।

वस्तुतः 'प्रसामान्य' का अर्थ 'प्रतिस्पर्द्धात्मक' नही होता। 'बाजार' कीमतें तथा 'सामान्य' कीमतें समान रूप से ऐसे अनेक प्रभावों द्वारा निर्धारित की जाती है जिनमें कुछ का आधार नैतिक और कुछ का शारीरिक होता है, तथा जिनमें से कुछ प्रतिस्पर्द्धात्मक होती है तथा कुछ नहीं होतीं। 'बाजार' तथा 'प्रसामान्य' कीमतों के बीच भेद दिखलाते समय तथा पुनः प्रसामान्य कीमत[1] के सकुचित तथा व्यापक प्रयोगों के बीच अन्तर स्पष्ट करते समय ऊपर बतलाये गये प्रभावों की दृढ़ता तथा उनके परिणामों की गणना के लिए दिये गये समय का उल्लेख किया गया है।

मूल्य पर तुष्टिगुण तथा उत्पादन की लागत के प्रभाव।

§7. इस खण्ड के शेष भाग में मुख्यतया इस सिद्धान्त की व्याख्या की जायेगी और इसकी सीमा निर्धारित की जायेगी कि किसी वस्तु का मूल्य दीर्घकाल में उसकी उत्पादन लागत के लगभग अनुरूप होता है। साम्य के सम्बन्ध में इस अध्याय में तो थोड़ा ही विचार किया गया है किन्तु इस पर इस भाग के अध्याय 5 और 12 में अधिक विचार किया जायेगा: और इस विवाद का कि मूल्य "उत्पादन की लागत" से नियन्त्रित होता है या "तुष्टिगुण" से, परिशिष्ट 'झ' में कुछ विवरण दिया जायेगा। किन्तु यहाँ पर इस अन्तिम विषय के सम्बन्ध में एक या दो शब्द कह देना उचित होगा।

इस विवादग्रस्त प्रश्न की भाँति कि मूल्य उत्पादन की लागत से अथवा तुष्टिगुण से नियन्त्रित होता है; यह भी एक विवाद का विषय है कि कागज के किसी टुकड़े को कैंची की दोनों धारों में ऊपर की धार से काटा जाता है या नीचे की धार से। यह सत्य है कि यदि कैंची की एक धार को स्थिर रखा जाय और दूसरी को चला कर कागज काटा जाय तो हम लापरवाही से सक्षेप में यह कह सकते है कि कागज को कैंची की दूसरी धार से काटा गया है, किन्तु सच पूछो तो यह कथन सत्य नहीं है, और इस पर केवल तब तक आपत्ति नहीं होनी चाहिए जब तक यह वास्तविकता की पूर्णतया वैज्ञानिक व्याख्या न होकर उसका केवल प्रचलित भाषा में व्यक्त किया गया रूप हो।

बाजार मूल्यों में पहली बात का अधिक प्रभाव पड़ता है, और प्रसामान्य मूल्यों

इसी भाँति जब पहले से बनी हुई किसी वस्तु को बेचना पड़ता है तो लोग इसके लिए जिस कीमत को देने को तैयार होंगे वह इसको खरीदने की इच्छा तथा उस धनराशि से नियन्त्रित होगी जिसे वे इसे प्राप्त करने के लिए खर्च कर सकते है। इसे क्रय करने की इच्छा आंशिक रूप से इस सयोग पर निर्भर है कि यदि वे इसको न खरीदें तो इसी प्रकार की कम कीमत की दूसरी वस्तु खरीद सकेंगे. यह इसकी पूर्ति को नियन्त्रित करने वाले कारणों पर निर्भर है, जो स्वयं उत्पादन की लागत पर निर्भर है। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि जितना माल बेचा जाय उसकी मात्रा व्यावहारिक रूप से निश्चित हो। दृष्टान्त के रूप में मछली बाजार में ऐसा ही होता है

1 पीछे पृष्ठ 29-32 देखिए।

में दूसरी बात अधिक प्रमुख होती है।

क्योकि वहाँ किसी दिन मछली का मूल्य सिल्ली पर रखी गयी मछलियों के स्टाक तथा उनकी माँग के सम्बन्ध से ही पूर्णतया नियन्त्रित होता है। यदि कोई व्यक्ति पहले से ही यह कल्पना करे कि मछलियों का स्टाक अवश्य ही रहेगा यह कहता है कि कीमत माँग द्वारा निर्धारित होगी तो उसका संक्षेप मे ऐसा कहना तभी तक क्षम्य है जब तक वह यह दावा नही करता कि जो कुछ वह कहता है वह बिलकुल यथार्थ है। अतः पुनः यह कहना कि एक दुर्लभ पुस्तक को क्रिस्ती (Christie) के नीलाम कक्ष में बेचने और पुनः बेचने से जो विभिन्न कीमतें मिलती है वे पूर्णतया माँग द्वारा ही नियंत्रित होती हैं, यद्यपि बिलकुल सही तो नही किन्तु क्षम्य है।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि कुछ वस्तुओं मे क्रमागत-उत्पत्ति-समता नियम लागू होता है, अर्थात् उनकी औसत उत्पादन लागत प्रायः वही रहती है चाहे उनकी थोड़ी या अधिक मात्रा का उत्पादन किया जाय। ऐसी दशा मे बाजार कीमत सामान्यतया उत्पादन की इस निश्चित और स्थिर लागत के आस-पास घटती बढ़ती रहती है। यदि माँग अधिक हो तो बाजार कीमत उस स्तर से कुछ समय के लिए ऊँची हो जायेगी, और इसके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी और बाजार कीमत गिर जायेगी। यदि माँग कुछ समय के लिए अपने साधारण स्तर से कम हो जाय तो इसके विपरीत प्रतिक्रिया होगी।

इस दशा मे यदि कोई व्यक्ति बाजार मे उतार-चढ़ाव को ध्यान मे नही रखता और यह निश्चित मान लेता है कि उस वस्तु की चाहे जैसे भी हो इतनी अधिक माँग होगी कि उसकी थोड़ी बहुत मात्रा अवश्य ही उसकी उत्पादन की लागत के बराबर कीमत मे बिक जायेगी तो उसे माँग के प्रभाव की उपेक्षा करने और यह कहने का अपराधी नही समझा जायेगा कि (प्रसामान्य) कीमत को उत्पादन की लागत द्वारा नियंत्रित किया जाता है। किन्तु उसे अपने सिद्धान्त की शब्द रचना मे वैज्ञानिक यथार्थता का दावा नही करना चाहिए, और माँग के प्रभाव का उपयुक्त विवरण देना चाहिए।

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकालते है कि प्राय. विचाराधीन अवधि जितनी ही छोटी होगी मूल्य पर माँग का उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा, और यह अवधि जितनी ही लम्बी होगी मूल्य मे उत्पादन की लागत के प्रभाव का महत्व उतना ही बढ़ता जायेगा। क्योकि यह मानी हुई बात है कि उत्पादन की लागत मे होने वाले परिवर्तन के प्रभाव माँग में होने वाले परिवर्तनो के प्रभावो की अपेक्षा अधिक समय बाद ज्ञात होते है। किसी भी समय वास्तविक मूल्य पर, जिसे बहुधा बाजार मूल्य भी कहते है, निरन्तर प्रभाव डालने वाले कारणो की अपेक्षा आकस्मिक घटनाओ तथा ऐसे कारणो का बहुधा अधिक प्रभाव पड़ता है जिनके परिणाम अस्थिर तथा क्षणभंगुर होते है। किन्तु यदि अवधि लम्बी हो तो ये अस्थिर और अनियमित कारण एक दूसरे के प्रभावो को मिटा देते है जिससे दीर्घकाल मे निरन्तर कार्यशील रहने वाले कारणो का मूल्य पर पूर्ण आधिपत्य रहता है। यहाँ तक कि सबसे स्थायी कारणों मे भी परिवर्तन हो सकते है। क्योकि उत्पादन के समूचे ढाँचे मे सुधार किये जाते है और विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन की सापेक्षिक लागतें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सदा के लिए बदल जाती हैं।

हम जब पूंजीवादी नियोजक के दृष्टिकोण से लागतों पर विचार करते हैं तो निस्सन्देह इन्हें द्रव्य के रूप मे मापते है, क्योंकि उसका अपने कर्मचारियों के कार्य के लिए उन्हें द्रव्य का भुगतान करने से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उनके प्रयत्नों तथा उनके लिए आवश्यक प्रशिक्षण की वास्तविक लागतो से उसका केवल परोक्ष सम्बन्ध होता है, यद्यपि जैसा बाद मे चलकर देखेंगे कि कुछ समस्याओ के सम्बन्ध मे उसे स्वयं अपने श्रम के मूल्यांकन की भी कभी-कभी आवश्यकता पड़ जाती है। किन्तु लागतों पर जब सामाजिक दृष्टिकोण मे विचार किया जाता है और जब यह पता लगाया जाता है कि बदलती हुई आर्थिक दशाओं के साथ-साथ किसी निश्चित परिणाम को प्राप्त करने की लागत बढ रही है या घट रही है तो हमारा सम्बन्ध अनेक प्रकार के प्रयत्नो की तथा प्रतीक्षा करने की वास्तविक लागतो से होता है। यदि प्रत्यनो के रूप मे द्रव्य की क्रय-शक्ति स्थिर रहती है और यदि प्रतीक्षा करने के पुरस्कार की दर भी स्थिर रहती है तो लागतो का द्रव्यिक माप वास्तविक लागत के अनुरूप होता है . किन्तु इस प्रकार के सादृश्य को सहज मे ही स्वीकार नही कर लेना चाहिए। अगले अध्यायो मे 'लागत' शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध मे ये विचार पर्याप्त होंगे, यद्यपि वहाँ भी इस प्रसग मे कोई विशेष सूचना नही दी गयी है।

व्यवसायी का सम्बन्ध 'द्रव्यिक लागतों' से है, किन्तु प्रसामान्य मूल्य के विकास का सम्बन्ध वास्तविक लागतों से है।

अध्याय 4

आय के साधनों का विनियोजन तथा वितरण

भावी प्रतिफल के लिए विनियोजन करने की नीति उस व्यक्ति के कार्य से स्पष्ट हो सकती है जो किसी वस्तु को अपने ही व्यक्तिगत प्रयोग के लिए बनाता है।

§1 प्रसामान्य मूल्यों के अध्ययन में हमें सबसे पहले जिस कठिनाई को दूर करना है वह भावी प्रतिफल के लिए साधनों के विनियोजन को नियंत्रित करने वाले प्रयोजनों से सम्बन्धित है। सर्वप्रथम किसी ऐसे व्यक्ति के कार्य का अध्ययन करना अच्छा रहेगा जो अपनी इच्छित वस्तु का न तो क्रय करता है, और न अपने द्वारा बनायी गयी वस्तु का विक्रय करता है, किन्तु जो अपने लिए स्वयं ही कार्य करता है। वह किसी भी प्रकार के मौद्रिक भुगतानो के हस्तक्षेप के बिना अपने प्रयत्नों एवं त्यागों में तथा उनके फलस्वरुप प्राप्त होने वाले आनन्दो मे सतुलन स्थापित करता है।

उदाहरण के लिए एक ऐसे व्यक्ति को देखिए जो अपने लिए उस भूमि पर तथा उस सामग्री से मकान बनाता है जो उसे प्रकृति से निःशुल्क प्राप्त हुई है, तथा जो अपने कार्य में बढ़ने के साथ-साथ अपने औजारों को भी बनाता जाता है और जो औजारों के बनाने में लगे श्रम को भवन-निर्माण के श्रम का ही एक अंश समझता है। उसे अपनी किसी भी प्रस्तावित योजना मे भवन-निर्माण के लिए अपेक्षित प्रयत्नो का अनुमान लगाना होगा, और प्रत्येक प्रयास के किए जाने तथा भवन के अपने उपयोग के लिए तैयार हो जाने के बीच की अवधि के लिए स्वभावतः : गुणोत्तर अनुपात (एक प्रकार चक्रवृद्धि ब्याज) मे बढ़ने वाली राशि का प्रबन्ध करना होगा। उस भवन के पूर्णरूप से तैयार हो जाने पर उससे इतना तुष्टिगुण मिलना चाहिए कि इससे न केवल उसके प्रयत्नो के लिए अपितु उसकी प्रतीक्षाओं के लिए भी प्रतिफल मिल सके।[1]

---

1 क्योंकि वह इन प्रयत्नों या इनके अनुरुप प्रयत्नों को तुरन्त संतुष्टि प्रदान करने वाली चीजों में लगा सकता था और यदि उसने जानबूझ कर भविष्य में संतोष प्राप्त करने की कामना की थी तो सम्भवतः इसका कारण यह था कि प्रतीक्षा करने की असुविधाओं को ध्यान में रखने के बावजूद भी वह यह समझता था कि पहले प्राप्त हो सकने वाले संतोष से बाद में मिलने वाला संतोष अधिक होगा। अतः भवन के निर्माण करने से उसे रोकने वाली प्रेरक शक्ति उसके इन प्रयत्नों के योग का अनुमान होगा, जैसा कि इनसे होने वाली हानि या असुविधा प्रतीक्षा की अवधि के अनुरुप गुणोत्तर अनुपात में (एक प्रकार के चक्रवृद्धि ब्याज में) बढ़ेगी। दूसरी ओर भवन के निर्माण से मिलने वाले संतोष की प्रत्याशा से भवन-निर्माण के लिए प्रेरणा शक्ति मिलती है, और स्वयं यह संतोष भी अनेक प्रकार के थोड़े-बहुत निश्चित और थोड़े-बहुत अनिश्चित संतोष के योग के रुप में आंका जा सकता है जिनकी वह प्रयोग करने पर प्रत्याशा करता है। यदि वह यह सोचे कि उसे इससे मिलने वाले संतोषों के पूर्वप्रापित (discounted) मूल्य का योग उसके प्रयत्नों एवं प्रतीक्षाओं के पुरस्कार से कहीं अधिक होगा तो वह भवन-निर्माण करने का निश्चय कर लेगा। भाग 3, अध्याय 5, अनुभाग 3; भाग

यदि उसकी दो प्रवृत्तियाँ, एक प्रतिरोध करने वाली तथा दूसरी प्रोत्साहित करने वाली, समान रूप से संतुलित प्रतीत हों तो वह संशय के सीमान्त पर होगा। सम्भवतः भवन के कुछ भाग के सम्बन्ध में वास्तविक लागत की अपेक्षा उसके लाभ कहीं अधिक होंगे। किन्तु यदि वह भवन के सम्बन्ध में अधिक महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनाता जाय तो अन्त में एक ऐसी स्थिति आ जायेगी जब उस योजना को आगे बढ़ाने से प्राप्त होने वाला लाभ ठीक उतना ही होगा जितना कि इस योजना को क्रियान्वित करने में आवश्यक प्रयत्न तथा प्रतीक्षा के रूप में त्याग करना पड़ता है और भवन का किया गया यह विस्तार उसके पूँजी के विनियोजन की बाह्य सीमा पर अथवा लाभकारिता सीमान्त पर होगा।

सम्भवतः किसी भवन के विभिन्न भागों के निर्माण के अनेक तरीके होते हैं, उदाहरणतः कुछ भाग लकड़ी अथवा खुरदरे पत्थरों से बड़ी अच्छी प्रकार बनाये जा सकते हैं : प्रत्येक योजना के अन्तर्गत भवन के प्रत्येक स्थान के लिए आवश्यक पूँजी के विनियोजन की उससे प्राप्त लाभों से तुलना की जायेगी। और प्रत्येक योजना में तब तक वृद्धि की जायेगी जब तक उक्त वृद्धि से लाभ होना समाप्त न हो जाय, अथवा जब तक लाभकारिता सीमान्त न आ जाय। इस लाभकारिता की कई सीमाएँ होती हैं. भवन में बनाये जाने वाले हर एक प्रकार के स्थान के लिए हर एक प्रकार की योजना के अनुसार अलग-अलग सीमान्त होंगे।

व्यावसायिक उद्यमों के आधुनिक उपक्रामी (undertaker) द्वारा किये गये पूँजी के विनियोजन में परिवर्तन।

§2 यह दृष्टान्त उस युक्ति को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार प्रयत्न एवं त्याग, जो वस्तु की वास्तविक उत्पादन लागत है, उसकी मौद्रिक लागत की नींव है। किन्तु जैसे अभी ऊपर कहा गया है, आधुनिक व्यवसायी व्यक्ति मजदूरी के लिए अथवा कच्चे माल के लिए किये जाने वाले भुगतानों को साधारणतया ठीक मान लेता है, और वह जांच नहीं करता कि उन भुगतानों से सम्बन्धित प्रयत्नों एवं त्यागों की कहाँ तक सही माप की जा सकती है। उसका व्यय प्रायः रुक-रुक कर होता है। वह किसी परिव्यय के प्रतिफल की प्राप्ति के लिए जितनी अधिक प्रतीक्षा करता है उसे उतना ही अधिक प्रतिफल भी मिलना चाहिए ताकि उसकी क्षतिपूर्ति हो सके। प्रत्याशित प्रतिफल निश्चित नहीं हो सकता, और उस स्थिति को उसके असफल होने के जोखिम के लिए अवश्य ही कुछ कटौती करनी होगी। इस कटौती के पश्चात् उस परिव्यय से मिलने वाला प्रतिफल स्वयं परिव्यय की मात्रा से इतना अधिक होना चाहिए कि उसके अपने पारिश्रमिक के अतिरिक्त, इसमें प्रतीक्षा की अवधि के अनुपात में चक्रवृद्धि ब्याज की दर से वृद्धि होनी चाहिए।[1] इस मद में वे बहुत बड़े प्रत्यक्ष तथा खर्चे अप्रत्यक्ष सम्मिलित किये जाते हैं जो प्रत्येक व्यवसाय की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अवश्य ही किये जाने चाहिए।

4, अध्याय 7, अनुभाग 8, तथा गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 13 देखिए।

1 यदि हम चाहें तो व्यवसाय के उपक्रामी के अपने कार्य की कीमत को मूल परिव्यय का एक अंग मान सकते हैं, और अन्य परिव्ययों के साथ इस पर भी चक्रवृद्धि

विगत के परिव्ययों एवं आय का संचयन तथा भावी आय एवं परिव्ययों की कटौती।

जब परिव्यय के किसी अंश में (स्वयं उपक्रामी के अपने पारिश्रमिक के लिए छूट रखते हुए) इस प्रकार चक्रवृद्धि ब्याज की दर से वृद्धि होती है तो हम सारांश में इसके लिए **संचित** शब्द का उसी प्रकार प्रयोग कर सकते हैं जिस प्रकार हमने किसी सतुष्टि के वर्तमान मूल्य को प्रदर्शित करने के लिए **पूर्वप्रापित** (Discounted) शब्द का प्रयोग किया था। परिव्यय के प्रत्येक अंश को उस अवधि तक संचित करना पड़ता है जो उसके खर्च किये जाने तथा फलितार्थ होने में व्यतीत होता है, और इन संचित अंशों का संपूर्ण योग ही उद्यम में लगा हुआ कुल परिव्यय है। प्रयत्नों एवं उनसे प्राप्त संतोषों के संतुलन को किसी सुविधाजनक तिथि तक तैयार किया जा सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में किसी भी तिथि का चयन करने में इस साधारण नियम का अनुकरण किया जाना चाहिए, प्रयत्न अथवा संतुष्टि के प्रत्येक अंश में, जिसका उस दिन के पूर्व से प्रारम्भ हुआ हो, उस संचित अन्तरावधि का चक्रवृद्धि ब्याज अवश्य सम्मिलित होना चाहिए, और उस दिन के बाद की तिथि से प्रारम्भ होने वाले प्रत्येक अंश में उस पूर्वप्रापित अन्तरावधि का चक्रवृद्धि ब्याज सम्मिलित होना चाहिए। यदि वह तिथि उद्यम के प्रारम्भ होने के पूर्व की हो तो प्रत्येक अंश से बट्टा या पूर्वप्रापण काटना चाहिए। किन्तु यदि, जैसा कि ऐसे मामलों में प्राय होता है, यह तिथि वह है जब पूर्ण प्रयत्न किये जा चुके हों और भवन उपयोग में लाने के योग्य हो गया हो तो प्रयत्नों में उस तिथि तक का चक्रवृद्धि ब्याज सम्मिलित किया जाना चाहिए, और संतोषों में से उस तिथि का बट्टा काट देना चाहिए।

प्रतीक्षा लागत का ठीक वैसा ही एक अंश है जैसा कि प्रयत्न है, और संचित हो जाने पर इसको लागत में सम्मिलित किया जाता है अतः इसकी गणना पृथक रूप में नहीं की जाती। इसी प्रकार, दूसरी ओर, किसी समय पर जो कुछ भी द्रव्य अथवा संतोष प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है वह उस समय की आय का एक अंग बन जाती है। यदि वह समय आय-व्यय के लेखों को संतुलित करने के दिन से पहले का हो तो इस द्रव्य अथवा संतोष को उस दिन तक जोड़ना चाहिए। यदि वह समय आय-व्यय के लेखों को संतुलन करने के दिन के बाद का हो तो इसमें से उस दिन तक का बट्टा (Discount) काट देना चाहिए। यदि इसे वर्तमान आनन्दों को प्राप्त करने की अपेक्षा भावी आय के संकलित स्रोत के रूप में प्रयोग किया जाय तो इससे जो आय प्राप्त होगी उसे विनियोजन से प्राप्त होने वाला अतिरिक्त प्रतिफल नहीं समझना चाहिए।[1]

ब्याज लगा सकते हैं या चक्रवृद्धि ब्याज के स्थान पर "मिश्रित लाभ" का प्रयोग कर सकते हैं। ये दोनों विचार-पद्धतियाँ निश्चित रूप में परिवर्तनीय नहीं हैं: और आगे चल कर हम यह देखेंगे कि कुछ दशाओं में पहले विचार को, और अन्य दशाओं में दूसरे विचार को अपनाना अधिक अच्छा होगा।

1 सामान्यतया बचत से प्राप्त होने वाली कुल आय बचत से पारितोषिक (ब्याज) के रूप में मिलने वाली धनराशि के बराबर अधिक होगी। किन्तु जैसा कि इस आय से मूल बचत की अपेक्षा बाद में आनन्द मिलेगा अतः यदि समय की अवधि लम्बी

यदि उद्यम ऐसा हो कि ठेके पर एक गोदी-तल (Dock–basin) की खुदायी करनी पड़े जिसका भुगतान कार्य की समाप्ति के तुरन्त बाद किया जाये, और यदि उक्त कार्य में लगा हुआ संयंत्र कार्य के दौरान घिस जाय और कार्य की समाप्ति पर बिलकुल ही बेकार हो जाय तो उस उद्यम से केवल उस स्थिति मे क्षतिपूर्ति हो जायेगी जब भुगतान के दिन तक संचित परिव्ययों का संपूर्ण योग भुगतान की राशि के ठीक बराबर हो।

किन्तु प्राय विक्रय से प्राप्त आय धीरे-धीरे प्राप्त होती है, और हमे एक ऐसे तुलन-पत्र की कल्पना करनी चाहिए जिमे विगत तथा भावी सौदो को भी सम्मिलित किया गया हो। विगत के सौदो के सम्बन्ध मे हमे निवल परिव्ययो का योग करना चाहिए, तथा उनमे इनके प्रत्येक भाग पर लगाये गये चक्रवृद्धि व्याज को सम्मिलित करना चाहिए। भावी सौदो के सम्बन्ध मे हमको समस्त आयो का योग करना चाहिए, और प्रत्येक के मूल्य में से उस अवधि का चक्रवृद्धि ब्याज घटा देना चाहिए जिस अवधि तक के लिए वे सौदे स्थगित किये गये हो। इस प्रकार बट्टा काटे गये विशुद्ध आयो के सम्पूर्ण योग का संचित परिव्ययो के सम्पूर्ण योग के साथ संतुलन किया जायेगा और यदि ये दोनो ठीक बराबर है तो व्यवसाय तनिक लाभदायक होगा। खर्चों की गणना करते समय व्यवसाय के अभिभावक को अपने कार्य के मूल्य को सम्मिलित करना चाहिए।[1]

हो तो उसमें से बट्टा काटना होगा (अथवा यदि यह अवधि छोटी हो तो इसमें कुछ जमा करना पड़ेगा। यदि विनियोजन के तुलन-पत्र में इसको मूल बचत के स्थान पर लिखा जाय तो इससे भी ठीक वही धनराशि इंगित की जायेगी। (मूल बचत तथा इससे बाद में प्राप्त की गयी आय दोनों पर ही आयकर ठीक उसी आधार पर निर्धारित किया जाता है जिस पर कि एक अकर्मण्य व्यक्ति की अपेक्षा एक कर्मठ व्यक्ति पर अधिक आय-कर लगाना युक्तिसंगत माना जाता है।) इस अनुभाग के प्रमुख तर्क को टिप्पणी 13 में गणितीय रूप से व्यक्त किया गया है।

1 किसी व्यवसाय में विनियोजित पूंजी के मूल्यांकन में तथा उस पूंजी में घिसाई, बाह्य तत्वों के प्रभाव, नवीन आविष्कारो, एवं उस धन्धे की दिशा में परिवर्तनों के कारण होने वाले मूल्य-ह्रास के लिए गुंजाइश रखने के सम्बन्ध में प्रायः सभी व्यापारो की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ तथा अपनी-अपनी रीतियाँ होती हैं। इन दो अन्तिम कारणो से कुछ प्रकार की स्थिर पूंजी के मूल्य में जहाँ अस्थायी रूप से वृद्धि होती है वहाँ कुछ अन्य प्रकार की पूंजी के मूल्यों में कमी भी होती है। जिन लोगों के मस्तिष्क विभिन्न साँचों में ढले हैं अथवा जो किसी विषय पर विभिन्न दिशाओं से रुचि रखते हैं उनमें इस प्रश्न पर बहुधा पर्याप्त मतभेद होगा कि भवन तथा संयंत्र को उस धन्धे की परिवर्तित स्थितियों के अनुरूप बनाने के लिए अपेक्षित व्यय का कितना भाग नवीन पूंजी के विनियोजन के रूप में माना जाय और कितना भाग मूल्य-ह्रास की पूर्ति के लिए अलग रखा जाय, और इसे व्यवसाय के निवल लाभ अथवा इसकी सही आय निर्धारित करने से पूर्व वर्तमान आय में से खर्च के रूप में घटाया जाय। व्यावसायिक सम्बन्ध

प्रतिस्थापना का सिद्धान्त।

§3. अपने व्यवसाय के प्रारम्भ में तथा प्रत्येक उत्तरोत्तर स्तर पर एक चतुर व्यावसायिक व्यक्ति अपने प्रबन्ध मे सुधार करने की इतनी चेष्टा करता है जिससे उसको एक निर्धारित व्यय पर अधिक लाभ प्राप्त हो अथवा अपेक्षाकृत कम व्यय करने पर समान लाभ प्राप्त हो सके। दूसरे शब्दों मे, वह अपने लाभ मे वृद्धि करने के लिए प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का लगातार प्रयोग करता है, और ऐसा करने से वह कार्य की कुल दक्षता मे तथा संगठन एवं ज्ञान से प्रकृति पर प्राप्त पूर्ण अधिकार में वृद्धि करने मे कभी असफल नही होता।

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो उसके अन्तर्गत स्थित प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय के प्रबन्ध की विधियो को अनेक प्रकार से प्रभावित करती हैं : और यहाँ तक कि एक ही स्थान पर तथा एक ही धन्धे में समान लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कोई दो व्यक्ति ठीक एक ही मार्ग नहीं अपनायेगे। परिवर्तन करने की प्रवृत्ति प्रगति का मुख्य कारण है, और किसी व्यापार मे जितने अधिक योग्य व्यक्ति होंगे उतनी ही अधिक मात्रा मे वहाँ प्रगति होगी। कुछ व्यवसायो मे, उदाहरणतः कपास की कताई मे, ये सम्भावित परिवर्तन सकुचित क्षेत्र तक ही सीमित रहते है। कोई भी अपने धन्धे को तब तक सुचारु रूप से नही चला सकता जब तक वह प्रत्येक प्रकार के कार्य के लिए यन्त्रो का विशेषकर नवीनतम यन्त्रो का प्रयोग नही करता। किन्तु अन्य धन्धो मे, उदाहरणत. लकड़ी तथा धातुओं के धन्धो की कुछ शाखाओं मे, खेती मे तथा दुकानदारी मे बड़े-बड़े परिवर्तन नही किये जा सकते। उदाहरणत. एक ही धन्धे मे लगे दो विनिर्माताओ मे से एक सम्भवत. मजदूरी बिल के रूप मे तथा दूसरा मशीनो के प्रभारों मे बडी पूँजी खर्च करेगा। या इसमें लगे दो फुटकर व्यापारियो मे से एक की बहुत बड़ी पूँजी वस्तुओं के भण्डार के रूप मे बन्द पड़ी होगी और दूसरा व्यक्ति विज्ञापनो पर तथा लाभप्रद व्यापारिक सम्बन्धो की अभौतिक पूँजी अर्जित करने के अन्य साधनो

की स्थापना करने में पूंजी के विनियोजन, तथा व्यवसाय की ख्याति अथवा 'चालू व्यवसाय के रूप में' इसके मूल्य का अनुमान लगाने की उचित विधि से सम्बन्धित ये सबसे बड़ी कठिनाइयां है, और इनके फलस्वरूप विचारों में भी बड़ा मतभेद है। इस विषय के पूर्ण ज्ञान के लिए मथेसन (Matheson) की पुस्तक Depreciation of Factories and their Voluation देखिए।

द्रव्य की सामान्य क्रय-शक्ति में होने वाले परिवर्तनों के कारण भी कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। यदि इसमें कुछ गिरावट आ जाती है, अथवा अन्य शब्दों में, सामान्य कीमतों में कुछ वृद्धि हो जाती है तो वास्तव में स्थिर अवस्था में रहने पर भी किसी फैक्टरी का मूल्य बढ़ा हुआ प्रतीत होता है। इसके कारण जो भ्रम उत्पन्न होता है उससे विभिन्न प्रकार के व्यवसायों की वास्तविक लाभकारिता के सम्बन्ध में लगाये गए अनुमानों में प्रथम दृष्टि में आभास होने वाली त्रुटि की अपेक्षा अधिक त्रुटि होती है। किन्तु इस प्रकार के सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में हम तब तक विचार नहीं करेंगे जब तक द्रव्य के सिद्धान्त का विवेचन न कर लें।

पर अधिक खर्च करेगा। और यदि सूक्ष्म विवरणों पर प्रकाश डाला जाय तो ये विभिन्नताएँ अगणित होंगी।

लाभकारिता सीमान्त किसी निश्चित प्रकार के विनियोजन में स्थित एक बिन्दु मात्र नहीं, अपितु यह इसके अनेक रूपों को विभक्त करने वाली एक रेखा है।

प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों पर उसके विशेष अवसरों एवं साधनों का जितना प्रभाव पड़ता है उतना ही उसके स्वभाव एवं सामाजिक सम्बन्धों का भी पड़ता है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने साधनों को दृष्टि में रखकर अपने व्यवसाय में अनेक दिशाओं में पूँजी का तब तक विनियोजन करता रहेगा जब तक उसके मतानुसार उसका व्यवसाय लाभकारिता की बाहरी सीमा अथवा सीमान्त तक नहीं पहुँचता, अर्थात् वह पूँजी का तब तक विनियोजन करता रहेगा जब तक उसके पास यह सोचने के लिए ठोस कारण है कि उस विशेष दिशा में पूँजी के और अधिक विनियोजन से प्राप्त होने वाले लाभ से उसके परिव्यय की पूर्ति हो जायेगी। किसी उद्योग की एक ही शाखा अथवा उपशाखा के सम्बन्ध में भी लाभकारिता सीमान्त को विनियोजन के सभी सम्भावित रूपों से किसी एक पर स्थित बिन्दु नहीं समझना चाहिए अपितु इसको प्रत्येक सम्भावित रूप में बारी-बारी से बदलने वाली अनियमित आकार की सीमा रेखा समझना चाहिए।

तुष्टिगुण ह्रास और उत्पत्ति-ह्रास के प्रतिस्थापन सिद्धान्तों में सादृश्य।

§4. प्रतिस्थापन का यह सिद्धान्त सामान्य अनुभव के अनुरूप उस प्रवृत्ति से किसी एक विशेष दिशा में साधनों एवं शक्तियों के अत्यधिक प्रयोग से घटती हुई दर पर मिलने वाले प्रतिफल से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित ही नहीं है अपितु वास्तव में अंशिक रूप से उस पर आधारित भी है। इस प्रकार यह प्राचीन देशों की भूमि पर पूँजी एवं श्रम के अधिकाधिक प्रयोग से उत्पादन के क्रमागत ह्रास होने की उस व्यापक प्रवृत्ति से सम्बन्धित है जिसका प्राचीन अर्थशास्त्र में प्रमुख स्थान रहा है। इसका साधारणतया व्यय में वृद्धि होने के कारण सीमान्त तुष्टिगुण के ह्रास के सिद्धान्त से इतना गहरा सम्बन्ध है कि अधिकांशरूप में दोनों सिद्धान्तों के कुछ प्रयोगों में समानता रहती है। यह देखा जा चुका है कि उत्पादन की नवीन विधियों के कारण नयी-नयी वस्तुएँ पैदा की जाती है। अथवा पुरानी वस्तुओं की कीमतों में कमी हो जाती है जिससे अधिकाधिक उपभोक्ता उनको खरीदने में समर्थ हो सकें। दूसरी ओर उपभोग की रीतियों में तथा इसकी मात्रा में परिवर्तन से उत्पादन में नयी-नयी प्रगतियाँ तथा उत्पादन के साधनों का नये रूप से वितरण होता है, और यद्यपि उपभोग की कुछ रीतियाँ जो मनुष्य के जीवनस्तर को उच्चतर बनाने में अधिकांश योग देती हैं भौतिक धन के उत्पादन में वृद्धि करने में अधिक प्रभावशाली नहीं है, तथापि उत्पादन एवं उपभोग में घनिष्ठ सम्बन्ध है।[1] किन्तु अब हम इस बात पर सविस्तार विचार करते हैं कि विभिन्न औद्योगिक संस्थानों (undertakings) में उत्पादन के साधनों का वितरण किस प्रकार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में उपभोक्ता की क्रय करने की भावना का ही प्रतिरूप एवं प्रतिबिम्ब होता है।[2]

उपभोग तथा उत्पादन का सह सम्बन्ध।

---

1 पृष्ठ 77-85 तथा 58-62 देखिए।

2 इस अनुभाग का सारांश पिछले संस्करणों में भाग 4, अध्याय 1, अनुभाग 7 में दिया गया है, किन्तु भाग 5 के बीच के अध्यायों को समझने के लिए इसकी यहां पर आवश्यकता समझी गयी है।

घरेलू अर्थव्यवस्था में साधनों का वितरण।

एक आदिकालीन गृहिणी जब यह देखती है कि "वर्ष भर की ऊन-कटाई से उसके पास सूत की लच्छियों की संख्या सीमित है तो वह परिवार के कपडों की सभी आवश्यकताओ पर विचार करती है और उनमे सूत का इस भाँति वितरण करने का प्रयत्न करती है कि परिवार का यथासम्भव अधिक कल्याण हो सके। जब इसके वितरण करने के पश्चात् वह देखती है कि अन्तर्वस्त्रो की अपेक्षा मोजो के लिए सूत का अधिक प्रयोग नही किया गया है तो वह यह अनुभव करेगी कि वह इसका संतुलित वितरण करने मे असफल रही है। किन्तु, इसके विपरीत, यदि वह ठीक स्तर पर ऊन का अन्य उपयोगो मे प्रयोग करना बन्द करती है तो वह ठीक उतने ही मोजे और अन्तर्वस्त्र बनायेगी जिससे उसका मोजो तथा अन्तर्वस्त्रो के उत्पादन मे प्रयुक्त ऊन की अन्तिम खेप से समान हित हो।"[1] यदि उसे अन्तर्वस्त्र बनाने की दो विधियाँ मालूम हो जिनके परिणाम समान रूप से संतोषजनक हो, किन्तु उनमे से एक मे दूसरे की अपेक्षा कुछ अधिक ऊन का प्रयोग किये जाने पर कम परिश्रम लगता हो तो उसकी समस्याएँ विस्तृत व्यावसायिक जगत की भांति विशिष्ट प्रकार की होगी। इनमे सबसे पहली समस्या अनेक लक्ष्यो की तुलनात्मक शीघ्रता के निर्णयो से, दूसरी समस्या प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति के अनेक साधनो की तुलनात्मक लाभदायकता के निर्णयो से तथा तीसरी समस्या उपर्युक्त दो प्रकार के निर्णयो के आधार पर उस सीमान्त के निर्णय से सम्बन्धित होगी जहाँ तक प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर साधन का प्रयोग करना सर्वाधिक लाभप्रद होगा।

व्यावसायिक अर्थव्यवस्था में साधनों का वितरण। भवन-निर्माण कार्य से लिया गया दृष्टान्त।

किसी व्यावसायिक व्यक्ति को जिसे प्रत्येक निर्णय के पूर्व अधिक जटिल संतुलन एवं समायोजन स्थापित करने पडते है, ये तीनो प्रकार के ही निर्णय बडे पैमाने पर करने पडते है।[2] अब हम भवन निर्माण धन्धे से लिए गये एक दृष्टान्त पर विचार करेंगे। यदि हम सम्माननीय अर्थ मे एक "सट्टेबाज भवन-निर्माता के कार्यो को देखें, अर्थात् एक ऐसे व्यक्ति के कामो की ओर ध्यान दें जो सामान्य माँग के पूर्वानुमान के आधार पर मकान बनाता है, जो अपने निर्णय मे किसी प्रकार की त्रुटि के लिए दण्ड सहन करता है, और जो घटनाओ द्वारा अपने निर्णयो के स्वीकृत हो जाने पर अपने तथा समाज दोनो को लाभ पहुँचाता है। वह इस बात पर विचार करता है कि उसको आवास-गृह, गोदाम, कारखाने या दुकान मे से कौन सी चीज बनानी चाहिए। प्रत्येक प्रकार के मकान के लिए सर्वोचित प्रणाली का तथा उसकी लागत का अनुमान लगाने के सम्बन्ध मे शीघ्र ही ठीक निर्णय लेने मे वह प्रशिक्षित होता है। वह प्रत्येक प्रकार के

---

1 भाग 3, अध्याय 5, अनुभाग 1 देखिए।

2 इस अनुभाग का शेष भाग गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 14 के पूर्वार्द्ध पर बहुत अधिक आधारित है। अतः इस सम्बन्ध में उसका भी अध्ययन करना आवश्यक है। यह विषय ऐसा है जिसमें अवकलन गणित (differential Calculus) को भाषा से न कि इसकी युक्तियों से हमें अपने विचारों को स्पष्ट करने में विशेष रूप में सहायता मिलती है, किन्तु इसके प्रमुख सार को साधारण भाषा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

मकान के लिए विभिन्न अनुकूल स्थलों की लागत का अनुमान लगाता है : और वह किसी स्थल के लिए दी जाने वाली कीमत को उसी प्रकार अपने पूंजीगत व्यय (Capital exenditure) के एक अंश के रूप में आँकता है जिस प्रकार वह मकान के शिलान्यास से सम्बन्धित खर्चों इत्यादि की गणना करता है। लागत के इस अनुमान की वह उस कीमत के अनुमान से तुलना करता है जो उसको स्थान सहित किसी निर्दिष्ट मकान के निमित्त प्राप्त हो सकती है। यदि वह कोई ऐसी बात नहीं देखता जिसमें माँग कीमत उसके परिव्यय से इतनी अधिक हो कि जोखिम के लिए कुछ छूट रखने के पश्चात् उसके लिए अच्छा लाभ बच जाय तो वह बेकार रहता है। अथवा वह अपने सबसे अधिक विश्वसनीय कर्मचारियों को अपने साथ रखने के निमित्त और अपने संयत्र तथा वेतन पाने वाले सहायकों को कार्यरत रखने के लिए सम्भवत कुछ जोखिम पर भी मकान-निर्माण का कार्य कर सकता है। किन्तु इस विषय पर बाद मे अधिक विचार किया जायेगा।

मान लीजिए कि उसने यह निश्चय कर लिया है कि किसी ऐसी भूमि पर कुछ प्रकार के यहाँ भवनों का निर्माण उसके लिए लाभप्रद सिद्धि होगा जिसे वह क्रय कर सकता है। इस प्रकार इच्छित लक्ष्य के निश्चित हो जाने पर वह उन साधनों का अधिक ध्यानपूर्वक अध्ययन करना प्रारम्भ कर देता है जिनसे उस लक्ष्य की प्राप्ति होती है, और उस अध्ययन के सम्बन्ध मे वह अपनी योजनाओं के विवरणों मे सम्भाविन परिवर्तनों पर भी विचार करता है।

निर्माण किये जाने वाले मकानों के सामान्य रूप के निश्चित हो जाने पर उस को इस बात पर विचार करना होगा कि ईंट, पत्थर, लोहा, सीमेंट, प्लास्टर, लकडी इत्यादि विभिन्न प्रकार की भवन निर्माण सम्बन्धी सामग्री को किस अनुपात मे उपयोग मे लाया जाय जिससे लागत के अनुपात मे ऐसे प्रतिफल अधिक प्राप्त हो जो मकान के क्रेताओं की कल्पनात्मक रुचि की सन्तुष्टि एव उनके आरामों की पूर्ति करने की शक्ति मे वृद्धि कर सकें। इस प्रकार यह तय करते हुए कि विभिन्न वस्तुओं के बीच अपने साधनों का किस प्रकार सर्वोचित वितरण किया जाय, वह अधिकांशत. ठीक उसी समस्या का समाधान करता है जिसका आदिकालीन गृहणी अपने परिवार के कपडों की विभिन्न आवश्यकताओं के बीच अपनी ऊन का सर्वोचित वितरण करने के सम्बन्ध मे समाधान करती थी।

उसी की भाँति भवन-निर्माता को भी यह जानना पडता है कि किसी विशेष प्रयोग से प्राप्त लाभ एक विशेष स्तर तक सापेक्षिक रूप से अधिक होगा, और तत्पश्चात् धीरे-धीरे कम हो जायेगा। उसी की भाँति उसको भी अपने साधनों का इस प्रकार वितरण करना पडता है कि प्रत्येक प्रयोग से उनका सीमान्त तुष्टिगुण समान रहे : उसको एक प्रयोग मे कुछ कम व्यय करने से उत्पन्न हानि की तुलना उस लाभ से करनी पड़ती है जो दूसरे प्रयोग मे कुछ अधिक व्यय करने से प्राप्त होती है। व्यवहार मे दोनों को ही ठीक उन्ही दिशाओं मे कार्य करना पडता है जिनसे किसी किसान को खेत मे अपनी पूंजी तथा श्रम के प्रयोग मे इस प्रकार के समायोजन मे सहायता मिलती है कि कोई खेत ऐसी अतिरिक्त जोताई से वन्चित नहीं रहता जिसके कारण

उसमें अधिक उपज हो सकती थी, और किसी खेत पर इतना अधिक व्यय भी नही किया जाता जिससे कृषि उत्पादन मे क्रमागत ह्रास की प्रवृत्ति दृढ रूप से कार्य करने लगे।[1]

इस प्रकार एक जागरूक व्यावसायिक व्यक्ति, जैसा कि अभी कहा गया है, "अपने व्यवसाय मे अनेक दिशाओं मे पूँजी का केवल तब तक विनियोजन करता है जब तक व्यवसाय उसके विचार से लाभकारिता की बाह्य सीमा, अथवा सीमान्त तक नही पहुँच जाता, अर्थात् वह पूँजी का तब तक विनियोजन करता है जब तक उसके यह सोचने के लिए पर्याप्त कारण होता है कि उस विशेष दिशा मे पूँजी के और अधिक विनियोजन से प्राप्त लाभ उसके परिव्यय से अधिक होगा।" वह यह कभी नही मानता कि लम्बी अवधि मे (पेचीदे तरीके) लाभप्रद रहेंगे। किन्तु वह सदा ऐसे पेचीदे तरीकों की खोज मे रहता है जो लागत के अनुपात मे सरल तरीकों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते हैं: और यदि उसके अपने साधनों से सम्भव हो तो वह उनमे से सर्वोत्तम तरीके को अपना लेता है।

* * * *

मूल लागत

§5 लागत से सम्बन्धित कुछ पारिभाषिक शब्दो पर यहाँ पर विचार किया जा सकता है। किसी व्यवसाय को चलाने के साधनों को प्रदान करने मे अपनी पूँजी का विनियोजन करते समय, व्यवसायी इसके विभिन्न उत्पादनो की कीमत द्वारा क्षतिपूर्ति करना चाहता है, और प्रसामान्य अवस्थाओं मे वह उनमे से प्रत्येक के लिए एक पर्याप्त कीमत अर्थात् एक ऐसी कीमत वसूल करने की आशा करता है जिससे न केवल विशेष, प्रत्यक्ष अथवा मूल लागत वसूल होती है, अपितु व्यवसाय के सामान्य खर्चों का एक उचित भाग भी निकल जाता है, और इन बाद वाले खर्चों को हम उसकी सामान्य अथवा पूरक लागत (Supplementary Cost) भी कह सकते हैं। इन दोनो लागतो मे से मिल कर उसकी कुल लागत बनती है।

मूल अथवा विशेष लागत

पूरक तथा कुल लागत।

व्यवसाय मे 'मूल' लागत के परम्परागत प्रयोग के सम्बन्ध मे बडी विभिन्नताएँ हैं। किन्तु यहाँ इसे सकुचित अर्थ मे प्रयोग किया गया है। पूरक लागतो मे स्थायी सयत्र, जिसमे व्यवसाय की बहुत बड़ी पूँजी लगी रहती है, का निरतर होने वाला प्रभार (standing charges) तथा उच्च कर्मचारियो का वेतन शामिल है: क्योंकि उनके कार्य की मात्रा मे परिवर्तन के अनुसार उनके वेतन के कारण व्यवसाय पर पड़ने वाले खर्चों मे सामान्यतया शीघ्रता से अनुकूल परिवर्तन नही किये जा सकते। तब उस वस्तु को बनाने मे लगे कच्चे माल की (मौद्रिक) लागत तथा इसमे लगे श्रम की घण्टे के हिसाब से या कार्य के अनुसार मजदूरी तथा सयत्र की अतिरिक्त टूट-फूट ही केवल शेष रहती है। जब किसी विनिर्माता के पास उद्योग के सुचारु रूप से चलने के लिए पूर्ण कार्य न हो तो वह इस विशेष खर्च को ही ध्यान मे रखता है, और उस समय बाजार के मन्द होने पर भी यह सोचे बिना कि बाजार के भावी आदेशो पर इसका

---

1 भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 1 तथा पृष्ठ 155 में दिये गये फुटनोट 1 को देखिए।

क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, उस निम्नतम कीमत का अनुमान लगाता है जिस पर उसे किसी आदेश को स्वीकार करना लाभप्रद होगा। किन्तु प्रायः उसे इस प्रभाव को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए : क्योंकि व्यापार के मन्द होने पर भी जिस कीमत पर उसकी ठीक उत्पादन की लागत ही निकल सकती है वह जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, व्यावहारिक रूप में सामान्यतया उसकी मूल लागत से बहुत ऊँची होती है।[1]

मूल तथा पूरक लागतों के बीच विभाजन व्यवसाय की अवधि के अनुसार बदलता रहता है। मजदूरी तथा वेतन से लिये गये उदाहरण।

§6. अल्पकाल में सामान्यतया कीमत से अधिकांश पूरक लागत वसूल हो जानी चाहिए, और दीर्घकाल में इससे संपूर्ण पूरक लागत वसूल होनी चाहिए, अन्यथा यह उत्पादन के लिए बाधक सिद्ध होगा। पूरक लागतें अनेक प्रकार की होती हैं, और उनमें से कुछ तो मूल लागत से आंशिक रूप में ही भिन्न हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई इंजीनियरिंग फर्म (engineering firm) इस द्विविधा में हो कि किसी रेल-इंजन के आदेश को वस्तुतः कम कीमत पर स्वीकार करना चाहिए या नहीं, तो निरपेक्ष मूल लागत में कच्चे माल का मूल्य और दस्तकारों तथा रेल-इंजन में नियुक्त श्रमिकों की मजदूरी सम्मिलित की जायेगी। किन्तु वेतन पाने वाले कर्मचारियों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नियम नहीं है, क्योंकि यदि कार्य मंदा हो तो सम्भवतः उनके पास कुछ समय बच जायेगा और अतः उनके वेतन को साधारणतया सामान्य अथवा पूरक लागत में शामिल किया जायेगा। किन्तु बहुधा इनमें कोई स्पष्ट विभेद-रेखा नहीं है। दृष्टान्त के रूप में, फोरमैन (foreman) तथा अन्य विश्वस्त दस्तकारों को केवल कार्य के अस्थायी अभाव के कारण कदाचित् ही पदच्युत किया जाता है, और इस बेकार समय को दूर करने के लिए यदाकदा कुछ ऐसे आदेश भी स्वीकार कर लिये जाते है जिनकी कीमत से उनका वेतन तथा उनकी मजदूरी भी पूर्ण रूप मे नही निकल सकती। इस दिशा में इन्हें मूल लागत नहीं समझा जायेगा। किन्तु किसी फर्म के कार्य में कमी या वृद्धि होने से इसके कार्यालय के कर्मचारियों की संख्या में, कार्य के मंद होने पर कुछ रिक्त स्थानों (vancancies) में नियुक्त न कर, और यहाँ तक कि अकुशल कार्यकर्ताओं की छँटायी तथा कार्य बढ़ जाने पर अतिरिक्त सहायता प्राप्त कर अथवा कुछ को स्थगित कर, कुछ मात्रा में अनुकूल परिवर्तन किये जा सकते हैं।

संयंत्र पर होने वाले परिव्यय से लिया गया

यदि हम इन छोटे-मोटे कार्यों के स्थान पर अधिक विस्तृत तथा अधिक लम्बे कार्यों पर दृष्टान्त के रूप में, धीरे-धीरे सैकड़ों वर्षों की अवधि में बहुत बड़ी मात्रा में रेल के इंजनों को देने की संविदाएँ तैयार करना, विचार करें तो उस आदेश से सम्बन्धित अधिकांश कार्यालय के काम को इससे सम्बन्धित विशेष कार्य समझना चाहिए : क्योंकि

---

1 विशेष कर भाग 5, अध्याय 9 में। "मूल लागत की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। हम मूल लागत का अर्थ जैसा कि वस्तुतः इन शब्दों से ज्ञात होता है, केवल उत्पादन के प्राथमिक अथवा प्रत्यक्ष लागत से लगाते हैं। और यद्यपि कुछ धन्धों में सुविधा की दृष्टि से उत्पादन की लागत में प्रत्यक्ष खर्चों का कुछ अंश, तथा संयंत्र एवं इमारतों के मूल्य ह्रास का कुछ प्रभार भी शामिल किया जाता है, किन्तु पूँजी पर ब्याज अथवा लाभ को किसी भी दशा में इसमें सम्मिलित नहीं करना चाहिए।" गार्के (Garcke) तथा फ्यल्स (Fells) द्वारा लिखित Factory Acounts, अध्याय I)।

दृष्टान्त।

यदि इसमें कुछ कमी कर दी जाय और इसके स्थान पर कोई अन्य कार्य किया जाय तो वेतन के रूप में किये जाने वाले खर्चों में लगभग आनुपातिक सीमा में कमी की जा सकती थी।

जब हम किसी भी वर्ग के प्रमुख विनिर्माण की वस्तुओं के बहुत कुछ स्थिर बाजार के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो उक्त बात को और भी अधिक बल मिलता है। क्योंकि इस दिशा में विशिष्ट प्रकार की कुशलता एवं व्यवस्था, कार्यालय के स्थायी कर्मचारियों, तथा कारखानों स्थायी यंत्र सभी को उत्पादन के लिए आवश्यक लागतों का ही एक भाग समझा जा सकता है। उस परिव्यय में उस सीमान्त तक वृद्धि की जायेगी जहाँ पर विनिर्माण की उस शाखा में उसके बाजार की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र वृद्धि का भय होने लगता है।

समय के ताव के इस प्रभाव को अध्याय 5 और अध्याय 7 से लेकर 10 में अधिक स्पष्ट किया गया है।

अगले अध्याय में अध्याय 3 तथा इस अध्याय में दी गयी युक्ति को जारी रखा गया है। वहाँ यह अधिक विस्तारपूर्वक प्रदर्शित किया गया है कि जिन लागतों का सम्मरण पर और इसलिए कीमत पर गहरा प्रभाव पड़ता है वे एक संविदा, उदाहरण के लिए रेल-इंजन के सम्बन्ध में किस प्रकार एक संकुचित तथा काल्पनिक वर्ग तक ही सीमित रहती हैं। किन्तु पर्याप्त रूप से स्थिर सामान्य बाजार को निरन्तर भेजी जाने वाली सामग्री के सम्बन्ध में ये अधिक पूर्ण है और औद्योगिक अर्थव्यवस्था के व्यापक लक्षणों के बहुत अधिक अनुरूप है : मूल्य पर उत्पादन की लागत के प्रभाव को सापेक्षिक रूप से एक लम्बी अवधि में ही स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है, और किसी विशेष रेल-इंजन, अथवा वस्तुओं के किसी विशेष पार्सल की अपेक्षा उत्पादन की सम्पूर्ण क्रिया की दृष्टि से इसका आकलन किया जाना चाहिए। अध्याय 8-10 में उन मूल तथा पूरक लागतों के रूप में होने वाले परिवर्तनों के विषय में इसी प्रकार का अध्ययन किया गया है जिनमें विचाराधीन बाजार की अवधियों के लम्बे अथवा छोटे होने के अनुसार उत्पादन के कारक में किये गये विभाजनों पर ब्याज (अथवा लाभ) भी शामिल है।

मूल तथा पूरक लागतों में उस समय भी विभेद किया जाता है जब इनमें से किसी भी द्रव्य के रूप में गणना नहीं की जाती।

इस बीच यह ध्यान रहे कि सभ्यता की प्रत्येक प्रावस्था (phase) में मूल्य तथा पूरक लागतों के बीच अन्तर विद्यमान रहता है, भले ही पूंजीवादी प्रावस्था के अतिरिक्त अन्य किसी प्रावस्था में इस ओर अधिक ध्यान आकर्षित नहीं होता। राबिनसन क्रूसो का वास्तविक लागत तथा वास्तविक संतुष्टियों से ही सरोकार था : और पुरानी पद्धति को अपनाने वाला एक किसान का परिवार, जो थोड़ा ही क्रय करता था और थोड़ा विक्रय करता था, भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभों के लिए अपने वर्तमान 'प्रयत्न तथा प्रतीक्षा' का लगभग उसी आधार पर विनियोजन करने की व्यवस्था करता था। किन्तु जब कभी इन दोनों में से किसी को भी इस बात में सन्देह हुआ हो कि जंगली फलों को इकट्ठा करने के लिए साथ में एक सीढ़ी को ले जाना लाभदायक होगा या नहीं, तो प्रत्याशित लाभों को केवल मूल लागत से ही तोला गया और इस पर भी सीढ़ी को जब तक नहीं बनाया गया जब तक इससे छोटे-बड़े अनेक कामों में इतनी सहायता मिलने की आशा न हुई जिससे इसे बनाने की लागत का प्रतिफल मिल सके। दीर्घकाल में इससे पूरक तथा मूल, सभी लागतों को अदा कर लिया जाता था।

यहाँ तक कि आधुनिक नियोजक को भी सबसे पहले स्वयं अपने श्रम को वास्तविक

लागत के रूप में समझना पड़ता है। वह यह अनुमान लगा सकता है कि किसी निश्चित उद्यम से (जोखिम तथा भावी घटनाओं के पूर्वप्रापण के लिए पर्याप्त गुंजाइश रखने के पश्चात्) मौद्रिक व्यय की अपेक्षा मौद्रिक आय के अधिक होने की सम्भावना रहती है, किन्तु बचत की यह मात्रा उस उद्यम में उसे होने वाली परेशानी तथा चिन्ता के मौद्रिक मूल्य से कम होगी, और उस अवस्था में, वह इसे नहीं करेगा।[1]

---

1 किसी फैक्टरी का मालिक अपने उत्पादन की मूल लागतों में जिन पूरक लागतों का समावेश करने की प्रत्याशा करता है, वे फैक्टरी से मिलने वाले आभास लगानों के स्रोत हैं। यदि वे उसकी प्रत्याशा के अनुरूप सिद्ध हों तो उसके व्यवसाय से अच्छे लाभ प्राप्त हो सकते हैं। यदि इससे बहुत नीचे रहें तो उसके व्यवसाय की प्रकृति हानिकारक होने लगती है। किन्तु उसका कथन मूल्य की दीर्घकालीन समस्याओं पर आधारित है: और इस सम्बन्ध में मूल तथा पूरक लागतों के बीच अन्तर का कोई विशेष महत्व नहीं रहता। इनके बीच अन्तर का महत्व अल्प-अवधि से सम्बन्धित समस्याओं तक ही सीमित रहता है।

अध्याय 5

दीर्घ एवं अल्पकाल के संदर्भ में सामान्य माँग तथा सम्भरण का साम्य (पूर्वानुबद्ध)

जब प्रसामान्य शब्द का प्रयोग लोचपूर्ण हो तो समय के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ जिनका कि इस अध्याय में विवेचन किया गया है, साधारण वार्तालाप में गुप्त रहती हैं।

§1. 'प्रसामान्य' शब्द के क्षेत्र में विचाराधीन अवधि के दीर्घ या अल्प होने के कारण जो विभिन्नताएँ पायी जाती हैं उनका अध्याय 3 में उल्लेख किया गया था। अब हम उनका अधिक बारीकी से अध्ययन करेंगे।

अन्य दशाओं की भाँति इनमें भी अर्थशास्त्री जीवन के सामान्य वार्तालाप में छिपी हुई कठिनाइयों पर केवल प्रकाश ही डालता है जिससे इनका निस्संकोच सामना किये जाने के कारण उन पर पूर्ण विजय प्राप्त की जा सके। क्योंकि साधारण जीवन में समय की विभिन्न अवधियों में प्रसामान्य शब्द का अलग-अलग अर्थों में प्रयोग होता चला आ रहा है, और एक अर्थ से दूसरे अर्थ में होने वाले परिवर्तन को प्रसंग से ही जाना जा सकता है। अर्थशास्त्री दैनिक जीवन के इस आचरण का अनुसरण करता है. किन्तु इस परिवर्तन को अंकित करने में वह कभी-कभी उलझन पैदा करता हुआ दिखायी देता है, यद्यपि वास्तव में वह इसे केवल स्पष्ट करता है।

इस प्रकार जब यह कहा जाता है कि किसी खास दिन ऊन की कीमत असाधारण रूप से ऊँची थी यद्यपि उस वर्ष औसत कीमत असाधारण रूप से नीची थी, कोयले की खानों में काम करने वालों की मजदूरी 1872 में असाधारण रूप से ऊँची थी और 1879 ई० में असाधारण रूप से नीची थी, चौदहवीं शताब्दी के अन्त में श्रमिकों की (वास्तविक) मजदूरी असाधारण रूप से ऊँची थी और सोलहवीं शताब्दी के मध्य में असाधारण रूप से नीची थी, तो प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि इन विभिन्न दशाओं में प्रसामान्य शब्द का क्षेत्र समान नहीं होता।

उत्पादन से इस बात के सर्वोत्तम दृष्टान्त उन विनिर्माण उद्योगों से दिये जा सकते हैं जहाँ संयन्त्र की आयु लम्बी होती है और उत्पादन अल्पकालीन होता है। जब एक नया सूती कपड़ा पहले-पहल लोगों की पसन्द के लिए बनाया जाता है और इसके निर्माण के लिए उपयुक्त संयन्त्र बहुत कम उपलब्ध हो तो कुछ महीनों तक इसकी प्रसामान्य कीमत अन्य ऐसे वस्त्रों की कीमत से दुगुनी ऊँची हो सकती है जिनका बनाना कम कठिन नहीं है किन्तु जिनके बनाने के लिए उपयुक्त संयन्त्र तथा दक्षता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। लम्बी अवधि को दृष्टि में रखते हुए हम कह सकते हैं कि इसकी प्रसामान्य कीमत अन्य वस्तुओं की प्रसामान्य कीमत के बराबर है: किन्तु यदि पहले कुछ महीनों में इसका अधिकांश भाग दिवालिए के भण्डार के रूप में विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाये तो हम कह सकते हैं कि इसकी कीमत अन्य वस्तुओं की कीमतों की आधी होने पर भी असाधारण रूप से नीची थी। प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि इस शब्द का विभिन्न प्रसंगों में विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है और एक निर्दिष्ट विश्लेषणात्मक

वाक्यांश कदाचित् ही आवश्यक होता है, क्योंकि साधारण बातचीत में गलतफहमियों को प्रश्न एवं उत्तर द्वारा प्रारम्भ में ही दूर किया जा सकता है। किन्तु हमें इस विषय पर अधिक बारीकी से विचार करना चाहिए।

वस्त्र उद्योग से लिया गया दृष्टान्त।

हम यह देख चुके है[1] कि एक वस्त्र विनिर्माता को सर्वप्रथम इस कल्पना पर कि सम्भरण की दशाएँ प्रसामान्य होगी, वस्त्र बनाने के लिए आवश्यक चीजो की अलग-अलग मात्राओ के प्रसंग मे विभिन्न आवश्यक चीजो के उत्पादन करने मे लगने वाली लागत की गणना करनी होगी। किन्तु इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि उसे इस शब्द की निकट अथवा सुदूर भविष्य के दृष्टिकोण के अनुसार अधिक विस्तृत अथवा अधिक संकुचित सीमा निर्धारित करनी चाहिए।

इस प्रकार किसी विशेष श्रेणी के कर्यो को चलाने के हेतु श्रम की पर्याप्त मात्रा प्राप्त करने के लिए आवश्यक मजदूरी का अनुमान लगाते समय वह समीप मे उसी प्रकार के कार्य के लिए मिलने वाली प्रचलित मजदूरी को ध्यान मे रखेगा। या वह यह तर्क देगा कि समीप मे उस विशेष श्रेणी के श्रमिको का अभाव है, वहा इसकी प्रचलित मजदूरी इंग्लैंड के अन्य भागो से अधिक ऊँची है, और आप्रवास की गजाइश रखने के लिए अनेक आगे आने वाले वर्षो को ध्यान मे रखते हुए वह मजदूरी की प्रसामान्य दर को उस समय विद्यमान दर से कम मानेगा। या अन्त मे आधी पीढ़ी पूर्व के काल मे व्यापार की भावी दशाओ के विषय मे बहुत निराशामय दृष्टिकोण अपनाने के फलस्वरूप सम्भवत: वह यह सोचे कि बुनकरो की मजदूरी सारे देश मे उसी स्तर के अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा असाधारण रूप से नीची थी। वह यह भी तर्क दे सकता है कि कार्य की इस शाखा मे आवश्यकता से अधिक लोग काम पर लगे है, कि माता-पिताओ ने पहले ही अपने बच्चो के लिए ऐसे अन्य काम-धन्धे छाँटने आरम्भ कर दिये है जिनमे अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक हित है परन्तु फिर भी जो अधिक कठिन नही है कि कुछ वर्षो बाद उसके कार्य के अनुकूल श्रम की पूर्ति मे कमी होने लगेगी। इनके फलस्वरूप सुदूर भविष्य पर विचार करते हुए वह प्रसामान्य मजदूरी की दर ऐसी मानेगा जो वर्तमान औसत से अधिक ऊँची हो।[2] पुन. ऊन की प्रसामान्य सम्भरण कीमत का अनुमान लगाते समय वह पिछले अगिनत वर्षो का औसत लगायेगा। वह निकट भविष्य मे सम्भरण को प्रभावित करने वाले उन परिवर्तनो के लिए भी गुंजाइश रखेगा जो समय-समय पर आस्ट्रेलिया तथा अन्यत्र पड़ने वाले सूखे के कारण होते है. क्योंकि सूखा इतनी

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 5

2 वास्तव में ऐसे अवसर अधिक नहीं हैं जब कि एक व्यवसायी व्यक्ति ने व्यावहारिक दृष्टिकोण से हिसाब लगाने में इतने सुदूर भविष्य को ध्यान में रखा होगा और सामान्य शब्द का दायरा एक सम्पूर्ण पीढ़ी तक फैला हुआ माना होगा: किन्तु अर्थविज्ञान के अधिक व्यापक प्रयोगों में कभी-कभी यह आवश्यक हो जाता है कि इसका दायरा और आगे तक फैला हो और इसमें पिछली शताब्दियों में प्रत्येक प्रकार के औद्योगिक स्तर के श्रम की पूर्ति कीमत को प्रभावित करने वाले मन्द परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना होगा।

बार पड़ता है कि इसे असाधारण नही माना जा सकता। किन्तु वह हमारे किसी महा-युद्ध मे शामिल होने की सम्भावना पर ध्यान नही देगा जिससे आस्ट्रेलिया से प्राप्त होने वाले ऊन का सम्भरण समाप्त हो जाय। वह यह सोचेगा कि इस बात की गुंजाइश असाधारण व्यापारिक जोखिमो के शीर्षक मे शामिल होनी चाहिए न कि उसके द्वारा लगाये गये ऊन की सम्भरण कीमत के अनुमान मे।

वह नागरिक हगामो अथवा असामान्य प्रकार के श्रम-बाजार मे अन्य प्रचण्ड एव अधिक समय तक बनी रहने वाली गड़बड़ी के जोखिम पर भी इसी प्रकार विचार करेगा, किन्तु प्रसामान्य दशाओ मे मशीन, इत्यादि से किये जा सकने वाले कार्य के अनुमान मे उसे सम्भवतः निरन्तर होने वाले व्यापारिक झगड़ो से उत्पन्न छोटी-मोटी रुकावटो की भी गणना करनी पड़ेगी, और इसलिए इन्हे नित्यप्रति की घटनाएँ अर्थात् साधारण घटनाएँ समझना होगा।

इन सभी गणनाओ मे वह विशेषकर यह पता लगाने की कोशिश नही करेगा कि मानव कहा तक स्वार्थी अथवा निजी हित से सम्बन्धित प्रयोजनो से पूर्णतया प्रभावित होता है। उसे यह पता होगा कि क्रोध तथा दर्प, ईर्ष्या तथा आघात पहुँचाये हुए गौरव से अभी भी उसी प्रकार हड़ताल तथा तालाबन्दी होती है जैसे कि धन सम्बन्धी लाभ की इच्छा से होती है। किन्तु ये सब बातें उसकी गणनाओ मे शामिल नही होगी। वह इनके बारे मे केवल यही जानना चाहेगा कि क्या ये सभी बाते पर्याप्त निरतरता के साथ होती है या नही जिससे इनके द्वारा उसके कार्य मे पैदा होने वाली रुकावट तथा वस्तुओ की प्रसामान्य सम्भरण कीमत मे होने वाली वृद्धि के लिए उचित गंजाइश रखी जा सके।[1]

मूल्य की जटिल समस्या का अवश्य ही विभाजन करना चाहिए।

§2. आर्थिक अन्वेषणो की उन कठिनाइयो का सबसे मुख्य कारण सीमित समय का होना है जिससे सीमित शक्तियो वाले मानव के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह धीरे-धीरे आगे बढ़े, किसी जटिल समस्या को कई भागो मे विभाजित करे इसके प्रत्येक अश का अलग-अलग अध्ययन करे, और अन्त मे इस पहेली के अपने आशिक हलो को मिला कर इसका न्यूनाधिक रूप से पूर्ण हल निकाले। समस्या का विभाजन करते समय उसे उन विघ्नकारी कारणो को पृथक् करना चाहिए जो असुविधा पैदा करते है। यह तभी सम्भव है जब इस समय अन्य बाते समान रहें। कुछ प्रवृत्तियो के अध्ययन को अन्य बाते समान मान कर पृथक किया जा सकता है: अन्य प्रवृत्तियो के अस्तित्व का निषेध नही किया जाता, किन्तु कुछ समय के लिए उनके विघ्नकारी प्रभाव की अवहेलना की जाती है। इस प्रश्न को जितना ही अधिक संकुचित किया जाता है उतनी ही अधिक यथार्थता के साथ इसका निपटारा किया जा सकता है: किन्तु यह वास्तविक जीवन पर उतनी ही कम घनिष्ठता के साथ लागू होता है। किसी सकुचित प्रश्न के निश्चित तथा दृढ़ निपटारे से उन अधिक व्यापक प्रश्नो के, जिनमें सकुचित प्रश्न भी निहित है, हल निकालने मे अपेक्षाकृत अधिक सहायता मिलती है। इस प्रकार क्रमानुसार पूर्ववत माने गये प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला जा सकता है,

---

1 भाग 1, अध्याय 2, अनुभाग 7 से तुलना कीजिए।

यथार्थ विवेचनों को कम गूढ़ बनाया जा सकता है, वास्तविक विवेचनों को पहले की अपेक्षा कम अनिश्चित बनाया जा सकता है।[1]

उत्पादन की लागत तथा मूल्य के सम्बन्धों पर समय के प्रभावों के अध्ययन के लिए हमारा पहला कदम उस स्थिर अवस्था की विख्यात कल्पना पर विचार करना होगा जिसमें इन प्रभावों का केवल थोड़ा ही भान होता है, और तत्पश्चात् इसके परिणामों तथा आधुनिक संसार में पाये जाने वाले परिणामों से विपर्यय दिखाना होगा।

स्थिर अवस्था की कल्पना।

इस अवस्था का यह नाम पड़ने का कारण यह है कि इसमें उत्पादन तथा उपभोग, वितरण तथा विनिमय की सामान्य दशाएँ गतिहीन रहतीं हैं, किन्तु तो भी इसमें पूर्ण गति विद्यमान रहती है क्योंकि यह जीवन का एक ढंग है। जनसंख्या की औसत आयु स्थिर हो सकती है भले ही प्रत्येक व्यक्ति युवावस्था से प्रौढ़ावस्था, या वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हो रहा हो। अनेक पीढ़ियों तक उन्ही वर्गों के लोगों द्वारा एक ही प्रणाली से वस्तुओं का इतना उत्पादन किया जायेगा कि प्रति व्यक्ति उत्पादन पूर्ववत् रहेगा। अतएव उत्पादन के उपकरणों की पूर्ति को इनकी स्थिर माँग के अनुसार बदलने के लिए पूर्ण समय मिलेगा।

निस्सन्देह हम यह मान सकते है कि स्थिर अवस्था मे हर व्यवसाय का आकार सदैव एकसा रहता है, और इसके व्यापारिक सम्बन्ध भी वही रहते है। किन्तु हमें इस हद तक पहुँचने की आवश्यकता नही। यह कल्पना करना ही पर्याप्त होगा कि फर्मों का उत्थान व पतन होता है, किन्तु "प्रतिनिधि फर्म" का आकार किसी अक्षत जगल के प्रतिनिधि पेड़ की भाँति सदैव एक सा रहता है, और अतएव इसके निजी साधनों से प्राप्त होने वाली किफायतें स्थिर रहती हैं और चूँकि उत्पादन की कुल मात्रा स्थिर रहती है, अत समीप मे स्थित गौण उद्योगों से उत्पन्न होने वाली किफायतें भी स्थिर रहती है। (अर्थात् इसकी आतरिक एव वाह्य किफायतें दोनो ही स्थिर रहती है। कीमत जिसकी आशा से लोग व्यापार आरम्भ करने के लिए प्रेरित होते है, कम से कम इतनी होनी चाहिए कि इससे दीर्घकाल मे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने मे लगने वाली लागत पर्याप्त रूप से वसूल हो जाय, और उत्पादन की कुल लागत वसूल करने के लिए इसका आनुपातिक भाग अवश्यमेव जुड़ना चाहिए।)

---

1 जैसा कि प्राक्कथन में स्पष्ट किया गया है, इस ग्रन्थ का सम्बन्ध मुख्यतया प्रसामान्य दशाओं से है, और इन्हें कभी-कभी स्थैतिक (statical) कहा जाता है। किन्तु इस लेखक के विचार में प्रसामान्य मूल्य की समस्या आर्थिक गतिविज्ञान से सम्बन्धित है : इसका आंशिक कारण यह है कि स्थैतिकी (statics) वास्तव में गति विज्ञान की केवल एक शाखा है, और आंशिक कारण यह है कि आर्थिक स्थिरता के सभी सुझाव जिसमें से स्थिर अवस्था की प्राक्कलपना मुख्य है, केवल तात्का- लिक है, इन्हें तर्क की किसी खास बातों को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है और इसके स्पष्ट हो जाने पर इन्हें अलग कर दिया जाता है।

स्थिर अवस्था में मूल्य का सिद्धान्त सरल होगा।

स्थिर अवस्था में यह सहज नियम लागू होगा कि उत्पादन की लागत से मूल्य नियंत्रित होता है। प्रत्येक परिणाम का मुख्यतया एक ही कारण समझा जायेगा। कारण तथा परिणाम के बीच अधिक जटिल क्रिया एवं प्रतिक्रिया नहीं होगी। लागत के तुरन्त एवं बाद के परिणामों के बीच कोई आधारभूत अन्तर नही होगा। यदि हम यह कल्पना करे कि किसी नीरस संसार में स्वयं फसलें भी समान हो तो दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन प्रसामान्य मूल्य के बीच कोई भेद नही होगा क्योंकि प्रतिनिधि फर्म के सदैव एक ही आकार के होने के कारण तथा एक ही प्रकार के व्यवसाय को सदैव एक ही सीमा तक समान प्रकार से करने अर्थात् इसमे न तो काम बहुत कम होने और न अधिक होने से इसके प्रसामान्य खर्चे जिससे प्रसामान्य सम्भरण कीमत नियंत्रित होती है, सदैव एक ही रहेंगे। कीमतों की माँग सूचियाँ सदैव एक ही रहेंगी और सम्भरण सूचियाँ भी वही रहेंगी, तथा प्रसामान्य कीमत कभी भी नही बदलेगी।

किन्तु वास्तविक संसार में मूल्य का सरल सिद्धान्त इसके न होने से भी बदतर है।

किन्तु जिस संसार मे हम रहते है वहाँ इसका कुछ भी अंश सत्य नही है। यहाँ प्रत्येक आर्थिक शक्ति अन्य शक्तियों के प्रभाव मे जो कि इस पर चारों ओर से प्रभाव डालती है निरन्तर अपना प्रभाव बदलती रहती है। यहाँ उत्पादन की मात्रा, इसकी प्रणालियो तथा इसकी लागत मे परिवर्तनो से निरन्तर एक-दूसरे का रूप बदल रहा है। ये परिवर्तन हमेशा माँग के रूप तथा इसकी सीमा को प्रभावित करते है और इनसे प्रभावित होते है। इसके अतिरिक्त इन सभी के पारस्परिक प्रभावो के पूर्णरूप मे दृष्टिगोचर होने मे समय लगता है, और प्राय कोई भी दो प्रभावो के कभी भी एक से परिणाम नही निकलते। अत. इस संसार मे उत्पादन की लागत, माँग तथा मूल्य के बीच के सम्बन्धों के विषय मे दिया गया सरल व सहज सिद्धान्त निश्चय ही गलत है और चतुरतापूर्ण स्पष्टीकरण द्वारा इस सिद्धान्त को जितनी ही अधिक सफाई के साथ व्यक्त किया जायेगा यह उतना ही अधिक छलपूर्ण होगा। एक व्यक्ति यदि अपनी सामान्य बुद्धि तथा व्यावहारिक मूल प्रवृत्तियो पर विश्वास करे तो वह उस अवस्था की अपेक्षा अधिक अच्छा अर्थशास्त्री बन सकता है जब कि वह मूल्य के सिद्धान्त का अध्ययन करना चाहता है और इसे सरल बनाने के लिए कटिबद्ध हो।

स्थिर अवस्था की कल्पना में होने वाले संशोधन हमें वास्तविक जीवन के अधिक निकट लाते

§3 स्थिर अवस्था से अभी हमारा अभिप्राय ऐसी स्थिति से है जब कि जनसंख्या स्थिर हो। किन्तु इसके प्राय. सभी विशिष्ट लक्षण एक ऐसे स्थान मे प्रदर्शित किये जा सकते हैं जहाँ जनसंख्या तथा धन दोनो मे वृद्धि हो रही हो, और इसमे भी यह शर्त निहित है कि इन दोनो मे समान रूप से वृद्धि हो और भूमि का कोई भी अभाव न हो: और यह भी कि उत्पादन की प्रणालियो तथा व्यापार की दशाओ मे बहुत कम परिवर्तन हो। इन सबके अतिरिक्त इसमे यह शर्त भी निहित है कि स्वय मनुष्य का आचरण स्थिर हो। इस अवस्था मे उत्पादन तथा उपभोग, विनिमय तथा वितरण की सबसे महत्वपूर्ण दशाएँ बहुत हद तक एक सी ही रहेंगी, और इनके एक दूसरे से सामान्य सम्बन्ध समान रहेंगे, भले ही सबकी मात्रा बढ रही है।[1]

1 भाग 5, अध्याय 11, अनुभाग 6 देखिए तथा कीन्स की Scope and Method of Political Economy, अध्याय VI, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

पूर्ण स्थिर अवस्था के कठोर बन्धनों में यह छूट होने से हम जीवन की वास्तविक दशाओं के कुछ अधिक निकट पहुँच जाते है : और इनमें और अधिक छूट मिलने से हम इसके और भी अधिक निकट पहुँच सकते है। इस प्रकार धीरे-धीरे हम असंख्य आर्थिक कारणों के पारस्परिक प्रभाव की कठिन समस्या के निकट पहुँचते हैं। स्थिर अवस्था में उत्पादन तथा उपभोग की सभी दशाएँ स्थिर रहती हैं: किन्तु स्थैतिकी प्रणाली में, जिसका यह नाम पूर्ण रूप से सही नहीं है, इस विषय के सम्बन्ध में क्रम-उत्र मान्यताएँ मानी जाती है। उस प्रणाली से हम अपने मस्तिष्क को इसके किसी केन्द्रीय भाग पर स्थिर करते हैं: कुछ समय के लिए हम इस भाग को स्थिर अवस्था कहेंगे। इसके बाद हम इसके सम्बन्ध मे उन शक्तियों का अध्ययन करेंगे जिनसे इसके चारों ओर की चीजें प्रभावित होती है, और वहाँ इन शक्तियों के साम्य की कोई भी प्रवृत्ति हो सकती है। इन अनेक आंशिक अध्ययनों के फलस्वरूप ऐसी समस्याओं का हल निकल सकता है जिन्हें एक ही प्रयास मे समझना मुश्किल है।[1]

हैं और जटिल समस्याओं के हल में सहायता पहुँचाते हैं।

मत्स्य धन्धे से लिया गया दृष्टान्त।

§4. मत्स्य उद्योगों से सम्बन्धित समस्याओं को मोटे तौर पर हम उन समस्याओं में वर्गीकृत कर सकते हैं जिन पर बहुत शीघ्र होने वाले परिवर्तनों, जैसे मौसम की अनिश्चितताओं, का प्रभाव पड़ता है, या साधारण अवधि के परिवर्तनों, जैसे एक या दो वर्षों में पशुओं की महामारी के कारण शिकार के अभाव मे मछली के लिए बढी हुई माँग, का प्रभाव पड़ता है। अथवा अन्त में हम एक पीढी मे मछलियों की उस अत्यधिक बढी हुई माँग पर विचार करें जिसका कारण अपने हस्त-कौशल का बहुत कम उपयोग करने वाले अभिमानी दस्तकारों की जनसंख्या मे तीव्र वृद्धि होना है।

दिन प्रति दिन के उतार-चढ़ाव।

मौसम की अनिश्चितताओं इत्यादि के कारण होने वाली मछली के दामों के उतार-चढ़ाव आधुनिक इंग्लैंड मे व्यवहार में उन्ही कारणों में नियंत्रित हुए हैं जिनसे कि हमारी इस कल्पित स्थिर अवस्था में नियंत्रित हुए हैं। हमारे चारों ओर की सामान्य आर्थिक दशाओं में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुए हैं, किन्तु ये इतनी तेजी से नही हुए हैं कि अल्पकालीन सामान्य स्तर पर, जिसके आस पास कीमतें दिन प्रति दिन बदलती हैं, कोई प्रत्यक्ष प्रभाव डाल सकें : ऐसे उतार-चढावों के अध्ययन करते समय इनकी अवहेलना की जा सकती है (क्योंकि ये अन्य बातें समान रहें वाक्यांश में निहित होते हैं)

माँग में वृद्धि के फलस्वरूप अल्पकालीन सम्भरण कीमत बढ़ जाती है।

अब हमें इस विषय पर आगे विचार करना चाहिए। मान लें कि मछली की सामान्य माँग में इतनी अधिक वृद्धि हुई है जितनी कि पालतू पशुओं पर बीमारी लग जाने के कारण अनेक वर्षों तक पशुओं का मांस महँगा तथा क्षतिकारक भोजन बन जाने के कारण हो सकती है। हम मौसम के कारण उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव को अन्य बातें समान रहें वाक्यांश मे निहित मानते हैं, और इनकी कुछ समय के लिए अवहेलना करते हैं : ये उतार-चढाव इतनी तेजी से होते हैं कि ये एक दूसरे के प्रभाव को विलुप्त कर देते हैं, और अतः ये इस वर्ग की समस्याओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं। इसी के प्रतिकूल तर्क के कारण हम उन लोगों की संख्या में होने वाले परिवर्तनों की अवहेलना करते हैं जिनका नाविकों की तरह पालन-पोषण हुआ है : क्योंकि ये

1 प्राक्कथन तथा परिशिष्ट ज (II), अनुभाग 4 से तुलना कीजिए।

परिवर्तन इतने मन्द होते हैं कि इनका उन एक या दो वर्षो मे, जब मास का अभाव रहता है, अधिक प्रभाव नही पड़ता। कुछ समय के लिए इन दोनों बातो को ही 'अन्य बाते समान रहे' वाक्यांश मे निहित मानकर हम ऐसे प्रभावों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे जिनसे नाविको को मछली पकडने के लिए अच्छी मजदूरी के रूप मे प्रलोभन देकर एक या दो साल के लिए किसी जहाज मे कार्य के लिए प्रार्थना पत्र भेजने की अपेक्षा मछली पकडने के अपने ही स्थानो मे ठहरने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। हम देखते है कि मछली पकडने की पुरानी नावे, और यहाँ तक कि वे जलयान भी जिन्हे विशेषकर मछली पकडने के लिए ही नही बनाया गया था, बदल कर मछली पकडने के अनुकूल बनाये जा सकते है और उनसे एक या दो वर्ष तक मछलियाँ पकड़ी जा सकती है। नित्य-दिन बेची जाने वाली मछली की निश्चित मात्रा की प्रसामान्य कीमत, जिस पर अब हम विचार करना चाहते है, वह कीमत होगी जो शीघ्र ही मत्स्य धन्धे मे पूँजी तथा श्रम की इतनी मात्रा आकर्षित करेगी जिससे एक औसत दिन मे उतना सम्भरण प्राप्त हो सके। क्योकि मत्स्य धन्धे मे सुलभ पूँजी तथा श्रम पर मछली की कीमत का प्रभाव इसी प्रकार के सकुचित कारणो से नियत्रित होता है। असाधारण माँग वाले इन वर्षो मे यह नया स्तर जिसके आस-पास कीमत बदलती रहती है, निश्चय ही पहले से अधिक ऊँचा होगा। यहाँ हमे लगभग इस सार्वभौमिक नियम का दृष्टान्त मिलता है कि 'प्रसामान्य' शब्द का अभिप्राय यदि अल्पकाल हो तो **माँग की मात्रा में वृद्धि होने से प्रसामान्य सम्भरण कीमत बढ़ जाती है।** यह नियम उन उद्योगो मे भी प्राय सार्वभौमिक है जिनमे दीर्घकाल मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम का अनुकरण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।[1]

किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इससे दीर्घ कालीन सम्भरण कीमत भी बढ़ जायेगी।

किन्तु यदि हम प्रसामान्य सम्भरण कीमत पर दीर्घकाल के प्रसग मे विचार करे तो यह पायेगे कि यह कुछ भिन्न कारणो से नियत्रित होती है और इसके परिणाम भी भिन्न होते है। क्योकि यदि यह मान ले कि मास के उपयोग मे न लाये जाने के कारण उसके लिए सदा के लिए घृणा हो जाय, और मछली के लिए बढी हुयी माँग इतने लम्बे समय तक बनी रहे कि इसके सम्भरण को नियत्रित करने वाली शक्तियाँ अपना पूर्ण प्रभाव दिखा सके (निस्सन्देह दिन प्रति दिन तथा वर्ष प्रतिवर्ष के उतार-चढाव तो होते ही रहेंगे किन्तु उन्हे हम एक ओर छोड सकते है)। समुद्र मे मछली वाले स्थानो मे होने वाले लक्षण दिखायी दे सकते है और मछुवो को अधिक दूर के तटों तक या अधिक गहरे समुद्र तक जाना पड सकता है, क्योकि एक निश्चित प्रकार की कुशलता के साथ पूँजी तथा श्रम की अधिकाधिक मात्रा लगाने से प्रकृति 'घटती हुई दर' पर प्रतिफल देती है। दूसरी ओर, उन लोगों के विचार सही हो सकते है जो यह सोचते है कि मछलियो के निरंतर होने वाले विनाश मे मनुष्य बहुत थोडी मात्रा के लिए ही उत्तरादायी है, और उस दशा मे समान रूप से अच्छे उपकरणों से युक्त तथा समान रूप से दक्ष नाविक दल द्वारा चलायी जाने वाली नाव से मत्स्य धन्धे मे वृद्धि के बाद भी पहले की भाँति ही मछलियाँ पकड़ी जा सकेगी। अच्छी नाव को

1 भाग 5, अध्याय 11, अनुभाग 1 देखिए।

दक्ष नाविक दल द्वारा चलाये जाने पर प्रसामान्य लागत कभी भी अधिक ऊँची नही होगी, और इस धन्धे के बढ़े हुए आकार के अनुरूप व्यवस्थित हो जाने के बाद यह सम्भव है कि लागत पहले की अपेक्षा कम हो जाये। जैसा कि मछुओं के लिए केवल प्रशिक्षित अभिरुचि (aptitude) की, और न कि किन्ही असाधारण प्राकृतिक गुणों का होना आवश्यक है, इनकी संख्या मे एक पीढ़ी से भी कम की अवधि मे इतनी अधिक वृद्धि की जा सकती है जिससे इनकी माँग की पूर्ति हो सके। अब नाव बनाने, जाल बनाने इत्यादि से सम्बन्धित उद्योग बड़े पैमाने पर होने के कारण इनका अधिक सुसगठित रूप मे एवं किफायत के साथ प्रबन्ध किया जा सकेगा। अत. यदि समुद्र मे मछलियो की कमी न प्रतीत हो तो आर्थिक कारणों के प्रसामान्य प्रभाव दृष्टिगोचर होने के लिए आवश्यक समय व्यतीत होने पर पहले से अपेक्षाकृत कम कीमत पर अधिक मछलियाँ प्राप्त की जा सकती है: और 'प्रसामान्य' शब्द का सम्बन्ध दीर्घकाल से मानते हुए मछलियो की प्रसामान्य कीमत माँग मे वृद्धि के साथ-साथ कम होती जायेगी।[1]

औसत तथा सामान्य कीमतें।

इस प्रकार औसत कीमत तथा प्रसामान्य कीमत के बीच पहले बताये गये विभेद पर हम जोर दे सकते है। किसी भी प्रकार की वस्तुओ के विक्रय की दैनिक, साप्ताहिक या वार्षिक या अन्य किसी समय की कीमतो का औसत लिया जा सकता है: या यह अनेक बाजारो मे किसी समय के विक्रय का औसत हो सकता है। अथवा यह इस प्रकार के अनेक औसतो का औसत हो सकता है। किन्तु किसी भी समान प्रकार के विक्रय के लिए जो दशाएँ सामान्य रहती है ठीक वे ही अन्य प्रकार के विक्रयो के लिए सामान्य नही हो सकती: और इसलिए औसत कीमत अकस्मात् ही प्रसामान्य कीमत अर्थात् वह

---

1 टूक (History of Prices, खण्ड I, पृष्ठ 104) कहते हैं: "कुछ ऐसी खास वस्तुएँ हैं जिनकी नौसेना तथा सैनिक उद्देश्यों के लिए की जाने वाली माँग का कुल सम्भरण के साथ इतना बड़ा अनुपात होता है कि व्यक्तिगत उपभोग में कमी सरकार द्वारा तुरन्त बढ़ायी गयी माँग से बढ़ कर नहीं हो सकती, और परिणामस्वरूप युद्ध के छिड़ जाने पर ऐसी वस्तुओं के दाम अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे होते जा रहे हैं। किन्तु ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में भी यदि उपभोग में इतनी अधिक उत्तरोत्तर वृद्धि न हो कि अपेक्षाकृत ऊँची कीमत के प्रोत्साहन मिलने से सम्भरण में माँग के अनुकूल वृद्धि न हो सके तो (उत्पादन अथवा आयात में किसी भी प्रकार की प्राकृतिक अथवा कृत्रिम बाधाओं की कल्पना न करते हुए) उस वस्तु की मात्रा में इतनी अधिक वृद्धि की जायेगी कि कीमत गिर कर लगभग उसी स्तर पर आ जायेगी जहाँ से यह बढ़ी। तदनुसार कीमतों की सारणी को देखने से हमें यह ज्ञात होगा कि शोरा (salt-petre) सन, लोहा, इत्यादि की कीमत सैनिक तथा नौ सेना के उद्देश्यों के लिए बहुत बढ़ी हुई माँग के प्रभाव में अत्यधिक बढ़ जाने के पश्चात् उनके लिए माँग में उत्तरोत्तर तथा शीघ्रता से वृद्धि न होने पर गिरने लगेगी।" इस प्रकार निरन्तर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग से किसी वस्तु की सम्भरण कीमत अनेक वर्षों तक बढ़ सकती है, यद्यपि उस वस्तु के लिए ऐसी दर पर, जो कि इतनी अधिक न हो कि उसकी पूर्ति ही न हो सके, धीरे-धीरे माँग बढ़ने पर कीमत घट जायेगी।

कीमत होती है जो एक ही प्रकार की दशाओं से निश्चित की जाती हैं। जैसा कि हम अभी देख चुके हैं, केवल स्थिर अवस्था में ही प्रसामान्य शब्द का अर्थ सदैव एक सा रहता है : वही, किन्तु केवल वहीं, "औसत कीमत" तथा "प्रसामान्य कीमत" पर्यायवाची शब्द हैं।[1]

मुख्य परिणामों की पुनरावृत्ति।

§5. हम इस विषय पर दूसरे ढंग से विचार प्रकट करते हैं। बाजार मूल्य, न्यूनाधिक रूप से 'भविष्य' में होने वाले सम्भरण के प्रसंग में और व्यापारिक गुटों के कुछ न कुछ प्रभाव में, (बाजार मे स्थित स्टाक के साथ) माँग के सम्बन्ध से नियंत्रित होते हैं।

सीमान्त उत्पादन का स्वरूप।

किन्तु स्वयं वर्तमान सम्भरण आंशिक रूप से विगत काल के उत्पादकों के कार्य का प्रभाव है, और यह कार्य उनके द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओं के लिए मिलने वाली कीमतों की उनके उत्पादन मे लगी लागत से तुलना से निर्धारित हुआ है। अपने खर्चों के जिस दायरे को वे ध्यान मे रखते है वह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या वे अपने मौजूदा संयंत्र से कुछ अतिरिक्त उत्पादन पर होने वाले खर्चों को ही ध्यान में रखते हैं अथवा इस उद्देश्य के लिए नया संयंत्र स्थापित करने की सोच रहे हैं। दृष्टान्त के लिए रेल के एक इंजन के आर्डर के कारण जिस पर कुछ ही पूर्व विचार किया गया था, माँग के अनुसार संयंत्र को पुनर्व्यवस्थित करने का प्रश्न मुश्किल से ही उठेगा। मुख्य प्रश्न यह होगा कि क्या वर्तमान संयंत्र से सुविधा के अनुसार अधिक कार्य लिया जा सकता है या नही। किन्तु यदि धीरे-धीरे अनेक वर्षों की अवधि मे बड़ी संख्या मे रेल के इंजन तैयार करने का आर्डर मिला हो तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए "विशेष रूप से" बनाये गये संयंत्र मे, जिसे वास्तव मे मूल सीमान्त लागत माना जा सकता है, कुछ प्रसार करने के विषय पर प्राय: निश्चित ही सतर्कतापूर्वक विचार किया जायेगा।

नये उत्पादन के लिए मिलने वाले बाजार चाहे बड़े पैमाने पर हो या छोटे पैमाने पर, सामान्य नियम यह है कि जब तक कीमत के बहुत नीचे होने की आशा न हो तब तक सम्भरण के जिस भाग को कुछ ही मूल लागत के साथ सरलतापूर्वक उत्पन्न किया जा सकता है, उसे उत्पन्न किया जायेगा : वह भाग सम्भवतया उत्पादन की सीमा पर नही होगा। कीमत बढ़ने की आशाओ के बढ़ने पर उत्पादन के बढ़े हुए भाग से मूल लागत की अपेक्षा कही अधिक बचत होगी और उत्पादन की सीमा और आगे बढ़ जायेगी। प्रत्याशित कीमत मे होने वाली हर वृद्धि से वे लोग भी कुछ उत्पादन करने के लिए प्रेरित होंगे जिन्होंने अन्यथा कुछ भी उत्पादन नही किया होता और जिन लोगों ने कम कीमत पर भी कुछ उत्पादन नही किया था वे ऊँची कीमत पर और अधिक उत्पादन करेंगे। उनके उत्पादन के जिस भाग के विषय में ये लोग संशय में हों कि उनके लिए उस कीमत पर उसका उत्पादन करना लाभदायक होगा या नहीं उस भाग

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 6। इस विभेद पर भाग 5, अध्याय 12 तथा परिशिष्ट 'ज' में और आगे विचार किया जायेगा। कीन्स की Scope of Method of Political Economy, अध्याय VII भी देखिए।

को उन लोगों के उत्पादन में जोड़ना होगा जो इस संशय मे पड़े हों कि उत्पादन करना भी क्या आवश्यक है। इन दोनो का योग ही उस कीमत पर किया जाने वाला सीमान्त उत्पादन होगा। उत्पादक जो इस सशय मे हों कि किसी भी वस्तु का उत्पादन करना चाहिए या नही, ठीक उत्पादन के सीमान्त मे होगे (या यदि वे कृषक हों तो, कृषि के सीमान्त में होगे)। किन्तु प्राय. इन लोगो की सख्या बहुत कम होती है और इनका कार्य उन लोगों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण है जो हर हालत मे कुछ न कुछ उत्पादन करेंगे।

दीर्घ एवं अल्पकाल में 'प्रसामान्य' सम्भरण कीमत शब्द का सामान्य अर्थ।

प्रसामान्य सम्भरण कीमत शब्द का सामान्य अर्थ सदैव एक सा ही रहता है चाहे इसका दीर्घकाल से अथवा अल्पकाल से सम्बन्ध हो, किन्तु बारीकी मे जाने पर इसमे बड़े अन्तर दिखायी देते है। प्रत्येक दशा मे कुल उत्पादन की किसी निश्चित दर का, अर्थात् नित्य-प्रति या वर्ष मे कुल निश्चित मात्रा के उत्पादन का, प्रसग दिया जाता है। प्रत्येक दशा मे कीमत से अभिप्राय उस कीमत से होता है जिसकी प्रत्याशा मे लोग उस सम्पूर्ण मात्रा के उत्पादन के लिए प्रेरित होते है और जिससे ठीक लागत ही निकल पाती है। हर दशा मे उत्पादन की लागत सीमान्त है, अर्थात् यह उन वस्तुओं की उत्पादन लागत है जो बिलकुल उत्पन्न न किये जाने की सीमा पर है और यदि उन वस्तुओ की प्रत्याशित कीमत मे कमी होने की आशा हो तो उसका उत्पादन नही किया जायेगा। किन्तु इस सीमान्त को निर्धारित करने वाले कारण विचाराधीन समय की अवधि के अनुसार भिन्न होगे। अल्पकाल मे लोग उत्पादन के उपकरणों के स्टाक को प्राय. निश्चित मानते है, और वे माँग की स्थिति को ध्यान मे रखकर ही यह विचार करते हैं कि उन्हें उन उपकरणों का कहाँ तक सुचारु रूप से उपयोग करना चाहिए। दीर्घकाल मे वे इन उपकरणो की सहायता से उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की माँग की आशाओं के अनुसार इन उपकरणों में आवश्यक परिवर्तन करते हैं। अब हमें इस अन्तर पर गहराई के साथ विचार करना चाहिए।

अल्पकाल में उत्पादन के उपकरणों का स्टाक प्रायः निश्चित होता है, किन्तु उनकी माँग के अनुसार उपयोग बदलता है।

§6. ऊँची कीमत की आशा का तुरन्त प्रभाव यह पड़ता है कि इससे लोग अपने उत्पादन के सभी उपकरणो का सक्रिय रूप मे उपयोग करते है और उनका पूरे समय तथा सम्भवतः अतिरिक्त समय मे भी उपयोग करते है। उस दशा मे सम्भरण कीमत उत्पादन के उस भाग की मौद्रिक लागत है जिसके फलस्वरूप उपक्रामी अयोग्य श्रमिकों को भी (जो सम्भवत. अतिरिक्त समय कार्य करने से थके हुए हो) ऊँची मजदूरी पर काम पर लगाने के लिए बाध्य हो जाता है, और स्वय अपने पर तथा अन्य लोगों पर बहुत भार डाल देता है। कभी-कभी तो वह इतना परेशान हो जाता है कि इस संशय मे पड़ जाता है कि इसे करना भी उसके हित मे है या नही। किसी नीची कीमत मिलने की आशा का तुरन्त प्रभाव यह पड़ता है कि उत्पादन के अनेक उपकरण बेकार हो जाते हैं और अन्य उपकार का कार्य भी शिथिल पड़ जाता है। यदि उत्पादकों को अपने बाजारों को बिगाड़ने का भय न हो तो उन्हें कुछ समय के लिए किसी भी ऐसी कीमत पर उत्पादन करना लाभदायक होगा जिससे उत्पादन की मूल लागतें पूरी वसूल हो जाती हैं तथा इसके अतिरिक्त उन्हें अपने कष्ट के लिए पुरस्कार भी प्राप्त होता है।

किन्तु वास्तव में वे साधारणतया अधिक ऊँची कीमत के लिए कोशिश करते

है। प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपने ग्राहकों से बाद मे अधिक अच्छी कीमत प्राप्त करने के अवसर को नही बिगाडना चाहता है। अथवा, यदि वह एक विशाल तथा खुले बाजार के लिए उत्पादन करता हो तो उसे व्यर्थ मे ही ऐसी कीमत पर विक्रय करने पर जिससे सभी के लिए बाजार का भाव बिगड़ जाता है न्यूनाधिक रूप मे अन्य उत्पादको मे रोष पैदा होने का भय रहता है। इस दशा मे उन लोगो का उत्पादन सीमान्त उत्पादन है जिन्हे कीमत मे और अधिक कमी होने से बाजार के और भी अधिक बिगडने के डर से उत्पादन समाप्त करना पडे। वे या तो अपने हित को ध्यान मे रखकर या अन्य उत्पादकों के साथ औपचारिक या अनौपचारिक समझौता कर उत्पादन स्थगित करना हितकर समझते हैं। इन कारणो के फलस्वरूप उत्पादक जिस कीमत को अस्वीकार करने को तैयार हो जाते हैं वही अल्पकाल के लिए सही सम्भरण कीमत है। यह कच्चे माल, श्रम तथा सयत्र के टूट-फूट की विशेष अथवा मूल लागत से प्रायः सदैव अधिक, और साधारणतया बहुत अधिक होती है, क्योकि पूर्णरूप से उपयोग मे न लाये जाने वाले उपकरणो को थोड़ा और उपयोग मे लाने से तुरन्त ही तथा प्रत्यक्ष रूप मे यह लागत लगानी पडती है। इस विषय पर और आगे अध्ययन करने की आवश्यकता है।

जहाँ अचल पूँजी बहुत अधिक हो, कीमतें विशेष अथवा मूल लागत तक पहुँचे बिना ही सामान्य स्तर से नीचे गिर जाती है।

ऐसे धन्धे मे जहाँ बहुत कीमती सयत्र का प्रयोग किया जाता है, वस्तुओ की मूल लागत उनकी कुल लागत के केवल थोडे ही अश के बराबर होती है। प्रसामान्य कीमत से बहुत कम कीमत पर दिये गये आर्डर के कारण मूल लागत के अतिरिक्त बहुत बड़ी राशि शेष रह जाती है। किन्तु यदि उत्पादक अपने सयत्र को काम के अभाव मे बेकार न छोड़ने की चिन्ता मे इन आर्डरो को स्वीकार कर लेते है तो वे बाजार मे उस वस्तु का सम्भरण इतना बढा देते हैं कि उनकी कीमतो के फिर से बढ़ने मे रुकावट पैदा हो जाती है। वास्तव मे वे इस नीति का निरन्तर तथा बिना किसी नरमी के कदाचित् ही अनुसरण करते है। यदि उन्होने ऐसा किया तो वे इस व्यवसाय मे लगे अनेक लोगो का, जिनमे सम्भवत स्वय उनकी भी गणना होगी, सर्वनाश कर देंगे, और उस व्यवस्था मे माँग के पुन बढने से पूर्ति मे तनिक सा ही परिवर्तन होगा, और उस धन्धे मे उत्पन्न की जाने वाली चीजो के दाम अन्धाधुन्ध बढ़ जायेंगे। कीमतो मे इस प्रकार के अत्यधिक उतार-चढ़ाव दीर्घकाल मे न तो उत्पादको के लिए और न उपभोक्ताओ के लिए ही हितकारी होते है। सामान्य राय व्यापारिक नैतिकता की उस आचार-सहिता के बिलकुल भी विरुद्ध नही है जिसके अनुसार किसी भी ऐसे व्यक्ति के कार्य की निन्दा की जाती है जो ऐसी कीमत को भी बिलकुल लेने को तैयार हो जाने से "बाजार भाव बिगाडता है" जिस पर इन वस्तुओ की मूल लागत से थोड़ी ही अधिक धनराशि मिलती है, और उसके सामान्य खर्चे निकालने का बहुत कम प्रयत्न किया जाता है।[1]

---

1 जहाँ, गुप्त या प्रकट (overt) बहुत सुदृढ़ संगठन हो वहां उत्पादक उत्पादन की लागत को बहुत कम ध्यान में रखकर पर्याप्त समय तक कीमत को नियंत्रित कर सकते हैं। यदि उस संगठन के नेता वे हों जिनके पास उत्पादन के लिए सर्वोत्तम सुविधाएं हों तो, रिकार्डो के सिद्धान्तों के बाह्य न कि वास्तविक रूप में विपरीत, यह कहा

उदाहरण के लिए, यदि किसी समय कपड़े की एक गाँठ की मूल लागत 100 पौंड हो और यदि मालिकों के लाभ को मिला कर प्रतिष्ठान के सामान्य खर्चों में इसके हिस्से के रूप में अतिरिक्त 100 पौंड की आवश्यकता हो तो साधारण दशाओ मे व्यावहारिकरूप मे प्रभावोत्पादक सम्भरण कीमत सम्भवतया 150 पौंड से कदाचित् ही कम होगी, यद्यपि कुछ विशेष सौदे सामान्य बाजार को प्रभावित किये बिना कम कीमतो पर भी किये जा सकेंगे।

किन्तु कीमत में इस प्रकार की कमी के विरोध के अनेक कारण हैं जिनमें से अधिकांश अप्रत्यक्ष हैं।

इस प्रकार यद्यपि अल्पकाल मे मूल लागत के अतिरिक्त कोई भी चीज आवश्यक तथा प्रत्यक्ष रूप मे सम्भरण कीमत मे प्रविष्ट नही होती, तथापि यह भी सत्य है कि पूरक लागतो का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उत्पादक अपने उत्पादन के हरएक छोटे-छोटे अश की लागत को बहुधा अलग नही करता, वह तो इसके अधिकाश भाग को, यहाँ तक कि कुछ दशाओं मे सारे को ही, न्यूनाधिक रूप से एक इकाई मानता है। वह यह पता लगाता है कि क्या उसके वर्तमान उपक्रमो मे कुछ नयी चीजे बढाना लाभदायक है, क्या एक नयी मशीन प्रयोग मे लाना उसके हित मे है, इत्यादि। वह इस परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त उत्पादन को पहले ही न्यूनाधिक रूप से एक इकाई मानता है, और तत्पश्चात् उन निम्नतम कीमतो को उद्धृत करता है जिन्हें वह इकाई के रूप मे माने गये अतिरिक्त उत्पादन की पूर्ण लागत के प्रसग मे स्वीकार करने को तैयार है।

सीमान्त इकाई उत्पादन की पूर्ण प्रक्रिया है, न कि वस्तुओं का कुछ अंश।

अन्य शब्दो मे वह उत्पादन की प्रक्रियाओ मे, न कि अपने उत्पादन के एक अश में, वृद्धि को अपने अधिकाश सौदो मे इकाई मानता है। यदि विश्लेषक अर्थशास्त्री वास्तविक दशाओ से निकट सम्बन्ध रखता हो तो उसे इसका अवश्य अनुकरण करना चाहिए। ये विचार मूल्य के सिद्धान्त की रूपरेखा की स्पष्टता को मलिन कर देते हैं किन्तु वे इसके सार को प्रभावित नही करते।[1]

अल्पकाल के विषय मे आगे साराश दिया गया है। विशेषीकृत कुशलता तथा योग्यता, अनुकूल मशीनो व अन्य भौतिक पूँजी, तथा उपयुक्त औद्योगिक व्यवस्था की

जा सकता है कि कीमत सम्भरण के उस भाग से नियंत्रित होती है जिसको बड़ी सरलता से उत्पन्न किया गया था : किन्तु तथ्य यह है कि वे उत्पादक जिनकी वित्तीय स्थिति सबसे कमजोर है और जिन्हें असफलता से बचने के लिए उत्पादन जारी रखना होता है, बहुधा अपनी नीति को संगठन के अन्य उत्पादकों पर भी थोपते हैं : उनका इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि अमेरिका तथा इंग्लैंड दोनों स्थानों में यह आम कहावत है कि किसी संगठन के सबसे कमजोर सदस्य बहुधा इसके शासक होते हैं।

1 अधिकांश उद्देश्यों के लिए यह सामान्य वर्णन पर्याप्त हो सकता है : किन्तु अध्याय 11 में उस अत्यधिक जटिल विचार, अर्थात् प्रतिनिधि फर्म द्वारा उत्पादन की प्रक्रियाओं में सीमान्त वृद्धि का अधिक विस्तृत अध्ययन किया जायेगा। हम इसके साथ-साथ, विशेषकर उन उद्योगों का अध्ययन करते समय जिनमें उत्पत्ति वृद्धि की प्रकृति पायी जाती है, इस बात का भी विस्तृत विवरण देंगे कि हमें अपने तर्कों को एक प्रतिनिधि फर्म की परिस्थितियों के प्रसंग में देने की क्या आवश्यकता है।

अल्पकाल से सम्बन्धित सामान्य निष्कर्ष।

पूर्ति में माँग के पूर्ण अनुकूल परिवर्तन के लिए समय नही रहता। किन्तु उत्पादकों को अपने ही उपकरणो से सम्भरण के अनुसार माँग को यथाशक्ति अनुकूल बनाना पड़ता है। एक ओर तो उपकरणो का अभाव होने पर उनके सम्भरण में वृद्धि के लिए समय नही मिल पाता है, तथा दूसरी ओर, इनका आवश्यकता से अधिक संम्भरण होने पर उनमे से कुछ उपकरणो का पूर्णरूप मे उपयोग नही किया जा सकेगा, क्योकि सम्भरण मे धीरे-धीरे कमी करके तथा इसका अन्य उपयोगो मे प्रयोग कर इसे बहुत कम नही किया जा सकता। उनसे प्राप्त होने वाली निश्चित आय मे परिवर्तनों से कुछ समय तक सम्भरण पर कोई खास प्रभाव नही पडेगा, और उनके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ की कीमत पर भी कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पड़ेगा। आय कुल प्राप्ति का वह भाग है जो मूल लागत के अतिरिक्त होती है (अर्थात् यह कुछ अंश में लगान की तरह है, जो अध्याय 8 से अधिक स्पष्ट हो जायेगा)। किन्तु इससे जब तक दीर्घकाल मे व्यवसाय की सामान्य लागत का पर्याप्त भाग पूरा नही हो जाता तब तक उत्पादन मे धीरे-धीरे कमी होती जाती है। इस प्रकार अल्पकाल मे सम्भरण कीमत में अपेक्षाकृत द्रुत परिवर्तन पर ऐसे परोक्ष कारणो या नियंत्रणकारी प्रभाव पड़ता है जो दीर्घकाल तक व्याप्त रहते है। 'बाजार के बिगडने' के भय के कारण बहुधा इन कारणो का अपेक्षाकृत अधिक तेजी से प्रभाव पड़ता है।

दीर्घकाल में उत्पादन के उपकरणों में उनसे उत्पन्न वस्तुओं की मांग के अनुसार परिवर्तन किया जाता है।

§7. दूसरी ओर, दीर्घकाल मे भौतिक सयत्र तथा व्यवसाय के प्रबन्ध मे तथा व्यापारिक ज्ञान एवं विशेषीकृत कुशलता प्राप्त करने मे लगी हुई पूंजी को उनसे प्रत्याशित आय के अनुसार बदलने का समय मिल जाता है: और अतः उन आयों के अनुमान सम्भरण को प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित करते है, और उत्पादित वस्तुओं की वास्तविक दीर्घकालीन प्रसामान्य सम्भरण कीमत हैं।

व्यवसाय मे लगायी जाने वाली पूँजी का अधिकांश भाग साधारणतया इसकी आन्तरिक व्यवस्था तथा इसके बाह्य व्यापारिक सम्बन्धों को बनाने में खर्च किया जाता है। यदि व्यवसाय मे प्रगति न हो तो उसमे लगायी गयी सामस्त पूंजी व्यर्थ हो जाती है, यद्यपि इसमे लगी भौतिक सामग्री की बिक्री से इसकी मूल लागत का उल्लंघनीय भाग वसूल हो सकता है। जो भी व्यक्ति किसी धन्धे मे कोई नया व्यवसाय आरम्भ करना चाहता है उसे इसमे होने वाली क्षति की सम्भावना का भी अनुमान लगाना चाहिए। यदि उस प्रकार के कार्य करने के लिए उसमे प्रसामान्य क्षमता हो तो उसे तुरन्त अपने व्यवसाय को उस अर्थ मे प्रतिनिधि व्यवसाय समझना चाहिए जिसमें कि हमने इस शब्द का प्रयोग किया है और उसे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की किफायतें प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि इस प्रकार के प्रतिनिधि व्यवसाय की निवल आय अन्य सम्भव उद्योगो नर इसी प्रकार के विनियोजन करने से प्राप्त आय से अधिक प्रतीत हो तो वह इसी धन्धे को पसन्द करेगा। इस प्रकार किसी धन्धे में पूंजी का वह विनियोजन जिस पर दीर्घकाल मे इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत निर्भर है, एक ओर तो प्रतिनिधि फर्म को स्थापित करने तथा उसे चलाने के खर्च के अनुमानों से, तथा दूसरी ओर इस प्रकार की कीमत से दीर्घकाल तक मिलने वाली आमदनी से नियंत्रित होती है।

किसी विशेष समय पर कुछ व्यवसाय तो उन्नति कर रहे होंगे और अन्य व्यवसायों का पतन हो रहा होगा: किन्तु अब हम प्रसामान्य सम्भरण कीमत को नियमित करने वाले कारणों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाते है तो हमे महान ज्वार के तल पर आयी हुई इन भँवरों से घबड़ाने की आवश्यकता नही। उत्पादन मे कोई ऐसा नया विनिर्माता खास वृद्धि कर सकता है जो कठिनाइयो के विरुद्ध सघर्ष कर रहा है, अपर्याप्त पूँजी से कार्य चला रहा है, और इस आशा मे बड़ी तगी को सहन कर रहा है कि वह धीरे-धीरे अच्छा व्यवसाय स्थापित कर लेगा। या इसका कारण कुछ धनी फर्म हो सकती है जो अपने क्षेत्र को बढ़ाकर नयी किफायतें प्राप्त कर सकती है, और इस प्रकार पहले की अपेक्षा लागत पर अधिक उत्पादन कर सकती है और जैसा कि यह उत्पादन उस धन्धे के कुल उत्पादन की तुलना में कम होगा, इससे कीमत मे अधिक कमी नहीं होगी, इसके फलस्वरूप फर्म को सफलतापूर्वक वातावरण के अनुकूल ढालने में बहुत अधिक लाभ होगा। यद्यपि ये परिवर्तन व्यक्तिगत व्यवसायो मे हो रहे है तथापि उत्पादन की कुल मात्रा मे वृद्धि के प्रत्यक्ष कारण दीर्घकालीन प्रसामान्य सम्भरण कीमत में निरन्तर कमी होने की प्रवृत्ति पायी जा सकती है।

दीर्घ तथा अल्पकालों के बीच कोई बारीक अन्तर नहीं है।

§8. इसमें कोई सन्देह नही कि "दीर्घ" तथा "अल्प" कालो के बीच कोई पक्का विभाजन नही है। वास्तविक जीवन की आर्थिक दशाओ मे प्रकृति ने इस प्रकार का कोई भी अन्तर नही किया है और व्यावहारिक समस्याओ के निराकरण मे इनकी आवश्यकता भी नही होती। जिस प्रकार हम सभ्य व असभ्य जातियो मे कोई भी ठोस विभेद न किये जा सकने पर भी विभेद प्रदर्शित करते है और प्रत्येक वर्ग के विषय मे अनेक सामान्य धारणाएँ बना लेते हैं उसी प्रकार हम दीर्घ तथा अल्पकालो के बीच बिना कठोर सीमांकन के भेद प्रदर्शित कर सकते हैं। यदि किसी विशेष तर्क के उद्देश्यो के लिए यह आवश्यक हो कि एक दशा को दूसरे से बिलकुल ही भिन्न दिखाया जाय तो विशेष विश्लेषणात्मक वाक्यांश द्वारा ऐसा किया जा सकता है किन्तु जिन अवसरो के कारण ऐसा करना आवश्यक हो जाता है वे न तो बहुधा आते है और न महत्वपूर्ण ही हैं।

मूल्य की समस्याओं का तत्सम्बन्धित समयावधि के प्रसंग में वर्गीकरण।

स्पष्ट रूप में इनके चार वर्ग हैं। प्रत्येक मे माँग तथा सम्भरण के सम्बन्धों से कीमत नियंत्रित होती है। जहाँ तक बाजार कीमतों का प्रश्न है, 'सम्भरण' से अभिप्राय प्रसंगगत वस्तु के भण्डार के अपने पास विद्यमान होने या हर दशा मे 'दृष्टि में' होने से है। जहाँ तक प्रसामान्य कीमतों का प्रश्न है, जब 'प्रसामान्य' शब्द से अभिप्राय कुछ महीनों या एक वर्ष की अल्प अवधि से हो तो स्थूल रूप से 'सम्भरण' से तात्पर्य निश्चित समय में व्यक्तिगत तथा सामान्य संयंत्र के विद्यमान स्टक द्वारा उस कीमत पर उत्पन्न की जाने वाली मात्रा से होता है। जहाँ तक प्रसामान्य कीमतो का प्रश्न है, जब 'प्रसामान्य' शब्द अनेक वर्षों की लम्बी अवधि से सम्बन्धित हो तो सम्भरण से अभिप्राय संयंत्र द्वारा उत्पन्न की जा सकने वाली मात्रा से होता है जो स्वयं भी पर्याप्त पारिश्रमिक के भुगतान होने पर उत्पन्न की जा सकती है, और निश्चित समय में प्रयोग में लायी जा सकती है। अन्त मे ज्ञान की क्रमिक वृद्धि, जनसंख्या तथा पूँजी तथा एक

पीढी से दूसरी पीढ़ी मे माँग एवं सम्भरण की बदलती हुई दशाओ के कारण प्रसामान्य कीमत मे क्रमिक अथवा दीर्घकालीन उतार-चढ़ाव होते है ।[1]

---

1 इस अध्याय के प्रथम अनुभाग से तुलना कोजिए । वास्तव में उत्पादन के असंख्य कारणों को माँग के अनुसार परिवर्तन होने में जिस समयावधि की आवश्यकता है वह अलग-अलग हो सकती है। दृष्टान्त के लिए कुल कम्पोजीटरों की संख्या में प्रायः उतनी तेजी से वृद्धि नहीं की जा सकती जितनी कि टाइप के सम्भरण तथा मुद्रणालयों की संख्या में की जा सकती है। केवल इसी कारण से भी दीर्घ तथा अल्पकालों के बीच कोई कठोर समायोजन नहीं किया जा सकता। किन्तु वास्तव में सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण दीर्घकाल में इतना समय होना चाहिए जिससे न केवल उस वस्तु के उत्पादन के साधन माँग के अनुसार समायोजित हो सकें, अपितु उत्पादन के उन कारकों के उत्पादन के साधन भी क्रमबद्ध किये जा सकें, और आगे भी इसी तरह जब यही क्रम निरन्तर चलता रहे तो इसके अन्तिम परिणामों को देखने से यह ज्ञात होगा कि इसमें उद्योग की स्थिर अवस्था की कल्पना निहित होती है जिससे भावी युग की जरूरतों का बहुत पहले ही अनुमान लगाया जा सकता है। रिकार्डो के मूल्य के सिद्धान्त के अनेक सरल अनुवादों में निःसंदेह उस कल्पना की अचेतन रूप से कुछ झलक मिलती है, भले ही उनके अपने संस्करण में इसका समावेश न हो। अधिकांशरूप में इसी कारण उनके सिद्धान्त को सरल तथा विशद रूप में प्रस्तुत किया जा सका। इससे भी इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आर्थिक सिद्धान्तों की ओर लोगो का रुझान हो गया। किन्तु इससे सम्भवतः कुछ मिथ्या व्यावहारिक निष्कर्षों की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति भी फैल गयी।

अपेक्षाकृत अल्प तथा दीर्घकालीन समस्याएँ साधारणतया एकसी होती हैं। दोनों में ही सर्वश्रेष्ठ युक्ति का अर्थात् कुछ प्रकार के सम्बन्धों के विशेष अध्ययन के लिए आंशिक या पूर्ण पृथक्करण की युक्ति का प्रयोग किया जाता है। दोनों में ही समान उपाख्यानों (episodes) के विश्लेषण एवं उनकी तुलना करने व उनसे एक दूसरे पर प्रकाश डालने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त दोनों ही समान तथ्यों को क्रमबद्ध करने तथा उनमें समन्वय स्थापित करने के संकेत मिलते हैं और उनकी समानताओं से झलकने वाली असमानताओं के तो और भी अधिक संकेत मिलते हैं। किन्तु इन दोनों दशाओं में व्यापक अन्तर है। अपेक्षाकृत अल्पकालीन समस्या में इस मान्यता के अतिक्रमण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती कि जो शक्तियाँ विशेषरूप से विचाराधीन नहीं रही हैं वे इस काल में निष्क्रिय रहती हैं। किन्तु एक सम्पूर्ण पीढ़ी में व्यापक शक्तियों के 'अन्य बातें समान रहें' वाक्यांश में समावेश होने के लिए इस आधार पर अतिक्रमण करना आवश्यक हो जाता है कि उनका विचाराधीन प्रश्न पर केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। क्योंकि यदि अप्रत्यक्ष प्रभावों का रूप संचयी हो तो एक पीढ़ी की अवधि में इनका बहुत बड़ा परिणाम हो सकता है। किसी व्यावहारिक समस्या में बिना किसी विशेष अध्ययन के इन प्रभावों की अल्पकाल के लिए भी अस्थायी रूप से अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार अत्यधिक लम्बे समय से सम्बन्धित समस्याओं में स्थैतिकी प्रणाली के प्रयोग हानिकारक हैं। इनमें हर पग पर सावधानी तथा पूर्व विचार

इस पुस्तक के शेष भाग का सम्बन्ध मुख्यरूप से ऊपर के वर्गों में से तीसरे वर्ग, अर्थात् मजदूरी, लाभ, कीमतों आदि के वस्तुतः दीर्घकालीन प्रसामान्य सम्बन्धों से है। किन्तु कभी-कभी उन परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा जो अनेक आगामी वर्षों में होंगे और अतः एक अध्याय (भाग 6, अध्याय 12) में मूल्य पर प्रगति के प्रभाव, अर्थात् मूल्य के दीर्घकालीन परिवर्तनों का अध्ययन किया जायेगा।

एवं आत्मनियंत्रण की आवश्यकता होती है। इस कार्य की कठिनाइयाँ एवं जोखिम उन उद्योगों में सबसे अधिक दृष्टिगोचर हैं जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, और ठीक इन्हीं उद्योगों में इस प्रणाली के सर्वोत्तम प्रयोगों के पता लगाने की आवश्यकता है। हमें इन प्रश्नों को अध्याय 12 तथा परिशिष्ट ज के लिए स्थगित कर देना चाहिए।

किन्तु यहाँ इस आपत्ति का हल बतलाया जा सकता है कि आर्थिक जगत में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं और यह अधिक जटिल होता जा रहा है·····समय की अवधि जितनी ही लम्बी होगी आपत्तियों का समाधान करना उतना ही अधिक कठिन होगा। अतः मूल्य दीर्घकाल में जिस स्थित पर पहुँचेगा उस पर विचार करने के लए चरों (variables) को स्थिर मानना पड़ेगा। (डेविस की Political Economy, भाग IV, अध्याय V)। यह सत्य है कि हम चरों को निश्चय ही अस्थायी रूप से स्थिर मानते हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि यही एक प्रणाली है जिससे विज्ञान ने जटिल तथा परिवर्तनशील विषय को, चाहे वह भौतिक जगत से सम्बन्धित हो या नैतिक, हल करने में बड़ी उन्नति की है। ऊपर इसी अध्याय का अनुभाग 2 देखिए।

अध्याय 6

संयुक्त तथा मिश्रित माँग। संयुक्त तथा मिश्रित सम्भरण

अप्रत्यक्ष अथवा व्युत्पन्न (Derived) माँग।

§1. रोटी से मनुष्य की आवश्यकताओ की प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति होती है: और इसकी माँग प्रत्यक्ष कहलाती है। किन्तु आटे की मिल तथा चूल्हा रोटी बनाने मे सहायता इत्यादि कर अप्रत्यक्ष रूप से आवश्यकताओं की सतुष्टि करते है और उनकी माँग अप्रत्यक्ष कहलाती है। अधिक सामान्य रूप मे :—

कच्चे माल तथा उत्पादन के अन्य साधनो के लिए माँग अप्रत्यक्ष होती है और यह उन प्रत्यक्ष रूप से उपयोग मे आने वाले उत्पादनों की प्रत्यक्ष माँग से व्युत्पन्न की जाती है जिन्हे बनाने मे वे सहायक होते है।

संयुक्त माँग।

आटे की मिल तथा चूल्हा दोनों का मिला हुआ अन्तिम उत्पादन रोटी है: अतः इनकी माँग सयुक्त माँग कहलाती है। पुन हौप्स तथा माल्ट एक दूसरे के पूरक हैं और उन दोनो से यवसुरा (ale) का निर्माण होता है: और आगे भी इसी प्रकार। अत. असख्य पूरक वस्तुओ मे से प्रत्येक की माँग उनसे किसी अन्तिम वस्तु के उत्पादन, जैसे कि रोटी के टुकड़े, यवसुरा के पीपे के लिए संयुक्त रूप से की जाने वाली सेवाओ से व्युत्पन्न की जाती है। अन्य शब्दो मे उन सेवाओ की सयुक्त माँग रहती है जो इनमे से किसी वस्तु से ऐसी चीज के उत्पादन मे सहायता पहुँचाने से मिलती है जो आवश्यकताओ की प्रत्यक्ष रूप से संतुष्टि करती हो तथा जिसकी प्रत्यक्ष माँग हो: तैयार माल की प्रत्यक्ष माँग वास्तव मे इसे बनाने मे उपयोग मे लायी जाने वाली वस्तुओं की अनेक व्युत्पन्न माँगो मे विभाजित होती है।[1]

दूसरा दृष्टान्त लेते हुए, मकानो की प्रत्यक्ष माँग से सभी असंख्य भवन निर्माण व्यवसायों के श्रम, तथा ईंट, पत्थर, लकड़ी इत्यादि के लिए जो सभी प्रकार के भवन निर्माण सम्बन्धी कार्य, अथवा सक्षेप मे नये मकानो के निर्माण कार्य के कारक हैं,

---

1 भाग 3, अध्याय 3, अनुभाग 6 से तुलना कीजिए। यह स्मरण होगा कि जिन वस्तुओं का तुरन्त उपयोग किया जा सकता है वे 'प्रथम श्रेणी के पदार्थ' अथवा 'उपभोक्ता पदार्थ' कहलाती है, और जिन पदार्थों को उत्पादन के कारकों के रूप में उपयोग में लाया जाता है 'उन्हें उत्पादक पदार्थ' अथवा 'द्वितीय एवं उच्चतर श्रेणियों के पदार्थ, अथवा 'मध्यवर्ती पदार्थ' कहा जाता है: यह भी कहना कठिन है कि पदार्थ को वास्तव में कब तैयार करना चाहिए। अनेक वस्तुएँ, उदाहरण के लिए आटा, साधारणतया उपभोग के लिए तैयार होने से पूर्व ही उपभोग के पदार्थ मानी जाती ह, भाग 2, अध्याय 3, अनुभाग 1 देखिए। उपकरणिक पदार्थों को (instrumental goods), जिन्हें ऐसी वस्तुएँ माना जाता है जिनका मूल्य उनके उत्पादों के मूल्य से व्युत्पन्न होता है, संदिग्धता को भाग 2, अध्याय 4 अनुभाग 13 में बतलाया गया है।

संयुक्त माँग बढ़ जाती है। इनमे से किसी की माँग जैसे कि दृष्टान्त के लिए प्लस्तरकारों के श्रम की माँग, केवल अप्रत्यक्ष अथवा व्युत्पन्न माँग कहलाती है।

भवन-निर्माण धन्धे में श्रम-विवाद से लिया गया दृष्टान्त।

अब हमे इस अन्तिम दृष्टान्त पर श्रम बाजार मे बहुधा होने वाली समान घटनाओं के प्रसंग में आगे विचार करना चाहिए। यहाँ आपस के विवादो के तय होने की अवधि कम होती है और माँग तथा सम्भरण के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाले केवल ऐसे कारण होते हैं जो इस अल्पकाल मे ही लागू हो सकते है।

इस उदाहरण का बहुत व्यावहारिक महत्व है जिसके कारण हमे इस पर विशेषरूप से विचार करना होगा। किन्तु हमे ध्यान रखना चाहिए कि इसका अल्पकाल से सम्बन्ध होने के कारण यह हमारे इस तथा साथ के अध्यायो मे उन दशाओ से लिए गये दृष्टान्तों के चयन के सामान्य नियम का एक अपवाद है जिनमे सम्भरण की शक्तियों के पूर्ण दीर्घकालीन प्रभाव के व्यक्त होने के लिए पर्याप्त समय रहता है।

भवन के माँग तथा सम्भरण मे साम्य की स्थिति होने पर अब हम यह मानेंगे कि एक श्रेणी के श्रमिकों, जैसे कि प्लस्तरकारो, ने हड़ताल की है या प्लस्तर मिस्त्रियों की पूर्ति होने मे अन्य कोई विघ्न है। *उस कारक की माँग को विलग करने तथा उसका* अलग अध्ययन करने के लिए हम सर्वप्रथम यह कल्पना करते है कि नये मकानों के लिए माँग की सामान्य दशाएँ अपरिवर्तित रहती है (अर्थात् नये मकानों के लिए माँग सारणी पहले की भाँति रहती है) और दूसरे यह मानेंगे कि अन्य कारको की जिनमे से दो चीजे प्रवीण भवन निर्माताओं की व्यावसायिक प्रतिभाएँ तथा व्यावसायिक संगठन है, पूर्ति की सामान्य दशाओं में कोई परिवर्तन नही होता है। (अर्थात् हम यह मानते हैं कि उनकी सम्भरण कीमतों की सूचियाँ बँध रहती हैं)। इस दशा मे प्लस्तर श्रमिको की पूर्ति मे अस्थायी नियंत्रण होने से भवन निर्माण कार्य मे आनुपातिक नियंत्रण हो जायेगा। मकानों की घटी हुई संख्या की माँग कीमत पहले की अपेक्षा कुछ अधिक होगी, और उत्पादन के अन्य कारको की सम्भरण कीमते पहले की अपेक्षा अधिक न होगी।[1] इस प्रकार नये मकान ऐसी कीमतो पर बिकेंगे जो उन कीमतों के कुल योग से काफी अधिक होंगी जिन पर मकान बनाने के लिए आवश्यक अन्य सामग्री खरीदी जा सकती है और यह अन्तर उस सीमा को निर्धारित करती है जहाँ तक प्लस्तरकारो के श्रम की कीमत इस कल्पना पर बढ़ सकती है कि उनका श्रम अपरिहार्य है। प्लस्तर श्रमिकों की पूर्ति पर लगे हुए विभिन्न नियन्त्रणों से सम्बद्ध इस अन्तर की विभिन्न मात्राएँ इस सामान्य नियम से प्रभावित होती हैं कि:—किसी वस्तु के उत्पादन मे प्रयोग की जाने वाली वस्तु का मूल्य उसकी अलग-अलग मात्राओ के लिए मिलने वाली कीमत के, उसे बनाने के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओ की तदनुरूप सम्भरण कीमतो के योग के, आधिक्य से सीमित होता है।

व्युत्पन्न माँग का नियम।

---

1 सभी साधारण दशाओं में यह बात हर दशा में सत्य है: समयोपरि काम के लिए अलग से दिये जाने वाले प्रभार कम होंगे, और बढ़इयों, राजों तथा अन्य लोगों के श्रम की कीमत बढ़ने की अपेक्षा वस्तुतः घटने लगेगी, और ईंट तथा अन्य भवन-निर्माण सामग्रियों के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।

पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए यह कह सकते है कि किसी वस्तु के उत्पादन के किसी भी कारक की माँग सारणी को उस वस्तु की माग सारणी से व्युत्पन्न करने का ढग यह है कि उसकी हर अलग-अलग मात्रा की माँग कीमत मे से अन्य कारको की तदनुरूप मात्राओ की सम्भरण कीमतो के योग को घटा दिया जाय।[1]

---

1 मूलपाठ में दिया गया स्थूल विवरण अधिकांश उद्देश्यों के लिए पर्याप्त होगा, और साधारण पाठक को इस अध्याय के शेष फुटनोटों को सम्भवतः छोड़ देना चाहिए। यह ध्यान रहे कि यह 'व्युत्पन्न' सारणी केवल इन कल्पनाओं पर ही मान्य है, कि हम इस एक कारक को अलग से अध्ययन करने के लिए पृथक् करते है, कि स्वयं इसके सम्भरण की दशाओं में गड़बड़ी है, कि उस समय इस समस्या के किसी अन्य पहलू पर किसी नयी गड़बड़ी का प्रभाव नहीं पड़ रहा है, और यह कि इनके कारण उत्पादन के प्रत्येक अन्य कारक की विक्रय कीमत इसकी सम्भरण कीमत के सदैव बराबर समझी जा सकती है।

इसका रेखाचित्र द्वारा निरूपण करने के लिए यह अच्छा रहेगा कि किसी वस्तु के उत्पादन के खर्चों को संक्षेप में उन दो चीजों की सम्भरण कीमतों में विभाजित किया जाय जिनसे यह बनी है। अतः हमें एक चाकू की सम्भरण कीमत को लोहे की धार तथा हत्थे की सम्भरण कीमतों के योग के बराबर समझना चाहिए और इन दोनों को जोड़ कर चाकू तैयार करने में होने वाले खर्च को इसमें शामिल नहीं करना चाहिए। मान लें कि हत्थों की सम्भरण रेखा मा सी तथा चाकुओं की सम्भरण रेखा म सि है। ख ग रेखा पर कोई बिन्दु म है और म ठा ठ लम्बवत् खींची गयी है जो कि मा सी रेखा को ठा बिन्दु पर और म सि को ठ बिन्दु काटती है। हत्थों की म ठा सम्भरण कीमत है, ठा ठ लोहे की धार की सम्भरण

रेखाचित्र 20

कीमत है और म ठ, ख म चाकुओं की सम्भरण कीमत है। द दि चाकुओं की माँग वक्र म सि को अ बिन्दु पर काटती है और अ आ च रेखाचित्र की भाँति ऊर्ध्वाधर खींची गयी है। साम्य बिन्दु पर ख च चाकू च अ कीमत पर बिकेंगे, जिसमें च आ भाग हत्थे की ओर आ अ लोहे की धार की कीमत होगी
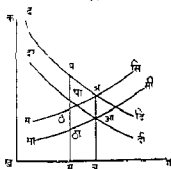
(इस दृष्टान्त से हम यह कल्पना करते है कि सम्भरण कीमत को नियंत्रित करने वाली शक्तियों के पूर्ण प्रभाव के लिए पर्याप्त समय है और अतएव हम स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी सम्भरण रेखाओं को ऋणात्मक रूप से झुकी हुई दिखा सकते हैं। इससे हमारे तर्क में कोई परिवर्तन नहीं होगा, किन्तु सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इस विशेष दृष्टान्त का धनात्मक रूप से झुकी हुई सम्भरण रेखा के साथ अध्ययन करना सर्वोत्तम होगा।)

अब यह कल्पना कीजिए कि हम चाकू के हत्थों की माँग का अलग से अध्ययन

§2. जब हम इस सिद्धान्त को जीवन की वास्तविक दशाओं मे लागू करना चाहते हैं तो यह स्मरण करना महत्वपूर्ण होगा कि यदि एक कारक के सम्भरण मे रुकावट उत्पन्न हो जाय तो अन्य कारकों के सम्भरण में भी सम्भवत रुकावट हो जायेगी। विशेषकर जब एक प्रकार के श्रम के सम्भरण मे जैसे कि प्लस्तरकारो की पूर्ति मे रुकावट हो जाय तो नियोजको की आय सामान्यतया प्रतिरोधक (buffer) का काम करेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले-पहल उन्हे ही क्षति उठानी पडेगी किन्तु अपने कुछ कामगरो को कार्यच्युत करने तथा अन्य की मजदूरी कम करके वे अन्ततोगत्वा इसके अधिकाश भाग को उत्पादन के अन्य कारको में विभाजित करेगे। जिस प्रक्रिया से यह किया जायेगा उसके अनेक विस्तृत विवरण है जो व्यापारिक गुटो (combinations) बाजार के मोलभाव करने तथा उन अनेक कारणों पर निर्भर हैं जिनसे इस समय हमारा कोई भी सम्बन्ध नही है।

इस सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोगों से सम्बन्धित सतर्कताएँ।

करना चाहते हैं। तदनुसार हम यह कल्पना करेंगे कि चाकुओं की माँग तथा लोहे की धार का सम्भरण उनकी अपनी-अपनी रेखाओं द्वारा प्रदर्शित नियमों के अनुकूल है: यह भी कल्पना करें कि हत्थों की सम्भरण रेखा इसके बाद भी विद्यमान रहती है और हत्थों की प्रसामान्य सम्भरण की दशाओं का प्रतिनिधित्व करती है, यद्यपि हत्थों के सम्भरण में कुछ समय के लिए रुकावट पैदा हो जाती है। यदि म ठ, द दि को प बिन्दु पर काटे तो ख म चाकुओं की माँग कीमत म प होगी, और खम लोहे की धारों की सम्भरण कीमत ठ ठा होगी। म प में एक ऐसा बिन्दु पा लो जिससे प पा, ठ ठा के बराबर हो और अतः म पा, म प के ठ ठा से आधिक्य के बराबर होगा। यहाँ पर म पा, ख म हत्थों की मांग कीमत होगी। मान लें कि दा दी, पा का बिन्दु-पथ है जिसे ख ग रेखा पर म बिन्दु की एक के बाद एक आने वाली स्थिति का और पा की तदनुरूप स्थितियों का पता लगा कर निश्चित किया गया है। अतः दा दी हत्थों की व्युत्पन्न माँग वक्र होगी। निस्संदेह यह आ बिन्दु से होकर निकलती है। अब हम दा दी, सा सी वक्रों के अतिरिक्त उक्त रेखाचित्र की अन्य चीजों को ध्यान में नहीं रखेंगे, और उन्हें, अन्य बातों के यथावत् रहने पर, अर्थात् चाकुओं की धार के सम्भरण के नियम तथा चाकुओं की माँग के नियम पर अन्य किसी विघ्नकारी कारण का प्रभाव न पड़ने पर, हत्थों की माँग तथा उनके सम्भरण के सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करता हुआ मानेंगे। ब आ तब हत्थों की साम्य कीमत होगी। माँग तथा सम्भरण के प्रभाव में, जिनकी सारणियों का दा दी तथा सा सी प्रतिनिधित्व करती है, इसके आसपास बाजार कीमत ठीक उसी ढंग से दोलन करेगी जिस ढंग से पहले अध्याय में देखा गया है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि साधारण माँग एवं सम्भरण वक्रों का साम्य बिन्दु के तुरन्त निकट होने पर ही, न कि अन्यथा, कोई व्यावहारिक महत्व, और व्युत्पन्न माँग के समीकरण पर यह कथन और भी अधिक लागू होता है।

(चूँकि म पा—म ठा = म प—म र, अतः अ स्थिर साम्य बिन्दु होने के कारण आ बिन्दु पर होने वाला साम्य भी स्थिर होगा। किन्तु यदि सम्भरण वक्र ऋणात्मक झुकी हुई हो तो इस कथन में कुछ संशोधन करना होगा। परिशिष्ट ज (H) देखिए)।

वे दशाएँ जिनमें सम्भरण में लगने वाली रोक से उत्पादन के लिए आवश्यक चीजों की कीमत बहुत बढ़ जायेगी।

अब हमें उन दशाओं का पता लगाना है जिन में किसी ऐसी वस्तु के सम्भरण पर लगने वाले रोक से जिसकी प्रत्यक्ष प्रयोग की अपेक्षा किसी वस्तु के उत्पादन के कारक के रूप मे आवश्यकता होती है उस वस्तु की कीमत में बहुत अधिक वृद्धि हो सकती है। सबसे पहली शर्त यह है कि साधारण कीमत पर कोई अच्छी स्थानापन्न वस्तु के सुलभ न होने पर स्वयं वह कारक उस वस्तु के उत्पादन के लिए अत्यावश्यक है, या प्राय: अत्यावश्यक है।

दूसरी शर्त यह है कि जिस वस्तु के उत्पादन के लिए यह आवश्यक कारक है उसकी माँग कड़ी तथा बेलोच है जिससे इसके सम्भरण में रोक लगने से उपभोक्ता इसके बिना रहने की अपेक्षा इसके लिए बहुत बढ़ी हुई कीमत देने के लिए तैयार रहेंगे। निस्सन्देह इसमे यह शर्त निहित है कि उस वस्तु के लिए इसकी साम्य कीमत से कुछ ही अधिक कीमत पर कोई अच्छी स्थानापन्न वस्तुएँ सुलभ नही है। किन्तु यदि भवन निर्माण कार्य मे लगने वाली रोक से मकानो की कीमत बहुत अधिक बढ जाती है तो निर्माता लोग असामान्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से बाजार मे मिलने वाले प्लस्तर मिस्त्रियो के श्रम के लिए एक दूसरे के विरुद्ध बढ़ी हुई मजदूरी की बोली बोलेंगे।[1]

तीसरी शर्त यह है कि उस वस्तु के उत्पादन के खर्चो का केवल थोड़ा सा भाग इस कारक की कीमत के बराबर होना चाहिए। चूँकि प्लस्तरकारों की मजदूरी एक मकान बनाने के कुछ खर्चो का केवल थोडा सा भाग होता है, इनमें यहाँ तक कि 50 प्रतिशत की वृद्धि मकान के निर्माण के खर्चो मे बहुत थोडी प्रतिशत वृद्धि करेगी और इससे माँग में थोड़ी ही कमी होगी।[2]

अभी बतलाये गये दृष्टान्त में हरएक कारक की इकाई अपरिवर्तित रहती है चाहे वस्तु की कितनी भी मात्रा का उत्पादन क्यों न किया जाय। क्योंकि हर चाकू के लिए सदैव एक धार व एक हत्थे की आवश्यकता होती है। किन्तु जब उत्पादित वस्तु की मात्रा में परिवर्तन से उस वस्तु की इकाई के उत्पादन के लिए आवश्यक प्रत्येक कारक की मात्रा में अन्तर आ जाता है तो उस कारक की उक्त प्रक्रिया से निर्धारित माँग तथा सम्भरण की रेखाएँ उस कारक की निश्चित इकाइयों के रूप में व्यक्त नहीं की जातीं। उन्हें सामान्य उपयोग में लाने से पूर्व स्थिर इकाइयों में रूपान्तरित करना चाहिए। (गणितीय टिप्पणी 14 को पुनः देखिए।)

1 हमें यह पता लगाना है कि किन दशाओं में पा म का आ ब से अनुपात सबसे अधिक होगा। पा म प्रसंगगत कारक की ख ब से घट कर ख म सम्भरण की, जो कि ब म मात्रा के बराबर कम हो चुकी है, माँग कीमत है। दूसरी शर्त यह है कि प म बड़ी होनी चाहिए, और चूंकि माँग की लोच को ब म के अ ब से प म के आधिक्य के अनुपात द्वारा मापा गया है, अतः प म जितनी ही बड़ी होगी, अन्य बातों के समान रहने पर, माँग की लोच उतनी ही कम होगी।

2 तीसरी शर्त यह है कि जब प म, अ ब से एक निश्चित अनुपात में अधिक हो तो पा म, ब आ से अधिक अनुपात में बड़ी होगी : और अन्य बातों के समान रहने पर, इसके लिए यह आवश्यक है कि ब आ, ब अ का एक बहुत छोटा अंश हो।

चौथी शर्त यह है कि वस्तु की माँग में थोड़ी कमी होने पर भी उत्पादन के अन्य कारकों की सम्भरण कीमतों में उल्लेखनीय कमी होनी चाहिए, क्योंकि इससे इस वस्तु के लिए ऊँची कीमत देने के सुलभ सीमान्त में वृद्धि होगी।[1] दृष्टान्त के लिए यदि राज तथा दूसरे कामगर अथवा स्वयं नियोजक न तो अन्य कार्य आसानी से ढूँढ सकते हैं और न बेकार ही रहना चाहते है तो वे पहले की अपेक्षा बहुत कम उपार्जन पर काम करने को उद्यत होंगे, और इससे प्लस्तरकारों को अधिक ऊँची मजदूरी देने के सुलभ सीमान्त में वृद्धि होगी। यह चारों शर्तें स्वतन्त्र रूप मे लागू होती है और अन्तिम तीनो के प्रभाव संचयी (cumulative) होते है।

प्रतिस्थापन सिद्धान्त तथा किसी वस्तु के असंख्य उत्पादन के कारकों के पारस्परिक अनुपातों की संशोधन करने की शक्ति का संयतकारी प्रभाव।

यदि प्लस्तर का प्रयोग न किया जाय या प्लस्तर व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगे हुए लोगों से सन्तोषजनक रूप से तथा साधारण कीमत पर इस काम को कराया जाय तो प्लस्तरकारों की मजदूरी मे वृद्धि रुक जायेगी। किसी वस्तु के उत्पादन का एक कारक अन्य कारकों पर व्युत्पन्न माँग के कारण जो क्रूर प्रभाव डालता है उसे प्रतिस्थापन सिद्धान्त द्वारा कम किया जा सकता है।[2]

पुनः यदि किसी तैयार माल के लिए आवश्यक किसी एक कारक को प्राप्त करने मे अधिक कठिनाई तो तैयार माल के स्वरूप मे परिवर्तन कर बहुधा उसे दूर किया जा सकता है। कुछ प्लस्तरकारो का श्रम तो अपरिहार्य हो सकता है, किन्तु बहुधा लोगों को यह पता नही कि उनके मकानों मे प्लस्तर का जितना काम करना लाभदायक है और यदि इसकी कीमत मे वृद्धि हो जाय तो वे प्लस्तर कम मात्रा मे करायेंगे। कम मात्रा में प्लस्तर कराने से उन्हे जिस बढ़े हुए सतोष से वंचित होना पड़ेगा उसे इसका सीमान्त तुष्टिगुण कहा जाता है। वे इसके कराने के लिए जिस कीमत को देने के लिए इच्छुक हैं वह प्लस्तरकारो के श्रम के उपयोग मे लायी जाने वाली मात्रा की वास्तविक माँग कीमत है।

इस प्रकार यवसुरा तैयार करने के लिए माल्ट तथा हॉप की संयुक्त माँग होती है, यद्यपि इनके अनुपात विभिन्न हो सकते है। उस यवसुरा के लिए जिसमे अपेक्षाकृत अधिक हॉप उपयोग में लायी जाय, अधिक ऊँची कीमत प्राप्त की जा सकती

---

1 अर्थात्, यदि ठ ठा ज ब की अपेक्षा छोटी होती तो प पा भी अधिक छोटी होती, और म पा अधिक बड़ी होती। गणितीय टिप्पणी 15 भी देखिए।

2 बॉहम बावर्क की उत्कृष्ट Grundzuge der Theorie des wirtschaftichen Gutewerts (Jahrbuch für Nationalokonomie und Statistik, Volume 13, पृष्ठ 59) में यह प्रदर्शित किया गया है कि यदि किसी वस्तु के उत्पादन के एक के अतिरिक्त सभी कारकों के पास स्थानापन्न वस्तुओं का असीमित सम्भरण सुलभ हो जिसके कारण स्वयं उनकी कीमत बिलकुल ही निश्चित हो गयी हो तो बचे हुए कारक की व्युत्पन्न माँग कीमत बचे हुए कारकों की इस प्रकार निश्चित की गयी सम्भरण कीमतों के योग की अपेक्षा तैयार माल की माँग कीमत की अधिकता के बराबर होगी। मूलपाठ में दिये गये सिद्धान्त की यह एक विशेष रोचक दशा है।

हैं और यह अतिरिक्त कीमत हॉप्स की माँग का प्रतिनिधित्व करती है।[1] ठठेरों, लस्तरकारों, राज इत्यादि के बीच के सम्बन्ध संबद्ध व्यवसायों में व्यापारिक संघों के बीच संधियो एवं संघर्षों के इतिहास की अधिकांश शिक्षात्मक एवं रोमांसकारी बातों के प्रतीक है। किन्तु कच्चे माल तथा इसको काम मे लाने वाले कारीगरों की माँग, जैसे कि कपास या जूट या लोहा या तांबा तथा इन असंख्य पदार्थों के उपयोग करने वाले लोगों की माँग संयुक्त माँग के असंख्य उदाहरण हैं। पुन. भोजन के विभिन्न पदार्थों की सापेक्षिक कीमतें कुशल रसोइयों की पूर्ति के अनुसार बहुत अधिक बदलती है। इस प्रकार दृष्टान्त के लिए अनेक प्रकार का मांस तथा अनेक प्रकार की सब्जियाँ जो अमेरिका में कुशल रसोइयों के अभाव तथा उसके बहुत बढे हुए पारिश्रमिक पर मिलने के कारण प्रायः मूल्यहीन हैं, वे ही फ्रान्स मे जहाँ भोजन बनाने की कला विस्तृत रूप से फैली है, बहुत मूल्यवान हैं।

मिश्रित अथवा कुल माँग।

§3. हम पहले उस दशा पर विचार कर चुके है[2] जिसमे किसी वस्तु के लिए कुल माँग इसे चाहने वाले लोगो के विभिन्न वर्गों की माँग से संयोजित हुई है। किन्तु अब हम मिश्रित माँग के इस विचार में उत्पादन के लिए आवश्यक उन चीजो को भी शामिल करते है जिनकी उत्पादकों के अनेक वर्गों के लोगो को आवश्यकता होती है।

प्रतिद्वंद्वी माँग।

उद्योग की अनेक विभिन्न शाखाओ मे प्राय. प्रत्येक प्रकार के कच्चे माल तथा हर प्रकार के श्रम का उपयोग किया जाता है, और इसका अनेक प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन मे योगदान होता है। इन वस्तुओं मे से प्रत्येक की अपनी निजी प्रत्यक्ष माँग होती है, और इससे इसके बनाने मे लगने वाली चीजों की व्युत्पन्न माँग निकाली जा सकती है। तथा इस चीज को पहले विचार किये गये ढंग के अनुसार इसके अनेक उपयोगो मे विभाजित किया जाता है।[3] ये अनेक उपयोग एक दूसरे के परस्पर प्रतिद्वन्द्वी अथवा प्रतिस्पर्द्धी होते हैं और इनकी व्युत्पन्न माँग भी सापेक्षिक रूप में प्रतिद्वन्द्वी और प्रतिस्पर्धी होगी। किन्तु उस पदार्थ के सम्भरण के सम्बन्ध मे वे एक दूसरे के सहायक होते है और उस कुल माँग का संयोजन करते है जिससे सम्भरण की उसी भाँति पूरी खपत हो जाय जिस प्रकार किसी तैयार वस्तु के लिए समाज के अनेक वर्गों की आंशिक माँगों का योग या संयोजन उसकी पूरी माँग का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है।[4]

---

1 गणितीय टिप्पणी 16 देखिए।

2 भाग 3, अध्याय 4, अनुभाग 2, 4 देखिए।

3 भाग 3, अध्याय 5 देखिए।

4 इस प्रकार य मान लें कि किसी उत्पादन के कारक के तीन उपयोग हैं। पहले उपयोग में इसकी माँग रेखा दा$_1$ डी$_1$ है। क ख रेखा पर किसी बिन्दु न से दा$_1$ डी$_1$ को पा$_1$ बिन्दु पर काटती हुई एक आड़ी रेखा न पा$_1$ खींची गयी है। पहले उपयोग के लिए ख न कीमत पर न पा$_1$ मात्रा की माँग की जायेगी। अब उत्पादन को

§4. अब हम संयुक्त पदार्थों के विषय मे अर्थात् ऐसी चीजो पर विचार करेंगे जिन्हे अलग से सरलतापूर्वक उत्पन्न नही किया जा सकता किन्तु जिनका उद्‌गम एक ही होता है और इसलिए इनका संयुक्त सम्भरण होता है, जैसे कि मास तथा चर्म, गेहूँ तथा भूसा।[1] यह बात उन चीजो के अनुरूप है जिनके लिए संयुक्त मांग होती है और इसका भी केवल सम्भरण के लिए 'मांग' को स्थानापन्न करके लगभग उन्ही शब्दो मे विवेचन किया जा सकता है। यही बात इसके विपरीत दिशा में लागू होगी। संयुक्त सम्भरण।

जैसे कि एक ही अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति से सम्बन्धित चीजो की संयुक्त मांग होती है उसी प्रकार समान उद्‌गम वाली चीजो का संयुक्त सम्भरण होता है। समान उद्‌गम का एकल सम्भरण इससे उत्पन्न होने वाले अनेक व्युत्पन्न सम्भरणो मे फैला हुआ मिलता है।[2]

न पा$_1$ से पा$_2$ तक और इससे भी आगे प बिन्दु तक बढ़ाया जाय जिससे पा$_1$ पा$_2$ और पा$_2$ प की लम्बाई इतनी हो कि उससे ख न कीमत पर उस कारक की मांगी जाने वाली मात्राओं के क्रमशः दूसरे तथा तीसरे उपयोगों को व्यक्त किया जा सके। अब न बिन्दु के ख क दिशा में बढ़ने पर पा$_2$ बिन्दु से दा$_2$ दी$_2$ मांग वक्र और प बिन्दु से द दि मांग वक्र खीचें। इस प्रकार यदि इसके पहले और दूसरे ही उपयोग होते तो दा$_2$ दी$_2$ उस कारक की मांग वक्र होती। द दि इसके तीनों उपयोगों की मांग है। यहां पर इन अनेक उपयोगों को किसी भी क्रम में लिया जा सकता है। इस दृष्टान्त में दूसरे उपयोग की मांग पहले उपयोग की मांग की अपेक्षा कम कीमत पर और तीसरे उपयोग की मांग अधिक कीमत पर आरम्भ होती है (गणितीय टिप्पणी 17 देखिए)।
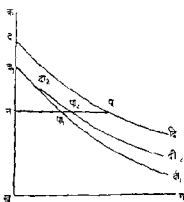
रेखाचित्र 21

1 प्रो० ड्यूस्नप (Dewsnup) (American Economic Review, Supplement, 1914, पृष्ठ 89)। में यह बतलाते हैं कि चीजों को तभी संयुक्त पदार्थ कहना चाहिए "जब एक ही संयंत्र से उनके उत्पादन की कुल लागत अलग-अलग संयंत्रों से उत्पादन करने की लागत के योग से कम हो।" यह परिभाषा इस अनुभाग के अन्त में अपनायी गयी परिभाषा की अपेक्षा कम सामान्य है, किन्तु कुछ विशेष उपयोगों के लिए यह सुविधाजनक है।

2 यदि किसी संयुक्त उत्पाद की मांग तथा इसके सम्भरण के सम्बन्धों को विलग करना हो तो व्युत्पन्न सम्भरण कीमत का ठीक उसी प्रकार पता लगाया जाता है जिस प्रकार मांग के सम्बन्ध में उत्पादन के किसी कारक के व्युत्पन्न मांग कीमत का पता लगाया गया था। अन्य बातों को अवश्य ही बराबर मान लेना चाहिए। (अर्थात् यह मान लेना चाहिए कि उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया की सम्भरण सारणी पूर्ववत लागू

दृष्टान्त के लिए, अनाज-व्यापार के कानून के रद्द होने के बाद से इंग्लैंड में उपभोग किये जाने वाले गेहूँ का अधिकाश भाग भूसे के बिना ही आयात किया गया और इसके फलस्वरूप भूसे का अभाव हो गया और उसकी कीमत मे वृद्धि हो गयी, तथा गेहूँ उगाने वाला किसान फसल के अधिकाश भाग के मूल्य को भूसे से ही प्राप्त करने की सोचने लगा। गेहूँ का आयात करने वाले देशो मे भूसे का मूल्य ऊंचा और इसे निर्यात करने वाले देशो मे भूसे का मूल्य नीचा होता है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के उन उत्पादन करने वाले क्षेत्रो मे एक समय भेड़ के मास की कीमत बहुत कम थी। उन का निर्यात किया जाता था और मास का देश मे ही उपभोग करना पड़ता था और इसके लिए अधिक माँग के न होने के कारण उन तथा मांस के उत्पादन के संयुक्त खर्चों के प्राय सम्पूर्ण माँग को इनकी कीमत से ही पूरा करना पड़ता था। बाद मे मांस की नीची कीमत से निर्यात के लिए मास परीक्षण करने वाले उद्योगो को प्रोत्साहन मिला और अब आस्ट्रेलिया मे इन की कीमत बढ़ गयी है।

यदि संयुक्त उत्पादन के अनुपात को बदला जा सके तो उनकी अनेक लागतों का पता लगाया जा सकता है।

सयुक्त उत्पादन की बहुत थोड़ी ही चीजें ऐसी है जिनमे दोनों के उत्पादन की लागत मिल कर बिलकुल उतनी ही होती है जितनी कि उनमे से केवल एक की होती है। जब तक किसी व्यवसाय मे उत्पादित वस्तु बाजार में बेची जाती है तब तक इसे तैयार करने मे विशेष सावधानी रखनी पडती है और खर्च भी कम किया जाता है; ये उस पदार्थ के लिए माँग के बहुत घट जाने पर या तो कम हो जायेंगे या इनके बिना ही काम चलाया जायेगा। इस प्रकार दृष्टान्त के लिए, यदि भूसे का कोई भी मूल्य न हो तो किसान अनाज की बाल को डण्ठल के अनुपात मे बड़े से बड़ा बनाने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करेंगे। पुन विदेशी ऊन के आयात के कारण इग्लैंड की भेडो को निपुण सकरण तथा चयन के द्वारा कम आयु में ही अधिक वजन के अच्छे मास पैदा करने के योग्य बनाया गया है, यद्यपि ऐसा करने से ऊन की किस्म कुछ घटिया अवश्य हो गयी है। जब एक ही प्रक्रिया से उत्पन्न की जाने वाली चीजों

होनी चाहिए और विलग हो जाने वाली वस्तु के अतिरिक्त हर प्रकार के संयुक्त उत्पादन की माँग सारणी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही किया जाना चाहिए)। इसके पश्चात् व्युत्पन्न सम्भरण कीमत का इस समय नियम से पता लगाया है कि यह निश्चय ही अन्य सभी संयुक्त उत्पादन की माँग कीमतों के योग से उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया की सम्भरण कीमत के आधिक्य के बराबर होगी, क्योंकि कीमतें सदैव ही तदनुकूल मात्राओं के प्रसंग में ली गयी है।

हम पुनः एक ऐसे सरल उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट कर सकते हैं जिसमें यह कल्पना की गयी है कि दो संयुक्त उत्पादनों की सापेक्षिक मात्राएँ अपरिवर्तनीय हैं। स सि बैलों की सम्भरण रेखा है जिनसे निश्चित मात्रा में मांस तथा चमड़ा प्राप्त होता है। दा दी उनकी देह मात्रा की, अर्थात् उनसे व्युत्पन्न किये जाने वाले मांस की माँग वक्र है। ख ग रेखा के किसी बिन्दु म पर म धा को इस प्रकार खींचो कि यह दा दी को पा बिन्दु पर ऊर्ध्वाधर काटे, और इसे प बिन्दु तक बढ़ाओ जिससे पा प, ख म चर्मों (hides)

में से एक मूल्यहीन हो, विक्रयहीन हो और इसे अलग निकालने मे कुछ भी खर्च न करना पड़े तो इसकी मात्रा के बढाने या कमी करने मे कोई भी प्रलोभन न हो तो केवल इन अपवादजनक दशाओं मे संयुक्त उत्पादन की प्रत्येक चीज की पृथक् सम्भरण कीमत का पता नही लगाया जा सकता। क्योकि जब इन पदार्थो के अनुपातो को बदलना सम्भव हो तो हम संयुक्त उत्पादन मे से किसी एक वस्तु की मात्रा मे कमी करने तथा अन्य वस्तुओं की मात्राओं को यथावत् रख कर यह पता लगा सकते है कि ऐसा करने से उत्पादन की प्रक्रिया के कुल खर्चों के कितने भाग की बचत की जा सकती है। खर्च का यह बचाया गया भाग उस पदार्थ के सीमान्त अंग के उत्पादन का खर्च है और यह वह सम्भरण कीमत है जिसका हम पता लगाना चाहते है[1]।

किन्तु ये अपवादजनक दशाएँ हैं। बहुधा यह पाया जाता है कि एक व्यवसाय या यहाँ तक कि उद्योग मे अनेक प्रकार के पदार्थों के उत्पादन के लिए एक ही संयंत्र, तकनीकी कुशलता तथा व्यावसायिक संगठन के अधिकाश भाग का उपयोग करना लाभदायक होता है। इन दशाओ मे अनेक उद्देश्यो के लिए उपयोग मे लायी गयी किसी चीज की लागत को इन सभी मे मिलने वाले प्रतिफल के रूप मे चुकाना पड़ता है: किन्तु इन उपयोगों के सापेक्षिक महत्व को या उन अनुपातो को जिनमे कुल लागत को इनमें विभाजित करना चाहिए, निश्चित करने के लिए कदाचित् ही प्रकृति का कोई नियम है: यह सब तो बाजारो के बदलते हुए लक्षणो पर बहुत कुछ निर्भर होगा[2]।

की माँग कीमत को व्यक्त करे। तब ख म बैलों की माँग कीमत म प होगी, और द दि जो कि प का बिन्दु-पथ है, बैलों की माँग वक्र होगी: इसे कुल माँग वक्र कहा जा सकता है। द दि, स सि को अ बिन्दु पर काटती है, और सामने दिये गये रेखाचित्र की भाँति अ आ ब खींचो। साम्य स्थिति में ख ब बैल पैदा होंगे जो ब अ कीमत पर बिकेंगे, जिसमें से ब अ भाग शरीर के ढाँचे के लिए और अ आ चर्म लिए होगा।

चित्ररेखा 22

म प, स सि को ठ बिन्दु पर काटती है। ठ म से प पा के बराबर ठ ठा काट दिया गया है जिससे शरीर के ढाँचे की व्युत्पन्न सम्भरण वक्र में ठा एक बिन्दु है। यदि हम यह कल्पना करें कि ख म चर्मों की विक्रय कीमत सदैव तदनकूल माँग कीमत प पा के बराबर है तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चूँकि ख म बैलों की उत्पत्ति के लिए ठ म लागत लगानी पड़ती है अतः ठ म-प पा अर्थात् ठा म कीमत शरीर के ख म ढाँचे की कीमत होगी। सा सी, जो ठा का बिन्दु-पथ है, और दा दी शरीर के ढाँचों की सम्भरण एवं माँग वक्र है। (गणितीय टिप्पणी 18 देखिए)।

1 गणितीय टिप्पणी 19 देखिए।

2 अगले अध्याय में इस विषय पर कुछ थोड़ा और प्रकाश डाला गया है: Industry and Trade नामक आगामी कृति में इसका पूर्ण रूप से विवेचन किया गया है।
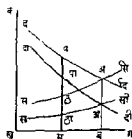
मिश्रित सम्भरण।

§5. अब हम मिश्रित सम्भरण की समस्या पर जो कि मिश्रित माँग की समस्या के सदृश है, विचार करेंगे। प्रतिस्थापन सिद्धान्त के अनुसार किसी माँग को बहुधा अनेक तरीकों मे से किसी भी एक से सतुष्ट किया जा सकता है। ये अनेक तरीके एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी अथवा प्रतिस्पर्द्धी है और वस्तुओ का अनुकूल सम्भरण सापेक्षिक रूप से परस्पर प्रतिद्वन्द्वी अथवा प्रतिस्पर्द्धी होता है। किन्तु माँग की पूर्ति करने वाले कुल सम्भरण मे 'सयोजित' होने के कारण वे माँग के सम्बन्ध मे परस्पर सहायक होते है।[1]

यदि उनके उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारण लगभग वही रहे तो उन्हें अनेक उद्देश्यो के लिए एक ही वस्तु माना जा सकता है[2]। दृष्टान्त के लिए गोमांस तथा भेड़ के मास को अनेक उद्देश्यो के लिए एक ही वस्तु की अनेक किस्मे माना जा सकता है। किन्तु अन्य उद्देश्यो के लिए जैसे कि दृष्टान्त के लिए उन प्रयोजनो मे जहाँ ऊन के सम्भरण का प्रश्न उठता है उन्हे अवश्य ही पृथक् चीजे मानना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी चीजे बहुधा तैयार वस्तुएँ न होकर केवल उत्पादन की कारक होती है: जैसे कि दृष्टान्त के लिए साधारण मुद्रण कागज बनाने मे प्रयोग आने वाले अनेक प्रतिद्वन्द्वी रेशे। हमने अभी-अभी यह देखा है कि किस प्रकार अनेक पूरक सम्भरणो से जैसे कि प्लस्तरकारो का श्रम किसी व्युत्पन्न माँग के क्रूर प्रभाव को उस समय कम किया जा सकता है जब एक प्रतिद्वन्द्वी चीज के प्रतिस्पर्द्धी सम्भरण से, जिसकी कि इसके लिए प्रतिस्थापना की गयी, माँग की पूर्ति की जाय।[3]

---

1 बाद के वाक्यांश "प्रतिस्पर्द्धी वस्तुएँ" को प्रो० फिशर ने अपनी महान कृति Mathematical Investigations in the theory of value and prices, में प्रयोग किया है जो इस अध्याय में बतलाये गये विषयों पर बहुत प्रकाश डालती है।

2 जेवन्स की पुस्तक के पृष्ठ 145–146 में छोटे छाप में लिखे गये भाग से तुलना कीजिए।

3 सभी प्रतिद्वन्द्वी चीजें जिस आवश्यकता की संतुष्टि करना चाहती हैं उसे मिश्रित सम्भरण द्वारा पूरा किया जाता है, क्योंकि किसी कीमत पर सुलभ सम्भरण उसी कीमत पर प्राप्त होने वाले आंशिक सम्भरणों के योग के बराबर होता है।

रेखाचित्र 23

दृष्टान्त के लिए क ख रेखा पर किसी बिन्दु न से ख ग के समानान्तर न ठा₁ ठा₂ ठ को इस प्रकार खींचा गया है कि न ठा₁, ठा₁, ठा₂ तथा ठा₂ ठ क्रमशः उन प्रतिद्वन्द्वी चीजों की पहली दूसरी तथा तीसरी मात्राएँ हैं जिनका ख न कीमत पर सम्भरण किया जा सकता है। न ठ उस कीमत पर होने वाला मिश्रित सम्भरण है, और ठ का बिन्दु पथ प्रसंगगत आवश्यकता को संतुष्ट
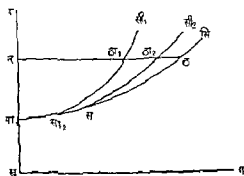
§6. इस अध्याय में वर्णित चारों मुख्य समस्याओं का उन सब कारणों पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है जिनसे प्रायः प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है और विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों के बीच अनेक सबसे महत्वपूर्ण तिर्यक सम्बन्ध प्रथम दृष्टि में स्पष्ट नहीं दिखायी देते।

विभिन्न चीजों के मूल्यों के बीच जटिल सम्बन्धों के दृष्टान्त।

करने के साधनों का कुल सम्भरण वक्र है। निस्सन्देह अनेक प्रतिद्वन्द्वी चीजों की इकाइयाँ ऐसी होनी चाहिए कि उनमें से प्रत्येक से समान मात्रा में आवश्यकता की संतुष्टि हो। रेखाचित्र में प्रदर्शित की गयी दशा में पहली प्रतिद्वन्द्वी चीज की छोटी मात्राओं की बाजार में इतनी कम कीमत रखी जा सकती है जिससे अन्य दोनों चीजों का सम्भरण सुलभ ही न हो सके, और दूसरी चीज की छोटी मात्राओं की भी इतनी कम कीमत रखी जा सकती है जिससे तीसरे का सम्भरण सुलभ ही न हो सके। (गणितीय टिप्पणी 20 देखिए)।

प्रायः प्रतिद्वन्द्विता का निरन्तर होना केवल तभी सम्भव है जब किसी भी प्रतिद्वन्द्वी चीज का सम्भरण क्रमागत वृद्धि नियम से नियंत्रित न होता हो। साम्य तभी स्थिर हो सकता है जब उनमें से कोई भी एक दूसरे को विस्थापित न कर सके, और *यह दशा तभी सम्भव होगी जब उन सबसे क्रमागत ह्रास नियम लागू हो,* क्योंकि यदि उनमें से किसी एक को अल्पकाल के लिए लाभ की स्थिति प्राप्त हो जाय और इसका उपयोग बढ़ जाय तो उसकी सम्भरण कीमत बढ़ जायेगी और अन्य लोग दूसरी वस्तु की अपेक्षा इसे अधिक सस्ता बेचने लगेंगे। किन्तु यदि इनमें से किसी में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता हो तो इसकी प्रतिद्वन्द्विता शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी, क्योंकि जब कभी इसे अन्य प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा अल्पकाल के लिए लाभ होने लगे तो इसके बढ़े हुए उपयोग से इसकी सम्भरण कीमत घट जायेगी और अतएव इसका विक्रय बढ़ जायेगा–इसकी सम्भरण कीमत में और अधिक कमी हो जायेगी, तथा आगे भी इसी प्रकार होगा। इस प्रकार अन्य प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा इसका लाभ तब तक निरन्तर बढ़ता रहेगा जब तक कि यह उन्हें इस प्रतिद्वन्द्विता के क्षेत्र से निकाल न दे। यह सत्य है कि इस नियम के कुछ स्पष्ट अपवाद भी हैं, और वे चीजें जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है कभी-कभी लम्बे समय तक अवश्य ही प्रतिद्वन्द्वी चीजें बनी रहती हैं: विभिन्न प्रकार की सिलाई की मशीनों तथा बिजली के बल्बों के सम्बन्ध में ऐसा ही होता है। किन्तु इन दशाओं में ये चीजें वास्तव में एक ही प्रकार की आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं करतीं, वे कुछ विभिन्न आवश्यकताओं अथवा रुचियों की दृष्टि से अच्छी लगती हैं। इनके सापेक्षिक गुणों के विषय में कुछ मतभेद हैं, अन्यथा सम्भवतः उनमें से कुछ का पेटेण्ट किया गया होगा या अन्य किसी प्रकार से कुछ विशेष फर्मों का एकाधिकारी बन गया होगा। ऐसी दशाओं में प्रथा तथा विज्ञापन की शक्ति के कारण अनेक प्रतिद्वन्द्वियों का लम्बे समय तक अस्तित्व बना रहेगा। यदि उन चीजों के उत्पादक जो उत्पादन के खर्चों के अनुपात के दृष्टिकोण से वास्तव में सबसे अच्छे हैं, परिभ्रामकों तथा अन्य एजेन्सियों द्वारा अपनी उत्पादित वस्तुओं का प्रभावपूर्ण रूप से विज्ञापन करने तथा उनकी बिक्री बढ़ाने में असमर्थ हों तो इनमें प्रतिद्वन्द्वी विशेषकर लम्बे समय तक बने रहेंगे।

इस प्रकार जब लोहा बनाने मे लकडी के कोयले का सामान्यतया प्रयोग किया जाता था तो चमडे की कीमत कुछ हद तक लोहे की कीमत पर निर्भर रहती थी और चमड़े की कमाई करने वालो ने विदेशी लोहे को हटाने की इसलिए माँग की कि इंग्लैंड के लोहा गलाने वालों की बांज के कोयले की माँग के कारण इग्लैंड मे बांज का उत्पादन बना रहे और इससे बांज का छिलका महँगा न हो सके।[1] इस दृष्टान्त से हमें उस तरीके का स्मरण हो जायगा जिसमे किसी वस्तु की अत्यधिक माँग के कारण उसके सम्भरण के साधन समाप्त हो सकते हैं, और इसके सयुक्त उत्पादन की वस्तु दुर्लभ हो सकती है. क्योंकि लोहा बनाने वालो को लकडी के लिए माँग के कारण इंग्लैंड मे अनेक जंगल बिना सोचे-समझे काट डाले गये। पुन. कुछ वर्ष पूर्व मेमनों की अत्यधिक माँग ही उस समय भेडों की कमी का कारण बतलायी गयी जब कि कुछ लोगों ने इसके विपरीत यह तर्क दिया कि धनिकों को वेचे गये ग्रीष्म ऋतु के मेमनो के लिए जितनी अच्छी कीमत मिल सकती है भेडो का उत्पादन उतना ही अधिक लाभदायक होगा और लोगों के लिए भेड़ का मास अधिक सस्ता होगा। तथ्य यह है कि माँग मे वृद्धि से इस बात के अनुसार प्रतिकूल प्रभाव पड सकते हैं कि इसमे इतनी तीव्रता से परिवर्तन होता है या नही जिससे उत्पादक अपने को इसके अनुकूल बनाने मे असमर्थ रहे।

पुन. किसी एक व्यवसाय के लाभ के लिए, जैसे कि दृष्टान्त के लिए अमेरिका के कुछ भागो मे गेहूँ का उत्पादन करना और अन्य भागो मे चाँदी का खनन करना, रेलों तथा संचार के अन्य साधनों के विकास के फलस्वरूप उन क्षेत्रो के प्रायः अन्य सभी उत्पादो के कुछ मुख्य खर्चे बहुत कम हो जाते हैं। पुन मुख्यतया सोडा लवण से तैयार होने वाले विरजन (bleaching) सामग्री तथा उद्योगो के अन्य उत्पादो की कीमते उन उद्योगो की विभिन्न प्रक्रियाओ मे होने वाले हर सुधार के अनुसार परस्पर सापेक्षिक रूप से बढ़ती-घटती रहती हैं। और उन कीमतो मे होने वाले हर परिवर्तन का अन्य अनेक वस्तुओ की कीमतो पर प्रभाव पडता है, क्योंकि लवण उद्योगों के अनेक उत्पाद विनिर्माण की अनेक शाखाओ मे न्यूनाधिक रूप से महत्वपूर्ण कारक का काम करते हैं।

पुन कपास तथा कपास के बीजो का तेल संयुक्त उत्पादन है। मुख्यरूप से सुधरे हुए विनिर्माण तथा कपास के बीजो के तेल के प्रयोगो के कारण कपास की कीमत मे हाल ही मे कमी हुई है। और आगे जैसा कि कपास के अकाल के इतिहास से प्रदर्शित होता है कि कपास को कीमत का ऊन, लिनेन के कपड़े तथा अपने ही वर्ग की अन्य चीजों पर बडा प्रभाव पडा है, जब कि कपास के बीजों के तेल का अपने ही वर्ग की चीजों के साथ सदैव ही नया विरोध होता जा रहा है। पुनः विनिर्माण में डंठल के बहुत से नये उपयोगों का पता लग चुका है और इन आविष्कारो से उस भूसे का भी मूल्य होने लगा है जो अमेरिका के पश्चिमी भागो मे जलाया जाता था जिससे गेहूँ के उत्पादन की सीमान्त लागत मे वृद्धि नही हो पाती थी।[2]

---

1 टायन्बी (Industrial Revolution, पृष्ठ 80)।

2 पुनः भेड़ों तथा बैलों में भूमि के उपयोग के लिए, चमड़े तथा कपड़े में उत्पादन

के किसी कारक की परोक्ष माँग के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। किन्तु साज-सामान बेचने वाले की दूकान में भी ये चीजें एक ही आवश्यकता की संतुष्टि के लिए साधन प्रदान करने में प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। इस प्रकार साज-सामान बनाने वाले तथा मोची के चमड़े के लिए, और यदि जूते का ऊपरी भाग कपड़े का बना हो, तो कपड़े के लिए भी मिश्रित माँग होती है : जूते बनाने में कपड़े तथा चमड़े के लिए संयुक्त माँग होती है : क्योंकि वे पूरक सम्भरण प्रदान करते हैं और आगे भी असंख्य जटिल विषयों में भी इसी प्रकार होगा। गणितीय टिप्पणी 21 देखिए। आस्ट्रिया के विचारकों के "आकलित मूल्य" के सिद्धान्त में इस अध्याय में दिये गये व्युत्पन्न मूल्य से मिलती जुलती कुछ चीजें मिलती हैं। चाहे जिस किसी वाक्यांश का प्रयोग किया जाय, यह महत्वपूर्ण है कि हमें मूल्य के पुराने तथा नये सिद्धान्त के बीच अनुबद्धता को पहचानना चाहिए। हमें आकलित (imputed) अथवा व्युत्पन्न मूल्यों को ऐसे तत्व मानना चाहिए जो वितरण तथा विनिमय की व्यापक समस्याओं में साथ साथ पाये जाते हैं। नये वाक्यांशों से जीवन के साधारण कार्यकलाप को भाव व्यंजना (expression) की कुछ निश्चितता प्राप्त हो जाती है जो कि गणितीय भाषा की विशेष सम्पत्ति है। उत्पादकों को सदैव यह ध्यान में रखना होता है कि उनकी रुचि के किसी कच्चे माल की माँग उन चीजों की माँग पर कैसे आश्रित रहती है जिनके बनाने में इसका उपयोग किया जाता है और उनको प्रभावित करने वाले हर परिवर्तन का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है। वास्तव में यह इन शक्तियों में से किसी भी एक शक्ति के प्रभाव के पता लगाने की उस समस्या की विशेष दशा है जिसका एक सा ही परिणाम निकलता है। गणितीय भाषा में इस सामान्य परिणाम को अनेक शक्तियों का फलन (function) कहते हैं : और हमें इसमें, उनमें से कोई भी जो (सीमान्त) योगदान देता है उसे उस शक्ति में होने वाले (थोड़े) परिवर्तन के परिणाम के फलस्वरूप होने वाले (थोड़े) परिवर्तन से, अर्थात् उस शक्ति के सम्बन्ध में उस परिणाम के 'अवकलन गुणांक' (differential coe-fficient) से व्यक्त किया जाता है। अन्य शब्दों में, उत्पादन के किसी कारक का केवल एक ही वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किये जाने पर जो आकलित मूल्य, या व्युत्पन्न मूल्य होगा वह उस कारक के सम्बन्ध में उस वस्तु का अवकलन-गुणांक है। गणितीय परिशिष्ट के 14-21 टिप्पणियों में इसी प्रकार के अन्य जटिल विषयों को स्पष्ट किया गया है। (प्रो० वीजर के आकलित मूल्यों के सिद्धान्त के कुछ भागों पर प्रो० एजवर्थ की कुछ आपत्तियाँ Economic Jaurnal, खण्ड V, पृष्ठ 279-85 में जोरदार शब्दों में प्रस्तुत की गयी हैं)।

अध्याय 7

संयुक्त उत्पादों की मूल तथा कुल लागत। विपणन की लागत। जोखिम के लिए बीमा। पुनरुत्पादन की लागत।

संयुक्त उत्पादन की अनुपूरक (Supplementary) लागतें। व्यवसाय की किसी एक शाखा द्वारा दूसरी शाखा को कच्चे माल का सम्भरण करने में होने वाली कठिनाई।

§1 अब हम मौलिक तथा अनुपूरक लागतों पर विचार करेंगे, विशेष कर अनुपूरक लागत को व्यवसाय के संयुक्त उत्पादन के बीच उचितरूप से वितरण करने के सन्दर्भ मे।

बहुधा यह होता है कि व्यवसाय की किसी एक शाखा मे बनी हुई चीज दूसरी शाखा मे कच्चे माल के रूप मे प्रयोग मे लायी जाती है, और तब दोनो शाखाओं के सापेक्षिक लाभदायकता के प्रश्न का दोहरी खतान (double entry) से पुस्तपालन (book keepfng) की विस्तृत पद्धति द्वारा ही सही सही पता लगाया जा सकता है, किन्तु व्यवहार मे प्राय सहजवृत्ति के अटकल से लगाये गये मोटे अनुमानो पर साधारणतया अधिक विश्वास किया जाता है। इस कठिनाई के कुछ सर्वोत्तम दृष्टान्त कृषि मे पाये जाते है विशेषकर जब एक ही फार्म मे स्थायी चरागाह तथा लम्बे हेरफेर से तैयार की गयी कृषि योग्य भूमि दोनों का मिश्रण हो।[1]

बहुधा एक ही व्यवसाय के संयुक्त उत्पादनों से सम्बन्धित कठिनाइयों को उत्पादन की योजना के ब्योरे में परिवर्तन करने की क्षमता से दूर किया जा सकता है।

दूसरा कठिन कार्य जहाज मालिक का है जिसे अपने जहाज के खर्चों को भारी *वजन वाली वस्तुओं तथा स्थूल आकार की किन्तु हलकी वस्तुओ मे बाँटना पड़ता है।* वह जहाँ तक हो सके दोनो प्रकार की वस्तुओं का मिश्रित नौभार प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और प्रतिद्वंद्वी बन्दरगाहो के अस्तित्व के सघर्ष का मत्हवपूर्ण अंश वह असुविधा है जिसका कि उन बन्दरगाहो को सामना करना पड़ता है जो या तो केवल स्थूल आकार का या केवल भारी वस्तुओं का नौभार प्रदान कर सकते है, जब कि भारी वजन के किन्तु मुख्यत कम स्थूल चीजो के निर्यात करने वाले बन्दरगाह के निकट के उद्योग प्रारम्भ किये जाते है जो यहाँ से कम भाड़े पर जहाज द्वारा भेजी जा सकने वाली निर्यात की चीजे उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए स्टैफोर्डशायर के मिट्टी के बर्तनों की सफलता आशिक रूप से कम भाडे के कारण है जिस पर मर्से (Mersey) से लोहे तथा अन्य भारी वजन के नौभार से लदे जहाज उनकी वस्तुएँ ले जाते है।

किन्तु जहाज के क्रय-विक्रय के व्यवसाय मे मुक्त प्रतियोगिता होती है, और जहाजो के आकार-प्रकार, उनके चलने के मार्ग तथा व्यापार करने की सम्पूर्ण प्रणाली मे उतार-चढाव करने की बड़ी क्षमता होती है, और इस प्रकार अनेक प्रकार से यह सामान्य सिद्धान्त लागू हो सकता है कि किसी व्यवसाय के सयुक्त उत्पादनो के सापेक्षिक

---

1 दोहरी खतान से पुस्तपालन करने में होने वाली कुछ मुख्य व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए गणितीय अथवा अर्द्ध-गणितीय विश्लेषणों का, जिनका पिछले अध्याय में जिक्र किया गया है, प्रयोग किया जा सकता है।

अनुपातों मे इस प्रकार के परिवर्तन होने चाहिए कि इनमे से किसी भी वस्तु के उत्पादन के सामान्य खर्च इसकी सीमान्त माँग कीमत के बराबर हो।[1] अथवा अन्य शब्दो में प्रत्येक प्रकार के नौमार को ले जाने की क्षमता की प्रवृत्ति लगातार इस साम्यावस्था की ओर उस बिन्दु की ओर बढ़ने की होती है, जहाँ व्यापार की सामान्य अवस्था मे उस मात्रा की माँगकीमत उसकी लागत के ठीक बराबर हो। इन खर्चों के आँकने मे इसकी मूल लागत को ही नही अपितु दीर्घकाल में होने वाले व्यवसाय के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सभी खर्चों को भी शामिल करना चाहिए।[2]

कभी-कभी अनुपूरक लागत को मौलिक लागत के अनुपात में मानकर स्थूल अनुमान लगाया जाता है।

विनिर्माण की कुछ शाखाओ मे किसी भी श्रेणी की वस्तुओ के उत्पादन की कुल लागत का, यह मानकर स्थूल अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यवसाय के सामान्य खर्चों में उनका हिस्सा या तो मूल के लागत के अनुपात मे या उसे बनाने मे खर्च होने वाले विशेष मजदूरी बिल के अनुपात मे होता है। किन्तु यदि वस्तुओ के उत्पादन में औसत की अपेक्षा अधिक या कम स्थान अथवा प्रकाश या खर्चीली मशीनो की आवश्यकता हो तो उन दशाओ मे स्थूल अनुमान मे परिवर्तन किये जा सकते है और आगे भी इसी तरह किसी व्यवसाय के सामान्य खर्चों की दो बातें ऐसी है जिन्हे विभिन्न शाखाओं मे बाँटने के लिए कुछ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इनमे विपणन तथा जोखिम के विरुद्ध बीमा करने के खर्च शामिल हैं।

किसी व्यवसाय की प्रत्येक शाखा में विपणन के खर्चों में इस के हिस्से को निर्दिष्ट करने की

§2 *कुछ प्रकार की वस्तुओ को सरलतापूर्वक विपणन किया जाता है।* उनके लिए निरन्तर माँग बनी रहती है, और उनका अधिक उत्पादन करके स्टाक रखना सदैव हितकर रहता है। किन्तु इसी कारण प्रतिस्पर्द्धा से उनकी कीमत बहुत गिर जाती है और उनको बनाने मे लगने वाली प्रत्यक्ष लागत से उनकी कीमत मे अधिक अन्तर नही रह सकता। कभी कभी उनके बनाने तथा विक्रय करने के कार्य प्राय. इस प्रकार स्वचालित किये जा सकते हैं जिससे प्रबन्ध तथा विपणन के खर्चों की मद के लिए बहुत कम धनराशि रखनी पडेगी। किन्तु व्यवहार मे ऐसी वस्तुओ को उचितरूप से मिलने वाले भाग से भी कम पर बेचना और उनका व्यापारिक सम्बन्ध बनाने तथा बनाये रखने के साधनो के रूप मे प्रयोग करना असामान्य नही है जिससे उन अन्य वर्गों की वस्तुओ

1 *भाग 6, अनुभाग 4 से तुलना कीजिए।*

2 निःसन्देह रेल की दरों पर यह लागू नहीं होता, क्योंकि एक रेल कम्पनी के कार्य करने की प्रणालियों में थोड़ी सी लोच होने, तथा प्रायः बाहर से बहुत कम प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण विभिन्न प्रकार के यातायात के प्रभारों को उनकी लागत के अनुसार समायोजित करने के लिए कोई प्रलोभन नहीं मिलता। वास्तव में यद्यपि प्रत्येक दशा में मूल लागत का पर्याप्त सरलता से पता लगाया जा सकता है, तथापि इससे यह सही सही निश्चित नहीं होता कि तेज तथा मंद यातायात, पास के तथा दूर के यातायात, हलके तथा भारी वजन वाले यातायात, की कुल सापेक्षिक लागतें क्या हैं। और न उन लागतों को ही निश्चित किया जा सकता है जो रेल की लाइनों पर तथा रेलगाड़ियों में भीड़ होने पर अतिरिक्त यातायात होने तथा इनके लगभग खाली रहने की दशा में होती हैं।

कठिनाई तब बहुत बड़ी ही हो जाती है जब क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम दृढ़तापूर्वक लागू होता है, विशेषकर जब उत्पादन कुछ विशाल फर्मों के हाथों में चला जाता है।

का विपणन हो सके जिनका उत्पादन निश्चित विधि के अनुसार भलीभांति नही किया जा सकता, क्योकि इनके लिए इतनी अधिक प्रतिस्पर्द्धा नही होती। विशेषकर फर्नीचर तथा पोशाक से सम्बन्धित व्यवसायों मे विनिर्माता तथा प्रायः सभी व्यवसायो मे खुदरे व्यापारी बहुधा अपनी कुछ वस्तुओं को अन्य वस्तुओ के विज्ञापन के साधन के रूप मे उपभोग करना, तथा अनुपूरक खर्चो मे इनके आनुपातिक हिस्से की अपेक्षा पहले से कम तथा दूसरे से अधिक भार वसूल करना सर्वोत्तम समझते हैं। पहले वर्ग मे वे उन वस्तुओ को रखते हैं जो इतने अधिक समान तथा इतनी अधिक मात्रा मे उपभोग की जाती है कि लगभग सभी खरीददार उनके मूल्य की अच्छी तरह जानते हैं, और दूसरे मे उन वस्तुओ को रखते है जिन्हें खरीददार अपनी पसन्द के अनुमार न कि सबसे कम कीमत का ध्यान रख कर खरीदते है।

इस प्रकार की सभी कठिनाइयाँ सम्भरण कीमत की उस अस्थिरता से और भी बढ़ जाती हैं जो क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति के दृढ़तापूर्वक कार्य करने से उत्पन्न होती है। हम देख चुके हैं कि ऐसी दशाओ मे सामान्य सम्भरण कीमत का पता लगाने के लिए हमे ऐसे प्रतिनिधि व्यवसाय का चयन करना चाहिए जिसका सामान्य योग्यता से प्रबन्ध किया जाता है और जिससे औद्योगिक प्रबन्ध से मिलने वाली आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार की किफायतें पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। किन्ही विशेष व्यवसायो की उन्नति या अवनति के साथ साथ यद्यपि इनमे भी परिवर्तन होता रहता है, किन्तु कुल उत्पादन मे वृद्धि होने पर इनमे भी प्रायः वृद्धि होती है। अब यह स्पष्ट है कि यदि कोई विनिर्माता किसी ऐसी वस्तु को बनाता है जिसके बढ़े हुए उत्पादन से उसे अत्यधिक बढ़ी हुई आन्तरिक किफायते सुलभ हो तो, एक नये बाजार मे अपने विक्रय को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ त्याग करना लाभदायक होगा। यदि उसके पास बहुत बड़ी मात्रा मे पूंजी हो और वह वस्तु अत्यधिक मात्रा मे मांगी जाती हो तो इस प्रयोजन के लिए किया गया खर्च बहुत अधिक हो सकता है, यहा तक कि विनिर्माण मे प्रत्यक्ष रूप मे होने वाले खर्च से भी बढ़कर हो सकता है: और यदि वह जैसा कि सम्भव है अनेक वस्तुओ का उत्पादन भी साथ साथ बढ़ा रहा हो तो चालू वर्ष मे उनमे से प्रत्येक की बिक्री पर इस खर्च का कितना हिस्सा लगाया जाय और कितना हिस्सा उन सम्बन्धो पर लगाया जाय जिन्हे भविष्य मे स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। इनका केवल स्थूल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

वास्तव मे जब किसी वस्तु का उत्पादन क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार इस प्रकार हो जिससे बड़े उत्पादको को बहुत अधिक लाभ मिले तो सम्भवतया वह पूर्णरूप से कुछ ही बड़ी फर्मो के अधिकार मे रहेगी और तब सामान्य सीमान्त सम्भरण कीमत को, अभी अभी बतलायी गयी योजना के अनुसार, विलग नही किया जा सकता। क्योकि उस योजना मे सभी आकारो के व्यवसायो मे अनेक प्रतिस्पर्द्धियों के अस्तित्व की कल्पना की गयी है। इन व्यवसायो मे से कुछ तो नये और कुछ पुराने, कुछ आरोही अवस्था मे तथा कुछ अवरोही अवस्था मे होते हैं। इस प्रकार की वस्तु का उत्पादन वास्तव मे अधिकांश मात्रा मे एकाधिकार का रूप ले लेता है, और प्रति-

द्वन्द्वी उत्पादकों के बीच जिसमे से प्रत्येक अपने क्षेत्र के प्रसार के लिए संघर्ष करता है, अभियान की घटनाओं से इनकी कीमत इतनी अधिक प्रभावित होती है कि इनका शायद ही कभी सही सामान्य स्तर रहा होगा।

आर्थिक प्रगति से दूर दूर के स्थानो मे वस्तुओ के विपणन के लिए निरन्तर नयी सुविधाएँ प्राप्त रही हैं: इससे न केवल परिवहन की लागत कम होती है अपितु इससे भी महत्वपूर्ण बात यह होती है कि इससे सुदूर स्थानो मे उत्पादक तथा उपभोक्ता एक दूसरे के सम्पर्क मे आ सकते है। इसके बावजूद भी उसी स्थान मे रहने वाले किसी उत्पादक को अनेक व्यवसायो मे बहुत अधिक लाभ प्राप्त होता है। इनके फलस्वरूप वह बहुधा दूर की उन प्रतिस्पर्द्धाओ (जिनके उत्पादन की प्रणालिया अधिक मितव्ययिता-पूर्ण हो) के विरुद्ध डटा रह सकता है। वह अपने आस पास दूसरो की भाँति हा उन्हे सस्ते दामों पर बेच सकता है, क्योंकि यद्यपि अन्य लोगो की अपेक्षा वस्तुओ के बनाने मे अधिक लागत लगानी पड़ती है फिर भी, वह उस लागत के बहुत कुछ भाग से बच जाता है जो अन्य लोगो को विपणन के लिए खर्च करना पड़ता है। किन्तु इस समय उत्पादन की अधिक मितव्ययितापूर्ण प्रणालियो के अपनाने वालो को ही अधिक सफलता मिल सकती है। यदि वह या कोई नया आदमी उनकी सुधरी हुई प्रणालियों को न अपनाये तो उसके सुदूर के प्रतिस्पर्द्धी धीरे धीरे उस स्थान मे अधिक दृढ़ स्थिति प्राप्त कर लेंगे। अब किसी व्यवसाय के जोखिमो के विरुद्ध बीमा करने का उत्पादन की जाने वाली किसी विशेष वस्तु की सम्भरण कीमत से क्या सम्बन्ध है, इस पर अधिक निकट से अध्ययन करना शेष रह गया है।

उत्पादन की किफायतों को बहुधा विपणन की स्थानीय सुविधाओं से संतुलित किया जाता है।

§3. विनिर्माता तथा व्यापारी साधारणतया आग से तथा समुद्र मे होने वाली क्षति के विरुद्ध बीमा करते है, और बीमा किस्त जो वे देते हैं उसे, सामान्य खर्चों मे गिना जाता है, जिनका एक भाग उनके उत्पाद का कुल लागत निश्चित करने के लिए लागत मे जोड़ना पड़ता है। किन्तु अत्यधिक बहुमत वाले व्यावसायिक जोखिमो के विरुद्ध कोई भी बीमा नही किया जा सकता।

सभी व्यावसायिक जोखिमो के विरुद्ध साधारण दरों पर बीमा नहीं किया जा सकता।

यहाँ तक कि आग तथा समुद्र से होने वाली क्षतियो के सम्बन्ध मे भी बीमा कम्पनी को सम्भावित असावधानी तथा ठगी के लिए गुजाइश रखनी पड़ती है। अतः वे स्वय अपने खर्चों तथा लाभों के लिए गुजाइश रखने के अतिरिक्त अपने कार्यों का अच्छी तरह प्रबन्ध करने वाले लोगो द्वारा इमारतो तथा जहाजो के लिए उठाये जाने वाले जोखिमो के वास्तविक तुल्यांक से अधिक बीमा किस्त मागेंगे। आग अथवा समुद्र से यदि कभी भी क्षति हो तो सम्भवतया इतनी अधिक होगी कि इस अतिरिक्त प्रभार को चुकाना सामान्यतया हितकर होगा। ऐसा करना आंशिक रूप से विशेष व्यापारिक कारणो से किन्तु मुख्यतया इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सम्पत्ति मे वृद्धि का कुल तुष्टिगुण इसकी मात्रा के अनुपात से कम बढ़ता है। किन्तु व्यावसायिक जोखिमो का अधिकांश भाग व्यवसाय के सामान्य प्रबन्ध से इतने घनिष्टरूप से सम्बन्धित है कि इनका बीमा करने वाली कम्पनी वास्तव मे स्वयं व्यवसाय का उत्तरदायित्व ले लेती है। और परिणामस्वरूप प्रत्येक फर्म को इनके सम्बन्ध मे अपने ही बीमा कार्यालय की तरह कार्य करना पड़ता है। इस मद के अन्तर्गत आने वाले प्रभार इसके सामान्य खर्चो के अग

हैं, और इन खर्चों के एक भाग को इसके उत्पाद की प्रत्येक वस्तु की मूल लागत मे जोडना पड़ेगा।

कुछ प्रकार के जोखिम के खर्चों की अवहेलना करने तथा अन्य की दो बार गणना न करने के लिए साव-धानी।

किन्तु इसमे दो कठिनाइयाँ है। कुछ दशाओ मे जोखिम के विरुद्ध किये गये बीमा को बिलकुल ही शामिल नही किया जाता और कभी कभी इसे दो बार भी शामिल कर लिया जाता है। इस प्रकार एक बड़ा जहाज मालिक कभी कभी अभिगोपको (under-writers) से अपने जहाज का बीमा नही कराता और कम से कम उनको दिये जाने वाली बीमा किस्तो के हिस्से को स्वय अपनी बीमानिधि स्थापित करने के लिए अलग से रख लेता है। किन्तु ऐसी दशा मे भी उसे किसी जहाज को चलाने की कुल लागत की गणना करते समय बीमा के प्रभार को मूल लागत मे शामिल करना चाहिए। उसे उन जोखिमो के सम्बन्ध मे भी जिनके विरुद्ध वह न्यायोचित शर्तों पर चाहने पर भी बीमा नही करा सका, किसी न किसी रूप मे ऐसा ही करना चाहिए। दृष्टान्त के लिए कभी कभी उसके कुछ जहाज बन्दरगाह मे बेकार पड़े रहेंगे, या उसके लिए मामूली भाडा मिलेगा, और अपने व्यवसाय को दीर्घकाल मे लाभदायक बनाने के लिए उसे अपनी सफल समुद्री यात्राओ पर किसी न किसी रूप मे इतनी अधिक बीमा किस्त लेनी पड़ेगी जिससे असफल यात्राओ से होने वाली क्षति पूरी की जा सके।

सामान्य रूप मे वह अपने लेखे मे किसी अलग शीर्ष मे इसकी औपचारिक रूप से प्रविष्टि न कर सफल एव असफल समुद्री यात्राओ का औसत निकाल कर ऐसा करता है। एक बार ऐसा कर लेने पर इस प्रकार के जोखिमो के विरुद्ध बीमा के करने के खर्च को उत्पादन की लागत मे दुबारा शामिल किये बिना अलग नही दिखाया जा सकता। स्वय ही इन जोखिमो को उठाने का निर्णय करने के बाद वह अपने प्रतिस्पर्द्धियो के औसत खर्च की अपेक्षा उन घटनाओ के लिए कुछ अधिक आयोजित करेगा और यह अतिरिक्त खर्च साधारण रूप मे उसके तुलन-पत्र (balance sheet) मे अंकित किया जाता है। वास्तव मे यह दूसरे रूप मे बीमा किस्त ही है और इसलिए उसे जोखिम के इस भाग के लिए अलग से बीमा करने की गणना नही करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वह इसे दो बार सम्मिलित करेगा।[1]

जब एक विनिर्माता दीर्घकाल मे तैयार की गयी वस्त्र सामग्री की बिक्री का औसत निकालता है, और अपने भावी कार्य की विगत के अनुभव के परिणामो पर आधारित करता है, तो वह नये आविष्कारो के फलस्वरूप मशीन के प्राय. उपयोगी न रहने और

1 पुनः अमेरीका में कुछ बीमा कम्पनियां साधारण दरो से बहुत कम दर पर इस शर्त पर फैक्टरियों में आग के विरुद्ध बीमा करती हैं कि उनमें स्वचालित छिड़काव करने वाली मशीनें लगाये तथा दीवालों व फर्श को ठोस बनाने इत्यादि जैसी कुछ निर्धारित सावधानियां रखी जायेंगी। इन चीजों की व्यवस्था करने में लगने वाली लागत वास्तव में बीमा किस्त है और इसको दुबारा गणना न करने के लिए सावधानी रखनी चाहिए। आग के विरुद्ध अपने जोखिमों को स्वयं उठाने वाली फैक्टरी को सावधानियां बरतने पर अपनी वस्तुओं की मूललागत में बीमा के लिए कम आयोजन करना पड़ेगा, और इन्हें न अपनाने पर अधिक आयोजन करना होगा।

फैशन में परिवर्तनों के कारण अपनी वस्तुओं के मूल्य में कमी हो जाने के जोखिम के लिए पहले से ही आयोजन कर लेता है। यदि इन जोखिमों के विरुद्ध बीमा के लिए उसे अलग से आयोजन करना पडे तो वह एक ही चीज की दुबारा गणना करेगा।[1]

किन्तु अनिश्चितता स्वयं ही अपने आप में एक बुराई है, और साधारणतया जितने ही अधिक अनिश्चित तत्वों से मिल कर साधारण लाभ बना होता है उसका उतना ही कम महत्व होता है।

§4 इस प्रकार किसी जोखिम वाले व्यापार की औसत आमदनी का हिसाब लगा लिये जाने पर हमे जोखिम के विरुद्ध बीमे के लिए अलग से पूरा आयोजन नहीं करना चाहिए, यद्यपि अनिश्चितता के निमित्त प्रभार के रुप मे कुछ न कुछ आयोजन करना आवश्यक भले ही हो। यह सत्य है कि सोने के खनन की भाँति साहसिक धन्धे मे कुछ लोगो का विशेष आकर्षण होता है। इसमे बहुत लाभ होने की आकर्षक शक्ति की अपेक्षा हानि उठाने के जोखिम की निवारक शक्ति कम होती है, भले ही मृत्यु संख्या तथा जीवन बीमा के आँकडो के आधार पर आँके जाने पर पहले का मूल्य दूसरे से बहुत कम हो। जैसा कि ऐडमस्मिथ ने बतलाया है विशेष आकर्षण वाले जोखिम-पूर्ण व्यवसाय मे बहुधा इतनी भीड हो जाती है कि औसत आय उस दशा की अपेक्षा कम होती है जिसमे किसी भी प्रकार का जोखिम न हो।[2] किन्तु अधिक शतया जोखिम का प्रभाव विपरीत दिशाओ मे होता है। रेल के जिस स्टाक के लिए निश्चित रुप से चार प्रतिशत लाभ मिलता है, वह उस स्टाक की अपेक्षा जिसमे सम्भवतया एक या सात प्रतिशत या इनके बीच की किसी भी मात्रा के बराबर आय प्राप्त होने की सम्भावना हो, अधिक ऊँची कीमत पर बिकेगा।

इस प्रकार हर एक व्यापार की अपनी विशिष्टताएँ होती है, किन्तु अधिकाश दशाओ में अनिश्चितता की बुराइयो का, यदि अधिक नही, तो फिर भी कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है। कुछ दशाओ मे यदि वह औसत अत्यधिक भिन्न अनिश्चित परिणामो का मध्यमान हो[3] किसी ज्ञात परिव्यय करने के लिए उस स्थिति की अपेक्षा जब कोई साहसी व्यक्ति प्रतिफल का आत्मविश्वास के साथ अंकन करता है, तो कुछ अधिक औसत कीमत की आवश्यकता होती है। अत साधारण रुप से अधिक होने पर औसत कीमत मे हमे अनिश्चितता के कारण होने वाली क्षति के लिए भी आयोजन करना चाहिए। यदि जोखिम के विरुद्ध किये गये बीमा को इसमे सम्मिलित किया गया तो, इसके अधिकतर भाग की दो बार गणना हो जायेगी।

---

1 पुनः जब कोई किसान किसी औसत वर्ष के प्रसंग में किसी विशेष फसल को उगाने के खर्चों का हिसाब लगाता है तो उसे मौसम के बुरे होने और फसल के खराब होने के जोखिम के विरुद्ध बीमे को अतिरिक्त रूप से नहीं जोड़ना चाहिए। क्योंकि औसत वर्ष लेते समय उसने पहले ही विशेष रूप से अच्छे तथा बुरे मौसमों के अवसरों को परस्पर संतुलित कर दिया है। जब किसी मल्लाह की साल भर का औसत लेकर आय निकाली जाती है तो उसमें कभी कभी जलधारा को खाली नाव के साथ ही पार करने का जोखिम पहले से ही सम्मिलित रहता है।

2 Wealth of Nations भाग I, अध्याय X

3 वान थूनेन ने बड़े व्यावसायिक जोखिमों में निहित अनिश्चितता से होने वाली बुराइयों को अच्छा प्रदर्शित किया है (Isolirter Staat, II,, I पृष्ठ 82)।

सामान्य मूल्यों के सिद्धान्त में उत्पादन की लागत के लिए पुनरुत्पादन की लागत शब्द की प्रतिस्थापना करने से कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता, यद्यपि किसी वस्तु का बाजार मूल्य कभी-कभी उत्पादन की लागत की अपेक्षा पुनरुत्पादन की लागत के अधिक निकट होता है किन्तु यह पुनरुत्पादन की लागत से निश्चित नहीं होता।

§5 व्यापार के जोखिमों के सम्बन्ध में किये गये इस विवेचन से हमारे सामने यह तथ्य पुनः स्पष्ट हो जाता है कि किसी वस्तु के मूल्य में उसके उत्पादन की सामान्य (मौद्रिक) लागत के बराबर होने की प्रवृत्ति होने पर भी वह केवल आकस्मिक स्थिति मे ही किसी निश्चित समय पर इसके बराबर होता है। कैरे (Carey) ने इस पर प्रकाश डालते समय यह बतलाया कि हमे उत्पादन की लागत की अपेक्षा पुनरुत्पादन की (मौद्रिक) लागत से मूल्य का सम्बन्ध व्यक्त करना चाहिए।

जहां तक सामान्य मूल्यों का सम्बन्ध है इस सुझाव का कोई भी महत्व नहीं है, क्योंकि उत्पादन की सामान्य लागत तथा पुनरुत्पादन की सामान्य लागत परस्पर समानार्थक शब्द है और यह कहने से वास्तव में कोई अन्तर नही पड़ता कि किसी वस्तु के सामान्य मूल्य मे इसके पुनरुत्पादन की सामान्य (मौद्रिक) लागत है, न कि उत्पादन की सामान्य लागत के बराबर होने की प्रवृत्ति होती है। पूर्वोक्त वाक्यांश पश्चादुक्त वाक्यांश से कम सरल है किन्तु दोनों का अर्थ एक ही है।

इस तथ्य पर कोई भी तुरन्त मानने योग्य तर्क आधारित नही किया जा सकता है; क्योंकि कुछ ऐसी भी दशाएँ हैं जब किसी वस्तु का बाजारमूल्य उस विशेष वस्तु के उत्पादन मे वास्तव मे लगने वाली लागत की अपेक्षा उसकी पुनरुत्पादन की लागत के अधिक निकट होती है। दृष्टान्त के लिए लोहे के विनिर्माण मे हुए बड़े बडे आधुनिक सुधारो से पहले बने हुए लोहे के जहाज की आधुनिक कीमत इसके निर्माण में वास्तव मे लगी लागत की अपेक्षा इसके पुनरुत्पादन अर्थात् आधुनिक प्रणालियों द्वारा ठीक इसी प्रकार के दूसरे जहाज बनाने की लागत से कम भिन्न होगी। किन्तु पुराने जहाज की कीमत जहाज के पुनरुत्पादन की लागत से कम होगी, क्योंकि लोहे के विनिर्माण में हुए सुधारों की भाँति जहाजों के निर्माण करने की कला मे भी बड़ी तेजी से सुधार हुए हैं और इसके अतिरिक्त जहाज बनाने के सामान के रूप मे लोहे के स्थान पर इस्पात का उपयोग होने लगा है। अभी भी यह दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि जहाज की कीमत आधुनिक योजना द्वारा तथा आधुनिक प्रणालियों से किसी ऐसे जहाज के निर्माण की लागत के बराबर होती है जो समानरूप से उपयोगी होगा किन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि जहाज का मूल्य इसके पुनरुत्पादन की लागत के बराबर होता है। सच बात तो यह है कि, *जब जैसा कि बहुधा होता है, जहाजो के अप्रत्याशित अभाव से भाडे मे* बडी तीव्रता से वृद्धि हो तो लाभदायक व्यापार मे लाभ उठाने के लिए उत्सुक लोग समुद्र में चलने योग्य जहाज के लिए उस कीमत की अपेक्षा कहीं अधिक कीमत देंगे जिस पर एक जहाज निर्माण करने वाली फर्म समानरूप से अच्छे नये जहाज के बनाने और कुछ समय बाद उसे देने का ठेका लेती है। खरीददारो का नये सम्भरण की प्राप्ति के लिए सुविधानुसार रुक सकने के अतिरिक्त अन्य दशाओं में मूल्य पर पुनरुत्पादन की लागत का थोड़ा ही प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है।

शत्रु द्वारा चारो ओर से घिरे हुए नगर मे खाद्यपदार्थ, ज्वरपीड़ित द्वीप में कुनैन, जब कि वहां कुनैन का अभाव हो, राफेल द्वारा बनाये हुए चित्र, वह पुस्तक जिसे कोई भी पढना न चाहे, लोहे के कवच द्वारा रक्षित पुराने ढंग का जहाज, मछलियों से भरे

हुए बाजार में मछली का मूल्य, मछली का मूल्य जब बाजार मे मछलियां प्राय. नही के बराबर हों, टूटे फूटे घण्टे का मूल्य, उस परिधान सामग्री (बने हुए कपडो) का मूल्य जिसका फैशन उठ गया हो अथवा किसी खनन क्षेत्र के बीरान (सूनसान) गाँव मे एक मकान जैसे उदाहरणों में पुनरुत्पादन की लागत तथा कीमत के बीच कोई सम्बन्ध नही पाया जाता।

× × ×

पाठक को जब तक कि उसे आर्थिक विश्लेषण का पहले से ही अनुभव न हो, यह सलाह दी जाती है कि वह अगले सात अध्यायो को छोड दे, और एक दम अध्याय 15 को, जिसमें इस अध्याय का सक्षिप्त सारांश दिया हुआ है, पढे। यह सच है कि मूल्यो के सम्बन्ध मे सीमान्त लागतो पर लिखे गये चार अध्याय और विशेषकर अध्याय 8 व 9 श्रम का वास्तविक उत्पादन वाक्यांश मे निहित कठिनाइयो से सम्बन्धित है, और इस वाक्याश का भाग 6 मे प्रयोग किया गया है। किन्तु इसका वहाँ दिया गया स्थल विवरण अधिकाश प्रयोजनो के लिए सामाजिक रूप से पर्याप्त होगा, और इससे सम्बन्धित जटिलताओ को आर्थिक अध्ययनो के कुछ अधिक ऊँचे स्तर पर जाकर भली भाँति समझा जा सकता है।

अध्याय 8

सीमान्त लागतों तथा मूल्यों का सम्बन्ध । सामान्य सिद्धान्त

इस तथा अगले तीन अध्यायों में अध्याय 4 से लेकर 6 तक में दिया गया मुख्य तर्क अनुबद्ध रहेगा।

§1. इस तथा बाद के तीन अध्यायों में एक ओर तो उत्पादन की वस्तुओं के मूल्यों से सम्बन्धित सीमान्त लागतों पर तथा दूसरी ओर उनके बनाने में प्रयोग होने वाली भूमि, मशीन, तथा अन्य उपकरणों के मूल्य से सम्बन्धित सीमान्त लागतों पर विचार किया गया है। इस तथ्य को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए कि यहाँ पर सामान्य दशाओं तथा दीर्घकालीन परिणामों के प्रसंग में ही विचार किया गया है। किसी भी चीज का बाजार मूल्य उत्पादन की सामान्य लागत से बहुत अधिक या बहुत कम हो सकता है: और किसी समय किसी विशेष उत्पादक की सीमान्त लागतों का सामान्य दशाओं मे सीमान्त लागतो से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है।[1]

अध्याय 6 के अन्त में यह बताया गया था कि एक समस्या के किसी भी भाग को शेष से विलग नहीं किया जा सकता। तुलनात्मक रूप से कुछ ही चीजें ऐसी हैं जिनकी माँग इन चीजों की सहायता से उपयोगी बनने वाली अन्य चीजों की माँग से अधिक प्रभावित नहीं होती और यहाँ तक कहा जा सकता है कि वाणिज्य की अधिकतर वस्तुओं के लिए माँग प्रत्यक्ष नहीं होती अपितु उन वस्तुओं की माँग से व्युत्पन्न की जाती है जिन्हें बनाने मे ये सामान अथवा औजारों के रूप में सहायता पहुँचाती हैं। और इस प्रकार से व्युत्पन्न होने के कारण यह माँग उन वस्तुओं को बनाने में काम में लायी जाने वाली अन्य वस्तुओं के सम्भरण पर बहुत निर्भर होती हैं। पुनः किसी भी वस्तु को बनाने मे उपयोग मे लायी जाने वाली किसी वस्तु का सम्भरण, सम्भवतः अन्य वस्तुओं को बनाने मे उसके उपयोगो से व्युत्पन्न माँग से, प्रभावित होता है: और आगे भी इसी भाँति संसार के व्यावसायिक विषयों के तीव्र एवं प्रचलित विवेचनो मे इन पारस्परिक सम्बन्धो की कभी न कभी अवहेलना की जायेगी। किन्तु सम्पूर्णता का दावा करने वाले किसी भी अध्ययन मे इनका घनिष्ट अन्वेषण किया जाना अनिवार्य है। इसके लिए एक ही समय अनेक बातों को ध्यान मे रखना पड़ता है, और इस कारण अर्थशास्त्र कभी भी एक सरल विज्ञान नहीं बन सकता।[2]

---

1 आधुनिक विश्लेषण में सीमान्त लागतों को दिये गये महत्वपूर्ण स्थान के विरुद्ध असंख्य आपत्तियाँ की गयी हैं। किन्तु यह ज्ञात होगा कि उनमें से अधिकांश आपत्तियाँ ऐसे तर्कों पर आधारित हैं जिनमें सामान्य दशाओं एवं सामान्य मूल्य से सम्बन्धित कथनों को असामान्य अथवा विशेष दशाओं से सम्बन्धित कथनों द्वारा खण्डित किया जाता है।

2 गणितीय परिशिष्ट की टिप्पणी 14 में प्रारम्भ होने वाली और टिप्पणी 21 में समाप्त होने वाली मूल्य की केन्द्रीय समस्या के गणितीय सारगर्भित विवरण के विशेष प्रसंग का अध्ययन करने के लिए पाठक को पृष्ठ 384–385 के अन्तिम फुट-नोट को देखने की सलाह दी जाती है।

इस वर्ग के अध्यायों ने इस विषय पर बहुत थोड़ा योगदान दिया है: किन्तु यह विषय जटिल है: और हमें इस पर सतर्कतापूर्वक अनेक दृष्टिकोणों से विचार करना होगा, क्योंकि इसमे अनेक अप्रत्याशित कठिनाइयाँ एवं उलझनें भरी हुई है। इसमें मुख्यतया भूमि, मशीन तथा उत्पादन के अन्य भौतिक कारकों के उपार्जन का अध्ययन किया जाता है। इसका मुख्य तर्क मानव मात्र के उपार्जन पर लागू होता है। किन्तु उन पर कुछ ऐसे कारणों का प्रभाव पड़ता है जो उत्पादन के भौतिक कारकों के उपार्जनों को प्रभावित नही करते : और विचारगत विषय प्रासंगिक विषयो के बिना ही पर्याप्त रूप से कठिन है। इनके होने पर तो यह और भी अधिक जटिल बन सकता है।

यहाँ पर केवल भौतिक औजार इत्यादि पर विचार करने के कारण।

§2. सर्वप्रथम हम प्रतिस्थापन सिद्धान्त की संक्षेप में पुनरावृत्ति करेंगे। आधुनिक संसार मे लगभग उत्पादन के सभी साधनों को, उपयोग के लिए, मालिकों तथा अन्य व्यवसायियों के हाथों से होकर निकलना पडता है जो जनता की आर्थिक शक्तियों की व्यवस्था करने मे स्वयं विशेषरूप से कुशल होते है। प्रत्येक दशा मे उनमे से प्रत्येक उत्पादन के उन कारकों का चयन करता है जो उसके उद्देश्य के लिए सर्वोत्तम प्रतीत होते हैं। उसके उपयोग मे आने वाले कारको के लिए दी जाने वाली कीमतों का योग सदैव उन कीमतों के योग से कम होता है जो उन वस्तुओं के लिए प्रतिस्थापित किये जाने वाले अन्य कारकों के लिए उसे देनी पड़ती है, क्योंकि जब कभी यह प्रतीत हो कि वस्तु स्थिति भिन्न है तो वह सदैव कम खर्चीली व्यवस्था अथवा प्रक्रिया की प्रतिस्थापना करने लगेगा।[1] यह कथन नित्य प्रतिदिन के जीवन की इस प्रकार की साधारण कहावतों से घनिष्ट रूप से मिलता जुलता है कि "हर एक चीज अपने स्तर पर पहुँचने की कोशिश करती है", कि "अधिकांश लोगों की कमायी उनकी योग्यता के अनुकूल ही होती है", कि यदि एक व्यक्ति दूसरे से दुगुनी अधिक कमायी कर सकता है तो इससे यह ज्ञात होता है कि उसका कार्य दूसरे से दुगुना ही अधिक मूल्यवान है", कि "मशीन से जब कभी कोई कार्य कम लागत पर किया जा सके तो उसका वह शारीरिक श्रम के स्थान पर उपयोग किया जाने लगेगा।" वास्तव मे इस सिद्धान्त के लागू होने मे अनेक बाधाएँ है। यह प्रथा अथवा कानून अथवा व्यावसायिक शिष्टाचार अथवा व्यापारिक संघ के विनियम से संयत हो सकता है: यह उद्यम के अभाव मे पूर्णरूप से लागू न होगा, या पुरानी परिस्थितियों से अलग होने की पर्याप्त अनिच्छा से यह अधिक आसानी से लागू हो जायेगा। किन्तु यह कभी भी निष्क्रिय नही होता और यह आधुनिक संसार के सभी आर्थिक समायोजनों मे परिव्याप्त रहता है।

प्रतिस्थापन सिद्धान्त का पुनर्कथन।

खेती के कुछ काम ऐसे हैं जिनमे वाष्पशक्ति से अश्वशक्ति स्पष्टरूप से अधिक उपयोगी होती है, और इसके विपरीत प्रक्रिया भी उतनी सही है। यदि हम यह कल्पना करें कि हाल मे अश्व अथवा वाष्पचालित मशीनों में कोई बडे आधुनिक सुधार नही हुए है, और इस कारण विगत के अनुभव से कृषकों ने प्रतिस्थापन सिद्धान्त को धीरे धीरे अपनाया है तो वाष्पशक्ति का प्रयोग इतना अधिक होने लगेगा कि अश्वशक्ति

दृष्टान्त।

---

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 3 और भाग 5, अध्याय 4 अनुभाग 3 व 4 तथा गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 14 से तुलना कीजिए।

के स्थान पर इसका और अधिक प्रयोग करने से कोई वास्तविक लाभ न होगा। इस पर भी एक सीमान्त ऐसा आयेगा जिस पर इन्हें तटस्थ रूप से लागू किया जा सकता है (जैसा कि जेवन्स ने कहा भी होता), और उस सीमान्त पर प्रत्येक के कुल उत्पादन के मौद्रिक मूल्य में वृद्धि करने की निवल क्षमता इसे प्रयोग में लाने की लागत के अनुपात में होगी।[1]

इसी प्रकार, यदि दो प्रणालियाँ ऐसी हों जिनमें से एक से कुशल श्रम द्वारा तथा दूसरी से अकुशल श्रम द्वारा एक ही लक्ष पर पहुँचा जा सके तो वह प्रणाली अपनायी जायेगी जो इसकी लागत के अनुपात में अधिक कुशल हो। एक ऐसा भी सीमान्त आयेगा जहाँ दोनों में से किसी को भी तटस्थ रूप से अपनाया जायेगा।[2] इस रेखा पर, विभिन्न क्षेत्रों तथा एक ही क्षेत्र में विभिन्न वर्कशापों की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक की कुशलता इसके लिए दी जाने वाली कीमत के अनुपात में होगी। अन्य शब्दों में, कुशल तथा अकुशल श्रम की मजदूरी का उदासीनता के सीमान्त पर परस्पर *वही अनुपात होगा जो अनुपात उनकी कुशलताओं में होगा।*

पुनः हस्तशक्ति तथा मशीनशक्ति में वैसी ही प्रतिद्वन्द्विता होगी जैसी प्रतिद्वन्द्विता विभिन्न प्रकार की दो हस्तशक्तियों अथवा दो मशीनशक्तियों के बीच पायी जाती है। इस प्रकार कुछ परिचालनों (operations) के लिए, जैसे कि अनियमित वृद्धि वाली बहुमूल्य फसलों की निरायी करना, हाथ की शक्त लाभकारी होती है। अश्वशक्ति को भी अपनी बारी में एक साधारण शलगम के खेत की निराई करने में विशेष लाभकारी स्थान प्राप्त है। हर एक क्षेत्र में उनमे से प्रत्येक के प्रयोग में तब तक वृद्धि होती रहेगी जब तक उसके और अधिक प्रयोग करने से निवल लाभ मिलता रहेगा। हस्तशक्ति तथा अश्वशक्ति के बीच उदासीनता के सीमान्त पर उनकी कीमतें उनकी कुशलता के अनुपात में होनी चाहिए। इस प्रकार प्रतिस्थापन के प्रभाव से श्रम की मजदूरी तथा अश्वशक्ति के लिए दी जाने वाली कीमत के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना होगा।

---

1 यह सीमान्त स्थानीय परिस्थितियों तथा व्यक्तिगत किसानों की आदतों, उनके झुकाव एवं साधनों के अनुसार भिन्न होगा। छोटे खेतों में तथा खुरदरी जमीन में वाष्प मशीनों के प्रयोग की कठिनाई उन क्षेत्रों की अपेक्षा, जहाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो, सामान्यतया उन क्षेत्रों में अधिक हल हो जाती है जहाँ श्रम का अभाव होता है; विशेषकर यदि जैसा कि सम्भव है, बाद में बताये गये क्षेत्रों की अपेक्षा पहले बताये गये क्षेत्रों में कोयला अधिक सस्ता हो और घोड़ों को दिया जाने वाला दाना अधिक महँगा हो।

2 कुशल शारीरिक श्रम साधारणतया विशेष आर्डरों तथा उन वस्तुओं के बनाने में उपयोग किया जायेगा जिनमें एक ही ढंग की बनी बहुत सी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती, और अन्य वस्तुओं के बनाने के लिए विशिष्ट प्रकार की मशीनों की सहायता से अकुशल श्रम का प्रयोग किया जायगा। प्रत्येक बड़े वर्कशाप में समान प्रकार के कार्य में दोनों प्रणालियों को साथ साथ प्रयोग में लाया जाता है किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजन रेखा अलग अलग वर्कशापों में कुछ भिन्न होगी।

सीमान्त पर निवल उत्पादन।

§3. किसी वस्तु के उत्पादन मे प्राय: अनेक आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के श्रम, कच्चा माल, मशीन एव सयत्र तथा व्यावसायिक सगठन उपयोग मे लाये जाते है: और आर्थिक स्वतत्रता के लाभ कमी भी इतने आश्चर्यजनक रूप से अभिव्यक्त नहीं होते जितने कि एक मेधावी व्यवसायी द्वारा अपने ही जोखिम पर यह जानने के लिए विभिन्न प्रयोगों को करने से होते है कि क्या कोई नयी प्रणाली अथवा प्राचीन प्रणालियों का संसर्ग पहले की अपेक्षा अधिक कुशल होगा। वास्तव मे प्रत्येक व्यवसायी अपनी शारीरिक शक्ति एव योग्यता के अनुसार यह पता लगाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता है कि उसके द्वारा उपयोग किये गये उत्पादन के प्रत्येक तथा उन अन्य कारकों की, जिन्हे उनमे से कुछ के बदले मे प्रतिस्थापित किया जा सकता है, क्या सापेक्षिक कुशलता है। वह अपनी पूर्ण समर्थता के अनुसार यह अनुमान लगाता है कि किसी एक कारक के अतिरिक्त प्रयोग से कितना अधिक निवल उत्पादन (अर्थात् उसके कुल उत्पादन के मूल्य मे निवल वृद्धि) हो सकेगी। निवल कारक आँकते समय परिवर्तन के फलस्वरूप अप्रत्यक्षरूप से होने वाले अतिरिक्त खर्चों को घटा दिया जाता है और कुछ आकस्मिक बचतों को जोड दिया जाता है। वह प्रत्येक कारक का उस सीमान्त तक उपयोग करेगा जिस पर उसका निवल उत्पादन उसके लिए दी जाने वाली कीमत से अधिक नही होगा। वह सामान्यतया कुशल सहजवृत्ति द्वारा न कि औपचारिक गणनाओं द्वारा कार्य करता है, किन्तु उसकी प्रक्रियाएँ व्युत्पन्न माँग के अध्ययन के सम्बन्ध मे बतलायी गयी प्रक्रियाओं से सार रूप मे मिलती है और अन्य दृष्टिकोण से, इन्हे वे प्रक्रियाएँ समझना चाहिए जो दोहरी खतान के आधार पर पुस्तपालन की जटिल एवं परिष्कृत प्रणाली द्वारा प्राप्त होती है।[1]

उत्पादन के किसी कारक के निवल

इस प्रकार के कुछ सरल प्राक्कलनों को हम पहले से ही समझ चुके है। दृष्टान्त के लिए हम देख चुके हैं कि यवसुरा मे हॉप्स तथा माल्ट के अनुपात मे कैसे अन्तर लाया जा सकता है और किस प्रकार इसमें हॉप्स की मात्रा को बढाने से इसके लिए मिलने

---

1 वह जिन परिवर्तनों को करना चाहता है वे इस प्रकार के हो सकते है कि उन्हें केवल बड़े पैमाने पर ही किया जा सके; जैसे कि, दृष्टान्त के लिए किसी फैक्टरी में हस्तशक्ति के स्थान पर वाष्पशक्ति को प्रतिस्थापना करना। उस दशा में इस परिवर्तन के कुछ न कुछ अनिश्चित एवं जोखिम की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यदि एकल (single) व्यक्तियों के कार्य को ध्यान में रखें तो उत्पादन एवं उपभोग दोनों में ही निरन्तरता का भंग होना अपरिहार्य है। किन्तु किसी विशाल बाजार में टोपों, घड़ियों तथा विवाह के लिए निरन्तर मांग रहने पर भी कोई भी व्यक्ति उन्हें बहुत मात्रा में नहीं खरीदता (भाग 3 अध्याय 3 अनुभाग 5 देखिए)। अतः सदैव बिना वाष्पशक्ति के चलने वाले व्यवसायों में छोटे व्यवसाय और वाष्पशक्ति से चलने वालों में बड़े व्यवसाय सबसे मितव्ययतापूर्ण होते है और इनके बीच के व्यवसायों की स्थिति सीमान्त पर होगी। पुनः यहाँ तक कि बड़े संस्थानों में जहाँ भाप का पहले से प्रयोग किया जाता है, कुछ ऐसे काम हस्तशक्ति द्वारा किये जायेंगे जो अन्यत्र वाष्पशक्ति द्वारा किये जाते है, और आगे भी इसी प्रकार।

उत्पादन के प्राक्कलन से सम्बन्धित दृष्टान्त ।

वाली अतिरिक्त कीमत हॉप्स की माँग कीमत को प्रभावित करने वाले कारणो का प्रतिनिधित्व करती है। यह कल्पना करते हुए कि हॉप्स के इस अतिरिक्त प्रयोग करने मे कोई अतिरिक्त कष्ट या खर्च नही होता और इस अतिरिक्त मात्रा के प्रयोग की वाछनीयता सन्देहात्मक है, यवसुरा के प्राप्त होने वाला अतिरिक्त मूल्य हॉप्स का सीमान्त निवल उत्पादन है जिसका हम पता लगाना चाहते हैं। अधिकाश अन्य दशाओ की भाँति इस दशा मे निवल उत्पादन अधिक अच्छे प्रकार का होता है या इससे उत्पादन के मूल्य मे सामान्य रूप से वृद्धि होती है। यह उत्पादन का एक ऐसा निश्चित भाग नही है जिसे शेप से पृथक् किया जा सके किन्तु अपवादसूचक दशाओ मे ऐसा हो भी सकता है।[1]

उत्पादन के किसी कारक के आवश्यक अनुपात में प्रयोग न होने से जो उत्पत्ति में क्रमागत ह्रास होता है वह सामान्यतया भूमि में श्रम प्रधान खेती से चाहे ऐसा करना कितना ही उपयुक्त हो होने वाले उत्पत्ति ह्रास से

§4. उत्पादन के किसी कारक के सीमात रोजगार के विचार का अभिप्राय इसके प्रयोग मे वृद्धि करने से होने वाली क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की सम्भावित प्रवृत्ति से है। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किन्ही साधनो के अतिरिक्त प्रयोग से व्यवसाय की हर शाखा मे, और यहाँ तक कहा जा सकता है कि जीवन के सभी विपयो मे, निश्चित रूप से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा। हम पहले ही स्पष्ट किये गये इस सिद्धान्त के कुछ अन्य उदाहरण ले सकते हैं[2]। सिलाई की मशीनो के तैयार करने मे कुछ हिस्से ढले हुए लोहे के भी बने हो सकते हैं, अन्य मशीनो के लिए साधारण प्रकार का इस्पात पर्याप्त होगा। इस पर भी कुछ मशीनें ऐसी भी हैं, जिनके लिए विशेषरूप से खर्चीले इस्पात के सम्मिश्र (compound) की आवश्यकता होती है, और सभी हिस्सों को प्राय: चिकना बनाना चाहिए जिससे मशीन सरलतापूर्वक कार्य कर सके। यदि किसी ने कम महत्वपूर्ण उपयोगो मे सामान छाँटने मे आवश्यक सतर्कता रखने तथा अनुकूल लागत लगाने पर ध्यान न दिया तो यह कहना सत्य होगा कि इस खर्च से तीव्रता से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलता है। ऐसी दशा मे अधिक अच्छा यह होता कि वह अपनी मशीनो के सुचारुरूप से कार्य करने, अथवा अधिक मशीनें तैयार करने के लिए इस खर्च का कुछ भाग लगाता: यदि वह तैयार वस्तु मे बहुत अधिक चमक लाने के लिए अत्यधिक खर्च करे, और ऐसे कार्य के लिए निम्न श्रेणी के धातु को लगाये जहाँ उच्चतर श्रेणी के धातु की आवश्यकता हो तो स्थिति और भी अधिक बुरी होगी।

इस विचार से सर्वप्रथम आर्थिक समस्याएँ सरल होती हुई प्रतीत होती हैं, किन्तु वास्तव मे यही विचार कठिनाई तथा भ्रम का मुख्य स्रोत है। क्योंकि उत्पत्ति ह्रास की इन विभिन्न प्रवृत्तियो मे कुछ समानता होने पर भी ये समरूप नहीं हैं। इस

1 पृष्ठ 377-378 गणितीय टिप्पणी 16 देखिए। भाग 5, अध्याय 6, व अध्याय 7 में दिये गये अन्य दृष्टान्तों को भी देखिए। सीमान्त गड़ेरिये की मजदूरी तथा उसके श्रम के वास्तविक उत्पादन के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए एक और दृष्टान्त भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 7 में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

2 भाग 5, अध्याय 4, अनुभाग 4 देखिए। आगे पृष्ठ (भाग 6, अध्याय 1, के अनुभाग 1 के अन्तिम दो पैराग्राफों में) वॉन-थुनेन पर दी गयी टिप्पणी को भी देखिए।

प्रकार किसी विशेष कार्य में उत्पादन के अनेक कारकों के प्रतिकूल अनुपात का प्रयोग करने से होने वाले उत्पत्ति ह्रास का उस व्यापक प्रवृत्ति से बहुत कम मेल है जो जीवन निर्वाह के साधनों पर अधिक घनी तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव के कारण उत्पन्न होती है। क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का महान शास्त्रीय सिद्धान्त न केवल किसी *विशेष फसल पर अपितु भोजन की सभी मुख्य फसलों पर लागू होता है।* इसमे इस बात को तथ्यरूप से मान लिया जाता है कि किसान असंख्य फसलो के सापेक्षिक माँगों को ध्यान में रखते हुए निश्चितरूप से उन फसलो को उगाते है जिनके लिए उनकी भूमि तथा अन्य साधन सबसे अधिक अनुकूल होते हैं, और वे अपने साधनो को विभिन्न उपयोगो मे उचित रूप से लगाते है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि किसानो मे असीमित बुद्धि एव प्रज्ञान है। इसमे केवल यह कल्पना की जाती है कि एक दूसरे को ध्यान मे रखते हुए उन्होने इन साधनो के वितरण मे पर्याप्त सतर्कता एव समझ से काम लिया है। इसका एक ऐसे देश से सम्बन्ध है जिसकी सम्पूर्ण भूमि पहले से ही सक्रिय व्यवसायियों के अधिकार मे है जो स्वय अपनी पूँजी को बैंक से इस शर्त पर ऋण लेकर अनुपूरित कर सकते है कि वे इसका सदुपयोग करेंगे। इसमे दावे के साथ यह बात कही गयी है कि उस देश मे कृषि पर लगायी गयी पूँजी की कुल मात्रा मे वृद्धि से सामान्यरूप मे उत्पादन से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा। यह कथन, इस कथन से कि यदि कोई किसान खेती की विभिन्न योजनाओं पर अपने साधनो का बुरे ढंग से वितरण करता है तो वह व्यय के अधिक खर्च किये गये अश से स्पष्टरूप मे घटती हुई दर पर प्रतिफल प्राप्त करेगा, समान होने पर भी बिलकुल भिन्न है। दृष्टान्त के लिए किसी दशा मे जुताई तथा पटला लगाने अथवा खाद डालने पर किसी निश्चित अनुपात मे खर्च करना सबसे अधिक लाभदायक होता है। इस विषय पर कुछ मतभेद हो सकता है, किन्तु यह एक सकुचित सीमा तक ही होगा। एक अनुभवी व्यक्ति जो उस भूमि पर अनेक बार जुताई करता है, जो पहले से ही बहुत अच्छी सामान्य दशा मे हो, खाद की आवश्यक मात्रा डालने या इसका थोडा सा ही भाग बिलकुल ही न डालने पर साधारणतया इस बात के लिए दोषी ठहराया जायेगा कि उसने आवश्यकता से इतनी अधिक जुताई की जिससे तीव्रता से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलने लगा। किन्तु साधनों के अनुचित प्रयोग से मिलने वाले परिणाम का किसी पुराने देश की खेती में इन साधनो की ठीक ढग से की गयी सामान्य वृद्धि से घटती हुई दर पर मिलने वाले प्रतिफल से कोई अधिक घनिष्ट सम्बन्ध नही है: और वास्तव में अनावश्यक अनुपात मे लगाये गये कुछ विशेष साधनो से यहाँ तक कि उन उद्योगों मे भी घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलने की समान दशाएँ मिलती हैं जहाँ पूंजी तथा श्रम के उचित मात्रा में अधिकाधिक प्रयोग से बढ़ती हुई दर पर प्रतिफल मिलता है।[1]

भिन्न होने पर भी उसी के समान है।

---

1 भाग 6, अध्याय 3, अनुभाग 8, तथा कार्वर की Distribution of Wealth अध्याय II तथा भाग IV, अध्याय XIII, अनुभाग 2 के अन्तिम पैराग्राफ देखिए। श्री जे० ए० होब्सन अर्थशास्त्र के वास्तविक एवं सामाजिक विषयों पर लिखने वाले ओजस्वी तथा विचार प्रेरक लेखक हैं: किन्तु रिकार्डो के सिद्धान्तों के आलो-

सीमान्त उपयोगों

§5. यह स्वाभाविक है कि वितरण के आधुनिक सिद्धान्त मे उत्पादन के सीमान्त पर उत्पादन के महत्व को ठीक ठीक समझा गया हो। अनेक योग्य लेखकों ने विशेष-

---

चक होने के नाते वे सम्भवतः स्वयं विवेचन की गयी समस्याओं के निकालने की कठिनाई का अल्पानुमान करते हैं। उनका यह तर्क है कि यदि उत्पादन के किसी कारक का सीमान्त प्रयोग कम हो जाय तो इससे उत्पादन इतना अव्यवस्थित हो जायेगा कि उसमें लगने वाले अन्य प्रत्येक कारक का पहले की अपेक्षा कम प्रभाव पड़ेगा। और इसलिए इससे होने वाली कुछ हानि केवल उस कारक का वास्तविक सीमान्त उत्पाद ही नहीं, अपितु अन्य कारकों पर उत्पाद का कुछ भाग भी सम्मिलित होगा। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने निम्न लिखित बातों पर ध्यान नहीं दिया:—(1) कुछ शक्तियां विभिन्न उपयोगों में साधनों के वितरण को इस प्रकार से पुनर्व्यवस्थित करना चाहती हैं कि किसी भी अनुचित समायोजन का अधिक दूर तक प्रभाव न पड़ सके। बहुत अनुचित सामायोजन की अपवादजनक दशाओं में यह लागू नहीं होता। (2) जब सामायोजन ऐसा हो कि इससे सर्वोत्तम परिणाम निकल सकें तो उनके लगाये जाने वाले अनुपातों में थोड़े से परिवर्तन से समायोजन की दक्षता उस परिवर्तन की अपेक्षा बहुत मात्रा में कम होती है—तकनीकी भाषा में 'यह न्यूनता के दूसरे क्रम में आती हैं' और अतः इसे उस परिवर्तन के अनुपात में नगण्य माना जा सकता है। (शुद्ध गणितीय वाक्यांश में यदि कुशलता को उत्पादन के कारकों के अनुपातों का पालन मानें तो कुशलता के अधिकतम सीमा में होने पर इन अनुपातों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में इसका अवकलन-गुणांक शून्य के बराबर होता है)। यदि उन तत्वों को भी जिन्हें हॉब्सन दावे के साथ उपेक्षित किया गया मानते हैं, ध्यान में रखा होता तो इसमें एक गम्भीर भूल हुई होती।(3) अर्थशास्त्र में भौतिकशास्त्र की भांति सामान्यतया लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। वास्तव में परिवर्तन उथलपुथल करने वाले हो सकते हैं किन्तु उन पर अलग से विचार करना चाहिए: और किसी उथलपुथल वाले परिवर्तन से लिये गये दृष्टान्त से सामान्य स्थिर विकास की प्रक्रियाओं पर कोई वास्तविक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। हमारे सम्मुख आयी हुई इस समस्या में इस पूर्वसावधानी का विशेष महत्व है: क्योंकि उत्पादन के किसी एक कारक के सम्भरण में लगने वाली तीव्र रोक से अन्य सभी कारकों का अभाव सहज में ही निष्क्रिय हो सकता है। अतः उस कारक के सम्भरण में ऐसे सीमान्त पर जब किंचित् अधिक प्रयोग से प्राप्त होने वाले अतिरिक्त निवल उत्पादन का लाभकारी होना संदेहात्मक है थोड़ीसी रोक लगाने से जो क्षति हो सकती है इससे वास्तविक क्षति कहीं अधिक होती है। जटिल संख्यात्मक सम्बन्धों में परिवर्तनों का अध्ययन, जिस ओर भी हॉब्सन का झुकाव प्रतीत होता है, बहुधा इस प्रकार के विचार की अवहेलना से दूषित हो जाता है, जैसा कि वास्तव में The Industrial System पृष्ठ 110 में 'सीमान्त गड़ेरिये' पर दी गयी उनकी कंफियत से प्रदर्शित होता है। प्रो० एजवर्थ के इस टिप्पणी में उल्लेख किये गये दो दृष्टान्तों के पाण्डित्यपूर्ण विश्लेषणों को देखिए, Quarterly Journal of Economics, 1904, पृष्ठ 167 और Scientia, 1910, पृष्ठ 95–100 देखिए।

कर यह कल्पना की है कि यह किसी चीज के सीमान्त उपयोग का प्रतिनिधित्व करती है जिससे उसके सभी उपयोगों का मूल्य नियंत्रित होता है। किन्तु यह कल्पना ठीक नही है। इस सिद्धान्त का यह अभिप्राय है कि हमें उन शक्तियों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सीमान्त तक जाना चाहिए जिससे इस सम्पूर्ण वस्तु का मूल्य प्रभावित होता है: यह बहुत ही भिन्न कार्य है। वास्तव में (जैसे कि) लोहे का इसके आवश्यक उपयोगों में प्रयोग करना समाप्त करने पर इसके मूल्य पर ठीक वही प्रभाव पड़ेगा जो कि इसके सीमान्त उपयोगों में इसका प्रयोग न करने पर पड़ता है। किसी एक सुरक्षा वाल्व की भाँति अन्य कही से भाप के निकलने से भी अधिक दबाव वाले भोजन बनाने की पतीली (बॉइलर) मे भाप के दबाव पर ऐसा ही प्रभाव पड़ता है: किन्तु वास्तव में भाप सुरक्षा-वाल्व के अतिरिक्त और कही से निकलती ही नही, ठीक इसी तरह लोहा या उत्पादन के अन्य किसी कारक का (सामान्य दशाओं मे) तब तक उपयोग किया जाना समाप्त नही होता जब तक ऐसा करने से स्पष्टरूप से लाभ प्राप्त होता हुआ नहीं दिखायी देता अर्थात् इसके केवल सीमान्त उपयोग ही समाप्त किये जाते है।

तथा लागतों से मूल्य नियंत्रित नहीं होता किन्तु मूल्य सहित ये सब माँग तथा सम्भरण के सामान्य सम्बन्धों से नियंत्रित होते हैं।

पुन एक स्वचालित तोल मशीन की अंगुली इससे सकेत द्वारा पता लगाये जाने वाले वजन को निश्चित करती है। इसी प्रकार एक वर्ग इन्च मे सौ पौंड दबाव का प्रतिनिधित्व करने वाले स्प्रिंग से नियंत्रित सुरक्षा वाल्व से भाप के निकलने से इसके एक इंच मे सौ पौंड के वजन तक पहुँचने की सूचना देने के रूप मे पतीली मे भाप का दबाव निश्चित होता है और यह दबाव भाप के ताप से पैदा होता है। वाल्व मे विद्यमान ताप पर जब भाप की मात्रा स्प्रिंग के प्रतिरोध करने की शक्ति से अधिक हो जाती है तो वाल्व मे लगा हुआ स्प्रिंग कुछ भाप को बाहर छोड़ते तथा शेष को रोकते हुए इसके दबाव को नियंत्रित करता है।

इसी प्रकार, मनुष्य द्वारा बनायी गयी मशीनो तथा उत्पादन के अन्य उपकरणो के सम्बन्ध मे 'उत्पादन की लागत' रूपी स्प्रिंग के प्रतिरोध को दूर करने के बाद एक ऐसा सीमान्त आता है जहाँ तक अतिरिक्त सम्भरण किया जाता है। क्योंकि जब उन उपकरणो का सम्भरण उनकी माँग की अपेक्षा इतना कम हो कि नये सम्भरण से प्रत्याशित आय मूल्य ह्रास इत्यादि के लिए छूट रखने के बाद इन पर लागत लगाने से मिलने वाले सामान्य ब्याज (अथवा लाभ यदि प्रबन्ध की आय की गणना की जा सके) से पर्याप्त रूप मे अधिक हो तो वाल्व खुल जाता है और नया सम्भरण होने लगता है। आय के इससे कम होने पर वाल्व बन्द ही रहता है: और जैसा कि उपयोग करने तथा समय के बीतने के साथ विद्यमान सम्भरण मे धीरे धीरे क्षति होना स्वाभाविक है, वाल्व के बन्द रहने पर सम्भरण मे सदैव कमी होती रहती है। यह वाल्व मशीन का वह भाग है जिसकी सहायता से माँग तथा सम्भरण के सामान्य सम्बन्धो से मूल्य नियंत्रित होता है। किन्तु सीमान्त उपयोगो से मूल्य नियंत्रित नही होता, क्योंकि वे मूल्य के साथ स्वयं ही उन सामान्य सम्बन्धो से नियंत्रित होते हैं।

§6. इस प्रकार जब तक किसी व्यक्तिगत उत्पादक के साधन सामान्य क्रय-शक्ति के रूप में हों तो, वह हर प्रकार के विनियोजन को उस सीमान्त तक बढ़ायेगा

ब्याज तथा लाभ शब्द

तरल (fluid) पूंजी पर प्रत्यक्ष रूप से लागू हो सकते हैं।

जिस पर उसे इसमें कुछ अन्य सामग्री, अथवा मशीन लगाने अथवा विज्ञापन करने अथवा कुछ अतिरिक्त श्रम किराये पर लेने से प्राप्त होने वाले निवल प्रतिफल से अधिक प्रतिफल मिलने की आशा न हो। हर विनियोजन को पहले की भाँति उस वाल्व तक पहुँचाया जायेगा जिससे इसकी अपनी विस्तार शक्ति के बराबर ही प्रतिरोध हो। यदि वह इसका सामान अथवा श्रम मे विनियोजन करे तो इसे शीघ्र ही किसी बिक्री योग्य वस्तु के रूप मे साकार बनाया जा सकता है : बिक्री से उसकी नकद पूंजी बढ़ जाती है, और इसे पुन: उस सीमान्त तक विनियोजित किया जाता है जिस पर किसी अतिरिक्त विनियोजन से इतना कम प्रतिफल मिले कि उसे लगाना लाभकारी न हो।

किन्तु ये पूंजी के किन्हीं विशेष प्रतिरूपों पर केवल अप्रत्यक्षरूप में तथा किसी निश्चित मान्यता पर ही लागू होते हैं।

किन्तु यदि वह भूमि या टिकाऊ इमारत मशीन मे विनियोजित करे तो विनियोजन से मिलने वाला प्रतिफल उसकी प्रत्याशा से बहुत भिन्न हो सकता है। यह उसके उत्पाद के उस बाजार से नियंत्रित होगा जो मशीनों के कार्य कर सकने की अवधि मे भूमि के नये शाश्वत जीवन के अतिरिक्त नये आविष्कारो तथा फैशन में परिवर्तनों इत्यादि के अनुसार बदल सकता है। उसे भूमि तथा मशीनरी पर विनियोजन करने से प्राप्त होने वाली आय मे अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जो अन्तर दिखायी देगा उसका कारण यह है कि भूमि का अपेक्षाकृत अधिक समय तक उपयोग किया जा सकता है। किन्तु सामान्यतया उत्पादन के विषय मे इन दोनो के बीच प्रबल भेद का कारण यह है कि भूमि का सम्भरण स्थिर है (यद्यपि एक नये देश मे मनुष्य के प्रयोग मे लायी जाने वाली भूमि का सम्भरण बढाया जा सकता है), जबकि मशीनो के सम्भरण को असीमित मात्रा मे बढाया जा सकता है। इस भेद की प्रत्येक उत्पादक पर प्रतिक्रिया होती है, क्योंकि यदि किसी नये बडे आविष्कार से उसकी मशीनें अप्रचलित न हो और उनसे बनायी जाने वाली वस्तुओ की माँग निरन्तर बनी रहे तो, वे लगभग उत्पादन की लागत पर ही निरन्तर बेची जायेंगी और उसकी मशीनो से उनकी टूटफूट के लिए छूट रखने के बाद भी प्राय: उत्पादन की उस लागत पर सामान्य लाभ प्राप्त होगें।

इस प्रकार ब्याज की दर एक अनुपात है जो द्रव्य की दो राशियो के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। जब तक पूंजी 'मुक्त' हो, और द्रव्य की मात्रा या उसकी सामान्य क्रयशक्ति का पता हो तब तक इससे प्रत्याशित निवल द्रव्यिक आय को तुरन्त ही उस धनराशि का निश्चित अनुपात (चार या पाँच या दस प्रतिशत) मान सकते है। किन्तु जब पूंजी को किसी विशेष चीज मे विनियोजित कर लिया जाय तो इसके मूल्य को, इससे प्राप्त होने वाली निवल आय को, मूलधन मे परिणत किये बिना प्राय: नही आंका जा सकता : अतएव इसे नियंत्रित करने वाले कारण सम्भवत: न्यूनाधिक मात्रा मे लगानो को नियंत्रित करने वाले कारणो के सदृश है।

इस वर्ग के अध्यायों का केन्द्रीय सिद्धान्त।

इस प्रकार हम अर्थशास्त्र के इस भाग के केन्द्रीय सिद्धान्त पर पहुँचते है जो इस प्रकार है : जिसे 'मुक्त' या 'चल' पूंजी या पूंजी के नये विनियोजनो पर ब्याज मानना ठीक ही है, उसे पूंजी के पुराने विनियोजनो पर मिलने वाली एक प्रकार का लगान-आभास लगान समझना अधिक उचित है। चल पूंजी और उस पूंजी मे जो उत्पादन की विशेष शाखा मे कृतकार्य हो जाती है, तथा पूंजी के नये एव पुराने विनियोजनों

मे कोई अन्तर नही है। इनमे से प्रत्येक एक दूसरे पर धीरे धीरे अपना आवरण डालता है। इस प्रकार भूमि के लगान को भी एक स्वतंत्र नही समझा जाता अपितु किसी विशाल जीन्स की प्रमुख जाति समझा जाता है, यद्यपि इसकी अपनी विशिष्टताएँ है जो सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दृष्टिकोण से बड़े ही महत्व की है।[1]

---

1 यह कथन इस खण्ड के प्रथम संस्करण के प्राक्कथन से उद्धृत किया गया है।

अध्याय 9

सीमान्त लागतों तथा मूल्यों का सम्बन्ध : सामान्य सिद्धान्त (पूर्वानुबद्ध)

एक काल्पनिक दृष्टान्त में तथा कराघात (incidence) से सम्बन्धित निदर्श-चित्रों से खास लगान की अत्यावश्यक विशिष्टताएँ स्पष्ट रूप में देखने को मिलती हैं।

§1 भू-पट्टे की घटनाएँ इतनी जटिल हैं और उनसे सम्बन्धित व्यावहारिक समस्याओ के कारण मूल्य की समस्या के प्रासंगिक विषयो पर इतने अधिक विवाद उत्पन्न हो गये है कि भूमि के विषय मे पहले के दृष्टान्त के अतिरिक्त कुछ और दृष्टान्त देना उपयुक्त होगा। हम किसी काल्पनिक वस्तु से भी एक ऐसा दृष्टान्त ले सकते है जिसमे समस्या की प्रत्येक अवस्था की सूक्ष्म विशेषताएँ निर्दिष्ट की जा सकती है तथा जिसमे यह आपत्ति उत्पन्न नही हो सकती कि भू-स्वामी तथा काश्तकार के वास्तविक सम्बन्धो मे इस प्रकार की सूक्ष्म विशेषताएँ नही पायी जाती।

किन्तु इस विषय पर विचार प्रारम्भ करने के पूर्व हमे मूल्य की समस्या पर प्रासंगिक प्रकाश डालने के लिए करवाह्यता से सम्बन्धित दृष्टान्त को प्रयोग करने का मार्ग तैयार करना चाहिए। क्योंकि अर्थविज्ञान का एक बहुत बड़ा भाग सभी आर्थिक परिवर्तनो के विसरण (diffusion) से भरा हुआ है जिसका उत्पादन अथवा उपभोग की विशेष शाखा पर ही प्रभाव पड़ता है। शायद ही कोई ऐसा आर्थिक सिद्धान्त होगा जो किसी कर के प्रभावो के अग्रवती (forwards) (अर्थात् अन्तिम उपभोक्ता की ओर तथा कच्चे माल उत्पादन मे उपभोग मे लाये जाने वाले औजारो के उत्पादको से दूर) मे पश्चवर्ती अथवा उसकी विपरीत दिशा अन्तरण (shifting) के विवेचन से उचित रूप से स्पष्ट न हो सके। और यह बात विचाराधीन समस्याओं के सम्बन्ध मे विशेषरूप से लागू होगी।[1]

अग्रान्तरण एवं पश्चान्तरण।

यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि अन्य लोगो को बेची जाने वाली वस्तुओ एव सेवाओ के उत्पादन मे काम मे आने वाली किसी वस्तु पर जब किसी कर का दाब पडता है तो उससे उत्पादन मे रुकावट पैदा हो जाती है। इससे कर के भार का बड़ा भाग अग्रवती उपभोक्ताओ पर और थोड़ा भाग उन पश्चवर्ती लोगो पर अन्तरित होने लगता है जो इस वर्ग के उत्पादकों की आवश्यक चीजो का सम्भरण करते है। इसी प्रकार किसी चीज के उपभोग पर लगने वाला कर अधिक या कम मात्रा मे पश्चवर्ती उत्पादक पर अन्तरित किया जाता है।

मुद्रण पर कर वाह्यता।

दृष्टान्त के लिए मुद्रण पर एक अप्रत्याशित एव भारी कर लगने से उस व्यवसाय मे लगे लोगो पर बहुत अधिक भार पडेगा। क्योंकि यदि उन्होने कीमतों को अधिक बढ़ाने का प्रयास किया तो उनकी वस्तुओ की माँग तेजी से कम होने लगेगी, किन्तु इस

---

1 इस अनुभाग का सार स्थानीय करों पर शाही आयोग (Royal Commission on Local Taxation) द्वारा रखे गये प्रश्नों के उत्तरों से उद्धृत किया गया है। (कमान्ड पेपर 9528), 189', पृष्ठ 112-126 देखिए)।

व्यवसाय में लगे हुए विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाला कराघात असमान होगा। मुद्रण मशीनों तथा कम्पोजीटरों को उस व्यवसाय से बाहर सरलतापूर्वक रोजगार न मिल सकने के कारण मुद्रण मशीनों तथा कम्पोजीटरों की मजदूरी को कुछ समय के लिए कम रखा जायेगा। इसके विपरीत, इमारत तथा भाप के इंजन, कुली, इंजीनियर तथा लिपिक इस बात की प्रतीक्षा नही करेंगे कि घटी हुई माँग के फलस्वरूप स्वाभाविक क्षति की मन्द प्रक्रिया से उनकी संख्या मे समायोजन हो जाये। उनमे से कुछ अन्य व्यवसायो मे शीघ्र ही काम पर लग जायेंगे, और उस व्यवसाय मे शेष बचने वाले लोगो पर लम्बे समय तक थोड़ा ही भार रहेगा। पुन. इस भार का उल्लेखनीय अश गौण उद्योगो, जैसे कि, कागज तथा टाइप के उद्योग पर पड़ेगा; क्योंकि उनके उत्पाद के लिए माँग कम हो जायेगी। लेखको तथा प्रकाशको को भी थोड़ी सी कठिनाइयाँ उठानी पडेगी, क्योंकि बिक्री मे कमी होने के फलस्वरूप उन्हे या तो पुस्तको की कीमते बढ़ानी पडेगी या अपनी कुल आमदनी के अधिकतर भाग को लागत के रूप मे ही खर्च करना पड़ेगा। इस प्रकार पुस्तक विक्रेताओ की कुल बिक्री घट जायेगी और उन्हे भी थोड़ी सी हानि उठानी पड़ेगी।

मुद्रण पर स्थानीय कर।

अब तक यह कल्पना की गयी है कि कर का जाल बड़े विस्तार मे फैलता है, और प्रसगगत मुद्रण उद्योग को सरलतापूर्वक स्थानान्तिरत किये जा सकने के सभी स्थानो पर यह लागू होता है। किन्तु यदि कर ही लगायें जायें तो कम्पोजीटर ऐसे स्थानो मे चले जायेंगे जहाँ इस कर का प्रभाव न पडे। ऐसी दशा मे मुद्रणालयो के मालिक उन लोगो की अपेक्षा जिनके साधन अधिक विशेषीकृत किन्तु कम गतिशील हो, अधिक भार वहन करेंगे। यदि लोगो को आकर्षित करने वाले किसी प्रभाव से स्थानीय कर की क्षति पूर्ति न की जाये तो इस भार का कुछ अश स्थानीय नानवाइयो पसारियो, इत्यादि पर पड़ेगा और उनकी बिक्री कम हो जायेगी।

मुद्रणालयों पर कर।

इसके बाद यह कल्पना करे कि कर मुद्रित वस्तुओ पर न लग कर मुद्रणालयों पर लगता है। उस दशा मे यदि मुद्रको के पास कोई अर्द्ध-अप्रचलित मुद्रणालय न हो जिन्हे कि वे समाप्त करने या बेकार रखने पर तुले हुए हो तो कर का सीमान्त उत्पादन पर प्रभाव नही पड़ेगा। इससे न तो मुद्रण की निपज (Output) और न इसकी कीमत पर ही तुरन्त प्रभाव पडेगा। इससे मुद्रणालयो के मालिको को मिलने वाली कुछ आय मे कमी होगी और मुद्रणालयो के आभास-लगान मे कमी हो जायेगी। किन्तु इससे निवल लाभो का उन दरो पर कोई प्रभाव नही पडेगा जो लोगो को अपनी नकद पूँजी का मुद्रणालयो मे विनियोजन करने का प्रलोभन देने के लिए आवश्यक थी। अत पुराने मुद्रणालयो के नष्ट प्राय होने के साथ साथ कर सीमान्त खर्चों मे, अर्थात् उन खर्चों मे जुड़ जायेंगे जिन्हे उत्पादक अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करने या न करने के लिए स्वतन्त्र है, और जिन्हे खर्च करने मे उसे यह सन्देह हो कि ऐसा करना लाभप्रद होगा या नही। इसके फलस्वरूप मुद्रण का कार्य कम हो जायेगा तथा इसकी कीमत बढ जायेगी। नये मुद्रणालय केवल उस सीमान्त तक खोले जायेंगे जिस पर सामान्यतया मुद्रको के निर्णय के अनुसार वे कर का भुगतान करने के बाद भी अपने परिव्यय पर सामान्य

लाभ अर्जित कर सके। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होने लगे तब मुद्रणालयों पर किसी कर के भार का वितरण लगभग वैसा ही होगा जैसा कि इसका मुद्रण पर होता है: इसमें केवल यह अन्तर होगा कि प्रत्येक मुद्रणालय से अत्यधिक काम लेने के लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रलोभन मिलेगा। दृष्टान्त के लिए अधिकतर मुद्रणालयों मे दो पारियों मे काम किया जायेगा, यद्यपि रात्रि के कार्य मे कुछ विशेष प्रकार के खर्च भी करना पड़ेंगे।

अब हम करो के अन्तरण के इन सिद्धान्तो को अपने मुख्य दृष्टान्त पर लागू करेंगे।

हीरों से भी अधिक कठोर पत्थर की विशाल शिलाओं का सीमित भण्डार।

§2. अब हम यह कल्पना करेंगे कि हीरो से भी अधिक कठोर कुछ हजार पत्थर की विशाल शिलाओ की एक ही स्थान पर उल्का बौछार हुई जिससे उन्हे तुरन्त उठा लिया गया, और कितनी ही खोज के बाद भी वे और अधिक नही मिल सके। ये पत्थर, जिनसे हर सामान को काटा जा सकता है, उद्योग की अनेक शाखाओ मे क्रान्ति पैदा कर देगे और उनके मालिको को उत्पादन मे अवकलन लाभ प्राप्त हो तो उससे बहुत अधिक उत्पादक अधिशेष (producer's surplus) प्राप्त होगा। यह अधिशेष एक ओर तो उनकी सेवाओ की शीघ्रता तथा माँग की मात्रा से तथा दूसरी ओर पत्थरो की सख्या से पूर्णतया नियत्रित होगा। यह इसके अतिरिक्त सम्भरण प्राप्त करने की लागत से नियत्रित नही होगा क्योकि इन्हे किसी भी ऊँची कीमत पर प्राप्त नही किया जा सकता। वास्तव मे उत्पादन की लागत से उनका मूल्य अप्रत्यक्षरूप से नियत्रित हो सकता है। उत्पादन की यह लागत कठोर इस्पात तथा अन्य सामग्री से बने हुए उन औजारो की लागत होगी जिनके सम्भरण मे माँग के बराबर वृद्धि की जा सकती है। जब तक इनमे से किसी भी पत्थर का बुद्धिमान उत्पादको द्वारा स्वभाववश, ऐसे कार्य के लिए प्रयोग किया जाता है जिसे इस प्रकार के औजारो द्वारा समानरूप से अच्छी तरह किया जा सके, तब तक टूटफूट के लिए छूट रखने के बाद पत्थर का मूल्य इन घटिये कामो मे भलीभाँति उपयोग किये जाने वाले औजारो की लागत से बहुत अधिक नही बढ सकता। पत्थरो के इतने अधिक कठोर होने के कारण कि उन पर घिसाई का कोई भी प्रभाव न पड़े, वे सम्भवत. काम करने के पूरे समय मे उपयोग मे लाये जायेगे। यदि उनका उपयोग बहुमूल्य हो तो उनका अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए लोगो को समयोपरि अथवा यहाँ तक कि दो या तीन पारियो मे काम पर लगाये रखना हितकारक होगा। किन्तु उन्हे जितनी अधिक प्रगाढ़ता से लगाया जाये उनसे बलपूर्वक प्राप्त किये गये हर अतिरिक्त उपयोग से मिलने वाला प्रतिफल उतना ही कम होगा। इस प्रकार इससे यह सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है कि न केवल भूमि के बल्कि उत्पादन के प्रत्येक अन्य उपकरण का बहुत अधिक उपयोग करने से घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलेगा।

खरीददार उन पर लगाये गये परिव्यय पर ब्याज प्राप्त

पत्थरों का कुल सम्भरण निश्चित होता है। किन्तु वास्तव मे कोई विनिर्माता मनचाही मात्रा मे उनके लिए भुगतान कर उन्हे प्राप्त कर सकता है। और वह उन पर अपने परिव्यय से दीर्घकाल मे यह प्रत्याशा करेगा कि उससे उसमे ब्याज (अथवा यदि स्वय उसके कार्य के लिए मिलने वाले पारितोषिक की अलग से गणना न की गयी हो तो लाभ) के साथ ठीक उसी प्रकार प्रतिफल मिले जैसा कि ऐसी मशीन खरीदने

से मिलेगा जिसके कुल स्टाक को अनियमितरूप से बढ़ाया जा सकता है जिससे इसकी कीमत उसकी उत्पादन की लागत के बराबर हो जाय।

किन्तु जब वह एक बार पत्थर खरीद लेता है तो उत्पादन की प्रक्रियाओं अथवा उनकी सहायता से बनायी जाने वाली वस्तुओं की माँग में परिवर्तन होने से उनसे मिलने वाली आय उसकी प्रत्याशित मात्रा की दुगुनी या केवल आधी हो जाती है। पश्चादुक्त दशा में यह उस मशीन से प्राप्त की जाने वाली आय के सदृश है जिसमें नवीनतम सुधार न किये गये हों और जिससे समान लागत की मशीन से अर्जित की जा सकने वाली आय की अपेक्षा आधी ही आय अर्जित की जा सके। पत्थर तथा मशीन दोनों के मूल्यों को उनके द्वारा अर्जित की जा सकने वाली आय को मूलधन में परिवर्तित करने से समान रूप से आँका जा सकता है और यह प्राय उनसे मिलने वाली सेवाओं के निवल मूल्य से नियन्त्रित होगी। इनमें से प्रत्येक की आय अर्जित करने की शक्ति और इसलिए उसका मूल्य उत्पादन की लागत से नियन्त्रित न होकर उन उत्पादों के सामान्य सम्भरण को दृष्टि में रखकर उनकी सामान्य माँग द्वारा नियन्त्रित होगा। किन्तु एक मशीन के सम्बन्ध में उस सम्भरण को उस कार्य को करने में समान रूप से कुशल नयी मशीनों के सम्भरण की लागत द्वारा नियन्त्रित किया जायेगा। पत्थर के सम्बन्ध में इस प्रकार की तब तक कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती जब तक सभी सुलभ पत्थरों का ऐसे कार्य में उपयोग किया जाय जहाँ उनके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से काम नहीं चल सकता।

करने की प्रत्याशा करेगा। किन्तु वास्तव में उनसे प्राप्त की जाने वाली निवल-आय, लागत पर निर्भर रहने वाले नये सम्भरणों से नियन्त्रित हुए बिना मिलने वाली सेवाओं से नियंत्रित होगी।

इस तर्क को हम दूसरे प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैं। पत्थरों को खरीदने वाले लोग अन्य उत्पादकों से ही इन्हें प्राप्त कर सकते है। अत उनके इन्हें खरीदने से पत्थर के उपयोगों की माँग तथा इन उपयोगों के सम्भरण के सामान्य सम्बन्ध सार-रूप में नियन्त्रित नहीं होंगे। अत. इनसे पत्थरों की कीमत नियन्त्रित नहीं होगी। और यह इसके बाद भी उन कामों में जहाँ उनके लिए माँग सबसे कम तीव्र हो, इनके उपयोग के पूँजीकृत मूल्य के बराबर होगी। यह कहना कि क्रेता उन सेवाओं के उपयोग के पूँजीकृत मूल्य का प्रतिनिधित्व करने वाली लागत पर सामान्य ब्याज प्राप्त करने की प्रत्याशा करता था, इस चक्र कथन के अनुरूप है कि पत्थरों के उपयोग का मूल्य उनके उपयोग के मूल्य से ही नियन्त्रित होता है।[1]

---

1 इस प्रकार के चक्रक (circular) तर्कों से कभी कभी कुछ भी हानि नहीं होती: किन्तु ये सदैव वास्तविक विषयों को आच्छादित करने तथा छिपाने की कोशिश करते हैं। कभी कभी कम्पनी संस्थापकों द्वारा तथा विशेष हितों के अधिवक्ताओं द्वारा, जो कानून को अपने पक्ष में करना चाहते हैं, इन्हें अवैध उपयोगों में भी लगाया जाता है। दृष्टान्त के लिए एक अर्ध-एकाधिकारी व्यावसायिक समुदाय या ट्रस्ट बहुधा अत्यधिक पूँजीकृत होता है। इन्हें लागू करने के लिए एक ऐसा समय निर्धारित किया जाता है जब इससे सम्बन्धित उत्पादन की शाखा असाधारण प्रगति पर होती है। जब सम्भवतः कुछ ठोस फर्में एक ही वर्ष में अपनी पूँजी पर निवलरूप से पचास प्रतिशत आय अर्जित करती हैं और इस प्रकार बीते हुए तथा आने वाले अभिवर्षों (lean years) की उस कमी को पूरा करेंगी जब इनसे होने वाली आमदनी मूल लागतों से कुछ ही अधिक

इसके बाद यह कल्पना करें कि पत्थरोंका सम्भरण धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है।

इसके पश्चात् हम यह कल्पना करें कि सभी पत्थर एक ही स्थान पर नहीं मिले, किन्तु ये पृथ्वी के धरातल पर सार्वजनिक मैदान मे बिखरे हुए पाये गये और यह सम्भव है कि बहुत खोज करने पर एक दो पत्थर कहीं इधर उधर मिल जायें। ऐसी दशा मे लोग पत्थरो के लिए उसी अंश अथवा सीमान्त तक खोज करेंगे जिस पर ऐसा करने का सम्भावित लाभ दीर्घकाल में इसमें लगे हुए श्रम तथा पूंजी के परिव्यय के बराबर हो। हर वर्ष एकत्रित किये गये पत्थरों की संख्या दीर्घकाल कीमत, सामान्य सम्भरण कीमत के बराबर हो। पत्थरों का सामान्य मूल्य ऐसा होगा कि इससे मांग तथा सम्भरण मे साम्य बना रहेगा।

अन्त में यह कल्पना करें कि इनकी मात्रा शीघ्र बढ़ायी जा सकती है, और पत्थर शीघ्र घिस जाते हैं।

अन्त मे यह कल्पना करते हुए कि पत्थर टूटने वाले हैं, और शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे तथा यह कि इनका एक ऐसा अपार भण्डार विद्यमान है जिससे लगभग समान लागत पर शीघ्रता एवं निश्चितता से अतिरिक्त सम्भरण प्राप्त किया जा सकता है, हम पत्थरो के इस विषय को विनिर्माण में साधारणतया प्रयोग की जाने वाली अधिक हलकी मशीनो तथा अन्य यन्त्रों के अनुरूप मानेंगे। इस दशा मे पत्थरों का मूल्य सदैव इनकी लागत के लगभग अनुरूप होगा। मांग मे परवर्तनों का उनकी कीमत पर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि कीमत मे थोड़ा सा अन्तर आने पर बाजार मे उनके स्टाक मे शीघ्र ही परिवर्तन हो जायेंगे। इस दशा मे टूटफूट के लिए छूट रखने के बाद पत्थर से अर्जित आय सदैव उत्पादन मे लगायी गयी लागत पर मिलने वाले ब्याज के ही अनुरूप होगी।

उक्त परिकल्पनाओं

§3 परिकल्पनाओं की यह शृंखला एक ऐसे छोर से, जिसमे पत्थरों से अर्जित आय यथावत् अर्थ मे एक लगान है, दूसरे ऐसे छोर तक अविच्छिन्न रूप से फैली हुई

होगी। व्यापारिक कम्पनी की स्थापना से सम्बन्धित वित्तदाता कभी कभी यहाँ तक प्रबन्ध करते हैं कि जन साधारण के लिए किये जाने वाले कारोबारों को उनके द्वारा तैयार की जाने वाली वस्तुओं के विकास के लिए विशेषरूप से अनुकूल कीमतों पर बहुत आर्डर मिलते रहें, यद्यपि उन्हें स्वयं ही या उनके नियंत्रण में आने वाली अन्य कम्पनियों को इस कारण हानि उठानी पड़े। अर्द्ध-एकाधिकार विक्रय से प्राप्त होने वाले सुरक्षित लाभ पर तथा सम्भवतः उत्पादन में होने वाली कुछ अन्य किफायतों से होने वाले लाभ पर जोर दिया जाता है और ट्रस्ट के स्टाक को जनता द्वारा खरीद लिया जाता है। यदि अन्ततोगत्वा ट्रस्ट के संचालन पर और विशेषकर एक ऊँचे टैरिफ (tariff) या अन्य सार्वजनिक पक्षपात द्वारा उसके अर्द्ध- एकाधिकार की स्थिति को सुदृढ़ करने पर आपत्ति की जाती है तो इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि हिस्सेदारों को अपने विनियोजनों पर केवल साधारण प्रतिफल ही मिल रहा है। इस प्रकार के उदाहरण अमेरीका में भी मिलते हैं। इस देश में हिस्सेदारों के हित में रेलों के स्टाक के मूल्यों में कमी न होने देने के लिए अप्रत्यक्षरूप से यदाकदा अधिक साधारण अधि-पूंजीयन (moderate watering) किया जाता है, जिससे यह भय रहता है कि इस पूंजी पर प्राप्त होने वाला लाभांश इसमें पहले से लगी ठोस पूंजी पर उचित रूप से मिलने वाले प्रतिफल से भी कम न हो जाय।

है जिसमे इसे मुक्त अथवा चलपूँजी पर प्राप्त होने वाले व्याज की श्रेणी मे रखा जाता है। प्रथम चरम अवस्था में पत्थर न तो घिस सकते हैं और न नष्ट हो सकते है और न उन्हें अधिक मात्रा मे पाया जा सकता है। वास्तव मे वे विभिन्न उपयोग मे इस प्रकार से वितरित किये जाते हैं कि कोई भी ऐसा उपयोग नही है जिसमे उनके बढे हुए सम्भरण को किसी कम से कम समानरूप से मूल्यवान उपयोग मे कमी किये बिना नही लगाया जा सकता। विभिन्न उपयोगो मे पत्थरों के निश्चित भण्डार तथा कुल माँग के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध इन असंख्य उपयोगो के सीमान्त को नियंत्रित किया जाता है। इन सीमान्तों के इस प्रकार निश्चित होने से इनके उपयोग करने के लिए दी जाने वाली कीमतें किसी भी एक मशीन पर इनके मूल्य से व्यक्त की जाती हैं।

की शृंखला लगान से ही प्रारम्भ होती है और इस दशा में कर का भार मालिकों पर ही पड़ता है।

इन पत्थरो के उपयोग करने वालो से समानरूप से लिये गये कर से हर उपयोग का निवल मूल्य कर के बराबर कम हो जायेगा। इससे असख्य उपयोगो के बीच उनका वितरण प्रभावित न होगा, और सम्भवत. पुन समायोजन होने के प्रतिरोधात्मक सघर्ष मे लगने वाले समय के बाद यह पूर्णरूप से मालिक को ही देना पडेगा।

हमारी परिकल्पनो की शृखला के दूसरे छोर पर वे पत्थर है जो इतने शीघ्र नष्ट हो जाते हैं तथा लगभग समान लागत पर इतने शोघ्र पुनरुत्पादित किये जाते है कि इनके सुलभ भण्डार मे तीव्र परिवर्तन के कारण इनकी मात्रा एव तीव्र आवश्यकता में इतने शीघ्र परिवर्तन होगे कि इनसे अतिरिक्त पत्थर प्राप्त करने मे लगने वाली द्रव्यिक लागत पर सामान्य व्याज से न तो बहुत अधिक और न बहुत कम आय अर्जित की जा सकेगी। ऐसी स्थिति मे किसी ऐसे उपक्रम मे जहाँ पत्थरो का उपयोग किया जाता है लागत का अनुमान लगाते समय एक व्यावसायिक व्यक्ति व्याज को (या यदि वह स्वयं अपने कार्य को उसमे शामिल करता हो तो लाभ) टूटफूट सहित अपने उपक्रम के मूल, विशेष, या प्रत्यक्ष खर्चों के भाग के रूप मे तब तक सम्मिलित करेगा जब तक इन पत्थरों का उपयोग किया जायेगा। इन दशाओ मे पत्थरो पर लगने वाला कर पूर्णरूप से उसी व्यक्ति पर पडेगा जो कर के लगने के थोडे समय बाद ही किसी ऐसी वस्तु को बनाने का संविदा करता है जिसमे पत्थरो का प्रयोग किया जाता हो।

दूसरे छोर में वह आय है जो उत्पादन की द्रव्यिक लागत के लिए प्राप्त होने वाले व्याज अथवा लाभ के निकट होती है और इस पर लगने व लग कर इनके उपयोग करने वालों पर ही पड़ता है। मध्यवर्ती अवस्थाएं।

पत्थरो के उपयोग की कुल अवधि तथा नये सम्भरणो को प्राप्त कर सकने की तीव्रता के सम्बन्ध मे यदि ऊपर दी गयी दो अवस्थाओ को बीच की अवस्था की परिकल्पना करें तो हम यह पायेंगे कि पत्थरो को उधार लेने वाला जो प्रभार देने को सोचता है तथा पत्थरों का मालिक उनसे किसी भी समय मिलने वाली जिस आय का अनुमान लगाता है वह उनकी लागत के लिए मिलने वाले व्याज (या लाभ) से अस्थायी रूप से अपसृत (diverged) हो सकती है। क्योंकि पत्थरो की अत्यावश्यकता तथा उपयोग मे लायी जाने वाली मात्रा मे परिवर्तनो से उनके सीमान्त उपयोगो के मूल्य को बहुत अधिक बढाया या घटाया जा सकता है, भले ही उन्हे प्राप्त करने मे होने वाली कठिनाइयो मे पहले की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय परिवर्तन न हुआ हो। यदि किसी उद्यम या मूल्य की किसी विचारगत समस्या मे माँग मे न कि पत्थरो की लागत मे, परिवर्तनों के फलस्वरूप होने वाला यह उतार अथवा चढाव अधिक हो तो प्राप्त आय पत्थर उत्पन्न करने की लागत के लिए मिलने वाले व्याज की अपेक्षा उसके लगान के अधिक

अनुरूप होती है। ऐसी स्थिति में पत्थरों पर लगने वाले कर से उनके उपयोग के लिए दिया गया किराया कम होने लगेगा और इसलिए अतिरिक्त सम्भरण प्राप्त करने के लिए पूंजी एवं श्रम के विनियोजन का प्रलोभन कम हो जायेगा। इससे सम्भरण घट जायेगा, और उन लोगों को जिन्हें पत्थरों की आवश्यकता हो, इनके उपयोग के लिए क्रमशः तब तक अधिकाधिक किराया देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा जब यह पत्थरों की उत्पादन लागत के बराबर न हो जाय। किन्तु इस पुनर्समायोजन के लिए आवश्यक समय लम्बा हो सकता है और इस काल मे कर का बहुत भाग पत्थरों के मालिकों पर ही पड़ेगा।

दीर्घकाल से सम्बन्धित मूल लागतें अल्पकाल में अनुपूरक लागतें बन जाती हैं।

यदि पत्थरों के उपयोग की अवधि उत्पादन की उस विचाराधीन प्रक्रिया की अपेक्षा कम हो जिसमे पत्थरों का उपयोग किया गया हो तो पत्थरों का मण्डार उस मण्डार से अधिक हो सकता है जिसकी किसी विशेषरूप से अनुकूल कार्य करने के लिए आवश्यकता हो। उनमे से कुछ पत्थरो का तो बिलकुल ही उपयोग न हो रहा होगा और इसलिए इन पत्थरों का मालिक पत्थरों के मूल्य पर लिये जाने वाले ब्याज को सम्मिलित किये बिना ऐसी सीमान्त कीमत आँक सकता है जिस पर इनका उपयोग किया जा सके। कहने का अभिप्राय यह है कि कुछ लागतें जिन्हें दीर्घकालीन संविदाओं या अन्य विषयो के सम्बन्ध मे मूल लागतो मे वर्गीकृत किया जाता, उन्हें अल्पकाल तक ही चलने वाले तथा व्यवसाय के मन्द होने पर ही विचारार्थ आने वाले किसी विशेष कार्य के सम्बन्ध मे अनुपूरकलागत के रूप में वर्गीकृत किया जायेगा।

वास्तव मे, दीर्घकाल मे इस प्रकार निश्चित की गयी कीमत से सामान्य अथवा अनुपूरक लागतो को वसूल करना उतना ही आवश्यक है जितना कि मूल लागतें वसूल करना। दीर्घकाल मे वाष्प इंजनों पर विनियोजित पूंजी से साधारण दर पर ब्याज न मिलने पर किसी उद्योग का अस्तित्व मिटना उतना ही निश्चित है जितना कि नित्य प्रतिदिन काम मे लाये गये कोयले या कच्चे माल की कीमत को पुनः स्थापित न कर सकने से निश्चित है।

जिस प्रकार भोजन न मिलने पर व्यक्ति का कार्य कर सकना निश्चित रूप से उसी भाँति समाप्त हो जाता है जैसे कि उस पर हथकड़ी लग जाने से हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भोजन किये बिना भी एक दिन तक तो बड़ी अच्छी तरह से कार्य कर सकता है, किन्तु उसके हथकड़ी लग जाने से उसके कार्य मे तुरन्त रुकावट आ जाती है, इसी प्रकार कोई उद्योग किसी ऐसे कार्य मे पूरे साल भर या इससे भी अधिक समय तक केवल मल लागतो को अर्जित कर और अचल सयन्त्र का मुफ्त में ही प्रयोग कर काम चलाऊ रूप से कार्य कर सकता है और बहुधा कार्य करता रहता है। किन्तु जब कीमत इतनी नीची हो जाती है कि इससे मजदूरी तथा कच्चे माल, कोयले तथा प्रकाश इत्यादि मे होने वाले फुटकर खर्चों को भी पूरा नहीं किया जा सकता तो सम्भवतः उत्पादन को एकाएक बन्द करना पड़ेगा।

साथ ही साथ मुक्त पूंजी पर मिलने वाले ब्याज के

उत्पादन के साधनों द्वारा अर्जित आय के बीच जिसे लगान या आभास-लगान माना जाता है तथा उसे जिसे (टूटफूट तथा अन्य क्षति के लिए छूट रखने के बाद) चालू विनियोजन पर मिलने वाला ब्याज (या लाभ) माना जाता है, यही आधारभूत अन्तर है। यह अन्तर यद्यपि आधारभूत है किन्तु इसमे विभिन्नता केवल मात्रा में ही

है। प्राणीविज्ञान से यह प्रदर्शित होता है कि पशु तथा वनस्पतिजगत का एक ही स्रोत रहा है किन्तु इस पर भी स्तनधारी तथा वृक्षो मे आधारभूत भिन्नताएँ है, और कुछ अधिक संकुचित अर्थ में सेव तथा गंज के वृक्षों मे आधारभूत अन्तर है। इससे भी अधिक संकुचित अर्थ में सेव के वृक्ष तथा गुलाब की झाड़ी मे भिन्नताएँ है। यद्यपि दोनो ही गुलाब जाति (rosaceoe) के है। इस प्रकार हमारा मुख्य सिद्धान्त यह है कि मुक्त पूँजी का ब्याज और पूँजी के किसी पुराने विनियोजन का आभास-लगान दोनो ही धीरे धीरे एक दूसरे पर परिच्छादित हो जाते है। यहाँ तक कि भूमि का लगान विशाल वश की प्रमुख जाति के अतिरिक्त स्वयं और कुछ चीज भी नही है।[1]

स्थान पर समाविष्ट पूँजी पर आभास-लगान प्राप्त होने लगता है।

§4. पुनः भौतिक अथवा नैतिक जगत मे प्रकृति कदाचित् ही विशुद्ध तत्वो को अन्य सभी तत्वो से विलग कर सकती है। विशुद्ध लगान यथावत अर्थ मे शायद ही कभी देखने को मिलता है। भूमि से प्राप्त होने वाली लगभग सारी आय मे मकानो तथा शालाओ (sheds) भूमि से जलनिसृत करने इत्यादि मे लगाये गये प्रयत्नो मे मिलने वाले सभी मुख्य तत्वो का समावेश होता है। किन्तु अर्थशास्त्रियो ने उन मिश्रित चीजों मे जिन्हे प्रचलित भाषा मे लगान, लाभ, मजदूरी इत्यादि की सज्ञा दी जाती है, प्रकृति की विभिन्नता को पहचानना सीख लिया है। उन्होंने यह जान लिया है कि उस मिश्रित उपज मे जिसे साधारणतया मजदूरी कहा जाता है, विशुद्ध लगान का अश साधारणतया जिसे लगान कहा जाता है उसमे वास्तविक उपार्जन का अश रहता है, और आगे भी इसी प्रकार। सक्षेप मे उन्होंने रसायनज्ञ का अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया है जो प्रत्येक तत्व के वास्तविक गुण धर्मो (properties) का पता लगता है, और जो अन्य तत्वो को सम्मिश्रण से युक्त वाणिज्य के साधारण आक्सीजन या सोडा के विषय पर विचार करने के लिए तत्पर है।[2]

अर्थशास्त्र भौतिक-शास्त्र से विशुद्ध तत्वों के बारे में तर्क करना सीखता है, यद्यपि इन तत्वों को प्रकृति से कदाचित् ही विलग किया जा सकता है।

---

1 ऊपर भाग 5 अध्याय 8 का अनुभाग 6 देखिए।

2 प्रो० फेटर Quarterly Journal of Economics मई 1901 पृष्ठ 419 में) "The passing of the concept of rent" पर लिखे गये लेख में इस सबक की उपेक्षा करते हुए दिखायी देते है। वे यह तर्क देते है कि यदि उन्हीं चीजों को भूमि में वर्गीकृत किया जाये जिसमें श्रम का कोई हाथ न हो और इसके पश्चात् दिखाया जाये कि बन्दोबस्त हुए देशों में किसी भी भौतिक चीज के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता, तो इससे यही अभिप्राय निकलता है कि हर एक चीज को अवश्य ही पूंजी में वर्गीकृत करना चाहिए। पुनः जब वे विस्तार को भूमि का आधारभूत गुण और लगान का आधार मानने के विरुद्ध तर्क देते हैं (पूर्वोक्त पत्रिका में पृष्ठ 423-9 तो ऐसा लगता है कि उन्होंने उन सिद्धान्तों के सही आशय को नहीं समझा जिनकी कि उन्होंने आलोचना की। तथ्य यह है कि इसका विस्तार (अथवा वस्तुतः इसका कुल स्थान-सम्बन्ध) भूमि का एक मात्र गुण न होने पर भी मुख्य गुण है जिसके कारण (एक पुराने देश में) प्राप्त होने वाली आय में विशुद्ध लगान का बहुत अंश निहित रहता है और भूमि से या प्रचलित अर्थ में भूमि के लगान से प्राप्त होने वाली आय में पाये जाने वाले विशुद्ध लगान के अंश का अन्य किसी की अपेक्षा व्यवहार में इतना अधिक महत्व है कि इसने लगान के सिद्धान्त (ऊपर भाग 4 अध्याय 2 का अनुभाग 4 देखिए)

वे यह पहचानने लगे हैं कि वास्तविक उपयोग मे लायी गयी लगभग सारी भूमि मे पूँजी का अंश निहित रहता है और यह भी समझने लगे है कि इसके मूल्य के उन भागों के लिए जो उत्पादन के लिए भूमि मे विनियोजित मानव श्रम के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं, और जो इसके फलस्वरूप प्राप्त नही होते, अलग अलग तर्कों की आवश्यकता होती है। वे यह भी मानने लगे है कि इन तर्कों के निष्कर्षों को किसी विशेष दशा पर विचार करते समय मिश्रित कर लेना चाहिए जो साधारणतया लागत कही जाती है, किन्तु जो समुचित अर्थ मे पूर्णरूप से लगान नही है। इन तर्कों को मिश्रित करने का ढग इस बात पर निर्भर होगा कि समस्या किस प्रकार की है। कभी कभी शक्तियो का यात्रिक 'सयोजन' ही पर्याप्त रहता है। बहुधा अनेक शक्तियों के अर्द्ध-रासायनिक परस्पर क्रिया के लिए छूट रखनी चाहिए, जबकि विकास की प्राणीविज्ञान सम्बन्धी सकल्पनाओ को विस्तृत क्षेत्र एवं महत्व वाली लगभग सभी समस्याओं को ध्यान मे रखना चाहिए।

अवकलन लगान तथा दुर्लभता लगान में कोई आधारभूत भिन्नता नहीं है।

§5. अन्त मे दुर्लभता लगान तथा अवकलन लगान के बीच कभी कभी प्रदर्शित की जाने वाली भिन्नता के विषय में भी कुछ कहा जा सकता है। एक अर्थ में तो सभी लगानो को दुर्लभता लगान, और सभी लगानो को अवकलन लगान कहा जा सकता है। किन्तु कुछ दशाओ मे समुचित उपकरणो द्वारा समानरूप से कार्य करने पर उत्पादन के किसी साधन की आय को उससे घटिया (शायद सीमान्त) साधन की आय से तुलना करके लगान आँकना सुविधाजनक होगा। अन्य दशाओं मे सीधे माँग तथा उस साधन के उपयोग से बनायी जा सकने वाली वस्तुओं के उत्पादन के साधनों की दुर्लभता अथवा प्रचुरता के आधारभूत सम्बन्धों पर ही विचार करना सर्वोत्तम होगा।

दृष्टान्त के लिए यह कल्पना करें कि सभी विद्यमान उल्का पत्थर समानरूप से कठोर तथा अविनाशी है। और वे सब एक ही के पास है और यह कि इस प्राधिकारी ने यह निश्चय किया है कि वह उत्पादन के नियन्त्रण मे अपनी एकाधिकार शक्ति का इस प्रकार से उपयोग नही करेगा कि उसकी सेवाओं की कीमत काल्पनिक रूप से बढ जाय, किन्तु वह हरएक पत्थर का जब तक प्रयोग करना हितकर होगा तब तक पूर्ण रूप से प्रयोग करेगा। (अर्थात् दबाव के उस सीमान्त तक प्रयोग करेगा जो इतनी प्रकृष्ट हो कि इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली वस्तुओ का एक ऐसी कीमत पर शायद

के ऐतिहासिक विकास को विशेष रूप प्रदान किया है। यदि निरपेक्ष कठोरता वाले उल्का पत्थर जिनकी मांग बहुत बड़ी हो और सम्भरण बढ़ाया न जा सकता हो, संसार के आर्थिक इतिहास में भूमि की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण योगदान करते तो विद्यार्थियों का मुख्यरूप से ध्यान आकर्षित करने वाले विशुद्ध लगान के तत्वों का कठोरता के गुण-धर्म से सम्बन्ध होता और इससे लगान के सिद्धान्त के विकास को एक विशेषरूप एवं गुण प्रदान किया गया होता। किन्तु उन सभी चीजों की जिनसे विशुद्ध लगान मिलता है न तो विस्तार और न कठोरता ही अधारभूत विशेषता है। प्रो० फेटर ने भी लगान, आभास-लगान तथा व्याज के विषय में ऊपर दिया गया आधारभूत सिद्धान्त उल्लेख नहीं किया है।

ही विपणन किया जा सके जिससे पत्थर के उपयोग के लिए बिना कुछ छूट रखे लाभ समेत इसके खर्च ही पूरे हो सकते है) तब पत्थरो के उपयोगो की कीमत उनकी माँग की दृष्टि से उनके उत्पाद की प्राकृतिक दुर्लभता से नियत्रित होगी, और कुल अधिशेष या लगान सरलतम रूप मे उतनी आँकी जा सकती है जितनी कि पत्थरो की दुर्लभता कीमत उनके तैयार करने के कुल खर्चो से अधिक होती है। अत सामान्यतया इसे दुर्लभता लगान माना जायेगा। किन्तु इसके विपरीत इसे पत्थरो के निवल उपयोग के कुल मूल्य के सीमान्त उपयोगो की भाँति सभी उपयोगो के अनुत्पादक होने पर प्राप्त मूल्य के अवकलन अधिकाश के बराबर भी आँका जा सकता था। और यही कथन उस समय भी सत्य सिद्ध होगा जब पत्थर उन विभिन्न उत्पादको के पास हो जो पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से प्रेरित होकर प्रत्येक पत्थर का उस सीमान्त तक उपयोग करे जिससे आगे उपयोग करना लाभप्रद न रहे।

यह अन्तिम दृष्टान्त इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत किया गया है कि लगान आँकने के 'अवकल' तथा 'दुर्लभता' के मार्ग, उत्पादन के घटिया साधनो के अस्तित्व से स्वतत्र है क्योकि अच्छे पत्थरो के सीमान्त उपयोगो को प्रसग मे रखकर पत्थरो के अधिक लाभप्रद उपयोगो की उतनी ही स्पष्टता से अवकल तुलना की जा सकती है जितनी कि उन घटिया पत्थरो के प्रसग में की जा सकती है जो उस सीमान्त पर हो जहाँ पर इनका उपयोग करना लाभदायक न हो।

निम्नतर श्रेणी के साधनों के अस्तित्व से उच्चतर श्रेणी के साधनों के लगान में वृद्धि न होकर कमी ही होती है।

इस सम्बन्ध मे यह मत असत्य नही है कि घटिया भूमि, या उत्पादन के अन्य साधनो के अस्तित्व से अधिक अच्छे साधनो के लगान मे वृद्धि होने लगती है। यह मत तो सत्य के विपरीत है। क्योकि यदि बुरी भूमि को जल मग्न करना होता और किसी भी चीज के उत्पादन के बिलकुल ही अयोग्य बना दिया जाता तो अन्य भूमि की जुताई अधिक प्रकृष्ठ होनी चाहिए थी और इनकी उपज की कीमत उस स्थिति की अपेक्षा अधिक होती तथा लगान साधारणतया बढा हुआ होता जब उस भूमि की भी उपयोग करने से कुल उपज मे किंचित मात्र ही वृद्धि होती।[1]

---

1 कैसेल की Das Recht auf den vollen, Arbeitsertrag पृष्ठ 81 से तुलना कीजिए। आभास-लगान के स्वरूप के बारे में अनेक मिथ्या धारणाएँ, जो यहाँ तक कि योग्य अर्थशास्त्रियों के लेखों में भी दिखायी देती है, मूल्य तथा लागत के सम्बन्ध में अल्पकाल तथा दीर्घकाल के अन्तरों पर अपर्याप्त प्रकाश डालने के कारण उत्पन्न हुई है। इसी कारण यह कहा गया है कि आभास-लगान एक अनावश्यक लाभ है, और यह 'लागत का कोई हिस्सा नहीं' है। आभास-लगान को अल्पकालों के सम्बन्ध में एक अनावश्यक लाभ ठीक ही कहा गया है, क्योंकि पहले से बनी हुई तथा उपयोग के लिए पड़ी हुई मशीन के उत्पादन के लिए कोई 'विशेष' या 'मूल' लागत नहीं लगानी पड़ती। किन्तु उन अन्य (अनुपूरक) लागतों के सम्बन्ध में जो दीर्घकाल में लागतों के अतिरिक्त लगानी पड़ती हैं, यह एक आवश्यक लाभ है, और कुछ उद्योगों में, जैसा कि समुद्री तार-प्रणालियों में यह मूल लागत से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। किन्हीं भी दशाओं में इस लागत का भाग नहीं समझा जा सकता। किन्तु मशीनों में पूंजी का

विनियोजन करने तथा साधारणतया अनुपूरक लागतों को लगाने की आवश्यक शर्त यह है कि आभास-लगान मिलने की प्रत्याशा असन्दिग्ध है।

आगे आभास लगान को एक प्रकार के 'संयोग' (conjucture) अथवा 'विकल्प' लाभ के रूप में बतलाया गया है। और साथ ही साथ इसे लाभ या ब्याज बिलकुल भी न मानकर केवल लगान माना गया है। अल्पकाल में यह संयोग या विकल्प आय है: जबकि दीर्घकाल में इससे निःशुल्क पूंजी पर जो इसके उत्पादन में विनियोजित द्रव्य की निश्चित मात्रा के रूप में होती है, ब्याज की (या प्रबन्ध की आय की गणना करने पर, लाभ की) सामान्य दर प्राप्त करने की आशा की जाती है, और सामान्यतया प्राप्त भी की जाती है। परिभाषा के अनुसार ब्याज की दर एक अनुपात है, अर्थात् दो संख्याओं के बीच का सम्बन्ध है, भाग 5, अध्याय 8 का अनुभाग 6 देखिए। मशीन एक संख्या नहीं है। इसका मूल्य पौंड या डालरों की एक निश्चित संख्या है। यदि मशीन नयी न हो तो वह मूल्य इसके पूर्व प्रापित कमायी या आभास-लगानों के योग के रूप में अनुमान होता है। यदि मशीन नयी हो तो इसके निर्माताओं के विचार में यह योग सम्भावित खरीददारों को उस कीमत के बराबर प्रतीत होगा जिसमें निर्माताओं को इसके उत्पादन का प्रतिफल मिल सके। अतः उस दशा में प्रायः यही लागत कीमत एवं वह कीमत होगी जो भावी आयो के (पूर्व प्रापित) योग का प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु जब मशीन पुरानी हो और इसका नमूना आंशिक रूप से अप्रचलित हो गया हो तो इसके मूल्य तथा इसकी उत्पादन लागत के बीच कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता, तब इसका मूल्य प्रत्याशित भावी आभास-लगानों के पूर्व प्रापित मूल्यों के योग के बराबर होगा।

अध्याय 10

सीमान्त लागतों का कृषि मूल्यों से सम्बन्ध

एक प्राचीन देश में सामान्य रूप में कृषि उत्पादन।

§1. अब हम सामान्य बातो पर विचार करने के पश्चात् भूमि से सम्बन्धित बातो पर विचार करेंगे। हम इस एक प्राचीन देश मे विशेषरूप मे कृषि भूमि पर लागू होने वाली बातो से प्रारम्भ करेंगे।

हम कल्पना करेंगे कि किसी युद्ध से जिसकी अधिक समय तक चलते रहने की प्रत्याशा न हो, इग्लैंड के भोजन पदार्थों के सम्भरण का कुछ भाग समाप्त हो जायेगा। अंग्रेज पूंजी तथा श्रम के ऐसे अतिरिक्त प्रयोग से पहले की अपेक्षा अधिक फसल उगाना प्रारम्भ करेंगे, जिससे तीव्रता से प्रतिफल मिलने की सम्भावना हो। ये कृत्रिम खादो, मिट्टी के ढेले तोडने वाली मशीनो के प्रयोग इत्यादि के परिणामो पर विचार करेंगे; और ये जितने ही अधिक अनुकूल होंगे, आगामी वर्ष मे उपज की उस कीमत मे उतनी ही कम वृद्धि होगी जिसे वे इन दिशाओ मे अतिरिक्त परिव्यय करने के लिए आवश्यक समझते हैं। किन्तु युद्ध के कारण उन कार्यों मे बहुत थोड़े सुधार होगें जो इसके समाप्त होने तक लाभदायक नहीं हो सकेंगे। अत अल्पकाल मे अनाज की कीमतो को निश्चित करने वाले कारणो का पता लगाने के लिए मिट्टी मे धीरे धीरे होने वाले सुधारो से उसी उत्पादकता के रहने की कल्पना की जा सक्ती है जो कि इसे प्राकृतिक रूप से प्राप्त है। इस प्रकार इन स्थायी सुधारो से प्राप्त होने वाली आय से न केवल अतिरिक्त उपज उगाने से लगायी जाने वाली मूल या विशेष लागते प्राप्त होती हैं, अपितु कुछ अधिशेष भी प्राप्त होता है। किन्तु यह उस अर्थ मे वास्तविक अधिशेष नही है जिसमे विशेषकर लगान है, अर्थात् यह उपज की कुल लागत प्राप्त होने के बाद शेष रहने वाला अधिशेष नहीं है। इसकी व्यवसाय के सामान्य खर्चों को पूरा करने के लिए आवश्यकता होती है।

अधिक यथार्थ शब्दों मे.—यदि भूस्वामियो द्वारा व्यक्तिगत रूप से भूमि पर किये जाने वाले सुधारो से प्राप्त अतिरिक्त आय मे समाज की सामान्य प्रगति के कारण, न कि भूस्वामियो के निजी प्रयत्नो एव त्याग के कारण, भूमि से मिलने वाला लाभ शामिल न किया जाय तो उन प्रयत्नों एवं त्यागो के लिए उस सभी अतिरिक्त आय को पारिश्रमिक के रूप मे देना होगा। यह हो सक्ता है कि वह उनसे प्राप्त होने वाले लाभों का कम अनुमान लगाये, किन्तु यह भी समानरूप से सम्भव है कि उसने इनका अधिक अनुमान लगाया हो। यदि उसने उनका सही ढंग से अनुमान लगाया हो तो उसकी स्वार्थभावना ने विनियोजन के लाभदायक होते ही उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया होगा और दूसरी ओर किसी विशेष तर्क के अभाव मे हम यह कल्पना कर सकते हैं कि उसने ऐसा ही किया होगा। सफल एवं असफल प्रतिफलों को एक साथ मिलाते हुए दीर्घकाल में भूमि पर पूंजी के विनियोजन

के निवल प्रतिफल से इस प्रकार के विनियोजन के लिए समुचित प्रलोभन मिलने के अतिरिक्त और कुछ नही मिल सकता। यदि उन प्रतिफलो की अपेक्षा, जिन पर कि लोगों की गणनाएँ आधारित रहती हैं, न्यूनतर प्रतिफल मिलने की प्रत्याशा हो तो इसमे अपेक्षाकृत थोडे ही सुधार हुए होंगे।

कहने का तात्पर्य यह है—किसी भी प्रकार के सुधारो तथा उनके पूर्ण प्रभाव के लिए आवश्यक समय पहले की तुलना मे लम्बी अवधि मे जो निवल आय प्राप्त की जाती है वह, सुधार करने वालो के प्रयत्नो एव त्यागो के लिए दी जाने वाली कीमत के ही बराबर होनी है इस प्रकार इन सुधारो के करने मे होने वाले खर्चे उत्पादन के सीमान्त खर्चो मे प्रत्यक्षरूप से प्रविष्ट होते हैं, और दीर्घकालीन सम्भरण कीमत को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है किन्तु अल्पकाल मे अर्थात् प्रसंगगत वर्ग के सुधारों मे तथा उनके पूर्ण प्रभाव पडने के लिए आवश्यक समय की अपेक्षा अल्प अवधि मे, सम्भरण कीमत पर इस आवश्यकता के कारण कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव नही पड़ता कि इन सुधारो से दीर्घकाल मे इतनी निवल आय प्राप्त होनी चाहिए कि इनमें लगायी जाने वाली लागत पर पर्याप्त सामान्य लाभ मिल सके। अत ऐसी अवधियो के प्रसग मे इस आय को उपज की कीमत पर निर्भर रहने वाला आभास-लगान माना जा सकता है।[1]

प्राचीन देश में सामान्य-रूप से कृषि उपज के मूल्य तथा

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—(1) उपज की मात्रा और इसलिए कृषि के सीमान्त की स्थिति (अर्थात् अच्छी तथा बुरी दोनो प्रकार की भूमि मे समान रूप से पूंजी तथा श्रम के लाभदायक प्रयोग के सीमान्त) दोनों ही, माँग तथा सम्भरण की सामान्य दशाओ से नियन्त्रित होती हैं। वे एक ओर से माँग से अर्थात् उपज का उपभोग करने वाली जनसख्या, इसके लिए उनकी जरूरत की तीव्रता तथा उनके भुगतान

---

1 किस प्रकार के और कहाँ तक सुधार करने चाहिए यह निरसन्देह विचाराधीन समय एवं स्थान पर भूस्वामियों एवं काश्तकारों की आंशिकरूप से भूमि-पट्टा प्रणाली और उद्यम करने की शक्ति एवं योग्यता तथा पूंजी पर उनके अधिकार पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में भूमि-पट्टा प्रणाली पर विचार करते समय हम देखेंगे कि विभिन्न स्थानों की विशेष दशाओं के लिए बहुत बड़ी छूट रखनी पड़ती है।

यह ध्यान रहे कि खास लगान का इस धारणा पर अनुमान लगाया जाता है कि भूमि के मौलिक गुण क्षीण नहीं हुए हैं। जब भूमि में किये जाने वाले सुधारों से होने वाली आय को आभास-लगान माना जाता है तो स्वतः ही यह समझ लेना चाहिए कि भूमि के मौलिक गुणों की कार्यक्षमता पूर्ववत् बनी रहती है: यदि उनमें क्षति हो रही हो तो उस निवल आय पर पहुँचने के पूर्व जिसे उसका आभास-लगान माना जाता है उनसे अर्जित की जाने वाली आय में से इन मौलिक गुणों में होने वाली कमी को घटा देना चाहिए।

आय का वह भाग जिससे टूटफूट की पूर्ति के लिए आवश्यकता होती है, रायल्टी से कुछ मिलता-जुलता है जिससे केवल खान में से कच्ची धातु निकालने से होने वाली हानि की ही पूर्ति होती है।

उसकी सीमान्त लागतों के सम्बन्धों का सारांश।

करने के साधनों से, तथा दूसरी ओर सम्भरण से, अर्थात् सुलभ भूमि की मात्रा एवं उत्पादकता, तथा इस पर कृषि करने के लिए तत्पर लोगों की संख्या एवं उनके साधनों से, नियंत्रित होती हैं। इस प्रकार उत्पादन की लागत माँग की उत्कटता, उत्पादन के सीमान्त तथा उपज की कीमत एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं: और यह कहने में कि इनमें से किसी पर भी अन्य का आंशिक प्रभाव पड़ता है, कोई भी चक्रक तर्क निहित नहीं है। (2) उपज का वह भाग भी जो लगान के रूप में दिया जाता है, निस्सन्देह बाजार में विक्रय के लिए रखा जाता है, और यह कीमतों पर किसी अन्य आय की तरह ही प्रभाव डालता है। किन्तु माँग तथा सम्भरण की सामान्य दशाएँ या उनके एक दूसरे से सम्बन्ध उपज के लगाने के रूप में दिये जाने वाले भाग तथा कृषक के व्यय को लाभप्रद बनाने के लिए आवश्यक भाग के रूप में विभाजन करने से प्रभावित नहीं होते। लगान की मात्रा कोई नियन्त्रणकारी कारण नहीं है, किन्तु यह स्वयं ही भूमि की उर्वरा शक्ति, उपज की कीमत तथा सीमान्त की स्थिति द्वारा नियन्त्रित होती है: इसे भूमि पर पूँजी तथा श्रम लगाने से मिलने वाले कुल प्रतिफल के मूल्य की उन मूल्यों से अधिकता द्वारा व्यक्त किया जाता है जिन्हें वे कृषि के सीमान्त की भाँति विषम परिस्थितियों में प्राप्त करते। (3) यदि उत्पादन की लागत उपज के उन भागों के लिए अनुमानित की जाये जो सीमान्त से सम्बन्धित नहीं हैं तो इस अनुमान में लगान के रूप में दिये जाने वाले प्रभार को शामिल करना पड़ेगा। यदि इस अनुमान का उपज की कीमत को नियंत्रित करने वाले कारणों का पता लगाने में उपयोग किया जाय तो इस प्रकार का तर्क देना चक्रक होगा, क्योंकि पूर्णरूप से प्रभाव के रूप में पायी जाने वाली चीज उन चीजों का आंशिक कारण मानी जायेगी जिनका कि यह प्रभाव है। (4) सीमान्त उपज की उत्पादन लागत किसी प्रकार के चक्रक तर्क के बिना ही ज्ञात की जा सकती है। उपज के अन्य भागों की लागत का इस प्रकार पता नहीं लगाया जा सकता। पूँजी तथा श्रम के लाभदायक सीमान्त पर उत्पादन की लागत, माँग तथा सम्भरण की सामान्य दशाओं के नियंत्रण में सम्पूर्ण उपज की कीमत के लगभग बराबर होती है। कीमत इससे नियंत्रित नहीं होती किन्तु कीमत को नियन्त्रित करने वाले कारणों पर *अवश्य ही प्रकाश डालती है।*

उर्वरता की असमानताओं के अभाव में भूमि के दुर्लभता से लगान उत्पन्न होता है।

§2. कभी कभी यह मत प्रकट किया जाता है कि यदि सारी भूमि समानरूप से लाभकारी हो और सारी ही उपयोग में लायी जा रही हो तो इससे उत्पन्न होने वाली आय एकाधिकार लगान का रूप ले लेगी। किन्तु यह कथन त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। यह हो सकता है कि भू-स्वामी उत्पादन को अवरुद्ध करने के लिए, चाहे उनकी सम्पत्ति समानरूप से उर्वर हो या न हो, सम्भवतः गुट बना लें। इस प्रकार उपज के लिए प्राप्त की जाने वाली बढ़ी हुई कीमतें एकाधिकार कीमतें होंगी, और भू-स्वामियों की आय लगान न होकर एकाधिकार आय होगी। किन्तु मुक्त बाजार की परिस्थितियों में भूमि से प्राप्त की जाने वाली आयें लगान होंगी, और इन पर बराबर ही लाभप्रद भूमि वाले देश में अच्छी एवं बुरी दोनों प्रकार की भूमि वाले देश की भाँति समान कारणों का तथा समान ढंग से नियन्त्रण होगा[1]।

1 भाग 5, अध्याय 9, अनुभाग 5 से तुलना कीजिए।

यह सत्य है कि यदि लगभग समानरूप से उर्वर भूमि इतनी प्रचुर मात्रा में हो कि प्रत्येक व्यक्ति को इसकी उतनी मात्रा मिल जाय जितने पर पूंजी की इच्छित मात्रा को पर्याप्तरूप से अच्छी तरह लगाया जा सके, तो इससे कुछ भी लगान नहीं मिल सकेगा। किन्तु इससे केवल यह प्राचीन विरोधोक्ति स्पष्ट होती है कि जब पानी प्रचुर मात्रा में मिलता हो तो इसका कुछ भी बाजार मूल्य नहीं होता: क्योंकि यद्यपि इसका कुछ भाग जीवन के लिए अत्यावश्यक है तब भी बिना किसी प्रयास के प्रत्येक व्यक्ति इसे परितुष्टि (satiety) की उस सीमा तक प्राप्त कर सकता है जिससे अधिक बढ़ाये जाने पर इसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। यदि प्रत्येक कुटीरवासी के पास कुआँ हो जिससे वह पड़ोसी के कुएँ से जल निकालने में लगने वाले श्रम के बराबर ही श्रम से इच्छित मात्रा में जल प्राप्त करे, तो कुएँ के जल का कुछ भी बाजार मूल्य नहीं होगा। किन्तु यदि सूखा पड़ने पर कम गहरे कुएँ सूख जाएँ और अधिक गहरे कुओं पर भी इसका आघात पहुँचने का डर हो तो उन कुओं के मालिक दूसरों द्वारा अपने कुओं से ले जायी जाने वाली पानी की हर बाल्टी के लिए कुछ प्रभार माँगेंगे। यदि नये कुओं का विकास न हो रहा हो तो जनसंख्या जितनी ही अधिक घनी होती जायेगी ऐसे अवसर उतने ही अधिक मिलेंगे जब इस प्रकार के प्रभार लगाये जायेंगे: और अन्त में यह हर एक कुएँ के मालिक के लिए आय का स्थायी साधन बन जायेगा।

जब कोई नया देश पहले-पहल बसाया जाता है और भूमि निःशुल्क प्राप्त होती है तो उस सीमा तक आव्रजन होता जायेगा जिस पर वहाँ सर्वप्रथम बसने वाले की सहनशीलता के लिए उचित पारितोषिक मिले।

इसी प्रकार एक नये देश मे धीरेधीरे भूमि का दुर्लभता मूल्य होने लगता है। सर्वप्रथम बसने वाले व्यक्ति को ही एक मात्र विशेषाधिकार नहीं होंगे, क्योंकि वह तो केवल वही चीज कर सकता है जो अन्य कोई करने के लिए स्वतन्त्र है। उसे यदि जीवन का खतरा न भी हो तो भी, अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है और सम्भवत: यह भी जोखिम उठाना पड़ता है कि कहीं भूमि बुरी न निकले, और उसे अपने सुधारों को स्थगित न करना पड़े। इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि उसका साहसिक कार्य अच्छा निकल जाय। जनसंख्या के प्रवाह से उसके मार्ग के निर्देशन हो और उसके भूमि के मूल्य से इसमें किए जाने वाले परिव्यय के लिए मिलने वाले सामान्य पारितोषिक के अतिरिक्त उसी प्रकार वही अधिक अधिशेष मिलेगा जिस प्रकार कि मछुओं की भरी हुई नावों से घर लौटते समय कर्षवहन से मिलता है। किन्तु उसके साहसिक कार्य के लिए मिलने वाले आवश्यक पारितोषिक के अतिरिक्त उसे कुछ भी अधिशेष प्राप्त नहीं होगा। वह अपने आप को किसी ऐसे जोखिम पूर्ण व्यवसाय में लगा लेता है जो सभी के लिए खुला हुआ हो और यह उसका शक्ति एवं उसका सौभाग्य है कि उसे असाधारणरूप से अधिक पारितोषिक मिला। अन्य किसी को भी उसी की तरह ऐसा अवसर मिल सकता था। इस प्रकार वह भूमि से भविष्य में जिस आय को प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है वह आदिवासी की गणनाओं में शामिल रहता है, और इससे उसके उन प्रयोजनों में वृद्धि होती है जो इस संशय में पड़ने के समय कि उद्यम को कहाँ तक बढ़ाना चाहिए, उसके कार्य को निर्धारित करती है। यदि वह स्वयं ही इनमें सुधार करे तो वह इसके पूर्व प्राप्ति मूल्य[1] को अपनी पूँजी पर मिलने वाला लाभ तथा अपने श्रम की कमायी समझता है।

---

1 भाग 3 अध्याय 5, अनुभाग 3 तथा भाग 5, अध्याय 4, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

बहुधा आदिवासी इस प्रत्याशा से भूमि जोतता है कि उसके अधिकार मे रहते हुए इससे जो प्रतिफल मिल सकता है वह उसकी कठिनाइयों, उसके श्रम एव उसके खर्चो के लिए मिलने वाले उचित पारितोषिक से कम ही होगा। वह अपने पारितोषिक का कुछ भाग स्वयं भूमि के मूल्य से प्राप्त करने की बात सोचता है जिसे वह सम्भवतः कुछ समय बाद *किसी ऐसे अवागन्तुक को बेचेगा जिसमे आदिवासी की भाँति जीवन-यापन* करने की रुचि नहीं है। कभीकभी, जैसा कि अग्रेज किसानो ने हानि उठा कर अपने अनुभव से सीखा है, यहाँ तक कि नया आदिवासी भी अपने गेहूँ को गौण उत्पाद मानता है और फर्म को तैयार करना ही उसका मुख्य उत्पाद है जिसके लिए वह कार्य करता है तथा जिसमे सुधार करने से वह इस पर अधिकारपत्र प्राप्त करने का हकदार हो सकता है: वह यह आँकता है कि इसका मूल्य धीरे धीरे, उसके अपने प्रयत्न से उतना नही जितना कि उन आराम एव आय के साधनो से तथा वस्तुओं के क्रयविक्रय के बाजारो के विकास से बढेगा जो बढ़ती हुई सार्वजनिक समृद्धि की देन हैं।

जैसे जैसे उपज के लिए माँग तथा श्रम का सम्भरण बढ़ता जाता है लगान भी अधिशेष के रूप में मिलने लगता है।

इसे दूसरे ढंग से भी व्यक्त किया जा सकता है। लोग साधारणतया सर्वप्रथम कृषि करने की *कठिनाइयों एव एकातपन का सामना करने के लिए तब तक इच्छुक* नही रहते जब तक कि वे वहाँ निश्चितरूप से भविष्य मे अपने निवासस्थान की अपेक्षा कहीं अधिक कमायी की, जो कि जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओ का मापदण्ड है' आशा न करते हो। खनिको के लिए किसी भी बहुमूल्य खान मे, जो अन्य सुविधाओ एवं सभ्यता के विभिन्न प्रकार के सामाजिक अवसरो से विलग हो, काम करने के लिए तब तक कोई आकर्षण नही होगा जब तक उन्हें ऊँची मजदूरी देने का वायदा न किया जाय: और वे लोग जो इस प्रकार की खानो मे स्वयं अपनी पूँजी के विनियोजन का निरीक्षण करते हैं बहुत अधिक लाभ की आशा करते है। इन्ही कारणो से सर्वप्रथम कृषि करने वाले किसान अपने श्रम तथा कठिनाइयों को सहने की शक्ति के पारितोषिक के रूप मे मूल्यवान अधिकारपत्रो की प्राप्ति के साथ साथ यह भी चाहता है कि उनकी उपज की बिक्री से प्राप्त आय से होने वाला कुल लाभ बहुत अधिक हो। जब भूमि के लिए कोई प्रभार न लिया जायें तो उस भूमि मे लोग उस सीमान्त तक बसेंगे जिस पर लगान के लिए कोई अधिशेष छोड़ बिना ही इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समुचित लाभ मिलते है। जब भूमि के लिए प्रभार देना पड़े तो आव्रजक केवल उसी सीमान्त तक फैलेंगे जिस पर सर्वप्रथम खेती करने की सहनशीलता के लिए मिलने वाले पुरस्कार के अतिरिक्त इन प्रभारो को पूरा करने के लिए लाभ में से लगान की भाँति अधिशेष बच जाय।

§3. इन सब बातो के साथ यह स्मरण रहे कि व्यक्तिगत उत्पादक के दृष्टिकोण से भूमि केवल एक विशेष प्रकार की पूँजी है। यह प्रश्न कि किसी किसान ने भूमि के किसी खास टुकड़े पर लाभप्रद सीमा तक खेती की या नहीं और यह कि क्या उसे इसमे से और अधिक लेने की कोशिश करनी चाहिए, या भूमि के किसी अन्य टुकड़े पर खेती करनी चाहिए, इस प्रश्न की ही भाँति है कि क्या उसे एक नया हल खरीदना चाहिए, या मिट्टी के अधिक अनुकूल दशा मे न होने पर कभी कभी हलों के विद्यमान स्टाक का प्रयोग कर तथा अपने घोड़ों को और अधिक मात्रा मे खिला कर इन हलो से कुछ

व्यक्तिगत उत्पादक के लिए भूमि एक प्रकार की पूंजी ही है।

अधिक काम चलाने की कोशिश करनी चाहिए। वह थोड़ी अधिक भूमि की निवल उपज की उन अन्य उपयोगों से तुलना करता है जिनमें वह उस पूँजी को लगाता जो उसे इसे प्राप्त करने के लिए खर्च करनी पड़ती: और इसी प्रकार वह विषम परिस्थितियों में अपने हलों से काम लेने से पैदा होने वाली निवल उपज की, हलों के स्टाक को बढ़ाने तथा इस प्रकार उनसे अधिक अनुकूल दशाओं में काम लेने से पैदा होने वाली निवल उपज से तुलना करता है। उपज के जिस भाग के लिए उसे यह संशय हो कि वह अपने वर्तमान हलों के अतिरिक्त उपयोग से, या नये हल का उपयोग करने से उत्पन्न करे या नहीं, तो उसे हल के सीमान्त उपयोग से ज्ञात किया जा सकता है। हल की सहायता से प्राप्त होने वाली निवल आय में इससे कोई निवल (अर्थात् वास्तविक टूटफूट के प्रभार के अतिरिक्त और कुछ भी) वृद्धि नहीं होती।

इसी प्रकार एक विनिर्माता अथवा व्यापारी, जो भूमि तथा इमारत दोनों का मालिक हो, इन दोनों का अपने व्यवसाय के साथ समान सम्बन्ध समझता है। इन दोनों में प्रत्येक से सर्वप्रथम उदाररूप से सहायता एवं स्थान मिलेगा, और बाद में, जैसे जैसे वह उनसे इन्हें अधिकाधिक लेने का प्रयत्न करेगा, उसे घटती हुई मात्रा में प्रतिफल मिलेगा अन्त में एक स्थिति ऐसी आ जायगी जब उसे यह सन्देह होने लगेगा कि उसके कारखानों अथवा गोदामों में इतने अधिक सामान का भरना ऐसी बड़ी कठिनाई नहीं है कि इसका हल इनके लिए अधिक स्थान प्राप्त करने से हो जायगा। जब वह यह निर्णय करता है कि भूमि के अतिरिक्त टुकड़े को लेने से या अपनी फैक्टरी को एक मंजिल और बढ़ाने से उतना स्थान प्राप्त किया जाय तो वह इन दोनों में लगाये जाने वाले अतिरिक्त विनियोजन की निवल आय का मूल्यांकन करता है। उसके उत्पादन का वह भाग जिसे वह (इस संशय में रहते हुए कि क्या अपने पास विद्यमान उपकरणों से अत्यधिक काम लेने की अपेक्षा उन उपकरणों में वृद्धि करना लाभकारी न होगा) वर्तमान उपकरणों से पैदा करने का प्रयत्न करता है, उस निवल आय में कुछ भी योगदान नहीं करता जो उन उपकरणों से प्राप्त होती है। इस तर्क से इस बात पर प्रकाश नहीं डाला जाता कि क्या इन उपकरणों को मनुष्य द्वारा बनाया गया था, या ये प्रकृति द्वारा दिये गये भण्डार के कुछ अंश हैं। यह तर्क लगान तथा आभास-लगान पर समान रूप से लागू होता है।

वास्तविक लगान तथा आभास-लगान के बीच असमानता में विद्यमान समानता।

किन्तु समाज के दृष्टिकोण से इनमें यह एक अन्तर पाया जाता है जो कि इस प्रकार है—यदि किसी फार्म पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो तो अन्य लोगों के पास भूमि कम होगी। उसके द्वारा इसका किया जाने वाला उपयोग अन्य लोगों द्वारा किये जाने वाले उपयोग से भिन्न न होकर उनके बदले में किया जाने वाला उपयोग है: यदि वह भूमि में सुधार करने या उस पर इमारत बनाने में विनियोजित करे तो वह अन्य लोगों द्वारा इसी प्रकार के सुधारों में पूँजी के विनियोजन करने के अवसरों में अधिक कमी नहीं करेगा। इसी प्रकार भूमि तथा मनुष्य द्वारा बनाये जाने वाले उपकरणों में असमानता होने पर भी समानता पायी जाती है। इसमें असमानता होने का कारण यह है कि किसी प्राचीन देश में भूमि का लगभग (और कुछ अर्थों में पूर्ण रूप से) एक स्थायी तथा निश्चित भण्डार होता है: जबकि मनुष्य द्वारा बनाये जाने

वाले उपकरण चाहे वे भूमि अथवा इमारतों, अथवा मशीनों इत्यादि में किये गये सुधार हों, ऐसे प्रवाह की भाँति हैं जो उनकी सहायता से उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की प्रभावोत्पादक माँग मे परिवर्तनो के अनुसार घटाये या बढ़ाये जा सकते है। अब तक इनमें पायी जाने वाली असमानता का उल्लेख किया गया था, किन्तु इसके विपरीत इनमें से कुछ का तेजी के साथ उत्पादन न हो सकने के कारण इनमे इस बात में समानता पायी जाती है कि अल्पकाल मे व्यावहारिक रूप मे इनका स्टाक निश्चित होता है और उस काल मे उनसे प्राप्त की जाने वाली आय का उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ के मूल्य से वही सम्बन्ध रहता है जोकि वास्तविक लगान का रहता है।[1]

सामान्य रूप से कृषि-उपज पर अन्तिम करवाहृता

§4. अब हम इन विचारो को इस कल्पना पर लागू करेंगे कि अर्थशास्त्र संस्थापकों द्वारा सारी कृषिउपज के लिए सक्षेप मे प्रयोग किये गये अर्थ मे अनाज पर एक स्थायी कर लगाया जा रहा है। यह स्पष्ट है कि किसान कर के कम से कम कुछ भाग को उपभोक्ताओ पर डालने की कोशिश करेंगे। किन्तु उपभोक्ताओ से ली जाने वाली कीमतो मे किसी वृद्धि के कारण माँग रुक जायेगी और इस प्रकार इसकी किसान

1 पिछली पीढ़ी के अर्थशास्त्रियों, जिनमें विशेषकर सीनियर (Senior) तथा मिल (Mill), हर्मन (Hermann) तथा मैनगोल्ड (Mangoldt) के नाम उल्लेखनीय हैं, का लगान तथा लाभ के सम्बन्धों पर ध्यान आकर्षित हुआ था। सीनियर प्रायः यह समझते थे कि समय के कारण मुख्यतया कठिनाई पैदा होती है: किन्तु अन्यत्र की भाँति उन्होंने सलाह देकर ही संतोष कर लिया और उनको व्यावहारिक रूप नहीं दिया। वह (Political Economy, पृष्ठ 129 में) कहते हैं कि "सभी उपयोगी प्रयोजनों के लिए लाभ का लगान से विभेद ठीक उसी समय समाप्त हो जाता है जब उपहार अथवा उत्तराधिकार द्वारा पूंजी, जिससे कि निश्चित आय प्राप्त होती है, उस व्यक्ति की सम्पत्ति बन जाती है जिसके त्याग एवं अथक प्रयास का इसके उत्पादन से तनिक भी सम्बन्ध नहीं होता"। पुनः मिल Political Economy भाग III, अध्याय V, अनुभाग 4 में कहते हैं' "कुछ खास उत्पादकों अथवा कुछ खास परिस्थितियों में उत्पादन के पक्ष में होने वाला अन्तर लाभ का स्रोत है, जो यद्यपि तब तक लगान नहीं कहा जाता जब तक कि इसका समय समय पर एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को भुगतान न किया जाय; तब भी यह बिलकुल समान नियमों से नियंत्रित होती है।"

यह भलीभाँति देखा गया है कि एक सटोरिया जो झूठे आँकड़ों अथवा अन्य प्रकार से कीमतों में हेरफेर किये बिना भविष्य का सही ढंग से अनुमान लगाता है, और सट्टा बाजार में अथवा उत्पादन बाजार में चतुरतापूर्ण क्रय-विक्रय द्वारा लाभ अर्जित करता है, सामान्यतया उत्पादन को अभीष्ट स्थान तक बढ़ा कर और अनिच्छित स्थानों में इस पर प्रतिबन्ध लगा कर जनसेवा करता है: किन्तु किसी प्राचीन देश में भूमि का सटोरिया इस प्रकार की कोई जनसेवा नहीं करता क्योंकि भूमि का भण्डार निश्चित होता है। वह तो उन लोगों को जिनका इस पर नियन्त्रण रहता है, जल्दबाजी, अज्ञानता, अथवा दरिद्रता के परिणामस्वरूप किसी अधिक उपयोगी जगह को घटिया उपयोगों में लगाये जाने से केवल रोक ही सकता है।

से लिया गया दृष्टान्त।

पर प्रतिक्रिया होगी, यह निश्चय करने के लिए कि कर के कितने अधिक भाग को उपभोक्ताओं पर अन्तरित किया जायेगा, हमे लाभदायक खर्च के सीमान्त का अध्ययन करना चाहिए; चाहे वह कम उपजाऊ भूमि एव अच्छे बाजारो से बहुत दूर स्थित भूमि मे थोडा ही खर्च करने का सीमान्त हो, या उपजाऊ भूमि तथा घने बसे हुए औद्योगिक क्षेत्रो के निकट की भूमि मे अत्यधिक खर्च करने का सीमान्त हो।

यदि उस सीमान्त के निकट केवल थोड़ा ही अनाज उगाया गया हो तो किसान को मिलने वाले निवल कीमत मे होने वाली साधारण कमी से अनाज के सम्भरण मे बड़ी रुकावट पैदा नही होगी। अतः उपभोक्ताओ द्वारा इसके लिए दी जाने वाली कीमत मे अधिक वृद्धि नही होगी, और उपभोक्ता कर के बहुत थोड़े अंश का ही भुगतान करेंगे। किन्तु अनाज के उत्पादन के खर्चो के बाद बचने वाले अधिशेष मूल्य मे काफी कमी हो जायेगी। यदि किसान अपनी ही भूमि जोत रहा हो तो वह कर के अधिकाश भाग को स्वय ही देगा। यदि वह भूमि को लगान पर ले रहा हो तो वह लगान मे बहुत कमी करने की माँग करेगा।

इसके विपरीत, यदि कृषि के सीमान्त के निकट बहुतायत से अनाज उगाया जाता हो तो कर लगने के कारण उत्पादन मे बड़ी कमी होने लगेगी। कीमत मे तदुपरान्त होने वाली वृद्धि से, जिससे किसान लगभग पहले की भाँति ही प्रकृष्ट (intensive) खेती करने की स्थिति मे रहेगे, यह कमी रुक जायेगी और भूस्वामी के लगान मे थोड़ी ही कमी होगी।[1]

इस प्रकार ऐसा कर जो भूमि पर कृषि करने से या फार्मभवन बनाने से हतोत्साहित करता है, भूमि की उपज के उपभोक्ताओ पर अग्रान्तरित होता है किन्तु दूसरी ओर, भूमि स्थिति, उसके विस्तार सूर्य के प्रकाश, ताप, वर्षा एव वायु के रूप मे मिलने वाली आय से प्राप्त होने वाले (वार्षिक) मूल्य पर लगने वाला कर भूस्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी पर नही लग सकता। निस्सन्देह यहाँ पर एक पट्टेदार को कुछ समय के लिए भूस्वामी बना लिया गया है। भूमि के इस (वार्षिक) मूल्य को साधारणतया इसका 'मौलिक मूल्य' अथवा 'अन्तर्निहित मूल्य' कहा जाता है, किन्तु उस मूल्य का अधिकाश भाग मनुष्यो के न कि व्यक्तिगत मालिक के, कार्य का परिणाम है। दृष्टान्त के लिए बजर झाड-भूमि (heath land) के निकट औद्योगिक जनसंख्या बसने के कारण उस भूमि का मूल्य एकाएक बढ जाता है, यद्यपि इसके मालिको ने इस पर कुछ भी सुधार नही किये और इसे वैसा ही रखा जैसा कि प्रकृति से उन्होने प्राप्त किया था। अतः भूमि के वार्षिक मूल्य के इस भाग को इसका सार्वजनिक मूल्य कहना शायद अधिक सही होगा, जबकि इसके उस भाग को जो व्यक्तिगत मालिको

भूमि का सार्वजनिक मूल्य।

1 निस्संदेह व्यावहारिक रूप में भूमि के वास्तविक आर्थिक अधिशेष के साथ लगान का समायोजन बहुत धीमे धीमे तथा अनियमित रूप से होता है। इन विषयों का भाग 6, अध्याय 9 तथा 10 में विवेचन किया गया है, और कुछ निश्चित किन्तु वस्तुतः काल्पनिक मान्यताओं में अन्न पर कर बाह्यता का परिशिष्ट ट(K) में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

के कार्य एवं परिव्यय का परिणाम है, इसका निजी मूल्य कहा जा सकता है। अन्तर्निहित मूल्य तथा मौलिक मूल्य दोनों पुराने शब्दों की आंशिक कमियों को ध्यान मे रखते हुए उनका आगे भी सामान्यरूप में उपयोग किया जायेगा। एक अन्य शब्द का जिसे पहले भी इसी अर्थ में प्रयोग किया जा चुका है, प्रयोग करते हुए हम भूमि के इस वार्षिक सार्वजनिक मूल्य को इसका वास्तविक लगान कह सकते हैं।

भूमि के सार्वजनिक मूल्य पर कर लगने से न तो उत्कृष्ट खेती करने के प्रलोभनो मे और न इस पर फार्मभवन बनाने के प्रलोभनो मे बहुत अधिक कमी होती है, अतः इस प्रकार के कर से बाजार मे आने वाली कृषि-उपज का सम्भरण, बहुत अधिक कम नही होता और न उपज की कीमत ही बढ़ती है। अतः इसे भूमि के मालिको से अन्तरित नही किया जा सकता।

यह उपलक्षित (implicit) मान्यता कि भूमि को काफी हद तक अच्छे उपयोगों में लाया जा सकता है।

इसमे यह मान लिया जाता है कि भूमि का वास्तविक लगान, जिस पर कि कर लगता है, इसके सामान्य उपयोगो के प्रसग मे, न कि मालिक द्वारा किये जाने वाले विशेष उपयोग के प्रसग मे आँका जाता है। सामान्य योग्यता एव उद्यम वाले किसान द्वारा इसका सदुपयोग करते हुए अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार जो भी उत्पादन किया जा सकता है उसे इसका निवल उत्पाद माना जाता है। यदि खेती करने की किसी विकसित प्रणाली से भूमि के छिपे हुए साधनो का इस प्रकार से विकास किया जा सके कि इसमे लगाये जाने वाले परिव्यय पर अच्छी दर पर लाभ होने से मिलने वाले प्रतिफल से कही अधिक प्रतिफल मिले, तो सामान्य लाभ से अधिक मिलने वाला निवल प्रतिफल उचित रूप से वास्तविक लगान हो और तब भी यदि यह ज्ञात हो या केवल यह प्रत्याशित हो कि वास्तविक लगान पर लगने वाला बहुत भारी विशेष कर इस अतिरिक्त आय पर लगेगा तो उस प्रत्याशा से मालिक इसमे सुधार करना समाप्त कर देगे।[1]

किसी भी प्रकार की कृषि-उपज की सीमान्त लागत तथा इसके मूल्य के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध।

§5. एक ही प्रकार के कच्चे माल अथवा उपकरणो के लिए उद्योग की विभिन्न शाखाओं के बीच जो प्रतिस्पर्द्धा होती है उसके विषय मे प्रसगवश थोडा ही कहा गया है। किन्तु अब हमे एक ही प्रकार की भूमि के लिए कृषि की विभिन्न शाखाओ मे होने वाली प्रतिस्पर्द्धा पर विचार करना है। यह विचार शहरी भूमि की अपेक्षा सरल है, क्योंकि जहाँ तक मुख्य फसलों का सम्बन्ध है, कृषि एक ही व्यवसाय है, यद्यपि (लताओ समेत) चुने हुए वृक्षो, फूलो, सब्जियो इत्यादि को उगाने से अनेक प्रकार की विशेषीकृत व्यावसायिक योग्यता के लिए क्षेत्र रहता है। अर्थशास्त्र सस्थापको ने सामयिक रूप से यह ठीक कल्पना की है कि हर प्रकार की कृषि-उपज को अनाज की किसी खास मात्रा के तुल्यांक माना जा सकता है; उन्होने यह भी ठीक ही कहा कि इमारतो के लिए रखे गये स्थान के अतिरिक्त जो कि कुल मात्रा का एक छोटा तथा लगभग निश्चित भाग है, सारी भूमि को कृषि उपयोगो मे लगाया जायेगा। किन्तु जब हम एक ही उत्पाद दृष्टान्त के लिए हॉप (hop) पर ही ध्यान केन्द्रित करे तो यह प्रतीत हो सकता है कि एक

---

1 इमारत बनाने की खाली भूमि पर पूर्ण मूल्य पर लगने वाले करों की छूट से इमारत बनाने का काम मन्द पड़ जाता है। परिशिष्ट 'छ' (G) देखिए।

नये सिद्धान्त से परिचय कराया गया है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। अब हमें इस विषय पर विचार करना चाहिए।

प्रतिस्थापन तथा सामान्य रूप में भूमि पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के मिश्रण से हॉप (hop) की सीमान्त लागतें नियंत्रित होती हैं।

हॉप अन्य फसलों के साथ साथ विभिन्न प्रकार से हेरफेर करके उगाये जाते हैं और किसान बहुधा इस संशय में पड़ जाते हैं कि अपने किसी खेत में उन्हें हॉप उगाने चाहिए या कोई अन्य चीज। इस प्रकार प्रत्येक फसल अधिकाधिक भूमि में बोयी जाने के लिए अन्य फसलों के साथ संघर्ष करती है, और यदि फसल में अन्य फसलों की अपेक्षा पहले से अधिक लाभप्रद होने का संकेत मिले तो कृषक इसमें अपनी और अधिक भूमि एवं साधन लगायेंगे। इस परिवर्तन में आदत या झिझक या हठ या कृषक के ज्ञान की कमियों या पट्टे की शर्तों से रुकावट पड़ सकती है, किन्तु फिर भी, प्रतिस्थापन के प्रबल सिद्धान्त का पुनः स्मरण करते हुए मुख्यतया यह सत्य है कि प्रत्येक कृषक "स्वयं अपने साधनों को ध्यान में रखते हुए अपने व्यवसाय को हर अलग अलग दिशा में तब तक पूंजी का विनियोजन करेगा जब तक उसके निर्णय के अनुसार लाभदायकता का सीमान्त न आ जाय, अर्थात् जब तक उसे यह सोचने के लिए कोई अच्छा तर्क नहीं दिखायी दे कि उस खास दिशा में और अधिक विनियोजन करने से जो लाभ प्राप्त हैं उनसे उसके परिव्यय की क्षति पूर्ति नहीं होती।"

इस प्रकार साम्य की स्थिति में पूंजी एवं श्रम के उस परिव्यय के लिए जिसे किसान लगाने के लिए प्रलोभित मात्र होता है जई और हॉप तथा हर अन्य फसल उगाने में समान निवल प्रतिफल मिलेगा। यदि ऐसा न हो तो उसका अर्थ यह है कि उसने भूलकर कहीं और उसके परिव्यय से जितना अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता था उतना प्राप्त न कर सकेगा : तब भी वह अपनी फसलों के पुनर्वितरण में, जई अथवा अन्य फसल की जोत घटाने बढ़ाने से अपने लाभ में वृद्धि कर सकता है।[1]

---

1 यदि किसान कच्चे माल का या यहाँ तक कि मानवीय भोजन का, विक्रय के लिए उत्पादन करता है तो उसके द्वारा साधनों का विभिन्न उपयोगों में वितरण व्यावसायिक अर्थव्यवस्था की एक समस्या होगी। यदि स्वयं उसके अपने घरेलू उपयोग के लिए किये गये उत्पादन का प्रश्न है तो यह आंशिक रूप में घरेलू अर्थव्यवस्था की समस्या होगी। ऊपर भाग 5, अध्याय 4, अनुभाग 4 से तुलना कीजिए। इसके साथ ही साथ यह भी कह सकते हैं कि गणितीय परिशिष्ट में दी गयी टिप्पणी 14 से इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि विभिन्न उद्यमों में परिव्यय के जिस वितरण से कुल प्रतिफल अधिकतम मिलता है उसे उन्हीं समीकरणों से निश्चित किया जाता है जो घरेलू अर्थव्यवस्था में समान समस्या पर लागू होते हैं।

मिल ने (Principles भाग III, अध्याय XVI, अनुभाग 2) संयुक्त उत्पादन का विवेचन करते समय यह विचार व्यक्त किये कि किसी खास भूमि में बोये जाने के लिए फसलों में होने वाली प्रतिस्पर्द्धा से सम्बन्धित प्रश्न फसलों की हेरफेर तथा अन्य इसी प्रकार के उद्योगों से जटिल बन जाते हैं। हेरफेर की जाने वाली सभी फसलों के लिए दोहरी खतान द्वारा बनाये जाने वाले कठिन लेनदेन के खाते तैयार किये जाने चाहिए। व्यवहार तथा सूक्ष्म वृत्ति से किसान इसे बहुत अच्छी तरह बना सकते हैं।

अब हम एक ही भूमि पर विभिन्न फसलों को उगाने की प्रतिस्पर्द्धा के प्रसंग में कर प्रणाली पर विचार करेंगे। हम यह कल्पना करेंगे कि हॉप पर, चाहे यह कहीं भी उगाया जाता हो, कर लगाया जाता है। यह केवल स्थानीय शुल्क अथवा कर नहीं है। किसान हॉप उगायी जाने वाली भूमि की मात्रा कम करके, कर के दबाव से कुछ बच सकता है और हॉप उगाने के लिए स्वयं निश्चित की गयी भूमि में कोई अन्य फसल उगाकर वह इससे कुछ और अधिक बच सकता है। वह अपनी दूसरी योजना को तब अपनायेगा जब वह यह सोचता है कि किसी अन्य फसल को उगाने तथा कर के बिना बेचने से उस स्थिति की अपेक्षा अच्छे परिणाम मिलेंगे। जब वह हॉप उगायें और कर लगने पर भी उन्हें बेचे, इस दशा मे हॉप के उत्पादन की सीमा निर्धारित करते समय उसके दिमाग मे भूमि में, उदाहरण के लिए, जई उगाने से मिलने वाले अधिशेष का विचार आयेगा। किन्तु यहाँ भी भूमि में जई उगाने से मिलने वाले अधिशेष या लगान तथा हॉप की कीमत से पूरी की जाने वाली सीमान्त के लागतों के बीच कोई सरल संख्यात्मक सम्बन्ध नही होगा। यदि किसान की भूमि में असाधारण रूप से ऊँची किस्म की हॉप उगायी जाती हो और यह उस समय हॉप उगाने के लिए अनुकूल हो तो उसे तनिक भी सन्देह नही होगा कि उसे भूमि मे हॉप उगाना ही सर्वोत्तम होगा, यद्यपि कर लगने के परिणामस्वरूप वह इसके होने वाले अपने खर्चे मे थोड़ी कमी करने का निश्चय करेगा।[1]

एक ही भूमि में विभिन्न फसलों को उगाये जाने के लिए प्रतिस्पर्द्धा, हॉप (hop) पर विशेष करबाहुता

इस सारी समस्या को सरल गणितीय वाक्यांशों में व्यक्त किया जा सकता है। किन्तु ये बहुत कठिन और सम्भवतः लाभदायक न होंगे। अतः ये जब तक गूढ़ रहेंगे तब तक उपयोगी न होंगे। यद्यपि ये एक ऐसे वर्ग से सम्बन्धित हैं जोकि कृषि के उच्चतर विज्ञान में उस समय अन्त में अच्छे उपयोगी रहेंगे जब यह विज्ञान इतना आगे बढ़ जाय कि इसमें विस्तार की वास्तविक चीजें आ जायें।

1 यदि दृष्टान्त के लिए वह यह गणना करे कि कर के होते हुए भी हॉप उगाने से (लगान के अतिरिक्त) अपने खर्चे निकाल कर उसे 30 पौंड का अधिशेष मिलेगा और किसी अन्य फसल को उगाने से इसी प्रकार के खर्चे निकालने के बाद 20 पौंड का अधिशेष मिलेगा, तो यह ठीकठीक नहीं कहा जा सकता कि अन्य फसलों को उगाने से खेत से मिलने वाला लगान जई की सीमान्त कीमत में शामिल हुआ होगा। किन्तु इस संस्थापित (classical) सिद्धान्त का कि लगान उत्पादन की लागत में शामिल नहीं होता, उस अर्थ की अपेक्षा जोकि इसका अभिप्राय था और जो सत्य भी है, उस अर्थ में जो सत्य नहीं है और जिसका उपहास किया जा सकता है, व्याख्या करना अधिक सरल है। *अतः यही सर्वोत्तम प्रतीत होता है कि इस वाक्यांश का प्रयोग न किया जाय।*

साधारण व्यक्ति इस प्राचीन वाक्यांश से कि जई की कीमतों में लगान शामिल नहीं होता तब क्रुद्ध हो जाता है जब वह यह देखता है कि अन्य उपयोगों में भूमि की माँग बढ़ने से समीप की सारी भूमि का लगान मूल्य बढ़ गया है, और जई उगाने के लिए कम भूमि शेष बची है, और परिणामस्वरूप वह इसमें अधिक फसलें उत्पन्न करने के

हॉप पर लगने वाले सामान्य तथा स्थानीय करों में विषमता।

इस बीच हॉप के सम्भरण में सामान्य नियंत्रण की प्रवृत्ति से उनकी कीमत बढ़ जायेगी। यदि उनके लिए मांग बहुत ही बेलोच हो और इस विशेष प्रकार के कर की सीमा के परे से समुचित किस्म का हॉप सरलतापूर्वक आयात न होता हो तो शायद कीमत पूर्णरूप से कर के बराबर बढ़ेगी। ऐसी दशा मे इस प्रवृत्ति पर रोक लग जायेगी, और लगभग उतना ही हॉप उगाया जायेगा जितना कर लगने के पहले उगाया जाता था। कुछ ही समय पूर्व विवेचन किये गये मुद्रण पर लगने वाले कर की भाँति स्थानीय कर का प्रभाव सामान्य कर से बहुत भिन्न होता है। क्योंकि जब तक स्थानीय कर के अन्तर्गत देश की अच्छी किस्म की हॉप उगाने वाली अधिकांश भूमि नही आ जाती तब तक कर लगने के फलस्वरूप उस भूमि पर खेती नही होगी। इससे बहुत कम आय प्राप्त हो सकेगी। स्थानीय किसानो को बहुत यातनाएँ सहनी पड़ेंगी और जनता को हॉप के लिए वस्तुतः अधिक कीमत देनी पड़ेगी।

लगान का किसी एक फसल के

§6 अल्पकाल के सम्बन्ध मे पिछले अनुभाग मे दिया गया तर्क फार्मभवनो की अर्जनशक्ति तथा अन्य आभास-लगानो पर भी लागू किया जा सकता है। जब

लिए बाध्य हो जाता है जिसमें जई के सीमान्त खर्चे व इसकी कीमतें बढ़ जाती हैं। लगान में वृद्धि ऐसे माध्यम का काम करती है जिससे हॉप तथा अन्य उपज उगाने के लिए प्राप्त भूमि की बढ़ती हुई दुर्लभता स्वतः ही उसके सम्मुख आ जाती है, और इन बदली हुई परिस्थितियों के लक्षणों के पीछे उनके वास्तविक क्रियात्मक कारणों पर जाने के लिए उसे बाध्य करना उपयुक्त नहीं है। अतः यह कहना समयोचित न होगा कि भूमि का लगान उनकी कीमत में शामिल नहीं होता। किन्तु यह कहना और भी अधिक असमयोचित होगा कि भूमि का लगान उनकी कीमत में अवश्य ही शामिल होता है ऐसा कहना सत्य नहीं है।

जेवन्स (Theory of Political Economy के प्राक्कथन में पृष्ठ IV में) *यह प्रश्न करते हैं कि यदि वह भूमि, जिससे चरागाह के रूप में* 2 पौंड प्रति एकड़ लगान मिलता हो, जोती जाय और गेहूँ उगाने के लिए उपयोग में लायी जाय तो क्या गेहूँ के उत्पादन के खर्चों में से प्रति एकड़ 2 पौंड घटाना नहीं चाहिए। इसका उत्तर नकारात्मक है। क्योंकि 2 पौंड की इस विशेष धनराशि तथा लागत को ही पूरा करने वाले गेहूँ के उत्पादन के खर्चों के बीच कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कहना तो यह चाहिए, जब किसी वस्तु के उत्पादन के लिए उपयुक्त भूमि का दूसरी वस्तु के उत्पादन के लिए उपयोग किया जाय तो पहली वस्तु की कीमत इसके उत्पादन के क्षेत्र की कमी के फलस्वरूप बढ़ जायेगी। दूसरी वस्तु की कीमत इसके उस भाग के उत्पादन (मजदूरी तथा लाभ) के खर्चे के बराबर होगी जिससे केवल लागत ही निकलती है *अथवा* जो लाभदायक खर्च के सीमान्त पर उत्पन्न की जाती है। यदि किसी विशेष तर्क के कारण हम उस भूमि पर उत्पादन के सभी खर्चों को एक साथ ले लें और इन्हें सारी उत्पादित वस्तु में बाँट दें तो जिस लगान की हम गणना करते हैं वह उस भूमि का प्रथम वस्तु के उत्पादन में उपयोग करने से मिलने वाला लगान न होकर, वह लगान होगा जो, इसे दूसरी वस्तु के उत्पादन के लिए प्रयोग किये जाने पर देना पड़ता है।

वर्तमान फार्मभवनों या किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले अन्य उपकरणों को अन्य वस्तु के उत्पादन के लिए व्ययवर्तित करने का कारण उस वस्तु के लिए इतनी माँग होना है कि उसका उत्पादन करने से उन्हे अधिक आय प्राप्त हो सकती है तब कुछ समय के लिए पहली वस्तु का सम्भरण उपकरणों को दूसरे उपयोग मे लगाने से अधिक आय न प्राप्त हो सकने की स्थिति की अपेक्षा कम होगा और कीमत अधिक होगी। इस प्रकार जब उपकरणों का कृषि की अनेक शाखाओ मे उपयोग हो सके तो जिस सीमा तक इन उपकरणो को एक शाखा से हटाकर किसी अन्य शाखा मे उपयोग मे लाया जा सकता है, उससे हर शाखा की सीमान्त लागत प्रभावित होगी। क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के बावजूद भी पहली शाखा मे उत्पादन के अन्य कारको का अधिकाधिक उपयोग लिया जायेगा, और इसके उत्पादन का मूल्य बढ़ जायेगा, क्योंकि कीमत अधिक मूल्य पर साम्य की स्थिति मे होगी। बाह्य माँग के कारण उपकरणो की बढ़ी हुई अर्जनशक्ति मूल्य मे होने वाली इस वृद्धि का कारण प्रतीत होगी। क्योकि इससे उत्पादन की उस शाखा मे सापेक्षित दुर्लभता हो जायेगी और इसलिए लागत बढ जायेगी। इस कथन से ऐसे कथन की ओर साधारण सा परिवर्तन होता प्रतीत होता है कि उपकरणो की बढ़ी हुई अर्जनशक्ति मूल्य नियंत्रित करने वाली लागतो मे शामिल होती है। किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन अवैध है। प्रथम वस्तु की कीमत तथा उपकरणो को दूसरे मे परिवर्तित करने व इसके अनुकूल बनाने से प्राप्त आय के बीच कोई प्रत्यक्ष या सख्यात्मक सम्बन्ध नही होगा।

मूल्य से सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाले तर्कों को फार्मभवनों, इत्यादि के आभास-लगान पर भी लागू किया जा सकता है।

इसी प्रकार, यदि किसी उद्योग मे फैक्टरियो पर कर लगाया जाय तो इनमे से कुछ फैक्टरियो मे अन्य उद्योगो का माल तैयार किया जायेगा। परिणामस्वरूप फैक्टरियो के सभी उपयोगो के लिए निवल लगान मूल्यो मे अस्थायी कमी के साथ साथ सीमान्त लागते और इसलिए उन उद्योगो मे उत्पादित वस्तुओ के मूल्य भी कम हो जायेगे। किन्तु इसमे होने वाली कमी की मात्रा समान नही होगी, और उत्पादित वस्तुओ की कीमतो मे होने वाली कमी तथा इन लगानो अथवा वस्तुतः आभास-लगानो के बीच कोई सख्यात्मक सम्बन्ध नही होगा।

विनिर्माण में बिलकुल इसी तरह की स्थिति।

ये सिद्धान्त खानो पर न तो अल्पकाल मे और न दीर्घकाल मे ही लागू होते है। यद्यपि रायल्टी को बहुधा लगान कहा जाता है, किन्तु यह लगान नही है। क्योकि ऐसी स्थिति के अतिरिक्त जब कि खानो, पत्थर की खानो इत्यादि का भण्डार व्यावहारिक रूप मे कभी भी समाप्त नही होता, उन पर होने वाले प्रत्यक्ष व्यय से उनकी आय की अधिकता को, कम से कम कुछ अशो मे, सचित वस्तुओ की बिक्री से प्राप्त होने वाली कीमत मानना चाहि-एवस्तुतः इसका सचय प्रकृति द्वारा किया जाता है, किन्तु अब इसे निजी सम्पत्ति माना जाने लगा है। अतएव खनिज पदार्थो की सम्भरण कीमत मे खान खोदने के सीमान्त खर्चो के अतिरिक्त रायल्टी भी शामिल रहती है। निस्सन्देह मालिक अनावश्यक विलम्ब हुए बिना रायल्टी प्राप्त करना चाहता है। आशिक रूप से इस कारणवश उसके तथा पट्टेदार के बीच हुई सविदा मे, लगान तथा रायल्टी के लिए आयोजन होता है। किन्तु सहीरूप मे समायोजन करने पर एक टन कोयले पर लगने वाली रायल्टी खान के मूल्य मे जो कि भावी सम्पत्ति का साधन है, प्रकृति के

उन दोनों अध्यायों में उल्लेख किये गये सिद्धान्त खानों में लागू नहीं होते।

सग्रहागार से एक टन कोयला निकाल लेने से होने वाली कमी का प्रतिनिधित्व करती है।[1]

---

1 ऊपर पृष्ठ (169-70 देखिए) रिकार्डो ने एडम स्मिथ की इस बात पर आलोचना की कि उन्होंने उत्पादन की (मौद्रिक) लागत के अंग के रूप में, लगान को मजदूरी तथा लाभ के समान आधार पर रखा। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने कभी कभी ऐसा ही किया। किन्तु इसके बावजूद भी वे अन्यत्र कहते हैं "यह ध्यान रखना चाहिए कि लगान को वस्तुओं की कीमत निश्चित करने में मजदूरी तथा लाभ की अपेक्षा अन्य प्रकार से शामिल किया जाता है। ऊँची या नीची कीमतों के कारण ही ऊँची या नीची मजदूरी तथा लाभ प्राप्त होते हैं और ऊँचा या नीचा लगान इसका परिणाम है। किसी खास वस्तु को बाजार में लाने के लिए ऊँची यह नीची मजदूरी तथा लाभ दिये जाने के कारण इसकी कीमत अधिक या कम हो जाती है किन्तु उन मजदूरियों एवं लाभों को देने के लिए जितनी कीमत पर्याप्त हो उससे, इसमें कहीं अधिक ऊँची या नीची होने या बहुत थोड़ी अधिक या बिलकुल भी अधिक न होने के कारण भूमि से अधिक या कम या बिलकुल ही लगान नहीं मिल सकता।" (Wealth of Nations, भाग 1, अध्याय XI)। अन्य अनेक दृष्टान्तों की भांति इसमें भी उन्होंने अपने लेखों के एक भाग में जिन तथ्यों का पूर्वानुमान लगाया है उन्हें वे इनके अन्य भागों में अस्वीकार करते हुए मालूम देते हैं।

एडम स्मिथ उस "कीमत का विवेचन करते हैं जिस पर काफी समय तक कोयले बेचे जा सकते हैं"। वे यह तर्क देते हैं कि "सब से अधिक प्रचुर प्राकृतिक सम्पत्ति वाली खानें समीप स्थित खानों में कोयलों की कीमत नियंत्रित करती हैं।" उनका अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। किन्तु उनका अभिप्राय दूसरों की अपेक्षा अस्थायीरूप से चीजों को कम कीमत पर बेचने से नहीं प्रतीत होता और उनका अभिप्राय तो यह मालूम पड़ता है कि खानों को प्रतिवर्ष अमुक धनराशि पर पट्टे पर दिया जाता है। रिकार्डो ऊपर ही ऊपर उन्हीं की विचार पद्धति का अनुकरण करते हुए इस विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सबसे कम प्राकृतिक सम्पत्ति वाली खान से कीमत निर्धारित होती है और यह एडम स्मिथ के सिद्धान्त की अपेक्षा सम्भवतः सच्चाई के अधिक निकट है। किन्तु वास्तव में जब किसी खान के उपयोग करने के लिए दिया जाने वाला प्रभार मुख्यतया रायल्टी के रूप में हो तो इन दोनों में से कोई भी विचार लागू होता हुआ नहीं प्रतीत होता। रिकार्डो सैद्धान्तिक रूप से यह ठीक ही कहते थे (या कभी भी, बिलकुल गलत नहीं थे) कि खनिज उत्पादन की सीमान्त लागत में लगान शामिल नहीं होता। किन्तु उन्हें यह भी कहना चाहिए था कि यदि किसी खान का भण्डार व्यावहारिक रूप में कभी भी समाप्त न होने वाला हो तो इससे प्राप्त की जाने वाली आय आंशिक रूप से लगान और आंशिक रूप से रायल्टी होगी। यद्यपि लगान खनिज उत्पादन के हर भाग के बदले में, चाहे यह सीमान्त हो या न हो, किये जाने वाले खर्च में शामिल नहीं होता किन्तु इसमें सबसे कम दी जाने वाली रायल्टी शामिल की जाती है।

वास्तव में खान में उन शर्तों के अनुसार जो न तो असाधारणरूप से बहुमूल्य व

खोदने में सरल है और न असाधारणरूप से घटिया व खोदने में कठिन हैं, रायल्टी का अनुमान लगाया जाता है। कुछ पर्तों से केवल उन्हें खोदने के खर्चे ही निकल पाते हैं और कुछ ऐसी पर्तों में जिनमें खनिज की मात्रा समाप्त हो जाय या कोई बड़ी दरार पड़ जाय तो ये उनमें लगे हुए श्रम का भी भुगतान नहीं कर पातीं। इस सारे तर्क में अव्यक्तरूप से प्राचीन देश की दशाओं की कल्पना की गयी है। किसी नये देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रो० टॉसिग को (Principles, II, पृष्ठ 96), ठीक ही 'संशय होता है कि सबसे घटिया खानों के मालिक को, जिसने इनके विकास के लिए कुछ भी न किया हो, क्या कुछ भुगतान मिल सकता है।'

अध्याय 11

सीमान्त लागतों का शहरी मूल्यों से सम्बन्ध

कृषि भूमि के मूल्य पर उसकी स्थिति का प्रभाव।

§1. पिछले तीन अध्यायो मे उत्पादन की लागत का भूमि तथा प्रकृति की अन्य मुक्त देनो की 'भौतिक शक्तियों' से प्राप्त होने वाली आय तथा निजी पूंजी के विनियोजन से प्रत्यक्षरूप मे मिलने वाली आय के सम्बन्धो पर विचार किया गया है। इन दोनो दशाओ के बीच एक तीसरी श्रेणी है जिसमे वह आय, या वस्तुत: आय का वह भाग सम्मिलित है जो लोगो द्वारा लाभ के लिए पूंजी तथा श्रम के विनियोजन करने का प्रत्यक्ष परिणाम न होकर समाज की सामान्य प्रगति का अप्रत्यक्ष परिणाम है। इस श्रेणी पर विशेषकर शहरी स्थलो (sites) के प्रसग मे अब विचार करना चाहिए।

हम पहले ही देख चुके है कि भूमि की जोत पर पूंजी तथा श्रम के अधिकाधिक प्रयोग करने से, उपज की मात्रा मापी जाने पर, अनुपात से कम प्रतिफल मिलता है। इसके विपरीत, यदि समीप मे अकृषीय जनसख्या की वृद्धि के कारण अधिक सघन खेती हो तो इन्ही लोगो के कारण उपज का मूल्य बढ सकता है। हम यह देख चुके हैं कि उपज को उत्पादको को मिलने वाले मूल्य के अनुसार, न कि इसकी मात्रा के अनुसार, मापते समय किस प्रकार यह प्रभाव क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के प्रभाव मे न केवल अवरोध करता है, अपितु प्राय. इससे भी अधिक प्रभावशाली हो जाता है। कृषक को अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए तथा अपनी वस्तुओ के विक्रय के लिए अच्छे बाजार मिल जाते हैं। वह चीजो को अधिक सस्ते दाम पर खरीदता है किन्तु अधिक दाम पर बेचता है और इसे सामाजिक जीवन की सुविधाएँ तथा इसके आनन्द निरन्तर अधिकाधिक प्राप्त होते हैं।[1]

सभी व्यवसायों में बाह्य किफायतें आंशिक रूप से स्थिति पर निर्भर रहती हैं।

पुन. हम देख चुके हैं कि किस प्रकार ऊँचे औद्योगिक सगठन से प्राप्त होने वाली किफायतें बहुधा व्यक्तिगत फर्मों के साधनो पर बहुत थोड़ी मात्रा मे ही निर्भर रहती हैं।[2] जिन आन्तरिक किफायतों को प्रत्येक संस्थान को अपने लिए व्यवस्था करनी पड़ती है वे उन बाह्य किफायतो की तुलना मे, जो औद्योगिक वातावरण की सामान्य प्रगति की देन है, बहुधा बहुत कम होती हैं। किसी व्यवसाय की स्थिति का इस को मिलने वाली बाह्य किफायतो को निश्चित करने मे सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहता है। किसी स्थल का इसके समीप घनी तथा सक्रिय जनसख्या की वृद्धि से, या वर्तमान बाजारो मे रेलो व सचार के अन्य अच्छे साधनो के सुलभ होने से जो स्थित मूल्य प्राप्त होने लगता है वह औद्योगिक वातावरण मे परिवर्तनो के कारण उत्पादन की लागत पर पड़ने वाले सभी प्रभावो मे सबसे महत्वपूर्ण है।

---

1 भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 6 देखिए।

2 भाग 3, अध्याय 10-13 देखिए।

यदि किसी उद्योग में, चाहे वह कृषि सम्बन्धी उद्योग हो या अन्य उद्योग हो, दो उत्पादकों को सभी मामलों में बराबर सुविधाएँ प्राप्त हों और इनमे केवल यह अन्तर हो कि एक उत्पादक के उद्योग की स्थिति दूसरे की अपेक्षा अच्छी हो और वह उन्ही बाजारों मे कम ढुलायी खर्च पर चीजें खरीद व बेच सकता हो तो उस उत्पादक को अपने उद्योग की स्थिति से जो अवकल लाभ मिलता है वह उसके प्रतिद्वंद्वी द्वारा ढुलायी में लगायी जाने वाली अतिरिक्त लागत के योग से बराबर होगा। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि अच्छी स्थिति से मिलने वाले अन्य लाभ को भी, जैसे कि दृष्टान्त के लिए, व्यवसाय के लिए विशेषरूप से अनुकूल श्रम-बाजार की समीपता को, इसी भाँति द्रव्यिक मूल्यों मे व्यक्त किया जा सकता है। ऐसा करने पर, तथा इन सबको एक साथ जोड़ देने पर उस स्थिति से पहले व्यवसाय को दूसरे की अपेक्षा मिलने वाले लाभ के द्रव्यिक मूल्य को जाना जा सकता है: यदि दूसरे व्यवसाय का कुछ भी स्थिति मूल्य न हो और इसके स्थल की स्थिति का केवल कृषि मूल्य पर अंकन किया जाय तो यही उसका विशेष स्थिति मूल्य हो जाता है।

स्थिति (Situation) मूल्य

अधिक अनुकूल स्थल के कारण जो आय प्राप्त होती है उसे विशेष स्थिति लगान कहा जा सकता है: और इमारत बनाने की भूमि के किसी टुकड़े का कुल स्थल मूल्य वह होगा जो इसमें किसी इमारत के न होने तथा इसे स्वतन्त्र बाजार में बेचने पर मिलेगा। पूर्णरूप से सही ढंग न होने पर भी अधिक सुविधाजनक शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'वार्षिक स्थल मूल्य' वह आय है जो ब्याज की चालू दर पर उस कीमत से प्राप्त होगी। निश्चय ही यह विशेष स्थिति के मूल्य से केवल इसके कृषि मूल्य के बराबर ही अधिक होती है, जोकि तुलना मे नगण्य मात्र है।[1]

स्थल मूल्य

---

1 यदि हम यह कल्पना करें कि एक ही बाजार में विक्रय करने वाले दो फार्मों में पूंजी तथा श्रम की बराबर मात्राएँ लगाने पर अलग अलग मात्राओं में पैदा होने वाली उपज में यह अन्तर पाया जाता है कि पहले फार्म की उपज दूसरे फार्म से बाजार ले जाने की लागत के बराबर ही अधिक है तो दोनों फार्मों का लगान एक ही होगा। (यहाँ इन दो फार्मों में लगाये जाने वाली पूंजी तथा श्रम की मात्रा को एक ही मौद्रिक मापदण्ड में व्यक्त किया गया है, या यह भी कह सकते हैं कि कम के लिए दोनों फार्मों को बाजारों की समान सुविधाएँ सुलभ हैं)। पुनः यदि हम यह कल्पना करें कि बिलकुल बराबर जल निकासी करने वाले अ और ब दो खनिज स्रोतों (mineral spring) में से प्रत्येक से द्रव्यिक लागत पर (जो कितना ही उत्पादन करने पर भी अ में दो पेंस, और ब में ढाई पेंस प्रति बोतल हो) असीमित मात्रा में उत्पादन किया जा सके तो जिन स्थानों में अ की अपेक्षा ब से प्रति बोतल ढुलायी लागत आधी पेनी कम होगी वे उन दोनों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्द्धा के तटस्थ क्षेत्र होंगे। (यदि ढुलायी की लागत दूरी के अनुपात में हो तो यह तटस्थ क्षेत्र ऐसा अतिपरवलय (hyperbola) होगा जिसके अ और ब दो फोकस (foci) होंगे, इससे अ की ओर पड़ने वाले सभी स्थानों में अ ब से कम कीमत पर वस्तुएँ बेचेगा, और ब की ओर पड़ने वाले सभी स्थानों में ब अ से कम कीमत पर वस्तुएँ बेचेगा। इन दोनों में से प्रत्येक को अपने अपने क्षेत्र में उपज की

अपवाद सूचक दशाएं जिनमें लाभप्रद स्थिति से मिलने वाली आय व्यक्तिगत प्रयत्न एवं परिव्यय की देन होती है।

§2. यह स्पष्ट है कि स्थिति मूल्य का अधिकांश भाग 'सार्वजनिक' मूल्य है। (ऊपर पृष्ठ 421 को देखिए)। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं जिन पर प्रकाश डालना चाहिए। कभी कभी किसी सम्पूर्ण शहर, या यहाँ तक कि, क्षेत्र का बन्दोबस्त व्यावसायिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है, और इसे एक ही व्यक्ति या कम्पनी के खर्चे एवं जोखिम पर किये जाने वाले विनियोजन की भाँति कार्यान्वित किया जाता है। आवागमन आंशिक रूप से लोकोपकार या धार्मिक प्रयोजनों के कारण होता है, किन्तु इसका वित्तीय आधार इस तथ्य में मिलेगा कि असंख्य लोगों का जमाव स्वयं ही बढ़ी हुई आर्थिक कार्यक्षमता का कारण है। साधारण परिस्थितियों में इस कार्यक्षमता से मिलने वाले मुख्य लाभ उन्हीं लोगों को होंगे जिनके पास पहले से ही स्थान होगा: किन्तु एक नया क्षेत्र बसाने की इच्छा करने वालों या एक नया शहर बनाने की कामना करने वालों की वाणिज्यिक सफलता की मुख्य आशाएँ प्रायः इन लाभों को अपने लिए ही प्राप्त करने पर आधारित हैं।

सल्टायर तथा पुलमन शहर से लिए गये दृष्टान्त।

दृष्टान्त के लिए जब मिस्टर साल्ट तथा मिस्टर पुलमन ने देहात में फैक्टरियाँ खोलने तथा सल्टायर एवं पुलमन शहर की बुनियाद डालने का निश्चय किया तो उन्होंने यह पूर्वानुमान लगाया कि जिस भूमि को वे कृषि करने के लिए दिये जाने वाले मूल्य पर खरीद सकते थे, उसे एक धनी जनसंख्या के बिलकुल निकट स्थित होने से शहरी सम्पत्ति को जो विशेष स्थिति मूल्य मिलता है वही मिलने लगेगा। इस प्रकार के विचारों से वे लोग भी प्रभावित हुए जिन्होंने प्रकृति द्वारा पानी के अनुकूल बनाये गये सर्वप्रिय स्थान को किसी अन्य चीज के लिए स्थल चुनने के बाद खरीदा और इसके साधनों के विकास पर बहुत बड़ी धनराशि खर्च की: वे अपने विनिओजन से इस आशा में निवल आय प्राप्त करने के लिए बहुत समय तक रुकने को तैयार रहते हैं कि अन्ततोगत्वा उनकी भूमि की ओर आकर्षित होने वाले लोगों के जमाव से इसके लिए ऊँचा स्थिति मूल्य मिलेगा।[1]

इन सभी दशाओं में भूमि से प्राप्त की जाने वाली वार्षिक आय को (या इसके सदैव उस भाग को जो कृषि लगान से बढ़ कर हो) अनेक उद्देश्यों से लगान की अपेक्षा लाभ माना जा सकता है। यही बात उस भूमि के विषय में कही जा सकती है जिस पर चाहे सल्टायर या पुलमन शहर में फैक्टरी बनी हुई है, या जिससे इसकी स्थिति के कारण फैक्टरी में काम करने वाले लोगों के साथ अच्छा व्यापार करने के लिए स्थल के रूप में 'जमीन का किराया' अधिक मिलता है। इन दशाओं में बड़ा जोखिम लेना पड़ता है, और जिन उपक्रमों में बहुत बड़ी क्षति होने का जोखिम उठाना पड़े उनमें

बिक्री से एकाधिकार लगान प्राप्त होगा। यह उन अनेक काल्पनिक किन्तु, शिक्षात्मक समस्याओं का ही एक रूप है जो स्वतः ही जानी जा सकती हैं। वॉन थूनेन की Der isolirte Staat) पर किये गये उत्कृष्ट अनुसंधानों से तुलना कीजिए।

1 नये देशों में इस प्रकार की दशाएं बहुत अधिक पायी जाती हैं। किन्तु प्राचीन देशों में भी ये बहुत दुर्लभ नहीं हैं: साल्टबर्न इसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त है, और लेचवर्थ गार्डेन सीटी से इस ओर हाल ही में अद्वितीय रुचि पैदा हो गयी है।

बहुत अधिक लाभ होने की आशाएँ भी होनी चाहिए। किसी वस्तु के उत्पादन के सामान्य खर्चों में उद्यम के लिए आवश्यक भुगतान अवश्य सम्मिलित होने चाहिए, यह भुगतान उस निवल लाभ अर्थात् सम्भावित क्षति को घटाने के बाद शेष रहने वाले निवल लाभ के बराबर होना चाहिए जिससे उद्यम करने या न करने के संशय मे पड़े हुए लोगों को पर्याप्त रूप से क्षति पूर्ति हो सके। इन उद्यमों से मिलने वाले लाभो का इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त न होना इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि ये अभी तक बहुत प्रचलित नही हुए है। वे सम्भवतः उन उद्योगों मे अधिक प्रचलित है जो बहुत शक्तिशाली निगमों द्वारा चलाये जाते हैं। दृष्टान्त के लिए एक बड़ी रेल कम्पनी बिना बहुत बड़े जोखिम के रेल-सयंत्र के विनिर्माण के लिये क्रयू (Crew) या न्यू स्विन्डन (New Swindon) की नीव डाल सकती है।[1]

भूस्वामियों के संयुक्त खर्च पर किये जाने वाले सुधार।

लगभग इन्ही से मिलते जुलते दृष्टान्त उन भूस्वामियो के एक वर्ग से सम्बन्धित है *जो सगठित होकर एक रेल मार्ग बनाते है जिससे मिलने वाली निवल यातायात सम्बन्धी* आय से इसे बनाने मे विनियोजित पूँजी पर अधिक ब्याज मिलने की आशा न हो, किन्तु इससे उनकी भूमि का मूल्य बहुत बढ़ जायेगा। ऐसी दशाओ मे भूस्वामियो के रूप मे उनकी आय मे होने वाली वृद्धि के कुछ भाग को उनके द्वारा अपनी भूमि के सुधार मे विनियोजित पूँजी पर ब्याज समझना चाहिए. यद्यपि पूँजी को प्रत्यक्षरूप से अपनी *ही सम्पत्ति पर लगाने की अपेक्षा रेल बनाने मे लगाया गया है।*

इसी प्रकार कृषि अथवा शहरी सम्पत्ति की सामान्य दशाओ के सुधार के लिए की जाने वाली मुख्य जल-निष्कासन की योजनाएँ तथा अन्य किस्म की परियोजनाएँ वे अन्य उदाहरण हैं जिन्हे भूस्वामियो ने निजी सहमति से या अपने ऊपर विशेष कर लगने से, अपनी ही लागत पर कार्यान्वित किया। किसी राष्ट्र द्वारा अपने सामाजिक तथा राजनैतिक सगठन स्थापित करने, लोगों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने तथा अपने

---

1 सरकार को इस प्रकार की योजनाओं को चलाने विशेषकर गैरिजन शहरों (Garrison Towns) आयुधशालाओं (Arsenals) तथा युद्ध सामग्री के विनिर्माण के संस्थानों के नये स्थलों के चयन करने के विषय में बड़ी सुविधाएँ प्राप्त होती है। सरकारी तथा निजी फर्मों के उत्पादन के खर्चों की तुलना करने में सरकारी कारखानों के स्थलों के मूल्य को उनके कृषि मूल्य के बराबर आंका जाता है। किन्तु इस प्रकार का मूल्यांकन भ्रम में डालने वाला है। एक निजी फर्म को अपने स्थान के लिए या तो बहुत ही अधिक वार्षिक प्रभार देने पड़ते हैं या स्वयं अपने लिए एक शहर बसाने का प्रयत्न करने पर बहुत बड़ा जोखिम उठाना पड़ता है। अतः सामान्य दृष्टि से सरकारी प्रबन्ध को ही भाँति कुशल एवं मितव्ययितापूर्ण सिद्ध करने के लिए सरकारी फैक्टरियों के तुलनपत्रों में इन स्थलों के शहरीमूल्य के लिए पूर्ण प्रभार शामिल करना चाहिए। उत्पादन की जिन विशेष शाखाओं के लिए निजी फर्म द्वारा समान दशाओं में जोखिम उठाये जाते हैं, उन्हें उठाये बिना सरकार का विनिर्माण कर सकती है। उनकी इस लाभप्रद स्थिति को इन विशेष व्यवसायों को सरकार द्वारा ही चलाने के पक्ष में दिया जाने वाला तर्क समझना चाहिए।

भौतिक सम्पत्ति के स्रोतों के विकास के लिए पूंजी के विनियोजन करने मे भी इसी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं।

इस प्रकार वातावरण मे होने वाले जिस सुधार से भूमि तथा प्रकृति की अन्य मुक्त देनों का मूल्य बढ जाता है, वह अनेक दशाओं में आंशिक रूप से भूस्वामियो द्वारा अपनी भूमि के मूल्य को बढाने के लिए जानबूझ कर पूँजी के विनियोजन करने का कारण है। अत दीर्घकाल पर विचार करते समय आय मे इसके फलस्वरूप होने वाली वृद्धि के कुछ अशों को लाभ मानना चाहिए। किन्तु अनेक दशाओ मे बात ऐसी नही होती, और प्रकृति की मुक्त देनों से प्राप्त की जाने वाली उस निवल आय को जिसमे भूमि के मालिको द्वारा विशेष परिव्यय किये बिना तथा इसके लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन दिये बिना वृद्धि की जाती है, सभी प्रयोजनो के लिए लगान समझना चाहिए।

उपनगर की सम्पत्ति के बन्दोबस्त से मिलती जुलती दशाएँ।

इनमे से कुछ मिलती जुलती दशाएँ वे हैं जब बीस एकड या इससे भी अधिक भूमि का मालिक इसे समीप के बढते हुए शहर मे इमारत बनाने के लिए 'विकसित' करता है। *सम्भवतः वह सडके बिछाता है, यह निर्णय करता है कि मकान कहाँ पर* लगातार और कहाँ पर अलग अलग होने चाहिए। भवन निर्माण के सामान्य ढग तथा हर मकान मे किये जाने वाले न्यूनतम खर्च को भी वही निर्धारित करता है, क्योंकि प्रत्येक की सुन्दरता से सभी के सामान्य मूल्य मे वृद्धि होती है। उसके द्वारा इस प्रकार उत्पन्न किया गया यह सामूहिक मूल्य सार्वजनिक मूल्य की भाँति है, और यह अधिकाश मात्रा मे उस निष्क्रिय मूल्य पर आश्रित रहता है जो उसके स्थान के समीप समृद्ध शहर के विकास से प्राप्त होता है। किन्तु इस पर भी इसका वह भाग जो उसके पूर्व विचार, *रचनात्मक प्रतिभा एव परिव्यय से प्राप्त होता है, उसे व्यावसायिक उद्यम का, न कि* निजी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक मूल्य के स्वामित्व का, पुरस्कार समझना चाहिए।

किसी स्थल का मूल्य उसके मालिक पर बहुत कम निर्भर रहता है।

इन विशेष दशाओं को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए। किन्तु साधारण नियम यह है कि किसी भूमि के टुकडे पर खडी की गयी इमारत का आकार प्रकार (भवन निर्माण सम्बन्धी स्थानीय उपनियमों के अनुसार) समीप के स्थिति मूल्य पर थोड़ी या बिलकुल भी प्रतिक्रिया हुए बिना मुख्यतया इस बात पर निर्भर रहता है कि किस प्रकार के आकार प्रकार से अधिकतम लाभप्रद परिणाम निकलने की आशा की जाती है। अन्य शब्दों मे, भूमि के टुकडे का स्थल मूल्य उन कारणों से नियंत्रित होता है जो अधिकाशतया यह निश्चय करने वाले व्यक्ति के नियंत्रण पर होते हैं कि इस पर कौन सी इमारत खड़ी की जाय और वह इस पर से विभिन्न प्रकार की इमारतों से प्राप्त आय के अनुमान के अनुसार अपने खर्च को समायोजित करता है।

इमारत की भूमि के पूंजीगत मूल्य को प्रभावित

§3. कभी कभी इमारत वाली भूमि का मालिक स्वयं ही उस भूमि पर इमारत बनाता है : कभी कभी वह इसे तुरन्त ही बेच देता है : बहुधा वह इसे निश्चित भूलगान पर निन्यानबे वर्षो के लिए पट्टे पर दे देता है जिसके बाद यह भूमि तथा इस पर बने मकान (जिसे इकरार नामे के अनुसार अच्छी हालत मे रखना पड़ता है) इसके उत्तराधिकारी के नाम हो जाते हैं। अब हम भूमि के विक्रय मूल्य तथा इसे पट्टे पर लेने के लिए दिये जाने वाले भूलगान को नियंत्रित करने वाले कारणों पर विचार करेंगे।

भूमि के किसी टुकड़े का पूंजीकृत मूल्य एक ओर लगान वसूल करने के खर्चों सहित सभी आकस्मिक खर्चों के लिए तथा दूसरी ओर इसकी खनिज सम्पत्ति के सभी *व्यवसायों के विकास की क्षमताएँ तथा निवास के लिए भौतिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यात्मक* सुविधाओं के लिए छूट रखते हुए, इससे प्राप्त होने वाली कुल निवल आय का 'पूर्वप्रापित' जीवनांकिक मूल्य है। भूमि के स्वामित्व से मिलने वाले सामाजिक स्तर तथा अन्य व्यक्तिगत परितुष्टियों का मौद्रिक तुल्यांक होने वाली मौद्रिक आय मे शामिल नहीं होता किन्तु इसके पूंजीगत द्रव्यिक मूल्य मे अवश्य शामिल होता है।[1]

करने वाले कारण।

इसके बाद हम इस बात पर विचार करेंगे कि निन्यानवे वर्ष पर इमारत बनाने के लिए जमीन के टुकड़े का 'भू-लगान' किस चीज से नियंत्रित होता है। इस पट्टे के अन्तर्गत सभी निश्चित द्रव्यिक भुगतानो का पूर्वप्रापित मूल्य भूमि के वर्तमान पूंजीगत मूल्य (Capital Value) के बराबर होने लगता है और इसमें एक तो पट्टे की अवधि समाप्त होने पर वर्तमान मालिक द्वारा हक के अनुसार उत्तराधिकारी को इमारत सहित भूमि लौटाने के करार के लिए तथा दूसरे पट्टे मे निहित भूमि के उपयोग पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्धो से होने वाली सम्भावित असुविधाओ के लिए कुछ छूट रखनी पड़ती है। यदि उस स्थल मूल्य के सदैव स्थिर रहने की आशा हो तो इन्हे घटाने के फलस्वरूप 'भू-लगान' जमीन के 'वार्षिक स्थल मूल्य' से वस्तुत. कम होगी। किन्तु वास्तव मे जनसख्या की वृद्धि तथा अन्य कारणो से स्थल मूल्य के बढ़ने की आशा की जाती है: और अतः पट्टे के प्रारम्भ मे भू-लगान साधारणतया वार्षिक स्थल-

लम्बे समय के लिए दिये जाने वाले पट्टों का भू-लगान (ground-rent) वास्तविक भावी स्थल मूल्यों के

---

1 कृषिभूमि का मूल्य साधारणतया वर्तमान द्रव्यिक लगान के कुछ निश्चित गुने के रूप में या अन्य शब्दों में, उस लगान के कुछ 'वर्षों के क्रय' के रूप में व्यक्त किया जाता है और अन्य बातों के समान रहने पर, ये प्रत्यक्ष परितुष्टियाँ जितनी ही अधिक महत्वपूर्ण होंगी तथा इन परितुष्टियों व भूमि से प्राप्त आय के बढ़ने के जितने ही अधिक अवसर मिलेंगे, यह उतनी ही अधिक होगी। अनेक वर्षो के क्रय ब्याज की भावी सामान्य दर अथवा द्रव्य की क्रयशक्ति में प्रत्याशित कमी से भी बढ़ाया जा सकता है।

भूमि के मूल्य में बहुत समय बाद होने वाली वृद्धि का पूर्वप्रापित मूल्य साधारणतया जितना समझा जाता है उससे बहुत कम होता है। दृष्टान्त के लिए यदि हम ब्याज की दर पाँच प्रतिशत मानें (मध्य युगों में ब्याज की दर इससे ऊँची थी) तो चक्रवृद्धि ब्याज पर विनियोजित किया गया 1 पौंड, 200 वर्षों में 17,000 पौंड तथा 500 वर्षों में 40,000,000,000 पौंड हो जायेगा। अतः राज्य द्वारा भूमि के मूल्य में वृद्धि को घटाने के लिए अब सर्वप्रथम खर्च किया जाने वाला 1 पौंड, तब तक अनुचित विनियोजन होगा जब तक कि उस वृद्धि का अब मूल्य 200 वर्ष पूर्व विनियोजन किये जाने पर 17,000 पौंड से, और 500 वर्ष पूर्व विनियोजन किये जाने पर 40,000,000,000 पौंड से बढ़ा हुआ न हो। यहां यह मान लिया गया है कि पाँच प्रतिशत ब्याज की दर पर इतनी अल्प धनराशि का विनियोजन सम्भव है: जो कि वास्तव में सत्य न होगा।

अनुमानों पर आधारित है। विनिर्माण तथा कृषि दोनों में ही सीमान्त लागतों के उत्पादन के मूल्य तथा उपयोग में लायी गयी भूमि से समान सम्बन्ध है।

मूल्य से थोड़ा अधिक होता है और इसके समाप्त होने के समय इससे बहुत नीचे होता है।[1]

§4. किसी इमारत पर किये जाने वाले अनुमानित खर्चों में, जिन्हे भूमि के किसी टुकड़े पर इसे खड़े करने की विशेष सुविधा के मूल्य को निश्चित करने के पूर्व इसकी अनुमानित आय से कम करना पड़ता है, उसमे वे (केन्द्रीय तथा स्थानीय) कर शामिल हैं जो सम्पत्ति पर लगाये जाते हैं, औद्योगिक सम्पत्ति के मालिक को ही देने पड़ते है। किन्तु इसमे अनेक कठिन प्रासंगिक विवाद विषय उठ खड़े होते हैं, और इन पर परिशिष्ट छ (G) में विचार किया जायेगा।

अब हम इस तथ्य पर फिर से वापस आयेंगे कि सभी व्यवसायो में निवास तथा कार्य करने के लिए उपयोग मे लायी जाने वाली भूमि पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू होता है[2]। निस्सदेह कृषि की भाँति इमारत बनाने के व्यवसाय मे यह सम्भव है कि पूँजी का बहुत कम उपयोग किया जाय। जिस प्रकार वासस्थान वाला (home stead) उसको मिली हुई 160 एकड़ भूमि के समस्त भाग मे अपना श्रम लगाने की अपेक्षा केवल आधे भाग मे खेती कर अधिक उपज पैदा कर लेता है, उसी प्रकार जमीन के शायद ही कुछ मूल्य होने पर एक बहुत नीचा मकान भी इसमे प्राप्त स्थान के अनुपात मे महँगा हो सकता है। किन्तु कृषि की भाँति भवन-निर्माण मे भी प्रति एकड़ भूमि पर पूँजी तथा श्रम की एक निश्चित मात्रा लगाने से अधिकतम प्रतिफल मिलता है और तत्पश्चात् इन्हे और अधिक मात्रा मे लगाने से कम प्रतिफल मिलता है। जिस प्रकार कृषि मे अधिकतम प्रतिफल देने वाली प्रति एकड़ पूँजी की मात्रा फसलों, उत्पादन की प्रणालियो तथा विक्रय के बाजारो के रूप के अनुसार भिन्न होती है, उसी प्रकार भवन-निर्माण मे भी, उस स्थल का कोई दुर्लभता मूल्य न होने पर प्रतिवर्ग फीट भूमि पर अधिकतम प्रतिफल देने वाली पूंजी इमारत के उपयोग के उद्देश्य के अनुसार भिन्न

---

1 कुछ क्षेत्रों में फैशन या व्यापार के समाप्त होने के कारण स्थल मूल्य गिर गया है। किन्तु दूसरी ओर ऐसी जमीन के भू-लगान से वार्षिक स्थल मूल्य कई गुना अधिक हो गया है जो ऐसे समय में पट्टे पर दी गयी थी जब इसका कुछ भी विशेष स्थिति मूल्य नहीं था, किन्तु जो अब फैशन या व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया है: और इनका मूल्य और भी अधिक बढ़ जायेगा यदि पट्टा अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मिल गया होता जब कि सोने का अभाव था तथा द्रव्य के रूप में मापी जाने वाली सभी वर्गों के लोगों की आय सौ वर्षों के बाद जमीन के मालिक के लिए बहुत कम थी। सम्पत्ति के प्रतिफल का वर्तमान पूर्वप्रापित मूल्य जितना समझा जाता है (इसका मूल्य तब 1000 पौंड के बराबर होगा) उससे सम्भवतया कम होगा। इसमें उतनी बड़ी त्रुटि नहीं होगी जितनी कि सैकड़ों वर्षों की अवधि में फैली हुई उन प्रत्याशाओं में हों जिनका हाल ही में दी गयी टिप्पणी में विवेचन किया गया है: ब्याज की दर तीन प्रतिशत मानने पर यह लगभग 50 पौंड और पाँच प्रतिशत मानने पर, जैसा कि तीनचार पीढ़ियों पूर्व होता था, यह केवल 8 पौंड होगी।

2 भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 7 देखिए।

होती है। किन्तु जब उस स्थल का दुर्लभता मूल्य हो तो उसके विस्तार के लिए आवश्यक भूमि पर अतिरिक्त लागत देने की अपेक्षा इस अधिकतम सीमा के बाद भी पूंजी को लगाना लाभप्रद होगा। जिन क्षेत्रो मे भूमि का मूल्य ऊँचा हो वहाँ उन क्षेत्रो की अपेक्षा जहाँ भूमि का मूल्य नीचा होता है, समान उद्देश्यो के लिए उपयोग किये जाने पर प्रत्येक वर्गफीट से सम्भवतः दुगुनी जगह प्राप्त करने के लिए दुगुनी से भी अधिक लागत लगानी पड़ेगी।

भवन-निर्माण का सीमान्त।

हम **भवन-निर्माण का सीमान्त** वाक्यांश को उतने स्थान के लिए लागू कर सकते है जितने से किसी निश्चित स्थान मे लागत के बराबर लाभ प्राप्त किया जा सके, और भूमि के कम दुर्लभ होने पर यह न प्राप्त किया जा सके। इन विचारो को निश्चितता प्रदान करने के लिए हम कल्पना करेंगे कि इमारत की सबसे ऊपर की मजिल मे मिलने वाला स्थान ही भवन-निर्माण का सीमान्त है।[1]

अधिक जमीन पर इमारत फैलाने की अपेक्षा इस पर एक मजिल बनाने से भूमि की लागत मे कुछ बचत हो जाती है जो कि ऐसा करने मे होने वाले अतिरिक्त खर्च एवं असुविधा के बराबर ही क्षति पूर्ति करती है। इस मजिल की आकस्मिक असुविधाओं के लिए छूट रखते हुए, इसमे मिलने वाली जगह से भूमि के लगान के लिए छूट रखे बिना इसमें लगने वाली लागत ही पूरी होती है। यदि यह मजिल किसी फैक्टरी का एक भाग हो तो इसमें उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ की कीमते उनके उत्पादन के खर्चों के बराबर ही होंगी जिससे भूमि के लगान के लिए कोई अधिशेष नही रहता। अत: विनिर्माण के उत्पादन के खर्चो का भूमि पर बिलकुल भी लगान न देने के कारण भवन-

---

1 एक के ऊपर एक बने फ्लेटों में बहुधा ऊपर जाने के लिए मकान मालिक की लागत पर लिफ्ट लगाये जाते है, और इन दशाओं में (अमेरीका में सदैव) सबसे ऊपर की मंजिल अन्य किसी मंजिल की अपेक्षा अधिक किराये पर लगती है। यदि वह स्थान बहुत मूल्यवान हो और उनके पड़ोसियों के हित में उसके मकान की ऊँचाई कानून द्वारा निश्चित नहीं की जाती हो तो वह बहुत ऊँचा मकान बनायेगा: किन्तु अन्त में वह भवन-निर्माण के सीमान्त पर पहुँचेगा। अन्त में वह यह अनुभव करेगा कि नींव की मंजिलों में होने वाले मूल्य-ह्रास सहित बुनियाद में मोटी दीवारों में, तथा लिफ्ट लगाने में होने वाले अतिरिक्त खर्चों से उसे एक मंजिल और बढ़ाने से मिलने वाले लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी। जिस अतिरिक्त स्थान को प्रदान करना वह पर्याप्त समझता हो उसे भवन-निर्माण का सीमान्त माना जा सकता है, भले ही नीचे की मंजिलों की अपेक्षा ऊपर की मंजिलों का कुल किराया अधिक हो। पृष्ठ 168-9 के फुटनोट से तुलना कीजिए।

किन्तु इंग्लैंड में उपनियमों द्वारा एक व्यक्ति को इतना ऊँचा मकान नहीं बनाने दिया जाता जिससे उसके पड़ोसियों को हवा तथा प्रकाश से वंचित होना पड़े। भविष्य में जो लोग ऊँची इमारतें बनायेंगे उन्हें अपनी इमारतों के आसपास पर्याप्त खाली जगह छोड़नी होगी, और इसके फलस्वरूप बहुत ऊँची इमारतों का बनाना लाभप्रद रहेगा।

निर्माण के सीमान्त पर उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं का खर्चा माना जायेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि भूमि का लगान उस सीमान्त पर किये जाने वाले खर्चों में शामिल नहीं होता जहाँ पर मूल्य को नियंत्रित करने वाली माँग तथा सम्भरण की शक्तियों के प्रभाव को स्पष्टरूप से देखा जा सकता है।

दृष्टान्त के लिए यह कल्पना करें कि कोई व्यक्ति एक होटल या फैक्टरी बनाने की योजना तैयार कर रहा है, और यह सोच रहा है कि वह इसके लिए कितनी भूमि ले। यदि भूमि सस्ती हो तो वह इसे अधिक खरीदेगा, यदि महँगी हो तो वह कम खरीदेगा, और उस पर अधिक मंजिलें बनायेगा। अब यह मान लें कि वह 100 फीट तथा 110 फीट के अग्रभागों के हिसाब से इस संस्थान को इस ढंग से बनाने में तथा चालू करने में होने वाले खर्चों का अनुमान लगाता है तो स्वयं उसे, उसके ग्राहकों तथा कर्मचारियों को समानरूप से सुविधाजनक हो, और इसलिए उसके लिए समानरूप से लाभप्रद हो। यदि वह यह देखे कि भावी खर्चों को पूँजीकृत करने के बाद इन दोनों अग्रभागों के कुल खर्चों मे यह अन्तर है कि अधिक स्थान पर उसे 500 पौंड का लाभ हो तो वह भूमि के अग्रभाग के 50 पौंड प्रतिफुट से कम पर मिलने पर ही उसे अधिक मात्रा मे खरीदेगा, अन्यथा नही, और उसके लिए उस भूमि का सीमान्त मूल्य 50 पौंड के बराबर होगा। वह कम स्थान की अपेक्षा अधिक स्थान पर अन्य प्रकार से वही परिव्यय करने पर या कम अनुकूल स्थिति वाली भूमि की अपेक्षा कम खर्चीली जमीन मे इसे बनाने पर व्यवसाय के बढे हुए मूल्य का अनुमान लगाकर भी इसी परिणाम पर पहुँच सकता था। किन्तु चाहे वह किसी भी ढंग से अनुमान लगाये, यह उसके उस निर्णय की भाँति है जिसके अनुसार वह किसी अन्य प्रकार के व्यावसायिक संयंत्र को खरीदना लाभप्रद समझता है: और (मूल्य ह्रास के लिए छूट रखते हुए) इन दोनों मे से किसी भी विनियोजन से जिस निवल आय की प्रत्याशा करता है उसका अपने व्यवसाय के साथ एक सा ही सामान्य सम्बन्ध समझता है। यदि किसी स्थान की स्थिति से मिलने वाले लाभ ऐसे हो कि वहाँ की सारी भूमि को विभिन्नरूप से इस प्रकार काम मे लाया जा सके कि हर दशा मे इसका सीमान्त उपयोग उस अग्रभाग के रूप मे व्यक्त किया जाय जिसका पूँजीगत मूल्य 50 पौंड प्रति फुट हो तो यही भूमि का वर्तमान मूल्य होगा।

एक ही भूमि के लिए फैक्टरियों, मालगोदामों, इत्यादि से प्रतिस्पर्द्धा।

§5. इसमे यह मान लिया गया है कि अनेक उपयोगों के लिए भूमि में होने वाली प्रतियोगिता के कारण हर मुहल्ले मे तथा हर उपयोग के लिए उस सीमान्त तक भवन-निर्माण किया जायेगा जिस पर उसी स्थान मे और अधिक पूँजी लगाना लाभप्रद न होगा। किसी क्षेत्र मे निवास तथा व्यवसाय के लिए स्थान की माँग बढ़ती जाती है जिससे एक ही स्थान से अधिक जगह प्राप्त करने के खर्च तथा असुविधा को दूर करने के लिए भूमि के लिए अधिकाधिक कीमत देना लाभप्रद होगा।

दृष्टान्त के लिए यदि लीड्स मे दुकानों, मालगोदामों, लोहे के कारखानों इत्यादि के कारण भूमि के लिए प्रतिस्पर्द्धा बढ जाने से इसका मूल्य बढ़ जाय तो ऊन-विनिर्माता अपने उत्पादन के खर्चों को बढा हुआ देखकर इसे दूसरे शहर या देहात मे स्थापित कर सकता है, और इस प्रकार अपनी भूमि को दुकानों तथा मालगोदामों के बनने के लिए

छोड जाता है जिनके लिए फैक्टरियों की अपेक्षा शहरी स्थिति अधिक मूल्यवान होती है। क्योकि वह यह सोच सकता है कि देहात मे चले जाने से भूमि की लागत में जो बचत होगी वह स्थान परिवर्तन के अन्य लाभों सहित इसमे होने वाली क्षति से अधिक होगी। इस विवाद मे कि क्या ऐसा करना लाभदायक है, उसकी फैक्टरी के स्थल के लगान मूल्य को उसके कपड़े के उत्पादन के खर्चों मे गिना जायेगा और ऐसा करना उचित भी है।

किन्तु हमें उस तथ्य के पीछे भी जाना है। माँग तथा सम्भरण के सामान्य सम्बन्धो से उस सीमान्त तक उत्पादन किया जाता है जहाँ पर (लगान के लिए कुछ भी शामिल न करने पर) उत्पादन के खर्चे इतने अधिक होते है कि एक संकुचित स्थल मे ही अपना सारा कार्य करने मे होने वाली असुविधा तथा इसमे होने वाले खर्च को दूर करने के लिए लोग अतिरिक्त भूमि के लिए ऊँचा मूल्य देने के इच्छुक रहते है। इन कारणों से किसी स्थल का मूल्य नियंत्रित होता है, और इसलिए यह मानना उचित नही है कि स्थल मूल्य से सीमान्त लागते निर्धारित होती हैं।

इस प्रकार भूमि के लिए औद्योगिक माँग हर प्रकार से कृषि के लिए माँग की ही भांति है। जई के उत्पादन के खर्चे इस बात के कारण बढ जाते हैं कि जई के लिए उपयुक्त भूमि की उन अन्य फसलो को उगाने के लिए बडी माँग है जिनसे अधिक लगान मिल सकता है· और इसी प्रकार मुद्रणालय जो लन्दन मे जमीन से साठ फीट ऊँचाई पर भी कार्य करते हैं, अपना कार्य कुछ सस्ता कर सकेंगे यदि अन्य उपयोगो के लिए जमीन की माँग मकान को इतना ऊँचा बनाने के सीमान्त को बहुत अधिक न बढाये। पुन. हॉप उगाने वाला यह अनुभव कर सकता है कि भूमि के लिए अधिक लगान देने के कारण उसके हॉप की कीमत से उसके वर्तमान उत्पादन के खर्चे वसूल नही हो सकेंगे और उसे हॉप उगाना छोडना पडेगा या इसके लिए अन्य भूमि ढूँढनी पड़ेगी; जबकि इसके द्वारा छोडी गयी भूमि को शायद एक बाजार के लिए उगाने वाले को किराया पर दे दिया जायेगा। कुछ समय बाद पडोस मे भूमि की माँग फिर से इतनी अधिक हो सकती है कि बाजार के लिए उगाने वाला माली अपनी उपज के लिए जो कुल कीमत प्राप्त करेगा उससे लगान को मिलाकर इसके उत्पादन के खर्चे पूरे न हो सकें और इसलिए वह अपनी बारी आने पर उदाहरण के लिए एक भवन-निर्माण करने वाली कम्पनी के लिए उस भूमि को छोड़ देता है।

प्रत्येक दशा मे भूमि के लिए बढती हुई माँग के कारण उस सीमान्त में परिवर्तन हो जाता है जिस पर भूमि का सघन उपयोग करना लाभकारक है: इस सीमान्त पर लागतों से उन आधारभूत कारणों के प्रभाव का पता लगता है जिनसे भूमि का मूल्य नियंत्रित होता है। साथ ही साथ माँग तथा सम्भरण की सामान्य दशाओं के प्रभाव के फलस्वरूप मूल्य इन्ही लागतो के अनुरूप होने लगता है : और अत. हमारे उद्देश्य के लिए सीधे इन्ही पर विचार करना ठीक प्रतीत होता, भले ही निजी तुलनपत्र के लिए इस प्रकार की जाँच असगत होगी।

§6. असाधारण रूप से मूल्यवान शहरी भूमि की माँग विनिर्माताओं की अपेक्षा व्यापारियों

द्वारा दिये जाने वाले किराये का उनके द्वारा ली जाने वाली कीमतों से सम्बन्ध।

थोक तथा फुटकर सभी प्रकार के व्यापारियों से उत्पन्न होती है, और यहाँ पर उनकी माँग की बड़ी रोचक विशेषताओं पर प्रकाश डालना लाभप्रद होगा।

यदि किसी व्यवसाय की एक ही शाखा में दो फैक्टरियों से समान उत्पादन होता हो तो उसके पास निश्चय ही लगभग बराबर समतल फर्श होगा। किन्तु व्यापारिक संस्थानों तथा उनकी कुल बिक्री में कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। उनके लिए प्रचुर जगह का होना सुविधा का विषय और अतिरिक्त लाभ का स्रोत है। यह प्राकृतिक रूप में अपरिहार्य नहीं है किन्तु उनकी जगह जितनी ही अधिक होगी, वे अपने पास उतना ही अधिक स्टाक रख सकते हैं और वे उतने अधिक लाभ के साथ इसके नमूने दिखा सकते हैं। उन व्यवसायों में जहाँ रुचि तथा फैशन के परिवर्तनों का बहुत प्रभाव पड़ता है विशेषकर यही बात पायी जाती है। ऐसे व्यवसायों में व्यापारी तुलनात्मक रूप से कम जगह में सभी प्रचलित सर्वोत्तम विचारों के नमूने का संग्रह करने के लिए अपने आप पूरी कोशिश करते हैं, तथा उन विचारों के नमूनों के लिए वे और भी अधिक कोशिश करते हैं जो शीघ्र ही प्रचलन में आने वाले हैं। उनके स्थानों का लगान मूल्य जितना ही ऊँचा होगा उन्हें हानि उठाने पर भी ऐसी चीजों से छुटकारा पाने में शीघ्रता करनी चाहिए जो समय की गति से पीछे रह गये हों और जिनसे उनके स्टाक की सामान्य दशा में कोई भी सुधार नहीं होते हों। यदि वह मुहल्ला ऐसा हो जिसमें ग्राहक नीची कीमतों की अपेक्षा अच्छे चयन में अधिक प्रलोभित होते हों तो व्यापारी ऐसी कीमत लगायेंगे जिनसे तुलनात्मक रूप से थोड़ी सी बिक्री पर ही ऊँची दर पर लाभ प्राप्त हो ऐसा न होने पर वे कम कीमतें लगायेंगे और अपनी पूँजी तथा अपने अहाते के अनुपात में अधिक व्यापार करने की कोशिश करेंगे। ठीक इसी प्रकार कहीं पड़ोस में बाजार के लिए उगाने वाली मटर को अच्छा स्वाद होने के कारण माली कच्चे ही तोड़ना सर्वोत्तम समझता है, और दूसरी जगहों पर उन्हें तब तक उगने देता है जब तक कि वे तौलने में बहुत भारी वजन की न हो जायें। व्यापारी चाहे जो भी करें उन्हें इस बात का सन्देह रहेगा कि जनता को भी कुछ सुविधाएँ देना उचित होगा या नहीं, क्योंकि वे यह आंकते हैं कि इस प्रकार की सुविधाओं से प्राप्त अतिरिक्त बिक्री केवल लागत के बराबर लाभप्रद होती है, और इनसे लगान के रूप में कुछ भी अधिशेष नहीं मिलता। इन सुविधाओं को प्रदान करने के फलस्वरूप वे ऐसी वस्तुओं का विक्रय करते हैं जिनके विपणन के खर्चों में केवल उतना ही लगान शामिल होगा जितना कि उन मटरों के विपणन के खर्चों में शामिल होता है जिन्हें उगाने में माली की केवल लागत ही निकल पाती है।

कुछ अत्यधिक किराये वाली दुकानों में कीमतें नीची होती हैं क्योंकि उनके ग्राहक ऐसे असत्य लोग हैं जो अपनी इच्छित वस्तुओं की संतुष्टि के लिए ऊँची कीमतें नहीं दे सकते, और दुकानदार भी यह जानता है कि उसे सस्ता बेचना चाहिए, या फिर बिलकुल ही नहीं बेचना चाहिए। उसे प्रत्येक बार अपनी पूँजी के आवर्त पर कम दर पर ही लाभ से संतुष्ट रहना पड़ता है। किन्तु उसके ग्राहकों की आवश्यकताएँ साधारण होने के कारण उसे वस्तुओं के बड़े स्टाक को रखने की आवश्यकता नहीं है, और वह वर्ष में अनेक बार पूँजी का आवर्त कर सकता है। इस प्रकार उसका वार्षिक निवल

लाभ बहुत अधिक होगा और उस स्थान के लिए वह बहुत अधिक किराया देने के लिए तत्पर रहेगा। इसके दूसरी ओर लन्दन के बड़े फैशन वाले भाग के कुछ शान्त बाजार सड़कों (streets) में तथा बहुत से गाँवों में कीमतें बहुत ऊँची होती है क्योंकि पहली दशा में ग्राहक धीरे धीरे बिकने वाले बिलकुल मनपसन्द सामान से आकर्षित होते हैं और दूसरी दशा में कुल बिक्री ही बहुत कम होती है। इनमें से किसी भी स्थान में व्यापारी इतना लाभ नही कमा सकता कि वह इससे लन्दन के ईस्ट-एण्ड पर कुछ सस्ती किन्तु बड़ी भीड़ वाली दुकानो का बडा ऊँचा किराया दे सके।

जमीन के मूल्यों में वृद्धि स्थान की कमी का संकेत हो सकता है जिसके कारण व्यापारी कीमत बढ़ा देंगे।

यह सत्य है कि, यदि अतिरिक्त आय देने वाले यातायात मे वृद्धि हुए बिना, कोई स्थिति दुकान के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए अधिक मूल्यवान हो जाय तो केवल वे दुकानदार ही कार्य कर सकेंगे जो अपने द्वारा ली जाने वाली कीमतो तथा अपने व्यवसाय के स्तर के अनुपात मे बहुत बड़ी आय प्राप्त कर सकते हैं। अतः ऐसे व्यवसायों में जहाँ माँग बढ़ी हुई हो बहुत कम दुकानदार काम करेंगे. तथा जो शेष बचेंगे वे अपने ग्राहकों को पहले से अधिक सुविधाएँ तथा आकर्षण दिये बिना अधिक कीमत लेंगे। जिससे, अन्य बातों के समान रहने पर, फुटकर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जायेंगी। उसी प्रकार उस क्षेत्र में जमीन के मूल्य मे वृद्धि का होना स्थान की कमी का संकेत हो सकता है जिस प्रकार किसी क्षेत्र में कृषि लगान के बढ़ जाने से भूमि की कमी का आभास होगा जिससे उत्पादन के सीमान्त खर्चे बढ जायेंगे और अतः किसी विशेष फसल की कीमत भी बढ़ जायेगी। उसी प्रकार उस क्षेत्र मे जमीन के मूल्य मे वृद्धि का होना स्थान की कमी का संकेत हो सकता है।

मिश्रित लगान के संघटक (Component) तत्वों को कुछ ही, न कि सभी दशाओं में अलग अलग किया जा सकता है।

§7. किसी मकान (या अन्य इमारत) का किराया एक प्रकार का मिश्रित लगान है, जिस का एक भाग स्थल के लिए तथा दूसरा भाग स्वयं इमारतो के लिए दिया जाता है। इन दोनों के बीच के सम्बन्ध बड़े जटिल हैं और उन पर विचार करना परिशिष्ट छ (G) के लिए स्थगित कर दिया जाता है। किन्तु सामान्यरूप से मिश्रित लगान के सम्बन्ध मे यहाँ पर चन्द शब्द कहे जा सकते हैं। प्रारम्भ में किसी चीज से एक ही समय दो प्रकार की लागतें मिलने की बात मे विरोध दिखायी दे सकता है क्योंकि इसका लगान कुछ अर्थो मे इस चीज के उपयोग करने मे होने वाले खर्चो को घटाने के बाद शेष बचने वाली आय है, और किसी चीज के उपयोग की एक सी प्रक्रिया में तथा समानरूप से मिलने वाली आय के सम्बन्ध में दो प्रकार के अवशेष नही हो सकते। किन्तु जब कोई चीज मिश्रित नही होती है तो इसके प्रत्येक भाग का इस प्रकार उपयोग किया जा सकता है कि इससे इसके उपयोग में होने वाले खर्चों के अतिरिक्त आय का अधिशेष मिलता है। इसके अनुरूप लगानों को विश्लेषणात्मक रूप से अलग अलग किया जा सकता है, और कभी कभी तो उन्हें वाणिज्यिक रूप से भी पृथक किया जा सकता है।[1]

1 यह स्मरण रहे कि यदि कोई मकान किसी स्थान के उपयुक्त न हो तो इसका कुल किराया इसके स्थल लगान से अधिक नहीं होगा जितना कि मकान के उपयुक्त स्थल पर होने पर होता। इसी प्रकार की परिसीमाएँ (limitations) अधिकांश मिश्रित लगानों पर लागू होते हैं।

दृष्टान्त के लिए पानी द्वारा चलायी जाने वाली आटे की मिल के लगान में इस मिल को बनाने के स्थल तथा इस मिल द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली जल-शक्ति के लगान शामिल होते है। यदि किसी ऐसे स्थान पर मिल बनाने का विचार किया जाय जहाँ पर सीमित जलशक्ति हो और उसे अनेक स्थलों मे से किसी भी एक मे बराबर अच्छी तरह लगाया जा सकता हो तो जलशक्ति एवं इसके लिए चुने गये स्थल का लगान इन दोनों लगानों के योग के बराबर होगा। क्रमशः किसी स्थल पर अधिकार होने से किसी भी प्रकार के उत्पादन तथा किसी भी स्थल पर जलशक्ति के स्वामित्व से मिल चलाने के लाभों के अवकलन के तुल्यांक के बराबर होते हैं। इन दोनों लगानों को, चाहे उन पर एक ही व्यक्ति का स्वामित्व हो या नही, सिद्धान्तों एवं व्यवहारों, दोनों में स्पष्टरूप से पहचाना जा सकता है और इनका अलग से अनुमान लगाया जा सकता है।

किन्तु यदि मिल बनाने के लिए अन्य कोई स्थल न मिले तो ऐसा नही किया जा सकता: और उस दशा में यदि जलशक्ति एवं स्थल पर विभिन्न व्यक्तियों का स्वामित्व हो तो यह तय करने के लिए 'मोल-भाव' करने के अतिरिक्त और कुछ भी चारा नही है कि इन दोनों के कुल मूल्य मे अन्य उद्देश्यों के लिए उस स्थल के मूल्य को घटाने के बाद शेष रहने वाले मूल्य का कितना अंश पश्चादुक्त वस्तु के मालिक को मिलेगा। यदि वहाँ अन्य स्थल भी होते जिन पर जलशक्ति का प्रयोग तो किया जा सकता था किन्तु ऐसा अपेक्षाकृत कम ही दक्षता से किया जा सकता था तो भी यह तय करने के लिए कोई भी साधन उपलब्ध नही है कि उस स्थल तथा जलशक्ति के मालिक किस प्रकार उस उत्पादक अधिशेष का बटवारा करे जो उनके एक साथ काम करने से मिलने वाले उत्पादक अधिशेष मे से स्थल के किसी अन्य कार्य के लिए उपयोग करने तथा जलशक्ति के कही अन्यत्र प्रयोग किये जाने से मिलने वाले उत्पादकता अधिशेष को घटाने से शेष बचता है। सम्भवतः मिल तब तक नही बनायी जायेगी जब तक कि कुछ वर्षों तक जलशक्ति देने का इकरारनामा न कर लिया जाय: किन्तु उस इकरार-नामे के समाप्त होने पर जलशक्ति तथा उस स्थल पर मिल होने से मिलने वाले कुल उत्पादकता अधिशेष के बटवारे मे इसी प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी।

आंशिक एकाधिकारियों जैसे कि रेल, गैस, जल तथा विद्युत कम्पनियों द्वारा अपने व्यवसाय को उनसे प्राप्त सेवाओं के उपयोग करने के अनुकूल बनाने वाले और अपनी ही लागत पर इसके लिए एक कीमती संयंत्र लगा लेने वाले उपभोक्ताओं से अधिक प्रभार लेने के जो प्रयत्न किये जाते है उनसे इस प्रकार की कठिनाइयाँ निरन्तर उत्पन्न हो रही हैं। दृष्टान्त के लिए जब पिट्सबर्ग में विनिर्माताओं ने केवल की अपेक्षा प्राकृतिक गैस से जलने वाले भट्टे लगाये थे तो गैस की कीमत एकाएक दुगुनी हो गयी थी। खानों के इतिहास मे समीप के भूस्वामियों के साथ (मार्ग प्राप्त करने के अधिकार इत्यादि के सम्बन्ध मे) तथा समीप के कुटीरो, रेलों व गोदियो (docks) के मालिको के साथ इसी प्रकार की कठिनाइयो के उत्पन्न होने के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।[1]

1 एक ही व्यवसाय में तथा एक ही काम में लगे हुए विभिन्न वर्गों के श्रमिकों की रुचियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों के मिश्रित लगान के विषय से कुछ समा-नता है। आगे भाग 6, अध्याय 8, अनुभाग 9, 10 देखिए।

अध्याय 12

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि के सन्दर्भ में प्रसामान्य माँग तथा सम्भरण का साम्य, (पूर्वानुबद्ध)

§1. अब हम अध्याय 3 तथा 5 मे प्रारम्भ किये गये अध्ययन को जारी रखेंगे, और क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत की जाने वाली वस्तुओं के विषय मे माँग तथा सम्भरण के सम्बन्धों से सम्बन्धित कठिनाइयों की जाँच करेंगे।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति शीघ्रता से लागू नहीं होगी।

हम यह देख चुके है कि माँग के बढ़ने के साथ यह प्रवृत्ति कदाचित ही तीव्रता से लागू होती है। उदाहरण के लिए घड़ी के आकार के निर्द्रव वायुदाब-मापक यंत्रों (aneroids) के लिए एकाएक फैशन होने का सबसे पहला प्रभाव यह होगा कि इससे कीमत में अस्थायी वृद्धि हो जायेगी भले ही उनमे कोई ऐसी धातु नही होती जिसका केवल थोड़ा सा ही स्टाक हो। अन्य व्यवसायों से श्रमिकों को जिन्हे इस नये कार्य मे कोई विशेष प्रशिक्षण भी नही मिला है अत्यधिक मजदूरी देकर बुलाया जायेगा। *इस प्रकार बहुत अधिक मेहनत व्यर्थ चली जायेगी, और कुछ समय के लिए उत्पादन की* वास्तविक तथा द्रव्यिक लागत बढ़ जायेगी।

किन्तु इसके बाद भी यदि फैशन काफी देर तक बना रहे तो नये अविष्कार के हुए बिना निर्द्रव वायुदाब-मापक यंत्रों को बनाने की लागत धीरे धीरे घट जायेगी। क्योंकि श्रमिकों को विशिष्ट प्रकार के कार्यो मे प्रचुर मात्रा मे प्रशिक्षण दिया जायेगा, और अनेक प्रकार के कार्यो के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जायेगा। परस्पर बदले जा सकने वाले पुर्जों को अधिकांशतया प्रयोग मे लाने के कारण अब तक हाथ से किया जाने वाला बहुत सा कार्य विशिष्ट प्रकार की मशीनो से अधिक अच्छी तरह तथा कम कीमत पर किया जायेगा और इस प्रकार घड़ी के आकार के निर्द्रव वायुदाब-मापक यंत्रों के वार्षिक उत्पादन मे बराबर वृद्धि होने से उनकी कीमतें बहुत कम हो जायेगी।

लोच के अनुसार माँग तथा सम्भरण में अन्तर।

यहाँ पर माँग तथा सम्भरण के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए। जिस कीमत पर कोई वस्तु बेची जाती है उसमे कमी होने से माँग पर सर्दैव एक दिशा मे प्रभाव पड़ता है। वस्तु की माँग की मात्रा माँग के लोचदार या बेलोचदार होने के अनुसार बहुत अधिक या थोड़ी ही बढ़ सकती है: और कीमत में कमी होने के कारण उस वस्तु के नयी तथा बढ़ी हुई मात्रा मे उपयोग करने के लिए लम्बी या अल्प अवधि की आवश्यकता होती है।[1] किन्तु यदि उन अपवादजनक दशाओ को छोड़ दे जिनमे किसी वस्तु की कीमत कम हो जाने से उसका फैशन खत्म हो जाता है, कीमत का माँग पर पड़ने वाला प्रभाव सभी वस्तुओ के लिए एक सा ही होता है: और दीर्घकाल मे अधिक लोचदार माँगे प्रायः एकाएक ही अधिक लोच प्रदर्शित करती

1 ऊपर भाग 3, अध्याय 4, अनुभाग 5 देखिए।

हैं जिसमें से कुछ अपवादों के अतिरिक्त हम यह स्पष्ट किये बिना कि हम कितनी दूर तक विचार करना चाहते हैं, यह बतला सकते हैं कि किसी वस्तु के लिए मांग की लोच अधिक है या कम।

सम्भरण की लोच।

किन्तु सम्भरण के सम्बन्ध मे ऐसे कोई सरल नियम नही हैं। क्रेताओं द्वारा अधिक कीमत दिये जाने के कारण वास्तव मे सम्भरण में सदैव वृद्धि नहीं होती। और इसलिए यदि हम केवल अल्पकाल पर तथा विशेषकर विक्रेता-बाजार के सौदों के सम्बन्ध मे विचार कर रहे हों, तो यह सत्य है कि एक ऐसी 'सम्भरण की लोच' होगी जो मांग की लोच के अधिक अनुरूप हो। कहने का अभिप्राय यह है कि कीमत में निश्चित वृद्धि से विक्रेता जितना सम्भरण करना चाहते हैं उनके पास विद्यमान आरक्षित माल के अधिक या कम होने तथा भविष्य में बाजार में कीमतों के स्तर के ऊँचे या नीचे होने के अनुमान के अनुसार अधिक या कम वृद्धि होगी: और उन चीजों में जिनमें कि दीर्घकाल मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति पायी जाती है, तथा उनमें जिनमें कि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है, यह नियम लगभग समानरूप से लागू होता है। वास्तव मे यदि विनिर्माण की किसी शाखा के लिए आवश्यक कोई विशाल संयन्त्र पूर्णरूप से काम कर रहा हो, और उसमे तेजी से वृद्धि न की जा सके तो इससे उत्पादित माल के लिए दी जाने वाली कीमत मे वृद्धि से पर्याप्त समय तक उत्पादन मे प्रत्यक्षरूप में कोई वृद्धि नही होगी। जब कि हाथ से बनी हुई वस्तु की माँग मे इसी प्रकार की वृद्धि से सम्भरण मे तेजी से बड़ी वृद्धि होगी, भले ही दीर्घकाल मे इसके सम्भरण मे क्रमागत उत्पत्ति समता नियम या यहाँ तक कि; क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो।

दीर्घकाल से सम्बन्धित अधिक आधारभूत प्रश्नों में यह समस्या और भी अधिक जटिल है। क्योंकि प्रचलित कीमतों पर भी स्वच्छन्द माँग के अनुरूप अन्तिम उत्पादन की मात्रा सिद्धान्ततः असीमित होगी अतः किसी ऐसी वस्तु के सम्भरण की लोच जिसमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास या क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होता है दीर्घकाल में सिद्धान्ततः असीमित होती है।[1]

हमें किसी उद्योग तथा फर्म को होने वाली

§2. इसके बाद यह बात ध्यान में रखनी है कि किसी वस्तु के उत्पादन करने वाले उद्योग के क्रमिक विकास के कारण उस वस्तु की कीमत में जो कमी होने की प्रवृत्ति दिखायी देती है वह अपना व्यवसाय बढ़ाने वाली निजी फर्म द्वारा तेजी से नयी किफायतें प्राप्त करने की प्रवृत्ति से बिलकुल ही भिन्न है।

---

1 सही अर्थों में यदि समुचित संयंत्र तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन की व्यवस्था के विकास की अवधि को ध्यान में रखा जाय तो उत्पादन की मात्रा तथा इसका विक्रय मूल्य एक दूसरे के फलन है। किन्तु वास्तविक जीवन में प्रत्याशित उत्पादन से प्रति इकाई उत्पादन की लागत निकाली जाती है, न कि इसके विपरीत। अर्थशास्त्री सामान्यतः तथा इस पद्धति को अपनाते हैं, और वे मांग के सम्बन्ध में इस क्रम को उलटने में व्यावसायिक पद्धति का अनुसरण करते हैं। अर्थात् वे बिक्री में किसी निश्चित वृद्धि के लिए आवश्यक कीमतों में कमी की अपेक्षा कीमत में कमी होने के फलस्वरूप बिक्री में वृद्धि पर अधिकांशतया विचार करते हैं।

हम देख चुके हैं कि एक योग्य तथा उद्यमी विनिर्माता का हर अगला कदम इसके बाद के क़दम को अधिक सरल तथा अधिक तेज कर देता है, जिसमें उसकी तब तक प्रगति होती रहे जब तक कि उसका कार्य सुचारुरूप से चल रहा हो, और वह अपनी पूर्णशक्ति, लोचकता एवं रुचि के अनुसार कठिन काम करता जाता है। किन्तु ये चीजें हमेशा नहीं बनी रहेंगी: इनके समाप्त होते ही उसका व्यवसाय उन्हीं कारणों में कुछ कारणों से नष्ट हो जायेगा जिनसे इसकी प्रगति हुई थी। ऐसा केवल तब नहीं होगा जब वह इसे अपने ही बराबर सामर्थ्यवान लोगों को सौंप दे। जिस प्रकार पहले दिये गये दृष्टान्त को दुहराते हुए किसी वृक्ष की पत्तियाँ पूर्णरूप से विकसित होती हैं, साम्य की स्थिति में पहुँचती हैं तथा अनेक बार झड़ जाती हैं, किन्तु वृक्ष हर वर्ष धीरे-धीरे ऊपर उठता जाता है।[1] उसी प्रकार व्यक्तिगत फर्मों का उत्थान पतन बहुधा होता रहेगा, किन्तु एक बड़ा उद्योग एक लम्बे दोलन में होकर बढ़ेगा, या यहाँ तक कि धीरे धीरे प्रगति करता जायेगा।

किफायतों में अन्तर स्पष्ट करना चाहिए।

किसी एक फर्म को प्राप्त उत्पादन की सुविधाओं को नियंत्रित करने वाले कारण उन कारणों से बिलकुल भिन्न होते हैं जिनसे किसी उद्योग के सम्पूर्ण उत्पादन को नियंत्रित किया जाता है। जब हम विपणन की कठिनाइयों को भी ध्यान में रखते हैं तो इनमें विपर्यय सम्भवतः और भी अधिक हो जाता है। दृष्टान्त के लिए विशेष रुचि के अनुकूल विनिर्माण बहुत छोटे पैमाने पर ही किये जा सकते हैं, और साधारणतया ये इस किस्म के होते हैं कि अन्य व्यवसायों में पहले से विकसित हुई मशीनों तथा संगठन प्रणालियों को सरलतापूर्वक इनके अनुकूल बनाया जा सकता है, जिससे उनके उत्पादन के पैमाने पर बड़ी वृद्धि होने से एकाएक अनेक किफायतें मिलने लगें। किन्तु ये ही वे उद्योग हैं जिनमें प्रत्येक फर्म न्यूनाधिकरूप में अपने विशेष बाजार तक ही सीमित रहती है, और यदि यह इस प्रकार से सीमित हो तो उस बाजार में इसके उत्पादन में शीघ्र वृद्धि होने से अपेक्षाकृत जो अधिक किफायतें मिलेंगी उनसे इसकी माँग कीमत कहीं अधिक कम हो जायेगी; यद्यपि जिस व्यापक बाजार के लिए अधिक सामान्य अर्थ में यह उत्पादन करती है उसके अनुपात में इसका उत्पादन बहुत कम है।

विपणन की कठिनाइयों से अधिक उत्पादन करने की सुविधाओं में बाधा पड़ती है।

वास्तव में, जब व्यापार मन्द होता है तो उत्पादक बहुधा अपने विशेष बाजार के बाहर ऐसी कीमतों पर अपनी कुछ अतिरिक्त वस्तुओं को बेचने की कोशिश करेगा जिनसे उनकी मूल लागतों के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता: जबकि उस बाजार में वह अभी भी ऐसी कीमतों पर विक्रय करने की कोशिश करता है जिनसे लगभग अनुपूरक लागतें पूरी हो जायेंगी। इन कीमतों का अधिकांश भाग वह प्रतिफल है जिसकी उसके व्यवसाय के बाह्य संगठन को बनाने में लगी हुई पूँजी से मिलने की प्रत्याशा हो।[2]

---

1 भाग 4, अध्याय 9-13, तथा विशेषकर अध्याय 11, अनुभाग 5 देखिए।

2 इसे यह कहकर व्यक्त किया जा सकता है कि जब हम किसी व्यक्तिगत उत्पादक पर विचार कर रहे हों तो हमें उसकी सम्भरण रेखा को विस्तृत बाजार में उसकी उत्पादित वस्तु के लिए सामान्य माँग रेखा की अपेक्षा उसकी अपनी विशेष

पुनः आमतौर पर अनुपूरक लागतें अन्य चीजों की अपेक्षा ऐसी चीजों की मूल लागतों से अधिक होती हैं जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है,[1] क्योंकि उनके उत्पादन के लिए भौतिक उपकरणों में तथा व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना में अत्यधिक पूँजी का विनियोजन करना पड़ता है। इससे स्वयं अपने अद्भुत बाजार को बिगाड़ने या अन्य उत्पादकों द्वारा सामान्य बाजार को बिगाड़ने के लिए निन्दित होने का भय बढ़ जाता है। इन्हीं से, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, उत्पादन के उपकरणों के पूर्णरूप से कार्यरत न होने पर वस्तुओं की अल्पकालीन सम्भरण कीमत नियंत्रित होती है।

अतः हम व्यक्तिगत उत्पादक की सम्भरण की परिस्थितियों को उन परिस्थितियों का विशेषरूप नहीं मान सकते जिनसे किसी बाजार में सामान्य सम्भरण नियंत्रित होता है। हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि बहुत कम फर्में ऐसी होती हैं जो लम्बे समय तक लगातार सक्रियरूप से प्रगति करती हैं, और यह भी ध्यान में रखना है कि व्यक्तिगत उत्पादक तथा उसके विशेष बाजार के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध उन सम्बन्धों से महत्वपूर्ण रूप में भिन्न हैं जो समस्त उत्पादकों तथा सामान्य बाजार के बीच पायी जाती है।[2]

बाजार की ही माँग रेखा से मिलाना चाहिए। यह माँग रेखा साधारणतया बहुत ढालू होगी और सम्भवतः उतनी ही ढालू होगी जितनी कि उसकी अपनी सम्भरण रेखा हो सकती है, भले ही उत्पादन में वृद्धि से उसे महत्वपूर्ण आन्तरिक किफायतें होंगी।

1 वास्तव में यह नियम सार्वभौमिक नहीं है। दृष्टान्त के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि सभी स्टेशनों पर रुकने वाली बस (omnibus) की, जिसमें सभी मार्ग में यात्रियों की कमी रहे तथा चार पेंस किराये की क्षति उठानी पड़े, निवल क्षति तीन पेंस के बजाय चार पेंस के निकट होगी यद्यपि इस व्यवसाय में सम्भवतः क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होता है। पुनः रेजिन्ट स्ट्रीट का मोची, जो चीजें हाथ से बनाता है किन्तु जिसके विपणन के खर्चे बहुत अधिक हैं, यदि बाजार बिगड़ने के डर से नहीं तो किसी ऐसे मोची की अपेक्षा जो अधिक खर्चीली मशीनों का प्रयोग करता है और स्वयं बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की सामान्य किफायतें साधारणतया प्राप्त करता है किसी विशेष आर्डर को हाथ से न जाने देने के लिए सामान्य कीमत से भी कम कीमत लेने का इच्छुक रहता है। संयुक्त उत्पादन की अनुपूरक लागतों से सम्बन्धित और भी अनेक कठिनाइयाँ हैं, जैसे कि विज्ञापन के लिए कुछ वस्तुओं को लगभग मूल लागत पर बेचने की पद्धति (ऊपर भाग 5, अध्याय 7, अनुभाग 2 को देखिए) किन्तु इन पर यहाँ पर विशेषरूप से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

2 व्यक्तिगत फर्म को अपने उत्पादन में वृद्धि करने से मिलने वाली उत्पादन की किफायतों के प्रभावों के विषय में गूढ़ तर्कों से, न केवल विस्तार में, अपितु इनके सामान्य प्रभाव में भी भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। ऐसा कहना इस कथन के ही बराबर है कि ऐसी स्थिति में सम्भरण के नियंत्रित करने वाली दशाओं को पूर्णतः ध्यान न रखना चाहिए। ये बहुधा छिपी हुई कठिनाइयों में दूषित हो जाती हैं और गणितीय

§3. इस प्रकार एक व्यक्तिगत फर्म का इतिहास सम्पूर्ण उद्योग का इतिहास नहीं माना जा सकता, जैसे कि एक व्यक्ति की पाण्डुलिपि को मानव समाज का इतिहास नहीं माना जा सकता। इस पर भी मानव समाज का इतिहास व्यक्तियों के इतिहास का ही परिणाम है और किसी सामान्य बाजार का कुल उत्पादन व्यक्तिगत उत्पादकों के अपने उत्पादन को बढाने अथवा घटाने के प्रयोजनों का परिणाम है। ठीक यही पर प्रतिनिधि फर्म के विचार से सहायता मिलती है। हम किसी भी स्थिति में ऐसी फर्म की कल्पना करते हैं जिसमे इससे सम्बन्धित किसी उद्योग के कुल उत्पादन की पर्याप्त आन्तरिक एवं बाह्य किफायते मिलती है। हम यह जानते है कि इस प्रकार की फर्म का आकार आंशिक रूप से उसकी कार्यपद्धति एवं परिवहन-लागत पर निर्भर रहते हुए अन्य बातों के समान रहने पर, उद्योग के सामान्य विस्तार से नियंत्रित होता है। हम यह मानते है कि इसका प्रबन्धक अपने कारोबार मे कुछ खास नयी चीजे बढाने, या नयी मशीन का उपयोग करने इत्यादि की लाभदायकता पर विचार-विमर्श करता है। हम यह मानते है कि वह उस परिवर्तन के फलस्वरूप होने वाले उत्पादन को न्यूनाधिक रूप में एक इकाई मानता है, और अपने मस्तिष्क मे लाभ तथा लागत का मूल्यांकन करता है।[1]

इस कठिनाई का हल प्रतिनिधि फर्म के कार्य पर निर्भर होता है।

सूत्रों द्वारा व्यापार की साम्य की दशाओं को व्यक्त करने के प्रयास में विशेषकर कष्टदायक है। कुछ लोग, जिनमें स्वयं कुर्नो भी शामिल है, अपने सम्मुख किसी व्यक्तिगत फर्म की सम्भरण सारणी रखते हैं जो इस बात का प्रतिनिधित्व करती है कि इसके उत्पादन में वृद्धि से इसे इतनी अधिक आन्तरिक किफायतें मिल जाती हैं जिनसे इसके उत्पादन के खर्चे घट जाते है। वे अपने गणित का बड़े साहस के साथ अनुकरण करते हैं, किन्तु स्पष्टतः यह ध्यान नहीं देते कि उनके आधार-वाक्य (Premises) अनिवार्यरूप से इस निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि जिस किसी फर्म का प्रारम्भ अच्छा हो जाता है उसे उस क्षेत्र में उस व्यवसाय में एकाधिकार प्राप्त हो जाता है। अन्य फर्में जो संकट के संकेत को दूर करते हुए यह मानती हैं कि जिन वस्तुओं में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है उनमें कोई भी साम्य की स्थिति नहीं होती, और कुछ लोगों ने किसी ऐसी सम्भरण सारणी के औचित्य पर आपत्ति की है जो उत्पादन में वृद्धि के साथ कीमतों को घटती हुई प्रदर्शित करती है। गणितीय टिप्पणी 14 को देखिए जहाँ इस विवेचन का प्रसंग दिया गया है।

मुख्य सामान्य तर्को द्वारा महत्वपूर्ण एवं ठोस विषय को अधिकांशरूप में एक स्वतन्त्र समस्या मानकर इस प्रकार की कठिनाइयों का हल निकाला जा सकता है। सामान्य धारणाओं के प्रत्यक्ष प्रयोगों को इस प्रकार बढ़ाने के प्रयास कि उनसे सभी कठिनाइयों के समुचित हल निकल सकें, उन्हें इतने दुष्कर बना देते हैं कि वे अपने मुख्य कार्य में बहुत कम उपयोगी रह जाते हैं। अर्थशास्त्र के 'सिद्धान्तों' को जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित बातों पर सलाह देने का लक्ष्य रखना चाहिए, किन्तु ऐसा करने में इन्हें यह दावा नहीं करना चाहिए कि ये किसी स्वतन्त्र अध्ययन एवं विचार प्रणाली का स्थान ग्रहण कर सकती है।

1 भाग 5, अध्याय 5, अनुभाग 6 देखिए।

इस प्रकार हम माँग में धीरे धीरे वृद्धि होने के साथ साथ कम होने वाली वास्तविक दीर्घकालीन सीमान्त लागत पर पहुँचते है।

इस प्रकार यही वह सीमान्त लागत है जिस पर हम ध्यान केन्द्रित करते हैं। हम यह प्रत्याशा नही करते कि यह मांग मे एकाएक वृद्धि होने से तुरन्त ही कम हो जायेगी। इसके विपरीत हम यह प्रत्याशा करते हैं कि बढ़ते हुए उत्पादन के साथ साथ अल्पकालीन सम्भरण कीमत बढ़ती जाती है। किन्तु हम यह भी प्रत्याशा करते हैं कि इस प्रतिनिधि फर्म के आकार तथा इसकी कार्यक्षमता को धीरे धीरे बढाने के लिए माँग मे भी धीरे धीरे वृद्धि होती है, और इसमे सुलभ हो सकने वाली आन्तरिक एवं बाह्य किफायतें बढती हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब इन उद्योगो मे दीर्घकालीन सम्भरण कीमतों की सूचियाँ (सम्भरण सारिणी) बनायी जाती है तो हम वस्तुओं की बढ़ी हुई मात्रा के सामने घटी हुई सम्भरण कीमत को लिखते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए सम्भरण को तदनुकूल बढ़ी हुई मात्रा को उस घटी हुई कीमत पर बेचना लाभदायक होगा। यहाँ पर हम नये महत्त्वपूर्ण आविष्कारों से होने वाली किफायतो को शामिल नही करते किन्तु उन किफायतों को शामिल करते है जो विद्यमान विचारो के अनुकूलन (adaptation) से स्वभावतः प्राप्त होते हैं, और हम प्रगति एवं विनाश की शक्तियों के बीच उस सन्तुलन या साम्य की स्थिति की ओर दृष्टि डालते हैं जिसे विचाराधीन दशाओ के लम्बे समय तक समानरूप से विद्यमान रहने पर प्राप्त किया जायेगा। किन्तु इस प्रकार के विचारों का व्यापक अर्थ लगाना चाहिए। उन्हें नियत करना हमारी शक्ति के बाहर है। यदि हम वास्तविक जीवन की लगभग सभी दशाओं को ध्यान में रखें तो इस समस्या का हल निकालना बडा कठिन हो जाता है और यदि हम इसकी कुछ ही दशाओं को चुनें तो उनके सम्बन्ध में लम्बे तथा सूक्ष्म तर्क व्यावहारिक कार्य के लिए इंजिन की भाँति काम करने की अपेक्षा वैज्ञानिक खिलौनें का काम करते हैं।

विशुद्ध सिद्धान्त अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओं में वास्तविक तथ्यों से बहुत कम विचलित होता है, किन्तु अत्यधिक उपयोग करने से इसका व्याव-

सामान्य माँग तथा सम्भरण के स्थिरसाम्य का सिद्धान्त हमारे विचारों को निश्चितता प्रदान करने मे सहायक होता है, और प्रारम्भिक रूप में यह जीवन के वास्तविक तथ्यों से इतना विचलित नही होता कि सबसे प्रबल तथा सबसे स्थायी आर्थिक शक्तियों के कार्य की मुख्य प्रणालियों का पर्याप्त विश्वनीय रूप न दिखायी दे। किन्तु जब इससे सुदूर के तथा जटिल तार्किक निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो यह वास्तविक जीवन की दशाओं पर प्रकाश नही डाल पाता। वास्तव मे हम यहाँ पर आर्थिक प्रगति के ऊँचे विषय के निकट होते हैं, और अतः यहाँ पर यह याद रखना लाभप्रद होगा कि आर्थिक समस्याओं को उस समय अपूर्णरूप मे प्रस्तुत किया जाता है जब उन्हें जीवसम्बन्धी समस्याएँ न मानकर स्थैतिक साम्य की समस्याएँ माना जाता है। क्योंकि यद्यपि इन्हें स्थैतिक मानने से ही विचार प्रणाली निश्चित एवं यथार्थ हो सकती है, और इसलिए यह समाज को जीव के रूप मे अधिक दार्शनिक रूप देने के लिए एक आवश्यक भूमिका है, किन्तु यह भूमिका मात्र ही है।

साम्य का स्थैतिक सिद्धान्त आर्थिक अध्ययनो की केवल भूमिका है और यह उन उद्योगों की प्रगति तथा विकास की शायद ही भूमिका मानी जा सकती है जिनमें क्रमागत

उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसकी कमियों को विशेषकर उन लोगों द्वारा, जो इसे भावात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं, निरन्तर इतनी अवहेलना की जाती है जिससे इसे निश्चितरूप देने में भी भय लगता है। किन्तु इस सावधानी को बरतते पर यह जोखिम लिया जा सकता है। इस विषय का परिशिष्ट ज (H) मे सक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

हारिक मूल्य तेजी से घटने लगता है।

अध्याय 13

अधिकतम सन्तुष्टि के सिद्धान्त के सन्दर्भ में प्रसामान्य माँग तथा सम्भरण में परिवर्तनों का सिद्धान्त

माँग तथा सम्भरण की दशाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर विचार।

§1. इस भाग के प्रारम्भ के अध्याय मे, और विशेषकर अध्याय 12 मे हम माँग तथा सम्भरण के समायोजन में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों पर विचार कर चुके हैं। किन्तु फैशन मे बडे तथा स्थायी परिवर्तन, किसी नये महत्वपूर्ण आविष्कार, युद्ध या महामारी से जनसख्या में कमी, या विचाराधीन वस्तु के सम्भरण या इसमे उपयोग किये जाने वाले कच्चे माल, या किसी अन्य प्रतियोगी एवं सम्भाव्य स्थानापन्न वस्तु के साधनों के विकास या ह्रास—इनमे से किसी भी परिवर्तन के कारण किसी वस्तु के निश्चित वार्षिक (या दैनिक) उपभोग तथा उत्पादन की कीमतें उस उपभोग तथा उत्पादन की माँग तथा सम्भरण कीमतें नही रहती। अन्य शब्दो में, इनके कारण एक नयी माँग या नयी सम्भरण सारणी का या इन दोनों का बनाना आवश्यक हो जाता है। हम अब इन समस्याओं पर विचार करते हैं।

प्रसामान्य माँग या प्रसामान्य सम्भरण में वृद्धि का अभिप्राय।

किसी वस्तु की प्रसामान्य माँग मे वृद्धि से उस वस्तु की विभिन्न मात्राओं के विक्रय की कीमत बढ जाती है, या यह भी कह सकते है कि इससे हर कीमत पर विक्रय की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है। उस वस्तु के फैशन मे अधिक आने, उसका नये ढंग से उपयोग किये जाने या उसके लिए नये बाजारों के मिल जाने, जिस वस्तु के लिए उसका स्थापन्न वस्तु के रूप मे उपयोग किया जाता है उसके सम्भरण मे स्थायीरूप से कमी होने, समाज की सम्पत्ति एवं सामान्य क्रयशक्ति मे स्थायी वृद्धि, इत्यादि से माँग में यह वृद्धि हो सकती है। इसके विपरीत दिशा मे परिवतनों के होने से माँग मे कमी होगी, और माँग कीमतें घटने लगेंगी। इसी प्रकार प्रसामान्य सम्भरण में वृद्धि का अभिप्राय विभिन्न कीमतो पर सम्भरण की जाने वाली मात्रा में वृद्धि तथा विभिन्न मात्राओं की सम्भरण कीमत मे कमी से होता है।[1]

---

[1] माँग अथवा सम्भरण कीमतों में वृद्धि या कमी से निस्सन्देह माँग या सम्भरण रेखा ऊपर को बढ़ने लगती है या नीचे की ओर आने लगती है। यदि परिवर्तन धीरे-धीरे हो तो माँग रेखा को क्रमशः अनेक स्थितियाँ होंगी जिनमें से प्रत्येक पहले की अपेक्षा थोड़ी नीची होगी इस प्रकार हम उत्पादन के पैमाने में वृद्धि से उत्पन्न होने वाले औद्योगिक संगठन के क्रमिक सुधार के प्रभावों को व्यक्त कर सकते थे और इसे हमने दीर्घकालीन रेखाओं की सम्भरण कीमत पर पड़ने वाले प्रभाव के रूप में व्यक्त किया है। सर एच० कनिंगहम (Sir H. Cunynghame) द्वारा निजीरूप से प्रकाशित मेधापूर्ण लेख में एक सुझाव दिया गया है जिसका अभिप्राय यह है कि किसी दीर्घकालीन सम्भरण रेखा को कुछ अंशों में अल्पकालीन रेखाओं की एक शृंखला का प्रतिनिधित्व करता हुआ मानना चाहिए। इनमें प्रत्येक रेखा की सम्पूर्ण लम्बाई में औद्योगिक संगठन

यह परिवर्तन सुधरे हुए यातायात या किसी अन्य प्रकार से प्राप्त सम्भरण के नये साधन से, किसी उत्पादन की कला के विकास से (जैसे कि नयी प्रक्रियाओं या नयी मशीनों के आविष्कार) या उत्पादन में अधिदान (bounty) देने से किया जा सकता है। इसके विपरीत, सामान्य सम्भरण में कमी (या सम्भरण सारणी का ऊपर उठना) सम्भरण के नये साधनों के समाप्त होने से या कर लगने से हो सकता है।

प्रसामान्य माँग में वृद्धि के प्रभाव।

§2. हमें प्रसामान्य माँग में वृद्धि के प्रभावों पर विचाराधीन वस्तु में क्रमागत उपत्ति समता या क्रमागत उत्पत्ति ह्रास या क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने के अनुसार तीन दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिए: अर्थात् यह देखना चाहिए कि उत्पादित मात्रा में वृद्धि के साथ इसकी सम्भरण कीमत लगभग स्थिर रहती है, या बढ़ती है या घटती है।

पहली दशा में माँग में वृद्धि से इसकी कीमत में परिवर्तन हुए बिना उत्पादन में वृद्धि होती है, क्योंकि क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अनुसार उत्पन्न की जाने वाली वस्तु की प्रसामान्य कीमत इसके उत्पादन के खर्चों से ही पूर्णतया निश्चित होती है: माँग का इसमे, इस बात के अतिरिक्त कि इस निश्चित कीमत पर जब तक कुछ माँग न हो तब तक उस वस्तु का उत्पादन नहीं किया जायेगा, कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

यदि उस वस्तु में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता हो तो इसके लिए माँग के बढ़ने से इसकी कीमत बढ जाती है और इसका अधिक उत्पादन होने लगता है। किन्तु यदि इसमें क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होता तो इसका इतना अधिक उत्पादन नहीं होता।

इसके दूसरी ओर, यदि उस वस्तु का क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार उत्पादन हो तो माँग में वृद्धि से इसे बहुत अधिक उस वस्तु मे क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अनुसार उत्पादन होने की अपेक्षा अधिक मात्रा में उत्पादन किया जायेगा, और साथ ही साथ इसकी कीमत भी कम हो जायेगी। दृष्टान्त के लिए, यदि किसी एक प्रकार की हजारों चीजों का उत्पादन किया गया हो और प्रति सप्ताह 10 शिलिंग की कीमत पर बेचा जाय, जब कि प्रति सप्ताह दो हजार की सम्भरण कीमत केवल 9 शिलिंग हो तो प्रसामान्य माँग में किंचित् वृद्धि से धीरे धीरे इसकी ही प्रसामान्य कीमत हो जाने की सम्भावना होगी। यहाँ पर हम उतनी लम्बी अवधि पर विचार कर रहे है जिससे सम्भरण को निर्धारित करने वाले कारणों का पूर्ण सामान्य प्रभाव दिखायी दे। यदि प्रसामान्य माँग बढ़ने की अपेक्षा घटने लगे तो उसका परिणाम इसके विपरीत होगा।[1]

के उस विकास की कल्पना की गयी है जो वास्तव में उस रेखा के दीर्घकालीन सम्भरण रेखा को काटने के बिन्दु की ख क से दूरी द्वारा नापे जाने वाले उत्पादन के पैमाने से सम्बन्धित है। (परिशिष्ट ज (H) से तुलना कीजिए), और माँग के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

1 इस अध्याय में आयी हुई समस्याओं को अच्छी तरह समझने के लिए रेखा-चित्र विशेषरूप से उपयोगी है:—

उदीयमान उद्योगों का संरक्षण।

कुछ लेखकों का यह विचार है कि इस अनुभाग में दिये गये तर्क से इस दावे का पक्ष पोषण होता है कि आयात की जाने वाली विनिर्माण की गयी सामान्य वस्तुओं पर सरक्षण-कर (protective duty) लगाने से उन आयातों के लिए देश में बाजार बढ़ जायेगा और क्रमागत उत्पत्ति नियम के लागू होने से अन्ततोगत्वा देश के उपभोक्ताओं को कम कीमत देनी पड़ेगी। वास्तव मे उदीयमान उद्योगों को संरक्षण देने के बुद्धिमत्ता पूर्ण चयन से किसी नये देश में जहाँ नवजात शिशुओं की भाँति विनिर्माताओं में तीव्र वृद्धि की शक्ति होती है, इसी परिणाम पर पहुँचा जा सकता है। किन्तु वहाँ पर भी इसी नीति को उसके उचित उपयोगों में न लगाकर सम्भवतया विशेष हितों

रेखाचित्र 24, 25, 26 क्रमशः क्रमागत उत्पत्ति समता, उत्पत्ति ह्रास तथा उत्पत्ति वृद्धि की तीन दशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्तिम दशा में, उत्पादन में वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्थाओं में तो घटती हुई दर पर प्रतिफल मिलता है, किन्तु साम्य की वास्तविक स्थिति अर्थात् ख ह मात्रा से अधिक मात्रा प्राप्त होने के बाद बढ़ती हुई दर में प्रतिफल मिलता है।
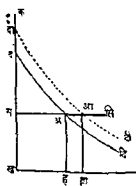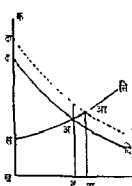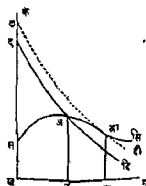
रेखाचित्र 24 रेखाचित्र 25 रेखाचित्र 26

हर दशा में स सि सम्भरण रेखा को, द दि माँग रेखा की पुरानी स्थिति को, तथा दा दी सामान्य माँग में वृद्धि के बाद की स्थिति को प्रदर्शित करती हैं। हर दशा में अ तथा आ क्रमशः साम्य की पुरानी तथा नयी स्थितियाँ हैं। अ ह तथा आ हा पुरानी तथा नयी सम्भरण या साम्य कीमतें हैं, और ख ह तथा ख हा पुरानी तथा नयी साम्य की मात्राएँ हैं। ख हा हर दशा में ख ह से बड़ी है, किन्तु रेखाचित्र 25 में यह थोड़ी ही बड़ी है, जबकि रेखाचित्र 26 में यह बहुत अधिक बड़ी है। सामान्य सम्भरण की दशाओं में परिवर्तनों के प्रभावों की इसी प्रकार की, किन्तु अधिक महत्वपूर्ण समस्या का अध्ययन करते समय आगे अपनायी गयी योजना के अनुसार इस विश्लेषण को आगे बढ़ाया जायेगा। रेखाचित्र 24 में आ हा, अ ह के बराबर, रेखाचित्र 25 में उससे बड़ी, रेखाचित्र 26 में उससे छोटी है।

दा दी को अब माँग रेखा की पुरानी स्थिति तथा द दि को नयी स्थिति मानकर, असामान्य माँग में कमी के प्रभाव का इन्हीं रेखाचित्रों से पता लगाया जा सकता है जिसमें आ हा पुरानी तथा अ ह नयी साम्य कीमतें हैं।

की वृद्धि के लिए लगाया जा सकता है। जिन उद्योगों में मताधिकार वाले लोग बहुत बड़ी संख्या मे लगे हुए है उनमे पहले से ही इतने बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है जिससे इसमे और भी वृद्धि होने से बहुत कम नयी किफायतें मिलेगी। निस्सन्देह इंग्लैंड की भाँति बहुत पहले से ही मशीनो से परिचित देश मे उद्योग उस अवस्था को पार कर चुके होते हैं जिस पर वे इस प्रकार के संरक्षण से अधिक वास्तविक सहायता प्राप्त कर सकें: यदि किसी एक उद्योग को ही संरक्षण मिले तो उससे अन्य उद्योगों के लिए बाजार, विशेष कर विदेशी बाजार, प्रायः संकुचित हो जाता है। इन थोड़े से अभिवचनों से यह प्रदर्शित होता है कि यह विषय जटिल है, और इनमे इससे अधिक गहराई तक पहुँचने का आभास भी नही रहता।

सम्भरण की सुविधाओं में वृद्धि का प्रभाव।

§3. हम देख चुके हैं कि सामान्य माँग मे वृद्धि से जहाँ सदैव अधिक उत्पादन होता है वहाँ इससे कुछ दशाओं मे कीमतें बढ़ेंगी, और अन्य मे घटेंगी। किन्तु अब हमें यह देखना है कि सम्भरण की सुविधाओ मे वृद्धि से (सम्भरण सारणी को नीचा कर) उत्पादन मे वृद्धि होने के साथ साथ प्रसामान्य कीमत मे सदैव कमी होगी। क्योंकि जब तक प्रसामान्य माँग में कोई भी परिवर्तन न हो, सम्भरण की बढ़ी हुई मात्रा को केवल कम कीमत पर ही बेचा जा सकता है, किन्तु सम्भरण मे कुछ निश्चित वृद्धि होने के कारण कुछ दशाओं मे अन्य की अपेक्षा कीमत मे बहुत अधिक कमी होगी। यदि उस वस्तु का क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार उत्पादन हो तो यह कमी थोड़ी ही होगी, क्योंकि उत्पादन में वृद्धि की कठिनाइयों से सम्भरण की नयी सुविधाओं का प्रभाव विफल हो जायेगा। दूसरी ओर यदि उस वस्तु का क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार उत्पादन हो तो उत्पादन मे वृद्धि से अधिकाधिक सुविधाएँ मिलेंगी और ये सम्भरण की सामान्य दशाओ मे परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली सुविधाओ के साथ जुड़ जायेंगी। इन दोनो के सम्मिश्रण से उत्पादन मे बहुत वृद्धि हो सकेगी, और तदुपरान्त माँग कीमत में कमी के फलस्वरूप सम्भरण कीमत में कमी होने के पूर्व ही कीमत घट जायेगी। यदि माँग बहुत लोचपूर्ण हो तो सामान्य सम्भरण की सुविधाओं में थोड़ी वृद्धि होने से, अर्थात् नये आविष्कार होने, मशीन का नये ढंग से उपयोग करने, सम्भरण के नये तथा अधिक सस्ते साधन प्राप्त करने, कर लगना समाप्त हो जाने या अधिदान के मिलने इत्यादि से विपुल मात्रा मे उत्पादन में वृद्धि तथा कीमत में कमी होगी।[1]"

---

1 इन सभी चीजों को रेखाचित्रों की सहायता से अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है और वास्तव में इस समस्या के कुछ भाग को बिना इनकी सहायता से, संतोषजनक रूप से नहीं समझाया जा सकता। रेखाचित्र 27, 28, 29 क्रमशः क्रमागत उत्पत्ति समता, उत्पत्ति ह्रास तथा उत्पत्ति वृद्धि के नियमों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक दशा में द दि माँग रेखा है। स सि सम्भरण रेखा की पुरानी स्थिति को तथा सा सी इसकी नयी स्थिति को व्यक्त करती है। स्थिर साम्य की अ पुरानी तथा आ नयी स्थिति है। सदा ही ख हा, ख ह से बड़ी है, और आ हा, अ ह से छोटी है: किन्तु

यदि अध्याय 6 मे विवेचन की गयी मिश्रित एवं संयुक्त माँग तथा सम्भरण की परिस्थियो को ध्यान मे रखे तो हम प्रायः नाना प्रकार की समस्याओं को अपने सम्मुख रखते है जो इन दो अध्यायो मे अपनायी गयी प्रणालियो द्वारा जानी जा सकती हैं।

रेखाचित्र 28 में इनमें थोड़ा तथा रेखाचित्र में 29 अधिक अन्तर है। निश्चय ही माँग रेखा पुरानी सम्भरण रेखा के नीचे अ बिन्दु के दाहिनी ओर होनी चाहिए, अन्यथा अ स्थिर साम्य का बिन्दु न होकर अस्थिर साम्य का बिन्दु होगा। किन्तु इस शर्त के अनुसार माँग जितनी ही अधिक लोचपूर्ण होगी, अर्थात् अ बिन्दु पर माँग रेखा लगभग जितनी ही आड़ी हो आ, अ से उतना ही दूर होगी, और अतएव उत्पादन में उतनी ही अधिक वृद्धि तथा कीमत में उतनी ही अधिक कमी होगी।
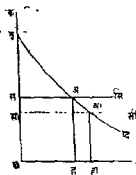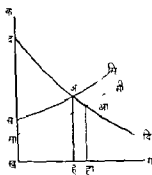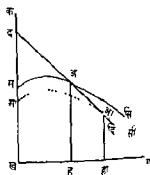
रेखाचित्र 27 रेखाचित्र 28 रेखाचित्र 29

वस्तुतः यह सारा निष्कर्ष जटिल है। किन्तु इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। सर्वप्रथम, यदि अ बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात हो तो उत्पादन पर अतिरिक्त पूंजी तथा श्रम लगाने से मिलने वाला प्रतिफल जितना ही अधिक होगा उत्पादित मात्रा में उतनी ही अधिक वृद्धि तथा कीमत में उतनी ही अधिक कमी होगी। अर्थात् रेखाचित्र 28 में अ बिन्दु पर सम्भरण रेखालगभग जितनी ही अधिक आड़ी होगी, तथा रेखाचित्र 29 में, (बशर्ते यह अ बिन्दु के दाहिनी ओर माँग रेखा के नीचे नहीं रहती और इस प्रकार अ को अस्थिर साम्य का बिन्दु बना देती है) यह जितनी ही ऊपर को उठी होगी उत्पादित मात्रा में उतनी ही अधिक वृद्धि तथा कीमत मे उतनी ही अधिक कमी होगी। दूसरी बात यह है कि यदि अ बिन्दु पर सम्भरण रेखा की स्थिति ज्ञात हो तो माँग की लोच जितनी ही अधिक होगी प्रत्येक दशा में उत्पादन में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी, किन्तु कीमत में रेखा-चित्र 28 में उतनी ही कम तथा रेखा-चित्र 29 में उतनी ही अधिक कमी होगी। रेखाचित्र 27 को रेखाचित्र 28 या 29 को परिसीमित करने वाली दशा माना जा सकता है।

इस सारे तर्कवितर्क में यह कल्पना की गयी है कि वस्तु के उत्पादन में या तो क्रमागत उत्पत्ति ह्रास या क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। यदि इसमें पहले क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो, और उसके पश्चात् क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो जिससे सम्भरण रेखा एक जगह धनात्मक रूप में और दूसरी जगह

जिन परिवर्तनों से सम्भरण सारणी ऊपर उठती है या गिर जाती है उनको किसी कर या अधिदान द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

§4. हम अब सम्भरण की दशाओं में परिवर्तन से उपभोक्ता अधिशेष या लगान पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार करेंगे। संक्षेप मे किसी कर को सामान्यतया वृद्धि करने वाले परिवर्तनों का, तथा अधिदान को उन परिवर्तनों का प्रतिनिधि माना जा सकता है जिनसे किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सामान्य सम्भरण कीमत में साधारण कमी होती है।

क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के लागू होने पर।

सर्वप्रथम यदि किसी वस्तु का उत्पादन क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अनुसार हो जिससे उस वस्तु की सभी मात्राओं की सम्भरण कीमत समान हो तो उत्पादकों को किये जाने वाले बढ़े हुए भुगतान की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष मे अधिक कमी होगी। और इसलिए किसी कर के विशेष प्रसंग मे राज्य की कुल आमदनी की अपेक्षा इस अधिशेष में अधिक कमी होगी क्योंकि कर लगने के बाद भी उस वस्तु के जितने भाग का उपभोग होता रहता है उससे उपभोक्ता को जो क्षति होती है वही राज्य की आमदनी है। कीमत बढ़ने से उपभोग मे जितनी कमी होती है उस पर मिलने वाला उपभोक्ता अधिशेष भी नष्ट हो जाता है। निश्चय ही इसके लिए न तो उत्पादक को और न राज्य को ही कोई भुगतान किया जाता है।[1] इसके विपरीत, क्रमागत उत्पत्ति समता

ऋणात्मक रूप से झुकी हुई हो तो सम्भरण की बढ़ी हुई सुविधाओं के कीमत पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता, यद्यपि इससे सदैव उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होनी चाहिए। सम्भरण रेखा की अलगअलग आकृतियाँ बनाकर और विशेषकर ऐसी आकृति बनाकर कि यह माँग रेखा को एक से अधिक बार काटे, अनेक प्रकार के विचित्र परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार की अध्ययन पद्धति गेहूँ पर लगने वाले कर के उस भाग पर लागू नहीं होती जिसका श्रमिक वर्ग द्वारा जो अपनी आय का बहुत बड़ा भाग डबलरोटी पर खर्च करते हैं, उपभोग किया जाता है और यह सभी वस्तुओं पर लगने वाले सामान्य कर पर भी लागू नहीं होती: क्योंकि इन दोनों में से किसी भी दशा में यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि व्यक्ति के लिए कर लगने के बाद भी द्रव्य का सीमान्त मूल्य लगभग वही रहता है जोकि इसके लगने के पहले था।

1 इसे रेखाचित्र की सहायता से अधिक स्पष्टरूप से समझा जा सकता है। स सि जोकि सम्भरण की पुरानी क्रमागत समता रेखा है, माँग रेखा द दि को अ बिन्दु पर काटती है: द स अ उपभोक्ता अधिशेष है। तत्पश्चात् स सा कर लगने के कारण आ बिन्दु पर नया साम्य स्थापित होता है, और उपभोक्ता अधिशेष द सा आ के बराबर है। कुल कर केवल सा स झ आ आयत के बराबर है, अर्थात् उस वस्तु की सा आ मात्रा पर स सा दर पर कर लगता है। इससे उपभोक्ता अधिशेष में आ झ अ क्षेत्र के बराबर कमी होगी। अन्य बातों के समान रहने पर अ आ के ढालू होने या न होने के

रेखाचित्र 30

लागू होने पर नियम के अनुसार उत्पन्न की जाने वाली वस्तु पर जो अधिदान मिलता हो उसके कारण होने वाला उपभोक्ता अधिशेष का लाभ स्वयं अधिदान से कम होता है। क्योंकि अधिदान मिलने से पूर्व किये जाने वाले उपभोग पर उपभोक्ता अधिशेष मे ठीक अधिदान के बराबर वृद्धि होती है, जब कि अधिदान मिलने के कारण किये जाने वाले उपभोग में अधिदान से कम उपभोक्ता अधिशेष मिलता है।[1]

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने पर।

यदि उस वस्तु मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो रहा हो तो कर से उस वस्तु की कीमत बढने तथा उपभोग मे कमी होने से कर के अतिरिक्त उत्पादन के खर्चों मे कमी हो जायेगी और परिणामस्वरूप सम्भरण कीमत में कर से कम वृद्धि होगी। इस दशा मे कर से होने वाली कुल आमदनी उपभोक्ता अधिशेष मे होने वाली क्षति की अपेक्षा अधिक हो सकती है। यदि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम इतनी अधिक तीक्ष्णता से लागू हो कि उपभोग मे थोड़ी सी कमी होने के फलस्वरूप कर के अतिरिक्त उत्पादन के खर्चो मे बड़ी कमी हो जाय तो यह आमदनी और भी अधिक होगी।[2]

अनुसार आ श अ के बराबर होने वाली निवल क्षति कम या अधिक होगी। इस प्रकार यह उन वस्तुओं के सम्बन्ध में सबसे कम होगी जिनकी माँग अत्यधिक बेलोच हो, अर्थात् जो अनिवार्य आवश्यकताएँ हों। अतः यदि निष्ठुरतापूर्वक किसी भी वर्ग पर निश्चित मात्रा में कर लगाने हों तो इन्हें सुखदायक वस्तुओं की अपेक्षा आवश्यक वस्तुओं पर लगाने से उपभोक्ता अधिशेष की कम क्षति होगी, यद्यपि कर सहने की क्षमता विलासिता, तथा कुछ कम मात्रा में आराम की वस्तुओं के उपभोग में होती है।

1 यदि हम अब सा सी को पुरानी सम्भरण रेखा मानें जो अधिदान मिलने से स सि की स्थिति में आ जाती है तो उपभोक्ता अधिशेष में सा स, अ आ के बराबर वृद्धि होगी। किन्तु स अ मात्रा पर स सा के बराबर अधिदान दिया गया है जिसे सा स,अ ल आयत द्वारा प्रदर्शित किया गया है: और इससे आ ल अ क्षेत्र के बराबर अतिरिक्त उपभोक्ता अधिशेष मिलता है।

रेखाचित्र 31

2 रेखाचित्र 31 स सि पुरानी सम्भरण रेखा है, और कर लगने से यह ऊपर उठकर सा सी हो जाती है। अ तथा आ साम्य की पुरानी तथा नयी स्थितियाँ है, और इनसे होकर क ख तथा ख ग रेखाओं के समानान्तर रेखाएँ खींची गयी है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। अब यदि वस्तु की हर इकाई पर आ य दर पर कर लगे और साम्य की नयी स्थिति में ख हा अर्थात् च श मात्रा का उत्पादन हो तो कर से होने वाली सकल आय चा फ य आ के बराबर होगी, और उपभोक्ता अधिशेष में चा च अ आ के बराबर क्षति होगी। अर्थात् च फ य श के आ श अ से बड़े या छोटे होने के अनुसार

दूसरी ओर, क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली वस्तु के लिए अधिदान मिलने से उत्पादन अधिक किया जायेगा, और कृषि का सीमान्त उन स्थानों एवं दशाओं तक फैल जायेगा जिनमे अधिदान के अतिरिक्त उत्पादन के खर्चे पहले से अधिक हो। इस प्रकार उपभोक्ता को कम कीमत देनी पडेगी और क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अनुसार उत्पादन की जाने वाली वस्तु के लिए अधिदान देने की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष मे कम वृद्धि होगी। ऐसी दशा मे राज्य द्वारा दिये जाने वाली अधिदान की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष मे कम वृद्धि होगी। अत. इस दशा मे उपभोक्ता अधिशेष मे और भी कम वृद्धि होगी।[1]

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के

इसी प्रकार की तर्कप्रणाली से यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली किसी वस्तु पर क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली वस्तु की अपेक्षा कर का लगना उपभोक्ताओ के लिए अधिक हानिकारक है। क्योकि इसमे माग कम हो जाती है और अत. उत्पादन भी कम हो जाता है। इस प्रकार सम्भवतया उत्पादन के खर्चे कुछ बढ जाते है। कीमत कर की मात्रा से अधिक बढ जाती है, और अन्त मे राजकोष को मिलने वाले कुल भुगतानो की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष मे बहुत अधिक कमी हो जाती है।[2] दूसरी ओर, ऐसी वस्तु के लिए अधिदान मिलने से उपभोक्ता को इसकी इतनी कम कीमत देनी पड़ती है कि इसके उपरान्त उपभोक्ता अधिशेष मे होने वाली वृद्धि राज्य द्वारा उत्पादकों को

कर से होने वाली सकल आय अधिक या कम होगी, रेखाचित्र में यह बहुत बड़ी दिखायी देती है। यदि स सि को इस ढंग से खींचा गया होता कि इससे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के नियम का केवल थोड़ा सा ही आभास होता, अर्थात् यदि यह अ के समीप लगभग आड़ी होती तो य झ बहुत छोटी होती, और च फ य झ, आ झ अ से कम हो जाती।

1 इस बात को स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र 31 में हम सा सी को अधिदान मिलने के पूर्व और स सि को इसके बाद की सम्भरण रेखा की स्थिति मानेंगे। इस प्रकार आ पुराना साम्य बिन्दु और अ अधिदान मिलने के बाद का साम्य बिन्दु हैं। उपभोक्ता अधिशेष में चा च अ आ के बराबर वृद्धि होती है, जबकि रेखाचित्र के अनुसार राज्य द्वारा उस वस्तु की प्रत्येक इकाई के लिए अ ट दर पर भुगतान किया जाता है। जैसा कि साम्य की नयी स्थिति में ख ह अर्थात् च अ मात्रा का उत्पादन किया जाता है, अतः कुल अधिदान र च अ ट के बराबर होता है। इसमें उपभोक्ता अधिशेष भी शामिल है और यह उपभोक्ता अधिशेष में वृद्धि से सदैव अधिक होता है।

2 इस प्रकार रेखाचित्र 32 में स सि को सम्भरण रेखा की पुरानी स्थिति, सा सी को कर लगने के बाद की स्थिति, अ को साम्य की पुरानी और आ को नयी स्थिति मानकर हम, रेखाचित्र 31 की भाँति, कुल कर को चा फ य आ द्वारा, तथा उपभोक्ता अधिशेष में होने वाली क्षति को चा च अ आ द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। यह ध्यान रहे कि पूर्वोक्त पश्चादुक्त से सदैव ही कम होगा।

दी, जाने वाली धनराशि से भी अधिक हो सकती है, और यदि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम तेजी से लागू हो रहा हो, तो यह निश्चय ही अधिक होगी।[1]

इन निष्कर्षों से अधिकतम परितुष्टि का सिद्धान्त भी स्पष्ट होता है।

इन निष्कर्षों से कर के कुछ सिद्धान्तों की ओर संकेत मिलता है जिन पर वित्तीय नीति के किसी अध्ययन मे सतर्कतापूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसा करते समय कर वसूल करने या अधिदान देने के खर्चों तथा कर लगने या अधिदान मिलने के अनेक सम्भावित नैतिक सभी अप्रत्यक्ष प्रभावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। किन्तु पहले की अपेक्षा कुछ अधिक निकट से तुरन्त ही यह जाँच करने के लिए कि माँग तथा सम्भरण के लिए (स्थिर) साम्य की स्थिति अधिकतम परितुष्टि की भी स्थिति होती है, ये आंशिक निष्कर्ष बहुत अनुकूल हैं: और इनमें विशेषकर वैस्टियट की Economic Harmonics के बाद से बहुत प्रचलन मे आने वाले तथा वर्तमान विवेचन के संकुचित क्षेत्र मे पड़ने वाले सिद्धान्त का एक गूढ़ तथा तीक्ष्ण रूप भी देखने को मिलता है।

मूलपाठ में दिया गया कथन व्यापकरूप में तथा सरल ढंग से व्यक्त किया गया है। यदि इसे व्यावहारिक समस्याओं पर लागू किया जाता तो अनेक ऐसी बातों को भी ध्यान में रखना पड़ता जिनकी कि अवहेलना की गयी है। वह उद्योग जिसमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता हो लगभग निश्चितरूप से प्रगति करेगा, और अतः बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की नयी किफायतें प्राप्त करेगा। यदि इस पर कर थोड़ा ही लगे तो इससे केवल इसकी प्रगति में बाधा पड़ेगी और इसे होने वाले लाभों में कोई ठोस कमी नहीं होगी। यदि कर भारी हो और उद्योग में कमी हो जाय तो इसमें होने वाली अनेक किफायतें कम से कम कुछ अंशों में मिलती रहेंगी, जैसा कि परिशिष्ट ज (H) में बतलाया गया है। परिणामस्वरूप सा सी का उचित रूप में वही आकार नहीं होना चाहिए जो कि स सि का है, और आ य की दूरी अ ट से अवश्य ही कम होनी चाहिए।
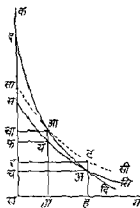
रेखाचित्र 32

1 इस बात को स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र 32 में हम सा सी को सम्भरण रेखा को अधिदान मिलने के पूर्व की तथा स सि को इसके बाद की स्थिति मान सकते हैं। इसके बाद रेखाचित्र 31 की भाँति उपभोक्ता अधिशेष में होने वाली वृद्धि को था स अ आ से और राज्य द्वारा अधिदान के रूप में दिये जाने वाले प्रत्यक्ष भुगतानों को र च अ ट से, व्यक्त किया गया है। जिस ढंग से रेखाचित्र खींचा गया है उससे यह पता लगता है कि पूर्वोक्त पश्चात्उक्त से बहुत अधिक बड़ा है। किन्तु यह सत्य है कि यदि हम सा सी को इस प्रकार खींचते हैं कि इससे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम का बहुत कम

§5. इस सिद्धान्त के एक अर्थ के अनुसार माँग तथा सम्भरण के साम्य की हर स्थिति को पर्याप्तरूप से अधिकतम परितुष्टि की स्थिति माना जा सकता है।[1] क्योंकि जब तक माँग कीमत सम्भरण कीमत से अधिक होती है, ऐसी कीमतो पर विनिमय किया जा सकता है जिनसे क्रेता या विक्रेता या दोनो को ही परितुष्टि का अधिशेष मिलता है। उन दोनों में से कम से कम एक पक्ष को सीमान्त तुष्टिगुण के त्याग के बदले मे प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण अधिक होता है, किन्तु दूसरे पक्ष को विनिमय से यदि लाभ न हो तो हानि भी नही होती। अब तक विनिमय से प्रत्येक पग पर दोनो पक्षों की कुल परितुष्टि मे वृद्धि होती गयी है। किन्तु जब साम्य की स्थिति पहुँच जाती है तो माँग कीमत के सम्भरण कीमत के बराबर होने से इस प्रकार का कोई अधिशेष नही मिलता। प्रत्येक को मिलने वाला सामान्य तुष्टिगुण उसके द्वारा विनिमय में किये जाने वाले तुष्टिगुण के त्याग से अधिक नही होता और जब साम्य बिन्दु से उत्पादन आगे बढ़ जाता है तब माँग कीमत के सम्भरण कीमत से कम होने के कारण कोई भी ऐसी शर्तें नही दिखायी देती जो क्रेता को मान्य हों और जिनमे से विक्रेता को भी हानि न हो।

अतः यह सत्य है कि माँग तथा सम्भरण के साम्य की स्थिति इस संकुचित अर्थ में अधिकतम परितुष्टि की स्थिति है, और दोनों पक्षों की कुल परितुष्टि इस स्थिति पर न पहुँचने तक बढ जाती है। साम्य मात्रा के बाद किये जाने वाले उत्पादन को स्थायीरूप से तब तक नही बनाये रख सकते जब तक क्रेता एव विक्रेता व्यक्तिगतरूप में अपने अपने हित के अनुसार स्वच्छन्दरूप से कार्य करते रहें।

किन्तु साधारणतया यह कहा जाता है, तथा बहुधा यह उपलक्षित होता है, कि माँग तथा सम्भरण के साम्य की स्थिति पूर्णरूप मे कुल अधिकतम परितुष्टि की भी स्थिति होगी: अर्थात् साम्यस्तर के बाद उत्पादन करने से दोनो पक्षों की कुल परितुष्टि में (अर्थात् इसके प्रबन्ध की कठिनाइयों व इसके कारण होने वाली अप्रत्यक्ष बुराइयों के बिना) प्रत्यक्षरूप से कमी होगी। इस सिद्धान्त का यह अर्थ सार्वभौमिक नही है।

सर्वप्रथम इसमें यह कल्पना की गयी है कि विभिन्न पक्षो के बीच सम्पत्ति की सभी विभिन्नताओं की अवहेलना की जा सकती है, और उनमे से किसी भी एक से, एक शिलिंग के बराबर आँकी जाने वाली परितुष्टि, किसी अन्य से मिलने वाली एक शिलिंग की परितुष्टि के बराबर होगी। अब यह स्पष्ट है कि यदि उत्पादक वर्ग उपभोक्ताओं की अपेक्षा अधिक निर्धन होते तो सम्भरण को कमकर, कुल परितुष्टि मे वृद्धि की जा सकती है जिसके फलस्वरूप माँग कीमत मे (माँग की बेलोच होने पर) बहुत वृद्धि

प्रभाव दिखायी देता, अर्थात् यदि यह आ बिन्दु के समीप लगभग आड़ी होती तो उपभोक्ता अधिशेष के रूप में होने वाले लाभ की अपेक्षा अधिदान अधिक होता और स्थिति ठीक ऐसी ही होती जैसी कि रेखाचित्र 30 की भाँति उस वस्तु पर क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के लागू होने पर अधिदान मिलने से हो सकती थी।

1 भाग 5, अध्याय 1, अनुभाग 1 से तुलना कीजिए। अस्थिर साम्य पर अब विचार नहीं किया जायेगा।

सभी लोगों को समान तुष्टिगुण मिलता है।

होगी। यदि उपभोक्ता उत्पादकों की अपेक्षा बहुत अधिक निर्धन होते तो साम्य मात्रा से उत्पादन को अधिक बढाने तथा उसे हानि पर बेचने से कुल परितुष्टि मे वृद्धि की जा सकती थी।[1]

इस सिद्धान्त में यह बात ध्यान में नहीं रखी जाती कि सुधारों के फलस्वरूप कीमत में जो कमी होती है उससे उत्पादकों को हानि हुए बिना ही उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

इस विषय को भविष्य मे विचार करने के लिए छोड़ा जा सकता है। वास्तव मे यह इस व्यापक कथन का, कि धनी व्यक्तियो की कुछ सम्पत्ति को निर्धन लोगो मे ऐच्छिक या अनिवार्य रूप से वितरित कर कुल परितुष्टि मे प्रत्यक्षतः वृद्धि की जा सकती है, एक विशेषरूप है। यह तर्क सगत है कि विद्यमान आर्थिक दशाओ की खोज की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे इस कथन पर आधारित बातो को अलग रखना चाहिए। यदि इसे दृष्टि से ओझल न किया जाये तो यह कल्पना करना उचित होगा।

किन्तु दूसरी बात यह है कि अधिकतम परितुष्टि के सिद्धान्त मे यह मान लिया जाता है कि उत्पादको को उस वस्तु के लिए मिलने वाली कीमत मे कमी होने से उनको उसी मात्रा मे हानि उठानी पडती है। यह बात कीमत मे किसी ऐसी कमी के विषय मे सत्य नही होती जो औद्योगिक सगठन मे सुधारो के फलस्वरूप होती है। जब किसी वस्तु के उत्पादन मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो तो उत्पादन को साम्य बिन्दु के बाद भी बढाने से सम्भरण कीमत बहुत गिर सकती है। यद्यपि इस बढी हुई मात्रा के लिए माँग कीमत और भी घट सकती है जिससे उत्पादको को उत्पादन करने मे कुछ हानि हो सकती है, तब भी इससे क्रेताओ को होने वाले लाभ के मौद्रिक मूल्य की अपेक्षा जिसे उपभोक्ता अधिशेष की वृद्धि के रूप मे मापा जाता है, बहुत कम हानि होगी।

अतः कुल परितुष्टि को प्रत्यक्षतः माँग तथा सम्भरण मुक्ति प्रभाव से प्राप्त किये गये स्तर के बाद भी बढ़ाया जा सकता है।

जिन वस्तुओ के सम्बन्ध मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम बडी तेजी से लागू होता है, या अन्य शब्दो मे जिनके लिए उत्पादित मात्रा मे वृद्धि के साथ साथ सामान्य सम्भरण कीमत बडी तेजी से कम होती है उनमे काफी कम कीमत पर भी बहुत अधिक सम्भरण सुलभ करने के लिए प्रत्यक्षरूप मे जितना अधिदान देना पर्याप्त होगा वह, इसके फलस्वरूप उपभोक्ता अधिशेष मे होने वाली वृद्धि से बहुत कम होगा। यदि उपभोक्ता आपस मे सामान्य समझौता कर ले तो ऐसी शर्तें तैयार की जा सकती हैं जिनसे ऐसा करना उत्पादको के लिए बहुत अधिक लाभकारी होगा तथा साथ ही साथ उपभोक्ताओं को भी बहुत अधिक लाभ होगे।[2]

1 इस दृष्टान्त में जिन दो वस्तुओं का विनिमय किया गया है उनमें से एक सामान्य क्रयशक्ति है। किन्तु यदि मोती निकालने वालों की निर्धन जनसंख्या भोजन के लिए धनी जनसंख्या पर, जो उनसे बदले में मोती लेते है, निर्भर होती तो निश्चय ही यह तर्क लागू होता।

2 (स्थिर) साम्य की बहुस्थितियो का यद्यपि व्यावहारिक महत्व बड़ा नहीं है तब भी इनसे अधिकतम परितुष्टि के सिद्धान्त को सार्वभौमिक रूप से सत्य कहने में निहित त्रुटि का अच्छा स्पष्टीकरण होता है। क्योंकि जिस स्थिति में किसी थोड़ी सी मात्रा का उत्पादन किया जाता है तथा उसे ऊँची कीमत पर बेचा जाता है, उसे सबसे पहले प्राप्त करना होगा और उसे प्राप्त कर लेने पर ही उस सिद्धान्त के अनुसार

हमारा यहाँ पर इस उद्देश्य के लिए काल्पनिक प्रबन्ध की अप्रत्यक्ष बुराइयों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

§6. एक सरल योजना यह होगी कि समाज अपनी विभिन्न प्रकार की आय पर ऐसी वस्तुओं के उत्पादन पर कर लगाये जिनमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो और इस कर से प्राप्त आय को उन वस्तुओं के उत्पादन के लिए अधिदान के रूप में दे जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम तेजी से लागू हो। किन्तु यह मार्ग निश्चय करने के पूर्व उन्हें ऐसी बातों को भी ध्यान में रखना होगा जो कि प्रसामान्य सामान्य सिद्धान्त के क्षेत्रों में नहीं आती किन्तु जिनका बड़ा व्यावहारिक महत्व है। उन्हें कर वसूल करने तथा अधिदान देने की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लागतों की गणना करनी होगी। साथ ही साथ उन्हें कर के भार तथा अधिदान के लाभ के न्यायोचित वितरण की कठिनाई, जालसाजी तथा व्यभिचार के अवसर तथा इस बात से उत्पन्न होने वाले खतरे को भी ध्यान में रखना पड़ता है कि अधिदान प्राप्त किये हुए तथा इसे प्राप्त करने की आशा करने वाले व्यवसायों में लोग अपने काम को ठीक ढंग से चलाने की अपेक्षा अधिदान पर नियंत्रण रखने वाले लोगों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न कर सकते है।

इन अर्ध-नैतिक प्रश्नों के अतिरिक्त जो अन्य पूर्णतया आर्थिक प्रश्न उठेंगे वे शहरी या कृषीय भूस्वामियों, जो कि उस वस्तु के उत्पादन के अनुकूल भूमि के मालिक हैं, के हितों पर किसी खास कर या अधिदान से पड़ने वाले प्रभावों से सम्बन्धित होंगे। ये ऐसे प्रश्न है जिनकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिए, किन्तु जिनके विस्तार में इतना अधिक अन्तर है कि इन पर यहां पर भलीभाँति विवेचन नहीं किया जा सकता।[1]

यह वह स्थिति मानी जायेगी जिससे कुल परितुष्टि निरपेक्षरूप में अधिकतम होगी। किन्तु उत्पादकों के लिए अधिक उत्पादन तथा कम कीमत से होने वाली साम्य की एक अन्य स्थिति भी समानरूप से संतोषजनक होगी, और उपभोक्ताओं के लिए यह और भी अधिक संतोषजनक होगी। दूसरी दशा में पहली की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष की अधिकता से कुल परितुष्टि में वृद्धि की मात्रा व्यक्त की जायेगी।

1 कृषि उपज पर कर के आपात का आगे चलकर भूमि की उर्वरता को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग किये गये रेखाचित्रों की सहायता से विवेचन किया जायेगा (भाग 4, अध्याय 3 देखिए)। भूस्वामियों के लगान में प्रायः सभी वस्तुओं की कुल बिक्री कीमत का कुछ भाग आत्मसात होता है: किन्तु जिन वस्तुओं में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, उनमें ऐसा सबसे अधिक होता है। हम बिना किसी विशेष उल्लंघन के यह कल्पना कर सकते है कि रेखाचित्र 33 में (जो रेखाचित्र 31 का प्रतिरूप है) इस समस्या को प्रमुख विशेषताओं को स्थूलरूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

परिशिष्ट ज (H) अनुभाग 1 में यह समझाया जायेगा कि हमें यह कल्पना करने का अधिकार नहीं है कि अधिक उपजाऊ भूमि तथा अधिक अनुकूल परिस्थितियों में उपज पैदा करने के खर्चों का उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि बढ़े हुए उत्पादन से यदि कृषीय उद्योगों की व्यवस्था में सुधार न भी हो तो, उनके सहायक उद्योगों और विशेषकर माल ढोने के कार्यों के प्रबन्ध में सुधार हो सकता है। हम अस्थायीरूप में इस प्रकार की कल्पना कर सकते है जिससे कि इस समस्या की विस्तृत

इस सिद्धान्त के प्रयसनः अपवादों को

§7. इस सिद्धान्त में कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने आय के साधनों को सबसे अनुकूल ढंग से खर्च करने के लिए प्रोत्साहित करने से साधारणतया अधिकतम परितुष्टि प्राप्त की जाती है, दूसरी बड़ी कमी है जिसके विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका

रूप रेखाओं को स्पष्टतः जाना जा सके, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस पर आधारित सामान्य तर्कों को कहीं भी लागू करते समय उन तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिनकी हम यहाँ अवहेलना कर रहे हैं। इस कल्पना पर स सि को कर लगने से पूर्व की सम्भरण रेखा मानने पर भूस्वामियों का लगान च स य द्वारा अंकित किया गया है। कर लगने तथा सम्भरण रेखा के ऊपर उठकर सा सी होने के बाद भूस्वामी का लगान फ स य हो जाता है। यह ख हा मात्रा की हा आ दर पर प्राप्त कुल कीमत (चा ख हा आ) के, ख हा मात्रा के उत्पादन के कुल खर्चों (ख हा य स) जिनमें लगान शामिल नहीं है, तथा कुल कर (चा फ य आ) से अधिक के बराबर है। (चित्र में सा सी रेखा का वही आकार है जो कि स सि का है जिससे यह अर्थ निकलता है कि कर विशिष्ट प्रकार का है, अर्थात् वस्तु की हर इकाई पर, चाहे इसका कुछ भी मूल्य हो, प्रभार समान है। अब तक यह तर्क इस कल्पना पर निर्भर नहीं था, किन्तु यदि इसे इस पर निर्भर माना जाय तो हम आसानी से यह मालूम कर सकते हैं कि भूस्वामियों का नया लगान चा सा आ होगा जोकि फ स य के बराबर है)। इस प्रकार भूस्वामियों के लगान की क्षति च फ य थ के बराबर है। इसे यदि चा च थ आ में, जोकि उपभोक्ता अधिशेष की हानि को व्यक्त करती है, जोड़ा जाय तो यह चा फ य थ आ के बराबर बन जाता है जोकि सकल कर से आ थ य के बराबर अधिक है।
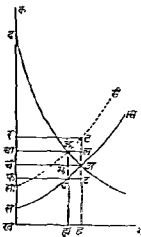
रेखाचित्र 33

दूसरी ओर, अधिदान के रूप में होने वाले प्रत्यक्ष भुगतान उपभोक्ता अधिशेष तथा उक्त मान्यताओं पर अनुमानित भूस्वामी के अधिशेष से बढ़कर होंगे। क्योंकि सा सी को सम्भरण रेखा की मूलस्थिति मानकर और स सि को अधिदान मिलने के बाद की स्थिति मानकर, इन कल्पनाओं पर भूस्वामियों का नया अधिशेष च स ल अथवा र सा ट के बराबर होगा, और यह भूस्वामियों के पुराने लगान चा सा आ से र चा आ ट के बराबर अधिक है। उपभोक्ता अधिशेष में चा च ल आ के बराबर वृद्धि होती है, और इसलिए कुल अधिदान जोकि र च ल ट के बराबर है, उपभोक्ता अधिशेष तथा भूस्वामियों के लगान से ट आ ल के बराबर अधिक है।

परिशिष्ट ज (H), अनुभाग 3 में बतलाये गये कारणों से यह तर्कप्रणाली जिस मान्यता को लेकर आगे बढ़ती है वह सम्भरण रेखा के ऋणात्मक झुकी होने पर लागू नहीं होती।

है। यह स्पष्ट है कि यदि वह अपनी आय को इस ढंग से खर्च करे कि निर्धन लोगों की सेवाओं के लिए माँग बढ़ जाय और उनकी सबकी आय बढ़ जाय तो, इससे धनी व्यक्तियों की आय में इसके बराबर की वृद्धि करने से मिलने वाले सुख की अपेक्षा कम सुख मे अधिक वृद्धि होगी। क्योंकि एक निर्धन व्यक्ति को एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा अतिरिक्त शिलिंग से कहीं अधिक सुख मिलता है। जिन वस्तुओं के उत्पादन से इन्हें बनाने वालों का आचरण गिर जाता है उनकी अपेक्षा उन वस्तुओं को खरीद कर जिनके उत्पादन से इन्हे बनाने वालो का आचरण ऊँचा हो जाता है[1] वह अच्छा ही करता है। किन्तु आगे यदि हम यह माने कि जिस किसी को भी एक शिलिंग के बराबर सुख मिले उसका बराबर ही महत्व है, और चाहे जिस किसी वस्तु से भी एक शिलिंग के बराबर उपभोक्ता अधिशेष मिले वह समानरूप से महत्वपूर्ण है जो हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई व्यक्ति चाहे जिस ढग से भी अपनी आय खर्च करे उसका समाज के साथ प्रत्यक्ष आर्थिक सम्बन्ध है। यदि वह इसे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं पर खर्च करता है तो उन वस्तुओ की कीमतों के बढने के कारण उसके पडोसी उन्हे कठिनाई से ही खरीद सकते है और इसके फलस्वरूप उनकी आय की वास्तविक क्रयशक्ति कम हो जाती है। यदि वह इसे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ पर खर्च करे तो वह उन वस्तुओं को अन्य व्यक्तियों के लिए अधिक सुलभ बना देता है। और इस प्रकार उनकी आय की वास्तविक क्रयशक्ति को बढ़ा देता है।

पुनरावृत्ति कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसन्द के अनुसार अपनी आय खर्च करनी चाहिए।

पुनः साधारणतया यह तर्क दिया जाता है कि सभी (भौतिक एवं अभौतिक) वस्तुओं पर लगने वाला समान यथामूल्य (Ad Valorem) कर, या जिसे हम व्यय पर लगने वाला कर भी कह सकते हैं, प्रत्यक्षतः सबसे अच्छा कर है, क्योकि यह व्यक्तियो के व्यय को इसके स्वाभाविक स्रोतो से व्यवर्तित नही करता। अब हम देख चुके है कि यह तर्क अमान्य है किन्तु यदि हम इस समय इस तथ्य को ध्यान मे न रखें कि किसी कर या अधिदान के प्रत्यक्ष आर्थिक प्रभाव कभी भी उसके सम्पूर्ण प्रभाव को व्यक्त नही करते और ये अधिकांशतया उन विचारों के मुख्य भाग भी नही हैं जिनका कर के लगाये जाने के पूर्व मूल्यांकन करना पडता है तो हम देखेंगे.—(1) जिन वस्तुओं मे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की किफायतों के लिए बहुत थोड़ा ही क्षेत्र हो तथा जिनमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो उन पर कर लगाने की अपेक्षा व्यय पर लगे हुए कर से साधारणतया उपभोक्ता अधिशेष अधिक नष्ट हो जाता है। (2) समाज के लिए भी यह हितकारक हो सकता है कि सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाये, जिनमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो, तथा इनसे प्राप्त आय के कुछ भाग को क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं के लिए अधिदान के रूप में दे।

यह देखा जायेगा कि इन निष्कर्षों से स्वयं राज्य के हस्तक्षेप के लिए न्यायोचित आधार प्रदान नही होता। किन्तु ये यह प्रदर्शित करते हैं कि माँग तथा सम्भरण के

---

1 भाग 3, अध्याय 6 से तुलना कीजिए।

सान्ख्यिकी के सनकों संग्रह तथा उनके परिणामों के वैज्ञानिक अर्थ के अनुसार बहुत कुछ करना शेष बचा है, जिनसे यह पता लगाया जा सके कि समाज कहाँ तक व्यक्तियों के आर्थिक कार्यों को उन भागों में परिवर्तित कर सकता है जिनसे कुल सुख में सर्वाधिक वृद्धि हो सके।[1]

---

1 यह उल्लेखनीय है कि माल्थस Political Economy अध्याय 3, अनुभाग 9 में यह तर्क देते हैं कि "यद्यपि महायुद्ध के समय विदेशी अन्न के आयात में होने वाली कठिनाइयों के कारण पूंजी को विनिमय की अपेक्षा जो कि अधिक लाभदायक होता है, कृषि में जो कि अपेक्षाकृत कम लाभदायक लगाया जाता है, फिर भी, यदि हम इसके फलस्वरूप कृषीय लगानों में होने वाली वृद्धि को ध्यान में रखें तो, इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यह नया मार्ग 'उच्चतर व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा राष्ट्रीय लाभ' का मार्ग है। उनके इस कथन की सत्यता में कोई सन्देह है किन्तु, उन्होंने इसके परिणामस्वरूप अनाज की कीमत में वृद्धि होने से तथा उपभोक्ता अधिशेष की क्षति होने से जनसाधारण को होने वाली हानि की अवहेलना की। सीनियर ने कृषि तथा विनिर्माण के उत्पादन में एक ओर बढ़ी हुई माँग का तथा दूसरी ओर कर के विभिन्न प्रभावों का अध्ययन करते समय उपभोक्ता के हितों को ध्यान में रखा। (Political Economy, पृष्ठ 118-123)। कच्चे माल का निर्यात करने वाले देशों में संरक्षण के अधिवक्ताओं ने इस अध्याय में दिये गये तर्कों के अनुरूप तर्क दिये और अब विशेषकर अमेरीका में (दृष्टान्त के लिए श्री एच० सी० एडम्स द्वारा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत कार्य करने वाले उद्योगों में राज्य द्वारा सक्रिय भाग लेने के पक्ष में इसी प्रकार के तर्क दिये जाते हैं। ड्यूपूट (Dupuit) ने सन् 1844 में तथा फ्लीमिंग जेन्किन ने (Edinburgh Philosophical Transactions) सन् 1871 ई० में स्वतन्त्ररूप से लगभग इस अध्याय में अपनायी गयी लेखाचित्रीय पद्धति की भाँति यह पद्धति अपनायी थी।

अध्याय 14

एकाधिकारों का सिद्धान्त

§1. यह कभी भी कल्पना नहीं की गयी है कि एकाधिकार को अपने हित के लिए कार्य करने में स्वाभाविक रूप से सम्पूर्ण समाज की हितवृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त कार्य से प्रेरणा मिलती है और स्वयं उसका वही महत्व है जो समाज के किसी अन्य सदस्य का है। अधिकतम परितुष्टि के सिद्धान्त को एकाधिकार की वस्तुओं की माँग तथा सम्भरण पर कभी भी लागू नहीं किया गया है। किन्तु हमें समाज के हितों से एकाधिकारी के हितों के सम्बन्ध से तथा उन सामान्य दशाओं के अध्ययन से बहुत कुछ सीखना है जिनके अनुसार वह निजी हितों को ध्यान में रखकर किये जाने वाले आयोजन की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज के लिए अधिक लाभकारी आयोजन कर सकता है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर हमें अब उस योजना का पता लगाना है जिसके अनुसार उसके द्वारा किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कार्यों से समाज को तथा स्वयं उसे प्राप्त होने वाले लाभ की सापेक्षिक मात्राओं की तुलना की जा सके।

अब हम एकाधिकारी को ऊँची कीमत से होने वाले लाभ की जनसाधारण को नीची कीमत से होने वाले लाभ से तुलना करेंगे।

बाद के खण्ड में आधुनिक व्यापारिक गुटों तथा एकाधिकारों के विभिन्न रूपों का अध्ययन किया जायेगा जिनमें से कुछ सबसे महत्वपूर्ण रूप, जैसे कि 'ट्रस्ट' इसी काल की देन है। अभी हम केवल एकाधिकार मूल्यों को निर्धारित करने वाले उन सामान्य कारणों पर विचार करेंगे जिनका एक ही व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों के संघ को किसी की बिक्री की मात्रा को या उसकी बिक्री कीमत को निश्चित करने की शक्ति होने पर न्यूनाधिक विशिष्टता के साथ सदैव पता लगाया जा सकता है।

§2. किसी एकाधिकारी का प्रत्यक्षतः हित माँग तथा सम्भरण का इस प्रकार समायोजन करने में नहीं है कि उस कीमत से जिस पर वह अपनी वस्तु बेच सकता है केवल उसके उत्पादन के खर्चे ही पूरे हों, किन्तु इनका इस प्रकार समायोजन करने में है, कि इससे उसे कुल निवल आय अधिकतम प्राप्त है।

निवल एकाधिकार आय।

किन्तु यहाँ पर हमें निवल आय शब्द के अर्थ के विषय में एक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। क्योंकि स्वतन्त्ररूप से उत्पादित वस्तु की सम्भरण कीमत में सामान्य लाभ भी सम्मिलित है, जिसके सम्पूर्ण भाग को या विनियोजित पूँजी पर ब्याज तथा हानि के विरुद्ध बीमा को घटाने के बाद शेष बचने वाले भाग को बहुधा बिना किसी विचार के निवल आय में रखा जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने व्यवसाय का स्वयं प्रबन्ध करता है तो वह बहुधा अपने लाभ के उस भाग को जो कि वास्तव में उसके प्रबन्ध की आय है, उस भाग से जो कि उसके व्यवसाय के कुछ मात्रा में एकाधिकार की किस्म का होने के कारण असाधारणरूप से मिलता है, ध्यानपूर्वक अलग नहीं करता।

किसी सार्वजनिक कम्पनी में जहाँ प्रबन्ध के सभी, या लगभग समस्त खर्चे खाते

में निश्चित धनराशि के रूप में लिखे जाते हैं और निवल आय के घोषित किये जाने के पूर्व कम्पनी की कुल आमदनी में से घटा दिये जाते हैं. वहां यह कठिनाई बहुत हद तक दूर हो जाती है।

शेयरधारियों में विभाजित की जाने वाली निवल आय के विनियोजित पूँजी पर ब्याज तथा कम्पनी के असफल होने के जोखिम के विरुद्ध किये गये बीमे को शामिल किया जाता है, किन्तु इसमें प्रबन्ध को थोड़ी सी या बिलकुल भी, आय शामिल नहीं की जाती जिससे ब्याज तथा बीमा के लिए उचितरूप से छूट रखने के बाद जितना लाभांश शेष रह जाय उसे एकाधिकार आय कह सकें जिसका कि हम पता लगाना चाहते हैं।

जैसा कि एकाधिकार पर किसी व्यक्ति या निजी फर्म का स्वामित्व होने की अपेक्षा किसी सार्वजनिक कम्पनी का स्वामित्व होने से इस निवल आय की मात्रा को निश्चितरूप से बतलाना अधिक सरल है, हम एक गैस की कम्पनी का विशेष दृष्टान्त लेंगे जो किसी शहर मे गैस का एकाधिकार के रूप में सम्भरण करती है। सरलता की दृष्टि से यह कल्पना की जा सकती है कि कम्पनी ने अपनी सम्पूर्ण निजी पूँजी को अचल संयंत्र में विनियोजित कर दिया है और वह अपने व्यवसाय को बढ़ाने के लिए ब्याज की निश्चित दर पर डिबेंचर द्वारा और अधिक पूंजी उधार लेती है।

मॉग सारणी आमतौर पर जैसी होती है वैसी ही रहती है, किन्तु सम्भरण सारणी को विशेष ढंग से तैयार करना चाहिए।

§3. गैस के लिए माँग सारिणी वही रहेगी जो इसके लिए गैस के स्वतन्त्ररूप से उत्पादित वस्तु होने पर होती। इसमे इसकी प्रति हजार फीट की वह कीमत प्रदर्शित की जाती है जिस पर शहर मे इसके उपभोक्ता इसका उपयोग करते हैं किन्तु सम्भरण सारिणी से इसके सम्भरण की प्रत्येक अलग अलग मात्रा के उत्पादन के सामान्य खर्च प्रदर्शित होने चाहिए और इनमे निश्चित सामान्य दर पर शेयरधारियों की तथा डिबेंचर द्वारा उधार ली गयी पूँजी पर ब्याज शामिल होता है। इनमे निदेश को तथा स्थायी अधिकारियो के वेतन भी शामिल होने हैं जिन्हें (थोडी बहुत यथार्थता के साथ) उनसे लिए जाने वाले काम के अनुसार समायोजित किया जाता है, और इसलिए ये गैस के उत्पादन मे वृद्धि के साथ बढ़ते जाते है। किसी एकाधिकार आय सारणी को इस प्रकार तैयार किया जा सकता है।

एकाधिकार आय सारणी।

वस्तु की असंख्य अलग अलग मात्राओ के विरुद्ध इसकी माँग कीमत प्रदर्शित करने तथा इसकी सम्भरण कीमत को अभी अभी बतलायी गयी योजना के अनुसार अनुमानित करने के बाद प्रत्येक सम्भरण कीमत को तदनुरूप माँग कीमत से घटायें और शेष को वस्तु की तदनुरूप मात्रा के विरुद्ध एकाधिकार आय के कालम मे रखिए।

इस प्रकार, दृष्टान्त के लिए यदि 3 शि० प्रति हजार फीट की कीमत पर वर्ष मे एक अरब फीट बेचे जा सकें और इस मात्रा की सम्भरण कीमत 2 शि० 9 पे० प्रति हजार फीट हो तो एकाधिकार आय सारणी मे इस मात्रा के विरुद्ध 3 पे० प्रति हजार फीट हो तो एकाधिकार आय सारणी मे इस मात्रा के विरुद्ध 3 पे० प्रदर्शित किया जायेगा जिससे इस मात्रा के बिक जाने पर तीस लाख पें० या 12,500 पौ० के बराबर कुल निवल आय व्यक्त होती है। केवल निजी तुरत लाभाश से सम्बन्धित होने

पर कम्पनी का उद्देश्य अपनी गैस की ऐसी कीमत तय करना होगा जिससे यह कुल निवल आय अधिकतम हो।[1]

---

1 इस प्रकार मूल पाठ में वर्णित सम्भरण सारणी के अनुरूप द दि माँग रेखा तथा स सि सम्भरण रेखा के होने से ख ग रेखा पर किसी बिन्दु म से म $प_2$ $प_1$ ऊर्ध्वाधर खींची गयी है जो स सि रेखा को $प_2$ बिन्दु पर और द दि को $प_1$ रेखा पर काटती है। यदि इसमें से म $प_3$=$प_2$ $प_1$ काट लें तो $प_3$ का बिन्दुपथ तीसरी रेखा ठ ठि, होगी जिसे एकाधिकार आय रेखा कह सकते हैं। गैस की थोड़ी सी मात्रा की सम्भरण कीमत निश्चिय ही बहुत ऊँची होगी, और क ख के समीप सम्भरण रेखा माँग रेखा के ऊपर होगी, और इसलिए निवल आय रेखा ख ग से नीचे होगी। यह ख ग को झ और पुनः ह, बिन्दुओं पर काटेगी जो माँग तथा सम्भरण रेखाओं के परस्पर काटने के दो बिन्दुओं, ब और अ, के ठीक नीचे हैं। अधिकतम एकाधिकार आय को ठ ठि रेखा पर एक ऐसे बिन्दु $ठा_3$ का पता लगाने से प्राप्त किया जायेगा जिससे ल $ठा_3$ के ख ग रेखा पर लम्बवत् खींचे जाने के कारण ख ल × ल $ठा_3$ अधिकतम हो। ल $ठा_3$ को आगे बढ़ाया गया है जिससे यह स सि को $ठा_2$ तथा द दि को $ठा_1$ पर काटती है। यदि कम्पनी सर्वाधिक तुरन्त एकाधिकार आय प्राप्त करना चाहे तो वह प्रति हजार फीट की कीमत ल $ठा_1$ निश्चित करेगी, और इसके परिणामस्वरूप ख ल हजार फीट की बिक्री करेगी। प्रति हजार फीट उत्पादन के खर्च ल $ठा_2$ के बराबर होंगे, तथा कुल निवल आय ख ल×$ठा_2$ $ठा_1$ या यह भी कह सकते हैं कि ख ल×ल $ठा_3$ के बराबर होगी।

रेखाचित्र 34

आरेख में बिन्दु-अंकित रेखाओं को गणितज्ञ समान कोणीय अतिपरवलय कहते हैं, किन्तु हम उन्हें स्थिर आय रेखाएँ कहेंगे क्योंकि यदि उनमें से किसी भी बिन्दु से ख ग तथा क ख पर क्रमानुसार लम्ब (perpendicular) रेखाएँ खींची जायें (जिनमें से एक प्रतिहजार फीट आय की तथा दूसरी प्रतिहजार फीट बिक्री की संख्या का प्रतिनिधित्व करे) तो एक ही रेखा पर प्रत्येक बिन्दु पर इनका गुणनफल एक स्थिर मात्रा के बराबर होगा। ख ग तथा क ख के निकट की भीतरी रेखाओं में बाह्य रेखाओं की अपेक्षा इस गुणनफल की मात्रा कम होगी। परिणामस्वरूप $प_3$ के $ठा_3$ से छोटी स्थिर आय रेखा पर स्थित होने के कारण, ख म×म $प_3$, ख ल×ल $ठा_3$ से कम होगा। यह ज्ञात हो जायेगा कि $ठा_3$, वह बिन्दु है जिस पर इनमें से किसी भी एक रेखा को ठ ठि छूती है। अर्थात् ठ ठि पर किसी अन्य बिन्दु की अपेक्षा $ठा_3$ अधिक लम्बी स्थिर आय रेखा पर स्थित है, और अतः ख ल × ल $ठा_3$ न केवल रेखाचित्र में म की स्थिति

§4. अब यह कल्पना करें कि सम्भरण की दशाओं में भी परिवर्तन होता है और कुछ नये खर्चे करने पड़ते हैं, या किसी पुराने खर्चे को रोका जा सकता है, या सम्भवतया उस उपक्रम पर एक नया कर लगाया जाता है या उसको अधिदान दिया जाता है।

एकाधिकार पर न तो निश्चित मात्रा में और न एकाधिकार आय के अनुपात में, कर लगने से उत्पादन में कमी होती है वरन् इसमें कमी उस समय होगी जब कर उत्पादन के अनुपात में हो।

सर्वप्रथम किसी उपक्रम को अविभाज्य मानकर, न कि उत्पादित मात्रा में वृद्धि के अनुसार परिवर्तनशील मानकर, इन खर्चों में होने वाली वृद्धि या कमी की मात्रा को निश्चित मान लें; तब चाहे जो भी कीमत ली जाय तथा चाहे जितनी भी मात्रा बेची जाय, एकाधिकार आय में जैसी भी स्थिति हो, इस मात्रा के बराबर वृद्धि या कमी होगी। अतः वह बिक्री कीमत जिसने इस परिवर्तन के पूर्व अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त होती थी, इसके बाद में भी प्राप्त होगी। अतः इस परिवर्तन से एकाधिकारी को अपनी कार्यपद्धति को बदलने के लिए कोई प्रलोभन नहीं मिलेगा। दृष्टान्त के लिए यह कल्पना करें कि वर्ष में एक सौ बीस करोड़ घन फीट बिकने पर अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त होती है और यह इस मात्रा को 30 पे० प्रति हजार फीट की कीमत पर बेचने से प्राप्त की जा सकती है: अब यह कल्पना करें कि इस मात्रा के उत्पादन के खर्चे 26 पे० प्रति हजार फीट हैं जिससे 4 पें० की दर पर कुल 20, 000 पौं० एकाधिकार आय शेष बचेगी। यह इसका अधिकतम मूल्य है। यदि कम्पनी अधिक ऊँची कीमत उदाहरण के लिए 31 पें० निश्चित करती है और केवल एक सौ दस करोड़ फीट का ही विक्रय करती है तो उसे सम्भवतया 4·2 पें० प्रति हजार फीट की दर पर कुल 19,250 पौं० एकाधिकार आय प्राप्त होगी। जब कि एक सौ तीस करोड़ फीट बेचने के लिए उन्हें कीमत घटाकर उदाहरण के लिए 28 पें० करनी होगी और उन्हें सम्भवतया 3·6 पें० प्रति हजार फीट की दर पर, कुल 19,500 पौं० एकाधिकार आय प्राप्त होगी। इस प्रकार कीमत को 30 पे० निश्चित कर वे इसके 31 पें० निश्चित किये जाने की अपेक्षा 750 पौं० अधिक और 28 पे० निश्चित किये जाने की अपेक्षा 500 पौं० अधिक प्राप्त करेंगे। अब यदि उस गैस की कम्पनी पर बिना इस बात को ध्यान में रखे कि इसकी कितनी मात्रा बेची जाती है। 10,000 पौं० प्रतिवर्ष कर लगाया जाता हो तो उनकी एकाधिकार आय कीमत के 30 पें० निश्चित किये जाने पर 10,000 पौं०, 31 पें० होने पर 9250 पौं० और 28 पें० होने पर 9500 पौं० होगी। अतः वे कीमत को 30 पें० ही रहने देंगे।

से, अपितु ख ग रेखा पर म की किसी भी स्थिति पर ख म×म प₃ से बड़ी है। कहने का अभिप्राय यह है कि ठा₃ को ठ ठि पर अधिकतम कुल एकाधिकार आय के अनुरूप ठीक ही निश्चित किया गया है। इस प्रकार हम इस नियम पर पहुँचते हैं: यदि माँग वक्र को काटने के लिए उस बिन्दु से होकर एक आड़ी रेखा खींची जाय जिस पर ठ ठि अनेक स्थिर आय रेखाओं में से किसी एक को स्पर्श करती है, तो उस कटाव बिन्दु की ख ग रेखा से दूरी द्वारा वह कीमत व्यक्त होगी जिस पर उस वस्तु को बिक्री के लिए रखना चाहिए, जिससे अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त हो सके। गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 22 देखिए।

यही बात किसी ऐसे कर या अधिदान के सम्बन्ध में भी सत्य है जो उस उपक्रम की कुल आमदनी के अनुपात मे न होकर उसके एकाधिकार आगम के अनुपात मे होती है। अब यह मान ले कि कर किसी निश्चित मात्रा मे न लगाकर एकाधिकार आगम के किसी निश्चित प्रतिशत, जैसे कि 50 प्रतिशत के रूप मे लगता है। कम्पनी को तब 30 पे० कीमत निश्चित करने पर 10,000 पौ०, 31 पे० पर 9625 पर पौ०, 28 पे० पर 9750 पौ० एकाधिकार आगम प्राप्त होगा। अतः वे इसके बाद भी कीमत को 30 पे० ही रहने देंगे।[1]

दूसरी ओर उत्पादित मात्रा के अनुपात मे लगने वाले कर से एकाधिकारी को अपने उत्पादन को कम करने तथा कीमत बढ़ाने के लिए प्रलोभन मिलता है। क्योंकि ऐसा करने से वह अपने खर्चों को कम करता है। कुल परिव्यय की अपेक्षा कुल आय की अधिकता को अब उत्पादन मे करके बढ़ाया जा सकता है। यद्यपि कर लगने के पूर्व इसमें कमी हो सकती थी। यदि कर लगने के पूर्व कुल निवल आगम बहुत कम बिक्री से प्राप्त होने वाले आगम की अपेक्षा थोड़ा ही अधिक हो तो एकाधिकार को अपने उत्पादन मे बहुत कमी करने से लाभ होगा, और अतः इस प्रकार की दशाओं मे इस परिवर्तन से सम्भवतया उत्पादन मे बहुत अधिक कमी तथा कीमत मे वृद्धि होगी। जिस परिवर्तन से एकाधिकार के कार्य को चलाने के खर्चों मे उत्पादन की मात्रा के अनुसार प्रत्यक्षरूप से अलग अलग मात्रा मे कमी होती है उसमे इसके विपरीत प्रभाव पड़ेंगे।

दृष्टान्त के लिए पिछले उदाहरण मे बिक्री के प्रति हजार फीट पर 2 पे० कर लगने से कम्पनी द्वारा प्रति हजार फीट की कीमत 31 पे० निश्चित किये जाने पर और अतः एक सौ दस करोड़ फीट की बिक्री करने पर, एकाधिकार आगम घटकर

---

1 एकाधिकार के खर्चों में यदि (कर द्वारा या अन्यथा) उत्पादित मात्रा को ध्यान में रखकर एक साथ कुछ धनराशि जोड़ दी जाय तो इसका परिणाम यह होगा कि एकाधिकार आगम रेखा पर प्रत्येक बिन्दु नीचे की ओर किसी स्थिर आगम को प्रदर्शित करने वाली स्थिर आगम रेखा पर बढ़ती जायेगी, और इस पर कुल एकाधिकार आगम, स्थिर आगम से किसी निश्चित मात्रा में कम होगा। अतः नयी एकाधिकार रेखा पर अधिकतम आगम बिन्दु पुरानी रेखा के ठीक नीचे स्थित होता है: अर्थात् बिक्री कीमत एवं उत्पादित मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, और किसी निश्चित अधिदान या कुल कार्य-व्यय (working expenses) में निश्चित कमी के विषय में स्थिति इसके विपरीत होगी। एकाधिकार आगम के अनुपात में लगने वाले करों के प्रभावों के विषय में गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 23 देखिए।

कुछ भी हो, यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि कोई कर या अन्य नये अतिरिक्त खर्चे अधिकतम एकाधिकार आगम से बढ़ जायें तो, इससे वह एकाधिकार नहीं चल सकता। इसके फलस्वरूप अधिकतम एकाधिकार आगम प्रदान करने वाली कीमत ऐसी कीमत में परिवर्तित हो जायेगी जिससे एकाधिकार के व्यवसाय को चलाये रखने में होने वाली क्षति कम से कम हो।

10,083 पौं०, कीमत के 30 पें० होने और अतः एक सौ बीस करोड़ फीट की बिक्री करने पर 10,000 पौं०, तथा कीमत के 28 पें० होने और अतः एक सौ तीस करोड़ फीट की बिक्री करने पर 8,666 पौं० रह जायेगा। अतः कम्पनी को कर लगने पर 30 पें० से अधिक कीमत करने के लिए प्रलोभन मिलेगा। सम्भवतया वे कीमत 31 पें० या इससे भी कुछ अधिक कर देंगे, क्योंकि इन सब दिये गये आंकड़ों से यह ठीक पता नहीं लगता कि उन्हें अपने हित में कीमत को कितना बढ़ाना चाहिए।

दूसरी ओर यदि प्रति हजार फीट की बिक्री पर 2 पें० का अधिदान मिलता हो तो कीमत के 31 पें० होने पर एकाधिकार आगम बढ़कर 28,416 पौं० कीमत के, 30 पें० होने पर 30,000 पौं०, तथा कीमत के 28 पें० होने पर 30,333 पौं० हो जायेगा अतः इससे वे कीमत घटा देंगे। वास्तव में गैस बनाने की प्रणाली में सुधार के फलस्वरूप जिससे उस एकाधिकारी कम्पनी की उत्पादन की लागत 2 पें० प्रति हजार फीट कम हो जाती है, यही परिणाम होगा।[1]

---

1 मूल पाठ में यह कल्पना की गयी है कि कर अथवा अधिदान ठीक बिक्री के अनुपात में होता है: किन्तु अधिक सूक्ष्मरूप से जाँच करने पर यह ज्ञात होगा कि इसमें उस मात्रा में वृद्धि के साथ साथ कुल कर या अधिदान में वृद्धि होने की मान्यता के अतिरिक्त और कुछ भी निहित नहीं है: इस तर्क में वास्तव में यह आवश्यक नहीं है कि कर या अधिदान में बिक्री की मात्रा के निश्चित अनुपात में ही वृद्धि हो।

एकाधिकार आगम रेखा के परिणामस्वरूप प्राप्त आकारों के साथ माँग तथा एकाधिकार सम्भरण की अनेक दशाओं को प्रदर्शित करने के लिए आरेख खींचने से बहुत कुछ जाना जा सकता है। एकाधिकारों के सम्बन्ध में आर्थिक शक्तियों के अनेक प्रकार के प्रभाव को समझने में इस प्रकार प्राप्त आकारों के सतर्क अध्ययन से तर्क-वितर्क की विस्तृत प्रणाली की अपेक्षा अधिक सहायता मिलेगी। आरेखों में से किसी एक में दी गयी स्थिर आगम रेखाओं को पतले कागज पर खींच लो, और इसे एकाधिकार आगम रेखा के ऊपर रखने पर शीघ्र ही अधिकतम आगम के बिन्दु या बिन्दुओं का पता लग जायेगा। क्योंकि न केवल माँग तथा सम्भरण रेखाओं के एक दूसरे को एक से अधिक बार काटने पर, किन्तु उनके एक दूसरे को एक से अधिक बार न काटने पर भी, रेखाचित्र 35 की भांति, यह स्पष्ट हो जायेगा कि एकाधिकार आगम रेखा पर बहुधा अनेक ऐसे बिन्दु मिलेंगे जिन पर यह स्थिर आगम रेखा को छूती है। इन बिन्दुओं में से प्रत्येक वास्तविक अधिकतम एकाधिकार आगम को प्रदर्शित करता है, किन्तु उनमें से कोई बिन्दु साधारणतया किन्हीं अन्य रेखाओं की अपेक्षा मुख्यतया किसी बड़ी स्थिर आगम रेखा पर होने से स्पष्टरूप में दिखायी देगा, और अतः उनकी अपेक्षा इससे अधिक एकाधिकार आगम व्यक्त होगा।

रेखा चित्र 35 की भांति यदि सबसे अधिकतम $ठी_3$ इससे कम अधिकतम $ठा_1$ से दूर दाहिनी ओर हो तो उस वस्तु पर कर लगने से या अन्य कोई प्रभार लगने से, जोकि सम्भरण रेखा को सदैव ऊपर उठा देता है, एकाधिकार आगम रेखा उसके बराबर कम हो जायेगी। अब यदि सम्भरण रेखा स सि से ड डि की स्थिति में पहुँच जाय और परिणामस्वरूप एकाधिकार आगम रेखा अपनी पुरानी स्थिति ठ ठि से हट कर

§5. एकाधिकारी अपनी एकाधिकार आय को खो बैठेगा यदि वह बिक्री के लिए इतनी अधिक मात्रा में उत्पादन करे जिस पर इसकी सम्भरण कीमत, जैसा कि यहाँ पर स्पष्ट किया गया है, इसकी माँग कीमत के बराबर हो। अतः ऐसा प्रतीत होगा कि एकाधिकार के न होने की स्थिति की अपेक्षा इसके होने पर उत्पादन की मात्रा सदैव कम होती है और उपभोक्ताओं को सदैव अधिक कीमत देनी पड़ती है। किन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता।

एकाधिकार कीमत की प्रतियोगिता कीमत से तुलना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि एकाधिकार को *सामान्यतया* मितव्ययित पूर्वक चलाया जा सकता है।

जब उत्पादन एक ही व्यक्ति या कम्पनी के हाथों मे हो तो उस स्थिति की अपेक्षा कुल खर्च कम होंगे जब कुल उत्पादन तुलनात्मक रूप से असंख्य छोटे प्रतिद्वन्द्वी उत्पादकों में विभाजित हो। उन्हें उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए आपस में संघर्ष करना पड़ेगा और किसी एक ही फर्म की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से विज्ञापन करने में अवश्य ही कुल खर्च बहुत अधिक करना पड़ेगा, और वे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की विभिन्न प्रकार की अनेक किफायतों का लाभ कम उठा सकेंगे। विशेषकर वे उत्पादन की प्रणालियों तथा इसमे काम मे लायी जाने वाली मशीनो के सुधार मे उतना खर्च नही कर सकते जितना कि एक ऐसी बड़ी फर्म कर सकती है जिसे यह ज्ञात है कि वह किसी व्यवसाय मे प्रगति के सम्पूर्ण लाभ को स्वयं ही अर्जित करेगी।

ज ति को निम्न स्थिति में हो जाय तो अधिकतम आगम का प्रमुख बिन्दु ठी₁ से हटकर झा₃ हो जायेगा, जिससे उत्पादन में बड़ी कमी, कीमत में बड़ी वृद्धि तथा उपभोक्ताओं को होने वाली बड़ी क्षति प्रदर्शित की जायेगी। किसी वस्तु पर अधिदान मिलने से, जो कि इसकी सम्भरण कीमत को सदैव कम करता है और एकाधिकार आय रेखा को ऊपर उठाता है, होने वाले परिवर्तन के प्रभावों को उस रेखा की ज जि पुरानी तथा ठनयी ठ ठि स्थिति मानकर देखा जा सकता है। थोड़ा बहुत विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा (किन्तु इस तथ्य को समुचित आरेख खींचकर स्पष्ट करना लाभप्रद होगा) कि एकाधिकार आगम रेखा का आकार उस स्थिर आगम
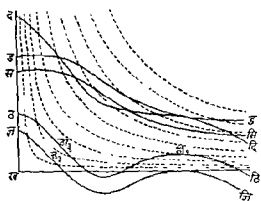
रेखाचित्र 35

रेखा के आकार के जितने ही समान होता है, सामान्यतया उस वस्तु के उत्पादन के खर्चों के किसी निश्चित परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाली अधिकतम आगम बिन्दु को स्थिति में उतना ही अधिक परिवर्तन होगा। रेखाचित्र 35 में यह परिवर्तन इस कारण अधिक नहीं है कि द दि तथा स सि एक से अधिक बार एक दूसरे को काटती है किन्तु इस कारण अधिक है कि ठ ठि के दो भाग, जिनमें से एक दूसरे के दाहिनी ओर बहुत दूरी पर स्थित है, एक ही स्थिर आगम रेखा के निकट स्थित है।

इस तर्क में वास्तव में यह कल्पना की गयी है कि प्रत्येक फर्म का योग्यता एवं उद्यम के साथ प्रबन्ध किया जाता है और उसका पूंजी की असीमित मात्रा पर अधिकार है—यह मान्यता ऐसी है जिसे सदैव उचितरूप से नहीं माना जा सकता। किन्तु जहाँ यह मानी जा सकती है हम साधारणतया इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस वस्तु की सम्भरण सारणी एकाधिकृत न होने पर हमारी एकाधिकार सम्भरण सारणी की अपेक्षा अधिक ऊँची सम्भरण कीमतें प्रदर्शित करेंगी अतः प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादित वस्तु की साम्य मात्रा उस मात्रा से कम होगी जिस पर माँग कीमत एकाधिकार सम्भरण कीमत के बराबर हो।[1]

किन्तु इससे ऐसे प्रश्न उठ खड़े होते हैं जिनका सामान्य हल नहीं निकल सकता।

एकाधिकारों के सिद्धान्त के सबसे रोचक तथा कठिन प्रयोगों में एक प्रयोग इस प्रश्न से सम्बन्धित है कि प्रत्येक बड़ी रेल का अलग अलग क्षेत्र निर्धारित करने और वहाँ प्रतियोगिता समाप्त करने पर क्या जनता का सबसे अधिक हित हो सकता है? इस प्रस्ताव के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि रेलवे दस लाख की अपेक्षा बीस लाख यात्रियों या वस्तुओं के बीस लाख टन को अधिक सस्ता ले जा सकती है और दो रेल की लाइनों के बीच सार्वजनिक माँग का विभाजन करने से उन दोनों में से किसी से भी सस्ती सेवा नहीं प्राप्त होगी। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अन्य बातों के समान रहने पर रेल द्वारा निश्चित की गयी एकाधिकार आगम कीमत इसकी सेवाओं के लिए माँग के बढ़ने के साथ साथ घटती जायेगी तथा इसके विपरीत दशा में कम से होगी। किन्तु मानव स्वभाव को जानते हुए अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि रेल की प्रतियोगी लाइन बनाकर एकाधिकार खत्म करने से पुरानी रेलों की कम दर पर यातायात ले जाने की क्षमता प्राप्त करने में अवरोध पैदा होने की अपेक्षा प्रोत्साहन मिलता है। इसके बाद भी यह सुझाव दिया जाता है कि कुछ समय बाद रेलें अपना संगठन बना लेंगी और जनता पर दुहरी इन सेवाओं पर बरबाद किये जाने वाले खर्चों का बोझ डाल देंगी। किन्तु पुनः इससे भी केवल विवाद के नये विषय खड़े हो जाते हैं। एकाधिकारों के सिद्धान्त से इस प्रकार के व्यावहारिक विवादों का हल निकलने

1 अन्य शब्दों में रेखाचित्र 34 में प्रयोग किये गये अक्षरों के अनुसार यद्यपि ल आवश्यक रूप से ह के बहुत बायीं ओर है तब भी किसी भी प्रकार के एकाधिकार के न होने पर उस वस्तु की सम्भरण रेखा स सि की वर्तमान स्थिति से इतनी अधिक ऊँची होगी कि इसका द दि के साथ कटान बिन्दु चित्र में अ के बहुत बायीं ओर होगा, और यह भी सम्भव है कि यह ल के बायीं ओर रहे। (भाग 4, अध्याय 11, 12, तथा भाग 5, अध्याय 11 में) ऐसे उद्योगों में जिनमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम तेजी से लागू होता है, किसी एक शक्तिशाली फर्म को अपने छोटे छोटे प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा जो लाभ होते हैं उनके विषय में थोड़ा बहुत पहले ही बतलाया जा चुका है। इसके साथ ही साथ यह भी बतलाया जा चुका है कि अनेकानेक पीढ़ियों तक उस व्यवसाय के मूल संस्थापकों की भाँति मेधावी, उद्यमी तथा शक्तिशाली लोगों द्वारा इसका प्रबन्ध किये जाने पर इसे उत्पादन की अपनी शाखा में व्यावहारिक एकाधिकार प्राप्त होने के कितने अवसर मिलते हैं।

की अपेक्षा स्वयं ये विवाद उत्पन्न हो जाते है: और हमे उनके अध्ययन को बाद के लिए स्थगित कर देना चाहिए।[1]

§6. अब तक हमने यह कल्पना की है कि एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को इससे तुरन्त मिलने वाली निवल आय के प्रसग मे ही निश्चित करता है। किन्तु वास्तव मे उपभोक्ताओं के हितों से सम्बन्ध न रखने पर भी वह सम्भवतया यह चिन्तन करेगा कि किसी वस्तु के लिए माँग बहुत हद तक लोगों के इससे परिचित होने पर निर्भर रहती है। यदि जिस कीमत पर उसे अधिकतम निवल आय प्राप्त हो उससे कुछ ही कम कीमत लेने से उसकी बिक्री बढ सकती है तो उसकी वस्तु के बढ़े हुए उपयोग से कुछ ही समय मे वह अपनी वर्तमान हानि की क्षतिपूर्ति कर लेगा। गैस की कीमत जितनी ही कम होगी, लोग अपने मकानों मे सम्भवतया उतनी ही अधिक गैस लगवा लेंगे, और जब यह वहाँ लग जाती है तो वे सम्भवतया इसका थोडा बहुत उपयोग करते रहेंगे, चाहे कोई प्रतिद्वन्द्वी जैसे कि बिजली या खनिज तेल, इससे समान स्तर पर प्रतियोगिता कर रहा हो। जब कोई रेल कम्पनी का (अभी तक आंशिक रूप मे ही बने हुए) समुद्रीय बन्दरगाह या उप-पौर क्षेत्र पर व्यावहारिक रूप से एकाधिकार हो तो ऐसा होने की सम्भावना और भी अधिक हो जाती है। तब रेल कम्पनी अपने कारोबार की दृष्टि से सौदागरों मे बन्दरगाह का उपयोग करने की आदत डालने, बन्दरगाह के निवासियों मे अपनी गोदियों (docks) तथा गोदामों का विकास करने के लिए प्रोत्साहन देने या नये उप-पौर मे विचारशील भवन निर्माताओं को मकानों को सस्ता बनाने तथा उनमे शीघ्र ही किरायेदार बसाने में सहायता देने के लिए जिससे उप-पौर में शीघ्र प्रगति होने का वातावरण पैदा हो सके, और इसकी स्थायी सफलता को सुनिश्चित बनाने मे बडी सहायता मिलती रहे, उन प्रभारो की अपेक्षा बहुत कम प्रभार लेना लाभदायक समझेगी जिनसे उसे अधिकतम निवल आगम प्राप्त हो सके। एकाधिकारी द्वारा अपने व्यवसाय के भावी विकास के लिए अपने वर्तमान हितों का यह त्याग एक नयी फर्म द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किये जाने वाले त्यागों से मिलता जुलता है, यद्यपि इस त्याग की मात्रा मे अन्तर है।

एकाधिकारी या तो अपने व्यवसाय की भावी प्रगति के दृष्टिकोण से या उपभोक्ताओं के कल्याण में प्रत्यक्ष रुचि रखने के कारण कीमत घटा सकता है।

---

1 माँग में वृद्धि के फलस्वरूप एकाधिकार कीमत पर पड़ने वाले प्रभावों से सम्बन्धित प्रश्नों के पूर्ण सैद्धान्तिक विचार के लिए गणित के प्रयोग की आवश्यकता होती है जिसके लिए पाठक को सलाह दी जाती है कि वह अक्टूबर 1897 ई० के Giornale degli Economisti में प्रो० ऐजवर्थ के एकाधिकारों पर लिखे गये लेख को पढ़ें। किन्तु रेखाचित्र 34 को देखने से यह पता लगेगा कि द दि के बराबर ऊपर उठायें जाने से ल बिन्दु बहुत दाहिनी ओर चला जायेगा, और इसके फलस्वरूप ठा$_1$ की स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक नीची होगी। यदि किसी प्रकार उस क्षेत्र में ऐसे नये लोग बस जायें जो इतने सम्पन्न हों कि रेल भाड़े से उनके भ्रमण की तत्परता में बहुत कम प्रभाव पड़े तो द दि का आकार बदल जायेगा। इसका दाहिना भाग बायें के अनुपात में अधिक उठा हुआ होगा; और ठा$_1$ की नयी स्थिति पुरानी की अपेक्षा अधिक ऊँची होगी।

इसी प्रकार की दशाओं मे रेल कम्पनी लोकोपकारी प्रयोजनों का बहाना किये बिना स्वयं अपने हितों को रेल सेवाओं का उपयोग उठाने वाले ग्राहकों से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित पाती है कि इसे उपभोक्ता अविशेष मे वृद्धि करने के लिए निवल आगम का कुछ अस्थायी त्याग करने से लाभ होता है। उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के हितो के बीच तब और भी अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी देता है जब किसी क्षेत्र के भूस्वामी बिना यह अधिक आशा किये कि यातायात से इस पर नियोजित पूँजी पर चालू दर पर ब्याज मिल सकेगा—अर्थात् बिना यह अधिक आशा किये कि रेल के हमारे द्वारा बतलाये गये अर्थ मे, एकाधिकार आगम कम से कम ऋणात्मक नही होगा, वरन यह आशा करते हुए कि रेले अपनी सम्पत्ति के मूल्य मे इतनी अधिक वृद्धि कर लेगी कि कुल मिलाकर उनका उद्यम लाभदायक रहेगा वे उससे होकर जाने वाली सहायक रेल की लाइन निकालने के लिए सगठित हो जाते हैं। जब नगरपालिका गैस या पानी या सुधरे हुए मार्गों, नये पुलो या ट्राम द्वारा यातायात की सुविधाएँ प्रदान करने का कारोबार करती है तो उसके सामने सदैव यह प्रश्न उठता है कि क्या प्रभारों का स्तर ऊँचा होना चाहिए जिससे कि बहुत अच्छा निवल आगम मिल सके और करों को अधिक न बढाना पडे या यह कम होना चाहिए जिससे उपभोक्ता अधिशेष मे वृद्धि हो सके।

§7. यह स्पष्ट है कि उन गणनाओ का कुछ अध्ययन करना आवश्यक है जिन से एकाधिकारी के कार्य इस कल्पना से नियन्त्रित होते हैं कि वह चाहे उससे उपभोक्ता अधिशेष मे उसकी एकाधिकार आय से कम अथवा इसकी आधी या एक चौथाई ही वृद्धि क्यो न हो, उपभोक्ता अधिशेष मे वृद्धि को वह अपने लिए बराबर ही वाछनीय समझता है।

किसी एकाधिकार का कुल लाभ एकाधिकार आय तथा उपभोक्ता अधिशेष के योग के बराबर होता है।

यदि किसी कीमत पर वस्तु की बिक्री से मिलने वाले उपभोक्ता अधिशेष को इससे प्राप्त होने वाले एकाधिकार आगम मे जोड़ा जाय तो इन दोनों का योग उत्पादकों एव उपभोक्ताओ को उस वस्तु की बिक्री से मिलने वाले निवल लाभ या उसकी बिक्री के कुल लाभ के मौद्रिक मांप के बराबर होता है। यदि एकाधिकारी उपभोक्ताओ को अपने लाभ के ही बराबर होने वाले लाभ को समान महत्व का समझता है तो उसका उद्देश्य यह होगा कि वह वस्तु की इतनी मात्रा का उत्पादन करे जिससे उसका कुल लाभ अधिकतम हो।[1]

---

1 रेखाचित्र 36 में द दि, स सि तथा ठ ठि मांग सम्भरण तथा एकाधिकार रेखाओं को व्यक्त करती हैं और ये रेखाचित्र 34 के अनुसार ही खींची गयी हैं। $प_1$ से क ख रेखा पर $प_1$ फ लम्ब खींचो। द फ $प_1$ गैस के ख म हजार फीट की म $प_1$ कीमत पर बिक्री से मिलने वाला उपभोक्ता अधिशेष है। म $प_1$ में एक ऐसा बिन्दु $प_4$ लो जिससे ख म × म $प_4$ = द फ $प_1$: तब म, ख बिन्दु से ख ग रेखा पर जितना ही आगे बढ़ता जायेगा $प_4$ से चौथी रेखा ख र का आकार बन जायेगा, जिसे हम 'उपभोक्ता अधिशेष वक्र' कहेंगे। (निश्चय ही यह ख बिन्दु से होकर निकलेगी, क्योंकि यदि वस्तु की बिक्री बिलकुल ही समाप्त हो जाय तो उपभोक्ता अधिशेष भी लुप्त हो जायेगा)

किन्तु एकाधिकारी कदाचित ही 1 पौ० के एकाधिकार आगम के साथ 1 पौं० के उपभोक्ता अधिशेष को भी बराबर ही वांछनीय मान सकता है तथा मानेगा। यहाँ तक कि सरकार भी जो कि अपने हितों को वहाँ के लोगों के हितों के अनुरूप समझती है, इस तथ्य को ध्यान में रखती है कि यदि वह आगम के एक साधन का परित्याग करे तो उसे सामान्यरूप से अन्य साधनों पर आश्रित होना पड़ेगा, जिनको जुटाने मे भी कठिनाइयाँ होती है। क्योंकि, इनसे उपभोक्ता अधिशेष की क्षति की भाँति ही जनता को होने वाले कुछ नुकसान के साथ साथ इन्हें वसूल करने मे आवश्यक खर्च एवं प्रतिरोध का होना स्वाभाविक है। और इन्हें विशेषकर तब पूर्ण औचित्य के साथ समायोजित नही किया जा सकता जब, समाज के विभिन्न लोगो के लाभों के असमान वितरण को ध्यान में रखा जाय और इस असमानता को कम करने के लिए यह प्रस्ताव किया जाय कि सरकार अपने आगम के कुछ भाग का परित्याग करे।

किन्तु यदि उपभोक्ता अधिशेष को इसके वास्तविक मूल्य का केवल एक अंश माना जाय तो इन दोनों के योग को उभय हित (Com-

अब यह कल्पना करे कि एकाधिकारी इनके बीच का मार्ग अपनाता है और 1 पौंड के बराबर उपभोक्ता अधिशेष को 10 शि० के एकाधिकार आगम के बराबर मानता है। उसे किसी निश्चित कीमत पर अपनी वस्तु को बेचने से प्राप्त होने वाले एकाधिकार आगम को आँकने दे, और उसे इसमे इसके अनुरूप उपभोक्ता अधिशेष का आधा भाग जोड़ने दें: इन दोनों के योग को उभयलाभ कहा जा सकता

इसके बाद प$_3$ प$_1$ से म प$_4$ के बराबर प$_3$ प$_5$ इस प्रकार काटो कि म प$_5$=म प$_3$+म प$_2$ तब ख म $\times$ म प$_5$ =ख म $\times$म प$_3$+ख म$\times$म प$_4$: किन्तु जब ख म मात्रा को म प$_1$ कीमत पर बेचा जाय तो ख म $\times$म प$_3$ कुल एकाधिकार आगम होगा, और ख म $\times$म प$_4$ तदनुरूप उपभोक्ता अधिशेष होगा। अतः ख म $\times$म प$_5$ एकाधिकार आगम तथा उपभोक्ता अधिशेष का योग होगा, अर्थात् ख म मात्रा के उत्पादन पर उस वस्तु से समाज को मिलने वाला कुल लाभ इसका द्रव्यिक माप होगा। प$_5$ का बिन्दुपथ हमारी पाँचवीं रेखा, ठ ट, है जिसे हम 'कुल लाभ वक्र' कहेंगे। यह स्थिर आगम वक्रों में से किसी एक वक्र को ट$_5$ पर छूती है, और इससे यह प्रदर्शित होता है कि कुल लाभ का (द्रव्यिक माप) उस समय अधिकतम है जब ख व मात्रा की बिक्री की जाती है या यह भी कह सकते है कि जब बिक्री कीमत ख व मात्रा की माँग कीमत पर निश्चित की जाती है।
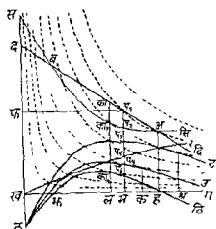
रेखाचित्र 36

promise benefit) कह सकते हैं।

है, और उसका उद्देश्य ऐसी कीमत निर्धारित करना होगा जिससे उभयलाभ अधिकाधिक हो।[1]

सामान्य परिणाम।

निम्नलिखित सामान्य परिणामों को यथार्थरूप से सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु कुछ विचार करने पर वे इतने स्पष्ट रूप से सत्य दिखायी देने लगते है कि इन्हें सिद्ध करने की शायद ही आवश्यकता पड़े। सर्वप्रथम अधिकाधिक एकाधिकार आगम प्राप्त करना ही एकमात्र उद्देश्य होने की अपेक्षा उपभोक्ताओं के हितों में किसी भी मात्रा में वृद्धि करने के इच्छुक होने पर एकाधिकारी बिक्री के लिए अधिक मात्रा रखेगा (और जिस कीमत पर वह अपनी वस्तु को बेचना चाहेगा वह कम होगी) दूसरा, एकाधिकारी उपभोक्ताओं के हितो में जितनी ही अधिक वृद्धि करना चाहेगा, अर्थात् उत्पादित वस्तु के वास्तविक मूल्य के जिस प्रतिशत पर अपने आगम के साथ साथ उपभोक्ता अधिशेष को आँकता है, उतना ही उत्पादन भी बढ़ा हुआ होगा (और विक्रय कीमत उतनी ही कम)।[2]

उपभोक्ताओं के हितों के महत्व का कम अनुमान लगाया गया है, क्योंकि

§8. कुछ वर्ष पूर्व साधारणतया यह तर्क दिया जाता था कि: 'अंग्रेज शासक जो अपने को शासित जाति का सेवक समझता है, निश्चितरूप से इस बात का ध्यान रखता है कि वह इन्हें किसी ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित नही करता जो इसमें लगाये जाने वाले श्रम के उपयुक्त न हो या अधिक सरल भाषा मे उनकी भावुकता को व्यक्त करते हुए वह किसी ऐसे कार्य मे नही लगता जिससे इसकी लागत के ब्याज को वसूल करने के लिए पर्याप्त आय अर्जित न हो।[3] इस प्रकार के वाक्यांशों का कभी कभी इस बात

---

1 यदि वह 1 पौं० के बराबर उपभोक्ता अधिशेष को ना पौंड के बराबर एकाधिकार आगम के साथ वांछनीय समझे तो ना के मूल भिन्न (Proper Fraction) होने से हम $प_3 प_5$ में एक ऐसा बिंदु $प_6$ लेंगे जिससे $प_3 प_6 =ना \times प_3 प_5$ या $=ना \times म प_4$। तब $ख म \times म प_6 = ख म \times म प_3 + ना \times ख म \times म प_4$, अर्थात् यह $म प_1$ कीमत पर उस वस्तु की ख म मात्रा बेचने से मिलने वाले एकाधिकार आगम + इस बिक्री से प्राप्त उपभोक्ता अधिशेष के ना भाग के बराबर है, और अतः यह उस बिक्री से प्राप्त होने वाला उभयलाभ है। $प_6$ का बिन्दुपथ छठा वक्र, ठ भ, है जिसे हम 'उभयलाभ वक्र' कह सकते हैं। यह स्थिर आगम वक्रों में से किसी एक वक्र को $उ_8$ पर छूती है, जिससे यह प्रदर्शित होता है कि ख सा मात्रा की बिक्री होने पर, या यह भी कह सकते हैं ख सा मात्रा के लिए सम्भरण कीमत माँग कीमत के बराबर ही निश्चित होने पर, अधिकतम उभयलाभ मिलता है।

2 कहने का अभिप्राय यह है कि रेखाचित्र 36 में सर्वप्रथम, ख ण, ख ल से सदैव अधिक बड़ी है, और दूसरे स्थान में ना जितना ही बड़ा होगा ख ण उतनी ही बड़ी होगी। (गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 23 को दुबारा देखिए)।

3 ये शब्द 30 जुलाई 1874 के The Times में प्रकाशित अग्रलेख से उद्धृत किये गये हैं: ये अधिकांश जनमत का उचितरूप से प्रतिनिधित्व करते हैं।

से कुछ अधिक अर्थ रहा है कि उपभोक्ता ऊँची कीमत पर तथा बड़े पैमाने पर जिस लाभ को प्राप्त करना नही चाहते उसे ऐसे लोगो के बाह्यरूप से सुन्दर राय द्वारा ही अधिकांशतः प्राप्त किया जायेगा जिनका प्रस्तावित कारोबार मे कुछ निजी हित रहा हो। किन्तु बहुधा इन लोगो ने उपभोक्ताओ की नीची कीमत पर होने वाले हित का, जिसे कि उपभोक्ता अधिशेष कहा जाता है, कम अनुमान लगाने की प्रवृत्ति दिखायी है।[1]

प्रत्येक व्यक्तिगत अनुभव से उनके सही अनुमान लगाने में

---

1 रेखाचित्र 37 में भारत में एक प्रस्तावित सरकारी कारोबार के विषय को समझाया गया है। सम्भरण वक्र सदैव ही माँग वक्र के ऊपर रहा है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि वह उद्यम इस अर्थ में लाभरहित है कि चाहे उत्पादक कुछ भी कीमत निर्धारित करें उन्हें द्रव्य की हानि उठानी पड़ेगी, उनकी एकाधिकार आय ऋणात्मक होगी। किन्तु ठ ट, जो कि कुल लाभ वक्र है, ख ग के ऊपर उठती है, और ट$_8$ में एक स्थिर आय वक्र को छूती है। यदि वे तब बिक्री के लिए ख व मात्रा (या ख व की माँग कीमत के बराबर ही कीमत निर्धारित करें) तो इसके परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला उपभोक्ता अधिशेष इसके पूर्णमूल्य पर आँके जाने पर, इसमें होने वाली क्षति से ख व ×व ट$_8$ मात्रा के बराबर अधिक होगा। किन्तु यदि इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार कर लगाये, और सभी अप्रत्यक्ष खर्चों तथा अन्य बुराइयों को ध्यान में रखते हुए जनता पर पड़ने वाली इसकी लागत सरकार को मिलने वाली आय की दुगुनी हो तो दो रुपये के बराबर उपभोक्ता अधिशेष सरकार के केवल

रेखाचित्र 37

एक रुपये के बराबर परिव्यय की क्षतिपूर्ति के लिए आवश्यक माना जायेगा, और इस कल्पना पर उस कारोबार के निवल लाभ को व्यक्त करने के लिए हमें रेखाचित्र 36 की भांति ख भ उभयलाभ वक्र खींचनी पड़ेगी। किन्तु इसमें ना$=\frac{1}{2}$ मानना पड़ेगा। इस प्रकार म प$_6$ =म प$_3$+$\frac{1}{2}$ म प$_4$। इसी चीज को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं कि ठ भ, एकाधिकार आगम (ऋणात्मक) वक्र, ठ ठि, तथा कुल लाभ वक्र ठ ट, के बीचो- बीच खींची गयी है)। रेखाचित्र 37 में इस प्रकार खींची गयी ठ भ स्थिर आय वक्र को उ$_6$ पर छूती है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि यदि ख ण मात्रा बिक्री के लिए रख दी जाय, या ख ण मात्रा की माँग कीमत के बराबर कीमत निश्चित की जाय तो भारत को उ ण × ण उ$_6$ के बराबर निवल लाभ होगा।
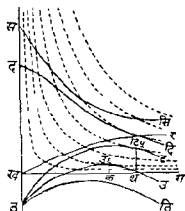
कदाचित् ही अधिक सहायता मिलती है।

निजी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने का एक मुख्य कारण किसी प्रस्तावित मार्ग की अच्छाइयों एवं बुराइयों को मापने तथा उन्हें उनका वास्तविक सापेक्षिक महत्व प्रदान करने की प्रतिभा है। जिस व्यक्ति ने अभ्यास तथा मेधा से प्रत्येक कारक को इसकी उचित मात्रा प्रदान करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, वह पहले से ही समृद्धि प्राप्त करने के योग्य होता है। हमारी उत्पादक शक्तियों की कार्यकुशलता में वृद्धि बहुत अंशों में उन अनेक सुयोग्य विचारकों के कारण हुई है जो इन व्यावसायिक सहज वृत्तियों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर अथक प्रयास कर रहे हैं। किन्तु अभाग्यवश एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार मापे जाने वाले लाभ लगभग सदैव उत्पादक के दृष्टिकोण से ही देखे जाते है, और ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं है जो उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों को विभिन्न कार्यों के करने में होने वाले हितों की सापेक्षिक मात्राओं को एक दूसरे के विरुद्ध मापते हैं। क्योंकि बहुत थोड़े ही लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव में ये आवश्यक चीजें आती है, और उन थोड़े से लोगों में भी बहुत सीमित मात्रा में ही तथा बड़े अपूर्णरूप से ये चीजें आ पाती हैं। इसके अतिरिक्त जब कोई बड़ा प्रशासक जनहित के लिए उन सहज वृत्तियों को प्राप्त कर लेता है जो कि सुयोग्य व्यावसायिक व्यक्तियों के पास अपने कार्यों को चलाने के लिए होता है, तो यह अधिक सम्भव है कि वह अपने कार्य को सुचारुरूप से न चला सके। एक प्रजातंत्रिक देश में कोई भी बड़ा सार्वजनिक कारोबार एक सी नीति के आधार पर तब तक नहीं चला सकता जब तक कि इसके लाभों को, न केवल उन थोड़े से लोगों को जिन्हें बड़े सार्वजनिक कार्य का प्रत्यक्ष अनुभव है अपितु, उन असंख्य लोगों को भी स्पष्ट कर दिया जाय जिन्हें ऐसा कोई भी अनुभव नहीं होता तथा जिन्हें अन्य लोगो द्वारा उनके सम्मुख रखी गयी चीजों के आधार पर निर्णय करना होता है।

हमारे सार्वजनिक 'सांख्यिकी' अभी तक उचित रूप से व्यवस्थित नहीं है।

इस प्रकार के निर्णय उन निर्णयों से घटिया होंगे जो एक योग्य व्यावसायिक व्यक्ति अपने व्यवसाय में लम्बे अनुभव पर आधारित सहज वृत्तियों की सहायता से करता है। किन्तु यदि उनको विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक कार्य से समाज के विभिन्न लोगों को होने वाले लाभ तथा क्षति की सापेक्षिक मात्राओं के सांख्यिकीय माप पर आधारित किया जाय तो वे इस समय जितने विश्वसनीय है उससे कहीं अधिक विश्वसनीय बनाये जा सकते हैं। सरकार की आर्थिक नीतियों की बहुत कुछ असफलता तथा इनके फलस्वरूप होने वाले अन्याय के कारण सांख्यिकीय माप का प्रभाव रहा है। कुछ लोग जो किसी एक पक्ष की ओर झुके हुए होते है बड़े जोर से निरन्तर मिलकर अपनी आवाज उठाते हैं, जब कि उन असंख्य लोगों की बहुत कम आवाज सुनायी देती है जिनके हित विपरीत दिशा में होते हैं क्योंकि चाहे उनका ध्यान इस विषय पर उचितरूप से आकर्षित ही क्यों न किया गया हो। उनमें से कुछ ही लोगों ने उस कार्य में अधिक प्रभाव डालने की कोशिश की जिसमें उनमें से किसी को भी अधिक क्षति नहीं उठानी पड़ती। अतः कुछ ही लोग अपनी मन चाही चीजें कर सकते हैं, यद्यपि उस कार्य में निहित हितों का सांख्यिकीय माप प्राप्त होने पर यह सिद्ध किया जा सकता था कि उन थोड़े से लोगों के कुल हित अनेकों चुप रहने वाले लोगों के हितों के योग के एक दसवें या एक सौवें भाग के बराबर थे।

निस्सन्देह सांख्यिकी का सरलता से गलत अर्थ लगाया जा सकता है और बहुधा कई समस्याओं में इनका सर्वप्रथम उपयोग करने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो सकता है। किन्तु सांख्यिकी के गलत प्रयोग में निहित अनेक सबसे बुरे दोष निश्चित होते हैं और इन्हें निश्चितरूप से यहाँ तक स्पष्ट किया जा सकता है कि कोई भी अशिक्षित श्रोतागणों के बीच व्याख्यान देते समय भी उनको दोहराने का साहस नहीं करेगा। और जिन तर्कों को सांख्यिकीय रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है उनमें अभी भी पिछड़ी हुई दशा में होने पर भी अन्य किसी की अपेक्षा प्रसंगगत विषय का अध्ययन करने वाले सम्भोगों की सामान्य स्वीकृति प्राप्त करने के लिए अधिक निश्चित एवं अधिक तीव्र प्राप्त हो रही है। सामूहिक रुचियों के तीव्र विकास तथा आर्थिक मामलों में सामूहिक कार्यों बढ़ती हुई प्रगति से दिन प्रतिदिन यह अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि इस बात का ज्ञान हो कि सार्वजनिक हितों के कितने संख्यात्मक माप की बड़ी आवश्यकता है, और उनके लिए क्या क्या आँकड़े चाहिए और अतः हमें इन आँकड़ों को एकत्र कर लेने का निश्चय कर लेना चाहिए।

सांख्यिकीय तर्क सर्वप्रथम बहुधा भ्रम में डालने वाले होते हैं, किन्तु स्वतन्त्र विवेचन से उनके सांख्यिकीय दोष दूर हो जाते हैं।

यह आशा करना सम्भवतः अनुचित नहीं है कि समय के बीतने के साथ उपभोग सम्बन्धी आँकड़े इतने व्यवस्थित हो जायेंगे कि इनसे विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक तथा निजी कार्यों के परिणामस्वरूप प्राप्त उपभोक्ता अधिशेष को आकर्षक आरेखों में प्रस्तुत कर पर्याप्तरूप से विश्वसनीय माँग सारणियाँ तैयार की जा सकेंगी। इन तस्वीरों के अध्ययन से समाज के अनेक सार्वजनिक एवं निजी उद्यम की योजनाओं में अलग अलग लाभों की सापेक्षिक मात्रा के विषय में अधिक उचित विचार प्राप्त करने के लिए मस्तिष्क धीरे धीरे प्रशिक्षित हो जाता है। अधिक यथार्थ सिद्धान्तों द्वारा पिछली पीढ़ी की उन धारणाओं का स्थान ले लिया जायेगा जिनका उस समय तो सम्भवतः अच्छा प्रभाव था, किन्तु जिनसे सार्वजनिक कारोबार की उन सभी परियोजनाओं (*projects*) के विषय में जहाँ कुछ भी प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ शेष नहीं बचता था, संशय पैदा हो जाने से सामाजिक उत्साह मन्द पड़ गया।

माँग तथा उपभोक्ता अधिशेष के सांख्यिकीय अध्ययन से भविष्य में की जाने वाली आशाएँ।

हम हाल में जिन गूढ़ तर्कों पर विचार करते रहे हैं उनमें अधिकांश का व्यावहारिक प्रभाव इस ग्रंथ के अन्त तक पूर्णरूप से नहीं दिखायी देगा। किन्तु आंशिक रूप से उत्पादन तथा सम्भरण के साम्य के मुख्य सिद्धान्त से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित होने तथा आंशिक रूप से वितरण को निश्चित करने वाले कारणों की खोज करने की प्रणाली के उद्देश्यों पर प्रासंगिक रूप से प्रकाश डालने वाले कारणों का, जिन पर हम विचार करने ही वाले हैं, पहले ही परिचय कराना लाभप्रद प्रतीत होता है।

§9 अब तक यह मान लिया गया है कि एकाधिकारी स्वतन्त्ररूप से क्रय-विक्रय करता है। किन्तु सच बात तो यह है कि उद्योग की एक शाखा में एकाधिकार उस उद्योग की उन अन्य शाखाओं में भी एकाधिकार संघों का विकास होने लगता है जो इससे क्रय करने या इसकी विक्रय करने का अवसर मिलता है और इस प्रकार एकाधिकारियों के बीच झगड़ों तथा संधियों का आधुनिक अर्थशास्त्र में निरन्तर महत्व बढ़ रहा है। सामान्य प्रकार के गूढ़ तर्क से इस विषय पर थोड़ा ही प्रकाश डाला जा सकता

एक दूसरे की सहायता पर आश्रित दो एकाधिकारों की समस्याओं

का सार्वभौमिक रूप से हल नहीं निकल सकता।

है। यदि दो पूर्ण एकाधिकारी एक दूसरे के पूरक हों, ताकि उनमे से कोई भी दूसरे की सहायता के बिना अपनी वस्तुओं का अच्छा उपयोग न कर सके, तो यह निश्चित करने का कोई भी साधन नही है कि अन्तिम उत्पादन की वस्तु की बिक्री कीमत क्या होगी। इस प्रकार यदि कुर्नो द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुए हम यह कल्पना करे कि तांबा तथा जस्ता अलग अलग तब तक बेकार है जब तक कि इन्हे मिला कर पीतल न बनाया जाय. और यदि हम यह कल्पना करे कि अ व्यक्ति का तांबे के तथा ब व्यक्ति का जस्ते के, सभी सुलभ साधनो पर स्वामित्व है तो पहले ही न तो यह तय करने का कि कितना पीतल पैदा किया जायेगा, और अतः न यह तय करने का कोई साधन होगा कि इसे किस कीमत पर बेचा जा सकता है। इन दोनो मे से प्रत्येक यह कोशिश करेगा कि उसे सौदाकारी मे दूसरे की अपेक्षा अधिक लाभ हो, यद्यपि उनके आपसी संघर्ष से क्रेताओ पर बहुत बुरा प्रभाव पडेगा किन्तु वे इस सौदाकारी पर प्रभाव नही डाल सकेंगे।[1]

यह सोचने के लिए प्रत्यक्षतः कारण है कि सार्वजनिक हित के लिए उनका विलय कर दिया जाय, किन्तु इस प्रकार के विलय में अनेक

इस प्रकार की कल्पित दशाओं मे बाजार मे, जहाँ कि जस्ते की कीमत मोल भाव एव सौदाकारी के दाँव-पेंच के बजाय प्राकृतिक कारणो से निश्चित की गयी है, तांबे की कीमत घटने के कारण बिक्री मे वृद्धि से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लाभ को स्वयं ही अर्जित करने की आशा नही कर सकता, और यहाँ तक भी नही कर सकता कि उसे अवश्य ही इसका कुछ न कुछ हिस्सा मिलेगा। क्योकि यदि वह कीमत घटाये तो ब इसे वाणिज्यिक दुर्बलता का लक्षण मानकर जस्ते की कीमत बढा सकता है, जिससे अ को न केवल कीमत मे अपितु बिक्री की कुल मात्रा मे भी हानि उठानी पडेगी। अतः इन दोनो मे से प्रत्येक एक दूसरे को धोखा देने की कोशिश करेगा, और उपभोक्ता बाजार मे बिक्री के लिए पीतल की कम मात्रा पायेंगे। इस प्रकार इसके लिए उस स्थिति की अपेक्षा अधिक ऊँची कीमत ली जा सकती है जब एक ही एकाधिकारी का तांबे तथा जस्ते के सम्पूर्ण सम्भरण पर स्वामित्व हो. क्योकि यह हो सकता है कि वह दीर्घकाल मे उपभोग बढाने के लिए कम कीमत रखना लाभप्रद समझे। किन्तु न तो अ, न ब ही, अपने कार्य के प्रभाव का तब तक अनुमान लगा सकता है जब तक दोनों

1 इस प्रकार इस विषय में तथा जनशक्ति के मिश्रित लगान के विषय में, कुछ समानता है, और जहाँ तक उत्पादक अधिशेष के विभाजन की संदिग्धता का प्रश्न है यही केवल वह स्थल है जिस पर यह समानता घटित हो सकती है। (ऊपर भाग 5, अध्याय 11, अनुभाग 7 देखिए)। किन्तु इस दशा में उत्पादक अधिशेष को जानने का कोई साधन नहीं है। कुर्नो के आधारभूत समीकरण असंगत मान्यताओं पर आधारित लगते हैं। Recherches sur les principes mathematiques des Rechesses अध्याय 9 पृष्ठ 113 देखिए) अन्यत्र की भांति उन्होंने यहाँ नये विषयों का अध्ययन प्रारम्भ किया, किन्तु इनकी सबसे स्पष्ट दशाओं पर ध्यान नहीं दिया। प्रो० एच० एल० मूर (Quarterly Journal Economics, फरवरी 1906) ने बर्ट्रेण्ड तथा प्रो० ऐजवर्थ की कृति पर आंशिक रूप से अपने को आधारित कर एका- धिकार की समस्याओं के उपयुक्त मान्यताओं को स्पष्टरूप में बतलाया है।

ही एक साथ मिल कर समान नीति के अनुसार कार्य न करे : अर्थात् जब तक वे अपने एकाधिकारों का आंशिक तथा सम्भवतः अस्थायी विलय न करें। इस आधार पर तथा इस कारण कि एकाधिकारों से सम्बन्धित उद्योगों में भी बाधाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, यह तर्क देना युक्तिसंगत है कि सार्वजनिक हित के लिए साधारणतया पूरक एकाधिकारों को एक ही व्यक्ति के हाथों में रहना चाहिए।

दशाओं में इससे समाप्त होने वाले झगड़ों से भी अधिक तथा ज्यादा समय तक चलने वाले नये झगड़े पैदा हो जायेंगे।

किन्तु दूसरी ओर अन्य बातें सम्भवतया अधिक महत्व की हैं। क्योंकि वास्तविक जीवन में कोई भी एकाधिकार इतने पूर्ण तथा इतने स्थायी नहीं होते जितने कि अभी-अभी विवेचन किये गये एकाधिकार हैं। इसके विपरीत आधुनिक संसार में ऐसी नयी चीजों एवं पद्धतियों द्वारा पुरानी चीजों एवं पुरानी पद्धतियों की प्रतिस्थापना करने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है जिनका उपभोक्ताओं के हितों को दृष्टि में रखते हुए उत्तरोत्तर विकास नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार होने वाली प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रतिस्पर्द्धा से पूरक एकाधिकारों में किसी एक की स्थिति दूसरे की अपेक्षा अधिक कमजोर हो जाती है। दृष्टान्त के लिए यदि किसी छोटे एकान्त देश में कताई और बुनाई के लिए केवल एक-एक फैक्टरी हो तो कुछ समय तक सार्वजनिक हित के लिए दोनों ही फैक्टरियाँ एक ही व्यक्ति संस्था के पास होनी चाहिए। किन्तु इस प्रकार स्थापित एकाधिकार को तोड़ना इतना सरल नहीं है जितना कि इसके अलग अलग भाग पर एकाधिकार को तोड़ना सरल है। क्योंकि कोई नया जोखिमी कताई व्यवसाय में प्रविष्ट हो सकता है और पुरानी कताई की मशीनों से पुराने बुनाई के एक मंजिल वाले छाजनों के ग्राहक बनने के लिए प्रतिस्पर्द्धा कर सकता है। पुन. हम किसी उद्योग के दो बड़े केन्द्रों के बीच आंशिक रूप से रेल द्वारा, तथा आंशिक रूप से समुद्र द्वारा होकर जाने वाले किसी मार्ग पर विचार करेंगे यदि उस मार्ग के किसी भी आधे भाग में स्थायीरूप से प्रतिस्पर्द्धा होना असम्भव है तो जनहित के लिए यह आवश्यक है कि जहाज तथा रेल की लाइन एक ही व्यक्ति के हाथ में हो, किन्तु वास्तविकता को देखते हुए इस प्रकार का कोई भी सामान्य कथन नहीं व्यक्त किया जा सकता। कुछ दशाओं में जनहित के लिए इनका एक ही व्यक्ति के हाथ में होना आवश्यक है, अन्य दशाओं में तथा अधिकांशतः दीर्घ-काल में जनहित के लिए उनका अलग अलग व्यक्तियों के हाथों में रहना आवश्यक है।

इसी प्रकार एकाधिकार उत्पादक संघों या अन्य समुदायों के उद्योग की पूरक शाखाओं में विलय के पक्ष में प्रत्यक्ष दिये गये तर्क बहुधा सम्भावित व दृढ़ होते हुए भी अधिक निकट से निरीक्षण करने पर साधारणतया अविश्वसनीय होते हैं। उनसे मुख्य सामाजिक तथा औद्योगिक झगड़ों के दूर होने का संकेत मिलता है, किन्तु ऐसा करने से भविष्य में बड़े पैमाने पर तथा अधिक चिरस्थायी झगड़े पैदा हो जाते है।[1]

---

1 इण्डस्ट्री एण्ड ट्रेड (Industry and Trade) के भाग III में इस अध्याय में संक्षेप में वर्णित समस्याओं से मिलती जुलती समस्याओं पर विचार किया गया है।

अध्याय 15

माँग तथा सम्भरण के साम्य के सामान्य सिद्धान्त का सारांश

§1. इस अध्याय मे कोई नयी चीज नही दी गयी है: यह भाग 5 के परिणामों का केवल साराश है। इसका उत्तरार्द्ध उन लोगों के लिए उपयोगी होगा जिन्होंने बाद के अध्यायो को छोड़ दिया था। क्योकि इसमे उन अध्यायों का सामान्य संकेत मिल सकता है, यद्यपि इससे उसे विस्तृतरूप मे स्पष्ट नही किया जा सकता।

भाग V मे हमने माँग तथा सम्भरण के पारस्परिक सम्बन्धों के सिद्धान्त का सर्वाधिक सामान्य रूप मे अध्ययन किया है। इसमे किसी खास रूप से सिद्धान्त के प्रयोग की विशेष घटनाओ को, जहाँ तक सम्भव हो सके, कम ध्यान मे रखा गया है, और उत्पादन के असख्य साधनों, अर्थात् श्रम, पूँजी तथा भूमि की विशेष दशाओ पर सामान्य सिद्धान्त के प्रभावों के अध्ययन को इसके बाद आने वाले भाग के लिए छोड़ दिया गया है।

अध्याय 1 बाजारों के विषय में।

इस समस्या की कठिनाइयाँ मुख्यरूप से विचाराधीन बाजार के क्षेत्र तथा उसकी अवधि मे होने वाली घटबढ़ पर निर्भर रहती है, और इनमे क्षेत्र की अपेक्षा समय का प्रभाव अधिक आधारभूत होता है।

अध्याय 2 माँग तथा सम्भरण का अस्थायी साम्य।

बहुत अल्पकालीन बाजार जैसे कि बाजार लगने के दिन प्रादेशिक अन्न के वितरण के बाजार मे भी सम्भवतया औसत रूप मे, 'मोल भाव एवं सौदाकारी' की जायेगी जिसे एक प्रकार से साम्य कीमत कहा जा सकता है: किन्तु किसी कीमत को देने या अन्य किसी कीमत को मना करते समय व्यापारी उत्पादन की लागत का यदि अनुमान लगाते भी हों तो थोड़ा ही अनुमान लगायेंगे। वे एक ओर मुख्यतया वर्तमान माँग को तथा दूसरी ओर उस वस्तु के पहले से ही सुलभ भंडार को ध्यान मे रखेंगे। यह सत्य है कि वे निकट भविष्य मे उत्पादन के ऐसे परिवर्तनों पर कुछ ध्यान देंगे जिनका पहले से ही अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध मे वे निकट वर्तमान के अतिरिक्त बहुत कम दूर की सोचेंगे। दृष्टान्त के लिए मछली बाजार मे किसी दिन की सौदाकारी पर उत्पादन की लागत का कोई अनुभवगम्य प्रभाव नही पड़ता।

अध्याय 3,4,5। सामान्य माँग तथा सम्भरण का साम्य। समय का तत्त्व।

साम्य की अपरिवर्तनशील अवस्था में जब सम्भरण को माँग के अनुसार हर प्रकार से पूर्णतया समायोजित किया जा सकता है तो दीर्घ एवं अल्पकाल दोनों में ही उत्पादन के सामान्य सीमान्त तथा लगान सहित औसत खर्चे समान होंगे। किन्तु अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध लेखकों एवं व्यावसायिक व्यक्तियों की भाषा मे सामान्य शब्द में तब बहुत लोच दिखायी देती है जब इसका मूल्य निर्धारित करने वाले कारणों में उपयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध मे साम्यक की अपरिवर्तनशील अवस्था के पर्याप्तरूप से स्पष्ट किये गये एक भाग की आवश्यकता है।

इस विभाग के एक ओर दीर्घकालीन अवधियाँ है जिनमें आर्थिक शक्तियों के सामान्य प्रभाव के पूर्णतर रूप में दिखायी देने के लिए समय मिल जाता है, और इसलिए इनमें कुशल श्रम या उत्पादन के किसी अन्य साधन की अस्थायी कमी दूर की जा सकती है, तथा उत्पादन के पैमाने में वृद्धि से अर्थात् बिना किसी नये महत्वपूर्ण आविष्कार के सामान्यतया मिलने वाली किफायतों के विकास के लिए समय मिल जाता है। सामान्य योग्यता से संचालित होने वाले तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन की आन्तरिक एवं बाह्य किफायतों को सामान्यतया प्राप्त करने वाले किसी प्रतिनिधि फर्म के खर्चों को वह प्रभाव माना जा सकता है जिससे उत्पादन के सामान्य खर्चों का अनुमान लगाया जा सके: और जब सर्वेक्षण मे समय की अवधि इतनी अधिक हो कि किसी नये व्यवसाय की स्थापना मे पूंजी का विनियोजन पूर्णरूप मे हो जाय तथा इसका पूर्ण फल भी मिलने लगे तो वह कीमत सीमान्त सम्भरण कीमत होगी, जिसकी प्रत्याशा से दीर्घकाल मे पूँजीपति अपनी भौतिक सम्पत्ति का तथा सभी श्रेणियो के मजदूर अपनी निजी पूँजी का विनियोजन करने के लिए पर्याप्तरूप से प्रेरित होते हैं।

दीर्घकालीन या सही सामान्य कीमत।

विभाग रेखा के दूसरी ओर समय की इतनी लम्बी अवधि है जिसमे उत्पादकों को माँग के परिवर्तनो के अनुसार उस समय सुलभ विशेषीकृत कुशलता, विशेषीकृत पूंजी, तथा औद्योगिक संघटन से उत्पादन को यथासम्भव परिवर्तित करने के लिए बहुत समय मिल जाता है। किन्तु समय की अवधि इतनी अधिक नही होती कि वे उत्पादन के इन कारको के सम्भरण मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सकें। क्योकि ऐसी अवधि में उत्पादन के भौतिक एव निजी उपकरणो का भण्डार बहुत मात्रा मे पहले से ही निश्चित मानना पड़ता है, और सम्भरण मे सीमान्त वृद्धि को उत्पादको के उन अनुमानो द्वारा निर्धारित किया जाता है जिन्हें वे इन उपकरणो से प्राप्त करना लाभदायक समझते हैं। यदि व्यापार तीव्ररूप मे चल रहा हो तो सारी शक्ति का अधिकतम उपयोग किया जायेगा, समयोपरि काम किया जायेगा और उत्पादन की सीमा और आगे या अधिक तेजी से बढ़ने की इच्छा की कमी से निर्धारित न होकर ऐसा करने के लिए आवश्यक शक्ति की कमी से निर्धारित होगी। किन्तु यदि व्यापार मन्द हो तो प्रत्येक उत्पादक को यह तय करना पड़ता है कि नये आर्डरो की दर मूल लागत के निकट हो जिससे उसे लाभ हो सके। इसमे कोई निश्चित नियम लागू नहीं होता और बाजार बिगड़ने का भय ही सबसे मुख्य प्रभावशाली शक्ति है। और इसका विभिन्न व्यक्तियो एवं विभिन्न औद्योगिक समूहो पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। क्योकि सभी खुले संघो तथा मालिको या कर्मचारियों मे पायी जाने वाली अनौपचारिक स्तब्धता एवं 'प्रथागत' सहमति का मुख्य प्रयोजन व्यक्तियो को सामान्य बाजार को किसी ऐसे कार्य से बिगाड़ने से रोकना है जिनसे उन्हे तो तुरन्त लाभ हो किन्तु उस व्यवसाय मे कुल मिलाकर अधिक क्षति हो।

अल्पकालीन सामान्य कीमत या उपसामान्य (sub-normal) कीमत।

§2. इसके बाद हमने ऐसी वस्तुओं के प्रसंग मे माँग तथा सम्भरण के सम्बन्ध पर विचार किया जिन्हे किसी संयुक्त माँग की तृप्ति के लिए एक साथ पूरा करना पड़ता है। उनका सबसे महत्वपूर्ण दृष्टान्त विशेषीकृत भौतिक पूंजी एवं विशेषीकृत व्यक्तिगत कुशलता मे मिलता है, जिन्हें किसी व्यवसाय मे आवश्यकरूप से एक साथ

अध्याय 6। संयुक्त एवं मिश्रित माँग तथा

सम्भरण। ही काम मे लाया जाना चाहिए। क्योकि उपभोक्ताओ की इनमे से किसी भी एक चीज के लिए अलग से प्रत्यक्ष माँग नही होती बल्कि इन दोनों के लिए एक साथ ही माँग होती है। इन दोनो मे से किसी के लिए भी अलग अलग माँग व्युत्पन्न माँग होती है जो अन्य बातो के समान रहने पर, उभयनिष्ट उत्पादन के लिए माँग मे वृद्धि व उत्पादन के सयुक्त कारको की सम्भरण कीमत मे कमी के साथ साथ बढती जाती है। ठीक इसी प्रकार सयुक्त सम्भरण की वस्तुओ मे, जैसे कि गैस या पत्थर का कोयला या गौमास तथा पशुचर्म मे, प्रत्येक की केवल व्युत्पन्न सम्भरण कीमत हो सकती है, जिस पर एक ओर तो उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के खर्च का तथा दूसरी और शेष बचे सयुक्त उत्पादन के लिए माँग का प्रभाव पडता है।

किसी वस्तु के विभिन्न उपयोगो मे लाये जाने के कारण उत्पन्न संयुक्त माँग तथा अनेक साधनो द्वारा उत्पन्न की जा सकने वाली वस्तु का मिश्रित सम्भरण से कोई बडी कठिनाई पैदा नही होती, क्योकि विभिन्न उद्देश्यो के लिए माँगी जाने वाली या विभिन्न साधनो से प्राप्त की जाने वाली असख्य मात्राओ का उसी पद्धति के अनुसार योग किया जा सकता है जिसके अनुसार भाग 3 मे एक ही वस्तु के लिए धनी मध्यम वर्ग तथा निर्धन वर्गो के लोगो की माँग का योग किया गया है।

अध्याय 7। अनुपूरक लागतों का वितरण। इसके पश्चात् हमने किसी व्यवसाय के अनेक उत्पादो मे उस व्यवसाय की अनुपूरक लागतो और विशेषकर व्यापारिक सम्पर्क विपणन तथा बीमे से सम्बन्धित लागतों का कुछ अध्ययन किया।

§3 सामान्य माँग तथा सम्भरण के साम्य की समय से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं पर विचार करते समय हमने उत्पादन के किसी उपकरण तथा उसके द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तु के मूल्यो के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध का भली भाँति पता लगाया।

अध्याय 8 और 9। उत्पादन के किसी उपकरण के मूल्य का इसके द्वारा उत्पन्न चीजों के मूल्य से सम्बन्ध।

जब विभिन्न उत्पादको को किसी चीज के उत्पादन मे विभिन्न प्रकार के लाभ होते हैं तो इसकी कीमत से उन उत्पादको के उत्पादन के खर्चे अवश्य ही पूरे होने चाहिए जिन्हे कोई भी विशेष एव असाधारण सुविधाएँ प्राप्त नही है, क्योकि ऐसा न होने पर वे अपना उत्पादन या तो रोक लेगे या कम कर देगे, और माँग की अपेक्षा सम्भरण दुर्लभ हो जाने पर कीमत बढ जायेगी। जब बाजार साम्य की स्थिति मे हो और चीजे ऐसी कीमत पर बेची जा रही हो जिससे इन पर लगी लागत वसूल हो जाय तो जिन लोगो को कुछ असाधारण सुविधाएँ प्राप्त है अपने खर्चो के अतिरिक्त अधिशेष भी प्राप्त होगा। यदि ये सुविधाएँ प्रकृति की मुक्त देनो के ऊपर अधिकार होने से प्राप्त हो तो इस अधिशेष को उत्पादक अधिशेष या उत्पादक लगान कहा जाता है। कुछ भी हो हर प्रकार से अधिशेष मिलता है, और यदि प्रकृति की मुक्त देन का स्वामी इसे किसी अन्य को किराये पर दे तो वह साधारणतया इसके उपयोग के बदले मे इस अधिशेष के तुल्यांक (equivalent) द्रव्यिक आय प्राप्त करेगा।

उपज की कीमत इस सीमान्त पर उगाये जाने वाले भाग की उत्पादन लागत के बराबर होती है जो ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियो मे हो कि इससे कुछ भी लगान न मिले। इस भाग के ऊपर लगने वाली लागत का बिना किसी चक्रदार तर्क के अनुमान

लगाया जा सकता है, जबकि इसके अन्य भागों का इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता।

यदि हॉप उगाये जाने के लिए काम मे लायी जाने वाली भूमि को बिक्री के लिए उगायी जाने वाली शाक-फल की बाड़ी के रूप मे अधिक लगान देने योग्य पाया जाय तो हॉप उगाये जाने वाली भूमि का क्षेत्र निस्सन्देह घट जायेगा, और इससे उसका सीमान्त उत्पादन व्यय बढ़ जायेगा तथा उनकी कीमत भी बढ जायेगी। भूमि से एक प्रकार की उपज के लिए जो लगान मिलता है उससे इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित होता है कि उस प्रकार की उपज के लिए भूमि की माँग बढने से अन्य प्रकार के उपयोगों के लिए भूमि मिलने की कठिनाइयाँ बढ़ जाती है, यद्यपि लगान प्रत्यक्षरूप से उन खर्चों मे शामिल नही होता। शहरी भूमि के स्थूल मूल्य तथा इस पर बनायी जाने वाली चीजो की लागतो के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध पर भी इसी प्रकार के तर्क उपयुक्त होते है।

इस प्रकार सामान्य मूल्य के विषय मे व्यापक दृष्टिकोण अपनाते समय 'दीर्घकाल में' सामान्य मूल्य को निर्धारित करने वाले कारणों का पता लगाते समय तथा आर्थिक कारणो के 'अन्तिम' प्रभावो की खोज करते समय इन रूपों में पूँजी से प्राप्त की जाने वाली उस वस्तु के उत्पादन के खर्चों को पूरा करने के लिए आवश्यक भुगतानों मे शामिल होती है। उस आय की सम्भावित मात्रा के अनुमानों से उन उत्पादकों के कार्य को प्रत्यक्षरूप से नियत्रित किया जाता है जो इस संशय के सीमान्त में हैं कि उत्पादन के साधनो को बढाना चाहिए या नही। किन्तु दूसरी ओर हम जब उत्पादन के उन उपकरणो के सम्भरण मे बहुत वृद्धि के लिए आवश्यक अवधि की अपेक्षा अल्प अवधि मे सामान्य कीमतों को निर्धारित करने वाले कारणों पर विचार करते है तो उनका मूल्य पर मुख्यतया अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा और यह प्रकृति की मुक्त देनों से पड़ने वाले प्रभाव की भाँति होगा। समय की विचाराधीन अवधि जितनी ही कम होगी, तथा उन उपकरणो के उत्पादन की प्रक्रिया जितनी ही धीमी होगी, उनसे प्राप्त आय मे घट बढ़ का उनकी उत्पादित वस्तु के सम्भरण को नियंत्रित करने या बढ़ाने तथा उसकी सम्भरण कीमत को बढ़ाने या घटाने में उतना ही कम भाग होगा।

§4. इसमे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली किसी वस्तु के उत्पादन के सीमान्त खर्चो से सम्बन्धित तकनीकी कठिनाइयो पर विचार किया गया है। ये कठिनाइयाँ किसी व्यक्तिगत व्यवसाय के आन्तरिक, और इससे भी इसके बाह्य सगठन की फैलने की अवधि के लिए छूट रखे बिना, सम्भरण कीमत की उत्पादन की मात्रा पर निर्भर मानने के आकर्षण के कारण उत्पन्न होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि ये मूल्य के सिद्धान्त के गणितीय एव अर्द्ध-गणितीय विवेचन मे सबसे अधिक प्रमुख रही है। क्योकि जब सम्भरण कीमत तथा उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तनों को धीरे-धीरे होने वाली वृद्धि के प्रसग के बिना एक दूसरे पर पूर्णरूप से निर्भर माना जाय तो यह तर्क देना युक्तिसगत प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्तिगत उत्पादक की सीमान्त सम्भरण कीमत उसके उत्पादन के कुल खर्चों मे अन्तिम मात्रा के उत्पान से होने वाली	अध्याय 12। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम का अल्पकाल में सम्भरण कीमत पर पड़ने वाले प्रभाव का वास्तविक

रूप व्यक्त नहीं होता।

वृद्धि के बराबर होती है और अनेक दशाओ मे उसके उत्पादन मे वृद्धि से आम बाजार मे माँग कीमत मे होने वाली कमी की अपेक्षा इस सीमान्त कीमत मे सम्भवतया कही अधिक कमी होगी।

स्थैतिकी प्रणाली की कमियाँ।

अतः साम्य का स्थैतिकी सिद्धान्त उन वस्तुओ पर पूर्णरूप से लागू नही होता जिनका क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार उत्पादन होता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि अनेक उद्योगो मे प्रत्येक उत्पादक अपनी वस्तु के लिए किसी एक विशेष बाजार मे विख्यात होता है जिसका वह तेजी से विस्तार नही कर सकता। वह मौलिक रूप से अपना उत्पादन तेजी से बढ़ा सकता है किन्तु इसके फलस्वरूप उसे या तो अपने विशेष बाजार मे माँग की कीमत को बहुत कम करने का जोखिम वहन करना पड़ेगा या उसे कम अनुकूल दर पर अपना अतिरिक्त उत्पादन बाहर बेचने का जोखिम लेना ही पड़ेगा। ऐसे भी उद्योग है जिनमे प्रत्येक उत्पादक की किसी बड़े बाजार के सम्पूर्ण भाग मे पहुँच होती है, इस पर भी उस समय विद्यमान सयत्र के पहले से ही पूर्ण रूप से उपयोग किये जाने पर इनमे उत्पादन मे वृद्धि से केवल कुछ ही आन्तरिक किफायते मिल पाती है। इसमे सन्देह नही कि ऐसे भी उद्योग है जिन पर इन दोनो मे से कोई भी कथन लागू नही होता. वे परिवर्तन की अवस्था मे है और यह मानना ही पड़ेगा कि सामान्य माँग तथा सम्भरण के साम्य के स्थैतिकी सिद्धान्त को उन पर लागू करना लाभप्रद नही है। किन्तु ऐसी दशाएँ बहुत अधिक नही है, और अधिकाश उद्योगो मे अल्पकाल तथा दीर्घकाल मे सम्भरण कीमत तथा उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध मे आधार भूतरूप से भिन्न होते है।

अल्पकाल मे किसी व्यवसाय के आतरिक एव बाह्य सगठन को उत्पादन मे होने वाले तीव्र परिवर्तनो के अनुसार समायोजित करने की कठिनाइया इतनी बड़ी है कि सम्भरण कीमत को साधारणतया उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि के साथ बढ़ती हुई तथा इसकी मात्रा मे कमी के साथ घटती हुई मानना चाहिए।

दीर्घकाल में इसकी क्रिया-विधि।

किन्तु दीर्घकाल मे बड़े पैमाने पर उत्पादन की आतरिक एव बाह्य किफायतो के विकास के लिए समय मिल जाता है। सीमान्त सम्भरण कीमत वस्तुओ की किसी खास गांठ के उत्पादन के खर्चो के बराबर नही होती: किन्तु यह उत्पादन तथा विपणन की कुल प्रक्रिया मे सीमान्त वृद्धि के (बीमा तथा प्रबन्ध की कुल आय सहित) कुल खर्चो के बराबर होती है।

1

अध्याय 13। सामान्य माँग तथा सम्भरण में परिवर्तनों की अधिकतम परितुष्टि

§5. किसी कर के प्रभावो को माँग तथा सम्भरण की साधारण दशाओ मे किसी परिवर्तन का विशेषरूप मानने पर कुछ अध्ययन करने से यह सकेत मिलता है कि उपभोक्ताओ के हितो के लिए उचित छूट रखी जाने पर अधिकतम परितुष्टि के साधारण सिद्धान्त की प्रत्यक्षत. उतनी आवश्यकता नही है जितनी कि प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने कल्पना की थी। इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने ही तुरन्त हित के लिए स्वतत्ररूप से खोज करने से उत्पादक अपनी पूँजी एवं श्रम को तथा उपभोक्ता अपनी आय को उन चीजो मे उपयोग करते है जो सामान्य हित के सबसे अधिक अनुकूल हो। इस समय सबसे सामान्य रूप का ही विश्लेषण करने के कारण हम मानव के वर्तमान स्वभाव को देखते हुए इस महत्वपूर्ण विषय के बारे

कुछ भी नहीं कहना चाहते कि शक्ति एवं लोच में आविष्कार-कौशल एवं उद्देश्य की स्पष्टता में सामूहिक कार्य व्यक्तिगत कार्य से सम्भवतया कहाँ तक निम्नस्तर का है। और इसलिए किसी भी कार्य से प्रभावित होने वाले सभी प्रकार के हितों की रक्षा करने से जो बचत होती है उसकी अपेक्षा व्यावहारिक अकुशलता के कारण होने वाली क्या अधिक बरबादी नहीं होती। किन्तु सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण होने वाली बुराइयों को ध्यान में न रखते हुए यह विश्वास करने का भी प्रत्यक्षतः कारण है कि कुल परितुष्टि का जो कि पहले से ही सर्वाधिक कार्य द्वारा उन वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि करने से बढाया जा सकता है जिनमे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम अधिक तीव्रता में लागू हो।

के सिद्धान्त से कुछ सम्बन्ध।

अध्याय 14। एकाधिकारों का सिद्धान्त।

इस बात की एकाधिकारों के सिद्धान्त के अध्ययन से पुष्टि हो जाती है। एकाधिकारी के तुरन्त हित के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने उत्पादन की वस्तुओं तथा उनकी बिक्री को इस प्रकार से समायोजित करे कि उसे अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त हो और वह इस प्रकार जिस मार्ग को अपनाता है वह सम्भवतया ऐसा नहीं होता कि उससे कुल अधिकतम परितुष्टि मिले। व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों में विभिन्नता क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की अपेक्षा उन वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्षतः कम महत्वपूर्ण है जिनमे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। किन्तु पश्चादुक्त स्थिति में यह विश्वास करने के लिए प्रत्यक्षतः ठोस तर्क मिलता है कि बहुधा समाज के हित के लिए इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि बहुत अधिक बढ़े हुए उत्पादन से उत्पादन के कुल खर्चों की अपेक्षा उपभोक्ता अधिशेष में कहीं अधिक वृद्धि होगी। माँग तथा सम्भरण के सम्बन्धों के विषय में अधिक यथार्थ विचार से विशेषकर इन्हें आरेखों के रूप में व्यक्त किये जाने पर हमें यह तय करने में सहायता मिलती है कि क्या क्या सारियकी एकत्रित करने चाहिए और सार्वजनिक एवं निजी सभी सघर्षपूर्ण आर्थिक हितों की सापेक्षिक मात्राओं के अनुमान लगाने के प्रयास में इनका कहाँ तक उपयोग करना चाहिए।

रिकार्डो का मूल्य का सिद्धान्त।

मूल्य के सम्बन्ध में रिकार्डो के उत्पादन की लागत के सिद्धान्त का अर्थशास्त्र के इतिहास में इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि इसके वास्तविक रूप के विषय में किसी भी मिथ्या धारणा से बहुत अधिक कठिनाइयाँ पैदा हो सकती है, और अभाग्यवशात् इसे इस ढंग से व्यक्त किया गया है कि इससे प्राय मिथ्या धारणा पैदा हो ही जाती है। परिणामस्वरूप यह विश्वास बहुत प्रचलित है कि अर्थशास्त्रियों की वर्तमान पीढ़ी को इस सिद्धान्त का पुन. प्रतिपादन करना है। इस मत को स्वीकार न करने, तथा इसके विपरीत यह विचार रखने का कारण परिशिष्ट झ (1) में बतलाया गया है कि रिकार्डो ने इस सिद्धान्त की जो आधारभूत चीजें बतलायी थीं वे अभी भी वही हैं। उनमें बहुत कुछ वृद्धि की गयी है, और उनके आधार पर बहुत कुछ प्रतिपादित किया जा चुका है किन्तु उन्हें थोड़ा ही उपयोग में लाया गया है। इस परिशिष्ट में यह तर्क दिया गया है कि रिकार्डो जानते थे कि मूल्य को नियंत्रित करने में माँग का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु उन्होंने इसके कार्य को उत्पादन की लागत के कार्य की अपेक्षा कम अस्पष्ट

भाग 6
राष्ट्रीय आय का वितरण

अध्याय 1

वितरण का प्रारम्भिक सर्वेक्षण

सम्पूर्ण भाग 6 का प्रयोजन।

§1. इस भाग का मुख्य भाव यह है कि स्वतन्त्र मानव से उन्हीं आधारों पर काम नहीं लिया जा सकता जिन पर एक मशीन घोड़े या दास से काम लिया जा सकता है। यदि उनसे भी इसी प्रकार काम लिया जा सकता तो सम्भरण को माँग के अनुसार समायोजित करने की आकस्मिक असफलताओं के लिए सदैव छूट रखते हुए मूल्य के वितरण एवं विनिमय के पहलुओं में बहुत कम अन्तर होता, क्योंकि उत्पादन के प्रत्येक उपादान को, टूटफूट इत्यादि सहित, अपने उत्पादन की लागत को पूरा करने के लिए उचित प्रतिफल मिलता। किन्तु वास्तविकता को देखते हुए प्रकृति के ऊपर मनुष्य की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से उसे आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बाद अधिकाधिक अधिशेष प्राप्त होता है, और जनसंख्या की असीमित वृद्धि से इसका शोषण नहीं किया जा सकता। अतः अब ये प्रश्न उठते हैं—वे कौन से सामान्य कारण हैं जो लोगों में इस अधिशेष के वितरण को नियंत्रित करते हैं ? परम्परागत आवश्यकताओं, अर्थात् आराम के स्तर का क्या महत्व है ? उपभोग एवं रहन सहन की प्रणालियों का आवश्यकताओं एवं प्रयत्नों द्वारा अर्थात् जीवन के स्तर द्वारा साधारणतया कार्यकुशलता को प्रभावित करने का क्या महत्व है ? प्रतिस्थापन सिद्धान्त के विविध प्रकार के कार्य तथा विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों के बुद्धिजीवियों एवं श्रमजीवियों का क्या महत्व है ? जिन लोगों के पास पूंजी है उनके द्वारा इसके उपयोग करने की शक्ति का क्या महत्व है ? एक ओर उन लोगों को जो कार्य करते हैं (जोखिम लेने के कार्य भी इसमें शामिल है) और 'प्रतीक्षा' करते है, तथा दूसरी ओर उन लोगों को जो कार्य करते हैं और तुरन्त ही अपने उद्यम के फल का उपभोग कर लेते हैं, उस सामान्य प्रवाह का कितना हिस्सा पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है ? इन सभी तथा इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का स्थूलरूप में उत्तर देने का प्रयास किया गया है।

अध्याय 1 का प्रयोजन।

हम यह ध्यान में रखते हुए कि फ्रान्सीसी तथा आंग्ल विचारकों ने एक शताब्दी पूर्व माँग को गौण स्थान देकर मूल्य को किस प्रकार उत्पादन की लागत से पूर्णतया नियन्त्रित माना, इस विषय का प्राथमिक सर्वेक्षण करेंगे। इसके बाद हम देखेंगे कि किसी स्थिर अवस्था में ये परिणाम कितने सत्य निकलेंगे, और इन परिणामों को जीवन एवं कार्य की वास्तविक दशाओं को समान बनाने के लिए क्या क्या सुधार करने की

आवश्यकता है : इस प्रकार अध्याय 1 के शेष भाग में मुख्यतया श्रम की माँग पर विचार किया जायेगा।

अध्याय 2 का प्रयोजन।

अध्याय 2 में हम सबसे पहले आधुनिक दशाओं में श्रम के सम्भरण पर विचार करेंगे, और इसके बाद हम उन कारणों के सामान्य दृष्टिकोण पर विचार करेंगे जिससे *श्रम तथा पूँजी एवं भूमि के मालिकों के बीच राष्ट्रीय आय के वितरण के आधार* निर्धारित किये जाते है। शीघ्रतापूर्वक किये गये इस सर्वेक्षण में हम अनेक विषयों का विस्तार विवरण नही पायेंगे : इस भाग के शेष अंश मे इसमे से कुछ पर प्रकाश डाला जायगा, किन्तु जो विषय फिर भी रह जाते है उन पर बाद के ग्रन्थ में ही विचार किया जा सकेगा।

कृषि अर्थशास्त्रियों ने उस समय विद्यमान तथ्यों के आधार पर यह कल्पना की कि मजदूरी की दरें न्यूनतम थीं, और पूंजी के

§2. राष्ट्रीय आय के वितरण को निर्धारित करने वाले कारणों का एडम स्मिथ के ठीक पहले के फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियों ने सरलतम विवरण दिया है, और यह गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रान्स की विशेष परिस्थितियों पर आधारित था। उस समय फ्रान्सीसी किसान से लिए जाने वाले कर तथा अन्य प्रकार की अवैध वसूली, उसकी कर देने की क्षमता से सीमित थी, और श्रमिक वर्गों मे से कुछ भुखमरी से भी बदतर दशा मे थे। अतः अर्थशास्त्रियों ने जिन्हे कि कृषि अर्थशास्त्री कहा जाता था, सरलता के लिए यह मान लिया कि जनसंख्या का एक ऐसा भी प्राकृतिक नियम है जिसके अनुसार श्रम की मजदूरी भुखमरी की सीमा पर रखी जायेगी।[1] उन्होंने यह कल्पना नही की कि सभी कार्यशील जनसंख्या के विषय मे यह सत्य है, किन्तु अपवादों के बहुत होने के कारण उन्होंने यह सोचा कि उनकी मान्यता से जो सामान्य धारणा पैदा होगी वह सत्य निकलेगी :उन्होने ठीक ऐसी कल्पना की जैसी कि पृथ्वी के आकार का यह कह कर वर्णन करने मे निहित है कि यद्यपि कुछ पर्वत इसकी त्रिज्या के सामान्य स्तर से हजारवे

---

1 इस प्रकार तुर्गो जिनकी इस प्रयोजन के लिए कृषि अर्थशास्त्रियों में गणना की जाती है, कहते हैं (Sur la Formation et Distribution des Recheses VI) "हर प्रकार के धन्धे में यह होना चाहिए, और वास्तव में यह होता भी है कि दस्तकारों की मजदूरी उस मात्रा तक सीमित है जो उनके जीवन निर्वाह की चीजें प्राप्त करने के लिए आवश्यक है, वह जीविका के अतिरिक्त और कुछ नहीं अर्जित करता (Il ne gagne gue sa vie अर्थात् वह अपनी 'आजीविका' मात्र के लिए कमाता है)। ह्यम जब ने यह ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा कि इस तथ्य का यह निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरी पर कर लगने से मजदूरी में अवश्य वृद्धि होनी चाहिए, और इसलिए यह इस प्रेक्षित (observed) तथ्य से मेल नहीं खाता कि जहाँ कर ऊँचे होते हैं वहाँ मजदूरी बहुधा कम होती है, तथा इसके विपरीत तुर्गो ने इसका यह उत्तर दिया (मार्च, 1767) कि उसका लौह सिद्धान्त अल्पकाल में पूर्णरूप से लागू नहीं होगा, किन्तु केवल दीर्घकाल में ही लागू होगा। से (Say) द्वारा लिखित *Turgot* नामक पुस्तक के आंग्ल संस्करण, पृष्ठ 53 इत्यादि को देखिए।

अंश के बराबर अधिक बाहर निकले होते है तब भी इसका आकार दोनों सिरों पर नारंगी जैसा चपटा होता है।

ब्याज के विषय में भी बहुत कुछ ऐसा ही सत्य था।

पुनः वे यह जानते थे कि यूरोप में 'विलास की वस्तुओं पर सामान्यरूप में किफायत होने के कारण' पिछली पाँच शताब्दियों मे ब्याज की दर घट गयी थी। किन्तु वे पूँजी की सुग्राहिता (sensitiveness) तथा कर वसूल करने वालों की क्रूरता से बचने के लिए उन चीजों में पूँजी का विनियोजन तेजी से कम होने से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह कल्पना करने मे कोई बड़ा अतिक्रमण नही किया जाता कि लाभ की दर के उस समय विद्यमान दर से कम होने पर पूँजी का तेजी से या तो उपयोग किया जाने लगेगा या इसे अन्य चीजो मे लगाया जाने लगेगा। तदनुसार पुनः सरलता की दृष्टि से उन्होने यह माना कि मजदूरी की प्राकृतिक दर के कुछ अनुकूल कोई प्राकृतिक या लाभ की आवश्यक दर होती है और यदि वर्तमान दर इस आवश्यक स्तर से अधिक हो तो पूँजी मे तब तक तेजी से वृद्धि होने लगेगी जब तक इससे लाभ की दर घट कर उसी स्तर मे न आ जाय, और यदि प्रचलित दर उस स्तर से नीचे हो तो पूँजी तेजी से घटने लगेगी और यह दर पुनः ऊँची होने लगेगी। उन्होने यह सोचा कि प्राकृतिक नियमो द्वारा मजदूरी तथा ब्याज के इस प्रकार निश्चित किये जाने से प्रत्येक चीज का प्राकृतिक मूल्य उत्पादको को पारितोषिक के रूप मे देने के लिए आवश्यक मजदूरी तथा लाभ के योग से ही नियंत्रित होता है।[1]

इन बेलोच मान्यताओं को एडम स्मिथ तथा माल्थस ने

कृषि अर्थशास्त्रियो की अपेक्षा एडम स्मिथ ने अधिक पूर्णरूप से निष्कर्ष निकाला था, यद्यपि आगे चल कर रिकार्डो ने यह स्पष्ट किया था कि उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम एवं पूँजी को कृषि के सीमान्त पर आँकना चाहिए जिससे इसमें लगान शामिल न हो सके। किन्तु एडम स्मिथ ने यह भी देखा कि फ्रान्स की भाँति इग्लैंड मे श्रम एवं मजदूरी का स्तर भुखमरी की अवस्था मे नही था। इंग्लैड मे अधिकांश श्रमिक वर्गों

1 इस पूर्वकथित तथ्यों से कृषि अर्थशास्त्रियों ने तार्किक रूप से यह निरकर्ष निकाला कि देश में कर लगाने के लिए उपयुक्त निवल उपज केवल भूमि का लगान है। जब पूंजी या श्रम पर कर लगाये जाते हे तो उनसे इसकी मात्रा में इतनी कमी हो जाती है कि इसकी निवल कीमत बढ़कर प्राकृतिक स्तर के बराबर हो जाती है। उन्होंने यह तर्क दिया कि भूस्वामियों को जो कुल कीमत देनी पड़ती है वह यह निवल कीमत से कर व कर वसूल करने में होने वाले खर्चों तथा कर वसूल करने वालों द्वारा उद्योग के निर्विघ्न मार्ग में डाली जाने वाली सभी बाधाओं के तुल्यांक से अधिक होती है अतः वास्तविक रूप से मिलने वाले एकमात्र अधिशेष के स्वामी होने के कारण भूस्वामी सीधे राजा को ही उसके द्वारा लगाये गये करों को देने लगें तो भूस्वामियों को दीर्घ-काल में कम क्षति उठानी पड़ेगी। यदि राजा "अबन्ध नीति, अबन्ध प्रवेश नीति" (Laisser faire, Laisser Passer) अर्थात् प्रत्येक को उसकी मन पसन्द चीज पैदा करने तथा जहाँ चाहे उस बाजार में अपने श्रम को ले जाने एवं अपनी वस्तुएँ भेजने से सहमत हो तो यह बात विशेषकर सत्य होगी।

आंशिक रूप से कम कर दिया।

की मजदूरी जीवन की केवल नितान्त अपरिहार्य आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए ही पर्याप्त नही थी अपितु उससे भी अधिक थी, और वहाँ पूँजी समाप्त होने या इसके बहिर्गमन के लिए बहुत सुरक्षित क्षेत्र था। अतः अपने शब्दों का सतर्कतापूर्वक चयन करते समय उन्होने 'मजदूरी की प्राकृतिक दर' तथा 'लाभ की प्राकृतिक दर' शब्दो का जो प्रयोग किया है उसमे वह तीक्ष्ण स्पष्टता एव निश्चितता नही है जो कि कृषि अर्थशास्त्रियो के शब्दो मे थी। वे इस बात पर भी पर्याप्त विचार करते है कि माँग तथा सम्भरण की निरन्तर बदलती हुई दशाओ द्वारा ये दोनो किस प्रकार निश्चित की जाती है। वह यहाँ तक जोर देते है कि श्रम के लिए उदाररूप से पुरस्कार देने से 'साधारण लोगो के उद्यम करने की शक्ति बढ़ जाती है' और 'प्रचुर मात्रा मे जीविका के लिए चीजो के मिलने से श्रमिको की शारीरिक शक्ति बढ़ती है और वे अपनी दशा मे सुधार करने तथा अपने जीवन के अन्तिम दिन आराम एव खुशहाली मे व्यतीत करने की शान्तिदायक आशा से अपनी शक्ति का अधिकतम प्रयोग करने के लिए प्रेरित होते हैं। जहाँ मजदूरी की दर ऊँची होती है वहाँ कम मजदूरी वाले स्थानों की अपेक्षा श्रमिक अधिक फुर्तीले, परिश्रमी तथा शीघ्रता से कार्य करने वाले होते है, जैसा कि स्काटलैंड की अपेक्षा इग्लैंड मे दूर ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरो के निकट दिखायी देता है।[1] इस पर भी वह कभी पुराने ढग से विचार व्यक्त करने लगते है, और इस कारण असतर्क पाठकगण यह कल्पना करने लगते है कि वह श्रमिको की मजदूरी के औसत स्तर को किसी लौह सिद्धान्त द्वारा जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओ की तृप्ति के लिए पर्याप्त स्तर के बराबर ही निश्चित मानते है।

पुन. माल्थस इग्लैंड मे तेरहवी शताब्दी से अठारहवी शताब्दी तक मजदूरी के स्तर के अपने प्रशसनीय सर्वेक्षण मे यह प्रदर्शित करते हैं कि किस प्रकार इनका औसत स्तर एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी मे दोलन करता रहा है। यह कभी कभी घट कर प्रतिदिन अनाज का आधा पैक (2 गैलन की माप का पात्र) तथा कभी कभी डेढ़ पैक या, यहाँ तक कि पन्द्रहवी शताब्दी मे, दो पैक के बराबर रहा है। किन्तु यद्यपि वह यह देखते है कि 'रहन-सहन का घटिया तरीका गरीबी का कारण एव परिणाम दोनों ही हो सकता है,' वह इस परिणाम को इनकी संख्या मे वृद्धि के ही फलस्वरूप मानते हैं। उन्होने हमारी पीढ़ी के अर्थशास्त्रियो की भाँति रहन-सहन की आदतो से कार्यकुशलता पर पडने वाले प्रभाव पर और अतः श्रमिक की अर्जन शक्ति पर अधिक जोर नही दिया।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि

एडम स्मिथ तथा माल्थस की अपेक्षा रिकार्डो की भाषा अधिक अरक्षित है। वास्तव मे यह सत्य है कि वह विशिष्ट रूप से यह कहते हैं[3] :—'यह नही समझना

---

1 Wealth of Nat.ons, भाग I, अध्याय VIII

2 Political Economy, अध्याय IV अनुभाग 2। पन्द्रहवीं शताब्दी में वास्तविक मजदूरी की वृद्धि की मात्रा के विषय में कुछ संशय रहा है। केवल अन्तिम दो पीढ़ियों में ही इंग्लैंड में साधारण श्रम की वास्तविक मजदूरी दो पेक से अधिक हुई है।

3 Principles , अध्याय V।

चाहिए कि श्रम की भोजन तथा आवश्यक आवश्यकताओं के रूप में अनुमानित प्राकृतिक कीमत पूर्णरूप से निश्चित एव स्थिर है। यह लोगो की आदतों तथा उनकी प्रथाओं पर आवश्यक रूप से निर्भर रहती है।' किन्तु एक बार यह कह देने के बाद वह निरन्तर इसे दुहराने का कष्ट नही करते और उनके अधिकाश पाठक यह भूल जाते है कि उन्होने यह कहा भी था। वह तर्क देते समय अधिकाशतया टर्गो तथा कृषि अर्थशास्त्रियो द्वारा अपनायी गयी वाक्शैली का ही प्रयोग करते है,[1] और ऐसा प्रतीत होता है कि वह यह कहना चाहते है कि जीवन की नितान्त अपरिहार्य आवश्यकताओ की तृप्ति से मजदूरी अधिक होने पर जनसख्या मे भी तेजी से वृद्धि होने की प्रवृत्ति से 'प्राकृतिक नियम' द्वारा मजदूरी की दरें इन स्तर पर ही निश्चित की जाती हैं। इसे विशेषकर जर्मनी मे रिकार्डो का 'लौह' या 'निर्वाह मात्र' (Brazen) सिद्धान्त कहा जाता है: अनेक जर्मन समाजवादी यह विश्वास करते हैं कि यह नियम अब यहाँ तक कि पाश्चात्य जगत मे भी लागू होने लगा है, और जब तक संगठन की योजना 'पूँजीवादी' या व्यक्तिवादी' बनी रहती है तब तक यह नियम लागू होता रहेगा। वे अपने पक्ष मे रिकार्डो के होने का दावा करते है।[2]

रिकार्डो 'मजदूरी के लौह सिद्धान्त' को मानते थे, किन्तु वास्तव में वह मजदूरी को जीवन के परिवर्तनशील स्तर से अधिकांशतया नियंत्रित मानते थे।

कुछ भी हो, रिकार्डो न केवल इस बात से अवगत थे कि मजदूरी की आवश्यक या प्राकृतिक सीमा किसी लौह सिद्धान्त द्वारा निश्चित नही होती, अपितु प्रत्येक स्थान एव समय की स्थानीय दशाओं एव आदतो से निर्धारित होती है। 'वह रहन-सहन के स्तर' के उच्चतर होने के विषय के प्रति बडे सवेदनशील थे, और उन्होने मानवजाति के हितैषियो से यह पुकार की कि श्रमिक वर्गों को अधिकाधिक दृढ़प्रतिज्ञ होने के लिए प्रोत्साहन दे जिससे श्रमिक यह प्रयत्न करे कि उनकी मजदूरी घट कर जीवन की नितान्त अपरिहार्य आवश्यकताओ के निकट न हो जाय।[3]

---

1 ऊपर भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 8 से तुलना कीजिए।

2 कुछ जर्मन अर्थशास्त्री, जो समाजवादी नहीं हैं, और जो इस प्रकार के किसी सिद्धान्त के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते, यह मानते हैं कि रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों के सिद्धान्त इस सिद्धान्त के सही या गलत होने के अनुसार ही सही या गलत हैं। जब कि अन्य (उदाहरणार्थ रोशे Gesch der nat Oek in Deutschland, पृष्ठ 1022) समाजवादियों द्वारा रिकार्डो के सिद्धान्त का गलत अर्थ लगाने का विरोध करते हैं।

3 उनके शब्दों को उद्धृत करना अच्छा रहेगा। "मानव जाति के हितैषी केवल यही कामना कर सकते हैं कि सभी देशों में श्रमिक वर्गों के आराम एवं सुख के लिए रुचि पैदा हो जाय, और सभी कानूनी साधनों से इन्हें प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने को उन्हें उत्तेजना दी जानी चाहिए। अत्यधिक जनसंख्या के भय से बचने के लिए इससे अच्छी और कोई सुरक्षा नहीं हो सकती। जिन देशों में श्रमिक वर्गों की न्यूनतम माँगें होती हैं, और जो सबसे सस्ते भोजन से ही तृप्त हो जाते हैं, लोग बड़े से बड़े विप्लव एवं दुर्दशा के शिकार हो सकते हैं। उनके पास घोर दुःख से बचने के लिए कोई स्थान नहीं होता; वे इससे गिरी हुई स्थिति में सुरक्षा प्राप्त नहीं कर सकते; वे पहले

जिस दृढ़ता से अनेक लेखक रिकार्डो के 'लौह सिद्धान्त' में विश्वास करते आये हैं उसका एकमात्र कारण यह था कि रिकार्डो को 'कड़े विषयों की कल्पना करने' में आनन्द मिलता था तथा वह स्वभावतः एक बार दिये गये इस संकेत की कभी भी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते थे कि वह अपने विचारों को सरलरूप में व्यक्त करने के कारण अपने परिणामों के चरितार्थ होने के लिए आवश्यक शर्तों तथा सीमाओं का उल्लेख नहीं करते थे।[1]

मिल ने भी अनुचित रूप से नीची

मिल ने अर्थशास्त्र में मानवीय तत्त्व पर विशिष्टरूप से जोर देने की तत्परता के बावजूद मजदूरी के सिद्धान्त में अपने पूर्ववर्ती विचारकों से आगे कोई बड़ी प्रगति नहीं की। उन्होंने इतिहास की उन शिक्षाओं पर ध्यान देते समय माल्थस का अनुकरण

से ही इतनी गिरी हुई हालत में होते हैं कि इससे अधिक नहीं गिर सकते। अपनी जीविका की किसी मुख्य वस्तु की कमी होने से उनके पास बहुत ही कम स्थानापन्न वस्तुएं होती हैं जिनका वे सेवन कर सकें, और किसी चीज के अभाव होने से उनके लिए तो अकाल की लगभग सारी ही बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं।" (Principles, अध्याय V)। यह उल्लेखनीय है कि मैक्कुलोच ने जिन पर रिकार्डो के उपतम मतों को अपनाने तथा उनका कठोरता एवं सख्ती के साथ प्रयोग करने का आरोप लगाया गया है, जो बिल्कुल ही गलत तो नहीं है, Treatise on Wages नामक अपने ग्रन्थ के चौथे अध्याय का यह शीर्षक चुना:—Disadvantage of Low Wages, and of having the Labourers habitually fed on the cheapest species of food. Advantage of High Wages."

1 रिकार्डो की इस आदत का विवरण परिशिष्ट ञ (1) में दिया गया है। (भाग 5 अध्याय 14 अनुभाग 5 को भी देखिए)। आंग्ल अर्थशास्त्र-संस्थापकों ने प्रायः यह कहा था कि न्यूनतम मजदूरी कीमत पर आधारित है। किन्तु उन्होंने सामान्यरूप में कृषि-उपज को संक्षेप में व्यक्त करने के लिए अनाज शब्द का प्रयोग किया। उनका ऐसा करना कुछ अंशों में वैसा ही है जैसा कि पेट्टी का (Taxes and Contributions, अध्याय 14) यह कहना कि 'अनाज की उगाई में हम जीवन की सभी अपरिहार्य आवश्यकताओं की चीजों को शामिल करते हैं, और ईसामसीह की प्रार्थना में रोटी शब्द से भी हमारा यही अभिप्राय रहता है।' निस्सन्देह रिकार्डो ने हम सबकी अपेक्षा श्रमिक वर्गों की भावी प्रगति के विषय में कम आशामय दृष्टिकोण अपनाया। यहाँ तक कि कृषि श्रमिक भी जब अपने परिवार को अच्छी तरह से खिला सकता है और कुछ बचा भी सकता है: जब कि उस समय यहाँ तक कि दस्तकारों को फसल के खराब होने के बाद सदैव ही अपने परिवार के लिए पर्याप्त एवं अच्छा भोजन खरीदने के लिए अपनी सारी मजदूरी खर्च करनी पड़ती थी। सर डब्ल्यू॰ ऐसले हमारे इस युग की तुलना में रिकार्डो की आशाओं की संकीर्णता पर बल देते हैं, वह अंतिम टिप्पणी में उद्धृत गद्यांश के इतिहास का शिक्षात्मक रूप से वर्णन करते हैं, और यदि यह प्रदर्शित करते हैं कि लैसली ने भी उनके निर्वाह मात्रा सिद्धान्त को पूर्णरूप से बेलोच नहीं माना परिशिष्ट ञ, अनुभाग 2 देखिए।

किया जिनसे यह प्रदर्शित होता है कि यदि श्रमिक वर्गों की मजदूरी में कमी से आराम का स्तर घट जाय तो उनको होने वाली क्षति स्थायी होगी, और उनकी बिगड़ी हुई दशा एक नया न्यूनतम स्तर बन जायेगी जो कि पहले के अधिक प्रचुर न्यूनतम स्तर की भाँति निरन्तर बनी रहेगी।[1]

मजदूरी के कारण उत्तरोतर होने वाली क्षति पर जोर दिया।

किन्तु केवल पिछली पीढ़ी मे चलकर ऊँची मजदूरी के न केवल पानेवालो की, अपितु उनके बच्चों एवं पोते-पोतियों की कार्य कुशलता मे वृद्धि करने के प्रभावों का सतर्कतापूर्वक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इस विषय मे वाकर तथा अन्य अमेरिकी अर्थशास्त्रियों ने अगुवायी की है। पुराने तथा नये जगत के विभिन्न देशों की औद्योगिक समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली के प्रयोजग के कारण इस बात की ओर ध्यान अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है कि ऊँचा वेतन पाने वाला श्रमिक साधारणतया कुशल होता है और अतः यह श्रमिक महँगा नही होता। यह एक ऐसा तथ्य है जो अन्य किसी ज्ञात तथ्य की अपेक्षा मानव जाति के भविष्य के लिए अधिक आशामय है, किन्तु इससे वितरण का सिद्धान्त बहुत जटिल बन जायेगा।

किन्तु पिछली पीढ़ी में ही मजदूरी के कारण कार्य-कुशलता पर पड़ने वाले प्रभावों का सर्वप्रथम सतर्कतापूर्वक अध्ययन हुआ।

अब यह निश्चित हो चुका है कि वितरण की समस्या पुराने अर्थशास्त्रियो ने जितनी कठिन समझी उससे कही अधिक जटिल है, और इसका कोई भी सरल हल नही है। इसका सरल हल निकालने के लिए पहले जो प्रयास किये गये थे वे वास्तव मे एक ऐसे कल्पित प्रश्नों के उत्तर थे जो इस संसार की अपेक्षा किसी ऐसे अन्य ससार में सम्बन्धित थे जहाँ जीवन की दशाएँ बहुत सरल हो। उन प्रश्नो का उत्तर देने के लिए जो भी कार्य किया गया वह व्यर्थ नही गया। क्योकि किसी बडी कठिन समस्या का हल निकालने का सर्वोत्तम ढंग यह है कि उसे अनेक भागो मे विभाजित किया जाय: और इन सरल प्रश्नों में से प्रत्येक मे से उस बडी तथा कठिन समस्या का कुछ अंश निहित है जिसका हमें हल निकालना है। हमें इस अनुभव से लाभ उठाना चाहिए और इस अध्याय के शेष भाग में उन सामान्य कारणों को क्रमानुसार समझने का प्रत्यत्न किया जायेगा जिनसे वास्तविक जीवन मे श्रम एव पूँजी की माँग नियंत्रित होती है।[2]

यह एक कठिन समस्या है: सरल दृष्टान्तों की आवश्यकता है।

§3. अब हम किसी ऐसे कल्पित संसार मे श्रम के उपार्जन पर माँग के प्रभाव का अध्ययन प्रारम्भ करेंगे जिसमे प्रत्येक व्यक्ति के पास श्रम मे सहायता पहुँचाने के लिए पूँजी भी रहती है जिससे इसमे पूँजी एव श्रम के सम्बन्धो की समस्याएँ पैदा नहीं होती। अर्थात् अब हम यह कल्पना करेंगे कि बहुत थोडी ही पूँजी का उपयोग किया जाता है,

सर्वप्रथम हम यह कल्पना करें कि

---

1 भाग 2, अध्याय 11, अनुभाग 2। उन्होंने स्पष्टतः एक को छोड़कर अन्तिम टिप्पणी में उद्धृत गद्यांशों पर ध्यान न देते हुए यह शिकायत की थी कि रिकार्डो ने आराम के स्तर को अपरिवर्तनीय माना। वह इस बात से भलीभाँति अवगत थे कि रिकार्डो की 'मजदूरी की न्यूनतम दर' आराम के प्रचलित स्तर पर निर्भर थी, और इसका जीवन की नितान्त आवश्यक आवश्यकताओं से कोई भी सम्बन्ध न था।

2 भाग 5, अध्याय 2, विशेषकर अनुभाग 2, 3 से तुलना कीजिए।

सभी लोगों में समान औद्योगिक क्षमता है और इनकी परस्पर अदला-बदली हो सकती है तथा जनसंख्या स्थिर है।

और प्रत्येक व्यक्ति के पास उसके प्रयोग के लायक पूंजी रहती है, और प्रकृति की इतनी प्रचुर देने हैं कि वे निःशुल्क एवं अनधिकृत होती हैं। हम यह भी कल्पना करेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति की न केवल क्षमता अपितु कार्य करने की तत्परता भी समान है, और वास्तव मे प्रत्येक व्यक्ति बराबर ही कठिन कार्य करता है। साथ ही साथ यह भी कल्पना करेंगे कि सारा कार्य अकुशल होना है या इस अर्थ में विशेषीकृत नही होता कि यदि कोई भी दो व्यक्ति अपने काम-धन्धे की अदला बदली करना चाहे तो प्रत्येक व्यक्ति उतना ही अधिक तथा उतना ही अच्छा कार्य करेगा जितना कि दूसरे ने किया था। अन्त मे हम यह कल्पना करेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी अन्य की सहायता के बिक्री के लिए वस्तुओ का उत्पादन करना चाहता है और वह स्वयं ही उनको अन्तिम उपभोक्ताओ तक पहुँचाता है जिससे प्रत्येक वस्तु की माँग प्रत्यक्ष होती है।

ऐसा होने पर वितरण मुख्यतया माँग से नियंत्रित होगा।

इस दशा मे मूल्य की समस्या बहुत सरल है। चीजो का उनके उत्पादन मे लगे श्रम की मात्रा के अनुपात मे एक दूसरे से विनिमय किया जाता है। यदि किसी एक चीज का सम्भरण कम पड जाय तो यह कुछ समय के लिए अपनी सामान्य कीमत से अधिक पर बिकेगी इसका ऐसी चीजो मे भी विनिमय हो सकता है जिनके उत्पादन मे इसकी अपेक्षा अधिक समय लगा हो किन्तु ऐसा होने पर लोग अन्य कार्यों को छोड़कर शीघ्र ही इसमे लग जायेंगे, और बहुत थोडे ही समय मे इसका मूल्य गिरकर सामान्य स्तर पर आ जायेगा। इसमे कुछ थोडे से अस्थायी विघ्न भी पड सकते है, किन्तु आम-तौर पर किसी एक व्यक्ति का उपार्जन किसी अन्य के उपार्जन के बराबर ही होगा। अन्य शब्दो मे, प्रत्येक का उत्पादित वस्तुओ एव सेवाओ के कुल निवल योग मे या लाभाश मे बराबर हिस्सा होगा। श्रम की माँग सविहित होती है।[1]

अब यदि किसी व्यवसाय मे नये आविष्कार से कार्य-कुशलता दुगुनी हो जाय जिससे एक व्यक्ति अतिरिक्त उपकरणो की आवश्यकता के बिना वर्ष मे किसी एक प्रकार की पहले से दुगुनी चीजे बना ले तो उन चीजो का विनिमय मूल्य पहले का आधा रह जायेगा। प्रत्येक के श्रम की प्रभावोत्पादक माँग थोडी ही बढेगी और सामान्य उपार्जन धारा (earning stream) से प्रत्येक को मिलने वाला हिस्सा पहले से कुछ बडा होगा। वह यदि चाहे तो अन्य चीजो के पुराने हिस्से के साथ इस प्रकार की चीजो की दुगुनी मात्रा ले सकता है, या वह प्रत्येक जीज की पहले से कुछ अधिक मात्रा लेगा। यदि अनेक व्यवसायो मे उत्पादन की कुशलता मे वृद्धि हो तो सामान्य उपार्जन धारा, या लाभाश पर्याप्तरूप से अधिक होगा। उन व्यवसायो मे उत्पादित वस्तुओ से अन्य व्यवसायो मे उत्पादित वस्तुओ की माँग भी पर्याप्तरूप से बढेगी और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के उपार्जन की क्रयशक्ति बढ जायेगी।

दूसरी दशा में भी जिसमें जनसंख्या

§4. यदि हम यह कल्पना करे कि अन्य बाते जैसी पहले थी वैसी ही रहें अर्थात् यदि श्रमिको मे अभी भी पहले के समान क्षमता एव उद्यमशीलता हो तो हर व्यवसाय मे कुछ विशेषीकृत कुशलता की आवश्यकता होने पर तथा सभी व्यवसायो के समान

---

1 आगे दिये गये अनुभाग 10 को देखिए।

रूप से रुचिपूर्ण एवं समान सरलता से सीखे जा सकने पर स्थिति में कोई अधिक परिवर्तन नहीं होगा। सभी व्यवसायों में आय अर्जित करने की सामान्य दर इसके बाद भी समान रहेगी, क्योंकि यदि किसी व्यवसाय में एक दिन का श्रम लगाने से उत्पन्न चीज की अन्य व्यवसायों में एक से अधिक दिनों के श्रम के लिए बेची जा सके, तथा यदि इस असमानता के बहुत समय तक बने रहने की सम्भावना हो तो लोग अपने बच्चों को अधिक लाभप्रद व्यवसाय में प्रशिक्षित करने में प्राथमिकता देंगे। यह सत्य है कि वहाँ कुछ अनियमितताएँ भी हो सकती है। एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में लगने पर भी कुछ समय लगता है और कुछ व्यवसाय थोड़े समय तक उपार्जन धारा में अपने सामान्य हिस्से से अधिक प्राप्त कर सकते है जब कि अन्य व्यवसायों को इससे कम हिस्सा मिलेगा या यह भी हो सकता है कि उनके पास कुछ भी काम करने को न रह जाय। किन्तु इस प्रकार की अव्यवस्था के बावजूद भी प्रत्येक चीज का चालू मूल्य इसके सामान्य मूल्य के निकट घटता बढ़ता रहेगा, जो कि पहली दशा की भाँति यहाँ भी उस वस्तु में लगाये जाने वाले श्रम की मात्रा पर ही निर्भर रहेगा क्योंकि सभी प्रकार के श्रम का सामान्य मूल्य इसके बाद भी समान रहेगा। समाज की उत्पादन शक्ति श्रम-विभाजन से बढ़ जायेगी, सामान्य राष्ट्रीय लाभांश या उपार्जन धारा अधिक होगी, और इसमें होने वाली अव्यवस्थाओं की दशाओं के अतिरिक्त अन्य दशाओं में सभी लोगों का इसमें समानरूप से हिस्सा होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम के फलस्वरूप अपने लिए स्वयं उत्पादन करने की अपेक्षा अधिक उपयोगी चीजे खरीद सकेगा।

स्थिर है, तथा सभी लोगों में समान औद्योगिक क्षमता है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति किसी खास व्यवसाय में ही लगा हुआ है, माँग से वितरण नियंत्रित होगा।

पहले बतलायी गयी अवस्थाओं की भाँति इसमें अभी भी यह सत्य है कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य इसमें लगे हुए श्रम के ही अनुरूप होता है, और प्रत्येक व्यक्ति का उपार्जन प्रकृति के उपहार तथा उत्पादन की कलाओं में प्रगति से नियंत्रित होता है।

§5 हम इसके बाद भी श्रमिकों के पालन-पोषण एवं उनके प्रशिक्षण में व्यय करने की उदारता का उनकी कार्यक्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में नहीं रखेंगे, और वितरण के सम्भरण सम्बन्धी अन्य पहलुओं के साथ इस विषय पर बाद वाले अध्याय में विचार करेंगे और हम अब प्रकृति से मिलने वाली आय पर जनसंख्या की वृद्धि के प्रभाव पर विचार करेंगे। हम यह कल्पना करेंगे कि जनसंख्या की वृद्धि की दर या तो निश्चित है, या इस पर मजदूरी की दर का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह रीतिरिवाज नैतिक मत तथा चिकित्सा ज्ञान में परिवर्तन से प्रभावित हो सकती है। हम अभी भी यह कल्पना करते है कि सारा श्रम एक ही प्रकार के काम में लगा है, तथा प्रत्येक परिवार में विभाजित किये जाने वाला राष्ट्रीय लाभांश कुछ अनियमितताओं के अलावा बराबर होता है। इस दशा में उत्पादन की कला या परिवहन में होने वाले प्रत्येक सुधार, नयी खोज तथा प्रकृति के ऊपर नयी विजय प्राप्त करने से प्रत्येक परिवार के आराम एवं विलास की चीजों में समानरूप से वृद्धि होगी।

पुनः यदि जनसंख्या में वृद्धि हो किन्तु यह आर्थिक कारणों का प्रभाव न हो, सभी श्रमिक एक ही श्रेणी के काम से सम्बन्धित हों,

किन्तु यह स्थिति पिछली स्थिति से भिन्न है, क्योंकि इसमें जनसंख्या की वृद्धि के लम्बे समय तक बने रहने से अन्ततोगत्वा उत्पादन की कलाओं में होने वाले सुधारों की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है, और इससे कृषि में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू होने लगता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग खेती करते है उन्हें अपने

चाहे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम ही

क्यों न लागू हो, तो भी ऐसा ही होगा।

श्रम एवं पूँजी के फलस्वरूप गेहूँ तथा अन्य उपज की कम मात्रा मिलेगी। सभी कृषि कार्यो मे एक घण्टे का काम पहले की अपेक्षा गेहूँ की कम मात्रा से आँका जायेगा और अतः अन्य सभी व्यवसायों मे भी ऐसा होगा क्योकि यह कल्पना की गयी है कि सभी श्रमिकों का श्रम समान प्रकार का है और प्राय सभी व्यवसायों से बराबर ही उपार्जन किया जाता है।

आगे हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि भूमि के अधिशेष या लगान मूल्य में बढने की प्रवृत्ति होगी। क्योंकि अच्छी या बुरी भूमि से ही लाभप्रद या सीमान्त दशाओ मे उत्पादन के लिए आवश्यक पूँजी की समान मात्रा लगाने से किसी भी उपज का मूल्य अवश्य ही उसमे लगे श्रम के मूल्य के बराबर होना चाहिए। उस सीमान्त पर एक चौथाई गेहूँ इत्यादि उगाने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक श्रम एवं पूँजी की आवश्यकता होगी, और अत. लाभप्रद परिस्थितियों मे लगाये जाने वाले श्रम के बदले मे प्रकृति से मिलने वाले प्रतिफल का मूल्य, श्रम एवं पूँजी की पहले लगायी जाने वाली मात्रा की अपेक्षा अधिक ऊँचा होगा या, अन्य शब्दो मे, इसे उगाने मे लगे हुए श्रम एवं पूँजी की अपेक्षा इससे अधिक अधिशेष मूल्य प्राप्त होगा।

विभिन्न ग्रेडों में लगे हुए लोगों की संख्या पर आर्थिक कारणों का प्रभाव न पड़ने पर भी माँग से ही मूल्य नियंत्रित होता है।

§6 अब हम सम्पूर्ण समाज मे श्रम को इतना गतिशील नही मानेंगे कि समान प्रयत्नो के लिए समान ही पारिश्रमिक मिले। सारे श्रम को किसी एक ही औद्योगिक स्तर की अपेक्षा अनेको औद्योगिक ग्रेडो को मानने से हम जीवन की वास्तविक दशाओ के अधिक निकट पहुँचते हैं। हम यह कल्पना करेंगे कि माता-पिता सदैव अपने बच्चो को अपने ही ग्रेड के धन्धे मे शिक्षित करते है; उन्हे उसी ग्रेड के कार्य के अन्तर्गत काम पसन्द करने की स्वतन्त्रता होती है, किन्तु वे इससे बाहर नही जा सकते। अन्त मे हम यह कल्पना करेंगे कि प्रत्येक ग्रेड मे लगे लोगो की सख्या मे वृद्धि आर्थिक कारणो से नियन्त्रित न होकर किन्ही अन्य कारणो से नियन्त्रित होती है। पहले की भाँति यहाँ पर भी यह रीति रिवाज, नैतिक मत, इत्यादि मे परिवर्तनो के अनुसार निश्चित या प्रभावित हो सकती है। इस दशा मे भी कुल राष्ट्रीय लाभाश उत्पादन कला की वर्तमान अवस्था मे मनुष्य के कार्य के बदले मे प्रकृति से मिलने वाले प्रचुर प्रतिफल से नियंत्रित होगा, किन्तु उस लाभाश का विभिन्न ग्रेडो मे वितरण असमान होगा। यह वितरण स्वय लोगों की माँग से नियंत्रित होगा। वे उन लोगों को जो स्वयं ही राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा हिस्सा प्राप्त कर रहे हो, जितनी ही अधिक तथा जितनी ही तीव्र आवश्यकता की सतुष्टि कर सकेंगे, उनका किसी औद्योगिक विभाग मे उतना ही अधिक हिस्सा होगा।

दृष्टान्त के लिए यह कल्पना करें कि कलाकार स्वयं ही अपना एक वर्ग या जाति या औद्योगिक विभाग बना लेते हैं, और इस प्रकार उनकी संख्या स्थिर होने के कारण कम से कम उनके उपार्जनों के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से नियंत्रित होने के कारण उनके उपार्जन जनसख्या के उन वर्गो के लोगो के साधनों तथा उनकी तत्परता से नियन्त्रित होंगे जो कलाकार से मिलने वाली परितुष्टि प्राप्त करना चाहते हैं।

अब हम जीवन की

§7. अब हम ऐसे काल्पनिक जगत पर विचार करना छोड देंगे जिसमे प्रत्येक व्यक्ति के पास कार्य मे सहायता पहुँचाने के लिए पूँजी रहती है, और वास्तविक संसार

पर विचार करना प्रारम्भ करेंगे जिसमे श्रम एवं पूँजी के सम्बन्धों का वितरण की समस्या मे महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु अभी भी हम उत्पादन के विभिन्न उपादानों के बीच उनमे से प्रत्येक की मात्रा तथा सेवाओं के आधार पर राष्ट्रीय लाभांश के वितरण पर विचार करेंगे, और प्रत्येक उत्पादन के पारिश्रमिक का उसके सम्भरण पर पडने वाले प्रतिक्रियात्मक प्रभाव को अगले अध्याय मे विचार किये जाने के लिए छोड़ देंगे।

वास्तविक दशाओं पर विचार करेंगे, किन्तु इन पर माँग के ही दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

हम यह देख चुके है कि एक दक्ष व्यवसायी व्यक्ति किस प्रकार अपने साधनों का सबसे लाभप्रद ढंग से उपयोग करने तथा उत्पादन के विभिन्न उपादानो मे से प्रत्येक का उस सीमान्त या सीमा तक उपयोग करने का सतत् प्रयत्न करता है जिस पर उसे अपने व्यय के थोड़े से भाग को किसी अन्य उपादान मे लगा देने से लाभ होगा, इस प्रकार अपने प्रभाव पडने के क्षेत्र में वह कहाँ तक स्वयं माध्यम है जिससे प्रतिस्थापन सिद्धान्त प्रत्येक उपादान के सीमान्त प्रयोग को इस प्रकार से समायोजित करे कि इसकी लागत इसके प्रयोग से होने वाले अतिरिक्त निवल उत्पाद के अनुपात मे हो। हमे श्रम को मजदूरी पर लगाने के विषय मे भी इस सामान्य तर्क प्रणाली को लागू करना है।[1]

श्रम का दृष्टान्त लेकर हम यह समझायेंगे कि वह कौन-सा सीमान्त है जिसके बाद उत्पादन के किसी उपादान का और अधिक प्रयोग करना लाभप्रद न होगा।

सतर्क व्यवसायी व्यक्ति के मस्तिष्क मे सदैव यह प्रश्न रहता है कि उसके पास कार्य के लिए उपयुक्त संख्या मे लोग है या नही। कुछ दशाओ मे सयन्त्र द्वारा यह तय हो जाता है: प्रत्येक एक्सप्रेस रेल के इजन के लिए एक और केवल एक ही चालक की आवश्यकता होती है। किन्तु कुछ एक्सप्रेस रेलगाड़ियो मे केवल एक ही गार्ड रहता है, और यात्रियो के अधिक होने पर इनमे होने वाले चन्द मिनटो के विलम्ब को दूसरा गार्ड भी रखने से दूर किया जा सकता है: अत एक दक्ष प्रबन्धक निरन्तर किसी मुख्य रेल मे दूसरे गार्ड की सहायता से होने वाली समय की बचत तथा यात्रियो को होने वाली झुँझलाहट के वास्तविक परिणाम को मापता है और यह विचार करता है कि क्या दूसरे गार्ड को रखना लाभप्रद है। यह प्रश्न इस प्रश्न से मिलता जुलता होने पर भी अधिक सरल है कि क्या समय-सारणी मे एक ऐसी अतिरिक्त रेल को रखने से कुछ लाभ होगा जिसके लिए सयंत्र एवं श्रम मे अधिक व्यय करने की आवश्यकता हो।

पुनः यह सुनायी देता है कि कोई किसान अपनी भूमि मे बिलकुल ही श्रम नही लगाता। सम्भवतया उसके पास पर्याप्त घोड़े तथा सयन्त्र हैं, किन्तु यदि वह दूसरा व्यक्ति भी लगा ले तो उसे दूसरे व्यक्ति को दिये जाने वाले पारिश्रमिक के बराबर ही नही अपितु इससे भी कही अधिक आय प्राप्त होगी अर्थात् एक अतिरिक्त व्यक्ति का निवल

सीमान्त कर्मचारी।

---

1 ऊपर भाग 5, अध्याय 4, अनुभाग 1–4 देखिए। कुछ ही देर बाद हमें यह विचार करना होगा कि मानवीय श्रम को किराये पर लेना किन बातों में मकान या मशीन को किराये पर लेने से भिन्न है: किन्तु यहाँ पर हम इस अन्तर को भूल जायेंगे और इस समस्या पर केवल व्यापक रूप में ही विचार करेंगे। ऐसा करने पर भी कुछ तकनीकी कठिनाइयों का सामाना करना पड़ेगा। वे पाठकगण जिन्होंने भाग 5, अध्याय 7 के अन्त में दी गयी सलाह के अनुसार उस भाग के शेष अध्यायों को पढ़ना छोड़ दिया था वे यदि यहाँ पर दिये गये सामान्य निरुपण से संतुष्ट न हों तो भाग 5 के अध्याय 7 तथा 9 को पढ़ें।

उत्पाद उसको दी जाने वाली मजदूरी से बढ़कर ही होगा। कल्पना करें कि कोई किसान अपने गड़ेरियों की संख्या के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रश्न उठाता है। सरलता के लिए हम यह कल्पना करेंगे कि एक अतिरिक्त व्यक्ति को काम पर लगाने के लिए संयंत्र या भेड़ों में और अधिक खर्च करने की आवश्यकता नहीं है: कि वह अतिरिक्त व्यक्ति स्वयं किसान के लिए जितनी मुसीबतें पैदा करता है उतनी ही मुसीबतें किसी न किसी प्रकार से दूर भी करता है, जिससे प्रबन्ध के उपार्जन के रूप में (चाहे इनकी इतनी व्यापक व्याख्या की जाय कि इनमें जोखिम के विरुद्ध बीमा, इत्यादि भी सम्मिलित हों) कुछ भी आयोजन नहीं करना पड़ता। और अन्त में यह मान लें कि किसान मेमनों की अन्य प्रकार से होने वाली बरबादी को इस प्रकार से रोकता है कि वर्ष में उसके पास बीस अच्छी भेड़ें बढ़ जायें। कहने का अभिप्राय यह है कि वह अतिरिक्त व्यक्ति के निवल उत्पाद का बीस भेड़ों के बराबर अनुमान लगाता है। यदि हर व्यक्ति श्रमिकों को साधारणतया दी जाने वाली मजदूरी से कम में ही मिल जाय तो दक्ष किसान उसे तुरन्त ही काम पर लगा लेगा, किन्तु यदि वह उसके बराबर मजदूरी पर ही मिले तो किसान संशय के सीमान्त पर होगा, और ऐसी दशा में उस व्यक्ति को सीमान्त गड़ेरिया कहा जा सकता है, क्योंकि उसे सीमान्त पर रोजगार पर लगाया जाता है।

उसमें 'प्रसामान्य' कार्यक्षमता होती है और वह 'प्रसामान्य दशाओं में कार्य करता है।'

व्यक्ति की कार्यक्षमता को प्रसामान्य मानना सर्वोत्तम प्रतीत होता है। चाहे वह कितनी ही अद्वितीय कार्यक्षमता वाला हो, उसकी निवल उपज यदि उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो तो उसे वास्तव में सीमान्त गड़ेरिया कहा जायेगा। हो सकता है कि किसान यह हिसाब न लगाये कि सामान्य कार्यक्षमता वाला गड़ेरिया उत्पादन में केवल सोलह भेड़ों की वृद्धि करेगा, और अतः वह साधारण मजदूरी की अपेक्षा उसको सवायी मजदूरी पर उसे रखने को तैयार रहेगा। किन्तु उसे इस प्रकार से अपवादजनक मान लेना बहुत अनुपयुक्त होगा। उसे प्रतिनिधि अर्थात् प्रसामान्य कार्यक्षमता वाला व्यक्ति मानना चाहिए।[1]

---

1 भाग 6, अध्याय 13, अनुभाग 8, 9 में श्रम मानवीकरण पर दिये गये अभिवचनों को देखिए।

निम्नांकित सारणी में गणितीय दृष्टान्त दिया गया है। कालम (2) में भेड़ों की संख्या दी गयी है जिनका क्रमशः 8, 9, 10, 11 तथा 12 गड़ेरियों से चलाये जाने वाले किसी बड़े आंग्ल भेड़ चरागाह से ऊन सहित सम्भवतः प्रतिवर्ष विपणन किया जाता है। (आस्ट्रेलिया में, जहां आदमियों की कमी है, भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है तथा भेड़ का सापेक्षिक मूल्य कम होता है। प्रति 2,000 भेड़ों के पीछे ऊन काटने के समय के अतिरिक्त बहुधा दस से कम व्यक्ति लगे होते हैं। एल्ले की British Dominion नामक पुस्तक में सर एलबर्ट स्पाइसर के विषय में दिये गये पृष्ठ 61 को देखिए)। यहां हम यह मानते हैं कि गड़ेरियों की संख्या 8 से 12 करने पर फार्म को चलाने के सामान्य खर्चों में वृद्धि नहीं होती और इससे फार्म को चलाने वालों के कन्धों से कुछ दिशाओं में उतना ही भार उठ जाता है जितना कि अन्य दिशाओं में

यदि वह प्रतिनिधि श्रमिक तथा उसका मालिक भी प्रतिनिधि हो तो बीस भेड़ों से निवल उत्पाद और अतः गड़ेरियों की आय अर्जित करने की शक्ति व्यक्त होगी। किन्तु यदि मालिक अच्छा प्रबन्धक न हो जैसा कि दृष्टान्त के लिए वह अपने आदमियों को भेड़ों के लिए आवश्यक चीजें देने में कमी करता हो तो वह श्रमिक बीस की अपेक्षा केवल पन्द्रह भेड़ों को सुरक्षित रखेगा। निवल उत्पाद से सामान्य मजदूरी केवल तभी व्यक्त होती है जब कर्मचारी तथा उसके रोजगार की दशाएँ दोनों ही सामान्य हों।

पड़ जाता है: जिससे इन मदों के अन्तर्गत दोनों दशाओं में किसी भी प्रकार का अनुमान नहीं लगाया जाता। तदनुसार क्रमानुसार हर अतिरिक्त व्यक्ति का उत्पाद जिसे कालम (3) में दिया गया है, कालम (2) में इसके अनुरूप दी गयी संख्या की उसी कालम (2) में इससे पहले दी हुई संख्या के बराबर है। कालम (2) में दी गयी संख्याओं को कालम (1) में दी गयी संख्याओं से विभाजित करने पर कालम (4) प्राप्त किया गया है। कालम (5) में गड़ेरियों के श्रम की प्रति व्यक्ति 20 भेड़ों की दर पर लागत दिखायी गयी है। कालम (6) में चरागाह के मालिक के लाभ तथा लगान सहित शेष खर्चों के लिए बचने वाला अधिशेष प्रदर्शित किया गया है।

गड़ेरियों की संख्या	भेड़ों की संख्या	अन्तिम व्यक्ति के कारण उत्पादन	प्रति व्यक्ति मजदूरी उत्पादन	औसत का बिल	(2) की (5) से अधिकता
8	580	–	$17\frac{1}{2}$	160	420
9	615	35	$68\frac{1}{3}$	180	435
10	640	25	64	200	440
11	660	20	60	220	440
12	676	16	$56\frac{1}{3}$	240	436

हम जैसे ही नीचे की ओर बढ़ते जाते हैं कालम (3) में दिये गये अंक निरन्तर घटते जाते हैं। किन्तु कालम (6) में दिये गये अंक बढ़ते जाते हैं। इसके बाद इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता और अन्त में ये घटने लगते हैं। इससे यह पता लगता है कि 10 या 11 व्यक्तियों को मजदूरी पर रखने से चरागाह के मालिक का बराबर ही हित होता है, किन्तु 8 या 9 या 12 व्यक्तियों को मजदूरी पर लगाने से उसका कम हित होता है। जब श्रम तथा भेड़ों के लिए बाजार ऐसे होते हैं कि एक व्यक्ति को बीस भेड़ों की कीमत पर एक वर्ष के लिए मजदूरी पर लगाया जा सके तो ग्यारहवाँ व्यक्ति (जिस की कार्यक्षमता प्रसामान्य मानी गयी है) सीमान्त व्यक्ति कहलाया जायेगा। यदि बाजार में इनकी मजदूरी 25 भेड़ों की कीमत के बराबर हो तो कालम (6) में दी गयी संख्याएँ क्रमशः 380, 390, 390, 385 तथा 376 होंगी। अतः वह चरागाह वाले काम पर 'सम्भवतया' एक गड़ेरिया कम लगाता, और बाजार को कम भेड़ें भेजता। अनेक भेड़ों वाले चरागाह के मालिकों में निश्चित रूप से ऐसा करने वाले लोगों का अनुपात बहुत अधिक होता।

इस गड़ेरिये के श्रम से प्राप्त किये जाने वाला अतिरिक्त उत्पाद उन गड़ेरियों की संख्या से बहुत प्रभावित होता है जिन्हें चरागाह वाला पहले से ही काम पर लगाये हुए हैं। पुन. यह भी माँग तथा सम्भरण की सामान्य दशाओं से और विशेषकर उन लोगों की संख्या से नियन्त्रित होता है जिनमे से वर्तमान पीढ़ी मे गड़ेरियों की नियुक्ति की गयी है। इसके अतिरिक्त यह भेड़ के मास व ऊन से तथा इनका सम्भरण करने वाले क्षेत्रो से, गड़ेरियों की अन्य सभी चरागाहो मे कार्य करने की सफलता इत्यादि से नियन्त्रित होता है। सीमान्त उत्पाद की मात्रा भूमि के अन्य उपयोगों के लिए होने वाली प्रतिस्पर्द्धा से भी बहुत प्रभावित होती है. इमारती लकड़ी या बाँस के पेड़ उगाने,

---

इसी प्रकार की दशाओं में (भाग 5, अध्याय 8, अनुभाग 4, 5 देखिए)। यह विस्तारपूर्वक बतलाया गया है कि चरागाह वाले के लिए इस श्रम के बदले में जिस कीमत को देना लाभप्रद है उससे गड़ेरियों की मजदूरी नियंत्रित करने वाले अनगिनत कारणों के परिणाम को उसी प्रकार मापा जा सकता है जिस प्रकार सुरक्षा-वाल्व से बायलर में ताप को प्रभावित करने वाले अनगिनत कारणों के परिणाम को मापा जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप से इसमें से इस तथ्य के लिए कुछ कटौती करनी पड़ती है कि बाजार में बीस अतिरिक्त भेड़ों के आ जाने से चरागाह वाले प्रायः भेड़ की कीमत कम कर देंगे और वे अपनी अन्य भेड़ों पर भी थोड़ी सी हानि उठाएँगे। विशेष स्थितियों में इस प्रकार का संशोधन पर्याप्तरूप से उपयोगी सिद्ध होगा, किन्तु इस प्रकार के सामान्य विवेचन में किसी बड़े बाजार में अनेक उत्पादकों में से किसी एक द्वारा सम्भरण की जाने वाली थोड़ी सी वृद्धि पर विचार करते समय यह संशोधन बहुत थोड़ा होता है (गणितीय भाषा में द्वितीय स्थान की थोड़ी सी मात्रा के बराबर होता है), और इसे छोड़ दिया जा सकता है।

निश्चय ही इस अपवादजनक स्थिति में गड़ेरिये के निवल उत्पादन का उनकी मजदूरी पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि सीमान्त गड़ेरियों का पड़ता है जो ऐसे चरागाहो में कार्य करते हैं जिनमें भूमि, इमारत, औजारी प्रबन्ध के कार्य इत्यादि में बिना पर्याप्त अतिरिक्त व्यय किये उन्हें लगाना लाभप्रद होगा।

ऊपर दी गयी सारणी में कालम (4) को, कालम (3) की भांति, कालम (1) तथा (2) से ही निकाला गया है। किन्तु इस सारणी से यह प्रदर्शित होता है कि कालम (3) में दी गयी भेड़ों की संख्या के मूल्य के तुल्यांक मजदूरी पर चरागाह के मालिक को अपने हित में कितने लोग लगाने चाहिए और अतः यह मजदूरी की समस्या के मूल तक पहुँचती है, जब कि कालम (4) की इस समस्या से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अतः मि० जे० हॉब्सन, स्वयं तैयार की गयी इसी प्रकार की सारणी पर जिसमें ली गयी संख्याएँ उन परिकल्पनाओं के अनुपयुक्त हैं जिनकी वह आलोचना करते हैं, यह विचार प्रकट करते समय भूल करते हैं:—"अन्य शब्दों में जिसे अन्तिम या सीमान्त उत्पादकता कहा जाता है, वह औसत उत्पादकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती। यह सम्पूर्ण विचार सीमान्त उत्पादकता होती भी है, बिलकुल ही भ्रान्तिमय है। (Industrial System, पृष्ठ 110 देखिए)।

हिरन पालने, इत्यादि के लिए माँग होने से भेड़ पालने के लिए प्राप्त स्थान की कमी हो जाती है।

यह दृष्टान्त एक साधारण उद्योग से लिया गया है किन्तु चाहे समस्या के रूप मे भिन्नता हो इसका सार हर एक उद्योग मे समान रहता है। फुटनोट मे दी गयी शर्तो के अनुसार यद्यपि ये हमारे मुख्य प्रयोजनो के लिए महत्वपूर्ण नही है श्रमिको के प्रत्येक वर्ग की मजदूरी उस वर्ग के सीमान्त श्रमिक के अतिरिक्त श्रम से उत्पन्न निवल उत्पाद के बराबर होने लगती है।[1]

यह सिद्धान्त मजदूरी का सिद्धान्त नहीं है, किन्तु यह इसका उपयोगी भाग है।

इस सिद्धान्त को कभी कभी मजदूरी के सिद्धान्त की भाँति प्रतिपादित किया गया है। किन्तु इस प्रकार के दावे का कोई युक्तिसगत आधार नही है। निवल उत्पाद का अनुमान लगाने के लिए हमे भूमि की अपनी मजदूरी के अतिरिक्त किसी वस्तु के उत्पादन के सभी खर्चो को निश्चित मानना पड़ता है किन्तु केवल इसी आधार पर इस सिद्धान्त का कि किसी श्रमिक के उपार्जन मे उसके कार्य के निवल उत्पाद के बराबर होने की प्रवृत्ति होती है, स्वत ही कोई वास्तविक अर्थ नहीं है।

यद्यपि इसमे मजदूरी का सिद्धान्त निहित मानने के दावे के विरुद्ध उठायी गयी यह आपत्ति युक्तिसगत है, किन्तु इस सिद्धान्त से मजदूरी को नियत्रित करने वाले कारणो मे से एक कारण के प्रभाव पर स्पष्ट प्रकाश डाले जाने के दावे के विरुद्ध उठायी गयी आपत्ति युक्तिसगत नही है।

ये अभिवचन सामान्यतया पूंजी की माँग पर लागू होते हैं।

§8. बाद के अध्यायो मे हम पिछले अनुभाग मे शारीरिक श्रम द्वारा समझाये गये सिद्धान्त के विशेष उद्देश्यों के लिए, तथा विशेषकर यह प्रदर्शित करने के लिए अन्य दृष्टान्त लेगे कि व्यावसायिक प्रबन्ध के कार्य के कुछ भाग का मूल्य तब कैसे मापा जाता है, जब यह देखा जाय कि कुछ अतिरिक्त व्यवस्था से किसी व्यवसाय का वास्तविक उत्पादन उतना ही बढ जाता है जितना कि किसी साधारण श्रमिक को मजदूरी पर रखने से बढ सकता है। कभी कभी किसी मशीन का उपार्जन कुछ दशाओ मे बिना अतिरिक्त आकस्मिक खर्च किये फैक्टरी के उत्पादन मे होने वाली वृद्धि द्वारा आँका जा सकता है।

---

1 किसी व्यक्ति के श्रम के निवल उत्पाद को समझाने की ऐसी प्रणाली को उन उद्योगों में सरलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता जहाँ धीरे धीरे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करते रहने के लिए बहुत अधिक पूंजी तथा श्रम का विनियोजन करना पड़ता है, और विशेषकर तब, जब कि इसमें क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता हो। यह व्यावहारिक कठिनाई भाग 5, अध्याय 12 तथा परिशिष्ट 'ज' में विवेचन की गयी कठिनाइयों की ही भाँति है। भाग 4, अध्याय 12, भाग 5, अध्याय 7, अनुभाग 1, 2 तथा अध्याय 11 भी देखिए। किसी बडे व्यवसाय की सामान्य किफायतों पर एक अतिरिक्त व्यक्ति लगाने से जो प्रभाव पड़ते है उन पर पूर्ण भावात्मक दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है।

किसी खास मशीन के कार्य से किसी ऐसी मशीन के कार्य के बारे में सामान्य धारणा बनाते हुए जिसका कुल मूल्य निश्चित हो, हम किसी खास फैक्टरी मे 100 पौंड के बराबर अतिरिक्त मशीन को इस ढंग से लगाये जाने की कल्पना करेंगे कि इससे कुछ भी अतिरिक्त खर्चा नही होता और इसकी अपनी टूटफूट के लिए छूट रखने के बाद उस फैक्टरी के निवल उत्पाद के प्रति वर्ष 4 पौंड के बराबर वृद्धि होती है। यदि पूंजी के विनियोजक इसे प्रत्येक धन्धे मे जिसमे कि बहुत अधिक पारितोषिक मिलने की सम्भावना हो, लगाये और यदि मशीन के लगाये जाने के बाद तथा साम्य बिन्दु के आ जाने के बाद भी इसे लगाने से इसमे लगने वाली लागत के बराबर ही लाभ होता है तो हम इस तथ्य से यह अर्थ लगाते है कि ब्याज की वार्षिक दर 4 प्रतिशत है। किन्तु इस प्रकार के दृष्टान्तो से मूल्य को नियमित करने वाले बडे बड़े कारणों का केवल आंशिक प्रभाव ही इंगित होता है। इन्हे चक्रवत् तर्क किये बिना उसी प्रकार ब्याज का सिद्धान्त नही माना जा सकता जिस प्रकार की मजदूरी का सिद्धान्त नही माना जाता है।

प्रत्येक उपयोग के लिए पूंजी की माँग से सम्बन्धित दृष्टान्त पर कुछ और अधिक विचार करना, तथा यह देखना अच्छा रहेगा कि विभिन्न उपयोगों के लिए की जाने वाली इसकी माँगो से किस प्रकार इसकी कुल माँग बनी हुई है।

किसी खास व्यवसाय में पूंजी की माँग का दृष्टान्त।

विचारो को निश्चितरूप देने के लिए हम कोई खास व्यवसाय जैसे कि टोप बनाने का व्यवसाय ले लेते है, और यह पता लगाते है कि इसमे लगायी जाने वाली पूंजी की मात्रा किस चीज से निर्धारित होती है। हम पूर्णरूप से अच्छी सुरक्षा मिलने पर ब्याज की दर 4 प्रतिशत होने तथा टोप बनाने के व्यवसाय मे दस लाख पौंड की पूंजी लगी रहने की कल्पना करते है। इसका अभिप्राय यह है कि टोप बनाने के व्यवसाय मे दस लाख पौंड के बराबर पूंजी का इतना अच्छा उपयोग किया जाता है कि इसका किंचित उपयोग न करने की अपेक्षा उपयोग करने से निवल 4 प्रतिशत ब्याज मिलता है।[1]

उनके लिए कुछ चीजे आवश्यक होती है। उन्हे न केवल भोजन, वस्त्र तथा निवास-कक्ष की आवश्यकता होती है अपितु कुछ चल-पूंजी, जैसे कि कच्चा माल, तथा कुछ अचल पूंजी, जैसे कि औजार और शायद छोटी मशीन की भी आवश्यकता होती है यद्यपि प्रतिस्पर्द्धा से इस आवश्यक पूंजी के उपयोग के लिए सामान्य व्यावसायिक लाभ के अतिरिक्त कुछ नहीं मिल पाता, तथापि पूंजी का अभाव इतना नुकसानदायक होगा कि इस व्यवसाय मे काम करने वाले लोग पूंजी के लिए 50 प्रतिशत तक देने के

1 व्यापारियों से ऋण के लिए लिया जाने वाला प्रभार प्रायः 4 प्रतिशत की वार्षिक दर से कहीं अधिक होता है, किन्तु जैसा कि अध्याय 6 से ज्ञात होगा, इसमें वास्तविक निवल ब्याज के अतिरिक्त अन्य चीजें भी शामिल होती है। किन्तु हाल ही में युद्ध के कारण पूंजी के बड़े पैमाने पर विनाश होने से पूर्व ब्याज की दर तीन प्रतिशत मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता था: किन्तु युद्ध समाप्त होने के बाद कुछ वर्षों तक यह 4 प्रतिशत से भी अधिक ही होगा।

इच्छुक होंगे, यदि वे इसे इससे कम दर पर प्राप्त न कर सकें। यदि ब्याज की वार्षिक दर 20 प्रतिशत होती तो कुछ अन्य मशीनों को उस व्यापार से अलग किये जाने से रोका जा सकता था, किन्तु इसके 20 प्रतिशत से अधिक होने पर इन्हें अलग होने से नहीं रोका जा सकेगा। यदि ब्याज की दर 10 प्रतिशत होती तो इसका और अधिक 6 प्रतिशत होने पर इससे भी अधिक, 5 प्रतिशत होने पर और भी अधिक उपयोग किया जाता, और अन्त मे ब्याज की दर 4 प्रतिशत होने के कारण वे इसका इससे भी अधिक उपयोग करते है। उनके पास इस धनराशि के होने पर मशीन का सीमान्त तुष्टिगुण अर्थात् उस मशीन का तुष्टिगुण जिसे लगाने से लागत ही निकल पाती है, 4 प्रतिशत के बराबर होगा।

ब्याज की दर में वृद्धि होने से मशीन का कम उपयोग किया जायगा क्योंकि वे उस सारी मशीन का उपयोग करना छोड़ देंगे जिससे इसके मूल्य पर वर्ष मे ४ प्रतिशत से अधिक निवल अधिशेष प्राप्त न हो सके। ब्याज की दर में कमी होने से पूंजी के लिए मांग बढ़ जायेगी, और ऐसी मशीनों का उपयोग किया जाने लगेगा जिनमे इसके मूल्य पर वर्ष मे 4 प्रतिशत से कुछ कम निवल अधिशेष प्राप्त हो। पुनः ब्याज की दर जितनी होगी टोप बनाने की फैक्टरियों की इमारतें तथा टोप बनाने वालो के निवास स्थान उतने ही अधिक मजबूत ढंग से बनाये जायेगे, और ब्याज की दर मे कमी होने से टोप बनाने के व्यापार में अधिक पूंजी का विनियोजन किया जायगा जो कि उनके पास कच्चे माल के रूप में तथा फुटकर व्यापारियों के पास तैयार माल के बड़े बड़े भण्डारों के रूप में होगी।[1]

पूंजी के लिए कुछ मांग।

पूंजी के प्रयोग करने की प्रणालियां एक ही व्यापार में भी बहुत भिन्न होती हैं। प्रत्येक उपक्रामी अपने साधनों को ध्यान मे रखते हुए अपने व्यवसाय में हर अलग अलग दिशा मे पूंजी का उस सीमा तक विनियोजन करेगा जहां पर उसके निर्णय के अनुसार लाभदायकता का सीमान्त आ जाय, और जैसा कि हम कह चुके है, वह सीमान्त विनियोजन की हर सम्भव रेखा को एक के बाद एक काटने वाली सीमा रेखा है, और यह ब्याज की दर में कमी होने पर अतिरिक्त पूंजी प्राप्त करने के लिए अनियमितरूप से सभी दशाओं की ओर बढ़ेगी। इस प्रकार ऋण पर पूंजी लेने की कुल मांग उन सभी व्यवसायों में काम करने वाले व्यक्तियों की इस प्रकार की मांगों के योग के बराबर होता है और इसमें वहीं नियम लागू होता है जिस प्रकार किसी कीमत पर किसी वस्तु की निश्चित मात्रा के लिए ही खरीददार मिल सकते हैं। उसी प्रकार यह इस पर भी लागू होगा। जब कीमत बढ़ती है तो विक्रय मे कमी हो जाती है, और पूंजी के उपयोग मे भी यही बात लागू होती है।

उत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेने के विषय में जो बात सत्य है वही अतिव्ययी व्यक्तियों या सरकारों के विषय में भी सत्य है, जो तुरन्त व्यय के साधनों को प्राप्त करने के लिए अपने भावी साधनों को बन्धक पर रख देते हैं। यह सत्य है कि उनके कार्य बहुधा शांतगणना से बहुत कम नियंत्रित होते है, और वे बहुधा उस कीमत को जो कि उन्हें ऋण के लिए देनी ही पड़ेगी, बहुत कम ध्यान में रखकर यह निश्चिय कर

1 भाग 5, अध्याय 4 से तुलना कीजिए। परिशिष्ट 6, अनुभाग 3 से भी जहां जेवन्स के ब्याज के सिद्धान्त पर कुछ विचार प्रकट किये गये हैं, तुलना कीजिए।

लेते हैं कि उन्हें कितना ऋण लेना चाहिए। किन्तु इसके बावजूद भी इस प्रकार के ऋणों में भी ब्याज की दर का प्रभाव स्पष्टरूप से दिखायी देता है।

प्रतिस्थापन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक उपादान के उपार्जन पर माँग के प्रभाव के विषय में सामयिक निष्कर्ष।

§9. इन सब चीजों को इस कठिन किन्तु व्यापक कथन के रूप में संक्षेप मे व्यक्त किया जा सकता है: उत्पादन के प्रत्येक उपादान को अर्थात् भूमि, मशीन, कुशल श्रम, अकुशल श्रम इत्यादि को उत्पादन में जहाँ तक लगाना लाभप्रद हो वहाँ तक लगाया जाता है। यदि मालिक तथा अन्य व्यवसायी यह सोचें कि किसी एक उपादान का कुछ *अधिक उपयोग करने से अधिक अच्छा परिणाम निकल सकता है तो वे ऐसा* ही करेंगे। वे उस निवल उत्पाद का (अर्थात् आकस्मिक खर्चो के लिए छूट रखने के बाद उनके कुल उत्पादन के द्रव्यिक मूल्य में निवल वृद्धि का) अनुमान लगाते है जो इस दिशा में या उस दिशा मे कुछ अधिक परिव्यय करने से प्राप्त होगा और यदि वे अपने कुछ परिव्यय को एक दिशा से दूसरी दिशा मे लगाना लाभप्रद समझते हों तो वे वैसा ही करेंगे।[1]

इस प्रकार सम्भरण के सम्बन्ध मे माँग की सामान्य दशाओं से उत्पादन के प्रत्येक उपादान के उपयोग नियंत्रित होते हैं। अर्थात् यह एक ओर तो जिन लोगों को इनकी जरूरत है उनके साधनों एवं उस उपादान की विभिन्न उपयोगों मे अत्यावश्यकता से तथा दूसरी ओर इसके प्राप्त मण्डार से नियंत्रित होते हैं। प्रतिस्थापना सिद्धान्त के अनुसार अन्य लोगों के लिए कम मूल्यवान उपयोग से अधिक मूल्यवान उपयोग मे इसे निरन्तर लगाने की प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक उपयोग मे इसके मूल्यों के बीच समानता रखी जाती है।

यदि अकुशल श्रम या अन्य उपादान का कम उपयोग किया जाय तो इसका कारण यह होगा कि जहाँ लोगो को उस उपादान के उपयोग करने मे लाभ होने मे सशय हो वहाँ वे निश्चिय कर लेते हैं कि उसका उपयोग करना लाभप्रद नही है। यह कहने मे कि हमे प्रत्येक उपादान के सीमान्त उपयोगो को तथा उसकी सीमान्त कार्यदक्षता को ध्यान मे रखना चाहिए, यही अभिप्राय निहित है। ऐसा करने का कारण यह है कि केवल इसी सीमान्त पर उनमे से कोई भी विवर्तन (shifting) किया जा सकता है जिससे सम्भरण तथा माँग के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

सर्वप्रथम वान थूनेन ने इस नियम को वितरण पर स्पष्ट रूप से लागू किया।

यदि हम विभिन्न ग्रेडों के श्रम के बीच पाये जाने वाले अन्तरो की अवहेलना करें, और सारे श्रम को एक प्रकार का या कम से कम मानक कार्यक्षमता के किसी विशेष प्रकार के श्रम के रूप मे मानें तो हम श्रम तथा भौतिक पूँजी के प्रत्यक्ष प्रयोगों के बीच तटस्थता सीमान्त को ढूँढने का प्रयत्न करेंगे। वान थूनेन के शब्दो को उद्धृत करते हुए, हम कुछ ही समय बाद यह कह सकते है कि पूंजी की कार्यक्षमता से इसका उपार्जन मापा जाना चाहिए, क्योंकि यदि लोगो के श्रम की अपेक्षा पूँजी का उपयोग अधिक सस्ता हो तो उपक्रमी अपने कुछ कार्यचालकों (workmen) को नौकरी से निकाल देगा, और इसके विपरीत स्थिति होने पर वह उनकी संख्या बढा देगा।[2]

---

1 यह कथन भाग 5, अध्याय 4, तथा 7 में दिये गये विचारों की ही भांति है।

2 Der Isolirte Staat II, I पृष्ठ 123। वह तर्क देते हैं (तत्रैव

किन्तु सामान्य रूप से पूंजी के उपयोग के लिए बढ़ी हुई प्रतिस्पर्द्धा किसी एक व्यवसाय में मशीन के उपयोग के लिए की जाने वाली प्रतिस्पर्द्धा से भिन्न है। पश्चायुक्त से किसी खास प्रकार का श्रम बिलकुल ही बेकार हो सकता है; पूर्वोक्ति से श्रम को सामान्य रूप मे विस्थापित नही किया जा सकता है, क्योंकि इससे उन वस्तुओं के बनाने वालों के रोजगार में वृद्धि होनी चाहिए जिनका पूंजी के रूप में उपयोग किया जाता है। वास्तव मे, श्रम के स्थान पर पूंजी का प्रतिस्थापन कम प्रतीक्षा तथा अन्य अनेक प्रकार के श्रम के स्थान पर अधिक प्रतीक्षा तथा श्रम का ही प्रतिस्थापन है।[1]

राष्ट्रीय लाभांश में शामिल होने वाली या इसमें से निकाली

§10. जब हम राष्ट्रीय लाभांश या सारे देश की वितरणीय निवल आय को भूमि, श्रम तथा पूंजी के हिस्सो मे विभाजित मानते हैं तो हमे इस बात का स्पष्ट पता होना चाहिए कि हम कौन कौन सी चीजे शामिल कर रहे हैं, और कौन कौन सी चीजें छोड़ रहे है। हम चाहे सभी शब्दों का व्यापक या संकुचित अर्थ मे कैसे भी प्रयोग करे इससे हमारे तर्क मे कदाचित ही बहुत अधिक अन्तर पड़ेगा। किन्तु यह अत्यावश्यक है कि किसी भी तर्क का प्रयोग सदैव संगत होना चाहिए, और भूमि, श्रम एव पूंजी की मांग

पृष्ठ 124) कि ब्याज की दर ही वह तत्त्व है जिससे पूंजी की कार्यक्षमता का मानवी श्रम से सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है; अन्त में, एक पीढ़ी बाद जेवन्स द्वारा स्वतंत्र रूप से कार्य करने पर इसी उद्देश्य के लिए प्रयोग किये गये शब्दों से मिलते जुलते शब्दों में वह कहते हैं (पृष्ठ 162) "अन्त में लगायी जाने वाली थोड़ी सी पूंजी के तुष्टिगुण से ब्याज की दर की अधिकता की व्याख्या (Lestimmt) की जाती है।" विचारों की स्वभावगत व्यापकता के साथ वान थूनेन ने उत्पादन की किसी शाखा में पूंजी की क्रमिक मात्रा लगाने से मिलने वाले प्रतिफल के लिए क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का सामान्य नियम प्रतिपादित किया, और उन्होंने इस विषय पर जो कुछ कहा उसका अब भी बहुत महत्व है, यद्यपि इससे इन दो तथ्यों का समाधान नहीं होता कि किसी उद्योग में लगायी गयी पूंजी में वृद्धि से उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धि होगी तथा उस उद्योग में पूंजी के निरन्तर अन्तरागम (influx) से अन्ततोगत्वा इसमें अर्जित लाभ की दर घट जायेगी। उन्होंने इन तथा अन्य बड़े आर्थिक सिद्धान्तों का जो निरूपण किया है वह यद्यपि अनेक बातों में प्रारम्भिक है, तथापि पूंजी के संचय को निर्धारित करने वाले कारणों तथा मजदूरी एवं पूंजी के भण्डार के सम्बन्धों के विषय में उनकी काल्पनिक एवं अवास्तविक मान्यताओं से भिन्न बातों पर आधारित है। इनसे वह यह अनूठा परिणाम निकालते हैं कि श्रम की मजदूरी की प्राकृतिक दर श्रमिक की आवश्यक आवश्यकताओं तथा उसके श्रम द्वारा पूंजी की सहायता से किये गये उत्पादन के ज्यामितिक औसत के बराबर है। प्राकृतिक दर से उनका अभिप्राय उस अधिकतम दर से है जिसे स्थिर रखा जा सके। यदि कुछ समय के लिए श्रमिक इससे अधिक दर प्राप्त करने लगे तो वान थूनेन के अनुसार पूंजी का सम्भरण इस प्रकार से नियंत्रित हो जायेगा कि उसे दीर्घकाल में इस बीच हुए लाभ से अधिक ही नुकसान होगा।

1 वॉन थूनेन को यह भलीभाँति ज्ञात था। तत्रैव पृष्ठ 127। आगे भाग 6, अध्याय 2 अनुभाग 9, 10 भी देखिए।

जाने वाली आय के सीमा-निर्धारण में आय शब्द का सामान्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

तथा इनके सम्मरण में एक ओर जो कुछ भी शामिल किया जाय उसे दूसरी ओर भी शामिल करना चाहिए।

देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर वहाँ के श्रम एवं पूँजी से प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक सभी वस्तुओं, जिसमें सभी प्रकार की सेवाएँ भी शामिल हैं, की निश्चित निवल मात्रा का उत्पादन किया जाता है। कच्चे तथा आधे तैयार माल को प्रयोग में लाने तथा उत्पादन में लगे संयत्र के घिसने तथा मूल्य ह्रास के लिए छूट रखने के लिए सीमा निर्धारित करने वाले शब्द 'निवल' की जरूरत पड़ती है: इस प्रकार की सारी क्षति को वास्तविक निवल आय निकालने से पूर्व कुल उत्पादन से निश्चय ही घटा लेना चाहिए। विदेशी विनियोजन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली निवल आय को अवश्य जोड़ लेना चाहिए (भाग 2, अध्याय 4, अनुभाग 6 देखिए) यही देश की वास्तविक निवल वार्षिक आय या राजस्व या राष्ट्रीय लाभांश है: हम निश्चय ही इसका एक साल के लिए या किसी अन्य अवधि के लिए अनुमान लगा सकते हैं। राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय लाभांश शब्द समानार्थक हैं, केवल पश्चादुक्त का तब अधिक महत्व होता है जब हम वितरण के लिए प्राप्त सुख के नये साधनो के योग के रूप मे राष्ट्रीय आय पर विचार करते हैं। किन्तु यहाँ पर इस आम व्यावहारिक पद्धति को अपनाना और किसी ऐसी चीज को राष्ट्रीय आय या लाभाश का अग न मानना सर्वोत्तम होगा जो आमतौर पर व्यक्तिगत आय के अंग के रूप मे नही मानी जाती। इस प्रकार जब तक उसके विपरीत कुछ न कहा जाय, किसी व्यक्ति द्वारा स्वय अपने लिए तथा बिना मूल्य प्राप्त किये अपने परिवार के सदस्यो या मित्रो के लिए की जाने वाली सेवाओ, अपनी वैयक्तिक चीजो या सार्वजनिक सम्पत्ति जैसे कि पथकर मुक्त पुल, से होने वाले लाभो को राष्ट्रीय लाभाश के अग के रूप मे सम्मिलित नही किया जाता। इनकी गणना अन्यत्र की जाती है।

उत्पादन तथा उपभोग का सह-सम्बन्ध।

उत्पादन के कुछ भाग से उत्पादन मे लगने वाली सामग्री या इसमें घिस गयी मशीन ही केवल बदली नही जाती अपितु कच्चे माल, मशीनो, इत्यादि का स्टाक बढ जाता है. और राष्ट्रीय आय या लाभाश का यह भाग प्रत्यक्षरूप से वैयक्तिक उपभोग मे नही जाता। किन्तु आमतौर पर मुद्रण मशीनो के विनिर्माता द्वारा मुद्रको को अपने स्टाक का कुछ अश बेचे जाने पर व्यापक अर्थ मे इसका प्रत्यक्षरूप से उपभोग किया जाता है। इस अर्थ मे यह सत्य है कि सम्पूर्ण उत्पादन उपभोग के लिए ही होता है और राष्ट्रीय लाभाश से अर्थ निवल उत्पादन तथा उपभोग के योग से होता है। उद्योग की साधारण दशाओ मे उत्पादन तथा उपभोग साथ साथ चलते हैं: समुचित उत्पादन से सम्भव वस्तुओ का ही उपभोग किया जा सकता है: जिस चीज के लिए वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है उत्पादन होने पर उपभोग भी कर लिया जाता है। उत्पादन की कुछ शाखाओं मे कुछ गलत अनुमान लगाये जा सकते हैं और वाणिज्यिक साख के समाप्त हो जाने पर सभी मालगोदाम कुछ समय के लिए बिना बिके हुए माल से लगभग भर जायेंगे किन्तु ऐसी दशाएँ अपवादजनक हैं और हमे अभी इन पर विचार नहीं करना है। (आगे भाग 5, अध्याय 13, अनुभाग 10, तथा परिशिष्ट (ज), 3 देखिए।

अध्याय 2

वितरण का प्रारम्भिक सर्वेक्षण (पूर्वानुबद्ध)

§1. पिछले अध्याय के प्रारम्भ में जैसा कि बतलाया गया था, हम अब उत्पादन के विभिन्न उपादानों के सम्भरण पर पारिश्रमिक के प्रतिवर्ती (reflex) प्रभाव के अध्ययन से वितरण पर माँग के प्रभाव के अध्ययन की अनुपूर्ति करेंगे। विभिन्न प्रकार के श्रम तथा पूँजी एवं भूमि के मालिकों के बीच राष्ट्रीय लाभांश के वितरण को नियंत्रित करने की उपयोगिता या वांछनीयता तथा उत्पादन की लागत के प्रभाव पर प्रारम्भिक सामान्य दृष्टिकोण से विचार करने के लिए हमें इन दोनों को एक साथ मिलाना पड़ेगा।

इस अध्याय का उद्देश्य।

रिकार्डो तथा उनके पश्चात् आने वाले निपुणों ने व्यवसायियों की माँग की संक्रिया को कहीं अधिक ऐसी चीज माना जिसे स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता न थी: उन्होंने न तो इस पर जोर दिया, और न पर्याप्त सतर्कता के साथ इसका अध्ययन ही किया। इस असावधानी के कारण बहुत भ्रम उत्पन्न हुआ और महत्वपूर्ण सत्य धूमिल पड गये। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि लोग इस बात पर बहुत अधिक जोर देने लगे कि उत्पादन के प्रत्येक उपादान का उपार्जन उसके द्वारा उत्पन्न उपज के मूल्य से प्राप्त होता है और यह उसी से मुख्यतया नियंत्रित होता है। यहाँ उसके उपार्जन को उसी सिद्धान्त से नियंत्रित माना गया जिससे भूमि का लगान नियंत्रित होता है, और कुछ लोग तो यहाँ तक सोचते है कि लगान के सिद्धान्त के अनगिनत प्रयोग से वितरण के पूर्ण सिद्धान्त की रचना की जा सकती है। किन्तु वे इस लक्ष्य तक नहीं पहुँचेंगे। रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों ने चुपचाप यह निश्चय करते समय अपने अन्तर्ज्ञान से सही कार्य किया कि सम्भरण की शक्तियाँ वे थी जिनका अध्यायन करना अधिक अत्यावश्यक था तथा जिनमे अधिक कठिनाई थी।

रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों नें माँग पर अपर्याप्त जोर दिया किन्तु उत्पादन की लागत पर उनका अपेक्षाकृत अधिक जोर देना उचित था।

जब हम उत्पादन के किसी कारक की, चाहे यह किसी भी प्रकार का श्रम हो या भौतिक पूजी हो, (सीमान्त) कार्यक्षमता को नियंत्रित करने वाली चीज का पता लगाते है तो हमें यह ज्ञात होगा कि तुरन्त हल निकालने के लिए उस कारक के सुलभ संभरण का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि सम्भरण के बढ़ने पर उस चीज का उन उपयोगो मे भी प्रयोग होने लगेगा जहाँ उसकी आवश्यकता एवं कार्यक्षमता दोनों ही कम हो। इसका अन्तिम हल निकालने के लिए उन कारणों का ज्ञान होना भी आवश्यक है जो उस सम्भरण को निर्धारित करते है। किसी विशेष प्रकार के श्रम या पूँजी या किसी अन्य चीज का नाममात्र मूल्य मेहराव की आधार-शिला की भाँति इसके दो विपरीत पक्षो के प्रबल दबाव के बीच साम्य की स्थिति मे सन्तुलित रहता है, और इसमे एक ओर माँग की शक्तियाँ का तथा दूसरी ओर सम्भरण की शक्तियो का प्रभाव पड़ता है।

उत्पादनों के असंख्य उपादानों की मात्रा तथा कीमतें परस्पर एक दूसरे को नियंत्रित करती हैं।

प्रत्येक चीज का उत्पादन, चाहे यह उत्पादन का कोई उपादान हो, या तुरत उपयोग के लिए प्राप्त वस्तु हो, उस सीमा या सीमान्त तक बढ़ाया जाता है जहाँ पर माँग तथा सम्भरण की शक्तियों में साम्य होता है। इस वस्तु की मात्रा तथा उसकी कीमत, उसे बनाने में लगे उत्पादन के अनेक कारकों या उपादानों की मात्राएँ तथा उनकी कीमतें—ये सब एक दूसरे को परस्पर नियंत्रित करती हैं, और यदि किसी बाह्य कारण से उनमें से किसी में भी परिवर्तन आ जाए तो उसका अन्य सभी पर प्रभाव पड़ता है।

भौतिक शास्त्र से लिए गये समान दृष्टान्त।

इसी प्रकार, जब किसी कटोरे में असंख्य गेंद पड़े हों, तो वे परस्पर एक-दूसरे की स्थिति को नियंत्रित करते हैं। पुनः जब छत पर विभिन्न स्थानों पर लगायी गयी अलग अलग मजबूती तथा लम्बाई वाली असंख्य लचीली रस्सियों पर (जिनमें से सभी खिंची हुई हों) भारी वजन टाँग दिया जाय तो रस्सियों की तथा भार की साम्य स्थितियाँ परस्पर एक दूसरे को नियंत्रित करेंगी। यदि इनमें कोई भी रस्सी छोटी पड़ जाये तो प्रत्येक अन्य चीज की स्थिति बदल जायेगी और प्रत्येक अन्य रस्सी की लम्बाई तथा उसका खिंचाव भी बदल जायेगा।

उसके पारिश्रमिक का कार्य करने की व्यक्तिगत तत्परता पर प्रभाव।

§2 हम देख चुके हैं कि उत्पादन के किसी उपादान का प्रभावोत्पादक सम्भरण किसी भी समय एक तो इसके विद्यमान स्टाक पर, तथा दूसरे इसे उत्पादन में लगाने की उन लोगों की तत्परता पर निर्भर रहता है जिनके अधिकार में यह स्टाक है। यह तत्परता शीघ्र प्रत्याशित प्रतिफल से ही निश्चित होती है, यद्यपि इसकी निम्नतर सीमा भी होगी जिसे कुछ दशाओं में मूल लागत कहा जा सकता है, और इसके प्राप्त न होने पर उत्पादन नहीं किया जायेगा। दृष्टान्त के लिए एक विनिर्माता को किसी ऐसे आर्डर के लिए अपनी मशीनों को कार्य पर लगाने से मना करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती जिससे उस कार्य में होने वाला अतिरिक्त प्रत्यक्ष द्रव्यिक परिव्यय जिसमें मशीन की वास्तविक टूटफूट भी शामिल है, पूरा न हो। श्रमिक की शक्ति में क्षति तथा उसके कार्य में होने वाली थकान तथा अन्य असुविधाओं के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का सोच विचार किया जाता है। यद्यपि हमारा यहाँ पर किसी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले खास कार्य की प्रत्यक्ष लागत की अपेक्षा सामान्य दशाओं में इसकी लागत एवं उसके पारिश्रमिक से ही सम्बन्ध है। फिर भी गलत धारणाओं को दूर करने के लिए इस विषय पर एक संक्षिप्त बयान देना उचित होगा।

कोई कार्य आनन्ददायक होता है,

हम पहले देख चुके हैं[1] कि जब एक व्यक्ति चुस्त तथा उत्सुक रहता है और अपना मनपसन्द कार्य करता है तो वास्तव में इसकी उसके लिए कोई लागत नहीं होती। जैसा कि कुछ समाजवादियों ने क्षमायोग्य प्रतिशयोक्ति से अनुरोध किया है कि जब तक किसी घटना से उनका काम करना बिलकुल ही न रुक जाये तब तक कुछ ही लोग यह जानते हैं कि उन्हें साधारण कार्य से कितना आनन्द मिलता है। किन्तु अधिकांश लोगों का यह सही या गलत विश्वास है कि जीविका उपार्जन करते समय उनके कार्य के अधिकांश भाग में आनन्द का कुछ भी अधिशेष नहीं रहता बल्कि इसके विपरीत

1 भाग 2, अध्याय 3, अनुभाग 2; भाग 4, अध्याय 1, अनुभाग 2; भाग 4, अध्याय 9, अनुभाग 1 देखिए।

उसमें उनकी कुछ लागत लग जाती है। कार्य समाप्ति के समय उन्हें प्रसन्नता होती है: सम्भवतः वे यह भूल जाते है कि उनके कार्य के प्रारम्भिक घण्टो की अपेक्षा अन्तिम घण्टे अधिक लागत के रहे है: वे वस्तुत. यह सोचने लगते है कि नौ घण्टों के कार्य मे अन्तिम घण्टे के कार्य की लागत नौ गुनी होती है, और सबसे अधिक दु:खदायी अन्तिम घण्टे की क्षतिपूर्ति के लिए प्रत्येक घण्टे के लिए पर्याप्त दर पर भुगतान किये जाने पर भी उन्हें कदाचित ही यह आभास होता हैं कि वे उत्पादन अधिशेष या लगान प्राप्त करते है।[1]

---

1 हाल ही में कार्य के दिन के आठ घण्टे का होने के विषय में किये गये विचार-विमर्श से श्रम की थकान बहुत कम दूर हुई है, क्योंकि ऐसा काम बहुत रहता है जिसमें शारीरिक या मानसिक थकान बहुत कम ही और जो कुछ भी थकान देने वाला कार्य होता भी है उससे वास्तव में थकान होने की अपेक्षा मन की क्लांति से राहत मिलती है। ड्यूटी में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को जब जरूरत पड़े तब तैयार रहना पड़ता है। दिन में कुछ भी वास्तविक काम न करने पर भी वह ड्यूटी के लम्बे घण्टों का विरोध करेगा, क्योंकि इनसे उसे जीवन की विविधता, घरेलू एवं सामाजिक आनन्द की सुविधाओं, तथा सम्भवतया सुखदायी भोजन एवं विश्राम से वंचित होना पड़ता है।

यदि किसी व्यक्ति को इच्छानुसार कार्य बन्द करने की स्वतंत्रता हो तो वह उस समय कार्य करना छोड़ देगा जब उस कार्य में लगे रहने से होने वाला लाभ उसमें लगे रहने से होने वाली क्षति से अधिक न हो। यदि उसे अन्य लोगों के साथ कार्य करना पड़े तो उसके दैनिक कार्य के घण्टे व्यावहारिक रूप में नियत रहते हैं। किन्तु शायद ही ऐसे व्यवसाय होंगे जिनमें काम में होने वाली थकान की मात्रा बिलकुल नियत की जाती हो। यदि कोई व्यक्ति विद्यमान न्यूनतम स्तर पर कार्य करने में असमर्थ हो या इसके लिए अनिच्छुक हो तो वह साधारणतया किसी अन्य स्थान पर रोजगार ढूंढ़ लेता है जहाँ कार्य का स्तर अपेक्षाकृत नीचा हो, जब कि प्रत्येक स्थान में वहाँ बसी हुई औद्योगिक जनसंख्या द्वारा कार्य की अलग अलग तीव्रता के लाभ एवं हानियों के साधारण संतुलन से कार्य के स्तर को निश्चित किया जाता है। अतः जिन दशाओं में किसी व्यक्ति की निजी चेष्टा से वर्ष में किये जाने वाले कार्य की मात्रा निर्धारित नहीं होती वे उतनी ही अपवादजनक हैं जितनी कि ऐसी दशाएं जिनमें किसी व्यक्ति को अपनी पसन्द से बिलकुल ही भिन्न मकान में रहना पड़ता है क्योंकि और कोई मकान सुलभ ही नहीं है। यह सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति को जो 10 पेंस प्रति घण्टे की दर पर वस्तुतः 9 घण्टे की अपेक्षा 8 घण्टे प्रतिदिन कार्य करना चाहता है, 9 घण्टे काम करना पड़े तो उसे नवें घण्टे से हानि उठानी पड़ेगी: किन्तु ऐसा ही होता है, और जब होता भी है तो सारे दिन को एक इकाई मान लेना चाहिए। इससे लागत के सामान्य नियम में उतनी ही बाधा पहुँचती है जितनी कि संगीत गोष्ठी या चाय के प्याले को इकाई मानकर तुष्टिगुण के सामान्य नियम पर बाधा पहुँचती है: और एक व्यक्ति जो संगीत गोष्ठी में पूरे समय तक भाग लेने के लिए 10 शि० देने की अपेक्षा आधे के लिए 5 शि० देना चाहता है, या चाय के पूरे प्याले के लिए 4 पें० देने की अपेक्षा

किन्तु अधिकांशतया पारिश्रमिक में वृद्धि होने से अत्यधिक परिश्रम करने के लिए उत्तेजना मिलती है।

जब तक काम करने से किसी व्यक्ति का शरीर शिथिल न पड़ जाय तब तक वह जितनी अधिक देर तक कार्य करता है या ड्यूटी पर रहता है उतना ही अधिक विश्राम चाहता है। इसमें हर घण्टे के अतिरिक्त कार्य से उसे अधिक वेतन मिलता है और वह एसी स्थिति के अधिक निकट पहुँचता है जहाँ पर उसकी सब से अधिक तीव्र आवश्यकताएँ संतुष्ट हो जाएँ और वेतन जितना ही ऊँचा होगा यह स्थिति उतनी ही शीघ्र आ जायगी। यह व्यक्ति पर निर्भर रहता है कि वेतन के बढ़ने से उसकी वहाँ तक नयी आवश्यकताएँ पैदा होती हैं तथा आगामी वर्षों में दूसरों को या स्वयं के लिए आराम प्रदान करने की नयी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, या वह उन आनन्दों से शीघ्र ही परितृप्त हो जाता है जिन्हें केवल परिश्रम करने से ही प्राप्त किया जा सकता है और इसके बाद वह अधिक आराम तथा स्वतः आनन्ददायक कार्यों को करने के अवसरों की लालसा करता है। इस विषय पर किसी भी सार्वभौमिक नियम का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, किन्तु अनुभव से यह प्रदर्शित होता है कि अधिक अशिक्षित एवं जड़ी (Phlegmatic) जातियाँ तथा व्यक्ति वेतन की दर के इतनी बढ़ जाने पर कि पहले की अपेक्षा कम कार्य करने पर भी वे अपने अभ्यस्त आनन्दों को प्राप्त कर सकते हैं, अपने काम पर कम समय तक रहेंगे और काम पर रहने पर भी कम मेहनत करेंगे। यदि ये लोग दक्षिणी जलवायु में रहने वाले हों तो यह बात विशेषरूप से लागू होगी किन्तु जिन लोगों का बौद्धिक क्षितिज अधिक व्यापक होता है और जिनमें चरित्र की दृढ़ता एवं लोच अधिक होती है वे वेतन के ऊँचे होने पर अधिक कठिन एवं लम्बे समय तक परिश्रम करेंगे। यदि वे भौतिक प्राप्ति के लिए कार्य करने की अपेक्षा अधिक उच्चतर उद्देश्यों में श्रम लगाना पसन्द करते हों तो हो सकता है कि वे अधिक परिश्रम न करें। किन्तु इस विषय पर मूल्य पर प्रगति के प्रभाव के अन्तर्गत अध्ययन करते समय अधिक पूर्णरूप से विचार किया जायगा। फिलहाल हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्रम पारिश्रमिक में वृद्धि होने से कुशल कार्य की मात्रा में तुरन्त ही वृद्धि होगी और इस नियम के जिन अपवादों को अभी अभी बतलाया गया है, वे कदाचित् ही बड़े पैमाने पर होते है, यद्यपि वे महत्वहीन नहीं होते।[2]

आधे प्याले के लिए 2 पैं० देना चाहता है, उसे इनके उत्तरार्द्ध पर हानि उठानी पड़ती है। अतः वी० बाहम बावर्क द्वारा दिये गये इस संकेत (*Zeitschrift fur Volkswirtshaft*) खण्ड II में प्रकाशित The Ultimate Standard of Value IV का कोई उचित आधार नहीं दिखाई देता कि मूल्य लागत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखे बिना साधारणतया माँग से ही निर्धारित होना चाहिए क्योंकि श्रम की प्रभावोत्पादक पूर्ति स्थिर होती है: यदि साल में काम के घण्टे बिलकुल ही निश्चित किये गये हों जैसा कि प्रायः होता नहीं है, तो कार्य की तीव्रता लोचपूर्ण रहेगी।

1. अध्याय 12 देखिए। अनेक बार बुरी फसलों, युद्ध कालीन कीमतों तथा साख की अव्यवस्था के कारण कुछ श्रमिक, पुरुष, स्त्रियाँ एवं बच्चे अत्यधिक काम करने के लिए बाध्य हुए हैं। यद्यपि निरन्तर घटती हुई मजदूरी पर अधिकाधिक श्रम लगाने की दशाएँ उतनी असत्य नहीं हैं जितनी कि कही जाती हैं तथापि इनकी विगत काल

दीर्घकाल में कुशल श्रम की पूर्ति की उपार्जन की दर तथा उन्हें खर्च किये जाने के ढंग पर निर्भरता।

§3 हम जब मजदूरी की दर में वृद्धि होने से व्यक्ति द्वारा किय गये कार्य पर तुरन्त ही पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करने के बाद एक या दो शताब्दियों के बाद पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करें तो इसका परिणाम कम निश्चित होगा। यह सत्य है कि किसी अस्थायी सुधार से अनेक लोगों को विवाह करने तथा घर बसाने का अवसर मिल जायगा जिसके लिए वे प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु समृद्धि मे स्थायीरूप से वृद्धि होने पर जन्म-दर का घटना उतना ही सम्भव है जितना कि उसका बढना। किन्तु इसके विपरीत यदि माताएँ अपने बच्चों के प्रति अपना कर्तव्य निभाना न छोडें तो मजदूरी मे वृद्धि से मृत्यु-दर निश्चित रूप से कम हो जाती है। हम जब भावी पीढी के शारीरिक एवं बौद्धिक ओज पर ऊँची मजदूरी के प्रभाव को ध्यान मे रखते हैं तो यह बात और भी दृढ हो जाती है।

क्योकि हर प्रकार के कार्य मे कुछ किस्म का उपयोग इस कारण बहुत आवश्यक होता है कि यदि इसमे से कुछ मात्रा कम कर दी जाय तो उस कार्य को कुशलतापूर्वक नही किया जा सकता प्रौढ व्यक्ति अपने बच्चो की देखभाल अधिक न कर स्वयं अपनी अच्छी देखरेख कर सकते है किन्तु इससे कुशलता को केवल एक पीढी तक नष्ट होने से रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी रूढ आवश्यकताएँ भी होती है जिनकी प्रथा तथा आदत के कारण इतनी माग होती है कि लोग साधारणतया इनके अधिकाश भाग से वचित रहने की अपेक्षा अपनी अधिकाश आवश्यक वस्तुओ को भी त्याग देते है। तीसरे कुछ आभ्यासिक आराम की वस्तुएँ है जिनमे से सभी को तो नही किन्तु कुछ को कठिन दबाव पडने पर भी पूर्णरूप से तिलाजलि नही दी जा सकती। इन रूढ आवश्यकताओ तथा प्रथागत आराम की वस्तुओ मे से अनेक चीजे भौतिक एव नैतिक प्रगति की प्रतिरूप है, और उनकी मात्रा युग-युग मे तथा स्थान स्थान मे भिन्न होती है। उसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है मनुष्य उत्पादन के उपादान के रूप मे उतना ही कम मितव्ययी होता है। किन्तु यदि उनका बुद्धिमत्तापूर्वक चयन किया जाय तो उन्हे सर्वाधिक मात्रा मे प्रत्येक प्रकार के उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति होती है: क्योकि उनसे तब मानव-जीवन का उत्थान होता है।

में बहुत कमी नहीं रही है। उनकी किसी ऐसे असफल फर्म द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों से तुलना की जा सकती है जो अपनी मूल या विशेष एवं प्रत्यक्ष लागत की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा से कुछ ही अधिक पर संविदाएँ लेकर अपने परिव्यय के लिए कुछ प्रतिफल प्राप्त करने की चेष्टा करती है। दूसरी ओर प्रत्येक युग में (अन्य युगों की अपेक्षा सम्भवतया वर्तमान युग में कम) ऐसे लोगों की कहानियाँ मिलती ह जिन्होंने एकाएक समृद्धि मिल जाने से बहुत थोड़े श्रम से अर्जित मजदूरी से ही संतोष कर लिया और इस प्रकार समृद्धिशील बनने की गति को रोक दिया। किन्तु ऐसे विषयों पर वाणिज्यिक उतार चढ़ावों के अध्ययन करने के बाद ही विचार किया जायगा। साधारण समयों में दस्तकार, व्यावसायिक व्यक्ति या पूंजीपति उपक्रामी व्यक्तिगत रूप में या व्यापारिक समुदाय के सदस्य के रूप में यह तय करते हैं कि किस न्यूनतम कीमत के विरुद्ध उन्हें हड़ताल नहीं करनी चाहिए।

जब श्रमिकों की आय मुख्यतया कुशलता के लिए आवश्यक वस्तुओं पर ही खर्च की जाती है तो श्रम की पूर्ति इसकी माँग के शीघ्र ही अनुरूप होती है।

कुशलता के लिए उपभोग में जितनी वृद्धि नितान्त आवश्यक है उसका आयोजन करने से उत्पादन मे तदुपरान्त होने वाली वृद्धि के रूप मे इसमे लगी लागत निकल जाती है, और इससे राष्ट्रीय लाभांश में उतनी ही वृद्धि होती है जितनी कि उसमे से इस पर खर्च की जाती है। किन्तु इस प्रकार से अनावश्यक उपभोग मे वृद्धि केवल प्रकृति पर मनुष्य के अधिकार मे वृद्धि होने से ही हो सकती है: और यह ज्ञान तथा उत्पादन की कलाओ मे प्रगति, सुधरे हुए सगठन एवं कच्चे माल के बड़े तथा अच्छी किस्म के स्रोतो के सुलभ होने तथा किसी भी रूप मे अभीष्ट लक्ष्यो को प्राप्त करने के भौतिक साधनो एव पूँजी की वृद्धि से सम्भव हो सकती है।

इस प्रकार इस प्रश्न का हल कि श्रम की पूर्ति इसकी माँग के कितने अनुरूप होती है बहुत कुछ अंशों मे इस प्रश्न मे निहित है कि लोगों के वर्तमान उपभोग में युवक तथा वृद्धि लोगो के जीवन एवं कार्यकुशलता के लिए आवश्यक वस्तुओं का कितना अधिक अंश है, इसमे वे रूढ आवश्यकताएँ कितनी है जिनका सैद्धान्तिक रूप से तो त्याग किया जा सकता है किन्तु जिन्हे व्यावहारिक रूप मे अधिकाश लोग कार्यक्षमता के लिए वास्तव मे आवश्यक चीजो से भी अधिक पसन्द करते है, और इसमे उत्पादन के साधन के रूप में काम आने वाले कितने भाग अनावश्यक हैं, यद्यपि इसके कुछ भाग का महत्व उच्चतम हो सकता है, यदि उसे स्वय ही लक्ष्य माना जाय।

पिछड़े हुए देशों में श्रमिक वर्गों के अधिकांश खर्चे से दक्षता में वृद्धि होती है।

जैसा कि हमने पिछले अध्याय के आरम्भ मे देखा था, प्राचीन काल के फ्रांसीसी तथा आग्ल अर्थशास्त्रियो ने श्रमिक वर्गो के सम्पूर्ण उपभोग को प्रथम श्रेणी मे रखा। उन्होने आशिक रूप से सरलता के लिए तथा आशिक रूप से इस बात के लिए ऐसा किया कि उस समय इगलैंड मे वे वर्ग निर्धन और फ्रान्स मे और भी अधिक निर्धन थे, उन्होंने यह तर्क दिया कि श्रम की प्रभावोत्पादक माँग मे परिवर्तनो के अनुसार श्रम को पूर्ति मे तदनुरूप परिवर्तन होगे यद्यपि ये उतनी तेजी से नही होंगे जितनी कि मशीन के सम्भरण मे होगे। इसी प्रकार की बात आज भी कम विकसित देशो के बारे मे कही जा सकती है, क्योकि संसार के अधिकाश भाग मे श्रमिक वर्ग मे बहुत कम विलास की वस्तुओ और कुछ ही रूढ़ आवश्यकताओ की पूर्ति भी करने की क्षमता होती है। उनके उपार्जन मे वृद्धि होने से उनकी सख्या मे इतनी अधिक वृद्धि हो सकती है कि इससे उनके उपार्जन मे तेजी से इतनी कमी हो जायेगी कि यह लगभग पुराने ही स्तर पर आ जायेगी जिस पर उसका केवल भरण-पोषण ही हो सकेगा। संसार के बहुत बड़े भाग मे लौह या निर्वाह मात्र मजदूरी के सिद्धान्त के आधार पर मजदूरी की दर नियन्त्रित होती है जिससे वस्तुतः श्रमिकों के एक अदक्ष वर्ग के पालन-पोषण तथा उन्हें जीवित रखने की लागत ही पूरी हो पाती है।

यही बात कुछ मात्रा में धनी पाश्चात्य देशों के

जहाँ तक आधुनिक पाश्चात्य जगत का प्रश्न है इसका उत्तर बिलकुल ही भिन्न है, क्योकि यहाँ हाल मे ज्ञान एव स्वतन्त्रता मे, ओज एवं सम्पत्ति में तथा भोजन एव कच्चे माल के सम्भरण के लिए सुदूर देशों के उपजाऊ खेतो तक आसानी से पहुँच सकने मे बड़ी प्रगति हुई है। किन्तु इग्लैंड मे भी आज यह सत्य है कि जनसख्या के उपभोग का अधिकतर भाग जीवन तथा ओज को बनाये रखने के लिए किया जाता है। यद्यपि यह सर्वाधिक मितव्ययितापूर्वक नही किया जाता किन्तु इसमे कोई बड़ी बरबादी

भी नहीं की जाती। इसमें सन्देह नही,कि कुछ आसक्तियाँ निश्चितरूप से हानिकारक होती है किन्तु अन्य आसक्तियों की अपेक्षा ये सापेक्षिक रूप से घट रही हैं, यद्यपि जुआ खेलना सम्भवतः इनका सबसे मुख्य अपवाद है। उस व्यय का अधिक भाग दक्षता की दृष्टि से सही अर्थ मे मितव्ययितापूर्ण न होने पर भी साधन जुटाने की आदतें पैदा करने मे सहायता करता है जिसके बिना मनुष्य का जीवन नीरस तथा स्थिर हो जाता है और उन्हें अत्यधिक परिश्रम करने पर भी बहुत थोड़ा ही फल मिलता है। यह भलीभाँति मान लिया गया है कि पाश्चात्य देशो मे भी जहाँ मजदूरी सबसे अधिक है कुशल श्रम साधारणतया सबसे सस्ता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जापान का औद्योगिक विकास यह प्रदर्शित कर रहा है कि कुछ अधिक खर्चीली रूढ़ आवश्यकताएँ दक्षता मे कमी हुए बिना त्याग दी जायेगी: किन्तु यद्यपि इस अनुभव से भविष्य मे दूरव्यापी परिणाम निकलते है, इस पर भी इसका विगत तथा वर्तमान से बहुत थोड़ा ही सम्बन्ध रहा है। मनुष्य जैसा है तथा अब तक जैसा रहा है, उसे देखते हुए पाश्चात्य जगत मे दक्ष-श्रम द्वारा प्राप्त उपार्जन उस न्यूनतम मात्रा से अधिक नही है जो दक्ष श्रमिको के पालन-पोषण एव प्रशिक्षण तथा उनकी पूर्ण शक्तियो को बनाये रखने व उनको कार्यरूप मे परिणत करने के खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त होता है।[1]

सम्बन्ध में भी सत्य है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अस्वास्थ्यकर दशाओ के अतिरिक्त मजदूरी मे वृद्धि होने से सदैव भावी पीढ़ी की शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति मे भी वृद्धि होती है और अन्य बातो के समान रहने पर, श्रम को मिलने वाले उपार्जन मे वृद्धि होने से इसकी वृद्धि की दर बढ़ जाती है, या अन्य शब्दो मे, इसकी माँग कीमत मे वृद्धि होने से इसका सम्भरण बढ़ने लगता है। यदि ज्ञान तथा सामाजिक एव घरेलू आदतों की स्थिति ज्ञात हो तो सभी लोगो के ओज की, यदि उनकी सख्या की भी तथा किसी विशेष व्यवसाय मे काम करने वाले लोगो की सख्या तथा उनके ओज दोनो की इस अर्थ मे सम्भरण कीमत होगी कि माँग कीमत के किसी निश्चित स्तर पर उन्हे

सामान्य निष्कर्ष।

---

1 सभी इंजनों में आंशिक रूप से शोभा के लिए कुछ पीतल या जस्ते का काम किया जाता है और इसे वाष्प-इंजन की कार्यक्षमता में क्षति पहुँचाये बिना हटाया जा सकता है या विस्थापित किया जा सकता है। वास्तव में इसकी मात्रा उन कर्मचारियों की रुचियों के अनुसार भिन्न होती है जो विभिन्न रेलों के इंजनों का नमूना तय करते हैं। किन्तु यह भी हो सकता है कि यह खर्च प्रथा के कारण करना पड़े और इस विषय से सम्बन्धित विवाद का इस प्रथा पर कुछ भी प्रभाव न पड़े और रेल कम्पनियाँ इसके विरुद्ध चलने का साहस न कर सकीं। उस दशा में जब प्रथा का बोलबाला रहा या हमें इंजन की अश्वशक्ति की निश्चित मात्रा पैदा करने की लागत में उस शोभा के काम की लागत को भी उसी तरह करना चाहिए जिस तरह पिष्टन की लागत शामिल की जाती है। ऐसी अनेक, विशेषकर साधारण अवधि से सम्बन्धित,व्यावहारिक समस्याएँ हैं जिनमें रूढ़ तथा वास्तविक आवश्यकताओं को लगभग एक ही आधार पर रखा जा सकता है।

स्थिर रखा जा सकता है और कीमत के ऊँची हो जाने पर उनमे वृद्धि तथा इसके घटने पर उनमे कमी होगी।

मजदूरी पर माँग तथा सम्भरण के प्रभाव समवर्गीय है।

इस प्रकार हम देखते है कि मजदूरी पर माँग तथा सम्भरण के समवर्गीय प्रभाव पडते है। इन दोनो मे से किसी के भी प्रभाव के प्रबल होने का उसी प्रकार दावा नही माना जा सकता जिस प्रकार कैंची की दो धारो मे से किसी एक का या किसी मेहराब के दो स्तम्भो मे से किसी एक का दावा नही माना जा सकता है। मजदूरी मे श्रम के निवल उत्पादन के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसकी सीमान्त उत्पादकता से इसकी माँग कीमत निर्धारित होती है। दूसरी ओर मजदूरी का दक्ष श्रमिको के पालन-पोषण उनके प्रशिक्षण एव उनकी शक्ति को बनाये रखने की लागत से घनिष्ठ (किन्तु परोक्ष एव जटिल) सम्बन्ध रहता है। इस समस्या के अनेक तत्त्व परस्पर एक दूसरे को नियन्त्रित करने के अर्थ मे निर्धारित करते हैं। और प्रसगवश इससे यह तय हो जाता है कि सम्भरण कीमत तथा माँग कीमत मे बराबर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है. मजदूरी न तो माँग कीमत से, न सम्भरण कीमत से नियन्त्रित होती है, वरन् उन सभी कारणो से नियन्त्रित होती है जो माँग तथा सम्भरण को नियन्त्रित करते हैं।[1]

"मजदूरी की साधारण दर" वाक्यांश के प्रयोग करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

"मजदूरी की साधारण दर" या श्रमिको की मजदूरी के प्रचलित वाक्याश के विषय मे भी कुछ कहना चाहिए। इस प्रकार के वाक्याश वितरण के व्यापक दृष्टिकोण मे और विशेषकर पूँजी तथा श्रम के साधारण सम्बन्धो पर विचार करते समय सुविधाजनक रहते है किन्तु आधुनिक सभ्यता मे मजदूरी की सामान्य दर नाम की कोई वस्तु नही है। सैकडो या इससे भी अधिक श्रमिक वर्गो मे प्रत्येक की अपनी अपनी मजदूरी की समस्याएँ होती है, प्रत्येक की सम्भरण कीमत को नियन्त्रित करने तथा अपने सदस्यो की सख्या को सीमित करने के अपने अपने विशेष प्राकृतिक एवं कृत्रिम कारण होते है, और प्रत्येक की अपनी अपनी माग कीमत उत्पादन के अन्य उपादानो द्वारा इसकी सेवाओ के लिए की जानेवाली माँग से नियन्त्रित होती है।

'ब्याज की साधारण

§4 'ब्याज की साधारण दर' वाक्याश के प्रयोग करने मे भी कुछ इसी प्रकार की कठिनाइयाँ उठानी पडती है। किन्तु यहाँ मुख्य कठिनाई इस तथ्य के कारण पैदा

1 अनेक आलोचकों द्वारा, जिनमें प्रो० बी० बाहम बावर्क जैसे उग्र आलोचक भी शामिल थे, इस भाग में दिये गये मुख्य तर्क का गलत अर्थ लगाने के कारण इसकी इस अनुभाग में पुनरावृत्ति करना जरूरी हो गया है। क्योंकि हाल ही में उद्धृत लेख में (विशेषकर अनुभाग 5 देखिए) उनका यह विचार रहा है कि मजदूरी को श्रम के निवल उत्पादन तथा उसके पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण व उसकी दक्षता को बनाये रखने में लगने वाली लागत (या आर्थिक संक्षेप में कम उचित ढंग से श्रमिक के उत्पादन की लागत) के अनुरूप मानने में स्वतः विरोधी तत्व आवश्यकरूप से निहित है। दूसरी ओर जुलाई 1894 के Quarterly Journal of Economics में प्रो० कार्वर द्वारा लिखे गये एक विद्वतापूर्ण लेख में मुख्य आर्थिक शक्तियों के पारस्परिक प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। उसके Distribution of Wealth, अध्याय IV को भी देखिए।

होती है कि पहले से ही कुछ खास चीजो पर, जैसे कि फैक्टरी या जहाज पर विनियोजित पूंजी से उत्पन्न आय उचितरूप में आभास लगान है, और इसे ब्याज माना जा सकता है। विनियोजन के पूंजी मूल्य के अपरिवर्तित रहने पर ही रहे। अब हम इस कठिनाई को भूल जाये[1], तथा स्मरण करे कि 'ब्याज की साधारण दर' मुक्त पूंजी के विनियोजन से प्रत्याशित निवल उपार्जन पर ही अधिक लागू होती है, और पूंजी के विकास के पहले किये गये अध्ययन के परिणामो की सक्षेप मे पुनरावृत्ति करे।

दर' वाक्य शों के प्रयोग करने में भी इसी प्रकार की किन्तु कुछ कम मात्रा में कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

हम देख चुके हैं[2] कि सम्पत्ति के सचय पर अनेको कारणो का, जैसे कि प्रथा, आत्मनियत्रण एव भविष्य को पहचानने की शक्ति तथा पारिवारिक स्नेह की शक्ति का नियत्रण रहता है. सुरक्षा इसके लिए आवश्यक शर्त है तथा ज्ञान एव बुद्धि की प्रगति से यह अनेक प्रकार से आगे बढ़ती है, यद्यपि बचत ब्याज की दर के अतिरिक्त अनेक कारणो से प्रभावित होती है और अनेक लोगों की बचत ब्याज की दर से बहुत कम प्रभावित होती है जब कि कुछ लोग अपने लिए या अपने परिवार के लिए कुछ निश्चित मात्रा मे आय सुरक्षित रखने का निश्चय करने पर ब्याज की कम दर की अपेक्षा अधिक दर पर कम बचत करेंगे तब भी अधिकतर प्रमाण इस मत के पक्ष मे दिखायी देते है कि ब्याज की दर मे यह बचत की माँग कीमत मे वृद्धि होने से बचत की मात्रा मे वृद्धि होने लगती है।

पहले निकाले गये निष्कर्षों क सारांश।

इस प्रकार ब्याज जो कि बाजार मे पूंजी के प्रयोग के लिए दी जाने वाली कीमत है, *ऐसे साम्य स्तर की ओर प्रवृत्त होती है जिस पर पूंजी की उस दर पर उस बाजार* मे कुल माँग उसी दर पर वहाँ आने वाले इसके कुल स्टाक के बराबर होती है। यदि विचाराधीन बाजार छोटा हो—मान लीजिए कि एक प्रगतिशील देश मे एक ही शहर या एक ही व्यवसाय हो तो इसमे पूंजी की माँग मे वृद्धि की तुरन्त ही समीपवर्ती क्षेत्रो या व्यवसायों मे सम्भरण बढाकर पूर्ति की जायेगी किन्तु यदि हम सारे ससार को या किसी विशाल देश के भी सम्पूर्ण भाग को पूंजी का बाजार मानकर विचार कर रहे हो तो हम यह नही मान सकते कि ब्याज की दर मे परिवर्तन होने से इसके कुल सम्भरण मे तेजी से तथा बड़ी मात्रा मे परिवर्तन होते है। क्योंकि पूंजी की सामान्य निधि श्रम एव प्रतीक्षा का प्रतिफल है और ब्याज की दर मे वृद्धि से अतिरिक्त कार्य करने या अतिरिक्त प्रतीक्षा करने के लिए जो अनुप्रेरणा मिलती है वह उस कार्य एव प्रतीक्षा के अनुपात मे, जिसके फलस्वरूप पूंजी का कुल वर्तमान भण्डार प्राप्त हुआ है, शीघ्र ही अधिक नही हो सकती। सामान्यरूप मे पूंजी के लिए माँग मे बहुत अधिक वृद्धि की कुछ समय तक इसके सम्भरण से वृद्धि से उतनी पूर्ति नही होगी जितनी कि ब्याज की दर मे वृद्धि से होगी, जिसके कारण पूंजी को आशिक रूप से उन उपयोगो से हटा लिया जायेगा जिनमे इसका सीमान्त तुष्टिगुण निम्नतम हो। ब्याज की दर मे वृद्धि से पूंजी के कुल भण्डार मे केवल धीरे धीरे वृद्धि होती है।

दीर्घकाल में ब्याज की दर क्रमशः सम्भरण तथा माँग की शक्तियों से निश्चित होती है।

---

1 आगे भाग 6, अध्याय 6, अनुभाग 6 देखिए।

2 भाग 4, अध्याय 7 देखिए; अनुभाग 10 में इसका संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

भूमि की स्थिति उत्पादन के अन्य उपादानों से अलग है।

§5 भूमि की स्थिति स्वयं मनुष्य से तथा उसके द्वारा बनाये गये उत्पादन के अन्य उपादानों से, जिनमे स्वयं भूमि पर उसके द्वारा किये गये सुधार भी शामिल हैं, भिन्न है।[1] क्योंकि जहाँ उत्पादन के अन्य उपादानों के सम्भरण में उनकी माँग के अनुसार विभिन्न मात्रा मे तथा विभिन्न प्रकार से परिवर्तन होते हैं, भूमि मे इस प्रकार का कोई परिवर्तन नही होता। इस प्रकार किसी भी श्रेणी के श्रमिकों के उपार्जन मे असाधारण वृद्धि से उनकी सख्या मे या इन दोनो चीजों मे वृद्धि होने की प्रवृत्ति रहती और उस श्रेणी के दक्ष कार्य की मात्रा मे वृद्धि होने से समाज को मिलने वाली सेवाएँ सस्ती हो जाती हैं। यदि वृद्धि उनकी सख्या मे हुई हो तो प्रत्येक श्रमिक के उपार्जन की दर मे कमी होकर पुराने स्तर की ओर आने की प्रवृत्ति होगी। किन्तु यदि वृद्धि उनकी दक्षता मे हुई हो तो सम्भवतया पहले की अपेक्षा प्रति व्यक्ति अधिक अर्जित करने पर भी उनको होने वाला लाभ राष्ट्रीय लाभाश मे वृद्धि से होगा न कि उत्पादन के अन्य उपादानो के हिस्से मे कमी करके। पूँजी के सम्बन्ध मे भी यही बात सत्य है: किन्तु भूमि के सम्बन्ध मे यह सत्य नही है। अत उत्पादन के अन्य उपादानो के मूल्य के साथ जहा भूमि का मूल्य पिछले अध्याय के अन्त मे विवेचन की गयी बातों पर निर्भर रहता है, यह उन बातो पर निर्भर नही रहता जिनका अभी विवेचन किया जा रहा है।

यह सत्य है कि व्यक्तिगत विनिर्माता या कृषक के दृष्टिकोण से भूमि केवल एक खास प्रकार की पूँजी है। भूमि पर पिछले अध्याय मे विवेचन किये गये माँग तथा प्रतिस्थापन नियमों का प्रभाव पड़ता है, क्योंकि पूंजी के या किसी भी किस्म के श्रम के विद्यमान स्टाक की भाँति इसके स्टाक को भी एक प्रकार के उत्पादन से हटा कर दूसरे प्रकार के उत्पादन मे तब तक लगाया जायेगा जब तक ऐसा करने से उत्पादन मे कुछ भी लाभ हो। जहाँ तक पिछले अध्याय मे किये गये विवेचनो का सम्बन्ध है, किसी फैक्टरी, माल-गोदाम या हल (टूटफूट इत्यादि के लिए छूट रखते हुए) से होने वाली आय उसी प्रकार नियन्त्रित होती है जिस प्रकार भूमि से प्राप्त होने वाली आय नियन्त्रित होती है। प्रत्येक दशा मे आय मे उपादान के सीमान्त निवल उत्पाद के मूल्य के बराबर होने की प्रवृत्ति रहती है: प्रत्येक दशा मे यह कुछ समय तक उस उपादान के कुल स्टाक तथा अन्य उपादानो की इसकी आवश्यता से नियंत्रित होती है।

यह इस समस्या का एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू यह है कि भूमि पर (किसी प्राचीन देश मे) इस अध्याय मे विवेचन किये गये वे प्रतिनियात्मक प्रभाव नही पड़ते जो कि उपार्जन की दर के ऊँचे होने के कारण उत्पादन के अन्य उपादानों के सम्भरण पर और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय लभाश मे उनके अंशदान पर तथा परिणामस्वरूप उस वास्तविक लागत पर पड़ते हैं जिस पर उत्पादन के अन्य उत्पादानों द्वारा उनका उपयोग किया जाता है। किसी फैक्टरी मे अतिरिक्त मजिल बनाने या एक फार्म पर अतिरिक्त

---

[1] इस अनुभाग में दिये गये तर्क का व्यापक अर्थ समझना चाहिए। अधिक तकनीकी तथा विस्तृत विचार के लिए पाठक को सलाह दी जाती है कि वह भाग 5, अध्याय 10 को पढ़े।

हल काम में लाने में साधारणतया दूसरी फैक्टरी से मंजिल नहीं ले ली जाती, या दूसरे फार्म से हल नहीं ले लिया जाता। राष्ट्र की दृष्टि से फैक्टरी मे एक मंजिल की या कृषि व्यवसाय मे एक हल की उसी प्रकार वृद्धि होती है जैसे कि किसी व्यक्ति की इन चीजो में वृद्धि होती है। इस प्रकार वितरण के लिए अधिक राष्ट्रीय लाभाश मिलता है और दीर्घकाल मे विनिर्माता या किसान का बढा हुआ उपार्जन प्राय अन्य उत्पादको के लाभ मे कमी होने के फलस्वरूप नहीं होता। इसके विपरीत किसी भी समय (किसी प्राचीन देश मे) भूमि का स्टाक सदैव के लिए वही रहता है और जब कोई विनिर्माता या कृषक अपने व्यवसाय मे कुछ अधिक भूमि लगाना चाहता है तो वह किसी दूसरे के व्यवसाय से इसे लेने का निश्चय करता है। वह अपने व्यवसाय मे थोडी बहुत भूमि बढा लेता है, किन्तु राष्ट्र की दृष्टि से इस प्रकार के व्यवसाय मे लगी भूमि मे कोई भी वृद्धि नहीं होती, केवल इस परिवर्तन से ही राष्ट्रीय आय मे वृद्धि नहीं होती।

उत्पादन के असंख्य उपादानों का उनके सीमान्त उपयोगों के अनुसार उपार्जन होने से राष्ट्रीय लाभांश समाप्त हो जाता है।

§6. इस तर्क को इस प्रकार से सक्षेप मे व्यक्त किया जा सकता है सभी उत्पादन की गयी वस्तुओं का कुल योग स्वय ही वह वास्तविक स्रोत है जिससे इन सभी वस्तुओ के लिए और इसलिए उनके बनाने मे लगे हुए उत्पादन के उपादानो के लिए माँग कीमतें मिलती है। या इसी बात को अन्य प्रकार से व्यक्त करते हुए, यह राष्ट्रीय लाभाश ही देश के उत्पादन के सभी उपादानों का ठीक कुल निवल उत्पाद तथा उन्हे दिया जाने वाला एकमात्र भुगतान है यह श्रम के उपार्जन पूँजी के ब्याज तथा अन्त में भूमि तथा उत्पादन के अन्य अवकल लाभो के उत्पादक अधिशेष या लगान मे विभाजित किया जाता है। इसमे ये सभी सम्मिलित है और इसके सम्पूर्ण भाग का इनमे वितरण किया जाता है। इसकी (राष्ट्रीय लाभाश की) मात्रा जितनी ही अधिक होगी अन्य बातों के समान रहने पर उनमे प्रत्येक उपादान को मिलने वाला हिस्सा भी उतना, ही बढा होगा।

असंख्य उपयोगों के लिए आवश्यक कुल आवश्यकता।

प्राय. इनमे इसका वितरण लोगों की उनके सीमान्त आवश्यकता के अनुपात मे किया जाता है, इसका अभिप्राय ऐसे समय होने वाली जरूरत से है जब लोग इस बात के लिए उदासीन रहते हैं कि उन्हें अपने अतिरिक्त साधनो से किसी उपादान की सेवाओं या सेवाफल) को कुछ अधिक प्राप्त करना चाहिए या उन्हे अन्य उपादानो की सेवाओं (या उनकी सेवाओं के फल) को प्राप्त करने के लिए लगाना चाहिए। अन्य बातों के समान रहने पर, प्रत्येक उपादान का हिस्सा जितना ही बढा होगा सम्भवतया उतनी ही तेजी से उसमे वृद्धि होगी। ऐसा उस समय सम्भव न होगा जब इसमे किसी प्रकार की वृद्धि ही न हो सके। किन्तु इस प्रकार की हर वृद्धि से उस कारक के लिए होने वाली अधिक तीव्र आवश्यकता की कुछ पूर्ति हो सकेगी और उसके लिए सीमान्त आवश्यकता घटने लगेगी, तथा उसकी बाजार कीमत भी कम हो जायगी। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी भी उपादान के आनुपातिक हिस्से या पारिश्रमिक की दर मे वृद्धि से ऐसी शक्तियाँ कार्य करने लगती है जो उस हिस्से को घटा देगी, और अन्य उपादानों के बीच लाभांश के आनुपातिक हिस्से को बढा देगी। यह प्रतिक्रियात्मक प्रभाव मन्द हो सकता है, किन्तु यदि उत्पादन की प्रणालियों मे या समाज की सामान्य आर्थिक

दशा में कोई तीव्र परिवर्तन न हो तो प्रत्येक उपादान का सम्भरण इसकी उत्पादन की लागत द्वारा समानरूप से नियन्त्रित होगा: यहाँ उन दृढ़ आवश्यकताओं को ध्यान मे रखना होगा जो राष्ट्रीय आय के बढने से प्रत्येक वर्ग की दक्षता के लिए ही अपरिहार्य आवश्यकताओ के अतिरिक्त क्रमश बढती हुई मात्रा मे अधिशेष प्रदान करने के साथ निरन्तर बढती जाती है।

किसी भी उपादान के सम्भरण में वृद्धि होने से अधिकांश अन्य उपादानों को भी लाभ होगा, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी को लाभ हो।

§7 किसी भी व्यवसाय मे बढी हुई कार्यक्षमता तथा बढे हुए उपार्जन के अन्य व्यवसायो पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करते समय, अन्य बातो के समान रहने पर, हम इस सामान्य तथ्य से आगे बढेगे कि उत्पादन के किसी भी उपादान का सम्भरण जितना ही अधिक होगा, इसे उन उपयोगो मे जिनके लिए यह विशेषरूप से उपयुक्त नही है, लगाये जाने के लिए उतना ही अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। इसे उन उपयोगो मे जहाँ इनका लगाना लाभदायक न प्रतीत हो, उतनी ही कम माँग कीमत से संतुष्ट रहना पडेगा। और प्रतिस्पर्द्धा से सभी उपयोगो से मिलने वाली कीमत बराबर हो जाने के कारण सभी उपयोगो मे इसकी यही कीमत निश्चित होगी। उत्पादन के उस उपादान मे वृद्धि के कारण होने वाले अतिरिक्त उत्पादन से राष्ट्रीय लाभाश मे बहुत वृद्धि होगी जिससे उत्पादन के अन्य उपादानो को लाभ होगा किन्तु स्वयं उस उपादान को कम दर पर काम करना होगा।

दृष्टान्त के लिए, यदि अन्य किसी परिवर्तन के बिना पूँजी मे तेजी से वृद्धि हो तो ब्याज की दर अवश्य ही घटनी चाहिए। यदि अन्य किसी परिवर्तन के बिना उन लोगो की संख्या बढ जाय जो किसी खास किस्म का काम करने के लिए तैयार हो, तो उनकी मजदूरी अवश्य घटनी चाहिए। इन दोनो मे से किसी भी दशा मे उत्पादन मे वृद्धि होगी और राष्ट्रीय लाभाश भी बढेगा। इन दोनो मे से किसी भी दशा मे उत्पादन के किसी एक उपादान को होने वाली क्षति से अन्य उपादानो को अवश्य लाभ होगा, किन्तु यह आवश्यक नही कि सभी उपादानो को लाभ हो। इस प्रकार अत्यधिक स्लेट वाली खानो के खुल जाने से या इन खानो मे काम करने वाले लोगो की संख्या या कार्य क्षमता मे वृद्धि होने से सभी वर्गों के लोगो के मकान सुधरे हुए ढग के होंगे। इससे राज तथा बढइयो के श्रम के लिए माँग बढ जायेगी तथा उनकी मजदूरी मे भी वृद्धि होगी। किन्तु इससे छत के लिए खपरैल बनाने वालो को इमारती सामग्री के उत्पादकों के रूप मे जितनी क्षति होगी उतना उन्हे इसके उपभोक्ताओ के रूप मे लाभ न होगा। इस एक उपादान के सम्भरण मे वृद्धि होने से अन्य उपादानो की माँग थोडी तथा कुछ अन्य उपादानों की माँग बहुत बढ़ती है, किन्तु इससे कुछ की माँग घट भी जाती है।

किसी श्रमिक की मजदूरी को विभिन्न श्रेणियों के

हम यह जानते हैं कि किसी श्रमिक की, जैसे कि किसी बूट तथा जूते की फैक्टरी मे काम करने वाले कारीगर की मजदूरी उसके श्रम के निवल उत्पाद के बराबर है, इसकी मजदूरी उस निवल उत्पाद से नियंत्रित नही होती, क्योकि सीमान्त उपयोगो की सभी अन्य दशाओ की भाँति निवल उत्पादो पर मूल्य के अतिरिक्त माँग एवं सम्भरण के सामान्य सम्बन्धो का भी नियन्त्रण रहता है।[1]

---

1 भाग 5, अध्याय 8, अनुभाग 5 तथा भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 7 देखिए।

श्रमिकों के निवल उत्पाद के रूप में अस्थायी रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

किन्तु (1) जब बूट तथा जूते के उद्योग में पूंजी तथा श्रम की कुल मात्रा उस सीमा तक लगायी जाय जिस पर इनको और अधिक मात्रा में लगाने से शायद ही लाभ हो, (2) जब संयंत्र, श्रम तथा उत्पादन के अन्य उपादानों के बीच साधनों का उचित ढंग से वितरण किया जाय, (3) जब हमारे दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामान्य तथा अच्छा लाभ अर्जित करने वाली ऐसी फैक्टरी हो, जिसे सामान्य योग्यता के साथ चलाया जा रहा हो तथा जहाँ परिस्थितियाँ ऐसी हो कि इस बात का संशय रहे कि सामान्य मजदूरी पर कार्य करने के लिए तत्पर सामान्य योग्यता एवं शक्ति वाले किसी अतिरिक्त कारीगर को काम पर लगाना चाहिए या नहीं इन सब चीजों के होने पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उस व्यक्ति के कार्य में क्षति होने से सम्भवतया उस फैक्टरी के निवल उत्पादन में जिसका मूल्य उसकी मजदूरी के लगभग बराबर था कुछ कमी हो जायेगी। इस कथन का विलोम यह है कि उसकी मजदूरी उस निवल उत्पाद के लगभग बराबर होती है निश्चय ही एक व्यक्ति के निवल उत्पाद को उसके साथ साथ कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों के निवल उत्पाद से यन्त्रवत् पृथक नहीं किया जा सकता।[1]

किसी बूट तथा जूते की फैक्टरी में विभिन्न श्रेणियों के कारीगरों द्वारा किया जाने वाला कार्य समानरूप से कठिन नहीं होता किन्तु विभिन्न वर्गों के बीच औद्योगिक स्तर में पाये जाने वाले अन्तर की अवहेलना कर यह कल्पना करेंगे कि वे सब समान स्तर के हैं। (इस कल्पना से इसके सामान्यरूप में परिवर्तन हुए बिना हमारे तर्क की शब्द-रचना सरल हो जाती है)।

अब आधुनिक कार्य की तीव्रता से बदलती हुई दशाओं में किसी न किसी उद्योग में श्रम की पूर्ति सम्भवतया, कभी तो बहुत अधिक और कभी बहुत कम होती है : और ये अवश्यम्भावी असमानताएँ अवरोधक संघों तथा अन्य प्रभावों से बढ़ सकती है। किन्तु इस पर भी श्रम प्रवाह से यह सत्य साबित होता है कि समान औद्योगिक ग्रेड या स्तर के श्रमिकों की मजदूरी किसी पाश्चात्य देश के सभी भागों में विभिन्न काम धन्धों में बराबर होने लगती है। तदनुसार इस कथन में कोई उल्लेखनीय त्रुटि नहीं है कि सामान्यतया समान औद्योगिक स्तर का प्रत्येक श्रमिक बूट बनाने की सामान्य कारीगरी से उतने ही समय में अर्जित मजदूरी से किसी भी किस्म के जूतों का जोड़ा उनमें लगे सामान की लागत देकर खरीद सकता है जितना कि उस कारीगर को अपनी फैक्टरी के निवल उत्पाद के लिए उस किस्म के जूतों का जोड़ा बनाने में लगता। इस कथन को अधिक सामान्यरूप देते हुए हम कह सकते हैं कि साधारणतया प्रत्येक श्रमिक सौ दिनों के श्रम के उपार्जन से साथ में काम करने वाले समान श्रेणी के अन्य कारीगरों के सौ दिनों के श्रम का निवल उत्पाद प्राप्त कर सकता है वह जिस ढंग से चाहे

---

1 उत्पादन की सरकारी संगणना की भाँति अब प्रायः किसी फैक्टरी के निवल उत्पादन को उस अतिरिक्त उपयोगिता के बराबर माना जाता है जो उत्पाद में लगायी जाने वाली सामग्री को प्रदान की जाती है। इस प्रकार इसके निवल उत्पाद का मूल्य इसके उत्पादन के कुल मूल्य तथा इसमें लगी हुई सामग्री के मूल्य के अन्तर के बराबर होता है।

वस्तुओं का चयन कर सकता है किन्तु उन सबका कुल योग इसी उत्पादन के बराबर होगा।

यदि किसी अन्य ग्रेड के कर्मचारियों का सामान्य उपार्जन उसके उपार्जन का आधा हो तो बूट बनाने वाले कारीगर को उस श्रेणी के कर्मचारी के दो दिन के श्रम के निवल उत्पाद को प्राप्त करने के लिए तीन दिन की मजदूरी अवश्य खर्च करनी पड़ेगी, और आगे भी यही अनुपात रहेगा।

किसी भी व्यवसाय में कार्यक्षमता की वृद्धि से अन्य व्यवसायों में वास्तविक मजदूरी बढ़ जाती है।

इस प्रकार अन्य बातो के समान रहने पर किसी भी व्यवसाय के श्रमिक की, जिसमें उसका अपना व्यवसाय भी शामिल है, निवल कार्यक्षमता बढ़ने से उसकी मजदूरी के उस भाग के वास्तविक मूल्य मे जिसे बूट बनाने वाला कारीगर उस व्यवसाय की उत्पादित चीजो मे खर्च करता है उसी अनुपात मे वृद्धि होगी। अन्य बातो के समान रहने पर, बूट बनाने वाले कारीगर की वास्तविक मजदूरी का साम्य स्तर उसके व्यवसाय सहित उन व्यवसायो की औसत कार्यक्षमता पर प्रत्यक्षरूप से निर्भर रहता है तथा उन्ही के अनुसार प्रत्यक्षरूप से बदलता है जो उन चीजो का उत्पादन करते हैं जिन पर वह अपनी मजदूरी खर्च करता है। इसके विपरीत किसी उद्योग मे श्रमिकों द्वारा इसकी कार्यक्षमता मे दस प्रतिशत की वृद्धि करने वाले सुधार को अस्वीकार करने से बूट बनाने वाले कारीगरो को उस उद्योग की चीजो पर खर्च की जाने वाली मजदूरी के भाग के दस प्रतिशत के बराबर हानि उठानी पड़ती है। किन्तु जिन श्रमिको के उत्पाद उसके अपने उत्पादन से प्रतिस्पर्द्धा करते है उनकी बढ़ी हुई कार्यक्षमता से उसे कम से कम कुछ समय के लिए क्षति पहुँचती है, विशेषकर यदि स्वय वह उन उत्पादों का उपभोक्ता न हो।

विभिन्न ग्रेडों के बीच सम्बन्ध। व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि से शारीरिक श्रम की मजदूरी बढ़ जाती है।

पुन बूट बनाने वाले कारीगर को किसी ऐसी चीज से लाभ होगा जिससे विभिन्न ग्रेडो की सापेक्षिक स्थितियाँ इस प्रकार परिवर्तित हो कि अन्य की अपेक्षा उसका ग्रेड ऊँचा हो जाय। उसे चिकित्सा अधिकारियो की सख्या से वृद्धि से लाभ होगा क्योंकि इनकी सहायता की यदाकदा जरूरत रहती है। यदि मुख्यतया विनिर्माण या किसी अन्य प्रकार के व्यवसाय के प्रबन्ध के कार्य मे लगे हुए लोगो मे अन्य ग्रेडो से आकर बहुत बड़ी सख्या मे लोग सम्मिलित हो जायें तो उसे और भी अधिक लाभ होगा : क्योंकि तब शारीरिक श्रम के उपार्जन की अपेक्षा प्रबन्ध के उपार्जन मे स्थायी कमी हो जायेगी, हर प्रकार के शारीरिक श्रम के निवल उत्पाद मे वृद्धि होगी और अन्य बातो के समान रहने पर, बूट बनाने वाला कारीगर जिस किसी चीज मे अपने उत्पाद को व्यक्त करने वाली मजदूरी को खर्च करेगा उसकी उसे अधिक मात्रा प्राप्त होगी।

हम ज्ञान की पूर्णता तथा प्रतिस्पर्द्धा की स्वतंत्रता की कल्पना न कर केवल उद्यम तथा

§8 प्रतिस्थापन की प्रक्रिया, जिसकी प्रवृत्तियो पर हम विचार करते आये हैं, एक प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा है और इस बात पर पुन. जोर देना अच्छा रहेगा कि हम प्रतिस्पर्द्धा को पूर्ण नहीं मानते। पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा के लिए बाजार की अवस्था का पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है। यद्यपि लोमबार्ड स्ट्रीट, सट्टा बाजार या थोक उत्पादन बाजार के व्यापारियों को इस प्रकार के ज्ञान होने की कल्पना करने मे हम वास्तविक से बहुत नही होते, तथापि उद्योग के किसी भी निम्न ग्रेड में श्रम की पूर्ति को नियंत्रित करने वाले कारणों की समीक्षा करते समय इस प्रकार की कल्पना करना बिलकुल ही तर्कसगत

नहीं होगा। क्योंकि यदि किसी व्यक्ति को अपने श्रम के बाजार के विषय मे सब कुछ जानने की पर्याप्त योग्यता हो तो वह निम्न ग्रेड में बहुत अधिक समय तक नही रहेगा। प्राचीन अर्थशास्त्री व्यावसायिक जीवन के वास्तविक तथ्यो के निरन्तर सम्पर्क मे रहने के कारण अवश्य ही यह भलीभाँति जानते होगे, किन्तु आशिक रूप से संक्षिप्तता एवं सरलता के लिए, आशिक रूप से 'मुक्त प्रतियोगिता' शब्द आम नारा बन जाने से और आशिक रूप से अपने सिद्धान्तो को पर्याप्तरूप से वर्गीकृत एव प्रतिबन्धित न करने से बहुधा ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने अवश्य ही पूर्ण ज्ञान होने की कल्पना की थी।

व्यावसायिक आदतों की ही कल्पना करते हैं जो कि उद्योग के अनेक स्तरों में सामान्य होते हैं।

अतः इस बात पर जोर देना विशेषरूप से महत्वपूर्ण है कि हम किसी भी औद्योगिक समूह के सदस्यों को अधिक योग्यता एव पूर्णज्ञान से सम्पन्न होने की कल्पना नही करते या ऐसे प्रयोजनो से नियन्त्रित होने की कल्पना करते जो समय तथा स्थान की सामान्य दशाओं को ध्यान मे रखते हुए वास्तव मे उस समूह के सदस्यों के लिए सामान्य है, तथा जिन्हें प्रत्येक विद्वान पुरुष उनसे सम्बन्धित मानता है। यह हो सकता है कि उनके कार्य हठी एवं आवेगशील हों और उनमे कुत्सित एव महान प्रयोजनो का मिश्रण पाया जाय, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति मे अपने लिए तथा अपने बच्चों के लिए ऐसे धन्धो को अपनाने की निरन्तर प्रवृत्ति पायी जाती है जो उसके अपने साधनो से सम्भव हो तथा जिन्हें अपनाने के लिए आवश्यक प्रयत्न करने की क्षमता एव इच्छा हो।[1]

§9. अब प्रश्नो की जिस अन्तिम श्रेणी पर विचार करना है वह है सामान्य पूँजी का सामान्य मजदूरी से सम्बन्ध । यह स्पष्ट है कि यद्यपि विशेष व्यवसायो मे लगाये जाने के लिए सामान्य पूँजी मे और श्रम मे निरन्तर प्रतिस्पर्द्धा हो रही है, तब भी पूँजी के श्रम एव उपभोग स्थगन का प्रतिरूप होने के कारण वास्तव मे प्रतिस्पर्द्धा पर्याप्त उपभोग स्थगन से किये जाने वाले कुछ प्रकार के श्रम तथा कम उपभोग से किये जाने वाले अन्य प्रकार के श्रम के बीच होती है। दृष्टान्त के लिए जब यह कहा जाता है कि 'पूँजी वाली मशीनो ने बूट बनाने मे लगे हुए बहुत श्रम को विस्थापित कर दिया है' तो यह अभिप्राय होता है कि पहले अनेक लोग हाथ से बूट बनाया करते थे और बहुत कम ऐसे थे जो कुछ उपभोग स्थगित कर कटनी (awl) तथा अन्य सहज औजार बनाते थे, जब कि अब बूट बनाने मे अपेक्षाकृत थोडे ही लोग लगे हुए है, और वे अब पर्याप्त उपभोग-स्थगन से अभियन्ताओ द्वारा बनायी गयी शक्तिशाली मशीनों की सहायता से पहले की अपेक्षा कही अधिक बूट तैयार करते हैं। वास्तव मे सामान्य श्रम एव सामान्य उपभोग-स्थगन के बीच होने वाली प्रतिस्पर्द्धा वास्तविक एव प्रभावशाली है। किन्तु यह प्रतिस्पर्द्धा उस सम्पूर्ण क्षेत्र के थोडे ही भाग तक सीमित होती है, और सस्ती दर पर प्राप्त पूँजी की सहायता से अर्जित लाभ और अतः श्रम के लिए आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन की दक्ष प्रणालियों की अपेक्षा इसका महत्व कम है।[2]

अब हम सामान्य रूप में पूँजी एवं श्रम के सम्बन्धों पर विचार करेंगे। पूँजी एवं श्रम के उपयोग के लिए प्रतिस्पर्द्धा नियंत्रित होने पर भी वास्तविक होती है।

सामान्य रूप से बचत करने की शक्ति एव तत्परता मे वृद्धि होने से उपभोग-स्थगन

1 वस्तुओं तथा श्रम के सम्बन्ध में माँग एवं सम्भरण के समायोजनों के बीच पाये जाने वाले अन्तर का आगे आने वाले अध्याय में विवेचन किया गया है।

2 हम यहाँ पर संकुचित अर्थ में रोजगार के लिए श्रम तथा स्वयं उपक्रमी एवं उसके सहायक प्रबन्धक व फोरमैनों के कार्य के बीच प्रतिस्पर्द्धा पर विचार नहीं

के लाभ अधिकाधिक देर मे मिलेंगे और उपभोग स्थगित करने से प्राप्त होने वाली पूंजी का पहले की भाँति व्याज की ऊँची दर पर विनियोजन नही हो सकेगा। अर्थात् यदि आविष्कार के फलस्वरूप उत्पादन की जटिल प्रणालियो के नये लाभदायक उपयोगों का प्रारम्भ न हो तो व्याज की दर मे निरन्तर कमी होती जायेगी। किन्तु पूंजी की इस वृद्धि से राष्ट्रीय लाभाश मे वृद्धि होगी और अन्य दशाओ मे श्रम के लगाये जाने के नये तथा बहुत अच्छे क्षेत्र मिलने लगेंगे और इस प्रकार श्रम की सेवाओ के आंशिक विस्थापन से होने वाली क्षति की अपेक्षा पूंजी के उपयोग से होने वाला लाभ अधिक होगा।[1]

पूंजी में वृद्धि होने से इसके उपयोग के लिए दिया जाने वाला सीमान्त प्रभार कम हो जाता है और वास्तविक मजदूरी बढ़ जाती है।

पूंजी तथा आविष्कार के विकास के फलस्वरूप राष्ट्रीय लाभांश मे होने वाली वृद्धि से सभी प्रकार की वस्तुओ पर अवश्य ही प्रभाव पडता है। दृष्टान्त के लिए इससे मोची अपने उपार्जन से भोजन एव वस्त्र अधिक व अच्छे प्रकार का पानी, कृत्रिम रोशनी एव ताप प्राप्त कर सकता है और अधिक मात्रा मे भ्रमण कर सकता है। यह स्वीकार करना पडेगा कि कम से कम पहली दशा मे कुछ सुधारो से केवल धनी लोगो द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ ही प्रभावित होती है, और राष्ट्रीय लाभाश मे तदनुकूल वृद्धि का कोई भी भाग प्रत्यक्षरूप से श्रमिक वर्गो को नही मिलता, और उन्हे कुछ खास व्यवसायो मे अपने कुछ सदस्यो को सम्भवतया होने वाली परेशानी की क्षतिपूर्ति के लिए शीघ्र ही कुछ भी नही मिलता। किन्तु ऐसी दशाएँ बहुत कम होती हैं, और साधारणतया छोटे पैमाने पर ही होती है और इनमे भी सदैव परोक्षरूप से कुछ न कुछ क्षतिपूर्ति होती है। क्योकि धनी लोगो के विलास की वस्तुओ मे किये जाने वाले सुधार शीघ्र ही अन्य वर्गो के लोगो की आराम की वस्तुओ मे भी होने लगते हैं। यद्यपि ऐसा होना आवश्यक नही है, तब भी विलास की वस्तुओ के सस्ते होने से साधारणतया धनी लोगो के हाथ से बनी तथा निजी सेवाओ के लिए अनेक प्रकार से इच्छाएँ बढ़ जाती हैं और इन इच्छाओ की तृप्ति के लिए उनके अपने साधन बढ जाते है। इस बात से सामान्य पूंजी तथा सामान्य मजदूरी के सम्बन्ध के दूसरे पहलू की ओर भी संकेत मिलता है।

अन्य स्पष्टीकरण।

§10. यह ध्यान रहे कि वर्ष मे किसी भी औद्योगिक वर्ग को राष्ट्रीय लाभाश का जो हिस्सा मिलता है उसमे या तो उस वर्ष मे बनी हुई चीजे शामिल रहती हैं, या उन चीजो के तुल्याक सम्मिलित किये जाते है। क्योकि वर्ष मे पूर्णरूप से या आंशिक रूप से बनी हुई अनेक चीजे पूंजीपतियो एव उद्योग के उपक्रमियो के अधिकार मे रहती है और इन्हे पूंजी के भण्डार मे शामिल करना चाहिए। इसके बदले मे वे प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से श्रमिक वर्गो को पिछले वर्षो मे बनायी गयी कुछ चीजे प्रदान करते हैं।

कर रहे हैं। अध्याय 8 तथा 13 के अधिकाश भाग में इस कठिन तथा महत्वपूर्ण समस्या पर विचार किया जायेगा।

1 पूंजी की यहाँ पर व्यापक अर्थ में गणना की गयी है: यह व्यापारिक पूंजी तक ही सीमित नहीं है। यह बात गौण महत्व की है और इस पर परिशिष्ट ञ अनुभाग 4 में विचार किया जायेगा।

श्रम एवं पूँजी में साधारणरूप से जो सौदा होता है उसके फलस्वरूप मजदूरी पाने वाला तुरन्त उपभोग के लिए तैयार चीजों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, और बदले में अपने मालिक के माल को तुरन्त उपभोग के लिए तैयार बनाने के अधिक अनुकूल बनाता है। यद्यपि यह बात अधिकांश कर्मचारियों के विषय में सत्य है किन्तु यह उन लोगों के विषय में सत्य नहीं कही जा सकती जो उत्पादन की अन्तिम प्रक्रियाओं को सम्पन्न करते हैं। दृष्टान्त के लिए जो लोग घड़ियों के पुर्जों को एकत्रित कर घड़ियाँ तैयार करते हैं वे अपने मालिक को तुरन्त उपभोग के लिए अपनी मजदूरी की अपेक्षा कहीं अधिक वस्तुएँ बनाकर देते हैं। यदि हम वर्ष की दो ऋतुओं को इस प्रकार लें कि बीज तथा फसल काटने का समय इनमें शामिल किया जा सके तो हम पायेंगे कि कुल मिलाकर कर्मचारी अपने मालिकों को अपनी मजदूरी की अपेक्षा कहीं अधिक तैयार वस्तुएँ देते हैं। इस पर भी वस्तुतः एक दबावपूर्ण अर्थ में हम यह भी कह सकते हैं कि श्रम का उपार्जन पूँजी से श्रम को दी जाने वाली पेशगी पर निर्भर रहता है। क्योंकि मशीन एवं फैक्टिरियों, जहाजों तथा रेल मार्गों को ध्यान में न रखते हुए कर्मचारियों को किराये पर दिये गये मकान तथा विभिन्न अवस्थाओं में उनके उपभोग की चीजों में परिणत किया जाने वाला कच्चा माल भी उनके द्वारा मजदूरी मिलने से पहले एक महीने तक पूँजीपति के लिए किये गये काम के तुल्यांक की अपेक्षा श्रमिकों के उपयोग के लिए किये गये पूँजी के कहीं अधिक आयोजन को व्यक्त करते हैं।

वह अर्थ जिसमें श्रम का उपार्जन पूँजी से मिलने वाली पेशगी पर निर्भर रहता है।

अतः वितरण की सामान्य योजना में जिसे स्पष्ट किया जा चुका है सामान्य पूँजी तथा सामान्य श्रम के सम्बन्ध उत्पादन के किन्हीं भी अन्य दो उपादानों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों से अधिक भिन्न नहीं हैं। श्रम एवं पूँजी के सम्बन्धों का आधुनिक सिद्धान्त वही परिणाम है जहाँ तक पहुँचने के लिए इस विषय से सम्बन्धित पहले दिये गये सभी सिद्धान्त प्रयत्नशील थे, और यह मिल की पुस्तक के चौथे भाग के तीसरे अध्याय में केवल जहाँ वह इस समस्या के विभिन्न अंगों को एक साथ प्रस्तुत करते हैं, दिये गये सिद्धान्त से केवल इस बात में भिन्न है कि इसमें अपेक्षाकृत अधिक यथार्थता, पूर्णता एवं सजातीयता विद्यमान है।

मजदूरी के अधिक पुराने सिद्धान्त आधुनिक सिद्धान्त की ओर अग्रसर हो रहे थे।

इस तर्क को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं सामान्य पूँजी तथा सामान्य श्रम राष्ट्रीय लाभांश के उत्पादन के लिए साथ साथ कार्य करते हैं, और अपनी अपनी (सीमान्त) कार्यक्षमताओं के अनुसार इसमें से अपना हिस्सा ले लेते हैं। इनकी पारस्परिक निर्भरता अधिकतम होती है और श्रम के बिना पूँजी का कोई अस्तित्व नहीं है, और श्रमिक अपनी या किसी अन्य की पूँजी की सहायता के बिना अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। जहाँ श्रम शक्तिशाली होता है वहाँ पूँजी के लिए ऊँचा पुरस्कार मिलता है और इसमें तेजी से वृद्धि होती है। पूँजी एवं ज्ञान की कृपा से पाश्चात्य जगत का साधारण मजदूर प्राचीनकाल के राजकुमारों से अनेक प्रकार से अच्छा खाना खाता है, अच्छे कपड़े पहनता है तथा अच्छे मकानों में रहता है। पूँजी एवं श्रम का योग उतना ही जरूरी है जितना कि धागा कातने वाले तथा कपड़ा बुनने वाले में जरूरी है। यद्यपि इसमें कातने वाले व्यक्ति को कुछ प्राथमिकता मिली है किन्तु इससे उसे विशेष स्थान प्राप्त नहीं होता। प्रत्येक की समृद्धि दूसरे की शक्ति एवं क्रिया-

पहले दिया जा चुका वितरण का व्यापक सिद्धान्त पूँजी एवं श्रम के सामान्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है, यद्यपि उप-

श्रमी के कार्य का महत्व भी बढ़ता जा रहा है।

शीलता से सीमित है, यद्यपि प्रत्येक को स्थायीरूप से न भी तो अस्थायीरूप से अवश्य ही दूसरे के हिस्से मे कमी होने से राष्ट्रीय लाभाश का कुछ बडा हिस्सा मिल सकता है।

आधुनिक समार मे गैर सरकारी मालिक तथा सयुक्त पूंजी कम्पनियो के कर्मचारी, जिनमे से अनेको के पास अपनी थोडी ही पूँजी रहती है, महान औद्योगिक चक्र के केन्द्र की भाति कार्य करते है। पूंजी के मालिको एव कर्मचारियो के हित उनकी ओर तथा वही से विकीर्ण होते है और वे उन्हे दृढतापूर्वक एक सूत्र में बाँधे रहते हैं। अत वे रोजगार एव मजदूरी के उतार चढाव से सम्बन्धित विवेचनो मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है जिन्हे इस ग्रन्थ के दूसरे खण्ड के लिए स्थगित कर दिया गया है। इनका अगले आठ अध्यायो मे क्रमश श्रम, पूंजी तथा भूमि के विशेष प्रसग मे माँग एवं सम्भरण के प्रभाव के गौण विषयो के विवेचन मे महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि इनका स्थान प्रमुख नही माना जा सकता।

परिशिष्ट ञ (J) तथा ट (K)।

परिशिष्ट ञ मे 'मजदूरी निधि सिद्धान्त' पर कुछ विचार किया जायेगा। इस विचारधारणा का कारण बतलाया जायगा कि इसमे श्रम की माँग के पहलू पर क्यो अत्यधिक जोर दिया गया है और इसके सम्भरण को नियन्त्रित करने वाले कारणो की क्यो अवहेलना की गयी है। इससे पूंजी की सहायता से श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओ के प्रभाव तथा मजदूरी के प्रवाह के वास्तविक सहसम्बन्ध की अपेक्षा पूंजी के भण्डार तथा मजदूरी के प्रवाह के बीच सहसम्बन्ध प्रदर्शित होता है। किन्तु इस मत का कारण भी दिया जायगा कि यदि अर्थशास्त्र सस्थापको से—यद्यपि उनके सभी अनुयायी ऐसा नही करते—जिरह की गयी होती तो वे स्वत ही इस सिद्धान्त के भ्रम मे डालने वाले सुझावो को स्पष्ट कर देते, और इस प्रकार जहाँ तक सम्भव हो सकता था वहाँ तक इनका आधुनिक सिद्धान्तो से निकट सम्बन्ध स्थापित कर देते। परिशिष्ट ट मे अनेक किस्म के उत्पादक तथा उपभोक्ता अधिशेषो के विषय मे कुछ अध्ययन किया जायगा, और इससे कुछ ऐसे प्रश्न उठेगें जिनका भावात्मक महत्व अधिक किन्तु व्यावहारिक महत्व थोडा ही हो।

हमारी समस्या इतनी कठिन है कि इसे तकनीकी भाषा के बिना एक ही दृष्टिकोण में केन्द्रित नहीं किया जा सकता।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, उत्पादन के असख्य उपादानो की (कुल तथा सीमान्त) कार्यक्षमताएँ उनकी कुल निवल उत्पाद या राष्ट्रीय लाभाश मे प्रत्यक्ष एव परोक्ष योगदान तथा उन्हे लाभाश के अनेक प्रकार से प्राप्त होने वाले भाग मे असख्य पारस्परिक प्रभावो से इतने जटिलरूप से सम्बन्धित होते हैं कि इस सब को एक ही कथन मे समाविष्ट करना असम्भव है। किन्तु गणित की सुगठित, ठोस तथा यथार्थ भाषा की सहायता से हम पर्याप्तरूप से स्वीकृत सामान्य दृष्टिकोण अपना सकते है, यद्यपि इसमे मोटे शब्दो मे न्यूनाधिक सख्यात्मक अन्तरो को गुणात्मक अन्तरो के रूप मे व्यक्त करने के अतिरिक्त किसी प्रकार के गुणात्मक विभेद के कारण पाये जाने वाले अन्तर को ध्यान मे नही रखा जा सकता।[1]

---

1 गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 14–21 में इस प्रकार का सर्वेक्षण किया गया है। इनमें से अन्तिम टिप्पणी को समझना सरल है और इसमें समस्याओं की जटिलता प्रदर्शित की गयी है। शेष टिप्पणियों में टिप्पणी 14 जिसके कुछ भाग के सार का भाग 5, अध्याय 4 में अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है, से उत्पन्न होने वाली बातों को विस्तृत रूप में दिया गया है।

अध्याय 3

श्रम का उपार्जन

§1. पिछले भाग मे माँग तथा सम्भरण के साम्य के सामान्य सिद्धान्त का तथा इस भाग के पहले दो अध्यायों मे वितरण एवं विनिमय की केन्द्रीय समस्या की मुख्य रूपरेखाओं का विवेचन करते समय हमने, जहाँ तक सम्भव हो सकता था, उत्पादन के उपादानों के विशेष गुण एवं वृत्तान्तो को छोड दिया था। हमने इस बात की अधिक विस्तार मे जाँच नही की कि उत्पादन के उपकरण तथा उनकी सहायता मे उत्पन्न चीजों के मूल्य के सम्बन्धो को व्यक्त करने वाले सामान्य सिद्धान्त मालिको, कर्मचारियो या वृत्तिक वर्गों द्वारा प्राकृतिक योग्यताओ, या बहुत पहले से अर्जित ज्ञान एवं कुशलता से प्राप्त आय पर कहाँ तक लागू हो सकते हे। हमने लाभ के विश्लेपण से सम्बन्धित कठिनाइयों से दूर रहने की कोशिश की हे, और इस शब्द के आम प्रचलन मे लगाये जाने वाले नाना प्रकार के अर्थो पर तथा यहाँ तक कि अधिक प्रारम्भिक शब्द ब्याज पर भी कोई ध्यान नही दिया। हमने भूमि के लिए की जाने वाली माँग पर विभिन्न किस्म के पट्टो के प्रभाव को भी ध्यान मे नही रखा। इन तथा कुछ अन्य कमियो को दूर करने के लिए क्रमश श्रम, पूंजी एवं व्यावसायिक शक्ति तथा भूमि के प्रसग मे माँग एवं सम्भरण पर लिखे गये आगामी अध्यायो मे अधिक विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय मे उपार्जन का अकन करने एव अनुमान लगाने की जिन कठिनाइयो पर विचार किया जा रहा है वे मुख्यतया गणित या पुस्तक पालन से सम्बन्धित है: किन्तु इन पर असावधानी से विचार करने के कारण बहुत बडी त्रुटि हो गयी है।

इस तथा इसके बाद आने वाले सात अध्यायों का विषय-क्षेत्र।

§2 जब किसी भौतिक वस्तु के सम्बन्ध मे माँग तथा सम्भरण के प्रभाव को देखा जाता है तो निरन्तर हमे इस कठिनाई का सामना करना पडता हे कि एक ही बाजार मे एक ही नाम से बेची जाने वाली दो चीजे वास्तव मे खरीददारो के लिए एक ही किस्म की तथा एक ही मूल्य की नही होती। या यदि चीजे सचमुच ही एक सी हो तो वे तीव्रतम प्रतिस्पर्द्धा के साथ ऐसी कीमतो पर बिकेंगी जो नामान के लिए भिन्न होगी, क्योकि बिक्री की दशाएँ एकसी नही होती दृष्टान्त के लिए जहाँ एक ओर माल देने के खर्चे या जोखिम का कुछ भाग विक्रेता द्वारा वहन किया जाता है, इसे दूसरी ओर क्रेताओं पर डाल दिया जाता है। किन्तु भौतिक वस्तुओ की अपेक्षा श्रम के विषय मे इस प्रकार की कठिनाइयाँ बहुत अधिक हैं: श्रम के लिए दी जाने वाली वास्तविक कीमत इसके लिए दी जाने वाली नाममात्र कीमत से बहुधा बहुत भिन्न होती है और इसे देने के ढंगो का सरलतापूर्वक पता नही लगाया जा सकता।

प्रतिस्पर्द्धा से समान रोजगारों में साप्ताहिक मजदूरी बराबर नहीं होती अपितु यह श्रमिकों की कार्यकुशलता के अनुपात में होती है।

'कार्यकुशलता' शब्द मे एक प्रायमिक कठिनाई है। जब कहा जाता है कि दीर्घकाल में विभिन्न काम धन्धो मे लगभग समान कार्यकुशलता वाले लोग समान आय अर्जित करते है (या बराबर 'निवल लाभ' प्राप्त करते है, भाग 2, अध्याय 4,

अनुभाग 2 देखिए) तो 'कार्यकुशलता' शब्द का व्यापक अर्थ लगाना चाहिए। इससे अभिप्राय सामान्य औद्योगिक कार्यकुशलता से होना चाहिए, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है (भाग 4, अध्याय 5, अनुभाग 1)। किन्तु जब एक ही काम धन्धे मे लगे विभिन्न लोगो की अलग-अलग अर्जन शक्ति का प्रसग उठता है तो कार्यकुशलता का उस काम धन्धे के लिए आवश्यक विशेष चीजो के प्रसग मे अनुमान लगाना चाहिए।

प्राय यह कहा जाता है कि प्रतिस्पर्द्धा की प्रवृत्ति के कारण एक ही व्यापार मे या समान कठिनाई वाले व्यापारो मे लगे हुए लोगो का उपार्जन बराबर होता है, किन्तु इस कथन की सतर्कतापूर्वक व्याख्या करनी चाहिए। क्योकि प्रतिस्पर्द्धा के कारण असमान कार्यकुशलता वाले दो व्यक्तियो का उपार्जन किसी निश्चित अवधि मे, जैसे कि एक दिन या एक साल मे, समान होने की अपेक्षा असमान होता है। इसी प्रकार इससे दो क्षेत्रो मे, जहा कार्यक्षमता का औसत स्तर असमान हो, औसत साप्ताहिक मजदूरी समान होने की अपेक्षा असमान होती है। यदि इगलैड के दक्षिणी भाग की अपेक्षा उत्तरी भाग मे श्रमिक वर्गो की औसत शक्ति एव कुशलता अधिक हो तो इसका यह अभिप्राय निकलता है कि जितनी ही अधिक 'प्रतिस्पर्द्धा' से चीजे अपना स्तर प्राप्त करती है दक्षिण की अपेक्षा उत्तर मे औसत साप्ताहिक मजदूरी निश्चितरूप से उतनी ही अधिक होगी।[1]

क्लिफ लैसली तथा कुछ अन्य लेखको ने निश्चित रूप से मजदूरी की स्थानीय विभिन्नताओ पर जोर देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि श्रमिक वर्गो मे बहुत कम गतिशीलता होती है, और उनमे रोजगार के लिए होने वाली प्रतिस्पर्द्धा का कोई प्रभाव नही पडता। किन्तु उनके द्वारा उद्धृत किये गये अधिकाश तथ्य किसी दिन या सप्ताह की मजदूरी से ही सम्बन्धित थे वे अधूरे तथ्य हैं, और जब इनके शेष आधे भाग को भी ध्यान मे रखा जाय तो उनसे साधारणतया उस बात के विपरीत अनुमिति की पुष्टि होती है जिसके लिए उद्धृत किया गया था। क्योकि यह देखा गया है कि साप्ताहिक मजदूरी एव कार्यकुशलता की स्थानीय विभिन्नताएँ प्राय एक दूसरे से सम्बन्धित होती है और यदि इन तथ्या का इस प्रश्न से कुछ भी सम्बन्ध है तो वह यह है कि इन तथ्या से प्रतिस्पर्द्धा की प्रभावोत्पादकता सिद्ध होती है। कुछ भी हो

1 लगभग पचास वर्ष पूर्व इंग्लैंड के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों के किसानों ने पत्रव्यवहार द्वारा यह बात तय की कि पेड़ों की जड़ों को गाड़ी में रखना शारीरिक कार्यक्षमता का सर्वोत्तम माप था: और सतर्कतापूर्वक तुलना करने से यह बात प्रदर्शित हो गयी कि दोनो क्षेत्रों में एक दिन में साधारणतया भार लादने के साथ मजदूरी का यही अनुमान था। अब दक्षिण में मजदूरी एवं कार्यकुशलता के स्तर पहले की अपेक्षा उत्तरी भाग के अधिक बराबर हैं। किन्तु व्यापार संघ की मानक मजदूरी साधारणतया दक्षिण की अपेक्षा अधिक है। और ऊँची मजदूरी प्राप्त करने के लिए जब लोग उत्तर की ओर जाते हैं और जब यह देखते हैं कि अपेक्षित कार्य नहीं कर सकते तो वापस चले आते हैं।

हम अभी अभी यह देखेंगे कि ऐसे तथ्यों की पूर्ण व्याख्या करना बहुत कठिन तथा जटिल कार्य है।

समय के अनुसार उपार्जन।

एक व्यक्ति किसी निश्चित समय में, जैसे कि एक दिन, एक सप्ताह या एक साल में, जो उपार्जन करता है या मजदूरी प्राप्त करता है उसे उसका समयानुसार उपार्जन या अमानी कहा जा सकता है: और तब हम कह सकते हैं कि क्लिफ लेसली द्वारा दिये गये असमान अमानी मजदूरी के दृष्टान्त से इस धारणा का खण्डन होने की अपेक्षा उसकी पुष्टि होती है कि प्रतिस्पर्द्धा से समान कठिनाई वाले काम धन्धों में तथा सीमावर्ती स्थानों में श्रमिकों की कार्यकुशलता के अनुसार उनका उपार्जन निश्चित होता है।

उजरती काम (piece work) के लिए भुगतान।

किन्तु 'श्रमिकों की कार्यकुशलता' वाक्यांश की अस्पष्टता अभी भी पूर्णरूप से दूर नहीं हुई है। जब किसी भी किस्म के कार्य का भुगतान वहाँ किये जाने वाले काम की मात्रा तथा उसकी किस्म के अनुपात में निश्चित किया जाता है तो यह कहा जाता है कि उजरती काम की मजदूरी समान दर पर दी जा रही है, और यदि दो व्यक्ति समान दशाओं में तथा समानरूप से अच्छे उपकरणों द्वारा कार्य करते हैं तो वे अपनी अपनी कार्यकुशलता के अनुपात में उजरती कार्य के लिए मजदूरी प्राप्त करते हैं जिसका अंकन अनेक किस्म के कार्य की समान कीमत सूचियों द्वारा किया जाता है। यदि उपकरण समानरूप से अच्छे न हों तो उजरती कार्य से प्राप्त मजदूरी की दर श्रमिकों की कार्यकुशलता के अनुपात में न होगी। दृष्टान्त के लिए यदि पुराने ढंग की मशीन से काम करने वाली सूती मिलों में उजरती काम की मजदूरी की दर उतनी ही हो जितनी कि उन मिलों में दी जाती है जिनमें नवीनतम सुधारों के अनुसार कार्य किया जाता है तो मजदूरी की दर में दिखायी देने वाली समानता वास्तव में असमान होगी। प्रतिस्पर्द्धा जितनी ही प्रभावोत्पादक हो, और आर्थिक स्वतन्त्रता एवं उद्यम का जितनी ही अधिक पूर्णता से विकास किया गया हो, पुराने ढंग की बनी हुई मशीनों से काम करने वाली मिलों में अन्य की अपेक्षा ये दरें उतनी ही निश्चितरूप से अधिक ऊँची होंगी।

कार्यकुशलता (उपार्जन)

अतः इस कथन को सही अर्थ में व्यक्त करने के लिए कि आर्थिक स्वतन्त्रता एवं उद्यम से समान कठिनाई तथा समीप स्थित पेशों में मजदूरी बराबर होने लगती है, हमें एक नये शब्द के प्रयोग करने की आवश्यकता है। हमें कार्यकुशलता मजदूरी, या अधिक व्यापक अर्थ में **कार्यकुशलता** उपार्जन, अर्थात् ऐसे उपार्जन जिन्हें न तो अर्जित करने मे लगने वाले समय के प्रसंग मे समयानुसार उपार्जन की भाँति और न किये गये काम की मात्रा के प्रसंग मे उजरती काम के उपार्जन की भाँति ही मापा जाता है, अपितु श्रमिक से अपेक्षित योग्यता एवं कार्यकुशलता के प्रयोग के प्रसंग में मापा जाता है।

समानता की ओर प्रवृत्ति।

अतः आर्थिक स्वतंत्रता एवं उद्यम (या अधिक प्रचलित वाक्यांश का प्रयोग करते हुए प्रतिस्पर्द्धा) की जिस प्रवृत्ति से प्रत्येक का उपार्जन अपने अपने स्तर पर पहुँच जायेगा, वह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे एक ही क्षेत्र मे कार्यकुशलता उपार्जन बराबर हो जायेगा। श्रम की गतिशीलता जितनी ही अधिक होगी या जितनी ही कम विशेषीकृत होगी या माता-पिता अपने बच्चों के लिए अधिकतम लाभप्रद पेशों की जितनी ही अधिक उत्सुकता से खोज करेंगे, या वे अपने को आर्थिक दशाओं में होने वाले परि-

वर्तनों के जितनी तीव्रता से अनुकूल बना सकेंगे या अन्त में ये परिवर्तन जितने ही अधिक मन्द तथा कम तीव्र होंगे, यह प्रवृत्ति उतनी ही दृढ़तर होगी।

कम मजदूरी पाने वाला श्रमिक यदि खर्चीली मशीनों से काम करे तो साधारणतया अधिक महँगा पड़ेगा।

इस प्रवृत्ति के इस प्रकार के कथन में अभी भी कुछ संशोधन की आवश्यकता है। क्योंकि अब तक हमने यह कल्पना की थी कि जब तक किसी कार्य के लिए दी जाने वाली कुल मजदूरी वही रहती है तब तक इस विषय का मालिक के लिए कोई विशेष महत्व नहीं रहता कि उजरती काम में कम या अधिक लोग लगाये हैं। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। वे कर्मचारी जो अपने काम के लिए निश्चित दर पर भुगतान किये जाने पर हफ्ते में बहुत अधिक कमा लेते हैं, मालिकों को सबसे सस्ते बैठते हैं, और यदि वे अपने आप पर अत्यधिक भार न डाल दें और अल्प आयु में ही अपने को बुरी तरह शक्तिहीन न बना लें तो वे समाज की दृष्टि से भी सस्ते पड़ते हैं। क्योंकि वे उतनी ही अचल पूंजी का प्रयोग करते हैं जितना मन्दगति से काम करने वाले उनके अन्य साथी करते हैं और चूंकि वे अधिक काम निकालते हैं, अतः उनके काम के हर अंश पर अचल पूंजी का प्रभार कम पड़ेगा। दोनों दशाओं में मूल लागत बराबर रहती हैं, किन्तु अधिक कार्यकुशल तथा अधिक कमाने वाले मजदूरी प्राप्त करने वाले लोगों द्वारा किये जाने वाले काम की कुल लागत उन लोगों की अपेक्षा कम होती है जिन्हें उजरती काम के लिए समान दर पर भुगतान होने पर कम कमाई मिलती हैं।[1]

यह विषय खुले स्थानों में किये जाने वाले काम में जहाँ स्थान का अभाव नहीं है, तथा कीमती मशीनों का थोड़ा ही उपयोग किया जाता है, कदाचित् ही बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि तब निरीक्षण कार्य के अतिरिक्त मालिक के लिए जिसके यहाँ काम करने वालों का किसी खास प्रकार के कार्य के लिए मजदूरी बिल 100 पौं० है इस बात से बहुत कम अन्तर पड़ता है कि वह धनराशि बीस कार्यकुशल लोगों में या बीस अकुशल लोगों में बाँटी जाती है। किन्तु जब कीमती मशीनों का जिन्हें श्रमिकों की संख्या के अनुपात में रखना पड़ता है प्रयोग किया जाय तो मालिक बहुधा यह अनुभव करेगा कि बीस आदमियों से 50 पौं० के मजदूरी बिल पर उतना ही ज्यादा काम करा सकने पर जितना कि वह पहले तीस लोगों से 40 पौं० के मजदूरी बिल पर कराता था, उसकी कुल लागत कम हो जायेगी। इस प्रकार के सभी कामों में अमेरिका संसार का नेतृत्व कर रहा है, और वहाँ यह कहावत प्रचलित है कि वही सर्वोत्तम व्यवसायी है जो अधिकतम मजदूरी देने का आयोजन कर सकता है।

---

1 इस तर्क में उन दशाओं में संशोधन करना पड़ेगा जब व्यवसाय में दो पारियों में मजदूर लगाने पड़ते हैं। मालिक के लिए बहुधा यह लाभप्रद रहेगा कि वह दोनों पारियों में से प्रत्येक में आठ घण्टे प्रति दिन के हिसाब से काम करने के लिए उतना ही भुगतान करे जितना कि वह अब एक ही पारी में प्रति दिन दस घण्टे के हिसाब से कार्य करने वालों को भुगतान करता है। इसमें प्रत्येक मजदूर का उत्पादन तो कम होगा किन्तु प्रत्येक मशीन से बाद की व्यवस्था की अपेक्षा पहली व्यवस्था में अधिक उत्पादन होगा। इस विषय पर हम बाद में विचार करेंगे।

अतः संशोधित नियम यह होगा कि आर्थिक स्वतंत्रता एवं उद्यम की प्रवृत्ति से साधारणतया एक ही क्षेत्र मे कार्यकुशलता उपार्जन बराबर ही रहता है: किन्तु जहाँ अधिक कीमती अचल पूंजी का प्रयोग किया जाता है, मालिक के लिए यही लाभदायक होगा कि वह अधिक कार्यकुशल मजदूरों की अमानी में उनकी कार्यकुशलता के अनुपात से अधिक वृद्धि करे। निश्चय ही विशेष प्रथाओं एवं संस्थाओं से इस प्रवृत्ति का विरोध किया जा सकता है, और कुछ दशाओं मे व्यापारिक संघों के विनियमों से भी इसका विरोध किया जायेगा।[1]

§3. इस प्रकार कार्य के विषय में जो कि उपार्जन दिये जाने का कारण है, लगाये गये अनुमानों पर बहुत कुछ विचार किया जा चुका है: किन्तु अब हमें इन तथ्यों पर बड़ी सावधानी से विचार करना है कि किसी पेशे के वास्तविक उपार्जनों का अनुमान लगाते समय द्रव्यिक प्राप्तियो के साथ साथ हमे कार्य के भार तथा दबाव से होने वाली प्रत्यक्ष हानियों के अतिरिक्त अन्य अनेक आकस्मिक हानियो की भी गणना करनी चाहिए।

असल मजदूरी

जैसा कि एडम स्मिथ ने कहा है श्रम की असल मजदूरी इसके लिए दी जाने वाली जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओ एव सुविधाओ की मात्रा पर और इसकी नकद मजदूरी इसके लिए दी जाने वाली द्रव्य की मात्रा पर निर्भर रहती है। श्रमिक अपने

---

1 रिकार्डो ने श्रमिकों को मजदूरी के रूप में दी जाने वाली वस्तुओं की मात्रा में परिवर्तन तथा मालिक के लिए श्रमिकों के लाभप्रद होने में परिवर्तन के बीच पाये जाने वाले अन्तर के महत्व की अवहेलना नहीं की। उन्होंने यह अनुभव किया कि मालिक का वास्तविक हित श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी की मात्रा में निहित न होकर इसमें निहित है कि उनकी मजदूरी का उनके द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के मूल्य से क्या आनुपातिक सम्बन्ध है: और उन्होंने मजदूरी की दर को इस अनुपात द्वारा मापने का निश्चय किया और यह कहा कि इस अनुपात के बढ़ने पर मजदूरी बढ़ेगी, तथा इसके घटने पर मजदूरी भी घटेगी। इस बात पर खेद होता है कि उन्होंने इसके लिए किसी नये शब्द का आविष्कार नहीं किया, क्योंकि उन्होंने सुपरिचित शब्द का जो काल्पनिक ढंग से प्रयोग किया उसे अन्य लोगों ने कदाचित् ही समझा और कुछ दशाओं में तो स्वयं वह भी इसे भूल गये। (सीनियर की Political Economy, पृष्ठ 142 से तुलना कीजिए)। श्रमिक की उत्पादकता में होने वाले जो परिवर्तन विशेष रूप से उनकी दृष्टि में थे वे एक ओर तो उत्पादन की कलाओं में सुधारों के कारण तथा दूसरी ओर जनसंख्या की वृद्धि से सीमित भूमि पर अधिक फसल उगाये जाने के कारण क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से उत्पन्न हुए थे। श्रमिक की दशा में सुधार के फलस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से उसकी उत्पादकता में होने वाली वृद्धि पर यदि उन्होंने ध्यानपूर्वक विचार किया होता तो आर्थिक सिद्धान्त की स्थिति में, तथा देश के वास्तविक हित में वर्तमान दशा की अपेक्षा कहीं अधिक प्रगति हो गयी होती। इस प्रकार उन्होंने मजदूरी पर जो विचार व्यक्त किये वे माल्थस की Political Economy की अपेक्षा कम शिक्षात्मक प्रतीत होते हैं।

तथा नकद मजदूरी।

श्रम की असल न कि नकद, कीमत के अनुपात में धनी या निर्धन होता है अथवा उचित या अनुचितरूप से पुरस्कृत किया जाता है।[1] किन्तु इसके लिए दिये जाने वाले शब्दों का तात्पर्य केवल उन आवश्यक वस्तुओं एवं सुविधाओं से ही नहीं है जो श्रम या उसके उत्पाद के खरीददार द्वारा प्रत्यक्षरूप से प्रदान की जाती है, क्योंकि उस पेशे में होने वाले उन लाभों को जिनके लिए उसे कोई विशेष खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, ध्यान में रखना चाहिए।

द्रव्य की क्रय-शक्ति में विशेषकर विचाराधीन ग्रेड के श्रमिकों के उपभोग के प्रसंग में परिवर्तनों के लिए अवश्य ही गुंजाइश रखनी चाहिए।

किसी पेशे में किसी स्थान या समय पर असल मजदूरी का पता लगाने के लिए सबसे पहला कदम नकद मजदूरी के रूप में दी जाने वाली द्रव्य की क्रय-शक्ति में होने वाले परिवर्तनों के लिए गुंजाइश रखना होगा। इस विषय पर तब तक विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि हम द्रव्य के सिद्धान्त पर विचार न कर लें। किन्तु सरसरी दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इस छूट को रखना कोई सरल अंकगणितीय गणना करना नहीं है, चाहे हमारे पास सभी वस्तुओं की कीमतों के इतिहास के पूर्णरूप से सही आँकड़े ही क्यों न हों। क्योंकि सुदूर स्थानों अथवा सुदूरपूर्व समयों की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि लोगों की आवश्यकताएँ अलग अलग रही हैं, तथा उन आवश्यकताओं की संतुष्टि के साधन भी अलग अलग रहे हैं: और अपने दृष्टिकोण को एक ही समय या स्थान तक सीमित रखने पर भी हम विभिन्न वर्गों के लोगों को अपनी आय को बहुत ही भिन्नरूप से खर्च करते हुए देखते हैं। दृष्टान्त के लिए समाज के निम्न श्रेणियो के लोगो के लिए मखमल, संगीत, नाटकीय मनोरंजनो तथा वैज्ञानिक पुस्तकों की कीमतें अधिक महत्वपूर्ण नहीं होतीं, किन्तु रोटी या जूते के चमड़े की कीमत मे कमी होने से समाज के उच्चतर स्तरों की अपेक्षा वे कहीं अधिक प्रभावित होते हैं। इस प्रकार के अंतरों को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए, और साधारणतया इन चीजों के लिए स्थूलरूप से कुछ गुंजाइश रखनी सम्भव है।[2]

§4. हम पहले ही देख चुके हैं कि किसी व्यक्ति की कुल आय का उसकी सकल आय मे से उत्पादन के खर्च घटाकर पता लगाया जा सकता है, और इस सकल आय मे कितनी ही ऐसी चीजें भी शामिल होती हैं जो द्रव्यिक भुगतान के रूप मे नहीं होतीं और जिनकी उपेक्षा होने का डर लगा रहता है।[3]

---

1 Wealth of Nations, भाग 1, अध्याय 5

2 'सन् 1843 ई० को निर्धन कानून आयुक्तों की कृषि में स्त्रियों एवं बच्चों के रोजगार की रिपोर्ट' में पृष्ठ 297 पर नोरथम्बरलैंड में वार्षिक मजदूरी के कुछ रोचक उदाहरण मिलते हैं जिनमें द्रव्य के रूप में बहुत भुगतान किया गया है। एक उदाहरण इस प्रकार है:—गेहूँ 10 बुशल, जई 30 बुशल, जौ 10 बुशल, राई 10 बुशल, मटर 10 बुशल, एक साल के लिए एक गाय के गुजारे लायक खाना, आलू की खेती को 800 गज भूमि, झोपड़ी तथा बगीचा, कोयले रखने का स्थान, 3 पौं० 10 शिलिंग नकद तथा मुर्गियों के बदले में 2 बुशल जौ।

3 भाग 2, अध्याय 4, अनुभाग 7 देखिए।

अब सबसे पहले खर्चों पर विचार करें। हम यहाँ पर व्यापार की तैयारी में सामान्य तथा विशेष शिक्षा के खर्चों को शामिल नहीं करते; और न हम काम करने में किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं शक्ति में होने वाली क्षति को ही शामिल करते हैं। इन चीजों के लिए अन्य प्रकार से सर्वोत्तम रूप से गुंजाइश रखी जा सकती है। किन्तु हमें सभी व्यापारिक खर्चों को अवश्य घटा लेना चाहिए, चाहे ये खर्चे व्यावसायिक लोगों या दस्तकारों द्वारा ही क्यों न किये जाते हों। इस प्रकार बैरिस्टर की सकल आय में हमें उसके कार्यालय का किराया तथा उसके लिपिक का वेतन घटा देना चाहिए। बढ़ई की सकल आय में से औजारों पर किये गये खर्चे को घटा देना चाहिए। जब किसी क्षेत्र में पत्थर की खानों में काम करने वाले लोगों के उपार्जन का अनुमान लगाया जाय तो हमें यह पता लगाना चाहिए कि स्थानीय प्रथा के अनुसार औजारों तथा विस्फोटक पाउडर के खर्चों को श्रमिकों को या उनके मालिकों को करना पड़ता है। इस प्रकार की दशाएँ तुलनात्मक रूप से सरल होती है, किन्तु यह तय करना अधिक कठिन है कि एक चिकित्सा कर्मचारी द्वारा मकान, सवारी तथा सामाजिक मनोरंजन के लिए किये गये खर्चों का कितना भाग व्यापारिक खर्चों में शामिल किया जाए।[1]

व्यापारिक खर्चों के लिए भी गुंजाइश रखनी चाहिए।

§5. पुनः जब नौकरों या दुकान-सहायकों को अपनी लागत पर ऐसे खर्चीले कपड़े पहनने पड़ते है जिन्हे वे मनपसन्द कपड़े पहनने की छूट होने पर नही खरीदते तो उनकी मजदूरी का मूल्य उनके लिए इस अनिवार्य खर्चे के कारण कुछ कम हो जाता है। और जब मालिक अपने नौकरों को स्वयं खर्चीली पोशाक देकर निवासकक्ष तथा भोजन देता है तो इनसे कर्मचारियों का सामान्यतया उतना हित नहीं होता जितना कि मालिकों की उन पर लागत लगती है। अतः कुछ संख्या शास्त्रियों की तरह घरेलू नौकरों की असल मजदूरी का पता लगाने के लिए उन्हें मिलने वाली नकद मजदूरी के अतिरिक्त उन्हें हर चीज प्रदान करने में उनके मालिक की लगी हुई लागत के बराबर धनराशि शामिल करना भूल है।

इसके विपरीत जब कोई किसान अपने लोगों के लिए ऐसे समय पर कोयला मुफ्त ढोयें जब उसके घोड़ों के लिए बहुत कम ढोने का काम हो, तो उन लोगों के उपार्जन में होने वाली वास्तविक वृद्धि किसान की इन्हें ढोने में लगने वाली लागत से कहीं अधिक होगी। यही बात अनेक ऊपरी आमदनियों तथा अन्य भत्तों पर भी लागू होती है। दृष्टान्त के लिए जब मालिक अपने कर्मचारियों को उनके द्वारा बिना कुछ भुगतान किये ऐसी चीजें लेने की छूट देता है जो उनके लिए तो लाभदायक होती हैं किन्तु मालिक के लिए विपणन में लगने वाली बहुत बड़ी लागत को दृष्टि में रखते हुए बिलकुल ही

जहाँ मजदूरी आंशिक रूप से वस्तुओं के रूप में दी जाती है वहाँ प्राप्तकर्ताओं के लिए इन वस्तुओं के मूल्य के अनुसार न कि इन वस्तुओं के देने वालों की लागत

---

1 इस प्रकार के प्रश्न उन प्रश्नों से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित है जो भाग 2 में आय तथा पूंजी की परिभाषाओं का विवेचन करते समय उठे थे, तथा जहाँ आय के उन तत्वों की अपेक्षा करने के विरुद्ध सतर्क रहने की सलाह दी गयी है जो द्रव्य के रूप में नहीं होते। अनेक वर्गों का और यहाँ तक कि व्यावसायिक एवं मजदूरी प्राप्त करने वाले वर्गों का उपार्जन भी पर्याप्तरूप से इस बात पर निर्भर रहता है कि उनके पास कुछ भौतिक पूंजी है या नहीं।

के अनुसार गुंजाइश रखनी चाहिए।

मूल्यहीन होती हैं, या पुनः जब मालिक अपने उपयोग के लिए उन वस्तुओं को थोक कीमत पर खरीदने देता है जिनके उत्पादन में उन्होंने सहायता की है तो यही बात लागू होगी। जब खरीदने की यह आज्ञा खरीदने के बन्धन में परिणत हो जाती है तो अनेक बुरे परिणाम निकल सकते हैं। प्राचीन समय में जो किसान अपने यहां काम करने वाले मजदूरों को अच्छे अनाज की थोक कीमत पर खराब अनाज लेने के लिए बाध्य करता था वह वास्तव में उन्हें जितनी मजदूरी देता हुआ दिखायी देता था उससे कम ही मजदूरी देता था और जब तक किसी प्राचीन देश मे किसी भी व्यवसाय में इस प्रकार की वस्तुओं के रूप मे पारिश्रमिक देने की प्रणाली (truck-system) विद्यमान हो तब तक हम यह भलीभाँति कल्पना कर सकते हैं कि मजदूरी की वास्तविक दर सामान्य दर से कम होगी।[1]

---

1 जिन मालिकों का मुख्य व्यवसाय अच्छी अवस्था में हो वे साधारणतया इस प्रकार की दुकानों का प्रबन्ध करने के लिए तब तक अनिच्छुक रहते हैं जब तक ऐसा करने का कोई खास कारण न हो। परिणामस्वरूप प्राचीन देशों में जिन लोगों ने वस्तुओं के रूप में पारिश्रमिक देने की प्रणाली अपनायी है उन्होंने बहुधा सामान्यरूप से दी गयी मजदूरी के कुछ भाग को अवैधानिक तरीकों से वापिस लेने की दृष्टि से उसे अपनाया था। उन्होंने अपने घरों पर काम करने वाले लोगों को अत्यधिक ऊँचे किराये पर मशीनें तथा औजार किराये पर लेने के लिए बाध्य किया। उन्होंने अपने सभी कामदारों को कम वजन तथा ऊँची कीमतों पर अपमिश्रित चीजें खरीदने को बाध्य किया और कुछ दशाओं में तो अपनी मजदूरी के बहुत बड़े भाग को ऐसी चीजों पर खर्च करने के लिए बाध्य किया जिनमें उच्चतम दर पर लाभ कमाना सबसे सरल था। अल्कोहल भरी मदिरा विशेषरूप से उल्लेखनीय है। दृष्टान्त के लिए मिस्टर लेक्की ऐसे मालिकों की दिलचस्प बात बतलाते हैं जो सिनेमा के टिकटों को सस्ते खरीद कर अपने कामदारों को पूरे दाम पर खरीदने के लिए बाध्य करने के लालच को न रोक सके (History of the Eighteenth Century, पृष्ठ 158) जब दुकानें मालिक की अपेक्षा फोरमैन या अन्य व्यक्तियों द्वारा चलायी जाएं जो उसकी सहमति से काम करते हों, तथा मालिक स्पष्ट शब्दों में कहने की अपेक्षा यह समझने के लिए छोड़ दे कि जो लोग दुकान से अधिकांशरूप में चीजें न खरीदेंगे उन्हें शाबाशी मिलनी मुश्किल हो जायेगी तो बुराई अपने हद पर पहुँच जायेगी। मालिक को भी उसके कामदारों को नुकसान पहुंचाने वाली किसी भी चीज से थोड़ी बहुत क्षति पहुंचती है किन्तु किसी ढंग-फोरमैन द्वारा की जाने वाली लूट को स्वयं उसके अपने अन्तिम हित को ध्यान में रखते हुए बहुत कम नियंत्रित किया जा सकता है।

सब कुछ विचारते हुए इस प्रकार की बुराइयां अब अपेक्षाकृत कम हो गयी हैं। यह ध्यान रहे कि एक नये देश में बड़े व्यवसाय बहुधा उन सुदूर स्थानों में पनपते हैं जहां साधारणरूप से अच्छे फुटकर स्टोर या दुकानें भी न हों। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि मालिक अपने कामदारों को उनकी आवश्यकता की हर एक चीज प्रदान करे, चाहे उसे उनकी मजदूरी के कुछ भाग को भोजन, वस्त्र, इत्यादि के भत्तो के रूप में देना पड़े या उनके लिए स्टोर खोलना पड़े।

§6. इसके बाद हमें किसी पेशे में उपार्जन की वास्तविक दर पर सफलता की अनिश्चितता तथा रोजगार की अस्थिरता के कारण पड़ने वाले प्रभावों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

प्रथम अनुमान के रूप में औसत निकाल कर सफलता की अनिश्चितता के लिए छूट रखनी चाहिए।

स्पष्टतः हमें किसी पेशे में होने वाले उपार्जन को इसमें काम करने वाले सफल एवं असफल लोगों के उपार्जन के औसत के बराबर मानना चाहिए, किन्तु वास्तविक औसत निकालने में सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि यदि इसमें सफल हुए व्यक्तियों का औसत उपार्जन 2000 पौं० हो और इसमें असफल रहे हुए व्यक्तियों का औसत उपार्जन प्रति वर्ष 400 पौं० हो तो पहले वर्ग में उतने हो लोग होने पर जितने कि दूसरे में हों उनका औसत प्रति वर्ष 1200 पौं० होगा, किन्तु यदि सम्भवतया बैरिस्टरों की भाँति असफल लोगों की संख्या सफल व्यक्तियों के दस गुने के बराबर हो तो वास्तविक औसत केवल 550 पौं० होगा। उनमें से अनेक व्यक्ति जो पूर्णरूप से असफल रहे हों इस पेशे को सम्भवतया बिलकुल ही छोड़ देंगे, और अतः इनमें उनकी गणना भी न हो सकी होगी।

किन्तु अनिश्चितता एवं चिन्ता की बुराइयों के लिए भी अलग से छूट रखनी चाहिए।

पुनः यद्यपि इस औसत को लेने पर जोखिम के विरुद्ध बीमा करने के लिए अलग से गुंजाइश रखने की आवश्यकता दूर हो जाती किन्तु साधारणतया अनिश्चितता की बुराइयों को भी ध्यान में रखने की जरूरत फिर भी पड़ती ही है क्योंकि बहुत से ऐसे शान्त, गम्भीर स्वभाव के लोग होते हैं जो अपने सम्मुख आने वाली चीजों के विषय में जानना चाहते हैं, और जो किसी ऐसी नियुक्ति की अपेक्षा जिसमें प्रति वर्ष 600 पौं० मिलना भी असम्भव न हो किन्तु जिसमें केवल 200 पौं० ही मिलने की भी समान सम्भावना हो, ऐसी नियुक्ति को कहीं अधिक पसन्द करेंगे जिसमें 400 पौं० की आय होना निश्चित हो। अतः महत्वाकांक्षाओं एवं उच्च कामनाओं की प्राप्ति में अनिश्चितता का बना रहना प्रिय नहीं लगता और बहुत कम लोगों का ही इसके प्रति विशेष आकर्षण होता है। यह उन अनेक लोगों के लिए मार्ग में रोड़े का काम करती है जो अपने भविष्य का चयन करना चाहते हैं। आमतौर पर साधारण सफलता की निश्चितता अनिश्चित सफलता की प्रत्याशा से अधिक आकर्षक होती है, भले ही उसका भी समान जीवनांकिक मूल्य हो।

कुछ अत्यधिक ऊँचे पुरस्कारों का अनुपात से कहीं अधिक आकर्षण होता है।

किन्तु दूसरी ओर यदि किसी व्यवसाय में कुछ अत्यधिक ऊँचे पुरस्कार मिलते हों तो इसके कुल मूल्य की अपेक्षा इसका आकर्षण कहीं अधिक होता है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह है कि साहसी प्रकृति के कुछ युवक लोग असफल होने के डर से रुकने की अपेक्षा महान सफलता की सम्भवताओं से अधिक आकर्षित होते हैं। दूसरा कारण यह है कि किसी पेशे का सामाजिक स्तर इसके द्वारा प्राप्त हो सकने वाले उच्चतम गौरव तथा, सर्वोत्तम स्थिति पर, न कि इसमें लगे हुए लोगों को औसत रूप से मिलने वाली आय पर अधिक निर्भर रहता है। राजकौशल की यह पुरानी उक्ति रही है कि सरकार को अपनी सेवा के हर विभाग में कुछ अच्छे पुरस्कार प्रदान करने चाहिए। और कुलीन देशों में मुख्य राजकर्मचारी बहुत ऊँचे वेतन प्राप्त करते हैं, जबकि निम्नतर स्तरों के लोग इसी प्रकार की सेवाओं में बाजार स्तर से भी नीची मजदूरी पर इस आशा में रहकर सान्त्वना प्राप्त करते हैं कि वे

भी अन्ततोगत्वा इन ऊँचे सराहनीय (coveted) पदों पर पहुँचेंगे और उन्हें भी इन देशों में सार्वजनिक अधिकारियों को सदैव मिलने वाला सामाजिक सम्मान मिलेगा। इस प्रकार की व्यवस्था का आकस्मिक परिणाम यह हुआ कि पहले से ही धनी तथा शक्तिशाली लोग और भी अधिक धनी तथा शक्तिशाली हो गये, आंशिक रूप से इस कारणवश प्रजातंत्रीय देशों में इसे नहीं अपनाया गया है। वे बहुधा इसके बिलकुल विपरीत पद्धति अपनाते हैं, और निम्नतर स्तरों के लोगों को बाजार दर से भी अधिक तथा उच्चतर श्रेणियों के लोगों को इससे कम दर पर भुगतान करते हैं किन्तु अन्य आधारों पर इस योजना के चाहे कुछ भी लाभ हों, यह निश्चितरूप से एक खर्चीली योजना है।

इसी प्रकार रोजगार की अनियमितता के लिए भी गुंजाइश रखनी चाहिए।

इसके बाद हम रोजगार की अस्थिरता का मजदूरी पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करेंगे। यह स्पष्ट है कि जिन देशों में रोजगार अनियमित होता है वहाँ काम के अनुपात मे वेतन ऊँचा होना चाहिए। चिकित्सा कर्मचारी तथा जूते पर पालिश करने वाले व्यक्ति में से प्रत्येक को काम पर होने पर ऐसा वतन मिलना चाहिए जो काम न रहने पर उन्हे इन्हीं कामों मे लगे रहने का शुल्क भी प्रदान करे। यदि उनके पेशों के लाभ अन्य बातों में समान हों, तथा उनका कार्य समानरूप से कठिन हो तो राज को जाइनर (joiner) से अधिक और जाइनर को रेल के गार्ड से अधिक वेतन मिलना चाहिए। क्योंकि रेल मे साल भर तक काम चलता रहेगा, जब कि जाइनर तथा राज के काम मे सदैव यह डर लगा रहता है कि व्यापार में मंदी आने से उन्हे बेकार बैठना पड़ेगा, और राज का काम तो कोहरे तथा वर्षा से भी रुक जाता है। इस प्रकार की रुकावट के लिए कुछ गुंजाइश रखने का साधारण ढग यह है कि दीर्घ काल के उपार्जन का योग लगाया जाये और उसका औसत ले लिया जाये, किन्तु यह तब तक पूर्णरूप से सतोषप्रद नही माना जा सकता जब तक कि हम यह कल्पना न करे कि बेकार रहने पर किसी व्यक्ति को मिलने वाला आराम तथा खाली समय का उसके लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से कोई भी उपयोग नही है।[1]

कुछ दशाओं मे इस प्रकार की कल्पना करना उचित है, क्योंकि काम मिलने की प्रतीक्षा से बहुधा इतनी अधिक चिन्ता तथा परेशानी होती है कि इससे स्वयं काम मे पड़ने वाले भार से भी अधिक भार पड़ता है।[2] किन्तु ऐसा सदैव नही होता। व्यवसाय में जो रुकावटें नियमित अवधि मे आती है और अतः जिनसे भविष्य के बारे में कोई भी भय उत्पन्न नही होता उनसे स्वयं उस व्यवसाय के नवीनीकरण तथा भावी कार्यों के लिए शक्ति बचाये रखने का अवसर मिल जाता है। दृष्टान्त के लिए सफल बैरिस्टर पर साल मे कुछ समय अधिक काम का भार पड़ता है, और यह स्वयं ही एक बुराई है।

---

1 उजरती काम के सम्बन्ध में इन बातों का विशेष महत्व है, क्योंकि कुछ दशाओं में काम जारी रखने के लिए सामान कम मिलने या अन्य प्रकार की रुकावटों से, चाहे इन्हें दूर किया जा सकता हो या नहीं, उपार्जन की दर कम हो जाती है।

2 सन् 1886 ई० में प्रोफेसर फाक्सवैल द्वारा इस विषय पर दिये गये व्याख्यान में रोजगार की अनियमितता की बुराइयों को तीक्ष्णरूप से व्यक्त किया गया है।

किन्तु जब इसके लिए छूट रख दी जाती है तो उसे कानूनी अवकाश की अवधि में कुछ भी फीस न लेने से बहुत थोड़ी ही क्षति होती है।[1]

पूरक उपार्जन।

§7. इसके बाद हमें उन सुविधाओं को भी ध्यान में रखना है जो किसी व्यक्ति के पड़ोस में मिलती हैं तथा जिनके फलस्वरूप प्राप्त अतिरिक्त आय से वह अपने मुख्य पेशे से होने वाले उपार्जन में वृद्धि करता है। उसके परिवार के अन्य सदस्यों को काम करने के लिए पड़ोस में प्राप्त होने वाली सुविधाओं को भी ध्यान में रखने की जरूरत है।

पारिवारिक उपार्जन।

इस कारण अनेक अर्थशास्त्रियों ने मुख्य तथा पूरक पेशों से होने वाले परिवार के कुल उपार्जन को इकाई मानकर अध्ययन करने का सुझाव दिया है और यदि पत्नी द्वारा अपने पारिवारिक कर्तव्यों की सम्भावित उपेक्षा से होने वाली क्षति के लिए गुंजाइश रखी जाय तो कृषि तथा उन पुराने ढंग के घरेलू व्यवसायों के प्रसंग से जिनमें सारा परिवार एक साथ मिलकर कार्य करता है, इस योजना के पक्ष में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। किन्तु वर्तमान इंग्लैंड में इस प्रकार के व्यवसाय अपवादजनक हैं। परिवार के मुखिया के पेशे का उसके लड़कों के कार्य के अतिरिक्त जिन्हें कि वह अपने व्यवसाय से परिचित कराता है, अन्य सदस्यों के कार्य पर कदाचित् ही अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यद्यपि उसके कार्य करने के स्थान के निश्चित हो जाने पर उसके परिवार के लोगों को उसमें सरलतापूर्वक मिल सकने वाला रोजगार पड़ोस के साधनों से सीमित होता है।

किसी व्यवसाय का आकर्षण इसके द्रव्यिक उपार्जन पर निर्भर न रह कर इसमें होने वाले निवल हितों पर

§8. इस प्रकार किसी व्यवसाय का आकर्षण एक ओर तो इसमें किये जाने वाले कार्य की कठिनाई एवं थकान के अतिरिक्त अनेक अन्य बातों पर तथा दूसरी ओर इसमें प्राप्त होने वाले द्रव्यिक उपार्जन पर निर्भर रहता है। जब किसी पेशे का उपार्जन इसमें कार्य करने वाले श्रम पर प्रभाव डालता है या जब इसे इसकी सम्भरण कीमत माना जाता है तो हमें सदैव यह समझना चाहिए कि उपार्जन शब्द को इसमें होने वाले निवल हितों को संक्षेप में व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया गया है।[2] हमें इन तथ्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि एक व्यवसाय दूसरे की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यप्रद या स्वच्छ होता है, अधिक सुन्दर या अच्छे स्थान में चलाया जाता है या इससे समाज में अधिक स्थिति प्राप्त हो जाती है। एडम स्मिथ के सुविख्यात अभिवचन में यह बतलाया गया है कि बूचड़ के कार्य के लिए, तथा कुछ सीमा तक स्वयं बूचड़ से अनेक लोगों को घृणा होने के कारण समान कठिनाई वाले अन्य व्यवसायों की अपेक्षा बूचड़ के व्यवसाय में अधिक उपार्जन होता है

---

1 उच्चतर ग्रेडों के कर्मचारियों को छुट्टी के दिनों का भी वेतन मिलता है, किन्तु निम्नतर स्तरों के लोगों को छुट्टी लेने पर उस दिन के वेतन से वंचित होना पड़ता है। इस प्रकार के भेदभाव के कारण स्पष्ट है, किन्तु इससे एक प्रकार की स्वाभाविक आपत्ति की भावना पैदा हो जाती है, जिस पर श्रम आयोग (Labour Commission) द्वारा की गयी जाँच में प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के लिए वर्ग ख (B) 24,431–6 को देखिए।

2 भाग 2, अध्याय 6, अनुभाग 2 देखिए।

निर्भर रहता है। व्यक्तियों जातियों तथा औद्योगिक स्तरों में पाये जाने वाले अन्तरों का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

निश्चय ही व्यक्तिगत गुणों का इन खास हितो के ऊँचे या नीचे दर पर प्राप्त किये जाने के अनुमान पर प्रभाव पडेगा। दृष्टान्त के लिए कुछ लोग कुटीर मे अकेले रहने के इतने इच्छुक रहते हैं कि वे शहर मे अधिक मजदूरी प्राप्त करने की अपेक्षा गाँव मे कम मजदूरी पर ही काम करना पसन्द करते है, जबकि अन्य लोग निवास कक्ष की अधिक चिन्ता नही करते और यदि उन्हे जीवन की विलास की वस्तुएँ प्राप्त हो सकें तो वे आराम की चीजो के बिना ही रहने के लिए तैयार रहते है। उदाहरण के लिए सन् 1884 मे श्रमिक वर्गो के निवास के विषय पर बैठे रायल कमीशन को किसी परिवार के बारे में इस प्रकार की बात बतलायी गयी थी: उनका संयुक्त उपार्जन प्रति सप्ताह 7 पौंड था किन्तु वे एक ही कमरे मे रहना पसन्द करते थे जिससे वे भ्रमण एवं आमोद प्रमोद मे मन चाहे ढंग से द्रव्य खर्च कर सके।

इस प्रकार की व्यक्तिगत विशिष्टताओं के कारण हम किन्ही विशेष लोगो के आचरण के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ भी पूर्व सूचना नही दे सकते। किन्तु यदि प्रत्येक हित एव अहित का किसी पेशे या इसकी शिक्षा देकर अपने बच्चो को इसमें प्रविष्ट कराने वाले लोगो के लिए स्वयं प्रविष्ट होने वाले द्रव्यिक मूल्य के औसत पर किया जाये तो विचाराधीन पेशे मे उस समय एव स्थान पर श्रम की पूर्ति को बढ़ाने या घटाने की शक्तियों की सापेक्षिक सामर्थ्य का स्थूलरूप मे अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि बहुधा इस बात की पुनरावृत्ति नही की जा सकती कि किसी एक स्थान एव समय की परिस्थितियों पर आधारित इस प्रकार के अनुमान को उचित सावधानी के बिना ही अन्य समय या स्थान की परिस्थितियो पर घटित करने मे बहुत भारी भूल हो सकती है।

इस सम्बन्ध मे स्वयं वर्तमान समय मे राष्ट्रीय आचार विचार मे पाये जाने वाले अन्तरों के प्रभाव को देखना रोचक प्रतीत होता है। इस प्रकार अमेरिका मे स्वीडन तथा नार्वे के लोग कृषि के लिए उत्तर-पश्चिम दिशा में गये हुए हैं जबकि आयरलैंड के लोग कृषि करने के इच्छुक होने पर पुराने पूर्वी राज्यों की ओर फार्म लेते हैं। जर्मनी के लोगों की फर्नीचर तथा शराब बनाने के उद्योगो में, इटली वालो की रेल उद्योग मे, स्लैव जाति के लोगो की डिब्बों मे मास बन्द करने और कुछ खानो मे काम करने मे तथा आयरलैंड व फ्रांसीसी कनाडा वासियों की कुछ सूती उद्योगो मे बहुतायत, तथा लन्दन मे आवास के लिए आये हुए यहूदियों की वस्त्र-उद्योगो एवं फुटकर व्यापार के लिए प्राथमिकता—ये सभी चीजें आंशिक रूप से राष्ट्रीय रुझान मे अन्तर के कारण ही पायी जाती हैं, किन्तु इनका आंशिक कारण यह भी है कि विभिन्न जातियों के लोग विभिन्न व्यवसायो के आकस्मिक हित एवं अहित का अलग अलग रूप मे अनुमान लगाते है।

अन्त में किसी ऐसे काम के लिए अरुचि होने से मजदूरी मे बहुत थोडी ही वृद्धि होती है जिसे उन लोगों द्वारा भी किया जा सके जिनकी औद्योगिक क्षमताएँ बहुत निम्नस्तर की रही हो। क्योंकि विज्ञान की प्रगति ने उन लोगो को भी जीवित रखा है जो केवल निम्नतम ग्रेड का ही कार्य कर सकते हैं। ये तुलनात्मक रूप मे उस थोड़े से कार्य के लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतिस्पर्द्धा करते हैं जिसे वे करने के योग्य हैं, और वे अपनी

तीव्र आवश्यकता के कारण उपार्जित की जाने वाली मजदूरी की ही सोचते हैं : वे इसमें होने वाले आकस्मिक कष्टों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते और वास्तव में उनके पड़ोस का उनमें से अनेक लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे किसी पेशे की गन्दगी को बहुत कम महत्व की बुराई मानते हैं।

एक अनुचित विरोधाभास।

अत: यह विरोधाभास पैदा हो गया है कि कुछ पेशों की गन्दगी के कारण उसमें उपार्जित मजदूरी भी कम होती है। क्योंकि मालिक यह अनुभव करते हैं कि सुधरे हुए उपकरणों से काम करने वाले उच्च चारित्रिक गुणों से युक्त कुशल लोगों को इस काम में लगाने से इस गन्दगी को दूर करने के लिए उन्हें अधिक मजदूरी देनी पड़ेगी। अत: वे बहुधा उन पुराने तरीकों को ही अपनाते हैं जो किसी भी किस्म के चारित्रिक गुण वाले अकुशल श्रमिकों द्वारा जिन्हें नीची (अमानी) मजदूरी पर लगाया जा सकता है, किये जा सकते हैं क्योंकि कोई भी मालिक उनसे अधिक लाभ नहीं उठा सकता। अब इस बात के अतिरिक्त और कोई अधिक तीव्र सामाजिक आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार का श्रम कम किया जाय जिससे इसके लिए अधिक भुगतान हो।

अध्याय 4

श्रम का उपार्जन (पूर्वानुबद्ध)

श्रम के सम्बन्ध में मांग एवं सम्भरण के प्रभाव की अनेक विशेषताएँ संचयी होती है। अतः ये प्रथा के प्रभाव से मिलती जुलती हैं।

§1. श्रम के सम्बन्ध मे मांग एवं सम्भरण के प्रभाव के विषय पर श्रम की सामान्य कीमत की अपेक्षा उसकी वास्तविक कीमत ज्ञात करने के प्रसंग मे पिछले अध्याय मे विवेचन किया गया। किन्तु इस कार्य की कुछ विशेषताओ का, जो अधिक महत्वपूर्ण हैं, अध्ययन करना अभी शेष है। क्योकि इनसे मांग एव सम्भरण की शक्तियों के वास्तविक प्रभाव का न केवल रूप, अपितु सार भी प्रभावित होता है, और कुछ मात्रा मे इनमे उन शक्तियो के स्वतन्त्र प्रभाव मे बाधा पडती है तथा उस प्रभाव को नियंत्रित किया जाता है। हम अब यह पता लगायेंगे कि उनमे से अनेकों के प्रभाव को उनके प्रथम तथा सबसे स्पष्ट प्रभावो द्वारा कभी भी नही मापना चाहिए: और संचयी प्रभाव साधारणतया दीर्घकाल मे उन प्रभावो की अपेक्षा वही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं जो संचयी नही होते, चाहे ये कितने ही प्रमुख दिखायी दें।

इस प्रकार यह समस्या प्रथा के आर्थिक प्रभावो का पता लगाने की समस्या से बहुत कुछ मिलती जुलती है। क्योकि यह पहले ही देखा जा चुका है तथा आगे चल कर और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा कि प्रथा के प्रत्यक्ष प्रभावों के कारण किसी वस्तु की कीमत के उसके लिए अन्यथा दी जाने वाली कीमत की अपेक्षा कभी कुछ अधिक होने तथा कभी कुछ कम होने का वास्तव मे बहुत अधिक महत्व नही है, क्योकि इस प्रकार का कोई भी अपसरण प्रायः न तो चिरस्थायी होता है, और न बढ़ता है, किन्तु इसके प्रतिकूल जब यह अपसरण उल्लेखनीय हो जाता है तो इससे स्वयं ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं जो इसे विफल कर देती है। कभी कभी इन शक्तियो से प्रथा बिलकुल ही नष्ट हो जाती हैं, किन्तु बहुधा विक्रय की जाने वाली वस्तुओ में क्रमिक एव सूक्ष्म परिवर्तनो से वे इससे बच निकलने की कोशिश करते हैं, जिससे कि खरीददार वास्तव मे पुरानी कीमतो पर पुराने नाम से कोई नयी चीज प्राप्त कर सके। ये प्रत्यक्ष प्रभाव तो स्पष्ट है किन्तु ये संचयी नही है। दूसरी ओर प्रथा के उत्पादन की प्रणालियो मे तथा उत्पादको की प्रकृति के स्वतंत्र विकास मे पड़ने वाली अप्रत्यक्ष बाधाएँ स्पष्ट नही होती किन्तु वे साधारणतया संचयी होती है और इसलिए संसार के इतिहास पर एक गम्भीर एव नियंत्रणकारी प्रभाव डालती हैं। यदि प्रथा से किसी पीढ़ी की प्रगति रुक जाय तो दूसरी पीढ़ी जिस स्तर से अन्यथा प्रगति प्रारम्भ करती, उससे कुछ निम्न स्तर से इसे प्रारम्भ करेगी। इसे जिस गतिरोध का सामना करना पड़ेगा वह बढ़ता जाता है तथा स्वय पूर्ववर्ती लोगों द्वारा पैदा किये गये गतिरोध मे वृद्धि हो जाती है और पीढ़ी दर पीढ़ी यही होता चला जाता है।[1]

---

1 यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि प्रथा के कुछ लाभकारी प्रभाव भी बढ़ते जाते है। 'प्रथा' के अन्तर्गत शामिल की जाने वाली अनेक चीजें उच्च आचारिक सिद्धान्तों,

श्रम के उपार्जन पर माँग तथा सम्भरण के प्रभाव के विषय में भी यही होता है। यदि किसी समय इसका किसी वर्ग या व्यक्ति पर अधिक दबाव पड़ता है तो इसकी बुराइयों के प्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट हो जाते हैं। किन्तु इनसे उत्पन्न होने वाली यातनाएँ अलग अलग किस्म की होती हैं. उन यातनाओं की, जिनके परिणाम उस बुराई के समाप्त होने के साथ समाप्त हो जाते है, जिससे वे उत्पन्न हुए हैं, महत्व के अनुसार साधारणतया उन यातनाओं से तुलना नहीं करनी चाहिए जो अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिकों के आचरण को गिरा देती है या इसे अधिक दृढ़ बनने से रोकती हैं। क्योंकि इन अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाली यातनाओं में कमजोरी बढ़ती है और यातनाएँ बढ़ती हैं, जिसके परिणामस्वरूप कमजोरी तथा यातनाएँ और भी अधिक बढ़ती जाती है तथा इनका प्रभाव इस प्रकार सचयी होता जाता है। दूसरी ओर ऊँचे उपार्जन तथा दृढ़ चरित्र से अधिक शक्ति तथा अधिक उपार्जन प्राप्त किया जाता है जिससे पुन: शक्ति बढ़ जाती है और उपार्जन अधिक हो जाता है, तथा आगे भी इसी प्रकार का चक्र चलता रहता है।

पहली विशेषता : श्रमिक अपने कार्य को बेचता है किन्तु उसका स्वामित्व अपने पास ही रखता है।

§2. हमें सर्वप्रथम जिस विषय की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना है वह यह है कि उत्पादन के मानवीय उपादानों को मशीन तथा उत्पादन के अन्य भौतिक उपादानों की भाँति खरीदा तथा बेचा नहीं जाता। श्रमिक अपने श्रम को बेचता है किन्तु वह अपने को नहीं बेचता और श्रम का स्वामित्व, अपने पास ही रखता है; जो लोग उसके पालन-पोषण एवं शिक्षा के खर्चों को वहन करते हैं वे भविष्य में उसकी सेवाओं के लिए मिलने वाली कीमत का बहुत थोड़ा ही अंश प्राप्त करते है।[1]

परिणाम-स्वरूप स्वयं व्यक्ति में पूँजी का विनियोजन

व्यवसाय की आधुनिक प्रणालियों में चाहे कितनी ही कमियाँ हों उनमें कम से कम यह सद्गुण है कि जो व्यक्ति भौतिक साधनों के उत्पादन के खर्चों को वहन करता है वही उनके लिए मिलने वाली कीमत प्राप्त करता है। जो व्यक्ति फैक्टरियाँ या वाष्प इंजन या मकान बनाता है, या दास रखता है, वह जब तक उन्हें अपने लिए रखता है तब तक, उनसे मिलने वाली निवल सेवाओं का फल प्राप्त करता है। जब वह उन्हें बेचता है तो उनकी भावी सेवाओं के निवल मूल्य के बराबर अनुमानित कीमत प्राप्त करता है। अतः वह अपने परिव्यय को तब तक बढ़ाता है जब तक उसे यह सोचने का कोई खास कारण न दिखायी दे कि और आगे विनियोजन करने से मिलने वाले

आदरणीय एवं प्रिय बर्ताव के नियमों, तथा लाभ के लिए कष्टकारी संघर्ष दूर करने के ही स्थायीरूप हैं और जातीय गुण पर पड़ने वाला इनका अधिकांश अच्छा प्रभाव संचयी होता है। भाग 1, अध्याय 2, अनुभाग 1, 2 से तुलना कीजिए।

1 यह बात इस सुप्रसिद्ध तथ्य से मेल खाती है कि दास का श्रम किफायत पूर्ण नहीं होता, जैसा कि एडम स्मिथ ने बहुत पहले कहा था "काम के कारण दास की शक्ति की क्षति की प्रतिस्थापना एवं पूर्ति के लिए रखी गयी निधि का, यदि मैं ऐसा कह सकूँ, साधारणतया एक उपेक्षाकारी मालिक या असावधान ओवरसियर द्वारा प्रबन्ध किया जाता है। स्वतन्त्र व्यक्ति के लिए इन्हीं कार्यों के लिए रखी गयी निधि का स्वयं स्वतन्त्र व्यक्ति द्वारा पूर्ण किफायत एवं बड़ी सतर्कता के साथ प्रबन्ध किया जाता है।"

उसके माता-पिता के साधनों, उनके पूर्व विचार तथा उनकी निस्स्वार्थता से नियंत्रित होता है।

लाभ से उसकी क्षतिपूर्ति ही होगी। उसे बुद्धिमत्तापूर्वक एवं साहस के साथ ऐसा करना चाहिए, अन्यथा अधिक व्यापक एव दूरदर्शी नीति अपनाने वाले अन्य लोगो के साथ प्रतिस्पर्द्धा होने से उसकी स्थिति बिगड सकती है, और अन्ततोगत्वा उसका ससार के व्यापार को सचालित करने वालो मे से अस्तित्व ही मिट सकता है। जो लोग वातावरण से अपने लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करना जानते है उनके द्वारा प्रतिस्पर्द्धा तथा जीवन के अस्तित्व के लिए सघर्ष करने से दीर्घकाल मे फैक्टरियाँ एवं वाष्पइंजनों का निर्माण ऐसे लोगो के हाथ मे चला जाता है जो उनके मूल्य मे उत्पादन के रूप मे लागत की अपेक्षा अधिक वृद्धि करने के लिए हर प्रकार का खर्च कर सकते है तथा करने के लिए प्रस्तुत रहते है। किन्तु इंग्लैंड मे श्रमिको के पालन पोषण एवं उनके शीघ्र ही प्रशिक्षण प्राप्त करने मे किया जाने वाला पूँजी का विनियोजन समाज के विभिन्न स्तरो मे माता पिताओ के साधनो, भविष्य के विषय मे उनके पूर्व ज्ञान की शक्ति तथा अपने बच्चो के लिए उनकी सर्वस्व न्योछावर करने की तत्परता से नियन्त्रित होता है।

समाज के उच्चतर स्तरों में यह बुराई तुलनात्मक रूप से कम है;

समाज के उच्चतर औद्योगिक स्तरो के सम्बन्ध मे यह बुराई तुलनात्मक रूप से कम महत्व की है क्योकि इन स्तरो मे अधिकाश लोग भविष्य को स्पष्ट रूप से समझते हैं, और इसके लिए 'ब्याज' की निम्न दर पर बट्टा काटते हैं। वे अपने बच्चो के जीवन यापन के लिए अच्छा से अच्छा रोजगार छाँटने, तथा उनमे उनके सर्वोत्तम प्रशिक्षण के लिए अधिक प्रयत्न करते है और वे साधारणतया इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं और खर्च करते भी है। विशेषकर व्यावसायिक वर्ग अपने बच्चो के लिए साधारणतया कुछ पूँजी बचाने के लिए उत्सुक तो रहते ही हैं साथ ही साथ वे उनमे इसके विनियोजन के अवसर प्राप्त करने के लिए और भी अधिक सतर्क रहते हैं। जब कभी उद्योग के उच्चतर स्तरो मे किसी नयी चीज का प्रारम्भ होने लगे जिसके लिए अतिरिक्त एव विशेष ज्ञान की आवश्यकता हो तो उस स्थिति के लिए तीव्र संघर्ष के लिए वर्तमान परिव्यय के अनुपात मे भावी लाभों का बहुत अधिक होना आवश्यक नही है।

किन्तु निम्नतर स्तरों में यह बहुत बड़ी है।

समाज के निम्नतर स्तरो मे बुराई बहुत बड़ी होती है। क्योकि साधन तथा माता पिता की शिक्षा के अत्यल्प होने तथा भविष्य को भलीभाँति समझने की शक्ति की तुलनात्मक दुर्बलता के कारण वे उसी स्वतन्त्रता एवं बड़े साहस से अपने बच्चों की शिक्षा एव उनके प्रशिक्षण मे पूँजी का विनियोजन नही करते, जिससे वे अच्छे प्रबन्ध द्वारा चलायी जाने वाली फैक्टरी की मशीनो को सुधारने मे पूँजी लगाते हैं। श्रमिक वर्गों के अनेक बच्चो को पर्याप्त मात्रा मे भोजन एवं वस्त्र नही मिलते। उनके निवास की व्यवस्था ऐसी होती है जिसमे न तो शारीरिक न नैतिक शक्ति का ही विकास होता है। उन्हे पाठशालाओ मे ऐसी शिक्षा मिलती है, जिसे यद्यपि आधुनिक इंग्लैंड मे बहुत बुरा नहीं कहा जा सकता किन्तु जो श्रमिको के कार्य मे अधिक सहायक भी नही होती। उन्हें जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाने या व्यवसाय विज्ञान या कला के उच्चतर कार्य पर अन्तर्दृष्टि डालने का बहुत कम अवसर मिलता है। वे जीवन के प्रारम्भिक काल मे ही कठिन तथा थकान पैदा करने वाला कार्य करते हैं और जीवनपर्यन्त इसी मे लगे रहते हैं। वे जीवन के अन्तिम दिनों तक भी योग्यताओं एवं प्रतिभाओं का विकास

नही कर पाते और यदि इनका पूर्णरूप से विकास हो गया होता तो इससे देश की भौतिक सम्पत्ति मे उच्चतर लक्ष्यों को छोड भी दे--उनके विकास के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करने में होने वाले खर्च की अपेक्षा कई गुना लाभ होता।

यह बुराई संचयी है।

किन्तु जिस बात पर हमें विशेषरूप से जोर देना है वह यह है कि यह बुराई संचयी है। किसी पीढी के बच्चे जितना ही कम भोजन प्राप्त कर सकेंगे बडे होने पर उतना ही कम उपार्जन कर पायेंगे, तथा वे अपने बच्चो की भौतिक आवश्यकताओ के लिए उतनी ही कम चीजे प्रदान कर सकेंगे और बाद की पीढियो पर भी यही चक्र लागू होगा। पुनः उनकी अपनी प्रतिभाएँ जितनी ही कम विकसित होगी वे अपने बच्चो की सर्वोत्तम प्रतिभाओं के विकास के महत्व को उतना ही कम समझेंगे और वे इनका उतना ही कम विकास कर पायेंगे। इसके विपरीत यदि किसी परिवर्तन से किसी पीढी के श्रमिको को अपने सर्वोत्तम गुणो के विकास के अधिक अच्छे अवसरो के साथ-साथ अधिक उपार्जन करने का अवसर मिले तो इससे व लोग अपने बच्चों को अधिक भौतिक एवं नैतिक लाभ पहुँचा सकेंगे। उनकी बुद्धि, मेधा तथा पूर्वविचार मे वृद्धि होने के कारण वे अपने बच्चों के हित के लिए स्वय अपने आनन्द का कुछ त्याग करने के लिए पहले से अधिक तत्पर रहेंगे, यद्यपि सबसे निर्धन वर्गों मे भी जहाँ तक उनके साधनो एव ज्ञान से सम्भव हो यह तत्परता अब भी बहुत अधिक पायी जाती है।

दस्तकार का लडका अकुशल श्रमिक के लड़के की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से जीवन प्रारम्भ करता है।

§3. समाज के किसी उच्चतर स्तर मे जन्म लेने वालो को निम्नतर स्तर मे जन्म लेने वालों की अपेक्षा जो लाभ होते है वे मुख्यतया ये है कि इनमे इनके माँ-बापो के लगे हुए होने के कारण वे इनसे अधिक अच्छी तरह परिचित होते है, और अधिक अच्छे ढंग से जीवन प्रारम्भ करते है। दस्तकारो एव अकुशल श्रमिको के उपार्जन की तुलना करने मे जीवन के अच्छे प्रारम्भ के महत्व को सर्वोत्तम ढग मे जाना जा सकता है। ऐसे कुशल व्यवसाय बहुत कम हैं जिनमे अकुशल श्रमिक का लडका आसानी से पहुँच सकता हो, और अधिकाशरूप मे लडका अपने पिता के पेशे को ही अपनाता है। पुराने ढग के घरेलू उद्योगों में यह प्राय सार्वभौमिक नियम था, और आधुनिक दशाओं मे भी पिता को लडकों को अपने ही व्यवसाय मे लाने की बडी सुविधाएँ होती हैं। मालिक तथा फोरमैन किसी ऐसे लडके की अपेक्षा जिसके लिए उन्हे पूरा उत्तर-दायित्व लेना पडे, ऐसे लडके को प्राथमिकता देते हैं जिसके पिता को वे पहले से जानते हैं और उस पर विश्वास करते है। अनेक व्यवसायो मे एक बालक काम पर लग जाने के बाद भी सम्भवतया तब तक अच्छी प्रगति नही कर सकता और अपने को सुरक्षित नही समझ सकता जब तक वह अपने पिता के पास या उसके किसी ऐसे दोस्त के पास काम न कर ले जो उसे किसी ऐसे काम को समझाये तथा करने मे सहायता देने का कष्ट करता है जिसके लिए सतर्क निगरानी की आवश्यकता होती है, किन्तु जिसका शिक्षात्मक मूल्य है।

उसका अधिक शिष्ट परिवार में, और माँ

दस्तकार के लडके को और भी लाभ हैं। वह साधारणतया अधिक अच्छे तथा अधिक साफ मकान मे तथा ऐसे विशुद्ध भौतिक वातावरण मे रहता है जिससे साधारण श्रमिक परिचित भी नही होता। उसके माँ-बाप सम्भवतया अधिक शिक्षित होते है और अपने बच्चो के प्रति अपने कर्तव्यों के सम्बन्ध मे उनका उच्चतर विचार होता

की अधिक निगरानी में पालन-पोषण होता है।

है। अन्त में यह बात भी बराबर महत्व की है कि उसकी माँ को अपने परिवार की देखरेख के लिए अधिक समय मिल सकता है।

यदि सभ्य संसार के एक देश को दूसरे से, या इंग्लैंड के एक भाग की दूसरे से, या इंग्लैंड मे एक व्यवसाय की अन्य व्यवसाय से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि श्रमिक वर्गो की स्त्रियाँ जितनी ही अधिक कठोर कार्य करती हैं ठीक उसी अनुपात मे उन वर्गो का पतन होता है। सबसे मूल्यवान पूँजी वह है जिसका मानव में विनियोजन किया जाय, यदि माँ की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ कोमल तथा निस्स्वार्थ बनी रहें तथा उसका रुख पुरुषो द्वारा किये जाने वाले कार्य के भार तथा दबाव से कठोर न हो गया हो तो उस पूंजी का सबसे कीमती भाग माँ की देखरेख तथा प्रभाव से निकलने वाला परिणाम है।

इस अन्तिम बात का बड़ा महत्व है।

इससे हमारा ध्यान पहले विचार किये गये सिद्धान्त के इस अन्य पहलू की ओर आकर्षित होता है कि कार्यकुशल श्रम के उत्पादन की लागत का अनुमान लगाते समय हमे बहुधा परिवार को अपनी इकाई मानना चाहिए। सभी दशाओ मे कार्यकुशल लोगो की तथा उन स्त्रियो के उत्पादन की लागत को हम पृथक् समस्या नही मान सकते। इसे कार्यकुशल लोगो के उत्पादन की लागत की अधिक स्थूल समस्या का अग समझना चाहिए जो अपने घर को सुखी तथा अपने बच्चो को शरीर एव मस्तिष्क से तेजवान, सच्चा तथा साफ, सभ्य एवं बहादुर बनाने के योग्य है।[1]

---

1 सर विलियम पेट्टी ने 'लोगों के मूल्य' का बड़ी विलक्षणता से विवेचन किया। कैण्टीलन ने Essay भाग I, अध्याय XI में, पुन: एडम स्मिथ ने Wealth of Nations भाग I, अध्याय VIII में अभी हाल में डा० एंजिल ने अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण निबन्ध Der Preis der Arbeit में, तथा डा० फर्र एवं अन्य विचारकों ने पूर्णरूप से वैज्ञानिक ढंग से किसी युवक पुरुष को पालने में लगने वाली लागत का किसी पारिवारिक इकाई के पालन पोषण में लगने वाली लागत से सम्बन्ध दिखाया है। देश की सम्पत्ति में ऐसे आव्रजक के आने के कारण होने वाली वृद्धि के अनेक अनुमान लगाये गये हैं जिसके पालन पोषण की लागत उसके जीवन के प्रारम्भिक वर्षो में कहीं अन्यत्र खर्च हुई थी, और जो अब सम्भवतया अपने उपभोग की अपेक्षा अधिक उत्पादन करता है। ये अनुमान अनेक ढंग से लगाये गये है, और सभी मोटे अनुमान हैं, तथा कुछ सिद्धान्त की दृष्टि से देखने में दोषपूर्ण लगते है: किन्तु इन सभी में आव्रजक का औसत मूल्य 200 पौंड के बराबर लगाया गया है। यदि कुछ समय के लिए हम स्त्री व पुरुष के अन्तर को छोड़ दें तो ऐसा प्रतीत होगा कि हमें आव्रजक के मूल्य को भाग, 5 अध्याय 4 अनुभाग 2 में बतलाये गये आधार पर गणना करनी चाहिए। अर्थात् हमें उसके द्वारा भविष्य में की जाने वाली सेवाओं के सम्भावित मूल्य के लिए 'बट्टा काटना' चाहिए, उन्हें एक साथ जोड़ लेना चाहिए तथा उसमें से उस सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं अन्य लोगों की प्रत्यक्ष सेवाओं के उपयोग के लिए कुल 'पूर्वप्राप्ति' मूल्य घटा देना चाहिए: और यह ध्यान रहे कि उत्पादन एवं उपभोग के प्रत्येक तत्व की सम्भावित मूल्य पर इस प्रकार गणना करने में हमने प्रसंगवश उसकी अकाल मृत्यु तथा बीमारी, जीवन में सफलता एवं असफ-

§4. नवयुवक ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हैं माता-पिता तथा अध्यापकों का प्रभाव घटता जाता है, और उसके बाद जीवन के अन्त काल तक उनका आचरण मुख्यतया उनके कार्य तथा उन लोगों के प्रभाव से ढलता है जिनके साथ वे व्यवसाय, आनन्द या धार्मिक उपासना के लिए रहते हैं।

वर्कशाप का तकनीकी प्रशिक्षण बड़ी मात्रा में मालिक को निःस्वार्थ

प्रौढ़ व्यक्तियों के तकनीकी प्रशिक्षण, प्राचीन शिक्षु-प्रणाली के पतन तथा इसके स्थान पर किसी अन्य चीज के मिलने में होने वाली कठिनाई के विषय में बहुत कुछ पहले ही बतलाया जा चुका है। हमारे सम्मुख यहाँ भी यह कठिनाई आती है कि कारीगर की योग्यताओं के विकास के लिए चाहे कोई भी व्यक्ति पूंजी लगाये वे योग्यताएँ स्वयं कारीगर की निजी सम्पत्ति हो जायेंगी : और उसकी सहायता करने वाले लोगों की भलाई ही अधिकांशरूप में इस कार्य का पुरस्कार होगा।

लता के लिए भी गुंजाइश रख दी है। या पुनः हम उसकी जन्मभूमि में उस पर लगाये गये उत्पादन की द्रव्यिक लागत के अनुसार उसके मूल्य को आंक सकते हैं। इसे भी उसके विगत उपभोग की सभी वस्तुओं के 'संचित' मूल्य को जोड़कर और उसमें से उसके द्वारा विगत काल में उत्पन्न सभी चीजों के कुल 'संजित' मूल्य को घटाकर जाना जा सकता है।

अब तक हमने स्त्री एवं पुरुष के अन्तर को ध्यान में नहीं रखा था। किन्तु यह स्पष्ट है कि उक्त ढंग के अनुसार पुरुष आव्रजकों का मूल्य बहुत अधिक और स्त्री आव्रजकों का मूल्य बहुत कम रखा गया है। ऐसा उस समय न होगा जब स्त्रियों द्वारा माताओं, पत्नियों एवं बहिनों के रूप में की जाने वाली सेवाओं के लिए गुंजाइश न रखी जाय, और पुरुष आव्रजकों पर इन सेवाओं के उपभोग करने का प्रभार न लगाया जाय, तथा स्त्री आव्रजकों द्वारा की जाने वाली सेवाओं के लिए पुरुषों पर लगाये गये प्रभार को सम्मिलित न किया जाये। (गणितीय टिप्पणी 24 देखिए)।

अनेक लेखक उपलक्षित रूप से यह कल्पना कर लेते हैं कि किसी औसत व्यक्ति का निवल उत्पाद तथा सम्पूर्ण जीवनकाल में उसका उपयोग दोनों बराबर रहते हैं या अन्य शब्दों में वह देश की भौतिक समृद्धि में, जिसमें वह जीवन पर्यन्त रहा है, न तो कोई चीज बढ़ाता है और न उसमें से किसी चीज को कम करता है। इस मान्यता के आधार पर उसके मूल्यांकन ऊपर बतलाये गये दोनों ढंग समानार्थक हैं, अतः हमें पश्चादुक्त ढंग के अनुसार जो कि अधिक सरल है, गणना करनी चाहिए। दृष्टान्त के लिए हम यह अन्दाज लगा सकते हैं कि श्रमिक वर्गों के जो कुल जनसंख्या के2/5 के बराबर हैं निम्नतर अर्द्धभाग के औसत बच्चे के पालन-पोषण में किया जाने वाला कुल खर्च 100 पौं० है, अगले 1/5 जनसंख्या का खर्चा 175 पौं०, इसके बाद के 1/5 पर 300 पौं० अगले 1/10 पर 500 पौं०, तथा शेष 1/10 पर 1200 पौं० खर्च होता है: या औसत रूप में 300 पौं० खर्च किया जाता है किन्तु जनसंख्या का कुछ भाग बहुत छोटा होगा और उन पर बहुत कम खर्च किया जायेगा, कुछ अन्य लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनों में होंगे, और इसलिए इन मान्यताओं के आधार पर प्रति व्यक्ति औसत मूल्य शायद 200 पौं० होगा।

भावना पर निर्भर रहता है।

यह सत्य है कि उच्च वेतन प्राप्त करने वाला श्रमिक वास्तव में उन मालिकों के लिए सस्ता होता है जो दौड में अग्रिम स्थान प्राप्त करना चाहते हैं और जिनकी यह महत्वाकांक्षा है कि सबसे अधिक प्रगतिशील प्रणालियों से सर्वोत्तम कार्य किया जाय। वे सम्भवतया अपने कर्मचारियों को ऊँचा वेतन देंगे और सतर्कतापूर्वक प्रशिक्षित करेंगे। इसका आंशिक कारण यह है कि ऐसा करना उनके लिए लाभप्रद है, और आंशिक रूप से इसका कारण यह है कि जिस चारित्रिक गुण के कारण वे उत्पादन की कला में अग्रिम स्थान प्राप्त करना चाहते हैं उसी से वे कार्य करने वाले लोगों के व्यापार के विषय में उदार रुख अपनाते हैं। यद्यपि ऐसे मालिकों की संख्या बढ़ती जा रही है तथापि अभी भी तुलनात्मक रूप में इनकी संख्या थोड़ी ही है। वे अपने कर्मचारियों के प्रशिक्षण में सदैव पूंजी का उतना विनियोजन नहीं कर सकते जितना कि उस समय करते जब इससे ऐसे प्रतिफल मिलते जैसे कि मशीनों में सुधार करने से मिल सकते थे। कभी कभी वे इस भावना के कारण भी रुक जाते है कि उनकी स्थिति एक ऐसे किसान की भाँति है जो अनिश्चित पट्टे तथा स्वयं किये गये सुधारों के लिए मुआवजा न मिलने के डर के बावजूद भी अपने भूस्वामी की सम्पत्ति के मूल्य को बढने मे अपनी पूंजी लगा रहा है।

इसके लाभ संचयी होते हैं, किन्तु ये उसे या उसके उत्तराधिकारियों को धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं।

पुनः अपने कामदारो को ऊँचा वेतन देने तथा उनके सुख एवं सम्यता का विचार करने मे उदार मालिक ऐसे लाभ प्रदान करता है जो उसकी पीढी मे ही समाप्त नही हो जाते। क्योंकि उसके कामदारों के बच्चे उन लाभों मे हिस्सा बँटाते हैं, और इनके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य एवं चारित्रिक बल अपेक्षाकृत अधिक अच्छा हो जाता है। उसके द्वारा श्रम के लिए दी जाने वाली कीमत से बाद की पीढी मे उच्च औद्योगिक प्रतिमाओ की वृद्धि के खर्चों का भुगतान किया जाता है: किन्तु ये प्रतिमाएँ अन्य लोगों की सम्पदा होंगी जो इन्हें अधिकतम कीमत प्राप्त करने के लिए किराये पर लगा सकेंगे: उसके द्वारा की गयी इस भलाई के भौतिक पुरस्कार को प्राप्त करने की न तो वह और न उसके उत्तराधिकारी ही आशा कर सकते हैं।

दूसरी विशेषता

§5. श्रम से सम्बन्धित माँग तथा सम्भरण के कार्य की जिन शेष विशेषताओं पर हमे विचार करना है वे इस बात मे निहित है कि किसी व्यक्ति को अपनी सेवाओं को बेचते समय उस स्थान तक जाना पडता है जहाँ उनकी आवश्यकता हो। ईंट बेचने वाले का इस बात से कोई मतलब नही कि ईंटों को महल खडा करने मे लगाया जायेगा या मल-निर्गम के उपयोग मे लाया जायेगा। किन्तु श्रम के विक्रेता के लिए जो किसी खास कठिनाई वाले कार्य को करने का बेडा उठाता है इस बात क बहुत महत्व है कि उसके कार्य का स्थान सुन्दर एव आनन्ददायक है या नही और उसके सहायक भी उसके मनपसन्द होंगे या नहीं। इस समय भी जब श्रमिक पूरे साल के लिए मजदूरी पर रखे जाते है तो वे इस बात का पता लगाने के साथ साथ कि नया मालिक कितनी मजदूरी देगा यह भी पूछते है कि उसका स्वभाव कैसा है।

इन विशेषताओं का प्रभाव

श्रम की यह विशेषता अनेक दशाओं मे बड़े महत्व की है, किन्तु बहुधा इससे उसी प्रकार का व्यापक एव गहरा प्रभाव नही पड़ता जैसा कि बतलायी गयी बात का पड़ता है। किसी पेशे में होने वाली घटनाएँ जितनी ही अरुचिकर होंगी, लोगों को इस

और आकर्षित करने के लिए मजदूरी की उतनी ही ऊँची दरें देनी पड़ेंगी तथा दूर-व्यापी अहित होगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर रहता है कि उनसे भन के शारीरिक स्वास्थ्य एवं शक्ति को कहां तक हानि पहुँचती है या उनका चालचलन कितना बिगड़ जाता है। चाहे ये घटनाएँ इस प्रकार की न भी हों फिर भी वास्तव में ये स्वयं ही बुरी चीजें हैं, किन्तु इनसे साधारण और अधिक बुराई पैदा नही होती, इसके प्रभाव कदाचित् ही संचयी होते हों।

साधारणतया संचयी नहीं होता और इनका वास्तविक महत्व कदाचित् ही बहुत अधिक होता हो।

चूँकि कोई भी व्यक्ति बाजार में स्वयं उपस्थित हुए बिना अपना श्रम नही बेच सकता, इससे यही आशय निकलता है कि श्रम की गतिशीलता या श्रमिक की गतिशीलता समानार्थक शब्द है: और घर या पुराने वातावरण को जिसमें सम्भवतः कुछ प्रिय लगने वाली कुटिया या कब्रिस्तान भी शामिल है, छोड़ने की अनिच्छा से बहुधा नये स्थान पर अधिक अच्छी मजदूरी ढूंढने का विचार कम हो जाता है। यदि परिवार के विभिन्न सदस्य विभिन्न व्यवसायों में लगे हों और प्रव्रजन से कुछ सदस्यो को लाभ तथा अन्य को हानि उठानी पड़े तो श्रमिक के अपने कार्य से अलग न हो सकने के कारण श्रम का माँग के अनुसार सम्भरण नही हो सकता किन्तु इस विषय पर बाद मे अधिक विचार किया जायेगा।

§6. पुनः श्रम की शक्ति क्षयकारी होने से इसके विक्रेताओ के प्रायःनिर्धन व्यक्ति होने और उनके पास कोई रक्षित निधि न होने तथा इसके विक्रय से उसे आसानी से न रोक सकने के कारण बहुधा श्रम को—असुविधाओ मे बेचा जाता है।

तीसरी तथा चौथी विशेषताएँ। श्रम क्षयकारी होता है और इसके विक्रेताओं को बहुधा सौदे में नुकसान उठाना पड़ता है। किन्तु अनेक भौतिक वस्तुएँ क्षयकारी होती हैं।

क्षयकारी होना सभी प्रकार के श्रम का एक सामान्य गुण है: श्रमिक के रोजगार से छूट जाने से जो समय की बरबादी होती है उसे पुनः प्राप्त नही किया जा सकता, यद्यपि कुछ दशाओ मे आराम मिलने के कारण उसकी शक्तियो मे स्फूर्ति आ सकती है।[1] कुछ भी हो यह स्मरण रखना चाहिए कि उत्पादन के भौतिक उपादानो की अधिकांश कार्यशक्ति समान अर्थ मे क्षयकारी होती है, क्योंकि रोजगार से निकाल दिये जाने के कारण आय के जिस अधिकाश भाग को वे अर्जित नही कर सकते उसे वे बाद मे फिर कभी भी प्राप्त नही कर सकते। वास्तव मे किसी फैक्टरी या वाष्पइजन का उपयोग न होने पर कुछ टूटफूट कम हो सकती है: किन्तु इसके फलस्वरूप मालिको को जिस आय से हाथ धोना पड़ता है उसके अनुपात मे यह टूटफूट का अर्थ बहुधा थोड़ा ही होता है: उन्हें इसमें विनियोजित पूंजी के ब्याज की हानि या समय बीतने के फलस्वरूप इसके मूल्यह्रास के लिए या नये आविष्कारो के कारण इसके अप्रचलित हो जाने के लिए कोई भी मुआवजा नही मिलता।

पुनः अनेक विक्रयशील वस्तुएँ क्षयकारी होती है। सन् 1889 मे लन्दन मे गोदी श्रमिको की हड़ताल मे अनेक जहाजो मे फल, मास इत्यादि के शीघ्र नष्ट होने का हड़ताल करने वालों के पक्ष मे अच्छा प्रभाव पड़ा।

निम्नतम स्तरों के

रक्षित निधि तथा अपने श्रम को विक्रय से लम्बे समय तक रोके रखने की शक्ति का अभाव प्रायः मुख्यतया हाथ से किये जाने वाले सभी कार्यों पर पड़ता है। किन्तु

1 ऊपर भाग 6, अध्याय 3 देखिए।

श्रमिकों को साधारणतया सौदाकारी में अधिकतम क्षति पहुँचती है।

अकुशल श्रमिकों के बारे में यह विशेषरूप से सत्य है क्योंकि इसका आंशिक कारण यह है कि उनकी मजदूरी में बचत के लिए बहुत थोड़ी गुंजाइश रहती है, और आंशिक कारण यह है कि जब उनका कोई वर्ग काम छोड़ता है तो उन स्थानों पर काम करने के लिए सैंकड़ो लोग मिल जाते है। व्यापारिक सगठनो पर विवेचन करते समय हम अभी देखेंगे कि कुशल दस्तकारों की अपेक्षा इन लोगो के लिए सुदृढ़ तथा स्थायी सगठन बनाना अधिक कठिन है, और इसलिए अपने मालिको के साथ सौदे मे इनकी समानता की स्थिति नही हो सकती। यहां यह स्मरण रहे कि जो व्यक्ति हजारो अन्य व्यक्तियों को काम पर लगाता है उसमे स्वयं ही श्रम बाजार मे खरीददारो की हजार इकाइयों के बराबर ठोस सगठन होता है.

ये बातें घरेलू नौकरों पर लागू नहीं होतीं और न व्यावसायिक व्यक्तियों पर ही लागू होती हैं।

किन्तु हर प्रकार के श्रम पर ये बाते लागू नही होती। घरेलू नौकरो के पास यद्यपि बड़ी मात्रा मे रक्षित निधि नही होती, और उनका कदाचित् ही कोई औपचारिक व्यापारिक संघ होता हो, तब भी वे अपने मालिको की अपेक्षा अच्छे ढग से मिल-जुल कर कार्य कर सकते है। फैशनयुक्त लदन शहर मे घरेलू नौकरो की कुल वास्तविक मजदूरी उन अन्य कुशल व्यवसायो की अपेक्षा बहुत अधिक है जिनमे समान कुशलता एव योग्यता की जरूरत होती है। किन्तु दूसरी ओर जिन घरेलू नौकरो मे कोई विशेष कुशलता नही होती, और जो अल्प आय वाले लोगो के यहाँ नौकरी करने लगते हैं वे अपने लिए काम करने की सतोषप्रद शर्तें भी नही रख पाते। वे अत्यन्त कम मजदूरी पर बहुत कठोर काम करते हैं।

इसके बाद उद्योग के उच्चतम स्तर के लोगो के विषय मे विचार करते समय हम यह पायेंगे कि प्रायः उन्हें अपने श्रम के खरीदार की अपेक्षा सौदे मे लाभ की स्थिति प्राप्त होती है। अधिकाश व्यावसायिक वर्ग अपने अधिकतर आसामियों एवं खरीददारों की अपेक्षा अधिक धनी होते है, उनके पास अधिक रक्षित निधि रहती है, उनमे ज्ञान तथा दृढ़ निश्चय तथा अपनी सेवाओ के विक्रय के सम्बन्ध मे ठोस कार्य करने की कहा अधिक शक्ति होती है।

वस्तुओं के जो विक्रेता निर्धन होते हैं तथा जितनी खरीददारों की अपेक्षा संख्या, अधिक होती है, उन्हें श्रम के विक्रेताओं की भांति सौदे में

यदि इस बात के और अधिक प्रमाणो की आवश्यकता हो कि सौदे के लिए नुकसान का श्रमिक आमतौर पर शिकार होता है वह स्वयं उसकी अपनी परिस्थितियों तथा गुणों पर निर्भर रहता है, न कि इस तथ्य पर कि वह श्रम जैसी विशेष वस्तु का विक्रय करता है। सफल बैरिस्टर या सालिसिटर या चिकित्सक या संगीत गायक या पेशेवर घुड़सवार की विक्रयशील वस्तुओं के अधिक निर्धन व स्वतंत्र उत्पादको से तुलना करने मे इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। दृष्टान्त के लिए जो लोग सुदूर स्थानों मे बड़े केन्द्रीय बाजारो मे बेचने के लिए शंखमीन (shellfish) इकट्ठा करते हैं उनके पास थोड़ी रक्षित निधि होती है और ससार का तथा इस बात का थोड़ा ही ज्ञान होता है कि देश के अन्य भागो मे अन्य उत्पादक क्या कर रहे है, जब कि जिन लोगो को वे चीजें बेचते हैं उनकी थोक व्यापारियो की एक ऐसी छोटी तथा ठोस संस्था होती है जिसे विस्तृत ज्ञान होता है तथा जिसके पास बहुत बड़ी रक्षित निधि होती है। इसके परिणामस्वरूप विक्रेता सौदे मे अधिक हानि की स्थिति मे होते हैं। हाथ से बनाये हुए फीतो को बेचने वाली स्त्रियो एवं बच्चो के विषय मे भी तथा ईस्ट लंदन के अटारी

बनाने वालों (garret master) के विषय में भी, जो बड़े तथा शक्तिशाली व्यापारियों को फर्नीचर बेचते हैं, यही बात सत्य है।

हानि उठानी पड़ती है।

फिर भी यह निश्चित है कि शारीरिक श्रम करने वाले लोग सौदे में हानि की स्थिति में रहते हैं, इस हानि के प्रभाव चाहे वे कहीं भी हों, सम्भवतया संचयी होते हैं। क्योंकि जब तक मालिकों में प्रतिस्पर्द्धा होगी वे श्रम के लिए उस मात्रा में भुगतान करने के लिए तैयार होंगे जो उनके लिए इसके वास्तविक मूल्य से बहुत कम न हो, अर्थात् यह उस अधिकतम कीमत से बहुत कम नहीं होगी जिसे न खरीदने की अपेक्षा वे खरीदने को तैयार रहेंगे, तब भी जिस किसी चीज की मजदूरी कम की जाती है उससे श्रमिक की कार्यकुशलता घट जाती है। अतः श्रमिक को सौदे में होने वाली हानि दो प्रकार से बढ़ती जाती है। इससे उसकी मजदूरी घट जाती है, और जैसा हम देख चुके हैं, इससे मजदूर के रूप में उसकी कार्यकुशलता कम हो जाती है, और उससे उसके श्रम का सामान्य मूल्य घट जाता है। साथ ही साथ सौदाकार के रूप में उसकी कार्यकुशलता कम हो जाती है, और इस प्रकार इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि वह अपने श्रम को उसके सामान्य मूल्य से कम पर बेचेगा।[1]

यह हानि दो प्रकार से संचयी है।

---

1 इस अनुभाग में अध्ययन किये गये विषय के भाग 5, अध्याय 2, अनुभाग 3 तथा वस्तुविनिमय पर दिये गये परिशिष्ट च (F) से तुलना कीजिए। प्रो० ब्रिन्टानो (Brentano) ने सर्वप्रथम इस अध्याय में विवेचन की गयी असंख्य बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया था। होवेल (Howell) की पुस्तक Conflicts of Capital and Labour भी देखिए।

अध्याय 5

श्रम का उपार्जन (पूर्वानुबद्ध)

श्रम की पाँचवीं विशेषता यह है कि विशेष प्रकार की योग्यता की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने के लिए अत्यधिक समय की आवश्यकता होती है।

§1. श्रम के सम्बन्ध मे माँग तथा सम्भरण की जिस विशेषता पर हमे विचार करना है वह पहले बतलायी गयी विशेषताओं से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित है। यह विशेषता श्रमिक को कार्य करने के लिए तैयार करने और उसे प्रशिक्षित करने मे लगने वाली अवधि तथा इस प्रशिक्षण से धीरे धीरे मिलने वाले प्रतिफल मे निहित है।

भविष्य के इस पूर्वप्रापण, माँग के अनुसार खर्चीले ढंग से प्रशिक्षित श्रम का जानबूझ कर किया जाने वाला यह समायोजन माता-पिताओ को अपने बच्चो के लिए पेशो का चयन करने और उन्हे अपने से उच्चतर स्तर दिलाने के प्रयत्नों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

एडम स्मिथ के मस्तिष्क में ये ही बातें थीं जब उन्होंने कहा था : "जब किसी कीमती मशीन को लगाया जाता है तो इसके घिस जाने के पूर्व, जो कि प्रत्याशित है, इससे किये जाने वाले असाधारण कार्य से कम से कम साधारण लाभ पर इस मशीन पर लगायी गयी पूँजी प्राप्त हो जायेगी, जैसी कि आशा भी की जानी चाहिए। जो व्यक्ति बहुत श्रम एवं समय लगा कर ऐसे रोजगारों मे शिक्षित हुए हैं जिनमें असाधारण निपुणता एवं कुशलता की आवश्यकता हो तो उसकी उनमे से किसी कीमती मशीन के साथ तुलना की जा सकती है। वह साधारण श्रमिको की अपेक्षा जो अच्छा काम सीख कर अधिक मजदूरी पाता है उससे कम से कम समानरूप से मूल्यवान पूँजी पर मिलने वाले साधारण लाभ सहित उसकी शिक्षा मे लगे सारे खर्चे निकल जाते हैं, और यही आशा भी करनी चाहिए। मानव जीवन की बिलकुल अनिश्चित अवधि को ध्यान मे रखते हुए ये खर्चे भी समुचित समय मे ठीक उसी प्रकार निकल आने चाहिए जिस प्रकार मशीन की अधिक निश्चित अवधि मे ये वसूल कर लिये जाते हैं।

एडम स्मिथ द्वारा मशीन तथा कुशल श्रमिक की अर्जित आय की गयी तुलना में अधिकांश मशीनो की कार्यावधि कम होने के कारण संशोधन करना पड़ेगा यद्यपि इसके महत्वपूर्ण अपवाद भी हैं।

किन्तु इस कथन को सामान्य प्रवृत्तियों के व्यापक सकेत के रूप मे ही समझना चाहिए क्योकि माता-पिता अपने बच्चे के पालन पोषण तथा उसकी शिक्षा मे उन प्रयोजनो से प्रभावित नही होते जिनसे नयी मशीन लगाने के लिए कोई पूँजीपति उपक्रमी प्रेरित होता है। उपार्जन की अवधि साधारणतया मशीन की अपेक्षा मनुष्य के सम्बन्ध मे अधिक होती है, और इसलिए जिन परिस्थितियों से उपार्जन निश्चित किया जाता है उनका पहले से ही कम अनुमान लगाया जा सकता है, और माँग के अनुसार सम्भरण का समायोजन अधिक मन्द एवं अपूर्ण होता है। यद्यपि फैक्टरियों एवं मकानो, किसी खान की मुख्य सुरग तथा रेलों के बाँधो का इन्हें बनाने वाले लोगो की अपेक्षा जीवनकाल बहुत अधिक होता है, तब भी ये सामान्य नियम के अपवाद ही हैं।

§2. माता-पिताओं द्वारा अपने किसी बच्चे के लिए कुशल व्यवसाय के चयन करने में तथा उनके बच्चों द्वारा उनके इस चयन का पूर्ण-प्रतिफल मिलने में कम से कम एक पीढ़ी का समय व्यतीत हो जाता है। इस बीच ऐसे परिवर्तनों से उस व्यवसाय का स्वरूप बिलकुल ही बदल सकता है जिनमे से सम्भवतया कुछ के लक्षण पहले से ही दिखायी देने लगते हैं, किन्तु अन्य ऐसे होते हैं जिनका बड़े बड़े सूक्ष्मदर्शियों तथा उस व्यवसाय की परिस्थितियों से भलीभाँति परिचित लोगो को भी पता नही लगता।

माता-पिताओं को अपने बच्चों के लिए व्यवसायों का चयन करते समय एक पीढ़ी आगे की सोचनी चाहिए और उनके पूर्वानुमान के गलत होने की बहुत सम्भावना है।

इंग्लैंड के लगभग सभी भागों में श्रमिक वर्ग निरन्तर अपने तथा अपने बच्चो के श्रम के लिए लाभदायक अवसरों की खोज में रहते है, और वे अन्य क्षेत्रो मे बसे हुए अपने दोस्तों तथा मित्रों से विभिन्न व्यवसायो मे मिल सकने वाली मजदूरी, तथा उनमे होने वाले आकस्मिक लाभ एवं हानियों के बारे मे पूछते रहते है। किन्तु उन कारणो का पता लगाना कठिन है जिनसे उन व्यवसायो का भविष्य निर्धारित हो सकता है जिनमें वे अपने बच्चों को लगाना चाहते है, और ऐसी जटिल खोज करने वाले लोगों की संख्या अधिक नही होती। अधिकाश लोग बिना किसी पुनर्विचार के यह मान लेते हैं कि किसी व्यवसाय की तत्कालीन स्थिति से उसके भविष्य के बारे मे पर्याप्तरूप से जाना जा सकता है, और इस आदत का जहाँ तक प्रभाव पडता है किसी व्यवसाय में किसी भी पीढ़ी में श्रम की मात्रा उस पीढ़ी की अपेक्षा उसकी पूर्ववर्ती पीढी के उपार्जन के अनुरूप होती है।

पुनः कुछ माता-पिता यह देखकर कि किसी व्यवसाय मे उसी ग्रेड के अन्य व्यवसायों की अपेक्षा कुछ वर्गों से उपार्जन बढता जा रहा है, यह मान लेते है कि भविष्य में भी उसी दिशा में परिवर्तन होते रहेंगे। किन्तु बहुधा पहले हुई वृद्धि अस्थायी कारणो से होती है, और यदि उस व्यवसाय मे श्रमिक असाधारण रूप से न बढे तो इस वृद्धि के बाद और अधिक वृद्धि होने की अपेक्षा कमी होने लगेगी और यदि उस व्यवसाय मे श्रमिक असाधारण संख्या मे आ गये हों तो इसका परिणाम यह होगा कि उसमे श्रमिकों की अत्यधिक संख्या हो जाने से अनेकों वर्षों तक सामान्य स्तर से भी कम उपार्जन होगा।

इस सम्बन्ध में बहुधा हमें किसी खास व्यवसाय को अपनी इकाई न मान कर किसी ग्रेड के सभी श्रमिकों को अपनी इकाई मानना चाहिए।

इसके बाद हमें इस तथ्य को स्मरण करना है कि यद्यपि कुछ ऐसे भी व्यवसाय है जिनमे पहले से ही काम करने वाले लोगों के बच्चो की अपेक्षा अन्य लोग मुश्किल से ही जा सकते हैं तब भी अधिकाश व्यवसायों मे समान ग्रेड के अन्य व्यवसायों मे काम करने वाले लोगों के बच्चों को रोजगार दिया जाता है और इसलिए जब हम श्रम की पूर्ति की शिक्षा एवं प्रशिक्षण के खर्चे बहुत करने वाले लोगों के साधनों पर निर्भर रहने के विषय पर विचार करते हैं तो हमे बहुधा किसी एक व्यवसाय की अपेक्षा एक ग्रेड को अपनी इकाई मानना चाहिए, और यह कहना चाहिए कि जहाँ तक श्रम की पूर्ति इसके उत्पादन की लागत के खर्चों का भुगतान करने के लिए प्राप्त निधियों से नियंत्रित है, किसी भी ग्रेड मे श्रमिकों की संख्या वर्तमान की अपेक्षा वस्तुतः पिछली पीढ़ी मे उस ग्रेड मे उपार्जित मजदूरी मे निर्धारित होती है।

कुछ भी हो यह स्मरण रखना चाहिए कि समाज के प्रत्येक स्तर में जन्म-दर अनेक कारणों से निर्धारित होती है, और इसमे भविष्य के विषय में स्वेच्छित गणनाओं

का केवल गौण महत्व है: यद्यपि किसी ऐसे देश में भी जहाँ आधुनिक इंग्लैंड की भाँति परम्परा का बहुत कम महत्व है, प्रथा एवं सार्वजनिक मत से जो कि स्वयं विगत पीढ़ियों के अनुभव की देन हैं, बहुत प्रभाव पड़ता है।

प्रौढ़ श्रमिकों के लिए गुंजाइश रखनी चाहिए क्यों कि ये सामान्य योग्यता के लिए बढ़ती हुई माँग के कारण महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

§3. किन्तु हमें माँग के अनुसार श्रम की पूर्ति में किये जाने वाले उन समायोजनों को भूल नहीं जाना चाहिए जो प्रौढ़ व्यक्तियों के एक व्यवसाय से दूसरे में, एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में, तथा एक स्थान से दूसरे में, गमनागमन से प्रभावित होते हैं। एक ग्रेड से दूसरे में गमनागमन कदाचित् ही बड़े पैमाने पर हो सकता है, यद्यपि यह सत्य है कि असाधारण सुविधाओं के कारण कभी कभी निम्न ग्रेडों के लोगों की छिपी हुई योग्यता का तीव्र विकास हो सकता है। दृष्टान्त के लिए किसी नये देश के एकाएक विकसित होने या अमेरिकी युद्ध की भाँति किसी घटना के घटने से निम्न श्रेणी के श्रमिकों में से अनेक श्रमिक जिनमें कठिन उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने की क्षमता है, ऊपर उठ जायेंगे।

किन्तु एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रौढ़ श्रमिकों का गमनागमन कुछ दशाओं में इतना अधिक और इतना तीव्र हो सकता है कि माँग के अनुसार श्रमिकों की संख्या में समायोजन करने की अवधि बहुत घट जायेगी। वह सामान्य योग्यता जिसे एक व्यवसाय से दूसरे में स्वाभाविक रूप से परिवर्तित किया जा सकता है उस शारीरिक कुशलता एवं तकनीकी ज्ञान की अपेक्षा महत्वपूर्ण होती जा रही है जो उद्योग की किसी एक शाखा के लिए ही विशेषरूप से आवश्यक है। इस प्रकार आर्थिक प्रगति से एक ओर उद्योग की प्रणालियों में निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा में परिवर्तन होता है, और इसलिए किसी किस्म के श्रम की एक पीढ़ी आगे की माँग का पूर्वज्ञान प्राप्त करना निरन्तर कठिन होता जा रहा है। किन्तु दूसरी ओर इससे पिछले समयों मे इस प्रकार के समायोजनों मे की गयी भूल को दूर करने की अधिकाधिक शक्ति प्रदान हो रही है।[1]

अब हम उन कारणों में पाये जाने वाले अन्तरों पर विचार करेंगे जो दीर्घकाल एवं अल्पकाल में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं।

§4. अब हम पुनः इस सिद्धान्त पर विचार करेंगे कि किसी वस्तु के उत्पादन के उपकरणों से प्राप्त आय का दीर्घकाल में स्वयं उनके सम्भरण तथा उनकी कीमत पर नियंत्रणकारी प्रभाव पड़ता है, और इसलिए स्वय उस वस्तु के सम्भरण तथा उसकी कीमत पर भी प्रभाव पड़ता है, किन्तु अल्पकाल मे इस प्रकार के किसी भी प्रभाव के समुचित रूप से पड़ने के लिए पर्याप्त समय नही होता। अब हम इस बात का पता लगायेंगे कि यदि इस सिद्धान्त को उत्पादन के भौतिक उपादानों पर, जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति के साधन मात्र हैं, और जो पूंजीपति की निजी सम्पत्ति हो सकते हैं, लागू न कर मानव पर जो एक उत्पादन के लक्ष्य एव साधन दोनो ही हैं और जो स्वयं ही अपनी सम्पत्ति है, लागू किया जाय तो इसमे किस प्रकार संशोधन किये जा सकते हैं।

---

1 इस अनुभाग में दिये गये विषय को भाग 4, अध्याय 6, अनुभाग 8, (श्री चार्ल्स बूथ की Life and Labour in London तथा सर एच० लौ० स्मिथ की Modern Changes in the Mobility of Labour से तुलना कीजिए।

सर्वप्रथम हमें यह देखना चाहिए कि श्रम के धीरे धीरे उत्पन्न होने तथा धीरे धीरे नष्ट होने के कारण साधारण वस्तुओं की अपेक्षा श्रम की सामान्य माँग एवं पूर्ति पर विचार करते समय हमें 'दीर्घकाल' का अधिक ठीक अर्थ मे प्रयोग करना चाहिए, और इससे अभिप्राय साधारणतया अधिक लम्बी अवधि से होना चाहिए। ऐसी अनेक समस्याएँ है जिनमें साधारण वस्तुओं के सम्भरण के लिए तथा उन्हे बनाने मे लगने वाले अधिकांश भौतिक उपकरणों के सम्भरण के लिए भी माँग के अनुसार समायोजन करने का पर्याप्त समय मिल जाता है, और इसलिए उस अवधि मे इन वस्तुओ की औसत कीमत को 'सामान्य' मानने तथा व्यापक अर्थ मे, उनके उत्पादन के सामान्य खर्चों के बराबर मानने के लिए यह अवधि पर्याप्तरूप से लम्बी होती है। किन्तु इसके बावजूद भी यह अवधि इतनी लम्बी नही होगी जिससे माँग के अनुसार श्रम का सम्भरण समायोजित किया जा सके। अतः इस अवधि मे श्रम के औसत उपार्जनो से श्रम प्रदान करने वालो को निश्चितरूप से सामान्य प्रतिफल नही मिलेगा, किन्तु ये एक ओर तो श्रम की सुलभ मात्रा से तथा दूसरी ओर इसकी माँग से निर्धारित होगे। अब हम इस बात पर अधिक ध्यानपूर्वक विचार करेगे।

श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में "दीर्घकाल" का अभिप्राय साधारणतया बहुत लम्बी अवधि से होता है।

§5 बाजार मे किसी वस्तु की कीमत मे पाया जाने वाला अन्तर माँग तथा बाजार मे स्थित या यहाँ आसानी से आ सकने वाले स्टाक के अस्थायी सम्बन्धों पर निर्भर रहता है। जब इस प्रकार निर्धारित बाजार कीमत सामान्य स्तर से ऊपर होती है तो जो लोग ऊँची कीमत से लाभ उठाने के लिए ठीक समय पर बाजार मे उस वस्तु का नया स्टाक ला सकते है, उन्हें असाधारण रूप से बडा पुरस्कार मिलता है, और यदि ये लोग स्वयं काम करने वाले चंद हस्त-शिल्पी ही हों तो कीमत में होने वाली इस सारी वृद्धि मे उनका उपार्जन बढ जायेगा।

स्वतंत्र हस्त-शिल्पी।

आधुनिक औद्योगिक जगत में जो लोग उत्पादन का जोखिम लेते हैं और जिन्हे सर्वप्रथम कीमत में वृद्धि से लाभ होते हैं या इसमें कमी होने से हानि होती है, वे उस उद्योग के पूँजीपति उपक्रामी होते हैं। उस वस्तु को बनाने में तुरन्त लगने वाले परिव्यय से अर्थात् इसकी मूल (द्रव्यिक) लागत से निवल आय की अधिकता उनके व्यवसाय मे उनकी अपनी प्रतिभाओं एवं योग्यताओं सहित विभिन्न रूपों में लगी हुई पूँजी से उस समय मिलने वाला प्रतिफल है। किन्तु जब व्यापार अच्छा रहता है तो स्वयं मालिकों मे प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण प्रत्येक मालिक अपने व्यवसाय को बढाने तथा इस ऊँचे प्रतिफल को यथासम्भव अधिकतम प्राप्त करने की इच्छा से अपने कर्मचारियों को उनकी सेवाओं के लिए अधिक ऊँची मजदूरी देने को तैयार हो जाता है। यदि वे मिल कर भी काम करें तथा कुछ समय तक कोई भी छूट न दें तो भी कर्मचारियों के सगठन के कारण इस भय से अधिक मजदूरी देने को तैयार हो जायेगे कि उनके ऐसा न करने से वे बाजार के अनुकूल होने के कारण मिलने वाले लाभ प्राप्त न कर सकेंगे। साधारणतया इसका परिणाम यह होता है कि इस काम का अधिकांश भाग अधिक समय बीतने के पूर्व ही कर्मचारियों मे वितरित करना पडता है और जब तक समृद्धि की स्थिति बनी रहती है तब तक उनका उपार्जन सामान्य स्तर से ऊपर रहता है।

उद्योग की आधुनिक प्रणाली में मजदूरी में उतार-चढ़ाव।

कोयले के व्यापार से लिया गया दृष्टान्त।

इस प्रकार सन् 1873 ई० मे हुई मुद्रास्फीति मे जब कुछ समय तक खनिकों के लिए तथा खनन कार्य करने वाले कुशल श्रमिकों की सुलभ संख्या द्वारा ऊँची नियंत्रित मजदूरी हुई थी तो उस समय इसमें बाहर से लिये गये अकुशल श्रमिक को भी समान कार्यकुशलता के कुशल श्रमिको के बराबर माना गया था। यदि इस प्रकार के श्रम को बाहर से प्राप्त करना असंभव होता तो खानो मे काम करने वालों का उपार्जन एक ओर तो कोयले की माँग की लोच से तथा दूसरी ओर खान खोदने वालों की नयी पीढी के धीरे धीरे इस कार्य को करने के योग्य होने से ही नियंत्रित होता। किन्तु तब स्थिति ऐसी थी कि अन्य पेशो से भी लोगो को लेना पड़ा, यद्यपि वे उन्हें छोड़ने के लिए इच्छुक नही थे, क्योंकि उन्हें, जहाँ वे थे वही रह कर भी ऊँची मजदूरी मिल सकती थी, क्योंकि कोयले तथा लोहे के व्यापारो मे होने वाली समृद्धि तो साख के सभी दिशाओं मे उमडते हुए ज्वार का केवल उच्चत्तम शिखर ही था। ये नये लोग जमीन के नीचे काम करने के अभ्यस्त नही थे। इसकी असुविधाओं का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा जब कि उन लोगो मे तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण अधिक खतरा होने लगा, और उनमें कुशलता की कमी के कारण उनकी बहुत कुछ शक्ति व्यर्थ चली गयी। अतः प्रतिस्पर्द्धा के कारण खान खोदने वालो की कुशलता के विशेष उपार्जन की जो सीमाएँ निर्धारित की गयी थी वे सकुचित नही थी।

जब समृद्धि का यह ज्वार उतरने लगा तो वे नवागन्तुक जो इस काम के लिए सबसे कम अनुकूल थे खानो को छोडकर चले गये, किन्तु तब भी जितने भी खान खोदने वाले शेष रह गये थे वे काम की दृष्टि से वही अधिक थे, और अत. उनकी मजदूरी तब तक गिरती गयी जब तक उस सीमा पर न पहुँच गयी कि उन लोगो को भी जो खनन कार्य करने तथा इसका जीवन व्यतीत करने के लिए सबसे कम उपयुक्त थे अन्य व्यवसायो मे काम करने पर अधिक मजदूरी मिलने लगी। यह सीमा नीची थी, क्योंकि सन् 1873 ई० मे साख के उमडते हुए ज्वार के ठोस व्यवसाय ढीले पड गये, समृद्धि की वास्तविक नीव कमजोर पड गयी, और प्राय हर उद्योग न्यूनाधिक रूप से गिरी हुई तथा दबी हुई स्थिति मे ही शेष रह गया।

श्रमिक की कुशलता के लिए मिलने वाले प्रतिफल को आँकते समय न केवल उसकी शारीरिक क्षति को, अपितु उसकी

§6. हम पहले ही बता चुके है कि किसी ऐसे सुधार से प्राप्त प्रतिफल के कुछ अंश को इसका निवल उपार्जन मानना चाहिए जो अब समाप्त हो रहा है, क्योंकि इन प्रतिफलो को तभी किसी किस्म की निवल आय माना जा सकता है जब सुधारों के पूँजीगत मूल्य मे हुई कमी के तुल्यांक मूल्य को इनमे से घटा दिया जाय। इसी प्रकार मशीन का निवल उपार्जन प्राप्त करने से पूर्व उसकी टूटफूट तथा उसे चलाने की लागत के लिए गुंजाइश रखनी चाहिए। अब खान मे काम करने वाले की भी उतनी ही शारीरिक क्षति होती है जितनी कि मशीन की, और इसलिए जब उसकी कुशलता के विशेष प्रतिफल को आँका जाय तो उसके उपार्जन मे से इसमें होने वाली क्षति को घटा देना चाहिए।[1]

1 इस विशेष प्रतिफल को आभास-लगान मानने का भी कुछ आधार है। भाग 6, अध्याय 5, अनुभाग 7 तथा अध्याय 8, अनुभाग 8 देखिए।

किन्तु उसके सम्बन्ध में एक और कठिनाई पैदा हो जाती है, क्योंकि जहाँ मशीन का मालिक टूटफूट सहित उसे चलाने के खर्चों के लिए गुंजाइश रखने पर इस पर लम्बे समय तक कार्य करने से कुछ भी हानि नही उठाता वहाँ कुशल प्रतिभाओं का मालिक इन्हें लम्बे समय तक काम मे लाने पर अवश्य ही हानि उठाता है, और उसे मनोरंजन एवं गमनागमन की स्वतंन्त्रता की क्षति इत्यादि के रूप मे आकस्मिक असुविधाएँ उठानी पड़ती हैं। यदि खान मे काम करने वाले के पास एक हफ्ते मे केवल चार दिन का काम हो और वह एक पौंड कमाता हो तथा दूसरे हफ्ते उसके पास छ. दिन का काम आ जाय जिससे वह एक पौंड दस शिलिंग कमाये तो इस अतिरिक्त दस शिलिंग के कुछ भाग को ही उसकी कुशलता का प्रतिफल मान सकते है, क्योंकि शेष भाग को उसकी अतिरिक्त थकान तथा उसकी क्षति की पूर्ति मानना चाहिए।[1]

थकान तथा उसके कार्य की अन्य असुविधाओं की भी गणना करनी चाहिए।

अब हम अपने तर्क के इस भाग का निष्कर्ष देते है। प्रत्येक चीज की बाजार कीमत अर्थात् अल्पकाल मे इसकी कीमत इसकी माँग तथा इसके सुलभ स्टाक के सम्बन्धों पर मुख्यतया निर्भर रहती है, और उत्पादन के किसी भी उपादान के सम्बन्ध मे, चाहे यह मानव या भौतिक उपादान कुछ भी हो, यह माँग उन चीजो के लिए माँग से, 'व्युतपन्न' की जाती है जिन्हे बनाने मे इसका उपयोग किया जाता है। इन अपेक्षाकृत अल्पकालीन अवधियों मे मजदूरी में कमी या वृद्धि उत्पादित वस्तुओ की बिक्री कीमतो मे होने वाली कमी या वृद्धि के बाद, न कि इससे पहले होती है।

बाजार की स्थिति पर उपार्जन में होने वाली कमी या वृद्धि की निर्भरता के विषय में दिये गये तर्क का सारांश तथा पुनर्कथन।

किन्तु उत्पादन के मानव या भौतिक सभी उपादानो द्वारा उपार्जित आय तथा उनके द्वारा सम्भवतया भविष्य मे अर्जित की जाने वाली आय का उन लोगो पर निरन्तर प्रभाव पड़ता है जो इन उपादानों के भावी सम्भरण को निर्धारित करते है। निरन्तर सामान्य साम्य की उस स्थिति की ओर प्रवृत्ति रहती है जिस मे इन उपादानों मे से प्रत्येक के सम्भरण का उसकी सेवाओं के लिए की जाने वाली माँग से ऐसा सम्बन्ध रहेगा कि सम्भरण करने वालों को अपने प्रयत्न एव त्याग के लिये पर्याप्त पुरस्कार मिलेगा। यदि देश की आर्थिक दशा लम्बे समय तक स्थिर रहे तो यह प्रवृत्ति सम्भरण तथा माँग के इस प्रकार के समायो जन मे परिवर्तित हो जायेगी कि मशीन तथा मानव साधारणतया इतनी धनराशि अर्जित करेंगे कि यह रूढ़ एवं अत्यावश्यक आवश्यकताओ सहित उनके पालन पोषण तथा प्रशिक्षण के लिए पर्याप्तरूप से अनुरूप होगी। किन्तु आर्थिक दशाओं के स्थिर रहने पर भी अनार्थिक कारणों के प्रभाव से रूढ़ आवश्यकताएँ बदल सकती है: और इस परिवर्तन से श्रम की पूर्ति भी प्रभावित होगी और इससे राष्ट्रीय लाभाश कम हो जायगा तथा इसका वितरण भी कुछ बदल जायेगा। वास्तव मे बात तो यह है कि देश की आर्थिक दशाएँ निरन्तर बदलती जा रही है, और श्रम के सम्बन्ध में सामान्य माँग तथा सम्भरण का समायोजन निरन्तर बदल रहा है।

§7. अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि अद्वितीय प्राकृतिक योग्यताओं

व्यक्तिगत

---

1 भाग 7, अध्याय 2, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए। यदि उनके पास व्यापारिक औजारों का कुछ उल्लेखनीय स्टाक हो तो वे उस सीमा तक पूंजीपति है और उनकी आय का कुछ भाग इस पूंजी का आभास लगान है।

आय का विश्लेषण करते समय दुर्लभ प्राकृतिक योग्यताओं के कारण प्राप्त अतिरिक्त आय को अधिशेष माना जा सकता है, किन्तु किसी व्यवसाय के सामान्य उपार्जन पर विचार करते समय ऐसा नहीं किया जा सकता।

से प्राप्त की जाने वाली अतिरिक्त आय को किस मद के अन्तर्गत रखना चाहिए। चूँकि यह उत्पादन के किसी उपादान की कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए किये गये मानवीय प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त नहीं हुई है अतः इसे उत्पादन के लिए प्रकृति की ओर से मुफ्त दिये गये अवकलन लाभ से प्राप्त उत्पादन अधिशेष मानने का स्पष्टतः प्रबल कारण दिखायी देता है। यह समानता तब तक सार्थक तथा उपयोगी सिद्ध हो सकता है जब तक हम किसी व्यक्ति द्वारा अर्जित आय के विभिन्न अंगों का ही केवल विश्लेषण करते हैं। यह पता लगाने मे कुछ रोचकता प्रतीत होती है कि सफल व्यक्तियों की आय का कितना अंश दैवयोग अवसर मिलने, अन्दाज या श्रम जीवन का अच्छी स्थिति से आरम्भ करने के कारण है, कितना उनके विशेष प्रशिक्षण मे विनियोजित पूँजी पर लाभ या उनके असाधारण रूप से कठोर परिश्रम करने के पुरस्कार के रूप मे है, और कितना दुर्लभ प्राकृतिक देन के कारण मिलने वाले उत्पादक अधिशेष या लगान के रूप मे शेष रह जाता है।

किन्तु जब हम किसी पेशे मे लगे हुए लोगों के सारे समुदाय पर विचार कर रहे हों तो हम असफल लोगों के कम उपार्जन के लिए गुंजाइश रखे बिना सफल लोगों के असाधारण रूप से ऊँचे उपार्जन का लगान नहीं मान सकते। क्योंकि अन्य उपार्जन समान रहने पर, किसी पेशे मे श्रम की पूर्ति इसमे होने वाले उपार्जन की प्रत्याशंसा (prospects) पर निर्भर रहती है। जो लोग उस व्यवसाय में प्रवेश करते हैं उनके भविष्य के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता : कुछ लोग जो प्रारम्भ में बहुत कम होनहार प्रतीत होते हैं बड़ी छिपी हुई योग्यता वाले निकल आते हैं और सम्भवतया अच्छे भाग्य के कारण वे बहुत उपार्जन करते हैं, जब कि अन्य लोग जो प्रारम्भ मे बड़े होनहार दिखायी देते थे कुछ भी नहीं कर पाते। क्योंकि सफल एवं असफल होने के अवसरों को ठीक उसी प्रकार एक साथ लेना चाहिए जैसे कि मछुए की अच्छी या बुरी प्राप्ति को, या किसी किसान की अच्छी या बुरी फसलों को, एक साथ लिया जाता है। कोई व्यक्ति अपने लिए पेशा चुनते समय, या उसके माता-पिता उसके लिए पेशा चुनते समय, सफल लोगों के भाग्यवश उपार्जन को कभी भी आँके बिना नहीं रहते। अतः भाग्यवश उपार्जन दीर्घकाल में उसे पेशे में लगे हुए श्रम एवं योग्यता के लिए दी जाने वाली कीमत का अंग है: यह इसमे लगने वाले श्रम की वास्तविक या 'दीर्घकालीन' सामान्य सम्भरण कीमत मे सम्मिलित होता है।

कुछ ऐसे वर्ग इसके अपवाद हैं जिन्हें जन्म से ही उत्पादन की कुछ खास शाखाओं के

कुछ भी हो यह मानना पड़ेगा कि यदि कुछ लोग जन्म से ही किसी खास पेशे के लिए विशेष देन वाले निश्चित कर दिये जायें जिससे वे हर दशा में उस पेशे को ही अपनायें तो साधारण लोगों के लिए इसमे सफल होने या असफल होने के अवसरों पर विचार करते समय ऐसे लोगों द्वारा अर्जित आय को अपवादजनक मान लिया जायेगा तथा इसमे सम्मिलित नहीं किया जायेगा। किन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है क्योंकि किसी पेशे मे किसी व्यक्ति की सफलता उसकी उन मेधाओं एवं रुचियों के विकास पर निर्भर रहती है जिनका शक्ति के विषय मे तब तक स्पष्टरूप से पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता जब तक वह स्वयं ही किसी पेशे को पहले से ही चुन न ले। इस प्रकार के पूर्वानुमान कम से कम उतने ही गलत हो सकते हैं जितने कि एक

नये अधिवासी के चयन के लिए रखे गये भूमि के अनेकानेक टुकड़ो की स्थिति की भावी उत्पादकता एवं लाभ के विषय में लगाये गये पूर्वानुमान गलत हो सकते है।[1] आंशिक रूप से इस कारणवश दुर्लभ प्राकृतिक गुणों से प्राप्त अतिरिक्त आय की पुराने देश मे भूमि के लगान की अपेक्षा किसी अधिवासी की जोत से मिलने वाली उत्पादन अधिशेष से अधिक समानता व्यक्त की जा सकती है जो भाग्यवश बहुत अच्छा चयन करता है। किन्तु भूमि तथा मानव मे इतनी अधिक बातो मे भिन्नता है कि यहाँ तक कि यह समानता भी अधिक गहराई तक जाने पर भ्रम मे डाल सकती है: और अद्वितीय योग्यता वाले व्यक्तियों के उपार्जन पर उत्पादक अधिशेष शब्द के प्रयोग करने मे अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

लिए विशेष रूप से आवश्यक दुर्लभ योग्यताए प्राप्त होती है।

अन्त मे यह ध्यान में रखना चाहिए कि उत्पादन की विभिन्न शाखाओं मे प्रयोग हो सकने वाले उपकरणों के विशेष उपार्जन (जो चाहे लगान के रूप मे हो या आभास लगान के रूप मे) के सम्बन्ध मे भाग 5, अध्याय 8-11 मे दिया गया तर्क प्राकृतिक योग्यताओ तथा कुशलता से अर्जित विशेष उपार्जन पर भी लागू होता है। जब एक वस्तु के उत्पादन के लिए उपयुक्त भूमि या मशीन का दूसरी वस्तु के लिए प्रयोग किया जाय तो पहले की सम्भरण कीमत बढ़ जाती है, यद्यपि इस वृद्धि का उत्पादन के इन उपकरणो के दूसरे प्रयोग मे लाने से प्राप्त होने वाली आय से कोई सम्बन्ध नही है। अतः जब किसी एक वस्तु के उत्पादन मे लगायी जा सकने वाली प्रशिक्षित कुशलता या प्राकृतिक योग्यताओं को दूसरी वस्तु के उत्पादन मे लगाया जाय तो पहले की सम्भरण कीमत उसके सम्भरण के साधनों मे कमी होने के कारण बढ़ जाती है।

---

1 भाग 5, अध्याय 10 अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

अध्याय 6

पूँजी पर ब्याज

अध्याय 1 तथा 2 में पूँजी से सम्बन्धित सम्भरण के प्रभाव के मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन किया गया था, अब इन पर विस्तार-पूर्वक विचार किया जायेगा।

§1. श्रम के प्रसंग मे मांग तथा सम्भरण के सम्बन्धो का जितना अध्ययन किया जा सकता है, पूंजी के प्रसंग मे उससे अधिक नही किया जा सकता। वितरण तथा विनिमय की महान केन्द्रीय समस्या के सभी तत्व परस्पर एक दूसरे को नियंत्रित करते हैं: और इस भाग के पहले दो अध्यायों मे तथा विशेषकर प्रत्यक्षरूप से पूँजी से सम्बन्धित अंशो को इस तथा इसके वाद आने वाले दो अध्यायों की भूमिका समझना चाहिए। किन्तु इनमे मुख्यरूप से अध्ययन की जानेवाली बातों का विस्तृत विश्लेषण करने से पूर्व पूंजी तथा ब्याज के आधुनिक अध्ययन के प्राचीन कृतियों से सम्बन्ध पर भी कुछ कहना उचित होगा।

अर्थविज्ञान द्वारा हमारी औद्योगिक प्रणाली मे पूँजी के महत्व को समझने मे जो सहायता मिली है वह ठोस तथा सारगर्भित है, किन्तु इससे कोई आश्चर्यजनक आविष्कार नही हुए। अर्थशास्त्रियो को अब जो भी महत्वपूर्ण चीजें ज्ञात हैं उनका योग्य व्यावसायिक व्यक्ति बहुत पहले से ही उपयोग करते है, यद्यपि वे अपने ज्ञान को स्पष्ट शब्दो मे या महीरूप से व्यक्त नही कर सके।

पूंजी के विषय में अर्थशास्त्र के आधार-भूत सिद्धान्त नये नहीं हैं, किन्तु ये साधारण जीवन की कार्यप्रणाली के मुख्य आधार हैं।

प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि आमतौर पर पूंजी के प्रयोग के लिए तब तक कुछ भी भुगतान नही करेंगे जब तक कि उस प्रयोग से कुछ लाभ प्राप्त करने की आशा न हो और प्रत्येक व्यक्ति यह भी जानता है कि ये लाभ अनेक प्रकार के होते है। कुछ लोग तीव्र जरूरत को पूरा करने के लिए चाहे यह वास्तविक हो या काल्पनिक उधार लेते है और अन्य लोगो को भविष्य के लिए वर्तमान का त्याग करने के लिए भुगतान करते है जिससे कि स्वय वे वर्तमान के लिए भविष्य का त्याग कर सकें। कुछ लोग मशीनें प्राप्त करने के लिए तथा अन्य लोग 'अन्तर्वर्ती' वस्तुओ को खरीदने के लिए उधार लेते हैं जिसमे वे चीजे तैयार कर लाभ पा सके। कुछ लोग होटलों, रगशालाओ तथा अन्य वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए उधार लेते हैं जिनसे लोगों को प्रत्यक्षरूप से सेवाएँ मिलती हैं किन्तु ये ही उन पर नियंत्रण करने वालो के लिए लाभ के स्रोत है। कुछ लोग अपने रहने के लिए दूसरों से स्वयं मकान किराये पर लेने के लिए या अपना मकान बनाने या खरीदने के साधन प्राप्त करने के लिए उधार लेते हैं। अन्य बातो के समान रहने पर, उन साधनों मे वृद्धि तथा परिणामस्वरूप ब्याज की दर मे होने वाली प्रत्येक कमी के साथ साथ देश के साधनों का मकान इत्यादि चीजों पर उपयोग उसी प्रकार बढ जाता है जिस प्रकार इनका मशीन, गोदी इत्यादि में उपयोग बढ जाता है। पत्थर के टिकाऊ मकानों की लगभग समान स्थान वाले लकड़ी के मकानों के स्थान पर मांग से यह व्यक्त होता है कि देश के धन मे वृद्धि हो रही है और पूंजी ब्याज की निम्न दर पर मिल सकती है, तथा इसका पूंजी के बाजार

एवं ब्याज की दर पर ठीक उसी प्रकार प्रभाव पड़ता है जैसे कि नयी फैक्टरियों या रेलों की माँग से पड़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि लोग आमतौर पर मुफ्त मे उधार नही देगे, क्योकि चाहे वे पूंजी का या इसके तुल्याक का कुछ भी लाभ न उठा सकें यह निश्चित है कि वे ऐसे लोगों का पता लगा लेगे जिन्हे इसके उपयोग से लाभ हो सकता है, और जो इस ऋण के लिए कुछ भुगतान करने के लिए भी तैयार होगे। अत. लोग अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए डटे रहते है।[1]

प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि प्राचीन अंग्रेज जाति (Anglo-Saxon) तथा अन्य निश्चल एवं आत्म अनुशासित जातियो मे से भी थोड़े ही लोग अपनी आय के बहुत बड़े भाग को बचाने की सोचते थे, और अब तो अनुसन्धान की प्रगति तथा नये देशों के उदय हो जाने के कारण अनेक प्रकार से पूंजी का उपयोग किया जाने लगा है: अतः प्रत्येक व्यक्ति साधारणतया यह जानता है कि किन कारणो के फलस्वरूप संचित धन के उपयोग के लिए की जाने वाली माँग के अनुपात मे उसका सम्भरण इतना कम रहा है कि उसका वह उपयोग भी अन्ततोगत्वा लाभप्रद होता है, और अत. यदि उस धन को ऋण पर दिया जाय तो उसके लिए कुछ भुगतान करने की आवश्यकता होगी। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से परिचित है कि मानव समाज की आस्थगित परितुष्टियो के स्थान पर वर्तमान परितुष्टियो को प्राथमिकता देने या अन्य शब्दो मे, 'प्रतीक्षा' करने के लिए अनिच्छुक होने के कारण धन के सचय पर नियत्रण रहा है और अब तक ब्याज की दर गिरी नही है। वास्तव मे इस विषय पर आर्थिक विश्लेषण का सही उद्देश्य इस सुविदित सत्य पर जोर देना नही है, अपितु यह प्रदर्शित करना है कि प्रथम दृष्टि मे इस साधारण प्राथमिकता के जो अपवाद दिखायी देते है उनकी अपेक्षा कितने अधिक अपवाद रहे है।[2]

---

1 पूंजी का सम्भरण इसके उपयोगों की पूर्वेक्षा (prospectiveness) से, और लोगों के भविष्य पर विचार करने के लिए तैयार न होने से नियंत्रित होता है जब कि व्यापक अर्थ में इसकी माँग इसकी उत्पादकता (productiveness) पर निर्भर रहती है। इसे भाग 2, अध्याय 4 में स्पष्ट किया गया है।

2 भाग 3, अध्याय 5, अनुभाग 3, 4 देखिए। इस त्रुटि को सुधारने का एक अच्छा उपाय इस बात में निहित है कि इस संसार की दशाओं में किंचित् सुधार करने से हम किसी दूसरे संसार में पहुँच सकते है जिसमें वृद्धावस्था तथा मृत्यु के बाद अपने अपने परिवारों के लिए कुछ शेष रखने के लिए जनसमूह इच्छुक होगा और जिसमें किसी भी रूप में संचित सम्पत्ति का नये ढंग से इतना कम लाभप्रद उपयोग हो सकेगा कि जिस सम्पत्ति में सुरक्षित रखने के लिए लोग भुगतान करने को तत्पर थे वह अन्य लोगों द्वारा ऋण पर माँगी जाने वाली मात्रा से बढ़ जायेगी और जहां परिणामस्वरूप वे लोग भी जो कि पूंजी का उपयोग करना लाभप्रद समझते थे इसकी सुरक्षा के लिए कुछ भुगतान किये जाने की माँग करेंगे। इस दशा में ब्याज सदैव ऋणात्मक होगा।

किन्तु अर्थशास्त्र को अलग-अलग प्रकार के सत्यों को पूर्णरूप प्रदान करने में तथा विशेषकर लाभ के विभिन्न अंगों व उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण एवं कठिन कार्य करना पड़ता है।

ये सत्य सर्वविदित हैं और ये ही पूंजी तथा व्याज के सिद्धान्त के आधार हैं। किन्तु साधारण जीवन से सम्बन्धित विषयों मे ये सत्य सम्भवतय अपूर्णरूप मे मिलते हैं। विशेष प्रकार के सम्बन्ध एक एक करके स्पष्ट देखे जा सकते हैं, किन्तु स्वयं निर्धारित होने वाले कारणों के पारस्परिक प्रभावों को कदाचित् ही पूर्णरूप में वर्गीकृत किया जाता है। जहां तक पूंजी का सम्बन्ध है अर्थशास्त्र का मुख्य कार्य सम्पत्ति के उत्पादन एवं संचय तथा आय के वितरण में लागू होने वाली सभी शक्तियों को क्रम मे तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों के अनुसार प्रदर्शित करना है, जिससे जहां तक पूंजी तथा उत्पादन के अन्य कारकों का प्रश्न है वे एक दूसरे को परस्पर नियंत्रित करती हुई दिखायी दें।

इसके बाद इसे उन प्रभावों का विश्लेषण करना है जिनसे लोग अपने वर्तमान तथा आस्थगित परितुष्टियों मे से चयन करते हैं, इन आस्थगित परितुष्टियों में विश्राम तथा विभिन्न प्रकार के कार्य करने के अवसर भी शामिल हैं जो स्वतः इसके पुरस्कार हैं। किन्तु यहां श्रेष्ठ स्थान बौद्धिक विज्ञान को मिला है और इससे प्राप्त सिद्धान्तों को अन्य बातों सहित अर्थशास्त्र की विशेष समस्याओं पर लागू किया जाता है।[1]

अत वाछनीय लक्ष्यों की पूर्ति मे संचित धन की सहायता से विशेषकर उस सम्पत्ति के व्यापारिक पूंजी का रूप ग्रहण कर लेने से इस विषय पर होने वाले जिन लाभों का इस अध्याय तथा अगले दो अध्यायों में हमें विश्लेषण करना है वह अधिक कठिन हो गया है। क्योंकि इन हितों या लाभों मे अनेक ऐसे तत्व निहित हैं जिनमें से कुछ व्यापक अर्थ में पूंजी के उपयोग के बदले मे मिलने वाले व्याज से सम्बन्धित हैं जब कि अन्य निवल ब्याज या उचित अर्थ मे व्याज के अश हैं। इनमे से कुछ व्यवस्था सम्बन्धी योग्यता तथा उद्यम के जिसमे जोखिम वहन करना भी शामिल है, पुरस्कार हैं, और अन्य उत्पादन के किसी एक उपादान से इतने सम्बन्धित नहीं हैं जितने कि उनके सयोजन से सम्बन्धित हैं।

पूंजी के आर्थिक सिद्धान्त का निरन्तर विकास हुआ है और इसमें एकाएक परिवर्तन नहीं हुए हैं।

पूंजी के वैज्ञानिक सिद्धान्त का इन तीन दिशाओं में निरन्तर विकास एवं सुधार का एक लम्बा इतिहास रहा है। एडम स्मिथ ने इस सिद्धान्त में प्राथमिक महत्व की प्रत्येक चीज को अस्पष्ट रूप से और रिकार्डो ने स्पष्ट रूप से बहुत हद तक उतना ही जान लिया था जितना कि अब जाना गया है: और यद्यपि इसके अनेक पहलुओं मे से किसी लेखक ने एक पर तथा दूसरे ने दूसरे पर जोर देना अधिक पसन्द किया है तब भी यह विश्वास करने का कोई उचित कारण नहीं दिखायी देता कि एडम स्मिथ के समय से किसी भी बड़े अर्थशास्त्री ने कभी भी किसी भी पहलू की पूर्णरूप से अवहेलना की है, और यह बात विशेषरूप से तय है कि व्यावसायिक लोगों को जो कुछ भी पता था रिकार्डो जैसे व्यावहारिक वित्तीय मेधा वाले व्यक्ति उससे अनवगत न थे। किन्तु इस बीच कुछ प्रगति हुई है। लगभग प्रत्येक अर्थशास्त्री ने इसके किसी न किसी भाग मे सुधार किये हैं और इसे अधिक तीक्ष्ण एव अधिक स्पष्ट रूपरेखा दी है, व उसके विभिन्न भागों के जटिल सम्बन्धों को स्पष्ट करने मे सहायता पहुंचाई है। किसी महान विचारक ने शायद ही कोई ऐसा योगदान किया हो जिसमे दूसरे का

1 भाग 3, अध्याय 5 तथा भाग 4, अध्याय 7 से तुलना कीजिए।

योगदान निरर्थक हो गया हो किन्तु निरन्तर कुछ न कुछ नया योगदान होता रहा है।[1]

सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ब्याज पर लिये

§2. किन्तु हम यदि मध्य तथा प्राचीनकाल के इतिहास को देखें तो हमें निश्चय ही उत्पादन में पूंजी के उपयोगों के विषय में जिनके लिये ब्याज दिया जाता है, स्पष्ट विचारों का अभाव मिलता है। चूंकि इस प्रारम्भिक इतिहास का हमारे अपने युग की समस्याओं पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड रहा है अत यहाँ पर इस विषय पर भी कुछ विचार करना चाहिए।

---

1 प्रो० बाह्म बावर्क ने अपने पूर्वजों द्वारा पूंजी एवं ब्याज पर लिखे गये लेखों में निहित सूक्ष्म दृष्टि का अल्पानुमान लगाया है। वह जिन सिद्धान्तों के केवल सरल अंश मानते हैं वे ऐसे लोगों के कथन प्रतीत होते हैं जो व्यवसाय के व्यावहारिक रूप से भलीभांति परिचित थे, और जिन्होंने आंशिकरूप में किसी विशेष उद्देश्य से अंशतः किसी पद्धति के प्रतिपादन के अभाव में इस समस्या के कुछ अंशों पर इतना असमान जोर दिया कि इससे अन्य बातों पर प्रकाश न डाला जा सका। पूंजी के उनके सिद्धान्त में जिस विरोधाभास का समावेश है उसका आंशिक रूप इसी प्रकार के एक असमान दबाव तथा यह न मानने का परिणाम है कि इस समस्या के अनेकों अंग एक दूसरे को परस्पर नियंत्रित करते हैं। इस तथ्य की ओर पहले ही ध्यान आकर्षित किया जा चुका है कि यद्यपि उन्होंने पूंजी की अपनी परिभाषा में से मकान तथा होटलों को तथा वास्तव में प्रत्येक ऐसी वस्तु को सम्मिलित नहीं किया जो सही अर्थ में अन्तर्वर्ती वस्तु (Intermediate Goods) न हो, तब भी ऐसी वस्तुओं के उपयोग के लिए जो कि अन्तर्वर्ती न हों, माँग का ब्याज की दर पर प्रत्यक्षरूप से उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि उनके द्वारा पारिभाषित अर्थ में पूंजी की माँग का पड़ता है। पूंजी शब्द के प्रयोग से सम्बद्ध जिस सिद्धान्त पर उन्होंने बहुत जोर दिया था वह इस प्रकार है: 'उत्पादन की प्रणालियाँ जिन पर समय लगता है अधिक उत्पादक होती हैं (Positive capital, भाग V, अध्याय IV, पृष्ठ 261), या पुनः यह कि 'किसी चक्करदार प्रक्रिया के बढ़ने के साथ साथ तकनीकी परिणाम में और आगे वृद्धि होती है।' (पूर्वोक्त पुस्तक में भाग II, अध्याय II, पृष्ठ 84), कुछ भी हो ऐसी असंख्य प्रक्रियाएं होती हैं जिनमें बहुत समय लगता है, और जो चक्करदार हैं, किन्तु उत्पादक न होने के कारण उपयोग में नहीं लायी जातीं। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कार्य और कारण को उलट दिया। वास्तविक सिद्धान्त तो यह है कि चूंकि इसके लिए ब्याज देना पड़ता है, और इसे पूंजी के उपयोग से प्राप्त किया जा सकता है, अतः उन लम्बी तथा चक्करदार प्रणालियों में जिनमें बिना आमदनी के पूंजी फँसी रहती है तब तक बचने की कोशिश की जाती है जब तक कि वे अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक उत्पादक न हों। यह तथ्य कि अनेक चक्करदार प्रणालियाँ विभिन्न मात्राओं में उत्पादक होती हैं उन कारणों में से एक है जिनसे ब्याज की दर प्रभावित होती है, और ब्याज की दर तथा चक्करदार प्रणालियों के उपयोग की मात्रा वितरण तथा विनिमय की केन्द्रीय समस्या के अनेक अंगों में से दो अंग हैं जो एक दूसरे को परस्पर निश्चित करते हैं। परिशिष्ट ञ (1) अनुभाग 3 देखिए।
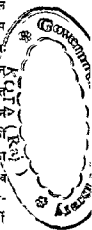
गये ऋण की बुराइयां इसके उपयोगी उपयोग से होने वाले लाभों के बहुत अधिक होती हैं और इस तथ्य के कारण पूंजी के उपयोग में होने वाले लाभ के विषय में स्पष्ट विचारों के विकास में रुकावट पैदा हुई।

आदिकालीन समाज में उद्यम में नयी पूंजी लगाने के बहुत कम अवसर मिलते थे, और जिस किसी के पास ऐसी सम्पत्ति थी जिसे तुरन्त उपयोग में लाने की आवश्यकता न हो तो उसे ब्याज लिए बिना अच्छी सुरक्षा पर अन्य लोगो को देने से कदाचित् ही अधिक क्षति उठानी पडती थी। ऋण लेने वाले साधारणतया गरीब तथा कमजोर व्यक्ति होते थे जिनकी जरूरते तीव्र थी और जिनमे सौदा करने की क्षमता बहुत थोड़ी थी। आमतौर पर ऋण देने वाले लोग या तो वे थे जो अपने पीडित पडोसियो को सहायता पहुँचाने के लिए अपने उपयोग मे न आने वाली पूंजी को स्वेच्छा से दे देते थे, या फिर व्यावसायिक साहूकार थे। जरूरत पड़ने पर इन व्यावसायिक साहूकारों के पास पहुँचते थे जो गरीब लोगो को ऐसे जाल मे फँसा कर अपनी शक्ति का बहुधा क्रूरतापूर्वक उपयोग करते थे जिससे वे बिना अधिक कष्ट सहे तथा सम्भवतया बिना अपनी या अपने बच्चों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की क्षति के छुटकारा नही पा सकते थे। न केवल अशिक्षित लोग वरन् प्रारम्भिक समय के मुनिगण, मध्यकालीन चर्च के पादरी, तथा भारत के अंग्रेज शासक ऐसा कहने के लिए प्रेरित हो गये कि साहूकार अन्य लोगों की मुसीबतो का व्यापार करते है, उनकी विपदा से लाभ उठाने की कोशिश करते है, सहानुभूति के बहाने वे दलित लोगो के लिए गड्ढे खोदते हैं।[1] समाज की ऐसी अवस्था मे विवेचना के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या इसमे सार्वजनिक लाभ है कि लोग ऐसी सविदा के अन्तर्गत ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित किये जायें जिसमे उन्हें कुछ समय बाद उस पूंजी को बढी हुई मात्रा मे लौटाना पडे: क्या एक दूसरे के साथ की गयी इस प्रकार की सभी सविदाओं के फलस्वरूप कुल मानवीय सुख मे वृद्धि की कमी नही होती।

किन्तु दुर्भाग्यवश इस कठिन एव महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्न को ऋण पर दिये गये द्रव्य के तथा किराये पर दी गयी भौतिक सम्पत्ति से प्राप्त आय के बीच दार्शनिक भेद द्वारा हल करने का प्रयत्न किया गया। अरस्तू ने कहा था कि द्रव्य अनुर्वर (barren) है, और इसे ऋण पर देकर ब्याज प्राप्त करने का अभिप्राय इसे कृत्रिम उपयोग मे लाना है। उनके विचारो का अनुकरण हुए शास्त्रीय (Scholastic) लेखको ने बडे परिश्रम एव विलक्षणता से यह तर्क दिया कि जो व्यक्ति किसी मकान

1 सें० क्राइसोस्थम के पाँचवे धर्मोपदेश से, भाग 1, अध्याय 2, अनुभाग 8 देखिए। ऐशले की Economic History, भाग VI, अध्याय VI तथा बेन्थम की On Usury से तुलना कीजिए। सूद खोरी के विरुद्ध मनोभाव का उद्गम इज्राइल के लोगों के अतिरिक्त अन्य दशाओं में सम्भवतया सभी दशाओं में, आदिम जातियों के सम्बन्धों से प्रारम्भ हुआ है। क्लिफ लेसली के विचारों के अनुसार (Essay, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 244): इसे "पूर्वैतिहासिक काल से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया गया था जब प्रत्येक समुदाय के लोग अपने आप को स्वजन मानते थे, जब कम से कम व्यावहारिक रूप में भी सम्पत्ति में साम्यवाद विद्यमान था और कोई भी व्यक्ति जिसके पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति हो वह अपने जरूरतमन्द सह-आदिवासियों के साथ उसमें हिस्सा बँटाने से इन्कार नहीं कर सकता था।"

या घोड़े को किराये पर लगाता है वह इसके उपयोग के बदले में कुछ प्रभार देने को कह सकता है क्योंकि उसने किसी चीज का आनन्द त्याग दिया है जिससे प्रत्यक्षरूप से लाभ होता है। किन्तु उन्हें द्रव्य के ब्याज के लिए इस प्रकार का कोई बहाना नही मिला: उसे उन्होंने अनुचित बतलाया क्योंकि यह ऐसी सेवा के लिए प्रभार लेना है जिसमे ऋणदाता को कुछ भी लागत नही लगानी पड़ती।[1]

मध्यकालीन विचारों में इस विषय पर भ्रम।

यदि ऋण देने मे कुछ भी लागत न लगती, यदि ऋणदाता उसका स्वयं कुछ उपयोग न कर सकता, यदि वह धनी हो तथा ऋण लेने वाला निर्धन एव जरूरतमन्द हो तो निस्सन्देह यह तर्क किया जा सकता है कि वह अपने द्रव्य को निःशुल्क उधार देने के लिए नैतिक दृष्टि से बाध्य हो जाता है। किन्तु इन्ही आधारो पर उसे अपने निर्धन पड़ोसी को बिना प्रभार लिए उस मकान को देने के लिए बाध्य होना चाहिए था जिसमे वह स्वयं नही रहता या उसे अपने घोड़े को स्वयं जरूरत न होने पर एक दिन के लिए उसे निःशुल्क देने के लिए बाध्य होना चाहिए था। अतः इन लेखको के सिद्धान्तो मे वास्तव मे यह अनिष्टकर भ्रम निहित था, और इससे लोगों के मस्तिष्को मे भी ऐसा ही भ्रम उत्पन्न हो गया कि ऋणी और ऋणदाता की विशेष परिस्थितियो से कुछ भी सम्बन्ध न रखते हुए द्रव्य उधार देने से, अर्थात् सामान्यरूप मे वस्तुओं पर अधिकार प्राप्त करने की शक्ति देने से ऋणदाता को उसी प्रकार का त्याग नही करना पड़ता, तथा ऋणी को उसी प्रकार का लाभ नही होता जैसा कि किसी विशेष वस्तु को उधार देने पर होता है: उन्होंने इस तथ्य को अन्धकार मे डाल दिया कि जो व्यक्ति द्रव्य ऋण पर लेता है वह दृष्टान्त के लिए, जवान घोड़ा खरीद सकता है जिसकी सेवाओ का वह उपयोग कर सकता है तथा जिसे ऋण चुकाने का समय आने पर ठीक उतनी ही अच्छी कीमत पर बेच भी सकता है जितने पर उसने उसे खरीदा था। ऋणदाता ऐसा कर सकने की क्षमता का त्याग करता है और ऋणी इस क्षमता को प्राप्त करता है: घोड़े की क्रय कीमत के बराबर ऋण देने मे तथा घोड़ा उधार देने मे कोई सारभूत अन्तर नही है।[2]

आधुनिक संसार में इसी प्रकार

§3. इतिहास की कुछ अशो मे पुनरावृत्ति हुई है. और आधुनिक पाश्चात्य जगत मे किसी नये सुधारवादी प्रवर्तन (impulse) ने ब्याज के स्वरूप के विषय मे किसी दूसरे भ्रमकारक विश्लेषण से शक्ति प्राप्त की है, और स्वय इसे शक्ति भी

1 वे ऐसी चीजों के बीच भी भेद प्रदर्शित करते हैं जिन्हें किराये पर लगा कर उसी रूप में वापिस करना पड़ता है तथा जिन्हें ऋण पर लेने पर केवल उनके तुल्यांकों में लौटाना पड़ता है। यह विभेद यद्यपि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है किन्तु इसका व्यावहारिक महत्व बहुत कम है।

2 आर्कडेकन कनिंघम ने उन सूक्ष्म विभेदों का अच्छा विवरण दिया है जिनसे मध्यकालीन चर्च ने ब्याज पर ऋण देने के विषय में निषेध करने का और विशेषकर उन दशाओं में निषेध करने का स्पष्टीकरण किया था जिसमें इस प्रकार का निर्णय संगठित समाज के लिए अधिक हानिकारक हो सकता था। ये सूक्ष्म विभेद उन विधिकल्पनाओं (fictions) से मिलते जुलते हैं जिनसे न्यायाधीशों ने धीरे धीरे कानूनों की शब्दा-

के कारणों से भ्रमपूर्ण विश्लेषण का बहुत प्रसार हुआ है।

प्रदान की है। सभ्यता का जैसे जैसे प्रसार हुआ, जरूरतमन्द लोगों को ऋण पर सम्पत्ति का मिलना धीरे धीरे कठिन हो गया और कुल ऋण के अनुमान मे यह ऋण बहुत कम रह गया। किन्तु व्यवसाय मे उत्पादक उपयोग के लिए ऋण पर निरन्तर अधिकाधिक पूँजी मिलने लगी। परिणामस्वरूप यद्यपि अब यह नही समझा जाता कि ऋण लेने वाले केवल विपत्तिग्रस्त लोग होते है, किन्तु सभी उत्पादको का चाहे वे ऋण पर ली गयी पूँजी का प्रयोग करते हो या नही, उस पूँजी के व्याज को उन खर्चों मे सम्मिलित करना आपत्तिजनक समझा जाता है जिन्हें वे दीर्घकाल तक व्यवसाय मे लगे रहने के लिए अपनी वस्तुओ की कीमतो से प्राप्त करना चाहते है। इस कारण तथा वर्तमान पद्धति मे सट्टेबाजी मे लगातार सफलता मिलने के कारण बहुत बडी सम्पत्ति एकत्रित करने के नये अवसर मिलने से यह तर्क किया गया है कि आधुनिक समय मे ब्याज देने से श्रमिक वर्गों के लोग यद्यपि प्रत्यक्षरूप से नही तो भी अप्रत्यक्षरूप से पीडित होते हैं, और इससे वे ज्ञान के प्रसार के कारण प्राप्त होने वाले लाभ मे अपना उचित भाग प्राप्त नही कर पाते। अत यह व्यावहारिक निष्कर्ष उचित ही निकाला गया है कि सामान्य सुख के लिए किसी व्यक्ति को निजी रूप से उत्पादन के किसी भी साधन का स्वामित्व न दिया जाय, और न उसे व्यक्तिगत उपयोग के लिए आवश्यक आनन्द के अतिरिक्त आनन्द के किसी अन्य प्रत्यक्ष साधन का स्वामित्व दिया जाय।

रौड्बर्टस तथा कार्ल मार्क्स के व्यावहारिक प्रस्तावों तथा उनके मूल्य के सिद्धान्त के बीच सम्बन्ध। उनके मुख्य निष्कर्ष की एक मिथ्या पूर्वधारणा में कल्पना की गयी थी।

इस व्यावहारिक निष्कर्ष का उन तर्कों द्वारा पक्षपोषण किया गया है जिन पर हमे प्रकाश डालना है, किन्तु फिलहाल विलियम थॉम्सन, रौडवर्टस, कार्ल मार्क्स, तथा अन्य विचारको द्वारा इसके पक्ष मे दिये गये सिद्धान्त से ही हम सम्बन्ध रखेगे। उन्होने यह तर्क दिया था कि श्रम से सदैव मजदूरी तथा इसमे सहायता पहुँचाने के लिए लगायी गयी पूँजी की टूटफूट की पूर्ति के अतिरिक्त 'अधिशेष'[1] प्राप्त होता है। और श्रम का अहित करने से अन्य लोगो द्वारा इस अधिशेष का शोषण किया जाता है। किन्तु यह कल्पना कि इस अधिशेष का सम्पूर्ण भाग श्रम की उपज है उस बात को पहले से ही निश्चित मान लेती है जिसे वे इसकी सहायता से अन्ततोगत्वा सिद्ध करने का दावा करते है। वे इसे सिद्ध करने का कोई भी प्रयास नही करते, और यह सत्य भी नही है। यह बात सत्य नही है कि मशीन की टूटफूट के लिए गुँजाइश रखने के बाद किसी फैक्टरी मे सूत की कताई उसमे काम करने वाले लोगो के श्रम का उत्पाद है। यह तो मालिक तथा अधीनस्थ प्रबन्धको, तथा विनियोजित पूँजी के साथ श्रम का उत्पाद है, और स्वय पूँजी भी श्रम एव प्रतीक्षा का उत्पाद है और अत कताई भी विभिन्न प्रकार के श्रम का तथा प्रतीक्षा का उत्पाद है। यदि हम यह मान ले कि यह केवल श्रम का ही, न कि श्रम एव प्रतीक्षा का, उत्पाद है तो इसमे सन्देह नही कि

बलो का जिनकी सहज व्याख्या बुरी हो सकती थी, स्पष्टीकरण किया। दोनों दशाओं में कुछ व्यावहारिक बुराई को दूर किया गया है, यद्यपि इससे भ्रम में डालने वाले झूठे विचारों की आदतें पड़ गयी हैं।

1 इस वाक्यांश का प्रयोग मार्क्स ने किया था। रौड्बर्टस ने इसे अतिरिक्त (plus) मात्रा कहा था।

हमें निष्ठुर तर्क द्वारा यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडेगा कि ब्याज जो कि प्रतीक्षा का फल है, लेने का कोई औचित्य नही प्रतीत होता, क्योकि पूर्वधारणा मे ही यह निष्कर्ष भी निहित है। रौड्बर्टस तथा मार्क्स अपनी पूर्वधारणा के पक्ष मे रिकार्डो का हवाला देते है, किन्तु वास्तव मे यह बात उनके स्पष्ट कथन तथा उनके मूल्य के सिद्धान्त के सामान्य आशय के उतने ही विरुद्ध है जितने कि साधारण समझ के विरुद्ध है।[1]

अन्य शब्दो मे यदि यह सत्य है कि परितुष्टि को भविष्य के लिए स्थगित करने से, स्थगित करने वाले को सामान्य रूप मे ठीक उसी प्रकार का त्याग करना पडता है जैसा कि अतिरिक्त परिश्रम करने मे श्रमिक को करना पडता है और यदि इसे स्थगित करने से मनुष्य उत्पादन की उन प्रणालियो का प्रयोग कर सकता है जिनकी प्रथम लागत बड़ी होने पर भी कुल आनन्द मे उतनी ही निश्चितता से वृद्धि होती है जितनी कि श्रम मे होने वाली वृद्धि से होती है, तो यह कथन सत्य नही हो सकता कि किसी चीज का मूल्य उस पर लगे श्रम पर ही निर्भर रहता है। इस पूर्वधारणा को सिद्ध करने के हर प्रयास मे आवश्यक रूप से यह मान्यता उपलक्षित है कि पूँजी से मिलने वाली सेवा 'मुफ्त' है, इसे बिना त्याग किये प्राप्त किया गया है, और अत इसके मिलते रहने के प्रलोभन के लिए ब्याज के रूप मे पूँजी मे किसी पुरस्कार की आवश्यकता नही होती और पूर्वाधारणा से भी इसी निष्कर्ष को सिद्ध करना था। रौडबर्टस तथा मार्क्स ने पीडा के प्रति जो सहानुभूति दिखायी है उसे सदैव आदर की दृष्टि से देखा जायेगा किन्तु जिसे उन्होने अपने व्यावहारिक प्रस्तावो का वैज्ञानिक आधार माना वह ऐसे चक्रवत तर्को की श्रृखला प्रतीत होती है जिनका यह अभिप्राय था कि ब्याज का कोई आर्थिक औचित्य नही होता जब कि उनकी पूर्वधारणाओ मे वह परिणाम सदैव निहित था, यद्यपि जहाँ तक मार्क्स का सम्बन्ध है यह हीगल के उन वाक्याशो की ओट मे छिपी हुई थी जिनका उन्होने विशेषकर प्रयोग किया है जैसे कि वे अपने प्राक्कथन मे व्यक्त करते है।

निवल तथा सकल ब्याज

§4. हम अब इनका विश्लेषण करेंगे। जब हम यह कहते है कि ब्याज केवल पूँजी का उपार्जन है, या केवल प्रतीक्षा का फल है तो हमारा अभिप्राय 'निवल' ब्याज से ही होता है, किन्तु आमतौर पर लोग ब्याज का जो अर्थ लगाते हैं उसमे इसके अलावा अन्य चीजें भी शामिल रहती है, और अत इसे सकल ब्याज कहा जा सकता है।

सकल ब्याज में जोखिम के विरुद्ध कुछ बीमा और प्रबन्ध का उपार्जन भी शामिल

वाणिज्यिक सुरक्षा एव साख का संगठन जितना ही निम्नतर तथा अधिक प्रारम्भिक होता है, ये अतिरिक्त चीजे उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार दृष्टान्त के लिए मध्यकालीन युग मे जब कोई राजकुमार अपनी भावी मालगुजारी का पूर्वानुमान लगाना चाहता था तो वह शायद चाँदी के एक हजार औंस उधार ले लेता था, और वर्ष के अन्त मे पन्द्रह सौ औंस चाँदी लौटाने का निश्चय करता था। उस समय कोई भी ऐसी पूर्ण सुरक्षा नही थी कि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी ही करेगा। यदि यह पूर्णरुप से निश्चित होता कि वह इसे पूरा करेगा तो सम्भवतः उधार देने वाला वर्ष

---

1 परिशिष्ट झ (1) अनुभाग 2 देखिए।

रहता है और इसलिए यह ऋण को अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

के अन्त मे उस प्रतिज्ञा के बदले केवल तेरह सौ औंस चाँदी लेने को तैयार हो गया होता। ऐसी दशा मे ऋण देने की नाममात्र दर जहाँ पचास प्रतिशत थी, वहाँ असली दर केवल तीस प्रतिशत ही थी।

जोखिम के विरुद्ध-बीमा के लिए छूट रखने की आवश्यकता इतनी स्पष्ट है कि इसकी बहुधा अवहेलना नही की जा सकती। किन्तु यह बात कम स्पष्ट दिखायी देती है कि प्रत्येक ऋण से ऋणदाता को कुछ कष्ट उठाना पड़ता है, और यह कि उस दशा मे जब ऋण देने मे पर्याप्त जोखिम रहता है तो बहुधा इन्हें यथासम्भव कम से कम रखने के लिए बहुत बडा कष्ट उठाना पड़ता है, तथा यह कि ऐसी दशा मे ऋण लेने वाले को जो चीज व्याज प्रतीत होती है वह ऋणदाता के दृष्टिकोण से किसी झंझट वाले व्यवसाय के प्रबन्ध का उपार्जन है।

इस समय इंग्लैंड मे पूँजी पर निवल व्याज तीन प्रतिशत से कुछ कम है, क्योंकि सट्टाबाजार के उन प्रथम श्रेणी के साखपत्रों (securities) मे जिनमे मालिक को बिना पर्याप्त कष्ट या खर्च के निर्दिष्ट आय मिलती है विनियोजन करने से इससे अधिक धनराशि प्राप्त नही की जा सकती। जब हम योग्य व्यावसायिक लोगों को पूर्णरूप से सुरक्षित बन्धकों पर (मान लीजिए) चार प्रतिशत की दर पर ऋण लेते हुए पाते हैं तो हम यह मानते हैं कि चार प्रतिशत के उस सकल व्याज मे तीन प्रतिशत से थोड़ा कम निवल व्याज या वास्तविक व्याज, तथा एक प्रतिशत से अधिक प्रबन्ध का उपार्जन सम्मिलित है।[1]

ऐसी दशाएँ जिनमें कुल व्याज बहुत

पुन. बन्धक रखकर ऋण देने वाले व्यक्ति के व्यवसाय मे कुछ भी जोखिम नही उठाना पड़ता, किन्तु वह अधिकांशतया प्रति वर्ष 25 प्रतिशत या उससे भी अधिक दर पर ऋण देता है, और इसका अधिकाश भाग वास्तव में उलझन वाले व्यवसाय के प्रबन्ध का उपार्जन है। या इससे भी अधिक दूरस्थ उदाहरण लेते हुए, हमें लन्दन

---

1 ऋणदाता कभी कभी थोड़े समय के लिए किये जाने वाले बन्धकों की अपेक्षा लम्बे समय तक के लिए किये जाने वाले बन्धकों की कभी तो अधिक और कभी कम खोज में रहते हैं। लम्बे समय के बन्धकों में बन्धकों को बार बार नये करने का झंझट दूर हो जाता है, किन्तु इससे ऋणदाता लम्बे समय तक अपने द्रव्य के ऊपर अधिकार से वंचित हो जाता है, और उसकी स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है। प्रथम श्रेणी के सट्टा बाजार के साखपत्र में बहुत लम्बे समय तथा बहुत थोड़े समय तक के बन्धकों के लाभ निहित हैं क्योंकि उन्हें रखने वाला जब तक चाहे रख सकता है और इच्छा करने पर द्रव्य में परिवर्तित कर सकता है। यदि उस समय साख मन्दी में हो और अन्य लोग पास में नकद द्रव्य रखना चाहते हों तो उसे घाटे पर ही बेचना पड़ेगा। यदि इन्हें सदैव बिना क्षति के वसूल किया जा सके और यदि इनके क्रय विक्रय में दलाल की फीस न देनी पड़े तो इनसे ऋणदाता के मनपसन्द समय पर माँगते ही लौटाने की शर्त पर दिये जाने वाले ऋण से अधिक आय प्राप्त नहीं हो सकती, और यह आय किसी निश्चित समय के लिए चाहे यह अवधि लम्बी हो या अल्प, दिये गये ऋण पर मिलने वाले व्याज की अपेक्षा सदैव कम होगी।

तथा पेरिस में, और सम्भवतया अन्यत्र भी ऐसे लोग मिलते हैं जो फल बेचने वालों को ऋण देकर अपनी आजीविका चलाते हैं। बहुधा दिन शुरू होते ही फल खरीदने के लिए द्रव्य उधार दे दिया जाता है, और शाम को बिक्री समाप्त होने पर इसे दस प्रतिशत के लाभ पर लौटा दिया जाता है : इस व्यापार मे बहुत कम जोखिम है, और द्रव्य शायद ही कभी वापिस न मिला हो।[1] दस प्रतिशत प्रतिदिन के हिसाब से विनियोजित नगण्य धन से भी वर्ष के अन्त तक इनके अरबों पौं० हो जायेंगे। किन्तु फल बेचने वालों को ऋण देकर कोई भी धनी नही हो सकता, क्योंकि कोई भी इस प्रकार से अधिक धनराशि ऋण पर नही दे सकता। ऐसे ऋण पर मिलने वाला ब्याज वास्तव मे ऐसे किस्म के काम का उपार्जन है जिसमे थोड़े ही पूंजीपतियों को रुचि होती है।

ऊँचा होता है।

§5. अब उन अतिरिक्त नागरिकों के विषय मे कुछ अधिक विश्लेषण करना आवश्यक हो गया है जो किसी व्यवसाय मे लगी हुई अधिकांश पूंजी के उधार पर लिए जाने के कारण उत्पन्न होते है। अब हम यह कल्पना करते हैं कि दो व्यक्ति समान व्यवसायों को चला रहे है, उनमे से एक अपनी निजी पूंजी से तथा दूसरा मुख्यतया उधार पर ली गयी पूंजी से कार्य कर रहा है।

सकल ब्याज का आगे और विश्लेषण।

इन दोनो ही व्यक्तियो को एक प्रकार के जोखिम उठाने पडते है, जिन्हे उस विशेष व्यवसाय के व्यापारिक जोखिम कहा जा सकता है। ये बाजार मे फैशन मे एकाएक परिवर्तनों से, नये आविष्कारो से, समीप मे नये एव शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों के आ जाने इत्यादि से, उनके कच्चे माल तथा तैयार वस्तुओ के बाजारो मे उतार-चढाव से उत्पन्न होते है। किन्तु ऐसे भी जोखिम हैं जिनका भार उधार ली हुई पूंजी से काम चलाने वाले को, न कि दूसरे को, उठाना पडता है।

व्यापारिक जोखिम।

और इन्हे हम व्यक्तिगत जोखिम कह सकते है। क्योंकि जो व्यक्ति दूसरे को व्यावसायिक उद्देश्यो में लगाने के लिए पूंजी ऋण पर देता है उसे उधार माँगने वाले के व्यक्तिगत आचरण या कुशलता मे कुछ बुराई या कमी होने की सम्भावना के विरुद्ध बीमे के रूप मे ऊँचा ब्याज लेना पडता है।[2]

व्यक्तिगत जोखिम।

ऋण लेने वाला जैसा देखने मे लगता है उसकी अपेक्षा कम योग्य, कम शक्तिशाली या कम ईमानदार हो सकता है। उसे एकदम सामने असफलता मिलने तथा सट्टे वाले उद्यम से हानि के कारण दिखायी देने पर अपने को इससे अलग रखने के वही प्रलोभन नही मिलते जो अपनी ही पूंजी से व्यवसाय चलाने वाले को मिलते है। इसके विपरीत उसके सम्मान का स्तर ऊँचा न होने पर वह अपनी क्षतियों के बारे मे बहुत अधिक चिंतित नही होगा क्योंकि यदि वह अपने को शीघ्र ही अलग कर लेता है तो उसे उन सारी चीजों से हाथ धोना पडेगा जो उसकी अपनी थी, और यदि वही सट्टे

व्यक्तिगत जोखिमों का विश्लेषण।

---

1 पुनः डा० जेसप (Arcady, पृष्ठ 214) हम बतलाते हैं कि 'पशु बाजारों की सरहदों में ऐसे छोटे छोटे अनेक साहूकार होते हैं जो 'आँख के इशारे' से ही सट्टेबाजों को पेशगी देते हैं, और कभी कभी विशेष दशाओं में 200 पौंड तक की धनराशि को दस प्रतिशत के सकल ब्याज पर चौबीस घण्टों के लिए ऋण पर देते हैं।

2 आगे अध्याय 8, अनुभाग 2 भी देखिए।

को चलने दे, तो जो कुछ भी अतिरिक्त क्षति होगी वह उसके साहूकारों को ही उठानी पड़ेगी, तथा जो कुछ भी लाभ होगा वह स्वयं उसे ही मिलेगा। अनेक साहूकार अपने कर्जदारो की इस प्रकार की अर्द्धकपटपूर्ण निष्क्रियता से हानि उठाते है, और कुछ लोग जानबूझ कर ठगी करने से हानि उठाते है: दृष्टान्त के लिए ऋणदाता रहस्यपूर्ण तरीको से उस सम्पत्ति को जो कि वास्तव मे उनके साहूकारो की है, तब तक छिपाये रख सकता है जब तक कि उसकी धनहीनता दूर न हो जाय, और वह नये व्यावसायिक कार्य मे प्रवेश न कर ले। वह धीरे धीरे बिना बहुत अधिक संदेह पैदा किये अपने गुप्त रक्षित कोषो को उपयोग मे ला सकता है।

सकल ब्याज में बराबर होने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती,

अतः उधार लेने वाले को पूँजी के ऋण के भुगतान के बदले मे जो कीमत देनी पड़ती है, तथा जिसे वह ब्याज मान सकता है उसे ऋणदाता के दृष्टिकोण से लाभ मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। क्योंकि इसमे बड़े बड़े जोखिमो के विरुद्ध बीमा तथा उन जोखिमो को यथासम्भव कम से कम करने की दुष्कर व्यवस्था करने का उपार्जन भी शामिल है। इन जोखिमो के रूप मे तथा प्रबन्ध के कार्य मे परिवर्तनों से द्रव्य के उपयोग के लिए भुगतान किये जाने वाले सकल ब्याज मे भी तदनुरूप परिवर्तन होगे। अतः प्रतिस्पर्द्धा को सकल ब्याज को बराबर करने की प्रवृत्ति नही है: इसके विपरीत, ऋणदाता तथा ऋणी अपने व्यवसाय को जितने ही अच्छे ढग से समझ सकेंगे कुछ श्रेणियो के ऋणी अन्य की अपेक्षा उतने ही अधिक निश्चितरूप से कम दर पर ऋण प्राप्त कर सकेंगे।

किन्तु निवल ब्याज में पायी जाती है।

हम आधुनिक द्रव्य बाजार के उस अद्भुत कुशल संगठन का बाद मे चल कर अध्ययन करेंगे जिससे पूँजी को ऐसे स्थान से जहाँ वह हुतायत मे हो उस स्थान मे जहाँ इसका अभाव हो स्थानान्तरित किया जाता है। या एक ऐसे व्यवसाय से जिसमे कटौती हो रही हो उस व्यवसाय मे स्थानान्तरित किया जाता है जिसका विकास हो रहा हो' और फिलहाल हम यह निश्चित मानकर सतोष करेंगे कि एक ही पाश्चात्य देश मे दो विभिन्न प्रकार के विनियोजनो मे ऋण पर पूँजी देने से जो निवल ब्याज प्राप्त होगा उसकी दरो मे तनिक भी अन्तर होने से सम्भवतया अप्रत्यक्ष स्रोतो से पूँजी का एक से दूसरे विनियोजन मे उपयोग होने लगेगा।

यह सत्य है कि यदि दोनो विनियोजन छोटे पैमाने पर हो, और इसके विषय मे कुछ ही लोग जानते हो तो पूँजी का प्रवाह मन्द हो सकता है। दृष्टान्त के लिए यह हो सकता है कि एक व्यक्ति छोटे बन्धक पर पाँच प्रतिशत ब्याज दे रहा हो, जब कि उसका पडोसी किसी ऐसे बन्धक पर चार प्रतिशत ही दे रहा हो जिसमे कोई अधिक अच्छी सुरक्षा नहीं है, किन्तु बडे पैमाने पर चलने वाले काम धन्धो मे निवल ब्याज की दर (जहाँ तक उसे लाभ के अन्य अगो से अलग किया जा सके) इग्लैड के सभी भागो मे लगभग एक ही रहती है। आगे पाश्चात्य जगत के विभिन्न देशो मे निवल ब्याज की औसत दरो मे अन्तर तीव्रता से कम होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क मे सामान्य विकास हो रहा है और एक विशेष कारण यह भी है कि उन सभी देशो के प्रमुख पूँजीपति बडी मात्रा मे सट्टा बाजार के साखपत्रो को रखते हैं जिनसे बराबर ही आय प्राप्त होती है और जो समूचे संसार मे किसी भी दिन समान कीमत पर बेचे जाते हैं।

द्रव्य बाजार का विवेचन करते समय हमें उन कारणों का अध्ययन करना होगा जिनसे अन्य समयों की अपेक्षा कभी कभी पूंजी का तुरन्त उपयोग करने के लिए कहीं अधिक मात्रा में सम्भरण होता है, और जिनसे सुरक्षा अच्छी होने और जरूरत पड़ने पर अपना द्रव्य शीघ्रतापूर्वक वापस लिया जा सकने के कारण कभी कभी बैंक वालों तथा अन्य लोगों को ब्याज की बहुत कम दर से ही संतुष्ट होना पड़ता है। ऐसे समय में वे अल्पकाल के लिए उन लोगों को भी कम ब्याज पर ऋण देने को तैयार रहते हैं जहां उनकी पूंजी पूर्णरूप में सुरक्षित नहीं होती। ऋणी में किसी प्रकार की कमजोरी का संकेत मिलने पर उन्हें क्षति पहुँचने का जो जोखिम उठाना पड़ता है उसे ऋण को फिर से नया करने से अस्वीकार करने की उनकी शक्ति के कारण बहुत कम कर दिया जाता है। और चूंकि अच्छी सुरक्षा पर दिये जाने वाले अल्पकालीन ऋण से केवल नाममात्र ब्याज मिलता है, अतः उन्हें प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण ब्याज जोखिम के विरुद्ध बीमा है और उनकी अपनी झंझट का पारिश्रमिक है। किन्तु दूसरी ओर इस प्रकार के ऋण ऋणी के लिए वास्तव में अधिक सस्ते नहीं होते : वे उन जोखिमों से घेर देते हैं जिन्हें कि दूर करने के लिए वह बहुधा ब्याज की कहीं ऊँची दर देने को तैयार होगा। क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश उसके साख को क्षति पहुँचे या द्रव्य बाजार की अव्यवस्था से ऋण योग्य पूंजी का अस्थायी अभाव हो जाय तो वह शीघ्र ही महान संकट में पड़ सकता है। अतः व्यापारियों को केवल अल्पकाल के लिए बहुत नीची दरों पर जो ऋण दिये जाते हैं वे वास्तव में अभी अभी विवेचन किये गये सामान्य नियम के अपवाद नहीं हैं।

§6. उत्पादन में आय के साधनों के विनियोजन का सामान्य स्रोत दो धाराओं में प्रवाहित होता है। इनमें अपेक्षाकृत छोटी धारा संचित स्टाक में होने वाली नयी नयी वृद्धियों की है। बड़ी धारा केवल उन चीजों की स्थानपूर्ति करती है जो नष्ट हो जाती है, चाहे वे भोजन, इंधन इत्यादि की भाँति तुरन्त उपभोग के कारण या रेल की पटरियों की टूटफूट के कारण या घास फूस की छत अथवा व्यापारिक निर्देशिका के उपयोग में समय के व्यतीत होने के साथ साथ आने वाली कमी के कारण या इन सभी कारणों के सामंजस्य से नष्ट हो जाती हैं। दूसरी धारा का वार्षिक प्रवाह, ऐसे देश में भी सम्भवतया कुल पूंजी के स्टाक के एक चौथाई से कम नहीं है जहां पूंजी के प्रचलित रूप इंग्लैंड की भाँति स्थायी है। अतः अभी यह कल्पना करना असंगत नहीं है कि सामान्यतया पूंजी के मालिक इसके विभिन्न रूपों को समय की सामान्य दशाओं के अनुरूप डालने में मुख्यतया समर्थ रहे हैं और वे इसके अलग अलग विनियोजनों से लगभग बराबर ही अच्छी निवल आय प्राप्त कर सकते हैं।

ब्याज की दर सही अर्थ में नये विनियोजनों पर ही लागू होती है। पुराने विनिजनों का मूल्य उनके उपार्जन से नियंत्रित होता है।

केवल इस कल्पना के आधार पर हमें यह मानने की स्वतंत्रता है कि सामान्यतया पूंजी कुछ खास निवल ब्याज की प्राप्ति की प्रत्याशा में संचित की जाती है जो कि इसके सभी रूपों में बराबर होता है। क्योंकि इस बात की बार-बार पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती कि 'ब्याज की दर' वाक्यांश पूंजी के पुराने विनियोजनों पर केवल बहुत सीमित अर्थ में ही लागू होता है। दृष्टान्त के लिए हम शायद यह अंकन कर सकते हैं कि इस देश के विभिन्न व्यवसायों में लगभग तीन प्रतिशत ब्याज की दर पर सात अरब पौ० का विनियोजन किया गया है। किन्तु ऐसा कहना अनेक उद्देश्यों के लिए

सुविधाजनक तथा न्यायसंगत होने पर भी सही नहीं है। वास्तव में कहना यह चाहिए कि यदि उनमें से प्रत्येक व्यवसाय में (अर्थात् सीमान्त विनियोजनों में) नयी पूंजी के विनियोजनों पर निवल ब्याज की दर लगभग तीन प्रतिशत हो तो विभिन्न व्यवसायों में विनियोजित सम्पूर्ण व्यापारिक पूंजी से मिलने वाली कुल निवल आय ऐसी होगी कि इसे 33 वर्षों के क्रय (अर्थात् तीन प्रतिशत ब्याज की दर) पर पूंजीकृत करने पर लगभग सात अरब पौं० हो जायेंगे। क्योंकि भूमि सुधार में या इमारत खड़ी करने में, रेल या मशीन तैयार करने में पहले से ही विनियोजित पूंजी का मूल्य इससे भविष्य में मिलने वाली निवल आय (या आभास-लगान) के कुल पूर्वप्रापित मूल्य के बराबर होता है और यदि इसकी भावी आय अर्जित करने की शक्ति कम हो जाय तो इसका मूल्य भी तदनुसार घट जायेगा, और यह मूल्य ह्रास के लिए छूट रखने के बाद उस अपेक्षाकृत कम आय के पूंजीकृत मूल्य के बराबर होगा।

नाममात्र ब्याज के विपरीत वास्तविक ब्याज के अनुमान द्रव्य की भावी क्रयशक्ति के बारे में की जाने वाली कल्पनाओं पर आधारित होते हैं।

§7. इसके विपरीत दिशा में लागू होने वाले किसी विशेष कथन के अभाव में हम इस सारे ग्रन्थ में यह कल्पना करते आ रहे हैं कि सभी मूल्यों को उसी प्रकार निश्चित क्रयशक्ति वाले द्रव्य के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिस प्रकार खगोलवेत्ता दिन के प्रारम्भ या अन्त को वास्तविक सूर्य की अपेक्षा आकाश में समान रूप से विचरण करने वाले औसत सूर्य के प्रसंग मे निर्धारित करने को कहते हैं। द्रव्य की क्रयशक्ति में होने वाले परिवर्तनों के कारण ऋण दिये जाने की शर्तों पर जो प्रभाव पड़ते हैं उनका अल्पकालीन ऋणों को बाजार में सर्वाधिक महत्व है। ऐसा बाजार अनेक बातों में अन्य किसी बाजार की अपेक्षा भिन्न होता है, और इसके प्रभावों का पूर्ण विवेचन बाद में ही करेंगे। किन्तु मोटे रूप में इन्हें यहाँ पर प्रायः निरपेक्ष सिद्धान्त के अंग के रूप में ध्यान मे रखना चाहिए क्योंकि ऋण लेने वाला ब्याज की जिस दर पर ऋण देने को तत्पर रहता है उससे उन लाभों को मापा जाता है जिन्हें वह पूंजी के उपयोग से इस कल्पना पर प्राप्त करना चाहता है कि द्रव्य की क्रयशक्ति उधार लेते तथा लौटाते समय समान रहती है।

अल्पकाल में इसे वस्तुओं के रूप में सबसे अच्छा मापा जा सकता है। द्रव्य के मूल्य में वृद्धि से ब्याज की वास्तविक दर नाममात्र से ऊंची हो जाती है।

दृष्टान्त के लिए हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि एक व्यक्ति इस संविदा पर 100 पौं० उधार लेता कि वर्ष के अन्त में वह 105 पौं० लौटायेगा। यदि इस बीच द्रव्य की क्रयशक्ति 10 प्रतिशत बढ जाय (या सामान्य कीमतें 10 से लेकर 11 प्रतिशत तक घट जायें) तो वह 105 पौं० जो कि उसे लौटाने है, तब तक प्राप्त नही कर सकता जब तक कि वह उन वस्तुओं के जो कि वर्ष के प्रारम्भ मे इस कार्य के लिए पर्याप्त थे एक-दसवें भाग के बराबर और अधिक विक्रय न करें। यदि यह कल्पना करें कि सामान्य चीजो की तुलना मे उसकी चीजों का मूल्य बदला नही है तो उसे वर्ष के अन्त में 100 पौं० के ऋण को ब्याज सहित लौटाने के लिए वर्ष के प्रारंभ के भाव पर 115 पौ० 10 शि० के बराबर मूल्य की वस्तुएं देनी पड़ेंगी। अतः उसे तब तक घाटा सहना होगा जब तक कि उसकी वस्तुओं की कीमत मे $15\frac{1}{2}$ प्रतिशत की वृद्धि न हो जाय। उसके द्रव्य से उपयोग के बदले में नाममात्र के लिए वह यद्यपि 5 प्रतिशत ही देता है किन्तु वास्तव में उसे $15\frac{1}{2}$ प्रतिशत का भुगतान करना पड़ता है।

इसके विपरीत, यदि कीमतें इतनी ऊँची चढ़ जायें कि वर्ष में द्रव्य की क्रयशक्ति

10 प्रतिशत घट जायें और वह ऐसी चीजों के लिए 100 पौंड प्राप्त करे जिनकी प्रारम्भिक लागत 90 पौं० हो तो ऋण के लिए 5 प्रतिशत ब्याज देने की अपेक्षा अपने अधिकार में द्रव्य लेने के लिए वास्तव में स्वयं उसे $5\frac{1}{2}$ प्रतिशत मिलेगा।[1]

वाणिज्यिक कार्य में बारी-बारी से स्फीति तथा विस्फीति आने के कारणों का विवेचन करते समय हम यह देखेंगे कि ये दोनों द्रव्य की क्रयशक्ति में परिवर्तनों के कारण ब्याज की वास्तविक दर मे होने वाले उतार चढ़ाव से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित हैं। क्योंकि जब कीमतें बढने लगती है तो लोग द्रव्य उधार लेने तथा चीजें खरीदने के लिए दौड़ते है, और इस प्रकार वे कीमतों के बढ़ने में सहायक होते है। इससे व्यवसाय में तेजी आ जाती है, तथा इसका असावधानी तथा फिजूलखर्ची के साथ प्रबन्ध किया जाता है। जो लोग ऋण पर ली हुई पूंजी से कार्य करते हैं वे वास्तव में उस ऋण से कम मूल्य लौटाते हैं, और समाज पर इसका भार डाल कर स्वयं अपने को धनी बनाते है। बाद मे चलकर जब साख मे अव्यवस्था पैदा हो जाती है तथा कीमतें घटने लगती है तो प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं को अपने पास से हटाना चाहता है तथा इसके बदले मे द्रव्य को, जिसका मूल्य तीव्रतापूर्वक बढ़ता है, प्राप्त करना चाहता है। इससे कीमत और भी तेजी से गिरने लगती है, तथा इनमे और अधिक गिरावट आने के कारण साख में और भी अधिक रुकावट पैदा हो जाती है तथा इस प्रकार लम्बे समय तक कीमत घटती जाती है क्योंकि कीमतें पहले ही घट चुकी है।

हम यह देखेंगे कि बहुमूल्य धातुओं के सम्भरण मे होने वाले उतार चढ़ाव से कीमतो मे बहुत कम मात्रा मे उतार चढ़ाव होते है, और सोने के स्थान पर सोने तथा चांदी को मुद्रा का आधार बनाकर इन उतार चढ़ाव को बहुत कम नही किया जा सकता, किन्तु इनसे इतनी बड़ी बुराइयाँ पैदा हो जाती है कि इन्हें थोड़ा सा भी कम करने के लिए बहुत कुछ करना लाभदायक है। ये बुराइयां आवश्यक रूप से द्रव्य की क्रयशक्ति मे धीरे धीरे होने वाले इन परिवर्तनो मे निहित नही हैं जो प्रकृति के ऊपर व्यक्ति के अधिकार बदलने के साथ साथ पैदा होती हैं : और ऐसे परिवर्तन में साधारणतया लाभ तथा हानि दोनो ही होते हैं। महायुद्ध छिड़ने के पिछले पचास वर्षों मे उत्पादन की कलाओं तथा कच्चे माल के सम्भरण के प्रचुर स्रोतो मे सुधारों के फलस्वरूप व्यक्ति अपनी जरूरतो की अनेक चीजें पैदा करने मे दुगुना सफल हो गया। यदि मनुष्य द्वारा प्रकृति पर निरन्तर अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करने के साथ साथ अशर्फी की वस्तुओं के रूप मे क्रयशक्ति बदलने की अपेक्षा (जैसा कि वास्तव में हुआ है) स्थिर रहती तो श्रमिक वर्गों के उन सदस्यो को (अब इनकी संख्या तेजी से घट रही है) क्षति हुई होती जिनकी द्रव्यिक मजदूरी पर प्रथा का बहुत प्रभाव पड़ता हैं। किन्तु इस विषय पर अन्यत्र पूर्णरूप से विवेचन करने की आवश्यकता होगी।

---

1 फिशरके Appreciation and Interest 1896 और The rate of interest 1907, विशेषकर अध्याय V, XIV तथा उनके परिशिष्टों से तुलना कीजिए।

अध्याय 7

पूँजी तथा व्यावसायिक शक्ति के लाभ

इस तथा अगले अध्यायों में भाग 4 अध्याय 12 अध्याय 13 में किये गये विश्लेषणों पर और आगे विस्तार किया जायेगा।

§1. भाग 4 के अन्तिम अध्यायों में हमने व्यावसायिक प्रबन्ध के विभिन्न रूपों तथा उनके लिए आवश्यक प्रतिभाओं का अध्ययन किया था। हमने यह देखा था कि किस प्रकार पूँजी पर अधिकार प्राप्त व्यावसायिक शक्ति की तीन चीजों अर्थात् पूँजी सम्भरण मे, इसके प्रबन्ध के लिए व्यावसायिक शक्ति तथा इन दोनों चीजों को एक साथ उपयोग में लाने और उत्पादन मे प्रभावोत्पादक रूप से उपयोग करने के संगठन का सम्भरण शामिल है। पिछले अध्याय मे हमने मुख्यतया ब्याज पर जो कि इन तीनों मे से पहली चीज का उपार्जन है, विचार किया। इस अध्याय के प्रारम्भिक भाग मे हम दूसरी तथा तीसरी चीजों के उपार्जनों पर, जिन्हे हम प्रबन्ध का सकल उपार्जन कहेंगे एक साथ प्रकाश डालेंगे और तत्पश्चात् हम दूसरी चीज के उपार्जन से जिसे हम प्रबन्ध को निवल उपार्जन कहेंगे, इसके सम्बन्ध का अध्ययन करेंगे। व्यावसायिक उद्यमो को चलाने वाले तथा उनका प्रबन्ध करने वाले लोगों द्वारा समाज को अर्पित की जाने वाली सेवाओं तथा उनके कार्य के लिए मिलने वाले पुरस्कार के विषय मे हमे और अधिक जानकारी प्राप्त करनी है। इसमे हम यह पायेंगे कि इन्हें, नियंत्रित करने वाले कारण आमतौर पर सोची जाने वाली बातों की अपेक्षा कम काल्पनिक है, तथा ये उन कारणों के अधिक समान हैं जिनसे अन्य प्रकार के उपार्जन नियन्त्रित होते है।

किसी भी किस्म के व्यावसायिक संगठन की सफलता इसकी अन्तिम कुशलता पर निर्भर रह कर तुरत प्राप्त कुशलता पर निर्भर रहती है।

हमे इस विषय पर विचार प्रारम्भ करने के पूर्व ही एक विभेद को स्पष्ट कर देना चाहिए। यह स्मरण रहे[1] कि अतिजीवन के लिए सघर्ष के कारण सगठन की वे प्रणालियाँ प्रचलन मे आती है जिनकी उस वातावरण मे सर्वाधिक प्रगति हो सकती है किन्तु जब तक इनसे प्राप्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सभी प्रकार के लाभो के लिए उचित पुरस्कार न मिले तब तक यह आवश्यक नही कि ये वे ही सगठन हो जिनसे वातावरण को सर्वाधिक लाभ पहुँच सके। वास्तव मे बात ऐसी नही है। क्योंकि आमतौर पर प्रतिस्थापन के नियम से जो योग्यतम की अतिजीविता के नियम का विशेष तथा सीमित प्रयोग ही है—जब कभी औद्योगिक सगठन की एक प्रणाली दूसरी से कम कीमत पर एव तुरत सेवा प्रदान करती है तो यह उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। इन दोनो मे से प्रत्येक से मिलने वाली अप्रत्यक्ष या अन्तिम सेवाओ की यदि तुलना की जाय तो प्राय: इनमे थोड़ा या बिलकुल भी अन्तर नही होगा और परिणामस्वरूप अनेक ऐसे व्यवसाय जो ठीक ढंग से प्रारम्भ कर लेने पर दीर्घकाल मे समाज के लिए अच्छा कार्य करते वे क्षीण या नष्ट हो जाते हैं। यह कथन कुछ प्रकार की सहकारी संस्थाओ के विषय मे विशेषरूप से सत्य है।

---

1 भाग 4, अध्याय 8 देखिए।

हम इस सम्बन्ध में मालिकों तथा अन्य उपक्रामियों को दो वर्गों में, एक तो वे जो व्यवसाय की नयी तथा सुधरी हुई प्रणालियों का विकास करते हैं तथा दूसरे वे जो घिसेपिटे मार्ग का अनुसरण करना चाहते है, विभाजित करते है। पश्चादुक्त वर्ग से समाज को जो सेवाएँ अर्पित की जाती है वे मुख्यतया प्रत्यक्ष होती हैं, और कदाचित् ही ऐसा हुआ है कि इनका पूर्ण फल न मिला हो: किन्तु पूर्वोक्त वर्ग के सम्बन्ध मे स्थिति इसके विपरीत पायी जाती है।

दृष्टान्त के लिए लौह विनिर्माण की कुछ शाखाओं में कच्चे लोहे को अन्तिम रूप प्रदान करने के लिए जितनी बार तापन (heating) की आवश्यकता होती है उसमें कमी करके कुछ किफायतें होने लगी है। इन नये आविष्कारों मे से कुछ ऐसे हैं जिनका न तो पेटेण्ट किया जा सकता है, और न जिन्हें गुप्त ही रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम यह कल्पना करें कि 50,000 पौं० की पूंजी वाला कोई विनिर्माता सामान्य समयो मे प्रति वर्ष 4,000 पौं० के बराबर निवल लाभ अर्जित करता है और इसमें से 1500 पौं० उसके प्रबन्ध का उपार्जन तथा शेष 2500 पौं० लाभ के अन्य दो तत्वो का प्रतिफल है। हम यह कल्पना करते है कि वह अब तक वैसे ही काम करता आ रहा है जैसे कि उसके पड़ोसी करते हैं, और वह ऐसी योग्यता प्रदर्शित कर रहा है जो यद्यपि बहुत अधिक है किन्तु ऐसे लोगो की सामान्य या औसत योग्यता से अधिक नही है जो इस प्रकार के असाधारणरूप से कठिन कार्य करते हैं। अर्थात् हम यह कल्पना करते है कि वह जिस ढग का कार्य कर रहा है उसमे प्रतिवर्ष 1500 पौं० के बराबर सामान्य उपार्जन प्राप्त होता है। किन्तु समय के व्यतीत होने के साथ साथ वह अब तक प्रचलित तापनो मे से एक कम करने का उपाय सोच लेता है, और परिणामस्वरूप बिना अपने खर्चो को बढ़ाये वह अपने वार्षिक उत्पादन मे निवल 2000 पौं० मे बेची जाने वाली मात्रा के बराबर वृद्धि करता है। अतः जब तक वह अपनी बनायी हुई चीजो को पुरानी कीमत पर बेच सकता है, तब तक उसके प्रबन्ध का उपार्जन औसत से प्रतिवर्ष 2000 पौं० अधिक होगा, और उसे समाज के लिए की जाने वाली अपनी सेवाओ का पूर्ण पुरस्कार मिलेगा। उसके पड़ोसी उसकी योजना की नकल करेंगे, और सम्भवतया कुछ समय तक औसत से अधिक लाभ अर्जित करेंगे। किन्तु शीघ्र ही प्रतिस्पर्द्धा से सम्भरण मे वृद्धि हो जायेगी और चीजो की कीमत घट जायेगी। अन्त मे ऐसी स्थिति आ जायेगी कि उन्हे पहले के बराबर ही लाभ हो सकेंगे, क्योकि इस विषय पर कोलम्बस की योजना के सर्वविदित हो जाने पर कोई भी व्यक्ति अडो को उनके कोनो पर खड़ा करने के लिए ऊँची मजदूरी नही देना चाहेगा।

अनेक व्यावसायिक व्यक्तियो को जिनके आविष्कार दीर्घकाल मे ससार के लिए अमूल्य सिद्ध हुए है, अपनी खोजो से उतनी आय प्राप्त नही हुई जितनी कि मिल्टन को Paradise Lost लिखने से या मिलेट को Angelus लिखने से प्राप्त हुई। जहाँ अनेक लोगों ने अपने सौभाग्य से और न कि उच्च महत्व की सार्वजनिक सेवाओ को पूरा करने मे अद्वितीय योग्यता से प्रचुर सम्पत्ति का सग्रह कर लिया है वहाँ यह भी सम्भव है कि जिन व्यावसायिक व्यक्तियो ने नये रास्ते ढूंढ़ निकालने मे अगुवाई की है उन्होंने बहुधा समाज को इतने अधिक लाभ पहुँचाये है कि उनके निजी लाभो

की इनसे तुलना ही नहीं की जा सकती, चाहे उन्होंने अपने जीवन काल में लाखों पौंड ही क्यों न कमाये हों। यद्यपि तब हम यह देखेंगे कि प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रामी के पुरस्कार उसके द्वारा समाज को पहुँचायी जाने वाली प्रत्यक्ष सेवाओं के अनुपात में होंगे, किन्तु स्वयं इससे यह बात कुछ ही हद तक सिद्ध हो सकेगी कि समाज का वर्तमान औद्योगिक संगठन जितना अच्छा सोचा जा सकता है या यहाँ तक कि प्राप्त किया जा सकता है, वैसा ही है, और यह भूलना नहीं चाहिए कि वर्तमान जानकारी उन कारणों के प्रभाव के अध्ययन करने तक ही सीमित है जिनसे वर्तमान सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत *व्यावसायिक उपक्रम तथा संगठन के उपार्जन निर्धारित होते हैं।*

हम साधारण कामगर, फोरमैन तथा विभिन्न स्तरों के मालिकों द्वारा समाज के लिए की जाने वाली सेवाओं के पुरस्कार से होने वाले समायोजन पर सबसे पहले विचार करेंगे : यहाँ पर हम प्रतिस्थान सिद्धान्त को सर्वत्र लागू होता हुआ पायेंगे।

साधारण कामगरों की सेवाओं की तुलना में फोरमैन की सेवाओं में समायोजन।

§2. हम पहले ही यह देख चुके हैं कि एक छोटे व्यवसाय के मालिक द्वारा किया जाने वाला अधिकांश कार्य बड़े पैमाने पर चलने वाले व्यवसाय में वेतन पाने वाले विभागाध्यक्षों, प्रबन्धकों, फोरमैनों तथा अन्य लोगों को सौंप दिया जाता है। इस जानकारी से हमें आगे किये जाने वाले अध्ययन के लिए उपयोगी चीजें प्राप्त कर सकते हैं। सबसे सरल विषय साधारण फोरमैन के उपार्जनों से सम्बन्धित है और हम यहां पर इस पर ही सर्वप्रथम विचार करेंगे।

दृष्टान्त के लिए यह मान लें कि एक रेल का ठेकेदार या गोदीतल का प्रबन्धक यह अनुभव करता है कि हर बीस श्रमिकों के ऊपर एक फोरमैन जिसकी मजदूरी श्रमिक की मजदूरी से दुगुनी हो, रखना सबसे अच्छा रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि उसके पास 500 श्रमिक तथा 24 फोरमैन हों तो वह दो या अधिक साधारण श्रमिक बढ़ाने की अपेक्षा उसी लागत पर एक फोरमैन बढ़ाने से थोड़ा अधिक काम किये जाने की आशा करेगा। यदि उसके 490 श्रमिक तथा 25 फोरमैन होते तो वह दो श्रमिक और बढ़ाने में अधिक हित समझता। यदि उसे श्रमिक की मजदूरी से डेढ़ गुनी अधिक मजदूरी पर एक फोरमैन मिल जाता तो शायद वह हर पन्द्रह श्रमिकों के ऊपर एक फोरमैन रखता। किन्तु जैसा कि देखा गया है फोरमैनों की सख्या हर बीस श्रमिकों पर एक के हिसाब से निर्धारित की जाती है, और उनकी माँग कीमत श्रमिकों की मजदूरी के दुगुने के हिसाब से निश्चित होती है।[1]

असाधारण दशाओं में फोरमैन अपने अन्तर्गत कार्य करने वालों से आशा से अधिक काम लेकर अपनी मजदूरी प्राप्त करते हैं। किन्तु अब हम यह कल्पना करेंगे कि वे उपक्रम में सम्बन्धित विभिन्न चीजों का अधिक अच्छा संगठन कर इसकी सफलता में वैध रूप से योगदान देते हैं। इसके फलस्वरूप बहुत कम चीजें दोषपूर्ण ढंग से की जायेंगी तथा उन्हें फिर से सुधारने की आवश्यकता होगी। इससे प्रत्येक व्यक्ति जब चाहे तब भारी वजन उठाने इत्यादि में आवश्यक सहायता प्राप्त कर सकेगा, और सारी

---

1 इस तर्क से भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 7 में दिये गये तर्क की तुलना की जा सकती है।

मशीनरी तथा औजार अच्छी चलती हुई अवस्था में रखे जा सकेंगे, तथा किसी को भी अनुपयुक्त उपकरणों से काम करने में समय एवं शक्ति नष्ट न करनी पड़ेगी, तथा अन्य बातों में भी इसी प्रकार होगा। इस प्रकार का काम करने वाले फोरमैन की मजदूरी प्रबन्ध के उपार्जन के अधिकांश भाग का एक विशेषरूप है। व्यक्तिगत मालिक के माध्यम से समाज में उनकी सेवाओं के लिए तब तक प्रभावोत्पादक माँग रहेगी जब तक वह सीमात न आ जायगा जहाँ फोरमैन की अपेक्षा अन्य प्रकार के काम करने वाले मजदूरों की संख्या बढाने से उद्योग की कुल कुशलता में अधिक वृद्धि की जा सकती है क्योंकि फोरमैन का उत्पादन उतना ही होगा जितनी कि उसे मजदूरी दी जाती है।

अब तक मालिक को ऐसा उपादान माना गया है जिसके माध्यम से प्रतिस्पर्द्धा द्वारा उत्पादन के कारणों का इस प्रकार से तथा इतना उपयोग किया जाता है कि न्यूनतम द्रव्यिक लागत पर अधिकतर प्रत्यक्ष सेवाएँ जिन्हे उनके द्रव्यिक माप द्वारा आँका जाता है, प्रदान की जा सकें। किन्तु अब हमे स्वयं मालिकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा के तुरत प्रभाव के कारण उन्हे सीधे ढंग से उनके लिए रखे गये कार्य पर विचार करना है।

दक्षता को व्यवस्थित करने की माँग में समायोजन। कार्यरत बढ़ई की धीरे धीरे होने वाली प्रगति से लिया गया दृष्टान्त।

§3. अब हमे यह देखना है कि फोरमैन तथा वेतन प्राप्त प्रबन्धकों के कार्य की व्यवसायों के प्रधानों द्वारा किये जाने वाले कार्य से किस प्रकार निरन्तर तुलना की जाती है। धीरे धीरे बढ़ने वाले किसी छोटे से व्यवसाय की प्रगति का अवलोकन करना रोचक प्रतीत होता है। दृष्टान्त के लिए एक इमारती बढई (house carpenter) अपने औजारों की संख्या में धीरे धीरे तब तक वृद्धि करता रहता है जब तक वह एक छोटा वर्कशाप किराये पर लेने के योग्य नहीं हो जाता। जहाँ पर वह उन विभिन्न लोगों के निजी कार्यों को कर सके जिन्हें काम के विषय मे उसकी बात माननी पड़ती है। प्रबन्ध तथा इसमें निहित थोड़े बहुत जोखिमों को उठाने का कार्य उस बढ़ई तथा उन ग्राहकों के बीच बँटा रहता है। इससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पडता है और इसलिए वे उसके द्वारा किये जाने वाले प्रबन्ध के कार्य के लिए ऊँची दर पर भुगतान करने के लिए तैयार नही होते।[1]

छोटे प्रमुख निर्माता के रूप में उसका कार्य।

अतः उसका अगला कदम कम मरम्मत वाली सभी चीजों को करना है। वह अब मुख्य निर्माता के रूप मे प्रवेश करता है, और यदि उसका व्यवसाय पनपने लगे तो व धीरे धीरे स्वयं शारीरिक श्रम करना छोड देता है और कुछ हद तक उस कार्य की सूक्ष्म बातों की देखरेख करना भी छोड़ देता है। स्वयं अपने कार्य के लिए मजदूरी पर लगाये जाने वाले लोगों की प्रतिस्थापना कर उसे अब अपनी कुल आय मे से उनको दी जाने वाली मजदूरी घटानी पडती है क्योंकि वह इसके बाद ही अपने लाभ का अनुमान लगा सकता है: और जब तक उस व्यक्ति में उस उद्योग के उस श्रेणी के कार्य के लिए आवश्यक सामान्य व्यावसायिक योग्यता न हो तब तक यह सम्भव है कि वह शीघ्र ही उस समय तक अर्जित की गयी उस थोडी सी पूँजी के सम्पूर्ण भाग को ही खो बैठेगा और कुछ संघर्ष करने के बाद वह जीवन के ऐसे अधिक साधारण कार्य मे लग जायेगा जिसमे उसने प्रगति की थी। यदि उसकी योग्यता उस स्तर के

1 भाग 4, अध्याय 12, अनुभाग 3 से तुलना कीजिए।

ही बराबर हों तो वह औसत लाभ के साथ अपनी स्थिति को बनाये रखेगा, और सम्भवतया इसकी थोड़ी बहुत नींव पक्की कर लेगा: और उस श्रेणी के प्रबन्ध के कार्य का सामान्य उपार्जन आय और व्यय के अन्तर के बराबर होगा।

उसके व्यवसाय के पैमाने के बढ़ने के साथ साथ उसके कार्य का रूप भी बदल जाता है।

यदि उस श्रेणी के कार्य के लिए आवश्यक सामान्य योग्यता से उसकी योग्यता अधिक हो तो मजदूरी तथा अन्य खर्चों के रूप मे किसी निश्चित परिव्यय करने से उसे उतना ही अच्छा परिणाम मिलेगा जितना कि उसके अधिकाश प्रतिद्वन्द्वियों को अपेक्षाकृत अधिक परिव्यय से मिल सकता है: वह उनके परिव्यय के कुछ भाग के बदले मे व्यवस्था सम्बन्धी अपनी अतिरिक्त योग्यता को लगायेगा, और उसके प्रबन्ध के उपार्जन में उस परिव्यय का मूल्य भी शामिल होगा जिसके बिना ही उसने काम चला लिया था। इस प्रकार वह अपनी पूँजी एवं साख में वृद्धि करेगा: और ब्याज की कम दर पर अधिक ऋण ले सकेगा। उसका व्यावसायिक परिचय तथा सम्बन्ध भी अधिक दूर तक बढ़ जायेगा, तथा उसे विभिन्न सामान तथा प्रक्रियाओं के विषय मे अधिक ज्ञान हो जायेगा, और साहसिक किन्तु बुद्धिमत्तापूर्ण एव लाभदायक जोखिम उठाने के सुअवसर भी अधिक मिलेंगे। अन्त मे ऐसी स्थिति आ जायेगी जब वह अन्य लोगों को लगभग वे सारे ही काम सौंप देगा जो स्वय शारीरिक काम न करने के बाद भी उसका सारा समय ले लेते थे।[1]

---

1 सैकड़ों कामगरों को रोजी पर लगाने वाले मालिक को आधुनिक सेना के प्रमुख अधिकारियों द्वारा अपनायी जाने वाली योजना की भाँति अपने कार्य करने की शक्ति की किफायत करनी पड़ती है। श्री विल्किन्सन (The Brain of the Army, पृष्ठ 42–6) कहते हैं:—'संगठन से अभिप्राय यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति का कार्य स्पष्ट हो, वह यह भलीभाँति जान ले कि उसकी क्या जिम्मेदारी है, और उसके प्राधिकार का उसके उत्तरदायित्व के साथ अस्तित्व है। (जर्मनी की सेना में) कैप्टन के ऊपर प्रत्येक सेनानायक का सैनिक टुकड़ियों से बने हुए समुदाय से सम्बन्ध रहता है और वह उसके आन्तरिक मामलों में तभी हस्तक्षेप करता है जब उत्तरदायी अधिकारी प्रत्यक्षतः अपने कार्य में असफल रहा हो। एक सेना की टुकड़ी के सामान्य समादेशन (commanding) करने वाले जनरल का अपने मातहत काम करने वाले चन्द लोगों से ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। वह सभी अलग अलग टुकड़ियों की दशा का निरीक्षण करता है। उनकी जाँच करता है, किन्तु जहाँ तक सम्भव हो सके वह इनकी सूक्ष्म बातों से परेशान नहीं होता। वह इनके विषय में शान्तिपूर्वक अपनी धारणा बना सकता है।' बेगहो ने स्वभावगत ढंग से यह विचार प्रकट किये थे (Lombard Street, अध्याय VIII) कि यदि किसी बड़े व्यवसाय का प्रधान "बहुत व्यस्त हो तो यह किसी बुराई का लक्षण है", और उन्होंने (Transferabiliy of Capital पर लिखे निबन्ध में) आदिकालीन नियोजक की युद्ध में स्वयं कूद पड़ने वाले हेक्टर या एचिलेस (Achilles) जैसे व्यक्ति से तथा किसी विशेष आधुनिक नियोजक की "टेलिग्राफ के तार के सुदूर छोर पर स्थित व्यक्ति से—उदाहरण के लिए कुछ कागजों के ऊपर दृष्टि डालते हुए Count Moltke सरीखे व्यक्ति से—तुलना की है जो इच्छित व्यक्तियों का कत्ल करवा कर अन्त में विजय प्राप्त करता है।"

बड़े तथा छोटे पैमाने पर काम करने वाले व्यावसायिक व्यक्तियों के उपार्जनों के बीच समायोजन।

§4. फोरमैन तथा साधारण कामगर के उपार्जनों मे, तथा पुनः मालिकों तथा फोरमैनों के उपार्जनों में समायोजन को देखने के बाद हम अब छोटे एव बडे पैमाने पर काम करने वाले मालिको के उपार्जनों पर विचार करेंगे।

यदि बढई बहुत बड़े पैमाने पर काम करने वाला मुख्य निर्माता बन जाय तो उसके उपक्रम इतने अधिक तथा इतने बड़े हो जायेंगे कि इनमे उन बीसों मालिको का समय तथा उनकी शक्ति लगेगी जिन्होंने अपने असख्य व्यवसायों की सभी विस्तृत बातो पर निगरानी रखी थी। बडे तथा छोटे व्यवसायो के बीच इस सघर्ष मे प्रतिस्थान सिद्धान्त निरन्तर लागू होता है। बडे पैमाने पर कार्य करने वाला मालिक छोटे मालिक के स्थान पर कुछ तो स्वय कार्य करता है किन्तु अधिकाश कार्य वेतन पाने वाले प्रबन्धको को सौंप देता है। दृष्टान्त के लिए, जब किसी इमारत बनाने के लिए टैण्डर माँगे जाते हैं तो एक भवन निर्माता, जिसके पास बहुत बडी मात्रा मे पूँजी रहती है, बहुधा बहुत दूर रहने पर भी टैण्डर डालना लाभदायक समझता है। जहाँ स्थानीय भवन निर्माताओं को उस स्थान के निकट मे ही वर्कशाप खोलने तथा विश्वसनीय व्यक्तियो के मिलने मे बडी किफायतें होती है, वहाँ उसे भी बडे पैमाने पर सामग्री खरीदने, मशीन पर, विशेषकर लकडी का काम करने वाली मशीनो पर अधिकार होने तथा सम्भवतः अधिक सहज पूर्ति पर आवश्यकतानुकूल पूँजी उधार ले सकने के कारण लाभ होते है। ये दोनों प्रकार के लाभ बहुधा लगभग बराबर ही होते है, और रोजगार के क्षेत्र मे बहुधा छोटे भवन निर्माता की अविभाजित शक्ति तथा अधिक योग्य किन्तु अधिक व्यस्त रहने वाले बडे भवन निर्माता द्वारा स्वय की जाने वाली थोडी सी निगरानी की सापेक्षिक कुशलताओ के बीच होड होती है। यहाँ यह भी ध्यान रखना है कि बडा भवन निर्माता अपने स्थानीय प्रबन्धक तथा केन्द्रीय कार्यालय में लिपिकों की सहायता से इस निरीक्षण कार्य की कमी की पूर्ति करता है।[1]

उधार ली गयी पूँजी से काम करने वाले व्यक्ति को कुछ व्यवसायों में अधिक असुविधा का सामना करना पड़ता है।

§5. अब तक हम ऐसे व्यक्ति के प्रबन्ध के कुल उपार्जन पर विचार करते आये हैं जो स्वयं अपनी पूँजी को व्यवसाय में लगाता है, और इसलिए स्वयं ही उन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लागतों के मूल्याक को प्राप्त करता है जिन्हे पूंजी प्राप्त करने के लिए स्वयं इसे व्यवसाय मे न लगाने वाले मालिको से लेकर उन लोगों को देने मे खर्च करना पड़ता है जिनके पास अपने उद्यमों के लिए पर्याप्त पूँजी नही होती।

इसके पश्चात् हम कुछ व्यवसायों में मुख्यतया अपनी ही पूँजी से कार्य करने वाले व्यवसायियों के तथा अन्य में मुख्यतया उधार ली गयी पूंजी से काम करने वाले व्यवसायियों के आगे बढने में सफल होने के संघर्ष पर विचार करेंगे। उधार देने वाला व्यवसाय मे लगायी जाने वाली पूँजी की जिन व्यक्तिगत जोखिमों से रक्षा करना चाहता है वे कुछ हद तक उस व्यवसाय के रूप तथा व्यक्तिगत ऋणों की परिस्थितियों के अनुसार अलग अलग होते है। कुछ व्यवसायों मे, दृष्टान्त के लिए विद्युत् व्यवसायों की किसी नयी शाखा में, जिसमे मार्ग दर्शन के लिए विग्रह का अनुभव बहुत कम रहता है और ऋणदाता सरलतापूर्वक स्वतन्त्ररूप से इस निर्णय पर नही पहुँच पाता कि ऋणी

1 भाग 4, अध्याय 11, अनुभाग 4 से तुलना कीजिए।

कितनी प्रगति कर रहा है। ये जोखिम बहुत अधिक रहते हैं। इस प्रकार की सभी दशाओं में उधार ली गयी पूँजी से कार्य करने वाले व्यवसायी को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है और लाभ की दर मुख्यतया उन लोगों की प्रतिस्पर्धा से निर्धारित होती है जो अपनी पूँजी से व्यवसाय चलाते हैं। यह हो सकता है कि ऐसे लोग इस व्यवसाय में अधिक संख्या में प्रवेश न कर सके जिससे तीव्र प्रतिस्पर्धा न हो सके तथा इसके फलस्वरूप लाभ की दर ऊँची होगी। अर्थात् यह दर व्यवसाय की कठिनाइयों के अनुरूप प्रबन्ध के उपार्जन सहित पूँजी के निवल ब्याज से कहीं अधिक हो सकती है, यद्यपि यह कठिनाई सम्भवतया औसत कठिनाई से अधिक है।

पुनः किसी नये व्यक्ति को जिसके पास अपनी पूँजी बहुत कम हो ऐसे व्यवसायों मे नुकसान भी उठाना पड़ता है जिनमे धीरे-धीरे प्रगति होती है, तथा जिनमे बहुत समय बाद फल मिलता है।

किन्तु अन्य व्यवसायों में उसका प्रमुख भाग रहता है,

किन्तु उन सभी उद्योगों मे जहाँ साहस तथा अथक उद्यम से शीघ्र ही फल मिलते हैं, और विशेषकर जहाँ कीमती वस्तुओं के सस्ते पुनरुत्पादन से कुछ समय तक ऊँची दर पर लाभ प्राप्त किया जा सकता है, वहाँ नये व्यक्ति के लिए प्रगति के लिए अच्छा क्षेत्र रहता है. वह अपने तुरत निर्णय तथा दक्ष उपायो की सूझ से तथा सम्भवतः कुछ अंश तक अपनी स्वाभाविक साहसशीलता से 'प्रगति पथ पर आरूढ़ होता है।'

क्योंकि वह थोड़े बड़े से पुरस्कार के लिए कठिन परिश्रम करेगा।

वह पर्याप्त असुविधाओ के बावजूद भी महान सलग्नशीलता से अपना स्थान बनाये रखना है क्योंकि उस स्थिति में निहित स्वतन्त्रता एवं सम्मान उसके लिए बड़े ही आकर्षक होते हैं। इस प्रकार एक भूमिधारी जिसने भूमि के अपने छोटे से टुकड़े को बधक रखकर बहुत अधिक ऋण लिया है या शोषण करने वाला, छोटा व्यक्ति अथवा पत्थरों के बीच रोड़े भरने वाला, कम कीमत पर उप-संविदा लेकर साधारण कामगर से अपेक्षाकृत कम निवल आय के लिए बहुधा अधिक कठोर परिश्रम करेगा। एक ऐसा विनिर्माता जो विशाल व्यवसाय चला रहा हो किन्तु जिसकी तुलनात्मक रूप से अपनी पूँजी बहुत कम हो, अपने श्रम एवं चिन्ता को कुछ भी नहीं समझेगा, क्योंकि वह जानता है कि उसे अपनी आजीविका के लिए हर प्रकार से कार्य करना है और वह दूसरे के मातहत नौकरी करने के लिए भी अनिच्छुक है: अतः वह ऐसे लाभ के लिए जीजान लगाकर काम करेगा जो उस अधिक धनाढ्य प्रतिद्वन्द्वी के सम्मुख सन्तुलन मे अधिक नही होगा जो अपनी पूँजी पर मिलने वाले ब्याज से सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकने के कारण इस संशय मे पड़ा हो कि क्या व्यावसायिक जीवन की क्षति को अधिक समय तक सहना लाभप्रद होगा।

सन् 1873 ई० मे अधिकतम सीमा पर पहुँची हुई कीमतों की स्फीति से सामान्यतया ऋणी लोगों को, और खासकर व्यावसायिक उपक्रामियों को समाज के अन्य सदस्यों का अहित होने पर भी अधिक धन प्राप्त हुआ। अतः बहुत सरल व्यवसाय मे नये लोगों ने भी प्रवेश करना लाभदायक समझा और जिन लोगों ने उत्तराधिकार के कारण अथवा स्वयं अपने कारण परिश्रम के फलस्वरूप सम्पत्ति का उपार्जन किया था उन्हे सक्रिय रूप से अवकाश पाने के लिए अच्छा अवसर मिला। इस प्रकार उस समय[1] के विषय मे

1 Lombard Street, प्रारम्भिक अध्याय।

लिखते हुए बैगट्रो ने तर्क दिया था कि नये लोगों की वृद्धि के कारण आंग्ल व्यवसाय अधिकाधिक प्रजातंत्रीय होता जा रहा था और उन्होंने यद्यपि यह स्वीकार किया कि पशु जगत की भाँति सामाजिक जगत मे भी परिवर्तन की प्रवृत्ति ही प्रगति का मूल कारण है, इस पर भी उन्होंने खेद के साथ यह भी स्पष्ट किया कि सौदागर राजकुमारों के परिवारों की अवधि लम्बी होने से देश को कितना अधिक लाभ प्राप्त हो सकता था। किन्तु हाल ही के कुछ वर्षों में आशिक रूप से सामाजिक कारणों से तथा आशिक रूप से कीमतो में लगातार कमी आ जाने से कुछ प्रतिक्रिया हुई है। व्यावसायिक व्यक्तियों के लड़के एक पीढ़ी पूर्व की अपेक्षा अपने पिता के कारोबार मे कहीं अधिक गर्व अनुभव करते हैं और वे यह अनुभव करते हैं कि व्यवसाय छोड़ने पर भी मिल सकने वाली आय से निरन्तर बढ़ती हुई विलास की चीजों की माँग को पूरा करना अधिक कठिन है।

संयुक्त पूंजी कम्पनियां।

§6. कुछ दशाओं मे संयुक्त पूँजी कम्पनियों के प्रसग मे कर्मचारियो की सेवाओं की ओर अतः उनके उपार्जनों की व्यावसायिक लोगों के उपार्जनों से सर्वोत्तम ढग से तुलना की जा सकती है। क्योंकि उनमे प्रबन्ध का अधिकाश कार्य वेतन प्राप्त करने वाले निदेशकों (जो स्वयं भी कुछ शेयर खरीदते है) तथा वेतन प्राप्त करने वाले प्रबन्धकों एव अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच बँटा हुआ होता है जिनमें से अधिकाश के पास किसी भी किस्म की पूँजी नही रहती या यदि रहती भी है तो यह बहुत कम होती है। उनके उपार्जन प्रायः विशुद्धरूप मे श्रम के उपार्जन होने के कारण दीर्घकाल मे उन सामान्य कारणो से नियंत्रित होते है जो साधारण काम धन्धों मे समान कठिनाई वाले तथा अरुचिपूर्ण श्रम के उपार्जन को निश्चित करते है।

जैसा कि पहले देखा जा चुका है,[1] सयुक्त पूँजी कम्पनियो मे आन्तरिक मतभेदो के कारण शेयर होल्डरों एव डिबेंचरधारियो के बीच साधारण तथा पूर्वाधिकार प्राप्त शेयर होल्डरों के बीच, तथा इन सब लोगो के व निदेशको के बीच हितों मे सघर्ष होने के कारण तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप मे जाँच पड़ताल करने की विस्तृत प्रणाली की आवश्यकता होने के कारण रुकावट पैदा हो जाती है। उनमे कदाचित् ही वह उद्यमशीलता, शक्ति, उद्देश्य की एकाग्रता तथा कार्य करने की तीव्रता पायी जाती है जो निजी व्यवसायों मे मिलती है। किन्तु कुछ व्यवसायों मे ये बुराइयाँ अपेक्षाकृत कम महत्व की होती हैं। विनिर्माण एवं सट्टे से सम्बन्धित वाणिज्य की अनेक शाखाओ मे प्रचार जो कि सार्वजनिक कम्पनियो के सम्मुख आने वाली मुख्य बाधाओ मे से एक है, वही साधारण बैंक, बीमा तथा समान प्रकार के व्यवसायो मे निश्चितरूप से लाभ का कारण रहा है। इनमे तथा अधिकाश यातायात उद्योगों मे (रेलमार्ग, ट्राम मार्ग, नहर तथा गैस, जल तथा विद्युत् के सम्भरण में) पूँजी के ऊपर असीमित अधिकार होने से इन व्यवसायों को प्रायः अविवादपूर्ण प्रमुत्व मिला है।

जब शक्तिशाली संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ मिलजुल कर काम करती हैं, और स्टाक एक्सचेंज में सट्टे वाले कार्यों मे या प्रतिद्वन्द्वियों को कुचलने के अभियान मे या उनके आवश्यक विलयन मे, प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से शामिल नही होती तो वे साधारण-

1 भाग 4, अध्याय 12, अनुभाग 9, 10 देखिए।

तथा दूर भविष्य की बाट जोहती हैं और एक मन्द प्रभाव वाली किन्तु दूरदर्शी नीति अपनाती हैं। वे अस्थायी लाभ के लिए कदाचित् ही अपनी ख्याति कम करना चाहती हैं। वे अपने कर्मचारियों के सामने काम करने की ऐसी शर्तें नहीं रखना चाहती जिनसे उनकी सेवाएँ अप्रिय सिद्ध हों।

व्यवसाय की आधुनिक प्रणालियाँ प्रबन्ध के उपार्जनों को उसमें होने वाली कठिनाई के अनुसार समायोजित करने के लिए संयुक्त रूप में गहरा प्रभाव डालती हैं।

§7. इस प्रकार व्यवसाय की अनेक आधुनिक प्रणालियों में से प्रत्येक के अपने गुण व दोष हैं और प्रत्येक दिशा मे इनका प्रयोग उस सीमा या सीमान्त तक बढ़ाया जायेगा जहाँ इससे मिलने वाले विशेष लाभ इससे होने वाली हानियों से अधिक नहीं होते या अन्य शब्दों में किसी विशेष उद्देश्य के लिए व्यावसायिक संगठन की विभिन्न प्रणालियों के लाभदायकता सीमान्त को किसी रेखा पर कोई निश्चित बिन्दु नहीं माना जा सकता, किन्तु अनियमित आकार की ऐसी सीमा रेखा माना जा सकता है जो व्यावसायिक सगठन की हर सम्भव रेखा को एक एक करके काटती है। आंशिक रूप में सगठन की प्रणालियों की बड़ी विविधता के कारण और आंशिक रूप से इनमे से अनेक प्रणालियों से व्यावसायिक योग्यता वाले लोगों को बिना पूँजी के ही मिलने वाले प्रगति के पर्याप्त क्षेत्र के कारण ये आधुनिक प्रणालियाँ आदिकालीन प्रणाली की अपेक्षा जब पूँजीपति के अतिरिक्त अन्य किसी द्वारा उत्पादन मे शायद ही कभी पूँजी लगायी गयी थी, उपक्रम एवं प्रबन्ध के उपार्जन तथा उन सेवाओं के बीच अधिक घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करती है जिनसे वे उपार्जन प्राप्त होते हैं। अतः यह एक सौभाग्य की ही बात थी कि जिन लोगों के पास किसी व्यवसाय को चलाने या किसी सेवा को अर्पित करने के लिए पूँजी एवं सुविधा थी, जिनकी कि लोगों को बड़ी जरूरत थी, उनके ही पास इस कार्य के अनुरूप रुचि एवं योग्यता भी थी। किन्तु वास्तव में किसी वस्तु के उत्पादन के सामान्य खर्चों का वह भाग जिसे साधारणतया लाभ माना जाता है प्रत्येक दिशा मे प्रतिस्थापन सिद्धान्त के प्रभाव से इतना नियंत्रित रहता है कि यह पूँजी की आवश्यक मात्रा तथा व्यवसाय के प्रबन्ध के लिए आवश्यक योग्यता एवं शक्ति तथा उस सगठन की सामान्य सम्भरण कीमत से अधिक विचलित नहीं हो सकता जिससे समुचित व्यावसायिक योग्यता तथा आवश्यक पूँजी में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने के लिए विस्तृत क्षेत्र है और यह योग्यता अविशेषीकृत है।

व्यावसायिक शक्ति की प्राप्ति का क्षेत्र विस्तृत एवं लोचक होना है, क्योंकि इसे प्राप्त करने का क्षेत्र व्यापक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही जीवन रूपी व्यवसाय चलाना है, और यदि उसे इसमें स्वाभाविक रुचि हो तो वह व्यावसायिक प्रबन्ध का कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है। अतः अन्य किसी प्रकार की कोई भी ऐसी उपयोगी किन्तु दुर्लभ और अन बहुत अधिक कीमती योग्यता नहीं है जो श्रम तथा विशेषकर इसे प्राप्त करने में लगे खर्च पर इतनी कम, और 'प्राकृतिक गुणों' पर इतनी अधिक निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक शक्ति कहीं अधिक अविशेषीकृत होती है, क्योंकि अधिकांश व्यवसायों में तकनीकी ज्ञान तथा दक्षता दिन प्रतिदिन निर्णय, स्फूर्ति, साधन तथा उद्देश्य की सावधानी एवं व्यापक दृढ़ता की एवं अविशेषीकृत प्रतिभाओं की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण हो गयी है।[1]

---

1 भाग 4, अध्याय 12, अनुभाग 12। जब उत्पादन के रूप थोड़े तथा सरल

यह सत्य है कि छोटे व्यवसायों मे जिनमे मालिक मुख्य कामगर से कुछ ही बड़ा होता है, विशेषीकृत कुशलता का बड़ा महत्व है। यह भी सत्य है कि 'प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय की अपनी परम्परा होती है जो कभी भी लिखी नहीं जाती, सम्भवतया लिखी ही न जा सकी, जो केवल छोटे छोटे अशो मे ही जानी जा सकती है, तथा जो मस्तिष्क के साकार होने तथा विचारो के निश्चित होने के पूर्व जीवन के प्रारम्भ मे सर्वोत्तम रूप मे अपनायी जा सकती है। किन्तु आधुनिक वाणिज्य मे प्रत्येक व्यवसाय के साथ-साथ गौण एव सदृश (k ndred) व्यवसाय भी होते है जो हमे इससे सम्बन्धित कल्पना से परिचित कराते है तथा इसकी अवस्था से अवगत कराते है।[1] इसके अतिरिक्त वे सामान्य प्रतिभाएँ जो आधुनिक व्यावसायिक व्यक्ति की विशेषताएँ है, व्यवसाय के पैमाने के बढने के साथ साथ अधिक महत्वपूर्ण होती जाती है। ये ही वे गुण है जो उसे जननायक बनाते है, और इनसे ही वह अपने सम्मुख आने वाली व्यावहारिक समस्याओं के मूल तक जा सकता है, चीजो के सापेक्षिक अनुपातो को प्रायः सहज मे ही देख सकता है, बुद्धिमत्तापूर्ण एव दूरदर्शी नीतियों के विषय मे सोच सकता है तथा उन्हें शान्ति के साथ एव दृढ-प्रतिज्ञ होकर कार्यान्वित कर सकता है।[2]

नहीं रह जाते तो यह अधिक समय तक सत्य नहीं रहता कि कोई व्यक्ति पूँजीपति होने के कारण मालिक बन जाय। लोग पूँजी पर इसलिए अधिकार करना चाहते हैं कि उनके पास श्रम के लाभप्रद रूप से उपयोग करने की योग्यता होती है। उद्योग के इन नायकों के पास पूंजी तथा श्रम का इसलिए वास होता है कि इन्हें यहाँ अपने असंख्य कार्यों को पूरा करने का अवसर मिलता है। (वाकर की Wages Question, अध्याय XIV)।

1 बैगहो की Postulates का पृष्ठ 75 देखिए।

2 बैगहो (अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 94–95) उल्लेख करते है कि आधुनिक महान् वाणिज्य के 'कुछ सामान्य सिद्धान्त है जो आमतौर पर इसके विभिन्न रूपों में समान है, और यदि कोई व्यक्ति इन सिद्धान्तों को समझता है तथा ठीक ढंग का मस्तिष्क रखता है तो वह अनेक प्रकार से पर्याप्त रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किन्तु राजनीति की भाँति वाणिज्य में भी इस सामान्य तत्व का आ जाना विशालता का लक्षण है, और सारा आदिकालीन वाणिज्य तुच्छ है। प्रारम्भिक आदिम जातियों में विशेष व्यक्ति बजाज, राजशस्त्र-निर्माता के अतिरिक्त किसी अन्य का स्थान महत्वपूर्ण न था। प्रत्येक व्यवसाय इसमें काम करने वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य सभी लोगों के लिए रहस्यमय बना रहता था। प्रत्येक व्यवसाय को समझने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता थी वह कुछ ही लोगों को प्राप्त था जो इसे गुप्त रखते थे। इस एकाधिकरण एवं बहुधा उत्तराधिकार के रूप में अर्जित ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी उपयोगी न था। उस समय कोई भी साधारण व्यावसायिक ज्ञान न था। द्रव्य अर्जित करने की सामान्य कला का विचार बहुत ही आधुनिक है। इसमें प्राचीन काल से सम्बन्धित जो विशेषता मिलती है वह यह है कि यह कुछ विशेष व्यक्तियों तक ही सीमित है।

विभिन्न व्यवसायों में प्रबन्ध के वास्तविक उपार्जन के विषय में सही ज्ञान प्राप्त करने की कठिनाइयां।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यावसायिक योग्यता के सम्भरण में मांग के अनुसार इस प्रकार की कठिनाई से समायोजन कुछ अवरुद्ध हो जाता है कि किसी भी व्यवसाय मे व्यावसायिक योग्यता के लिए दी जाने वाली कीमत का ठीक ठीक पता नही लग पाता। विभिन्न कार्यकुशलता वाले लोगों द्वारा अर्जित मजदूरी का औसत निकाल कर तथा उनके रोजगार की अस्थिरता के लिए गुंजाइश रखकर राज या गारा घोलने वाले की मजदूरी का पता लगाना तुलनात्मक रूप से सहज है। किन्तु किसी व्यक्ति को मिलने वाले प्रबन्ध के कुल उपार्जनों को तभी जाना जा सकता है जब कि उसके व्यवसाय के वास्तविक लाभों का सतर्कतापूर्वक लेखा जोखा रखा जाय, और इसमे से उसकी पूंजी के लिए मिलने वाला ब्याज घटाया जाय। उसके काम की सही अवस्था का स्वयं उसे ही पता नहीं रहता, और इसका उन लोगो द्वारा भी कदाचित् ही सही अनुमान लगाया जा सकता है जो उसके साथ उसी व्यवसाय मे लगे हुए हैं। आजकल एक छोटे से गाँव मे भी यह सत्य नही है कि हर एक व्यक्ति अपने पड़ोसी के सभी कार्यों को जानता हो। जैसा कि क्लिफ लेसली ने कहा है, 'गाँव की सरायवाला भटियारा (Publican) या दुकानदार जो कि थोड़ा सा लाभ अर्जित करता है, अपने पड़ोसियों को इसके बारे में बतला कर प्रतिस्पर्द्धा नही पैदा करना चाहता, और जिस व्यक्ति का काम ठीक नही चल रहा है वह अपने साहूकारो को अपने कारोबार की वास्तविक स्थिति बतला कर आतंकित नही करना चाहता।[1]

वे अधिक दूर तक नहीं पहुँच पाते।

किन्तु यद्यपि व्यक्तिगत व्यापारी के अनुभव से प्राप्त सबक को सीखना कठिन है किन्तु सम्पूर्ण व्यापार के अनुभवों को पूर्णरूप से गुप्त नही रखा जा सकता, और इन्हे अधिक समय तक छिपाये रखना तो बिलकुल ही असम्भव बात है। समुद्र के किनारे आधी दर्जन लहरों को केवल थपेड़े खाता हुआ देखकर कोई भी यह नही बतला सकता कि ज्वार बढ़ रहा है या घट रहा है, फिर भी थोड़े से ही धैर्य से काम लेने पर इस प्रश्न का हल निकल सकता है। व्यावसायिक व्यक्तियों मे इस बात पर सामान्य मतैक्य है कि किसी व्यवसाय मे लाभ की औसत दर मे अधिक समय बीतने के पूर्व ही परिवर्तन की ओर सामान्य ध्यानाकर्षण किये बिना कोई अधिक उतार चढ़ाव नही हो सकते। किसी कुशल श्रमिक की अपेक्षा एक व्यावसायिक व्यक्ति के लिए कभी कभी यह पता लगाना अधिक कठिन हो सकता है कि क्या वह अपने व्यवसाय को बदल कर अपनी प्रगति की आशाओ मे वृद्धि कर सकता है, तब भी अन्य व्यवसायों के वर्तमान तथा भविष्य के बारे मे जितना भी जाना जा सकता है उसका पता लगाने के लिए व्यवसायी व्यक्ति को बड़े सुअवसर मिलते हैं, और यदि वह अपना व्यवसाय बदलना चाहता है तो वह कुशल कामगर की अपेक्षा साधारणतया अधिक सरलतापूर्वक ऐसा कर सकेगा।

सभी बातों को देखते

सभी बातों को दृष्टि मे रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कार्य के लिए आवश्यक प्राकृतिक योग्यताओं का अभाव तथा विशेष प्रशिक्षण की व्ययशीलता

---

1 जून, 1879 के Fortnightly Review को जो कि उनके Essays में पुनः मुद्रित है, देखिए।

से प्रबन्ध के सामान्य उपार्जनों पर उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि इनका कुशल श्रमिक की सामान्य मजदूरी पर पड़ता है। प्रत्येक दशा में अर्जित की जाने वाली आय में वृद्धि होने से कार्य करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि होने लगती है। जो भी हो आय में निश्चित वृद्धि से सम्भरण में जिस मात्रा में वृद्धि होगी वह उन लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं पर निर्भर है जो इस प्रकार के व्यक्तियों की पूर्ति के स्रोत हैं। क्योंकि यद्यपि यह सत्य है कि कोई योग्य व्यवसायी जो प्रचुर सम्पत्ति एवं अच्छे व्यावसायिक सम्बन्ध के साथ जीवन में प्रवेश करता है इन सुविधाओं के बिना जीवन प्रारम्भ करने वाले समान रूप से योग्य व्यक्ति की अपेक्षा प्रबन्ध का अधिक उपार्जन प्राप्त करेगा, असमान सामाजिक सुविधाओं से जीवन प्रारम्भ करने वाले समानरूप से योग्य पेशेवर लोगों के उपार्जनों मे इसी प्रकार की यद्यपि कम मात्रा में, असमानताएं पायी जाती हैं। किसी कार्यरत व्यक्ति की भी मजदूरी उसके जीवन आरम्भ करने की स्थिति पर उतनी ही निर्भर होती है जितनी कि उसके पिता द्वारा उसकी शिक्षा में किये गये खर्च पर निर्भर होती है।[1]

हुए उन उपार्जनों का किये गये कार्य की कठिनाई तथा उसके महत्व के आधार पर पर्याप्त रूप से सही समायोजन हुआ है।

---

1 भाग 6, अध्याय 4, अनुभाग 3 देखिए। व्यवसाय की मुख्य जिम्मेदारियों को उठाने वालों के सामान्य कार्यों के विषय में ब्रेन्टानों की Der Unternehmer, 1907 देखिए।

अध्याय 8

पूँजी तथा व्यावसायिक शक्ति के लाभ (पूर्वानुबद्ध)

लाभ की दर बराबर होने की सामान्य प्रवृत्ति की कल्पना।

§1 प्रबन्ध के उपार्जन को नियन्त्रित करने वाले कारणों का पिछले पचास वर्षों मे ही सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया गया है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने इस दिशा में कोई विशेष अच्छा कार्य नही किया क्योंकि उन्होंने लाभ के उपादानों मे समुचितरूप से भेद प्रदर्शित नही किया, किन्तु उन्होंने लाभ की औसत दर को नियन्त्रित करने वाले एक सरल व सामान्य नियम को, जिसका ऐसी परिस्थिति मे अस्तित्व ही नही हो सकता था, ढूँढने का प्रयत्न किया।

एक विशाल व्यवसाय में प्रबन्ध के कुछ उपार्जनों को वेतन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, तथा छोटे व्यवसाय में श्रम के लिए मिलने वाली मजदूरी अधिकांश मात्रा में लाभ में वर्गीकृत की जाती है।

लाभ को नियन्त्रित करने वाले कारणों के विश्लेषण मे सबसे पहली कठिनाई कुछ मात्रा मे केवल कहने के लिए ही होती है। यह इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि एक छोटे व्यवसाय का प्रधान स्वयं ही उस अधिकाश कार्य को करता है जो एक विशाल व्यवसाय मे वेतन पाने वाले उन प्रबन्धकों तथा फोरमैनो द्वारा किया जाता है जिनके उपार्जनो को उस विशाल व्यवसाय के लाभो को आँकने के पूर्व निवल आय से कम कर दिया जाता है। छोटे व्यवसाय मे प्रधान व्यक्ति के सम्पूर्ण श्रम के उपार्जन को उसके लाभ मे गिना जाता है। इस कठिनाई को तो बहुत पहले से ही समझा जा रहा है। स्वयं एडम स्मिथ ने उल्लेख किया है – औषधि विक्रेता जिसके पास काम की कोई कमी नही है, किसी बडे बाजार मे वर्ष मे कुल जितनी दवाइयाँ बेचेगा उनकी लागत सम्भवतया तीस या चालीस पौंड मे अधिक नही होगी। यद्यपि वह उन्हे तीन या चार सौ या हजार प्रतिशत लाभ पर भी बेच सकता है, किन्तु इनकी कीमत अधिकांश रूप मे इन दवाइयो मे लगाये जाने वाले श्रम की मजदूरी के बराबर ही होती है क्योंकि लाभ का अधिकतर भाग वास्तविक मजदूरी ही है जो कि लाभ मे छिपी हुई रहती है। किसी छोटे समुद्री बन्दरगाह पर एक छोटा पंसारी सौ पौंड के सामान पर चालीस या पचास प्रतिशत लाभ कमायेगा जब कि उसी स्थान मे पर्याप्त मात्रा मे माल बेचने वाला थोक विक्रेता दस हजार पौंड के अपने सामान पर शायद ही आठ या दस प्रतिशत लाभ कमायेगा।[1]

---

1 Wealth of Nations,, भाग 1, अध्याय X। सीनियर, Outline, पृष्ठ 203 में, 100,000 पौं० की पूंजी पर लाभ की सामान्य दर 10 प्रतिशत से कम, 10,000 पौंड या 20,000 पौंड की पूंजी पर लगभग 15 प्रतिशत, 5000 पौं० या 6000 पौं० की पूंजी पर 20 प्रतिशत और अपेक्षाकृत इनसे भी कम पूंजी पर कहीं अधिक प्रतिशत लाभ बतलाते हैं। इस भाग के पिछले अध्याय के अनुभाग 4 से भी तुलना कीजिए। यह ध्यान रहे कि किसी निजी फर्म के लाभ की सामान्य दर उस समय बढ जाती है जब प्रबन्धक को जो कि इसमें अपनी कोई भी पूंजी नहीं लगाता, इसमें साझेदार बना दिया जाता है और उसे वेतन के स्थान पर लाभ का एक हिस्सा दिया जाता है।

यहाँ पर व्यवसाय में विनियोजित पूंजी पर वार्षिक लाभ की दर तथा व्यवसाय में लगी हुई पूंजी के प्रत्येक आवर्त से प्राप्त होने वाले लाभ की दर के बीच विभेद करना महत्वपूर्ण है, अर्थात् बिक्री को प्रत्येक बार उसकी पूंजी के बराबर किया जाता है जिसे आवर्त पर मिलने वाले लाभ की दर कहा जाता है। अब हम वार्षिक लाभ के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

'वार्षिक' तथा पूंजी के आवर्त पर लाभ।

छोटे तथा बड़े व्यवसायों में प्रतिवर्ष लाभ की सामान्य दर के बीच पायी जाने वाली नाममात्र की असमानता इस समय अधिकतर दूर हो जाती है जब लाभ शब्द का क्षेत्र पूर्वोक्त दशा में संकुचित या पश्चादुक्त दशा में विस्तृत कर दिया जाता है जिससे दोनों दशाओं मे इसमें समान सेवाओं का पारिश्रमिक सम्मिलित किया जा सके। वास्तव में ऐसे भी व्यवसाय हैं जिनमें विशाल पूंजी पर लाभ की दर उचितरूप में आंके जाने पर अल्प पूंजी पर लाभ की दर की अपेक्षा अधिक होती है, भले ही साधारणरूप में गणना करने पर यह अपेक्षाकृत कम दिखायी दे। क्योंकि एक ही व्यापार मे प्रतिस्पर्द्धा करने वाले दो व्यवसायों मे से अपेक्षाकृत अधिक पूंजी वाला व्यवसाय लगभग सदैव सस्ते पर क्रय कर सकता है, और कुशलता एवं मशीन तथा अन्य प्रकार के विशिष्टीकरण की अनेक किफायतों को प्राप्त कर सकता है जो छोटे व्यवसाय की पहुँच के परे हैं: पश्चादुक्त को भी पूर्वोक्त की अपेक्षा में एक महत्वपूर्ण विशेष लाभ है कि इसे अपने ग्राहकों के अधिक निकट जाने तथा उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझने की अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। जिन व्यापारों मे यह अन्तिम लाभ महत्वपूर्ण नही है तथा विशेषकर विनिर्माण के कुछ व्यापारों में जहाँ बड़ी फर्म छोटी की अपेक्षा अधिक अच्छी कीमत पर बिक्री कर सकती है, पूर्वोक्त के खर्चे आनुपातिक रूप में कम तथा उसकी आमदनी अधिक होती है, और इसलिए यदि लाभ मे दोनों दशाओं में समान चीजें सम्मिलित की जायें तो पश्चादुक्त की अपेक्षा पूर्वोक्त मे लाभ की दर अवश्य ही ऊँची होनी चाहिए।

भाषा की इस असंगति में सुधार से यह विचार मुख्यतया समाप्त हो जाता है कि छोटे व्यवसाय में लाभ अधिक होते हैं।

किन्तु ये ही वे व्यवसाय हैं जिनमें अधिकांशतया बड़ी फर्में छोटी फर्मों को कुचल देने के पश्चात् या तो एक दूसरे के साथ मिल जाती हैं और इस प्रकार सीमित एकाधिकार के लाभ अर्जित करती हैं या परस्पर तीव्र प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण लाभ की दर को बहुत नीचे गिरा देती हैं। सूती, धातु, तथा यातायात व्यवसायों में ऐसी अनेक शाखाएँ हैं जिनमें बिना बडी मात्रा मे पूंजी लगाये किसी भी व्यवसाय को प्रारम्भ ही नहीं किया जा सकता, जब कि मध्यम पैमाने पर प्रारम्भ किये गये व्यवसाय बडी कठिनाइयों के साथ इस आशा मे संघर्ष करते रहते हैं कि कुछ समय बाद विशाल पूंजी का विनियोजन करना सम्भव हो सकेगा जिससे प्रबन्ध का उपार्जन कुल मिला कर बहुत होगा, भले ही पूंजी के अनुपात में यह कम ही हो।

कुछ ऐसे भी व्यवसाय हैं जिनमें बहुत ऊँचे स्तर की योग्यता अपेक्षित है, किन्तु जिनमें एक बहुत बड़े व्यवसाय का प्रबन्ध करना बहुत ही सरल है जितना कि मध्यम पैमाने के व्यवसाय का। दृष्टान्त के लिए बेलन-मिलों मे कुछ ऐसी विस्तार की चीजें है जिन्हें नित्यप्रति का रूप नही दिया जा सकता, और उनमे 10 लाख पौंड की विनियोजित पूंजी पर एक ही योग्य व्यक्ति द्वारा सरलतापूर्वक नियंत्रण किया जा सकता

उन व्यापारों में जहाँ विशाल पूंजी से बड़े तकनीकी लाभ मिल सकते हैं, छोटे व्यवसायों को बहुत थोड़े ही लाभ प्राप्त होते हैं।

है। लोहे के व्यवसाय की कुछ शाखाओं में जिनमें विस्तार की बातों के विषय में अविरत विचार एवं समझ की जरूरत होती है 20 प्रतिशत की दर पर लाभ अर्जित करना कोई बहुत ऊँची औसत दर नही है: किन्तु ऐसे कार्यों में मालिक को प्रबन्ध को उपार्जन के रूप मे प्रतिवर्ष 1 लाख 50 हजार पौंड प्राप्त होगें। अभी हाल ही मे भारी लोहा उद्योग की क्रमिक शाखाओं मे वृहत् फर्मो के विलयन से और भी अधिक ठोस उदाहरण मिलते है। उनके लाभ व्यापार की दशा के अनुसार बहुत परिवर्तित होते है: किन्तु कुल मिलाकर विपुल होने पर भी इनकी दर औसतरूप मे नीची कही जाती है।

लगभग उन सभी व्यापारों मे लाभ की दर नीची है जिनमे उच्चतम श्रेणी की योग्यता की बहुत कम आवश्यकता है और जिनमें अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध तथा विशाल पूंजी वाली कोई भी सार्वजनिक या निजी फर्म नयी प्रवेश करने वाली फर्मों का तब तक सामना कर सकती है जब तक कि इसका अच्छी साधारण समझ तथा मध्यम उद्यम वाले अध्यवसायी व्यक्तियो द्वारा प्रबन्ध किया जाता है। किसी अच्छे आधार पर स्थापित सार्वजनिक कम्पनी या निजी फर्म मे, जो कि अपने योग्यतम कर्मचारियो के साझेदार बनाने के लिए तैयार हैं, इस प्रकार के व्यक्तियों का कदाचित् ही अभाव होता है।

सभी बातों को दृष्टि मे रखते हुए हम सर्वप्रथम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बडे बड़े व्यवसायों मे लाभ की वास्तविक दर जितनी पहले पहल दिखायी देती है उससे अधिक होती है, क्योकि छोटे व्यवसायो में आमतौर पर जिन चीजो को लाभ मे गिना जाता है उनके अधिकांश भाग किसी बडे व्यवसाय मे होने वाले लाभ की दर से तुलना करने के पूर्व उसे अलग मद मे रख देना चाहिए और दूसरा निष्कर्ष यह है कि संशोधन को करने के बाद भी साधारणरूप मे आँके जाने वाले लाभ की दर व्यवसाय के आकार के बढने के साथ साथ कम हो जाती है।

उन व्यवसायों में प्रति वर्ष लाभ साधारणतया ऊँचा रहता है जहाँ प्रबन्ध का कार्य कठिन तथा जोखिमपूर्ण हो।

§2 पूंजी के अनुपात में प्रबन्ध का असामान्य उपार्जन, और इसलिए पूंजी से प्राप्त होने वाले वार्षिक लाभ की दर उस समय ऊँची होती है जब पूंजी के अनुपात मे प्रबन्ध के कार्य का भार अधिक होता है। प्रबन्ध के कार्य का भार अधिक होने के कारण यह हो सकता है कि इसमे नयी पद्धतियो के ढूंढ निकालने तथा उसकी व्यवस्था करने मे बडा मानसिक भार पडता है, या यह हो सकता है कि इससे बडी चिन्ता पैदा हो जाय तथा जोखिम उठाना पडे और ये दोनों ही चीजें बहुधा साथ साथ चलती है। विभिन्न व्यवसायों की वास्तविक मे अपनी अपनी विशेषताएँ होनी हैं, और इस विषय पर बनाये जाने वाले सभी नियमो के बडे बडे अपवाद हो सकते है। किन्तु अन्य बातो के समान रहने पर निम्न सामान्य बाते सत्य सिद्ध होगी तथा विभिन्न व्यवसायों मे लाभ की सामान्य दरो में पायी जाने वाली अनेक असमानताओ को स्पष्ट किया जा सकेगा।

वार्षिक लाभ उन व्यवसायों में भी ऊँचे

सर्वप्रथम किसी व्यवसाय मे प्रबन्ध के कार्य की मात्रा अचल पूंजी की अपेक्षा चल पूंजी की मात्रा पर अधिक निर्भर रहती है। अतः उन व्यापारो मे लाभ की दर कम होती है जहाँ अनुपात मे वही अधिक मात्रा मे एक बार स्थायी संयत्र लगा दिये जाने के बाद बहुत कम कष्ट उठाने तथा ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

होते हैं जहाँ पूंजी अपेक्षाकृत अल्प तथा मजदूरी बिल ऊँचा हो।

जैसा कि हम देख चुके है ये व्यापार सम्भवतया संयुक्त पूँजी कम्पनियो के हाथों मे चले जाते है: निदेशकों एव उच्चतर अधिकारियों का कुल वेतन रेल, जल कम्पनियों तथा इनसे भी अधिक विशिष्टरूप मे नहरो, गोदी-तलो व पुलों पर स्वामित्व रखने वाली कम्पनियों पर लगी हुई पूँजी के बहुत कम अनुपात के बराबर होता है।

इसके अतिरिक्त किसी व्यवसाय के चल एव अचल पूँजी के बीच यदि अनुपात निश्चित हो तो उत्पादन के लिए आवश्यक सामान की लागत तथा बिक्री के माल के मूल्य की अपेक्षा मजदूरी बिल जितना ही अधिक होगा साधारणतया प्रबन्ध के कार्य का भार उतना ही अधिक होगा और लाभ को दर उतनी ही ऊँची होगी।

लाभ तथा लागत के अंग के रूप में जोखिम।

उत्पादन के लिए कीमती सामान का उपयोग करने वाले धन्धो मे सफलता बहुत अंशो में सौभाग्य पर तथा क्रय-विक्रय करने की योग्यता पर निर्भर होती है, और कीमत को सम्भवतया प्रभावित करने वाले कारणो का सही विश्लेषण करने तथा उन्हे सही सही रूप मे समझने वाले लोगो का मिलना दुर्लभ है। अतः ऐसे लोगो को ऊँचा उपार्जन मिलना स्वाभाविक है। कुछ व्यवसायो मे इस दृष्टि से आयोजन करना इतना महत्वपूर्ण है कि कुछ अमेरिकी अर्थशास्त्री यह मानने के लिए प्रलोभित हुए है कि लाभ केवल जोखिम का ही पारितोषिक है। और वे इसे सकल लाभ (gross profits) मे से ब्याज तथा प्रबन्ध के उपार्जनो को घटाने के बाद शेष बचने वाला भाग मानते है। किन्तु सभी बातो को दृष्टि मे रखते हुए इस शब्द का इस प्रकार का प्रयोग लाभदायक प्रतीत नही होता, क्योकि इसमे प्रबन्ध का कार्य केवल नित्यप्रति का निरीक्षण मात्र रह जाता है। इसमे निश्चिय ही सन्देह नही कि कोई भी व्यक्ति किसी जोखिमपूर्ण व्यवसाय मे तब तक प्रवेश नही करेगा जब तक कि उसे अन्य बातो के समान रहने पर उचित जीवनाकिक अनुमान के आधार पर इसमे प्राप्त होने वाले सम्भावित लाभ मे से सम्भावित क्षति को घटाने के बाद अन्य व्यवसायो की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करने की प्रत्याशा न हो। यदि इस प्रकार के जोखिम मे कोई ठोस बुराई न हो तो लोग बीमा कम्पनियो को बीमे की किश्ते नही देते क्योकि वे जानते है कि इन किश्तो की कम्पनी के विज्ञापन तथा सचालन के बड़े बड़े खर्चो का भुगतान करने के बाद भी निवल लाभ के लिए जोखिम के वास्तविक जीवनाकिक मूल्य से कही अधिक ऊँचे आधार पर गणना की जाती है। जहाँ जोखिमो के लिए बीमा किया हुआ न हो वहाँ व्यावसायिक जोखिमो के विरुद्ध बीमा करने की व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए उनकी दीर्घकाल मे उसी आधार पर क्षतिपूर्ति करनी चाहिए जिस आधार पर बीमा कम्पनियो की बीमे की किश्ते निर्धारित की जाती है। किन्तु अनेक लोग जो कठिन व्यवसायो का बुद्धिमत्तापूर्वक तथा उद्यम के साथ प्रबन्ध करने मे सबसे अधिक समर्थ है वे बड़े जोखिम लेने से दूर रहते है, क्योकि उनकी स्वयं अपनी पूंजी इतनी अधिक नही होती कि वे बड़ी क्षति सहन कर सके। इस प्रकार जोखिमपूर्ण व्यवसाय वस्तुतः अदूरदर्शी लोगो के हाथो मे या सम्भवतया चन्द शक्तिशाली पूँजीपतियो के हाथो मे चला जाता है जो इसका योग्यतापूर्वक सचालन करते है, किन्तु परस्पर यह

तय करते हैं कि बाजार इतना नही बढ़ाया जाय जिसमें उन्हें औसत रूप में ऊंची दर पर लाभ प्राप्त होना समाप्त हो जाय।[1]

साधारण कारोबारों में लाभ बहुधा मजदूरी बिल के अनुसार बदलता रहता है।

जिन्हें कारोबारों में सट्टा सम्बन्धी तत्व अधिक महत्वपूर्ण नही होता जिससे प्रबन्ध का कार्य मुख्यतया निरीक्षण से ही सम्बन्धित होता है, वहाँ प्रबन्ध का उपार्जन व्यवसाय मे किये गये कार्य के बिलकुल निकट होगा, और मजदूरी बिल बहुत स्थूल किन्तु सुविधाजनक माप है। विभिन्न कारोबारों में लाभ के बराबर होने की सामान्य प्रवृत्ति से सम्बन्धित स्थूल कथनों में सबसे कम त्रुटिपूर्ण कथन यह होगा कि जहां बराबर मात्रा में पूंजी लगी हुई हो वहां लाभ मजदूरी बिल एक निश्चित अनुपात होने के साथसाथ चल पूंजी के एक निश्चित वार्षिक अनुपात के बराबर होता है।[2]

---

1 लागत के अंग के रूप में जोखिम के लिए भाग 5, अध्याय 7, अनुभाग 4 देखिए। विभिन्न स्वभाव वाले लोगों पर और परिणामस्वरूप जोखिमपूर्ण काम धन्धों में उपार्जन एवं लाभ पर अनेक किस्म के जोखिमों का जो प्रभाव पड़ता है उसकी आकर्षक एवं अरुचिकर शक्ति का सतर्क विश्लेषणात्मक एवं आगमनात्मक अध्ययन ठीक रहेगा। इस विषय का आरम्भ एडम स्मिथ द्वारा व्यक्त किये गये अभिवचनों से किया जा सकता है।

2 विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में विनियोजित विभिन्न प्रकार की पूंजी की मात्रा का मोटा रूप में पता लगाना भी बड़ा कठिन है। किन्तु अमेरिकी कार्यालयों के बहुमूल्य सांख्यिकी को, जो विशेषकर इस विषय में स्पष्टरूप में अयथार्थ है, देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि *जिन उद्योगों में संयंत्र बहुत खर्चीला होता है वहाँ उन उद्योगों से उत्पादन के लिए लगी पूंजी से* वार्षिक उत्पादन कम होता है, और जिन प्रक्रियाओं से कच्चा माल भेजा जाता है वे बड़ी लम्बी होती हैं। घड़ी तथा सूत के कारखानें इसके उदाहरण हैं: किन्तु जिन व्यवसायों में कच्चा माल खर्चीला होता है और उत्पादन की *प्रक्रिया* तीव्र होती है, जैसे जूते के कारखाने वहाँ वार्षिक उत्पादन पूंजी के चौगुने से भी अधिक होता है। उन उद्योगों में भी ऐसा ही होता है जो अपने माल में थोड़ा सा ही परिवर्तन करते हैं, जैसे चीनी-शोधन, बूचड़ का तथा मांस डिब्बों में बन्द करने का कार्य

इसके पश्चात् चल पूंजी के व्यापारावर्त का विश्लेषण करते हुए तथा कच्चे माल की लागत की मजदूरी-बिल से तुलना करते हुए हम यह देखते हैं कि घड़ी के कारखानों में जहाँ उत्पादन के काम आने वाला अधिक सामान थोड़ा होता है, कच्चे माल पर लागत अपेक्षाकृत वहीं कम होती हैं, किन्तु पत्थर, ईंट एवं खपरैल के कार्यों में यह अन्य उद्योगों की ही भांति होती है: किन्तु अधिकांश उद्योगों में उत्पादन के लिए आवश्यक सामान की लागत मजदूरी बिल से बहुत अधिक होती है। और यदि सभी उद्योगों के औसत से इसकी तुलना करें तो यह साढ़े तीन गुनी होगी। किंचित् परिवर्तन वाले उद्योगों में तो यह साधारणतया पच्चीस से लेकर पचास गुनी तक होती है।

इनमें से अनेक असमानताएं उस समय दूर हो जाती हैं जब किसी व्यवसाय के उत्पादन की गणना करने से पूर्व उसमें से कच्चा माल, कोयले, इत्यादि का मूल्य घटा दिया जाय। सतर्क संख्याशास्त्री उदाहरण के लिए धागे तथा कपड़े के दो बार गिने जान

असाधारण योग्यता एवं शक्ति वाला एक विनिर्माता अपने प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा सम्भवतः अधिक अच्छी प्रणालियों को अपनायेगा और सम्भवतः अधिक अच्छी मशीनों का उपयोग करेगा: वह अपने व्यवसाय के विनिर्माण एवं विपणन सम्बन्धी पहलुओं की भी अधिक अच्छी व्यवस्था करेगा तथा उनमें से प्रत्येक को एक दूसरे के अधिक उपयुक्त बनायेगा। इन साधनों से वह व्यवसाय का विस्तार करेगा, और इसलिए श्रम एवं संयत्र दोनों के विशिष्टीकरण से अधिक लाभ प्राप्त करेगा।[1] इस प्रकार उसके उत्पादन मे क्रमागत वृद्धि होगी और उसके लाभ भी बढ़ते जायेंगे: क्योंकि यदि वह अनेक उत्पादकों में से एक हो तो उसके उत्पादन मे वृद्धि हो जाने से उसके माल की कीमत मे विशेष कमी न होगी और मितव्ययिता के सभी लाभ उसे स्वयं ही प्राप्त होंगे। यदि उसे उद्योग की अपनी शाखा मे आंशिक एकाधिकार हो तो वह अपने बढ़े हुए उत्पादन को इस प्रकार से नियंत्रित करेगा कि उसके एकाधिकार लाभ मे वृद्धि हो।

किसी उद्योग में लाभ की प्रसामान्य दर उत्पादन में क्रमशः बड़ी मात्रा में वृद्धि हो जाने से कम हो जाती है।

किन्तु जब इस प्रकार के सुधार एक या दो उत्पादकों तक ही सीमित नही होते; जब वे इसके अनुरूप माँग तथा उत्पादन मे सामान्य वृद्धि से या सुधरी हुई प्रणालियों या मशीनों से जिनका सम्पूर्ण उद्योग के लिए अपनाना सम्भव है, उत्पन्न होते है या गौण उद्योगों द्वारा दी गयी अग्रिम पेशगी, तथा साधारणतया बढ़ी हुई बाह्य किफायतों से उत्पन्न होते है, तब उत्पाद की कीमतें ऐसे स्तर के निकट पहुँच जायेगी जिस पर उद्योग की उस श्रेणी को केवल प्रसामान्य दर पर लाभ प्राप्त होगा। इस प्रक्रिया मे वह उद्योग एक ऐसी श्रेणी मे आ जायगा जिसमे इसकी पुरानी श्रेणी की अपेक्षा कम दर पर प्रसामान्य लाभ मिलेगा, क्योंकि इसमे पहले की अपेक्षा समानता एव नीरसता अधिक और मानसिक थकान कम है। अन्य शब्दो मे यह लगभग पहली श्रेणी के ही

से बचने के लिए किसी देश के विनिर्माण उत्पादन का अनुमान लगाते समय साधारण-तया इसी योजना का अनुसरण करते हैं। इन्हीं कारणों से किसी देश के कृषि उत्पाद का अनुमान लगाते समय हमें पशु तथा चारे की फसल दोनों को एक साथ गणना नहीं करनी चाहिए। कुछ भी हो यह योजना पूर्णरूप से सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि तर्क की दृष्टि से बुनने के कार्य में लगी हुई फैक्टरी द्वारा खरीदे जाने वाले करघे तथा काम में आने वाले धागे दोनों ही कम कर दिये जाने चाहिए। पुनः यदि स्वयं फैक्टरी को भवन-निर्माण व्यवसायों का उत्पाद माना जाय तो बुनने के व्यवसाय के उत्पादन में से (कुछ वर्षों के अन्दर) इसका मूल्य घटा देना चाहिए। यही बात फार्म में बनी हुई इमारतों के विषय में भी लागू होती है। फार्म में काम करने वाले घोड़ों की तो निश्चय ही गणना नहीं होनी चाहिए और न इस विषय में कुछ उद्देश्यों के लिए काम में लाये जाने वाले किसी भी घोड़े को गिना जाना चाहिए। कच्चे माल के अतिरिक्त और कुछ भी कम न करने की योजना तभी उपयोगी है जब इसमें से हो सकने वाली त्रुटि को स्पष्टरूप में समझा जाय।

1 भाग 4, आध्याय 11, अनुभाग 2–4 देखिए।

समान है, क्योंकि यह संयुक्त पूंजी प्रबन्ध के अधिक अनुकूल है। अतः किसी उद्योग में उत्पाद की मात्रा तथा श्रम एवं पूंजी के गुण के अनुपात में सामान्य वृद्धि होने से लाभ की दर में कमी हो सकती है, जिसे कुछ दृष्टिकोणों से मूल्यों के रूप में माना जाने वाला क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम माना जा सकता है।

व्यापारावर्त पर लाभ की दर में पूंजी के वार्षिक लाभ की दर की अपेक्षा कहीं अधिक उतार-चढ़ाव होते हैं।

§3. अब हम प्रतिवर्ष मिलने वाले लाभ पर विचार करना छोड़कर आगे बढ़ेंगे और व्यापारावर्त के लाभ को नियंत्रित करने वाले कारणों की जांच करेंगे। यह स्पष्ट है कि जहाँ वार्षिक लाभ की प्रसामान्य दर संकुचित सीमाओं के बीच परिवर्तित होती है, वहाँ व्यापार की अलग अलग शाखाओं में व्यापारावर्त पर मिलने वाले लाभ में बहुत ही अधिक अन्तर पाया जाता है, क्योंकि यह व्यापारावर्त के लिए आवश्यक समय की अवधि तथा कार्य की मात्रा पर निर्भर है। इस प्रकार थोक व्यापारी जो सकल सौदों में उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा का क्रय विक्रय कर सकते हैं, तथा जो अपनी पूंजी की बड़ी तीव्रतापूर्वक आवृत्ति कर सकते है, बहुत लाभ कमाते है, यद्यपि व्यापारावर्त पर उन्हे मिलने वाला औसत लाभ एक प्रतिशत से भी कम बैठता है, और विशाल सट्टा बाजार के लेनदेन में तो यह एक प्रतिशत का भी थोड़ा सा ही हिस्सा होता है। किन्तु जहाज निर्माता जिसे जहाज की बिक्री के लिए तैयार होने के बहुत समय पूर्व उसमें श्रम एवं अन्य सामान लगाना पड़ता है और लगर लगाना पड़ता है, तथा जिसे सम्बन्धित हर सूक्ष्म विषय पर ध्यान देना पड़ता है, उसे अवश्य ही अपने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष परिव्यय में बहुत ऊँचा प्रतिशत जोड़ना चाहिए जिससे उसके श्रम तथा उसकी इसमें फँसी हुई पूंजी के लिए पारितोषिक मिल सके।[1]

पुन. वस्त्र उद्योगों में कुछ फर्में कच्चा माल खरीद कर तैयार माल बनाती हैं और अन्य फर्में कताई, बुनाई या इसे पूर्णरूप से तैयार करने के कार्य तक ही अपने को सीमित रखती हैं। यह स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के किसी फर्म को मिलने वाले लाभ की दर इन अन्य तीन वर्गों में से प्रत्येक के लाभ की दर के योग के बराबर

1 उसे अपनी पूंजी के उस भाग पर जिसे उसने जहाज बनाने की प्रारम्भिक अवस्था में लगाया था ऊँची दर पर लाभ लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि उस पूंजी के एक बार विनियोजित हो जाने के बाद उसे उसमें अपनी योग्यता एवं उद्यमशीलता को विशेषरूप से लगाने की आवश्यकता नहीं होगी, और उसके लिए चक्रवृद्धि ब्याज की ऊँची दर पर अपने परिव्यय को 'संचित' करना पर्याप्त होगा, किन्तु ऐसी दशा में उसे अपने श्रम के मूल्य को अपने प्रारम्भिक परिव्यय के अंग के रूप में गिन लेना चाहिए। दूसरी ओर यदि वहाँ कोई ऐसा व्यवसाय हो जिसमें सम्पूर्ण पूंजी पर निरन्तर एवं लगभग समानरूप से कष्ट उठाने की जरूरत हो तो उस व्यवसाय में पिछले विनियोजनों के 'संचित' मूल्य को प्राप्त करने के लिए 'चक्रवृद्धि' दर अर्थात् चक्रवृद्धि ब्याज की भांति गुणोत्तर रूप से बढ़ती हुई दर पर लाभ शामिल करना तर्कसंगत होगा। यह योजना सरलता की दृष्टि से व्यावहारिक रूप में भी बहुधा अपनायी जाती है जहाँ ऐसा करना सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्णरूप से उपयुक्त नहीं है।

होगी।[1] पुनः ऐसी वस्तुओं में जिनकी सभी लोगों द्वारा माँग की जाती है तथा जिनमें फैशन के अनुसार परिवर्तन नही होते खुदरे व्यापारी के आवर्त पर बहुधा केवल पाँच या दस प्रतिशत लाभ होता है। इसके फलस्वरूप बिक्री अधिक होती है और आवश्यक स्टाक कम रहता है तथा इसमें लगी पूंजी का थोड़ा ही कष्ट उठाये बिना किसी जोखिम का बहुत तीव्रतापूर्वक आवर्त किया जा सकता है। किन्तु कुछ प्रकार के फैंसी माल के सम्बन्ध मे जिसे धीरे धीरे ही बेचा जा सकता है तथा जिसका विभिन्न प्रकार का स्टाक रखना पड़ता है, जिसके प्रदर्शन के लिए बहुत बड़े स्थान की आवश्यकता होती है तथा जिसे फैशन के बदल जाने पर केवल घाटे पर ही बेचा जा सकता है, खुदरे व्यापारी के पारिश्रामिक के लिए लगभग सौ प्रतिशत का लाभ आवश्यक होता है, और मछली, फलफूल तथा सब्जियों में तो यह दर उससे भी अधिक होती है।[2]

किन्तु व्यापार की प्रत्येक शाखा में आवर्त पर प्रथागत या उचित दर पर लाभ होगा।

§4. अतः हमें यह ज्ञात हो जाता है कि आवर्त पर मिलने वाले प्रसामान्य लाभ मे बराबर होने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती, किन्तु प्रत्येक व्यापार में तथा प्रत्येक व्यापार की हर शाखा में आवर्त पर न्यूनाधिक रूप से निश्चित दर पर लाभ प्राप्त हो सकता है और होता भी है, जिसे 'उचित' या प्रसामान्य दर माना जाता है। निस्सन्देह व्यापार की प्रणालियों में होने वाले उन परिवर्तनों के फलस्वरूप इन दरों मे सदैव परिवर्तन के फलस्वरूप इन दरों में सदैव परिवर्तन होते हैं जिन्हें ऐसे लोगों द्वारा प्रारम्भ किया जाता है जो आवर्त पर चिरप्रचलित दर की अपेक्षा कम लाभ पर अधिक पैमाने पर व्यापार चलाने के इच्छुक हैं। यदि इस प्रकार का कोई बड़ा परिवर्तन बार बार न हो तो व्यापार की इन परम्पराओं से किसी खास प्रकार के कार्य मे आवर्त पर निश्चित दर पर लाभ होना चाहिए, उन व्यवसायों में कार्य करने वाले लोगों को बहुत बड़ी व्यावहारिक सेवा प्रदान होती है। इस प्रकार की परम्पराएँ बड़े अनुभव की देन है और इनसे यह प्रदर्शित होता है कि यदि उस दर पर लाभ प्राप्त हो तो उस विशेष

---

1. बिलकुल यथार्थ भाषा में यह इन तीनों के योग से कुछ अधिक होगी क्योंकि इसमें अधिक लम्बे समय तक मिलने वाला चक्रवृद्धि ब्याज भी सम्मिलित होगा।

2. मछली बेचने वाले तथा हरी सब्जी बेचने वाले श्रमिक वर्गों के निवास स्थानों में लाभ की बहुत ऊँची दर पर एक छोटा सा व्यवसाय प्रारम्भ कर देते है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की खरीद इतनी थोड़ी होती है कि खरीददार किसी सस्ती दुकान के लिए कुछ दूर जाने की अपेक्षा निकट में स्थित एक अधिक महँगी दुकान से खरीदना पसन्द करेगा। खुदरा विक्रेता भी बहुत अच्छा उपार्जन नहीं कर पाता। भले ही वह उस वस्तु के लिए एक पेंस लेता है जिसे उसने आधे पेंस से भी कम पर खरीदा था। उसी वस्तु को मछुए या कृषक ने सम्भवतः चौथाई पेंस या उससे भी कम पर बेचा था: और भाड़े का खर्च तथा क्षति के विरुद्ध किये जाने वाले बीमे की प्रत्यक्ष लागत अधिकाश रूप में अन्तिम अन्तर का कारण नहीं हो सकती। इस प्रकार यह आम मत कुछ उचित ही है कि इन व्यवसायों में मध्यवर्ती लोगों को अपना संघ बनाकर असाधारण रूप से ऊँचा लाभ अर्जित करने की विशेष सुविधाएँ हैं।

उद्देश्य में लगी हुई सारी लागतों (मूल तथा अनुपूरक) के लिए उचित गुंजाइश रख दी जायेगी, और साथ ही साथ उस प्रकार के व्यवसाय में प्रसामान्य दर पर वार्षिक लाभ प्राप्त होगा। यदि वे ऐसी कीमतें लें जिनसे आवर्त पर अपेक्षाकृत कम दर पर लाभ प्राप्त हो तो उनके लिए प्रगति करना दुष्कर हो जायेगा, और यदि वे इससे कहीं अधिक कीमतें लें तो वे अपने खरीददार खो बैठेंगे, क्योंकि अन्य लोग इससे कम कीमत पर चीजों को बेच सकते हैं।

जब कोई भी कीमत पहले से ही तय न हो तो आवर्त पर लाभ की यही वह 'उचित' दर है जो एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा आदेश के अनुसार माल तैयार करने पर ली जाती है। यदि क्रेता तथा विक्रेता के बीच कोई मतभेद हो तो न्यायालय भी इसी दर को उपयुक्त ठहरायेगा।[1]

---

1 ऐसी दशाओं में जो विशेषज्ञ-साक्ष्य (expert evidence) दिया जाता है वह अर्थशास्त्री के लिए अनेक प्रकार से 'शिक्षाप्रद है। इनमें विशेष्य बात यह है कि उस व्यवसाय की प्रथाओं के विषय में मध्यकालीन वाक्यांशों का प्रयोग हुआ है और उन कारणों को न्यूनाधिक रूप में जानबूझ कर मान्यता दी गयी है जो प्रथाओं को जन्म देते हैं तथा उन्हें निरन्तर बनाये रखने के लिए भी इन्हीं का उल्लेख किया जाता है। अन्ततोगत्वा सदैव यही बात सिद्ध हुई है कि यदि आवर्त पर मिलने वाले लाभ की 'प्रथागत' दर किसी एक प्रकार के कार्य में दूसरे की अपेक्षा अधिक हो तो इसका कारण यह होगा कि पूर्वोक्त में पूंजी को अधिक समय तक लगाये रखने की आवश्यकता है (या कुछ समय पूर्व आवश्यकता थी), या खर्चीले उपकरणों (विशेषकर वे जिनका तीव्रता से मूल्य ह्रास होता है, या जिन्हें सदैव काम में नहीं लगाया जा सकता, और इसलिए अतः जिन्हें तुलनात्मक रूप से थोड़े ही कार्यों में लगाना लाभप्रद होगा) की आवश्यकता है, या इसमें उपक्रामी को अधिक कठिन अथवा अरुचिकर कार्य करने या अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है, या इसमें जोखिम का कुछ विशेष अंश है जिसके लिए बीमा कराना आवश्यक है। विशेषज्ञों द्वारा प्रथा के इन समर्थनों को जो स्वयं उनके ही मस्तिष्कों की खोह में बिलकुल छिपे हुए पड़े हैं प्रकाश में लाने के लिए तत्पर न होने से यह विश्वास होने लगता है कि यदि हम मध्यकालीन व्यावसायियों को जीवित बुला सकें और उनसे परिप्रश्न (cross examine) करें तो हम लाभ की दर में इतिहासकारों द्वारा बताये हुए समायोजनों की अपेक्षा विशेष परिस्थितियों में बिना पूर्णरूप से सोच-समझ कर किये जाने वाले समायोजन अधिक मिलेंगे। इन विशेषज्ञों में से अनेक कभी कभी यह स्पष्ट भी नहीं कर पाते कि क्या प्रथागत लाभ की दर जिसके कि विषय में वे कह रहे हैं, आवर्त पर मिलने वाला कोई निश्चित लाभ है, या आवर्त पर मिलने वाली ऐसी दर है जिससे दीर्घकाल में पूंजी पर प्रति वर्ष एक निश्चित दर पर लाभ प्राप्त हो सकेगा। निस्सन्देह मध्यकाल में व्यवसाय की प्रणालियों में अपेक्षाकृत अधिक समानता से पूंजी पर प्रति वर्ष पर्याप्त रूप से समान दर पर लाभ मिल सकेगा, और पूंजी के आवर्त से प्राप्त होने वाले लाभ में वे अत्यधिक परिवर्तन नहीं करने पड़ेंगे जो कि आधुनिक व्यवसाय में अपारिहार्य हैं। किन्तु

§5. अब तक हमारे दृष्टिकोण के अन्तर्गत आर्थिक शक्तियों के मुख्यतया अन्तिम या दीर्घकालीन या वास्तविक सामान्य परिणाम ही रहे है। हमने इस बात पर विचार किया कि इस प्रकार पूंजी तथा व्यावसायिक योग्यता वाले व्यक्तियों की दीर्घकाल मे माँग के अनुसार पूर्ति समायोजित हो जाती है। हम यह भी देख चुके है कि किस प्रकार इन गुणों से युक्त लोग प्रत्येक ऐसे व्यवसाय को तथा उसे चलाने की प्रत्येक ऐसी प्रणाली को अपनाने का प्रयत्न करते है जिसमे वे लोग इनकी सेवाओं को मूल्यवान समझें जो अपनी आवश्यकताओ की संतुष्टि के लिए ऊँची कीमतें दे सकते है। इसके फलस्वरूप इन सेवाओं के लिए दीर्घकाल मे ऊँचा पुरस्कार मिलेगा। इस कार्य मे उपक्रामियों की प्रतिस्पर्द्धा प्रेरक शक्ति का कार्य करती है, प्रत्येक उपक्रामी भी व्यवसाय को सभी दिशाओं मे बढ़ने का प्रयत्न करता है, भविष्य मे सम्भावित घटनाओ की पूर्व-सूचना देता है, उनको उनके वास्तविक अनुपात मे रखता है और यह अनुमान लगाता है कि किसी भी उपक्रम से प्राप्त होने वाली आय उसमे लगने वाले परिव्यय से कितनी अधिक हो सकती है। उसे होने वाले सभी सम्भावित लाभ उसके उन लाभो मे शामिल होते हैं जिनसे वह उस उपक्रम को करने के लिए प्रेरित होता है। उसे उन व्यवसायो को प्रारम्भ करने से पहले यह विश्वास हो जाना चाहिए कि भविष्य मे उत्पादन के लिए उपकरणों के निर्माण तथा व्यापारिक सम्बन्धो की 'अभौतिक' पूंजी मे पूँजी एव शक्ति का लगाया जाना लाभप्रद होगा: वह इनसे दीर्घकाल मे जो भी प्रतिफल प्राप्त करने की आशा करता है वे सभी इसमें शामिल है। यदि वह प्रसामान्य योग्यता (प्रसामान्य से अभिप्राय उस प्रकार के कार्य के लिए सामान्य से है) वाला व्यक्ति हो, और इस सन्देह के सीमान्त में हो कि उसे जोखिम उठाना चाहिए या नही तो यह कहा जा सकता है कि सारे लाभ विचाराधीन सेवाओ के उत्पादन की (सीमान्त) सामान्य लागत का वास्तविक रूप मे प्रतिनिधित्व करते है। इस प्रकार सामान्य लाभों का सम्पूर्ण भाग वास्तविक या दीर्घकालीन सम्भरण कीमत मे सम्मिलित होता है।

लाभ प्रसामान्य सम्भरण कीमत का अंग है।

जिन प्रयोजनों से कोई व्यक्ति या उसके पिता उसे दस्तकार, पेशेवर व्यक्ति या व्यावसायिक व्यक्ति बनाने के लिए पूंजी एव श्रम लगाते है वे उन प्रयोजनों की ही भांति हैं जिनसे किसी व्यवसाय के भौतिक सयत्र तथा सगठन मे पूँजी एव श्रम लगाये जाते हैं। प्रत्येक दशा मे विनियोजन (यदि मनुष्य का कार्य जानबूझ कर किया जाय) उस सीमान्त तक किया जाता है जिससे आगे विनियोजन करने से कुछ भी लाभ शेष नही बचता, तुष्टि गुण 'तुष्टिहीनता' से बढ़कर नही होता, और इस सम्पूर्ण विनियोजन के लिए पुरस्कार के रूप में जो कीमत प्राप्त करने की प्रत्याशा की जाती है वह इससे प्राप्त सेवाओं के उत्पादन के सामान्य खर्चों का एक अग है।

मजदूरी के प्रसामान्य स्तरों तथा लाभ के विभिन्न अंगों को निर्धारित करने वाले कारण

इस पर भी यह स्पष्ट है कि यदि एक प्रकार की लाभ की दरें लगभग समान हों तो अन्य समान नहीं होंगी। मध्यकालीन आर्थिक इतिहास पर जो कुछ भी लिखा गया है उसका महत्व इन दोनों प्रकार की लाभ की दरों तथा उन अन्तिम शास्तियों (sanctions) के बीच पाये जाने वाले अन्तरों को विशेषरूप से न समझने के कारण कुछ दूषित हो गया है जिन पर प्रथा, जो कि उनसे अनेक प्रकार से सम्बन्धित है, निर्भर रहती है।

उन कारणों की अपेक्षा एक दूसरे से अधिक मिलते-जुलते हैं जिनसे उनके मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ाव निर्धारित होते हैं।

इन सभी कारणों के पूर्ण प्रभाव पडने में बहुत लम्बे समय की आवश्यकता है, जिससे कि असाधारण असफलता का असाधारण सफलता से संतुलन हो सके। एक ओर वे लोग है जिन्हे इस कारण अपार सफलता मिलती है कि उनके पास या तो अपने सट्टे वाले उद्यमो मे या अपने व्यवसाय के सर्वतोमयी विकास मे विशेष सुअवसरो पर लाभ उठाने की दुर्लभ योग्यता है या उन्हे दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त है। दूसरी ओर वे लोग हैं जो बौद्धिक अथवा नैतिक रूप से अपने प्रशिक्षण का तथा जीवन के अच्छे प्रारम्भ का सदुपयोग नही कर सकते, और जिन्हे अपने व्यवसायो मे विशेष रुझान नही है, जिनके सट्टो मे हानि ही होती है, या जिनके व्यवसाय प्रतिद्वन्द्वियो के घुस पड़ने से दुर्बल पड जाते हैं, या जिनकी उत्पत्ति वस्तुओं के लिए माँग कम हो जाने तथा अन्य वस्तुओं की माँग बढ जाने के कारण कठिनाई पैदा हो जाती है।

प्रसामान्य उपार्जन तथा प्रसामान्य मूल्य से सम्बन्धित समस्याओं मे यद्यपि इन विघ्नकारी कारणों की अवहेलना की जा सकती है, किन्तु इनका किसी विशेष समय, विशेष व्यक्तियो द्वारा अर्जित की जाने वाली आय के प्रसग मे प्रथम स्थान है और ये इसे मुख्यरूप से प्रभावित करती है। और चूँकि इन विघ्नकारी कारणो से लाभ तथा प्रबन्ध के उपार्जन उसी भाँति प्रभावित नही होते जिस भाँति साधारण उपार्जन प्रभावित होते है, अत- इनमे अस्थायी परिवर्तनो पर तथा एक एक घटना पर विचार करते समय लाभ एव साधारण उपार्जनो पर वैज्ञानिक दृष्टि से अलग अलग विचार करने की आवश्यकता है। बाजार के परिवर्तनो के विषय से सम्बन्धित प्रश्नो पर तब तक ठीक ढग से विचार नही किया जा सकता जब तक कि द्रव्य, साख तथा वैदेशिक व्यापार के सिद्धान्तो का विवेचन न किया जाय। किन्तु इस स्थिति मे भी अभी अभी उल्लेख की गयी बाधाओं के लाभ तथा साधारण उपार्जनो पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों में भिन्न विपर्यय दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अन्तर। लाभ में कीमतों के साथ तथा उनसे भी अधिक अनुपात में परिवर्तन होते हैं: किन्तु कर्मचारियों की मजदूरी में

§6 उपक्रामी की पूँजी (जिसमे उसका व्यावसायिक संगठन भी शामिल है), उसके अपने तथा अपने कर्मचारियो के श्रम के उत्पाद की किसी भी वस्तु की कीमत मे होने वाले किसी भी परिवर्तन का प्रथम प्रभाव उपक्रामी के लाभों पर पड़ता है, और परिणामस्वरूप साधारणतया उसके लाभ मे कर्मचारियो की मजदूरी की अपेक्षा पहले ही परिवर्तन हो जाते हैं जो कही अधिक व्यापक होते हैं। क्योंकि अन्य बातों के समान रहने पर, वह जिस कीमत पर अपने उत्पाद की चीजो को बेच सकता है, उसमें तुलनात्मक रूप से किंचित् वृद्धि से यह असम्भव नही कि उसके लाभ मे कई गुनी वृद्धि हो या सम्भवतया हानि की लाभ द्वारा प्रतिस्थापना हो। उस वृद्धि के फलस्वरूप वह जब कभी सम्भव हो अच्छी कीमतों से लाभ उठाने के लिए इच्छुक होगा, और उसे यह डर लगा रहेगा कि कही उसके कर्मचारी उसके यहाँ कार्य करना छोड न दें या कार्य करने मे इन्कार न कर दें। अत- वह पहले से ऊँची मजदूरी देने मे अधिक समर्थ और अधिक तत्पर होगा तथा मजदूरी मे बढने की प्रवृत्ति पायी जायेगी। किन्तु अनुभव से यह पता लग जाता है कि चाहे वे विसर्पी (sliding) सारणी से नियंत्रित हो या नही उनमें अनुपात मे कदाचित् ही उतनी वृद्धि होती है जितनी कि कीमतों में

होती है, और अतः इनमें अनुपात में लगभग इतनी वृद्धि नहीं होती जितनी कि लाभ में होती है।

बाद में तथा कम मात्रा में परिवर्तन होते हैं।

इसी तथ्य का एक पहलू यह भी है कि जब व्यापार बुरी दशा में हो तो कर्मचारी पर इसका बुरा से बुरा प्रभाव यह पड़ेगा कि वह अपने तथा अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए कुछ भी उपार्जन नहीं कर सकेगा, किन्तु मालिक की आय उसके खर्चों से भी अधिक हो सकती है। विशेषकर यदि इसमें बहुत पूँजी उधार ली हुई हो। उस दशा में उसके प्रबन्ध के सकल उपार्जन भी नकारात्मक हो सकते हैं: अर्थात् उसे अपनी पूँजी पर हानि होती रहती है। बहुत बुरे समयों में अनेक उपक्रामियों को सम्भवतः अधिकांश उपक्रामियों को, ऐसी ही दशाओं का सामना करना पड़ता है, और जो लोग अपने विशेष व्यवसाय में अन्य लोगों की अपेक्षा कम सौभाग्य वाले, या कम योग्य हैं उन्हें भी, निरन्तर ऐसी ही दशाओं का सामना करना पड़ता है।

द्वितीय अन्तर। साधारण उपार्जनों की अपेक्षा वैयक्तिक लाभों में अधिक अन्तर पाया जाता है और उनका औसत मूल्य वास्तविकता से अधिक आँका गया है क्योंकि जो लोग अपनी सारी पूँजी गँवा देते हैं उन्हें ध्यान में नहीं रखा जाता।

§7. दूसरी बात पर विचार करते हुए, जिन लोगो को व्यवसाय मे सफलता मिलती है उनकी संख्या इनमे प्रवेश करने वालों की कुल संख्या के अनुपात मे थोड़ी ही है, और इनके हाथों मे उन अन्य लोगो का भाग्य सकेन्द्रित (oncentrated) है जिनकी संख्या इन असख्य लोगों से कई गुनी है। जिन्होने स्वय बचत की है, या अन्य लोगो द्वारा की गयी बचत को उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त किया है और ये असफल व्यवसाय मे इस सारे को ही नही अपितु स्वय अपने प्रयत्नो के प्रतिफल को गवाँ बैठे है। अतः किसी व्यापार के औसत लाभ का पता लगाने के लिए हमे इसमे प्राप्त होने वाले कुल लाभ को उन लोगो द्वारा विभाजित नही करना चाहिए जो इन्हे प्राप्त कर रहे है और न उस सख्या से विभाजित करना चाहिए जिसमे इनके अतिरिक्त वे लोग भी शामिल हैं जिन्हे इसमें असफलता मिली है: किन्तु सफल व्यक्तियो के औसत लाभ मे से उन लोगों की कुल क्षति को घटा देना चाहिए जिन्हे इसमे असफलता मिली है और जो इस व्यवसाय को ही छोड गये हैं। इसके बाद शेष को उन लोगो के योग से विभाजित करना चाहिए जिन्हे इसमे सफलता या असफलता मिली है। यह सम्भव है कि प्रबन्ध का वास्तविक सकल उपार्जन अर्थात् ब्याज से लाभ की अधिकता औसत रूप मे आधे से अधिक नही है, और कुछ जोखिमपूर्ण व्यवसायो मे यह उन लोगो को मिलने वाले भाग के दसवे हिस्से से अधिक नही है जो किसी व्यापार की लाभदायकता का केवल उन लोगों के अवलोकन से अनुमान लगाते है जिन्हे इनमे महान सफलता मिली है। किन्तु जैसा कि हम अभी अभी देखेंगे यह सोचने के भी कारण है कि व्यापार के जोखिम बढ़ने की अपेक्षा कुल मिला कर घटते जा रहे हैं।[1]

1 एक पीढ़ी पूर्व हिन्दुस्तान से अंग्रेज लोग प्रचुर सम्पत्ति लेकर लौटे थे और यह विश्वास फैल गया कि वहाँ औसत रूप में प्रचुर मात्रा में लाभ अर्जित किया जाता है। किन्तु सर डी० हण्टर ने (Annals of Rural Bengal, अध्याय VI) में यह इंगित किया है कि असफल होने वाले लोगों की सख्या असंख्य थी, किन्तु केवल 'वे ही लोग आपबीती सुनाने लौटे थे जिन्हें बड़ी लाटरी में पुरस्कार मिले थे।' जब यह सब कुछ हो रहा था ठीक उस समय इंग्लैंड में आमतौर पर यह कहा जाता था कि

तृतीय अन्तर। प्रयत्न का वास्तविक उपार्जन ही लगभग सदैव दस्तकार

§8. इसके पश्चात् हम लाभ तथा साधारण उपार्जन के बीच पाये जाने वाले किसी अन्य अन्तर पर विचार करेंगे। हम यह देख चुके है कि दस्तकार या पेशेवर व्यक्ति के कार्य के लिए अपेक्षित कुशलता प्राप्त करने में मुक्त पूँजी या श्रम के विनियोजन के पूर्व उनसे प्रत्याशित आय लाभ की भाँति होती है: यद्यपि इसमें अपेक्षित लाभ की दर दो कारणों से ऊँची होती है—जो लोग परिव्यय करते हैं उन्हें स्वयं इससे मिलने वाले प्रतिफल का अधिकांश भाग प्राप्त नहीं होता, और वे बहुधा तंगी में रहते हैं, और बिना आत्म संयम के सुदूर प्रतिफल के लिए विनियोजन नहीं कर सकते। हम यह भी देख चुके है कि दस्तकार या पेशेवर व्यक्ति अपने कार्य के लिए अपेक्षित कुशलता को

एक धनी व्यक्ति तथा उसके कोचवान के परिवार सम्भवतया तीन पीढ़ियों के अन्दर अपना स्थान बदल लेंगे। यह सत्य है कि आंशिक रूप से युवक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रायः सम्पत्ति को पानी की तरह बहा देने तथा आंशिक रूप से अपनी पूंजी के विनियोजन के लिए सुरक्षित स्थान प्राप्त करने में कठिनाई उठाने के कारण ऐसा हो रहा था। इंग्लैंड के धनी वर्गों में संयम तथा शिक्षा के कारण उतनी ही स्थिरता आयी है जितनी कि विनियोजन की उन प्रणालियों के विकास के कारण आयी है जिनसे धनी व्यक्ति के उत्तराधिकारी उसकी सम्पत्ति से सुरक्षित तथा चिरस्थायी आय प्राप्त करते है, यद्यपि उन्हें उत्तराधिकार आय के रूप में वह व्यावसायिक कुशलता प्राप्त नहीं होती जिससे उसने यह सम्पत्ति अर्जित की थी। किन्तु आज भी इंग्लैंड में ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें अधिकांश विनिर्माता कामगर हैं या कामगरो के ही बेटे हैं। अमेरिका में यद्यपि इंग्लैंड की भाँति प्रायः मूर्खतापूर्वक किया जाने वाला अपव्यय कम होता है, इस पर भी वहाँ परिस्थितियों में अधिक परिवर्तन होने तथा किसी व्यवसाय को हर समय आगे रखने की कठिनाई के कारण आमतौर पर यह कहावत प्रचलित है कि परिवार 'तीन पीढ़ियों में अधिक परिश्रम करने पर भी जैसे का तैसा ही बना रहता है।' वेल्स (Recent Econom c Changes, पृष्ठ 351) कहते हैं, 'जो लोग किसी मत को प्रकट कर सकते हैं उनमें बहुत समय से इस बात के लिए पर्याप्त मतैक्य रहा है कि अपनी ही पूंजी से व्यवसाय चलाने वाले लोगों के नब्बे प्रतिशत को इसमें सफलता नहीं मिलती है।' जे० एच० वाकर ने (Quarterly Journal of Economics, खण्ड II, पृष्ठ 448) सन् 1840 तथा 1888 ई० के बीच मैसाचूसेट में वासेस्टर के प्रमुख उद्योगों में विनिर्माताओं के प्रवेश तथा उनके व्यापारिक जीवन से सम्बन्धित कुछ विस्तृत आँकड़े दिये हैं। उनमें से नब्बे प्रतिशत अधिक लोगों ने कमेरों (journeyman) के रूप में जीवन प्रारम्भ किया और सन् 1840, 1850 तथा 1860 में जो लोग विनिर्माताओं की सूची में थे उनके बेटों के दस प्रतिशत से भी कम लोगों के पास सन् 1888 ई० में शायद ही कुछ सम्पत्ति थी या वे शायद ही अपने पीछे कुछ सम्पत्ति छोड़ गये थे। फ्रान्स के विषय में लेरॉय ब्यूल्यू (Repartition des Richesses, अध्याय IX) कहते हैं कि प्रारम्भ हुए हर सौ व्यवसायों में बीस व्यवसाय तुरन्त ही लुप्त हो जाते हैं, पचास या साठ पनपने की कोशिश करते हैं, किन्तु इनका न तो उत्थान और न पतन ही होता है, और केवल दस या पन्द्रह सफल हो पाते हैं।

जब एक बार प्राप्त कर लेता है तो वह अपने उपार्जन का कुछ भाग वास्तव में भविष्य में अपने को कार्य करने के योग्य बनाने, जीवन मे प्रवेश करने, व्यावसायिक सम्बन्ध बनाने तथा साधारणतया अपनी प्रतिभाओ का सदुपयोग करने के अवसर प्रदान करने मे पूंजी एव श्रम का जो विनियोजन करता है उसे आभास-लगान कहा जाता है और उसकी आय का शेष भाग ही उसके प्रयत्न का उपार्जन है। किन्तु यह शेष भाग आम-तौर पर कुल आय का बहुत बड़ा भाग होता है। यही इनमे विपर्यय है क्योंकि जब व्यापारी के लाभों का इसी प्रकार का विश्लेषण किया जाता है तो ये अनुपात भिन्न होते है: ऐसी दशा मे अधिकाश भाग आभास-लगान है।

या पेशेवर व्यक्ति की आय का पर्याप्त भाग है, किन्तु यह व्यापारी की आय का पर्याप्त भाग नहीं होता।

किसी बड़े पैमाने पर चलने वाले व्यवसाय के उपक्रामी को अपने व्यवसाय मे विनियोजित भौतिक एवं अभौतिक पूंजी से मिलने वाली आय इतनी अधिक होती है, और इसमें पर्याप्तरूप से ऋणात्मक मात्रा से लेकर प्रचुर धनात्मक मात्रा में इतने तीक्ष्ण परिवर्तन हो सकते है कि वह इसमे लगे हुए अपने श्रम के विषय मे बहुत कम सोचता है। यदि उसका व्यवसाय लाभप्रद सिद्ध हो तो वह इससे प्राप्त होने वाले प्रतिफल को पूर्णरूप में लाभ ही समझेगा। उसके व्यवसाय के उसके हाथो मे केवल आंशिकरूप से सक्रिय रहने तथा पूर्ण क्षमता के साथ चलाने मे होने वाले कष्ट के बीच इतना कम अन्तर है कि कदाचित् ही उसे यह आभास होता है कि वह इनसे होने वाले लाभो मे से अपने अतिरिक्त श्रम के प्रतिफल को कम कर दे उसे दस्तकार की भांति जिसे समयो-परि कार्य करने से प्राप्त होने वाली आय के कारण थकान प्रतीत नही होती, यह अधिक आभास नही होता कि उसे अतिरिक्त थकान के कारण आय प्राप्त हुई है। यही तथ्य प्रसामान्य लाभ तथा प्रसामान्य मजदूरी को निर्धारित करने वाले कारणो मे अन्तर्निहित आधारभूत एकता की सामान्य जनता द्वारा तथा यहां तक कि कुछ अर्थ-शास्त्रियो द्वारा अपूर्ण मान्यता का मुख्य और कुछ अशो मे न्यायसगत आधार रहा है।

अभी अभी बताये गये अन्तर से बहुत कुछ मिलता हुआ एक और अन्तर है। जब किसी दस्तकार या पेशेवर व्यक्ति मे दुर्लभ प्राकृतिक योग्यताएँ हो जिन्हे मानवीय प्रयत्न से नही बनाया जा सकता और न जो भविष्य मे होने वाले लाभ के लिए किये गये त्याग के ही प्रतिफल है तो इनसे उसे उन साधारण लोगो की अपेक्षा अतिरिक्त आय मिलती है जो अपनी शिक्षा मे तथा जीवन को अच्छे ढग से प्रारम्भ करने मे पूंजी एव श्रम का समान ही विनियोजन करते हैं। वह अतिरिक्त आय लगान की भांति है।

चतुर्थ अन्तर। सफल व्यापारियों की आय का बहुत बड़ा हिस्सा उनकी दुर्लभ प्राकृतिक मेधाओं के ही कारण है।

अब हम पिछले अध्याय के अन्त मे दिये गये विषय पर फिर से विचार करेंगे। व्यावसायिक उपक्रामियो के वर्ग मे उच्च प्राकृतिक योग्यता वाले व्यक्तियो की सख्या आवश्यकता से अधिक होती है, क्योंकि अपने वर्ग मे उत्पन्न योग्य व्यक्तियो के अतिरिक्त इसमे उद्योग के निम्नतर श्रेणियो मे उत्पन्न सर्वोत्तम प्राकृतिक योग्यताओ वाले अधिकाश व्यक्ति भी शामिल है। इस प्रकार शिक्षा मे लगी पूंजी से मिलने वाले लाभो का जहां पेशेवर व्यक्तियों के वर्ग की आय मे विशेष महत्व है, वहां दुर्लभ प्राकृतिक योग्यताओ की लगान को व्यक्तिगत रूप से विचार करने पर व्यापारियो की आय मे विशेष महत्व का माना जा सकता है। (प्रसामान्य मूल्य के सम्बन्ध मे दुर्लभ योग्यताओं से प्राप्त उपा-

र्जन को भी, जैसा कि हम देख चुके हैं, वास्तविक लगान मानने की अपेक्षा आभास-लगान मानना चाहिए।)

किन्तु इस नियम के अपवाद भी हैं। एक अति साधारण व्यापारी जिसे उत्तराधिकार के रूप में बहुत अच्छा व्यवसाय मिला है और जिसमें ठीक इतनी ही शक्ति है कि वह व्यापार को किसी प्रकार चलाता रहे तो वह प्रतिवर्ष हजारों पौंड की आय प्राप्त कर सकता है जिसमें दुर्लभ प्राकृतिक गुणों का लगान बहुत कम रहता है। दूसरी ओर, असाधारण रूप से सफलता प्राप्त बैरिस्टर, लेखक, रंगसाज, गायक तथा जाकी द्वारा अर्जित आय के अधिकांश भाग को दुर्लभ प्राकृतिक योग्यताओं का लगान माना जा सकता है, यह तब तक तो माना ही जायेगा जब तक उन पर व्यक्तिगत रूप से विचार करते हैं और यह विचार नहीं करते कि उनके असरय पेशों में श्रम का सामान्य सम्भरण इस बात पर निर्भर है कि वहाँ महत्वाकांक्षी युवकों को अद्भुत सफलता मिलने की कितनी सम्भावना है।

औद्योगिक वातावरण में परिवर्तनों से सामान्य उपार्जनों की अपेक्षा व्यक्तिगत व्यापारियों के लाभ अधिक प्रभावित होते हैं।

किसी खास व्यवसाय की आय पर औद्योगिक वातावरण तथा अवसर में अथवा सयोग में परिवर्तनों का बहुत प्रभाव पड़ता है। किन्तु इसी प्रकार के प्रभावों से अनेक वर्गों के श्रमिकों की कुशलता से अर्जित होने वाली विशेष आय भी प्रभावित होती है। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में ताँबे की बड़ी बड़ी खानों की खोज से कार्नवाल के खनिकों की अर्जनशक्ति जब तक वे अपने देश में ही रहे, घट गयी: और नये क्षेत्रों में बड़ी बड़ी खानों की हर नयी खोज के कारण उन खनिकों की अर्जनशक्ति बढ़ गयी जो पहले से ही वहाँ चले गये थे। पुन नाटकीय मनोरंजनों के लिए रुचि के बढ़ने से जहाँ पात्रों के सामान्य उपार्जनों में वृद्धि होती है और उस कार्य में कुशल लोग अधिक संख्या में आते हैं, वहाँ उन खनिकों की अर्जनशक्ति भी बढ़ जाती है जो पहले से ही उस पेशे में लगे हों, और वैयक्तिक दृष्टिकोण से इसका अधिकांश भाग दुर्लभ प्राकृतिक गुणों के कारण प्राप्त होने वाला उत्पादक अधिशेष है।[1]

---

1 स्वर्गीय जनरल वाकर ने एक ओर मजदूरी को तथा दूसरी ओर प्रबन्ध के उपार्जन को निर्धारित करने वाले कारणों का स्पष्टीकरण करने में सर्वोत्तम योगदान दिया है। किन्तु उन्होंने (Political Economy, अनुभाग 311) दावे के साथ यह कहा है कि विनिर्मित उत्पादों की कीमतों में लाभ का कुछ भी अंश नहीं रहता, और उन्होंने इस सिद्धान्त को अल्पकाल तक ही सीमित नहीं रखा जिसमें, जैसा कि हम देख चुके हैं, हर प्रकार की कुशलता को, चाहे वह असाधारण हो या नहीं, चाहे वह मालिक से सम्बन्धित हो या कामगर से, आभास-लगान माना जा सकता है। वे 'लाभ' शब्द का काल्पनिक अर्थ में प्रयोग करते हैं क्योंकि ब्याज को लाभ से बिलकुल ही निकाल देने के पश्चात् वह यह कल्पना कर लेते हैं कि 'बिना लाभ वाला मालिक कुल मिलाकर या दीर्घकाल में उतनी धनराशि' अर्जित करता है, जितनी कि अन्य लोगों द्वारा नियुक्त किये जाने पर वह मजदूरी के रूप में प्राप्त करने की आशा करता था' (First Lessons 1889, अनुभाग 190) : अर्थात् 'बिना लाभ वाला मालिक' अपनी पूँजी पर ब्याज के अतिरिक्त उतने ही समान योग्यता वाले (चाहे वह योग्यता

एक ही व्यापार में लगे विभिन्न वर्गों के श्रमिकों के हितों के सम्बन्ध।

§9. इसके पश्चात् हम एक ही व्यापार में लगे विभिन्न औद्योगिक वर्गों के लोगों के बीच के पारस्परिक हितों पर विचार करेंगे।

यह पारस्परिक निर्भरता इस सामान्य तथ्य का विशेषरूप है कि किसी वस्तु के उत्पादन के असंख्य कारकों की माँग संयुक्त माँग है, और इस सामान्य तथ्य के लिए भाग 5, अध्याय 6 मे दिये गये दृष्टान्त पर फिर से विचार करेंगे। हमने वहाँ देखा है कि किस प्रकार (मान लीजिए) पलस्तर करने वाले श्रमिक के सम्भरण मे किसी परिवर्तन का जो प्रभाव पडता है वही प्रभाव भवन निर्माण व्यवसाय की अन्य सभी शाखाओं मे लगे हुए श्रमिकों के हितो पर भी पडता है, किन्तु सर्वसाधारण की अपेक्षा इन पर अधिक गहरा प्रभाव पडेगा। तथ्य यह है कि मकान या छींट का कपडा या अन्य किसी चीज को बनाने मे लगे विभिन्न औद्योगिक वर्गों की विशेषीकृत पूंजी एवं कुशलता से प्राप्त आय उस व्यवसाय की सामान्य प्रगति पर बहुत निर्भर है। ऐसी स्थिति उन्हें अल्पकाल के लिए उस समूचे व्यवसाय की मिश्रित या सयुक्त आय का भाग मानना चाहिए। जब उनकी अपनी कार्यकुशलता मे वृद्धि हो या किसी अन्य बाह्य कारण से कुल आय बढ जाय तो प्रत्येक वर्ग को प्राप्त होने वाले भाग मे भी वृद्धि होने लगती है। किन्तु जब कुल आय स्थिर हो, और किसी वर्ग को अन्य की अपेक्षा पहले से अधिक भाग मिलने लगे तो निश्चय ही यह वृद्धि दूसरो के भाग मे कमी के फलस्वरूप हुई होगी। यह बात किसी व्यवसाय मे लगे हुए सभी लोगो पर

कितनी ही हो) लोगों के प्रबन्ध का प्रसामान्य निवल उपार्जन प्राप्त करता है। इस प्रकार जिस आय को इंग्लैंड में साधारणतया लाभ में आँका जाता है उसके ¼ भाग को वाकर द्वारा प्रयोग किये गये अर्थ में लाभ में शामिल नहीं किया जाता (अमेरिका में यह अनुपात वस्तुतः कम होगा, और यूरोप महाद्वीप में इंग्लैंड से भी अधिक होगा)। इस प्रकार उनके सिद्धान्त का केवल यही अभिप्राय है कि मालिक की आय का वह भाग जो असाधारण योग्यताओं अथवा सौभाग्य की देन है, वह कीमत में शामिल नहीं होता। किन्तु प्रत्येक पेशे की सफलता या असफलता का चाहे यह मालिक की ही हो अथवा नहीं, उस पेशे में प्रवेश करने के इच्छुक लोगों की संख्या को तथा उनकी उसमें जुट जाने की शक्ति को निर्धारित करने में हाथ रहता है: और अतः ये 'प्रसामान्य' सम्भरण कीमत में अवश्य शामल होती है। वाकर ने अपने तर्क को इस महत्वपूर्ण तथ्य पर जिसे वे प्रमुख बनाना चाहते थे, आधारित किया कि योग्यतम मालिक जिन्हें दीर्घ-काल में अधिकतम लाभ प्राप्त होता है आमतौर पर वे लोग होते है जो अपने कामगरों को उच्चतम मजदूरी देते हैं तथा उपभोक्ताओं को निम्नतम कीमतों पर चीजें बेचते हैं। किन्तु यह भी समानरूप से सत्य तथा अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है कि वे कामगर जिन्हें उच्चतम मजदूरी मिलती है, प्रायः ऐसे लोग होते है जो अपने मालिकों के संयंत्र एवं सामान का सर्वाधिक सदुपयोग करते हैं (भाग 6, अध्याय 3, अनुभाग 2 देखिए) और उन्हें अपने लिए बहुत लाभ रखने के साथ-साथ उपभोक्ताओं से कम कीमतें लेने का अवसर प्रदान करते हैं।

घटित होती है, और उन लोगों के सम्बन्ध में यह विशेषकर सत्य है जिन्होंने एक ही व्यावसायिक संस्था में साथ साथ काम करने में अपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया है।

किसी व्यवसाय के लाभों का कुछ अंश इसके व्यापारिक सम्बन्धों एवं संगठन से प्राप्त होता है, और यदि कर्मचारी इसे छोड़कर अन्यत्र चले जायें तो बहुधा य लाभ समाप्त हो जाते हैं।

§10 किसी सफल व्यवसाय के उपार्जन स्वयं व्यावसायी के दृष्टिकोण से विचार करने पर, पहले स्थान पर उसकी अपनी योग्यता से दूसरे स्थान पर उसके संयंत्र एवं भौतिक पूँजी से और तीसरे स्थान पर उसकी ख्याति या व्यावसायिक संगठन एवं सम्बन्ध से प्राप्त होने वाले उपार्जनों के कुल योग के बराबर होते हैं। किन्तु वास्तव में ये इन सब के कुल योग से भी अधिक होते हैं। क्योंकि उसकी कार्यकुशलता आंशिक रूप से विशेषकर उसी व्यवसाय में होने पर भी निर्भर रहती है, और यदि वह इसे उचित कीमत पर बेच कर स्वयं अपने को किसी व्यवसाय में लगा ले तो सम्भवतः उसकी आय बहुत कम हो जायेगी। वह यदि अपने व्यापारिक सम्बन्ध का पूरा-पूरा उपयोग करे तो उसके मूल्य को सयोग या अवसर मूल्य का उल्लेखनीय दृष्टान्त कह सकते हैं। यह मुख्यतया योग्यता एवं श्रम का ही उत्पाद है, यद्यपि सौभाग्य का भी इसमे योगदान हो सकता था। इसका वह भाग जो हस्तान्तरित हो सकता है, और किसी निजी व्यक्ति द्वारा या अनेकों फर्मों के एकीकरण (integration) से खरीदा जा सकता है, उनकी लागतों में अवश्य शामिल होना चाहिए, और यह एक अर्थ में सयोग या अवसर लागत है।

मालिक के दृष्टिकोण से उस व्यवसाय के सभी लाभ शामिल नहीं होते क्योंकि इनका एक भाग श्रमिकों को प्राप्त होना है। वास्तव में, कुछ दशाओं में और कुछ उद्देश्यों के लिए किसी व्यवसाय की लगभग सम्पूर्ण आय को ही आभास-लगान अर्थात् वह आय माना जा सकता है जो उस समय इसमे उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं के बाजार की दशा से निर्धारित की गयी है, और इसका उनके कार्य के लिए अनेक चीजें बनाने में लगी लागत तथा इसमे कार्य करने वाले व्यक्तियों से केवल थोड़ा ही सम्बन्ध है। अन्य शब्दों मे यह वह **मिश्रित आभास-लगान** है[1] जो व्यवसाय में लगे विभिन्न व्यक्तियों मे प्रथा एवं ईमानदारी के विचारों की सहायता से ऐसे कारणों के परिणामों का सौदा करने से विभाजित होता है जिनसे सभ्यता के प्रारम्भिक रूपों में भूमि से प्राप्त होने वाले उत्पादक अधिशेष लगभग स्थायीरूप से कुछ ही व्यक्तियों को न मिल कर कृषि करने वाली फर्मों को प्राप्त होता था। इस प्रकार किसी व्यवसाय के प्रधान लिपिक का अनेक लोगों से तथा अनेक चीजों से परिचय होता है जिसे वह कुछ दशाओं मे प्रतिद्वन्द्वी फर्मों से ऊँची मजदूरी लेकर बेच सकता है। किन्तु अन्य दशाओं में जिस व्यवसाय में वह लगा हुआ है उसके अतिरिक्त किसी अन्य के लिए इस परिचय का कुछ भी मूल्य नहीं होता। ऐसी दशा मे यदि वह व्यक्ति दूसरे व्यवसाय में चला जाय तो सम्भवतः इस व्यवसाय मे उसके वेतन के कई गुने की हानि होगी। सम्भवतः उसे भी अन्यत्र पहले व्यवसाय मे मिलने वाले वेतन का आधा भी न मिल सकेगा।[2]

---

1 भाग 5, अध्याय 10, अनुभाग 8 से तुलना कीजिए।

2 जब किसी फर्म की अपनी विशेषता होती है तो इसके यहाँ तक कि अनेक साधारण कारीगरों को भी अन्यत्र चले जाने पर अपनी मजदूरी के बहुत बड़े भाग का

यह देखना महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार इस प्रकार के कर्मचारियों की स्थिति उन अन्य की स्थिति से भिन्न है जिनकी सेवाएँ किसी भी बड़े व्यवसाय के लिए लगभग बराबर ही मूल्यवान है। इनमें से एक की किसी सप्ताह की आय जैसा कि हम देख चुके है, आंशिक रूप से उस सप्ताह के कार्य मे हुई थकान का मुआवजा है, और आंशिक रूप से उसकी विशिष्टीकृत कुशलता एवं योग्यता का आभास-लगान है: और प्रतियोगिता को पूर्णरूप से प्रभावशाली मानने पर यह आभास-लगान उस कीमत से निर्धारित होता है जिसे या तो उसके वर्तमान मालिक या अन्य कोई लोग उस सप्ताह अपनी वस्तुओं के बाजार की स्थिति को देखते हुए उसकी सेवाओं के लिए देने को तैयार होंगे। किसी निश्चित प्रकार के निश्चित कार्य के लिए जो कीमते देनी पड़ती है वे व्यापार की सामान्य दशाओं से इस प्रकार निर्धारित होने के कारण उन प्रत्यक्ष खर्चों (outgoing) मे शामिल होती है जिन्हें उस समय इस विशेष फर्म के आभास-लगान का पता लगाने के लिए इसके सकल उपार्जनों से घटाना पड़ता है. किन्तु इस आभास लगान मे होने वाली वृद्धि या कमी मे कर्मचारियो का कुछ भी हिस्सा नही है। वास्तव मे प्रतियोगिता इस प्रकार पूर्णरूप से प्रभावशाली नही होती। जहाँ एक ही प्रकार की मशीनो से समान प्रकार के कार्य के लिए समूचे बाजार मे एक ही कीमत दी जाती है वहाँ फर्म की समृद्धि से इसके प्रत्येक कर्मचारी की प्रगति के अवसर बढ जाते है और व्यापार के मन्द पड जाने पर उसके निरन्तर रोजगार प्राप्त करने तथा अच्छी स्थिति में होने पर अधिक स्पृहणीय समयोपरि भत्ता प्राप्त करने के अवसर भी बढ़ जाते है।

जब इस प्रकार की कोई भी हानि न हो तो कर्मचारियों की कुशलता का आभास-लगान सम्पूर्ण व्यापार की समृद्धि पर निर्भर रहता है।

इस प्रकार लगभग प्रत्येक व्यवसाय तथा उसके कर्मचारियो के बीच एक प्रकार का यथार्थत. लाभ-हानि का बँटवारा होता है, और जब बिना किसी निश्चित संविदा के रूप मे सन्निविष्ट हुए, वास्तविक भ्रातृभाव के परिणामस्वरूप स्नेहपूर्ण उदारता से एक ही व्यवसाय मे साथ साथ काम करने वाले लोगो के हितों के बीच पारस्परिक निर्भरता का होना स्वीकार कर लिया जाता है तो सम्भवत यह बँटवारा अपने अधिकतम रूप में होगा। किन्तु इस प्रकार की दशाएँ आमतौर पर नही पायी जाती और प्रायः लाभ के बँटवारे की प्रणाली को अपनाने से मालिको तथा कर्मचारियों के सम्बन्ध

लाभ का बँटवारा।

त्याग करना पड़ता है, और साथ ही साथ इससे फर्म को भी बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। प्रधान लिपिक को साझेदार बनाया जा सकता है, और भी कर्मचारियों को उस फर्म के लाभों में से हिस्सा दिया जा सकता है। किन्तु चाहे ऐसा किया जाय या नहीं उनके उपार्जन प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रतिस्थापन के नियम के प्रत्यक्ष प्रभाव से उतने अधिक निर्धारित नहीं होते जितने कि उनके मालिकों के बीच होने वाले सौदे से निर्धारित होते हैं जिसकी शर्तें सैद्धान्तिक रूप से काल्पनिक होती हैं। व्यवसाय में ये सम्भवतया 'जो उचित है उसे करने' की इच्छा से नियंत्रित होंगे अर्थात् मालिक भुगतान करने को तैयार होंगे, ये कर्मचारियों की अलग अलग योग्यता, उनके उद्यम एवं विशेष प्रशिक्षण के सामान्य उपार्जनों के बराबर होंगे। यदि फर्म की आय अच्छी हो तो इन भुगतानों में कुछ और वृद्धि की जायगी तथा स्थिति विपरीत होने पर इसमें कुछ कटौती कर दी जायगी।

आर्थिक एवं नैतिक दोनों दृष्टियों से अधिक ऊँचे उठ जाते हैं। ऐसा उस समय विशेष रूप से होता है जब इसे वास्तविक सहकार के उच्चतर किन्तु अधिक कठिन स्तर तक पहुँचने की दिशा में केवल एक पग ही माना जाता है।

मालिकों के तथा कर्मचारियों के संघ।

यदि किसी व्यवसाय में मालिक मिलकर कार्य करें और कर्मचारी भी ऐसा ही करें तो मजदूरी की समस्या का हल सदिग्ध हो जाता है और केवल सौदाकारी से ही मालिकों एवं कर्मचारियों के बीच आय के व्यय से अधिक होने वाले भाग का बँटवारा किया जाता है। ऐसे उद्योगों को छोड़ने पर जो कि पिछड़ गये हैं, यह मालिकों के हित में नहीं है कि वे मजदूरी को स्थायीरूप से कम कर दें क्योंकि इससे अनेक कुशल श्रमिक अन्य बाजारों में, या यहाँ तक कि उन अन्य उद्योगों में चले जाएँगे जिनसे उन्हें अपनी कुशलता के लिए कोई विशेष उपार्जन नहीं मिलता। किसी औसत वर्ष में मजदूरी इतनी ऊँची होनी चाहिए कि युवक लोग उस व्यवसाय की ओर आकर्षित हो सकें। इससे मजदूरी की निम्नतर सीमाएँ निर्धारित होती हैं, और इसकी उच्चतर सीमाएँ पूँजी तथा व्यावसायिक शक्ति के सम्भरण की तदनुरूप आवश्यकताओं से निर्धारित होती हैं। किन्तु किसी भी समय इन सीमाओं के बीच मजदूरी कितनी तय होगी यह केवल मोलभाव एवं सौदे से ही निश्चित हो सकती है। मजदूरी की यह सीमा से नैतिक एवं विवेकशील विचारों से, विशेषकर यदि उस व्यवसाय में अच्छा संधि-न्यायालय हो तो कुछ घटबढ़ हो सकती है।

व्यवहार में यह समस्या और भी जटिल है। क्योंकि कर्मचारियों के प्रत्येक वर्ग के अपने अपने संघ होंगे और ये अपने अपने सदस्यों के लिए लड़ेंगे। मालिक रोधक (buffer) का कार्य करते हैं किन्तु एक वर्ग द्वारा उच्चतर मजदूरी के लिए की जाने वाली हड़ताल का यह परिणाम होगा कि किसी अन्य वर्ग की मजदूरी में लगभग उतनी ही कमी होगी जितना मालिकों को लाभ होता हो।

यह वह उपयुक्त स्थान नहीं है जहाँ मालिकों एवं कर्मचारियों के बीच तथा व्यापारियों एवं विनिर्माताओं के बीच व्यापारिक संघों, संधियों एवं प्रतिसंधियों के कारणों तथा परिणामों का अध्ययन किया जाय। वे सजीव वृत्तान्तों एवं अनूठे आमूल परिवर्तनों का ऐसा तांता प्रस्तुत करती हैं जिसकी ओर सार्वजनिक ध्यान आकर्षित होता है और जिनसे हमारे अलग अलग प्रकार के सामाजिक गठन में, कभी एक दिशा में, तथा कभी दूसरी दिशा में परिवर्तन होने के संकेत मिलते हैं। निश्चय ही इनका बड़ा महत्व है और यह तीव्रतापूर्वक बढ़ता जा रहा है। किन्तु इसके महत्व की अतिशयोक्ति की जाने की सम्भावना है, क्योंकि इनमें से अनेक उस बवंडर से कुछ ही अधिक हैं जो प्रगति के ऊपर सदैव मँडराते रहते हैं। यद्यपि ये पहले की अपेक्षा आधुनिक युग में अधिक विशाल एवं प्रभावशाली हैं किन्तु इस पर भी सदैव की भाँति आज भी मुख्य घटना क्रम सामान्य वितरण एवं विनिमय की उन गहरी स्तब्ध एवं दृढ़ प्रवृत्तियों पर निर्भर है जो 'दृष्टिगोचर नहीं होतीं', किन्तु जो उन प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखती हैं जो 'दृष्टिगोचर होती हैं।' क्योंकि समझौते तथा मध्यस्थता में भी जिस मुख्य समस्या का सामना करना पड़ता है वह उस सामान्य स्तर का पता लगाने से सम्बन्धित है जिससे न्यायालय के निर्णय इतने भिन्न हों कि स्वयं न्यायालय का प्राधिकार ही संकट में पड़ जाय।

अध्याय 9

भूमि का लगान

§1. भाग 5 मे यह तर्क दिया जा चुका है कि भूमि का लगान कोई अद्भुत तथ्य न होकर केवल आर्थिक विषय के विशाल वश की मुख्य जाति है, और भूमि के लगान का सिद्धान्त कोई विलग आर्थिक सिद्धान्त नही है किन्तु माँग एव सम्भरण के सामान्य सिद्धान्त से लिये गये किसी खास उपसिद्धान्त के मुख्य प्रयोगो मे से एक है। मनुष्य द्वारा अपने अधिकार मे की गयी प्रकृति की मुफ्त देनों का वास्तविक लगान, भूमि पर किये गये स्थायी सुधारो से अर्जित आय तथा वहाँ से फार्म एवं फैक्टरी की इमारतो, वाष्पजइन, तथा कम टिकाऊ वस्तुओ से मिलने वाली आय मे लगान की विभिन्न श्रेणियाँ मिलती है। इस तथा अगले अध्याय मे हम भूमि की निवल आय का विशेष अध्ययन करना चाहते हैं। यह अध्ययन दो भागो मे बँटा हुआ है। एक भाग निवल आय की कुल मात्रा से या भूमि से प्राप्त होने वाले उत्पादक अधिशेष से सम्बन्धित है: दूसरा भाग उस प्रणाली से सम्बन्धित हैं जिसके अनुसार भूमि मे अधिकार रखने वाले लोगों मे इस आय को विनरित किया जाता है। पहला भाग सामान्य है चाहे भू-पट्टा प्रणाली का कुछ भी रूप रहा हो। हम सर्वप्रथम इसी पर विचार करेंगे तथा यह कल्पना करेंगे कि भूमि पर उसका मालिक ही स्वय खेती करता है।

हम भूमि के पट्टे को प्रभावित करने वाले प्रश्नों से दूर रहने के लिए यह कल्पना कर इस अध्याय को शुरू करते हैं कि मालिक स्वयं ही इस पर खेती करते हैं।

हमे यह याद रखना चाहिए कि भूमि को ताप एव प्रकाश तथा वायु एव वर्षा के रूप मे स्वाभाविक आय प्राप्त है जिसे मनुष्य द्वारा अधिक प्रभावित नही किया जा सकता और भूमि को स्थिति के लाभ भी प्राप्त है, जिनमे से अनेक पूर्णतया मनुष्य के नियंत्रण से परे हैं, तथा शेष मे से कुछ व्यक्तिगत मालिको द्वारा भूमि के ऊपर किये गये पूंजी एव श्रम के विनियोजन के प्रत्यक्ष परिणाम है। ये स्वाभाविक गुण ही इसके मुख्य गुण हैं, और इनका सम्भरण मानवीय प्रयत्नो पर आश्रित नही रहता और न इन्हे इन प्रयत्नों के लिए अतिरिक्त पुरस्कार देने से बढाया जा सकता है और इस पर लगने वाला कर सदैव पूर्णरूप से मालिको को ही देना पडता है।[1]

भूमि के स्वाभाविक गुणों के कारण प्राप्त होने वाली आय।

दूसरी ओर मिट्टी के जिन रासायनिक या यात्रिकी गुणो पर बहुत अशों मे इसकी उर्वरता निर्भर रहती है वे सुधारे जा सकते है, तथा कुछ दशाओ मे तो मनुष्य के कार्य द्वारा पूर्णरूप से परिवर्तित किये जाते हैं। किन्तु ऐसे आय पर लगने वाला कर जो सुधारो के फलस्वरूप प्राप्त होता है जिन्हे सामान्य रूप मे लागू किया जा सकने पर भी धीरे धीरे ही लागू किया जाता है तथा धीरे धीरे समाप्त किया जाता है, अल्पकाल मे इन सुधारो को पर्याप्त रूप से प्रभावित नही करता और न इनके कारण उत्पन्न उपज को ही प्रभावित करता है। परिणाम स्वरूप यह कर मुख्यतया मालिक को ही देना पड़ेगा।

स्थायी सुधारों से प्राप्त होने वाली आय।

1 किन्तु स्थिति लगान से सम्बन्धित अपवादों के लिए भाग 5, अध्याय 11, अनुभाग 2 से तुलना कोजिए।

यहाँ पर बन्धक रखी गयी भूमि के पट्टेदार को भी मालिक माना गया है। दीर्घकाल में कर लगाने से इन सुधारों में कमी हो जायेगी, उपज की सामान्य सम्भरण कीमत बढ़ जायेगी तथा यह कर उपभोक्ताओं को देना पड़ेगा।

भाग 4 में क्रमागत उत्पत्तिह्रास की प्रवृत्ति का संक्षिप्त विवरण तथा उसके लागू होने का क्षेत्र।

§2. अब हम चौथे भाग में अध्ययन की गयी कृषि में लागू होने वाली क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति पर पुनः विचार करते हैं और यहाँ भी अपने तर्क के सामान्य रूप में लागू होने, तथा इसका भू-पट्टाप्रणाली के विशेष रूपों से सम्बन्धित घटनाओं से कुछ भी सम्बन्ध न रखने की दृष्टि से यही कल्पना करते हैं कि भूमि का मालिक ही इस पर खेती करता है।

हम देख चुके हैं कि जब भूमि पहले से ही अच्छी जुती हुई हो तो पूँजी एवं श्रम की क्रमिक मात्राओं में मिलने वाला प्रतिफल घटने लगता है, यद्यपि पहली कुछ मात्राओं का प्रयोग करने से यह बढ़ भी सकता है। कृषक अतिरिक्त पूँजी एवं श्रम को तब तक लगाता जाता है जब तक वह ऐसे बिन्दु पर न पहुँच जाय जिस पर मिलने वाला प्रतिफल स्वयं उसके कार्य के पुरस्कार तथा परिव्यय को पूरा करने के लिए ही पर्याप्त हो। वह मात्रा कृषि के सीमान्त पर लगायी जाने वाली मात्रा होगी, चाहे इसे उपजाऊ या कम उपजाऊ भूमि पर ही क्यों न लगाया गया हो। इसमें लागत के बराबर ही प्रतिफल मिलना आवश्यक है जिसमें उसकी हर पहली मात्राओं के लिए पर्याप्त भुगतान हो जायेगा। सकल उपज इस मात्रा में जितनी भी अधिक है वही उसका उत्पादक अविशेष है।

वह जहाँ तक हो सकता है दूर की सोचता है किन्तु बहुत दूर तक सोच विचार करना कदाचित् ही सम्भव है। किसी निश्चित समय में वह मिट्टी के स्थायी सुधारों के फलस्वरूप पैदा होने वाली उर्वरता को निश्चित मानता है और भूमि के मौलिक गुणों से प्राप्त आय सहित उन सुधारों से मिलने वाली आय (या आभास-लगान) उसका उत्पादक अविशेष या लगान है। इसमें बाद केवल नये विनियोजनों से अर्जित आय ही उपार्जन एवं लाभ के रूप में दिखायी देती है: वह इन नये विनियोजनों को लाभदायकता सीमान्त तक करता है, और उसका उत्पादक अविशेष या लगान सुधार की गयी भूमि की सकल आय तथा उसके द्वारा प्रतिवर्ष लगायी जाने वाली श्रम पूँजी की नयी मात्राओं के लिए दिये जाने वाले पुरस्कार के अन्तर के बराबर है।

यह अविशेष पहले भूमि की उर्वरता पर तथा दूसरे उन चीजों के सापेक्षित मूल्यों पर निर्भर रहता है जो उसे बेचनी एवं खरीदनी पड़ती है। हम देख चुके हैं कि भूमि की उर्वरता या इसका उपजाऊपन निरपेक्षरूप में नहीं मापा जा सकता, क्योंकि यह इसमें उगायी जाने वाली फसलों, तथा कृषि की प्रणालियों एवं तीव्रता के अनुसार अलग अलग होता है। एक ही व्यक्ति द्वारा श्रम एवं पूँजी के समान प्रयोग से जोते जाने वाले भूमि के दो टुकड़े में जई की फसलें बराबर पैदा होने पर गेहूँ की फसलें बराबर नहीं होतीं। यदि थोड़ी ही जोत से या प्राचीन ढंग से जोत करने पर गेहूँ की फसलें एक सी होती हों तो अधिक गहरी या आधुनिक प्रणालियों के अनुसार जोत करने पर इनसे अलग अलग मात्राओं में फसलें पैदा हो सकती हैं। आगे फार्म के लिए आवश्यक विभिन्न चीजें जिन कीमतों पर खरीदी जाती हैं तथा इसके उत्पाद की विभिन्न चीजें

जिन कीमतों पर बेची जाती है वे औद्योगिक वातावरण पर निर्भर रहती है। इनमे परिवर्तनों के फलस्वरूप अलग अलग फसलों के सापेक्षिक मूल्य निरन्तर बदल रहे हैं और इसलिए भूमि की अलग अलग स्थितियो के सापेक्षिक मूल्य भी बदल रहे हैं।

अन्त मे, कृषक द्वारा किये जाने वाले काम, तथा समय एव स्थान की परिस्थितियो की तुलना मे हम उसमे सामान्य योग्यता निहित मानते है। यदि उसकी योग्यता कम हो तो उसकी वास्तविक सकल उपज, भूमि मे साधारणतया होने वाले उत्पादन से कम होगी: इससे उसे वास्तविक उत्पादक अधिशेष से कम अधिशेष मिलेगा। यदि, इसके विपरीत, उसमे सामान्य से अधिक योग्यता हो तो उसे भूमि वाले उत्पादक अधिशेष के अतिरिक्त दुर्लभ योग्यता का भी कुछ उत्पादक अधिशेष मिलेगा।

कृषकों में अवश्य ही सामान्य योग्यता एवं उद्यमशीलता होनी चहिये।

§3. हम इस बात पर कुछ विस्तार से पहले ही विचार कर चुके हैं कि कृषि उपज के मूल्य के बढ़ जाने से सभी प्रकार की भूमि से और विशेषकर उनसे जिनमे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम बहुत कम लागू होता है, उपज के रूप मे अधिक उत्पादक अधिशेष मिलता है।[1] हम देख चुके है कि साधारणतया इससे अधिक उपजाऊ भूमि की अपेक्षा कम उपजाऊ भूमि का मूल्य बढ़ जाता हे: या अन्य शब्दो मे, यदि कोई व्यक्ति उपज के मूल्य मे वृद्धि की प्रत्याशा करता है तो वह अधिक उपजाऊ भूमि की अपेक्षा कम उपजाऊ भूमि मे वर्तमान कीमतो पर निश्चित धनराशि लगाकर भविष्य मे अधिक आय प्राप्त करने की आशा कर सकता है।[2]

इसके पश्चात्. उत्पादक अधिशेष का वास्तविक मूल्य, अर्थात् सामान्य क्रय-शक्ति के रूप मे मापा गया मूल्य इसके उपज मूल्य की अपेक्षा उसी अनुपात मे बढ़ेगा जिसमे कि उसी प्रकार मापा गया उपज मूल्य बढ़ा है: कहने का अभिप्राय यह है कि उपज के मूल्य के बढ जाने से उत्पादक अधिशेष का मूल्य दूना बढ़ जायेगा।

उपज के वास्तविक मूल्य बढ़ जाने से साधारणतया अधिशेष का उपज मूल्य बढ़ जाता है और इसका वास्तविक मूल्य तो और भी बढ़ जाता है।

उपज का "वास्तविक मूल्य" शब्द निश्चिय ही अस्पष्ट है। ऐतिहासिक रूप मे अधिकांशतया इसका उपभोक्ता के दृष्टिकोण से वास्तविक मूल्य के अर्थ मे प्रयोग किया

1 भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 3। इस प्रकार (रेखाचित्र 12, 13, 14 में) यदि उपज का मूल्य ख हि से बढ़कर ह हो जाय जिससे जहाँ वृद्धि के पूर्व पूँजी एवं श्रम की मात्रा के पारिश्रमिक के लिए ख ह उपज की आवश्यकता थी वहाँ इस वृद्धि के बाद ख हि मात्रा ही पर्याप्त हो तो रेखाचित्र 12 में (जहाँ क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम शीघ्र ही लागू हो जाता है) प्रदर्शित की गयी भूमि का उत्पादक अधिशेष थोड़ा सा बढ़ जायेगा। (रेखाचित्र 13 में दी गयी) दूसरी श्रेणी की भूमि में यह अधिशेष और भी अधिक तथा (रेखाचित्र 14 में दी गयी) तीसरी श्रेणी की भूमि में सबसे अधिकह् गेगा।

2 उसी अध्याय में अनुभाग 4 में (रेखाचित्र 16 तथा 17 में) भूमि के दो टुकड़ों को जिनमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति समानरूप से लागू होती है, किन्तु जिनमें पहला टुकड़ा बढ़िया तथा दूसरा घटिया है, तुलना करते समय हमने देखा कि उपज की कीमत में ख ह् तथा ख हि के अनुपात में वृद्धि होने पर उत्पादक अधिशेष में ल ह् च से अ हि चि के बराबर जो वृद्धि होगी वह अनुपात में कहीं अधिक होगी।

उपज के श्रम मूल्य तथा इसकी सामान्य क्रयशक्ति के बीच परिवर्तनों में अन्तर प्रदर्शित करने की आवश्यकता।

गया है। यह प्रयोग वस्तुत: हानिकारक है: क्योंकि कुछ ऐसे भी उद्देश्य हैं जिनके लिए वास्तविक मूल्य पर उत्पादक के दृष्टिकोण से विचार करना अधिक अच्छा है। किन्तु इसके संकेत के बाद हम उपज द्वारा खरीदे जाने वाले किसी निश्चित प्रकार के श्रम की मात्रा को व्यक्त करने के लिए "श्रम-मूल्य" शब्द का प्रयोग करते है, और "वास्तविक मूल्य" से अभिप्राय जीवन की आवश्यक आराम तथा विलास की वस्तुओं से है जिन्हें उपज की निश्चित मात्रा द्वारा खरीदा जायेगा। कच्चे माल के श्रम-मूल्य मे वृद्धि से अभिप्राय जीवन निर्वाह के साधनो पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव से है, तथा उस कारणवश भूमि मे मिलने वाले उत्पादक अधिशेष मे वृद्धि होने से लोगो के पतन का आभास होता है और यह इसका एक प्रकार का माप है किन्तु यदि दूसरी ओर उत्पादन की कृषि सम्बन्धी कलाओ के अतिरिक्त, अन्य कलाओ मे सुधारो के फलस्वरूप कच्चे माल के वास्तविक मूल्य मे वृद्धि हुई हो तो सम्भवतया मजदूरी की क्रयशक्ति मे भी वृद्धि होगी।

उत्पादक अधिशेष में सुधारों के सम्बन्ध में रिकार्डो का सिद्धान्त

§4 उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि भूमि से प्राप्त होने वाला उत्पादक अधिशेष प्रकृति की महान देन का परिचायक नहीं है। कृषि अर्थशास्त्रियों ने तथा कुछ संशोधित रूप मे एडम स्मिथ ने यही कहा था यह उस देन की सीमाओ का परिचायक है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि सर्वोत्तम बाजारो की अपेक्षा स्थिति सम्बन्धी असमानताओ से उत्पादक अधिशेष मे उतनी ही शक्ति से असमानताएँ पैदा होती हैं जितनी कि निरपेक्ष उत्पादकता की असमानताओ से पैदा होती है।[1]

---

1 इंग्लैंड इतना छोटा तथा इतना घना बसा हुआ है कि दूध तथा सब्जियों को भी, जिन्हें विपणन करने की आवश्यकता होती है, तथा यहाँ तक कि अत्यधिक परिमाण के बावजूद घास को भी साधारण खर्च पर देश भर में एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है: और प्रमुख उत्पादों, अन्न तथा मवेशियों के लिए इंग्लैंड के किसी भी भाग में कृषक को लगभग एक सी निवल कीमत मिलेगी। इस कारणवश आंग्ल अर्थशास्त्रियों ने कृषि भूमि के मूल्य को निर्धारित करने वाले कारणों में उर्वरता को पहला स्थान दिया है, और स्थिति को गौण महत्व का माना है। अतः उन्होंने भूमि के उत्पादक अधिशेष या लगान मूल्य को बहुधा भूमि की उपज के उस भूमि की उपज से अधिकता द्वारा व्यक्त किया जिससें (सामान्य कुशलता) से श्रम एवं पूंजी लगाने से लागत के बराबर ही प्रतिफल मिले, क्योंकि यह इतनी कम उपजाऊ है कि यही कृषि का सीमान्त है। उन्होंने यह स्पष्ट करने का कष्ट नहीं उठाया कि भूमि के दो टुकड़े या तो एक साथ होने चाहिए या उनके विपणन के खर्चों में अन्तर के लिए अलग से गुंजाइश रखनी चाहिए। किन्तु यह विचार स्वाभाविक रूप से उन नये देशों के अर्थशास्त्रियों के मस्तिष्क में नहीं आया जहाँ सबसे उपजाऊ भूमि बिना जुती हुई पड़ी हो क्योंकि वहाँ से बड़े बाजारों तक वस्तुएँ सुविधापूर्वक नहीं भेजी जा सकती थीं। उन्हें भूमि के मूल्य को निर्धारित करने में स्थिति कम से कम उतनी ही महत्वपूर्ण दिखायी दी जितनी की उर्वरता। उनके दृष्टिकोण से कृषि के सीमान्त की भूमि बाजारों से बहुत दूर स्थित थी, और विशेषकर यह रेलों से जो कि अच्छे बाजारों से जोड़ती

सर्वप्रथम रिकार्डो ने ही इस सत्य तथा इसके मुख्य परिणामों को जिनमें से बहुत अब कही अधिक स्पष्ट रूप मे दिखायी देते है, अभिव्यक्त किया था। उन्होंने यह तर्क देने मे प्रसन्नता व्यक्त की कि प्रकृति के उन मुक्त देनो के स्वामित्व से कुछ भी अधिशेष प्राप्त नहीं किया जा सकता जिनका सम्भरण व्यावहारिक रूप मे सर्वत्र असीमित मात्रा मे होता है और विशेषकर यह कि यदि समानरूप से उपजाऊ तथा समानरूप से सुगम भूमि असीमित मात्रा में उपलब्ध हो तो इससे भी कुछ भी अधिशेष नही मिलेगा। उन्होंने इस तर्क को और आगे बढाया तथा यह प्रदर्शित किया कि कृषि प्रणालियों मे किसी सुधार से जो कि सभी प्रकार की मिट्टी मे समानरूप से लागू की जा सकती है (अर्थात् भूमि की प्राकृतिक उर्वराशक्ति मे सामान्य वृद्धि से) अनाज का कुल अधिशेष लगभग निश्चित रूप मे कम हो जायेगा और यह भी बिलकुल निश्चित है कि किसी ज्ञात जनसंख्या को कच्चा माल प्रदान करने वाली भूमि से मिलने वाले कुल वास्तविक अधिशेष मे भी कमी हो जायेगी। उन्होंने यह भी बतलाया कि यदि सुधार मुख्यतया उस भूमि मे किये जाये जो पहले से ही सर्वाधिक उपजाऊ हो तो इससे कुल अधिशेष मे वृद्धि हो सकती है, किन्तु यदि ये मुख्यतया अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि मे किये जायें तो इससे यह योग बहुत अधिक घट जायेगा।

बहुधा असावधानी के साथ व्यक्त किये जाने पर भी सतर्कतापूर्वक सोचा गया था।

इस प्रस्थापना से यह स्वीकार करना बिलकुल सगत प्रतीत होता है कि अब इग्लैंड मे कृषि की प्रणालियो मे सुधार होने के कारण भूमि से मिलने वाले कुल अधिशेष में वृद्धि होगी क्योकि इससे उपज की कीमतो मे खास कमी हुए बिना उपज तब तक बढेगी जब तक उन देशो मे भी यह उनके सचार के साधनो मे भी इसी प्रकार के सुधार न हो गये हो जिनसे यह कच्चे माल का आयात करती है। स्वयं रिकार्डो यह कहते है कि एक ही बाजार को सम्भरण करने वाली सारी भूमि मे समानरूप से किये जाने वाले सुधारो से भू-स्वामियो को अन्त मे अपार लाभ प्राप्त होना है, क्योंकि इनसे जनसंख्या की वृद्धि के लिए बडा प्रोत्साहन मिलता है और साथ ही साथ यह हमे भी कम श्रम द्वारा अधिक घटिया भूमि जोतने मे समर्थ बनाती है।[1]

भूमि के मूल्य के उस भाग मे जो मनुष्य के श्रम का परिणाम है तथा उस भाग मे जो प्रकृति की मूल देन है अन्तर दिखाने का प्रभाव कुछ रोचक प्रतीत होता है। इसके मूल्य का कुछ भाग देश के सामान्य उद्देश्यों के लिए किये गये सार्वजनिक सडकों के निर्माण तथा अन्य सुधारों के कारण है और इनके फलस्वरूप कृषि पर विशेष

भूमि के मौलिक तथा उपार्जित गुण।

है, आवश्यकतानुसार भूमि की उर्वरताओं में पाये जाने वाले अन्तर के लिए बहुत दूर थी: और रखने पर उत्पादक अधिशेष अच्छी स्थिति वाली भूमि के उपज के समान श्रम, पूंजी एवं कुशलता द्वारा निकृष्टतम स्थिति वाली भूमि के उपज मूल्य से आधिक्य के बराबर था। इस अर्थ में संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) को अब नया देश नहीं माना जा सकता: क्योंकि वहाँ की कुल सर्वोत्तम भूमि पर खेती होने लगी है, जहाँ से प्रायः अच्छे बाजारों को कम भाड़े पर सामान भेजा जाता है।

1 उनके तीसरे अध्याय का फुटनोट देखिए।

प्रभार नहीं लगाये जाते। लिस्ट, कैरे, बैस्टियट तथा अन्य विचारकों ने इनकी गणना करते हुए यह दलील दी कि भूमि को इसके मौलिकरूप से वर्तमान रूप में लाने के खर्चे इसके कुल वर्तमान मूल्य से अधिक होंगे, और अतः उन्होंने यह तर्क दिया है कि इसका सारा मूल्य मनुष्य के श्रम के कारण है। उनके तथ्य के विषय मे मतभेद हो सकता है किन्तु वास्तव में उनके द्वारा निकाले गये निष्कर्षों के प्रसंग मे ये तथ्य असंगत हैं। उनके तर्क के लिए यह आवश्यक है कि भूमि का वर्तमान मूल्य, भूमि को इसके प्राकृतिक रूप से ऐसे रूप मे लाने के खर्चों से (उन्हे कृषि के खाते मे दिखाया जा सके) अधिक नही होना चाहिए जिससे यह आजकल की भाँति ही उपजाऊ, तथा कृषि उद्देश्यों के लिए साधारणतया उपयोगी हो। इसमे निहित अनेक परिवर्तन उन कृषि प्रणालियों को अनुकूल बनाने के लिए किये गये थे जो बहुत समय पहले से ही प्रचलन मे नही रहे, तथा उनमे से कुछ से भूमि के मूल्य मे वृद्धि होने की अपेक्षा कमी हुई। इस प्रकार के परिवर्तन लाने के लिए किये जाने वाले खर्चे निवल खर्चे होने चाहिए जिनमे धीरे धीरे होने वाले परिव्यय तथा उसके ब्याज को सम्मिलित करना चाहिए, और अतिरिक्त उपज का वह कुल मूल्य घटा देना चाहिए जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सुधार के ही फलस्वरूप हुआ है। एक अच्छे बसे हुए क्षेत्र मे भूमि का मूल्य साधारणतया इन खर्चों मे कहीं अधिक तथा बहुधा कई गुना होता है।

अब तक दिया गया तर्क सभी भू-पट्टा प्रणालियों में लागू होता है।

§5. इस अध्याय मे अब तक दिया गया तर्क उन सभी भू-पट्टा प्रणालियों मे लागू होता है जो किसी भी रूप मे भूमि के निजी स्वामित्व की मान्यता देती हैं, क्योंकि इसका उस उत्पादक अधिशेष से सम्बन्ध है जो मालिक द्वारा अपनी भूमि स्वयं जोती जाने पर उसे प्राप्त होना है या उसके स्वयं जोतने पर उसे तथा उसके पट्टेदारों को जिन्हे कृषि व्यवसायो मे लगी हुई फर्म मान सकते है, मिलता है। इस प्रकार एक ओर तो कृषि की लागत के असख्य हिस्सो के विषय मे तथा दूसरी ओर कृषि के प्रतिफल के विषय मे प्रथा या कानून या सविदा द्वारा उनके बीच चाहे जो भी विभाजन हुआ हो, यह बात सत्य निकलती है। इसका अधिकतर भाग आर्थिक विकास की उस अवस्था से भी स्वतन्त्र रहता है जिसे प्राप्त कर लिया गया है और बाजार मे थोड़ी सी या बिलकुल भी उपज न भेजी जाने पर तथा वस्तुओं के रूप देय (dues) लगायें, इत्यादि पर भी यह तर्क लागू होता है।[1]

---

1 लगान के नियम के विषय में पेट्टी का स्मरणीय कथन (Taxes and Contrib tions, भाग II, अनुभाग 13) इस ढंग से लिखा गया है कि यह भू-पट्टे के सभी रूपों तथा सभ्यता की सभी अवस्थाओं में लागू हो सकता है: "मान लीजिए कि एक व्यक्ति अपने हाथों से भूमि के कुछ भाग में सत्र उगाता है अर्थात् इसे खोदता या जोतता है, पटला चलाता है, घास पात निकलता है, फसल काटता है, घर ले जाता है, भूसी निकालता है और फटकता है अर्थात् भूमि में काश्तकारी के लिए जो भी काम जरूरी करता है, और बोने के लिए उसके पास पर्याप्त मात्रा में बीज भी हैं। मेरा कहना यह है कि जब यह व्यक्ति अपनी फसल के उपार्जन से बीज निकाल लेता है तथा इसे अपने खाने व दूसरों को कपड़ा तथा अन्य प्राकृतिक आवश्यकताओं के बदले में देने के

आजकल इंग्लैंड के उन भागों में जहाँ भूमि के उपयोग के लिए सौदे करने में प्रथा एवं भावना का बहुत कम, तथा मुक्त प्रतियोगिता एवं उद्यम का बहुत अधिक महत्व है आमतौर पर यही समझा जाता है कि स्वयं भूस्वामी ही उन सुधारों को करेगा तथा कुछ हद तक बनाये रखेगा जो धीरे धीरे किये जा सकते हैं तथा जिनका धीरे धीरे ही महत्व कम होता है। ऐसा होने के बाद वह अपने पट्टेदार को प्रसामान्य लाभ सहित उसकी इसमें लगी पूँजी के लिए पर्याप्त भाग दे देने के बाद उसे सम्पूर्ण उत्पादक अधिशेष को ले लेना चाहता है जो सुधार की हुई उस भूमि से ऐसे वर्ष में प्राप्त होगा जब फसल प्रसामान्य हो तथा कीमतें भी प्रसामान्य हों। ऐसी स्थिति में किसान को बुरे वर्षों में घाटा तथा अच्छे वर्षों में लाभ होता है। इस अनुमान में यह उपलक्षित है कि किसान में उस स्तर की जोत के लिए प्रसामान्य योग्यता तथा उद्यम शक्ति है, और अतः यदि वह उस मानक से अपने को ऊपर उठा सके तो स्वयं उसे ही यह सारा लाभ मिलेगा किन्तु इस मानक से नीचे गिर जाने पर जितनी भी हानि होगी वह भी उसे ही स्वयं उठानी पड़ेगी और हो सकता है कि उसे अन्त में उस खेत को ही छोड़ना पड़े। अन्य शब्दों में भूमि से प्राप्त आय का वह भाग जो भू-स्वामी को प्राप्त होता है इस आय को अर्जित करने में लगे विभिन्न उपादानों की लागत से बहुत कम सम्बन्ध रखते हुए सभी साधारण अवधियों में मुख्यतया उपज के बाजार से नियंत्रित होता है। अतः यह लगान की ही भाँति है। पट्टेदार द्वारा अल्पकाल के लिए भी अपने पास रखे गये भाग को लाभ माना जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से उपज की सामान्य कीमत में सम्मिलित होगा, क्योंकि उपज तब तक नहीं उगायी जायेगी जब तक इसमें उन लाभों के प्राप्त होने की आशा न हो।

आंग्ल प्रणाली में भू-स्वामी तथा कृषक के बीच विभाजन विज्ञान के लिए सर्वाधिक आवश्यक है।

अतः भू-पट्टे की विशिष्ट प्रकार की आंग्ल विशेषताएँ जितनी ही अधिक विकसित होंगी यह लगभग उतना ही अधिक सत्य होगा कि पट्टेदार तथा भूस्वामी के हिस्सों के बीच भाजन की रेखा आर्थिक सिद्धान्त में भाजन की सबसे गहरी तथा सबसे महत्वपूर्ण रेखा के अनुरूप होगी।[1] अन्य किसी तथ्य की अपेक्षा सम्भवतः यही तथ्य इस शताब्दी के प्रारम्भ में आंग्ल आर्थिक सिद्धान्त के उत्थान का कारण रहा है। इससे आंग्ल अर्थशास्त्रियों ने इतनी अगुवायी की कि हमारी पीढ़ी में अन्य देशों में भी आर्थिक अध्ययनों में इंग्लैंड की ही भाँति बौद्धिक क्रियाओं के फलस्वरूप जो भी रचनात्मक विचार प्राप्त हुए हैं वे अधिक प्राचीन आंग्ल रचनाओं में छिपे हुए अन्य लोगों के विचारों के ही विकसित रूप हैं।

लिए निकाल देता है तो अन्न का जो भाग शेष बचेगा वह उस वर्ष में भूमि का प्राकृतिक या वास्तविक लगान होगा और सात वर्षों या वस्तुतः उस चक्र को जिसके बीच अभाव तथा बाहुल्य परिक्रमा करते हैं, पूरा करने में लगाने वाले वर्षों की अवधि में अनाज के रूप में भूमि का साधारण लगान प्राप्त होता है।

1 पारिभाषिक भाषा में यह साधारण अवधियों में उपज की सामान्य सम्भरण कीमतों में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होने वाले लाभों तथा सम्मिलित न होने वाले आभास-लगानों के बीच पाया जाने वाला विभेद है।

स्वयं यह तथ्य आकस्मिक प्रतीत होता है: किन्तु सम्भवतः यह ऐसा न था क्योंकि भाजन की इस विशेष रेखा में अन्य किसी की उपेक्षा कम संघर्ष निहित है, नियंत्रण, एवं प्रतिनियंत्रण में कम समय लगता है तथा कम कष्ट उठाना पड़ता है। इस बात में सन्देह हो सकता है कि क्या तथाकथित आंग्ल पद्धति भविष्य में भी बनी रहेगी। इसकी अनेक बुराइयां है, तथा सभ्यता की आने वाली अवस्था मे यह सर्वोत्तम नहीं हो सकती है। किन्तु हम जब इसकी अन्य प्रणालियों से तुलना करते हैं तो ऐसा दिखायी देता है कि इससे ऐसे देश को बड़ा लाभ पहुँचा है जिसने स्वतन्त्र उद्यम के विकास में संसार की अगुआयी की है, और अतः जिसने उन सभी परिवर्तनों को पहले ही कर लिया है जिनसे स्वतन्त्रता एवं ओज, लोच एवं शक्ति प्रदान होती है।

अध्याय 10

भू-पट्टा

§1. प्रारम्भिक काल मे और हमारे अपने युग मे भी कुछ पिछड़े हुए देशों में सम्पत्ति पर सभी अधिकार सामान्य सहमति पर निर्भर रहते है न कि यथार्थ नियमों तथा प्रलेखों (documents) पर। इन सहमतियों को जहाँ तक निश्चितरूप मे तथा आधुनिक व्यावसायिक भाषा मे व्यक्त किया जा सकता है इनका सामान्यतया यह परिणाम निकलता है: भूमि का स्वामित्व किसी व्यक्ति में निहित न होकर किसी फर्म मे निहित होता है जिसका एक सदस्य या सदस्यो का वर्ग निष्क्रिय साझेदार होता है और दूसरा सदस्य या सदस्यो का वर्ग (चाहे यह सारा परिवार ही हो) सक्रिय साझेदार होता है।[1]

भू-पट्टे के आदिकालीन रूप आम-तौर पर साझेदारी पर आधारित थे और उन पर सजीव संविदा का नियंत्रण न होकर परम्परा का नियंत्रण था।

निष्क्रिय साझेदार कभी तो राज्य का शासक, कभी वह व्यक्ति होता है जो उत्तराधिकार के रूप मे किसी समय भूमि के कुछ भाग पर खेती करने वाले कृषको से राजा को किये जाने वाले भुगतान वसूल करता था किन्तु जो कार्य शान्ति के समय न्यूनाधिक निश्चितता व न्यूनाधिक निरपेक्षता के कारण स्वामित्व के अधिकार के रूप मे परिणत हो गया। यदि जैसा कि साधारणतया हुआ है, वह राज्य के शासक को कुछ भुगतान करने का कार्य करता रहे तो साझेदारी मे तीन सदस्य होंगे जिनमे दो निष्क्रिय होंगे।[2]

---

1 निष्क्रिय साझेदार ग्रामीण समुदाय हो सकता है किन्तु हाल ही में हुए अन्वेषणों से विशेषकर सीबोहम (Mr. Seebohm)के अन्वेषणों से यह विश्वास किया जाने लगा है कि समुदाय बहुधा भूमि के "स्वतन्त्र" तथा अन्तिम मालिक नहीं होते। इंग्लैंड के आर्थिक इतिहास में ग्रामीण समुदाय के महत्व के विषय में उत्पन्न विवाद के सारांश के लिए पाठक को सलाह दी जाती है कि वह एश्ले कीEconomic History के पहले अध्याय को पढ़े। भाग 1, अध्याय 2, अनुभाग 2 में भूमि के बँटे हुए स्वामित्व के आदिकालीन रूपों से प्रगति में हुई बाधा का जिक्र किया जा चुका है।

2 इस फर्म को किसी ऐसे मध्यस्थ को शामिल करके और बड़ा बनाया जा सकता जो अनेक कृषकों से भुगतान वसूल करता है और इसमें से एक निश्चित हिस्सा कम करके शेष भाग को फर्म के प्रधान को सौंप देता है। वह उस अर्थ में मध्यस्थ नहीं है जिसमें साधारणतया शब्द का इंग्लैंड में प्रयोग किया जाता है अर्थात् वह एक ऐसा उप-संविदाकार नहीं है जिसे भुगतान वसूल करने की संविदा की किसी निश्चित अवधि के पश्चात् इस कार्य से हटाया जा सकता है। वह फर्म में साझेदार होता है, उसे प्रधान साझेदार की ही भांति भूमि में अधिकार मिले होते हैं यद्यपि इनका महत्व अपेक्षाकृत कम हो सकता है। कोई स्थिति इससे भी अधिक जटिल हो सकती है। वास्तविक कृषक तथा उस व्यक्ति के बीच अनेक मध्यस्थ अधिकारी हो सकते हैं जिसे यह भूमि सीधे

जिसे भू-स्वामी कहा जाता है वह साधारणतया निष्क्रिय साझेदार होता है और उपज से उसका भाग वास्तविक लगान नहीं है।

निष्क्रिय साझेदार या उनमें से एक को साधारणतया मालिक या भूधारी या भूस्वामी या भूपति भी कहा जाता है। किन्तु ऐसा कहने का ढंग त्रुटिपूर्ण है क्योंकि *कानून या प्रथा द्वारा, जिसे लगभग कानून के बराबर ही शक्ति प्राप्त है,* वह कृषक से लिए जाने वाले भुगतान मे काल्पनिक वृद्धि करके या अन्य प्रकार से उसे जोत से निकाल नही सकता। उस दशा मे भूमि का अधिकार केवल उसे ही प्राप्त नही है अपितु उस सारी फर्म को प्राप्त है जिसका कि वह केवल निष्क्रिय साझेदार है और धनराशि या सकल आय का वह भाग है जिसे फर्म के संविधान के अनुसार उसे भुगतान करना अनिवार्य है और जहां तक प्रथा या कानून, जिससे ये भुगतान नियन्त्रित किये जाते है, निश्चित एवं अपरिवर्तनीय होता है, लगान के सिद्धान्त का इसमे थोड़ा ही प्रत्यक्ष प्रयोग होता है।

किन्तु प्रथा सर्वप्रथम जितनी लोचदार प्रतीत होती है उससे कहीं अधिक लोचदार है, और आधुनिक आंग्ल इतिहास द्वारा भी यही प्रदर्शित किया गया है।

§2. किन्तु वास्तव मे प्रथा के अनुसार जो भुगतान तथा देय निश्चित कर दिये जाते हैं उनसे सदैव वैसे तत्त्व निहित होते हैं जिनकी यथार्थ परिभाषा नही दी जा सकती, जब कि परम्परा द्वारा उनका जो लेखा जोखा आगे की पीढ़ी को सौंपा जाता है वह असंयत एवं संदिग्ध विचारो मे सन्निहित है या अधिक से अधिक ऐसे शब्दो में व्यक्त किया गया है जिनसे वैज्ञानिक यथार्थता प्राप्त नही हो सकती।[1]

हम इस संदिग्धता के प्रभाव को यहां तक कि आधुनिक इंग्लैंड मे भूस्वामी तथा पट्टेदार के बीच हुए समझौते मे देख सकते है, क्योकि इनकी सदैव ही प्रथाओ की सहायता से व्याख्या की गयी है जो कि क्रमिक पीढ़ियो की निरन्तर बदलती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अज्ञातरूप से चलती आ रही है और पुनः समाप्त होती जा रही है। हम अपने पूर्वजो की अपेक्षा अपनी प्रथाओ को अधिक तीव्रता-पूर्वक बदल रहे है और हम अपने परिवर्तनो के विषय मे अधिक जागरूक है और अपनी प्रथाओं को कानून मे परिणत करने तथा उन्हे समान बनाने के लिए अधिक तत्पर हैं।[2]

शासन की ओर से मिली हुई है। वास्तविक कृषकों के अधिकारों में भी बहुत अन्तर हो सकता है। कुछ लोगों ने निश्चित लगान पर भूमि ली होगी जिसमें बिलकुल भी वृद्धि न होगी, कुछ लोगों ने ऐसे लगान पर भूमि ली होगी जिससे कुछ नियत की गयी दशाओं में ही बढ़ाया जायेगा, और कुछ लोग हर साल पट्टेदार ही रहेंगे।

1 Dictionary of Political Economy में Court Rolls पर लिखे गये लेख में मेटलैंड (Maitland) ने यह विचार प्रकट किया है कि "हम यह तब तक कभी भी नहीं जान सकते कि मध्यकालीन पट्टेदार किसान अनिश्चित था जब तक कि इन प्रलेखों का अध्ययन न कर लें।"

2 पुसे (Pusey) की अध्यक्षता में नियुक्त हाउस आफ कामन्स की कमेटी ने सन् 1848 ई० में अपनी रिपोर्ट में यह कहा कि, "देश की अलग अलग काउण्टियों तथा क्षेत्रों में पट्टा छोड़कर जाने वाले किसान से काश्तकारों की *विभिन्न संक्रियाओं* के लिए जो मांगें की जाती है उनके विषय में बहुत पहले से ही अलग अलग रीतियाँ प्रचलित थीं। ये स्थानीय रीतियाँ पट्टों या इकरारनामों में तब तक अभिव्यक्त रहती थीं। ...... जब तक इससे भिन्न स्थिति में इकरारनामें की शर्तों से लक्षित या

आजकल सूक्ष्म विधि व्यवस्था तथा सतर्कतापूर्वक किये गये इकरारनामों के बावजूद भी पूँजी की उस मात्रा के विषय में अनिश्चितता का बड़ा व्यापक अंश रहता है जिसे भूस्वामी द्वारा समय समय पर फार्म की मरम्मत करने, उसे बढ़ाने तथा अन्य प्रकार के सुधारों में विनियोजित किया जायेगा। पट्टेदार के साथ अपने प्रत्यक्ष द्रव्यिक सम्बन्धों की भाँति इन विषयों में भी भूस्वामी अपनी दयालुता एवं उदारता का परिचय देता है और इस अध्याय के सामान्य तर्क के लिए जो बात विशेषरूप से महत्वपूर्ण है वह यह है कि पट्टेदार से लिये जाने वाले वास्तविक निवल लगान मे होने वाले परिवर्तनों का भूस्वामी तथा पट्टेदार द्वारा कृषि करने के खर्चो मे हिस्सा बाँटने से बहुधा द्रव्यिक लगान मे परिवर्तनों की भाँति आपस मे ही समायोजन कर लिया जाता है। निगमित निकाय (corporated bodies) तथा अनेक बड़े बड़े गैरसरकारी भूस्वामी बहुधा अपने पट्टेदारों को हर साल ज्यों का त्यों बना रहने देते है और वे भूमि के पट्टे पर दिये जाने वाले वास्तविक मूल्य मे होने वाले परिवर्तनो के अनुसार द्रव्यिक लगानो मे परिवर्तन करने का प्रयत्न नही करते। ऐसे अनेक फार्म है जिन्हे पट्टे पर नही दिया जाता किन्तु इस पर भी सन् 1874 ई० मे चरम शिखर पर पहुँचने वाली कृषीय स्फीति तथा इसके बाद आयी हुयी मंदी की अवधि मे इनका लगान नाममात्र के लिए ही अपरिवर्तित रहा है। किन्तु प्रारम्भिक अवधियो मे किसान जिसे यह पता था कि उसका लगान कम निश्चित किया गया है, अपने भूस्वामी पर यह दबाव न डाल सका कि वह जल-निकासी या नये निर्माण कार्य मे या यहाँ तक फार्म की मरम्मत करने मे पूँजी लगाये, और उसे खेल तथा अन्य विषयो मे मालिक को खुश करना पड़ता था। अब भूस्वामी कुछ समय तक टिकने वाले पट्टेदार को रखे रहने के लिए अनेक ऐसी भी चीजे करता है जो इकरारनामे की शर्तो के अनुसार आवश्यक नही होती। इस प्रकार द्रव्यिक लगान के स्थिर रहने पर भी वास्तविक लगान बदल गया है।

आज भी भूमि के पट्टे पर दिये जाने वाले मूल्य के परिवर्तनों के अनुसार लगानमें होने वाला समायोजन आंशिक रूप से उपलक्षित तथा लगभग निर्बोध होता है।

यह तथ्य इस सामान्य कथन का महत्वपूर्ण दृष्टान्त है कि लगान का आर्थिक सिद्धान्त, जिसे कभी कभी रिकार्डो का सिद्धान्त भी कहा जाता है, आधुनिक इंग्लैंड *की भूपट्टा प्रणाली भी तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि इसमें सार एवं रूप* दोनो मे ही अनेक सुधार न कर दिये जाये, मध्यकालीन तथा पूर्वी देशो की भू-पट्टा प्रणालियो के सभी रूपो मे जिनमे किसी भी प्रकार के निजी स्वामित्व को मान्यता

अतः प्राचीन प्रणालियों तथा वर्तमान आंग्ल भू-समस्याओं पर रिकार्डो

उपलक्षित रूप से इस परिकल्पना का खण्डन न किया गया हो। देश के कुछ भागों में ऐसी आधुनिक रीत चल गयी है जिसके अनुसार पट्टा छोड़कर जाने वाले किसान को ऊपर बतलाये गये खर्चो के अतिरिक्त.......कुछ खर्चे लौटाने पड़ते हैं....... ऐसा लगता है कि यह रीति कृषि की विकसित तथा सजीव प्रणालियों के फलस्वरूप प्रचलित हुई है जिनमें बड़ी पूंजी का परिव्यय किया गया है, ... इन (नयी) रीतियों को कुछ क्षेत्रो की धीरे धीरे सामान्य मान्यता प्राप्त हो गयी हैं और अन्ततोगत्वा इन्हें देश की प्रथा में रूप में अपना लिया गया" इनमें से अनेक प्रथाओं को अब कानून द्वारा लागू किया जाता है। आगे अनुभाग 10 देखिए।

के विश्लेषण को लागू करने में सतर्कता बरतनी चाहिए।

मिली है, इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए इसमें और अधिक सुधार करने पड़ेंगे किन्तु उक्त सुधारों एवं कमियों में पाया जाने वाला अन्तर केवल नाममात्र के लिए है।

§3. किन्तु यह नाममात्र का अन्तर ही महान है इसका आंशिक कारण यह है कि आदिकालीन समयों तथा पिछड़े हुए देशों में प्रथा का आधिपत्य अधिक अविवादास्पद रहा है और आंशिक कारण यह है कि वैज्ञानिक इतिहास के अभाव में क्षणभंगुर म नव के पास प्रथा होने वाले परिवर्तनों का पता लगाने के लिए क्षण भंगुर मधुमक्खी की अपेक्षा जिसे यह पता लगाना है कि जिन पौधों पर उसे बैठना है उनका कितना विकास हो रहा है, कुछ ही अधिक साधन हैं। किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि साझेदारी की शर्तों को इस ढंग से व्यक्त किया गया जिससे इनकी कदाचित् ही यथार्थ परिभाषा दी जा सकी तथा इनका सही माप किया जा सका।

क्योंकि उनकी साझेदारी की शर्तें अस्पष्ट, लोचपूर्ण, तथा ऐसी थीं जो कि अनेक प्रकार से अज्ञात रूप से संशोधित हो सकती थीं।

क्योंकि फर्म के प्रवर साझेदार या सक्षेप के लिए भूस्वामी को साधारणतया (उपज के किसी भाग के साथ या इसके बिना) कुछ श्रम सम्बन्धी सेवाएँ तथा देय, शुल्क एव भेंट की चीजें माँगने का अधिकार भी होता था। उसे इनमें से प्रत्येक मद मे विभिन्न समयों व स्थानों मे अलग अलग धनराशि प्राप्त हुई और सभी भूस्वामियों को इन मदों मे बराबर हिस्सा नहीं मिला। जब कभी कृषक के पास सभी प्रकार के भुगतान करने के बाद अपने तथा अपने परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं तथा प्रथा द्वारा निर्धारित आराम एव विलास की आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कुछ शेष बच जाता तो भूस्वामी अपनी गुरुतर शक्ति का प्रयोग कर किसी न किसी रूप मे इन भुगतानों मे वृद्धि कर देता था। यदि कृषक द्वारा किये जाने वाले मुख्य भुगतान उपज के किसी निश्चित अंश के रूप मे होते तो वह इस भाग को बढ़ा सकता था: किन्तु बिना शेष दिखाये ऐसा करना सम्भव न था। अतः वह छोटे छोटे शुल्कों की संख्या तथा इनमे निहित राशि को बढ़ाने या इस बात पर अधिक जोर देने की कोशिश करता रहा कि भूमि मे सघन खेती की जाय तथा इसके अधिकतर भाग मे ऐसी फसलें उगायी जायें जिनमे श्रम बहुत लगे तथा जिनका मूल्य अधिक हो। इस प्रकार घड़ी के घण्टे की सुई की भाँति शात एवं अगम्य रूप से परिवर्तन होते रहे और अधिकतर इनके मार्ग में कोई भी रुकावट नहीं आयी, किन्तु दीर्घकाल मे इन परिवर्तनों का पूर्ण प्रभाव पड़ा।[1]

---

1 इस प्रकार कुछ निश्चित दिनों के श्रम के कार्य का मूल्य आंशिक रूप से इस बात पर निर्भर रहता है कि श्रमिक भूस्वामी द्वारा बुलाये जाने पर कितनी चुस्ती से अपने घास के खेत को छोड़कर चला जाता है और वहां कितनी शक्ति से कार्य करता है। उसके अधिकार जैसा कि लकड़ी या लम्बी घास काटने के अधिकार, लोचदार थे, और भूस्वामी के अधिकार भी लोचदार थे जिनके कारण उसे अपने खेत छोड़कर चले जाने पर कबूतरों से बिना रोक टोक के फसल चुगवानी पड़ती थी। उसे मालिक की चक्की पर अनाज पिसवाना पड़ता था और मालिक के पुलों पर तथा उसके बाजारों में चुंगी देनी पड़ती थी। इसके पश्चात् पट्टेदार को जो जुर्माना या भेंट या हिन्दुस्तान में कहे जानेवाले "अब्वाब" देने पड़ते थे उनकी न केवल मात्रा

प्रथा से पट्टेदार को जो सुरक्षा प्राप्त हुई वह इन देशों के सम्बन्ध में भी महत्वहीन न थी। क्योंकि पट्टेदार को यह भलीभाँति ज्ञात था कि उसे किसी खास समय में क्या क्या माँगें पूरी करनी पड़ेंगी। उसके चारों ओर के सभी लोगों की उच्च या निम्न स्तर की नैतिक भावनाएँ, भूस्वामी आमतौर पर लिये जाने वाले भुगतान तथा देय में, चुंगी तथा जुर्मानों में एकाएक एवं तीव्र वृद्धि न कर सका और इस प्रकार प्रथा के कारण परिवर्तन की तीव्रता मन्द पड़ गयी।

प्रथा की सुरक्षात्मक शक्ति।

यह भी सत्य है कि लगान के ये गूढ़ एवं परिवर्तनशील तत्व साधारणतया इसके सम्पूर्णरूप के केवल थोड़े ही अंश थे और उन कम दुर्लभ दशाओं में जब बहुत लम्बे समय तक द्रव्यिक लगान लगातार स्थिर था पट्टेदार की भूमि में एक प्रकार की साझेदारी रही। यदि भूमि का वास्तविक निवल मूल्य बढ़ गया हो तो वह इस साझेदारी के लिए आंशिक रूप से अपने भूस्वामी की सहिष्णुता के लिए, किन्तु आंशिक रूप से प्रथा एवं जनमत के संयतकारी प्रभाव के लिए भी ऋणी होगा। यह शक्ति कुछ सीमा तक उस शक्ति के अनुरूप है जिससे खिड़की के चौखटे के नीचे वाले किनारे ने वर्षा की बूँदें रुकी रहती हैं: ये बूँदें खिड़की के जोर से हिलने तक वहीं अटकी रहती हैं और फिर एक साथ गिर जाती हैं। ठीक इसी भाँति भूस्वामी के कानूनी अधिकार जो कि बहुत समय से सुप्तावस्था में रहे थे उनका महान आर्थिक परिवर्तन के काल में एकाएक प्रयोग होने लगा।[1]

अपितु उनके भुगतान करने के अवसर भी न्यूनाधिक रूप लोचदार थे। मुगल सम्राटों के शासन काल में मुख्य पट्टेदार को बहुधा उपज के नाममात्र भाग के अतिरिक्त इस प्रकार के अनेक शुल्क देने पड़ते थे: और ये लोग निम्नतर श्रेणी के पट्टेदारों पर अधिक मात्रा में तथा कुछ अपनी ओर से वृद्धि कर ये शुल्क लगा देते थे। ब्रिटिश सरकार ने स्वयं इन्हें नहीं लगाया, किन्तु वह अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी निम्नतर श्रेणियों के पट्टेदारों की इनसे रक्षा नहीं कर सकी। दृष्टान्त के लिए सर डब्ल्यू० हंटर ने उड़ीसा के कुछ भागों में देखा कि किसान को अपने परम्परागत लगान के अतिरिक्त अलग अलग प्रकार के 33 उपकर (cess) देने पड़ते थे। जब कभी उनके बच्चों का विवाह होता, वे पुश्ता बनाते, गन्ना उगाते, जुगरनौत का त्योहार मनाने जाते इत्यादि, तो उन्हें यह उपकर देने पड़ते थे। (Orissa, अध्याय 1, पृष्ठ 55-9)।

1 हिन्दुस्तान में आजकल नाना प्रकार के पट्टे साथ साथ चल रहे हैं, कभी कभी तो इनके एक ही नाम हैं और कभी अलग अलग। कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ रय्यत श्रेष्ठतर मालिक सरकार को कुछ निश्चित देय देकर स्वयं उस भूमि पर स्वामित्व रखते हैं और जहाँ रय्यत को न केवल निकाला नहीं जा सकता अपितु उसे श्रेष्ठतर पट्टेदार को हिंसा के डर से प्रथा द्वारा बिल्कुल निश्चित किये गये उत्पादक अधिशेष के भाग से अधिक भुगतान करने के लिए बाध्य भी नहीं किया जा सकता, उस दशा में जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वह व्यक्ति जो भुगतान करता है वह केवल उस फर्म के दूसरे साझेदार को फर्म की आय के उस भाग को सौंपता

मंटायेज शस्य

§4. यह प्रश्न कि कृषक द्वारा उसकी भूमि के उपयोग के बदले में किये जाने वाले भुगतानों को द्रव्य के रूप में आंका जाय हिन्दुस्तान तथा इंग्लैंड दोनों ही देशों में

मात्र है जो कि साझेदारी के अलिखित पट्टे में उसे मिलनी चाहिए। इसे कदापि भी लगान नहीं कहा जा सकता। भूपट्टे की इस प्रकार की प्रणाली बंगाल के केवल उन भागों में विद्यमान है जहां हाल ही में लोगों का कोई बड़ा विस्थापन नहीं हुआ है और जहां पुलिस श्रेष्ठतर पट्टेदारों के ऊपर आतंक फैलाने से रक्षा करने में पर्याप्त रूप से सक्रिय एवं ईमानदार रही है।

हिन्दुस्तान के अधिकार भाग में कृषक सीधे सरकार से पट्टे के अन्दर भूमि प्राप्त करते हैं जिसकी शर्तें समय समय पर बदली जा सकती हैं। जिस सिद्धान्त के आधार पर वे पट्टे किये जाते हैं वह, विशेषकर उत्तर पश्चिम तथा उत्तर पूर्व में जहां नयी भूमि का बन्दोबस्त हो रहा है, यह है कि उसके लिए किये जाने वाले वार्षिक भुगतान को इस स्थान के प्रथागत स्तर तथा इस कल्पना के आधार पर कि वह उस स्थान की दृष्टि से सामान्य शक्ति एवं कुशलता के साथ कृषि करता है कृषक की आवश्यकता तथा कुछ विलास की आवश्यकताएँ घटाने के बाद भूमि के सम्भावित अधिशेष उपज के बराबर समायोजित कर देना चाहिए। इस प्रकार एक ही स्थान पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच यह प्रभार एक प्रकार का आर्थिक लगान है। किन्तु समान उर्वरता के दो क्षेत्रों में जहाँ एक में शक्तिशाली लोगों द्वारा तथा दूसरें में शक्तिहीन लोगों द्वारा खेती की जाती है, असमान प्रभार लगाये जाने से विभिन्न क्षेत्रों के बीच इसके समायोजन की प्रणाली लगान की अपेक्षा करके अनुरूप है। क्योंकि कर वास्तव में अर्जित की जाने वाली शुद्ध निवल आय के अनुपात में होते हैं और लगान उस निवल आय के अनुपात में होते हैं जिन्हें सामान्य योग्यता के किसी व्यक्ति द्वारा अर्जित किया जाता है: एक सफल व्यापारी समानरूप से लाभप्रद स्थिति में रहने वाले तथा बराबर लगान देने वाले पड़ोसी की अपेक्षा दस गुनी वास्तविक आय पर दस गुना कर देगा।

हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण इतिहास में वह शान्ति स्थिरता नहीं दिखायी देती जो कि युद्ध, अकाल तथा महामारी के समाप्त होने के बाद इंग्लैंड के ग्रामीण प्रदेशों में देखने को मिलती है। लगभग सदैव ही व्यापक गति विधि बढ़ती रही है। इसका आंशिक कारण अनेक बार दुर्भिक्ष पड़ना (क्योंकि Statistical Atlas of India से यह प्रतीत होता है कि शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र रहा हो जहां इस शताब्दी में कम से कम एक बार दुर्भिक्ष न पड़ा हो) और आंशिक कारण सर्वोत्तम उपजाऊ भूमि का शीघ्र ही घने जंगल का रूप धारण कर लेना है। जिस भूमि से अधिकतम जनसंख्या का पालन-पोषण हुआ है वह ऐसी भूमि है जिसमें मानव-निवास न रहने पर बड़ी तेजी से जंगली जानवरों, विषैले सांपों का निवास होने लगता है और मलेरिया का प्रकोप हो जाता है। इनसे शरणार्थियों के अपने पुराने घरों में लौटने में बाधा पहुँचती है, और उन्हें कहीं बसने के पूर्व बहुधा दूर तक मारा मारा फिरना पड़ता है। जब भूमि निर्जन हो जाती है तो जिन व्यक्तियों का इस पर नियंत्रण रहता है वे चाहे

महत्वपूर्ण होता जा रहा है। किन्तु अभी हम इसे एक ओर छोड़ देते हैं और लगान की "आंग्ल" प्रणाली तथा नये संसार मे कही जाने वाली भूमि की "साझेदारी" या पुराने संसार में कही जाने वाली "मेटायर"[1] (शस्य वटन) प्रणाली के बीच अधिक आधारभूत अन्तर पर विचार करते हैं।

वंटन) या उपज के किसी भाग को

सरकारी हों या गैरसरकारी, दूसरे स्थानों से कृषकों को आकर्षित करने के लिए बहुत अनुकूल शर्तें रखते हैं। पट्टेदारों के लिए इस प्रतिस्पर्द्धा से कृषकों तथा आसपास रहने वाले पुराने श्रेष्ठतर पट्टेदारों के पारस्परिक सम्बन्ध प्रभावित होते हैं। अतः प्रथागत पट्टे में सदैव होने वाले उन परिवर्तनों के अतिरिक्त जो यद्यपि किसी भी समय दुर्ग्राह्य होते हैं, लगभग प्रत्येक स्थान में ऐसा समय आया है जब यहाँ तक कि पूर्वोक्त प्रथा की भी अनुबन्धता विच्छिन्न हुई है तथा तीव्र प्रतिस्पर्द्धा का बड़ा बोलबाला रहा है।

युद्ध अकाल तथा महामारी की इन विघ्नकारी शक्तियों का मध्यकालीन इंग्लैंड में बहुधा प्रभाव पड़ा है, किन्तु इनसे कम क्षति पहुँची है। यदि एक पीढ़ी की औसत अवधि इंग्लैंड की अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु की भाँति हिन्दुस्तान में भी लम्बी होती तो इसके फलस्वरूप लगभग सभी परिवर्तनों की वहाँ जो कम गति होती उसकी अपेक्षा वर्तमान गति अधिक रही है। अतः शान्ति एवं समृद्धि से हिन्दुस्तान की जनसंख्या को अपने घोर संकट से अधिक तेजी से राहत मिली है और प्रत्येक पीढ़ी अपने पिता तथा पितामह के कार्यों से जो परम्पराएँ अपनाती है, वे थोड़े से समय तक ही चलती हैं जिससे तुलनात्मक रूप से निकट वर्तमान में विकसित परिपाटियों को सरलतापूर्वक पुरातनत्व की स्वीकृति मिल जाती है। परिवर्तन इतनी अधिक तेजी से हो सकते हैं कि यह पता भी न लग पायें कि कोई परिवर्तन हुआ भी है।

हिन्दुस्तान तथा अन्य पूर्वीय देशों में भू-पट्टे की समकालीन दशाओं पर आधुनिक विश्लेषण लागू किया जा सकता है, जिसके प्रमाण की हम इस प्रकार परीक्षा तथा प्रतिपरीक्षा कर सकते हैं कि इससे मध्यकालीन भू-पट्टे के उन अस्पष्ट तथा आंशिक अभिलेखों पर प्रकाश डाला जा सकता है जिनकी वस्तुतः परीक्षा की जा सकती है किन्तु प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि आदिकालीन दशाओं पर आधुनिक प्रणालियों को लागू करने में बहुत बड़ी क्षति हो सकती है: उन्हें उचित रूप में लागू करने की अपेक्षा अनुचित रूप में लागू करना अधिक सरल है। किन्तु कभी- कभी यह निश्चय कथन कि उन्हें लाभप्रद रूप से लागू किया ही नहीं जा सकता ऐसे उद्देश्यों, प्रणालियों तथा विश्लेषण के परिणामों के विचार पर आधारित है जो इस ग्रन्थ तथा अन्य आधुनिक ग्रन्थों में दिये गये विचार से थोड़ा ही मिलता है। सितम्बर 1892 के Economic Journal में A Reply को देखिए।

1 मेटायर शब्द उचित अर्थ में केवल उन दशाओं पर लागू होता है जिनमें भूस्वामी का उपज में आधा हिस्सा रहता है। किन्तु आमतौर पर इस प्रकार की सभी व्यवस्थाओं में लागू किया जाता है चाहे भूस्वामी का हिस्सा कुछ भी हो। इसे पशु पट्टाप्रणाली (stock lease system) से भिन्न समझना चाहिए जिसमें भूस्वामी कम से कम

लगान के रूप में देने की प्रथा के यूरोप तथा अमेरिका में अनेक रूप हैं।

लैटिन यूरोप के अनेक भागों में भूमि अनेक जोतों में विभाजित होती है जिन्हें पट्टेदार स्वयं अपने तथा अपने परिवार के श्रम से तथा कभी कभी, यद्यपि ऐसा कम ही होता है, कुछ मजदूरी पर रखे गये श्रमिकों की सहायता से जोतता है, और इसके लिए भूस्वामी इमारत, पशु तथा कभी कभी खेती के औजार भी देता है। अमेरिका में किसी भी प्रकार की कुछ ही कृषीय काश्तकारियाँ हैं किन्तु इनके दो-तिहाई जोत छोटे छोटे हैं और इन्हें अपेक्षाकृत निर्धन वर्गों के गोरों को या स्वतन्त्र निग्रो लोगों को इस आधार पर पट्टे पर दिया जाता है कि उपज में श्रम एवं पूँजी दोनों का हिस्सा रहे।[1]

इससे बिना पूँजी वाले व्यक्ति को सहकारी उत्पादन के कुछ लाभ

अन्य किसी योजना की अपेक्षा इस योजना के आधार पर ही जिस व्यक्ति के पास अपनी बिलकुल भी पूँजी नहीं होती उसे यह कम प्रभाव पर सुलभ हो सकती है। उसे मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिकों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता मिलती है और वह अधिक उत्तरदायित्व के साथ काम कर सकता है। अतः इस योजना में सहकारिता लाभ-विभाजन तथा असामी काम की तीन आधुनिक प्रणालियों के अनेक लाभ पाये जाते हैं।[2] यद्यपि मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिक की अपेक्षा मेटायर अधिक स्वतंत्र

पशुओं का आंशिक भाग स्वयं प्रदान करता है किन्तु पट्टेदार को सारी खेती स्वयं अपने जोखिम पर करनी पड़ती है और भूस्वामी को भूमि तथा पशुओं के लिए निश्चित वार्षिक भुगतान करना पड़ता है। मध्यकालीन इंग्लैंड में यह प्रणाली बहुत अधिक प्रचलित थी और मेटायर प्रणाली से भी लोग अनभिज्ञ न थे। (रोजर्स की Six Centuries of Work and Wages, अध्याय X देखिए)।

1 सन् 1880 ई० में संयुक्त राज्य अमरीका के 74 प्रतिशत खेतों पर उनके मालिकों द्वारा कृषि की जाती थी, 18 प्रतिशत या शेष के दो-तिहाई से भी अधिक खेत उपज के कुछ भाग के लिए लगान पर दिये गये थे और केवल 8 प्रतिशत खेत आंग्ल प्रणाली के अनुसार पट्टे पर दिये गये थे। दक्षिणी प्रदेशों में खेत सर्वाधिक अनुपात में अपने मालिकों के अतिरिक्त अन्य लोगों द्वारा जोते गये थे। कुछ दशाओं में भूस्वामी जिसे वहाँ किसान कहा जाता है न केवल घोड़े तथा खच्चर देता है, अपितु उनका भोजन भी प्रदान करता है और उस दशा में कृषक जिसे फ्रान्स में मेटायर न कहकर मेटवैले (Maitre Valet) कहा जाता है मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक की भाँति है जिसे अपने उत्पादन का एक भाग दिया जाता है। उसकी दशा दृष्टान्त के लिए, एक मजदूरी पर काम करने वाले मछुए की भाँति है जिसका वेतन उसके द्वारा पकड़ी गयी मछलियों के मूल्य के एक भाग के बराबर होता है। जहाँ भूमि उपजाऊ हो तथा उसमें ऐसी फसलें उगायी जायें जिसमें श्रम थोड़ा ही लगे वहाँ पट्टेदार का हिस्सा एक-तिहाई होता है और यह बदल कर उन स्थानों में 5 भाग के बराबर हो जाता है जहाँ श्रम बहुत अधिक लगता है और भूस्वामी थोड़ी ही पूँजी देता है। उन अनेक योजनाओं का अध्ययन करने से बहुत कुछ उपलब्ध हो सकता है जिनके आधार पर उपज के विभाजन की संविदाएँ तय की जाती हैं।

2 प्रकाशक तथा लेखक के बीच "आधे-आधे लाभ" की प्रणाली में पाये

है, इस पर भी वह आंग्ल कृषक की अपेक्षा कम ही स्वतन्त्र है। उसके भूस्वामी को अपने पट्टेदार को कार्य पर लगाये रखने के लिए अपना या वेतन प्राप्त करने वाले अपने एजेंट का बहुत समय लगाना पड़ता है और बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। उसे इनके लिए, जिस प्रबन्ध की उपार्जन की संज्ञा दी जाती है, बहुत बड़ा प्रभार लेना चाहिए। क्योंकि जब कृषक को भूमि पर लगायी जाने वाली पूंजी एवं श्रम की हर मात्रा के प्रतिफल का आधा भाग भूस्वामी को देना पड़ता है तो यह उसके हित में नहीं कि वह इनकी कोई ऐसी मात्रा लगाये जिसका कुल प्रतिफल इसके दुगुने से कम हो। यदि उसे अपनी इच्छानुसार खेती करने की स्वतन्त्रता हो तो वह आंग्ल योजना की अपेक्षा कहीं कम प्रकृष्ट खेती करेगा। वह पूंजी एवं श्रम की केवल उतनी ही मात्रा लगायेगा जिससे उसे पर्याप्तरूप से दुगुने से भी अधिक प्रतिफल मिले: इससे उसके भूस्वामी को अनश्चित भुगतान की योजनानुसार मिलने वाले प्रतिफल के भाग से भी कम भाग मिलेगा।[1]

प्राप्त होते हैं। किन्तु इससे बहुत तनाव पैदा हो जाता है।

यूरोप के अनेक भागों में जहाँ पट्टेदार की काश्तकारी व्यावहारिक रूप में स्थिर होती है यही बात पायी जाती है, और ऐसी दशा में निरन्तर हस्तक्षेप करके ही भूस्वामी अपने खेत में लगाये जाने वाले श्रम की मात्रा को स्थिर रख सकता है, और यह पट्टेदार

यदि भूस्वामी का कुछ ही नियंत्रण हो तो कृषि का स्तर निम्न होगा, किन्तु यदि यह प्रभावोत्पादक

जाने वाले सम्बन्ध अनेक प्रकार से भूस्वामी तथा मेटायर के सम्बन्धों से मिलते जुलते हैं।

1 इसे भाग 4, अध्याय 3 में दिये गये आरेखों के अनुरूप आरेखों की सहायता से सर्वाधिक स्पष्टरूप में समझा जा सकता है। पट्टेदार के भाग वक्र को ख द के के ऊपर अ च की आधी (या एक-तिहाई या दो-तिहाई) ऊँचाई पर खड़ा खींचा जायेगा। उस वक्र के नीचे का क्षेत्र पट्टेदार के हिस्से को और इसके ऊपर का क्षेत्र भूस्वामी के हिस्से को व्यक्त करेगा। ख द पहले की भाँति पट्टेदार को इकाई की मात्रा लगाने के लिए पुरस्कृत करने के लिए आवश्यक प्रतिफल है। यदि उसे अपनी योजना के अनुसार कार्य करने की छूट हो तो वह कृषि को उस बिन्दु से परे नहीं बढ़ायेगा जिस पर पट्टेदार का भाग-वक्र अ च को काटता है: और अतः भूस्वामी का भाग-वक्र आंग्ल योजना की अपेक्षा साधारण कृषि से मिलने वाले प्रतिफल से कम अनुपात के बराबर होगा। भूमि से प्राप्त उत्पादक अधिशेष को नियन्त्रित करने वाले कारणों के विषय में रिकार्डो द्वारा किये गये विश्लेषण को आंग्ल-पट्टा प्रणालियों के अतिरिक्त अन्य प्रणालियों पर जिस ढंग से लागू किया जाता है उसे स्पष्ट करने के लिए इस प्रकार के आरेखों का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें थोड़ा सा और परिवर्तन करने से इन्हें फारस में जहाँ स्वयं भूमि का थोड़ा मूल्य है, पाये जाने वाले रीति रिवाजों के अनुकूल बनाया जा सकता है, और "फसल को पाँच हिस्सों में विभाजित किया जाता है तथा प्रत्येक हिस्से का अर्थात् 1, भूमि; 2, सिंचाई इत्यादि के लिए जल; 3, बीज; 4, श्रम; 5, बैल को एक-एक हिस्सा मिलता है। भूस्वामी का साधारणतया दो हिस्सों पर स्वामित्व होता है इसलिए उसे फसल का $\frac{2}{5}$ भाग मिलता है।"

हो तो इसके परिणाम आंग्ल योजना के परिणामों से बहुत भिन्न नहीं होंगे।

द्वारा खेती में काम करने वाले पशुओं को किसी ऐसे बाह्य कार्य मे उपयोग किये जाने से रोक सकता है जिनके प्रतिफल का वह भूस्वामी के साथ बटवारा नहीं करता।

किन्तु सर्वाधिक रूप मे स्थिर पट्टेदारी वाले क्षेत्रों मे भी प्रथा द्वारा भूस्वामी को पशुओं की जिस मात्रा तथा जिस किस्म का आयोजन करना पड़ता है उन्हें निरन्तर यद्यपि अज्ञात रूप से, सशोधित किया जा रहा है जिससे वे माँग एवं सम्भरण के परिवर्तनशील सम्बन्धो के अनुकूल हो सके। यदि पट्टेदार की काश्तकारी स्थिर न हो तो भूस्वामी पट्टेदार द्वारा लगायी जाने वाली पूंजी एवं श्रम की मात्रा तथा स्वयं भी लगायी जाने वाली पूंजी की मात्रा का प्रत्येक विशेष दशा की आवश्यकता के अनुसार सोच-विचार कर एव स्वतन्त्ररूप से आयोजन कर सकता है।[1]

अत यह स्पष्ट हो गया है कि मेटायर प्रणाली के लाभ जोत के छोटे छोटे होने तथा पट्टेदारो के निर्धन होने तथा भूस्वामियो के छोटी छोटी बातों के विषय मे अधिक कष्ट उठाने के लिए अन्यमनस्क न होने पर अधिक होते हैं किन्तु यह प्रणाली

1 अमेरिका तथा फ्रान्स के अनेक भागों में ऐसा पहले से ही किया जाता है, और कुछ अच्छे निर्णयक लोगों का यह विचार है कि इस पद्धति को बहुत विस्तृतरूप में बढ़ाया जा सकता है, और कुछ समय पूर्व जिसे मेटायेज की लुप्त होती हुई प्रणाली माना जाता था उसमें एक नये जीवन का संचार किया जा सकता है। यदि इसे पूर्ण-रूप में लागू किया जा सके तो इसके फलस्वरूप कृषि उसी सीमा तक की जायेगी जहाँ तक आंग्ल योजना में की जाती है तथा इससे भूस्वामी को वही आय प्राप्त होगी जो आंग्ल योजना के अनुसार समानरूप से उपजाऊ तथा अच्छी स्थिति वाली उस भूमि से प्राप्त की जाती जिसमें समान पूंजी लगी हुई हो तथा जहाँ खेतों में काम करने वाले व्यक्तियों की समान योग्यता एवं उद्यम करने की शक्ति भी बराबर हो।

फ्रान्स में मेटायेज पद्धति की लोच के विषय में हिग्स तथा लैम्बेलिन द्वारा मार्च 1894 के Economic Journal में लिखे गये लेख को तथा लेरौय-ब्यूल्यू के Repartition des Richesses, अध्याय IV देखिए।

पिछली टिप्पणी की भाँति यदि भूस्वामी द्वारा दी जाने वाली चल-पूंजी को ख द रेखा पर ख क की दूरी द्वारा व्यक्त किया जाय और यदि भूस्वामी ख क मात्रा पर स्वतंन्त्र रूप से तथा अपने हित में नियंत्रण रखे तथा अपने पट्टेदार के साथ उसके द्वारा लगाये जाने वाले श्रम की मात्रा के विषय में सौदा करे तो ज्यामितिक रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि वह इसमें इस प्रकार से समायोजन करेगा जिससे पट्टेदार भूमि में ठीक उतनी ही प्रकृष्ट खेती करने के लिए बाध्य हो जितनी कि वह आंग्ल पट्टा प्रणाली में करता और उसको प्राप्त होने वाला भाग भी उसी के बराबर होगा। यदि वह ख क मात्रा में परिवर्तन कर सके किन्तु पट्टेदार की श्रम की मात्रा को ही नियंत्रित करे तो उपज-वक्र के कुछ आकारों से कृषि आंग्ल योजना की अपेक्षा अधिक प्रकृष्ट होगी, किन्तु भूस्वामी को प्राप्त होने वाला भाग कुछ कम होगा। इस विरोधाभासपूर्ण परिणाम में कुछ वैज्ञानिक रोचकता है। किन्तु इसका व्यापारिक महत्व थोड़ा ही है।

बड़ी जोत के लिए उपयुक्त नही है, क्योकि इसमे योग्य एव उत्तरदायी पट्टेदार के उद्यम के विकास के लिए क्षेत्र नही मिलता। यह आमतौर पर स्वामी-कृषक की प्रणाली से सम्बन्धित है, और हम अब इस पर विचार करेंगे।

स्वामी-कृषक को अनेक लाभ हैं तथा उसके आनन्द के साधन भी अनेक हैं,

§5. स्वामी-कृषक की स्थिति के बड़े आकर्षण हैं। वह जो कुछ चाहता है उसे करने के लिए भूस्वामी के हस्तक्षेप की चिन्ता नही है, और न उसे यह डर लगा हुआ है कि कही कोई अन्य व्यक्ति उसके कार्य तथा आत्म त्याग का फल न प्राप्त कर ले। उसके स्वामित्व की भावना से उसे आत्म सम्मान प्राप्त होता है तथा उसके आचरण में स्थिरता आ जाती है और उसकी आदतें विवेकशील एव संयत हो जाती हैं। वह कदाचित् ही कभी सुस्त बैठा रहता है। और अपने काम को केवल नित्यश्रम (Drudgery) मानता है। वह यह सब कुछ उस भूमि के लिए ही करता है जिससे उसका इतना अधिक लगाव है।

किन्तु वह फिजूल-खर्च करने से कंगाल हो गया है, वह परिश्रमी व्यक्ति है किन्तु अकुशल है।

आर्थर यंग ने कहा था कि "सम्पत्ति का जादू रेत को भी सोना बना देता है। निस्सन्देह अनेक दशाओ मे जब सम्पत्ति के मालिक असाधारण शक्ति वाले व्यक्ति होते है तो ऐसा हुआ भी है। किन्तु यदि इन व्यक्तियो की आशाएँ स्वामी-कृषक की सकुचित आशाओ तक ही सीमित न रहती तो भी ये लोग इतना ही या इससे भी अच्छा कार्य करते किन्तु इस समस्या का वास्तव मे एक दूसरा पहलू भी है। हमे बतलाया गया है कि "भूमि कार्यरत व्यक्ति का सर्वोत्तम बचत-बैंक है।" कभी कभी यह दूसरी सर्वोत्तम वस्तु है। किन्तु उसकी अपनी तथा अपने बच्चो की शक्ति सबसे सर्वोत्तम है, और कृषक अपनी भूमि मे इतने एकनिष्ठ होकर कार्य करते है कि वे बहुधा किसी अन्य चीज की बहुत कम परवाह करते है। उनमे से अनेक धनी से धनी लोग अपने तथा अपने परिवार के भोजन मे भी कमी कर देते हैं: वे अपने मकानों तथा फर्नीचर से प्राप्त होने वाले सम्मान पर गर्व करते है, किन्तु वे किफायत के लिए अपनी रसोई मे रहते हैं, और व्यावहारिक रूप मे आंग्ल कुटीर वासियों के अधिक अच्छे वर्ग से भी बुरी दशा में निवास करते हैं और उनसे कही अधिक बुरा भोजन करते है। उनमे से सबसे निर्धन लोग बहुत लम्बे घण्टों तक कठिन परिश्रम करते हैं किन्तु वे अधिक कार्य नही कर सकते क्योंकि वे इंग्लैंड के सबसे निर्धन श्रमिको से भी निकृष्ट भोजन करते है। वे यह नहीं समझते कि धन आनन्द की वास्तविक आय को प्राप्त करने के साधन के रूप में ही उपयोगी है। वे इस साधन को प्राप्त करने मे अपने लक्ष्य का ही त्याग कर देते थे।[1]

1 "स्वामी-कृषक" शब्द बड़ा ही संदिग्ध शब्द है: इसमें वे अनेक लोग भी हैं जिन्होंने सम्पन्न विवाहों द्वारा अनेक पीढ़ियों के कठिन परिश्रम एवं धैर्यपूर्ण बचत से मिल सकने वाले परिणाम प्राप्त कर लिये हैं, और फ्रान्स में इनमें से कुछ लोग जर्मनी से हुए महायुद्ध के बाद सरकार को स्वतंन्त्ररूप से ऋण देने लगे। किन्तु साधारण कृषक की बचत बहुत छोटे पैमाने पर होती है और चार दशाओं में से तीन में उसकी भूमि में पूँजी का अभाव रहता है। हो सकता है कि वह कुछ द्रव्य का संग्रह कर ले या इसे विनियोजित कर दे, किन्तु यह विश्वास करने का कोई अच्छा आधार नहीं दिखायी देता कि उसके पास बहुधा बहुत पूंजी रहती है।

कुछ फ्रांसीसी तथा जर्मनी के कृषक धनाढ्य हैं, किन्तु उनके दूसरी ओर पुराने तथा नये संसार में ऐसे अनेक धनी लोग हैं जो आंग्ल श्रमिकों के वंशज हैं।

यह स्मरण रहे कि आंग्ल श्रमिक आंग्ल-पद्धति की असफलता का, न कि उसकी सफलता का, प्रतिनिधित्व करते हैं। वे उन लोगों के वंशज हैं जिन्हें लगातार अनेक पीढ़ियों तक वे सुविधाएँ नहीं उपलब्ध हुई जिनसे उनके योग्यतर एवं अधिक साहसी पड़ोसी देश के अन्दर मुख्य पदों पर पहुँच रहे थे, और यही अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि भूमण्डल के अधिकांश भाग पर अपना प्रभुत्व जमाते आ रहे थे। जिन कारणों से अंग्रेज जाति नये संसार की मुख्य मालिक बनी हुई है उनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण उनका वह साहसिक उद्यम है जिससे एक धनी स्वामी-कृषक साधारणतया तथा कृषकों के नीरस जीवन तथा सीमित आय से संतुष्ट रहना अस्वीकार कर देता है। जिन कारणों से यह उद्यम पनपा है उनमें अल्प मात्रा में उत्तराधिकार प्राप्त करने के प्रलोभन के अभाव तथा स्वतन्त्र व्यक्तिगत इच्छा के विपरीत सम्पत्ति के लिए विवाह लाभ न होने से बढ़कर और कोई भी कारण अधिक महत्वपूर्ण न था। इन प्रलोभनों से उन स्थानों में युवक लोगों की शक्ति बहुधा क्षीण हो गयी जहाँ कृषकों की अपनी सम्पत्ति अधिक रही है।

अमेरिकी किसान।

आंशिक रूप से इन प्रलोभनों के अभाव के फलस्वरूप अमेरिका के "किसान" "स्वामी-कृषकों" के सदृश नहीं हैं, यद्यपि वे अपने हाथ से अपनी भूमि जोतने वाले श्रमिक वर्ग के ही लोग हैं। वे स्वयं अपनी तथा अपने बच्चों की शक्तियों के विकास में अपनी आय को स्वतन्त्ररूप से तथा बुद्धिमत्तापूर्वक विनियोजित करते हैं, और ये शक्तियाँ ही उनकी पूँजी के मुख्य भाग के अन्तर्गत आती हैं, क्योंकि साधारणतया उनकी भूमि का मूल्य अभी भी थोड़ा ही है। उनके मस्तिष्क सदैव सक्रिय रहते हैं, और यद्यपि उनमें से अनेक लोगों को कृषि का थोड़ा ही तकनीकी ज्ञान है तथापि उनकी तीक्ष्ण बुद्धि एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा से उनके सम्मुख आयी हुई समस्या का बिना त्रुटि के सर्वोत्तम हल निकल जाता है।

कृषि की अमेरिकी प्रणालियाँ।

उनके सम्मुख साधारणतया जो समस्या रहती है वह यह है कि किस प्रकार भूमि में लगाये जाने वाले श्रम के अनुपात में उपज अधिक प्राप्त की जा सकती है भले ही उनकी प्रचुर भूमि के अनुपात में यह उपज थोड़ी ही हो। अमरिका के कुछ भागों में जहाँ भूमि का दुर्लभता मूल्य भी होने लगा है और जहाँ अच्छे बाजारों के बिलकुल पास ही में होने से प्रकृष्ट खेती लाभदायक हुई है वहाँ स्वयं कृषि एवं पट्टे की प्रणालियाँ आंग्ल ढाँचे पर पुनर्व्यवस्थित हो रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से अमेरिका के आदिवासियों द्वारा पश्चिम के फार्मों को यूरोपीय जन्म के लोगों को सौंपने की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। इन लोगों ने पूर्व की ओर के फार्म उन्हें पहले ही दे दिये थे और सूती उद्योग भी बहुत समय पूर्व सौंप दिये थे।

आंग्ल प्रणाली थोड़ी बहुत अप्रिय होने पर भी बड़ी शक्ति

§6. अब हमें पट्टे की आंग्ल प्रणाली पर विचार करना चाहिए। यह अनेक दृष्टि से अप्रिय और त्रुटिपूर्ण है, किन्तु इससे उस उद्यम एवं शक्ति को प्रोत्साहन मिला तथा उनमें किफायत हुई जिससे इंग्लैंड अपने भौगोलिक लाभों की सहायता से तथा विनाश करने वाले युद्धों से बचे रहने के कारण विनिर्माण तथा उपनिवेश स्थापित करने की कलाओं में और कुछ कम मात्रा में कृषि में संसार का नेतृत्व करने लगा। कृषि के क्षेत्र में इंग्लैंड को अनेक देशों से, विशेषकर नीदरलैण्ड्स से, अनेक सबक मिले हैं।

किन्तु कुल मिलाकर इसने अन्य देशों से जितना सीखा है उससे कहीं अधिक उन्हे सिखलाया है। अब नीदरलैण्ड्स के आलावा कोई भी ऐसा देश नही है जिसकी उर्वर भूमि की प्रति एकड़ उपज मे इससे तुलना की जा सके, और यूरोप मे कोई भी ऐसा देश नही है जहाँ इन्हें प्राप्त करने मे लगे श्रम के अनुपात मे इतना अधिक प्रतिफल मिलता हो।[1]

प्रदान करती है।

इस प्रणाली का मुख्य गुण यह है कि इसमे भूस्वामी सम्पत्ति के उस भाग का और केवल उसी भाग का, उत्तरदायित्व अपने हाथों मे ले लेता है जिसकी वह स्वय थोडा ही कष्ट उठाकर देखरेख कर सकता है तथा जिसमे उसके पट्टेदार को भी कम परेशानी उठानी पडती है। इसका विनियोजन करने मे यद्यपि उद्यम एव निर्णय दोनो की ही आवश्यकता होती है तथापि इसमे सूक्ष्म विषयो पर निरन्तर निगरानी रखने की आवश्यकता नही होती। उसके हिस्से मे भूमि, इमारत तथा स्थायी सुधार आते है, और ये औसत रूप मे इग्लैंड मे स्वयं कृषक द्वारा प्रदान की जाने वाली चीज़ों के पाँच गुने के बराबर है। वह उद्यम मे इस बडी पूंजी के साथ अपना हिस्सा लगाने को तत्पर रहता है और उसे जो निवल लगान प्राप्त होना है वह कदाचित् ही उसकी लागत पर तीन प्रतिशत से अधिक ब्याज के बराबर होती है। कोई भी दूसरा ऐसा व्यवसाय नही है जिसमे कोई भी व्यक्ति इच्छित मात्रा मे इतने कम दर पर ऋण ले सके या अपने पूँजी के इतने बडे भाग को ब्याज की किसी भी दर पर प्राप्त कर सके। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि मेटायर इससे भी अधिक भाग ऋण पर लेता है किन्तु उसके द्वारा दी जाने वाली ब्याज की दर कही अधिक होती है।[2]

क्योंकि इससे भूस्वामी पूँजी का वह भाग दे सकता है जिसके लिए वह सरलता-पूर्वक एवं प्रभावोत्पादक रूप से उत्तरदायी बनाया जा सकता है, और उसमे प्रर्याप्त

1 ऐसा लगता है कि इंग्लैंड में उर्वर भूमि की प्रति एकड़ उपज नीदरलैण्ड्स से भी अधिक है, यद्यपि इसमें कुछ संदेह है। नीदरलैण्ड्स ने औद्योगिक कार्य मे अन्य किसी देश की अपेक्षा इंग्लैंड का कई प्रकार से मार्ग-निर्देशन किया है और यह उद्यम उनके दूर दूर घने बसे हुए शहरों से देश भर में फैल गया है। किन्तु इस साधारण मत में कुछ त्रुटि है कि वहाँ इंग्लैंड की भाँति ही जनसंख्या के घने होने पर भी बहुत अधिक कृषि उपज का निर्यात करते हैं। क्योंकि बेल्जियम अपने भोजन के अधिकांश भाग का आयात करता है और हालैंड भी उतना ही भोजन आयात करता है जितना वह निर्यात करता है, यद्यपि उसकी कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगी हुई जनसंख्या थोड़ी ही है। फ्रान्स में फसलें तथा यहाँ तक कि आलू भी औसत रूप में इंग्लैंड की अपेक्षा केवल आधे वजन के होते हैं, और क्षेत्रफल के अनुपात में फ्रान्स में पशुओं तथा भेड़ों की संख्या इंग्लैंड के लगभग आधे के बराबर है। इसके विपरीत फ्रान्स के छोटे छोटे किसान मुर्गीपालन, फल तथा उत्पादन की उन शाखाओं में जिनमें कम पूंजी की आवश्यकता होती है, सर्वोत्कृष्ट हैं क्योंकि वहाँ की उत्तम जलवायु इनके लिए विशेषरूप से उपयुक्त है।

2 दीर्घकाल में भूस्वामी को सक्रिय साझेदार तथा व्यवसाय का प्रमुख साझेदार माना जा सकता है: अल्पकाल में उसका स्थान निष्क्रिय साझेदार की भाँति है। उसके उद्यम के महत्व की आर्गिल (Argyll) के ड्यूक की Unseen Foudations of Society, विशेषकर पृष्ठ 374 से तुलना कीजिए।

स्वतंन्त्रता द्वारा चयन हो सकता है।

आंग्ल प्रणाली का दूसरा गुण, जो आंशिक रूप से पहले के ही कारण है, यह है कि इससे भूस्वामी को एक योग्य एवं उत्तरदायी पट्टेदार के चुनाव में पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। जहाँ तक भूमि के स्वामित्व के विपरीत इसके प्रबन्ध का सम्बन्ध है इंग्लैंड में यूरोप के किसी अन्य देश की अपेक्षा जन्म के संयोग का कम महत्व है। किन्तु हम यह पहले ही देख चुके है कि आधुनिक इंग्लैंड में भी सभी प्रकार के व्यवसायों में प्रभावशाली पदों, पाण्डित्यपूर्ण पेशों तथा यहाँ तक कि कुशल शारीरिक कार्य वाले व्यवसायो में पहुँच होने में जन्म के संयोग का बड़ा महत्व है। आंग्ल कृषि में इसका कुछ अधिक महत्व है क्योंकि भूस्वामियों के अच्छे तथा बुरे गुण मिलाकर पूर्णरूप से वाणिज्यिक आधार पर पट्टेदारों के चयन में बाधा डालते हैं, और वे बहुधा नये पट्टेदार की खोज में दूर दूर तक नहीं जाते।[1]

कृषि में धीरे-धीरे सुधार होते हैं।

§7 जिन लोगों को कृषि की कलाओं मे आगे प्रगति करने का अवसर मिलता है उनकी संख्या बहुत है। चूँकि कृषि की विभिन्न शाखाएँ विनिर्माण की विभिन्न शाखाओं की अपेक्षा सामान्य रूप मे एक दूसरे से कम भिन्न है, अतः यह आशा की गयी होगी कि इसमें शीघ्र ही एक के बाद एक नया विचार उत्पन्न हुआ होगा और ये विचार तेजी से फैले होंगे। किन्तु इसके विपरीत प्रगति की गति मन्द रही है। क्योंकि सर्वाधिक साहसी कृषक शहर की ओर चले आते हैं और जो लोग कृषि मे ही लगे रहते हैं वे न्यूनाधिक रूप से एकान्त जीवन व्यतीत करते है और प्राकृतिक चयन एवं शिक्षा के परिणामस्वरूप शहरवासियों की अपेक्षा उनके विचार अधिक स्थिर हैं और वे नये मार्गों को कम अपनाते हैं या अन्य लोगों को इस सम्बन्ध मे सुझाव देते है। यद्यपि किसी विनिर्माता को किसी व्यवसाय मे ऐसी योजना का अनुसरण करने से हानि उठाने का भय नहीं रहता जिसमे उसके पड़ोसी को सफलता मिली है किन्तु किसान के कार्य के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि हर फार्म की अपनी कुछ न कुछ विशेषताएँ होती है जिससे समीप मे सफल हुई किसी योजना को आँख मूँदकर अपनाने से असफलता मिल सकती है, और इसकी असफलता से अन्य लोगों का यह विश्वास बढ़ जाता है कि पुरानी तथा परीक्षित प्रणालियाँ ही सर्वोत्तम हैं।

कृषि सम्बन्धी सही लेखों को रखने की कठिनाई।

पुनः कृषि सम्बन्धी विवरणों की विविधता के कारण कृषि सम्बन्धी लेखो को उचित रूप से तैयार करना बड़ा कठिन हो जाता है। ऐसे अनेक संयुक्त उत्पाद एवं अनेक उपोत्पाद हैं, तथा विभिन्न फसलों एवं भरण-पोषण की प्रणालियों के सम्बन्ध में ऋणी एवं ऋणदाता के बीच इतने जटिल तथा परिवर्तनशील सम्बन्ध हैं कि एक साधारण कृषक इन लेखो को बनाने का उतना ही इच्छुक होने पर भी जितना कि वह अनिच्छुक

1 अभी भी (1907 में) इस बात में पर्याप्त मतभेद है कि भूस्वामियों की आदतें तथा पट्टे की प्रचलित प्रणाली मिलकर किस सीमा तक उन नयी छोटी छोटी जोतों के बनने में बाधा डालती हैं जिससे एक बुद्धिमान श्रमिक को उतनी ही सरलतापूर्वक अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ करने का अवसर मिल जाता है जितना कि दस्तकार को धातु या अन्य वस्तुओं के व्यवसाय में फुटकर दुकान तथा मरम्मत करने का कार्य करने में मिलता है।

है। उस कीमत का पता लगाने में बड़ी कठिनाई का सामना करता है जिससे किसी अनिश्चित मात्रा में अतिरिक्त उपज उगाने में उस पर लगी लागत वसूल हो सके। वह इस सम्बन्ध में अर्द्ध-अन्तर्बोध से केवल अटकल लगा सकता है। वह पर्याप्त निश्चितता के साथ इसकी मूल लागत का पता लगा सकता है किन्तु इसकी कुल वास्तविक लागत को कदाचित् ही जान सकता है। इसके फलस्वरूप अनुभव से प्राप्त होने वाली शिक्षा को तेजी से प्राप्त करना तथा उसकी सहायता से प्रगति करना और भी कठिन हो जाता है।[1]

विनिर्माण की भांति इसमें किसी उपक्रामी में योग्यता के अभाव को अन्य उपक्रामियों की महान

कृषि में तथा विनिर्माण मे पायी जाने वाली प्रतिस्पर्द्धा के रूपो मे एक और अन्तर है। यदि एक विनिर्माता जोखिम लेने वाला न हो तो उसके क्षेत्र छोड देने पर अन्य लोग उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर सकते है किन्तु जब कोई भूस्वामी अपनी भूमि के साधनों का सर्वोत्तम रूप से विकास नही करता और यदि अन्य लोग उस कमी को पूरा करना चाहे तो वे ऐसा करने मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति को लागू होने से नहीं रोक सकते। इसके फलस्वरूप उसमे बुद्धि एव साहस के अभाव के कारण सीमान्त सम्भरण कीमत अपेक्षाकृत कुछ ऊँची हो जाती है।[2] इस पर यह सत्य है कि इन दोनों दशाओं मे नाममात्र का ही अन्तर पाया जाता है, क्योंकि विनिर्माण की किसी शाखा

---

1 छोटी छोटी जोतों में यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि पूँजीपति किसान सदैव ही मूल लागत को द्रव्य के रूप में मापता है। किन्तु अपने हाथ से कार्य करने वाला किसान अपनी भूमि में जितना श्रम लगा सकता है, लगाने की कोशिश करता है, और इसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले उत्पाद के अनुपात में द्रव्यिक मूल्य का सतर्कतापूर्वक अनुमान नहीं लगाता।

यद्यपि स्वामी-कृषक किराये पर तथा कम पुरस्कार के लिए काम पर लगाये जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक कठिन परिश्रम करने की तत्परता में अन्य छोटे व्यवसायों के मालिकों से मिलते-जुलते हैं, तथापि वे विनिर्माण के कार्य में लगे छोटे छोटे मालिकों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि बहुधा उस समय भी मजदूरी पर अतिरिक्त श्रम नहीं लगाते जब कि ऐसा करने से उन्हें लाभ हो सकता था। यदि वे तथा उनके बच्चे अपनी भूमि में जितना कार्य कर सकते हैं वह इसके लिए पर्याप्त न हो तो यह साधारणतया कम कृष्ट होगी : यदि उनका कार्य इसके लिए आवश्यकता से अधिक हो तो भूमि बहुधा उस सीमा से अधिक कृष्ट होगी जहां तक कृषि करना लाभदायक है। यह एक साधारण नियम है कि जो लोग अपने मुख्य धन्धे से शेष बचने वाले समय को किसी अन्य उद्योग में लगाते हैं वे बहुधा इस दूसरे धन्धे से प्राप्त होने वाले उपार्जन को चाहे वह थोड़ा ही क्यों न हो, अतिरिक्त लाभ समझते हैं और वे कभी-कभी ऐसी मजदूरी से कम पर भी कार्य करते हैं जिसे उस उद्योग से ही आजीविका प्राप्त करने वाले लोगों को आहार तक प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसा विचार उस समय होता है जब लोग कुछ अंशों में आनन्द के लिए भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में अपूर्ण उपकरणों से उप-उद्योग के रूप में कृषि का कार्य करते हैं।

2 भाग 6. अध्याय 2. अनुभाग 5 तथा वहां दिये गये अन्य प्रसंगों को देखिए।

योग्यता से पूर्ति नहीं की जा सकती।

का इसमें लगी फर्मों की योग्यता एवं उद्यमशीलता में कमी होने के कारण विफल रहा सकता है। कृषि में मुख्य मुख्य सुधार इन भूस्वामियों ने किये हैं जो स्वयं शहरवासी थे या उनका शहरवासियों से पर्याप्त सम्पर्क था। कृषि के पूरक व्यवसायों के विनिर्माताओं ने भी इसमें मुख्य सुधार किये।[1]

कृषि में व्यक्ति का योगदान क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुरूप है।

§8. यद्यपि किसी निश्चित कार्यकुशलता वाले श्रम की अधिकाधिक मात्रा लगाने से प्रकृति से साधारणतया अनुपात से कम प्रतिफल मिलता है, इस पर भी कृषि एवं विनिर्माण दोनों में ही व्यक्ति का योगदान साधारणतया क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुरूप है (अर्थात् इसमें कर्मचारियों की संख्या के अनुपात की अपेक्षा कुल कुशलता में अधिक वृद्धि होती है)।[2] किन्तु इसके बावजूद भी बड़े पैमाने पर उत्पादन की विशायतें दोनों दशाओं में पूर्णरूप से समान नहीं हैं।

कृषि न तो स्थानीयकृत और न बहुत अधिक विशेषीकृत उद्योग है।

सर्वप्रथम कृषि विस्तृत भूमि के ऊपर फैली हुई होनी चाहिए। विनिर्माता के कार्य करने के लिए कच्चा माल लाया जा सकता है, किन्तु कृषक को अपना कार्य स्वयं ही ढूंढना पड़ता है। पुनः भूमि पर कार्य करने वाले मजदूरों के मौसम के अनुसार अपना कार्य समायोजित करना पड़ता है और वे कदाचित् ही अपने को पूर्णरूप से एक ही प्रकार के कार्य तक सीमित रख सकते हैं। परिणामस्वरूप आंग्ल प्रणाली के अन्तर्गत भी कृषि में विनिर्माण की प्रणालियों को तीव्रता से नहीं अपनाया जा सकता।

किन्तु ऐसी भी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं जिससे इसमें विनिर्माण की प्रणालियों को अपनाया जाय।

किन्तु इनके बावजूद पर्याप्त शक्तियाँ हैं जो इसे उस दिशा की ओर ले जाने के लिए प्रयत्नशील हैं। आविष्कार की प्रगति से उन उपयोगी किन्तु व्ययसाध्य मशीनों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जिनसे किसी छोटे किसान को अल्पकाल तक के लिए रोजगार मिल सकता है। वह उनमें से कुछ मशीनों को किराये पर ले सकता है, किन्तु ऐसी भी अनेक मशीनें हैं जिनका वह अपने पड़ोसियों के सहयोग से ही उपयोग कर सकता है, और व्यावहारिक रूप से मौसम की अनिश्चितताओं के कारण इस योजना के बहुत सरलतापूर्वक कार्यान्वित होने में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।[3]

---

1 प्रोथेरो (Prothero) की English Farming, अध्याय VI में परिवर्तनों के विरुद्ध लम्बे समय तक किये गये प्रतिरोध के कुछ दृष्टान्त मिलते हैं और उसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि इंगलैंड में यहाँ तक कि 1634 ई० में प्राचीन प्रणाली से खेती करने के विरुद्ध सरकार को एक अधिनियम पास करना पड़ा।

2 भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 5, 6 देखिए।

3 संसार के अधिकांश देशों की अपेक्षा इंगलैंड में वाष्पशक्ति तथा हस्तशक्ति के अनुपात में अश्वशक्ति अधिक महँगी है। इंगलैंड ने खेतों में कार्य करने वाली वाष्पचालित मशीनों के विकास में अगुवाई की है। अश्वशक्ति के सस्ते होने से साधारणतया बहुत छोटे-छोटे खेतों की अपेक्षा मध्यम क्षेत्रफल वाले खेतों को अधिक लाभ पहुँचा है, किन्तु वाष्पशक्ति तथा पेट्रोल इत्यादि से प्राप्त की जाने वाली "यंत्र" शक्ति बहुत बड़े खेतों के लिए तब तक लाभदायक होगी जब तक खेतों के उपयोग में लायी जाने वाली वाष्पचालित मशीनों को मितव्ययितापूर्वक किराये पर तथा सुविधानुसार प्राप्त न किया जा सके।

पुनः यदि किसान को तत्कालीन समय में होने वाले परिवर्तनों के साथ साथ अग्रसर होना है तो उसे अपने तथा अपने पिता के अनुभव से प्राप्त परिणामों से अवश्य आगे बढ़ना चाहिए। उसे कृषिविज्ञान तथा इसकी प्रणाली मे होने वाली गतिविधियों को समझना चाहिए जिससे वह उनके मुख्य व्यावहारिक प्रयोगों को अपने ही खेतों पर बहुत निकट से लागू कर सके। इन सभी चीजों को उचितरूप में करने के लिए प्रशिक्षित एवं सर्वतोमुखी प्रतिमा वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है, और जिस किसान को ये गुण प्राप्त हों वह सैकड़ों या यहाँ तक कि हजारो एकड भूमि के सामान्य प्रबन्ध का कार्य चला सकता है, और सूक्ष्म विषयों में अपने कर्मचारियों के कार्य की केवल निगरानी करना ही उसका उपयुक्त कार्य नही है। उसे जो कार्य करना चाहिए वह उतना ही कठिन है जितना कि एक बड़े विनिर्माता का, जो देख-रेख करने की साधारण चीजो में अपना समय व्यतीत नही करता और इसके लिए अपने मातहत कार्य करने वाले कर्मचारियों को सरलतापूर्वक नियुक्त कर सकता है। जो किसान इस उच्चतर श्रेणी के कार्य को कर सकता है वह तब तक अपने से कम स्तर के कार्य मे अपना समय बर्बाद करता है जब तक वह उत्तरदायित्व समझने वाले फोरमैन के नीचे कामगरों की अनेक टुकडियाँ नियुक्त नही करता। किन्तु ऐसे खेतों की संख्या अधिक नही है जहाँ ऐसा किया जाय और अतः वास्तविक रूप से योग्य व्यक्तियो को खेती के कार्य मे लगने के लिए बहुत कम प्रलोभन मिलता है। देश के सबसे अधिक उद्यमी तथा कुशल व्यक्ति साधारणतया कृषि के कार्य से दूर रह कर ऐसे व्यवसायों में जाने की कोशिश करते है जिनमे प्रथम श्रेणी की योग्यता वाले व्यक्तियों को बड़ी मात्रा में उच्च श्रेणी के कार्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही करना पड़ता। इस प्रकार वे प्रबन्ध के कार्य के लिए ऊँचा उपार्जन प्राप्त करते है।[1]

इसके लिए निरन्तर बढ़ते हुए ज्ञान की आवश्यकता होती है।

---

1 बड़े पैमाने पर फार्म (कृषिक्षेत्र) खोलना कठिन और खर्चीला कार्य है, क्योंकि इसके लिए फार्म पर इमारतें बनाने तथा विशेषरूप से उपयुक्त संचार के साधन प्रदान करने की आवश्यकता होती है। इसे प्रथा तथा मनोवेग से किये जाने वाले बड़े प्रतिरोध को जिसे बिलकुल ही अनुचित नहीं कहा जा सकता दूर करना पड़ता है। इसमें जोखिम भी बहुत अधिक है, क्योंकि इन विषयों में अगुवाई करने वाले लोगों को बहुधा असफलता मिलती है, भले ही उनके द्वारा अपनाया गया मार्ग बाद में चलकर अनेक लोगों के इसमें प्रवेश करने पर सबसे सरल तथा सबसे अच्छा प्रतीत होता है।

यदि कुछ गैरसरकारी लोग, या संयुक्त पूंजी कम्पनियाँ या सहकारी संघ कुछ ऐसे सावधानी से किये जाने वाले फार्म खोलें जिन्हें "फैक्टरी फार्म" कहा जाता है तो अनेक विवादास्पद विषयों के प्रति हमारे ज्ञान में बहुत वृद्धि हो जायेगी और इससे भविष्य के लिए महत्वपूर्ण मार्ग-निर्देशन प्राप्त हो सकता है। इस योजना के आधार पर इमारतें (जो एक से अधिक हो सकती है) मध्य में खड़ी हो जायेंगी जहाँ से सड़कें तथा छोटी ट्राम की पटरियाँ भी सभी दिशाओं में फैली हुई होंगी। इन इमारतों में फैक्टरी प्रबन्ध के मान्यता प्राप्त के सिद्धान्त लागू किये जायेंगे, विशेष प्रकार की मशीनों का

छोटे फार्मों में जहाँ किसान तथा उसकी पत्नी काम में कुछ हिस्सा बँटाते हैं, पायी जाने वाली किफायतें।

यदि आधुनिक प्रणाली के अनुसार यह मान लिया जाय कि किसान अपने कर्मचारियों के साथ आदतवश कार्य नहीं करता और वह अपनी उपस्थिति से उन्हें प्रोत्साहित नहीं करता तो उत्पादन की किफायत के लिए यह सबसे अच्छा प्रतीत होता है कि फार्म भू-पट्टी की आधुनिक दशाओं में व्यावहारिक रूप में जितने बड़े हो सकते हैं उतने बड़े हों। इससे विशेषीकृत कुशलता वाली मशीनों का प्रयोग करने तथा किसान को बड़ी योग्यता का परिचय देने का अवसर मिल सकता है। किन्तु यदि फार्म बहुत बड़ा न हो, और यदि जैसा कि बहुधा दिखायी देता है, किसान में विनिर्माण के कार्य में लगे हुए फोरमैनों के अपेक्षाकृत अच्छे वर्ग से अधिक योग्यता एवं बुद्धि न हो तो अन्य लोगों के लिए और दीर्घकाल में स्वयं उसके लिए यह सर्वोत्तम होगा कि वह अपने ही लोगों के बीच कार्य करने की पुरानी पद्धति अपनाये। सम्भवतः उसकी पत्नी भी अपने फार्म पर बने भवन या इसके निकट परम्परा द्वारा मिले हुए हल्के कार्यों को पुन करने लगे। उन कार्यों के लिए विवेक एवं निर्णयशक्ति की आवश्यकता होती है। वे कार्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रतिकूल नहीं है और इससे मिलती हुई बात यह है कि वे उसके जीवन के स्तर को तथा अच्छी सामाजिक स्थिति के विषय में उसके दावों को ऊँचा करेंगे न कि नीचा। इस बात का भी कुछ कारण रहा है कि स्वाभाविक चयन के सिद्धान्त के तीक्ष्ण प्रभाव के कारण वे किसान विस्थापित कर दिये गये हैं जो मस्तिष्क सम्बन्धी कठिन कार्य करने की प्रतिभा न होने पर भी शारीरिक कार्य करने से इन्कार करते हैं। इनके स्थान को औसत से अधिक प्राकृतिक वाले वे व्यक्ति ग्रहण कर रहे हैं जो आधुनिक शिक्षा की सहायता से श्रमिक वर्गों से ऊपर उठ रहे हैं। ये लोग आदर्श फार्म के नित्यप्रति के साधारण कार्य को करने में पर्याप्त रूप से योग्य हैं और वे खेतों में कार्य करने वाले लोगों के साथ स्वयं काम कर नये जीवन एवं भावना का संचार करते हैं। यदि बहुत बड़े फार्मों को दृष्टिकोण में न रखे तो यह कहा जा सकता है कि इन सिद्धान्तों के आधार पर चलाये जाने वाले छोटे फार्मों पर आगल कृषि का तुरन्त भविष्य निर्भर रहता है। जहाँ कहीं हर पौधे की इतनी देखरेख करनी पड़े कि मशीन प्रयोग करने का प्रश्न ही नहीं उठता वहाँ छोटी जोत में बहुत लाभ हैं। किन्तु वैज्ञानिक प्रणालियों के आधुनिक प्रयोगों से अनेक ऊँचे वेतन प्राप्त सहायकों द्वारा तैयार की गयी इच्छानुकूल फूलों एवं फलों की बड़ी नर्सरी में प्राप्त होने वाली तकनीकी कुशलता की किफायत का महत्व बढ़ रहा है।

छोटी जोतों का सकल स्थान उनके

§9. इसके पश्चात् हम यह विचार करेंगे कि भूस्वामी कहाँ तक अपने हित में भूमि की जोत में लोगों की वास्तविक जरूरतों के अनुसार समायोजन करेंगे। छोटी-छोटी जोतों में बहुधा बड़ी बड़ी जोतों की अपेक्षा क्षेत्रफल के अनुपात से इमारतों,

---

उपयोग किया जायेगा तथा उनमें मितव्ययिता की जायेगी, कच्ची सामग्री की बरबादी दूर की जायेगी, उपोत्पादों का उपयोग किया जायेगा, और सबसे कुशल तथा व्यावसायिक व्यक्तियों की नियुक्ति की जायेगी। किन्तु इसके उचित कार्य के लिए ही ऐसा किया जायेगा।

सड़कों, चहारदीवारी में अधिक लागत लगानी पड़ती है और भूस्वामी को इसके प्रबन्ध में अधिक कष्ट उठाना पड़ता है तथा आकस्मिक खर्चे भी अधिक करने पड़ते है। बड़े पैमाने पर कृषि करने वाला कोई किसान जिसके पास कुछ ही उपजाऊ भूमि है कम उपजाऊ मिट्टी से भी अच्छा उत्पादन प्राप्त कर लेता है, किन्तु छोटी छोटी जोतें उपजाऊ मिट्टी के अतिरिक्त साधारणतया और कहीं भी लाभदायक सिद्ध नहीं होती।[1] अतः इनका प्रति एकड़ सकल लगान बड़े फार्मों की अपेक्षा ऊँचा होना चाहिए। किन्तु यह तर्क दिया जाता है कि भूस्वामी विशेषकर भूमि मे वसीयत का बहुत ही अधिक दबाव पड़ने पर फार्म के उपविभाजन के खर्चे वहन करने के लिए तब तक अनिच्छुक रहते है जब तक उन्हें छोटी छोटी जोतों से लगान प्राप्त करना हितकर न प्रतीत हो क्योंकि इससे इनमे लगे परिव्यय पर होने वाले ऊँचे लाभ के अतिरिक्त उन्हे इतनी आय और भी होनी चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर इन जोतो को फिर से एक साथ मिलाया जा सके। छोटी छोटी जोतों को और विशेषकर केवल कुछ ही एकड़ वाली जोतों का लगान देश के अनेक भागो मे असाधारण रूप से अधिक है। कभी कभी भूस्वामी पक्षपात के कारण तथा विवादहीन अधिकार प्राप्त करने की इच्छा से उन लोगों को भूमि बेचने से या पट्टे पर देने से बिलकुल इनकार कर देता है जो सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक प्रश्नो मे उससे सहमत नही होते। यह निश्चित है कि इस प्रकार की बुराइयाँ सदैव कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रही है और इनका तीव्रता से लोप हो रहा है, किन्तु इनकी ओर अधिक आकर्षण का होना उचित ही है। क्योंकि हर क्षेत्र मे छोटे तथा बड़े दोनो प्रकार के जोतों के निजी रूप मे कृषि के लिए प्रदान करने तथा बड़े बड़े उद्यानों के लिए सार्वजनिक आवश्यकता होती है। इनकी साधारणतया उन छोटी छोटी जोतों के लिए भी आवश्यकता होती है जिनमे किसी अन्य पेशे में काम करने वाले लोग भी कृषि कर सकते हैं।[2]

क्षेत्रफल के अनुपात से ऊँचा होना चाहिए।

किन्तु इनका कभी-कभी दुर्लभता मूल्य होता है जो सार्वजनिक हित के प्रतिकूल है।

---

1 इस शब्द की आधुनिक दशाओं तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार अलग अलग व्याख्या की जा सकती है। किसी शहर या औद्योगिक क्षेत्र के निकट स्थायी चारागाह होने पर सम्भवतया छोटी जोत से लाभ सबसे अधिक और हानि सबसे कम होगी। कृषि योग्य छोटी छोटी जोतों के लिए भूमि हल्की होने की अपेक्षा ठोस होनी चाहिए, और यह जितनी ही उपजाऊ हो उतना ही अच्छा है, और उन जोतों के विषय में यह विशेषरूप से सत्य है जो इतने छोटे होते हैं कि इनमें फावड़े का प्रयोग करने की बड़ी आवश्यकता रहती है। छोटा किसान उन स्थानों में जहाँ भूमि पहाड़ी हो और टूटी हुई हो अपना लगान बड़ी आसानी से दे सकता है। क्योंकि वहाँ पास में मशीन न होने के कारण उसे बहुत थोड़ी ही क्षति उठानी पड़ती है।

2 इनसे उन लोगों की संख्या में वृद्धि होती है जो खुली हवा में बौद्धिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार के कार्य करते हैं: वे कृषि-मजदूरों की उन्नति करने में सहायक होते हैं, उन्हें अपनी महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के साधन ढूंढने के लिए कृषि छोड़कर

कृषकों के सम्मुख सम्पत्ति के विषय में कोई काल्पनिक बाधाएँ नहीं आनी चाहिए।

अन्त मे यद्यपि कृषकों द्वारा भूमि पर स्वामित्व प्राप्त कर लेना एक प्रणाली के रूप मे इग्लैंड की आर्थिक दशाओ, भूमि, जलवायु तथा लोगों के स्वभाव के लिए उपयुक्त नहीं है तथापि इग्लैंड मे कुछ स्वामी कृषक है जो भूमि के छोटे छोटे टुकड़े खरीद लेते है और यदि उन्हे जहाँ वे जो कुछ चाहते है वह प्राप्त हो जाय तो उनमे सन्तोषपूर्वक निवास करते हैं। उनका स्वभाव ऐसा होता है कि यदि उन्हें किसी को भी मालिक कहने की आवश्यकता न पडे तो कठोर परिश्रम करना और सादगी का जीवन व्यतीत करना बुरा नहीं समझते। वे शान्तिप्रिय हैं और उन्हे आवेश पसन्द नहीं है। उनका भूमि के प्रति लगाव निरन्तर बढ़ता जाता है। इन लोगो को भूमि के उन छोटे छोटे टुकडो मे जहाँ वे स्वय उपयुक्त फसलें उगा सकें अपनी बचत विनियोजित करने का समुचित अवसर मिलना चाहिए, और कम से कम भूमि के छोटे छोटे टुकडों के हस्तान्तरण मे लगने वाले वर्तमान कष्टदायक कानूनी आरोपों मे कमी हो जानी चाहिए।

कृषि में सहकारिता के विकास के बड़े अच्छे अवसर मलते हैं और यहाँ

कृषि मे सहकारिता के विकास तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन की किफायतों के साथ साथ छोटी सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले अनेक आनन्द एवं सामाजिक लाभ प्राप्त करने की सम्भावना दिखायी देती है। इसमें परस्पर विश्वास एवं भरोसा रखने की प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है और दुर्भाग्यवश सबसे बहादुर तथा साहसी और अतः सबसे अधिक विश्वसनीय ग्रामवासी सदैव शहरों की ओर चले जाते हैं और खेतिहर लोग शकालु होते हैं। किन्तु डेन्मार्क, इटली, जर्मनी तथा अन्त मे आयरलैण्ड ने एक ऐसे आन्दोलन मे अगुवाई की है जिससे डेरी उत्पादन, मक्खन तथा पनीर बनाने,

---

चले जाने से रोकते हैं और इस प्रकार खेतों में कार्य करने वाले योग्यतम एवं साहसी बालकों की निरन्तर शहरों की ओर चले जाने की महान बुराई को नियंत्रित करते हैं। वे जीवन की नीरसता को दूर करते हैं, आन्तरिक जीवन में अच्छा परिवर्तन लाते हैं, और आचरण की विविधता के लिए तथा व्यक्तिगत जीवन विन्यास में कल्पना एवं भावनाओं के लिए क्षेत्र प्रदान करते है। वे अपेक्षाकृत कुत्सित एवं निकृष्ट प्रकार के आनन्दों के प्रतिकूल आकर्षण प्रदान करते हैं। वे बहुधा किसी परिवार को जो कि अन्यथा अलग अलग हो जाता एक साथ बनाये रखते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में वे मजदूर की भौतिक दशा में पर्याप्त सुधार करते हैं, और वे उसके साधारण कार्य में अपरिहार्य रूप से होने वाले गतिरोध के कारण उत्पन्न झुंझलाहट तथा स्पष्टरूप में होने वाली हानि में भी कमी करते हैं। The Evidence before the Committee on small holdings (कमाण्ड पेपर 3278) में छोटे छोटे जोत वालों को भूमि के स्वामित्व होने वाले लाभ एवं हानियों का पूर्ण विवरण दिया गया है और इसमें स्वामित्व के विरुद्ध विचारों में संतुलन दिखायी देता है।

सन् 1904 में ग्रेट ब्रिटेन में 1, 11,000 जोत 1 से 5 एकड़ के बीच के, 2,32,000 जोत 5 तथा 50 एकड़ के बीच के, 1,50,00 जोत 50 से 300 जोत एकड़ के बीच के तथा 18,000 जोत 500 एकड़ से अधिक क्षेत्र के थे तत्संबं परिशिष्ट 2 देखिए।

किसानों की जरूरत की चीजें खरीदने तथा उनकी उपज को बेचने के कार्य में व्यवस्थित सहकारिता का भविष्य पूर्णरूप से उज्ज्वल दिखायी देता है और ब्रिटेन भी इनका अनुकरण कर रहा है। किन्तु इस आन्दोलन का क्षेत्र सीमित है किन्तु स्वयं खेतों पर किये जाने वाले कार्य में इस आन्दोलन का बहुत कम प्रभाव पड़ा है।

इसके विकास की सम्भवना भी है।

जहाँ सहकारिता से भू-पट्टे की सभी प्रणालियों में पाये जाने वाले लाभ प्राप्त किये जा सकते है वहाँ दूसरी ओर आयरलैंड में कृषक कुटीर (cotter) प्रणाली से इन सबमे पाये जाने वाले दोष ही मिलते हैं, किन्तु इसके सबसे बड़े दोष तथा उनके परिणाम लगभग लुप्त हो गये है और अब इस समस्या के आर्थिक तत्त्वों को राजनीतिक तत्त्वो ने आच्छादित कर दिया है। अत. हमे इस पर विचार न कर आगे बढ़ना चाहिए।[1]

§10. आयरलैंड मे भू-पट्टे की आंग्ल प्रणाली की असफलताओं के कारण इस प्रणाली मे निहित कठिनाइयाँ स्पष्ट हो गयी, किन्तु इंग्लैंड मे लोगों की व्यावहारिक आदतों एव उनके इस प्रकार के आचरण के अनुरूप होने के कारण ये बुराइयाँ प्रकाश मे नही आयी। इनमे से मुख्य कठिनाइयाँ इस तथ्य से उत्पन्न हुई हैं कि यद्यपि यह प्रणाली साररूप मे प्रतिस्पर्द्धात्मक है किन्तु कृषि की दशाएँ इंग्लैंड मे भी प्रतिस्पर्द्धा के पूर्ण प्रभाव मे रोड़ा अटकाती है। सर्वप्रथम उन तथ्यो के पता लगाने मे विशेष कठिनाइयाँ है जिन पर वह प्रभाव आधारित है।

भू-पट्टे की आंग्ल प्रणाली प्रतिस्पर्द्धात्मक है किन्तु कृषि में सरलता पूर्वक नहीं की जाती।

हम अभी अभी यह देख चुके है कि फार्म सम्बन्धी सही लेखा जोखा रखने मे कितनी कठिनाई होती है इस कठिनाई मे यह भी शामिल करना चाहिए कि किसी किसान को जिस लगान पर भूमि लेनी लाभप्रद है उससे सम्बन्धित गणनाओं मे सामान्य फसल तथा कीमतो के सामान्य स्तर को निश्चित करने की कठिनाई से और भी बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। क्योकि अच्छे तथा बुरे मौसम इतने अधिक चक्रवत

प्रसामान्य कीमतें तथा

---

1 इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आंग्ल विधायकों ने भू-पट्टे की आंग्ल प्रणाली को बलपूर्वक भारत तथा आयरलैंड में लागू कर जो त्रुटियां की हैं उनके लिए रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान के सिद्धान्त को प्रायः जितना दोषी ठहराया जाता है वह अधिकांश रूप में सत्य नहीं है। इस सिद्धान्त का केवल उन कारणों से अभिप्राय है जिनसे किसी समय भूमि से प्राप्त होने वाला उत्पादक अधिशेष निश्चित होता है, और जब इंग्लैंड के आंग्ल वासियों के उपयोग के लिए लिखे गये ग्रन्थ में इस अधिशेष को भूस्वामी का हिस्सा माना गया तो इससे कोई बड़ी हानि नहीं हुई। यह न्यायशास्त्र की, न कि अर्थशास्त्र की, भूल थी कि हमारे विधायकों ने बंगाल के कर वसूल करने वाले तथा आयरलैंड के भूस्वामी को कृषि व्यवसाय की सम्पूर्ण सम्पत्ति को स्वयं हड़पने का अवसर दिया, जब कि इसमें जहां तक आयरलैंड का प्रश्न है पट्टेदार तथा भू-स्वामी का भाग था और भारत में सरकार तथा अनेक श्रेणियों के पट्टेदारों का भाग निहित था, क्योंकि कर वसूल करने वाला अधिकांश दशाओं में इस व्यवसाय का वास्तविक सदस्य न होकर इसके अनेक सेवकों में से केवल एक सेवक था। किन्तु अब भारत तथा आयरलैंड दोनों देशों की सरकारें अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एवं न्यायोचित दृष्टिकोण अपना रही हैं।

फसल निश्चित करने में होने वाली कठिनाइयाँ।

आते हैं कि इनके विश्वसनीय औसत निकालने के लिए अनेक वर्षों के आँकड़ों की आवश्यकता होती है।[1] और इन अनेक वर्षों की अवधि में औद्योगिक वातावरण बहुत बदल सकता है। वस्तुओं की स्थानीय माँग, सुदूर बाजारों में उसकी अपनी वस्तुओं को बेचने की सुविधाएँ तथा सुदूर के प्रतिस्पर्धी व्यापारियों को उसके स्थानीय बाजारों में अपनी उत्पादित वस्तुओं की सुविधाएँ सभी चीजें बदल सकती हैं।

प्रसामान्य कृषि-कुशलता तथा उद्यम के स्तर में स्थानीय परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाई।

भूस्वामी को यह निश्चित करने में कि कितना लगान लेना चाहिए, एक तो उक्त कठिनाई का तथा दूसरे देश के विभिन्न भागों के किसानों की योग्यताओं के स्तर में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाई का सामना करना पड़ता है। किसी फार्म का उत्पादन अधिशेष या आंग्ल लगान इसके उत्पादन की कृषि के खर्चों से जिनमें किसान को प्राप्त होने वाला प्रसामान्य लाभ भी शामिल है, आधिक्य के बराबर है। यहाँ यह कल्पना की गयी है कि उस किसान की योग्यता तथा उद्यमशक्ति ऐसी है जिसे उस स्थान में उस श्रेणी के किसानों के लिए प्रसामान्य माना जा सकता है। हमारे सम्मुख अब यह कठिनाई है कि इन अन्तिम शब्दों की स्थूलरूप में व्याख्या करनी चाहिए या संकुचित रूप में।

यहाँ पर नैतिक तथा आर्थिक तत्त्व घनिष्ठरूप से अन्तर्ग्रथित हैं।

यह स्पष्ट है कि यदि किसी किसान की योग्यता अपने क्षेत्र की योग्यता के स्तर से कम हो जाय, यदि उसकी विशेषता केवल सौदा करने की पूर्ण कुशलता तक सीमित हो, यदि उसकी सकल उपज थोड़ी हो तथा अनुपात में उसकी निवल उपज और भी थोड़ी हो तो, इस दशा में भूस्वामी किसी ऐसे अपेक्षाकृत योग्य काश्तकार को भूमि सौंपते समय सभी के हित में कार्य करता है जो अधिक अच्छी मजदूरी दे, अधिक निवल उपज प्राप्त करे तथा कुछ अधिक लगान दे। दूसरी ओर यदि स्थानीय योग्यता एवं उद्यम का स्तर नीचा हो तो न तो नैतिक दृष्टिकोण से और न दीर्घकाल में भूस्वामी के व्यापारिक हितों की दृष्टि से यह स्पष्टतः उचित है कि भूस्वामी स्वयं उस मात्रा से अधिक लगान लेने की कोशिश करे जो उस स्तर तक पहुँचने वाले किसान द्वारा किया जा सकता है, भले ही वह किसी दूसरे क्षेत्र से जहाँ योग्यता एवं उद्यम का ऊँचा स्तर हो किसान बुलाकर उतनी मात्रा में लगान ले सकता है।[2]

---

1 History of Prices, खण्ड VI, परिशिष्ट III में टूक तथा न्यूमार्क से तुलना कीजिए।

2 इस प्रकार की कठिनाइयों को वस्तुतः उन पारस्परिक समझौतों से सुलझाया जाता है जो अनुभव से न्यायोचित समझे जाने लगे हैं, और जो "प्रसामान्य" शब्द की वैज्ञानिक व्याख्या के अनुरूप है। यदि कोई स्थानीय काश्तकार उत्पाद में असाधारण योग्यता का परिचय दे तो भूस्वामी काश्तकारी के लिए किसी अनुभवी को बुलाने की धमकी देकर उस मात्रा से अधिक लगान वसूल करने का प्रयत्न करेगा जिसे प्रसामान्य स्थानीय किसान दे सकता था। इसके विपरीत किसी फार्म के एक बार भी खाली पड़ा रहने पर यदि भूस्वामी किसी दूसरे क्षेत्र से एक अजनबी को लाये जो उस क्षेत्र के सम्मुख उत्पादन में अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करे, और साथ ही साथ भू-

इस प्रश्न से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित यह प्रश्न है कि काश्तकार को इस आश्वासन पर कि सफल हो जाने पर उसे अपने उद्यम पर प्रसामान्य लाभ के अतिरिक्त कुछ और भी रखने का अधिकार है, अपने जोखिम पर अपनी भूमि की प्राकृतिक क्षमताओं के विकास के लिए कितनी स्वतन्त्रता है? जहां तक छोटे-छोटे सुधारों का प्रश्न है इस कठिनाई को लम्बे समय तक पट्टे पर भूमि देकर दूर किया जा सकता है। स्काटलेंड को इनसे बड़ा लाभ पहुँचा है: किन्तु इनकी अपनी बुराइयाँ भी हैं। बहुधा यह देखा गया है कि "आंग्ल काश्तकार के पास सदैव पट्टे से मिलती जुलती कुछ न कुछ भूमि होती है भले ही उसके पास पट्टे के रूप में बिलकुल भी भूमि न हो:" और "पुनः पट्टे की पूर्णरूप से आंग्ल प्रणालियों में भी मेटायज प्रणाली के कुछ चिह्न मिलते है।" जब मौसम तथा बाजार काश्तकार के लिए अनुकूल हों तो वह अपना सम्पूर्ण लगान दे देता है और भूस्वामी से ऐसी माँग नहीं करता जिससे वह क्रुद्ध होकर लगान बढाने की बात सोचे। जब परिस्थितियाँ बहुत प्रतिकूल हों तो भूस्वामी आंशिक रूप से दया भाव के कारण और आंशिक रूप से व्यवसाय की दृष्टि से लगान की अस्थायी छूट दे देगा और स्वयं मरम्मत करने में लगने वाले उन खर्चों इत्यादि का भुगतान करेगा जिनका अन्यथा किसान को ही भुगतान करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रसामान्य लगान में किसी प्रकार का परिवर्तन हुए बिना भूस्वामी तथा पट्टेदार के बीच इस प्रकार का बहुत कुछ लेन देन होता रहता है।[1]

काश्तकार को सुधार करने तथा इनके फल प्राप्त करने की स्वतंत्रता।

काश्तकार तथा भूस्वामी के बीच की गुप्त पट्टादारी।

इंग्लैंड में इस प्रकार की प्रथा प्रचलित रही है कि यदि पट्टेदार भूमि में सुधार करे तो इसके लिए आंशिक रूप में मुआवजा मिलता है। हाल में ही कानून ने इसका स्थान ही नहीं लिया है अपितु इससे भी अधिक मुआवजा दिलाया है। पट्टेदार को वस्तुतः यह सुरक्षा मिली है कि स्वयं उसके द्वारा भूमि में किये गये युक्तिसंगत सुधारों के फलस्वरूप यदि उसे भूमि से अतिरिक्त उपज प्राप्त हो तो उसका लगान नहीं बढ़ाया जायेगा: और इस भूमि को छोड़ने पर वह नष्ट न हुए सुधारों के मूल्य के बदले मुआवजा माँग सकता है जिसे पंचनिर्णय द्वारा तय किया जाता है।[2]

स्वामी के साथ अपनी योग्यता एवं कुशलता के फलस्वरूप उत्पन्न उस अतिरिक्त निवल अधिशेष का बटवारा करे जिसे यद्यपि यथार्थ शब्दों में असाधारण नहीं कहा जा सकता किन्तु फिर भी जो स्थानीय स्तर से ऊँचा हो, तो भूस्वामी का उक्त कार्य युक्तिसंगत समझा जायेगा। इसी भाग में 615-16 पृष्ठों में दिये गये फुटनोट में शक्तिशाली एवं शक्तिहीन दोनों जातियों द्वारा जोती हुई समानरूप से अच्छी भूमि के विषय में भारत के बन्दोबस्त अधिकारियों के कार्य से तुलना कीजिए।

1 निकोल्सन की Tenants' Gain not Landlord's Loss, अध्याय 9 से तुलना कीजिए।

2 सन् 1883 ई० के कृषि जोत अधिनियम ने प्रथा को, जिसकी पुसे कमेटी ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी किन्तु जिसे कानून का रूप देने का सुझाव नहीं रखा था, कानून का रूप दिया। अनेक सुधार आंशिक रूप से भूस्वामी के खर्च पर और आंशिक रूप से पट्टेदार के खर्च पर किये गये और इनमें पूर्वोक्त व्यक्ति सामान तथा पश्चा-

खुले स्थानों में इमारतें बनाने में होने वाले व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक हितों में परस्पर विरोध।

अन्त में शहरों में खुले स्थानों से होने वाले *व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक हितों* के विषय में भी दो शब्द कह दें। वेकफील्ड तथा अमेरिकी अर्थशास्त्रियों ने हमें यह सिखलाया है कि किस प्रकार दूर दूर बसे हुए नये क्षेत्र में उपनिवेश के लिए हर नये व्यक्ति के आगमन से वह क्षेत्र धनी होता जाता है। इसके विपरीत घने बसे हुए क्षेत्र में हर नयी इमारत के खड़ी होने से या पुरानी इमारतों को ऊपर उठा देने से वह क्षेत्र निर्धन होता जाता है। वायु तथा प्रकाश के अभाव में सभी आयु के लोगों के लिए घर के बाहर शान्तिपूर्ण विश्राम तथा बच्चों के लिए स्वास्थ्यवर्द्धक खेल के अभाव में निरन्तर बड़े बड़े शहरों में जाकर बस जाने वाले इंग्लैंड के सर्वोत्तम लोगों की शक्तियाँ नष्ट हो गयी है। खाली पड़े हुए स्थानों में बिना सोच विचार के इमारतें खड़ी कर देने के कारण हम *व्यावसायिक दृष्टिकोण से बहुत* बड़ी भूल कर रहे हैं। थोड़ी सी भौतिक सम्पत्ति के लिए हम उन शक्तियों का विनाश कर रहे हैं जो सम्पूर्ण सम्पत्ति के उत्पादन के कारक हैं: हम उन लक्ष्यों का त्याग कर रहे हैं जिनकी प्राप्ति के लिए भौतिक सम्पत्ति केवल साधनमात्र है।[1]

दुक्त श्रम लगाता था। अन्य दशाओं में यही सर्वोत्तम समझा गया कि वास्तविक रूप में भूस्वामी को ही ये सभी सुधार करने चाहिए। उसे इनके सम्पूर्ण खर्च एवं जोखिम को स्वयं वहन करना चाहिए तथा इनसे प्राप्त होने वाले लाभ को स्वयं रखना चाहिए। सन् 1900 के अधिनियम में इस बात को मान्यता दे दी गयी, और आंशिक रूप से इसे कार्यान्वित करने की सरलता के कारण इसमें यह छूट रखी गयी कि कुछ सुधारों के लिए मुआवजा तभी दिया जा सकेगा जब कि ये भूस्वामी की सहमति से किये गये हों। जल-निष्कासन के सम्बन्ध में पट्टेदार की इच्छा की सूचना भूस्वामी को अवश्य दी जानी चाहिए जिससे कि उसे स्वयं इन जोखिमों को उठाने तथा फलस्वरूप प्राप्त होने वाले लाभ में हिस्सा बटाने का अवसर मिल सके। खाद डालने तथा कुछ प्रकार की मरम्मत, इत्यादि करने के प्रसंग में पट्टेदार भूस्वामी की सलाह लिये बिना केवल यह जोखिम ले सकता है कि उसके परिव्यय को पंचनिर्णय में मुआवजा *माँगने का कारण नहीं ठहराया जायेगा*।

सन् 1900 ई० के अधिनियम में पंच को ऐसा मुआवजा निर्धारित करना पड़ता था जिसमें "इसमें आने वाले नये पट्टेदार के लिए सुधार के मूल्य का पर्याप्तरूप से प्रतिनिधित्व हो सके" *और इसमें उस मूल्य के भाग को कम कर दिया जाता था* जिसे "भूमि की नैसर्गिक क्षमताओं" को जागृत कर प्राप्त किया जाता है। किन्तु सन् 1906 के अधिनियम में इस प्रकार की कटौती को रद्द कर दिया और जिन दशाओं में इस प्रकार की निष्क्रिय क्षमताएँ जागृत की जा चुकी हैं उनमें से कुछ में भूस्वामी की सहमति लिये जाने की व्यवस्था होने के कारण तथा अन्य में स्वयं उसे जोखिम लेने का अवसर प्रदान करने के कारण भूस्वामी के हितों को पर्याप्त रूप से रक्षित समझा गया।

1 इस विषय पर परिशिष्ट छ (G) में आगे विचार किया गया है।

अध्याय 11

वितरण पर सामान्य विचार

§1. अब पिछले दस अध्यायों मे दिये गयें तर्क का साराश दिया जाता है। इससे हमारे सम्मुख आयी हुई समस्या का पूर्ण हल नही निकल सकता : क्योंकि इसमें विदेशी व्यापार, साख तथा रोजगार के उतार-चढ़ाव तथा अनेको रूपो मे सम्मिलित एवं सामूहिक कार्य के प्रभावो से सम्बन्धित प्रश्न उठते है। किन्तु इस पर भी इसके अन्तर्गत उन सर्वाधिक आधारभूत एव स्थायी कारणो के व्यापक प्रभाव भी आ जाते हैं जो वितरण एव विनिमय को नियत्रित करते है।

ऐसा सामयिक सारांश जिससे भाग 5 अध्याय 15 में दिये गये विषय की अनुपूर्ति होती है तथा उस निरन्तरता के सूत्र का पता लगता है जो पहले बतलाये गये सूत्र की भांति सीधा न होकर तिरछा है।

भाग 5 के अन्त मे दिये गये साराश मे हमने उस निरन्तर विद्यमान सूत्र का पता लगाया जो विभिन्न समयो से माँग एव सम्भरण के साम्य के सामान्य सिद्धान्त के प्रयोगों से होकर आगे बढ़ता है तथा उन्हे सम्बद्ध करता है। इनमे से कुछ इतने अल्प समय से सम्बन्धित है कि उत्पादन की लागत का मूल्य पर कुछ भी प्रत्यक्ष प्रभाव नही पड़ता तथा कुछ इतने लम्बे समय से सम्बन्धित है कि उत्पादन के उपकरणो का सम्भरण उनकी उस अप्रत्यक्ष माँग के अनुसार भलीभाति समायोजित किया जा सकता है जो उनके द्वारा उत्पन्न वस्तुओ की प्रत्यक्ष माँग से व्युत्पन्न होती है। इस अध्याय मे हम निरन्तरता के ऐसे अन्य सूत्र पर विचार करेंगे जो विभिन्न समयो को जोड़ने वाले सूत्र की भाँति सीधा न होकर तिरछा है। यह भौतिक एव मानवीय उत्पादन के विभिन्न उपादानो एव उपकरणो को जोड़ता है, तथा उनमे बाह्य रूप मे महत्वपूर्ण अन्तर होने पर भी आधारभूत एकता स्थापित करता है।

भौतिक एवं निजी पूंजी की सामान्य सम्भरण कीमतों को निर्धारित करने वाले कारण सामान्य रूप से बहुत समान होते हैं।

सर्वप्रथम मजदूरी तथा श्रम से प्राप्त अन्य उपार्जन पूँजी के ब्याज से बहुत कुछ मिलते जुलते है। क्योकि भौतिक एव निजी पूँजी की सम्भरण कीमतो को नियंत्रित करने वाले कारणो मे सामान्य सम्पर्क रहता है। जिन प्रयोजनो से कोई व्यक्ति अपने लड़के की शिक्षा मे निजी पूंजी सचित करने के लिए प्रलोभित होता है वे उसके लड़के के लिए भौतिक पूँजी के सचय को नियत्रित करने वाले प्रयोजनो की भाँति है।

एक परिस्थिति मे कभी कभी पिता अपने लड़के के लिए समृद्ध तथा सुदृढ़ विनिर्माण या व्यावसायिक काम छोड़ने के लिए प्रयत्न एव प्रतीक्षा करते है, तथा दूसरी परिस्थिति मे वे बच्चो को पूर्ण चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करते समय सहायता पहुँचाने के लिए तथा अन्ततोगत्वा उनके लिए लाभप्रद व्यवसाय स्थापित करने के लिए प्रयत्न एव प्रतीक्षा करते है। तीसरी परिस्थिति मे पिता अपने बच्चो को अधिक समय तक विद्यालय मे रखने के लिए तथा उसके बाद किसी कुशल व्यवसाय सीखते समय कुछ समय तक बिना वेतन के काम कर सकने के लिए प्रयत्न एव प्रतीक्षा करते है जिससे उनके लड़को को स्वय अपने पालन-पोषण के लिए प्रारम्भ से ही कोई ऐसा पेशा करने के लिए बाध्य न होना पड़े जिसमे युवक बालकों को प्रारम्भ मे तुलनात्मक

रूप मे ऊँचा वेतन मिलता है क्योंकि इसमें भविष्य में प्रगति के अवसर नहीं दिखायी देते। ऊपर बतलायी गयी पहली से दूसरी और दूसरी से तीसरी परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

यद्यपि इनमें महत्वपूर्ण अन्तर है।

सामाजिक गठन को देखते हुए वास्तव में यह सत्य है कि माता-पिता ही केवल ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने बच्चों की योग्यता सम्बन्धी निजी पूँजी को विकसित करने के लिए बहुत कुछ विनियोजन करते हैं: और उनके बच्चों की अनेक प्रथम श्रेणी की योग्यताओं का इसलिए विकास नही हो पाता क्योंकि जो लोग उनका विकास कर सकते हैं उनमें से ऐसा करने की विशेष रुचि न थी। यह तथ्य व्यावहारिक रूप मे बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके प्रभाव संचयी होते हैं। किन्तु इससे उत्पादन के भौतिक एवं मानवीय उपादानों के बीच कोई आधारभूत अन्तर पैदा नही होता क्योंकि यह इस तथ्य के सदृश है कि बहुत कुछ अच्छी भूमि पर बुरे ढंग से खेती की जाती है क्योंकि जो लोग इसमे अच्छे ढंग से खेती कर सकते थे वे यहाँ तक पहुँच ही नही सकते।

पुन मानव के धीरे धीरे बढने और धीरे धीरे क्षीण होने तथा माता-पिताओं द्वारा अपने बच्चो के लिए किसी व्यवसाय के चयन करने मे प्रायः आगे सारी पीढ़ी की ओर दृष्टि रखने के कारण उत्पादन के विभिन्न प्रकार के भौतिक उपकरणों के सम्भरण की अपेक्षा मानवीय उपादानों के सम्भरण में माँग में परिवर्तनो के अनुसार पूर्ण परिवर्तनो के लिए अधिक समय लग जाता है, और श्रम के सम्बन्ध में माँग एवं सम्भरण के बीच सामान्य समायोजन करने वाली आर्थिक शक्तियों के पूर्ण प्रभाव के लिए तो विशेषकर लम्बे समय की आवश्यकता होती है। इस प्रकार सभी बातो पर ध्यान देते हुए मालिक के लिए किसी भी किस्म के श्रम की द्रव्यिक लागत उस श्रम की दीर्घकाल मे उत्पन्न करने की वास्तविक लागत के बहुत कुछ अनुरूप है।[1]

व्यवसायी लोग विभिन्न औद्योगिक वर्गों की सेवाओं को आँकते हैं और इस प्रकार प्रतिस्थापन सिद्धान्त को जो कि दीर्घकाल में

§2. एक ओर उत्पादन के मानवीय उपादानों की तथा दूसरी ओर भौतिक उपादानो की कुशलताओं को एक दूसरे के विपरीत मापा जाता है। तथा उनकी द्रव्यिक लागत से इसकी तुलना की जाती है। इनमे से प्रत्येक उपादान का किसी अन्य उपादान की अपेक्षा उसी सीमा तक उपयोग किया जाता है जहाँ तक इसके फलस्वरूप प्राप्त उत्पादन द्रव्यिक लागत के अनुपात मे अपेक्षाकृत अधिक हो। व्यावसायिक उद्यम का एक मुख्य कार्य प्रतिस्थापन के इस महान सिद्धान्त के स्वतन्त्र प्रभाव मे सुविधा प्रदान करना है। साधारणतया सार्वजनिक लाभ के लिए, किन्तु कभी कभी इसके विरुद्ध भी, व्यवसायी लोग निरन्तर मशीन तथा श्रम, पुनः अकुशल तथा कुशल श्रम, तथा अतिरिक्त फोरमैन एवं प्रबन्धकों की सेवाओ की तुलना करते हैं। वे निरन्तर उन नयी नयी व्यवस्थाओं का पता लगाते हैं तथा उन्हें अपनाते हैं जिनमे उत्पादन के विभिन्न

---

1 भाग 4. अध्याय 5, 6, 7 तथा 12 व भाग 6, अध्याय 4, 5 तथा 7 से तुलना कीजिए।

कारकों को उपयोग में लाया जाता है, और वे उन व्यवस्थाओं को अपनाते हैं जो उनके लिए सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध होती है।[1]

पूर्णरूप से लागू होता है, जन्म देते हैं।

प्रायः प्रत्येक श्रेणी के श्रम की लागत की तुलना में उसकी कुशलता को उत्पादन की एक या अधिक शाखाओं में किसी अन्य श्रेणियों के श्रम की लागत एवं कुशलता को ध्यान में रखकर निरन्तर मापा जाता है: तथा इनमे से प्रत्येक का बारी बारी से दूसरों की तुलना में मूल्यांकन किया जाता है। यह प्रतियोगिता प्राथमिक रूप में 'ऊर्ध्वाधर" होती है। यह उन विभिन्न ग्रेडों के लोगों के वर्गों के बीच रोजगार के लिए किया जाने वाला संघर्ष है जो उत्पादन की एक ही शाखा मे लगे हुए है और उससे बाहर जाने की बात नही सोचते। किन्तु इस बीच 'क्षितिजीय' प्रतियोगिता सदैव ही होती रहती है तथा इसका रूप अधिक सरल होता है: क्योकि एक तो प्रत्येक व्यवसाय के अन्दर अलग अलग कामों में युवक बड़े स्वच्छद रूप से आ-जा सकते हैं तथा दूसरे माता-पिता समीप में अपने कार्य को समान स्तर के किसी भी काम में साधारणतया अपने बच्चों को लगा सकते है। इस ऊर्ध्वाधर एवं क्षितिजीय प्रतियोगिता द्वारा विभिन्न ग्रेडों में काम करने वाले श्रम के बीच उनकी सेवाओं के लिए जो भुगतान किया जाता है उसमे बड़ा प्रभावोत्पादक तथा घनिष्ठ सतुलन पाया जाता है, यद्यपि आज भी किसी भी ग्रेड मे श्रमिको की भर्ती अधिकांशतया उसी ग्रेड मे काम करने वाले लोगो के बच्चों मे से की जाती है।[2]

इस प्रकार प्रतिस्थापन सिद्धान्त मुख्यतया अप्रत्यक्ष रूप मे लागू होता है। जब तरल पदार्थ में भरी हुई दो टंकियों को नल द्वारा जोड़ा जाता है तो अधिक ऊँचे स्तर वाले तरल पदार्थ की टकी से नल के पास का तरल पदार्थ लसलसेदार होने पर भी बहकर दूसरी टंकी में चला जायेगा। इस प्रकार एक टंकी के अगले छोर से दूसरी टंकी के अगले छोर को कोई भी तरल पदार्थ न बहने पर भी टकियो के सामान्य स्तर समान हो जायेंगे। यदि असंख्य टंकियाँ नलो द्वारा जोड़ दी जायें तो उन सब मे विद्यमान तरल पदार्थ का स्तर एक सा होने लगेगा, यद्यपि कुछ टंकियो का अन्य टकियो के साथ कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। इसी प्रकार प्रतिस्थापन सिद्धान्त परोक्ष मार्गो द्वारा व्यवसायो मे, तथा यहाँ तक कि उन विभिन्न ग्रेडो मे, कुशलता के अनुसार आय को बाँटने की ओर निरन्तर प्रवृत्त हो रहा है, जो एक दूसरे के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे नही हैं तथा जो प्रथम दृष्टि मे एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करते हुए नही दिखायी देते।

किन्तु जहां तक व्यावसायिक व्यक्तियों

§3. जब हम अकुशल श्रमिक से कुशल श्रमिक, उसके बाद फोरमैन, विभागाध्यक्ष, आंशिक रूप मे लाभ का कुछ अंश पाने वाले किसी बड़े व्यवसाय के सामान्य प्रबन्धक, उसके और साझेदार, तथा अन्त मे किसी बड़े निजी व्यवसाय के प्रधान साझेदार के विषय मे विचार करते है तो निरन्तरता भंग नही होती: और किसी सयुक्त

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 3, तथा भाग 6, अध्याय 7, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

2 भाग 4, अध्याय 6, अनुभाग 7, तथा भाग 6, अध्याय 5, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

के एकमात्र साधन है।

राष्ट्रीय लाभांश जो कि सभी उपादानों का संयुक्त उत्पाद है तथा जिसमें से प्रत्येक की मात्रा के बढ़ने के साथ वृद्धि होती है, प्रत्येक उपादान की माँग का भी एकमात्र साधन है।

पूंजी में वृद्धि से श्रम के रोजगार का क्षेत्र किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।

इस प्रकार भौतिक पूंजी में वृद्धि से इसे नये उपयोगों में लगाया जाता है, और यद्यपि ऐसा करने मे इससे कुछ व्यवसायों मे शारीरिक श्रम के रोजगार का क्षेत्र यदा-कदा घट सकता है तब भी कुल मिलाकर इससे शारीरिक श्रम की तथा उत्पादन के सभी अन्य उपादानों की माँग बहुत अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि इससे राष्ट्रीय लाभांश मे जो सभी के लिए माँग का आम साधन है, अधिक वृद्धि होगी और चूँकि रोजगार के लिए इसकी प्रतियोगिता बढ़ जाने के कारण ब्याज की दर कम हो जायेगी अतः श्रमिक को पूंजी एवं श्रम की किसी मात्रा को लगाने से प्राप्त होने वाला संयुक्त उत्पाद का पहले की अपेक्षा अधिक भाग प्राप्त होगा।

श्रम के लिए इस नयी माँग के कारण आंशिक रूप में कुछ नये उपक्रम खुलेंगे जो कि अब तक आत्मनिर्भर न हो सके थे, और नयी तथा अधिक खर्चीली मशीनों के निर्माताओं द्वारा नयी माँग की जायेगी। क्योंकि जब यह कहा जाता है कि मशीन का श्रम के स्थान पर प्रतिस्थापन किया गया है तो इसका अभिप्राय यह होता है कि अधिक प्रतीक्षा वाले एक श्रेणी के श्रम की कम प्रतीक्षा वाले श्रम से प्रतिस्थापना की गयी है: और केवल इसी कारण सामान्यरूप में श्रम के स्थान पर पूंजी की प्रतिस्थापना करना तब तक असम्भव होगा जब तक कि अन्य स्थानों से पूंजी का स्थानीय रूप मे आयात न किया जाय।

यदि किसी वर्ग के श्रमिक अधिक कुशल हो जायें तो उनकी मजदूरी बढ़ जाती है तथा मजदूरी की अन्य दरें भी बढ़ जाती हैं यदि इनकी संख्या अधिक हो जाय तो इनकी ?। मजदूरी घटने लगती है जबकि मजदूरी की

कुछ भी हो यह बात फिर भी सत्य है कि पूंजी की मात्रा मे वृद्धि होने से श्रम को जो मुख्य लाभ प्राप्त होता है वह इसके लिए रोजगार के नये क्षेत्र प्राप्त होने से नहीं मिलता, अपितु भूमि, श्रम तथा पूंजी (या भूमि श्रम तथा प्रतीक्षा) के संयुक्त उत्पाद को बढाने से तथा उस उत्पाद के अंश को कम करने से मिलता है जो पूंजी या (प्रतीक्षा) की निश्चित मात्रा का पुरस्कार हो सकता है।

§5. किसी भी एक औद्योगिक समूह के कार्य की मात्रा में होने वाले परिवर्तन का अन्य प्रकार के श्रम के रोजगार के क्षेत्र मे पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन करते समय इस प्रश्न को उठाने की कोई आवश्यकता न थी कि कार्य मे वृद्धि उस समूह के लोगों की संख्या मे वृद्धि के कारण हुई या उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि के कारण हुई: क्योंकि उस प्रश्न का अन्य प्रश्नो के साथ कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। दोनों दशाओं मे राष्ट्रीय लाभांश मे बराबर ही वृद्धि होती है दोनो दशाओं मे प्रतिस्पर्द्धा से वे ऐसे उपयोगो में अपने को लगाने के लिए बराबर ही बाध्य होंगे जिनमे उनका सीमान्त तुष्टिगुण कम है, तथा इस प्रकार संयुक्त उत्पाद के उस भाग मे उतनी ही कमी हो जायेगी जितनी कि वे किसी खास प्रकार के कार्य की किसी खास मात्रा को प्राप्त करने का दावा करते हैं।

किन्तु यह प्रश्न उस समूह के सदस्यों के लिए बड़े महत्व का है, क्योंकि यदि उनकी कार्यकुशलता में एक दसवे भाग के बराबर परिवर्तन हो तो उनमे से हर दस लोगों को प्राप्त होने वाली कुल आय उतनी ही ऊँची होगी जितनी कि उनकी कुशलता

के न बदलने पर उनकी संख्या में एक दसवें भाग के बराबर वृद्धि होने से हर ग्यारह लोगों की होगी।[1]

अन्य दरें बढ़ती हैं।

प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी की अन्य वर्गों की सख्या एवं कार्यकुशलता पर निर्भरता इस सामान्य नियम का एक विशेषरूप है कि वातावरण (या संयोग) का उस निवल उत्पाद को निर्धनित करने मे वैसा ही हाथ रहता है जैसा कि मनुष्य की शक्ति एवं योग्यता का और प्रतिस्पर्द्धा के प्रभाव के कारण निरन्तर उसकी मजदूरी इस निवल उत्पाद के निकट पहुँचने की कोशिश करती है।

वातावरण के मजदूरी पर पड़ने वाले इस तथा अन्य प्रभावों का भी सामान्य कार्य-कुशलता वाले श्रमिक के निवल उत्पाद को नियंत्रित करने में हाथ रहता है और सामान्य मजदूरी इस निवल उत्पाद के लगभग बराबर होती है।

श्रमिकों को किसी वर्ग की मजदूरी जिस निवल उत्पाद के निकट होती है उसका, इस कल्पना पर अनुमान लगाना चाहिए कि उत्पादन को उस सीमा तक बढ़ाया गया है जिस पर इसे ठीक सामान्य लाभ पर न कि इससे अधिक लाभ पर, बाजार में बेचा जा सकता है, तथा इसकी सामान्य कार्यकुशलता वाले उस श्रमिक के प्रसंग मे गणना करनी चाहिए जिसके अतिरिक्त उत्पादन से सामान्य योग्यता एवं सामान्य सौभाग्य तथा सामान्य साधनों वाले मालिक की केवल सामान्य लाभ पर न कि उससे अधिक पर लागत वसूल हो जाती है। (सामान्य श्रमिक की कार्यकुशलता की अधिक अपेक्षा या कार्यकुशलता श्रमिक की सामान्य मजदूरी का पता लगाने के लिए इस निवल उत्पाद मे अवश्य ही कुछ वृद्धि या कमी की जानी चाहिए) इसके लिए जो समय चुना जाय वह ऐसा हो कि उसमे सामान्य समृद्धि रहे, तथा विभिन्न प्रकार के श्रम की सापेक्षिक रूप से समुचित मात्रा मे पूर्ति हो सके। दृष्टान्त के लिए यदि इमारत बनाने का व्यवसाय असाधारण रूप से मद पड गया हो या असाधारण रूप से समृद्धि पर हो, या इमारत बनाने के अन्य श्रेणियो के कारीगर बहुत बड़ी मात्रा मे मिलते हों, तथा राजो अथवा बढइयो की समुचित मात्रा मे पूर्ति न होने पर यदि इसका विकास अवरुद्ध हो जाय तो यह ऐसा अवसर होगा जब राजों और बढइयों की सामान्य मजदूरी मे निवल उत्पाद के सम्बन्धो का अनुमान लगाना सुविधापूर्ण होगा।[2]

---

1 उदाहरण के लिए मान लें कि उस समूह के कार्य की मात्रा में एक-दसवें भाग के बराबर वृद्धि होने से उन्हें उन कार्यों को करने के लिए बाध्य होना पड़ता है जिनमें उनका सीमान्त कार्य निम्नतर हों, और इस प्रकार किसी निश्चित कार्य में उनकी तीसवें अंश के बराबर मजदूरी घट जाती है तो उनकी संख्या में वृद्धि के कारण होने वाले परिवर्तन से उनकी औसत मजदूरी में तीसवें भाग के बराबर कमी होगी। किन्तु यदि यह परिवर्तन उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होने के कारण हुआ है तो उनकी मजदूरी में सोलहवें भाग के बराबर वृद्धि होगी। (अधिक यथार्थरूप में उनकी मजदूरी पहले की अपेक्षा $\frac{11}{10} \times \frac{29}{30} = 1\frac{19}{300}$ हो जायेगी)।

2 श्रम की मजदूरी तथा सामान्य निवल उत्पाद के बीच सम्बन्ध के लिए भाग 6, अध्याय 1, तथा 2 और विशेष कर पृष्ठ 499-502 तथा 185–38 देखिए। इस विषय पर भाग 6, अध्याय 13 विशेषकर पृष्ठ 678 के फुटनोट में और आगे विवेचन किया गया है। यह वास्तविक प्रतिनिधि सीमान्त का पता लगाने के लिए भाग 5, अध्याय

8, अनुभाग 4, 5 देखिए: जहाँ (पृष्ठ 399 के फुटनोट में) यह तर्क दिया गया है कि उस सीमान्त के पहुँचने पर किसी भी वर्ग के श्रमिकों की पूर्ति का अन्य वर्गों की मजदूरी पर जो प्रभाव पड़ता है उसका पहले से ही अंकन किया गया है: और किसी भी व्यक्तिगत श्रमिक का किसी देश के उद्योगों के सामान्य आर्थिक वातावरण पर जो प्रभाव पड़ता है वह नाममात्र का है और उसकी मजदूरी के सम्बन्ध में उसके निवल उत्पाद का अनुमान लगाने के लिए प्रभाव को ध्यान में रखना आवश्यक नहीं है। भाग 5, अध्याय 12 तथा परिशिष्ट ज (H) में उत्पाद में इस प्रकार की उत्पादन में तीव्र वृद्धि के मार्ग में आने वाली बाधाओं के विषय में चाहे इसमें सैद्धान्तिक रूप में बड़ी किफायतें क्यों न हों, कुछ विचार किया गया है तथा उनके सम्बन्ध में 'सीमान्त' शब्द के प्रयोग करने में आवश्यक विशेष सावधानी बरतने के विषय में भी कुछ कहा गया है।

अध्याय 12

आर्थिक प्रगति के सामान्य प्रभाव

§1. किसी स्थान मे श्रम एवं पूँजी के नियोजन के लिए जो क्षेत्र सुलभ होता है वह एक तो वहाँ के प्राकृतिक साधनों पर दूसरा ज्ञान तथा सामाजिक एवं औद्योगिक संठगन की प्रगति से इनका सदुपयोग करने की शक्ति पर और तीसरा उसकी उन बाजारों तक पहुँच पर निर्भर रहता है जिनमें उनकी अपनी आवश्यकता से अधिक चीजें बेची जा सकती है। इस अन्तिम दशा के महत्व को बहुधा कम आंका जाता है, किन्तु जब हम नये देशों के इतिहास को देखें तो यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

नये देशों में जहाँ पुराने संसार के बाजारों तक अच्छी पहुँच नहीं होती वहाँ पूंजी एवं श्रम के नियोजन का क्षेत्र सदैव प्रचुर नहीं रहता।

आमतौर पर यह कहा जाता है कि जहाँ बिना लगान दिये प्रचुर मात्रा मे अच्छी भूमि उपलब्ध हो तथा जलवायु अस्वास्थ्यकर न हो वहाँ श्रम का वास्तविक उपार्जन तथा पूँजी पर ब्याज दोनों ही ऊँचे होगें। किन्तु यह केवल आंशिक रूप में ही सत्य है। अमेरिका के आदिम उपनिवेशी बहुत कठिनाई से रहे। प्रकृति से उन्हें लकड़ी तथा मांस प्रायः मुफ्त मिल जाते थे: किन्तु उन्हें जीवन के आराम एवं विलासिता की बहुत थोड़ी ही चीजें सुलभ थी। आज भी विशेषकर दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका मे अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ प्रकृति प्रचुररूप से उदार है किन्तु इसके बावजूद वहाँ कोई भी श्रम एवं पूंजी नही लगाना चाहता, क्योकि वहाँ शेष संसार के साथ आवागमन के कोई भी सहज साधन उपलब्ध नही हैं। दूसरी ओर खारी मरुभूमि के बीच किसी खनन क्षेत्र मे बाह्य संसार के साथ एक बार सचार की व्यवस्था स्थापित हो जाने पर या किसी उपजाऊ समुद्री तट पर बसे हुए व्यापारिक केन्द्र मे श्रम पूँजी के प्रयोग से ऊँचा पारितोषिक मिल सकता है। यदि उन्हें अपने ही साधनों तक सीमित रहना पड़े तो वे केवल थोड़ी ही जनसख्या का पालन-पोषण कर सकेंगे और वह भी अत्यन्त गरीबी की दशा मे। जब से वाष्प गमनागमन का विकास हुआ है, नये ससार की निर्मित वस्तुओं के लिए पुराने संसार में बहुत अच्छे बाजारों के मिलने से उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका एव दक्षिणी अमेरिका के कुछ भागो मे श्रम एव पूँजी के नियोजन के लिए इतना अच्छा क्षेत्र मिला है जितना शायद ही कभी मिला हो।

पुराने देशों में किसी नये देश की भावी आय को बन्धक में रखने के

किन्तु कुछ भी हो नये देशों की वर्तमान समृद्धि का मूल्य कारण पुराने संसार मे मिलने वाले ऐसे बाजार है जहाँ चीजें तत्काल नही बेची जाती किन्तु उन्हें किसी सुदूर तिथि में देने के वायदे किये जाते हैं। चन्द उपनिवेशी उपजाऊ भूमि के विशाल क्षेत्रो पर सम्पत्ति के स्थायी अधिकार मान लेने के बाद अपनी ही पीढ़ी मे उससे मिलने वाला भावी फल प्राप्त करना चाहते है, और प्रत्यक्षरूप मे ऐसा नही कर सकने के कारण वे पुराने संसार मे निर्मित तैयार माल के बदले में भावी पीढ़ी मे अपनी भूमि मे उगायी जाने वाली वस्तुओ को कही अधिक मात्रा मे देने का वायदा कर अप्रत्यक्ष

लिए अच्छा बाजार मिलता है तथा परिणामस्वरूप पश्चादुक्त में पूंजी के समागम से दैनिक मजदूरी बहुत अधिक हो जाती है। किन्तु श्रम के कार्यकुशल होने के कारण वह महँगा नहीं होता।

रूप से ऐसा करते है। वे किसी न किसी रूप मे बहुत ही ऊँचे ब्याज की दर पर पुराने ससार के पास अपनी नयी सम्पत्ति बन्धक मे रखते है। जिन अंग्रेज तथा अन्य लोगो ने अपने वर्तमान आनन्द के साधन सचित कर लिये है वे इन साधनों को अपने देश की अपेक्षा भविष्य मे अधिक आय प्राप्त करने की आशा से शीघ्र ही नये देशो मे लगाने के लिए दे देते है: उस नये देश मे पूँजी का एक विशाल प्रवाह प्रवाहित होने लगता है, और वहाँ इसके फलस्वरूप मजदूरी की दर बहुत ऊँची हो जाती है। इस नयी पूँजी का सुदूरवर्ती क्षेत्रो मे भी धीरे धीरे विनियोजन होने लगता है इसका वहाँ इतना प्रभाव है, तथा वहाँ इसे लेने के लिए इतने लोग इच्छुक रहते है कि बहुधा इसके लिए बहुत लम्बे समय तक प्रतिमाह दो प्रतिशत ब्याज मिलता है जो बाद मे धीरे धीरे घट कर प्रतिवर्ष छ या सम्भवत पांच प्रतिशत ही रह जाता है। क्योकि अधिवासी पूर्ण रूप से उद्यमी होने तथा कुछ ही समय बाद बड़ी मूल्यवान होने वाली उस सम्पत्ति पर निजी अधिकार-पत्र पाने की सम्भावना से, स्वतंत्र उपक्रामी बनने, और यदि हो सके तो अन्य लोगो का मालिक बनने के लिए उत्सुक रहते थे। अत मजदूरो को ऊँची मजदूरी द्वारा आकर्षित करना पड़ता था और इस मजदूरी का भुगतान अधिकाश रूप से पुराने ससार से बधक पर, या किसी अन्य प्रकार से उधार ली गयी वस्तुओ के रूप मे किया जाता था।

कुछ भी हो यह ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन है कि नये देशों के सुदूरवर्ती भागो मे मजदूरी की वास्तविक दर क्या रही है। यहाँ के श्रमिक ऐसे चुने हुए लोग होते थे जिनका साहसिक कार्य के लिए स्वाभाविक झुकाव था जो कठोर, दृढ तथा उद्यमी थे, जो पूर्ण युवावस्था मे थे और जिनके बीमार होने की कोई सम्भावना न थी। उन लोगो पर जो अलग अलग प्रकार के काम का भार पड़ता था वह औसत अंग्रेज श्रमिक की सहनशक्ति से अधिक और यूरोप के औसत श्रमिक की सहनशक्ति से कही अधिक था। उनमे कोई भी निर्धन नही थ, क्योकि उनमे कोई भी ऐसा नही होता था जो दुर्बल हो। यदि कभी कोई व्यक्ति रोगग्रस्त हुआ तो उसे किसी अधिक घने बसे हुए स्थान मे आराम करने के लिए बाध्य किया जाता था जहाँ आय अर्जित करने के अवसर यद्यपि कम थे किन्तु वहाँ शान्ति अधिक थी और थकान कम। उनके उपार्जन को यदि द्रव्य के रूप मे आका जाय तो यह बहुत अधिक होगा किन्तु उन्हे आराम तथा विलास की उन अनेक वस्तुओं को बहुत ऊँची कीमतो पर खरीदना पड़ता था या उन्हें बिलकुल ही त्यागना पड़ता था जो अधिक स्थिर स्थानो मे रहने पर मुफ्त मे या कम कीमत पर प्राप्त हो सकती थी। इनमे से अनेक चीजे तो केवल कृत्रिम आवश्यकताओ की पूर्ति करती थी, और उनके इन स्थानों मे उपयोग करने की कोई भी आवश्यकता न थी विशेषकर जब ये चीजे न तो किसी के पास थी और न उनके प्राप्त होने की आशा ही थी।

समय के व्यतीत होने के साथ साथ

जनसंख्या के बढने के साथ, अच्छी स्थिति वाली जगहो पर पहले से ही अधिकार हो जाने के कारण, प्रकृति से कृषकों के सीमान्त प्रयत्नो के बदले मे कच्चे माल के रूप मे साधारणतया कम प्रतिफल मिलता है, और इसके फलस्वरूप मजदूरी कुछ

घटने लगती है। किन्तु कृषि में भी क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के साथ क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम का निरन्तर संघर्ष होता है, और भूमि के अनेक टुकड़े जिन पर सर्वप्रथम अधिकार करने का प्रयत्न नहीं किया गया था उनमे सक्रिय रूप से कृषि करने का पर्याप्त रूप से अच्छा प्रतिफल मिलने लगा। इसी बीच सड़कों तथा रेलमार्गों के विकास तथा विभिन्न प्रकार के बाजारों एवं विभिन्न प्रकार के उद्योगों के पनप जाने से उत्पादन में असंख्य किफायतें सम्भव हो गयी। इस प्रकार क्रमागत उत्पत्ति ह्रास तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्तियाँ पूर्णरूप से सतुलित पायी जाने लगी। यद्यपि कभी एक और कभी दूसरा अधिक प्रभावशाली दिखायी देता था।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति के बड़ी दृढ़ता से लागू न होने पर भी पूंजी का समागम सापेक्षिक रूप में अधिक मन्द पड़ जाता है तथा मजदूरी गिरने लगती हैं।

यदि श्रम एवं पूँजी में समान दरों से वृद्धि हो और यदि इन दोनों का उपयोग करने से उत्पादन में क्रमागत उत्पत्ति समता का नियम लागू हो तो श्रम एवं पूंजी की किसी मात्रा अर्थात् पहले की भाँति बराबर अनुपात में एक साथ उपयोग में लाये जाने वाले श्रम एवं पूँजी के बीच विभाजित किये जाने वाले पुरस्कार में कोई भी परिवर्तन न होगा। अतः मजदूरी या ब्याज में किसी परिवर्तन का होना आवश्यक नहीं।

यदि किसी प्रकार पूंजी में श्रम की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से वृद्धि हो तो ब्याज की दर सम्भवतया गिर जायेगी और इसके फलस्वरूप मजदूरी की दर सम्भवतया बढ़ जायेगी किन्तु यह पूँजी के लिए प्राप्त होने वाले हिस्से में किसी निश्चित मात्रा में कमी होने पर ही सम्भव होगा। इस पर भी पूँजी के कुल हिस्से में श्रम के कुल हिस्से की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि होगी।[1]

---

1 दृष्टान्त के लिए यह मान लीजिए कि पूंजी की मात्रा क, तथा श्रम की मात्रा ल से 4 प के बराबर उत्पादन किया जाता है, जिसमें से पूंजी के ब्याज के रूप में प मात्रा देनी पड़ती है और श्रम के लिए 3 प शेष बचता है। (प्रबन्ध को शामिल करते हुए श्रमिकों को उनके ग्रेडो में विभाजित किया जा सकता है किन्तु इन सबको किसी निश्चित कार्यकुशलता वाले एक दिन के अकुशल श्रम के साधारण मानक के रूप में निरूपित किया जाता है: पीछे भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 8 देखिए)। अब यह मान लीजिए की श्रम की मात्रा दुगुनी तथा पूंजी की मात्रा चौगुनी हो गयी है: और उत्पादन के प्रत्यक उपकरण की किसी मात्रा की निरपेक्ष कुशलता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। तब हम 2 ल की सहायता से 4 क से 2×3 प+4 प=10 प का उत्पादन करने की आशा कर सकते हैं। अब यह कल्पना कीजिए कि ब्याज की दर, अर्थात् पूंजी की किसी भी मात्रा का पुरस्कार (जिसमें प्रबन्ध इत्यादि के कार्य को अलग रखा जाए) अपनी मूल मात्रा के दो-तिहाई के बराबर हो गया हो, जिससे 4 क को 4 प के स्थान पर केवल $\frac{8}{3}$ प मिले, तब सभी किस्म के श्रम के लिए 6 प के स्थान पर $7\frac{1}{3}$ प शेष बचेगा। पूंजी की प्रत्येक मात्रा के लिए मिलने वाली राशि कम हो जायेगी, और श्रम की प्रत्येक मात्रा के लिए मिलने वाली राशि बढ़ जायेगी। किन्तु पूंजी के लिए दी जाने वाली कुल राशि में 8:3 के अनुपात में वृद्धि होगी। जब कि श्रमिक को मिलने वाली राशि में 22:9 के अनुपात में जो कि अपेक्षाकृत कम है, वृद्धि होगी।

किन्तु वस्तुओं के उत्पादन में चाहे क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू हो या न हो, भूमि पर नये अधिकारपत्र प्राप्त करने में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तेजी से लागू होता है। विदेशी पूंजी का समागत पहले के बराबर होने पर भी जनसंख्या के अनुपात में कम हो जाता है। अब पुराने संसार से उधार ली गयी वस्तुओं में से मजदूरी का कभी भी अधिक मात्रा में भुगतान नहीं किया जाता: और यही मुख्य कारण है जिसके फलस्वरूप बाद में किसी निश्चित कार्यकुशलता द्वारा जीवन का आवश्यक आराम तथा विलासिता की आवश्यकताएँ कम होने लगती हैं। किन्तु दो अन्य कारणों से द्रव्य के रूप में मापी जाने वाली औसत दैनिक मजदूरी कम होने लगती है। सभ्यता की आराम तथा विश्राम की आवश्यकता में वृद्धि होने पर आदिवासियों की अपेक्षा कम हृष्ट-पुष्ट प्रवासी नागरिकों के समागम से श्रम की औसत कार्यकुशलता साधारणतया कम हो जाती है: और आराम एवं विलासिता की अनेक नयी चीजें प्रत्यक्षरूप में द्रव्यिक मजदूरी के अंग नहीं हैं किन्तु ये इसके अतिरिक्त प्राप्त होती हैं।[1]

इंग्लैंड की आधुनिक औद्योगिक समस्याएँ अट्ठारहवीं शताब्दी की समस्याओं के ही विकसित रूप हैं।

§2. इंग्लैंड की वर्तमान आर्थिक दशा बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की प्रवृत्तियों का तथा बहुत समय से धीरे धीरे पनपते हुए उन थोक व्यापारों का प्रत्यक्ष फल है जो श्रम एवं वस्तुओं के रूप में किये जाते हैं, किन्तु जिन्हें अट्ठारहवीं शताब्दी में यान्त्रिक आविष्कारों से तथा समुद्र पार उन उपभोक्ताओं में वृद्धि के कारण प्रोत्साहन मिला है जो एक ही ढंग की बनी हुई वस्तुओं का बहुत बड़ी मात्रा में आयात किया करते थे। इसके पश्चात् मशीनों से बने हुए परस्पर बदले जा सकने वाले पुर्जों तथा उद्योग की हर एक शाखा में विशेष प्रकार की मशीनों के उपयोग के लिए सर्वप्रथम विशेष प्रकार की मशीनें बनायी गयीं। उस समय किसी विनिर्माण वाले देशों में वहाँ उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ था तथा बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी लगायी गयी थी। विशेषकर जब पूंजी के विशाल भण्डार की संयुक्त पूंजी या विनियमित कम्पनियों या आधुनिक

ऐसे विषयों में ब्याज को विलग करना सर्वोत्तम होगा किन्तु ऐसा करने के लिए यह उत्तम होता है कि हम ब्याज के स्थान पर पूंजी के विषय पर कुछ विचार करते तथा पूंजीपतियों के हिस्से (न कि पूंजी के हिस्से) तथा मजदूर के हिस्से में विपर्यय दिखाते।

1 हमने इन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय कि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति से क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति निष्क्रिय हो जायेगी ध्यान में रखा था: और वास्तविक मजदूरों में परिवर्तनों का पता लगाते समय हमें अवश्य ही उन्हें उनके सम्पूर्ण मूल्य पर आँकना चाहिए। अनेक इतिहासकारों ने अलग अलग युगों में मजदूरी की केवल उन वस्तुओं के प्रसंग में तुलना की है जिनका सदैव ही साधारणतया उपभोग होता रहा है किन्तु इस विषय में यह पता लगता है कि ये ही वे चीजें हैं जिनमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, तथा जो जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ दुर्लभ होती जाती है। अतः इस प्रकार अपनाया गया दृष्टिकोण एकतरफा है तथा इसका सामान्य प्रभाव भ्रमात्मक है।

न्यासों (Trusts) में संयुक्त रूप से लगाया गया था। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम को सर्वप्रथम लागू होते देखा गया। इसके पश्चात् सुदूर बाजारों में बिक्री के लिए वस्तुओं को सतर्कतापूर्वक अलग अलग ग्रेडों में रखने का कार्य आरम्भ हुआ जिससे उत्पादन-बाजारों तथा स्टाक-एक्सचेंजों में राष्ट्रीय एवं यहां तक कि अन्तर्राष्ट्रीय सट्टे से सम्बन्धित संघों की स्थापना हुई। और उत्पादकों के बीच चाहे वे उद्योगपति हों या श्रमिक, अधिक समय तक बने रहने वाले संघों की भांति इनसे भी भविष्य में आगामी पीढ़ी को अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

आधुनिक आन्दोलन के महत्व की मुख्य बातें ।

आधुनिक आन्दोलन के महत्व की मुख्य बातें ये हैं कि अनेक प्रकार के कार्यों को घटाकर एक ही प्रकार के कार्य में परिणत किया जाय, और प्रत्येक प्रकार के संघर्ष को जिससे शक्तिशाली एजेंसियाँ अपने कार्य को सगठित करती हैं तथा अपने प्रभाव को विस्तृत क्षेत्रों तक फैलाती हैं, कम किया जाय तथा नयी प्रणालियों एवं नयी शक्तियों द्वारा यातायात का विकास किया जाये। अट्ठारहवीं शताब्दी की मेकडमिट्री की सड़कों तथा विकसित नौपरिवहन के कारण स्थानीय गुटों एवं एकाधिकारों का विनाश हो गया। और इनसे दूर दूर तक फैले हुए अन्य गुटों एवं एकाधिकारों के विकास के लिए सुविधाएँ मिलीं' हमारे युग में भी मुद्रणालय, तार तथा टेलीफोन जैसे संचार के साधनों के भूमि तथा समुद्र के ऊपर और अधिक फैलने तथा उनकी लागत के कम होने के फलस्वरूप यही द्वैध प्रवृत्ति दिखायी दे रही है।

अट्ठारहवीं शताब्दी में विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय लाभांश के मुख्यतया उस भाग पर प्रभाव पड़ा जिसमें आराम तथा विलास की चीजें शामिल थीं।

§3. यद्यपि आज की भाँति अट्ठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड का वास्तविक राष्ट्रीय लाभांश उसके निर्यात की चीजों में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के प्रभाव पर बहुत निर्भर था, किन्तु इस निर्भरता का स्वरूप अब बहुत अधिक बदल चुका है। तब विनिर्माण की नयी प्रणालियों में इंग्लैंड को लगभग एकाधिकार मिलता जा रहा था और उसके माल में से प्रत्येक गाँठ की बिक्री के बदले में उनका सम्भरण कृत्रिम रूप से सीमित होने पर सदैव विदेशों से अत्यधिक मात्रा में उपज मिला करती थी। किन्तु आंशिक रूप से इस कारणवश कि स्थूल आकार की वस्तुओं को अधिक दूर तक ले जाना सम्भव न था, सुदूर-पूर्व तथा सुदूर-पश्चिम से आने वाले उसके आयात में मुख्यतया धनाढ्य लोगों के आराम तथा विलास की वस्तुएँ ही शामिल थीं। उनका आंग्ल कामगरों की श्रम के रूप में आवश्यक वस्तुओं की लागत घटाने में बहुत प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था। वहाँ के नये व्यापार से वास्तव में लौहपात्रों, वस्त्र तथा उसके उपभोग के अन्य आंग्ल विनिर्माण की चीजों की लागत अप्रत्यक्ष रूप में कम हो गयी क्योंकि इनका समुद्र पार स्थित उपभोक्ताओं के लिए बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से ये उनके लिए भी सस्ती हो गयी। किन्तु इनका उसके भोजन की लागत पर बहुत कम प्रभाव पड़ा, किन्तु यह लागत उस समय बढ़ने लगी जब विनिर्माण वाले क्षेत्रों में जहाँ संकुचित ग्रामीण जीवन के परम्परागत नियंत्रण नहीं लागू होते, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति लागू होने लगी। कुछ ही समय बाद फ्रान्स के महायुद्ध तथा लगातार बुरी फसलों के होने से यह लागत इस चरम सीमा तक पहुँच गयी कि शायद ही कभी यूरोप में इतनी ऊँची रही हो।

किन्तु अब इस के फलस्वरूप इंग्लैंड के पास अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की बहुत अधिक शक्ति है।

किन्तु धीरे धीरे विदेशी व्यापार का हमारे मुख्य भोजन की उत्पादन लागत पर प्रभाव पड़ने लगा। अमेरिका की जनसंख्या जैसे ही अटलांटिक से पश्चिम की ओर फैली अधिक अच्छी तथा उसमें भी अधिक अच्छा गेहूँ उगाने वाली भूमि में भी खेती की जाने लगी। यातायात की क्रियायें विशेषकर पिछले कुछ वर्षों में इतनी बढ़ गयी है कि कृषि क्षेत्रों के निकट स्थित फार्मों से एक क्वार्टर (आठ बुशल) गेहूँ मंगाने की कुल लागत तेज़ी से घट गयी है। यद्यपि इसमें दूरी बढ़ती जा रही है। इस प्रकार इंग्लैंड को अधिकाधिक प्रकृष्ट खेती करने की आवश्यकता न रही। वीरान पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ रिकार्डो के समय ढालों पर बड़े परिश्रम से गेहूँ की खेती की जाती थी वे अब चरागाह बन गये है, और हलवाहा अब केवल वहीं काम करता है जहाँ भूमि से उसके श्रम के बदले में प्रचुर प्रतिफल मिलता है: यदि इंग्लैंड को अपने ही समाधनों तक सीमित रहना पड़ता है तो उसे घटिया से घटिया भूमि में भी बड़े परिश्रम के साथ खेती करने के लिए अग्रसर होना पड़ेगा, तथा पहले से अच्छी जुती हुई भूमि प्रतिएकड़ एक या दो बुशल बढ़ाने की आशा से बार बार जुताई करनी पड़ती। इस समय किसी औसत वर्ष में ही 'कृषि के सीमान्त पर' की जाने वाली जोत से यद्यपि पैदावार केवल लागत के बराबर ही होती है किन्तु फिर भी यह पैदावार रिकार्डो के समय की सीमान्त उपज से दुगुनी होगी और इंग्लैंड द्वारा अपनी वर्तमान जनसंख्या के लिए सारा भोजन स्वयं उत्पन्न करने पर जो सीमान्त उपज प्राप्त की जायेगी उसकी पूरी पाँच गुनी होगी।

विनिर्माण में हाल ही में हुए सुधारों से इंग्लैंड को उतना लाभ नहीं हुआ जितना कि प्रथम दृष्टि में प्रतीत होता है।

§4 विनिर्माण की कलाओं में होने वाले प्रत्येक सुधार से इंग्लैंड की पिछड़े हुए देशों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति बढ़ गयी जिससे इसने उन्हें अपने उपयोग की चीज़े स्वयं हाथ से बनाने की अपेक्षा कच्चे माल का उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया। जिसे देकर वे यहाँ से (इंग्लैंड से) अपनी जरूरत की चीजें खरीद सकते थे। इस प्रकार आविष्कार के विकास से उसके विशेष उत्पाद की बिक्री का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया और वह स्वयं भोजन के उत्पादन को केवल उन दशाओं तक सीमित रखने में सफल रही जिन में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम अधिक मात्रा में लागू नहीं होता था। किन्तु यह स्थिति कुछ ही समय तक रही। उसके द्वारा किये गये सुधारों का अमेरिका, जर्मनी तथा अन्य देशों ने अनुकरण किया और वे बाद में यहाँ तक कि इसमें आगे बढ़ गये. इसके फलस्वरूप उसके विशेष उत्पादों का लगभग सारा एकाधिकार मूल्य नष्ट हो गया। इस प्रकार अमेरिका में एक टन इस्पात से खरीदी जाने वाली भोजन एवं अन्य कच्चे माल की मात्राएँ नयी प्रक्रियाओं से एक टन इस्पात बनाने में लगने वाली पूँजी एवं श्रम के उत्पादन से अधिक नहीं हो सकती, और इसलिए आंग्ल तथा अमेरिकी श्रम की इस्पात बनाने में श्रम की कार्यकुशलता जितनी ही बढ़ी है इससे खरीदी जाने वाली मात्राएँ उतनी ही घट गयी हैं। इस कारण तथा अनेक देशों द्वारा उसके माल पर भारी टैरिफ लगाने से इंग्लैंड का व्यापार बड़े पैमाने पर होने पर भी, विनिर्माण की कलाओं में आविष्कार की प्रगति के फलस्वरूप इसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी कि उसके वास्तविक राष्ट्रीय लाभांश में अन्यथा प्रत्याशित थी।

यह कोई कम लाभ नहीं कि वह स्वयं अपने उपयोग के लिए वस्त्र तथा फर्नीचर एवं अन्य वस्तुएँ सस्ते दामों पर बना सकती है: किन्तु विनिर्माण की कलाओं में अन्य देशों की भाँति वहाँ भी जो सुधार हुए हैं उनसे अपनी श्रम एवं पूँजी द्वारा बनायी गयी चीजों के बदले में अन्य देशों से प्राप्त कच्चे माल में प्रत्यक्ष रूप में वृद्धि नहीं हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी में विनिर्माण की उन्नति के फलस्वरूप प्राप्त कुल लाभ का तीन-चौथाई भाग से भी अधिक तो सम्भवतया इसके उन अप्रत्यक्ष प्रभावों के कारण मिला जिनके फलस्वरूप व्यक्तियों तथा माल की, जल तथा प्रकाश की, विद्युत तथा समाचारों की परिवहन लागत घट गयी है: क्योंकि हमारे अपने युग का प्रमुख आर्थिक तथ्य विनिर्माण का विकास न होकर परिवहन उद्योगों का विकास है। इन्हीं उद्योगों के कुल पैमाने में तथा इनमें प्रत्येक की शक्ति में सर्वाधिक तीव्रता से वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप विशाल सम्पत्ति द्वारा आर्थिक स्वतन्त्रता की शक्तियों से उस स्वतन्त्रता का विनाश करने की प्रवृत्तियों के बारे मे सबसे अधिक जिज्ञासापूर्ण प्रश्न उठ रहे हैं: किन्तु दूसरी ओर इन्होंने भी इंग्लैंड की सम्पत्ति की वृद्धि मे सबसे अधिक योगदान दिया है।

सामान्य श्रम मूल्यों पर प्रगति के कुछ प्रभाव: सर्वप्रथम सभ्य जीवन पर मुख्य चीजों जैसे अन्न, मांस, निवास, कक्ष, ईंधन, वस्त्र, जल, प्रकाश, समाचार एवं भ्रमण के प्रभाव।

§5. इस प्रकार नये आर्थिक युग में श्रम के सापेक्षिक मूल्यों तथा जीवन की मुख्य जरूरतों में बड़े परिवर्तन हुए हैं, तथा इन परिवर्तनों में से अनेक तो ऐसे है जिनकी पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में प्रत्याशा भी नही की जा सकती थी। उस समय अमेरिका के जिस भाग का पता था वह गेहूँ उगाने के लिए अनुपयुक्त था, और थल से होकर बहुत दूर तक इसे ले जाने की लागत भी निषेधात्मक थी। गेहूँ का श्रम मूल्य—अर्थात् गेहूँ के एक पेक (दो गेलन का माप) को खरीदने मे लगने वाला श्रम—तब अधिकतम था, और अब न्यूनतम है। ऐसा लगता है कि प्रतिदिन की कृषि मजदूरी साधारणतया गेहूँ के एक पेक से भी कम थी, किन्तु अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह लगभग एक पेक के बराबर थी, पन्द्रहवी शताब्दी में डेढ़ पेक के बराबर था उससे भी कुछ अधिक थी, और यह अब दो या तीन पेक के बराबर है। प्रो० रोजर द्वारा लगाये गये मध्य युगों से सम्बन्धित अनुमान उच्चतर दिशा मे हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि उन्होंने जनसंख्या के अधिक समृद्धि भाग को प्राप्त होने वाली मजदूरी को सम्पूर्ण जनसंख्या को प्राप्त होने वाली मजदूरी का प्रतीक समझा। मध्य युगों मे पर्याप्त रूप से अच्छी फसल के बाद भी आजकल के साधारण गेहूँ की किस्म से अधिक घटिया किस्म का गेहूँ होता था, और बुरी फसल के बाद इसका अधिकांश भाग इतना स्वादहीन होता था कि उसे आजकल तो खाया ही नही जायेगा, और उस गेहूँ से डबल रोटी बनाने के लिए जागीर के मिल मालिक को ऊँचा एकाधिकार प्रभार देना पड़ता था।

यह सत्य है कि जहाँ जनसंख्या बहुत बिखरी हुई है, वहाँ प्रकृति से घास और पशुओं का चारा प्रायः निःशुल्क प्राप्त होता है। दक्षिणी अमेरिका मे भिखारी लोग घोड़ों की पीठ पर बैठ कर अपना व्यवसाय चलाते हैं। मध्य युगों मे इंग्लैंड की जनसंख्या सदैव ही पर्याप्त रूप से घनी थी जिससे मांस का श्रम मूल्य उल्लेखनीय रहा, यद्यपि

मांस घटिया किस्म का था क्योंकि पशुओं का आजकल की अपेक्षा केवल पांचवें भाग के बराबर वजन होने पर भी आकार बहुत विशाल था: उनका मांस मुख्यतया उन भागों में रहता है जहाँ स्थूलतम जोड होते हैं। वे जाडों मे लगभग भूखे रहते थे और ग्रीष्म ऋतु में उगने वाली घास से शीघ्र ही भोजन प्राप्त करते थे, अतः उनके मांस मे जल का प्रतिशत बहुत अधिक रहता था। और वजन का अधिकांश भाग पकने में कम हो जाता था। ग्रीष्म ऋतु के अन्त में इन्हें मारा जाता था और उनके मांस में नमक लगा दिया जाता था और उस समय नमक महँगा था। यहाँ तक कि समृद्ध लोग भी शायद ही जाडों में ताजे मांस का रसास्वादन कर पाते थे। एक शताब्दी पूर्व श्रमिक वर्गों द्वारा बहुत कम मांस खाया जाता था जब कि अब इसका पहले से कुछ अधिक कीमत पर भी औसत रूप में इंग्लैण्ड के इतिहास के किसी अन्य समय की अपेक्षा सम्भवतया अधिक उपभोग करते हैं।

इसके पश्चात् निवास-कक्ष के किराये पर विचार करते समय हम देखेंगे कि शहर मे इमारती भूमि का किराया बढ गया है। चाहे भूमि के अलग-अलग टुकडों पर इमारते बनायी गयी हों या एक ही इमारत पर कई मंजिल खडी की गयी हों। क्योंकि जनसंख्या उन मकानों मे अधिकाधिक मात्रा मे रहने लगी है जिनमे भूमि के लिए शहरों के स्तर पर लगान देना पड़ता है, तथा यह स्तर बढ़ता जा रहा है। किन्तु मकान के वास्तविक किराये अर्थात् भूमि के पूर्ण लगान मूल्य को कुछ लगान मे से घटाने के पश्चात् बची हुई राशि सम्भवतया समान स्थान के लिए पहले कभी दिये जाने वाले किराये की अपेक्षा अधिक होने पर भी कुछ ही अधिक होगी क्योंकि भवन-निर्माण में लगी पूंजी से अर्जित आवर्त पर लाभ की दर अब नीची है, और भवन-निर्माण की सामग्री की श्रम लागत मे अधिक परिवर्तन नही हुए हैं। यह ध्यान रहे कि जो लोग ऊँची दर पर शहरो मे लगान देते हैं वे बदले मे आनन्द तथा आधुनिक शहरी जीवन की अन्य सुविधाएँ प्राप्त करते है जिन्हें अधिकाश लोग उनके कुल लगान से कहीं अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए नही चाहेंगे। लकडी का श्रम मूल्य शताब्दी के प्रारम्भ की अपेक्षा अब कम होने पर भी मध्य युगों की अपेक्षा अधिक है: किन्तु मिट्टी, ईंट या पत्थर की दीवारों का श्रम-मूल्य अधिक नही बदला है, जब कि लोहे का श्रम-मूल्य बहुत घट गया है और शीशे का तो और भी अधिक घट गया है।

वास्तव मे हमारे पूर्वजो के रहन-सहन के ढंग की अपूर्ण जानकारी के कारण यह विश्वास प्रचलित है कि मकान के वास्तविक लगान मे वृद्धि हुई है। आधुनिक उपपौर दस्तकार की कुटीर मे मध्य युगों के भद्रपुरुषों के निवास-स्थान की अपेक्षा सोने के लिए कही अधिक अच्छा स्थान रहता है, और पुराने समय मे श्रमिक वर्गों की शय्याएँ ढीले भूसे की होती थी जिनमें दुष्ट कीट दुर्गन्ध छोडा करते थे, और जो नमीयुक्त मिट्टी के फर्श मे बिछी होती थीं। सम्भवतया ये कुटीर अनाच्छादित रहने पर तथा मनुष्यों द्वारा साथ-साथ वास किये जाने पर भी उतने अस्वास्थ्यकर नही थे जितने की वे कुटीर थे जिन्हें सम्मान की दृष्टि मे सरपत से ढक दिया जाता था, जो प्रायः सदैव लम्बे समय से संचित कूड़ा-करकट पड़ा होने के कारण बहुत बुरी दशा

में थे : किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि अब हमारे शहरों में सर्वाधिक गरीब वर्गों के निवासस्थान शरीर एवं आत्मा दोनों के लिए ही क्षतिकारक है और हमारे वर्तमान ज्ञान एवं साधनों को दृष्टि में रखते हुए इन्हें इसी दशा में रखने का न तो कोई कारण है और न कोई बहाना ही दिखायी देता है।[1]

बिखरी हुई जनसख्या के लिए घास की भाँति ईंधन भी बहुधा प्रकृति की मुक्त देन है, और मध्य युगों मे कुटीर वासी सदैव न भी, तो अधिकाशतया अपने को गर्म रखने के लिए झाड़ियों की लकड़ी जलाकर कुछ आग प्राप्त करते थे और वे झोपड़ियों मे जहाँ इस गर्म वायु के बाहर निकल जाने के लिए रोशनदान नहीं थे, इस आग के चारों ओर सट कर बैठ जाते थे। किन्तु जैसे-जैसे जनसख्या बढ़ती गयी ईंधन के अभाव का श्रमिक वर्गों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और यदि घरेलू उपयोगों के लिए तथा लोहा गलाने के लिए लकड़ी के स्थान पर कोयले का प्रयोग होना आरम्भ नहीं होता तो इंग्लैंड की सारी प्रगति अवरुद्ध हो जाती। अब यह इतना सस्ता मिलता है कि तुलनात्मक रूप से निर्धन लोग भी अपने कमरों के अन्दर बिना स्वास्थ्यकर एवं अचेत बनाने वाले वातावरण में रहे अपने को गर्म रख सकते हैं।

कोयले द्वारा आधुनिक सभ्यता के लिए की गयी महान सेवाओं में से यह एक सेवा है। दूसरी सेवा अन्दर पहनने के लिए सस्ते कपड़े प्रदान करना है जिनके बिना ठंडी जलवायु वाले क्षेत्रों में लोगों के लिए स्वच्छता रखना असम्भव हो जायगा: और यह शायद इंग्लैंड को अपने उपयोग के लिए वस्तुएँ तैयार करने मे मशीनों का प्रत्यक्षरूप से प्रयोग करने से मिलने वाला मुख्य लाभ है। एक और सेवा, जो किसी भी भाँति कम महत्वपूर्ण नहीं है, नगरों में, यहाँ तक कि विशाल नगरों में, प्रचुर मात्रा में जल प्रदान करना है।[2] एक अन्य सेवा खनिज तेल की सहायता से ऐसी सस्ती तथा कृत्रिम रोशनी प्रदान करना है जो मनुष्य के कुछ ही कार्यों के लिए उपयोगी नहीं अपितु जो उसके सध्याकालीन अवकाश के सदुपयोग के लिए भी अधिक महत्व की है। सभ्य जीवन के लिए जिन आवश्यक चीजों को एक ओर कोयले से तथा दूसरी ओर यातायात के आधुनिक साधनों से प्राप्त किया जाता है उनमें जैसा कि अभी

---

1 विगत काल की बुराइयाँ जितनी आमतौर पर सोची जाती हैं उनसे अधिक थीं। उदाहरण के लिए स्वर्गीय लार्ड शैफ्टसबरी (Shaftesbury) तथा कुमारी आक्टाविआ हिल (Octavia Hill) द्वारा सन् 1885 के आवास पर नियुक्त आयोग (Commission on Housing) पर दिये गये ज्वलंत प्रमाण देखिए। लंदन की वायु में धुआँ भरा रहता है किन्तु यह सम्भवतया उतनी अस्वास्थ्यकर है जितनी कि वैज्ञानिक स्वच्छता के समय के पूर्व थी, भले ही तब जनसंख्या अपेक्षाकृत कम थी।

2 आदिकालीन उपकरणों से कुछ ही सार्वजनिक फव्वारों में ऊँचे स्थान से पानी लाया जा सकता है: किन्तु सर्वत्र विद्यमान जल की पूर्ति जो अपने मार्ग में स्वच्छता एवं सफाई के लिए आवश्यक सेवाएँ प्रदान करती है वह कोयले से चलने वाले वाष्प पम्पों तथा कोयले से बने लोहे के नलों के बिना असम्भव होगी।

अभी देखा गया है वाष्प मुद्रणालयों, वाष्प की सहायता से ले जाये गये पत्रों तथा भ्रमण के लिए वाष्प-निर्मित सुविधाओं से समाचार एवं विचारों के सस्ते एवं पूर्ण संचार के साधन सम्मिलित किये जाने चाहिए। ये एजेंसियां बिजली की सहायता से उन देशों मे लोगों की सभ्यता को सम्भव बना रही हैं जहां की जलवायु इतनी गर्म नहीं कि शक्तिहीन बना दे। ये सम्पूर्ण लोगो द्वारा न केवल एथेंस, फ्लोरेंस या ब्रजेज नाम के किसी शहर के वास्तविक स्वायत्त शासन तथा सामूहिक कार्य के लिए मार्ग तैयार कर रही हैं अपितु एक विशाल देश के लिए, तथा कुछ दशाओं मे सम्पूर्ण सभ्य संसार के लिए भी मार्ग तैयार कर रही है।[1]

प्रगति के उत्पादन के मुख्य उपादानों के मूल्यों पर प्रभाव।

§6. हम देख चुके हैं कि राष्ट्रीय लाभांश देश के भीतर उत्पादन के सभी उपादानों का ही कुल निवल उत्पाद है, और उन्हें किये जाने वाले भुगतान का एकमात्र साधन है, यह जितना ही अधिक होता है, अन्य बातो के समान रहने पर, उत्पादन के प्रत्येक उपादान का हिस्सा उतना ही अधिक होगा, और किसी भी उपादान के सम्भरण मे वृद्धि से इसकी कीमत साधारणतया घट जायगी जिससे अन्य उपादानों को लाभ होगा।

इससे कभी-कभी इंग्लैंड की कृषि-भूमि का मूल्य घट गया है किन्तु कृषि एवं शहरी दोनों प्रकार की भूमि को मिलाकर इसका मूल्य कम नहीं है।

यह साधारण सिद्धान्त भूमि पर विशेषरूप से लागू होता है। किसी बाजार के सम्भरण करने वाली भूमि की उत्पादकता मे सर्वप्रथम जो वृद्धि होती है उससे उन पूँजीपतियो एवं श्रमिको को लाभ होता है जिन्हें उस बाजार के उत्पादन के अन्य उपादानों पर अधिकार प्राप्त होता है। आधुनिक युग मे यातायात के नये साधनों द्वारा मूल्यों पर पड़ने वाला प्रभाव कहीं भी इतना अधिक विशिष्ट नही होता जितना कि भूमि के इतिहास में दृष्टिगोचर होता है। उन बाजारों के बीच जहाँ इसकी उपज की बिक्री की जा सके, सचार की सुविधाओं में वृद्धि होने के साथ-साथ इसका मूल्य इतना बढ़ता जाता है और सुदूर स्थानो से इन बाजारो तक विक्रय की वस्तुएँ आ सकने के कारण इसका मूल्य गिरने लगता है। यह अधिक पुरानी बात नही है जब इंग्लैंड के समीप की काउंटियों को यह डर लगा हुआ था कि अच्छी सड़कों के तैयार हो जाने से इंग्लैंड के अधिक दूर के भाग लन्दन को खाद्य सामग्री भेजने में प्रतिस्पर्द्धा करने लगेंगे। अब इंग्लैंड के फार्मों के अवकलन लाभ कुछ बातों मे भारत तथा अमेरिका के रेल मार्गों से तथा इस्पात के बने तथा वाष्प टरबाइन से चलने वाले जहाजों से मँगाये गये भोजन द्वारा कम हो गये हैं।

किन्तु माल्थस ने यह दलील दी थी तथा रिकार्डो ने भी यही स्वीकार किया था कि जिस चीज से लोगो की समृद्धि बढ़ती है उससे दीर्घकाल मे उस भूमि के मालिको की समृद्धि भी बढ़ती है। यह सत्य है कि पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में जब लगातार फसलो के खराब होने से एसे देश को जो अपने भोजन का आयात नहीं कर सका बड़ा आघात पहुँचा, इंग्लैंड के लगानो मे बड़ी तीव्रता से वृद्धि हुई, किन्तु इस प्रकार हुई वृद्धि, जैसा कि ऐसी दशा मे होना स्वाभाविक था, बहुत अधिक नहीं बढ़ी। शताब्दी के मध्य मे अनाज के विषय में स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली अपनाने से और इसके बाद

1 परिशिष्ट क, विशेषकर अनुभाग 6 देखिए।

अमरिका के गहूँ उगाने वाले क्षेत्रों का विस्तार होने से कुल ग्रामीण एवं शहरी भूमि का वास्तविक मूल्य तीव्रतापूर्वक बढ़ता गया। अर्थात् इसके फलस्वरूप ग्रामीण एवं शहरी भूमि के मालिकों के कुल लगान द्वारा खरीदी जा सकने वाली जीवन की आवश्यक, आराम तथा विलास की आवश्यकताओं की मात्रा मे वृद्धि हुई।[1]

§7. किन्तु यद्यपि औद्योगिक वातावरण के विकास से कुल मिलाकर भूमि का मूल्य ऊँचा होने लगता है, इससे प्रायः मशीन तथा अन्य प्रकार की अचल पूँजी का मूल्य उस समय घट जाता है जब उनके मूल्य को स्थूल मूल्य से अलग किया जा सकेगा। एकाएक समृद्धि आने पर किसी भी व्यवसाय मे लगे हुए उपकरणो के विद्यमान स्टाक से कुछ समय तक बहुत ऊँची आय प्राप्त हो सकती है। किन्तु जिन चीजो को बिना किसी सीमा के बढ़ाया जा सकता है उनका अधिक समय तक दुर्लभता मूल्य बना नही रह सकता, और यदि वे पर्याप्त रूप से स्थायी हो, जैसा कि दृष्टान्त के लिए जहाज इंजन की भट्ठी तथा सूती मशीने उनमे तीव्रतापूर्वक सुधार होने से बहुत मूल्य ह्रास हो जाता है। दीर्घकाल मे रेल तथा गोदीतल जैसी चीजो का मूल्य मुख्यतया उनकी स्थिति पर निर्भर रहता है। यदि उनकी स्थिति अच्छी हो तो उनके औद्योगिक वातावरण की प्रगति से उपकरणो को समयानुकूल बनाये रखने मे लगने वाले प्रभारो को कम कर देने के बाद भी उनका निर्बल मूल्य ऊँचा रहेगा।[2]

प्रगति के उत्पादन के उपकरणों का मूल्य वहीं घट सकता है जहाँ स्थूल मूल्य से इसे अलग किया जा सकता है किन्तु उनके स्थूल मूल्यों से इसकी गणना होने पर इनके मूल्य में कमी नहीं होगी।

---

1 मिस्टर डब्ल्यू स्टर्ज (Sturge) ने (दिसम्बर, 1872 में सर्वेक्षको की संस्था के सम्मुख पढ़े गये शिक्षात्मक लेख में) इग्लैंड के कृषि (द्रव्यिक) लगान के 1795 तथा 1815 के बीच दुगुने होने तथा इसके पश्चात् 1822 तक एक-तिहाई कम हो जाने का अनुमान लगाया है। तत्पश्चात् यह बारी-बारी से बढ़ता तथा घटता रहा है, और यह अब 4.5 या 5.0 करोड़ है जब कि सन् 1873 के आसपास या 5.0 या 5.5 करोड़ था, जो कि अधिकतम था। यह सन् 1810 में 3.0 करोड़, सन् 1770 में 1.6 करोड़ तथा सन् 1600 में 0.6 करोड़ था। (गिफन की Growth of Capital अध्याय V तथा पोर्टर की Progress of the Nation, खण्ड II, अध्याय 1 से तुलना कीजिए)। किन्तु अब इंग्लैण्ड में शहरी भूमि का लगान कृषि भूमि की अपेक्षा कहीं अधिक है: और भूस्वामियों को जनसख्या एव सामान्य प्रगति के बढ़ने से होने वाले कुल लाभ का अनुमान लगान के लिए हमें उस भूमि के मूल्यो का अनुमान लगाना चाहिए जिस पर अब रेल की पटरियां, खानें तथा गोदीतल इत्यादि हैं। पर इंग्लैंड की सम्पूर्ण भूमि का द्रव्यिक लगान अब उस समय की अपेक्षा दुगुना और वास्तविक लगान शायद चार गुना ऊँचा है जब अनाज के नियमों को रद्द कर दिया गया है।

2 निस्सन्देह इनके अपवाद भी हैं। आर्थिक प्रगति से ऐसी नयी रेलों का निर्माण हो सकता है जो पहले से विद्यमान रेलों के अधिकांश यातायात को खींच लेंगी, या इससे जहाजों का आकार इतना बढ़ सकता है कि वे ऐसे गोदीतलों में प्रवेश नहीं कर सकें जहां छिछले समुद्र से होकर प्रवेश करना पड़े।

इससे पूंजी का सम्भरण बहुत बढ़ चुका है। मनुष्य के अधिक लम्बे घण्टों तक कार्य करने की तत्परता में कमी होने के बावजूद भी उसके द्वारा भविष्य के लिए वर्तमान का त्याग करने की तत्परता बढ़ने की सम्पत्ति में अधिक वृद्धि होती है।

§8. राजनीतिक अंकशास्त्र इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ और तब से लेकर जनसंख्या की प्रति इकाई संचित सम्पत्ति में निरन्तर प्रायः स्थिर मात्रा में वृद्धि हुई है।[1]

मनुष्य अभी भी विलम्ब के लिए कुछ अधीर होने पर भी सुख या अन्य आनन्द को भविष्य में प्राप्त करने के लिए त्याग करने को धीरे-धीरे अधिकाधिक तत्पर हो रहा है। उसने जब पहले से अधिक दूरेक्षीय (telescopic) प्रतिभा प्राप्त कर ली है, अर्थात् उसे भविष्य को समझने तथा उसे अपने आंतरिक ज्ञान के सम्मुख रखने की शक्ति अधिक प्राप्त है: वह अब अधिक बुद्धिमान है तथा उसे आत्म नियंत्रण है, और अतः वह भावी बुराइयों एवं अच्छाइयों को अधिक महत्व का आँकने लगता है। इन भावी अच्छाइयों एवं बुराइयों से अभिप्राय मानव मस्तिष्क के उच्चतम एवं न्यूनतम स्नेह की भावनाओं को स्थूल रूप से शामिल करने से है। वह अब अधिक निःस्वार्थ है तथा अपने परिवार के लिए भविष्य में जरूरत पड़ने वाली सामग्री को प्राप्त करने के लिए काम तथा बचत दोनों ही अधिक करता है। ऐसे अपेक्षाकृत अधिक खुशहाल समय के आने के कुछ अस्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे हैं जिसमें सार्वजनिक सम्पत्ति के भण्डार तथा उच्चतर जीवन व्यतीत करने की सार्वजनिक सुविधाओं को बढ़ाने के लिए सामान्य रूप से परिश्रम एवं बचत की जायेगी।

यद्यपि प्राचीन युगों की अपेक्षा वह भावी लाभों के लिए वर्तमान परेशानियों को झलन के लिए अधिक तत्पर है तथापि यह सशयात्मक है कि क्या हम अब वर्तमान या भविष्य से सम्बन्धित ठोस आनन्दों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर अधिकाधिक परिश्रम करने के लिए तत्पर है। पाश्चात्य संसार के उद्योग अनेक पीढ़ियों से धीरे-धीरे क्रियाशील हो गये हैं: छुट्टियाँ कम कर दी है, कार्य के घंटों में वृद्धि हो गयी है तथा लोग अपनी रुचि या आवश्यकता के कारण अपने कार्य में अपेक्षाकृत अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं जिससे उन्हें आनन्द की अन्यत्र कम खोज करनी पड़ती है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है और अब घटने लगी है। उच्चतम स्तरों के कार्य के अतिरिक्त सभी स्तरों में लोग पहले की अपेक्षा विश्राम को अधिक महत्व देने लगे है, तथा अत्यधिक भार के फलस्वरूप पैदा होने वाली थकान के विषय में अधिक अधीर होने लगे हैं। वे वर्तमान विलास की चीजों को प्राप्त करने के लिए बहुत लम्बे घंटों तक काम करने के निरन्तर बढ़ने वाले कष्ट को झेलने के लिए अपेक्षाकृत कम तैयार हैं। इन कारणों के फलस्वरूप यदि भविष्य को समझने की उनकी शक्ति में तथा सम्भवतः यद्यपि यह अधिक सशयात्मक है, पास में कुछ संचित सम्पत्ति होने से मिलने वाले सामाजिक सम्मान की प्राप्ति की इच्छा में और अधिक तीव्र वृद्धि न होती तो वे सुदूर की जरूरतों के लिए सामग्री जुटाने के लिए पहले की अपेक्षा कठोर परिश्रम करने के लिए कम तत्पर होते।

---

1 भाग 5, अध्याय 7 देखिए।

प्रति व्यक्ति पूँजी में इस वृद्धि से इसका सीमान्त तुष्टिगुण घटने लगा, और इसलिए नये विनियोजनों पर ब्याज की दर भी घट गयी, यद्यपि यह समान रूप से नहीं घटी। मध्य युगों के अधिकांश भागों में ब्याज की दर दस प्रतिशत के बराबर बतायी गयी है, किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह घटकर 3 प्रतिशत रह गयी। इसके पश्चात् पूँजी के लिए प्रचुर मात्रा में औद्योगिक एवं राजनीतिक माँग के कारण यह दर पुनः बढ़ गयी, और महायुद्ध के समय यह अपेक्षाकृत ऊँची रही थी। राजनीतिक प्रवाह के समाप्त हो जाने पर सोने का सम्भरण कम होने से ब्याज की यह दर गिर गयी, किन्तु पिछली शताब्दी के तीसरे चतुर्थांश में जब नया सोना प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो गया था, तथा रेलों एवं नये देशों के विकास के लिए पूँजी की बड़ी जरूरत थी, यह दर पुनः बढ़ गयी। सन् 1173 ई० के पश्चात् शान्ति का युग रहने से तथा सोने के सम्भरण में मन्दी के कारण ब्याज की दर घट गयी, किन्तु अब यह आंशिक रूप में सोने के सम्भरण में वृद्धि के फलस्वरूप पुनः बढ़ने लगी है।[1]

ब्याज की दर में हाल ही में हुए उतार-चढ़ाव।

§9. सामान्य बोध तथा युवकों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से देश की बढ़ती हुई सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग भौतिक सम्पत्ति के रूप में विनियोजित न होकर व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में विनियोजित होने लगा है। प्रशिक्षित योग्यता वाले बड़ी संख्या में मिलने लगे हैं जिससे राष्ट्रीय, लाभांश में बहुत वृद्धि हुई है, तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की औसत आय बढ़ गयी है: किन्तु इसके फलस्वरूप इन प्रशिक्षित योग्यता वालों का अधिकांश दुर्लभता मूल्य कम हो गया है। और उनके उपार्जनों में भी निर्पेक्ष रूप में कमी होने की अपेक्षा सामान्य प्रगति की तुलना में कमी हुई है, और जहाँ तक मजदूरी का प्रश्न है इसके फलस्वरूप अनेक धन्धे जो कुछ ही समय पूर्व कुशल समझे जाते थे तथा जिन्हें अभी भी कुशल कहा जाता है अकुशल श्रम में सम्मिलित किये जाने लगे हैं।

प्रशिक्षित योग्यता से प्राप्त होने वाले उपार्जनों में सापेक्षिक रूप से कमी हो गयी है

लेखन कार्य इसका ज्वलंत उदाहरण है। यह सत्य है कि अनेक प्रकार के कार्यालय के काम के लिए उच्च बौद्धिक एवं नैतिक गुणों के कदाचित् ही पाये जाने वाले सम्मिश्रण की आवश्यकता होती है किन्तु लगभग प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिलिपि बनाने वाले क्लर्क के काम को आसानी से सिखलाया जा सकता है, और सम्भवतया शीघ्र ही इंग्लैंड में कुछ ही ऐसे पुरुष या ऐसी स्त्रियाँ होंगी जो बहुत अच्छी तरह से न लिख सकें। जब सभी लिख सकते हैं तो प्रतिलिपि बनाने का कार्य, जिसमें किसी अन्य प्रकार के शारीरिक श्रम की अपेक्षा अधिक ऊँची मजदूरी मिलती थी, अकुशल व्यवसायों में ही गिना जायेगा। वास्तव में दस्तकार के अधिक अच्छे किस्म के काम से किसी व्यक्ति को उन क्लर्कों के कार्य की अपेक्षा जिसमें न तो निर्णय न उत्तरदायित्व की आवश्यकता होती है अधिक शिक्षा मिलती है, तथा अधिक वेतन प्राप्त होता है। आमतौर पर एक दस्तकार अपने लड़के के लिए जो सबसे अच्छा काम कर सकता है वह यह है कि वह उसे अपने काम की पूरी शिक्षा दे जिससे वह इससे सम्बन्धित यांत्रिकी, रासायनिक या अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों को तथा इनमें होने वाले नये सुधारों को समझ सके।

---

1 भाग 6, अध्याय 6, अनुभाग 7 देखिए।

यदि उसके लड़के में अच्छी प्राकृतिक योग्यताएँ हों तो वह संसार में क्लर्क की मेज पर काम करने की अपेक्षा बेंच पर जुलाहे के काम को करने से अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त कर सकता है।

पुराने तथा परिचित धन्धों में जिनमें कुशलता की आवश्यकता है नये धन्धों की अपेक्षा उपार्जन घटता जाता है।

पुनः उद्योग की एक नयी शाखा प्रायः केवल इस कारण कठिन होती है कि वह अपरिचित है, और जिस काम को एक बार पता लग जाने पर साधारण क्षमता वाले पुरुष या स्त्रियाँ एवं बच्चे भी कर सकते हैं उसके लिए सर्वप्रथम बड़ी शक्ति एवं कुशलता वाले पुरुषों की आवश्यकता होती है: सर्वप्रथम इसमे मजदूरी ऊँची रहती है किन्तु जैसे-जैसे इस उद्योग मे काम के लिए अधिक लोग आने लगते हैं मजदूरी भी गिर जाती है। इसके फलस्वरूप औसत मजदूरी में वृद्धि का महत्व कम हो जाता है, क्योंकि मजदूरी की सामान्य गति को व्यक्त करने के लिए अनेक प्रकार के आंकड़े एक या दो पीढ़ी पूर्व ऐसे व्यवसायों से लिये गये थे जो उस समय तो अपेक्षाकृत नये थे किन्तु अब जिनमे उन लोगों की अपेक्षा कही कम वास्तविक योग्यता वाले लोग भी प्रवेश कर सकते हैं जिन्होंने इनके लिए मार्ग तैयार किया था।[1]

ऐसे परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुशल कहलाये जाने वाले धन्धों में चाहे इस शब्द का उचित रूप मे प्रयोग किया जाता हो या नही, काम करने वाले लोगों की संख्या बढ़ गयी है: और व्यवसायों के उच्चतर वर्गों के कर्मचारियों की संख्या मे इस प्रकार निरन्तर वृद्धि होने से प्रत्येक व्यवसाय मे औसत प्रतिनिधि मजदूरी की अपेक्षा सभी प्रकार के श्रम के औसत मे कही अधिक तीव्रता से वृद्धि हुई है।[2]

---

1 भाग 4, अध्याय 6, अनुभाग 1, 2 तथा अध्याय 9, अनुभाग 6 से तुलना कीजिए। जैसे-जैसे किसी व्यवसाय की प्रगति होती है मशीन में सुधारों के फलस्वरूप किसी भी ज्ञात कार्य का भार निश्चित रूप से हल्का कर दिया जाता है, और इसलिए उस कार्य में मजदूरी भी तेजी से कम होने लगती है। किन्तु इस बीच प्रत्येक कर्मचारी के द्वारा किये जाने वाले कार्य की मात्रा में तथा मशीन की प्रगति में इतनी अधिक वृद्धि हो सकती है कि प्रतिदिन के कार्य में पड़ने वाला कुल कार्य-भार पहले से भी अधिक हो। इस विषय पर मालिकों एवं कर्मचारियों में बहुधा मतभेद होता है। दृष्टान्त के लिए यह निश्चित है कि सूती व्यवसायों में असामी मजदूरी बढ़ गयी है, किन्तु मालिकों के विचारों के विरुद्ध कर्मचारी दावे के साथ यह कहते है कि उन पर पड़ने वाला भार अब मजदूरी के अनुपात से अधिक बढ़ गया है। इस विवाद में मजदूरी को द्रव्य के रूप में आंका गया है, किन्तु जब द्रव्य की क्रयशक्ति में हुई वृद्धि को ध्यान में रखा जाय तो इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वास्तविक दक्षता मजदूरी में वृद्धि हुई है, अर्थात् सामर्थ्य, कुशलता एवं शक्ति के उपयोग के लिए मिलने वाली मजदूरी से पहले से अधिक वस्तुएँ खरीदी जाने लगी हैं।

2 इसे एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। यदि क ग्रेड में 12 शिलिंग प्रति सप्ताह उपार्जन करने वाले 500 पुरुष, ख ग्रेड मे 52 शिलिंग अर्जित करने वाले 400 पुरुष, और ग ग्रेड में 40 शिलिंग अर्जित करने वाले 100 पुरुष हों तो

मध्य युगों में यद्यपि बड़ी योग्यता वाले कुछ व्यक्ति जीवन पर्यन्त दस्तकार बने रहे और कलाकार हो गये किन्तु आज की अपेक्षा उस समय एक वर्ग के रूप में उनकी अकुशल श्रमिकों के साथ अधिक गणना की जाती थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में औद्योगिक युग के प्रारम्भ होते समय दस्तकार अपनी अधिकांश पुरानी कलात्मक परम्पराओं को खो चुके थे, और उन्हें अपने औजारों के ऊपर वह तकनीकी अधिकार, कठिन कार्यों को बिलकुल ठीक ढंग से सम्पन्न करने की वह निश्चितता एवं सुविधा प्राप्त न हो सकी थी जो आधुनिक कुशल दस्तकारों में पायी जाती है। पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में एक परिवर्तन आया, और पर्यवेक्षकों का ध्यान उस सामाजिक खाई की ओर आकर्षित हुआ जो कि कुशल एवं अकुशल श्रम के बीच पैदा हो रही थी। और दस्तकारों की मजदूरी सामान्य श्रमिक की मजदूरी की अपेक्षा दुगुनी हो गयी थी। क्योंकि वास्तव में विशेषकर धातु व्यवसायों में अत्यधिक कुशल श्रम के लिए माँग बहुत बढ़ जाने के कारण श्रमिकों तथा उनके बच्चों में सुदृढ़ आचरण वाले लोगों का दस्तकारों में तीव्रतापूर्वक सविलयन करने के लिए प्रोत्साहन मिला। ठीक उसी समय दस्तकारों की प्राचीन अनन्यता के नष्ट हो जाने से वे पहले की अपेक्षा जन्म से कम अमीर तथा योग्यता से पहले की अपेक्षा अधिक अमीर हो रहे थे। दस्तकारों के गुणों में इस वृद्धि से वे अधिक समय तक सामान्य श्रमिक की अपेक्षा कहीं अधिक मजदूरी प्राप्त करते रहे। किन्तु धीरे धीरे कुशल व्यवसायों के कुछ अधिक सरल रूपों का दुर्लभता मूल्य समाप्त होने लगा क्योंकि उनकी अपूर्वता नष्ट हो गयी। इसी बीच कुछ व्यवसायों में उन लोगों की योग्यता की माँग निरन्तर बढ़ती गयी जो परम्परा से कुशल गिने जाते थे। दृष्टान्त के लिए बेलदार तथा कृषि श्रमिक को उन खर्चीली तथा जटिल मशीनों का उपयोग करने का काम सौंपा जाने लगा है जिन्हें पहले केवल कुशल श्रमिक द्वारा ही चलाया जाता था। इन दोनों प्रतिनिधि धन्धों में वास्तविक मजदूरी तेजी से बढ़ी है। कृषि श्रमिकों की मजदूरी में इससे भी अधिक वृद्धि होती यदि कृषि क्षेत्रों में आधुनिक विचारों के प्रसार से वहाँ के अनेक योग्यतम बच्चे रेल या वर्कशाप में काम करने, पुलिस वाला या शहरों में ठेला चलाने वाला बनने या कुली का काम करने के लिए खेती छोड़ देते। जो लोग खेतों में काम करने के लिए शेष रह जाते हैं उन्हें प्राचीन समयों की अपेक्षा अधिक शिक्षा प्राप्त हुई है, और यद्यपि उनमें प्राकृतिक योग्यता का सम्भवतः औसत से भी कम हिस्सा होगा तथापि वे अपने पिताओं की

शताब्दी के आरम्भ में अकुशल श्रम की अपेक्षा दस्तकार की मजदूरी में अधिक वृद्धि हुई: किन्तु अब इसके विपरीत प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है।

1000 पुरुषों की औसत मजदूरी 20 शिलिंग होगी। यदि कुछ समय बाद ग्रेड क से 300 व्यक्ति ग्रेड ख में और ग्रेड ख से 300 व्यक्ति ग्रेड ग में चले जायें तो प्रत्येक ग्रेड में मजदूरी स्थिर रहने पर कुल 1000 पुरुषों की औसत मजदूरी 28 शिलिंग 6 पेन्स होगी। यदि इस बीच प्रत्येक ग्रेड में मजदूरी की दर में 10 प्रतिशत की कमी भी हो गयी हो तो इन सब की औसत मजदूरी फिर भी 25 शिलिंग 6 पेन्स होगी अर्थात् इसमें 25 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हो गयी होगी। इस प्रकार के तथ्यों की अवहेलना करने से, जैसा कि सर आर० गिफन ने जिक्र किया है, बहुत बड़ी त्रुटि हो सकती है।

अपेक्षा अधिक ऊँची वास्तविक मजदूरी अर्जित करते हैं। कुछ ऐसे भी कुशल एवं उत्तरदायित्वपूर्ण धन्धे है जैसे कि लोहे के काम मे मुख्य तापक तथा धातु को बेलनाकार बनाने वाले धन्धे, जिनमें बड़ी शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है तथा जिनमे बहुत परेशानी उठानी पडती है; और इनमे मजदूरी ऊँची रहती है क्योकि जो लोग उच्च श्रेणी का कार्य कर सकते हैं तथा सरलतापूर्वक अच्छी मजदूरी कमा सकते हैं वे उस समय के वातावरण मे बिना बहुत ऊँचे पुरस्कार मिले कठिनाई झेलने को तत्पर नही होते।[1]

कुछ प्रौढ़ लोगों की मजदूरी में अपेक्षाकृत कमी हुई है,

§10 इसके पश्चात् हम वृद्ध एवं युवक पुरुषों एवं स्त्रियों तथा बच्चों की सापेक्षिक मजदूरी मे हुये परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

उद्योग की दशाएँ इतनी तेजी से बदलती है कि कुछ व्यवसायो मे लम्बा अनुभव प्राय: हानिकारक होता है, तथा अनेक व्यवसायों मे शीघ्रतापूर्वक नये विचारों को समझने तथा नयी दशाओ के अनुसार अपनी आदतों को ढालने की अपेक्षा यह बहुत कम महत्व का रह गया है। एक व्यक्ति सम्भवतया पचास वर्ष से ऊपर हो जाने के बाद उतना ही नही अर्जित कर सकता जितना की वह तीस वर्ष की आयु के पूर्व अर्जित कर सकता था। इस जानकारी के कारण दस्तकार अकुशल श्रमिकों के उदाहरण का अनुकरण करने के लिए प्रेरित होते हैं, जो इस इच्छा से सदैव जल्दी शादी कर लेते है कि उनकी मजदूरी मे कमी होना प्रारम्भ होने से पूर्व उनके पारिवारिक खर्चे कम हो जायें।

और लड़के-लड़कियों तथा स्त्रियों की मजदूरी में वृद्धि हुई है।

एक दूसरी तथा उसी प्रकार की और भी अधिक हानिकारक प्रवृत्ति माता-पिताओ की मजदूरी की अपेक्षा बच्चों की मजदूरी मे अधिक वृद्धि होना है। मशीनों के प्रयोग के कारण अनेक पुरुष विस्थापित हो गये हैं किन्तु अनेक बच्चे विस्थापित नही हुए हैं। वे प्रथागत नियंत्रण अब समाप्त होते जा रहे है जिनसे कुछ व्यवसायों मे मशीनों का उपयोग नही किया गया और शिक्षा के प्रसार के साथ इन परिवर्तनो से यद्यपि प्राय: अन्य दिशाओं मे अच्छा ही हो रहा है किन्तु इस दिशा मे अपकार हो रहा है कि लड़के तथा यहां तक कि लड़कियाँ भी अपनी माता-पिता की अवज्ञा कर स्वयं जीवन मे प्रवेश करने लगी हैं। इसी प्रकार के कारणो से स्त्रियों की मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की अपेक्षा तेजी से बढ़ रही है। जहाँ तक इससे उनकी प्रतिभाओं का विकास हुआ है, यह वृद्धि लाभप्रद रही है, किन्तु जहाँ तक इससे वास्तविक गृह-निर्माण कार्य मे तथा अपने बच्चो के आचरण एवं उनकी योग्यताओं की व्यक्तिगत पूंजी के विकास मे अपने कर्तव्यों मे कमी हुई है, इससे क्षति पहुँची है।

मध्यम योग्यता वाले व्यक्तियों को चाहे कितनी ही सतर्कता से प्रशिक्षित किया

---

1 प्रो० श्मूलर द्वारा Volkswirtschaftslehre, अध्याय III, अनुभाग 7, (खण्ड II, पृष्ठ 25.-316) में किये गये सर्वेक्षण से मजदूरी की वृद्धि पर दिये गये उक्त संक्षिप्त अभिवचनों की अनुपूर्ति हो जाती है। यह सर्वेक्षण विचारों की व्यापकता, तथा प्रगति की भौतिक एवं मनोव्यापार सम्बन्धी तत्त्वों के सतर्क समन्वय के लिए विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उनके दूसरे भाग के उत्तरार्द्ध को भी देखिए।

गया हो उनके द्वारा अर्जित की जानेवाली आय में होने वाली सापेक्षिक कमी उस समय और भी बढ़ने लगती है जब असाधारण योग्यता वाले लोगों की आय मे वृद्धि होने लगे। ऐसा समय शायद ही कभी आया हो जब मध्यम श्रेणी के तैलचित्र अब की अपेक्षा अधिक सस्ते बिके हो, और ऐसा समय भी कभी नही आया जब प्रथम श्रेणी के चित्र इतने महँगे बिके हों। औसत योग्यता वाला तथा औसत सौभाग्य वाला व्यापारी विगत के किसी अन्य समय की अपेक्षा अपनी पूँजी पर कम दर पर लाभ अर्जित करता है। जब कि ऐसी भी क्रियाएं है जिनमे यदि असाधारण मेधा एव सौभाग्य वाला व्यक्ति कार्य करे तो कुछ ही समय मे प्रचुर सम्पत्ति अर्जित कर सकता है।

असाधारण प्रतिभा का उपार्जन दो कारणों से बढ़ रहे है। पेशेवर आय पर इसमें से केवल एक कारण का प्रभाव पड़ता है जब कि व्यापारिक आय पर इन दोनों का प्रभाव पड़ता है।

इस परिवर्तन के मुख्यतया दो कारण है, एक तो सम्पत्ति का सामान्य वृद्धि है, तथा दूसरा सचार की नयी सुविधाओं का विकास है जिनकी सहायता से एक बार उच्च स्थान प्राप्त कर लेने पर लोग अपनी रचनात्मक या विचारशील मेधा को अपेक्षाकृत अधिक विशाल कारोबारो मे तथा अधिक विस्तृत क्षेत्र मे लगा सकते है।

यह एकमात्र पहला कारण है जिसके फलस्वरूप कुछ बैरिस्टरो को ऊँची फीस मिलती है, क्योंकि एक धनी मुवक्किल जिसकी ख्याति या समृद्धि या दोनो सकट मे हों योग्यतम व्यक्ति के लिए किसी भी कीमत को देने को तत्पर होगा: और पुनः इसी बात के कारण असाधारण योग्यता वाले जॉकी (घुड़दौड़ का पेशवर घुड़सवार) चित्रकार तथा सगीतज्ञ बहुत ऊँची आय प्राप्त करने मे समर्थ हुए हैं। इन सभी धन्धो मे हमारी इस पीढ़ी मे ही आज तक की तुलना मे सबसे अधिक आय अर्जित की गयी है। किन्तु जब तक मानव पुकार सीमित लोगो तक ही पहुँच सकती है, यह बहुत सम्भव नही दिखायी देता कि कोई गायक श्रीमती बिलिंगटन द्वारा पिछली शताब्दी के प्रारम्भ मे एक सीजन मे अर्जित 10,000 पौड की राशि से लगभग उतना ही अधिक अर्जित कर सकेगा जितना कि आज की पीढ़ी के प्रमुख की अपेक्षा अर्जित करने मे सफल हुए है। क्योंकि इन दो कारणो मे से इस पीढ़ी मे अमेरिका तथा अन्यत्र उन व्यापारियो को जो प्रथम श्रेणी के मेधावी व्यक्ति थे तथा भाग्य ने जिनका साथ दिया था अपरिमित शक्ति एव सम्पत्ति मिलने मे बड़ी सहायता मिली है। यह सत्य है कि उन लाभों का अधिकाश भाग कुछ दशाओ मे उन प्रतिद्वन्द्वी सटोरियो के विनाश से प्राप्त हुआ है जो इस दौड़ मे परास्त कर दिये गये थे किन्तु अन्य दशाओ मे इन्हे मुख्यतया किसी महान् रचनात्मक मेधा की उस उच्चतम मितव्ययी शक्ति से अर्जित किया गया जो किसी नयें तथा विशाल समस्या पर स्वतन्त्ररूप से कार्य कर रही है: दृष्टान्त के लिए वेण्डरबिल्ट परिवार के जन्मदाता ने न्यूयार्क के केन्द्रीय रेल मार्ग को अव्यवस्थित होने से बचाने की योजना तैयार कर अमेरिका के लोगो के लिए स्वय प्राप्त की गयी पूँजी की अपेक्षा कही अधिक बचत की।[1]

---

1 यह ध्यान रहे कि इनमे से कुछ लाभ व्यापारिक संगठन बनाने के उन अवसरों के कारण प्राप्त हुए है जिनसे चन्द योग्य, धनी तथा साहसी लोग निजी हित के लिए विनिर्माताओं की किसी बड़ी संख्या या किसी विस्तृतक्षेत्र के व्यापार एवं यातायात का शोषण करते है। इस शक्ति का राजनीतिक दशाओं तथा विशेषकर संरक्षात्मक

प्रगति से श्रमिक वर्गों के विशाल समुदाय की दशा तीव्रता-पूर्वक सुधर रही है।

§12 किन्तु इस प्रकार की समृद्धि असाधारण होती है। लोगों में शिक्षा एवं बुद्धिमत्तापूर्ण आदतों के प्रसार तथा नयी प्रणालियों से अन्य पूंजी की सुरक्षित विनियोजन सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण मध्यम आय वालों पर बुरा प्रभाव पड रहा है। आयकर तथा आवासकर के अकपथ, वस्तुओं के उपभोग के आंकडे, सरकार तथा सार्वजनिक कम्पनियों के उच्चतर एवं न्यूनतर कर्मचारियों के वेतन के अभिलेख, सभी इस बात को व्यक्त करते हैं कि धनी वर्गों की अपेक्षा मध्यम वर्गों के लोगों की आय अधिक तीव्रतापूर्वक बढ रही है। तथा स्वास्थ एवं शक्तिशाली अकुशल श्रमिकों की मजदूरी औसत दस्तकार से भी अधिक तीव्रतापूर्वक बढ रही है। अत्यन्त धनी लोगों की कुल आय सम्भवत विगत समयों की अपेक्षा इग्लैंड की कुल आय का अधिक बड़ा भाग नही है। किन्तु अमेरिका मे भूमि का कुल मूल्य तीव्रतापूर्वक बढ रहा है। आव्रजकों के निम्नतर खानदान श्रमिक जनसख्या के उच्चतर खानदानों का स्थान ले रहे हैं, तथा बड़े-बडे वित्त-प्रबन्धक अत्यधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं: और यह भी सम्भवतया सत्य हो सकता है कि सम्पत्ति से अर्जित कुल आय श्रम से अर्जित आय की अपेक्षा अधिक बढ रही हो, और बहुत अधिक धनी लोगों की कुल आय तीव्रतम रूप से बढ़ रही हो।

आधुनिक उद्योगों में यह सम्भव है कि रोजगार की अस्थिरता

यह स्वीकार करना होगा कि मजदूरी मे वृद्धि से तब तक पूरा-पूरा लाभ नही होगा जब तक बलात् निष्क्रियता मे खर्च किये जाने वाले समय में भी साथ ही साथ वृद्धि हो। रोजगार की अस्थिरता महान बुराई है और इस ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है किन्तु अनेक कारणों के सम्मिश्रण से यह बुराई अपने वास्तविक रूप की अपेक्षा अधिक बढी हुई दिखायी देती है।

जब एक विशाल फैक्टरी केवल आधे समय तक ही कार्य करती है तो सारे पड़ोस मे इस बात की अफवाह फैल जाती है, और समाचार-पत्र इसे सम्भवतया सारे देश मे फैला देते है। किन्तु कुछ ही लोग इस बात को जानते है कि स्वतन्त्र रूप से कार्य

टैरिफ पर रहने वाला भाग समाप्त हो सकता है। किन्तु अमेरिका का क्षेत्रफल इतना अधिक विशाल है तथा इसकी दशा इतनी परिवर्तनीय है कि आंग्ल योजना के अनुसार किसी बड़ी संयुक्त पूंजी कम्पनी के मंद एवं सतर्क प्रबन्ध की यदि प्रबल एवं मौलिक योजना वाले तीव्र तथा दृढ़शक्ति वाले उन समृद्ध पूंजीपतियों के एक छोटे से वर्ग से प्रतिस्पर्द्धा की जाय जो इंग्लैंड की अपेक्षा अपने साधनों को बड़े बड़े कारोबारों में कहीं अधिक मात्रा में लगाने को तत्पर है तथा समर्थ है तो उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। अमेरिका में व्यापारिक जीवन की निरन्तर बदलती हुई दशाओं के कारण वहाँ की विपुल जनसंख्या में से इस उद्देश्य के लिए ऐसे योग्यतम व्यक्तियों का प्राकृतिक चयन करना सम्भव हुआ है जो प्रायः जीवन में प्रवेश करते समय मृत्यु से पूर्व धनवान होने का दृढ़ निश्चय करते है। व्यापार तथा व्यापारिक समृद्धि के आधुनिक सुधार आंग्ल देशवासियों के लिए असाधारण रुचि एवं शिक्षा के विषय हैं: किन्तु जब तक पुराने तथा नये संसार की वास्तविक रूप में भिन्न दशाओं को निरन्तर ध्यान में न रखा जाय तब तक इनसे प्राप्त होने वाले सबकों का विपरीत अर्थ लगाया जायेगा।

करने वाला कामगर या एक छोटा मालिक भी महीने में कुछ ही दिनों काम पर लगा रहता है। परिणामस्वरूप आधुनिक समय में उद्योग का किसी भी प्रकार अस्थायी रूप में स्थगित होना प्राचीन काल की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। प्राचीनकाल में कुछ श्रमिक पूरे वर्ष के लिए नियुक्त कर लिये जाते थे : किन्तु वे स्वतन्त्र न थे, और व्यक्तिगत डाँट-डपट द्वारा उन्हें अपने काम पर तैनात रखा जाता था। यह सोचने का कोई अच्छा कारण नही दिखायी देता कि मध्यकालीन दस्तकार के पास भी निरन्तर रोजगार रहता था। अब यूरोप में पश्चिम के उन अकृषीय उद्योगों में जिनकी प्रणाली लगभग मध्यकालीन है, तथा पूर्वी एवं दक्षिणी यूरोप के उन उद्योगों में जहाँ मध्यकालीन परम्पराएँ सबसे दृढ़ है, निरन्तर अस्थिर रोजगार पाया जाता है।[1]

को बढ़ा-चढ़ा कर बखान किया जाय।

अनेक दिशाओं में व्यावहारिक रूप से पूरे वर्ष के लिए नियुक्त किये गये श्रम का अनुपात धीरे धीरे बढ़ रहा है। दृष्टान्त के लिए यह बात यातायात से सम्बन्धित उन अनेक व्यवसायों में पायी जाती है जो सर्वाधिक तीव्रता से विकसित हो रहे हैं, तथा जो कुछ बातों में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के उद्योगों का उसी प्रकार प्रतिनिधित्व करते हैं जिस प्रकार इसके पूर्वार्द्ध के विनिर्माण सम्बन्धी व्यवसाय इसका प्रतिनिधित्व करते थे। यद्यपि आविष्कार की द्रुतता, फैशन की परिवर्तनशीलता तथा इन सबसे अधिक साख की अस्थिरता से आधुनिक उद्योग में निश्चिय ही अव्यवस्था पैदा होती है, इस पर भी जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, अन्य प्रभाव दृढतापूर्वक विपरीत दिशा में कार्य कर रहे है, और यह सोचने का कोई भी अच्छा कारण नही दिखायी देता है कि कुल मिलाकर रोजगार की अस्थिरता बढती जा रही है।

---

1 यहाँ पर वर्तमान लेखक के पर्यवेक्षण में आये हुए एक दृष्टान्त का उल्लेख किया जाता है। प्लेर्मो में दस्तकारों तथा उनके संरक्षकों के बीच अर्द्ध जागीरदारी सम्बन्ध था। प्रत्येक बढ़ई या दर्जी एक या अधिक बड़े बड़े व्यापारिक स्थानों से अपना सम्बन्ध रखता था जहाँ वह रोजगार की तलाश कर सकता था और जब तक उसका आचरण ठीक रहता था उसे किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं करना पड़ता था तब व्यापारिक मन्दी की बड़ी लहरें नहीं थीं। समाचार पत्रों में बेरोजगार लोगों की यातनाओं का अधिक लेखा-जोखा नहीं रहता था, क्योंकि उनकी दशा में अलग अलग समयों में बहुत कम अन्तर पाया जाता था किन्तु आधुनिक वर्षों की सबसे अधिक क्षतिकारक मन्दी के समय में इंग्लैंड की अपेक्षा प्लेर्मो में सबसे अधिक खुशहाल समय में दस्तकारों का अधिकांश प्रतिशत बेरोजगार रहता है। रोजगार की अस्थिरता के विषय में अगले अध्याय में अनुभाग 10 में कुछ आगे विचार किया गया है।

अध्याय 13

प्रगति का जीवन के स्तरों से सम्बन्ध

क्रियाएँ तथा आवश्यकताएँ।

§1. अब हम भाग 3 मे आवश्यकताओ तथा क्रियाओं के सम्बन्ध में किये गये विचार को थोड़ा सा आगे बढ़ायेंगे। हमने वहाँ यह सोचना तर्कसंगत देखा कि आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण वास्तव मे नयी आवश्यकताओ के विकास की अपेक्षा नयी क्रियाओं का विकास होना है। हम अब इस पीढ़ी मे इस विशेषरूप से अत्यावश्यक प्रश्न का कुछ अध्ययन करेंगे कि रहनसहन के ढग मे परिवर्तन तथा उपार्जन-दर का क्या सम्बन्ध है, कहाँ तक इनमे से किसी दूसरे का कारण मानना चाहिए, तथा कहाँ तक परिणाम मानना चाहिए।

'जीवन के स्तर' से अभिप्राय : क्रियाओं के स्तर से है जिन्हें आवश्यकताओं के अनुसार समायोजित किया जाता है।

यहाँ पर **जीवन के स्तर** शब्द से अभिप्राय आवश्यकताओ की तृप्ति के लिए की जाने वाली क्रियाओं से है। इस प्रकार जीवन के स्तर के बढ़ने का अर्थ बुद्धि तथा शक्ति एवं आत्मसम्मान मे वृद्धि होना है जिनसे व्यय करने मे अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है तथा निर्णय से काम लेना पड़ता है और ऐसे भोजन एवं पेय पदार्थों का उपयोग नही करना पड़ता जो क्षुधा तो शान्त करते है किन्तु किसी भी प्रकार की शक्ति प्रदान नही करते। इससे लोग शारीरिक एवं नैतिक दृष्टि से अस्वास्थ्यकर दशाओ मे रहना भी समाप्त कर देते है। सम्पूर्ण जनसंख्या के जीवन के स्तर मे वृद्धि से राष्ट्रीय लाभांश मे, तथा प्रत्येक स्तर के कार्य एवं प्रत्येक व्यवसाय को प्राप्त होने वाले भाग मे भी बहुत वृद्धि होगी। किसी भी स्तर के कार्य या किसी भी व्यवसाय मे जीवन के स्तर के बढ़ने से उनकी कार्यक्षमता बढ़ जायेगी और इसलिए उनकी अपनी वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि हो जायेगी: इससे राष्ट्रीय लाभांश मे भी कुछ वृद्धि होगी, तथा अन्य लोग इन श्रमिको की कार्यकुशलता से कुछ कम आनुपातिक लागत पर इनके श्रम का उपयोग कर सकेंगे।

आराम के स्तर में वृद्धि से मजदूरी में वृद्धि का होना मुख्यतया क्रियाओं के स्तर में वृद्धि पर निर्भर रहता है।

किन्तु अनेक लेखकों ने मजदूरी पर जीवन के स्तर मे वृद्धि की अपेक्षा आराम के स्तर मे वृद्धि के कारण पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख किया है। आराम के स्तर मे वृद्धि से अभिप्राय केवल कृत्रिम आवश्यकताओ मे वृद्धि से है जिनमे सम्भवतया निम्न-स्तर की आवश्यकताओ का बाहुल्य हो सकता है। यह सत्य है कि आराम के स्तर मे प्रत्येक व्यापक सुधार से रहनसहन का ढग अधिक अच्छा हो सकता है तथा नयी एवं उच्चतर क्रियाओं के लिए अवसर प्राप्त होता है। जिन लोगों के पास अब तक न तो जीवन की अत्यावश्यक वस्तुएँ थी और न शिष्टाचार सम्बन्धी वस्तुएँ थी, आराम के बढ़ जाने से कुछ ओज एवं बल प्राप्त करते हैं चाहे वे इसके विषय मे कितना ही स्थूल तथा भौतिक दृष्टिकोण क्यों न अपनायें। इस प्रकार आराम के स्तर मे कुछ वृद्धि होने मे सम्भवतया जीवन के स्तर मे भी कुछ वृद्धि होगी, और इससे राष्ट्रीय लाभांश मे वृद्धि होगी तथा लोगो की दशा में सुधार होगा।

कुछ आधुनिक तथा प्राचीन लेखक इससे भी आगे बढ़ गये हैं और उनका यह अभिप्राय रहा है कि आवश्यकताओं में केवल वृद्धि होने से ही मजदूरी बढ़ने लगती है। किन्तु आवश्यकताओ मे वृद्धि का केवल यह प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है कि इससे लोगों की दशा पहले से भी दयनीय हो गयी है। यदि मनुष्य की क्रियाओ मे इसके फलस्वरूप होने वाली वृद्धि के सम्भावित अप्रत्यक्ष प्रभाव को तथा जीवन के स्तर को अन्यथा ऊँचा करने के विषय पर विचार न करें तो केवल श्रम की मात्रा कम करने से ही मजदूरी में वृद्धि की जा सकती है। इस विषय पर अधिक घनिष्ठतापूर्वक विचार करना उचित रहेगा।

मजदूरी के लौह सिद्धान्त के चरम रूप में पायी जाने वाली मान्यताएँ।

§2. यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि यदि किसी ऐसे देश मे जहाँ खाद्य पदार्थों का सरलतापूर्वक आयात नहीं किया जा सकता, जनसंख्या मे निरन्तर अनेक पीढियों तक उच्च ज्यामितीय गुणोत्तर श्रेणी मे वृद्धि हो तो प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये साधनों का उपयोग करने में श्रम एवं पूंजी से जो कुल उपज प्राप्त होगी उससे आने वाली प्रत्येक पीढी के पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण मे लगने वाली लागत भी बड़ी कठिनाई से निकल सकेगी: यदि हम यह कल्पना कर ले कि राष्ट्रीय लाभाश का लगभग सम्पूर्ण भाग श्रमिक को ही प्राप्त होता है, और पूंजीपति या भूस्वामी को कदाचित् ही कुछ भाग दिया जाता है तो भी यही कथन सत्य सिद्ध होगा।[1] यदि इसके लिए रखी गयी छूट उस स्तर से कम हो जाय तो जनसंख्या मे वृद्धि की दर अवश्य ही कम हो जायेगी। यदि उनके पालन-पोषण मे होने वाले खर्चे कम हो जाये और इसके फलस्वरूप कार्यकुशलता मे, और इसलिए राष्ट्रीय लाभाश मे, और उनके उपार्जनों मे कमी हो जाय तो जनसंख्या की वृद्धि की दर मे कमी होना आवश्यक नही।

संसार के इतिहास में ऐसी दशाओं का बहुत अभाव नहीं है जब आराम के स्तर में वृद्धि होने से मजदूरी में भी कुछ वृद्धि हुई हो।

किन्तु जनसंख्या की तीव्र वृद्धि मे सम्भवतया शीघ्र ही नियंत्रण किये जाने लगेंगे, क्योंकि अधिकांश लोग अपने उपभोग को इतना कम नही करेंगे कि इससे केवल आवश्यक आवश्यकताएँ ही पूरी की जा सकें। पारिवारिक आय का कुछ भाग पूर्णतया निश्चितरूप में ऐसी परितुष्टियों मे खर्च किया जायेगा जिससे जीवन एवं कार्यकुशलता को उसी स्तर पर बनाये रखने मे बहुत कम योगदान होगा। कहने का अभिप्राय यह है कि आराम के ऐसे स्तर को बनाये रखने के कारण जो कि जीवन एव कार्यकुशलता के लिए आवश्यक स्तर से ऊँचा हो, जनसंख्या की वृद्धि में उस स्थिति की अपेक्षा अधिक शीघ्र नियन्त्रण किया जायगा जब पारिवारिक व्यय को घोड़ों, दासों के पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण मे होने वाले व्यय के अनुरूप आधार पर निर्दिष्ट करना हो। बाद में इस प्रकार की एकरूपता और भी अधिक हो जाती है।

पूर्ण कार्यकुशलता के लिए तीन आवश्यक चीजें—आशा, स्वतन्त्रता एव परिवर्तन—दास को सरलतापूर्वक प्रदान नही की जा सकती। किन्तु प्रायः चतुर दास, जो कि मालिक भी है, जिस सिद्धान्त के आधार पर दवाइयाँ प्रदान करता है उसी के अनुसार साधारण गांधर्व तथा अन्य मनोरंजनों के विकास के लिए कुछ कष्ट उठाता है तथा

1 भाग 6, अध्याय 2, अनुभाग 2, 3; भाग 4, अध्याय 4, तथा 5 तथा भाग 6, अध्याय 4 देखिए।

खर्च करता है, क्योंकि अनुभव से यह पता लगा है कि दास में उद्विग्नता की भावना उतनी ही क्षयकारी है जितनी कि बीमारी या किसी बायलर की भट्ठी में अट जाने वाला अधजला क्षयकारी कोयला होता है। यदि दासों को सुखदायक आवश्यकताओं का स्तर इस प्रकार बढे कि उन्हें आराम तथा यहाँ तक कि विलासिता की कीमती वस्तुएँ तब तक प्रदान न की जायें जब तक वे न दण्ड के भय से और न मृत्यु के भय से ही काम करें तो उन्हें आराम एवं विलासिता की वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी। या अन्यथा वे उसी प्रकार नष्ट हो जायेंगे जिस प्रकार अपना भोजन भी अर्जित न कर सकने वाले घोड़ों की नस्ल नष्ट हो जाती है। यदि इंग्लैंड में सौ वर्ष पूर्व की भाँति मुख्यतया भोजन प्राप्त करने की कठिनाई के कारण श्रम की वास्तविक मजदूरी कम कर दी जाय तो हो सकता है कि श्रमिक वर्गों के लोग अपनी संख्या में कमी कर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की प्रवृत्ति से छुटकारा पाने की कोशिश करें।

किन्तु अब इंग्लैंड में कृषि साधनों के ऊपर श्रमिक लोगों की संख्या के अत्यधिक भार के कारण मजदूरी की दर नीची नहीं रहती और इसे केवल कार्यकुशलता में वृद्धि होने पर ही बढ़ाया जा सकता है।

किन्तु वे अब ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि अब इस प्रकार का कोई दबाव नहीं है। सन् 1846 ई० में इंग्लैंड में जिन कारणों से रेलों का विकास हुआ और उत्तरी दक्षिणी अमेरिका व आस्ट्रेलिया के विशाल कृषि क्षेत्रों को समुद्र से मिला दिया गया, उनमें से इंग्लैंड में बन्दरगाहों का बनाया जाना भी एक कारण था। इंग्लैंड में श्रमिकों के लिए पर्याप्त मात्रा में सबसे अनुकूल परिस्थितियों में उगाया गया गेहूँ लाया जाता है और इसकी कुल लागत उनकी मजदूरी का थोड़ा सा ही अंश है। इन लोगों की संख्या बढ़ जाने से अनेक लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकाधिक कार्यकुशलता के साथ श्रम एवं पूँजी के विनियोजन के अवसर मिलते हैं, और इस प्रकार नयी नयी प्रगति के लिए आवश्यक पूँजी के भण्डार में बड़ी तीव्रता से प्रगति होने पर मजदूरी में एक ओर जितनी वृद्धि होगी दूसरी ओर उतनी ही कमी हो जायेगी। निस्सन्देह आंग्ल वासियों पर भी क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का प्रभाव पड़ा है: वे प्रेरीज के विशाल मैदानों में जहाँ पहले कृषि नहीं होती थी, जिस थोड़े से श्रम से भोजन प्राप्त कर सकते थे उतने कम श्रम से अब भोजन प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु इनकी मुख्यतया नये नये देशों से आने वाले सम्भरण द्वारा लागत नियंत्रित होने के कारण यह इस देश की जनसंख्या में न तो वृद्धि से और न कमी से ही अधिक प्रभावित हो सकती है। यदि वे उन वस्तुओं के उत्पादन में अधिक कार्यकुशल हो सकें जिनका आयात किये गये भोजन के साथ विनिमय किया जायेगा तो चाहे इंग्लैंड की जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हो या न हो, उन्हें वास्तविक रूप में कम लागत पर भोजन प्राप्त हो सकेगा।

जब संसार के गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में पूर्ण शक्ति से कृषि की जाय (या पहले भी यदि इंग्लैंड के बन्दरगाहों तक खाद्यपदार्थ बिना किसी रुकावट के न पहुँच सके) तो वास्तव में वृद्धि होने से मजदूरी की दर घट जायेगी, या उत्पादन की कलाओं में निरन्तर होने वाले सुधारों के फलस्वरूप होने वाली वृद्धि निर्यामित हो जायेगी: और ऐसी दशा में आराम का स्तर ऊँचा होने पर जनसंख्या की वृद्धि की दर अवरुद्ध हो जाने से ही मजदूरी की दर ऊँची हो सकती है।

जनसंख्या में तथा औसत क्रियाओं में परिवर्तनों में विपर्यय।

किन्तु जहाँ इंग्लैंड के लोगों को प्रचुर मात्रा में आयात किया हुआ भोजन प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है, उनके आराम के स्तर में वृद्धि होने से उनकी संख्या में पड़ने वाले प्रभाव के कारण उनकी मजदूरी में वृद्धि नहीं हुई। यदि उनकी मजदूरी की दर में ऐसे उपायों से वृद्धि की जा सके जिनके फलस्वरूप पूंजी से प्राप्त होने वाले लाभ की दरें और भी कम हो जायें, तथा जिन्हें इंग्लैंड की अपेक्षा अन्य देशों में पूंजी लगाने में अधिक शक्ति प्राप्त हो तो इसके फलस्वरूप इंग्लैंड में पूंजी का संचय नियंत्रित हो जायेगा तथा पूँजी का शीघ्र निर्यात होने लगेगा: और उस दशा में इंग्लैंड में मजदूरी सापेक्ष एवं निर्पेक्ष दोनों रूपों में संसार की अपेक्षा कम हो जायेगी। दूसरी ओर यदि आराम के स्तर में वृद्धि होने के साथ साथ कार्यकुशलता में भी बड़ी वृद्धि हो तो जनसंख्या में वृद्धि हो या नहीं इसमे सापेक्षरूप से जनसंख्या के अनुपात की अपेक्षा राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि होगी और वास्तविक मजदूरी में लगभग स्थायीरूप से वृद्धि होगी। इस प्रकार कर्मचारियों की संख्या में 1/10 के बराबर कमी होने से, प्रत्येक कर्मचारी द्वारा पहले की भाँति ही कार्य किये जाने पर, मजदूरी में भौतिक रूप में कोई वृद्धि न होगी। अतः प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्य में 1/10 के बराबर कमी होने से, उनकी संख्या में कोई भी परिवर्तन न होने पर, मजदूरी में साधारणतया 1/10 के बराबर कमी हो जायेगी।

यहाँ तक कि श्रमिकों के किसी भी वर्ग को तब तक असाधारण ऊँची मजदूरी नहीं मिलती रहेगी जब तक कि उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि नहीं होती।

निस्सन्देह यह तर्क इस विश्वास के अनुरूप है कि श्रमिकों का एक संगठित वर्ग कुछ समय के लिए अपने श्रम को दुर्लभ बनाकर समाज के शेष लोगों को हानि होने पर भी अपनी मजदूरी में वृद्धि कर सकता है। किन्तु इस प्रकार के कूट कौशल अल्पकाल के अतिरिक्त अन्य किसी अवधि में शायद ही सफल हो सकते है। वे लाभ में हिस्सा बँटाना चाहने वाले लोगों के विरुद्ध चाहे कितने ही दृढ़ समाज विरोधी रुकावटें खड़ी कर दें बाधा पहुँचाने वाले लोग बीच में आ ही जायेंगे। इनमें से कुछ लोग उन रुकावटों के ऊपर, कुछ उनकी आड़ में तथा कुछ उनसे होकर बीच में टपक पड़ते हैं। इस बीच जिन वस्तुओं के उत्पादन में किसी ठोस वर्ग का आंशिक एकाधिकार समझा जाता था उन्हें आविष्कार द्वारा अन्य प्रकार से या किसी अन्य स्थान से प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है: और उनके लिए इससे भी हानिकारक चीज यह है कि नयी चीजों का आविष्कार कर लिया जाता है और उन्हें आमतौर पर प्रयोग में लाया जाता है। इससे लगभग समान प्रकार की आवश्यकताओं की संतुष्टि की जाती है किन्तु उनके श्रम का उपयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार कुछ समय बाद जिन लोगों ने कपटपूर्वक एकाधिकार का उपयोग करने का प्रयास किया था उनकी संख्या में कमी होने की अपेक्षा कहीं अधिक वृद्धि हो जाती है और वे यह अनुभव करते हैं कि उनके श्रम की कुल माँग घट चुकी है: ऐसी दशा में उनकी मजदूरी में बहुत कमी हो जाती है।

क्रिया के स्तर का काम के घण्टों से सम्बन्ध।

§3. औद्योगिक कार्यकुशलता तथा श्रम के घण्टों के सम्बन्ध में जटिल है। यदि कार्य का भार बहुत अधिक हो तो यह स्वाभाविक है कि लम्बे समय तक काम करने से व्यक्ति इतना थक जाय कि वह कदाचित् ही अपनी सर्वोत्तम शक्ति का परिचय दे सके, और बहुधा वह इससे बहुत ही कम कार्यकुशलता प्रदर्शित करता है या व्यर्थ में समय

व्यतीत करता है। एक सामान्य न कि सार्वभौमिक नियम के रूप में, उसका कार्य अमानी की अपेक्षा उजरत में अधिक प्रकृष्ट होता है, और ऐसी दशा में जिन उद्योगों में उजरत का कार्य किया जाता है वहाँ कार्य करने के घण्टों की अवधि का कम होना विशेषरूप से उपयुक्त है।[1]

अवकाश तथा विश्राम के सदुपयोग से किफ़ायत होती है।

जब कार्य के घण्टे किये, गये कार्य का रूप इसे करने की भौतिक परिस्थितियाँ तथा इसके लिए पारिश्रमिक प्राप्त करने की प्रणाली ऐसी हों कि इनसे शरीर या मस्तिष्क पर बहुत भार पड़े, रहन सहन का स्तर गिरने लगे, तथा कार्यकुशलता के लिए आवकाश, विश्राम तथा विश्रान्ति का अभाव होने लगे तो सम्पूर्ण समाज के दृष्टिकोण से श्रम का उसी प्रकार अपव्यय होता है जिस प्रकार किसी पूंजीपति द्वारा अपने घोड़ों या दासों से अधिक काम लेने या उन्हें भर पेट भोजन न देने से होता है। ऐसी दशा मे श्रम के घण्टो मे कुछ कमी किये जाने पर राष्ट्रीय लाभांश मे केवल अस्थायीरूप से कमी होगी' क्योंकि जीवन के सुधरे हुए रहन सहन के स्तर का श्रमिकों की कार्यकुशलता मे पूर्ण प्रभाव पड़ने से पूर्व उनकी पहले से बढी हुई शारीरिक शक्ति, बुद्धिमत्ता एवं आचरण की शक्ति से पहले से कम समय में पहले के बराबर कार्य किया जा सकता है, और इस प्रकार भौतिक उत्पादन के दृष्टिकोण से भी अन्ततोगत्वा ठीक उतनी ही हानि होगी जितनी कि एक बीमार श्रमिक को अपनी शक्ति

1 इस प्रसंग में तथ्यों पर बहुत अधिक संशय किया जाता है क्योंकि ये आंशिक रूप से विभिन्न उद्योगों में अलग अलग होते हैं, और जिन लोगों को इनके विषय में प्रौढ़ ज्ञान होता है, उनका पक्षपातपूर्ण रुख अपनाना सम्भव है। जब व्यापारिक संघों द्वारा सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत उजरत का काम किया जाता है तो संयंत्र में किये जाने वाले सुधार का सबसे पहला प्रभाव वास्तविक मजदूरी में वृद्धि करना होगा: और मजदूरी को अन्य धन्धों में समानरूप से कठिन एवं उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य द्वारा अर्जित की जाने वाली मजदूरी के ठीक अनुपात में रखने के लिए उजरत की दरों में समायोजन करने का उत्तरदायित्व मालिकों के ऊपर डाल दिया जाता है। ऐसी दशाओं में उजरत का कार्य साधारणतया कर्मचारियों के हित में होता है। जब इन लोगों का संगठन अच्छा होता हो, जैसा कि खनन कार्य करने वाले कुछ वर्गों में पाया जाता है तो वे ऐसे कार्य में भी इसे स्वीकार कर लेते हैं जो समान प्रकार का न हो। किन्तु अन्य अनेक दशाओं में इसमें अनुचित लाभ अर्जित करने के विषय में उन्हें सन्देह होने लगता है। आगे अनुभाग 8 देखिए। प्रो० रुमूलर के अनुसार यह अनुमान लगाया गया है कि श्रमिकों की जाति तथा उद्योग के रूप तथा कार्यप्रणाली के अनुसार उजरत के कार्य से उत्पादन में 20 से लेकर 100 प्रतिशत की वृद्धि होती है, Volksw'tschaftslehre, अनुभाग 208। कौल की payment of Wages, अध्याय II में उन कारणों का विस्तृत शिक्षात्मक कथन प्रस्तुत किया गया है जिनके आधार पर श्रमिक लोग साधारणतया कुछ उद्योगों में उत्पादन के अनुसार भुगतान करने की प्रणाली का विरोध करते हैं, और अन्य उद्योगों में इसका स्वागत करते हैं।

पुनः प्राप्त करने के लिए अस्पताल भेजने में होती है। आगामी पीढ़ी अत्यधिक कार्य के भार से पुरुषों और इससे भी अधिक स्त्रियों की रक्षा करने के लिए इच्छुक है। वह कम से कम इस कार्य के लिए उतनी ही इच्छुक है जितनी कि इसे भौतिक सम्पत्ति का समुचित भण्डार प्राप्त करने के लिए इच्छुक है।

निम्नतम श्रेणी के कर्मचारियों का अपवाद-जनक दृष्टान्त।

इस तर्क में यह कल्पना कर ली गयी है कि नये प्रकार के विश्राम एवं अवकाश मिलने से जीवन का स्तर ऊँचा हो जाता है। हम अब अतिश्रम की जिन चरम दशाओं पर विचार करने जा रहे हैं उनमें इस प्रकार के परिणाम का होना बिलकुल निश्चित है, क्योंकि उनमें केवल तनाव में कमी का होना प्रगति करने की दिशा में सबसे पहली आवश्यक शर्त है। ईमानदार श्रमिकों के निम्नतम श्रेणी के लोग कदाचित् ही अधिक कठिन परिश्रम करते हैं। किन्तु उनमें थोड़ी ही शारीरिक शक्ति होती है, और उनमें से अनेक लोग कार्य के भार से इतने दब नहीं रहते हैं कि सम्भवतः कुछ समय बाद वे अब कार्य करने के अधिक घण्टों वाले दिन में करते हैं।[1]

कुछ व्यवसायों में कार्य के घण्टे कम करके दो पारियों में कार्य करने से सभी को प्रायः लाभ ही होगा।

पुनः उद्योग की कुछ ऐसी शाखाएँ हैं जिनमें कीमती मशीन से दिन में नौ या दस घण्टे काम लिया जाता है, और जिनमें धीरे धीरे आठ घण्टे या उससे भी कम की दो पारियाँ प्रारम्भ करना लाभप्रद होता है। परिवर्तन धीरे धीरे ही किया जाना चाहिए, क्योंकि जहाँ कहीं भी यह परिवर्तन किया जा सके सभी वर्कशापों में तथा कारखानों में इस योजना को शीघ्र ही लागू करने के लिए कुशल श्रम पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकता। किन्तु कुछ प्रकार की मशीनें घिस जाने पर या पुरानी हो जाने पर छोटे पैमाने पर स्थानान्तरित की जा सकती हैं, और दूसरी ओर उन नयी मशीनों का अधिकांश भाग जिन्हें दस घण्टा प्रतिदिन कार्य करने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता उन्हें प्रतिदिन सोलह घण्टे के कार्य के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है और एक बार प्रयोग में लाने से उनमें और भी सुधार किये जा सकेंगे। इस प्रकार उत्पादन की कलाओं में अधिक तीव्रतापूर्वक प्रगति होगी, राष्ट्रीय लाभांश बढ़ेगा, कार्यरत व्यक्ति पूँजी की वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट पैदा किये बिना या इसे कम मजदूरी वाले देशों में विनियोजित करने के प्रलोभन के बिना अधिक ऊँची मजदूरी प्राप्त कर सकेंगे और समाज के सभी वर्गों के लोग इस परिवर्तन से लाभ उठा सकेंगे।

इस विचार का महत्व प्रतिवर्ष अधिक स्पष्ट हो रहा है, क्योंकि मशीनों के अधिक कीमती होने तथा उनका शीघ्र ही प्रचलन में न रहने के कारण कभी भी न थकने वाले लोहे तथा इस्पात को चौबीस घण्टों में से सोलह घण्टे उपयोग न करने के कारण उनका

---

1 आंग्ल उद्योगों के इतिहास में उत्पादन पर श्रम के घण्टों में परिवर्तन के प्रभाव के विषय में सबसे विविध, सबसे स्पष्ट रूप से पारिभाषित तथा सबसे अधिक शिक्षात्मक प्रयोगों का उल्लेख मिलता है: किन्तु इस विषय पर विशेषकर जर्मनी में ही अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन हुए हैं। दृष्टान्त के लिए सन् 1909 में प्रकाशित बर्नार्ड की Hohere Arbeitsintensitat bei kurzeren Arbeitzeit नामक पुस्तक को देखिए।

निरन्तर अपव्यय बढ़ता जा रहा है। किसी भी देश में इस प्रकार के परिवर्तन से निवल उपज बढ़ जायेगी, और इसलिए प्रत्येक श्रमिक की मजदूरी मे वृद्धि होगी, क्योंकि पहले की अपेक्षा उसके कुल उत्पादन मे से मशीन, संयंत्र, कारखाने के किराये इत्यादि के रूप मे वही कम प्रभार इत्यादि घटाये जायेंगे। किन्तु अंग्रेज दस्तकार जो हाथ के कार्य की शुद्धता मे अद्वितीय है तथा अविरत कार्य करने की शक्ति मे सर्वोपरि है अन्य किसी की अपेक्षा अपनी निवल उपज मे अधिक वृद्धि करेंगे, यदि वे मशीन का पूर्ण गति पर सोलह घण्टे प्रतिदिन उपयोग करते रहे भले ही वे स्वय केवल आठ ही घण्टे कार्य करते हो।[1]

---

1 इस सारे विषय पर प्रो० चैपमैन द्वारा सन् 1909 में ब्रिटिश संघ में दिये गये अभिभाषण (Economic Journal, खण्ड XIX में प्रकाशित) को देखिए।

इंग्लैंड की अपेक्षा यूरोप महाद्वीपो में दो पारियों में अधिक काम किया जाता हैं किन्तु इन पारियों को जिस रूप में प्रारम्भ किया गया है उससे इनसे मिल सकने वाले वास्तविक लाभो को नहीं आँका जा सकता क्योंकि कार्य के घण्टे इतने लम्बे है कि दो पारियों में कार्य करने पर लगभग रातभर कार्य करना पड़ता है, और रात का कार्य भी उतना अच्छा नहीं होता जितना कि दिन का। इसका आंशिक कारण यह है कि जो लोग रात में कार्य करते है वे दिन में पूर्णरूप से आराम नहीं कर पाते। इसमें संदेह नहीं कि इस योजना के विरुद्ध कुछ व्यावहारिक आपत्तियां भी खड़ी की जा सकती है। दृष्टान्त के लिए जब किसी मशीन को कार्य करने की अवस्था में बनाये रखने के कार्य का उत्तरदायित्व दो व्यक्तियों में बँट जाता है तो उसकी उतनी अच्छी तरह देख-रेख नहीं की जा सकती जितनी उसका सम्पूर्ण प्रबन्ध का कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में रहने पर की जा सकती है। कभी कभी तो कार्य में पायी जाने वाली अपूर्णताओं का उत्तरदायित्व निश्चित करना भी कठिन हो जाता है, किन्तु इस मशीन तथा इस पर किये जाने वाले कार्य को दो साझीदारों को सौंप दिये जाने पर इन कठिनाइयो को बहुत कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है। पुनः सोलह घण्टो के दिन के लिए कार्यालय के प्रबन्ध को पुनः समायोजित करने में भी कुछ कठिनाई हो सकती है। किन्तु मालिक तथा उनके फोरमैन इन कठिनाइयों को अजेय नहीं समझते, और अनुभव से यह पता लग गया है कि कामगार लोग दो पारियो में कार्य करने के लिए पहले-पहल जो अनिच्छा व्यक्त करते हैं वह शीघ्र ही दूर हो जाती है। एक पारी में कार्य करने वाले लोग दोपहर के समय अपना कार्य समाप्त कर सकते हैं तथा दूसरी पारी के लोग तुरन्त बाद में काम प्रारम्भ कर सकते हैं। या सम्भवतः यह अधिक अच्छा रहेगा कि एक पारी का समय प्रातः 5 बजे से लेकर प्रातः 10 बजे तक तथा दिन में 1–30 बजे से लेकर 4–30, बजे तक, दूसरी पारी का समय प्रातः 10–15 बजे से लेकर दिन के 1–15 तक तथा सायंकाल 4–45 बजे से लेकर रात्रि 9–45 बजे तक हो। दोनों पारियों में काम करने वाले लोग प्रतिदिन सप्ताह या प्रति माह आगे पीछे बदल बदल का कार्य कर सकते हैं। यदि प्रत्येक प्रकार के शारीरिक कार्य में कीमती मशीनों की अद्भुत शक्तियो के प्रसार के पूर्ण प्रभाव से श्रम की अवधि आठ घण्टे से

यह ध्यान रहे कि श्रम के घण्टों को कम करने का यह विशेष अभिकथन (plea) केवल उन्ही व्यवसायों पर लागू होता है जिनमें कीमती संयंत्र का प्रयोग होता है या हो सकता है, और अनेक व्यवसायों मे जैसे कि कुछ खानों मे तथा रेल-कारखानों की कुछ शाखाओं मे पारियों में काम करने की प्रणाली का पहले से ही प्रयोग किया जाता है जिससे संयंत्र से लगभग लगातार काम लिया जा सके।

किन्तु अनेक व्यवसायों में श्रम के घण्टों में कमी होने से उत्पादन घट जाता है।

अतः ऐसे अनेक व्यवसाय शेष रह जाते है जिनमे श्रम के घण्टों मे कमी करने पर उत्पादन मे तुरन्त कमी हो जायेगी और यह निश्चित है कि इनमें कार्यकुशलता में शीघ्र कोई ऐसी वृद्धि हो ही नही सकती जिससे औसत प्रति श्रमिक कार्य पुराने स्तर के बराबर हो सके। इन दशाओं में इस प्रकार के परिवर्तन से राष्ट्रीय लाभांश कम हो जायगा और इसके फलस्वरूप होने वाली भौतिक क्षति का अधिकतर भाग उन श्रमिकों के ऊपर पड़ेगा जिनके कार्य के घण्टे कम कर दिये गये है। यह सत्य है कि कुछ व्यवसायों में श्रम के अभाव के कारण शेष समुदाय की हानि होने पर भी पर्याप्त रूप से लम्बे समय तक अधिक मजदूरी प्राप्त होने लगे। किन्तु प्रायः श्रम की वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि होने से आंशिक रूप मे स्थानापन्न वस्तुओं का उपयोग बढ जाने से उनके उत्पाद के लिए माँग कम हो जाती है, और कम अनुकूल व्यवसायो से नये श्रमिक, बड़ी संख्या में आने लगते है।

साधारणतया कार्य करने के घण्टे कम करने से मजदूरी पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार करते समय यह ध्यान रहे कि तुरन्त परिणामों को निर्धारित नहीं करते, कोई भी 'कार्य-निधि निश्चित नहीं होती, और राष्ट्रीय

§4. श्रम को दुर्लभ बनाने से ही साधारणतया मजदूरी मे वृद्धि हो सकती है, इस प्रकार के आम विश्वास की सार्थकता को स्पष्ट करना उचित प्रतीत होता है। सर्वप्रथम यह समझना बड़ा कठिन है कि किसी परिवर्तन के तुरन्त तथा स्थायी प्रभाव कितने भिन्न और बहुधा यहाँ तक कि कितने प्रतिकूल होते है। लोग यह देखते आये हैं कि ट्राम कम्पनियों के कार्यालयों के बाहर जहाँ कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति प्रतीक्षा करते हैं वहाँ पहले से काम पर लगे लोग अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए प्रयत्न की अपेक्षा अपने पदों को बनाये रखने की अधिक चिन्ता करते है, और जब ये व्यक्ति वहाँ प्रतीक्षा मे नही रहते तो मालिक अधिक ऊँची मजदूरी की माँग का विरोध नही कर सकते। वे इस तथ्य पर पहुँचते है कि यदि ट्राम गाड़ियों में काम करने वाले व्यक्तियों के काम के घण्टे कम कर दिये जायं और विद्यमान मार्गों मे जितने क्षेत्र तक कारें चलती हैं उस मे कोई कमी न हो तो अधिक व्यक्तियो को काम पर नियुक्त करना चाहिए और सम्भवतया उनकी प्रति घण्टे या प्रतिदिन की मजदूरी भी अधिक निश्चित करनी चाहिए। वे यह उचित समझते हैं कि जब कोई उद्यम, जैसे इमारत या जहाज बनाने का उद्यम, प्रारम्भ कर लिया जाता है तो इसे किसी भी लागत पर अवश्य पूरा करना चाहिए क्योंकि इसे अपूर्णरूप मे छोड़ देने से कुछ भी लाभ प्राप्त नही हो सकता: और किसी भी व्यक्ति द्वारा इस कार्य को जितना ही अधिक सम्पन्न कर दिया जायेगा शेष व्यक्तियों के लिए उतना ही कम कार्य शेष रहेगा।

बहुत कम की जा सके तो सामान्यरूप में दो पारियों में कार्य करने की प्रणाली को अपनाना आवश्यक हो जायेगा।

लाभांश को निर्दिष्ट करने के प्रत्येक प्रयास का श्रमिक वर्गों पर भी आंशिक प्रभाव पड़ता है।

किन्तु उन अन्य परिणामों पर विचार करना चाहिए जो बलपूर्वक कम ध्यान आकर्षित करने पर भी महत्वपूर्ण है। दृष्टान्त के लिए यदि ट्राम में लगे मिस्त्री काल्पनिक रूप से अपने श्रम मे कमी कर दे तो ट्राममार्गों का प्रसार रुक जायेगा, ट्रामगाड़ियों को बनाने तथा उन्हें चलाने मे अपेक्षाकृत कम लोग नियुक्त किये जायेंगे। अनेक श्रमिक तथा अन्य व्यक्ति जो अन्यथा घोड़े पर बैठकर शहरों को जाते वे अब पैदल ही जायेंगे। अनेक लोग जिनके पास उपपौर में बगीचे थे तथा जिन्हे ताजी हवा मिलती थी वे शहरो मे एकदम खचाखच भरे हुए होंगे। अन्य लोगों की भाँति श्रमिकन वर्गों के लोग जितने अच्छे निवास स्थान मे अन्यथा रहते अब उतने अच्छे निवास स्थान का किराया नही द सकेंगे। इसके फलस्वरूप भवन निर्माण कार्य अपेक्षाकृत कम होगा।

सक्षेप में यह तर्क कि श्रम मे कमी कर देने से मजदूरी मे स्थायी वृद्धि की जा सकती है इस मान्यता पर आधारित है कि वहाँ स्थायी रूप से एक निश्चित कार्यविधि होती है, अर्थात् कुछ निश्चित प्रकार का कार्य होता है चाहे श्रम के लिए कितनी भी मजदूरी क्यो न दी जाय। इस मान्यता की नीव कुछ भी नही है। इसके विपरीत कार्य के लिए माँग राष्ट्रीय लाभाश के कारण होती है, अर्थात् यह कार्य करने से होती है। एक प्रकार का कार्य जितना ही कम होगा अन्य प्रकार के कार्यों के लिए भी माँग कम हो जाती है, और यदि श्रम का अभाव हो तो अपेक्षाकृत थोड़े ही उद्यम प्रारम्भ किये जायेंगे।

पुनः रोजगार की स्थिरता उद्योग एवं व्यापार के संगठन पर तथा सम्भरण का प्रबन्ध करने वाले लोगो की माँग एवं कीमत मे होने वाले परिवर्तनो का पूर्वानुमान लगाने तथा उसमे तदनुरूप समायोजन करने की सफलता पर निर्भर रहती है। किन्तु दिन मे कम घण्टों तक कार्य करने की अपेक्षा अधिक घण्टो तक कार्य करने से उक्त कार्य भलाभाँति नही हो सकेगा। वास्तव मे यदि दिन मे कार्य की अवधि कम कर दी जाय किन्तु दो पारियो मे कार्य करने की पद्धति का प्रारम्भ न किया जाय तो इससे उस कीमती यन्त्र का उपयोग नहीं किया जायगा जिसे वहाँ लगाने पर मालिक अपना कार्य बन्द करने के लिए इच्छुक नही रहते। काम कम करने के प्रत्येक काल्पनिक ढग से तनाव पैदा हो जाता है और इसलिए इससे रोजगार की अस्थिरता कम होने की अपेक्षा बढ़ जाती है।

यह सत्य है कि यदि पलस्तर करने वाले श्रमिक या मोची बाह्य प्रतियोगिता को रोक सकें तो उनमे से प्रत्येक द्वारा किय गये कार्य मे श्रम के घंटे कम कर दिये जाने पर या किसी अन्य प्रकार से केवल कमी होने से ही उनकी मजदूरी बढ़ाये जाने के अच्छे अवसर दिखायी देते है, किन्तु ये लाभ राष्ट्रीय लाभाश मे मजदूरों मे जो कि देश में सभी उद्योगो मे मजदूरी तथा लाभ प्राप्त करने का स्रोत है, हिस्सा बँटाने वाले अन्य लोगों को अधिक क्षति पहुँचने से ही मिल सकते है। यह निष्कर्ष इस तथ्य पर आधारित है कि व्यापारिक सघ की दावपेंच द्वारा मजदूरी मे वृद्धि होने के सबसे प्रबल दृष्टान्त उद्योग की शाखाओ मे मिलते है जहाँ उनके श्रम के लिए माग प्रत्यक्ष न होकर ऐसे उत्पादन की मांग से व्युत्पन्न होती है जिसे बनाने में उद्योग की अनेक शाखाएँ सहयोग रती है: किन्तु जो शाखा इस प्रकार की दावपेंच मे प्रवीण होती है वह

अन्तिम उत्पादन की कीमत के कुछ भाग को, जो कि अन्यथा अन्य शाखाओं को प्राप्त होता, स्वयं प्राप्त कर सकती है।[1]

§5. हम अब इस विश्वास की सार्थकता के दूसरे कारण पर विचार करेंगे कि श्रम के सम्भरण मे साधारणतया स्थायीरूप से नियंत्रण होने के फलस्वरूप मजदूरी में वृद्धि की जा सकती है, पूँजी के सम्भरण मे इस प्रकार के परिवर्तन के प्रभावों को यह कारण पूर्णरूप में व्यक्त नहीं करता।

पूँजीपति को राष्ट्रीय लाभांश में नियंत्रण के फलस्वरूप होने वाली क्षति का एक सीमित भाग सहन करना पड़ता है।

यह एक तथ्य है और महत्वपूर्ण तथ्य है कि (उदाहरण के लिए) पलस्तर करने वाले श्रमिकों या मोचियों द्वारा उत्पादन कम कर देने पर जो क्षति होगी उसका कुछ हिस्सा उन लोगों पर भी पड़ेगा जो श्रमिक वर्गों में नहीं आते। इसमें सन्देह नहीं कि इसका कुछ भाग मालिकों तथा पूँजीपतियों पर पड़ेगा जिनकी निजी तथा भौतिक पूँजी भवन-निर्माण या जूते बनाने में बँधी पड़ी है, तथा कुछ भाग मकानों तथा जूतों का उपयोग करने वाले समृद्ध व्यक्तियों या उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। यदि श्रमिक वर्गों के सभी लोग अपने श्रम की प्रभावोत्पादक पूर्ति को नियंत्रित कर ऊँची मजदूरी प्राप्त करना चाहें तो राष्ट्रीय लाभांश मे होने वाली कमी के फलस्वरूप पड़ने वाले भार का उल्लेखनीय भाग देश के अन्य वर्गों के ऊपर और विशेषकर कुछ समय तक पूँजीपतियों के ऊपर डाल दिया जायगा: किन्तु ऐसा केवल कुछ ही समय तक सम्भव है। क्योंकि पूँजी के विनियोजनों के निवल प्रतिफल मे उल्लेखनीय कमी होने के फलस्वरूप इसकी नयी मात्राओं का विदेशों मे विनियोजन होने लगगा। इस संकट के विषय मे वास्तव मे कभी कभी यह दृढ़तापूर्वक कहा जाता है कि देश की रेलों तथा कारखानों का निर्यात नहीं किया जा सकता। किन्तु लगभग सभी वस्तुओं तथा उत्पादन के उपकरणों के बहुत बड़े भाग का प्रतिवर्ष उपभोग कर लिया जाता है, या वह घिस जाता है या प्रचलन मे नहीं रहता, और इसलिए उन्हें प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता होती है। प्रतिस्थापना की मात्रा में तथा साथ ही साथ इस प्रकार मुक्त हुई पूँजी के कुछ भाग के निर्यात के फलस्वरूप कुछ ही वर्षों में श्रम की प्रभावोत्पादक माँग इतनी कम हो जायगी कि इस प्रतिक्रिया में मजदूरी साधारणतया अपने वर्तमान स्तर से बहुत घट जायगी।[2]

---

1 भाग 5, अध्याय 6, अनुभाग 2 देखिए।

2 दृष्टान्त के रूप में हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि मोची तथा टोप बनाने वाले लोग श्रम के घंटों में सामान्य रूप से कमी होने के पूर्व तथा पश्चात् एक ही श्रेणी के कार्य में लगे हुए है, उनके कार्य करने के घण्टे बराबर होते हैं तथा उन्हें समान मजदूरी प्राप्त होती है। ऐसी दशा में इस परिवर्तन के पूर्व तथा पश्चात् टोप बनाने वाला एक महीने से उतने ही जूते खरीदेगा जितने कि जूता बनाने वाला एक महीने में तैयार करेगा (भाग 6, अध्याय 2, अनुभाग 2 देखिए) यदि जूता बनाने वाला पहले की अपेक्षा कम घण्टे काम करे और परिणामस्वरूप काम भी कम किया गया हो, यदि दो पारियों में कार्य करने की प्रणाली को अपनाने से मालिक तथा उसकी पूँजी को उनमें काम करने वाले श्रमिकों से लाभ प्राप्त न हो या उसके लाभ में उत्पादन

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरी आन्दोलन तथा इनकी सीमित सम्भाव्यताएँ।

किन्तु यद्यपि पूंजी के बहिर्गमन में किसी भी प्रकार से अधिक कठिनाई नहीं होगी, इस पर भी पूंजीपति अच्छे व्यावसायिक कारणों तथा भावनात्मक रुझान के कारण इसे देश में ही विनियोजित करना चाहते हैं। अतः जीवन के स्तर में वृद्धि होने से कुछ सीमा तक विनियोजनों से प्राप्त होने वाले निवल प्रतिफल में कमी होने की प्रवृत्ति के कारण पूंजी के निर्यात होने में कुछ रुकावट पैदा हो जाती है। इसके विपरीत उत्पादन को कम करने की समाज विरोधी कपट-योजना से मजदूरी बढ़ाने के प्रयास के कारण सामान्यरूप से समृद्ध लोग विदेशों में जाने के लिए बाध्य हो जाते हैं, और इस विषय पर पूंजीपतियों के उस वर्ग के लोग जिनकी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की साहसिकता एवं प्रसन्नता श्रमिक वर्गों के लिए बड़े ही महत्व की है। क्योंकि उनके अविरत प्रोत्साहन से राष्ट्र पर नेतृत्व करने की शिक्षा मिलती है, और मनुष्य के कार्य से वास्तविक मजदूरी में वृद्धि सम्भव होती है, उन उपकरणों का सम्भरण बढ़ता है जिनसे कार्यकुशलता प्राप्त करने में सहायता मिलती है, और राष्ट्रीय लाभांश में निरन्तर वृद्धि होती है।

यह भी सत्य है कि किसी भी प्रकार विश्व भर में मजदूरी में सामान्यरूप में वृद्धि होने से इसके किसी भाग से दूसरे भाग को पूंजी नहीं भेजी जायेगी। यह आशा की जाती है कि समय आने पर मुख्यतया उत्पादन में वृद्धि होने से, किन्तु आंशिक रूप से ब्याज की दर में सामान्य कमी तथा व्यापक अर्थ में दक्ष कार्य एवं संस्कृति के साधन प्रदान करने के लिए आवश्यकता से अधिक आय में सापेक्षरूप में—यदि निरपेक्ष रूप में न हो—कमी के कारण शारीरिक श्रम के लिए अधिक मजदूरी प्राप्त हो सकेगी। किन्तु मजदूरी में वृद्धि करने की जिन प्रणालियों से कार्यकुशलता में वृद्धि की अपेक्षा कमी करने पर आराम के स्तर को ऊँचा किया जा सकता है, वे इतनी समाज विरोधी तथा संकुचित दृष्टिकोण वाली हैं कि इनसे शीघ्र ही प्रतिशोध लेने की भावना उमड़ पड़ती है, और इस बात की थोड़ी ही सम्भावना है कि इन्हें संसार के किसी बड़े भाग में अपनाया जायगा। यदि अनेक देश इसी प्रकार की प्रणालियों को अपनायें तो वे अन्य देश जो तुरन्त ही जीवन तथा कार्यकुशलता के स्तर को बढ़ाना चाहते हैं, अनुचित नियंत्रणकारी नीति अपनाने वाले देश से अधिकांश पूंजी तथा सर्वोत्तम काम करने वाले लोगों को आकर्षित कर लेंगे।

इस प्रकार की दशाओं में अनुभव होने का

§6 इस विवेचन में सामान्य तर्क को अपनाना आवश्यक हो गया है: क्योंकि प्रत्यक्षतः अनुभव होने का दावा करना कठिन है, और यदि ऐसा बड़े जोर से नहीं किया गया तो इससे केवल भ्रम ही पैदा हो सकता है। चाहे हम इस परिवर्तन के तुरन्त बाद के या लम्बे समय के बाद के मजदूरी तथा उत्पादन से सम्बन्धित आँकड़े

में हुई कमी के बराबर ही कटौती न हुई हो तो उसके श्रम का एक महीने का निवल उत्पाद कम हो जायेगा। यह अन्तिम मान्यता पूंजी तथा व्यावसायिक शक्ति के सम्भरण को नियंत्रित करने वाले कारणों के अनुरूप नहीं है। अतः टोप बनाने वाला अपनी मजदूरी से पहले की अपेक्षा कम जूते खरीद सकेगा और अन्य व्यवसायों में भी यही बात लागू होगी।

ही क्यों न देखें, मुख्य बातें उन कारणों पर निर्भर प्रतीत होंगी जिन पर हम विचार करना चाहते हैं।

बाधा करने की कठिनाइयाँ।

इस प्रकार यदि कार्य के घण्टों में सफल हड़ताल के कारण कमी हुई हो तो यह सम्भव है कि हड़ताल के लिए चुना गया समय ऐसा था जब कामगरों की सामरिक स्थिति अच्छी थी और जब व्यापार की सामान्य दशाएँ ऐसी थीं कि श्रम के घण्टों में कमी किये बिना मजदूरी में वृद्धि हो सकती थी; और इसलिए मजदूरी में परिवर्तन के तुरन्त परिणाम वास्तव में जितने अनुकूल थे उससे अधिक प्रतीत हुए। पुनः अनेक मालिक ऐसी संविदाएँ स्वीकार करके जो कि अवश्य पूरी करनी होंगी, कुछ समय के लिए घण्टों के दैनिक कार्य के लिए पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचा वेतन दे सकते है। किन्तु यह एकाएक परिवर्तन होने का ही परिणाम है और प्रारम्भ में किया जाने वाला आडम्बर मात्र है। और जैसा कि अभी-अभी कहा जा चुका है, इस प्रकार के परिवर्तन के बाद में होने वाले परिणाम तुरन्त दिखाई देने वाले परिणामों के विपरीत होते हैं और वे अधिक स्थायी होते है।

दूसरी ओर लोगों को अधिक काम करना पड़ता हो तो दैनिक कार्य के घण्टे कम कर दिये जाने से वे शीघ्र हृष्ट-पुष्ट नहीं हो जायेंगे : श्रमिकों की शरीरिक एवं नैतिक दशा में सुधार तथा इसके परिणामस्वरूप कार्यकुशलता और इसलिए मजदूरी में वृद्धि होने का तुरन्त प्रतिफल नही मिल सकता।

दैनिक कार्य के घण्टों में कमी होने के सैकड़ों वर्ष बाद उत्पादन तथा मजदूरी के आँकड़े देश की समृद्धि में और विशेषकर विचाराधीन व्यवसाय उत्पादन की प्रणालियों तथा द्रव्य में होने वाले परिवर्तनों को व्यक्त करते हैं: और जिस प्रकार समुद्र में आयी हुईं लहरों में पत्थर फेंके जाने पर अशान्त समुद्र में उठने वाली लहरो से उन पत्थरों के प्रभाव को पृथक नहीं किया जा सकता उसी प्रकार श्रम के घण्टों में कमी होने के प्रभावों का पता लगाना कठिन है।[1]

---

1 दृष्टान्त के लिए आस्ट्रेलिया में दैनिक कार्य की अवधि आठ घण्टे रखने के इतिहास पर विचार करते समय हम यह देखेंगे कि खानों की समृद्धि तथा सोने के सम्भरण में, भेड़-पालन तथा ऊन की कीमत में, आस्ट्रेलिया के श्रमिकों को रेल की लाइनें बिछाने इत्यादि में रोजगार प्रदान करने के लिए पुराने देशों से पूंजी उधार लेने में विदेश निवास तथा वाणिज्यिक साख में, बड़े बड़े उतार चढ़ाव देखने को मिलते हैं। इन सभी कारणों का आस्ट्रेलिया के कामगर को दशा में परिवर्तन लाने में इतना महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है कि कुल मिलाकर 10 घण्टे (भोजन के समय को घटाकर निवल $8\frac{3}{4}$ घण्टे) से घटाकर कार्य की अवधि निवल 8 घण्टे कर दिये जाने के प्रभाव पूर्णरूप से दृष्टि से ओझल हो गये है। आस्ट्रेलिया में कार्य के घण्टों में कमी होने के पूर्व जो द्रव्यिक मजदूरी मिलती थी वह उसके बाद उससे कहीं कम मिली, और यद्यपि यह सत्य है कि द्रव्य की क्रयशक्ति बढ़ गयी है, जिससे वास्तविक मजदूरी में कमी नहीं हुई है, इस पर भी इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि आस्ट्रेलिया में श्रम की वास्तविक मजदूरी इंग्लैंड की अपेक्षा उतनी अधिक नहीं रही जितनी की श्रम के

अतः हमें इन दो प्रश्नों से भ्रम मे नहीं पड़ना चाहिए कि किसी कारण से कोई प्रभाव पैदा होता है या उस कारण के बाद उस प्रभाव का होना निश्चित है। किसी हौज का जलद्वार खोल देने से उसमें पानी का स्तर गिर जाता है, किन्तु यदि उस हौज में दूसरी ओर से उसमे अधिक जल प्रवाहित होने लगे तो जलद्वार खोल देने से जलाशय मे पानी का स्तर ऊँचा उठ सकता है। इसी प्रकार कार्य के घण्टे कम हो जाने से उन व्यवसायों में उत्पादन घटने लगेगा जिनमे पहले से अधिक घण्टे काम करना पड़ता था तथा जिनमें दो पारियों मे काम करने की आवश्यकता न थी। किन्तु यह सम्भव है कि सम्पत्ति तथा ज्ञान मे सामान्य प्रगति होने के फलस्वरूप कार्य की अवधि कम कर दिये जाने पर भी उत्पादन मे वृद्धि होने लगे। किन्तु ऐसी दशा में कार्य के घण्टे कम न करने पर भी न कि इनमें कमी किय जाने के कारण ही मजदूरी मे वृद्धि होगी।

हम अब जीवन, कार्य तथा मजदूरी के स्तरो पर व्यापारिक संघों के प्रभावों पर विचार करेंगे।

§7. आधुनिक इंग्लैंड में जिन आन्दोलनों पर हम अभी विचार करते आये हैं लगभग वे सभी व्यापारिक संघों से सचालित किये जाते हैं। वर्तमान खण्ड में इन सघो के उद्देश्यो एव परिणामों का पूर्ण मूल्यांकन करना इस खण्ड के बाहर है: क्योंकि इस मूल्यांकन का आधार औद्योगिक एवं वैदेशिक व्यापार मे होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित संगठनों का अध्ययन करना होना चाहिए। किन्तु उनकी नीति के उस भाग के विषय में चन्द शब्द कहे जा सकते हैं जो जीवन तथा कार्य और मजदूरी के स्तरों से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है।[1]

किसी पीढी में किसी श्रेणी के श्रमिकों के उपार्जन एवं उनकी औद्योगिक नीति द्वारा बाद में आने वाली पीढी में उसी श्रेणी के लोगों की कार्यकुशलता एवं अर्जनशक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव उद्योग की निरन्तर बढ़ती हुई परिवर्तनशीलता के कारण धूमिल

घण्टों में कमी होने के पूर्व थी: और यह भी सिद्ध नहीं किया गया है कि यह परिवर्तन न होने पर जितनी कम होती उससे कम नहीं है। इस परिवर्तन के कुछ ही बाद आस्ट्रेलिया में जिन वाणिज्यक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनका कारण मुख्यतया साख में अन्धाधुन्ध प्रसार होने के साथ-साथ लगातार अकस्मात सूखा पड़ना भी रहा है। किन्तु इसका एक कारण यह भी रहा है कि श्रम के घण्टों को कम करने से होने वाली आर्थिक कार्यकुशलता का कहीं अधिक आशापूर्ण अनुमान लगाया गया जिसके परिणाम उन उद्योगों में भी कार्य के घण्टे कम हो गये जहाँ ऐसा करना उपयुक्त न था।

1 व्यापारिक संघों का एक संक्षिप्त सामयिक वर्णन मेरी Elements of Economics पुस्तक में, जो अन्य बातों में इस ग्रन्थ का ही संक्षिप्त रूप है, खण्ड 1 में दिया हुआ है। सन् 1893 में श्रम आयोग की अन्तिम रिपोर्ट में इनके उद्देश्यों तथा इनकी प्रणालियों का जो वर्णन दिया गया है उसका अनूठा महत्व है क्योंकि इसमें असाधारण योग्यता वाले मालिकों तथा अनुभव तथा व्यापारिक संघों के नेताओं ने सहयोग दिया है।

पड़ जाते है।[1] जिस पारिवारिक आय से कम आयु वाले सदस्यों के पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण के खर्चों का भुगतान करना चाहिए वह अब शायद ही एक व्यवसाय से अर्जित की जाती है। लड़के अपने पिता के पेशे मे बहुत कम लगते हैं: जिन सुदृढ एवं कठोर परिश्रम करने वाले लोगों के पालन-पोषण में किसी पेशे से प्राप्त आय का योगदान रहा है वे अन्यत्र इससे भी अच्छी आजीविका प्राप्त करने की तलाश करते है, जब कि निर्बल तथा भोगासक्त लोग इससे भी घटिये पेशे अपना लेते है। अतः इस प्रश्न पर अनुभव प्रयोग करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है कि किसी व्यापारिक संघ द्वारा अपने सदस्यों की मजदूरी बढ़ाने के लिए किये गये प्रयासों का बाद की पीढ़ी मे आने वाले उन लोगों के जीवन तथा कार्य के स्तर को ऊँचा उठाने मे कितना हाथ रहा है जो उस ऊँची मजदूरी की सहायता से पले है। किन्तु कुछ स्थूल तथ्य तो स्पष्टरूप मे दिखायी देते है।

उनके पहले के प्रयत्नों का उनके जीवन एवं आचरण के स्तर को ऊँचा उठाने में उतना ही हाथ रहा है जितना कि उनकी मजदूरी को बढ़ाने में हाथ रहा है।

आग्ल व्यापारिक संघों के मूल उद्देश्य जीवन के स्तर से उतने ही घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे जितने मजदूरी की दर से सम्बन्धित थे। उन्हें सर्वप्रथम इस बात से गहन प्रेरणा मिली कि कानून का इस बात के लिए कुछ अंशो मे प्रत्यक्षरूप मे और कुछ अंशों में अप्रत्यक्षरूप मे समर्थ न रहा कि मालिक अपने निजी काल्पनिक हितों की दृष्टि से मजदूरी की दरों को नियंत्रित करने के लिए संगठन बनावें और कर्मचारियों के बीच इस प्रकार के संगठन बनाने मे कठोर दण्ड की घोषणा कर इसका निषेध करे।

इस कानून से मजदूरी की दर कुछ घट गयी, किन्तु इससे कामगरों की शक्ति एवं चारित्रिक विशालता को कही अधिक आघात पहुँचा। उनका क्षितिज साधारणतया इतना सीमित था कि वे राष्ट्रीय विषयों मे अत्यधिक रुचि रखने तथा उन्हें भली भाँति समझने पर भी अपनी निजी समस्याओ से पूर्णरूप से छुटकारा नही पा सकते थे: अतः उन्हें तुरन्त अपने परिवार तथा अपने पड़ोसियों से सम्बन्धित विषयों के अतिरिक्त अन्य किसी सार्वजनिक पहलू पर न तो कभी विचार किया और न उसकी परवाह ही की। स्वयं अपने पेशे मे संगठित होने की स्वतन्त्रता से उनका क्षितिज व्यापक हो सकता था, और उन्हें अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर सोच विचार करने का अवसर मिल गया होता: इससे उनके सामाजिक कर्तव्य का स्तर ऊँचा उठ गया होता भले ही उनके इस कर्तव्य मे पर्याप्त वर्गीय स्वार्थपरायणता आ जाने के कारण बुराइयाँ पैदा हो सकती था। इस प्रकार प्रारम्भ में कामगर लोगो को संगठित होकर ठीक उन कार्यों के प्रतिरूप कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिनके लिए मालिक संगठित होकर कार्य करने के लिए स्वतन्त्र थे, जो संघर्ष करना पड़ा वह वास्तविक रूप मे आत्मसम्मान तथा स्थूल सामाजिक हितों के अनुरूप जीवन व्यतीत करने के लिए उतना ही एक प्रयास था जितना कि ऊँची मजदूरी प्राप्त करने का प्रयास था।

अब इस क्षेत्र मे पूर्ण सफलता मिल चुकी है। व्यापारिक संघ बनाने से कुशल दस्तकार तथा अनेक अकुशल वर्गों के श्रमिक अपने मालिकों के साथ उसी गंभीरता,

1 भाग 6, अध्याय 3, अनुभाग 7 तथा अध्याय 5, अनुभाग 2 से तुलना कीजिए।

आत्मनियंत्रण, सम्मान तथा पूर्व विचार के अनुसार समझौता-वार्ता कर सकते है जिसके अनुसार महान राष्ट्रों के बीच कूटनीति की बातें होती हैं। इससे वे सामान्यरूप में यह स्वीकार करने लगे हैं कि एकमात्र आक्रमणकारी नीति मूर्खतापूर्ण लाभदायक शान्ति बनाये रखना है।

मजदूरी में समायोजन करने वाले मण्डलों पर आचरण में पड़ने वाले इस प्रभाव को ध्यान में रखा है और ये मण्डल अच्छा कार्य कर रहे हैं।

ब्रिटेन के अनेक उद्योगों में मजदूरी में समायोजन करने वाले मण्डल नियमित रूप से तथा निर्विघ्न कार्य करते रहे हैं, क्योंकि वहाँ लोगों में व्यर्थ की बातों पर शक्ति क्षीण न करने की प्रबल इच्छा है। यदि कोई कर्मचारी अपने मालिक या अपने फोरमैन द्वारा अपने कार्य या पारिश्रमिक के विषय में किये गये निर्णय पर आपत्ति उठाता है तो मालिक सर्वप्रथम व्यापारिक संघ के सचिव को फैसला करने के लिए बुलाता है: उसके द्वारा दिया गया अन्तिम निर्णय मालिक को साधारणतया मान्य होता है, और निस्सन्देह कर्मचारी को भी इसे मानना अनिवार्य है। यदि उसके इस विशेष निजी झगड़े में सिद्धान्त की बात भी शामिल हो जिस पर मण्डल कोई स्पष्ट समझौता न कर सके तो उस विषय को मालिकों के संघ के सचिवों के पास तथा व्यापारिक संघों के सम्मेलन में विवेचन के लिए भेज दिया जाता है: यदि वे सहमत न हो सकें तो इसे मण्डल को सौंप दिया जाता है। अन्त में यदि झगड़े का विषय पर्याप्तरूप से बड़ा हो और कोई भी पक्ष सहमत होने के लिए तैयार न हो तो इस झगड़े का निपटारा हड़ताल या तालाबन्दी से किया जाता है। किन्तु फिर भी अनेक पीढ़ियों में व्यवस्थित व्यापारिक संघों की अच्छी सेवाओं का इस वाद-विवाद में भाग रहता है, और मालिकों तथा कर्मचारियों के बीच एक शताब्दी पूर्व हुए वाद-विवाद के ढंग से उतना ही अधिक भिन्न है जितना कि आधुनिक सभ्य देशों के बीच का सम्मानीय युद्ध जंगली देशों के लोगों के बीच लुक-छिपकर किये जाने वाले घमासान युद्ध से भिन्न है। किसी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भाग लेने वाला आंग्ल शिष्टमंडल किसी ठोस उद्देश्य में आत्मनियंत्रण तथा संयत आचार प्रदर्शित करने के कारण अन्य शिष्ट मण्डलों में विशेष स्थान प्राप्त कर लेता है।

'कुलीन लोग' अनुग्रहीत करते हैं।

किन्तु व्यापारिक संघों ने जो महान सेवाएँ अर्पित की हैं उससे उनमें तदनुरूप कर्तव्यता की भावना आ गयी है। कुलीन लोग अनुग्रहीत करते है: और वे उन लोगों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं जो किसी खास प्रकार से, विशेषकर समाज-विरोधी कार्यों से, मजदूरी में वृद्धि करने की समर्थता का बढ़ा-चढ़ा कर गुणगान करते हैं। वास्तव में कुछ ऐसे भी आन्दोलन है जिनकी भर्त्सना की जा सकती है: लगभग हर महान तथा अच्छे कार्य में कुछ विध्वंसकारी प्रभाव छिपा रहता है। किन्तु बुराई को आमूल नष्ट कर देना चाहिए, और इसकी सतर्कतापूर्वक जाँच की जानी चाहिए जिससे यह पनप न सके।

व्यापारिक संघों का सामान्य नियम ही मुख्य यंत्र

§8. व्यापारिक संघों ने जिस मुख्य यंत्र से अपने मालिकों के साथ-समान स्तर पर समझौता-वार्ता करने की शक्ति प्राप्त की वह समान स्तर के प्रति घण्टे के कार्य के लिए या समान श्रेणी के उजरती काम के लिए मानक मजदूरी देने का 'सामान्य नियम' है। प्रथा तथा शान्ति के न्यायाधीशों द्वारा मजदूरी के वस्तुतः निरर्थक अंकन से जहाँ कामगर की प्रगति में बाधा पड़ी है वहाँ उस पर अत्यधिक दबाव डाले

जाने से भी रक्षा की है। किन्तु जब मुक्त रूप में प्रतियोगिता होने लगी तो विलग कामगरों को अपने मालिकों के साथ सौदा करने में हानि उठानी पड़ी। क्योंकि यहाँ तक कि एडम स्मिथ के समय में भी उनमें यह औपचारिक या अनौपचारिक समझौता था कि मालिक श्रम किराये पर लेने में एक दूसरे से अधिक मजदूरी देने के लिए तैयार नहीं होंगे। समय के व्यतीत होने के साथ साथ जब एक ही फर्म में बहुधा अनेक हजार कामगर नियुक्त किये जाने लगे तो स्वयं उस फर्म ने एक छोटे व्यापारिक संघ से अधिक बड़े तथा अधिक ठोस सौदाकार का रूप लिया।

है चाहे इसमें भलाई हो या बुराई।

यह सत्य है कि मालिकों के बीच श्रम को एक दूसरे से अधिक मजदूरी न देने के लिखित तथा अलिखित समझौते सार्वभौमिक नहीं थे और इनका बहुधा उल्लंघन किया गया। यह सत्य है कि जब अतिरिक्त श्रमिकों के कार्य से प्राप्त होने वाला निवल उत्पाद उनको दी जाने वाली मजदूरी से बहुत अधिक हो तो एक प्रगतिशील मालिक अपने अन्य साथियों के रुष्ट होने के भय का सामना कर सकता है, और अधिक ऊँची मजदूरी द्वारा श्रमिकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है: और यह सत्य है कि प्रगतिशील औद्योगिक क्षेत्रों में इस प्रतियोगिता से श्रमिक वर्गों के अधिकतर लोग लम्बे समय तक अपने निवल उत्पाद के मूल्यांक से कम मजदूरी प्राप्त नहीं कर सके। यहाँ इस तथ्य को पुन. स्वीकार करना पड़ेगा कि सामान्य कार्यकुशलता वाले श्रमिक की मजदूरी जिस निवल उत्पाद के बराबर होती है वह सामान्य कार्यकुशलता वाले श्रमिक का निवल उत्पाद है: क्योंकि 'सामान्य नियम' को अधिकतम रूप में लागू करने के हिमायती लोगों ने यह सलाह दी है कि प्रतिस्पर्द्धा से कार्य कुशल व्यक्ति की मजदूरी उस व्यक्ति के निवल उत्पाद के बराबर हो जाती है जो इतना अधिक अकुशल हो कि मालिक को उसे काम पर नियुक्त करने के लिए बहुत कम सहमत किया जा सके।[1]

मालिकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा होने से श्रम की मजदूरी में निवल उत्पाद के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है, यद्यपि प्रत्येक वर्ग की मजदूरी उस वर्ग की कार्य कुशलता के अनुसार निश्चित होगी।

---

1 व्यापारिक संघों के नेताओं द्वारा अनेक दशाओं में सामाजिक हित वृद्धि के लिए जो सुन्दर प्रभाव डाले जाते हैं उन पर इस विषय में गलत धारणा पैदा हो जाने के कारण कटुता का आना स्वाभाविक है। वे साधारणतया श्री तथा श्रीमती वेब (Webb) द्वारा लिखित Industrial Democracy के बहुत महत्वपूर्ण एवं योग्य ग्रन्थ को अपने विचारों के पक्ष में उद्धृत करते हैं। इस प्रकार पृष्ठ 710 में वे कहते हैं कि, 'हमारे द्वारा 'अर्थशास्त्री के अन्तिम निर्णय' पर लिखे गये अध्याय की भाँति अब यह सैद्धान्तिक रूप से प्रदर्शित किया जा चुका है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत तथा विभिन्न पेशों में पूर्ण गतिशीलता होने पर मजदूरी का सामान्य स्तर उस सीमान्त श्रमिक के निवल श्रम से अधिक नहीं हो सकता जिसे रोजगार प्राप्त होना बिलकुल ही कठिन है।' पृष्ठ 787 के फुटनोट में वे इस सीमान्त श्रमिक को औद्योगिक पंगु या दरिद्र की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि "यदि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के श्रम की मजदूरी उस श्रेणी के उस सीमान्त श्रमिक के अतिरिक्त श्रम से उत्पन्न निवल उत्पाद से अधिक न हो जिसे रोजगार का मिलना बिलकुल कठिन हो, तो दरिद्र लोगों को केवल उनके लिए उत्पादक श्रम से ही अलग न कर

उनकी प्रतिस्पर्द्धा से साधारणतया मजदूरी अकुशल श्रमिक के निवल उत्पाद के अनुसार समायोजित नहीं होती।

किन्तु वास्तव में प्रतिस्पर्द्धा का इस प्रकार का प्रभाव नही पड़ता। इसके फलस्वरूप समान प्रकार के रोजगारों मे मजदूरी की साप्ताहिक दरें बराबर नही होती: यह उन दरों को श्रमिकों की कार्यकुशलता के अनुसार समायोजित करती है। यदि अ व से दुगुना कार्य करे तो इस संदेह मे पड़ा हुआ मालिक कि क्या अतिरिक्त श्रमिकों को रखना लाभदायक होगा, अ को चार शिलिंग पर तथा व एव किसी अन्य व्यक्ति को दो-दो शिलिंग पर रखकर समान लाभ प्राप्त करेगा। जिन कारणों से मजदूरी नियंत्रित होती है उन्हें अ के सीमान्त को चार शिलिंग पर तथा व के सीमान्त को दो शिलिंग पर देखने पर भलीभाँति जाना जा सकता है।[1]

वास्तविक मानकीकरण सामाजिक दृष्टि से लाभकारी है।

§9. अत. स्थूल मे यह कहा जा सकता है कि व्यापारिक संघो ने श्रम एव मजदूरी के वास्तविक मानकीकरण मे जहाँ तक 'सामान्य नियम' का प्रयोग किया है विशेषकर जब देश के साधनों के यथासम्भव विकास के लिए श्रम एव मजदूरी का सामजस्य हुआ है, और इस प्रकार राष्ट्रीय लाभाश की वृद्धि की दर बढ़ी है तो इससे राष्ट्र को तथा स्वयं इन सघो को लाभ पहुँचा है। इन न्यायसगत ढगो से इन सघो की मजदूरी मे इतनी वृद्धि हुई है या जीवन एव रोजगार की दशाओं मे जितने भी सुधार हुए है उनमे सामाजिक हित बढ़ेगा। इससे व्यापारिक जोखिम मे कठिनाइयाँ उत्पन्न नहो होगी, लोग हतोत्साहित भी नही होगे, और न वे लोग मार्गच्युत होगे जो

अपितु सीमान्त मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिक की क्षमता बढ़कर उन्हें प्रतिस्पर्द्धात्मक श्रम बाजार से भी अलग करके सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग को मजदूरी बढ़ाई जा सकती है।"

1 इस कथन में यह वास्तविकता पूर्णरूप से व्यक्त नहीं होती कि मालिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण इन दशाओं में अ को व से दुगुनी मजदूरी देने के लिए तैयार हो जाते है। क्योंकि फैक्टरी के उतने ही स्थान, संयंत्र एवं पर्यवेक्षण से जो कार्यकुशल श्रमिक अकुशल श्रमिक की अपेक्षा दुगुना उत्पादन कर सकता है वह मालिक की दृष्टि से अकुशल श्रमिक की मजदूरी के दुगने से भी अधिक मजदूरी प्राप्त करने का अधिकारी है: वास्तव में उसे तिगुनी मजदूरी भी दी जा सकती है। (ऊपर भाग 6, अध्याय 3, अनुभाग 2 देखिए) इसमें सन्देह नही कि मालिक अधिक कार्यकुशल श्रमिक को उसके वास्तविक निवल उत्पाद के अनुपात में मजदूरी देने से डरेगा जिससे कार्य में अकुशल श्रमिक अपने संघों की सहायता से होने वाले लाभ को दरों का बढ़ा चढ़ा कर अनुमान न लगा सकें और अपनी मजदूरी में वृद्धि की माँग न कर सकें। किन्तु इस दशा में यह निश्चित करते समय कि अधिक कार्यकुशल व्यक्ति को कितनी मजदूरी देनी चाहिए, मालिक सामान्य नियम के दुरुपयोग के फलस्वरूप मुक्त प्रतियोगिता का विरोध किये जाने से, न कि मुक्त प्रतियोगिता के कारण, कम कार्यकुशल व्यक्ति के निवल उत्पाद को ध्यान में रखते है। 'लाभ में हिस्सा विभाजन' की कुछ आधुनिक योजनाओं का उद्देश्य कार्यकुशल श्रमिकों की मजदूरी को उनके वास्तविक निवल उत्पाद के अनुपात में, अर्थात् उजरत के अनुपात से अधिक करना है: किन्तु व्यापारिक संघ सदैव इस प्रकार की योजनाओं के पक्ष में नहीं है।

राष्ट्र के नेतृत्व के लिए यत्नशील है : इससे किसी बड़ी मात्रा में पूँजी का बहिर्गमन भी नहीं होगा।

'सामान्य नियम' से मिथ्याजनक मानकीकरण का भय हो सकता है।

इस 'सामान्य नियम' के जिन प्रयोगों के कारण मानकीकरण मिथ्याजनक होता है, मालिक अपेक्षाकृत कम तथा अधिक कार्यकुशल व्यक्तियों को समान भुगतान करने के लिए बाध्य होते हैं, या कोई भी व्यक्ति किसी कार्य को करने में समर्थ होने पर भी इस कारण नहीं कर सकता कि वह प्राविधिक रूप में उसका कार्य नहीं है, तो स्थिति इससे भिन्न होगी। इस 'नियम' के प्रयोग प्रथम दृष्टि में समाज विरोधी प्रतीत होते है। वास्तव में इस प्रकार के कार्य के ऊपर से जो कारण दिखायी देते है उनसे कारण गंभीर रहे है : किन्तु यह सम्भव है कि व्यापारिक संघो के कर्मचारी अपने इन संगठनो को प्राविधिक पूर्णता प्रदान करने के लिए इतना व्यावसायिक उत्साह दिखावे कि इनका महत्व अतिरंजित किया जाने लगे। अतः ये ऐसे कारण है जिनके विषय मे बाह्य आलोचना प्रत्यक्षरूप से सम्बन्धित न होने पर भी लाभदायक सिद्ध हो सकती है। हम अब ऐसे सुदृढ़ विषय पर विचार करेंगे जिसके विषय मे अब सार्वधिक रूप से मतभेद कम है।

अच्छी किस्म की मशीनों तथा विकसित प्रणालियो के विरोध से सम्बन्धित दृष्टान्त।

जब व्यापारिक संघों को पूर्णरूप मे आत्म सम्मान नही मिला था, मिथ्याजनक मानकीकरण के अनेक रूप देखने को मिलते थे। विकसित प्रणालियो एवं मशीनो के उपयोगों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, और प्राचीन प्रणालियो द्वारा किसी कार्य मे लगने वाले श्रम के अनुसार मानक मजदूरी निर्धारित की गयी थी। इसके फलस्वरूप उद्योग की किसी विशेष शाखा मे यही मजदूरी बनी रही, किन्तु इससे उत्पादन मे इतनी अधिक रुकावट पैदा हो गयी कि यदि यह नीति साधारणतया सफल होती तो इससे राष्ट्रीय लाभांश मे बड़ी कटौती हो जाती, और देश मे साधारणतया अच्छी मजदूरी पर रोजगार मिलना कम हो जाता। प्रमुख व्यापारिक संघों के नेताओं ने इस समाज विरोधी कार्य की भर्त्सना कर देश की जो सेवाएँ की है उन्हे कभी भी नही भूला जा सकता। यद्यपि प्रबुद्ध (enlightened) संघों द्वारा अपने उच्च आदर्शों से आंशिक रूप मे विचलित होने के कारण सन् 1897 में इंजीनियरिंग व्यवसाय मे महान विवाद उत्पन्न हो गया, इस पर भी इस त्रुटि की सर्वाधिक बुराइयों को शीघ्र ही दूर कर दिया गया है।[1]

---

1 Industrial Democracy, भाग II, अध्याय III में मशीनों के प्रयोग के विरोध का अति उत्तम इतिहास दिया हुआ है। इसमें साधारणतया मशीनों के प्रयोग का विरोध न करने के साथ साथ राय दी गयी है कि नयी मशीनों द्वारा की जाने वाली प्रतियोगिता का सामना करने के लिए पुरानी प्रणालियों में मजदूरी स्वीकार नहीं करनी चाहिए। यह युवकों के लिए अच्छी सलाह है किन्तु जो लोग प्रौढ़ अवस्था में पहुँच चुके हैं, वे सदैव इस सलाह के अनुसार कार्य नहीं कर सकते : और यदि गैर सरकारी उद्यमों से लिये गये इन नये कार्यों की अपेक्षा सरकार की प्रशासन शक्ति अधिक तेजी से बढ़े तो सरकार उन सामाजिक कलहों को दूर करने की अद्भुत शक्ति का परिचय दे सकती है जो विकसित प्रणालियों द्वारा अधेड़ उम्र के तथा वयोवृद्ध लोगों की कुशलता को लगभग व्यर्थ कर देने के कारण उत्पन्न होते हैं।

वयोवृद्ध श्रमिकों को पूरी मानक मजदूरी देने के लिए आग्रह।

पुनः किसी ऐसे वयोवृद्ध व्यक्ति को जो अब पूरे दिन के मानक कार्य को नहीं कर सकता अनेक संघों द्वारा अभी भी मानक मजदूरी से कुछ कम मजदूरी स्वीकार करने से रोकने की प्रणाली में मिथ्या मानकीकरण की भावना निहित है। इस पद्धति के कारण उस व्यवसाय में श्रम का आंशिक रूप में सम्भरण अवरुद्ध हो जाता है, और इससे इसे लागू करने वाले लोगों को लाभ प्राप्त होता है। किन्तु इससे श्रमिकों की संख्या स्थायीरूप से नियंत्रित नहीं हो सकती: इससे बहुधा संघ की लाभनिधियों पर बहुत भार पड़ता है, और पूर्णरूप से निजी हित की दृष्टि से भी पद्धति साधारणतया संकुचित दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। इससे राष्ट्रीय लाभांश में पर्याप्त कमी हो जाती है: इससे वयोवृद्ध लोगों द्वारा क्लेशप्रद निष्क्रियता तथा शक्ति से अधिक क्लान्तिकर श्रम करने के बीच चयन करने को बाध्य किया जाता है। यह बड़ी कटु एवं समाज विरोधी बात है।

कार्य के सीमांकन की अधिक संदिग्ध दशा।

अब हम एक अधिक संदिग्ध दशा पर विचार करेंगे। 'सामान्य नियम' के लागू होने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक औद्योगिक वर्ग के कार्यों का सीमांकन किया जाय और निश्चय ही औद्योगिक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शहरी दस्तकार को कार्य की किसी शाखा में उच्च दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। किन्तु किसी व्यक्ति को अपने कार्य के किसी भाग को सरल होने पर भी इसलिए नहीं दिया जाता है कि प्राविधिक रूप से वह कार्य किसी दूसरे विभाग से सम्बन्धित है। इस प्रकार के निषेधों से उन अधिष्ठानों में अधिक क्षति नहीं पहुँचती जो इसी प्रकार की अनेक चीजें बनाते हैं। क्योंकि इनमें कार्य को इस प्रकार से व्यवस्थित करना सम्भव है कि विभिन्न वर्गों में से प्रत्येक वर्ग के सम्पूर्ण कामगारों के लिए पूर्णरूप से लगभग समान रोजगार मिल सके: सम्पूर्ण कामगरों से अभिप्राय उन श्रमिकों से है जो किसी अन्य स्रोत से अपनी आजीविका का कोई भी भाग अर्जित नहीं करते। किन्तु इस प्रकार के निषेधों का छोटे छोटे मालिकों पर और विशेष कर उन मालिकों पर अधिक भार पड़ता है जो प्रगति के सोपान के निम्नतर स्तर पर है जहाँ से वे एक या दो पीढ़ियों में ऐसी महान सफलता प्राप्त करेंगे जिससे राष्ट्र का नेतृत्व होगा। बड़े बड़े अधिष्ठानों में भी वे किसी ऐसे व्यक्ति के रोजगार प्राप्त करने के अवसर बढ़ायेंगे जिसे उस समय अन्यत्र कोई भी रोजगार मिलना कठिन हो और इस प्रकार कार्यहीन व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही हो। अतः यदि कार्य का मध्यमरूप में तथा न्यायपूर्ण रूप से सीमांकन किया जाय तो इससे समाज की भलाई हो सकती है किन्तु यदि इसका छोटे छोटे कुशलता सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के लिए सीमा से परे उपयोग किया जाने लगे तो यह सामाजिक अभिशाप बन जाता है।[1]

द्रव्य की क्रय-शक्ति

§10. इसके पश्चात् हम और भी अधिक सूक्ष्म एवं कठिन विषय पर विचार करेंगे। यह ऐसा विषय है जिसमें सामान्य नियम का इसलिए अनुचित प्रभाव नहीं

---

1 यह ध्यान रहे कि अभियंताओं की विशाल एकीकृत समिति ने, जिसका अभी अभी उल्लेख किया गया है, उद्योग की सदृश शाखाओं में उस सम्मिलित कार्य का नेतृत्व किया है जिससे सीमांकन का कठिन कार्य सरल हो जाता है।

पड़ता कि इसका ठीक ढंग से उपयोग नहीं किया गया है अपितु इसलिए पड़ता है कि इसके द्वारा जिस कार्य को सम्पन्न करता है उसके लिए इसकी अपेक्षा अधिक तकनीकी पूर्णता की आवश्यकता है। इस विषय में मुख्य बात यह है कि मजदूरी के मानक द्रव्य के रूप में व्यक्त किये गये हैं: और चूँकि द्रव्य का वास्तविक मूल्य अलग अलग दसाब्दियों में बदलता रहा है, और इसमें प्रतिवर्ष तीव्र परिवर्तन होते रहे हैं, अतः द्रव्यिक मानकों को बिलकुल सही रूप में ज्ञात नहीं किया जा सकता। उन्हें उपयुक्त लोचकता प्रदान करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है: और इसी कारण 'सामान्य नियम' के ऐसे अतिशय प्रयोगों का विरोध किया जाता है जो अवश्य ही इतने बेलोच व अपूर्ण द्रव्यिक मानक का प्रयोग करते हैं।

तथा वाणिज्यिक साख में होते वाले उतार चढ़ावों से क्रमिक परिवर्तनों से सम्बन्धित कठिनाइयाँ।

इस विषय पर विचार करने की तीव्र आवश्यकता इस बात से और बढ़ जाती है कि व्यापारिक संघ साख की स्फीति के समय में भी स्वाभाविक रूप से मानक द्रव्यिक मजदूरी में वृद्धि के लिए दबाव डालते हैं, जिससे कीमतें बढ़ जाती हैं और उस समय द्रव्य की क्रयशक्ति घट जाती है। उस अवधि में मालिक ऐसे श्रम के लिए भी जिसमें पूर्ण प्रसामान्य कार्यक्षमता मानकस्तर से कम है, ऊँची मजदूरी के लिए तत्पर हो जाते हैं। उनके द्वारा दी जाने वाली मजदूरी की वास्तविक क्रयशक्ति भी अधिक होती है और द्रव्य के रूप में तो यह और भी अधिक होती है। इस प्रकार घटिया क्षमता वाले व्यक्ति भी उच्च मानक द्रव्यिक मजदूरी अर्जित करने लगते हैं, और संघों के सदस्यों के नाते वे अपनी माँगें पूरी करा लेते हैं। किन्तु बहुत शीघ्र ही साख की स्फीति कम होने लगती है, और इसके पश्चात् इसमें मंदी आ जाती है, कीमतें गिरने लगती हैं, और द्रव्य की क्रयशक्ति बढ़ जाती है: श्रम का वास्तविक मूल्य घटने लगता है, और इसका द्रव्यिक मूल्य और भी तेजी से कम होने लगता है। स्फीति के समय द्रव्यिक मजदूरी का मानक इतना बढ़ गया था कि इस पर कार्यकुशल व्यक्तियों के श्रम में भी उचित लाभ नहीं प्राप्त हो सकते थे, और जिन लोगों में मानकस्तर से कार्यक्षमता कम थी उन्हें मानक मजदूरी देना हितकर न था। यह मिथ्या मानकीकरण उस व्यापार में लगे कार्यकुशल व्यक्तियों के लिए एक अमिश्रित बुराई नहीं थी: क्योंकि इसके फलस्वरूप उनके श्रम की माँग ठीक उसी प्रकार बढ़ गयी जिस प्रकार वयोवृद्ध लोगों की आवश्यक निष्क्रियता से उनके लिए माँग बढ़ जाती है। किन्तु ऐसा केवल उत्पादन में रुकावट होने और अतः उद्योग की अन्य शाखाओं में कार्य करने वाले श्रम की माँग में रुकावट होने के फलस्वरूप ही सम्भव है। साधारणतया व्यापारिक संघ इस नीति पर जितने ही अधिक डटे रहते हैं, राष्ट्रीय लाभांश में उतनी ही अधिक गहरी तथा गम्भीर क्षति होती है, और समूचे देश में मजदूरी की उचित दर पर रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या उतनी ही कम होती है।

दीर्घकाल में उत्पादन की प्रत्येक शाखा की उस दशा में प्रगति होगी जब प्रत्येक शाखा में कार्यक्षमता एवं तदनुकूल मजदूरी के विभिन्न मानकों को स्थापित करने के लिए सम्यक प्रयत्न किया जाय, और जब ऊँची कीमतों की लहर के अपने शिखर पर पहुँचने के बाद घटते ही द्रव्यिक मजदूरी के उच्च मानक में शीघ्र ही कुछ कटौती कर

एक व्यापक तथा उदार नीति दीर्घकाल में सभी

लोगों के लिए लाभकारी होती है।

दी जाय। इस प्रकार के समायोजनों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा: किन्तु यदि इस तथ्य की अधिक साधारण तथा स्पष्टरूप में प्रशंसा की जाय कि उद्योग की किसी भी शाखा में रुकावट पैदा कर ऊँची मजदूरी प्राप्त करने से अन्य शाखाओं में आवश्यक रूप से बेरोजगारी बढेगी तो इस दिशा मे तेजी से प्रगति की जा सकती है। क्योंकि बेरोजगारी को दूर करने का एकमात्र उपाय लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधनों का निरन्तर इस प्रकार समायोजन करना है कि साख को पर्याप्तरूप से सही पूर्वानुमानों के ठोस आधार पर आधारित किया जा सके, और साख की अल्पायुस्त स्फीति जितनी ही कम हो सके की जाय, क्योंकि यह सभी आर्थिक व्याधियों का मुख्य कारण है।

उत्पादन से ही वस्तुओं के लिए माँग की जाती है, क्योंकि इनका अन्ततोगत्वा उपभोग किया जायेगा।

यहाँ इस विषय पर तर्क-वितर्क नही किया जा सकता: किन्तु इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरण के लिए चंद शब्द कहे जा सकते हैं। मिल ने यह ठीक ही अनुभव किया कि "वस्तुओं के लिए भुगतान का साधन वस्तुओ के ही रूप मे है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अन्य व्यक्तियों के उत्पादन के बदले मे भुगतान करने के लिए जो साधन है वे उसकी अपनी निजी वस्तुएँ हैं। सभी विक्रेता अपरिहार्य रूप से, तथा इस शब्द के अर्थानुसार केता होते हैं। यदि हमे देश की उत्पादक शक्तियों को एकाएक दुगुना करना हो तो हमे प्रत्येक बाजार मे वस्तुओं का सम्भरण दुगुना कर देना चाहिए, किन्तु हमे साथ ही साथ क्रयशक्ति भी दुगुनी करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की माँग तथा उसका सम्भरण पहले से दुगुना होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति जितनी मात्रा पहले क्रय करता था उसका दुगुना खरीद सकेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के पास विनिमय के रूप मे देने के लिए इतनी ही वस्तुएँ होंगी।"

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के पास क्रयशक्ति होती है किन्तु यह सम्भव है कि वे इसका उपयोग न करना चाहें। क्योंकि जब असफलताओं के कारण विश्वास टूट जाता है तो नयी कम्पनियो के प्रारम्भ के लिए या पुरानी कम्पनियो का विस्तार करने के लिए पूँजी नही मिल सकती। नयी रेलें बिछाने की परियोजनाओं के लिए स्वीकृति नही मिल पाती। जहाज व्यर्थ पड़े रहते हैं, और नये जहाजों के लिए आदेश भी नही दिये जाते। खोदने वाली मशीनों के लिए शायद ही कुछ माँग हो और भवन-निर्माण तथा इञ्जन बनाने के व्यवसायों के लिए भी माँग अधिक नही होती। संक्षेप मे अचल पूँजी का उत्पादन करने वाले किसी भी व्यवसाय में केवल थोडा ही काम होता है। जिन लोगों की कुशलता एवं पूँजी इन व्यवसायो मे विशेषरूप से उपयोगी होती है उन्हें इनसे थोडी ही आय प्राप्त हो सकती है, और अतः वे अन्य व्यवसायो द्वारा उत्पादित कुछ ही वस्तुएँ खरीद सकते हैं। अन्य व्यवसायों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार कम हो जाने के कारण वे अपना उत्पादन कम कर देते है, उनका उपार्जन कम हो जायेगा और इसलिए वे क्रय भी कम करेंगे: उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिए माँग कम हो जाने के कारण अन्य व्यसायों द्वारा उत्पादित वस्तुओ के लिए उनकी माँग कम हो जायेगी। इस प्रकार वाणिज्यिक अव्यवस्था फैलने लगती है: एक व्यवसाय मे अव्यवस्था फैलने के कारण अन्य व्यवसायों मे भी अव्यवस्था फैलने लगती है, और इनसे उनमे प्रतिक्रिया होती है तथा यह अव्यवस्था और भी बढ़ जाती है।

साख उत्पादन तथा उपभोग में होने वाली अव्यवस्था के पारिस्परिक सम्बन्ध।

बुराई की मुख्य जड़ विश्वास मे कमी होना है। यदि विश्वास की भावना का फिर से सचार होने लगे और इस जादू की छड़ी का सभी उद्योगो पर प्रभाव पड़े, वे अपना उत्पादन जारी रखे तथा दूसरो द्वारा उत्पादित वस्तुओ की माँग करते रहे तो यह बुराई तुरन्त अधिकाश रूप मे दूर हो सकती है। यदि प्रत्यक्ष उपभोग के लिए वस्तुओं का उत्पादन करने वाले सभी व्यवसाय साधारण समयो की भाति कार्य करते रहने तथा एक दूसरे की वस्तुओ को खरीदने के लिए सहमत हो जावे तो वे परस्पर लाभ एव मजदूरी की साधारण दर पर आय उपार्जित करने के साधनो का आदान-प्रदान करेगे। अचल पूँजी का उत्पादन करने वाले व्यवसायो को कुछ अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी: किन्तु उनमे भी तभी रोजगार बढ़ेगा जब विश्वास इतना बढ़ जाय कि पूँजीपति यह तय कर ले कि इसका किस प्रकार विनियोजन करना है। विश्वास बढ़ने से ही विश्वास बढ़ेगा। साख के कारण क्रय करने के साधन अधिक होगे और इस प्रकार कीमतें अपनी पूर्वावस्था पर आने लगेगी। जो लोग उस व्यवसाय मे लगे हुए होगे उन्हे अच्छा लाभ प्राप्त हो सकेगा, नयी कम्पनियो का प्रारम्भ कर दिया जायेगा, पुराने व्यवसायो का बिस्तार किया जायेगा, और शीघ्र ही अचल पूँजी का उत्पादन करने वाले लोगो के कार्य का भी माग बढ़ जायेगी। विभिन्न व्यवसायो मे पूरी अवधि तक कार्य प्रारम्भ करने तथा एक दूसरे के उत्पादन के लिए बाजार तैयार करने के लिए कोई औपचारिक सहमति प्राप्त नही होगी। किन्तु विभिन्न व्यवसायो मे धीरे धीरे तथा साथ साथ विश्वास बढ़ने के कारण ही उद्योग का पुनरुत्थान होता है। व्यापारी लोगो के यह सोचने से ही कि कीमतो मे कमी नही होगा, उद्योग का पुनरुत्थान होना प्रारम्भ हो जाता है: और इसके फलस्वरूप कीमते बढ़ने लगती है।[1]

---

1 मिल से उद्धृत अवतरण तथा इसके बाद के दो पैराग्राफ Economics of Industries, भाग III, अध्याय I, अनुभाग 4 से लिये गये हैं, जिसे मैंने तथा धर्मपत्नी ने सन् 1879 ई० मे प्रकाशित किया था। वे उपभोग एव उत्पादन के सम्बन्ध के विषय मे वही दल अपनाते है जो शास्त्रीय अर्थशास्त्रियो का अनुकरण करने वाले अधिकांश लोग अपनाते रह है। यह सत्य है कि मंदी के समय उपभोग की अव्यवस्था के कारण भी साख एव उत्पादन में अव्यवस्था होती है। किन्तु कुछ लेखकों ने अविवेकपूर्ण रूप से जो यह आरोप लगाया है कि उपभोग के अध्ययन से इस अव्यवस्था को दूर करने का हल निकाला जा सकता है, उचित नहीं है। इसमें संदेह नहीं है कि रोजगार पर फैशन में होने वाले काल्पनिक परिवर्तनो के प्रभाव का अध्ययन करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किन्तु उत्पादन तथा साख की व्यवस्थाओं का अध्ययन मुख्यरूप से करना चाहिए। यद्यपि अर्थशास्त्री अभी तक इस अध्ययन में सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं, उनकी असफलता का कारण इस समस्या की गम्भीर दुर्बोधता तथा इसकी निरन्तर परिवर्तनशीलता है। इसका कारण यह नही है कि उन्होंने इसके अधिकतम महत्व के प्रति उदासीनता दिखलायी। अर्थशास्त्र प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपभोग तथा उत्पादन के पारस्परिक समायोजनो का अध्ययन है: जब इनमें से एक के विषय पर विचार किया जा रहा हो तो दूसरे विषय को भी ध्यान में रखा जाता है।

अब तक आर्थिक परिवर्तन का रुख लाभकारी रहा है क्योंकि इससे सुधार में सावधानी बरतने की सलाह मिलती है।

§11. अतः वितरण के अध्ययन के रुख से यह संकेत मिलता है कि पहले से विद्यमान सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन से सम्पत्ति का वितरण अधिक अनुकूल हो रहा है: ये शक्तियाँ स्थायी तथा अधिक प्रभावशाली हो रही हैं, और इनके प्रभाव अधिकांश रूप में संचयी हैं। सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था प्रथम दृष्टि में जितनी सूक्ष्म एवं जटिल दिखायी देती है उससे अधिक सूक्ष्म एवं जटिल है, और बहुत बड़े अविवेकपूर्ण रूप से किये गये परिवर्तनों के परिणाम बड़े गम्भीर हो सकते है, इससे विशेषकर यह सलाह मिलती है कि उत्पादन के सभी साधनों का सरकार द्वारा दायित्व तथा स्वामित्व प्राप्त करने से भले ही सामूहिकतावादियों की भाँति यह प्रस्ताव रखा जाय कि यह परिवर्तन धीरे-धीरे किया जाय, सामाजिक समृद्धि की बुनियाद में प्रथम दृष्टि में दिखायी देने वाली क्षति की अपेक्षा अधिक क्षति हो सकती है।

सामूहिकतावाद की आर्थिक एवं सामाजिक बुराइयाँ।

इस तथ्य से प्रारम्भ करते हुए कि राष्ट्रीय लाभांश की वृद्धि आविष्कार तथा उत्पादन के कीमती उपकरणों के संचय में निरन्तर प्रगति होने पर निर्भर रहती है, हम इस बात को इंगित करते हैं कि वर्तमान काल तक जितने भी असंख्य आविष्कार हुए है लगभग उन सभी से हमें प्रकृति के ऊपर जो अधिकार प्राप्त हुए है वे स्वतन्त्र व्यक्तियों की ही देन है, और सम्पूर्ण विश्व में सरकारी कर्मचारियों द्वारा इस कार्य में दिया गया योगदान अपेक्षाकृत थोड़ा है। इसके अतिरिक्त उत्पादन के लगभग वे सभी कीमती उपकरण जिनपर राष्ट्रीय अथवा स्थानीय सरकारों द्वारा सामूहिक रूप से स्वामित्व रखा जाता है, मुख्यतया व्यावसायिक व्यक्तियों तथा अन्य गैरसरकारी लोगों की बचत से दिये गये ऋण से खरीदे गये है। उच्चकुलतंत्रीय सरकारों ने कभी कभी सामूहिक सम्पत्ति संचित करने के बड़े प्रयत्न किये, और यह आशा की जा सकती है कि आने वाले समय में दूरदर्शिता तथा धैर्य श्रमिक वर्गों की मुख्य सम्पत्ति की सामूहिक सम्पत्ति हो जावेगी। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए शुद्ध जनतंत्र को प्रकृति के ऊपर और अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिए आवश्यक साधन संचित करने का कार्य सौंपने में बहुत बड़ा जोखिम निहित है।

अतः ऊपर से देखने में इस बात में बहुत बड़ा भय लगा रहता है कि उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्व से मानवमात्र की शक्तियाँ कुंठित तथा आर्थिक प्रगति अवरुद्ध न हो जाय। यह भय तभी दूर हो सकता है जब इसके प्रारम्भ से पूर्व सभी लोग सार्वजनिक हित के लिए निःस्वार्थ भाव से त्याग करने के लिए तत्पर हों, किन्तु यह बात अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिलती है, यद्यपि इस विषय पर यहाँ पर विचार नहीं किया जा सकता तथापि यह कहा जा सकता है कि सम्भवतया इससे जीवन के व्यक्तिगत एवं घरेलू विषयों की सर्वाधिक सुन्दर एवं आनन्ददायक वस्तु अधिकांश रूप में नष्ट हो सकती है। ये ही मुख्य कारण है जिनके फलस्वरूप अर्थशास्त्र के विचारशील छात्र जीवन की आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक दशाओं में, तुरत एवं तीव्र पुनः संगठन करने की योजनाएँ प्रारम्भ करने से हित की कम तथा अहित होने की अधिक आशा करते हैं।

सम्पत्ति की वर्तमान

हम यह इंगित करेंगे कि राष्ट्रीय लाभांश का वितरण बुरा होने पर भी लगभग उतना अधिक बुरा नहीं है जितना कि लोग साधारणतया समझते है। वास्तव में इंग्लैंड

में ऐसे अनेक दस्तकार परिवार है, तथा अमेरिका में ये और भी अधिक हैं जिन्हें वहाँ अपार लाभ होने पर भी राष्ट्रीय आय के समान वितरण से हानि उठानी पड़ेगी। अतः सभी असमानताओं को दूर कर दिये जाने से जनसाधारण को उस समय बहुत अधिक लाभ होंगे, तथापि उन्हे कदापि अस्थायी रूप से भी उतने लाभ नही हो सकते जितने कि स्वर्णयुग मे प्राप्त होते थे।[1]

असमानताएँ बहुधा अतिरंजित की जाती है,

किन्तु इस सतर्क रुख का अभिप्राय सम्पत्ति की वर्तमान असमानताओ से सहमति नही है। आर्थिक विज्ञान का अनेक पीढ़ियो तक इस विश्वास की ओर अधिकाधिक बहाव रहा है कि प्रचुर सम्पत्ति के साथ साथ अत्यधिक निर्धनता का होना आवश्यक नही है और इसलिए इसका कोई नैतिक औचित्य नही है। सम्पत्ति की असमानताएँ बहुधा जितनी बतलायी जाती है उससे कम होने पर भी हमारी आर्थिक व्यवस्था की गम्भीर त्रुटियाँ है। यदि स्वतन्त्ररूप से उपक्रम करने तथा आचरण की शक्ति के स्रोतो मे कमी हुए बिना तथा राष्ट्रीय लाभांश की वृद्धि में बिना किसी भौतिक अवरोध के इस असमानता मे कमी की जा सके तो इससे स्पष्टरूप मे समाज को लाभ होगा। यद्यपि गणित से हमे यह चेतावनी मिलती है कि कुल उपार्जन को उस स्तर से अधिक ऊँचा करना असम्भव है जिस पर विशेषरूप से समृद्ध दस्तकार परिवार पहले ही पहुँच चुके है, तथापि यह अवश्य ही वाञ्छनीय है कि जो लोग उस स्तर से नीचा मजदूरी प्राप्त कर रहे है उन्हे अधिक मजदूरी दी जाय, भले ही इस कार्य मे उन लोगो के उपार्जन को कुछ मात्रा मे कम करना पड़े जिनका उपार्जन इससे अधिक हो।

किन्तु इतनी अधिक असमानता आवश्यक नहीं है, और इसे सहन करना कठिन है।

§12. उन अत्यधिक निम्नवर्गीय लोगो के विषय मे तुरत कार्रवाई करने की आवश्यकता है (यद्यपि इनकी संख्या धीरे धीरे घटती जा रही है) जो शारीरिक, बौद्धिक, या नैतिक रूप से इतना दैनिक कार्य करने मे असमर्थ है जिससे उन्हें पर्याप्त दैनिक मजदूरी प्राप्त हो सके। इस वर्ग मे सम्भवतः उन लोगो के अतिरिक्त लोग भी सम्मिलित है जो निरपेक्ष रूप से 'रोजगार करने के योग्य नही है' किन्तु यह ऐसा वर्ग है जिस पर असाधारण रूप से विचार करने की आवश्यकता है, आर्थिक स्वतन्त्रता की यह पद्धति

निम्नवर्गीय लोगों की अपवादजनक दशा।

---

1 कुछ वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य (U.K.) में 4 करोड़ 90 लाख लोगों की वार्षिक आय 2 अरब पौंड से भी अधिक थी। अनेक प्रमुख दस्तकार प्रतिवर्ष लगभग 2 सौ पौंड अर्जित करते थे, और दस्तकार परिवारों की एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी थी जिसमें हर चार या पाँच व्यक्ति 18 शिलिंग से लेकर 40 शिलिंग प्रति सप्ताह अर्जित करते थे। इन परिवारो का व्यय कम से कम इतना था जितना कि कुल आय के बराबर वितरित किये जाने पर सम्भव था और यह प्रतिवर्ष 40 पौंड प्रति व्यक्ति के हिसाब से अनुमानित की गयी। (सन् 1920 ई० के संस्करण में यहां पर निम्न फुटनोट जोड़ा गया)। हाल में इस विषय पर आँकड़े उपलब्ध नहीं है किन्तु यह निश्चित प्रतीत होता है कि श्रमिक वर्गों की आय साधारणतया कम से कम उतनी ही बढ़ रही है जितनी की अन्य वर्गों के लोगो की आय बढ़ रही है। इस अध्याय में दी गयी अनेक सलाह, को मार्च 1907 ई० के Economic Journal में, 'आर्थिक पराक्रम की सामाजिक सम्भाव्यताएँ' नामक लेख में विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

नैतिक एवं भौतिक दोनों दृष्टिकोणों से उन लोगो के लिए सम्भवतया सर्वोत्तम है जो बौद्धिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी स्थिति में हैं। किन्तु निम्नवर्गीय लोग इसका सदुपयोग नही कर सकते : और यदि उन्हे अपने बच्चो को अपनी तरह ही पालने-पोसने की छूट मिल जाय तो भावी पीढ़ी मे, अंग्रेज जाति की स्वतन्त्रता मे इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। अत. उनके लिए यह हितकर होगा तथा राष्ट्र के लिए और भी अधिक हितकर होगा कि उन पर ऐसा पैतृक नियन्त्रण लागू हो जो जर्मनी मे प्रचलित प्रणाली के कुछ अनुरूप हो।[1]

निम्नतम मजदूरी के दावे तथा स्वीकार करने की कठिनाइयाँ।

इस बुराई को दूर करना इतना अधिक आवश्यक है कि इसके विरुद्ध कठोर नीति अपनाना अत्यन्त वाछनीय है। बहुत समय से विद्यार्थियो का इस सुझाव की ओर ध्यान आकर्षित है कि सरकार द्वारा पुरुषो तथा स्त्रियो के लिए अलग अलग ऐसी निम्नतम मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए जिससे कम पर न तो कोई पुरुष, और न कोई स्त्री काम करे। यदि मजदूरी की इस दर का प्रभावोत्पादक रूप से प्रयोग किया जाय तो इसके इतने बड़े लाभ होंगे कि इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया जायेगा। भले ही इसका दुरुपयोग होने तथा इससे अन्य बुराइयाँ उत्पन्न होने का भय हो, और इसका मजदूरी के बेलोच काल्पनिक मानक के लिए उन दशाओ मे भी प्रयोग किया जाय जिनमे इसका कोई भी अपवादसूचक औचित्य नही है। किन्तु यद्यपि हाल ही मे, और विशेषकर पिछले दो या तीन वर्षो मे, इस योजना के विस्तार की बातो मे बहुत सुधार हो गया है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी मुख्य कठिनाइयो का पर्याप्तरूप से सामना नही किया गया है। आस्ट्रेलिया के अलावा जहाँ का प्रत्येक निवासी विशाल

---

1 असहाय लोगों की सार्वजनिक सहायता देने के लिए अधिक व्यापक, अधिक उदार प्रशासन प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। भेदभाव के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाई का सामना करना होगा : और इसका सामना करते समय स्थानीय एवं केन्द्रीय प्राधिकारी कमजोर लोगों तथा विशेषकर उन लोगों को जिनकी कमजोरी से आगामी पीढ़ी को गम्भीर क्षति पहुँचने की सम्भावना है, मार्ग दिखलाने तथा उन पर नियंत्रण करने के लिए अधिकाश सूचना प्राप्त करेंगे। वयावृद्ध लोगो को मुख्यतया किफायत तथा उनकी वैयक्तिक अनुरक्तियों को दृष्टि मे रखकर सहायता की जानी चाहिए, किन्तु जिन लोगो के ऊपर छोटे छोटे बालको का दायित्व है उन पर सार्वजनिक निधि में से अधिक व्यय किये जाने की आवश्यकता है, और वैयक्तिक हित को सार्वजनिक हित से सदैव कम महत्व देना चाहिए। इन निम्नवर्गीय लोगों को उस भूमि से समाप्ति के लिए सबसे पहला कदम इस बात पर जोर देना है कि बच्चे अच्छे कपड़े पहन कर तथा स्नान व पर्याप्त भोजन कर निरन्तर स्कूल जावें। ऐसा न करने पर माता-पिताओ को चेतावनी दी जानी चाहिए तथा उन्हें समझाया जाना चाहिए : किन्तु बहुत अधिक व्यय करने की और कोई तीव्र आवश्यकता नही दिखायी देती। इसके फलस्वरूप समूचे देश की प्रगति को नष्ट करने वाला विकार दूर हो जायेगा : और इस कार्य के सम्पन्न हो जाने पर इसमें लगे हुए साधन किसी अन्य सुन्दर किन्तु कम तीव्र सामाजिक कर्तव्य को करने के लिए सुलभ हो जायेंगे।

भू-सम्पत्ति का आंशिक मालिक है तथा जहाँ हाल ही में पूर्ण शक्तिशाली एवं हृष्टपुष्ट पुरुषों एवं स्त्रियों को बसाया गया है, शायद ही किसी देश के अनुभव से हमारा मार्ग-दर्शन हो सकता है। ऐसे अनुभव का भी उस देश के लिए बहुत कम महत्व है जहाँ प्राचीन निर्धनता सम्बन्धी कानून (Poor Law) प्राचीन अन्न सम्बन्धी कानून (Corn Law) तथा फैक्टरी प्रणाली के सम्भावित दोषों का ज्ञान न होने के कारण इस प्रणाली का दुरुपयोग हुआ हो तथा इसके फलस्वरूप लोगों की कार्यशक्ति क्षीण हो गयी हो। जब कोई योजना इस रूप में तैयार की जा चुकी हो कि उसे व्यावहारिक रूप में लागू करने का दावा किया जाय तो वह राज्य से सहायता माँगने के लिए बाध्य लोगों की संख्या के सांख्यिकीय अनुमानों पर आधारित होनी चाहिए, क्योंकि उनका कार्य निम्नतम मजदूरी प्राप्त करने के लिए उपयुक्त न था। साथ ही साथ यह प्रश्न विशेषरूप से उठाया जाना चाहिए कि यदि प्रकृति के अनुरूप कार्य करना सम्भव होता तथा अनेक दशाओं में निम्नतम मजदूरी को व्यक्ति की अपेक्षा परिवार के अनुसार समायोजित किया जाता तो कितने लोग जीवन का पर्याप्तरूप से अच्छी तरह पालन-पोषण कर सकते हैं।[1]

केवल अकुशल श्रम कर सकने वाले लोगों की संख्या सापेक्षिक रूप से कम हो रही है।

§13. इसके पश्चात् यदि हम उन श्रमिकों के विषय में विचार करें जिनमें पर्याप्त नैतिक तथा शारीरिक बल है, तो स्थूलरूप में यह आँका जा सकता है कि केवल अकुशल श्रम कर सकने वाले लोगों की संख्या कुल जनसंख्या का एक-चौथाई है। और जो लोग निम्न श्रेणी के कुशल कार्यों को कर सकते हैं किन्तु अत्यधिक कुशल कार्यों को करने के न तो योग्य हैं, और न उत्तरदायित्वपूर्ण स्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्वक एवं तत्परता से कार्य कर सकते हैं, उनकी संख्या भी कुल जनसंख्या की एक-चौथाई है। यदि एक शताब्दी पूर्व इंगलैंड में भी इसी प्रकार के अनुमान लगाये गये होते तो ये अनुपात बहुत भिन्न होते: आधे से भी अधिक लोग कृषि के साधारण नित्यप्रति के कार्य की अपेक्षा किसी भी किस्म के कुशल कार्य को करने में असमर्थ थे। और सम्भवत: कुल जनसंख्या के $\frac{1}{8}$ से भी कम लोग अत्यधिक कुशल या उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य कर सकते थे: क्योंकि उस समय लोगों की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय कर्तव्य था

---

1 'पराश्रभोजी' कार्य के स्वरूप तथा इसके मजदूरी पर पड़ने वाले प्रभाव के मुख्यतया त्रुटिपूर्ण विश्लेषण के कारण इस अन्तिम पहलू पर आगे विचार नहीं किया गया है। भौगोलिक प्रव्रजन की दृष्टि से परिवार मुख्यतया एक इकाई है: और इसलिए जहाँ भारी लोहे तथा अन्य उद्योगों का बाहुल्य हो वहाँ पुरुषों की मजदूरी सापेक्षिक रूप से ऊँची और स्त्रियों तथा बच्चों की मजदूरी कम होती है, जब कि कुछ अन्य क्षेत्रों में परिवार की द्रव्यिक आय का आधे से भी अधिक भाग पिता द्वारा अर्जित किया जाता है और पुरुषों की मजदूरी सापेक्षिक रूप में कम होती है। इस प्रकार प्राकृतिक समायोजन सामाजिक दृष्टि से लाभदायक है, और पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए निम्नतम मजदूरी से सम्बन्धित जो बेलोच राष्ट्रीय नियम इसे ध्यान में नहीं रखते या इसका विरोध करते हैं, वे निन्दनीय हैं।

राष्ट्रीय मितव्ययिता नहीं मानी जाती थी। यदि परिवर्तन केवल इतने तक ही सीमित होता तो अकुशल श्रम के लिए तीव्र आवश्यकता होने के कारण मालिकों को उतनी ही मजदूरी देने के लि! बाध्य होना पड़ता जितनी कि वे कुशल श्रमिक को देते थे: इसके फलस्वरूप कुशल श्रम की दी जाने वाली मजदूरी में थोड़ी सी कमी हो जायेगी तथा अकुशल श्रम की मजदूरी कुछ बढ़ जायेगी और अन्त में एक स्थिति ऐसी आ जायेगी जब मैं दोनों लगभग समान हो जायेंगी।

किन्तु मशीनों के कारण अकुशल माने जाने वाले श्रम की मांग कम हो गयी है।

परिस्थिति जैसी भी रही है, इसके अनुरूप ही कुछ हुआ है। अकुशल श्रमिकों की मजदूरी में किसी अन्य वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी की अपेक्षा और यहाँ तक कि कुशल श्रमिकों की मजदूरी से भी अधिक वृद्धि हुई है। यदि इस बीच स्वचालित तथा अन्य मशीनों द्वारा कुशल श्रमिकों की अपेक्षा पूर्णरूप से अकुशल श्रमिकों का कार्य अधिक तेजी से न होने लगा होता तो उपार्जनों को समान करने का अभियान इसलिए और अधिक तीव्र हो गया होता। इसके फलस्वरूप अन्त में पूर्णरूप में अकुशल श्रमिकों द्वारा किया जाने वाला कार्य पहले की अपेक्षा कम हो जायेगा। यह सत्य है कि कुछ प्रकार के कार्य जो परम्परा से कुशल दस्तकारों से सम्बन्धित रहे हैं, उनमें अब पहले की अपेक्षा कम कुशलता की आवश्यकता है। किन्तु दूसरी ओर 'अकुशल' कहलाये जाने वाले श्रमिकों को अब बहुधा उन अत्यन्त सूक्ष्म तथा कीमती उपकरणों से कार्य करने के लिए कहा जाता है जिन्हें एक शताब्दी पूर्व साधारण आंग्ल श्रमिक को सौंपना संकटमय समझा जाता था, और अभी भी कुछ पिछड़े हुए देशों में स्थिति पहले की ही भाँति है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के श्रम के उपार्जनों में अभी भी पाये जाने वाले महान अन्तर का मुख्य कारण यांत्रिकी प्रगति रही है, और प्रथम दृष्टि में यह बहुत बड़ा दोषारोपण प्रतीत हो सकता है: किन्तु यह है नहीं। यदि यांत्रिकी प्रगति कहीं अधिक मन्द रही होती तो अकुशल श्रम की वास्तविक मजदूरी जितनी अब है उससे कम ही होती, अधिक नहीं: क्योंकि राष्ट्रीय लाभांश में होने वाली वृद्धि इतनी अवरुद्ध हो गयी होती कि कुशल श्रमिकों को भी साधारणतया एक घण्टे के कार्य के लिए लन्दन के राजों को मिलने वाले 6 पैं० की क्रयशक्ति से भी कम वास्तविक क्रयशक्ति से सन्तुष्ट होना पड़ता: और अकुशल श्रमिकों की मजदूरी इससे भी अधिक कम होती। यहाँ यह कल्पना की गयी है कि जीवन का सुख जहाँ तक यह भौतिक दशाओं पर निर्भर है, आय से जीवन की नितान्त आवश्यकताओं के पूरे होने पर ही प्रारम्भ होता है: और इन्हें प्राप्त कर लेने के पश्चात् आय मे किसी निश्चित प्रतिशत मे वृद्धि होने से सुख मे भी उसी मात्रा में वृद्धि होगी, चाहे आय कितनी भी क्यों न हो। इस स्थूल प्रकल्पना से यह निष्कर्ष निकलता है कि निरन्तर कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी में (मान लीजिए) चौथाई वृद्धि होने से कुल सुख मे जो वृद्धि होगी वह अन्य किसी वर्ग की आय मे समान वृद्धि से प्राप्त होने वाले कुल सुख से अधिक होगी। यह तर्कसंगत भी है: क्योंकि इससे वास्तव मे होने वाली यातनाओं तथा पतन के सक्रिय कारणों मे कमी होती है, और वे आशाएँ प्राप्त होती हैं जो कि आय मे अन्यत्र समान अनुपात मे वृद्धि के फलस्वरूप प्राप्त नहीं होती। इस दृष्टिकोण से यह तर्क किया जा सकता है कि

निर्धन लोगों को आर्थिक प्रगति से इसके यांत्रिकी तथा अन्य पहलुओं में जो वास्तविक लाभ हुए हैं वे मजदूरी के आँकड़ों द्वारा प्रदर्शित लाभ से अधिक है। किन्तु समाज का यह और भी अधिक कर्तव्य है कि वह इतनी कम लागत पर प्राप्त होने वाली समृद्धि को आगे बढाने के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करे।[1]

इस समस्या का हल यह है कि अकुशल श्रमिकों के बच्चे को उच्चतर कार्यों में लगाया जाय और कुशल श्रमिकों के बच्चों के साथ भी ऐसा ही किया जाना चाहिए।

इसके पश्चात् हमे यान्त्रिकी प्रगति को पूर्णगति पर बनाये रखने के लिए यत्न करना है : और केवल *अकुशल कार्य ही कर सकने वाले श्रमिकों की संख्या कम करनी* है जिससे देश की आय भूतकाल से भी अधिक तीव्रतापूर्वक बढे और इसमे से अकुशल श्रमिकों को प्राप्त होने वाला भाग और भी अधिक हो। इस लक्ष्य के लिए उसी दिशा मे अग्रसर होना है जिसमे हम कुछ ही समय पूर्व से आगे बढ रहे हैं, किन्तु अब और अधिक यत्न करने की आवश्यकता है। शिक्षा अधिक पूर्ण बनायी जानी चाहिए। पाठशालाध्यापकों को यह सीखना चाहिए कि उनका मुख्य कार्य ज्ञान देना नहीं है क्योंकि कुछ ही शिलिंग खर्च करने से इतना अधिक मुद्रिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जो कि पाठक के मस्तिष्क मे समा भी न सके। शिक्षक को चाहिए कि वह आचरण, प्रतिभाओं तथा क्रियाओं को जागृत करने की शिक्षा दे जिससे उन लोगों के बच्चे भी, जिनके कि माता-पिता स्वय भी विचारवान न हो, आगामी पीढ़ी के विचारवान माता-पिता बनने के अधिक अच्छे अवसर प्राप्त कर सकें। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सार्वजनिक द्रव्य मुक्तहस्त से खर्च किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रमिक वर्गो के निवास स्थानों मे स्वच्छ वायु तथा बच्चो के आनन्ददायक खेल के लिए क्रीडा-स्थल प्रदान करने मे भी सार्वजनिक द्रव्य मुक्तहस्त से सुलभ होना चाहिए।[2]

इस प्रकार राज्य को निर्धन श्रमिक वर्गो की समृद्धि की उस दिशा मे उदारता से और यहाँ तक मुक्तहस्त खर्च करना चाहिए जिसका श्रमिक वर्ग स्वयं सरलतापूर्वक आयोजन नही कर सकते · तथा साथ ही साथ उसे इस बात पर भी जोर देना चाहिए कि मकानों के भीतरी भागों को स्वच्छ तथा ठीक दशा मे रखा जाय जिससे ये लोग शक्तिवान एवं उत्तरदायित्व समझने वाले नागरिक बन सके। प्रति व्यक्ति के लिए आवश्यक घनफीट वायु मे धीरे धीरे न कि एकाएक, परिवर्तन होने की आवश्यकता है : और इसके साथ ही साथ ऊँची इमारतो की किसी भी पंक्ति को आगे तथा पीछे पर्याप्त स्थान खुला छोड़े बिना खड़ा न कर सकने के कारण बड़े शहरों के केन्द्रीय भागों से श्रमिक वर्गो को उन स्थानों मे निवास करने का अवसर प्रदान करने मे शीघ्रता होगी जहाँ उन्हें स्वच्छन्द क्रीड़ा-कक्ष मिल सकें। इस दिशा मे कुछ प्रगति हो भी चुकी है। इस बीच में चिकित्सा तथा स्वच्छता से सम्बन्धित विषयों मे सार्वजनिक सहायता तथा

---

1 भाग 3, अध्याय 6, अनुभाग 6 तथा गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 8 देखिए। सन् 1908 ई० में प्रकाशित Quarterly Journal of Economics में प्रो० कार्वर द्वारा मशीन तथा श्रमिक के ऊपर लिखे गये लेख को देखिए।

2 परिशिष्ट छ (G) में अनुभाग 8, 9 में यह अनुरोध किया गया है कि शहरी भूमि के विशेष मूल्य पर लगाये गये शुल्क से प्राप्त धनराशि सर्वप्रथम श्रमिक वर्गों, तथा विशेषकर उनके बच्चों के स्वास्थ्य पर खर्च किया जाना चाहिए।

नियंत्रण से भी अधिक निर्धन वर्गों के लोगों के बच्चों पर अब तक पड़ने वाले भार को कम कर दिया जायेगा।

अकुशल श्रमिकों के बच्चों को इस योग्य बनाने की आवश्यकता है कि उन्हे कुशल श्रम के लिए दी जाने वाली मजदूरी मिल सके: और कुशल श्रमिकों के बच्चो को इन्ही साधनों से पहले से भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने के योग्य बनाने की आवश्यकता है। अपने को मध्यम श्रेणी के निम्नतर वर्ग के अनुरूप बनाने मे उन्हे कोई अधिक लाभ नही होगा, और सच पूछो तो इस बात की अधिक सम्भावना है कि उन्हें हानि उठानी पडे: क्योंकि जैसा पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, केवल लेखन तथा लेखा-जोखा रखने की योग्यता का होना कुशल शारीरिक श्रम से निम्नतर श्रेणी का कार्य है, और भूतकाल मे इसका इससे ऊपर होने का एकमात्र कारण यह है कि उस समय आम शिक्षा की अवहेलना की गयी थी जब किसी श्रेणी के बच्चे अपने से ऊपर की श्रेणी मे प्रवेश करते हैं तो इससे बहुधा सामाजिक अच्छाई एवं बुराई दोनों ही होती हैं। किन्तु हमारा वर्तमान निम्नतम श्रेणी का अस्तित्व प्राय: एक अमिश्रित बुराई है: इस श्रेणी के लोगों की संख्या बढाने के लिए कोई भी प्रयत्न नही किया जाना चाहिए, और इसमे एक बार उत्पन्न हुए बच्चों को इससे ऊपर उठने के लिए सहायता दी जानी चाहिए।

वह क्रियात्मक कल्पना जिस पर भौतिक प्रगति मुख्यतया निर्भर रहती है।

दस्तकारो के उच्चतर वर्ग मे उन्नति के लिए पर्याप्त क्षेत्र है, और मध्यम वर्गों की उच्चतर श्रेणियो मे नवागन्तुको के लिए प्रचुर क्षेत्र है। इस वर्ग के प्रमुख विचारकों की क्रियाओं एव उनके ज्ञान के फलस्वरूप वे आविष्कार एवं सुधार हुए हैं जिनके फलस्वरूप आजकल श्रमिकों को भी आराम एव विलास की ऐसी चीजे उपलब्ध हैं जो कुछ ही पीढी पूर्व धनिकों को भी कदाचित् ही उपलब्ध थी। उन्हें इनमे से कुछ चीजों के बारे मे जानकारी तक न थी' आविष्कारों तथा सुधारो के बिना इग्लैंड अपनी वर्तमान जनसख्या के लिए साधारण भोजन पदार्थों की भी पूर्णरूप मे पूर्ति नही कर सकता था। जब किसी भी वर्ग के बच्चे नये विचारो का प्रतिपादन करने वाले तथा उन्हें साकार बनाने वाले लोगो के सापेक्ष रूप से छोटे से आकर्षक समुदाय मे प्रवेश करते हैं तो इससे प्रचुर मात्रा मे हितवृद्धि होगी। कभी कभी उन्हें अत्यधिक मात्रा मे लाभ होता है: किन्तु उनके विभिन्न कार्यों को मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उन्होने इसके फलस्वरूप स्वयं जितनी भी आय अर्जित की है, समूचे ससार को उससे सैकड़ों गुना अधिक आय प्राप्त हुई है।

सट्टे के घातक रूप प्रगति के मार्ग में भारी रोड़ा अटकाते है।

यह सत्य है कि सट्टे से, न कि रचनात्मक कार्य से, अनेक लोगों को अपार धनराशि मिली है: और इस सट्टे में अधिकांश मात्रा मे समाज विरोधी कूटकौशल अपनाया जाता है, और साधारण विनियोजकों को जिन श्रोतों से मार्गदर्शन प्राप्त होता है उनका भी छल-कपट के साथ उपयोग किया जाता है। इसका हल निकालना सरल नही है, और न इसका कभी भी पूर्ण हल निकल सकता है। सट्टे को नियंत्रित करने के लिए शीघ्र ही कानून लागू कर देने का परिणाम या तो व्यर्थ रहा है या इससे बुराई ही हुई है: किन्तु यह उन विषयों मे से एक विषय है जिन पर इस शताब्दी में निरन्तर

अधिकाधिक मात्रा में आर्थिक विषयों पर अध्ययन होने के कारण संसार का महान उपकार हो सकता है।

आर्थिक पराक्रम की सामाजिक सम्भाव्यताएँ।

इसके अतिरिक्त आर्थिक पराक्रम की सामाजिक सम्भाव्यताओं को अधिक व्यापक रूप में समझे जाने पर इस बुराई को अनेक प्रकार से कम किया जा सकता है। ज्ञान के प्रसार के साथ साथ धनी लोगों द्वारा सार्वजनिक हितवृद्धि के लिए त्याग किये जाने पर करों द्वारा उनके साधनों को निर्धनों की सेवा में लगाये जाने में बड़ी सहायता मिल सकती है, और देश से निर्धनता की सर्वाधिक बुराइयों का लोप हो सकता है।

ठीक ढंग से कार्य करना धन का उपयोग करने की अपेक्षा सरल है, और अवकाश का सदुपयोग और भी सरल है।

§14. धन की असमानताओं और विशेषकर सर्वाधिक निर्धन लोगों के बहुत कम उपार्जनों के कारण क्रियाओं को करने में होने वाली बाधाओं तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि में होने वाली कमी के विषय पर अभी अभी विचार किया गया है। किन्तु अन्यत्र की भाँति यहाँ पर भी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत नहीं होते कि परिवार की आय को तथा उसे प्राप्त अवसरों का सदुपयोग करना ही उच्चतम प्रकार का धन है, और यह कदाचित् ही किसी भी वर्ग को प्राप्त है। श्रमिक वर्गों द्वारा प्रतिवर्ष सम्भवतः 10 करोड़ पौ० तथा इग्लैंड की शेष जनसंख्या द्वारा 40 करोड़ पौं० इस प्रकार खर्च किये जाते हैं जिससे जीवन को उच्चतर या वास्तविक रूप से सुखी बनाने में थोड़ा ही, या कुछ भी योगदान नहीं होता। यद्यपि यह सत्य है कि श्रम के घण्टे कम कर दिये जाने पर राष्ट्रीय लाभांश में अनेक दशाओं में कमी हो जायेगी और मजदूरी घट जायेगी: इस पर भी सम्भवतः यह अधिक अच्छा होगा कि अधिकांश लोग वस्तुतः कम कार्य करें, किन्तु इसमें यह शर्त निहित है कि इसके परिणामस्वरूप भौतिक आय में होने वाली कमी की सभी वर्गों के लोगों द्वारा उपभोग की निकृष्ट प्रणालियों के त्याग से ही पूर्ति की जाय, और वे अवकाश का सदुपयोग करना सीखें।

किन्तु अभाग्यवश मानव स्वभाव में धीरे धीरे और अवकाश का सदुपयोग करना सीखने के कठिन कार्य में सबसे अधिक धीरे धीरे परिवर्तन होते हैं। प्रत्येक युग, प्रत्येक राष्ट्र *तथा समाज के प्रत्येक वर्ग में ठीक ढंग से कार्य करना जानने वाले लोगों की संख्या* उन लोगों से कहीं अधिक है जो अवकाश का सदुपयोग करना जानते हैं। किन्तु दूसरी ओर अवकाश का मनपसन्द रूप से उपयोग करने की स्वतंत्रता द्वारा ही लोग इसका सदुपयोग करना सीख सकते हैं: और शारीरिक श्रम करने वाले जिन लोगों को अवकाश नहीं मिलता, उनका आत्मसम्मान अधिक नहीं हो सकता और वे पूर्ण नागरिक नहीं बन सकते। कभी कभी जीवन के उच्चस्तर के लिए यह आवश्यक है कि अत्यधिक थकान पैदा करने वाले उन कार्यों से मुक्त रहें जो कि शिक्षाप्रद नहीं होते।

युवकों के के लिए अवकाश

इस तथा इसके अनुरूप सभी दशाओं में नीतिज्ञ तथा अर्थशास्त्री दोनों के लिए युवकों की प्रतिभाओं तथा क्रियाओं का अत्यधिक महत्व है। इस पीढ़ी का सबसे बड़ा कर्तव्य युवक लोगों को वे अवसर प्रदान करना है जिनसे उनके उच्चतर स्वभाव का विकास हो तथा वे दक्ष उत्पादक बनें। इस दिशा में सबसे आवश्यक वस्तु यांत्रिकी श्रम से लम्बे समय तक लगातार अवकाश मिलना है और साथ ही साथ आचरण को सुदृढ़

बनाने तथा उसका विकास करने के लिए शिक्षा तथा अन्य प्रकार के मनोरंजनों के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त करना है।

उदीयमान पीढ़ी का अपने माता-पिता के कार्य के घण्टों में कमी होने में हित है।

यदि हम युवक लोगो को ऐसे घरो मे रहने से होने वाली क्षति पर ही केवल विचार करे जहाँ माता-पिता आनन्दरहित जीवन यापन करते हों—तो भी समाज का इस बात मे हित है कि उन्हे भी कुछ राहत दी जाय। योग्य श्रमिक तथा अच्छे नागरिक सम्भवतया ऐसे घरों से नही आयेंगे जहाँ माँ दिन मे अधिकतर घर से बाहर ही रहे और ये उन घरों से भी नही आयेंगे जहाँ पिता बच्चों के सोने तक शायद ही कभी घर पहुँचते हो: और इसलिए सम्पूर्ण समाज का इस बात मे प्रत्यक्ष हित है कि आवश्यकता से अधिक घण्टो तक घर से बाहर रहने के समय मे कमी की जाय। खनिज-रेलों के गार्ड तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू है। मले ही उनका कार्य बहुत कठिन नही है।

मानव जीवन की अवधि लम्बी होने तथा उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होने वाली आचरण की विशेषताओं की अवधि और भी अधिक लम्बी होने के कारण औद्योगिक समायोजन में बाधा पड़ती है।

§15 विभिन्न प्रकार की औद्योगिक कुशलता के सम्भरण को माँग के अनुसार समायोजित करने की कठिनाई का विवेचन करते समय इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया कि यह समायोजन बिलकुल ठीक नही हो सकता, क्योंकि उद्योग की प्रणालियो मे तीव्रतापूर्वक परिवर्तन हो रहे है, और श्रमिक को कुशलता प्राप्त करने का निश्चय कर लेने के बाद उसमे अभ्यस्त होने के लिए चालीस या पचास वर्ष चाहिए।[1] जिन कठिनाइयो का हमने अभी अभी विवेचन किया है उनका कारण उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त आदतो तथा विचार एव भावनाओं को व्यक्त करने के ढंगों मे शीघ्रतापूर्वक परिवर्तन न होना है। यदि हमारी संयुक्त पूँजी कम्पनियों, रेलों या नहरो की व्यवस्था बुरी हो तो हमे इसे ठीक करने मे एक या दो पीढी का समय लगेगा। किन्तु मानव प्रकृति की जो बातें ऐसी शताब्दियो मे विकसित हुई जब युद्ध एवं हिंसा का तथा सकीर्ण एव निकृष्ट प्रकार के आनन्दो का आधिपत्य रहा तो उनमे केवल एक पीढी की अवधि मे बहुत बडे परिवर्तन नही किये जा सकते।

सदैव की भाँति अब समाज के पुनर्गठन के लिए योग्य एवं उत्सुक आयोजकों ने ऐसे सुन्दर रूप को चित्रित किया है जिसकी सर्वोतम प्रथाओं के अन्तर्गत कल्पना की जा सकती है। किन्तु यह एक अनुत्तरदायी कल्पना होगी क्योंकि इसमें यह मान्यता छिपी हुई है कि नयी प्रणालियों मे प्रकृति मे शीघ्र ही ऐसे परिवर्तन होंगे जिनकी अनुकूल दशाओं मे भी एक शताब्दी से पहले आशा करना तर्कसंगत न था। यदि मानव प्रकृति को इस प्रकार आदर्शरूप मे बदला जा सके तो आर्थिक पराक्रम का निजी सम्पत्ति की वर्तमान प्रथा मे भी जीवन पर प्रभुत्व छाया रहेगा। मानव के स्वाभाविक गुणों के कारण ही निजी सम्पत्ति की आवश्यकता होती है और इसमे आदर्श परिवर्तन हो जाने पर निजी सम्पत्ति अनावश्यक हो जाती है और इससे कुछ भी क्षति न होगी।

यदि मानव प्रकृति को

अत: वर्तमान काल की आर्थिक बुराइयों का अतिरंजित वर्णन करने, तथा प्राचीन काल को इसी प्रकार की तथा इससे भी अधिक बुराइयों को ध्यान मे न रखने के लालच से सतर्क रहने की आवश्यकता है। भले ही कुछ बढ़ाचढ़ा कर कहने से अन्य लोगो को तथा स्वयं हमे भी वर्तमान बुराइयो को भविष्य में न रहने देने के लिए और अधिक

1 भाग 6, अध्याय 5, अनुभाग 1 तथा 2 देखिए।

दृढ़प्रतिज्ञ होने का प्रोत्साहन मिलता है। किन्तु यह कम त्रुटिपूर्ण नहीं है, और साधारणतया किसी स्वार्थपूर्ण कारण की अपेक्षा किसी अच्छे कार्य के लिए सच्चाई का दुरुपयोग करना अधिक मूर्खतापूर्ण है। वर्तमान युग का निराशामय तथा विगत युगों में प्राप्त सुख का अतिरंजित वर्णन करने से निस्सन्देह प्रगति की प्रणालियों को अपनाना स्थगित कर दिया जाता है। इससे प्रगति की गति धीमी पड जाती है परन्तु यह प्रगति ठोस होती है। वर्तमान प्रणालियों के निराशामय वर्णन के कारण जल्दबाजी में अन्य अपेक्षाकृत आशाजनक प्रणालियों को अपनाया जाता है किन्तु ये नीम हकीम की शक्तिशाली दवाइयों के अनुरूप है और इनसे यद्यपि शीघ्र ही कुछ लाभ होने लगता है किन्तु ये व्यापक एवं चिरस्थायी विनाश के बीज बो देते है। यह अधीर कपट उस नैतिक जड़ता से कुछ ही कम महान बुराई है जो वर्तमान ज्ञान एव साधनों के होते हुए भी जन-साधारण के जीवन की सबसे योग्य वस्तु के निरन्तर विनाश को चुपचाप सहन कर लेती है और इस बात से सान्त्वना प्राप्त करती है कि कुछ भी हो हमारे युग की बुराइयाँ विगत युग की बुराइयों से कम ही हैं।

आदर्श रूप में बदला जा सके तो निजी सम्पत्ति अनावश्यक होगी तथा इससे कुछ भी क्षति नहीं होगी।

हम अब इस भाग का उपसहार करते है। हम बहुत कम व्यावहारिक निष्कर्षों पर पहुँचे है, क्योकि इस पर विचार करने के पूर्व किसी व्यावहारिक समस्या के नैतिक एवं अन्य पहलुओं को चाहे छोड भी दे किन्तु इसके आर्थिक पहलुओं पर अवश्य विचार करना होगा: और वास्तविक जीवन मे लगभग प्रत्येक विषय न्यूनाधिक रूप मे प्रत्यक्षतः साख, वैदेशिक व्यापार, सघ बनाने तथा एकाधिकार स्थापित करने के आधुनिक सुधारो के कुछ जटिल प्रभावो एव इनकी प्रतिक्रियाओ पर निर्भर रहता है। किन्तु भाग 5, तथा 6 में हमने जिन विषयो पर विचार किया है वे कुछ पहलुओं मे अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र मे सबसे कठिन है। वे इस पुस्तक के शेष भाग की विचार प्रणाली को नियन्त्रित करते है तथा उनसे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

सामाजिक बुराइयों के प्रति अत्यधिक अधैर्यपूर्ण तथा धैर्यपूर्ण रुख अपनाना बुरा है।

परिशिष्ट (क)

स्वतन्त्र उद्योग तथा उपक्रम का विकास

व्यक्तिगत काम तथा जाति का चरित्र दोनों ही एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं : इन दोनों पर भौतिक कार्यों का बहुत प्रभाव पड़ता है।

§1. भाग I के प्रथम अध्याय के अन्तिम भाग मे परिशिष्ट 'क' तथा 'ख' का उद्देश्य बताया गया है, जिससे इनकी भूमिका समझना चाहिए। यद्यपि व्यक्तियों के कार्यों मे *इतिहास की मुख्य घटनाओं के निकटतम कारणों का पता लगता है, फिर भी* जिन परिस्थितियो के कारण ये घटनाएँ घटी है उनका पता पूर्वजों से प्राप्त प्रथाओं, जाति के गुणो तथा भौतिक प्रकृति मे मिल सकता हैं। प्राय. दूरवर्ती काल में जाति के गुण भी व्यक्तियो के कार्य तथा भौतिक कारणो से निश्चित होते हैं। एक शक्तिशाली जाति केवल नाम मे ही नही किन्तु वास्तव मे भी एक विशेष शारीरिक चारित्रिक शक्ति वाले पूर्वज (progenitor) से ही बनी है। जिन परम्पराओ के कारण एक जाति शान्ति तथा युद्धकाल मे शक्तिवान बनी वे सब उन थोड़े से बडे विचारकों की ही देन थी, जिन्होंने इस जाति की प्रथाओं तथा इसके नियमो को, सम्भवत. औपचारिक मर्यादाओं (formal precepts) द्वारा अथवा शान्ति तथा अदृश्य प्रभाव से, विकसित किया। किन्तु यदि जलवायु से शरीर मे स्फूर्ति न उत्पन्न हो तो इनमे से कोई भी चीज स्थायीरूप से लाभदायक न होगी: प्रकृति की देन, भूमि, जल तथा आकाश प्रत्येक जाति के चरित्र को निर्धारित करते हैं, तथा इस प्रकार सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाओं को बल प्रदान करते हैं।

जंगली जीवन प्रथा तथा अचानक उत्पन्न होने वाली इच्छा से नियंत्रित होता है।

जब तक मनुष्य जगली जीवन व्यतीत करता है तब तक इन विभिन्नताओं का स्पष्टरूप मे पता नही लगता। यद्यपि जगली जातियों की आदतों के विषय मे हमारी जानकारी कम तथा अविश्वसनीय है फिर भी हम इतना तो जानते ही हैं कि निश्चय ही उनमे अनेक प्रकार की विभिन्नताओं के साथ साथ सामान्य प्रकार की विचित्र समानता दिखायी देती है। चाहे वे किसी भी जलवायु मे पले हों तथा उनके जो भी पूर्वज रहे हो, जगली जाति के लोगो पर प्रथा तथा अचानक उत्पन्न होन वाली भावनाओ का पूरा प्रभाव पड़ता है। ये लोग न तो नये ढगो को निकालते है, और न सुदूर भविष्य के विषय मे अनुमान लगाते है, तथा निकट भविष्य के लिए भी कदाचित् ही आयोजन करते है। ये लोग प्रथा के दास होने पर भी चंचल होते है, अकस्मात् उत्पन्न होने वाली इच्छा के अनुसार काम करते है। कभी कभी तो वे कठिन से कठिन परिश्रम करने के लिए तैयार रहते है, किन्तु अधिक समय तक निरन्तर काम करने के अयोग्य है। जहाँ तक सम्भव हो वे अधिक समय मे पूरे होने वाले तथा कठिन कार्यों को टालने की कोशिश करते हैं, किन्तु आवश्यक कार्यों को अनिवार्य रूप से स्त्रियो से करवाकर पूरा करते है।

सभ्यता की प्रारम्भिक

जब हम जंगली जीवन से सभ्यता के प्रथम रूपों की ओर अग्रसर होते हैं तो भौतिक वातावरण का प्रभाव सबसे अधिक देखने को मिलता है। इसका कारण यह

है कि प्रारम्भिक इतिहास का अल्प विवरण मिलता है। इससे उन विशेष घटनाओं तथा व्यक्तियों के शक्तिशाली चरित्र के विषय में हमे बहुत कम ज्ञान होता है जिनसे राष्ट्रीय उन्नति का पथ-प्रदर्शन तथा नियंत्रण हुआ हो और इसमे तीव्रता से वृद्धि अथवा कमी हुई हो। किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि प्रगति की इस अवस्था मे मनुष्य मे प्रकृति से संघर्ष करने की शक्ति बहुत कम है और वह उसकी उदार सहायता के अभाव में कुछ भी नही कर सकता। प्रकृति ने इस भूमि पर कुछ ऐसे स्थानो की रचना की है जहाँ पर मनुष्य प्रारम्भिक प्रयत्नो द्वारा ही जंगली जीवन की अवस्था से ऊपर उठा। सभ्यता एवं औद्योगिक कला के प्रारम्भिक विकास का इन विशेष साधनो से युक्त स्थानों द्वारा ही पथ-प्रदर्शन एवं नियंत्रण हुआ।[1]

अवस्थाओं में भौतिक कारणों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। ऐसा निश्चय ही उष्ण जलवायु वाले देशों में हुआ है।

जब तक मनुष्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप कम से कम उसके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नही होती तब तक सबसे निम्नस्तर तक की सभ्यता का पाया जाना भी असम्भव है। जिस मानसिक शक्ति द्वारा प्रगति होती है उसे बल प्रदान करने के लिए आवश्यकता से अधिक उत्पादन का होना आवश्यक है। इसलिए प्राय प्रारम्भिक काल मे सभ्यता का विकास उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रो मे हुआ जहाँ जीवन की आवश्यकताए कम थी तथा जहाँ सबसे अविकसित ढंग से खेती करने पर भी पर्याप्त पैदावार होती थी। लोग प्राय एक बडी नदी के किनारे बस जाते थे। जिससे खेतो मे सिंचाई संभव थी तथा आसानी से आवागमन होता था। शासक वर्ग के लोग प्राय या तो ठंडी जलवायु वाले सुदूर देश के अथवा पडोस के पर्वतीय क्षेत्रों के निवासी होते थे, क्योंकि उष्ण जलवायु से शक्ति का नाश होता है और जिस शक्ति के कारण वे अपना शासन स्थापित कर सके वह प्राय उनके प्रारम्भिक काल के निवासस्थानो की अधिक शीत प्रधान जलवायु की देन थी। निश्चय ही अनेक पीढियो तक अपने नये घरो मे उन्होंने अपनी शक्ति को सुरक्षित रखा, यद्यपि वे लोग अपनी प्रथा द्वारा उत्पादित बचत से ही अपनी जीविका चलाते थे। शासकों, योद्धाओ और पुजारियो के काम मे उनकी प्रतिभा के विकास का अवसर मिला। यद्यपि प्रारम्भ मे वे कई चीजो से अनभिज्ञ थे किन्तु शीघ्रतापूर्वक उन्होंने अपनी प्रजा से जानने योग्य सब बातें सीख ली, और उससे भी आगे बढ गय। किन्तु सभ्यता के इस युग मे राज्य करने वाले इने गिने लोगों मे ही बुद्धिमान व साहसी चरित्र वाले व्यक्ति मिलते है और उद्योग का मुख्य भार वहन करने वाले लोगों मे तो कदाचित् ही ऐसे व्यक्ति मिलते है।

शासक जाति ने उद्योग के स्थान पर युद्ध तथा राजनीति पर अपनी शक्ति केन्द्रित की।

इसका कारण यह है कि जिस जलवायु के कारण पुराने जमाने मे सभ्यता का विकास हुआ उसी से इसका विनाश भी हुआ।[2] अधिक शीत प्रधान जलवायु वाले देशों

उष्ण जलवायु का प्रभाव।

---

1 प्रमुख व्यवसायों की प्रवृत्ति को निर्धारित कर प्रत्यक्ष तथा परोक्षरूप में भौतिक वातावरण का जाति के चरित्र पर जो प्रभाव पड़ता है उसके विषय में नीज (Knies) की Politische Aekonomie, हीगल की Philosophy of History तथा बकल (Buckle) की History of Civilization देखिए। अरस्तू की Politics और माण्टस्क्यू (Montesqieu) की Esprit des Lois से तुलना कीजिए।

2 माण्टस्क्यू (Montesqieu) ने (भाग 14, अध्याय 2) यह अनोखी

में प्रकृति उत्तेजना देने वाला वातावरण उत्पन्न करती है, और प्रारम्भ मे यद्यपि मनुष्य को कठिन परिश्रम करना पडा है किन्तु उसकी बुद्धि और सम्पत्ति मे वृद्धि होने के साथ साथ उसे प्रचुर मात्रा मे भोजन तथा ऊनी कपडे मिलने लगे। इसके बाद उसने अपने लिए उन बडी तथा कीमती इमारतों को तैयार किया जो सभ्य जीवन के लिए उन स्थानो मे कीमती पदार्थ समझे जाते थे जहाँ कड़ा जाड़ा पडता था और जहाँ घर के कामकाज तथा सामाजिक सम्बन्धों के लिए छत वाले मकान की आवश्यकता होती थी। किन्तु ताजी और उत्तेजित करने वाली वायु, जो जीवन के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है, तब तक नही प्राप्त की ज. सकती जब तक प्रकृति उसे स्वच्छन्दतापूर्वक नही देती।[1] उष्ण कटिबन्ध की धूप मे वास्तव मे मजदूर कठिन शारीरिक परिश्रम करता हुआ दिखायी दे सकता है, हस्तशिल्पी मे कलात्मक नैसर्गिक प्रवृत्ति हो सकती है, सिद्ध पुरुष, राजनीतिक या बैंक का सचालक तीक्ष्ण तथा मर्मज्ञ हो सकता है किन्तु अधिक गर्मी मे कठिन व निरन्तर किया जाने वाला भौतिक कार्य तथा उच्च श्रेणी के बौद्धिक कार्य दोनो का होना असगत है। जलवायु तथा विलास के सयुक्त प्रभाव मे शासक वर्ग की शक्ति का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है। उनमे से बहुत कम ही लोग महान काम कर सकते है अन्त मे सम्भवत एक ठण्डे देश से आयी हुई शक्तिशाली जाति उन्हें आकर पराजित कर देती है। कभी कभी ये लोग प्रजा तथा नये शासको के बीच नयी जाति बना लेते है, किन्तु अधिकतर वे गिरकर उत्साहरहित जनता का अंग बन जाते हैं।

सभ्यता के प्रारम्भ में परिवर्तन की गति मन्द होती है किन्तु परिवर्तन होता अवश्य है।

इस प्रकार की सभ्यता मे प्राय ऐसी चीजे रहती है जो दार्शनिक इतिहासकार के लिए रोचक होती है। सभ्यता की प्राय. पूर्ण अवधि मे अचेतन रूप से कुछ ऐसे साधारण विचारों का आनन्ददायक सामजस्य मिलता है जिनके फलस्वरूप पूर्वी देशो मे बने हुए गलीचो मे भी सुन्दरता पायी जाती है। इन विचारों के उद्गम का पता लगाने के लिए यदि हम भौतिक वातावरण, धर्म, दर्शन तथा कविता के संयुक्त प्रभाव तथा युद्ध की घटनाओं और शक्तिशाली वैयक्तिक चरित्रों के मुख्य प्रभाव पर विचार करें तो उससे बहुत-सी बातें सीखी जा सकती है। इन सबसे अर्थशास्त्रियों को भी अनेक प्रकार की सीख मिलती है, किन्तु इससे उनके उन प्रयोजनों पर प्रत्यक्ष प्रकाश नही पड़ता जिनका अध्ययन करना इसका मुख्य विषय है। क्योकि इस प्रकार की सभ्यता

बात लिखी है कि ठण्डी जलवायु से उत्तम प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है जिससे अन्य बातों के साथ साथ उत्कृष्टता की भावना अधिक आती है अर्थात् बदला लेने की भावना में कमी होती है तथा सुरक्षा की इच्छा अधिक बढ़ती है अर्थात् अधिक निष्कपटता होती है और संदेह, कूटनीति तथा चतुराई में कमी पायी जाती है। ये गुण आर्थिक विकास में बहुत ही सहायक होते हैं।

1 एफ० गाल्टन (F. Galton) के ये विचार सही निकलें,तो राज्य करने वाली जाति के कुछ लोग जैसे हिन्दुस्तान में अंग्रेज गरम देश में, कृत्रिम बरफ का अधिक प्रयोग कर अथवा घनी वायु को प्रबलता से फैलाकर और ठंडक उत्पन्न कर अपनी शारीरिक शक्ति को अनेक पीढ़ियों तक बिना ह्रास के कायम रख सकेंगे। 1881 ई० में एन्थ्रापालाजिकल इन्स्टीट्यूट में दिये गये उनके भाषण को देखिए।

में सबसे योग्य व्यक्ति काम से घृणा करते हैं। इसमें न तो निर्भीक, स्वतन्त्र, उत्साही लोग और न पराक्रमी पूंजीपति ही पाये जाते हैं। उद्योग को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है तथा इस पर प्रथा का नियंत्रण रहता है। निरंकुश अत्याचार से बचने के लिए उद्योग को केवल प्रथा का ही सहारा होता है।

हमेशा ही प्रथा शक्तिशाली व्यक्ति के पक्ष में नहीं होती और यह यातायात के साधनों के अपर्याप्त होने पर निश्चय ही सुरक्षा प्रदान करती है।

निस्सन्देह प्रथा का अधिकांश भाग अत्याचार तथा दमन का स्थायी रूप है। किन्तु कमजोर व्यक्तियों को बुरी तरह दबाने वाली अनेक प्रथाएँ बहुत समय तक न चल सकीं, क्योंकि इन व्यक्तियों की सहायता के अभाव में यह केवल अपनी शक्ति के बल पर जीवित नहीं रह सकती थीं। यदि वे इस प्रकार के सामाजिक ढांचे का नियोजन करें जो कमजोर व्यक्तियों को बिना सोचे समझे बहुत ही पीड़ित करें तो इससे इन प्रथाओं का स्वयं ही नाश हो जाता है। अतः बहुत समय तक टिकने वाली प्रथाओं में इस प्रकार का आयोजन मिलता है जिससे बहुत बड़ी लापरवाही के कारण होने वाली क्षति से कमजोर व्यक्तियों की रक्षा हो सके।[1]

वास्तव में जब उपक्रम कम हो और सार्थक प्रतियोगिता के लिए पर्याप्त क्षेत्र न हो तो प्रथा द्वारा आवश्यक रूप में केवल अधिक शक्तिशाली व्यक्तियों से ही रक्षा नहीं होती बल्कि समान वर्ग के पड़ोसियों से भी रक्षा होती है। यदि गाँव में लोहार ग्रामवासी के अतिरिक्त और किसी को फाल (ploughshare) न बेच सकें और गाँव वाले भी उसके अतिरिक्त और किसी से फाल न खरीद सकें तो यह सभी के लिए हितकारक होगा कि प्रथा द्वारा उसका सामान्य मूल्य निर्धारित किया जाये। इन जरियों से प्रथा पवित्र समझी जायेगी: और सभ्यता के प्रारम्भिक चरणों में कोई ऐसी बात नहीं है जो उन आदिकालीन आदतों का अन्त करती जिनके कारण आविष्कार करने वालों को लोग अधर्मी तथा शत्रु समझते हों। इस प्रकार आर्थिक कारणों का प्रभाव अज्ञात बन जाता है किन्तु यह प्रभाव धीरे धीरे तथा विचित्ररूप में पड़ता है। इन कारणों के परिणाम निकलने में चन्द वर्ष न लगकर सदियाँ बीत जाती हैं: इनकी कार्यविधि इतनी सूक्ष्म होती है कि कुछ भी पता लगाना कठिन हो जाता है। इनका पता तो केवल वही लोग लगा सकते हैं जिन्होंने इसी प्रकार के कारणों की तीव्र कार्यविधि को आधुनिक युग मे देखकर यह सीखा है कि इन कारणों का कहाँ पता लगाना चाहिए।[2]

---

1 बेगहो की Physics and Politics तथा हरबर्ट स्पेंसर और मेन (Maine) द्वारा लिखी गयी पुस्तकों से तुलना कीजिए।

2 इस प्रकार विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होगा कि सामान्यस्तर पर प्रथा से जिस फाल (ploughshare) का मूल्य निश्चित होता है, उससे लोहार को दीर्घ काल में प्रायः उतना ही भुगतान मिलता है (इसमें उसको मिलने वाली सभी विशेष सुविधाओं और अतिरिक्त आय को भी शामिल कर लेना चाहिए) जितना उसी प्रथा के कठिन काम करने वाले पड़ोसियों को मिलता है, अथवा अन्य शब्दों में, इस उपक्रम को हम सुविधाजनक परिवहन और सार्थक प्रतियोगिता के काल में भुगतान की सामान्य दर कहेंगे। यदि परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण लोहार की आय, जिसमें सभी

बंटे हुए स्वामित्व के कारण प्रथा शक्तिशाली होती है तथा परिवर्तन के प्रति विरोध उत्पन्न होता है।

§2. सभ्यता के प्रारम्भिक युग में सम्पत्ति में वैयक्तिक अधिकार सीमित होने के कारण प्रथा शक्तिशाली बनती है और कभी कभी शक्तिशाली प्रथा के कारण सम्पत्ति के सम्बन्ध में वैयक्तिक अधिकार सीमित होते हैं। प्रायः सभी प्रकार की सम्पत्ति में, और अधिकतर भूमि में, वैयक्तिक अधिकार सीमित अर्थ में परिवार तथा कुटुम्ब के अधिकार से प्राप्त होते हैं तथा उनसे सीमित होते हैं व उनके अधीन रहते हैं। इसी भांति परिवार के अधिकार गाँव वालों के अधिकार के अधीन होते हैं। पौराणिक गाथा के अनुसार, चाहे यह वास्तव में सच न भी हो, गाँव प्रायः एक बढ़ा हुआ तथा विकसित कुटुम्ब है। यह सच है कि सभ्यता के प्रारम्भिक युग में बहुत कम लोग ऐसे थे जिनमें अपने आसपास प्रचलित पद्धतियों से विमुख चलने की बहुत इच्छा हो। व्यक्तियों के अपनी सम्पत्ति पर अधिकार चाहे कितने ही पूर्ण तथा भलीभांति परिभाषित क्यों न हों, वे कोई ऐसा नया काम नहीं करना चाहेंगे जिससे उनके पड़ोसी उनसे नाराज हों, और न कोई स्वयं अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होने का दावा करेगा जिससे उनकी हँसी उड़ायी जाये। किन्तु अधिक साहसी व्यक्तियों से बहुत से छोटे छोटे परिवर्तन होंगे और यदि वे स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं परीक्षण कर सकें तो थोड़े थोड़े तथा अदृश्य रूप से तब तक परिवर्तन होते जायेंगे जब तक कि अन्त में पद्धति में पर्याप्त परिवर्तन न हो जायगा जिसके फलस्वरूप प्रथा पर आधारित नियमों का प्रभाव बहुत कम रह जायेगा और व्यक्ति को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता होगी। जब प्रत्येक परिवार का अध्यक्ष कुटुम्ब की सम्पत्ति का बड़ा हिस्सेदार तथा अमानतदार समझा जाता था तो पैतृक पद्धति के थोड़े भी विरुद्ध चलने वाले व्यक्ति का वे लोग विरोध करते थे जिनकी यह धारणा थी कि प्रत्येक विषय में उनकी सलाह अवश्य ली जाये।

इसके अतिरिक्त परिवार के अधिकारयुक्त अवरोध के पीछे पृष्ठभूमि में गाँव का अवरोध भी था। यद्यपि प्रत्येक परिवार कुछ समय तक अपनी खेतिहर भूमि का अकेले ही उपयोग करता था परन्तु फिर भी अनेक प्रकार की क्रियाएँ प्रायः सभी के साथ मिलकर की जाती थीं जिससे अन्य लोगों की भांति प्रत्येक व्यक्ति उस काम को उसी समय करता था। बारी बारी से प्रत्येक खेत को बंजर छोड़ दिया जाता था, और उस समय वह ग्राम चरागाह का अंग बन जाता था। गाँव की सभी भूमि का समय समय पर फिर से वितरण होता था।[1] अतः गाँव को यह स्पष्ट अधिकार था कि किसी भी

प्रकार के अप्रत्यक्ष भत्ते शामिल हैं, घट जाये या बढ़ जाये तो इसके फलस्वरूप प्रथा के मूलरूप में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जायेगा, जिसे प्रायः न तो जाना जा सकेगा और न इसके रूप में ही परिवर्तन होगा, जिससे यह आय अपने पुराने स्तर पर पुनः पहुँच जायेगी।

1 निश्चय ही भूमि को चिह्नित करने की ट्यूटानी प्रथा उतनी अधिक व्यापक नहीं थी जितनी कुछ इतिहासकार समझते थे। किन्तु जहां यह पूर्ण विकसित थी वहीं एक छोटा भाग जो घर बनाने के लिए अंकित था स्थायीरूप से घरों के लिए अलग रखा जाता था, और प्रत्येक परिवार का सदा ही उसमें हिस्सा रहता था। दूसरे भाग को जिसे कृषि योग्य चिह्नित किया गया था तीन बड़े खेतों में बांटा गया जिनमें से

प्रकार की नवीन क्रिया का निषेध करे, क्योंकि इसके अभाव मे गाँव मे सामूहिक खेती की योजना मे बाधा पड़ सकती थी और इससे अन्त मे भूमि के मूल्य मे ह्रास हो सकता था जिससे भूमि के दुबारा वितरण होने पर उन्हे क्षति होने की सम्भावना रहती थी। इसके फलस्वरूप ऐसे अनेक जटिल नियम बन गये जिनसे प्रत्येक किसान बहुत दृढ़ता से बँध गया और छोटे छोटे विवरण तक मे अपने निर्णय तथा विवेक का उपयोग नही कर सका।[1] यह सम्भव है कि जिन कारणो से मानव जाति मे स्वतन्त्र उपक्रम की भावना के विकास मे देर हुई उनमे यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह ध्यान रहे कि सम्पत्ति का संयुक्त स्वामित्व उस वैराग्य की भावना के अनुकूल था जो अनेक पूर्वी देशो के धर्मों मे व्याप्त है। हिन्दुओं मे इसके दीर्घकाल तक बने रहने का आंशिक कारण उनके धार्मिक ग्रन्थो मे विद्यमान विश्रान्ति है।

उद्योग के ढंगों पर प्रथा का प्रभाव संचयी होता है।

यह सम्भव है कि प्रथा के मूल्य, मजदूरी तथा लगान पर पड़ने वाले प्रभाव को अधिक, तथा उत्पादन के रूपों व समाज के सामान्य आर्थिक प्रबन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव को कम आंका गया है। पहली दशा में पड़ने वाले प्रभाव स्पष्ट है किन्तु वे संचयी नहीं होते। दूसरी दशा में उनके स्पष्ट न होने पर भी वे संचयी होते है। यह प्राय. सर्वव्यापक नियम है कि जब किसी कारण के प्रभाव, भले ही वे किसी एक समय अल्प ही क्यों न हों, निरन्तर समान दिशा में पड़ते हों तो उनका कुल प्रभाव प्रथम दृष्टि में दिखायी देने वाले प्रभाव की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

सभ्यता के प्रारम्भिक काल में प्रथा का कितना ही अधिक प्रभाव क्यों न रहा हो फिर भी यूनान तथा रोम के निवासियों की भावनाएँ उपक्रम से भरी हुई थीं। इस बात की खोज मे लोगों को बहुत दिलचस्पी है कि आर्थिक समस्याओ के उन सामाजिक पहलुओं को, जो हमारे लिए बड़े रोचक है, उन्होंने जानते हुए भी क्यो इतनी कम परवाह की।

पुरानी सभ्यताओं का विकास प्रायः देशों के भीतर ही हुआ।

§3. अधिकांश पुरानी सभ्यताओ का विकास बड़ी बड़ी नदियो की घाटियों मे हुआ जिनके मैदानो मे भलीभाँति सिंचाई हो सकने से बहुत कम अकाल पड़ता था। क्योंकि जब जलवायु मे उष्णता की कभी भी कमी न हो तो भूमि की उर्वराशक्ति वहाँ

प्रत्येक मे हर कुटुम्ब के पास एक एक खेत के दूर दूर बिखरे हुए टुकड़े होते थे। प्रति वर्ष इनमें से हर दो खेतों पर खेती होती थी और एक बंजर छोड़ दिया जाता था। तीसरे भाग को, जो सबसे बड़ा था, सभी गाँव वाले चरागाह के लिए मिलकर उपयोग करते थे। और यह पद्धति खेती के योग्य भूमि के बंजर भाग पर भी अपनायी गयी। कभी कभी कृषि योग्य चिह्नित भूमि का भी समय-समय पर चरागाह की भांति उपयोग किया जाता था और संयुक्त चिह्नित भूमि में से खेती योग्य भूमि निकाली जाती थी। इसके कारण पुनर्वितरण होना आवश्यक था। इस प्रकार प्रत्येक परिवार के अपनी भूमि के उपयोग करने के ढंग का गांव के सभी लोगों की भलाई अथवा बुराई पर प्रभाव पड़ता था।

1 Unseen Foundations of Society, अध्याय IX में ड्यूक आफ आर्गिल द्वारा लिखित रनरिग (Runrig) खेती को देखिए।

की वायु में नमी के अनुसार ही घटती बढ़ती रहती है। वे नदियाँ भी आसान परिवहन का साधन बन गयीं जो साधारण ढंग के व्यापारों तथा श्रम विभाजन के लिए उपयुक्त थी। इन्होंने बड़ी बड़ी सेनाओं की गतिविधि में, जिससे केन्द्रीय सरकार की निरंकुश शक्ति कायम थी, कोई भी बाधा उत्पन्न न की। यह ठीक है कि फोनिसियन लोग (Phoenicians) समुद्र के ऊपर रहते थे और इस बड़ी सामी (semitic) जाति ने अनेक जातियों मे स्वतन्त्र रूप से अन्तः सम्पर्क के लिए परिस्थिति उत्पन्न कर तथा लिखने, हिसाब व माप-तौल का ज्ञान फैलाकर बहुत बड़ी सेवा की : किन्तु इसने अपनी अधिकांश शक्ति व्यापार तथा विनिर्माणकारी उद्योगों में लगायी।

समुद्र से यूनानी लोगों को ज्ञान, स्वतन्त्रता तथा परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त हुई।

यह प्रिय सहानुभूति तथा नये जोश से भरे हुए यूनानियों पर निर्भर था कि वे समुद्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करें, व स्वतंन्त्रता की स्वच्छ सांस लें: और अपने स्वतन्त्र जीवन मे पुराने संसार के सर्वोत्तम विचारों तथा सर्वोत्तम कला को अपना ले। एशिया माइनर, मैगनाग्रेशिया (Magna Graecia) के अपने असंख्य उपनिवेशों मे यूनानी तथा यूनान की मुख्य भूमि मे यूनानी लोगों के मस्तिष्क मे आये हुए नये विचारो के कारण नयी युक्तियां विकसित हुई। ये लोग एक दूसरे से तथा प्राचीन विद्या की मुख्य जानकारी रखने वालो से निरन्तर सम्पर्क रखते थे, एक दूसरे के अनुभव से अवगत होते थे किन्तु किसी भी सत्ता के बन्धन में न थे। परम्परागत प्रथा के बोझ से दबने के बजाय नया उपनिवेश स्थापित करने के लिए शक्ति एवं उद्यम को प्रोत्साहन दिया गया और निर्बाधरूप से उन्होंने नये विचारों की सृष्टि की।

वहाँ की जलवायु में संस्कृति का विकास अल्प मूल्य पर होता था किन्तु इससे, उनका शारीरिक बल क्षीण नहीं हुआ।

वहाँ की जलवायु मे थकान देने वाले परिश्रम की आवश्यकता न थी। मेहनत का काम वे अपने दासो पर छोड़ देते थे और स्वयं अपनी कल्पनाशक्ति के स्वच्छन्द विकास में लग जाते थे। वहाँ पर मकान, कपड़े तथा ईंधन बहुत सस्ते थे। सुहावने आसमान के होने से लोग घर के बाहर रह सकते थे जिससे सामाजिक तथा राजनीतिक कामों के लिए अन्तः सम्पर्क आसानी से तथा अल्प मूल्य पर सम्भव था। भूमध्यसागर की शीतल वायु से उनकी शक्ति इतनी अधिक ताजी हो जाती थी कि इससे उनके द्वारा उत्तर स्थित अपने घरों से सीख कर साथ साथ लायी गयी स्वभाव की लोच अनेक पीढ़ियों तक कायम रही। इन परिस्थितियों मे सुन्दरता के सभी रूपो के प्रति बोध, अति सूक्ष्म भावना, चिन्तन की मौलिकता, राजनीतिक जीवन की शक्ति तथा व्यक्ति के हित को राज्य के हित के मातहत रखने की ऐसी भावनाएँ परिपक्व हुई जो कि फिर संसार में कभी भी देखने को नही मिली।[1]

अनेक भाँति से आधुनिक होने पर भी उन्हें उन

मध्ययुग के यूरोप के लोगो की अपेक्षा यूनानी लोग अधिक आधुनिक थे और कुछ विषयो मे आजकल के समय से भी आगे थे। परन्तु वे इस विचारधारा तक नहीं पहुँचे थे जिसके अनुसार मनुष्य का मनुष्य के रूप मे आदर किया जाये। वे दासता को प्रकृति का अध्यादेश समझते थे। वे खेती को उदारता से देखते थे, परन्तु अन्य सभी

1 न्यूमान (Neumann) और पार्श (Partsch) द्वारा लिखित Physikalische Geographie von Griechenland, अध्याय I तथा ग्रोट की History of Greece, भाग II, अध्याय I की तुलना कीजिए।

उद्योगों को पतित समझते थे। वे इस युग की दिलचस्प आर्थिक समस्याओं को बहुत कम जानते थे अथवा उनसे सर्वथा अनभिज्ञ थे।[1]

आर्थिक समस्याओं की अनुभूति प्राप्त न हुई जो श्रम के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न होने से बढ़ी हैं।

उन्होंने दरिद्रता के अत्यधिक दबाव का कभी भी अनुभव नहीं किया। पृथ्वी, समुद्र, सूरज तथा आसमान सभी के मिलने से उन्हें पूर्ण जीवन के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुएँ आसानी से प्राप्त हो जाती थीं। यहाँ तक कि उनके दासों को भी संस्कृति के विकास के लिए पर्याप्त सुविधाएं मिलती थीं : और यदि ऐसा न होता तो यूनानी लोगों की प्रकृति मे न तो कोई ऐसी चीज थी और न संसार ने ही इस समय तक कोई ऐसी बात सीखी थी जिससे उनका इससे बहुत अधिक लगाव रहता। यूनान की विचार-धारा की महत्ता ने इसे कसौटी बना दिया है जिसके अनुसार बाद के युगों के अनेक प्रमुख विचारकों ने प्रत्येक नयी खोज की जांच की। विद्वानों द्वारा अर्थशास्त्र का अध्ययन अधैर्य से किये जाने का मुख्य कारण यह था कि यूनानी लोग व्यापार के लिए किय गये परिश्रम तथा चिन्तायुक्त होशियारी से स्वयं अधीर हो जाते थे।

सतत् परिश्रम के लिए आवश्यक अनुशासन के प्रति अधीर होने के कारण उनका पतन हुआ।

फिर भी यूनान के पतन से एक शिक्षा मिल सकती थी। इस पतन का कारण यह था कि वहाँ पर उद्देश्य की सच्ची लगन की कमी हो गयी, जिसे सतत् परिश्रम के बिना कोई भी जाति कई पीढियों तक नही बनाये रख सकी है। सामाजिक तथा मानसिक दृष्टि से वे लोग स्वतन्त्र थे : किन्तु उन्होने अपनी स्वतन्त्रता का भली भाँति उपयोग करना नहीं सीखा था। उनमें न तो आत्मसंयम था और न अटल निश्चय। उन्हे अनूभूति तीव्रता से होती थी तथा उन्होने नये सुझावों को, जो व्यापार के मूलतत्व समझ जाते हैं, तीव्रता से अपनाया। किन्तु उनमे व्यापारिक उद्देश्य की स्थिरता और शान्तियुक्त सहनशीलता न थी। स्वास्थ्यकर जलवायु से उनकी शारीरिक शक्तियाँ धीरे धीरे आरामतलब हो गयीं। उनके पास चारित्रिक शक्ति के लिए वह रक्षा का उपाय न था जो कठिन काम में कड़े तथा सतत् परिश्रम से प्राप्त होता है, और अन्ततोगत्वा वे तुच्छता के गर्त में गिर गये।

रोम के निवासियों

§4. सभ्यता पश्चिम की ओर बढ़ती गयी और इसका दूसरा केन्द्र रोम मे हुआ। रोमवासी एक महान जाति न होकर महान योद्धा थे। उनमें तथा यूनानियो मे इस बात

---

1 पृष्ठ 4 देखिए। इस प्रकार प्लेटो ने कहा है : 'प्रकृति ने न तो जूता बनाने वालों को और न लोहारो को बनाया है। इन पेशों में काम करने वाले लोगों की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। पैसे के लिए काम करने वाले ये दयनीय व्यक्ति तो राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिये जाते है।' (Laws, XII) और अरस्तु ने इसके बाद लिखा है : 'जिस राज्य में शासन सर्वोत्तम ढंग का है वहाँ के नागरिको को शिल्पी अथवा व्यापारी नहीं बनना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार का जीवन अधम तथा सदाचार के प्रतिकूल समझा जाता है।' (Politics, अध्याय VII, पृष्ठ 9; अध्याय III, पृष्ठ 5 को देखिए)। इन पारणों (Passages) में व्यापार से सम्बन्धित यूनानी विचारधारा का निचोड़ मिलता है। किन्तु यूनान मे पुराने काल में सम्पत्ति एकत्रित करने के बहुत कम स्वतन्त्र व्यवसाय थे, अतः वहाँ के अनेक सर्वश्रेष्ठ विचारों का व्यापार में कुछ भाग लेना आवश्यक था।

का चरित्र व्यापार के अनुकूल था किन्तु वे प्रायः युद्ध तथा राजनीति पसन्द करते थे।

में समानता थी कि वे अपना अधिकांश व्यापार दासों पर छोड़ देते थे, किन्तु अन्य अनेक बातों में वे एक दूसरे के विपरीत थे। एथेन्स के नागरिकों का जीवन ताजा व परिपूर्ण था, वे नवयौवन के हर्ष के साथ अपनी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों के विकास के लिए पूर्ण अवसर देते थे और अपनी स्वभावगत विलक्षणता का विकास करते थे। इसके विपरीत रोम के नागरिकों में दृढ़ इच्छा शक्ति तथा कठोर संकल्प पाया जाता था और वे परिपक्व व्यक्तियों के निश्चित तथा गम्भीर उद्देश्यों में व्यस्त रहते थे।[1]

प्रथा के बन्धन से असाधारण रूप में मुक्त होकर उन्होंने सोच समझ कर जीवन को इस प्रकार से ढाला जैसा अब तक देखने को नहीं मिला। वे शक्तिशाली तथा निर्भीक, उद्देश्यों में अटल, साधनों से पूर्ण, आदत में सुव्यवस्थित, और निर्णय में दूरदर्शी थे। इस प्रकार यद्यपि उन्हें युद्ध तथा राजनीति प्रिय थी, फिर भी वे अपनी उन सभी मानसिक शक्तियों का निरन्तर उपयोग करते रहे जिनकी व्यापार के लिए आवश्यकता थी।

रोम की आर्थिक परिस्थितियों का रूप कुछ दशाओं में आधुनिक था, किन्तु सार में बिलकुल भी आधुनिक नहीं था।

इन सबन सब का सिद्धान्त भी क्रियाविहीन न था। स्वतन्त्र दस्तकारों की कमी होने पर भी व्यापारिक संघों में कुछ ओज था। व्यापारिक उद्देश्यों में तथा फैक्ट्रियों में दासों के श्रम से बड़े पैमाने पर उत्पादन के संयुक्त काम करने के उन ढंगों को जिन्हें यूनानी नागरिकों ने पूर्वी देशों से सीखा था रोम द्वारा उन्हें अपनाये जाने पर नयी शक्ति प्राप्त हुई। रोम के लोगों की मानसिक शक्तियाँ तथा उनका स्वभाव संयुक्त-पूंजी-कम्पनियों के प्रबन्ध के लिए नितान्त उपयुक्त था। अतः मध्यवर्गी लोगों के न होने पर, अपेक्षाकृत बहुत कम पूंजीपति लोगों ने, शिक्षित दासों तथा स्वतन्त्र किये गये लोगों की सहायता से देश-विदेश में भूमि अथवा समुद्र पर बड़े बड़े ठेके लिये। उन्होंने पूंजी को घृणायुक्त बना दिया, किन्तु साथ ही साथ शक्तिशाली और कुशल भी बनाया। उन्होंने बड़ी शक्ति से लेन देन के साधनों का विकास किया, और आर्थिक रूप से साम्राज्यिक शक्ति की एकता तथा रोमन भाषा के दूर दूर तक फैले होने के

---

1 हेगेल ने अपनी पुस्तक Philosophy of History में यूनानी तथा रोमन विचारों के आधारभूत विरोध को स्पष्ट किया था। 'यूनानी नागरिकों के स्वतन्त्रता के पहले यथार्थरूप के विषय में हम यह निश्चय ही कह सकते हैं कि उनका कोई ईमान नहीं था। उनका यह मुख्य सिद्धान्त था कि बिना किसी तर्क-वितर्क अथवा चिन्तन के अपने देश के लिए जीवित रहना चाहिए। व्यक्तिवादिता के कारण यूनानी लोगों का नाश हुआ।' और यूनानी लोगों की मधुर कविता के स्थान पर रोमन के नागरिकों के अरुचिकर जीवन ने स्थान ग्रहण किया। यह अरुचिकर जीवन व्यक्तिवादिता से कुछ स्वेच्छित उद्देश्यों के कठिन शुष्क विचार से भरा हुआ था। हेगेल ने ऐतिहासिक अर्थशास्त्र (Historical Economics) को जो अप्रत्यक्ष रूप से उदारता भरी तथा विनेदरारी प्रशंसा की उसे रोशर ने (Gesch der Nat Aek in Deutschland §188) में दिया है। मौमिसे (Mommsen) की History में धर्म पर लिखे गये अध्यायों को देखिए, जिन पर हीगेल का बहुत प्रभाव पड़ा था। कौ (Kautz) द्वारा लिखित Entwickelung der National-Aekonomie को भी देखिए।

कारण रोमन साम्राज्य के समय आजकल की अपेक्षा कुछ महत्वशील दशाओं में सभी सभ्य संसार में व्यापार तथा गमनागमन की अधिक स्वतन्त्रता थी।

अतः जब हम यह याद करें कि रोम सम्पत्ति का कितना बडा केन्द्र था, प्रत्येक रोमवासी की कितनी ज्यादा सम्पत्ति थी (और अभी हाल ही मे अन्य लोगों की सम्पत्ति उनसे आगे बढ गयी है), रोम के सैनिक तथा नागरिक विभागों के मामले, उनके लिए आवश्यक आयोजन, तथा उसके यातायात की मशीनरी कितने बडे पैमाने की थी, तो हमें इस बात से आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि बहुत से लेखकों ने यह सोचा कि रोम की तथा हमारी आज की आर्थिक समस्याओं में समानता पायी जाती है। किन्तु यह समानता दिखावटी और भ्रम में डालने वाली है। इस समानता का सम्बन्ध तो केवल बाह्य रूपों से ही है न कि राष्ट्रीय जीवन की सजीव आत्मा से, और यह इस बात को मान्यता प्रदान नही करती कि सर्वसाधारण का जीवन महत्वपूर्ण है जब कि आधुनिक काल में यही अर्थ विज्ञान के लिए सबसे अधिक हितकारक है।[1]

पुराने रोमन काल के उद्योग तथा व्यापार मे वह महत्वपूर्ण शक्ति न थी जो उनमे आधुनिक काल मे पायी जाती है। वेनिस, फ्लोरेन्स तथा ब्रूजेज के आयात की भाँति रोम के आयात ऐसे नही थे जिन्हें नागरिकों ने सम्मानित अभिमान के साथ अपने कुशल कार्य से तैयार किया हो। आयात की वस्तुएँ वे लडाई द्वारा प्राप्त करते थे। यातायात तथा उद्योग को केवल धनोपार्जन के लिए ही किया जाता था। जनसाधारण की व्यापार से घृणा होने के कारण व्यापारिक जीवन की प्रतिष्ठा कम हो गयी, और यह भूमि के अतिरिक्त सिनेट के सदस्यों के अन्य सभी प्रकार के व्यापारो के 'कानूनी तथा लगभग प्रभावशाली प्रतिबन्ध'[2] में दृष्टिगोचर होती थी। रोम के सामन्तों ने कर

---

1 अध्याय 1, अनुभाग 2 को देखिए। कुछ हद तक यह गलत धारणा सामान्यतया उग्र तथा संतुलित रोशे (Roscher) के प्रभाव के कारण फैली। उन्होंने पुरानी तथा आधुनिक समस्याओं के बीच समानता स्थापित करने में विशेष आनन्द का अनुभव किया। यद्यपि उन्होंने भिन्नता भी बतलायी किन्तु उनके लेखों से भ्रम ही पैदा हुआ। (उनकी स्थिति की नीज ने भलीभाँति आलोचना की Politische Aekonomie vom geschichtlichen Standpunkte विशेषकर द्वितीय संस्करण के पृष्ठ 391 को देखिए।

2 Friedlander, Sittengeschichte Roms, पृष्ठ 225। मामसे ने (History भाग IV, अध्याय XI में) यहाँ तक लिखा है कि 'व्यापार तथा तैयार माल के विषय में इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहना है कि इस विषय में इटली राष्ट्र ने जंगलीपन जैसी निष्क्रियता को अपनाया। रोम में वैयक्तिक अर्थशास्त्र की विशेष बात वहाँ की मुद्रा का क्रयविक्रय तथा वस्तुओं का व्यवसाय था।' कैरनेस की Slave Power के अनेक धारण मामसेन की History के आधुनिक विवरण की भाँति है। नगरों तक में गरीब रोमवासियों का भाग दक्षिणी दासों से भरे राज्यों के नीच गोरे व्यक्तियों के भाग्य के समान था। Latifundia perdidere Italiam; किन्तु ये फार्म दक्षिणी राज्यों के फार्मों की भाँति थे न कि इंगलैंड के फार्मों की भाँति।

बहुत समय तक परिवार के प्रतिनिधि होने के नाते न कि एक व्यक्ति होने के नाते उसमें निहित माना जाता था। किन्तु जब रोम साम्राज्यवादी शक्ति के रूप मे विकसित हुआ तो उसके वकील अनेक राष्ट्रों के कानूनी अधिकारों के अन्तिम माष्यकार बन गये : और जितेन्द्रिय प्रभाव में उन्होंने प्रकृति के आधारभूत नियमों को जिसे वे सभी विशेष संहिताओं के नीव में छिपा हुआ मानते थे, ढूंढने मे लग गये। न्याय के आकस्मिक तत्वों के विरुद्ध सर्वव्यापी तत्वों की खोजबीन मे सामूहिक जोत के अधिकारों का प्रभावपूर्ण हल निकल आया। कृषि स्वामित्व के अधिकारों के लिए स्थानीय प्रथा प्रयोग के अतिरिक्त और कोई कारण नही हो सकता। अतः बाद के रोमन कानून ने धीरे धीरे किन्तु नियमित रूप से ठेका-प्रणाली के क्षेत्र को विस्तृत किया। इससे इसकी विशुद्धता, लोच तथा शक्ति में अधिक वृद्धि हुई। अन्त मे प्रायः सभी सामाजिक व्यवस्थाएँ इसके आधिपत्य में आ गयी। व्यक्तिगत सम्पत्ति का स्पष्टरूप से निर्धारण किया गया जिससे कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुरूप इसका उपयोग कर सकता था। जितेन्द्रिय (स्टोइक) चरित्र की व्यापकता एवं महानता से प्रभावित होकर आधुनिक वकीलों ने उच्च कर्तव्यनिष्ठा उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त की ' और कडे आत्मनिर्णय से उन्होंने सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकारों को तीक्ष्णता से पारिभाषित करने की प्रवृत्ति (प्रेरणा) प्राप्त की। अतः हमारे वर्तमान आर्थिक पद्धति की बहुत कुछ अच्छाइयाँ एव बुराइयाँ अप्रत्यक्ष रूप से रोम तथा विशेषकर जितेन्द्रिय (स्टोइक) प्रभाव के कारण है : एक ओर तो व्यक्ति का अपने कामकाज के प्रबन्ध मे बहुत उनमुक्त ओज था तथा दूसरी ओर कानून की पद्धति द्वारा स्थापित अधिकारों की छाया मे कुछ भी बुराई का न उत्पन्न होना था। यह कानून अपने मुख्य सिद्धान्तों के बुद्धिमत्तायुक्त एव न्यायोचित होने के कारण बहुत समय तक चलता रहा।

अनुभव के कारण ठेके के क्षेत्र को बढ़ाने लगे,

पूर्व से आये हुए जितेन्द्रिय (स्टोइक) दर्शन मे तीव्रनिष्ठा के साथ साथ पूर्वी देशों की कष्टप्रियता भी थी। स्टोइक दार्शनिक सत्कार मे सक्रिय भाग लेने पर भी संसार की यातनाओं से अपने को परे समझने मे हर्ष का अनुभव करता था : जीवन की उथल पुथल मे कर्तव्य समझ कर उसने अपना पार्ट अदा किया, किन्तु वह इनके साथ समझौता नही करना चाहता था: अपनी असफलताओं की चेतना से पीड़ित होकर *उसका जीवन विषादपूर्ण तथा निष्ठुर ही बना रहा। हीगेल के अनुसार यह* आन्तरिक विरोधाभास तब तक दूर नही हो सकता था जब तक केवल आत्मत्याग की भावना से आंतरिक पूर्णता को प्राप्त करना एक लक्ष्य न बना लिया जाये, और इस प्रकार आन्तरिक पूर्णता की तलाश का सभी सामाजिक कार्यों मे होने वाली असफलताओं के साथ सामंजस्य था। इस महान परिवर्तन के लिए यहूदियो की तीव्र धार्मिक भावना ने मार्ग तैयार किया। किन्तु संसार ईसाई मनोभावना की पूर्णता को स्वीकार करने के लिए तब तक तैयार न हुआ जब तक जर्मन जाति के गहरे वैयक्तिक स्नेह ने इसे नया रूप नही दिया। यहाँ तक कि जर्मन लोगों मे वास्तविक ईसाई धर्म धीरे धीरे प्रविष्ट हुआ और रोम के पतन के बाद बहुत समय तक पश्चिमी यूरोप में अराजकता फैली रही।

किन्तु एक नयी भावना की आवश्यकता थी।

§5. ट्यूटानी लोग हृष्ट-पुष्ट और दृढ निश्चयी अवश्य थे किन्तु फिर भी वे प्रथा

ट्यूटानी जाति के लोग पराजितों से सीखने में सुस्त थे।

तथा अज्ञानता के बन्धनों से अपने को मुक्त न कर सके। सहृदयता तथा निष्ठा[1] उन्हें विशेष शक्ति देकर जाति तथा परिवार की संस्थाओं तथा रीतियों के प्रति उनकी अनुरक्ति पैदा कर देती थी। अधिक सुसंस्कृत किन्तु शक्तिहीन पराजितों से नये विचारों के ग्रहण करने की जितनी कम क्षमता ट्यूटानियों (प्राचीन जर्मनों) ने प्रदर्शित की थी उतनी शायद ही अन्य किसी बड़ी जाति ने प्रदर्शित की होगी। वे अपनी क्रूर शक्ति एवं स्फूर्ति पर गर्व करते थ, तथा ज्ञान और कला की बहुत कम परवाह करते थे। किन्तु उन्हें भूमध्य सागर के पूर्वी तटों पर अस्थायी रूप से तब तक शरण मिली जब तक कि दक्षिण से आने वाली अन्य विजयी जाति पुन. उन्हें नया जीवन एव ओज प्रदान करने के लिए तत्पर न हुई।

गैर ईसाइयों (Saracens) के प्रति हमारा ऋण।

गैर ईसाइयों (अरबों) ने उत्सुकता के साथ पराजितों से सीखने लायक सर्वोत्तम सबकों को सीखा। उन्होंने कलाओं तथा विज्ञानों का पोषण किया और ऐसे समय में विद्या की मशाल को प्रज्वलित रखा जब संसार के ईसाई लोगो ने इस बात की बहुत कम परवाह की कि यह मशाल बाहर तक गयी या नही, और इसके लिए हम सदैव उनके आभारी हैं। किन्तु उनका नैतिक स्वभाव ट्यूटानियो (प्राचीन जर्मनों) की भाँति पूर्ण न था। गर्म जलवायु तथा उनके धर्म की विषयासक्ति के कारण उनका ओज तेजी से नष्ट होने लगा, और उन्होने आधुनिक सभ्यता की समस्याओं पर बहुत कम प्रत्यक्ष प्रभाव डाला है।[2]

बाद में सभ्यता उत्तर तथा पश्चिम दिशाओं में फैल गयी और शहर तथा देहात की पुरानी कलह पुनर्जीवित हो गयी।

प्राचीन जर्मनों की शिक्षा मे पहले की अपेक्षा यद्यपि मन्द किन्तु अधिक निश्चित रूप से प्रगति हुई। वे सभ्यता को उत्तर दिशा मे एक ऐसी जलवायु वाले स्थान की ओर ले गये जहां संस्कृति के सुदृढ रूपों के मन्द विकास के साथ साथ अविरत कठिन परिश्रम भी बढ़ा। और वे इसे पश्चिम दिशा मे अन्धमहासागर तक ले गये। जो सभ्यता बहुत समय पूर्व ही नदियों के किनारो से देश के भीतर स्थित बड़ समुद्रो की ओर बढ़ गयी थी उसे अन्ततोगत्वा विशाल महासागर को पार करना था।

किन्तु स्वय ये परिवर्तन धीरे धीरे हुए। नये युग मे हमारे लिए सबसे पहली रोचक बात शहर तथा राज्य के बीच के पुराने कलह का फिर से प्रारम्भ होना है जो कि रोम के सार्वभौमिक आधिपत्य के कारण स्थगित हो गयी थी। वास्तव में यह साम्राज्य एक ऐसी सेना की भाँति था जिसके प्रधान कार्यालय शहर में थे, किन्तु जिन्हें दूर तक फैले हुए भूभाग से शक्ति मिलती थी।

तार तथा मुद्रणालय

§6. कुछ ही वर्ष पूर्व तक एक बड़े देश मे जनता द्वारा पूर्ण तथा प्रत्यक्ष स्वायत्त-शासन असम्भव था: इसका शहरों अथवा बहुत छोट प्रदेशों मे ही अस्तित्व हो सकता

---

1 हीगेल (Philosophy of History, भाग IV) उनकी स्फूर्ति, उनकी स्वतंत्र भावना, पूर्ण आत्मनिर्णय (Eigensinn), सहृदयता (Gemiuth) के बारे में बतलाते समय इस विषय की गहराई में पहुँच जाते हे और यह भी कहते ह कि 'निष्ठा उनका दूसरा मूलमंत्र है जैसा कि स्वतंत्रता पहला है।'

2 ड्रेपर ने उनके कार्य का बड़ा ही सराहनीय गुणगान किया है। Intellectual Development of Europe, अध्याय XIII.

था। शासन आवश्यकरूप से ऐसे कुछ ही लोगों के हाथो मे था जो अपने को विशेष सुविधा प्राप्त उच्चवर्गों का और श्रमिको को निम्न वर्गों का मानते थे। परिणामस्वरूप श्रमिको को अपने स्थानीय कार्यों के प्रबन्ध करने के अधिकार प्राप्त होने पर भी उनमे बहुधा साहस, आत्मविश्वास तथा मानसिक क्रिया की आदतो का अभाव था जो कि व्यावसायिक उद्यम के आधार के रूप मे आवश्यक है। वास्तव मे केन्द्रीय सरकार तथा स्थानीय सुप्रतिष्ठित व्यक्तियो ने देशान्तरण पर निषेधकर तथा सबसे अधिक भारस्वरूप और क्लेशकर करो एव चुंगी को लगाकर, उद्योग की स्वतन्त्रता मे प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप किया। यहाँ तक कि निम्न वर्गो के उन लोगो को भी जो नाममात्र के लिए स्वतन्त्र थे हर बहाने लगाये गये मनमाने अर्थदण्ड एव देनदारी (dues), द्वारा न्याय के बहाने से और प्रायः प्रत्यक्ष हिंसा तथा खुलेआम छीना-झपटी से लूटा गया था। ये भार मुख्यतया उन्ही लोगो पर पड़ा जो अपने पड़ोसियो की अपेक्षा अधिक मेहनती तथा अधिक किफायतकार थे। ये पड़ोसी वे ही लोग थे जिनमे यदि देश स्वतन्त्र होता तो साहसपूर्ण उद्यम की भावना धीरे धीरे इतनी तीव्र हो जाती कि वे रीतिरिवाज एव परम्परा के बन्धनों से मुक्त हो जाते।

के बिना एक विशाल देश में कुलीन लोगों तक ही स्वतन्त्रता सीमित थी।

शहरो मे रहने वाले लोगों की अवस्था बहुत ही भिन्न थी। वहाँ औद्योगिक वर्गो की शक्ति उनकी सख्या में निहित थी, और बिलकुल भी प्रभुत्व प्राप्त न कर सकने पर भी वे लोग अपने ग्रामीण भाइयो की भाँति अपने शासको से भिन्न वर्ग के नही माने जाते थे। प्राचीन एथेन्स की भाँति फ्लोरेन्स तथा ब्रूजेज (Bruges) मे सार्वजनिक नीति के नेताओ से उनकी योजनाओ का वर्णन तथा उनके कारणो को सभी लोग सुन सकते थे तथा उन्होने कभी कभी सुना भी था, और अगले कदम के उठाये जाने से पहले वे लोग अपनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति को जता सकते थे। वे सभी लोग एक दूसरे की राय को जानते हुए, पारस्परिक अनुभव से लाभ उठाये हुए, मिल करके एक निश्चित सकल्प करते हुए तथा अपने ही कार्य से उसे कार्यरूप मे परिणित करते हुए, मौके पर तत्कालीन सामाजिक एव औद्योगिक समस्याओ पर विचार कर सकते थे। किन्तु इस प्रकार की कोई भी चीज एक विस्तृत क्षेत्र मे तब तक नही हो सकती थी जब तक कि तार, रेल तथा सस्ते मुद्रण का आविष्कार न हुआ था।

किन्तु शहरों में लोगों द्वारा स्वायत्त-शासन सम्भव था।

इनकी सहायता से अब राष्ट्र अपने नेताओ द्वारा सायकाल मे कही गयी बातों को दूसरे दिन प्रात:काल ही पढ़ सकता है, और एक और दिन बीतने के पूर्व इस पर राष्ट्र का निर्णय भी भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। इनके द्वारा एक विशाल व्यापारिक सघ की परिषद् अल्प लागत पर देश के हर भाग मे स्थित अपने सदस्यों के निर्णय के लिए एक कठिन समस्या पेश कर सकती है, और चन्द दिनों मे ही उनका निर्णय प्राप्त कर सकती है। अब एक विशाल देश मे भी वहाँ की जनता का शासन हो सकता है। किन्तु अब तक जिसे "लोकप्रिय सरकार" कहा जाता था वह भौतिक आवश्यकता के कारण न्यूनाधिक रूप मे विस्तृत अल्पतंत्र का शासन था। केवल वे थोड़े लोग ही शासन में प्रत्यक्षरूप में भाग ले सकते थे जो स्वयं प्रायः सरकार के केन्द्र तक जा सकते थे, या जिनका कम से कम उससे निरन्तर सम्पर्क था। यद्यपि बहुत अधिक लोग अपने प्रतिनिधियों के चुनाव द्वारा यह पर्याप्तरूप से जान सकते हैं कि किस प्रकार

एक विशाल देश में अब यह पहले पहल सम्भव हुआ है।

उनकी इच्छा को स्थूलरूप मे प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है तथापि कुछ ही वर्ष पूर्व तक वे लोग देश के थोड़े अल्पसंख्यको मे से ही थे। प्रतिनिधित्व की प्रणाली भी हाल ही की देन है।

मध्य युग के शहर आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के पूर्वगामी थे।

§7. मध्य युगों मे शहरों के उत्थान व पतन का इतिहास प्रगति के ज्वारभाटे की क्रमिक लहरों के उतार-चढ़ाव का इतिहास है। प्रायः मध्य युगों के शहरों का उद्भव व्यापार तथा उद्योग के कारण हुआ, और उनका इन्होंने बाद मे तिरस्कार नही किया। यद्यपि सम्पत्तिवान नागरिकों ने कभी-कभी एक सुदृढ़ सरकार की स्थापना की जिसमे श्रमिकों को शामिल नही किया गया था तथापि कदाचित् ही उनकी अधिक समय तक सत्ता कायम रही: वहाँ के अधिकाश निवासियों को बहुधा नागरिको के सभी अधिकार प्राप्त थे और वे अपने शहर की आन्तरिक व बाह्य नीति स्वयं निर्धारित करते थे तथा साथ ही साथ अपना काम स्वयं कर अपने कार्य मे गर्व अनुभव करते थे। उन्होंने अपनी सलग्नता को बढाते हुए तथा स्वायत्त शासन की शिक्षा प्राप्त करते हुए अपने-आप को व्यापारिक सघो मे संगठित किया। यद्यपि व्यापारिक संघ बहुधा एक दूसरे से अलग थे, और उनके व्यापारिक नियंत्रणो ने अन्ततोगत्वा प्रगति में बाधा डाली तथापि इस अचेतनकारी प्रभाव के दिखायी देने के पूर्व उन्होंने उत्कृष्ट कार्य किया।[1]

नागरिको ने बिना स्फूर्ति खोये सास्कृतिक लाभ प्राप्त किया। अपने व्यवसाय की अवहेलना किये बिना उन्होंने अपने व्यवसाय के अतिरिक्त अनेक चीजों में बुद्धिमत्तापूर्ण रुचि दिखायी। उन्होने ललित कलाओं मे अगुवायी की और वे सग्राम मे भी पीछे नही रहे। उन्होंने सार्वजनिक उद्देश्यों मे प्रचुर मात्रा मे व्यय करने में गर्व का अनुभव किया, और सार्वजनिक साधनो का सतर्कतापूर्वक मितव्ययिता से प्रबन्ध करने मे वे राज्य के स्पष्ट एव निष्कपट आयव्ययको तथा समान वितरण एवं अच्छे व्यावसायिक सिद्धान्तों पर आधारित कर-प्रणालियो मे बराबर ही गर्व का अनुभव किया। इस प्रकार उन्होंने आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की ओर मार्गदर्शन कराया। यदि उनके मार्ग मे कोई विघ्न न उठते और यदि वे स्वतन्त्रता एव सामाजिक समता के प्रति अपने पहले-पहल के अनुराग को बनाये रखते तो उन्होंने सम्भवतः बहुत पहले ही सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओ का हल निकाल लिया होता जिनका हम केवल इस समय ही सामना करने समर्थ हुए। किन्तु बहुत समय तक उपद्रवो तथा युद्ध से परेशान होने के बाद वे अन्त मे अपने चारों ओर के राष्ट्रों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने झुक गये। वास्तव मे जब उनका अपने पड़ोसियों पर आधिपत्य था तो स्वयं उनका शासन बहुधा निष्ठुर तथा दमनात्मक था जिससे अन्ततोगत्वा उस राष्ट्र ने

1 ऐसे बड़े स्वतन्त्र और प्रायः स्वशासित शहरों के विषय में जो बात सत्य हो सकती है, वही कुछ मात्रा में इंगलैंड के स्वतन्त्र नगरों के विषय में सत्य है। उनके संविधान उनकी स्वतन्त्रताओं के उद्भव की अपेक्षा अधिक भिन्न थे किन्तु यह सम्भव है और जैसा एक समय समझा भी गया था कि वे अपेक्षाकृत सामान्यतया अधिक प्रजातांत्रिक तथा कम अल्पतंत्रीय थे। विशेषकर ग्रोस (Gross) की The Gild Merchant, अध्याय VII को देखिए।

उचित प्रतिशोध के रूप में उन्हें उखाड़ फेंका। उन्होंने अपने दुष्कर्मों का फल भोगा : किन्तु उनके भले काम का फल बचा हुआ है और यह उन सामाजिक तथा आर्थिक परम्पराओं में पायी जाने वाली बहुत कुछ अच्छाइयों का स्रोत रहा है जो वर्तमान युग ने पूर्वगामी युगों से प्राप्त की है।

नैतिक एवं धार्मिक दानवीरता ने निर्धनों की रक्षा नहीं की।

§8. ट्यूटानी (प्राचीन जर्मन) जाति की प्रगति के लिए सम्भवतः सामन्तशाही अवस्था का होना आवश्यक था। इसने प्रभुत्व-सम्पन्न वर्ग की राजनीतिक योग्यता का विस्तार किया और जनसाधारण को अनुशासन तथा आज्ञापालन की शिक्षा दी। किन्तु इसमें बाह्य सौन्दर्य के रूपों में बहुत कुछ शारीरिक एवं नैतिक क्रूरता तथा मलिनता छिपी रही। धार्मिक एवं नैतिक दानवीरता के फलस्वरूप सार्वजनिक रूप में स्त्रियों के प्रति अत्यधिक सम्मान तथा घरेलू अत्याचार का सम्मिश्रण हुआ : निम्न वर्गों के लोगों के प्रति क्रूरता तथा आर्थिक अपहरण के साथ साथ सामन्तों के स्तर के योद्धाओं के प्रति शिष्टाचार के विस्तृत नियम बने रहे। शासक वर्गों से सच्चाई तथा उदारता के साथ एक दूसरे के प्रति आभार प्रकट करने की प्रत्याशा की जाती थी।[1] उनके जीवन के आदर्शों में कुलीनता का अभाव न था अतः उनके चरित्र विचारशील इतिहासकारों तथा भव्य प्रदर्शनों एवं रोमांसकारी घटनाओं से सम्बन्धित युद्ध का वर्णन करने वाले इतिहासकारों के लिए सदैव ही रोचक रहेंगे। किन्तु जब वे स्वयं अपने वर्ग के लोगों द्वारा निर्धारित आचार संहिता के अनुसार व्यवहार करते थे तो उनकी अन्तरात्मा संतुष्ट होती थी और उस संहिता के एक अनुच्छेद में यह भी दिया गया है कि निम्नवर्गों के लोगों को उनके स्थान तक ही सीमित रखा जाय। वास्तव में नित्य सम्पर्क में आने वाले अनुचरों के प्रति वे बहुधा दयावान ही नहीं बल्कि स्नेहपूर्ण भी थे।

चर्च ने कुछ प्रकार से आर्थिक स्वतन्त्रता

जहाँ तक व्यक्तिगत कठिनाइयों का प्रश्न है, चर्च ने कमजोर लोगों की रक्षा की और निर्धनों की यातनाओं को कम करने का प्रयास किया। यदि वे ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से मुक्त होते तथा संसार के साथ घुल मिल कर रह सकते तो सम्भवतः चर्च की सेवाओं के लिए आकर्षित होने वाले उत्तम स्वभाव के व्यक्तियों ने बहुधा

---

1 किन्तु इटली के शहरों में दगाबाजी साधारणतया पायी जाती थी, और उत्तर में स्थित गढ़ों में भी बहुत कमी न थी। लोग अपने परिचितों का वध करते तथा विष देकर हत्या करते थे, मेजबान (host) से प्रायः यह प्रत्याशा की जाती थी कि वह अपने अतिथियों को दिये जाने वाले भोजन तथा पेय का पहले आस्वादन करेगा। जिस प्रकार एक चित्रकार का अपने चित्रपट पर भव्य मुखाकृतियाँ भरना उचित है और वह यथासम्भव अभव्यता को कम से कम प्रदर्शित करता है उसी भाँति एक लोकप्रिय इतिहासकार उन ऐतिहासिक चित्रों में नवयुवकों की प्रतिस्पर्द्धा की भावना को प्रोत्साहित करता है जो कुलीन स्त्री एवं पुरुषों के जीवन में विपर्यय दिखाते हुए महत्वपूर्ण बन जाते हैं जबकि चारों ओर के भ्रष्टाचार पर परदा डाल दिया जाता है। किन्तु जब हम संसार की प्रगति को आँकना चाहते हैं तो हमें विगत की बुराई की उसके वास्तविक रूप में गणना करनी चाहिए। अपने पूर्वजों के प्रति अधिक न्यायसंगत दृष्टिकोण अपनाना अपनी जाति के सर्वोत्तम आशाओं के प्रति कम न्यायसंगत होता है।

के विकास में तो सहायता पहुँचायी, किन्तु अन्य बातों के विकास में बाधा डाली।

अधिक व्यापक तथा अधिक अच्छा प्रभाव डाला होता। किन्तु इस कारणवश पादरी तथा साधुओं ने निर्धन वर्गों के लोगों को जो लाभ पहुँचाया उसे कम महत्वपूर्ण नही समझा जा सकता। मठ (monastery) उद्योग और विशेषकर कृषि के वैज्ञानिक विवेचन के केन्द्र थे: वे विद्वानो के लिए सुरक्षित विद्यापीठ थे, और पीड़ित लोगो के लिए अस्पताल व भिक्षुगृह थे। चर्च ने छोटे बड़े सभी मामलों मे शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। इनके प्राधिकार मे आने वाले त्यौहारो तथा बाजारो ने व्यापार को स्वतन्त्रता एव सुरक्षा प्रदान की।[1]

पुन. जाति के पृथक्करण के विरुद्ध चर्च ने निरन्तर प्रत्याख्यान (protest) किया। प्राचीन रोम की सेना की भाँति व्यवस्था मे इसका रूप प्रजातान्त्रिक था। यह सदैव ही योग्यतम व्यक्तियों को चाहे उन्होंने किसी भी जाति मे जन्म लिया हो, उच्चतम स्थान तथा उठाने के लिए तत्पर था। इसके पादरी तथा मठ की मर्यादा ने लोगो के भौतिक एव नैतिक कल्याण के लिए बहुत कुछ काम किया, और कभी कभी तो उसके कारण उन्होंने खुलेआम अपने शासको के अत्याचार का विरोध किया।[2]

---

1 सम्भवतः हम चर्च द्वारा ब्याजखोरी की तथा कुछ प्रकार के व्यापारों की निन्दा करने पर शायद अधिक जोर देते हैं। उस समय व्यवसाय में पूँजी लगाने के लिए ऋण मिलने का बहुत कम क्षेत्र था, और जब कभी इसके लिए क्षेत्र मिलता था तो इस निषेध का अनेक प्रकार से उल्लंघन किया जा सकता था। वास्तव में इसमें से कुछ के लिए तो चर्च की भी स्वीकृति थी। यद्यपि सेंट क्रिसास्टम ने कहा कि 'जो किसी चीज के रूप में बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किये उसे पूर्ण रूप में लाभ प्राप्त करने के लिए बेचना चाहता है वह देवालय से निकाल दिया जाता है," तथापि चर्च ने सौदागरों को मेलों में तथा अन्यत्र बिना किसी परिवर्तन के चीजों को खरीदने तथा बेचने के लिए प्रोत्साहित किया। चर्च तथा राज्य के प्राधिकार तथा लोगों की प्रतिकूलता ने मिलकर उन लोगों के मार्ग में कठिनाइयाँ डालीं जिन्होंने लाभ पर फुटकर वस्तुएँ बेचने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में चीजें खरीद लीं। यद्यपि उन लोगों का अधिकांश व्यवसाय वैध व्यापार था किन्तु इससें से कुछ निश्चितरूप से आधुनिक उत्पादन बाजारों के 'चक्करों' तथा 'नुक्कडों' के समान थे। एश्ले की History में धर्मदिशगत सिद्धान्त (Canonist Doctrine) पर लिखे गये उत्कृष्ट लेख तथा Economic Review, खण्ड IV में हेवीन्स (Hewins) द्वारा किये गये इसके निरूपण से तुलना कीजिए।

2 अप्रत्यक्ष रूप में धर्मयुद्धों को बढ़ावा देकर इसने प्रगति में सहायता पहुँचायी। इसके बारे में इंग्राम (History, अध्याय II) ठीक ही कहते हैं कि उन्होंने अनेक दशाओं मे प्रधान सामन्तों की सम्पदा को औद्योगिक वर्गों को हस्तान्तरित कर दृढ़ आर्थिक प्रभाव डाला, जब कि विभिन्न देशों तथा जातियों को सम्पर्क में लाने, मानसिक ज्ञान की सीमा तथा जनसंख्या की सामान्य धारणाओं के विस्तार तथा नौ-परिवहन को विशेष प्रोत्साहन देने से उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक नयी हलचल पैदा कर दी।

किन्तु इसके विपरीत इसने स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्णय की प्रतिभावों के विकास में सहायता पहुँचाने तथा वास्तविक आन्तरिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने मे सहायता नही पहुँचायी। यह चाहते हुए कि असाधारण अद्भुत बुद्धि वाले व्यक्ति इसकी सहायता से उच्चतम पदो पर पहुँचे जब सामन्तवाद की शक्तियों ने सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग को अशिक्षित, उद्यमहीन तथा हर तरह से अपने से बडों पर आश्रित रखने का प्रयास किया तो इसने उनके मार्ग मे बाधा डालने की अपेक्षा उन्हे सहायता पहुँचायी। ट्यूटानी सामन्तवाद अपनी मूल प्रवृत्ति मे प्राचीन रोम के सैनिक शासन की अपेक्षा अधिक दयावान था। सामान्य जन तथा पादरी सभी लोग मनुष्य के गौरव के सम्बन्ध मे ईसाई धर्म के अपूर्णरूप से समझे उपदेशों से प्रभावित हुए। इसके बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रो के शासकों ने मध्ययुगो के प्रारम्भ मे धर्मतान्त्रिक जाति (theocratic caste) की पूर्वदेशीय सूक्ष्मता तथा रोम की अनुशासन एव दृढ निश्चय की शक्ति मे निहित सबलता को साथ मिलाया, और उन्होने अपनी सयुक्त शक्ति को इस प्रकार लगाया जिससे समाज के निम्न श्रेणियो के लोगो की शक्ति के विकास तथा आचरण की स्वतन्त्रता मे अवरोध उत्पन्न हुआ।

शहरों का पतन।

सामन्तवाद की सैनिक शक्ति स्थानीय ईर्ष्या की भावनाओ के कारण बहुत समय तक दुर्बल होती गयी। यह विस्तृत क्षेत्रो की सरकार को चार्ल्स महान जैसी मेधा द्वारा एक सूत्र मे बाधने के लिए प्रशासनीय रूप से अनुकूल थी. किन्तु इसमे निरन्तर यह सम्भावना थी कि पथ-प्रदर्शक मेधा के तिरोहित हो जाने पर यह शक्ति तितर-बितर हो जायेगी। बहुत समय तक इटली मे शहरो का शासन रहा जिनमे से एक शहर रोम की वशावली का था और इसने महत्वाकाक्षा तथा उद्देश्य की दृढता के साथ अपने जलमार्गों को अभी हाल तक बाह्य आक्रमणो से बचाया। हालैंड तथा यूरोप महाद्वीप के अन्य भागो मे स्वतन्त्र शहर बहुत समय तक अपने चारो ओर के राजाओ तथा बेरनो के अत्याचार का विरोध करते रहे। किन्तु अन्त मे आस्ट्रिया, स्पेन तथा फ्रान्स मे स्थायी राजतत्र की स्थापना हुई। कुछ योग्य व्यक्तियो द्वारा चलाये जाने वाले निरकुश राजतत्र ने देहात के अज्ञान किन्तु हृष्ट-पुष्ट लोगो की विशाल सेना को अनुशासन मे रखा और उनकी व्यवस्था की। उनका अपनी पहले की त्रुटियों को दूर कर आगे बढने का अवसर मिलने से पूर्व ही स्वतंत्र शहरो के उद्यम, उद्योग तथा सस्कृति का भव्य मिश्रण समाप्त हो गया।

मुद्रण कला का आविष्कार, धर्मसुधार, तथा नये संसार की खोज।

ससार की प्रगति पिछड गयी होती यदि उस समय नियंत्रण के बन्धनों को तोडने तथा विस्तृत भू-भाग मे स्वतन्त्रता का प्रसार करने की नयी शक्तियों का अभ्युदय न हुआ होता। बहुत थोड़े समय बाद ही मुद्रणकला का आविष्कार हुआ, शिक्षा का पुनः प्रचलन हुआ, धार्मिक सुधार हुए, नये ससार तथा भारत के लिए समुद्री मार्गों की खोज हुई। इनमे से किसी एक भी घटना द्वारा इतिहास मे नये युग का आरम्भ हो सकता था किन्तु इनके साथ साथ होने तथा सभी के समान उद्देश्य की पूर्ति मे लगे होने के कारण उन्होंने पूर्णक्रान्ति को जन्म दिया।

तुलनात्मकरूप से विचारों की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और लोगों की पहुँच से ज्ञान बिलकुल दूर न रहा। यूनानियो का स्वच्छन्द स्वभाव पुनर्जीवित हुआ, आत्मनिर्णय

की दृढ़ भावनाओं को नयी शक्ति मिली, और वे अन्य लोगों पर अपना प्रभाव डाल सकी। नये महाद्वीपो ने विचारकों को नयी समस्याओं से अवगत कराया, और साथ ही बड़े साहसी व्यक्तियों के उद्यम के लिए इसमे नया क्षेत्र प्रदान किया।

समुद्री खोज का पहला लाभ स्पेन प्रायद्वीप को मिला,

§9. समुद्री खोज के जोखिम उठाने वाले देशों मे स्पेन प्रायद्वीप के देश मुख्य थे। कुछ समय तो ऐसा लगा कि मानों संसार का नेतृत्व पहले पहल भूमध्य सागर के सबसे पूर्वी प्रायद्वीप के लोगों ने किया। इसके बाद मध्य प्रायद्वीप के लोगों ने और अन्त मे उस पश्चिमी प्रायद्वीप के लोगों ने किया जो भूमध्य सागर तथा अन्य महासागर का भाग है। किन्तु औद्योगिक प्रभुता अब तक उत्तर स्थित देशों की जलवायु में सम्पत्ति तथा सभ्यता को बनाए रखने के लिए पर्याप्त हो गयी थी। स्पेन तथा पुर्तगाल की यह शक्ति उत्तर के लोगो की निरन्तर विद्यमान रहने वाली शक्ति तथा उदार भावना के विरुद्ध अधिक समय तक न टिक सकी।

किन्तु यह लाभ शीघ्र ही हालैंड को भी मिलने लगा।

हालैंड के लोगो का प्रारम्भिक इतिहास निश्चय ही एक अद्भुत वीरगाथापूर्ण एतिहास है। मछली पकड़ने तथा कपडा बुनने के काम को आधार बनाकर उन्होने कला और साहित्य, विज्ञान तथा राजसत्ता के सुन्दर ढांचे का निर्माण किया। जिस प्रकार प्राचीन काल मे फारस ने स्वतंत्रता की उदीयमान भावना का दमन किया था उसी प्रकार स्पेन ने भी इसका दमन करना आरम्भ कर दिया, और जिस प्रकार फारस ने भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर बसे हुए यूनानियो को कुचल दिया किन्तु ऐसा करके खास यूनान की भावना को और भी उत्तेजित किया, उसी प्रकार आस्ट्रिया व स्पेन के साम्राज्य ने बेल्जियम के डचो को परास्त कर दिया किन्तु इसने ऐसा करके डच, हालैंड तथा इंग्लैंड की देशभक्ति को और भी तीव्र बना दिया।

हालैंड को अपने वाणिज्य की इग्लैंड द्वारा ईर्ष्या की जाने से तथा इससे भी अधिक फ्रांस की उग्र सैनिक महत्वाकाक्षा के कारण हानि उठानी पडी। शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि हालैंड, फ्रांसीसी आक्रमण के विरुद्ध यूरोप की स्वतन्त्रता की रक्षा कर रहा है। किन्तु अपने इतिहास के सकटकाल मे उसे प्रोटेस्टेंट धर्म वाले इग्लैंड से उचित प्रत्याशित सहायता न मिल सकी, और यद्यपि 1688 ई० के बाद यह सहायता उसे उदारतापूर्वक मिलने लगी, किन्तु तब तक उसके बलिष्ठ एव उदार पुत्र संग्राम भूमि मे समाप्त हो चुके थे, और वह ऋण के भार से दब चुकी थी। अब उसका उतना श्रेष्ठ स्थान न रहा था: किन्तु उसने जो कुछ भी किया और स्वतत्रता एवं उद्यम के लिए वह आगे जो कुछ भी करेगी उसके प्रति अन्य किसी की अपेक्षा अंग्रेज लोग निश्चय ही अधिक कृतज्ञ होंगे।

यह लाभ फ्रान्स व इंग्लैंड को भी प्राप्त हुआ।

फ्रान्स तथा इंग्लैंड ये दोनों महासमुद्र के साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी बने रहे। फ्रान्स के पास उत्तर के अन्य किसी देश की अपेक्षा अधिक आर्थिक साधन थे, तथा उसमे दक्षिण के अन्य किसी देश की अपेक्षा नये युग की अधिक भावना मिलती थी। वह कुछ समय तक संसार की सबसे महान शक्ति रही किन्तु उसने निरन्तर चलने वाले युद्धो मे देश की सम्पत्ति नष्ट-भ्रष्ट की तथा अपने बचे हुए उन अच्छे नागरिकों का रक्त व्यर्थ ही बहाया जो धार्मिक अत्याचार के बावजूद भी देश छोड़कर बाहर

नहीं गये। ज्ञान का प्रसार होने पर भी शासक वर्ग में शासित वर्ग के प्रति किये गये कामों में कोई उदारता नही आयी और न व्यय करने की बुद्धिमत्ता ही आयी।

क्रान्तिकारी अमेरिका से फ्रान्स के उत्पीड़ित लोगों को अपने शासकों के विरुद्ध सर उठाने के लिए मुख्य प्रेरणा मिली। किन्तु फ्रान्सीसियों में उस आत्मनियंत्रण की स्वतन्त्रता का विशेष अभाव था जिसने अमेरिका के उपनिवेशवादियों को विशिष्टता प्रदान की। उनकी शक्ति एवं साहस का नेपोलियन द्वारा लड़े गये महायुद्धों मे प्रत्यक्ष परिचय मिलता है, किन्तु उनकी महत्वाकांक्षा पूरी न हो सकी, और अन्त में चलकर समुद्रीय उद्यम मे अगुआ बनने का सौभाग्य इंग्लैंड को प्राप्त हुआ। जिस प्रकार प्राचीन संसार की समस्याओं का कुछ मात्रा मे आंग्ल आचरण के प्रत्यक्ष प्रभाव से हल निकाला गया था उसी प्रकार नये संसार की औद्योगिक समस्याओं का इसके प्रत्यक्ष प्रभाव से हल निकाला जा रहा है। अब हम इंग्लैंड मे स्वतंत्र उद्यम के विकास पर कुछ अधिक विस्तार के साथ विचार करेंगे।

अंग्रेजों का चरित्र।

§10 इंग्लैंड की भौगोलिक स्थिति के कारण उत्तरी यूरोप की सबसे अधिक शक्तिशाली जातियों के सबसे शक्तिशाली लोग इंग्लैंड में रहने लगे। प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के फलस्वरूप इस देश के समुद्र तट पर उन्ही प्रवासी लोगों के दल पहुँचे जिनमे सबसे अधिक अदम्य साहस था तथा जो सबसे अधिक स्वावलम्बी थे। उसकी जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध मे स्थित देशों की जलवायु की अपेक्षा शक्ति को सदैव बनाये रखने के लिए सबसे अधिक अनुकूल है। न तो ऊँचे ऊँचे पर्वत इसका विभाजन करते और न इसका कोई भी भाग नौ-परिवहन के योग्य नहरों, नदियों अथवा समुद्र से 20 मील से अधिक दूर है। अतः इसके विभिन्न भागों के बीच स्वतंत्र यातायात में कोई विशेष बाधा नही हुई। साथ ही साथ नार्मन तथा प्लैण्टेजेनेट (Plantagenet) वंश के राजाओं की शक्ति एवं बुद्धिमत्तापूर्ण नीति ने स्थानीय समृद्ध व्यक्तियों को अवरोध खडे करने से रोका।

इतिहास मे रोम के महत्वपूर्ण होने का कारण यह था कि वहाँ बडे साम्राज्य की सैनिक शक्ति को तथा शहर मे रहने वाले अल्पतन्त्रियों के उद्यम एवं उद्देश्य की दृढता को एक साथ मिलाया गया। इग्लैंड की महानता का कारण मध्यकालीन नगर वासियों की स्वतन्त्र प्रकृति का राष्ट्र की शक्ति एवं व्यापक आधार के साथ समन्वय करना था। हालैंड में भी पहले अल्प मात्रा मे ऐसा ही हुआ था। इग्लैंड के नगर उतने विख्यात नही थे जितने की अन्य देशो के, किन्तु अन्य किसी देश की अपेक्षा इसने इन नगरों को अधिक आसानी से अपना अंग बना लिया और आगे चलकर उनसे बहुत लाभ प्राप्त किया।

ज्येष्ठाधिकार प्रथा के कारण कुलीन लोगों के छोटे लड़को मे स्वयं सम्पत्ति अर्जित करने की प्रवृत्ति पैदा हुई। जातीय विशेषाधिकारो के अभाव मे वे आसानी से साधारण जनता के साथ घुलमिल गये। विभिन्न स्तर के लोगों के इस प्रकार घुल-मिल जाने के कारण राजनीति मे व्यवहार कुशलता आ गयी, तथा कुलीन लोगों की उदार साहसयुक्त तथा रोमांसकारी महत्वाकांक्षाओं की सहायता से इसने व्यावसायिक साहस को उग्र बना दिया। एक ओर तो अत्याचार का विरोध करने के लिए दृढ़-

प्रतिज्ञ होने तथा दूसरी ओर तर्कसंगत प्रतीत होने पर शासन के आज्ञापालन के लिए तत्पर होने से अंग्रेजों ने अनेक क्रांतियाँ कीं, किन्तु इनमें से कोई भी ऐसी न थी जिसका विशेष उद्देश्य न रहा हो। संविधान में सुधार करते हुए उन्होंने कानून का पालन किया : डच लोगों के अतिरिक्त केवल वे ही जानते थे कि व्यवस्था तथा स्वतंत्रता का किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जाय। केवल उन्हीं ने अतीत के प्रति पूर्ण सम्मान तथा भूतकाल की अपेक्षा भविष्य में जीवित रहने की शक्ति का सम्मिश्रण किया। किन्तु जिस चारित्रिक बल से इंग्लैंड बाद के काल में विनिर्माण की प्रगति में अगुवा बना वह सर्वप्रथम मुख्यरूप से राजनीतिक, युद्ध तथा कृषि में दिखायी दिया।

कृषि-प्रधान राष्ट्र होते हुए भी उन्होंने संगठित कार्य के लिए आधुनिक प्रतिभा का परिचय दिया।

जो अंग्रेज पहले धनुषधारी था वही बाद में शिल्पकारी बना। उसमें यूरोप महाद्वीप के प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा भोजन तथा स्वास्थ्य जैसी श्रेष्ठता थी, अपने हस्तकौशल पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में जैसा अदम्य अध्यवसाय था, समान प्रकार की जैसी स्वतन्त्रता थी और आत्मनियंत्रण एवं संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने की जैसी शक्ति थी, उपयुक्त अवसर के अनुसार अपने आह्लादपूर्ण मनोभावों को व्यक्त करने की जैसी आदतें थीं, वैसी ही संकटकाल में कठिनाई तथा विपत्ति पडने पर भी अनुशासन बनाये रखने की आदत थी।

किन्तु अंग्रेजों की औद्योगिक प्रतिभा बहुत समय तक छिपी रही। उनका न तो सभ्यता की आरामदायक तथा विलासितापूर्ण आवश्यकताओं से विशेष परिचय था और न उन्हें इनकी विशेष चिन्ता ही थी। सभी प्रकार के विनिर्माण में लेटिन भाषी-देशों, इटली, फ्रान्स, स्पेन तथा उत्तरी यूरोप के स्वतंत्र नगरों से पिछड गये। धीरे धीरे धनी *वर्गों की आयात की गयी विलासिता की वस्तुओं के लिए* कुछ रुचि उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप इंग्लैंड का व्यापार शनैः शनैः बढने लगा।

उनका व्यापार उत्पादन तथा जल-परिवहन में लगे रहने के कारण उत्पन्न हुआ।

बहुत दिनों तक उसके व्यापार के भावी विकास का कोई स्पष्ट लक्षण दिखायी नहीं दिया। वास्तव में यह उसकी विशेष परिस्थितियों का, यदि अधिक न भी तो, कम से कम उतना ही प्रतिफल है जितना कि वहाँ के लोगों के किसी स्वाभाविक रुझान का। उनमे न तो प्रारम्भ में और न इस समय ही वह व्यावसायिक एवं सौदागरी तथा वित्तीय व्यवसाय के गूढ पहलू के प्रति विशेष रुचि है जो यहूदियों, इटली, यूनान तथा अर्मेनिया के निवासियों में पायी जाती थी। उनके लिए व्यापार सदैव ही चतुरतापूर्ण युक्ति तथा सट्टेबाजी का मिश्रित रूप न होकर कार्य का रूप था। अभी भी लन्दन के स्टाक एक्सचेंज में गूढ से गूढ वित्तीय सट्टे का काम मुख्यतया वही जातियाँ करती हैं जिनमें वंशपरम्परा से व्यापार के लिए वैसा ही रुझान रहा है जैसा कि अंग्रेजों में कार्य के प्रति पाया जाता है।

कृषि के पूंजीवादी संगठन ने विनिर्माण के संगठन

जिन गुणों के कारण आगे चलकर इंग्लैंड ने विभिन्न परिस्थितियों में संसार की खोज की तथा वस्तुओं को तैयार कर अन्य देशों तक चलाया, उन्हीं से मध्यकालीन युगों में भी इंग्लैंड ने कृषि के आधुनिक संगठन का मार्ग तैयार किया, और इस प्रकार एक ऐसा ढांचा तैयार किया जिसके अनुरूप अनेक आधुनिक व्यापारों को ढाला जाता है। इसने श्रम भुगतानों को मौद्रिक भुगतानों मे परिवर्तित करने में

अगुवायी की। और यह एक ऐसा परिवर्तन सिद्ध हुआ जिससे प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतत्र रुचि के अनुसार जीवन नौका खेने की शक्ति बढ़ गयी। चाहे यह अच्छा हो या बुरा लोगों को भूमि के अधिकारों तथा इसके प्रति अपने दायित्व को हस्तान्तरित करने की स्वतत्रता प्राप्त हुई। रीतिरिवाज के बन्धनों के शीघ्रता से ढीले होने के अनेक कारण थे, जैसे कि चौदहवी शताब्दी की महामारी के बाद वास्तविक मजदूरी की अधिक वृद्धि, सोलहवी शताब्दी मे चाँदी का मूल्य ह्रास, खोटे सिक्कों का प्रचलन, मठों की आय का राजदरबार की फिजूलखर्ची के लिए उपयोग तथा अन्त मे भेड़ पालन का विस्तार जिससे अनेक कर्मचारी अपने पुराने घरो को छोड़कर भटक गये, और बचे हुए लोगो की वास्तविक आय कम हो गयी तथा उनके रहन-सहन के ढग मे परिवर्तन हो गया। ट्यूडर वश के लोगो के हाथो मे शाही शक्ति की वृद्धि के कारण यह आन्दोलन अधिक फैल गया, जिसके फलस्वरूप वैयक्तिक युद्ध समाप्त हो गया तथा बैरनो एव जमीदारो द्वारा रखे गये सेवको का झुण्ड बेकार हो गया। वास्तविक सम्पत्ति को सबसे बड़े लड़के के पास छोड़ने की आदत के कारण तथा निजी सम्पत्ति को परिवार के सभी सदस्यो को बाँटने के फलस्वरूप एक ओर भूसम्पत्ति का आकार बढ़ गया तथा दूसरी ओर भूमि पर खेती के लिए मालिको द्वारा अपने पास रखी जाने वाली पूंजी का मात्रा मे कमी हो गयी।[1]

के लिए मार्ग तैयार किया।

इन कारणो के फलस्वरूप इग्लैड के जमीदार तथा कृषक के बीच सम्बन्ध स्थापित हुए . विशेषकर सोलहवी शताब्दी मे अग्रेजो के कार्य के लिए विदेशी माँग, तथा अग्रेजो की विदेशी विलासिता की चीजो की माँग के कारण अनेक जोत बड़े बड़े भेडो के चरागाहो म केन्द्रित हो गये जिनकी पूजीपति किसानो द्वारा व्यवस्था की गयी। अर्थात् उन किसानो की सख्या मे बड़ी वृद्धि हुई जो अपनी कुछ पूंजी लगाकर, किन्तु भूमि को निश्चित वार्षिक लगान पर उधार लेकर तथा श्रमिको को मजदूरी पर रख कर कृषि का प्रबन्ध तथा जोखिम स्वय उठाते थे। बाद मे उसी प्रकार अग्रेज व्यावसायिको के नये वर्ग ने कुछ अपनी पूंजी लगाकर किन्तु शेष पूंजी उधार लेकर और मजदूर लगाकर विनिर्माण के प्रबन्ध तथा जोखिम को उठाया। स्वतन्त्र उद्यम का शीघ्रता एव प्रचण्डता से विकास हुआ। किन्तु इसका लाभ एक तरफा था, और निर्धनों के लिए बड़ा दुखदायी था। सच यह है कि इग्लैड के कृषि अथवा चरागाह के योग्य बड़े बड़े फार्म जिनका उधार ली हुई पूजी से प्रबन्ध किया गया वे आग्ल

---

1 रौजर्स कहते है कि तेरहवीं शताब्दी में कृषि योग्य भूमि का मूल्य उस पर खेती करने के लिए आवश्यक पूंजी का एक-तिहाई था, और उनका यह विश्वास है कि भूमि का मालिक जब तक स्वयं इस पर खेती करता रहा तब तक सबसे बड़ा लड़का बहुधा अपने छोटे भाइयों को उनकी पूंजी के बदले में भूमि का कुछ भाग देने के लिए अनेक तरीके अपनाता था। Six Centuries of Work and Wages, पृष्ठ 51–52

फैक्टरियों के उसी प्रकार अग्रदूत थे जिस प्रकार आंग्ल धनुर्विद्या आंग्ल दस्तकारों की कुशलता की अग्रदूत थी।[1]

आंग्ल उद्योग रिफॉर्मेशन (धार्मिक आन्दोलन) में निहित भावनाओं से बहुत प्रभावित हुआ और इससे सामाजिक जीवन की भावी अवस्था के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त हुई।

§11. इस बीच मे आंग्ल आचरण गम्भीर होता जा रहा था। इग्लैंड के तट पर बसी हुई निष्ठुर जातियों की स्वाभाविक गम्भीरता एवं शूरवीरता के कारण उन्होंने रिफॉर्मेशन के सिद्धान्तों का हृदय से पालन किया। इन्होंने उनके जीवन की आदतों को प्रभावित किया और उनके उद्योग को विशेषरूप दिया। मनुष्य ऐसा लगता था कि मानों सृष्टिकर्त्ता के सम्मुख बिना किसी मानवीय मध्यस्थता के सीधे प्रविष्ठ हुआ। अब सर्वप्रथम असंख्य असभ्य तथा असंस्कृत लोग निरपेक्ष आध्यात्मिक स्वतंत्रता के रहस्यों की ओर आकृष्ट हुए हैं। उच्चतम आध्यात्मिक प्रगति की आवश्यक शर्त थी कि प्रत्येक व्यक्ति यह भली भाँति समझे कि उसके अपने धार्मिक उत्तरदायित्व उसके अन्य साथियों के उत्तरदायित्व से पृथक् है।[2] किन्तु यह विचार संसार के लिए नया, स्पष्ट व खरा था तथा मोहक अन्तःप्रेरणाओं के आवरण से रहित था। दयालु स्वभाव वालों मे भी व्यक्तित्व वास्तविक रूप से प्रकट हुआ जब कि रूखे स्वभाव वाले व्यक्ति आत्मप्रबुद्ध व अहंकारी हो गये। विशेषकर विशुद्धिवादी (Puritan) लोगों में अपने धार्मिक सम्प्रदाय मे तर्कपूर्ण निश्चितता एवं यथार्थता प्रदान करने की उत्कण्ठा मनमोहक थी, और वे तुच्छ विचारों तथा साधारण आमोद प्रमोद के घोर विरोधी थे। अवसर आने पर वे मिलकर कार्य कर सकते थे, और उनके दृढ संकल्प का विरोध करना बडा कठिन था। किन्तु समाज मे रह कर वे बहुत कम आनन्द करते थे। उन्हें सार्वजनिक मनोरंजनों से घृणा थी, और वे घर के जीवन के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण वातावरण मे रहना अधिक पसन्द करते थे। यह मानना पडेगा कि उनमें से कुछ लोगों ने कला के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख अपनाया।[3]

---

1 इस समान्तरवाद पर भाग 6 में अधिक विस्तार में विचार किया गया है। विशेषकर अध्याय 9, अनुभाग 5 देखिए।

2 रिफॉर्मेशन 'व्यक्तित्व की मान्यता थी। व्यक्तित्व ही जीवन का सार नहीं है, किन्तु यह हमारे स्वभाव तथा कार्यों के हर क्षेत्र में किसी चीज को अपूर्ण तथा पूर्ण प्राप्ति में जीवन का नितान्त आवश्यक अंग है। यह सत्य है, यद्यपि यही पूर्ण सत्य नहीं है, कि हमें केवल ईश्वर के साथ अकेले ही मरना तथा जीना चाहिए।' वेस्टकोट (Westcott) की Social Aspects of Christianity, पृष्ठ 121। हीगेल की Philosophy of History, भाग IV, अनुभाग 3, अध्याय II से तुलना कीजिए।

3 कला के कुछ रूपों में अश्लीलता पाई जाने के कारण गम्भीर किन्तु संकुचित दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों में हर प्रकार की कला के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी। इसका प्रतिकार करने के लिए समाजवादी अब मौलिक परिवर्तन को इस बात के लिए दोषी ठहराते हैं कि इस से मनुष्य की सामाजिक तथा कलात्मक अन्तःप्रवृत्तियों को ठेस लगी है। किन्तु यह प्रश्न उठता है कि मौलिक परिवर्तन के फलस्वरूप जो तीव्र भावनाएँ उत्पन्न हुई उनसे कला को सदाचार से पहुँचने वाली क्षति की अपेक्षा क्या अधिक लाभ हुआ। उन्होंने अपना निजी साहित्य तथा संगीत विकसित किया है। यद्यपि उनके

शक्ति के प्रथम विकास में कुछ ऐसी बात थी जो कि अशिष्ट व असभ्य कही जा सकती है किन्तु बाद की अवस्थाओं के लिए ऐसी ही शक्ति की आवश्यकता थी। इसे अनेक मुसीबतें झेलकर शुद्ध तथा कोमल बनाने की आवश्यकता थी, इसे अधिक कमजोर हुए बिना कम आत्मप्राधान्य स्थापित करना चाहिए जिससे इसके चारों ओर की गयी अन्त प्रेरणा के विकसित होने के पूर्व प्राचीन सामूहिक प्रवृत्तियो मे सबसे सुन्दर तथा सबसे ठोस चीज को उच्चतररूप मे पुनर्जीवित किया जा सके। इसने कुटुम्ब के प्रेम को, जो कि सासारिक भावनाओं मे सबसे अधिक भरपूर है, तीव्र बनाया : सम्भवतः इससे पूर्व सामाजिक जीवन के कुलीन ढाँचे के निर्माण के लिए कोई भी ऐसी भौतिक चीज बनी हुई न थी जो कि इतनी मजबूत व सुन्दर हो।

मध्य युगों के अन्त मे इग्लैंड के अतिरिक्त हालैंड तथा अन्य देशो मे भी महान आध्यात्मिक परिवर्तन हुआ। किन्तु अनेक दृष्टिकोणों से, और विशेषकर आर्थिक दृष्टिकोण से, इग्लंड के अनुभव सबसे अधिक शिक्षाप्रद व सबसे पूर्ण थे, और वे अन्य सभी देशो के अनुभवों के प्रतीक थे। इंग्लैंड ने स्वतंत्र तथा आत्म-निर्णायक शक्ति एवं चाह के साथ उद्योग तथा उद्यम के आधुनिक विकास के लिए मार्ग दिखलाया।

यूरोप महाद्वीप के शरणार्थी दस्तकारों को आकर्षित करने से अंग्रेजों के चरित्र की गम्भीरता और भी बढ़ गयी।

§12. इग्लैंड की औद्योगिक एवं वाणिज्यिक विशेषताएँ इस बात से और भी बढ़ गयी कि इसने समुद्र तट पर धार्मिक उत्पीडन से उन लोगो को आश्रय दिया जो अन्य देशो मे नये सिद्धान्तों को मानते थे। एक प्रकार के स्वाभाविक चयन से फ्रान्सीसी और फ्लेमिंग तथा अन्य लोगो मे से वे लोग अग्रेजो से घुलने-मिलने तथा उनके आचरण के अनुकूल सभी कलाएँ सिखलाने आये जो स्वभाव मे अग्रेजो से मिलते-जुलते थे और जो उस आचरण के कारण विनिर्माण के कार्य की गहराई को जानना चाहते थे।[1] सत्रहवी एव अट्ठारहवी शताब्दी के राजदरबार तथा उच्च वर्गों के लोग प्राय तुच्छ एव विलासितापूर्ण जीवन बिताते थे किन्तु मध्य वर्गों के तथा कुछ अशो मे श्रमिक वर्गों के लोगों ने जीवन के प्रति कठोर रुख अपनाया। उन्हे उन मनोरजनों मे बहुत कम आनन्द आता था जो कार्य मे बाधा डालते थे, और उन भौतिक आराम की वस्तुओं के सम्बन्ध मे उनका प्रभाव बहुत ऊँचा था जो केवल सतत् कठोर परिश्रम से ही प्राप्त हो सकते थे। उन्होने केवल उत्सवो तथा प्रदर्शन के उपयुक्त वस्तुओ को तैयार न कर ठोस तथा अधिक काल तक उपयोगी सिद्ध होने वाली वस्तुओ के उत्पादन करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार प्रवृत्ति के एक बार बन जाने पर इसे वहाँ की जलवायु से बराबर बढ़ावा मिलता था। क्योंकि यद्यपि यह जलवायु बहुत कष्टदायक नही थी

कारण मनुष्य अपने हाथ की कला की सुन्दरता को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा है तथापि इससे उसमें प्रकृति की सुन्दरता की प्रशंसा करने की अधिक क्षमता आ गयी है। यह अकस्मात् घटना नहीं है कि दृश्य-चित्रकला उन क्षेत्रों में सबसे अधिक पनपी जहाँ पर परिष्कृत धर्म अधिक फैला था।

1 स्माइल्स ने यह सिद्ध किया है कि इन आवजकों के प्रति इंग्लैंड जितना आभारी है वह इतिहासकारों के अनुमान से अधिक है, यद्यपि इतिहासकारों ने इसे स्वयं ही अधिक आंका है।

किन्तु फिर भी साधारण आमोद प्रमोद के लिए भी विशेष अनुकूल नहीं है क्योंकि यहां पर वस्त्र, निवास स्थान, तथा सुखदायी जीवन की अन्य वस्तुएँ विशेषरूप से महँगी थी।

इन्हीं परिस्थितियों में इंग्लैंड के आधुनिक औद्योगिक जीवन का विकास हुआ। भौतिक सुख की चाह से लोग प्रत्येक सप्ताह में अथक परिश्रम कर अधिकाधिक उत्पादन करने का प्रयत्न करने लगे। प्रत्येक कार्य को तर्कपूर्ण ढंग से करने के अटल निश्चय के कारण हर एक व्यक्ति यह सोचता रहता है कि वह अपने व्यवसाय को बदल कर अथवा उसकी पद्धति में हेर फेर कर अपनी स्थिति को क्या नहीं सुधार सकता ? अन्त में पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने आचरण को स्वहित के अनुकूल बदलने में समर्थ हो जाता है और अपने परिश्रम तथा अपनी सम्पत्ति को नये तथा भावी कारोबारों पर निर्भीकतापूर्वक लगाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो जाता है।

संक्षेप में जिन कारणों से इंग्लैंड तथा उसके उपनिवेशों में आधुनिक राजनीति का रूप निर्धारित हुआ उन्हीं ने आधुनिक व्यवसाय को भी संचालित किया। जिन गुणों से उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उन्हीं से उन्हें उद्योग तथा वाणिज्य में स्वतन्त्र उद्यम की प्रेरणा भी मिली।

आंग्ल स्वतंत्र उद्यम से सभी प्रकार के कार्यों में विशेषकर व्यवसाय के प्रबन्ध तथा उद्योग के स्थानीयकरण में स्वाभाविक रूप से श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिला।

§13. उद्योग तथा उद्यम की स्वतन्त्रता से प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम तथा पूंजी का ऐसे कामों में उपयोग करता है *जिनसे उसे सबसे अधिक लाभ प्राप्त हो।* इसके फलस्वरूप वह किसी खास प्रकार के कार्य में विशेष दक्षता एवं सुविधा प्राप्त करने की कोशिश करता है, जिससे वह इच्छानुकूल वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए क्रय-शक्ति अर्जित कर सके। इस प्रकार एक ऐसा जटिल औद्योगिक संगठन तैयार हो जाता है जिसमें श्रम-विभाजन सूक्ष्मातिसूक्ष्म होता है।

बहुत समय तक रहने वाली किसी भी सभ्यता में, चाहे वह कितनी ही आदिकालीन क्यों न हो, किसी न किसी प्रकार का श्रम-विभाजन निश्चय ही पाया जाता है। बहुत पिछड़े हुए देशों में भी अधिक विशेषीकृत व्यवसाय होते हैं, किन्तु प्रत्येक व्यवसाय में काम इस प्रकार से बटा हुआ नहीं होता कि व्यवसाय की आयोजना, इसकी व्यवस्था, इसका प्रबन्ध तथा जोखिम एक ही वर्ग के लोगों के हाथ में हों जब कि इसके लिए आवश्यक शारीरिक श्रम दूसरे वर्ग अर्थात् मजदूर वर्ग द्वारा किया जाता हो। इस प्रकार का श्रम-विभाजन प्रायः आधुनिक संसार का और मुख्यतया आंग्ल जाति का ही लक्षण है। *मनुष्य के विकास में यह केवल परिवर्तन की स्थिति में दिखायी दे सकता है, और* यह उस स्वतन्त्र उद्यम में और अधिक वृद्धि के कारण नष्ट हो सकता है जिसने स्वयं इसे जन्म दिया है। किन्तु फिलहाल आधुनिक सभ्यता के रूप में, जो कि आधुनिक आर्थिक समस्याओं का सार है, इसे मुख्य तथ्य समझा जाता है चाहे यह बात अच्छी हो या बुरी।

औद्योगिक जीवन में अब तक जितने परिवर्तन हुए हैं वे व्यावसायिक उपक्रामियों[1] के इस विकास पर ही केन्द्रित हैं। हम पहले देख चुके हैं कि उपक्रामी ने प्रारम्भिक

---

1 यह शब्द जिसका एडम स्मिथ ने सर्वप्रथम प्रयोग किया था और जो आदतवश यूरोप महाद्वीप में प्रयोग में लाया जाता है, उन लोगों की ओर सबसे अच्छी तरह

अवस्था में इंग्लैंड की कृषि में मा। मिश्र। किसान ने जमींदार से भूमि उधार ली, और उस पर आवश्यक मजदूर लगाये। वह स्वयं ही व्यवसाय के प्रबन्ध तथा जोखिमों का उत्तरदायी था। किसानों का चुनाव वास्तव मे पूर्णतः स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अनुसार नही होता था, किन्तु कुछ अंश में उत्तराधिकार से अथवा अन्य प्रभावों से होता था जिनके फलस्वरूप कृषि उद्योग का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ मे पड़ गया जिनमे उस काम के लिए कोई विशेष निपुणता नही थी। किन्तु इंग्लैंड ही एकमात्र देश है जहाँ पर इस स्वाभाविक चयन को महत्वपूर्ण स्थान मिला है: यूरोप महाद्वीप की कृषि प्रणालियों मे जन्म के संयोग से यह बात निर्धारित की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति को भूमि को जोतने तथा इसकी जुताई पर नियंत्रण करने का कितना हक है। इंग्लैंड मे इस चयन के संकुचित कार्य से भी जो अधिक शक्ति तथा लोचकता प्राप्त हुई है वह आंग्ल कृषि को अन्य सभी देशो की कृषि से आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त रही है, और इसके फलस्वरूप यह यूरोप के अन्य किसी देश मे समान प्रकार की भूमि मे श्रम की बराबर मात्रा से कही अधिक उत्पादन करने मे समर्थ हुई है।[1]

किन्तु विनिर्माण मे उपक्रम, सगठन एवं प्रबन्ध और योग्यतम व्यक्ति के प्राकृतिक चयन के लिए बहुत अधिक क्षेत्र मिलता है। इंग्लैंड के वैदेशिक व्यापार मे अधिक वृद्धि होने के पहले विनिर्माण के क्षेत्र मे उपक्रमियो के बढने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गयी थी। वास्तव मे पन्द्रहवी शताब्दी के ऊनी कपड़ों के उत्पादन मे इसके लक्षण दिखायी देते हैं। किन्तु नये देशों मे विस्तृत बाजारों के स्थापित हो जाने से इस प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप मे तथा उद्योगों के स्थानीयकरण, अर्थात् किन्ही विशेष स्थानों मे उत्पादन की कुछ निश्चित शाखाओं के केन्द्रित होने के कारण पडने वाले प्रभाव से बडा प्रोत्साहन मिला है।

इन प्रवृत्तियों को उन समुद्र पार

मध्यकालीन मेलों तथा भ्रमणशील व्यापारियो के लिखित प्रमाणो से यह स्पष्ट है कि अनेक प्रकार की ऐसी चीजें हैं जो एक या दो स्थानों पर बनायी जाती थी और इसके बाद उन्हे सम्पूर्ण यूरोप के विभिन्न भागों मे वितरित किया जाता था। किन्तु

इंगित करता है जो व्यवस्थित उद्योग में अपने हिस्से के रूप में व्यवसाय के जोखिम व प्रबन्ध का भार उठाते हैं।

1 विशेषकर अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, कृषि में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुए। हर प्रकार के औजारों में सुधार हुए, पानी की निकासी वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर की गयी, बेकवेल (Bakewell) की मेधा में खेती में काम करने वाले पशुओं की नस्ल में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। शलजम, तिपतिया घास, सई-घास सामान्यतः प्रयोग में लाये जाने लगे और इसके फलस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए इसे परती पर छोड़ने की पद्धति के स्थान पर 'वैकल्पिक काश्तकारी' को अपनाया गया। इन तथा अन्य परिवर्तनों के फलस्वरूप भूमि की जुताई के लिए निरन्तर अधिकाधिक पूंजी की आवश्यकता होने लगी, जब कि व्यापार में समृद्धि से उन लोगों की संख्या बढ़ गयी जिनमें बड़ी मात्रा में सम्पत्ति खरीद कर ग्रामीण समितियों में प्रविष्ट होने की क्षमता थी और जो इसके लिए उत्सुक भी थे। इस प्रकार आधुनिक वाणिज्यिक भावना हर प्रकार से कृषि में फैली।

वाले उपभोक्ताओं से प्रोत्साहन मिला जिन्हें साधारण प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता थी।

जिन व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन कुछ ही क्षेत्रों में होता था तथा जिन्हें दूर दूर भेजा जाता था वे प्रायः अधिक कीमत, किन्तु कम आयतन, की वस्तुएँ होती थी : सस्ती तथा भारी वस्तुएँ आवश्यकतानुसार प्रत्येक क्षेत्र में ही तैयार की जाती थीं। नये संसार के उपनिवेशों मे लोगों के पास अपनी आवश्यकतानुसार सभी प्रकार की वस्तुएं तैयार करने का समय न था : जो वस्तुएँ वे बना भी सकते उन्हें बनाने का प्रायः अधिकार न था। क्योंकि यद्यपि अन्य किसी देश की अपेक्षा इंग्लैंड का अपने उपनिवेशों के प्रति बर्ताव अधिक उदार था तथापि उन पर किये जाने वाले खर्च के बदले में वह यह अधिकार समझता था कि वह उन्हें सब प्रकार की चीजें इंग्लैंड से ही खरीदने के लिए बाध्य करे। भारत तथा जंगली जातियाँ भी यह चाहती थी कि वहाँ पर साधारण प्रकार की वस्तुएं बेची जायें।

इन कारणों के फलस्वरूप बहुत से भारी सामान तैयार करने के धन्धों का स्थानीयकरण हुआ। जिन धन्धों में अत्यधिक प्रशिक्षित कुशलता एवं कारीगर की सूक्ष्म कल्पना की आवश्यकता होती है वहाँ पर संगठन का महत्व कभी-कभी गौण रहता है। जब कुछ साधारण प्रकार के पूरे जहाज भरे हुए सामान के लिए माँग होती है तो बहुत से लोगों के संगठन करने की शक्ति से निश्चय ही लाभ होता है। इस प्रकार एक ही सामान्य कारण के फलस्वरूप औद्योगिक स्थानीयकरण तथा पूँजीवादी उपक्रामियों की प्रणाली के विकास जैसे दो समानान्तर आन्दोलन प्रारम्भ हुए जो एक दूसरे की प्रगति में सहायक बने।

उपक्रामियों ने सबसे पहले उद्योग का निरीक्षण किये बिना ही सम्भरण का आयोजन किया: निरीक्षण का काम कुशल मजदूर किया करते थे।

फैक्टरी प्रणाली तथा विनिर्माण मे कीमती उपकरणों का प्रयोग बाद के काल में हुआ। यह दोनों सामान्यतया उस शक्ति के स्रोत समझ जाते हैं जो आंग्ल उपक्रामियों की वहाँ के उद्योगों पर पायी जाती है। इन उपक्रामियों ने इस शक्ति में स्वयं वृद्धि की, किन्तु उनके प्रभाव के व्यक्त होने के पूर्व यह शक्ति स्पष्ट रूप मे दिखायी देने लगी थी। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय पानी अथवा भाप से चलने वाली मशीनों में न तो अधिक पूँजी ही लगी थी और न फैक्टरियाँ ही बडी अथवा अधिक संख्या में थी। देश के सभी वस्त्र तैयार करने का काम ठेके पर होता था। इस उद्योग में तुलनात्मक रूप से थोडे से उपक्रामियो का नियंत्रण था जो यह पता लगाते थे कि किन चीजों का वहाँ और कब क्रयविक्रय करने अथवा उत्पादन करने मे सबसे अधिक लाभ होगा। तत्पश्चात् उन्होने इन चीजों को तैयार करने के लिए देश के विभिन्न भागों मे रहने वाले अनेक लोगों को ठेके दिये। इन उपक्रामियों ने प्रायः कच्चे माल और कभी कभी उत्पादन के लिए साधारण औजारों का भी आयोजन किया। ठेकेदारों ने अपना काम अपने कुटुम्ब के सदस्यों तथा कभी कभी कुछ सहायकों की मदद से पूरा किया।

समय के बीतने पर यांत्रिकी आविष्कार की प्रगति के फलस्वरूप श्रमिक लोग जलशक्ति के निकट स्थित छोटी छोटी फैक्टरियों मे एकत्रित होने लगे और जब जलशक्ति के स्थान पर वाष्पशक्ति का उपयोग होने लगा तो श्रमिक बडे नगरों के बडे बडे कारखानो मे काम करने के लिए जाने लगे। इस प्रकार बिना प्रत्यक्ष प्रबन्ध व निरीक्षण के विनिर्माण के मुख्य जोखिमो को उठाने वाले बडे बडे उपक्रामियों का स्थान ऐसे धनी मालिको ने ले लिया जिन्होंने एक बड़े पैमाने पर विनिर्माण का कार्य चलाया। नयी

फैक्टरियों ने सबसे अधिक लापरवाह निरीक्षकों का ध्यान आकर्षित किया, और पहले के परिवर्तन की भाँति इस अन्तिम परिवर्तन की वे लोग अवहेलना न कर सके जो वास्तव में उस व्यवसाय मे नही लगे हुए थे।[1]

इस प्रकार अन्त मे पहले से प्रचलित औद्योगिक प्रबन्ध के बडे परिवर्तनो की ओर ध्यान आकर्षित हुआ और ऐसा दिखायी दिया कि मजदूरो द्वारा नियंत्रित छोटे छोटे व्यवसायों के स्थान पर पूँजीपति उपक्रामियों की विशेषीकृत योग्यता से नियंत्रित बडे पैमाने वाले व्यवसाय प्रचलन मे आने लगे। यह परिवर्तन स्वय भी बहुत अधिक होता, जैसा कि हुआ भी है, चाहे वहाँ कोई भी फैक्टरियाँ न होती यह परिवर्तन होता रहेगा चाहे विद्युत् अथवा अन्य एजेन्सियो द्वारा शक्ति के खुदरे वितरण के कारण अब फैक्टरियो मे किये जाने वाले कोयले का कुछ भाग श्रमिको के घरो मे किया जाय।[2]

किन्तु उपक्रामियों ने धीरे-धीरे बहुत बड़ी मात्रा में मजदूरों को काम पर लगाया।

§14 *अपने प्राचीन एव वर्तमान रूप मे इस नये परिवर्तन के कारण निरंतर वे* बन्धन ढीले पडते गये जो प्राय सभी को अपने जन्मस्थान मे ही रहने के लिए बाध्य करते थे। इसके फलस्वरूप श्रम के लिए स्वतंत्र बाजारो का विकास हुआ जो श्रमिको को आने तथा रोजगार ढूँढने के लिए आमंत्रित करते थे। इस परिवर्तन के फलस्वरूप श्रम के मूल्य को निर्धारित करने वाले कारण एक नया रूप ग्रहण करने लगे। अठा-

इसके बाद विनिर्माण का कार्य करने वाले

---

1 सन् 1760 ई० के बाद पच्चीस वर्षों में कृषि को अपेक्षा विनिर्माण में अधिक तीव्रता से एक के बाद एक सुधार हुए। इस काल में ब्रिंडले द्वारा नहरों के निर्माण से सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर कम लागत पर ले जाया जा सकता था, वाट (Watt) के वाष्पइंजन से शक्ति का उत्पादन, कोर्ट के लोहे को बिलोने तथा सीट बनाने की किया तथा लकड़ी के कोयले के अभाव में रोबक (Roebuck) को प्रणाली द्वारा पत्थर के कोयले से लोहे को पिघलाने की क्रिया से लोहे का उत्पादन कम लागत पर होने लगा। हार्ग्रीव्स (Horgreaves), क्रोम्प्टन (Crompton) आर्कराइट (Arkwright), कार्टराइट (Cartwright) तथा अन्य व्यक्तियों ने धागा निकालने की मशीन, एक विशेष ढंग से सूत कातने का चर्खा, धुनने की मशीन, तथा शक्ति से चलने वाले कर्घों का आविष्कार किया, अथवा उत्पादन की लागत कम कर उन्हें उपयोगी बनाया। वेजवुड ने पहले से ही तेजी से बढ़ने वाले मिट्टी के बर्तनों के व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया। इनके अतिरिक्त बेलनों के प्रयोग से छपाई के काम में रासायनिक पदार्थों से श्वेतन (Bleach ng) करने तथा अन्य प्रक्रियाओं में भी महत्वपूर्ण आविष्कार हुए। इस काल के अन्तिम वर्ष सन् १७८५ ई० में वाष्पशक्ति से सर्वप्रथम एक सूती उद्योग चलाया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाष्प-शक्ति का मुद्रणालयों व जहाजों को चलाने में प्रयोग हुआ और शहरों मे प्रकाश के लिए गैस का प्रयोग होने लगा। रेल के इंजन, तार भेजने तथा फोटो खींचने से सम्बन्धित अनुसन्धान कुछ समय बाद में किये गये। विस्तृत वर्णन के लिए Cambridge Modern History, खण्ड X में प्रो० क्लेफम (Claphom) द्वारा लिखित प्रसिद्ध अध्याय को देखिए

2 हेल्ड की Social Geschichte England, भाग II, अध्याय III देखिए।

श्रमिकों को एक बड़ी भारी संख्या में मजदूरी पर लगाया गया।

रहवी शताब्दी तक विनिर्माण मे लगे श्रमिकों को प्रायः थोड़ी ही संख्या मे मजदूरी पर लगाया जाता था, यद्यपि इससे पहले भी इंग्लैंड अथवा पूरे यूरोप के कुछ खास स्थानों के औद्योगिक इतिहास मे श्रमिको के एक विशाल एव अस्थिर वर्ग ने, जिसे मजदूरी पर लगाया गया था बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। उस शताब्दी मे कम से कम इंग्लैंड में यह नियम लागू नही किया गया और श्रम की कीमत पर प्रथा का अथवा छोटे छोटे बाजारों मे किये जाने वाले मोलभाव का नियत्रण कम हो गया। गत सौ वर्षों में एक विस्तृत क्षेत्र मे—नगर, देश अथवा सम्पूर्ण विश्व मे—माँग व सम्भरण की दशाओं से यह अधिकाधिक रूप मे निश्चित किया जा रहा है।

नये संगठन के साथ साथ बड़ी बुराइयाँ उत्पन्न हुईं जिनमें से अधिकांश अन्य कारणों से हुईं।

उद्योग के नये ढाँचे से उत्पादन की क्षमता मे बहुत वृद्धि हुई। इसमे इस बात का पूरा प्रयत्न किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के श्रम को ऐसे सर्वोत्तम कार्यों मे लगाया जाय जिसे वह भलीभाँति कर सके और उसके कार्य का योग्यतापूर्वक निदेशन किया जाये तथा उसे ऐसी सर्वोत्तम यान्त्रिकी तथा अन्य प्रकार की सहायता दी जाये जो उस युग के ज्ञान तथा सम्पत्ति से सम्भव हो सकती हो। किन्तु इसके साथ साथ बड़ी बुराइयाँ आयी। इनमे से कौन सी बुराई अपरिहार्य है यह बतलाना कठिन है, क्योंकि जब बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहा था तब इग्लैंड के ऊपर ऐसी अनेक आपत्तियाँ आयीं जो उसके इतिहास मे अद्वितीय थी। ये ही अधिकाश रूप मे—इसकी वास्तविक मात्रा को बतलाना असम्भव है—उन यातनाओ के कारण थे जिनकी वजह से साधारणतया एकाएक अनियंत्रित प्रतियोगता का होना माना जाता है। ब्रिटिश उपनिवेशों के समाप्त होते ही फ्रांस का महायुद्ध छिडा जिसकी लागत उस सचित सम्पत्ति के मूल्य से भी अधिक थी जो कि युद्ध प्रारम्भ होते समय उसके पास थी। फसलों के लगातार अपूर्व ढंग से खराब होने के कारण डबलरोटी बहुत ही महँगी हो गयी। इन सबसे बुरी बात यह थी कि निर्धनता सम्बन्धी कानून के प्रशासन की ऐसी पद्धति अपनायी गयी जिसने लोगों की स्वतन्त्रता तथा उनके ओज को क्षीण कर दिया।

ऐसी दशा में पिछली शताब्दी के प्रथम भाग मे अनुकूल परिस्थितियो मे इंग्लैंड मे स्वतत्र उद्यम की स्थापना हुई। इसकी बुराइयों ने उग्ररूप धारण किया और बाह्य विपत्तियों से इनके हितकारी प्रभावों के मार्ग मे विघ्न उत्पन्न हुए।

श्रम के नियंत्रण करने वाले उन पुराने अध्यादेशों को फिर

§15. जिन व्यापारिक प्रथाओं तथा व्यापार-संघो के नियंत्रणों द्वारा पुराने जमाने में कमजोर व्यक्तियों की रक्षा की गयी थी वे नये उद्योग के लिए अनुपयोगी सिद्ध हुए। कुछ स्थानों मे जनमत ने इन्हें तिलाजलि दे दी थी : अन्यत्र स्थानों मे उन्हे कुछ समय के लिए यथावत् जारी रखा गया। किन्तु यह सफलता घातक सिद्ध हुई, क्योंकि यह नया उद्योग जो पुराने बन्धनों में नही पनप सकता था ऐसे स्थानो को छोड़कर उन स्थानों में चला गया जहाँ इस पर प्रतिबन्ध थे।[1]

1 उद्योगों को व्यापारिक संघों द्वारा अत्यधिक रूप से नियंत्रित स्थानों से अन्यत्र चले जाने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी थी, और यह तेरहवीं शताब्दी में भी देखने को मिलती है, यद्यपि तब यह तुलनात्मक दृष्टि से प्रभावहीन थी। ग्रोस द्वारा लिखित Gild Merchant, खण्ड I, पृष्ठ 43 तथा 52 देखिए।

ऐसी दशा मे मजदूर सरकार से यह आशा करने लगे कि वह व्यापार चलाने के नियमों को निर्दिष्ट करने वाले ससद के पुराने कानूनो और यहाँ तक कि मजिस्ट्रेटों द्वारा कीमतो तथा मजदूरी से सम्बन्धित नियत्रणो को पुनर्जीवित करे।

इन परिवर्तनो का असफल होना स्वाभाविक था। पुराने नियत्रण तत्कालीन सामाजिक, नैतिक एव आर्थिक विचारो की अभिव्यक्त करते थे। ये विचार चिन्तन पर आधारित न होकर उस समय का परिस्थितियो के अनुकूल थे। ये उन अनेक पीढ़ियो के लोगो का अन्त.प्रेरणा पर आधारित थे जिनका जीवन व मरण समान आर्थिक परिस्थितियो मे हुआ। किन्तु नये युग मे परिवर्तनो के तेजा से होने के कारण इस प्रकार के अनुभवो के लिए समय न था। प्रत्येक व्यक्ति जा कुछ उचित समझता था वही करता था क्योंकि उसे सीमित मात्रा के भूतकालीन अनुभवो से बहुत कम निदेशन प्राप्त होता था: जिन लोगो न पुरानी परम्पराओ मे हा सलग्न रहने का यत्न किया उनका स्थान शाघ्र हा दूसरे व्यक्तियो ने ले लिया।

से लागू करने के लिए व्यर्थ प्रयत्न किये गये, जिनसे अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ दोनों उत्पन्न हुई किन्तु वे तीव्र परिवर्तन के आधुनिक युग के लिए अनुपयुक्त थीं।

उपक्रामियो के नये वर्ग मे मुख्यतया वे शक्तिशाली, तत्पर तथा उद्यमी लोग थे जिन्होने अपना सम्पत्ति को स्वय अर्जित किया था। वे अपने परिश्रम से मिलने वाली सफलता को देखकर प्राय: यह समझते थे कि गरीब तथा कमजोर व्यक्तियो पर उनके दुर्भाग्य के लिए तरस खाने का अपेक्षा उन्हे इसके लिए दोषी ठहराना चाहिए। प्रगति की गति से अवरुद्ध आर्थिक व्यवस्था को सहारा देने वालो की बेवकूफी से प्रभावित होकर उन्होने स्वाभाविक रूप से प्रतियोगिता को पूर्णरूप से स्वतत्र करना तथा सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्तियो को इच्छापूर्ण उद्योग चलाने की स्वतत्रता देना सर्वोत्तम समझा। उन्होने व्यक्तिगत गुणो की प्रशसा की, और उन सामाजिक तथा औद्योगिक बन्धनो के लिए एक आधुनिक प्रतिरूप ढूँढने की शीघ्रता नही की जिनके फलस्वरूप पुराने समय मे लोग एक सूत्र मे बंधे हुए थे।

विनिर्माता लोग मुख्यतया अपने परिश्रम से ही बड़े बन थे और उन्होंने प्रतियोगिता के केवल अच्छे पहलू को ही देखा था।

इस बीच दुर्भाग्य के कारण इग्लंड के लोगो की कुल वास्तविक आय घट गयी। सन् १८२० मे इसका एक दसवाँ भाग केवल राष्ट्रीय ऋण के ब्याज भुगतान मे चला जाता था। नये नये आविष्कारो के फलस्वरूप जो वस्तुएँ सस्ती हो गयी थी वे मुख्यतया तैयार की गयी ऐसी वस्तुएं थी जिनको श्रमिक लोग बहुत कम खरीदते थे। इग्लैंड का उस समय प्राय. विनिमाण की वस्तुओ मे एकाधिकार होने के कारण श्रमिक अपना भोजन सस्ते दामो पर प्राप्त कर सकते थे बशर्ते कि विनिर्माताओ को अपनी बनायी हुई वस्तुओ को विदेशो मे उगाये जाने वाले अनाज के बदले मे विनिमय करने की पूर्ण स्वतत्रता होती। किन्तु जमीदार लोगो ने जिनका ससद मे प्रमुख था इसका निषेध किया। श्रमिक की मजदूरी जो साधारण खाद्यान्नो को खरीदने मे खर्च की जाती थी, वह उसके द्वारा ऐसी बहुत ही अनुपजाऊ भूमि मे उत्पन्न होने वाले प्रतिफल के बराबर थी जो उपजाऊ जमीन से होने वाली पूर्ति की कमी को दूर करने के लिए जोती जाती थी। उसे अपने श्रम को ऐसे बाजार मे बेचना पड़ता था जिसमे माँग व सम्भरण की शक्तियो के स्वतत्ररूप मे कार्य करन पर भा उस बहुत कम पारिश्रमिक मिलता। किन्तु उसे आर्थिक स्वतन्त्रता स पूण लाभ नहा मिल पाता था। उसका अपने साथियो के साथ कोई प्रभावशाला श्रमिक सघ नहा बना हुआ था। उसे न तो बाजार का ज्ञान

युद्ध सम्बन्धी करों के दबाव तथा भोजन के अभाव के कारण वास्तविक मजदूरी कम हो गयी,

और इनसे लोग अस्वास्थ्यकर एवं अत्यधिक कार्य करने के लिए लालायित हुए जिनके कारण मजदूरी कमाने की शक्ति घट गयी।

था और न एक सुरक्षित कीमत पर सामान बेचने के लिए डटे रहने की शक्ति ही थी जो कि विक्रेताओ मे पायी जाती है। और उसे स्वयं लम्बे समय तक काम करने और अपने परिवार वालो को भी लम्बे समय तक तथा अस्वास्थ्यकर दशाओ मे काम करने को बाध्य होना पड़ा। इसका प्रभाव कार्यशील जनसख्या की क्षमता और अतः उनके कार्य के वास्तविक मूल्य पर पड़ा। इस प्रकार उनकी मजदूरी बहुत ही कम स्तर पर रही। बहुत छोटे बच्चों का लम्बे समय तक काम करना कोई नयी बात नही थी। ऐसा तो सत्रहवी शताब्दी मे भी नोर्विच (Norwich) तथा अन्य स्थानो मे आमतौर पर होता था। इस शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों मे फैक्टरियो मे काम करने वाली जनसख्या मे अस्वास्थ्यकर दशाओ मे अत्यधिक कार्य करने के कारण होने वाली नैतिक तथा शारीरिक दुर्गति तथा बीमारी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। किन्तु बाद के पच्चीस वर्षो मे यह धीरे धीरे और उसके बाद अधिक तीव्रता से कम हो गयी।

किन्तु इस नयी प्रणाली के फलस्वरूप इंग्लैंड, फ्रांस की सेना के कब्जे में आने से बच गया और मजदूरों ने भी इस प्रणाली को स्वीकार कर लिया।

जब श्रमिक लोग इस बात को समझ गये कि उद्योग को नियंत्रित करने वाले पुराने नियमो को पुनर्जीवित करना मूर्खतापूर्ण है तो किसी ने भी यह इच्छा प्रकट नही की कि उद्योग की स्वतन्त्रता को कम किया जाये। निष्कृष्टतम दशाओ मे अंग्रेजो की यातनाएँ ऐसी नही थी जैसी कि फ्रान्स मे वहाँ की क्रान्ति के पहले स्वतन्त्रता के अभाव के कारण पायी जाती थी। लोग यह तर्क करते थे कि यदि इंग्लैंड को नये उद्योगो से शक्ति नही मिली होती तो सम्भवतः वह भी स्वतत्र नगरो की भाँति किसी विदेशी निरकुश शासन के सम्मुख झुक जाता। उसकी जनसख्या के कम होने पर भी उसने कभी यूरोप के प्राय. सभी साधनो को अपने अधिकार मे करने वाले विजेता से अकेले ही युद्ध करने का भार उठाया। यह चाहे सही है अथवा गलत, किन्तु लोगो की उस समय यह धारणा थी कि यदि सामान्य शत्रु से युद्ध करने के लिए इग्लैंड के उद्योगो की स्वतत्र शक्ति ने युद्ध साधनो की पूर्ति न की होती तो यूरोप हमेशा के लिए फ्रान्स के अधिकार मे आ जाता जैसा कि पुराने समय में यह रोम के अधिकार मे हो गया था। अत स्वतत्र उद्यम की अधिकता के विरुद्ध बहुत कम आवाज सुनायी देती थी, किन्तु इसकी उस परिसीमा के विरुद्ध बहुत आवाज उठायी जाती थी जिसके फलस्वरूप अपने उद्योगो द्वारा आसानी से तैयार किये गये माल के बदले मे विदेशो से खाद्य सामग्री मँगाने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था।

श्रमिक संघों की नीति में परिवर्तन।

श्रमिक सघ भी ऐसी अवस्था में पहुँच गये जब वे अधिकारियो से किसी भी प्रकार की आशा न कर स्वयं अपने ऊपर निर्भर रह सकते थे। इन यूनियनो का उज्वल किन्तु चतुरगी कार्यकाल आग्ल इतिहास की किसी अन्य चीज की अपेक्षा रोचकता एवं आदेशो से पूर्ण था। उनका यह कटु अनुभव था कि उन पुराने नियमो को जिनके अनुसार सरकार औद्योगिक प्रणाली को नियंत्रित करती है फिर से लागू करने का प्रयास करना मूर्खतापूर्ण था। अपने ही कार्यों द्वारा व्यापार को नियंत्रित करने के विषय में उनका दृष्टिकोण अभी तक दूरव्यापी नही था: उनकी मुख्य चिन्ता यह थी कि श्रमिक संगठन पर प्रतिबन्ध लगाने वाले नियमो को किस प्रकार हटाया जाये जिससे उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता बढ़ सके।

§16. आर्थिक स्वतन्त्रता की एकाएक वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली बुराइयों का अनुमान लगाना हमारी ही पीढ़ी के काम है। अब हम पहली बार समझ रहे है कि किस हद तक दूसरो को काम पर लगाने वाला पूँजीपति अपने नये कर्तव्यो को नही समझता, वह स्वहित के लिए अपने मातहत काम करने वालो के हितो को कम महत्व का समझता है। अब हम पहली बार इस बात पर जोर देने का महत्व समझ रहे है कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक हैसियत मे धनी व्यक्तियो के कर्तव्यो के साथ साथ अधिकार भी होते है। अब नये युग की आर्थिक समस्या हमे पहली बार वास्तविक रूप मे दिखायी देती है। इसका आंशिक कारण यह है कि हमारे ज्ञान मे वृद्धि हुई है और हमारी उत्सुकता बढ़ रही है। किन्तु हमारे पूर्वज चाहे कितने ही बुद्धिमान तथा सदाचारी क्यों न रहे हो, वे हमारी तरह वस्तुओ को नही समझ सकते थे, क्योकि वे तीव्र आवश्यकताओ तथा भनायक सकटो के कारण जल्दी मे रहते थे।[1]

लोग हमारी तरह यह नहीं समझ सके कि आर्थिक स्वतंत्रता को अधिकार मान कर उसका दुरुपयोग करने से कितनी बड़ी बुराइयाँ हो सकती है।

हमे अपने आप से अधिक कठोर मापदण्ड से आँकना चाहिए। यद्यपि हाल ही मे इग्लैंड को अपने राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए पुनःसघर्ष करना पड़ा किन्तु उसकी उत्पादन की क्षमता बहुत अधिक बढ़ गयी है। स्वतत्र व्यापार तथा वाष्पचालित यातायात (परिवहन) से बढ़ी हुई जनसख्या को पर्याप्त खाद्यसामग्री आसानी से प्राप्त हो जाती है। लोगो की औसत मौद्रिक आय दुगुनी से भी अधिक हो गयी है, और जानवरो को दिये जाने वाले चारे तथा मकान के किराये के अतिरिक्त सभी महत्वपूर्ण वस्तुओ के दाम आधे हो गये है अथवा उससे भी अधिक कम हो गये है। इसमे सन्देह नही कि यदि सम्पत्ति का समान वितरण होता तो देश का कुल उत्पादन लोगो की आवश्कताओ का अत्यावश्यक आराम की वस्तुओ के आयोजन के लिए ही पर्याप्त होता, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि आज अनेक लोगो की केवल जीवन की आवश्यक्ताएँ ही कठिनाई से पूरी हो पाती है। किन्तु राष्ट्र की सम्पत्ति, लोगो के स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा तथा नैतिकता मे वृद्धि हुई है। अब हम उद्योग के कुल उत्पादन को बढाने के उद्देश्य से अन्य विषयों का कम महत्व समझने के लिए बाध्य नही होते।

महारे पास अब अधिक साधन है और हमारा लक्ष्य अधिक ऊँचा होना चाहिए।

वास्तव मे इस बढ़ी हुई समृद्धि ने हमे इतना अमीर और शक्तिशाली बनाया है जिससे कि हम स्वतत्र उद्यम पर नये प्रतिबन्ध लगा सकें। उच्चतर एव अन्त मे प्राप्त होने वाले अधिक लाभ के लिए कुछ अल्पकालीन भौतिक हानि उठायी जाती है। किन्तु ये नये प्रतिबन्ध पुराने प्रतिबन्धो से भिन्न है। इन्हे वर्गीय प्रभुत्व स्थापित करने के लिए साधन के रूप मे नही अपनाया जाता, किन्तु कमजोर व्यक्तियो, और

स्वतन्त्रता के ऊपर जो नये प्रतिबन्ध लगाये गये,

1 शान्ति काल में किसी को भी यह साहस नहीं होता था कि वह खुले आम मानवीय प्रयोजनों की तुलना में द्रव्य को अधिक महत्व का समझे, किन्तु खर्चीली लड़ाइयों का संकट आने पर द्रव्य को लोगों के जीवन की रक्षा के लिए खर्च किया जा सकता है। एक सेना नायक का आचरण ठीक समझा जाता है जिसने अपत्ति काल में ऐसे सामान की रक्षा के लिए मनुष्यों का बलिदान ही क्यों न कर दिया हो जिसके नष्ट होन से बहुत से सिपाही मार जाते, यद्यपि शांति काल में कुछ ही सैनिक भण्डारों की रक्षा के लिए सिपाहियों के बलिदानों को कोई भी उचित नहीं ठहराता।

वे विशेषकर स्त्रियों तथा बच्चों के हित में थे।

विशेषकर बच्चों तथा उनकी माताओं की ऐसे मामलों में रक्षा करने के लिए अपनाया जाता है जिनमे प्रतियोगिता की शक्तियो से वे अपनी रक्षा नही कर पाती। इसका उद्देश्य जानबूझ कर तथा शीघ्रता के साथ ऐसे उपाय निकालना है जो आधुनिक उद्योग की निरन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल हो। इस प्रकार इसका उद्देश्य दुर्बल लोगो की रक्षा करने वाली उस पुरानी पद्धति की बुराइयो के बिना उसकी सभी अच्छाइयाँ ग्रहण करना है जो अन्य युगो से धीरे धीरे विकसित हुई थी।

तार एवं मुद्रणालय इन बुराइयों के निराकरण के लिए उपाय ढूंढ निकालने में लोगों की सहायता करते हैं।

अनेक पीढ़ियो तक लगातार उद्योग के अपरिवर्तित रहने पर भी प्रथा का बहुत कम विकास हुआ और जब प्रथा का प्रभाव हितकारी हो सकता था तब लोगों को उसका उपयोग करना नही आता था। इस बाद की अवस्था मे प्रथा से लाभ तो बहुत कम होगे, हानि ही अधिक होगी। किन्तु तार एव मुद्रणालय, प्रतिनिधि सरकार तथा व्यापारिक सस्थाओ की सहायता से लोग अपनी समस्याओं का हल निकाल सकते थे। ज्ञान के विकास तथा आत्मनिर्भरता ने उन्हे वह सच्ची आत्म-नियंत्रण सम्बन्धी स्वतत्रता प्रदान की है जिसके कारण वे अपनी स्वतन्त्र भावना से अपने ही निजी कार्य पर प्रतिबन्ध लगा सकते है, और सामूहिक उत्पादन, सामूहिक स्वामित्व तथा सामूहिक उपभोग की समस्याए एक नया रूप धारण कर रही है।

हम धीरे-धीरे सामूहिक कार्य के विभिन्न रूपों की ओर पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ते जा रहे हैं क्योंकि यह सुदृढ़ आत्म अनुशासित व्यक्तित्व पर आधारित है।

सदैव की भाँति मन्द तथा शीघ्र परिवर्तन लाने वाली योजनाओ का असफल होना तथा इसके फलस्वरूप प्रतिक्रिया का होना निश्चय है। यदि हम इतनी तेजी से बढ़े कि जीवन के विषय मे बनायी गयी नयी योजनाएँ हमारी अन्त:प्रेरणाओं के परे सिद्ध हो तो हम सुरक्षित ढग से आगे नही बढ़ सकते। यह सत्य है कि मानवीय स्वभाव मे सुधार हो सकता है. नये आदर्श, काम करने के नये सुअवसर तथा नये ढग कुछ ही शताब्दियो मे बहुत बदल सकते है जैसा कि इतिहास से भी स्पष्ट है। मानवीय स्वभाव मे इस प्रकार का परिवर्तन सम्भवतः न तो इतने बड़े क्षेत्र मे और न इतनी तीव्रता से ही हुआ जैसा कि आधुनिक पीढ़ी मे हो रहा है। किन्तु फिर भी यह एक प्रकार का विकास है, अतएव इसकी गति मन्द है। हमारे सामाजिक सगठन मे होने वाले परिवर्तन भी इसी के अनुकूल होगें। अत. इनका गति का भी मन्द होना आवश्यक है।

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन मानव स्वभाव के आधार पर होते है तथापि उनकी गति सदैव ही इनसे अधिक रहेगी जिससे हमारे उच्चतर सामाजिक स्वभाव के सम्मुख निरन्तर कुछ नये तथा उच्चतर प्रकार के कार्य तथा कुछ व्यावहारिक आदर्श रहेंगे। इस प्रकार हम धीरे धीरे सामाजिक जीवन के ऐसे स्तर पर पहुँच सकते है जिसमें वैयक्तिक हित की अपेक्षा सार्वजनिक हित को अधिक महत्व दिया जाता है। यह महत्व प्राचीनकाल मे सार्वजनिक हित को दिये गये महत्व की अपेक्षा, जब व्यक्तिवाद का प्रभाव आरम्भ हुआ था, अधिक है। किन्तु ऐसी दशा मे सुचिन्तित विचारो के फलस्वरूप ही निस्वार्थता उत्पन्न होगी और अन्त:प्रेरणा की सहायता से वैयक्तिक स्वतत्रता सामूहिक स्वतत्रता का रूप ग्रहण कर लेगी: यह सामूहिक स्वतन्त्रता जीवन के उस प्राचीन स्तर से सुखद भिन्नता प्रदर्शित करती है जिसमे प्रथा के प्रति वैयक्तिक दासता के कारण सामूहिक तथा निष्क्रियता उत्पन्न हुई, और जो निरकुश शासन तथा क्रान्ति की सनक से ही नष्ट हुई।

§17. हम इस प्रकार के परिवर्तन पर आग्ल दृष्टिकोण से विचार कर रहे थे। अन्य राष्ट्र भी इसी दिशा में तेजी से बढ रहे है। अमेरिका ने इन नयी व्यावहारिक कठिनाइयों का ऐसी निर्भयता से तथा खुलकर सामना किया है जिससे यह पहले ही कुछ आर्थिक मामलों मे अगुवा बन गया है। वहाँ पर इस युग की हर प्रकार के सट्टेबाजी तथा व्यापारिक गुटबन्दी के विकास जैसी आधुनिकतम आर्थिक प्रवृत्तियों के सबसे अधिक शिक्षात्मक उदाहरण मिलते है। यह कुछ ही समय मे समूचे संसार के लिए *नया मार्ग तैयार करने मे प्रमुख भाग लेगा।*

अमेरिका कुछ आर्थिक समस्याओं पर अधिक प्रभाव डाल रहा है।

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया मे भी उत्साह दिखायी देता है, और उसको संयुक्त राज्य अमेरीका की अपेक्षा इस बात का विशेष लाभ है कि यहाँ के निवासियों मे अधिक सजातीयता पायी जाती है। यद्यपि आस्ट्रेलिया के निवासी–यही बात कनाडा के निवासियो पर भी लागू होती है–अनेक देशों से आकर यहाँ बसे हैं और इस कारण अपने अनेक प्रकार के अनुभव, विचारों तथा उद्यम एव विचारधाराओ से एक दूसरे को विचारों तथा उद्यम में उत्तेजना देते है किन्तु फिर भी प्राय वे सभी एक ही जाति के लोग है इन लोगो की सामाजिक संस्थाओं का विकास कुछ दिशाओं मे उन लोगों की अपेक्षा अधिक सरलता तथा तेजी से हो सकता है जिनमे एक दूसरे के प्रति बहुत कम लगाव होने के कारण सामाजिक सस्थाओं को लोगो की क्षमता, उनके स्वभाव, उनकी रुचि तथा आवश्यकताओ के अनुकूल बनाना पडता है।

यूरोप महाद्वीप मे स्वतत्र सम्पर्क द्वारा महत्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन की शक्ति आग्ल-भाषाभाषी देशों की अपेक्षा कम है। परिणामस्वरूप औद्योगिक समस्याओ के हल के लिए उनके पास कम साधन है और इसीलिए इन समस्याओं का सभी पहलुओ पर भी विचार नही कर पाते। किन्तु किन्ही दो राष्ट्रो मे इनका हल भी पूर्णरूप से समान नही होता। प्रत्येक द्वारा अपनाये गये ढंगो मे, और विशेषकर सरकारी कार्यक्षेत्र के विषय मे, कुछ विशिष्ट एव शिक्षाप्रद बातें पायी जाती है। इस विषय मे जर्मनी सबसे आगे है। इग्लैंड के औद्योगिक विकास के बाद ही जर्मनी का औद्योगिक विकास हुआ जिससे उसे बहुत लाभ हुआ। इसके कारण वह इग्लैंड के अनुभव से लाभ उठाने और उसके द्वारा की गयी गलतियों से अपने को बचाने मे समर्थ हुआ।[1]

जर्मनी मे सबसे अधिक बुद्धिमान लोग असामान्यतया बडी मात्रा मे सरकारी नौकरी करते है, और सम्भवतः कोई अन्य ऐसा देश नही है जहाँ इतनी बड़ी मात्रा मे उच्चतम स्तर के प्रतिष्ठित लोग सरकारी नौकरी करते हों। इसके अतिरिक्त जिस शक्ति, मौलिकता तथा साहस से इग्लैंड तथा अमेरिका मे सर्वश्रेष्ठ व्यापारियों को सफलता

जनता की सरकार द्वारा व्यावसायिक प्रबन्ध के

1 लिस्ट ने बड़े सांकेतिक ढंग से इस विचार को प्रतिपादित किया है कि एक पिछड़े हुए देश को अधिक उन्नत राष्ट्रों के तत्कालीन आचरण की अपेक्षा उनकी उस अवस्था के आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो इस पिछड़े देश में इस समय पायी जाती है। किन्तु ऐसा नीज (Knies) ने ठीक ही प्रदर्शित किया है। (Politische Aekonomie, II, 5), व्यापार के विकास तथा संचार के साधनों के सुधार के कारण विभिन्न देशों में साथ साथ विकास हो रहा है।

परीक्षण के लिए जर्मनी को विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं।

मिली है, उनका हाल ही मे जर्मनी में पूर्ण विकास हो गया है। इसके साथ ही साथ जर्मनी के लोगों मे आज्ञापालन की बड़ी क्षमता है। इस प्रकार वे अंग्रेजों से, जो स्वभाव से आज्ञाकारी न होते हुए भी विशेष अवसर आने पर अपनी इच्छा शक्ति के कारण पूर्ण अनुशासन में रह सकते हैं, भिन्न हैं। जर्मनी में सरकार द्वारा उद्योग का सबसे अच्छे तथा सबसे आकर्षक रूपों में नियत्रण किया जाता है। इसके साथ साथ निजी उद्योग के विशेष गुण, इसका ओज, इसकी लोच तथा इसके साधन भी पूर्ण विकसित रूप में दिखायी देने लगे हैं। इसके फलस्वरूप जर्मनी में सरकार के आर्थिक कार्यों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन बड़ी होशियारी से किया गया है और इसके परिणाम आंग्ल-भाषाभाषी लोगों के लिए बहुत शिक्षाप्रद सिद्ध होंगे। किन्तु इस विषय में उन्हें यह याद रखना होगा कि जिस प्रकार के आयोजन जर्मनवासियों के लिए सर्वोत्तम है वे उनके लिए भी सम्भवत समानरूप से सर्वोत्तम नहीं होंगे, क्योंकि इच्छा होने पर भी वे जर्मनी की सतत आज्ञाकारिता तथा सस्ते किस्म के भोजन, वस्त्र, निवासस्थान तथा मनोरंजन से, आसानी से, सतुष्ट रहने की प्रकृति का मुकाबला नहीं कर सकते।

अन्य किसी देश की अपेक्षा जर्मनी में अधिक सख्या में उस प्रशसनीय जाति के सबसे अधिक सुसस्कृत लोग मिलते है जो धार्मिक भावना की तीव्रता तथा व्यापारिक चिन्तन की उत्कठा में ससार मे अग्रणी रहे है। सभी देशो में और विशेषकर जर्मनी में, आर्थिक व्यवहार व आर्थिक विचारधारा में जो भी सबसे अधिक अद्भुत तथा साकेतिक चीजें मिलती है उनका प्रारम्भ यहूदियों ने किया था। व्यक्ति तथा समाज के हितों मे विरोध तथा मौलिक आर्थिक कारणो तथा इनके निराकरण के सभाव्य समाजवादी उपायो से सम्बन्धित अनेक साहसपूर्ण विचारो के लिए हम विशेषकर जर्मनी के यहूदियों के ऋणी है।

किन्तु अब हम परिशिष्ट ख के विषय में विचार करने लगे हैं। इस परिशिष्ट में हमने इस बात की समीक्षा की है कि आर्थिक स्वतत्रता के विकास का इतिहास कितना नया है, और अर्थशास्त्र में अध्ययन की जाने वाली समस्या का सार कितना नया है। इसके बाद हमे यह पता लगाना है कि घटनाओं के विकास तथा महान विचारकों की व्यक्तिगत विशेषताओं से उस समस्या का रूप कैसे निश्चित हुआ है।

परिशिष्ट (ख)[1]

अर्थविज्ञान का विकास

§1. हम देख चुके है कि किस प्रकार आर्थिक स्वतत्रता भूतकाल पर आधारित है, किन्तु मुख्यरूप मे यह बिलकुल हाल ही की देन है। इसके बाद हम आर्थिक विज्ञान की आर्थिक स्वतंत्रता के साथ साथ होने वाली प्रगति का पता लगायेंगे। आजकल की सामाजिक दशाएँ यूनानी विचारों तथा रोमन कानून की सहायता से प्राचीन आर्य तथा सामी (Semitic) सस्थाओ से विकसित हुई है। किन्तु आधुनिक आर्थिक अनुमानो पर प्राचीनकाल के सिद्धान्तो का बहुत थोडा ही प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है।

आधुनिक अर्थविज्ञान प्राचीन विचारों के लिए अप्रत्यक्ष रूप में बहुत अधिक किन्तु प्रत्यक्ष रूप में बहुत कम ऋणी है।

यह सत्य है कि आधुनिक अर्थशास्त्र का अन्य विज्ञानो की ही भाँति उस समय प्रारम्भ हुआ जब ग्रीक और लेटिन लेखको का अध्ययन पुनर्जीवित हो रहा था। किन्तु गुलामी पर आधारित औद्योगिक प्रणाली, तथा विनिर्माण एव वाणिज्य को घृणा की दृष्टि से देखने वाले दर्शन (Philosophy) मे उन हृष्ट-पुष्ट नागरिको के लिए बहुत थोडी ही उपयुक्त चीजे थी जो अपनी दस्तकारी तथा अपने व्यवसाय मे उतना ही गर्व का अनुभव करते थे जितना वे राज्य के प्रशासन मे अपने हिस्से पर किया करते थे। इन हृष्ट-पुष्ट किन्तु असभ्य लोगो ने विगत समयो के विचारकों के दार्शनिक स्वभाव तथा व्यापक रुचियो से बहुत लाभ उठाया। उन दशाओ मे उन्होंने अपनी समस्याओं को स्वयं ही हल करने का प्रयत्न किया, और आधुनिक अर्थशास्त्र मे प्रारम्भ से ही एक विशेष रूखापन था तथा इसका क्षेत्र सीमित था, और इसमे सम्पत्ति को मानव-जीवन का साधन न मानकर उसका अन्तिम लक्ष्य मानने की ओर झुकाव था। सामान्यतया इसका सार्वजनिक आय; करों के परिणामो एवं इनसे होने वाली आमदनी से सीधा सम्बन्ध रहता था, और व्यापार के अधिक व्यापक होने तथा लडाई के अधिक खर्चीले होने के साथ स्वतत्र शहरो तथा महान् साम्राज्यो के नेतागणो ने समानरूप से अपनी आर्थिक समस्याओ को अधिक आवश्यक तथा अधिक कठिन पाया।

सभी युगों मे, किन्तु विशेषकर मध्य युगो के प्रारम्भ में नेताओ तथा सौदागरो ने व्यापार पर नियत्रण करके राष्ट्र को धनी बनाने के प्रयत्नो मे अपने को व्यस्त रखा। उनका इससे सम्बन्ध रखने का एक मुख्य उद्देश्य बहुमूल्य धातुओं की पूर्ति से था जिसे उन्होंने व्यक्ति अथवा राष्ट्र की भौतिक खुशहाली का मुख्य कारण नहीं तो उसका सबसे अच्छा लक्षण अवश्य समझा। किन्तु वास्को डी गामा तथा कोलम्बस की समुद्री यात्राओं ने पश्चिमी यूरोप के देशो मे वाणिज्यिक प्रश्नो को गौण स्थान से प्रमुख स्थान दिलाया। बहुमूल्य धातुओं के महत्व तथा उनकी पूर्ति करने के सबसे अच्छे साधनो से सम्बन्धित सिद्धान्त कुछ मात्रा मे सार्वजनिक नीति के निर्णायक बन गये और शान्ति तथा युद्ध इन्ही से प्रभावित होने लगे, तथा इन्ही से गुटो का निर्धारण होने लगा जिसके

नये संसार के साथ किये जाने वाले व्यापार का प्रभाव।

1 भाग 1, अध्याय 1, अनुभाग 5 देखिए।

परिणामस्वरूप राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन हुआ: कभी-कभी तो भू-मण्डल में लोगों का प्रवास बहुत अंशों मे इन्ही से प्रभावित हुआ।

व्यापार का प्रारम्भिक नियंत्रण

बहुमूल्य धातुओं के व्यापार में लगाये जाने वाले नियंत्रण अनेक प्रकार के अध्यादेशों में से थे जिनके द्वारा अलग अलग सूक्ष्मता तथा तीक्ष्णता के साथ प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह निर्णय किया गया कि उसे कौन कौन सी चीजे पैदा करनी चाहिए, और कैसे पैदा करनी चाहिए, उसे क्या अर्जित करना चाहिए और कैसे अपनी आय को खर्च करना चाहिए। ट्यूटानी (प्राचीन जर्मन) लोगों के स्वाभाविक लगाव के कारण मध्य युगों के प्रारम्भ मे प्रथा को अत्यधिक शक्ति मिली। जब नये विश्व के साथ व्यापार के फलस्वरूप प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप मे उत्पन्न होने वाली अस्थिर प्रवृत्ति को निपटाने की कोशिश की गयी तब इस शक्ति से व्यापारिक संघ, स्थानीय अधिकारी तथा राष्ट्रीय सरकारें प्रभावित हुई। फ्रांस मे ट्यूटानी जाति का यह झुकाव नियम पालन के प्रति रोमवासियो से मिली प्रतिभा से प्रभावित हुआ और पैतृक सरकार (paternal government) अपने शिखर पर पहुँच गयी। कालबर्ट (Calbert) के व्यापारिक नियंत्रणों ने कहावतों का रूप धारण कर लिया। ठीक इसी समय ही आर्थिक सिद्धान्त का ढांचा सर्वप्रथम तैयार हुआ, वणिक्वाद की प्रणाली प्रमुख हुई, और *नियंत्रण का उस प्रभावपूर्ण तीक्ष्णता के साथ पालन हुआ जो कि पहले कभी न हुआ था।*

वणिक्वादी सिद्धान्त से व्यापारिक नियंत्रण ढीले पड़ने लगे।

जैसे जैसे वर्ष बीतते गये आर्थिक स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति बढ़ने लगी, और जो लोग नये विचारो के विरुद्ध थे उन्होंने पिछली पीढ़ी के वणिक्वादियों के विचारों का सहारा लिया। किन्तु उनकी पद्धतियो मे पायी जाने वाली नियंत्रण तथा प्रतिबन्ध की भावना *उसी काल से सम्बन्धित थी। वे जिन अनेक परिवर्तनों को स्वयं लाना चाहते थे वे* उद्यम की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित थे। उन्होंने बहुमूल्य धातुओं के निर्यात का पूर्ण रूप से निषेध चाहने वाले लोगों के विरुद्ध विशेषकर यह तर्क दिया कि जिन दशाओ मे दीर्घकाल मे व्यापार से देश से बाहर जाने की अपेक्षा देश मे अधिक सोना तथा *चाँदी आये, उन सभी में ऐसा करने दिया जाय।* इस प्रकार इस प्रश्न को खड़ा करने के कारण कि क्या व्यापारी को अपने व्यवसाय का किसी खास दशा मे इच्छानुसार प्रबन्ध करने की आज्ञा देने से राज्य को लाभ नही होगा, उन्होंने विचारों की एक नयी प्रवृत्ति प्रारम्भ की और यह उस समय की परिस्थितियों तथा पश्चिमी यूरोप मे लोगों के सोचने के ढंग तथा उनकी मानसिक स्थिति की सहायता से अज्ञातरूप से आर्थिक स्वतंत्रता की ओर प्रवृत्ति हुई। यह व्यापक विचार प्रणाली अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक विद्यमान रही जब इस सिद्धान्त के लिए अनुकूल समय मिला कि जब कभी राज्य प्रत्येक व्यक्ति के अपने कारोबार के स्वेच्छानुसार प्रबन्ध करने की 'प्राकृतिक' स्वतंत्रता पर लगाये गये काल्पनिक नियंत्रणों का विरोध करने का प्रयत्न करता है तो इससे जनसमुदाय की हितवृद्धि को प्रायः सदैव ही आघात पहुँचता है।[1]

---

1 इस बीच 'केमरालिस्टिक' (Cameralistic) अध्ययनों से सार्वजनिक कार्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण विकसित हो रहा था, और प्रारम्भ में वित्त सम्बन्धी पहलू पर ही विचार किया गया। किन्तु सन् 1750 से राष्ट्रों की सम्पत्ति जो कि भौतिक दशाओं पर मानवीय दशाओं से भिन्न थी, अधिकाधिक विचार किया गया।

§2. लगभग अट्ठारहवी शताब्दी के मध्य मे फ्रांस मे क्वेसने के नेतृत्व में, जो कि लुइस पन्द्रहवें के सुयोग्य चिकित्सक थे, नेताओ तथा दार्शनिकों के एक वर्ग ने व्यापक आधार पर आर्थिक विज्ञान की रूपरेखा तैयार की और सबसे पहला व्यवस्थित प्रयास किया। उनकी नीति की आधारशिला प्रकृति की आज्ञाकारिता थी।[2]

कृषि-अर्थशास्त्रियों न इस बात

---

1 कॅण्टीलन (Cantillon) के 1755 ई० में लिखे गये निबन्ध Sur la Nature de Commerce को, जो विस्तृत क्षेत्र पर प्रकाश डालता है, वास्तव मे क्रमबद्ध कहा जा सकता है। यह बहुत तीक्ष्ण है और कुछ दशाओं में तो उस काल से भी आगे की बातों पर प्रकाश डालता है। यद्यपि अब ऐसा लगता है कि अनेक महत्वपूर्ण बातों में निकलस बारबन (Nicholas Barbon) ने, जिसने उनसे 60 वर्ष पूर्व लिखा था, उनकी अगुवायी की। कौज (Kautz) सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कॅण्टीलन के कार्य के महत्व को समझा और जेवन्स ने यह घोषणा की कि वह राजनीतिक अर्थव्यवस्था के वास्तविक संस्थापक थे। अर्थशास्त्र में उनके स्थान के बारे में संतुलित अनुमान के लिए हिग्स (Higgs) द्वारा Quarterly Journal of Economics, खण्ड VI में लिखे गये एक लेख को देखिए।

2 पहले की दो शताब्दियों में आर्थिक प्रश्नों पर लिखने वाले विचारकों ने निरन्तर अपने विचारों को प्रकृति पर आधारित किया था। हर एक यही दावा करता था कि अन्य लोगों की अपेक्षा उसकी योजना अधिक प्राकृतिक है, और अट्ठारहवीं शताब्दी के दार्शनिकों ने, जिनमें कुछ ने अर्थशास्त्र पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला, प्रकृति के अनुरूप औचित्य के स्तर को ढूंढ़ निकाला। विशेषकर लॉक ने प्रकृति से किये गये अनुरोधों के सामान्य ढंगों में तथा अपने सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण विवरण में फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियों के अधिकांश कार्य का पहले ही अनुमान लगा लिया था। किन्तु क्वेसने तथा अन्य फ्रांसीसी अर्थशास्त्री, जिन्होने उनके साथ काम किया था, अनेक शक्तियों के कारण (जिनमें से कुछ इंग्लैंड में पहले से ही विद्यमान थीं) सामाजिक जीवन के प्राकृतिक नियमों को खोज में लग गये।

फ्रान्सीसी राजदरबार की विलासिता तथा उच्च वर्गों को मिली हुई विशेष सुविधाएँ फ्रान्स को नष्टभ्रष्ट कर काल्पनिक सभ्यता की सबसे बुरी दिशा को दिखा रही थीं, और विचारवान लोग समाज की अधिक स्वाभाविक अवस्था की ओर पुनः जाने के लिए लालायित हुए। वकील जिनमें देश की सबसे उत्तम मानसिक तथा नैतिक शक्ति का बहुत अंश पाया जाता था बाद के रोमन साम्राज्य के आत्मसंयमी (स्टोइक) वकीलों द्वारा विकसित किये गये प्रकृति के नियम से ओतप्रोत थे, और जैसे ही शताब्दी व्यतीत हो गयी, अमेरिकी इण्डियनों के 'स्वाभाविक' जीवन के लिए भावुकतामय प्रशंसा, जिसे रूसो (Rousseau) ने प्रज्वलित किया था, अर्थशास्त्रियों को प्रभावित करने लगी। कुछ ही समय बाद वे कृषि अर्थशास्त्री या प्रकृति के नियम के समर्थक कहलाये जाने लगे। यह नाम सन् 1768 ई० में प्रकाशित डूपो डे नेमोर (Dupont de Nemour) की Physiocratie on Constitution Naturelle du Government le plus avantageux au Genre Humain से लिया गया है, यह भी कहना

पर जोर दिया कि प्रतिबन्ध काल्पनिक होता है, और स्वतंत्रता प्राकृतिक होती है।

सब से पहले उन्होंने ही व्यापक नीति के रूप मे स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्त की घोषणा की। ऐसा करने मे वे सर डुडले नॉर्थ (Sir Dudley North) जैसे उच्च अंग्रेज लेखको से भी आगे बढ गये। उनके राजनीतिक एवं सामाजिक प्रश्नो के विवेचन का रगरूप बाद की पीढ़ी की भविष्यवाणी थी। उनके विचार कुछ भ्रमित हो गये थे जैसा कि तत्कालीन वैज्ञानिको मे भी सामान्यरूप से देखने को मिलता था, किन्तु यह भ्रम भौतिक विज्ञानो से लम्बा सघर्ष होने के बाद दूर हो गया। नैतिक सिद्धान्त जो प्रकृति के समरूप है, जिसे आज्ञावाचक रूप मे व्यक्त किया जाता है, और जो कार्य करने के कुछ नियम निर्धारित करता है, उसका इन्होंने उन आकस्मिक नियमों से सम्मिश्रण किया जिन्हे विज्ञान प्रकृति से प्रश्न कर ढूँढ निकालता है, और जिन्हें क्रियागत रूप मे व्यक्त किया जाता है। इस तथा अन्य कारणों से उनकी कृति का प्रत्यक्ष महत्व बहुत कम है।

उन्होंने अर्थशास्त्र को आधुनिक लोकोपकारी रूप दिया।

अर्थशास्त्र के आधुनिक रूप मे इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत रहा है। इसका सबसे पहला कारण यह था कि उनके तर्कों की स्पष्टता तथा तार्किक संगति के कारण बाद की विचारधारा पर बहुत प्रभाव पडा। दूसरा कारण यह था कि उनके अध्ययन का मुख्य प्रयोजन अपने पूर्वजो की भाँति सौदागरों की धनाढ्यता को बढाना तथा राजा के खजाने को भरना नही था। उनका प्रयोजन तो अत्यधिक दरिद्रता से उत्पन्न होने वाले दुख तथा पतन को कम करना था। अत उन्होंने अर्थशास्त्र का आधुनिक उद्देश्य ऐसे ज्ञान की खोज करना बतलाया जिससे मानव जीवन के स्तर को ऊँचा करने मे सहायता मिले।[1]

उचित है कि कृषि तथा ग्रामीण जीवन की स्वाभाविकता तथा सरलता के लिए उनकी उत्सुकता कुछ अंशों में उनके आत्मसंयमी पंडितों से मिली थी।

1 उदार प्रकृति भोवन (Vauban) को भी (सन् 1717 ई० में लिखते समय) लोकहित में रुचि रखने के कारण यह तर्क देने के लिए क्षमा माँगनी पड़ी कि राजा को धनी बनाने का एकमात्र उपाय लोगों को धनी बनाना है—Pauvres paysans, paure Royaume, pauvre Royaume, pauvre, Roi। दूसरी ओर लॉक ने जिनका एडम स्मिथ पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, कृषि अर्थशास्त्रियों के कुछ विशेष आर्थिक मतों तथा उनकी तीव्र दानशीलता का अनुमान लगाया। उनके प्रिय वाक्यांश Laissez faire, laisser aller का अब साधारणतया गलत प्रयोग किया जाता है। Laissez faire से अभिप्राय यह है कि प्रत्येक को स्वेच्छानुसार तथा जिस ढंग से चाहे चीजें बनाने दी जायें, हर प्रकार का व्यवसाय प्रत्येक के लिए खुला होना चाहिए। सरकार को कॉलबर्टिस्ट (Colbertists) के दबाव के अनुसार विनिर्माताओ के लिए उनके कपड़े के फैशन को निर्धारित नहीं करना चाहिए। La ssez aller (or passer) का अर्थ है कि वस्तुओं तथा लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक विशेषकर फ्रान्स के एक जिले से दूसरे जिले को स्वतंत्ररूप से जाने के लिए छूट मिलनी चाहिए और किसी प्रकार की चुंगी तथा कर तथा अन्य दुःखदायी नियंत्रण नहीं लगने चाहिए। यह ध्यान रहे कि मध्ययुगों में मार्शलों द्वारा किसी प्रतियोगिता

एडम स्मिथ की मेधा।

§3. इससे भी बढकर अगला कदम, सम्भवतः अर्थशास्त्र का सबसे बड़ा कदम, अनेक विचारकों की कृति न होकर एक व्यक्ति की ही कृति थी। वास्तव मे केवल एडम स्मिथ ही अपने समय के सबसे बडे आग्ल अर्थशास्त्री नही थे। उनके लिखने के कुछ ही समय पूर्व ह्यूम तथा स्टुअर्ट ने आर्थिक सिद्धान्त मे महत्वपूर्ण योगदान दिया था, और एडरसन (Anderson) तथा यग (Young) ने आर्थिक तथ्यो का उत्कृष्ट अध्ययन प्रकाशित किया था। किन्तु एडम स्मिथ के विचारो की व्यापकता उनके समस्त समकालीन फासीसी तथा अग्रेज विचारको की सम्पूर्ण उत्कृष्टता के समावेश के लिए पर्याप्त थी, और यद्यपि निस्सदेह उन्होंने अन्य लोगो के बहुत कुछ विचार अपनाये, तब भी उनके पहले तथा बाद के अर्थशास्त्रियो के साथ उनकी जितनी अधिक तुलना की जाय उनकी मेधा उतनी ही सुन्दर प्रतीत होती है, उनका ज्ञान उतना ही व्यापक दिखायी देता है और उनका निर्णय उतना ही अधिक सतुलित मालूम पडता है।

वह एक लम्बे समय तक फास मे कृषि-अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत सम्पर्क मे रहे थे। उन्होने अपने समय के आग्ल तथा फ्रासीसी दर्शन का सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया, और बहुत विस्तार मे भ्रमण करने तथा स्काटलैड के व्यावसायियों से घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण ससार के विषय मे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। इन लाभों के साथ उन्होने अवलोकन, निर्णय तथा तर्क की अद्वितीय शक्तियो को सम्मिलित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ कही वे अपने पूर्वजो से मतभेद रखते थे, वे ही उनकी अपेक्षा अधिक ठीक मालूम देते है। और शायद ही कोई ऐसा आज का आर्थिक सत्य होगा जिसका उन्हें पहले से आभास न हुआ हो। चूंकि वह सम्पत्ति के सभी मुख्य सामाजिक पहलुओ पर ग्रन्थ लिखने वाले पहले लेखक थे, केवल इसी आधार पर उन्हे आधुनिक अर्थशास्त्र का जन्मदाता माना जा सकता है।[1]

में लड़ाकुओं को भिड़ने के लिए छूट देने के संकेत के रूप में Laissez aller का प्रयोग किया जाता था।

1 वेगनर के Grundlegung, तृतीय संस्करण,पृष्ठ 6 इत्यादि में एडम स्मिथ की सर्वोत्कृष्टता के दावे के बारें में दिये गये संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण कथन से तुलना कीजिए। हसबक (Hasbach) के Untersuchungen uber Adam Smith (जिसमें आंग्ल तथा फान्सीसी विचारधारा पर हालेंड वालों की विचारधारा के प्रभाव का वर्णन विशेषरूप से रोचक है) तथा Economic Journal, खण्ड III में प्रकाशित ऐल॰ ऐल॰ प्राइस (L. L. Price) के Adam Smith and his Relations to Recent Economics से तुलना कीजिए। कनिंघम (Cunningham), History, अनुच्छेद 306 में बलपूर्वक यह तर्क देते हैं कि "उनकी महान प्राप्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति के विचार को पृथक करने में है, जब कि उनसे पहले के लेखकों ने इसे सचेत रूप से राष्ट्रीय शक्ति के मातहत माना" किन्तु सम्भवतः इस विभेद के दोनों पहलुओं का बहुत अधिक बारीकी के साथ सीमांकन किया गया है। कैनन ने Lectures of Adam Smith की प्रस्तावना में उन पर हच्चेसन के प्रभाव की महत्ता को प्रदर्शित किया है।

किन्तु जितने क्षेत्र पर उन्होंने विचार करना प्रारम्भ किया वह इतना अधिक विस्तृत था कि अकेला व्यक्ति उसका गहराई के साथ सर्वेक्षण नहीं कर सकता था, और अनेक सत्य जो कभी कभी उनका ध्यान आकर्षित करते है किसी अन्य समय उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। अतः यह सम्भव है कि अनेक त्रुटियों के पक्ष मे उनके प्राधिकार को उद्धृत किया जाय, यद्यपि परीक्षण के पश्चात् सदैव यह देखा गया है कि उनका मार्ग सत्य की ओर प्रवृत्त होता है।[1]

उन्होंने स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्त का बड़ा विकास किया, किन्तु उनका मुख्य कार्य मूल्य के सिद्धान्त में एक सामान्य

उन्होने कृषि-अर्थशास्त्रियो के स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त का इतनी अधिक व्यावहारिक बुद्धि के साथ, तथा व्यवसाय की वास्तविक दशाओं के इतने अधिक ज्ञान के साथ विकास किया जिससे कि यह वास्तविक जीवन मे महान शक्ति बन सके। वह यहाँ तथा विदेशो मे अपने इस तर्क के लिए सबसे प्रसिद्ध रहे है कि व्यापार मे हस्तक्षेप कर सरकार साधारणतया क्षति ही पहुँचाती है। उन्होने उन रूपों के अनेक दृष्टान्त देते समय जिनमे हर एक व्यापारी स्वहित से समाज के अहित के लिए काम कर सकता है, यह दलील दी कि सरकार के सबसे अच्छे सकल्पों से कार्य करने के बावजूद भी इससे व्यक्तिगत व्यापारी की अपेक्षा, चाहे वह कितना ही स्वार्थी रहा हो, जनता का प्राय. सदैव ही अधिक अहित हुआ। उन्होने इस सिद्धान्त की पुष्टि करके संसार मे ऐसी बहुत बड़ी धाक जमा दी कि अनेक जर्मन लेखक Smithianisus के बारे मे बोलते समय इसे ध्यान मे रखते है।[2]

1 दृष्टान्त के लिए वह आर्थिक विज्ञान के नियमों तथा प्रकृति से सादृश्य के नैतिक आदेश के बीच उस समय प्रचलित भ्रम को पूर्णरूप से दूर न कर सके। "प्राकृतिक" से उनका अभिप्राय कभी तो उससे होता है जो विद्यमान शक्तियों द्वारा वास्तव में उत्पन्न किया जाता है या जिसे उत्पन्न करने की प्रवृति होती है, कभी उससे होता है जो वह अपने मानवीय स्वभाव के कारण पैदा करवाने की कामना करता है। इसी प्रकार वह कभी तो यह मानते थे कि विज्ञान का प्रतिपादन करना अर्थशास्त्री का काम है और किसी अन्य समय यह मानते थे कि अर्थशास्त्री का कार्य सरकार के काम के कुछ भाग से अवगत कराना है। किन्तु उनकी भाषा के प्रायः असंयत होने पर भी अधिक सूक्ष्म अध्ययन से यह पता लगता है कि स्वयं वह अच्छी तरह जानते थे कि वह क्या कहना चाहते हैं। जब वह आकस्मिक नियम, अर्थात् आधुनिक अर्थ से प्रकृति के नियमों की खोज करना चाहते हैं तो वह वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग करते है, और जब व्यावहारिक आदेशों को बतलाते हैं तो वह साधारणतया यह जानते है कि क्या होना चाहिए विषय पर स्वयं अपने विचार ही व्यक्त कर रहे है, भले ही वह उसके पक्ष में प्रकृति का भी पक्षपोषण करते हों।

2 जर्मनी में इस शब्द के प्रचलित अर्थ से अभिप्राय न केवल एडम स्मिथ का यह सोचना है कि सरकारी हस्तक्षेप की अपेक्षा व्यक्तिगत हितों के स्वतंत्र संघर्ष से अधिक जनकल्याण होता है, किन्तु यह भी सोचना है कि यह प्रायः सदैव ही आदर्श रूप में सबसे अच्छे ढंग से कार्य करता है। किन्तु जर्मनी के प्रमुख अर्थशास्त्री इस बात से भलीभाँति परिचित हैं कि उन्होंने व्यक्तिगत हितों तथा सार्वजनिक हितों, के बीच बहुधा पाये

केन्द्र को ढूंढ़ना था जिससे अर्थ विज्ञान में एकता प्रदान हो।

किन्तु कुछ भी हो, यह उनका मुख्य कार्य नही था। उनका सबसे मुख्य कार्य समकालीन फ्रांसीसी तथा आंग्ल विचारकों तथा पूर्वजों की मूल्य के सम्बन्ध में दी गयी अटकलबाजी को एक साथ मिलाकर विकसित करना था। उनका आर्थिक विचारों के नये युग का प्रारम्भ करने का सबसे बड़ा दावा यह है कि वही सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मूल्य द्वारा मानवीय प्रयोजनों को मापने के ढग का सतर्क तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया था।[1] उन्होंने एक ओर केताओं की धन प्राप्त करने की इच्छा को मापा तथा दूसरी ओर इसके उत्पादकों के परिश्रम तथा त्याग (अथवा उत्पादन की वास्तविक लागत) को मापा।

यह सम्भव है कि वह जो कर रहे थे उसके पूर्ण प्रवाह का स्वयं अनुमान न लगा सके। इसे उनके बहुत से अनुयायी तो निश्चितरूप से समझ ही नही सके। किन्तु इन सबके बावजूद Wealth of Nations के बाद लिखी गयी अर्थशास्त्र की सबसे अच्छी कृति मे इससे पहले की कृतियो की अपेक्षा इस बात का अधिक स्पष्ट आभास होता है कि किस प्रकार एक ओर तो किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का तथा दूसरी ओर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे उसके उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम एव सयम का मुद्रा के माध्यम से माप तौल किया जाय। अन्य लोगों द्वारा इस दिशा मे उठाये गये कदमो के महत्वपूर्ण होने पर भी उनके द्वारा की गयी प्रगति इतनी बडी थी कि वास्तव में उन्होने इस नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, और ऐसा करने मे उन्होंने एक नये युग का सूत्रपात किया। इसमे वह तथा उनसे पहले व बाद मे आने वाले अर्थशास्त्री नये विचारो का आविष्कार नही कर रहे थे, वे तो सामान्य जीवन के परिचित विचारों को निश्चितता तथा विशुद्धता प्रदान कर रहे थे। वास्तव मे एक साधारण व्यक्ति जिसमे विश्लेषण करने की क्षमता न हो, द्रव्य को वास्तविकता की अपेक्षा प्रयोजन तथा प्रसन्नता को अधिक निकट से तथा अधिक यथार्थरूप से मापने का साधन मानता

जाने वाले विरोध पर निरन्तर जोर दिया: और Smithianismus (स्मिथवाद) शब्द का प्राचीन प्रयोग अब बुरे अर्थ में होता जा रहा है। दृष्टान्त के लिए नीज द्वारा (Politische Aekonomie, अध्याय III) इस प्रकार के विरोधों की Wealth of Nations से उद्धृत एक लम्बी सूची देखिए। फाइलबोजेन (Feilbogen) के Smith und Turgot तथा जैस (Zeyss) के Smith und der der Eigennutz को भी देखिए।

1 कृषि-अर्थशास्त्रियों तथा अनेक प्राचीन लेखकों ने, जिनमें हैरीस (Harris), केण्टीलन (Cantillon), लौक, बार्बन (Barbon), पेट्टी (Petty) के नाम उल्लेखनीय है, मूल्य के उत्पादन की लागत से सम्बन्धों को प्रदर्शित किया था। यहाँ तक होब्स भी इन्हीं में से थे जिन्होंने स्पष्टरूप से इस ओर संकेत किया कि सम्पन्नता भूमि तथा समुद्र से प्रकृति की उन्मुक्त देनों को प्राप्त करने तथा संचित करने में मनुष्य द्वारा लगाये गये श्रम एवं संयम पर बहुत कुछ निर्भर रहती है proventus terrae et aquae, labor et parsimonia (जल तथा थल की उपज परिश्रम से प्राप्त होती है)।

है। इसका आंशिक कारण यह है कि वह इसे मापने के ढंग को नही सोचता। अर्थशास्त्र की भाषा तकनीकी प्रतीत होती है और साधारण जीवन की भाषा से कम वास्तविक मालूम पडती है। किन्तु सच तो यह है कि यह अधिक वास्तविक है, क्योंकि इसमें अधिक सतर्कता बरती जाती है और विभिन्नताओं एवं कठिनाइयों को अधिक ध्यान में रखा जाता है।[1]

तथ्यों का अध्ययन।

§4. एडम स्मिथ के समकालीन तथा उसके तुरन्त बाद के विचारकों मे से किसी मे भी उन जैसी व्यापक एवं सतुलित विचारशक्ति नही थी। किन्तु उन विचारकों ने बहुत ही सुन्दर कार्य किया। उनमे से प्रत्येक ने अपनी मेधा के प्राकृतिक झुकाव के आधार पर या उस समय की विशेष घटनाओ से प्रेरित होकर कुछ विशेष प्रकार की समस्याओ पर पूर्णरूप से विचार किया। अट्ठारहवी शताब्दी के शेष काल मे लिखे गये मुख्य आर्थिक लेख ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक थे और इनमे श्रमिक वर्गों की, विशेषकर खेतिहर क्षेत्रों के श्रमिक वर्गों की दशा पर प्रकाश डाला गया था। आर्थर यंग अपने भ्रमण के अनुपम लेखों को लिखते रहे, इडन (Eden) ने निर्धनों का इतिहास लिखा जो उद्योग के विषय से सम्बन्धित बाद के उद्योग सम्बन्धी इतिहासकारों के लिए आधार तथा एक नमूना सिद्ध हुआ। माल्थस ने इतिहास की सतर्क खोज के द्वारा उन शक्तियो को प्रदर्शित किया जिनसे वस्तुत विभिन्न देशो मे तथा विभिन्न समयो मे जनसख्या की वृद्धि नियन्त्रित हुई।

व्यापार पर बिना किसी विशेष कारण

एडम स्मिथ के समकालीन तथा उसके तुरन्त बाद के अर्थशास्त्रियों मे बेन्थम सबसे प्रभावशाली थे। स्वय उन्होंने अर्थशास्त्र पर थोडा ही लिखा, किन्तु उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे आग्ल अर्थशास्त्रियो के उदीयमान वातावरण को व्यवस्थित करने

---

1 ऐडम स्मिथ यह भलीभाँति जानते थे कि यद्यपि अर्थविज्ञान को तथ्यों के अध्ययन पर आधारित होना चाहिए, किन्तु वे तथ्य इतने जटिल होते हैं कि इनसे प्रत्यक्षरूप में कुछ भी नहीं सीखा जा सकता। इनको तो सतर्क विश्लेषण एवं तर्क-वितर्क द्वारा व्याख्या करनी चाहिए। जैसा कि ह्यूम (Hume) ने Wealth of Nation में कहा है "अद्भुत तथ्यों का इतना सोदाहरण चित्रण किया गया है कि इस ओर सार्वजनिक ध्यान आकर्षित होना आवश्यक है।" ठीक ऐसा ही कार्य ऐडम स्मिथ ने भी किया: वह बहुधा किसी निष्कर्ष को विस्तृत आगमन प्रणाली से सिद्ध नहीं करते। उनकी युक्तियों के आँकड़े मुख्यतया ऐसे तथ्यों पर आधारित थे जिन्हें हर एक जानता था, जो भौतिक, मानसिक तथा नैतिक थे: किन्तु उन्होने अपनी युक्तियों का अद्भुत एवं शिक्षात्मक तथ्यों द्वारा चित्रण किया था। इस प्रकार उन्होंने प्राण और शक्ति का संचार किया, और पाठकगणों को इससे ऐसा लगता था कि वे वास्तविक संसार की, न कि काल्पनिक जगत की, समस्याओं को हल कर रहे हैं। यद्यपि पुस्तक ठीक ढंग से क्रमबद्ध की हुई नहीं है, फिर भी यह विषियों पर लिखित ग्रन्थ का एक नमूना है। प्रो० निकोलसन ने The Cambr dge Modern History, खण्ड X, अध्याय XXIV में एडम स्मिथ तथा रिकार्डो की अपने अपने क्षेत्रों में उत्कृष्टता का अच्छी तरह वर्णन किया है।

में उनका योगदान था। वह अटल तर्कशास्त्री थे, और उन सब नियंत्रणों एवं बन्धनों के खिलाफ थे जिन्हें लगाने का कोई स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं होता। उनकी इन नियंत्रणों एवं बन्धनों के अस्तित्व के औचित्य को सिद्ध करने की माँगों को उस युग की परिस्थितियों से बल मिला। इंग्लैंड ने हरएक नये आर्थिक आन्दोलन के अनुसार शीघ्र ही अपने को परिवर्तित करने की क्षमता के कारण संसार में अनूठी स्थिति प्राप्त कर ली थी, जब कि मध्य यूरोप के राष्ट्र पुरानी पद्धतियों का यथावत अनुकरण करने के कारण अपने महान प्राकृतिक साधनों का लाभ उठाने से वंचित रहे। अतः इंग्लैंड के व्यापारी स्वाभाविक रूप से यह सोचने लगे कि व्यापारिक मामलों में प्रथा तथा भावना का प्रभाव हानिकारक है, और कम से कम इंग्लैंड मे तो यह प्रभाव कम हो गया है, कम हो रहा है और शीघ्र ही लुप्तप्राय हो जायेगा: बेन्थम के शिष्यों ने यह निष्कर्ष निकालने मे विलम्ब नही किया कि उन्हे प्रथा की अधिक परवाह करने की आवश्यकता नही। उनके लिए तो मनुष्य के कार्य की प्रवृत्तियों का इस कल्पना पर विवेचन करना ही पर्याप्त था कि प्रत्येक व्यक्ति सदैव इस बात के लिए जागरूक रहता है कि कौन सा ऐसा रास्ता है जिसका अनुकरण करने से उसके स्वयं के हित मे वृद्धि हो सकती है और वह इसे अपनाने के लिए स्वतंत्र है तथा इसे शीघ्र ही अपनाता है।[1]

के लगाये गये चिर प्रचलित नियंत्रणों का बेन्थम ने जो विरोध किया था उससे पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में आंग्ल अर्थशास्त्री बहुत प्रभावित हुए।

अतः पिछली शताब्दी के प्रारम्भ के आंग्ल अर्थशास्त्रियों के विरुद्ध बहुधा लगाये गये इन दोषों में कुछ सत्य निहित है कि उन्होंने पर्याप्त सावधानी के साथ यह पता लगाने की कोशिश नही की कि सामाजिक तथा आर्थिक मामलों में व्यक्तिगत कार्य के विपरीत सामाजिक कार्य का दायरा कहाँ तक बढाया जा सकता है, और यह कि उन्होंने प्रतियोगिता की शक्ति तथा इसके होने की तीव्रता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया: और इस दोषारोपण का भी कुछ आधार है कि कठोर रूपरेखा तथा स्वभाव की कटुता के कारण उनके कार्य को क्षति पहुँची है। इन कमियों का आंशिक कारण बेन्थम का प्रत्यक्ष प्रभाव था, और आंशिक कारण उस युग की भावना थी जिसके कि वह एक

---

1 उन्होंने अपने आसपास के युवक अर्थशास्त्रियों को अपनी सुरक्षा की उत्कृष्ट इच्छा से भी प्रभावित किया। वास्तव में वह एक लगनशील सुधारक थे। लोगों के विभिन्न वर्गों के बीच सभी कृत्रिम भेदभावों के वह दुश्मन थे। उन्होंने जोर के साथ यह घोषणा की कि एक व्यक्ति की प्रसन्नता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि दूसरे की, और हर प्रकार के कार्य का उद्देश्य प्रसन्नता के कुल योग में वृद्धि करना होना चाहिए। उन्होंने यह स्वीकार किया कि अन्य बातों के यथावत् रहने पर सम्पत्ति का जितना ही अधिक समान वितरण होगा इस योग में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी। तथापि फ्रान्सीसी क्रांति के आतंक से वह इतने आतंकित थे तथा सुरक्षा पर किंचित् भी आघात पहुँचने की उन्होंने इतनी बुराइयां बतायीं कि एक निर्भीक विश्लेषक होने पर भी उन्होंने अपने मन में तथा अपने शिष्यों में व्यक्तिगत सम्पति की विद्यमान प्रथा के विषय मे प्रायः अन्धविश्वासपूर्ण श्रद्धा पैदा की।

प्रदर्शक थे। किन्तु इनका आंशिक कारण यह भी था कि ऐसे लोगों ने भी अर्थशास्त्र के अध्ययन पर बहुत कुछ प्रकाश डाला जो दार्शनिक विचारों की अपेक्षा बड़े जोर से कार्य करने वाले थे।

उनमें से बहुतों की तीव्र सामान्यीकरण की ओर अभिनति थी।

§5. जिस शक्ति से मध्य युगों के अन्त के महान आर्थिक परिवर्तन के समय प्रारम्भ हुई समस्याओं पर विचार किया गया था उससे भी अधिक शक्ति के साथ नेताओं तथा सौदागरो ने द्रव्य तथा वैदेशिक व्यापार की समस्याओं पर पुनः विचार करना प्रारम्भ किया। प्रथम दृष्टि में यह सम्भव प्रतीत होता है कि वास्तविक जीवन से उनके सम्पर्क, उनके व्यापक अनुभव तथा उनके तथ्यों के विस्तृत ज्ञान के फलस्वरूप उन्हें मानव स्वभाव का विस्तृत सर्वेक्षण कर लेना चाहिए था और अपने तर्कों का व्यापक आधार ढूंढना चाहिए था, किन्तु व्यावहारिक जीवन के प्रशिक्षण और व्यक्तिगत अनुभव के कारण प्रायः उन्होंने बहुत बड़ी तीव्रता से सामान्यीकरण किया।

जहां तक द्रव्य तथा वैदेशिक व्यापार का सम्बन्ध है, उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था।

जब तक वे अपने क्षेत्र तक सीमित थे उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था। अन्य मार्गों की अपेक्षा मुद्रा का सिद्धान्त अर्थविज्ञान का वह भाग है जिसमें सम्पत्ति की इच्छा के अतिरिक्त अन्य किन्ही मानवीय प्रयोजनो के महत्व की अधिक गणना न करने से केवल थोडी ही क्षति होती है। रिकार्डो द्वारा विकसित की गयी निगमन तर्कप्रणाली की प्रतिभापूर्ण विचारधारा इस सम्बन्ध मे सुदृढ़ थी।[1]

इसके पश्चात् अर्थशास्त्रियों ने वैदेशिक व्यापार के विषय मे लिखा और उन अनेक दोषों को दूर किया जो एडम स्मिथ ने इसमें छोड दिये थे। मुद्रा के सिद्धान्त के अतिरिक्त अर्थशास्त्र का कोई भी ऐसा भाग नहीं है जहाँ शुद्ध निगमनीय तर्कप्रणाली का

---

1 बहुधा उन्हें अंग्रेजों की प्रतिमूर्ति कहा जाता है किन्तु यह ठीक नहीं है। उनकी दृढ़ रचनात्मक मौलिकता संसार के सभी देशों में अधिकतम मेधा का प्रतीक है। किन्तु निगमन के प्रति उनकी घृणा तथा गूढ़ तर्कों से आनन्दित होने का कारण उनकी आंग्ल शिक्षा नहीं है अपितु जैसा कि बेगहो ने बतलाया है, इसका कारण उनका सामी (Semite) वंश में उत्पन्न होना था। सामी जाति की प्रायः हर एक शाखा के पास गूढ़ बातों के अध्ययन करने की विशेष मेधा रही है और उनमें से अनेकों का झुकाव द्रव्य के व्यापार से सम्बन्धित सौदों में गूढ़ गणनाओं तथा इसके आधुनिक विकास के लिए रहा है। रिकार्डो की कठिन मार्गों से नये तथा अप्रत्याशित परिणामों तक बिना त्रुटि किये पहुँचने की शक्ति से कोई भी आगे नहीं बढ़ा है। किन्तु एक आंग्लवासी के लिए भी उनके मार्ग का अनुसरण करना कठिन है और प्रायः उनके विदेशी आलोचक उनकी कृति के वास्तविक भाव एवं उद्देश्य का पता न लगा सके क्योंकि वह अपने को कभी स्पष्ट नहीं करते हे: वह यह कभी भी प्रदर्शित नहीं करते कि पहले एक और फिर दूसरी परिकल्पना के आधार पर कार्य करने में उनका क्या ध्येय रहा है और न यह प्रदर्शित करते हे कि अपनी विभिन्न परिकल्पनाओं के परिणामों को उचितरूप से मिश्रित करने में अनेक प्रकार की व्यावहारिक समस्याओं का किस प्रकार हल निकाला जा सकता है। उन्होंने मूलरूप में प्रकाशन के लिए न लिखकर विशेष कठिनाई की बातों में अपने सन्देहों को, और सम्भवतः अपने कुछ

इतना अधिक उपयोग होता हो। यह सत्य है कि स्वतंत्र व्यापार की नीति के पूर्ण विवेचन में ऐसी अनेक बातों को ध्यान में रखना पड़ता है जो बिलकुल सही अर्थ में आर्थिक नहीं होतीं, किन्तु इनमें से अधिकांश यद्यपि कृषिप्रधान देशों के लिए, और विशेषकर नये देशों के लिए, महत्वपूर्ण हैं, तथापि जहाँ तक इंग्लैंड का प्रश्न है इनका महत्व अधिक नही है।

उन्होंने सांख्यिकी तथा श्रमिक वर्गों की दशा की जाँच की अवहेलना नहीं की।

इस सम्पूर्ण काल मे इंग्लैंड मे आर्थिक तथ्यों के अध्ययन की अवहेलना नही की गयी। पेट्टी, आर्थर यग, ईडन तथा अन्य विचारकों के सांख्यिकीय अध्ययन को टूक (Tooke), मैकुलोच तथा पोर्टर ने विद्वत्ता के साथ आगे बढ़ाया और यद्यपि यह सत्य हो सकता है कि उनके लेखों मे सौदागरो तथा पूंजीपतियो के प्रत्यक्ष हित को अनावश्यक रूप से प्रमुखता दी गयी हो, किन्तु अर्थशास्त्रियो के प्रभाव से श्रमिक वर्गों की दशाओं के बारे मे संसद द्वारा की गयी अनेक प्रशंसनीय जाँचो के बारे मे यही बात नही कही जा सकती। वास्तव मे इंग्लैंड में अठारहवी शताब्दी के अन्त मे तथा उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत रूप से एकत्रित किये गये आँकड़े तथा उस समय रचे गये आर्थिक इतिहासो को अर्थशास्त्र के क्रमिक ऐतिहासिक तथा सांख्यिकीय अध्ययनो का उद्गम माना जा सकता है।

किन्तु तुलनात्मक प्रणाली का उन्हें ज्ञान न था।

इसके बावजूद भी उनकी कृति मे कुछ संकीर्णता थी: यह वास्तविक रूप से ऐतिहासिक थी, किन्तु अधिकांश रूप मे "तुलनात्मक" नही थी। ह्यम, एडम स्मिथ, आर्थर यंग तथा अन्य लोग अपनी ही नैसर्गिक मेधा से तथा मौंटेस्क्यू के उदाहरण से विभिन्न युगों तथा विभिन्न देशो के सामाजिक तथ्यो की यदाकदा तुलना करने तथा उससे सबक सीखने के लिए प्रोत्साहित हुए। किन्तु किसी ने भी क्रमबद्ध रूप से इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन को नही समझा। परिणामस्वरूप जीवन के वास्तविक तथ्यों की खोज करने मे समर्थ तथा इसके लिए उद्यत होने पर भी तत्कालीन लेखको ने अव्यवस्थित रूप से कार्य किया। उन्होने उन सारे तथ्यो की अवहेलना की जिन्हें अब हम बहुत महत्व का समझते है और उन्होंने स्वयं एकत्रित किये हुए तथ्यों का भी यथासम्भव सदुपयोग नही किया। यह संकीर्णता उस समय और भी बढ़ गयी जब वे तथ्यो के संकलन के पश्चात् उनके बारे मे सामान्य तर्क-वितर्क करने लगे।

मित्रों के सन्देहों को, दूर करने के लिए लिखा था। वे लोग उनकी तरह कार्यशील व्यक्ति थे जिन्हें जीवन के तथ्यो का विस्तृत ज्ञान था: और इस कारण भी उन्होंने तथ्यों के संकलित समूह से कुछ विशेष आगमनों की अपेक्षा सामान्य अनुभव के अनुरूप व्यापक सिद्धान्तो को अधिक पसन्द किया, किन्तु उनका ज्ञान एकतरफा था: उन्होंने सौदागरो को अच्छी तरह समझा किन्तु श्रमिक वर्ग को वे न समझ सके। उनकी सद्भावनाएँ तब भी श्रमिक वर्ग के साथ थीं, और उन्होंने अपने मित्र ह्यूम के साथ यह दलील दी कि श्रमिक वर्गों को पारस्परिक सहायता के लिए एक साथ होने का ठीक ठीक वही अधिकार है जो कि उनके नियोक्ताओं को था। आगे दिये गये परिशिष्ट ऐ से तुलना कीजिए।

सरलता की इच्छा से वे कभी कभी यहाँ तक तर्क करने लगे कि मानों सम्पूर्ण मानव समाज की वही मानसिक आदतें रही हों जैसी कि शहरी लोगों की होती हैं।

§6. सरलता के लिए रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों ने बहुधा मनुष्य को एक स्थिर मात्रा की तरह समझा, और उन्होंने उसकी संख्या में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन करने का अधिक कष्ट नहीं किया। जिन लोगों को वे घनिष्ठ रूप से जानते थे वे शहरी लोग थे, और उन्होंने कभी कभी इतनी लापरवाही से विचार व्यक्त किये कि उनका बिलकुल यह अभिप्राय निकलता था कि अन्य अंग्रेज लोग भी अधिकांश रूप में उन्हीं लोगों की तरह थे जैसे कि शहर के परिचित लोग थे।

वे इस बात से परिचित थे कि अन्य देशों के निवासियों की अपनी अपनी विशेषताएँ थीं जिनका अध्ययन करना लाभदायक था। जब अन्य देशों के लोग उस अधिक अच्छे मार्ग को जान लेते थे जो कि अंग्रेज उन्हें सिखलाने को तैयार थे तो वे इस प्रकार के अन्तरों को नाममात्र का तथा निश्चितरूप से दूर किये जाने योग्य समझते थे। मस्तिष्क के जिस रुख के कारण हमारे कानूनवेत्ताओं ने हिन्दुओं (Hindoos) पर आंग्ल नागरिक कानून को लागू किया उसी ने हमारे अर्थशास्त्रियों को इस अव्यक्त कल्पना पर सिद्धान्त प्रतिपादित करने को प्रभावित किया कि संसार शहरी लोगों का ही बना हुआ है। जब तक वे द्रव्य तथा वैदेशिक व्यापार पर विचार करते रहे तब तक इस मानसिक झुकाव से बहुत कम क्षति हुई, परन्तु जब वे विभिन्न औद्योगिक वर्गों के सम्बन्धों के विषय में विचार करने लगे तब वे भटक गये। इसके कारण वे श्रम को कारीगर की दृष्टि से देखने की अपेक्षा एक वस्तु कहने लगे, और उन्होंने कारीगर की मानवीय भावनाओं, उसकी सहज-प्रवृत्ति तथा आदतों, उसकी सद्भावना को एवं विद्वेष की भावनाओं, वर्गीय ईर्ष्या एवं संलग्नता, ज्ञान के अभाव तथा स्वतंत्र एवं जोशपूर्ण कार्य की सुविधाओं के लिए कोई छूट नहीं रखी। अतः उन्होंने माँग तथा सम्भरण की शक्तियों को वास्तविकता की अपेक्षा कहीं अधिक यांत्रिकी तथा नियमित बताया: और उन्होंने लाभ तथा मजदूरी के सम्बन्ध में कुछ नियम निर्धारित किये जो कि इंग्लैंड में स्वयं उनके समय में भी वास्तव में चरितार्थ न हो सके।[1]

---

1 जहाँ तक मजदूरी का सम्बन्ध है उन्होंने अपने ही अध्ययन क्षेत्र से जो निष्कर्ष निकाले उनमें भी कुछ तर्क सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियों के कारणों का पता लगाने पर यह ज्ञात होता है कि इनका कारण विचार व्यक्त करने की असावधानी ही है। किन्तु जिन लोगों को अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन की बहुत कम परवाह थी, उन्होंने इन त्रुटियों को तेजी से पकड़ा और श्रमिक वर्गों को अपने स्थान पर सीमित रखने के लिए ही इसके सिद्धान्त को उद्धृत किया। शायद ही अर्थशास्त्र की अन्य किसी विचार-धारा को इतना आघात पहुँचा होगा जितना आर्थिक सिद्धान्तों को सरल बनाने की घोषणा करने वाले 'पिछलग्गुओं' (यह शब्द इन लोगों के लिए जर्मनी में प्रयोग किया जाता है) से हुआ जिन्होंने बिना आवश्यक शर्तों के ही इन सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। कुमारी मार्टीन्यू (Martineau) ने फैक्टरी अधिनियमों के विरुद्ध कड़े शब्दों में लिखे गये अपने लेखों द्वारा इन कथनों को प्रभावित किया: और सीनियर ने भी इसी दिशा में लिखा। किन्तु कुमारी मार्टीन्यू वास्तविक अर्थ में एक अर्थशास्त्री नहीं

किन्तु उनकी सबसे बड़ी भूल यह थी कि वे उद्योग की आदतों तथा संस्थाओं में सम्भावित परिवर्तनों का अनुमान न लगा सके। विशेषकर उन्होंने यह नही सोचा कि निर्धनों की गरीबी उस कमजोरी तथा अकुशलता का मुख्य कारण है जिनसे वे निर्धन हुए है: उन्हे आधुनिक अर्थशास्त्री की भाँति यह विश्वास नही था कि श्रमिक वर्गों की दशाओ मे अनेक सुधार हो सकते है।

मनुष्य के आचरण की उसकी परिस्थितियों पर निर्भरता के लिए उन्होंने अधिक गुंजाइश नहीं रखी।

समाजवादियों ने मनुष्य की परिपूर्णता का दावा किया था। किन्तु उनके विचार बहुत कम ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित थे, और इन्हे इतनी अधिक मात्रा मे व्यक्त किया गया था कि उस युग के व्यवहार-कुशल अर्थशास्त्रियो ने इन्हे घृणा की दृष्टि से देखा। समाजवादियों ने उन सिद्धान्तो का अध्ययन नही किया था जिनकी कि उन्होंने आलोचना की और इस बात को प्रदर्शित करने मे कोई कठिनाई नही हुई कि उन्होने समाज के वर्तमान आर्थिक सगठन के स्वरूप तथा इसकी कार्यक्षमता को नही समझा था। अतएव अर्थशास्त्रियो ने उनके किसी भी सिद्धान्त की सावधानी के साथ जाँच करने की कोशिश नही की, और मानव स्वभाव के बारे मे तो उन्होंने सबसे कम अनुमान लगाया।[1]

किन्तु समाजवादी ऐसे लोग थे जिन्होने उत्कट रूप से यह अनुभव किया था, और जिन्हे मनुष्य के कार्य के उन गुप्त स्रोतो की कुछ जानकारी थी जिन पर अर्थशास्त्रियों ने ध्यान नही दिया। उनकी असम्बद्ध रचनाओ मे ऐसे सूक्ष्म एव विचारपूर्ण सलाहो का समावेश था जिनसे दार्शनिको तथा अर्थशास्त्रियो को बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी थी। धीरे धीरे उनका भी प्रभाव स्पष्ट होने लगा। काम्टे उनके बहुत ऋणी थे और जॉन स्टुअर्ट मिल के जीवन मे, जैसा कि वे अपनी आत्मकथा मे बतलाते है, उन्ही के अध्ययन करने से परिवर्तन उत्पन्न हुआ।

थीं: उन्होंने यह स्वीकार किया कि आर्थिक सिद्धान्तों को प्रदर्शित करने के लिए कहानी लिखने के पूर्व उन्होंने एक बार में अर्थशास्त्र की किसी पुस्तक का एक से अधिक अध्याय नहीं पढ़ा, क्योंकि उन्हें यह डर था कि कहीं ऐसा न हो कि इससे उनके मस्तिष्क पर आवश्यकता से अधिक दबाव पड़े। और अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होने यह शंका प्रकट की कि क्या अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में (जैसा उन्होंने समझा था) कोई सत्यता है। सीनियर ने अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ करते ही इन अधिनियमो के विरुद्ध लिखा। कुछ वर्षों बाद उन्होंने औपचारिक रूप से अपनी पहले की धारणाओ को बदल दिया। कभी कभी यह कहा गया है कि मैकुलोच इन अधिनियमों के विरोधी थे, किन्तु वास्तव में उन्होंने हृदय से इनका पक्ष लिया। सब-कमिश्नरो में टूक (Tooke) सबसे प्रमुख थे जिन्होंने खानों में महिलाओं तथा बच्चों के रोजगार पर लिखी गयी रिपोर्ट से इसके विरुद्ध ठोस कदम उठाने के लिए जनमत को भड़काया।

1 माल्थस को जिन्होने गाडविन के निबन्ध में दी गयी सलाह के अनुसार जनसंख्या के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किये थे आंशिक रूप से भिन्न समझना चाहिए। किन्तु वह न तो वास्तविक रूप से रिकार्डो की विचारधारा को अपनाने वालों में से

आंशिक रूप से प्राणिविज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों के प्रभाव के कारण अर्थशास्त्रियों में मानवीय स्वभाव की विनम्रता को ध्यान में रखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

§7. सम्पत्ति के वितरण की महत्वपूर्ण समस्या के सम्बन्ध में आधुनिक दृष्टिकोण की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ मे विद्यमान दृष्टिकोण से तुलना करने पर हम देख चुके है कि सभी बड़े परिवर्तनो मे तथा तर्क की वैज्ञानिक शुद्धता मे किये गये सभी प्रकार के सुधारो के अतिरिक्त इन पर विचार करने के ढग मे भी आधारभूत परिवर्तन हुए है क्योकि जहां प्राचीन अर्थशास्त्रियो के तर्क के अनुसार मनुष्य के आचरण तथा उसकी कार्यक्षमता की मात्रा को निश्चित समझा जा सकता था, आधुनिक अर्थशास्त्री निरन्तर यह मानते आये है कि यह उन परिस्थितियो की देन है जिनमे मनुष्य रहता आया है। अर्थशास्त्र के इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन का आंशिक कारण यह तथ्य है कि पिछले पचास वर्षो म मानव-स्वभाव मे इतनी अधिक तेजी से परिवर्तन हुए है कि इन इन पर ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसका आंशिक कारण व्यक्तिगत लेखकों, समाजवादियो तथा अन्य लोगो का प्रत्यक्ष प्रभाव रहा है, और आंशिक रूप से प्राकृतिक विज्ञानो की कुछ शाखाओ म इसी प्रकार के परिवर्तन के अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण भी इसमे परिवर्तन हुए है।

पिछली शताब्दी के आरम्भ मे विज्ञानो के गणित-भौतिक वर्ग मे क्रमशः प्रगति हो रही थी। इन विज्ञानो मे एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्नता होने पर भी यह बात सामान्य रूप मे पायी गयी कि इनका विषयसार सभी देशो मे तथा सभी युगो मे स्थिर तथा अपरिवर्तित रहा है। विज्ञान की प्रगति से लोग परिचित थे, किन्तु विज्ञान के विषयसार का विकास करना उनके लिए अनोखी चीज थी। शताब्दी के व्यतीत होने के साथ साथ विज्ञानो के प्राणिविज्ञान सम्बन्धी वर्ग का धीरे धीरे प्रभाव बढ़ रहा था, और लोग जीव-सम्बन्धी विकास के विषय मे अधिक स्पष्ट विचार प्राप्त कर रहे थे। वे यह सोच रहे थे कि यदि किसी विज्ञान का विषयसार विकास की अनेक अवस्थाओ से होकर बढ़ता है तो जो नियम एक अवस्था मे लागू होते थे वे शायद ही बिना किसी संशोधन के कभी दूसरी अवस्था मे भी लागू होगे। विज्ञान के विषयसार म होने वाली प्रगति के अनुसार ही विज्ञान के नियमो मे प्रगति होनी चाहिए। इस नये विचार का प्रभाव शनै. शनै. उन विज्ञानो तक फैल गया जो मनुष्य से सम्बन्धित है। और गटे (Goethe), हेगल (Hegel), कॉम्टे तथा अन्य लोगो की कृतियों म भी यह प्रभाव देखने को मिलता है।

अन्त मे प्राणिविज्ञान के विचार मे और भी आगे प्रगति हुई: उसके अनुसन्धानो ने विश्व को उसी प्रकार आकर्षित किया जैसे कि प्राचीन काल मे भौतिक शास्त्र के अनुसन्धानो ने किया था। नैतिक तथा ऐतिहासिक विज्ञानो के रूप मे उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। इस सामान्य प्रगति मे अर्थशास्त्र ने भी भाग लिया, और यह

और न एक कट्टर व्यक्तिवादियो मे से हो। थ। आधी शताब्दी पश्चात् बस्टीयट (Bastiat) ने, जो कि एक विशद लेखक थे, किन्तु गम्भीर विचारक नहीं, इस असंगत सिद्धान्त को माना कि प्रतियोगिता के प्रभाव मे समाज की प्राकृतिक व्यवस्था न केवल व्यावहारिक रूप से परिणत किये जा सकने के कारण अपितु इसलिए भी सबसे अच्छी है कि सैद्धान्तिक रूप से इस पर विचार किया जा सकता है।

प्रतिदिन मानव जीवन की विनम्रता की ओर अधिकाधिक ध्यान दे रही है तथा इसमें मनुष्य के आचरण द्वारा सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रचलित प्रणालियों को प्रभावित करने एवं इनसे प्रभावित होने के ढंग पर भी अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इस नयी प्रगति की ओर सबसे पहले संकेत जॉन स्टुवर्ट मिल की Principles of Political Economy में प्रशंसनीय था।[1]

जॉन स्टुवर्ट मिल। अर्वाचीन आंग्ल अर्थशास्त्री

मिल के अनुयायियों ने मिल की तरह रिकार्डो के निकटतम अनुयायियों द्वारा अपनायी गयी स्थिति से अलग होने का प्रयत्न जारी रखा। अर्थशास्त्र में यान्त्रिकी अंश के स्थान पर मानवीय अंश अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। जीवित विचारकों का जिक्र न करने पर भी क्लिफ लसली की ऐतिहासिक जाँचों में तथा बेगहो, कैरनेस, ट्वॉइनबी तथा अन्य विचारकों की सर्वतोमुखी कृति में नया रुख दृष्टिगोचर हो रहा है: किन्तु यह सबसे अधिक जेवन्स की कृति में दृष्टिगोचर होता है जिसमें उच्चतम कोटि के विविध प्रकार के गुणों के अनूठे सम्मिश्रण के कारण इस कृति ने आर्थिक इतिहास में एक स्थायी तथा विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है।

आधुनिक आंग्ल कृति की विशेषताएँ।

सामाजिक कर्तव्य का उच्चतर विचार सर्वत्र फैल रहा है। संसद, मुद्रणालय तथा व्याख्यान-मंच में मानवता की भावना अधिक स्पष्ट तथा अधिक उत्कृष्ट प्रतीत होती है। मिल तथा उनका अनुसरण करने वाले अर्थशास्त्रियों ने इस विचार को आगे बढ़ाने में सहायता पहुँचायी, और फिर इन्हें भी इससे आगे बढ़ने में सहायता मिली।

---

1 जेम्स मिल ने अपने लड़के को बैंथम तथा रिकार्डो के संकीर्ण मतों की शिक्षा दी थी, और उनमें स्पष्टता तथा निश्चितता के लिए मानसिक उत्साह जागृत किया। सन् 1830 में जॉन मिल ने आर्थिक प्रणाली पर एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने विज्ञान के गूढ़ रहस्यों की अधिक सूक्ष्म रूपरेखा देने का विचार प्रकट किया। उन्होंने रिकार्डो की इस अव्यक्त कल्पना का सामना किया कि अर्थशास्त्री को सम्पत्ति की इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। उनका यह मत था कि जब तक इसे स्पष्ट रूप में व्यक्त न किया जाय तभी तक यह भयावह है। उन्होंने स्वयं एक ऐसा ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा की जो जानबूझ कर और असंदिग्ध रूप से इस पर आधारित हो। किन्तु उन्होंने इस प्रण को पूरा नहीं किया। सन 1848 ई० में महान आर्थिक कृति को प्रकाशित करने के पूर्व उनके सोच-विचार के ढंग में परिवर्तन हो गया था। उन्होंने इसे Principles of Political Economy, with some of their Applications to Social Philosophy नाम दिया। (यह महत्वपूर्ण है कि उन्होंने इसे Branches of Social Philosophy नाम न दिया; इंग्राम (Ingram) की History, पृष्ठ 154 से तुलना कीजिए) उन्होंने उन तर्कों को कि मनुष्य का एकमात्र उद्देश्य सम्पत्ति प्राप्त करना है या नहीं, किसी ठोस आधार पर पृथक् करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके रुख में परिवर्तन उनके चारों ओर होने वाले महान परिवर्तनों का एक अंश था, यद्यपि अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का उन्हें पूरी तरह पता भी न था।

आंशिक रूप से इस कारण तथा आंशिक रूप से ऐतिहासिक विज्ञान की आधुनिक खोज के कारण उनके द्वारा तथ्यों का किया गया अध्ययन अधिक व्यापक तथा अधिक दार्शनिक रहा है। यह सत्य है कि पहले के कुछ अर्थशास्त्रियों का ऐतिहासिक तथा सांख्यिकी कार्य शायद ही कभी पीछे रहा हो। किन्तु अधिकांश जानकारी जो उस समय उनकी पहुँच के परे थी, इस समय हर एक को सुलभ है, और वे अर्थशास्त्री भी जिन्हें व्यावहारिक व्यवसाय के सम्बन्ध मे मैकुलौच के समान जानकारी नहीं थी और न उनकी तरह जिनका व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन था, जीवन के वास्तविक तथ्यों से आर्थिक सिद्धान्त के सम्बन्धों का उनसे भी अधिक व्यापक तथा अधिक स्पष्ट अनुमान लगाने मे समर्थ हुए। इसमे उन्हे इतिहास सहित सभी विज्ञानों की प्रणालियों मे होने वाले सामान्य सुधारो से सहायता मिली है।

रूढ़िवादी सिद्धान्त का परित्याग, विश्लेषण का विकास।

अत: हर प्रकार से आर्थिक तर्कप्रणाली अब पहले की अपेक्षा अधिक यथार्थ है किसी भी प्रकार की खोज के सम्बन्ध मे अपनायी जाने वाली मान्यताओ को पहले की अपेक्षा अधिक ठोस यथार्थता के साथ व्यक्त किया जाता है। किन्तु विचारों की इस अधिक यथार्थता का आंशिक रूप से क्षयकारी प्रभाव पड़ा है। इससे यह प्रदर्शित हो रहा है कि सामान्य तर्क के पुरातन प्रयोग अब लागू नही होते, क्योकि उन सभी मान्यताओं पर विचार करने तथा यह देखने की कोई भी परवाह नही की गयी है कि विशेष विवेचन की दशाओ मे ये मान्यताएँ लागू होती है या नही। परिणामस्वरूप वे अनेक रूढ़िवादी सिद्धान्त नष्ट हो गये जो केवल असावधानी से व्यक्त किये जाने के कारण सरल प्रतीत होते थे, परन्तु इसी कारण एक एक पक्ष को लेकर विवाद करने वाले लोगो (मुख्यरूप से पूँजीपति वर्ग के लोगों) के लिए यह एक शस्त्रागार बन गया जिससे वे झगड़ा-फसाद करने की सामग्री पाते रहे। इस क्षयकारी कार्य के कारण प्रथम दृष्टि मे ऐसा लगता है कि अर्थशास्त्र के सामान्य तर्क का महत्व कम हो गया है किन्तु वास्तव मे परिणाम इसके विपरीत हुआ है। इसने धीरे धीरे तथा धैर्य के साथ निर्माण की जाने वाली और भी नयी तथा अधिक मजबूत मशीनो के लिए आधार तैयार किया। इसने हमे जीवन के प्रति अधिक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने, धीमी गति होने पर भी अधिक निश्चितता के साथ आगे बढ़ने के योग्य बनाया है और इसी से आर्थिक समस्याओं के कारण उत्पन्न होने वाली सबसे पहले कठिनाइयों के साथ संघर्ष करने वाले भले तथा महान व्यक्तियों की अपेक्षा हम अधिक वैज्ञानिक तथा बहुत कम रूढ़िवादी बन पाये है। इन लोगों के अग्रगामी कार्य के फलस्वरूप हमारा मार्ग अधिक सरल हो गया है।

इस परिवर्तन को वैज्ञानिक प्रणाली के विकास की प्रारम्भिक अवस्था से, जिसमे परम्परा से प्रकृति के कार्यों को सरल तथा संक्षिप्त वाक्यो मे व्यक्त किया जाता था उस उच्चतर अवस्था की ओर और अधिक बढ़ना माना जा सकता है जिसमे उनका अधिक सतर्कता के साथ अध्ययन किया जाय और उनका वास्तविक रूप मे प्रतिनिधित्व हो, भले ही ऐसा करने मे सरलता तथा निश्चितता की, और यहाँ तक की बाह्य स्पष्टता की भी, कुछ क्षति हो जाय। इसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र मे सामान्य तर्कप्रणाली की अधिक तीव्र प्रगति हुई, और इस पीढ़ी मे हर कदम पर विपरीत आलोचना होने पर भी यह

तर्कप्रणाली उस अवस्था की अपेक्षा अधिक दृढ़ है जब यह अपनी ख्याति की चरम अवस्था पर था और इसकी सत्ता को बहुत कम चुनौती दी जाती थी।

अब तक हमने हाल में हुई प्रगति को केवल इंग्लैंड के दृष्टिकोण से ही देखा: किन्तु इंग्लैंड में हुई प्रगति समूचे पाश्चात्य जगत मे फैली हुई व्यापक गति का केवल एक पहलू है।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री।

§8. विदेशों में अंग्रेज अर्थशास्त्रियो के अनेक अनुयायी तथा आलोचक हुए। अठारहवी शताब्दी मे फ्रान्सीसी विचारधारा मे वहीं के महान विचारको द्वारा निरन्तर प्रगति की गयी, और उन्होंने विशेषकर मजदूरी के सम्बन्ध मे, द्वितीय वर्ग के आग्ल अर्थशास्त्रियों में सामान्यता पायी जाने वाली अनेक त्रुटियो एव भ्रमो को दूर किया। से (Say) के समय से लेकर इस फ्रान्सीसी विचारधारा ने बड़ा ही उपयोगी कार्य किया है। इस विचारधारा ने कुर्नो जैसा उच्चतम कोटि का मेधावी व रचनात्मक विचारक उत्पन्न किया, जब कि फोरियर (Fourier) सेण्ट सीमन, प्राउधन तथा लुई ब्लैंक ने समाजवाद के विषय मे अनेक बहुत महत्वपूर्ण तथा बहुत सी उच्छृखल सलाहे दी।

अमेरिकी विचारधारा

हाल ही मे सबसे अधिक सापेक्षिक प्रगति अमेरिका मे हुई है। एक पीढी पूर्व 'अमेरिकी विचारधारा' उन संरक्षणवादी अर्थशास्त्रियो की बनी थी जो केरे के नेतृत्व में काम करते थे। परन्तु अब अत्यधिक विचारशील अर्थशास्त्रियों की नयी विचारधाराएँ उत्पन्न हो रही हैं, और ऐसे लक्षण दिखायी देते है कि आर्थिक विचारों मे अमेरिका उसी प्रमुख स्थान को प्राप्त करना चाहता है जो उसने आर्थिक व्यवहार मे पहले से ही प्राप्त कर लिया है।

जर्मनी के अर्थशास्त्री।

हालैंड तथा इटली में, जो आर्थिक विज्ञान के पुराने गढ रहे है, अब नये जोश के चिह्न दिखायी दे रहे हैं। इससे भी विशेष आस्ट्रिया के अर्थशास्त्रियों का ओज-पूर्ण एवं विश्लेपणात्मक कार्य है जो सभी देशो का बहुत कुछ ध्यान आकर्षित कर रहा है।

किन्तु सब कुछ देखते हुए हाल में इस महाद्वीप मे सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य जर्मनी मे हुआ है। ऐडम स्मिथ के नेतृत्व को स्वीकार करते हुए भी जर्मनी के अर्थशास्त्री अन्य किसी की अपेक्षा रिकार्डो की विचारधारा के आत्म-विश्वास तथा अनुदार संकीर्णता से अधिक भिन्न थे। विशेषकर वे स्वतन्त्र व्यापार के आग्ल अधिव-क्ताओं की इस गुप्त मान्यता का विरोध करते रहे कि इग्लैंड के सामान एक विनिर्माण करने वाले देश के सम्बन्ध में जो बाते सत्य निकली हैं वे बिना किसी संशोधन के कृषि-प्रधान देशों के सम्बन्ध में लागू होती हैं।

लिस्ट।

लिस्ट की अद्भुत तथा राष्ट्रीय उत्साह ने इस परिकल्पना (presumpt on) का खण्डन किया, और यह प्रदर्शित किया कि रिकार्डो की विचारधारा को मानने वालों ने स्वतंत्र व्यापार के परोक्ष प्रभावों पर बहुत थोडा ही ध्यान दिया है। जहां तक इंग्लैंड का प्रश्न था इनकी अवहेलना करने से कोई अधिक क्षति नहीं हो सकती थी क्योंकि ये वहाँ मुख्य रूप से लाभदायक थे, अतएव इनसे इनके प्रत्यक्ष प्रभावों का महत्व भी बढ़ गया। किन्तु लिस्ट ने यह प्रदर्शित किया कि जर्मनी में, और इससे भी अधिक

अमेरिका में, इसके अनेक प्रत्यक्ष प्रभाव बुरे थे, और उन्होंने यह तर्क दिया कि वे बुराइयाँ इसके प्रत्यक्ष लाभों से बढ़कर थी। इनमे से उनके अनेक तर्क अमान्य थे, किन्तु कुछ मान्य भी थे। चूंकि आग्ल अर्थशास्त्रियों ने उन पर ध्यानपूर्वक विचार-विमर्श करने की उपेक्षा की, अतः योग्य सार्वजनिक भावना वाले लोग लोकप्रिय आन्दोलन के उद्देश्य से उनके युक्तिसगत तर्कों से प्रभावित होकर उनके उन अन्य अवैज्ञानिक तर्कों के प्रयोग से सहमत हो गये जो श्रमिक वर्गों को अधिक प्रभावित कर सकते थे।

अमेरिकी विनिर्माताओं ने लिस्ट को अपना अधिवक्ता स्वीकार किया: और उनके सर्वप्रिय ग्रन्थ का विस्तृत विवरण लिस्ट के यश की शुरुआत थी तथा अमेरिकी संरक्षणवादी सिद्धान्तों का क्रमबद्ध पक्षपोषण था।[1]

जर्मन निवासियों ने राष्ट्रवाद के विरुद्ध एक ओर व्यक्ति के दावों पर तथा दूसरी ओर सार्वभौमिकता

जर्मन निवासी यह कहना पसन्द करते है कि कृषि-अर्थशास्त्रियों ने तथा एडम-स्मिथ की विचारधारा को मानने वालो ने राष्ट्रीय जीवन को कम महत्व दिया। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के महत्व को एक ओर स्वहित व्यक्तिवाद के लिए तथा दूसरी ओर शिथिल उदार सार्वभौमिकता के लिए परित्याग करना चाहा। वे यह अनुरोध करते थे कि लिस्ट ने देशभक्ति की भावना को उकसाने मे बडी सेवा अर्पित की, जो व्यक्तिवाद की अपेक्षा अधिक उदार है और सार्वभौमिकता की अपेक्षा अधिक दृढ तथा निश्चित है। यह एक सन्देहजनक विषय है कि कृषि-अर्थशास्त्रियो तथा आग्ल अर्थशास्त्रियो की सार्वभौमिक सहानुभूति उतनी ही दृढ रही है जितनी कि जर्मन निवासी सोचते है। किन्तु ऐसा कोई प्रश्न नहीं उठता कि जर्मनी के हाल ही के राजनीतिक इतिहास ने वहाँ के अर्थशास्त्रियो को राष्ट्रवाद की दिशा मे विचार करने के लिए प्रभावित

---

1 इस पर पहले ही विचार किया जा चुका है कि लिस्ट ने विभिन्न देशों के एक साथ विकास के लिए आधुनिक अन्तःसंचार की प्रवृत्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। उनकी देशभक्ति के जोश ने अनेक प्रकार से उनके वैज्ञानिक निर्णय को बदल दिया। किन्तु जर्मन निवासियों ने उनके इन तर्कों को ध्यानपूर्वक सुना कि हर एक देश को विकास की उन्हीं अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है जिनसे इंग्लैंड को गुजरना पड़ा था और इंग्लैंड ने अपने विनिर्माताओं को कृषि-अवस्था से विनिर्माण की अवस्था में प्रवेश करते समय संरक्षण दिया। उनमें सत्य के लिए स्वाभाविक इच्छा थी। उनकी पद्धति जर्मनी के सभी विद्यार्थियों द्वारा और विशेषकर इतिहासकारों तथा कानूनवेत्ताओं द्वारा अपनायी जाने वाली तुलनात्मक अध्ययन पद्धति से मिलती जुलती थी, और उनके विचारों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत अधिक रहा है। उनकी Outlines of a New system of Political Economy, सन् 1827 ई० में फिलाडेल्फिया में प्रकाशित हुई, और उनकी Das Nationale System der politischen Ekonomie सन् 1840 ई० में प्रकाशित हुई। यह एक विवादजनक विषय है कि केरे लिस्ट के बहुत ऋणी थे। कुमारी हिर्स्ट (Hirst) द्वारा लिखित Life of List, अध्याय IV देखिए। उनके सिद्धान्तों के सामान्य सम्बन्धों के बारे में नीज की Pol. Ek, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 440, इत्यादि देखिए।

किया। चारों ओर से शक्तिशाली एवं लड़ाई के लिए उद्यत सेनाओं से घिरे हुए होने के कारण जर्मनी का अस्तित्व केवल दृढ राष्ट्रीयता की भावना होने से ही रह सकता था। जर्मनी के लेखकों ने बड़ी उत्सुकता के साथ, शायद आवश्यकता से भी अधिक उत्सुकता के साथ, इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक सम्बन्धों मे व्यक्तियों की अपेक्षा राष्ट्रों के बीच परमार्थवादी भावनाओं का क्षेत्र अधिक संकुचित होता है।

के दावोंपर जोर दिया।

राष्ट्रीयता के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी जर्मन अर्थशास्त्री अध्ययन के प्रति प्रशंसनीय रूप से अन्तर्राष्ट्रीय हैं। उन्होंने आर्थिक तथा सामान्य इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। उन्होंने विभिन्न देशो तथा विभिन्न युगों के सामाजिक तथा औद्योगिक विषयो का भी साथ साथ जिक्र किया है, उनको इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि वे एक-दूसरे पर प्रकाश भी डालते हैं तथा व्याख्या भी करते है और उन्होंने उन सबका न्यायशास्त्र के सांकेतिक इतिहास के सम्बन्ध मे अध्ययन किया है।[1] इस विचारधारा के कुछ सदस्यों का कार्य अतिशयोक्ति के कारण तथा रिकार्डो की विचारधारा के कुछ तर्कों (जिनके प्रवाह तथा प्रयोजन को वे स्वय भी नही समझ सके) के प्रति सकीर्ण घृणा की भावना होने के कारण मलिन पड़ गया है: इसके फलस्वरूप बहुत ही अप्रिय तथा नीरस विवाद उत्पन्न हो गया। किन्तु शायद ही कोई ऐसा अपवाद होगा जब इस विचारधारा के प्रमुख अर्थशास्त्रियो मे यह सकीर्णता न रही हो। उन्होंने तथा उनके साथियो ने आर्थिक आदतो तथा सस्थाओ के इतिहास का पता लगाने तथा इनके वर्णन करने के विषय पर अन्य देशों मे जो कार्य किया है उसका अधिक मूल्य लगाना कठिन होगा। यह हमारे इस युग की अनेक महान उपलब्धियों मे से है, और इससे हमारी वास्तविक सम्पत्ति मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। इसने अन्य किसी चीज की अपेक्षा हमारे विचारको को व्यापक बनाने, अपने स्वतः के ज्ञान मे वृद्धि करने, तथा मनुष्य के नैतिक एवं सामाजिक जीवन के विकास और उस दैवी सिद्धान्त को समझने मे सहायता पहुँचायी जिसका कि वह एक प्रतीक है।

तुलनात्मक पद्धति द्वारा तथा सामान्य इतिहास एवं न्यायशास्त्र के सम्बन्ध में आर्थिक इतिहास के अध्ययन में उनका महान कार्य।

उन्होंने विज्ञान के ऐतिहासिक वर्णन पर तथा जर्मनी के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की दशाओं, विशेषकर जर्मनी की नौकरशाही के आर्थिक कर्तव्यों, पर इसे मुख्यतया लागू करने की कोशिश की। किन्तु हर्मन की अद्भुत मेघा से प्रभावित होकर उन्होंने बड़ा सतर्क एव सूक्ष्म विश्लेषण किया जिससे हमारे ज्ञान मे काफी वृद्धि हुई और आर्थिक सिद्धान्त की सीमाओं का काफी विस्तार हुआ।[2]

आर्थिक सिद्धान्त तथा विश्लेषण म उनका कार्य।

---

1 इस महाद्वीप के अन्य देशों की भाँति जर्मनी में भी इस कार्य की उत्कृष्टता का कारण आंशिक रूप में आजीविका कमाने के जरियो में कानून तथा आर्थिक अध्ययनों का मिश्रण माना जा सकता है। वेग्नर ने अर्थशास्त्र में जो अंशदान दिया है उसमें इसका ज्वलंत उदाहरण मिलता है।

2 इन मामलों में अंग्रेज, जर्मनीवासी, आस्ट्रियावासी और वस्तुतः हर एक राष्ट्र वास्तविकता से अधिक दावा करता है। इसका आंशिक कारण यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के अपने बौद्धिक गुण होते हैं, और वह विदेशी लेखों में इनका अभाव पाता है। उनकी

जर्मन समाजवाद।

जर्मन अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों ने समाजवाद तथा राष्ट्रीय कार्यों के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। ससार ने समाज के कल्याण के लिए स्वामित्व के प्रचलित अधिकारो को बहुत कम ध्यान मे रखते हुए विश्व की सम्पत्ति का उपयोग करने का सबसे पक्का आधुनिक विचार जर्मनी के लेखकों, जिनमें से कुछ यहूदी वंश के थे, से ही ग्रहण किया। वास्तव मे अधिक निकट से अवलोकन करने पर यह पता लगता है कि उनका कार्य उतना मौलिक तथा उतना सूक्ष्म नही है जितना कि प्रथम दृष्टि मे दिखायी देता है: किन्तु इसकी तर्कपूर्ण विलक्षणता इसकी अद्भुत शैली, तथा कुछ दशाओ मे सुविस्तृत क्रम-भग ऐतिहासिक ज्ञान के कारण इसे बहुत शक्ति मिलती है।

क्रान्तिकारी समाजवादियो के अतिरिक्त जर्मनी मे ऐसे विचारको का एक बहुत बड़ा समुदाय है जो आधुनिक दशा मे व्यक्तिगत सम्पत्ति की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को अपर्याप्त प्रदर्शित करने का प्रयास कर रहा है, और व्यापक वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आधारो पर व्यक्ति के विरुद्ध समाज के अधिकारो पर पुनर्विचार करने का अनुरोध कर रहा है। हाल ही मे जर्मनी की राजनीतिक एव सैनिक संस्थाओं की अंग्रेजो की अपेक्षा सरकार पर अधिक, और व्यक्तिगत उद्यम पर कम, विश्वास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति बढ़ गयी है। और समाज सुधार से सम्बन्धित सभी प्रश्नों मे आंग्ल तथा जर्मन राष्ट्रो को एक दूसरे से बहुत कुछ सीखना है।

इस बात की कुछ आशंका है कि सतर्क वैज्ञानिक विश्लेषण के अत्यन्त कठोर तथा कम प्रचलित कार्य की अवहेलना हो सकती है।

किन्तु इस समय के ऐतिहासिक ज्ञान तथा सुधारवादी उत्साह मे यह आशंका लगी रहती है कि कही आर्थिक विज्ञान के एक कठिन किन्तु महत्वपूर्ण भाग की अवहेलना न हो जाये। अर्थशास्त्र की ख्याति के कारण कुछ मात्रा मे सतर्क एवं कठिन तर्क की अवहेलना हुई है। विज्ञान के प्राणिविज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण की बढ़ती हुई प्रधानता के कारण आर्थिक नियम एव माप के विचारो का स्थान गौण हो गया, जैसे कि मानों वे विचार इतने कठिन तथा बेलोच थे कि इनको वर्तमान तथा निरन्तर बदलते हुए आर्थिक गठन मे लागू नही किया जा सकता था। किन्तु प्राणिविज्ञान से हमें यह शिक्षा मिलती है कि रीढदार गठन सबसे अधिक विकसित होता है। आधुनिक आर्थिक गठन रीढदार है और जो विज्ञान इससे सम्बन्ध रखता है उसको बेरीढदार नही होना चाहिए। इसमे कोमलता एव भावुकता के उस स्पर्श का होना आवश्यक है जो इसे संसार के वास्तविक रूप के अधिक अनुकूल बनाता है, किन्तु तब भी इसकी रीढ़ की हड्डी सतर्क तर्कप्रणाली एव विश्लेषण की होनी चाहिए।

कमियों के विषय में अन्य लोग जो शिकायतें करते हैं उन्हें यह भलीभाँति नहीं समझता। किन्तु इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि किसी नये विचार का सामान्यतया धीरे धीरे विकास होने और बहुधा अनेक देशों में इसके साथ साथ विकास होने के कारण प्रत्येक देश इसे अपना ही कहने का दावा कर सकता है, और इस प्रकार हर एक देश सम्भवतया दूसरे की मौलिकता को कम समझता है।

परिशिष्ट (ग)[1]

अर्थशास्त्र का विषयक्षेत्र तथा इसकी प्रणाली

§1. कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनकी कॉम्टे की भाँति यह विचारधारा है, कि समाज में मनुष्य के कार्य के किसी लाभदायक अध्ययन के क्षेत्र का सम्पूर्ण सामाजिक विज्ञान के साथ सह-अस्तित्व होना चाहिए। वे यह तर्क करते है कि सामाजिक जीवन के सभी पहलू इतने घनिष्ठरूप से सम्बन्धित है कि उनमे से किसी एक का विशेष अध्ययन करना निरर्थक होगा, और वे अर्थशास्त्रियों से यह आग्रह करते है कि वे विभिन्न प्रकार से कार्य करना समाप्त कर दे और एक एकीकृत एव सभी पहलुओं पर विचार करने वाले सामाजिक विज्ञान की सामान्य प्रगति की ओर अपने को लगावें। किन्तु समाज मे मनुष्य के कार्यों का विस्तार इतना अधिक फैला हुआ है और इतने विविध प्रकार का है कि किसी एक बौद्धिक कार्य से इसका विश्लेषण एव स्पष्टीकरण करना कठिन है। स्वयं कॉम्टे तथा हर्बर्ट स्पेन्सर ने इस सम्बन्ध मे सबसे उत्कृष्ट ज्ञान तथा महान मेधा प्रदर्शित की है। उन्होंने अपने विस्तृत सर्वेक्षणों तथा ज्ञानसूचक सकेतों से विचारों के क्षेत्र में युगान्तर सो ला दिया है, किन्तु इससे उनके द्वारा एक एकीकृत सामाजिक विज्ञान के निर्माण का प्रारम्भ नही हुआ।

अनुभव तथा भौतिक विज्ञान के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि एक एकीकृत सामाजिक विज्ञान चाहे जितना ही वांछनीय हो, असम्पादनीय होता है।

जब तक यूनान की कुशाग्र किन्तु अधीर मेधा से सभी भौतिक विषयों के स्पष्टीकरण के लिए एकमात्र आधार ढूंढ निकालने का आग्रह किया गया तब तक भौतिक विज्ञानों में प्रगति मन्द रही, और आधुनिक युग मे उनकी तीव्र प्रगति का कारण यह है कि अब व्यापक समस्याओं के प्रत्येक पहलू पर अलग से विचार किया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि प्रकृति की सभी शक्तियों मे एकता विद्यमान है, किन्तु इसे ढूंढ निकालने में जो भी प्रगति हुई है वह निरन्तर विशिष्ट प्रकार के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान पर निर्भर रही है। प्रकृति के समूचे क्षेत्र के यदाकदा व्यापक सर्वेक्षण से हुई प्रगति भी किसी प्रकार कम महत्व की नहीं है। और इसी प्रकार ध्यानपूर्वक किये गये विस्तृत कार्य की उस सामग्री की पूर्ति के लिए आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप भविष्य मे आने वाले युगों मे सामाजिक संगठन के विकास को प्रभावित करने वाली शक्तियों को हमारी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है।

किन्तु दूसरी ओर कॉम्टे की इस बात को पूर्णरूप से मानना पड़ेगा कि यहाँ तक भौतिक विज्ञानों मे भी, जो लोग सीमित क्षेत्रों मे मुख्यतया काम कर रहे हों उन्हें इनसे मिलते जुलते क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों के साथ निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। जो विशेषज्ञ कभी भी अपने विषयक्षेत्र से परे अवलोकन नही करते वे सम्भवतः चीजों को वास्तविक रूप में नही देख सकते। वे जितना भी ज्ञान संकलित करते हैं उसका बहुत कुछ भाग तुलनात्मक दृष्टि से कम महत्व का होता है।

कॉम्टे ने अत्यधिक विशिष्टीकरण की बुराइयों का ठीक चित्रण किया है,

1 भाग 1, अध्याय 2 देखिए।

किन्तु वह यह सिद्ध करने में असफल रहे कि इसमें बुराइयां बिलकुल ही न होनी चाहिए।

वे पुरानी ममस्याओं के विस्तार पर कार्य करते हैं जिनकी कि बहुत कुछ महत्ता समाप्त हो गयी है और नये दृष्टिकोणों के अपनाये जाने के कारण इनका स्थान नये प्रश्नों ने ले लिया है, और वे उस महान प्रकाश को प्राप्त नही कर पाते जो प्रत्येक विज्ञान के चारों ओर के विषयों के साथ इसकी प्रगति की तुलना करने तथा समानता प्रदर्शित करने से मिल सकता है। अतः कॉम्टे ने यह आग्रह कर अच्छी सेवा अर्पित की है कि सामाजिक विषयो की एकान्तता भौतिक विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक विज्ञान मे केवल एक विषय के ही विशेषज्ञों के कार्य को अधिक महत्वहीन बना देगी। इसे स्वीकार करके मिल आगे लिखते हैं: 'एक व्यक्ति जो और कुछ नही है सम्भवतः एक अच्छा अर्थशास्त्री नही बन सकता। सामाजिक विषय जो एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और परस्पर प्रभावित होते हैं पृथक् से सही रूप मे नहीं समझे जा सकते किन्तु इससे यह किसी भी प्रकार सिद्ध नही होता कि समाज की भौतिक एवं औद्योगिक वस्तुओं से उपयोगी सामान्यीकरण नही निकाले जा सकते, किन्तु इससे केवल यही सिद्ध होता है कि ये मामान्यीकरण आवश्यक रूप से सभ्यता के एक निश्चित रूप तथा सामाजिक उत्थान की एक निश्चित अवस्था से सम्बद्ध होने चाहिए।[1]

आर्थिक शक्तियाँ वस्तुतः रासायनिक रूप से मिश्रित न होकर

§2. यह सत्य है कि अर्थशास्त्र मे अध्ययन की जाने वाली शक्तियो मे निगमन प्रणाली इस तथ्य के कारण सुविधाजनक होती है कि उनके सम्मिश्रण की प्रणाली मिल के अनुसार रासायनिक न होकर गतिविज्ञान से सम्बन्धित है। अर्थात् जब हम दो प्रकार की आर्थिक शक्तियों के प्रभाव को जानते हैं—जैसे कि उदाहरण के लिए मजदूरी की दर मे वृद्धि तथा व्यवसाय मे कम कठिनाई होने से इसमे श्रम की पूर्ति पर अनेक प्रकार से पड़ने वाले प्रभाव हम किसी निश्चित प्रकार के अनुभव की प्रतीक्षा किये बिना बहुत तरह उनके संयुक्त प्रभाव की पूर्व-सूचना दे सकते हैं।[2]

---

1 मिल द्वारा लिखित On Compte, पृष्ठ 82 देखिए। कॉम्टे द्वारा की गयी मिल की आलोचना से यह सामान्य नियम स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र की प्रणाली एवं क्षेत्र के विवेचन में एक व्यक्ति स्वयं अपनी कार्यपद्धति की उपयोगिता की पुष्टि करते समय लगभग निश्चितरूप से सही होता है और अन्य लोगों की कार्यपद्धति की उपयोगिता को अस्वीकार करते समय गलत होता है। अमेरिका, इंग्लैंड तथा अन्य देशों में समाजशास्त्र की ओर आधुनिक प्रवृत्ति बढ़ने से अर्थशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञान की अन्य शाखाओं के गहन अध्ययन की आवश्यकता समझी गयी है। किन्तु सम्भवतः इसके लिए समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग करना पूर्ण उपयुक्त न होगा क्योंकि यह दावा किया जाता है कि सामाजिक विज्ञानों का एकीकरण पहले से ही दृष्टिगोचर हो रहा है: और यद्यपि समाजशास्त्र के नाम पर कुछ सर्वोत्कृष्ट गहन अध्ययन प्रकाशित किये जा चुके हैं किन्तु यह सन्देहपूर्ण है कि एकीकरण के लिए अब तक किये गये प्रयत्नों में भावी पीढ़ियों (जिनके पास इस समय की अपेक्षा इस विशाल कार्य के लिए साधन कम अपर्याप्त होंगे) के निदेशन के लिए मार्ग तैयार करने तथा अप्रत्याशित आपत्तियों के समीप सावधानी के स्तम्भ गाड़ देने के अतिरिक्त कोई महान सफलता नहीं मिली है।

2 मिल ने ऐसा कर सकने की सीमा का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया है, और

किन्तु यंत्रविज्ञान में भी निगमनीय तर्कों की लम्बी शृंखलाएँ प्रत्यक्षरूप से प्रयोगशाला की घटनाओं पर ही लागू होती है। भिन्न भिन्न प्रकार के उपादानों तथा वास्तविक संसार की शक्तियों के जटिल एवं अनिश्चित संयोजन के साथ कार्य करने के लिए अपने ही बलबूते से कदाचित् ही वे पर्याप्त मार्ग दर्शन दे सकें। इस उद्देश्य के लिए निश्चित प्रकार के अनुभव की सहायता ली जानी चाहिए, और निरन्तर नये तथ्यों के अध्ययन, नये आगमनों की खोजबीन से मेल खाते हुए, और बहुधा इन्हीं के अनुसार इसका प्रयोग करना चाहिए। दृष्टान्त के रूप में एक अमियता पर्याप्त यथार्थता के साथ यह गणना कर सकता है कि किस कोण पर लोहे की चादरों से बनाया गया जहाज शांत जल में अपनी स्थिरता को नही बनाये रख सकेगा। किन्तु तूफान में इसकी स्थिति की पूर्व सूचना देने से पहले वह स्वय अनुभवी नाविकों के पर्यवेक्षणों से, जिन्होंने एक सामान्य समुद्र में इसकी गति का अवलोकन किया है, लाभ उठायेगा। अर्थशास्त्र में जिन शक्तियों पर विचार किया जाता है वे यत्रविज्ञान की अपेक्षा अधिक असत्य, कम निश्चित, कम प्रसिद्ध होती है, और इनमें अधिक विभिन्नता पायी जाती है। जिस उपादान पर ये शक्तियाँ क्रियाशील होती है वह अधिक अनिश्चत तथा कम सजातीय होता है। पुनः वे दशाएँ जिनमें विशुद्ध यत्र-विज्ञान की सरल नियमितता की अपेक्षा आर्थिक शक्तियाँ रासायनिक विज्ञान की स्पष्टरूप से दिखायी देने वाली काल्पनिकता से मिश्रित होती है, *न तो स्वल्प है, न महत्वहीन ही है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति की* आय में थोड़ी सी वृद्धि से सामान्यतया प्रत्येक दिशा में उसकी खरीदारियाँ कुछ बढ़ेगी: किन्तु इसमें अधिक वृद्धि होने से उसकी आदतें बदल सकती हैं, सम्भवत इससे उसका स्वाभिमान बढ़ सकता है और यह भी हो सकता है कि छोटी मोटी चीजों की बिलकुल ही परवाह न करे। एक उच्चतर सामाजिक स्तर से निम्नतर स्तर की दिशा में फैशन के फैलने के फलस्वरूप उच्चतर वर्ग में फैशन समाप्त हो सकता है। और इसके अतिरिक्त निर्धनों की देखरेख के प्रति हमारी बढ़ी हुई उत्सुकता के कारण मुक्तहस्त से दान मिल सकता है, या इसके कुछ रूपों के लिए बिलकुल भी आवश्यकता न रहे।

यंत्रवत् मिश्रित होती हैं।

किन्तु अर्थशास्त्र का किसी भौतिक विज्ञान के साथ निकट सम्बन्ध नहीं है।

अन्त में रसायनशास्त्री जिस पदार्थ का अध्ययन करता है वह सदैव एक सा रहता है, किन्तु जीवविज्ञान की भाँति अर्थशास्त्र का ऐसे पदार्थों से सम्बन्ध रहता है जिनके आन्तरिक स्वरूप एवं ढांचे तथा बाह्यरूप निरन्तर बदल रहे हैं। रसायनशास्त्री की पूर्व सूचनाएँ इस अव्यक्त कल्पना पर आधारित होती हैं कि जिस नमूने पर कार्य किया जाता है उसका यही रूप होता है, या कम से कम इसमें मिलावट इतनी कम होती है कि इसको नगण्य गिना जा सकता है। किन्तु वह भी प्राणियों के सम्बन्ध में विचार करते

यह व्यापक अर्थ में प्राणि विज्ञान की एक शाखा है।

इसके कारण वह अर्थशास्त्र में निगमन प्रणालियों के प्रचुर रूप में प्रयोग होने का दावा करते हैं। उनके (Essays) के अन्तिम भाग; उनकी Logic के भाग VI और विशेषकर इसके नवें अध्याय को देखिए। उनकी Autobiography के पृष्ठ 157–161 को भी देखिए। उनके व्यवसाय की अपेक्षा उनकी व्यावहारिकता आर्थिक प्रणाली के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की धारणा रखने वाले अनेक लेखकों की भाँति कम अतिरंजित थी।

समय विशेष प्रकार के अनुभव से अधिक दूर तक कदाचित् ही सुरक्षित रूप से विचरण कर सकता है: उसे मुख्यतया विश्वास करना चाहिए कि किस प्रकार एक नयी औषधि मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करेगी, और यह किसी निश्चित प्रकार के रोग वाले व्यक्ति को प्रभावित करेगी, और कुछ सामान्य अनुभव प्राप्त करने के बाद विभिन्न शारीरिक गठन वाले व्यक्तियों या अन्य औषधियों के साथ इसके नये सम्मिश्रण से अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं।

यदि हम व्यावसायिक साख तथा बैंक, व्यापारिक संघों अथवा सहकारिता के पूर्णरूप से आर्थिक सम्बन्धों के इतिहास को देखें तो हम पायेंगे कि कार्य करने की जो पद्धतियाँ कुछ समय तथा स्थानों मे सफल रही हैं वे अन्य समयों तथा स्थानों मे समान रूप से असफल हुई हैं। कभी कभी तो इस प्रकार की विभिन्नता का कारण केवल सामान्य बोध, या आचरण की नैतिक शक्ति या परस्पर विश्वास करने की आदतों मे अन्तर रहा है। किन्तु बहुधा इस प्रकार की विभिन्नता की व्याख्या करना अधिक कठिन है। किसी एक समय अथवा स्थान मे लोग एक दूसरे पर बहुत विश्वास करते हैं और सर्व-साधारण की भलाई के लिए स्वयं त्याग करते है, किन्तु ऐसा कुछ निश्चित दिशाओं मे किया जाता है, किसी अन्य समय या स्थान मे इस प्रकार की चीजो का अभाव हो सकता है, किन्तु तब इनकी दिशाएँ भिन्न होंगी और इस प्रकार के परिवर्तन के कारण अर्थशास्त्र में निगमन का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

किन्तु इस समय हमारे उद्देश्य के लिए व्यक्ति की विनम्रता की अपेक्षा जाति की विनम्रता अधिक महत्वपूर्ण है। यह सत्य है कि व्यक्तिगत आचरण अंशतः स्वच्छन्द रूप से और अंशतः सुविदित नियमानुसार बदलता है। दृष्टान्त के लिए यह सत्य है कि श्रमिकों के झगडे मे शामिल मजदूरों की औसत आयु इस बात की पूर्व सूचना देने का एक महत्वपूर्ण अंग है कि यह क्या रुख लेगा। किन्तु जैसा कि अधिकाशतया विभिन्न स्थानो तथा समयो मे जोशीले तथा हताश प्रकृति वाले युवक तथा वृद्ध लगभग समान अनुपात मे पाये जाते हैं, आचरण की व्यक्तिगत विशेषताएँ तथा आचरण सम्बन्धी परि-वर्तन निगमन प्रणाली के सामान्य प्रयोग मे उतनी बाधाएँ नही डालते जितनी कि सर्व-प्रथम प्रतीत होती है। इस प्रकार प्रकृति तथा विश्लेषण की प्रगति के बारे मे ध्यान-पूर्वक पूछताछ करने से, आरोग्य विज्ञान (therapeut cs) तथा अर्थशास्त्र दोनों में नये नये नियम लागू हो रहे हैं और किसी कार्य की निरन्तर बढती हुई विभिन्नता के अकेले तथा मिश्रित प्रभाव के सम्बन्ध मे बिना किसी विशेष प्रकार के अनुभव के, एक प्रकार की भविष्यवाणी सम्भव हो रही है।

विश्लेषण तथा निगमन का कार्य। स्पष्टीकरण तथा पूर्व सूचना

§3. अर्थशास्त्र मे विश्लेषण तथा निगमन का कार्य तर्क की कुछ लम्बी शृंखलाएँ तैयार करना नही है, अपितु इसका कार्य तर्क की अनेक छोटी छोटी कड़ियों द्वारा एक सुसम्बद्ध तर्क शृंखला तैयार करना है। किन्तु यह कोई नगण्य कार्य नही है। यदि अर्थशास्त्री तीव्रतापूर्वक बिना गम्भीरता के तर्क करे तो वह अपने कार्य के हर मोड़ पर सम्भवतया बुरे सम्बन्ध स्थापित करेगा। उसे विश्लेषण तथा निगमन का बडी साव-धानी के साथ उपयोग करना है, क्योकि एकमात्र उनकी सहायता से ही वह सही तथ्यों का चयन कर सकता है, उनको ठीक प्रकार से श्रेणीबद्ध कर सकता है, और व्यवहार

मे, विचारों तथा पथ-प्रदर्शन मे सलाह देने में उनका प्रयोग कर सकता है। और जिस प्रकार हर प्रकार का निगमन निश्चित रूप से कुछ आगमनों पर आधारित रहता है, उसी प्रकार हर आगमनीय क्रिया में विश्लेषण तथ्य निगमन का निश्चित रूप से अस्तित्व रहता है और इन्हें इसमें शामिल किया जाता है। अथवा इसी चीज को दूसरे रूप मे व्यक्त करते हुए यह कह सकते हैं कि विगत का विवरण तथा भविष्य की पूर्व सूचना दो भिन्न क्रियाएं नही हैं, किन्तु इसमे एक ही क्रिया को प्रतिकूल दिशाओं मे लागू किया जाता है, इसमे एक मे परिणाम से कारण तथा दूसरे मे कारण से परिणाम का अनुमान लगाया जाता है। स्मोलर ठीक ही कहते है "व्यक्तिगत कारणो का ज्ञान" प्राप्त करने के लिए हमे "आगमन की, जिसका अन्तिम निष्कर्ष निगमन मे निहित तर्क विधि की व्युत्क्रम-विधि अपनाने के अतिरिक्त और कुछ नही है, आवश्यकता होती है। आगमन और निगमन एक सी प्रवृत्तियों पर, एक से विश्वास पर, और हमारे तर्क की एक सी आवश्यकताओं पर आधारित है।"

को क्रिया भी विपरीत दिशाओं में इसी प्रकार का कार्य है।

हम किसी वृत्तान्त का केवल तभी पूर्ण विवरण दे सकते है जब सब से पहले उन सभी वृत्तान्तों की खोजबीन करे जिनसे यह प्रभावित हो सकता है, और यह भी देखे कि ये इसे कितनी प्रकार से प्रभावित करती है। इनमे से किसी भी तथ्य अथवा सम्बन्ध के बारे में जहाँ तक हमारा विश्लेषण अपूर्ण है वहाँ तक हमारे स्पष्टीकरण मे त्रुटि हो सकती है। और इसमे छिपी हुई अनुमिति से आगमन का सृजन किया जाता है जो यद्यपि सम्भवतः युक्तिसगत ज्ञात होती है किन्तु फिर भी झूठी होनी है। जिस सीमा तक हमारे ज्ञान तथा विश्लेषण पूर्ण है, हम केवल अपनी मानसिक क्रिया को अपवृत करके भविष्य के विषय मे लगभग उतनी ही निश्चितता से निष्कर्ष निकालने तथा पूर्व सूचना देने मे समर्थ हुए है जितने से हम समान ज्ञान के आधार पर विगत को स्पष्ट कर सकते थे। सबसे पहले की सीढी से आगे पहुँचने पर ही पूर्व सूचना की निश्चितता तथा स्पष्टीकरण की निश्चितता के बीच अन्तर पैदा होता है : क्योकि पूर्व सूचना देने की प्रथम सीढी मे की गयी त्रुटि दूसरी सीढी मे पहुँचने पर सचित हो जायेगी और तीव्र रूप धारण कर लेगी। जब कि विगत के विश्लेषण करते समय, त्रुटि इस प्रकार से सचित नही होती, क्योकि प्रत्येक सीढी मे पर्यवेक्षण अथवा लिपिबद्ध इतिहास से सम्भवतया नये रूप से परीक्षण किया जायेगा। किसी तथ्य के स्पष्टीकरण मे ज्वार के इतिहास मे किसी ज्ञात तथ्य के स्पष्टीकरण मे तथा अज्ञात तथ्य की पूर्व सूचना देने मे आगमनीय एवं निगमनीय, दोनो समान क्रियाओं को लगभग एक ही प्रकार से उपयोग मे लाया जाता है।[1]

अतः यह हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए कि यद्यपि पर्यवेक्षण अथवा इतिहास से हमे यह बतलाया जा सकता है कि एक घटना ठीक उसी समय घटी थी जब कि दूसरी घटी थी, या इसके बाद घटी थी, किन्तु इनसे यह मालूम नही किया जा सकता कि क्या पहली घटना के कारण ही दूसरी घटना घटी। ऐसा तो केवल तथ्यों के ऊपर तर्क का प्रयोग करने से ही ज्ञात हो सकता है। जब यह कहा जाता है कि इतिहास की किसी

तथ्यों की व्याख्या करने में कठिनाइयां।

1 मिल की Logic, भाग VI, अध्याय III,

खास घटना से यह या अमुक शिक्षा मिलती है तो उन सभी दशाओं की औपचारिक गणना नही की जाती जो कि घटना के घटते समय विद्यमान थी। इनमें से कुछ को अव्यक्त रूप से, यदि अचेतन रूप से न भी तो, असम्बद्ध मान लिया जाता है। यह कल्पना किसी खास दशा मे ही न्याय-सगत मानी जा सकती है, किन्तु यह नही भी मानी जा सकती। अधिक विस्तृत अनुभव तथा अधिक सतर्क खोज-बीन से यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि जिन कारणो से वह घटना घटी उनमे अन्य बातो का भी हाथ रहा है। सम्भवतः उन्होंने यहाँ तक कि उस घटना के घटने मे रोड़ा डाला हो जो उनके बावजूद भी ऐसे कारणों से घटी जिन पर किसी का ध्यान तक भी न गया हो।

हाल ही मे हमारे ही देश मे समकालीन घटनाओं के सम्बन्ध मे उत्पन्न वाद-विवादो से यह कठिनाई प्रमुख बना दी गयी है। जब कभी उनमे से कोई निष्कर्ष निकाला जाय जिसका कि विरोध होने लगे तो इसकी एक प्रकार से परीक्षा होनी जरूरी हो जाती है, विरोध में स्पष्टीकरण दिये जाते हैं, नये तथ्यो को प्रकाश मे लाया जाता है। पुराने तथ्यों का परीक्षण किया जाता है और उन्हे पुनः क्रमबद्ध किया जाता है, और कुछ दशाओ मे इनसे उनके विपरीत निष्कर्ष निकालने मे सहायता ली जाती है जिनके लिए इनकी दुहाई दी जाती थी।

विश्लेषण की कठिनाई तथा इसकी आवश्यकता दोनो ही इस तथ्य से बढ गयी हैं कि कोई भी दो आर्थिक घटनाएँ सभी बातो मे एक समान नही होती। निस्सन्देह दो सरल गौण वृत्तान्तों मे परस्पर घनिष्ठ समरूपता पायी जा सकती है: दो खेतों के पट्टो की शर्तें लगभग एक से ही कारणो से प्रभावित होती है: पंचनिर्णय (Arbitration) मण्डल को सौंपे गये मजदूरी के दो प्रश्नों से साररूप मे एक ही प्रश्न उठता है। किन्तु कभी भी यहाँ तक कि थोडी मात्रा में भी यथार्थरूप से पुनरावृत्ति नही होती। चाहे दो प्रश्न कितने ही समान हो, हमे यह निर्णय करना है कि इन दोनों मे पाये जाने वाले अन्तर की व्यावहारिक रूप से महत्वहीन होने के कारण अवहेलना की जा सकती है। और दो प्रश्नों के एक ही स्थान तथा समय से सम्बन्धित होने पर भी ऐसा करना बहुत सरल नही होता।

सुदूर भूतकाल से लिये गये प्रथम दृष्टि पर आधारित साक्ष्य की अविश्वसनीयता।

यदि हम सुदूर काल के तथ्यों के विषय पर विचार कर रहे हो तो हमे तब से समूचे आर्थिक जीवन के स्वरूप मे होने वाले परिवर्तनों के लिए छूट रखनी चाहिए: चाहे इस समय की कोई भी समस्या अपने बाह्य रूपो मे इतिहास मे लिपिबद्ध अन्य किसी घटना से कितनी भी मिलती जुलती हो, सम्भवतः उनके वास्तविक स्वरूप मे विद्यमान आधारभूत अन्तर का अधिक निकट से जाँच करके पता लगाया जा सकता है। जब तक ऐसा न हो तब तक एक प्रश्न से दूसरे के सम्बन्ध मे कोई युक्तिसगत तर्क नहीं निकाला जा सकता।

आर्थिक इतिहासकार का कार्य विविध

§4. इसके पश्चात् हम सुदूर भूतकाल के तथ्यों के साथ अर्थशास्त्र के सम्बन्ध पर विचार करेंगे।

आर्थिक इतिहास के अध्ययन के अनेक उद्देश्य हो सकते है और तदनुसार इसकी अनेक प्रणालियाँ हैं। सामान्य इतिहास की एक शाखा मानते हुए इसका उद्देश्य हमे यह

समझने में सहायता पहुँचाता है कि "अनेक समयों में समाज का संस्थापन ढाँचा क्या रहा है, विभिन्न प्रकार के सामाजिक वर्गों का क्या स्वरूप रहा है तथा उनका एक दूसरे के प्रति क्या सम्बन्ध रहा है": इसमें ये प्रश्न उठाये जा सकते हैं कि "सामाजिक अस्तित्व का क्या भौतिक आधार रहा है, जीवन की आवश्यकताएं तथा सुविधाएँ कैसे पैदा हुई हैं, किस संगठन के फलस्वरूप श्रम सुलभ हुआ है तथा इसका मार्ग निर्देशन हुआ है, किस प्रकार से इस प्रकार पैदा की गयी चीजों का वितरण किया गया है, वे कौन-सी संस्थाएं हैं जो इस दिशा तथा वितरण में आश्रित रही है, तथा इसी भाँति आगे भी।"[1]

प्रकार का होता है।

चूंकि यह स्वयं ही रोचक तथा महत्वपूर्ण है, अतः इसके लिए बहुत अधिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं होती। और इसके लिए जिस किसी चीज की आवश्यकता होती है उसके अधिकांश भाग की एक सक्रिय तथा जिज्ञासु व्यक्ति द्वारा स्वयं पूर्ति की जाती है। धार्मिक तथा नैतिक, बौद्धिक तथा सौन्दर्यमय, राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण के ज्ञान से ओतप्रोत होकर आर्थिक इतिहासकार हमारे ज्ञान के भण्डार में वृद्धि कर सकता है, और नये तथा बहुमूल्य विचारों को बतला सकता है, यद्यपि उसने स्वयं उन्हीं लगावों तथा आकस्मिक सम्बन्धों के अवलोकन से अपने को सन्तुष्ट कर लिया हो जिनका पता लगाने के लिए गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं होती।

सूक्ष्म विश्लेषण सभी के लिए आवश्यक नहीं:

किन्तु स्वयं उसके बावजूद भी उसके उद्देश्यों का क्षेत्र निश्चितरूप से इन सीमाओं से भी परे होगा, और इसमें आर्थिक इतिहास के आन्तरिक अभिप्राय की खोज करने, प्रगति तथा प्रथा के पतन के रहस्यों तथा ऐसे अन्य विषयों के उद्घाटन के निमित्त किये गये कुछ प्रयास भी शामिल होंगे जिन्हें हम अब अधिक समय के लिए प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये अन्तिम तथा पेचीदे तथ्य मानने को तैयार नहीं हैं . वह विगत की घटनाओं से वर्तमान के मार्गदर्शन के लिए अनुमितियों का सुझाव देने से भी अपने को पूर्णरूप से नहीं रोक सकता। और वास्तव में मानव मस्तिष्क अपने सम्मुख स्पष्ट रूप में प्रस्तुत की गयी घटनाओं के आकस्मिक सम्बन्ध के विषय में अपने विचारों में शून्यता से घृणा करता है। वस्तुओं को किसी निश्चित क्रम से एक साथ रखने, और चेतन अथवा अचेतन रूप से (Post hoc ergo propter hoc) की राय मात्र देने से इतिहासकार अपने ऊपर मार्गनिदेशक के रूप में कुछ उत्तरदायित्व ले लेता है।

किन्तु विगत से वर्तमान के लिए मार्ग निदेशन प्राप्त करने में इसकी आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए इंग्लैंड के उत्तर भाग में निश्चित मौद्रिक लगान पर लम्बे समय के लिए दिये जाने वाले पट्टों की शुरुआत से कृषि तथा वहाँ के लोगों की सामान्य दशा में महान सुधार हुआ किन्तु यह अनुमति निकालने के पूर्व कि यही सुधार का एकमात्र अथवा यहाँ तक कि मुख्य कारण रहा है, हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि ठीक उस समय कौन कौन से अन्य परिवर्तन हो रहे थे, और उनमें से प्रत्येक के कारण कितना कितना सुधार हुआ है। दृष्टान्त के लिए हमें कृषि उपज की कीमतों तथा सीमान्त प्रान्तों में नागरिक कानून की स्थापना करने में होने वाले परिवर्तनों के प्रभावों को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा करने के लिए सावधानी तथा वैज्ञानिक प्रणाली के अपनाने की

1 ऐश्ले (Ashley) की On the Study of Economic History देखिए।

आवश्यकता होती है। और जब तक ऐसा नही किया जाता तब तक लम्बे पट्टों की पद्धति की सामान्य प्रवृत्ति के बारे मे कोई विश्वसनीय अनुमति नही निकाली जा सकती। और यहाँ तक कि जब ऐसा हो भी जाय तब भी हम इस अनुभव से, उदाहरण के लिए, वर्तमान आयरलैंड मे अनेक प्रकार की कृषि उपज के स्थानीय तथा विश्व-बाजारो के स्वरूप मे, सोने तथा चाँदी के उत्पादन तथा उपभोग इत्यादि मे सम्भावित परिवर्तनों को दृष्टि मे बिना रखे लम्बे समय के लिए पट्टे देने की प्रणाली का सुझाव नही रख सकते। भूमि पट्टों का इतिहास पुराविद् रोचकता से पूर्ण है, किन्तु जब तक आर्थिक सिद्धान्त की सहायता से सतर्कतापूर्वक विश्लेषण एव व्याख्या न की जाय तब तक इस प्रश्न पर कोई विश्वसनीय प्रकाश नही पडता कि अब किसी देश मे भूमि-पट्टे के किस रूप को अपनाना सर्वोत्तम होगा। इस प्रकार कुछ लोग यह तर्क देते है कि चूँकि आदि-कालीन समाज की भूमि पर सयुक्त अधिकार होता था, अतः भूमि के रूप मे व्यक्तिगत सम्पत्ति को निश्चित रूप से एक अस्वाभाविक तथा सक्रमण कालीन व्यवस्था मानना चाहिए। अन्य लोग समान विश्वास से यह तर्क-वितर्क करते है कि चूँकि भूमि के रूप मे निजी सम्पत्ति की सीमा का सभ्यता के विकास के साथ विस्तार हुआ है, अतः यह भविष्य मे होने वाली प्रगति के लिए आवश्यक है। किन्तु इतिहास से इस विषय पर वास्तविक शिक्षा का पता लगाने के लिए भूतकाल मे भूमि की सामान्य जोत के प्रभावो की व्याख्या करने की आवश्यकता होती है जिससे यह पता लग सके कि उनमे से प्रत्येक का कहाँ तक सदैव एक सा प्रभाव पडता है तथा आदतो, ज्ञान, सम्पत्ति तथा मानव जाति के सामाजिक सगठन मे परिवर्तन होने से इस प्रभाव मे कहाँ तक अन्तर पडता है।

उद्योग, घरेलू तथा वैदेशिक व्यापार मे श्रमिक निकायो (gilds) तथा अन्य निगमो एव सघो द्वारा निर्मित पेशो का इतिहास इससे भी अधिक रोचक तथा शिक्षा-प्रद है, वे अपनी विशेष सुविधाओ को जनता के लाभ के लिए उपयोग मे लाते थे। किन्तु इस विषय पर एक पूर्ण पचनिर्णय देने तथा इससे भी बढ़कर यह कि हमारे अपने समय मे इससे उचित मार्ग निर्देशन प्राप्त करने के लिए न केवल अनुभवी इतिहासकार के विस्तृत सामान्य ज्ञान तथा सूक्ष्म प्रेरणाओ की आवश्यकता होती है, अपितु एकाधिकार, वैदेशिक व्यापार तथा कर आयात इत्यादि से सम्बन्धित अनेक सबसे कठिन विश्लेषणो तथा तर्कों को समझना भी आवश्यक है।

तब यदि आर्थिक इतिहासकार का उद्देश्य विश्व के आर्थिक नियम के छिपे हुए स्रोतो को ढूँढ़ना है, और भूतकाल से वर्तमान के मार्ग दर्शन के लिए प्रकाश प्राप्त करना है तो उसे प्रत्येक ऐसे साधन से लाभ उठाना चाहिए जो एक ही नाम या बाह्य रूप मे निहित वास्तविक अन्तर का तथा नाममात्र के अन्तर से भिन्न दिखायी देने वाली वास्तविक समानताओं का पता लगाने मे सहायता पहुँचाता है। उसे प्रत्येक घटना के वास्तविक कारणों के चयन करने का यत्न करना चाहिए और इसमे से प्रत्येक को उचित महत्व देना चाहिए। इन सबके अतिरिक्त उसे परिवर्तन के अधिक दूर के कारणों का पता लगाना चाहिए।

नौसेना के काम धन्धों से एक समानता ली जा सकती है। निर्जीव उपकरणों से लड़ाई करने के विवरण उस समय के सामान्य इतिहास के विद्यार्थियो के लिए बडे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु आज के नौसेना के नायक के लिए, जिसे युद्ध के लिए बिलकुल ही भिन्न सामग्री का उपयोग करना होता है इनसे कम पथ-प्रदर्शन मिलता है। अतएव जैसा कि कप्तान महान (Mahan) ने प्रशसनीय रूप से प्रदर्शित किया है, आधुनिक नौसेनापति विगत की युद्धकला की अपेक्षा फौजी दाँवपेच (strategy) की ओर अधिक ध्यान देता है। उसका किन्ही खास सघर्षो की घटनाओ से उतना मतलब नही होता जितना कि युद्ध करने के प्रमुख सिद्धान्तो के व्यावहारिक दृष्टान्तो से होता है जिनके फलस्वरूप यद्यपि वह सम्पूर्ण सैनिक शक्ति को अपने अधिकार मे कर लेता है, किन्तु फिर भी इसके प्रत्येक अग को उपयुक्त प्रोत्साहन देता है। वह व्यापक संचार बनाये रखने पर भी शीघ्र ही शक्ति केन्द्रीय करने मे समर्थ होता है, और आक्रमण करने के ऐसे स्थान का चयन करता है जहाँ पर वह प्रचुर सख्या मे सेना ला सके।

नौसेना के इतिहास से ली गयी समानता।

इसी प्रकार एक व्यक्ति जो किसी समय के सामान्य इतिहास से पूर्णरूप से परिचित हो रणकौशल का ऐसा स्पष्ट चित्रण कर सकता है जिसकी मुख्य रूपरेखा सत्य निकलेगी और यदि यह यदाकदा गलत भी निकल जाय तो इससे कोई हानि नही होगी। क्योकि सम्भवत. कोई भी ऐसे रणकौशल की नकल नही करेगा जिसके उपकरण अब निर्जीव हो गये है। किन्तु किसी अभिमान के दाँवपेच को समझने के लिए, विगत के महान सेना नायक के दिखावटी उद्देश्यो से वास्तविक उद्देश्यो को अलग करने के लिए एक व्यक्ति को स्वयं रणकुशल होना चाहिए। और यदि वह कितने भी सकोच के साथ आजकल के युद्ध कलाविदो को बतलाने का उत्तरदायित्व ले जो वे उसके द्वारा लिपिबद्ध कहानी से सीखते है तो उसने निश्चित रूप से आजकल तथा उस समय के जिसके बारे मे वह लिख रहा है, नौसेना सम्बन्धी दशाओ का पूर्ण विश्लेपण कर लिया होगा। और इस उद्देश्य के लिए बहुत से देशो मे लडाई के दाँवपेंच की कठिन समस्या का अध्ययन करने वाले अनेक विचारको की कृतियो से मिलने वाली सहायता की उसे अवहेलना नही करनी चाहिए। नौसेना के इतिहास मे जो बात पायी जाती है वही अर्थशास्त्र मे भी लागू होती है।

केवल हाल ही मे और बहुत सीमा तक ऐतिहासिक विचारधारा की आलोचनाओं के अच्छे प्रभाव के कारण अर्थशास्त्र मे उस विभेद को प्रमुखता दी गयी है जिसका युद्ध में युद्ध कौशल तथा फौजी दाँवपेचो के बीच के अन्तर से सम्बन्ध होता है। युद्ध कौशल से मिलते जुलते आर्थिक संगठन के वे बाह्यरूप तथा घटनाएँ हैं जो अस्थायी अथवा स्थानीय रुचियों, प्रथाओ तथा विभिन्न वर्गो के सम्बन्धों, व्यक्तियों के प्रभाव अथवा उत्पादन के बदलते हुए उपकरणो तथा आवश्यकताओ पर निर्भर रहते हैं। जब कि फौजी दांवपेंच आर्थिक संगठन के उस मौलिक सार के अनुरूप हैं जो मुख्यतया उन आवश्यकताओ तथा कार्यो, प्राथमिकताओ तथा अरुचियो पर मुख्यतया निर्भर रहते हैं जो मनुष्य मे सभी स्थानो पर मिलते है। वास्तव मे वे सदैव आकार मे एक से नही होते, यहाँ तक कि सार मे भी बिलकुल समान नही होते, किन्तु उनमे स्थायित्व तथा सार्वभौमिकता का पर्याप्त अंश रहता है जिससे उनको कुछ मात्रा मे सामान्य कथनों

के रूप मे रखा जा सकता है, जिससे एक समय के तथा एक युग के अनुभवो से दूसरे समय तथा युग की कठिनाइयो पर प्रकाश डाला जा सकता है।

इस प्रकार का विभेद अर्थशास्त्र मे यान्त्रिकी तथा जैविकीय समानताओ के प्रयोगो के बीच के विभेद से मिलता जुलता है। पिछली शताब्दी के प्रारम्भ मे अर्थशास्त्रियो ने इसे भलीभाँति नही समझा था। रिकार्डो के लेखो मे इसका विशेष उल्लेख नही है: और जब उसके कार्य करने की प्रणाली मे निहित सिद्धान्तो पर ध्यान न दिया जाय किन्तु उसके द्वारा निकाले गये विशेष निष्कर्षों पर ध्यान दिया जाय, जब इन्हे रूढ़ियो के रूप मे परिवर्तित किया जाय और अपने युग अथवा स्थान की दिशाओ के अतिरिक्त अन्य युगो तथा स्थानो की दशा पर अपरिष्कृत रूप से लागू किया जाय तो ये निस्सन्देह नितान्त बुराई का रूप धारण कर लेती है। उनके विचार तेज रुखानी (chisels) की भाति है जिससे किसी की अँगुलियो को काटना विशेष कर सरल है, क्योकि इनके हत्थे बड़े ही कुरूप होते हैं।

एक में अनेक, अनेक में एक।

किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री जब उसके अपरिष्कृत कथनो का सार निकालता है, तथा इसम कुछ मिलाता है, रूढ़ियो को अस्वीकृत करता है किन्तु विश्लेषण तथा तर्क के सिद्धान्तो का विकास करता है, तो वह एक मे अनेक को तथा अनेक मे एक को पाता है। दृष्टान्त के लिए वे यह साख रहे हैं कि लगान के विश्लेपण का सिद्धान्त आजकल कहे जाने वाले लगान तथा साधारणतया गलती से मध्य युगो के इतिहासकारो द्वारा वर्णित लगान पर अधिकाशरूप म लागू नही होता। किन्तु तब भी इस सिद्धान्त के प्रयोग का विस्तार हो रहा है, सकुचन नहीं। क्योकि अर्थशास्त्री यह भी सीख रहे है कि उचित सावधानी के साथ सभ्यता की हर एक अवस्था मे यह अनेक प्रकार की ऐसी चीजो पर भी लागू होता है जो प्रथम दृष्टि मे किसी भी प्रकार से लगान की भाति प्रतीत नही होती।

किन्तु वास्तव मे फौजी दाँवपेंच सीखने वाला कोई विद्यार्थी युद्ध कौशल की अवहेलना नही कर सकता। यद्यपि कोई भी व्यक्ति मनुष्य द्वारा अपनी आर्थिक कठिनाइयो के विरुद्ध किये गये युद्ध कौशल का विस्तारपूर्वक अध्ययन नही कर सकेगा, तिस पर भी आर्थिक दाँवपेंच की व्यापक समस्याओ का अध्ययन करना तब तक बहुत कम सार्थक होगा जब तक कि इसमे किसी निश्चित युग तथा देश मे मनुष्य की कठिनाइयो के विरुद्ध किये गये सघर्षों के कौशल तथा दाँवपेच के ठोस ज्ञान का सम्मिश्रण न हो और आगे विद्यार्थी को अपने प्रशिक्षण के लिए, न कि आवश्यक रूप से प्रकाशन के लिए, निजी अवलोकन से कुछ खास प्रकार के विवरणो का अध्ययन करना चाहिए। और इससे मुद्रण अथवा लेख मे वर्तमान अथवा विगत समयो के बारे मे प्राप्त प्रमाण की व्याख्या करने तथा इसे आँकने मे उसे बड़ी सहायता मिलेगी। वास्तव मे प्रत्येक विचारक तथा अवलोकन करने वाला व्यक्ति वार्तालाप तथा प्रचलित साहित्य से अपने समय के और विशेषकर अपने पड़ोस के आर्थिक तथ्यो के ज्ञान को सदैव प्राप्त करता है, और वह इस प्रकार अप्रत्यक्षरूप से तथ्यो का भण्डार प्राप्त कर लेता है जो कभी कभी कुछ विशेष मानो मे सुदूर स्थानो तथा समयो मे कुछ ही प्रकार के

तथ्यों के बारे मे मिलने वाले सभी अभिलेखों के सार की अपेक्षा अधिक पूर्ण तथा पर्याप्त होना है। किन्तु इसके अतिरिक्त किसी भी विचारशील अर्थशास्त्री के तथ्यों का प्रत्यक्ष तथा औपचारिक अध्ययन, विशेषकर उसी के युग से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन विश्लेषण तथा सिद्धान्त मात्र के अध्ययन से बढकर होगा। यद्यपि वह उन व्यक्तियों मे से एक हो सकता है जो तथ्यों की तुलना मे विचार को बहुत ऊँचा समझते है, तथा यह सोच सकता है कि पहले से सकलित तथ्यों का अध्ययन करना नये तथ्यो के संतुलन की अपेक्षा अधिक अच्छा है। अब यही हमारी सबसे तीव्र आवश्यकता है या इससे मनुष्य द्वारा अपनी मुसीबतों पर विजय प्राप्त करने के कौशल तथा दाँवपेंच में सुधार करने मे सबसे अधिक सहायता मिलेगी।

§5. निःसन्देह यह सत्य है कि इस कार्य के एक बहुत बडे भाग के लिए तीव्र साधारण बुद्धि सापेक्षिक सम्बन्ध के अच्छे ज्ञान तथा जीवन के लम्बे अनुभव की अपेक्षा विस्तृत वैज्ञानिक प्रणालियो की कम आवश्यकता होती है। किन्तु इसके विपरीत बहुत सा ऐसा कार्य है जो इस प्रकार की मशीनों के बिना सरलतापूर्वक नही किया जा सकता। नैसर्गिक प्रवृत्ति से ऐसे विचारों का तीव्रता से चयन किया जायेगा तथा उन्हे निश्चित रूप से साथ मिलाया जायेगा जो हमारे सम्मुख आये हुए विवादों से सम्बन्धित हो, किन्तु यह मुख्यतया उन्ही मे से चयन करेगी जिन्हे हर कोई जानता हो। यह मनुष्य को कदाचित् ही अधिक गहराई तक या उसके व्यक्तिगत अनुभव की सीमाओं से अधिक परे तक ले जाती है।

सामान्य समझ तथा साधारण बुद्धिमानी से बहुत कुछ विश्लेषण किया जा सकता है, किन्तु सभी उद्देश्यों के लिए अधिक नहीं।

और ऐसा होता है कि अर्थशास्त्र के न तो ज्ञात कारणों के वे परिणाम, न ज्ञात परिणामों के वे कारण जो सबसे अधिक स्पष्ट होते है साधारणतया सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। "वह जिसे देखा नही गया है" बहुधा उसकी अपेक्षा जिसे "देखा गया है" अधिक पढने योग्य होता है। जब हम किसी स्थानीय अथवा अस्थायी रुचि वाले प्रश्न का विचार न कर रहे हों, अपितु सार्वजनिक भलाई के लिए दूरदर्शी नीति अपनाने के लिए पथ प्रदर्शन ढूंढ रहे हों, या यदि अन्य किसी कारणवश कारणों के कारण (Causae Causantes) की अपेक्षा तुरन्त के कारणों से कम सम्बन्धित हों, तो विशेषकर यही होगा। क्योंकि अनुभव से यह ज्ञात होता है, जैसी कि आशा भी की जाती थी, कि साधारण समझ, तथा सहज ज्ञान इस कार्य के लिए पर्याप्त नही, और यह भी कि व्यावसायिक प्रशिक्षण से भी एक व्यक्ति सदैव उन कारणों के कारण को अधिक दूर तक ढूंढने का प्रयत्न नही करता है जो उसके तुरन्त के अनुभव से परे हों और चाहे वह प्रयत्न भी करे, इससे उस ढूंढ-खोज का ठीक निर्देशन नही होता। उसे करने में मदद के लिए प्रत्येक को बाध्य होकर विचार तथा ज्ञान की शक्तिशाली मशीन पर, जो विगत की पीढ़ियों द्वारा धीरे धीरे निर्मित की गयी है, आस्था रखनी चाहिए। क्योंकि वास्तव मे व्यवस्थित वैज्ञानिक तर्क ज्ञान के उत्पादन मे जो कार्य करता है वह वस्तुओ के उत्पादन मे मशीनों के कार्य से मिलता जुलता है।

जब किसी प्रक्रिया को एक ही प्रकार से अनेक बार करना होता है तो साधारणतया उस कार्य को करने के लिए मशीन को इस्तेमाल करना लाभदायक होता है, यद्यपि विस्तार मे जब चीजों की किस्म इतनी बदलती है कि मशीनो का प्रयोग करना

विज्ञान तथा भौतिक उत्पादन की

प्रणालियों में समानता।

हानिकारक होता है तो वस्तुएँ हाथ से ही बनायी जानी चाहिए। इसी भाँति ज्ञान मे खोजबीन या तर्क की किसी भी प्रक्रिया मे जब किसी कार्य को एक ही प्रकार से बार-बार करना पडे तो इन प्रक्रियाओं को पद्धति के रूप मे अपनाना, तर्क करने की प्रणालियों की व्यवस्था करना तथा तथ्यो को निकालने और उनको कार्य के लिए एक निश्चित स्थायी दृढता के साथ बनाये रखने के लिए एक की भाँति उपयोग मे लाना लाभदायक है। और यद्यपि यह सत्य है कि आर्थिक कारण अन्य कारणो से इतने विभिन्न रूपो मे मिले हुए होते है कि वास्तविक वैज्ञानिक तर्क से कदाचित् ही हम उस निष्कर्ष के निकट पहुँचते है जिसे हम ढूँढ रहे है, तिस पर भी जहाँ तक यह पहुँच सकती है वहाँ तक इसकी सहायता न लेना मूर्खतापूर्ण होगा ऐसा करना उतना ही मूर्खतापूर्ण है जितना की विपरीत दिशा मे यह कल्पना करना कि केवल विज्ञान से ही सारे कार्य हो सकते है और व्यावहारिक अन्तर्बोध तथा प्रशिक्षित साधारण बुद्धि से करने के लिए कोई कार्य शेष नही बचेगा। एक वस्तुशिल्पी जिसका व्यावहारिक ज्ञान तथा सौन्दर्यात्मक अन्तर्बोध अविकसित हो, यंत्र विज्ञान के बारे मे कितना ही ज्ञान होने पर भी एक मामूली सा घर बनायेगा। किन्तु एक व्यक्ति जो यंत्र विज्ञान के बारे मे कुछ भी नही जानता वह असुरक्षित रूप से अथवा बरबादी करके उसे बनायेगा। बिना विश्वविद्यालयीय सिखलायी के एक ब्रिडले निवासी (Brindley) इंजीनियरिंग के कुछ कार्य को अधिक घटिया बुद्धि वाले व्यक्ति से, चाहे वह कितनी हो अच्छी तरह प्रशिक्षित हुआ हो, अच्छा कर सकता है। एक होशियार नर्स जो अपने मरीजो को सहज दया से अध्ययन करती है, एक विद्वान डाक्टर की अपेक्षा कुछ बातो मे अधिक अच्छी राय दे सकती है। किन्तु तिस पर भी इंजीनियर को विश्लेषणात्मक यंत्र विज्ञान के अध्ययन की अवहेलना नही करनी चाहिए, न चिकित्सक को ही शरीर विज्ञान की अवहेलना करनी चाहिए।

क्योकि भौतिक प्रतिभाएँ, जैसे कि शारीरिक निपुणता, उस व्यक्ति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है जिसके पास ये थी किन्तु प्रत्येक पीढी मे विनिर्माण मे काम आने वाली मशीनो या वैज्ञानिक खोज की प्रणाली मे जो सुधार होते हैं वह अगली पीढ़ी को सौप दिये जाते है। अब उन मूर्तिकारो (sculptors) से अधिक योग्य मूर्तिकार नही हैं जिन्होने पथेनन (Parthenon) मे काम किया था, कोई भी ऐसा विचारक नही जिसमे अरस्तू से अधिक सहज ज्ञान हो। किन्तु भौतिक उत्पादन की भाँति विचारो के उपकरण भी बहुत विकसित होते है।

कला तथा विज्ञान के विचार या वे जो व्यावहारिक उपकरणों मे सन्निविष्ट हैं, प्रत्येक पीढी को इससे पहले की पीढियो से मिलने वाले सबसे "वास्तविक" देनों मे से है। संसार की भौतिक सम्पत्ति यदि नष्ट हो गयी होती तो इसे शीघ्र ही स्थानापन्न कर दिया जाता, किन्तु जिन विचारो से इसे बनाया गया था उनको कायम रखा गया। यदि किसी प्रकार से ये विचार विस्मृत कर दिये जाये, किन्तु भौतिक सम्पत्ति ज्यो की त्यो रहे, तो वह लडखडाने लगेगा और संसार मे पुन. निर्धनता व्याप्त हो जायेगी। और केवल तथ्यो के हमारे ज्ञान को विस्मृत कर दिये जाने पर उन्हे शीघ्र ही पुनः प्राप्त किया जा सकता है बशर्ते कि विचारो के रचनात्मक भाव अक्षुण्ण रहें,

जब कि विचारों के नष्ट हो जाने पर संसार पुन. तमोयुग में प्रवेश करेगा। इस प्रकार सही अर्थ में विचारों की खोज करना तथ्यों के संकलन से कम "वास्तविक" कार्य नही है। यद्यपि पश्चादुक्त को कुछ दशाओं मे जर्मन भाषा मे Realstudium (वास्तविक अध्ययन) अर्थात् इस प्रकार का अध्ययन कहते है जो Realschulen (विद्या के केन्द्रों) के लिए विशेषकर उपयुक्त है। इस शब्द के सबसे अधिक प्रचलित अर्थ मे अर्थशास्त्र के विस्तृत विषय के किसी क्षेत्र का वह अध्ययन सबसे 'वास्तविक' है जिसमें तथ्यों का संकलन तथा उनको सम्बद्ध करने वाले विचारो का विश्लेषण एवं उनकी बनावट का ऐसी मात्राओ मे मिश्रण होता है जो ज्ञान की वृद्धि के लिए तथा उस विशेष क्षेत्र मे प्रगति को बढावा देने के लिए सबसे उपयुक्त होती है। और यह क्या है, इसे एकदम तय नही किया जा सकता, किन्तु केवल सतर्क तथा विशेष प्रकार के अनुभव से ही तय किया जा सकता है।

§6. अर्थशास्त्र ने सामाजिक विज्ञानो की किसी अन्य शाखा की अपेक्षा अधिक प्रगति की है क्योंकि यह अन्य किसी की अपेक्षा अधिक निश्चित तथा अधिक यथार्थ है। किन्तु इसके विषयक्षेत्र मे वृद्धि होने के साथ साथ इस वैज्ञानिक विशुद्धता मे कुछ क्षति हो जाती है, और इस प्रश्न को कि क्या यह क्षति इसके दृष्टिकोण मे व्यापकता आने से मिलने वाले लाभो से बढकर है या घटकर है, किसी कठोर नियम से तय नहीं किया जा सकता।

अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ अच्छाई तथा बुराई बढ़ती है। यह सर्वोत्तम है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अनुरक्ति के अनुसार अपनी कमियों को कभी न भूल कर काम करना चाहिए।

इसमे एक ऐसा विशाल विवादजनक आधार है जिसमे आर्थिक विचारो का महत्व प्रमुख न होते हुए भी उल्लेखनीय हैं। और प्रत्येक अर्थशास्त्री को तर्कसगत रूप से यह निश्चय करना है कि वह स्वय उस क्षेत्र मे कहाँ तक अपने परिश्रम को बढा सकता है। वह जैसे जैसे केन्द्रीय दृढ स्थिति से विचलित होता जाता है, उसी मात्रा मे अल्पतम विश्वास के साथ विचार व्यक्त कर सकेगा। और वह जीवन की दशाओं तथा कार्य के प्रयोजनो से जिन्हे कम से कम कुछ दशाओ मे वैज्ञानिक प्रणाली के अन्तर्गत नही शामिल किया जा सकता, उतना ही अधिक सम्बन्ध रखता है। जब कभी वह अधिकाश रूप मे परिस्थितियो तथा प्रयोजनों से अपने को व्यक्त रखता है, जिनके स्पष्टीकरण को किसी निश्चित पैमाने से नही नापा जा सकता तो उसे इस पीढी तथा पिछली पीढ़ियों में पर्यवेक्षणों से मिलने वाली लगभग सारी सहायता को तथा देश व विदेश में अन्य लोगों के विचारों को त्याग देना चाहिए। उसे मुख्यतया स्वयं अपने सहज ज्ञान तथा धारणाओं पर आश्रित रहना चाहिए। उसे व्यक्तिगत निर्णय मे पाये जाने वाले संशय के साथ ही विचार करना चाहिए। किन्तु यदि सामाजिक अध्ययन के कम प्रख्यात तथा ज्ञानयोग्य क्षेत्रों का अध्ययन करते समय वह अपने कार्य को सावधानी से और इसकी कमियों की पूरी जानकारी से करे तो इस प्रकार उत्कृष्ट सेवाएँ करेगा।[1]

---

1 जिस प्रकार माइकल एंगिलो (Michael Angelo) के नकलचियों ने केवल उनकी त्रुटियों की नकल की उसी प्रकार कार्लाइल, रस्किन तथा मोरिस आजकल तुरन्त नकल करने वाले लोग तो पाते हैं किन्तु उनमें उनकी सुन्दर प्रेरणाओं तथा अन्तर्ज्ञान का अभाव होता है।

परिशिष्ट (घ)[1]

अर्थशास्त्र में गूढ़ तर्कों का प्रयोग

अर्थशास्त्र में निगमनीय तर्कों की लम्बी शृंखलाएं नहीं होतीं।

§1. विश्लेषण एवं निगमन की सहायता से आगमन द्वारा उचित तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनका विश्लेषण किया जाता है, और उनसे सामान्य कथन या नियम निकाले जाते है। इसके पश्चात् कुछ समय के लिए निगमन का कार्य मुख्य रहता है: इसकी सहायता से इनमे से कुछ सामान्यीकरणों को एक दूसरे के ससर्ग मे लाया जाता है, इनसे कुछ नये तथा अधिक व्यापक सामान्यीकरणों अथवा नियमो को जो कि प्रयोगात्मक होते है निकाला जाता है और इन तथ्यो को संकलित करने, इनका परीक्षण करने तथा इन्हे क्रमबद्ध करने का मुख्य कार्य पुनः आगमन के लिए छोड दिया जाता है और इस प्रकार नये नियम की जाँच-पड़ताल की जाती है और इसे 'प्रमाणित किया' जाता है।

गणितीय प्रशिक्षण के लाभ।

यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र मे निगमनीय तर्क के लम्बे तातो (Trains) के लिए कोई स्थान नही है। किसी भी अर्थशास्त्री ने, यहाँ तक कि रिकार्डो ने भी, इसका प्रयोग नही किया। पहले पहल वास्तव मे यह प्रतीत हो सकता है कि आर्थिक अध्ययनो मे गणितीय सूत्रो के बहुधा प्रयोग होने से इसके विपरीत राय मिलती है। किन्तु खोजबीन करने के बाद यह ज्ञात हो जायेगा कि इस प्रकार का सुझाव, सम्भवतः उस स्थिति को छोडकर जब एक विशुद्ध गणितज्ञ आर्थिक कल्पनाओ का गणितीय मनोविनोद के लिए प्रयोग करता है, भ्रमकारक है। क्योंकि तब उसका कार्य गणितीय प्रणालियो की क्षमता को इस कल्पना पर प्रदर्शित करना है कि आर्थिक अध्ययन से उनके लिए उपयुक्त सामग्री पूरी की जाती रही। वह सामग्री के लिए कोई भी तकनीकी उत्तरदायित्व नही लेता, और बहुधा इस बात से अनभिज्ञ रहता है कि उसकी शक्तिशाली मशीन के भार को सहने के लिए वह सामग्री कितनी अपर्याप्त है। किन्तु गणित मे प्रशिक्षण से कुछ सामान्य सम्बन्धो तथा आर्थिक विचारो की संक्षिप्त प्रक्रियाओ को स्पष्टतया व्यक्त करने के लिए सुगठित एव यथार्थ भाषा में अद्भुत अधिकार प्राप्त होने से सहायता मिलती है। वास्तव मे इसे साधारण भाषा द्वारा भी व्यक्त किया जाता है, किन्तु रूपरेखा समानरूप से सुस्पष्ट नही हो सकती और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि भौतिक समस्याओं को गणितीय प्रणालियो द्वारा व्यक्त करने के अनुभव से आर्थिक परिवर्तन के पारस्परिक प्रभाव को अच्छी तरह समझा जा सकता है और किसी अन्य प्रकार से इतने अच्छे ढग से इसे समझना सम्भव नही प्रतीत होता। आर्थिक सत्यों की खोज करने में गणितीय तर्कों के प्रत्यक्ष प्रयोग से हाल ही मे प्रकांड गणितज्ञो को जो बहुत बडी सहायता मिली है उससे वे सांख्यिकीय औसतों एवं सम्भा-

---

1 भाग 1, अध्याय 3 देखिए।

ध्यताओं के अध्ययन तथा सहसम्बन्धी (correlated) सांख्यिकीय सारणियों के बीच एकरूपता की मात्रा को मापने में समर्थ हुए है।

कल्पना का स्वतन्त्र रूप से उपयोग करना चाहिए।

§2. यदि हम वास्तविकताओं की ओर न देखें तो हम कल्पनाओं द्वारा विशुद्ध शीशे का महल तैयार कर सकते हैं जो वास्तविक समस्याओं से सम्बन्धित पहलुओं पर प्रकाश डालेगा, और यह ऐसे प्रणालियों के लिए रुचिकर सिद्ध होगा जिनकी हमारी तरह कोई भी आर्थिक समस्याएँ नहीं होतीं। इस प्रकार के विनोदप्रिय पर्यटन बहुधा अप्रत्याशित रूपों में सांकेतिक होते है: उनसे मस्तिष्क को अच्छा प्रशिक्षण मिलता हैं: और जब तक इनके उद्देश्य को स्पष्ट रूप से समझा जाता है तभी तक इनसे अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

दृष्टान्त के रूप में यह विचारणीय है कि अर्थशास्त्र के विज्ञान का भौतिक मुद्रा रहित संसार में अस्तित्व रहता है।

दृष्टान्त के रूप मे इस कथन को कि अर्थशास्त्र मे द्रव्य की प्रबल स्थिति का कारण उद्यम करने का उद्देश्य न होकर वस्तुतः इसके द्वारा प्रयोजन को मापने का कारण है, इस भावना से स्पष्ट किया जा सकता है कि द्रव्य का प्रयोजन को मापने के यंत्र के रूप मे प्रयोग किया जाना केवल एक संयोग की बात है, और सम्भवतः यह ऐसा संयोग है जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नही होता। जब कभी हम किसी व्यक्ति को अपने लिए कोई कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं तो साधारणतया हम उसे द्रव्य का भुगतान करते हैं। यह सत्य है कि हम उसकी उदारता अथवा कर्तव्य की भावना को प्रभावित कर सकते है, किन्तु इससे नये प्रयोजनो की पूर्ति न होकर पहले से विद्यमान सुप्त प्रयोजन कार्यरूप मे परिणत होते हैं। यदि किसी नये प्रयोजनों की पूर्ति करनी हो तो साधारणतया यह विचार किया जाता है कि इसको लाभप्रद रूप से करने के लिए कितना द्रव्य चाहिए। वास्तव मे कभी कभी कृतज्ञता अथवा सम्मान अथवा ख्याति से जब कार्य करने की प्रेरणा मिलती है तो यह भी एक नया प्रयोजन ज्ञात होता है: विशेषकर जब यह किसी निश्चित बाह्य प्रदर्शन का स्थायीरूप धारण कर लेता है, जैसे कि धातु के बने हुए सी० बी० (Companion of the Bath को इंगित करने वाले) अक्षरों को कपड़ों पर पहिनने अथवा तारे वाला तकमा पहिनने अथवा नाइट की सर्वोच्च पदवी के द्योतक तकमा पहनने का अधिकार प्राप्त करना। इस प्रकार के भेदभाव प्रदर्शित करने वाली चीजें तुलनात्मक रूप मे बहुत कम पायी जाती है और ये केवल थोड़े से ही कार्यो से सम्बन्धित है, और इनसे उन सामान्य प्रयोजनो को नही मापा जा सकता है जिनसे लोगो के नित्य प्रति के जीवन-कार्य प्रभावित होते है। किन्तु अन्य किसी प्रकार की अपेक्षा इस प्रकार की ख्यातियो से राजनीतिक सेवाएँ बहुधा अधिक सम्मानित होती है: अत. हमे इन्हे द्रव्य के रूप मे मापने की अपेक्षा ख्यातियों के रूप मे मापने की आदत पड़ गयी है। दृष्टान्त के रूप मे हम कहते है कि अ को अपने दल अथवा अपने राज्य को, जैसी भी स्थिति हो, लाभ पहुँचाने के लिए किये गये परिश्रम के लिए सर की उपाधि उचित ही दी गयी, जब कि ब के लिए लिए सर की उपाधि मिलना असम्माननीय था क्योंकि उसने इतना परिश्रम किया था जिससे बैरन का पद मिल सकता था।

यह बिलकुल सम्भव है कि ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां भौतिक वस्तुओं के रूप में निजी सम्पत्ति के बारे मे या जिसे सामान्यतया धन समझा जाता है, किसी ने कभी भी न

मुना हो, किन्तु दूसरों की भलाई की दृष्टि से किये गये प्रत्येक कार्य के लिए सार्वजनिक सम्मानों के रूप मे मिलने वाले पुरस्कार को उपाधि की सारणियों द्वारा मापा गया है। ऐसे यदि इन सम्मानों को किसी बाह्य अधिकारी के हस्तक्षेप के बिना एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सके तो ये प्रयोजनो की शक्ति को ठीक उसी सरलता एव यथार्थता के साथ माप सकते हैं जैसे कि हमारे यहाँ द्रव्य द्वारा मापा जाता है। ऐसे क्षेत्र मे इस ग्रन्थ से बहुत कुछ मिलता जुलता एक ग्रन्थ अर्थ सिद्धान्त पर लिखा जा सकता है, यद्यपि इसमे भौतिक वस्तुओं का बहुत-थोड़ा वर्णन किया गया हो, और द्रव्य का तो कही भी वर्णन न हो।

इस बात पर अधिक जोर देना बिलकुल महत्वहीन हो सकता है, किन्तु ऐसा नही है। क्योंकि लोगो के मस्तिष्कों मे प्रमुखरूप मे पाये जाने वाले प्रयोजनों के अर्थ विज्ञान मे मापदण्ड, तथा इच्छा के अन्य एव उन्नतर लक्ष्यों की अवहेलना कर भौतिक धन को ही पूर्णतया मानने के बीच भ्रम मे डालने वाली बातें उत्पन्न हो गयी हैं। आर्थिक दृष्टिकोणो से मापदण्ड के लिए केवल ये ही शर्तें पूरी होना चाहिए कि ये निश्चित और हस्तान्तरित हो। इसके भौतिक रूप ग्रहण करने मे व्यावहारिक सरलता रहेगी, किन्तु इसके लिए इस रूप मे उपलब्ध होना आवश्यक नही।

किन्तु गम्भीर कार्य में वास्तविकताओं को भलीभाँति ग्रहण करना चाहिए।

§3. गूढ तथ्यो की खोज करना अच्छा है, बशर्ते कि इसे इसके उचित स्थान तक सीमित रखा जाय। किन्तु इग्लैंड तथा अन्य देशों मे अर्थशास्त्र के कुछ लेखको ने मानवीय आचरण की प्रवृति के विस्तार का, जिससे अर्थशास्त्र सम्बन्धित है, कम मूल्य पर लगाया है, और जर्मनी के अर्थशास्त्रियो ने इस बात पर जोर देकर अच्छी सेवाएँ अर्पित की हैं। किन्तु उन्हें यह कल्पना करने मे भ्रम उत्पन्न हो गया कि आंग्ल अर्थशास्त्र के सस्थापको ने इस बात की उपेक्षा की। अग्रेजों की यह आदत है कि वे बहुत कुछ पाठको की साधारण समझ के लिए छोड़ देते हैं, और इस सम्बन्ध मे वाक्य सयम आवश्यकता से अधिक किया गया है, और इस कारण देश के भीतर तथा बाहर बहुधा गलत धारणा उत्पन्न हुई है। इसके कारण लोगों ने अर्थशास्त्र की नींव को इसकी वास्तविक स्थिति की अपेक्षा अधिक सकुचित माना और इसे जीवन की वास्तविक दशाओ से वास्तविकता की अपेक्षा कम घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित समझा।

जर्मनी के अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक प्रयोजनों के विस्तार पर जोर देकर अच्छी सेवा अर्पित की है।

इस प्रकार मिल के इस कथन को कि 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था मे मनुष्य का पूर्णरूप से सम्पत्ति अर्जित करने तथा उसका उपभोग करने मे व्यस्त व्यक्ति के रूप मे अध्ययन किया जाता है,' प्रमुखता मिली है (*Essays*, पृष्ठ 138, तथा पुनः Logic, भाग VI, अध्याय IX, अनुभाग 3)। किन्तु यह विस्मृत कर दिया जाता है कि वह वहाँ पर आर्थिक समस्याओं के गूढ़ विषय के प्रसग मे लिखते है जिस पर उन्होंने एक बार वास्तव मे विचार किया था, किन्तु फिर उन्होंने उस पर न लिखकर "राजनीतिक अर्थव्यवस्था, तथा सामाजिक दर्शन के कुछ प्रयोग" पर लिखना अधिक उचित समझा। यह भी विस्मृत किया जा चुका है कि वह इसके आगे यह लिखते हैं कि "मनुष्य के जीवन मे सम्भवतः कोई भी ऐसा कार्य नही है जिसमे वह धन की इच्छा मात्र के अतिरिक्त किसी प्रभाव से न तो तुरन्त ही प्रभावित होता है और न दीर्घकाल मे ही प्रभावित होता है", और लोग यह भूल चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं

पर विचार करते समय उन्होने धन के अतिरिक्त अनेक प्रयोजनो को निरन्तर ही ध्यान मे रखा (पहले दिये गये परिशिष्ट ख 7 को देखिए)। कुछ भी हो, आर्थिक प्रयोजनों से सम्बन्धित उनके विवेचनों का सार तथा उनकी प्रणाली दोनो ही उनके जर्मनी के समकालीन अर्थशास्त्रियो, और उल्लेखनीय रूप से हरमन (Hermann) से निम्न श्रेणी की थी। क्नीज (Knies) का Politische Ekconomie) मे यह शिक्षात्मक तर्क मिलता है कि क्रय न किये जा सकने वाले, मापे न जा सकने वाले आनन्द समयानुसार बदलते रहते है, और सभ्यता के विकास के साथ बढ़ते जाते है। और अंग्रेज पाठक इस सम्बन्ध मे साइम (Syme) की Outlines of an Industrial Science को देखे।

वेगनर द्वारा प्रयोजनों का वर्गीकरण।

वेगनर के स्मरणीय ग्रन्थ के तृतीय सस्करण मे आर्थिक प्रयोजनो (Motive im wirthschaftlichen Handeln) के विश्लेषण के मुख्य मदो को यहाँ पर देना उचित होगा। वह उनको अहवादी तथा परमार्थवादी प्रयोजनो मे विभाजित करते है। अहंवाद सम्बन्धी प्रयोजनों की सख्या चार है। इससे सबसे पहला तथा सबसे कम विच्छिन्न होने वाला प्रयोजन स्वयं अपने आर्थिक हितो के लिए प्रयत्न करना है, और स्वयं अपनी ही आर्थिक जरूरतों की चिन्ता करना है। इसके पश्चात् दण्ड मिलने का भय, तथा पुरस्कार प्राप्त करने की आशा का स्थान है। तीसरी श्रेणी के अन्तर्गत सम्मान प्राप्त करने तथा मान्यता (Geltungsstreben) के लिए यत्नशील रहने का विचार आता है जिसमे अन्य लोगो का नैतिक समर्थन प्राप्त करने, तथा शर्म एवं घृणा का भय भी शामिल है। अहवाद सम्बन्धी प्रयोजनो मे व्यवसाय प्राप्त करने की उत्कण्ठा, कार्य करने के आनन्द प्राप्त करने, तथा स्वय कार्य तथा इसके चारो ओर से मिलने वाले आनन्दो को जिसमे "आखेट करने के आनन्द" सम्मिलित है, प्राप्त करना सबसे अन्तिम प्रयोजन है। परमार्थ सम्बन्धी प्रयोजन वह उत्तेजक शक्ति है जिसके कारण आन्तरिक भावनाओ से मनुष्य नैतिक कार्य को करने के लिए प्रेरित होता है, अपने कर्तव्य को समझता है और स्वय आन्तरिक रूप से दोषारोपित होने, अर्थात् आत्मा को ठेस पहुँचने के भय से भयभीत होता है। अपने विशुद्ध रूप मे यह प्रयोजन 'विवेक का आदेश' प्रतीत होता है जिसका प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करने के कारण पालन करता है कि उसकी आत्मा मे विभिन्न प्रकार से कार्य करने के लिए आदेश देने की शक्ति है, और यह सही आदेश होता है........। निस्सन्देह इस आदेश का पालन निरन्तर आनन्द के अनुभवो (Lustgefuhle) से सम्बन्धित है और इसका पालन न करने का सम्बन्ध कष्ट प्राप्त करने से है। अब यह हो सकता है, और बहुधा होता है, कि ये भावनाएँ विवेक के आदेश की भांति, अथवा इससे भी अधिक दृढ़ता के साथ, किसी कार्य को करने या न करने के लिए हमें प्रेरित करे या इसमें हिस्सा बटायें। और जहाँ तक इस प्रकार कार्य करने का प्रश्न है इस प्रयोजन मे भी अहवादी तत्त्व रहता है, या कम से कम ये दोनों एक साथ मिल जाते हैं।

परिशिष्ट (ङ)[1]

पूँजी की परिभाषाएं

व्यापारिक पूँजी शब्द के प्रयोग करने से उत्पन्न कठिनाइयों पर पहले ही विचार किया जा चुका है।

§1. भाग 2, अध्याय 4, मे यह बतलाया गया था कि साधारण व्यवसाय मे पूँजी शब्द, अर्थात् व्यापारिक पूँजी के प्रयोग के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो के पास सुस्थापित प्रथा का अनुसरण करने के अतिरिक्त कोई भी विकल्प नही होता। इस प्रकार के प्रयोग मे बडी तथा स्पष्ट असुविधाएँ उठानी पडती है। दृष्टान्त के रूप मे क्रीडा-नौकाओ के निर्माण करने वाले की क्रीड़ा-नौकाओं को हम पूँजी मानने के लिए वाध्य हो जाते है, किन्तु बग्घी को पूँजी मे शामिल नही करते। अतः यदि वह वर्ष भर बग्घी को किराये पर लेता रहा हो, और ऐसा करते रहने की अपेक्षा एक क्रीड़ा-नौका किसी बग्घी बनाने वाले को जो कि इसे किराये पर लेता रहा हो, बेच दे और अपने निजी उपयोग के लिए एक बग्घी खरीद ले तो परिणाम यह होगा कि देश की कुल पूँजी के भण्डार मे एक क्रीडा-नौका तथा एक बग्घी की कमी हो जायेगी। यद्यपि कोई भी वस्तु नष्ट नही हुई है और यद्यपि बचत की वस्तुएँ वही है, तथा उनसे पहले की भाँति सम्बन्धित व्यक्ति तथा समाज को बडे लाभ है, और सम्भवतः पहले से भी अधिक बडे लाभ होते है।

इसमें उस सारी सम्पत्ति को सम्मिलित नहीं किया जाता जिससे श्रम के रोजगार में वृद्धि होती है।

यह बात भी सत्य नही है कि पूँजी को सम्पत्ति के अन्य रूपों से इस कारण भिन्न समझा जाता है कि इसमे श्रम के लिए रोजगार प्रदान करने की शक्ति अधिक है। वास्तव मे जब क्रीडा-नौकाएँ तथा बग्घियाँ व्यापारियो के पास होती है और इस प्रकार पूँजी मे सम्मिलित की जाती है तो क्रीड़ा-नौका चलाने या बग्घी चलाने मे उस स्थिति की अपेक्षा कम श्रमिको को रोजगार मिलता है जब कि क्रीडा-नौकाएँ अथवा बग्घियाँ व्यक्तिगत होती है और पूँजी मे शामिल नही की जाती है। व्यावसायिक भोजन-गृहो तथा नानबाई की दुकानो (जहाँ सभी उपकरणो की पूँजी मे गणना की जाती है) की व्यक्तिगत पाकशालाओ (जहाँ किसी भी चीज की पूँजी मे गणना नही की जाती) के स्थान पर प्रतिस्थापना करने से श्रम को मिलने वाले रोजगार मे वृद्धि होने की अपेक्षा कमी होगी। एक व्यावसायिक मालिक के नीचे काम करने मे यह सम्भव है कि कर्मचारियो की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अधिक मिले, किन्तु यह बिलकुल निश्चित है कि उनको भौतिक आराम बहुत कम मिलेगा और एक अधिक शिथिल गैर-सरकारी शासन के अन्दर काम करने की अपेक्षा अपने कार्य के लिए अनुपात मे कम मजदूरी मिलेगी।

इस शब्द के इस प्रयोग के

किन्तु साधारणतया इन असुविधाओ को ध्यान मे नही रखा जाता, और इस शब्द के इस प्रकार के प्रयोग के प्रचलन मे अनेक कारणो का हाथ रहा है। इनमे से एक कारण यह है कि गैर-सरकारी मालिको तथा उनके कर्मचारियो के बीच के सम्बन्ध

[1] पृष्ठ 76 देखिए।

मालिकों तथा उनके द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्तियों या सामान्यतया व्यक्त किये जाने वाले पूँजी तथा श्रम के मध्य होने वाले झगड़ों की भाँति कदाचित् ही सामरिक तथा व्यवहार कुशल होते हैं। इस विषय पर कार्लमार्क्स तथा उनके अनुयायियों ने जोर दिया था। उन्होंने स्पष्टतया पूँजी की परिभाषा को इस पर आधारित किया। वे यह मानते है कि केवल वही वस्तु पूँजी है जो एक व्यक्ति (या व्यक्तियों के समूह) के स्वामित्व मे उत्पादन का साधन हो और सामान्यतया दूसरो के लाभ के लिए मजदूरी पर काम करने वाले किसी तीसरे व्यक्ति के श्रम द्वारा इस प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करने मे लगायी जाती हो कि पहले को दूसरो को लूटने अथवा उनका शोषण करने का पूरा अवसर मिल जाता हो।

प्रचलन में आने के कारण।

दूसरा कारण यह है कि **पूँजी** शब्द का प्रयोग मुद्रा तथा श्रम बाजार दोनो मे सुविधाजनक है। व्यापारिक पूँजी स्वभावत ऋणो से सम्बन्धित है। कोई भी व्यक्ति जब यह देखता है कि व्यापारिक पूँजी के उपयोग के लिए अच्छा अवसर है तो वह अपने अधिकार मे इसकी वृद्धि करने के लिए ऋण लेने मे सकोच नही करता। इस कार्य मे व्यावसायिक सौदों की साधारण अवधि मे वह अपने फर्नीचर अथवा अपनी निजी बग्घी की अपेक्षा अपनी व्यापारिक पूँजी को ही अधिक सरलता तथा अधिक निरन्तरता के साथ बन्धक मे रख सकता है। अन्त मे एक व्यक्ति अपनी व्यापारिक पूँजी के लेखाजोखा को अधिक सावधानी के साथ तैयार करता है। वह मूल्य ह्रास का स्वाभाविक रूप से आयोजन करता है: और इस प्रकार वह अपनी सम्पत्ति को यथावत् रखता है। वास्तव मे एक व्यक्ति जो वर्ष मे एक बग्घी को किराये पर लेता रहा हो वह रेल के स्टाक की बिक्री के माल के साथ इसे खरीद सकता है जिसके लिए किराये पर लेने की अपेक्षा बहुत कम ब्याज देना पडता है। यदि वह तब तक वार्षिक आय को संचित होने दे जब तक कि बग्घी क्षीण न हो जाय तो उसकी संचित आय एक नयी बग्घी खरीदने के लिए पर्याप्त होगी और इस प्रकार उसकी पूँजी का कुल भण्डार इस परिवर्तन से बढ़ जायेगा, किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि वह ऐसा न करे: जब कि व्यापारी जब तक उसका मालिक रहा हो अपने व्यवसाय की साधारण अवधि मे स्थानापन्न करने के लिए प्रबन्ध करता रहा था।

§2. अब हम सामाजिक दृष्टिकोण से पूँजी की परिभाषाओं पर विचार करेंगे। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि अर्थशास्त्र के गणितीय विवरणो के अधिकाश लेखकों ने सबसे तर्कपूर्ण स्थिति को अपनाया है और इसके अनुसार सामाजिक 'पूँजी' तथा 'सामाजिक सम्पत्ति' समान है, यद्यपि इसके कारण वे एक उपयोगी शब्द से वंचित हो गये हैं। किन्तु प्रारम्भ करते समय जो भी परिभाषा एक लेखक अपनाता है, वह यह देखता है कि उसके द्वारा इसमे शामिल की गयी अनेक बाते बाद मे उसके सामने आने वाली समस्याओं मे विभिन्न प्रकार से प्रवेश करती हैं। और यदि उसकी परिभाषा विशुद्ध हो, तो वह पूँजी के असंख्य तत्त्वों के विषय मे उत्पन्न विवाद के आधार को स्पष्ट करने के लिए परिशिष्ट जोड़ने के लिए बाध्य हो जाता है, और यह स्पष्टीकरण सार रूप मे अन्य लेखकों के स्पष्टीकरणों से बहुत अधिक मिलता जुलता है। इस प्रकार अन्ततोगत्वा उनमे एक सामान्य मिलाप हो जाता है। और पाठगण चाहे

सामाजिक पूँजी के सीमांकन में अन्तर होने के कारण जितने भ्रम उत्पन्न होने की आशा की जाती है

उससे कम ही भ्रम उत्पन्न होता है।

कोई भी मार्ग अपनाएँ बहुत कुछ समान ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। यद्यपि इसके रूपों तथा शब्दों की भिन्नता मे निहित सार में समता ढूंढ निकालने में कुछ कष्ट वास्तव मे होता है। इस प्रकार प्रारम्भ करने की विभिन्नता से जितनी बुराई की आशा की जाती है उससे कम ही बुराई होती है।

सम्पत्ति को उत्पादन का साधन मानते समय पूंजी शब्द का प्रयोग करने में हम परम्परा का अनुसरण करते है।

आगे, शब्दों मे इन अन्तरों के बावजूद भी अनेक पीढियों तथा बहुत से देशों के अर्थशास्त्रियों ने पूंजी की जो परिभाषा दी है उसमें अनुबन्धता मिलती है। यह सत्य है कि कुछ ने पूंजी की 'उत्पादकता' पर, और कुछ ने इसकी 'पूर्वेक्षा' पर अधिक जोर दिया है, और इन शब्दो मे से कोई भी शब्द पूर्णरूप मे यथार्थ नहीं है, या विभाजन की किसी कडी रेखा को अंकित नहीं करता। किन्तु यद्यपि ये कमियाँ यथार्थ वर्गीकरण के लिए घातक है, यह तो एक गौण महत्व का विषय है। मनुष्य के कार्यों से सम्बन्धित चीजों का किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर यथार्थता के साथ कभी भी वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। वस्तुओं की निश्चित सूचियों को पुलिस अधिकारी अथवा आयात करों को वसूल करने वालों के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ निश्चित श्रेणियो मे रखा जा सकता है किन्तु इस प्रकार की सूचियाँ स्पष्ट रूप से काल्पनिक होती है। हमें आर्थिक परम्परा की भावना को, न कि अक्षर को बनाये रखने मे सबसे अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। और भाग 2 अध्याय 4 के अन्त मे दी गयी सलाह के अनुसार किसी भी बुद्धिमान लेखक ने कभी भी पूर्वेक्षा अथवा उत्पादकता के पहलू की अवहेलना नही की है किन्तु कुछ लोगो ने एक ओर अधिक प्रकाश डाला है और अन्य लोगों ने दूसरी ओर, जब कि दोनों ही दशाओ मे सीमांकन की निश्चित रेखा खीचने मे कठिनाई हुई है।

सामाजिक पूंजी भविष्य के लिए साधन जुटाना है।

अब हम पूंजी पर वस्तुओ के सग्रहागार के रूप में, मनुष्यों के प्रयत्नों तथा त्याग के रूप मे विचार करेंगे, जिसे वर्तमान की अपेक्षा भविष्य में लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से मुख्यतया उपयोग किया जाता है। यह विचार तो स्वयं निश्चित है किन्तु तब भी इसकी सहायता से एक निश्चित वर्गीकरण नही किया जा सकता। यह विचार लम्बाई के विचार की भाँति निश्चित है किन्तु इसकी सहायता से हम केवल काल्पनिक ढंग के अतिरिक्त लम्बी दीवालो को छोटी दीवालो से अलग नहीं कर सकते। जंगली व्यक्ति जब अपने को रात्रि मे सुरक्षित रखने के लिए पेड की शाखाओं को एक साथ रखता है तो वह कुछ पूर्वेक्षा प्रदर्शित करता है। वह जब खम्भों तथा खालो से तम्बू बनाता है तो इससे अधिक पूर्वेक्षा दिखाता है, और जब वह एक लकड़ी की झोपडी बनाता है तो इसे और भी अधिक प्रदर्शित करता है: सभ्य व्यक्ति ईंट अथवा पत्थर के बने पक्के मकानों की झोपडियों के स्थान मे प्रतिस्थापना करने पर बढी हुई पूर्वेक्षा प्रदर्शित करता है। ऐसी वस्तुओ को पृथक करने के लिए जो वर्तमान की अपेक्षा भविष्य मे मिलने वाले सन्तोष के लिए उत्पादन की जाती हैं, कहीं भी विभाजन की रेखा खीची जा सकती है. किन्तु यह काल्पनिक एवं अस्थिर होगी। जिन्होंने विभाजन की एक रेखा को ढूँढ निकाला है वे अपने को अस्थिर अवस्था मे पाते हैं। और जब तक वे सम्पूर्ण सचित सम्पत्ति को पूंजी मे शामिल नहीं कर लेते तब तक उन्हे ऐसा स्थिर स्थान नहीं मिलता जहाँ वे इस प्रकार का पृथक्करण कर सकें।

फ्रान्स के अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस न्याय-संगत स्थिति का सामना किया। इन लोगों ने कृषि अर्थशास्त्रियों द्वारा निर्धारित मार्ग का अनुसरण करते हुए पूँजी शब्द का 'सम्पूर्ण संचित धन' शब्द (valeurs accumulees) अर्थात् उत्पादन की उपभोग से अधिकता को व्यक्त करने के लिए बहुत कुछ उसी अर्थ में प्रयोग किया जिसमें एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों ने स्टाक शब्द का प्रयोग किया। और यद्यपि अभी हाल में उन्होंने इस शब्द को अधिक संकुचित आंग्ल अर्थ में प्रयोग करने की निश्चित प्रवृत्ति दिखायी है, फिर भी जर्मनी तथा इंग्लैंड में कुछ प्रकांड विचारकों ने फ्रान्सीसियों की अधिक पुरानी एवं अधिक व्यापक परिभाषा की ओर अपना पर्याप्त झुकाव दिखाया है। यह बात विशेषकर उन लेखकों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है जिन्होंने टर्गो की भाँति गणितीय विचार पद्धति की ओर अनुरक्ति दिखायी है। इनमें हर्मन, जेवन्स, वालरा, तथा प्रो० पैरेटो, तथा प्रो० फिशर के लेखों में इस शब्द के व्यापक अर्थ को अपनाने के पक्ष में विद्वतापूर्ण तर्क निहित हैं और इनमें उपयोगी सलाह मिलती हैं। भावमय एवं गणितीय दृष्टिकोण से उनकी स्थिति निर्विवाद है। किन्तु वह साधारण भाषा में वास्तविक विवेचन करने की आवश्यकता को बहुत कम ध्यान में रखते हैं, और वे बेगहो की इस चेतावनी की अवहेलना करते हैं कि 'जटिल विषयों में विभिन्न प्रकार के अर्थों को निर्धारित रूप में ही प्रयोग किये जाने वाले इने गिने शब्दों में व्यक्त नहीं करना चाहिए।'[1]

सामाजिक

§3. पूँजी को कड़े रूप से परिभाषित करने के अधिकांश प्रयास, चाहे वे इंग्लैंड

1 पृष्ठ 45 में दिये गये फुटनोट को देखिए।

हरमन कहते थे (Staatswirthschaftliche Untersuchungen, अध्याय III, तथा V) कि पूँजी में वे वस्तुएँ शामिल हैं 'जो ऐसी संतुष्टि के चिरस्थायी साधन हैं जिनका विनिमय मूल्य हो।' वालरस (Elements d' Economie Politique, पृष्ठ 197) पूँजी को इस प्रकार परिभाषित करते हैं कि इसमें 'प्रत्येक प्रकार की सामाजिक सम्पत्ति जिसका बिलकुल ही उपभोग न हुआ हो, या जिसका बहुत धीरे धीरे उपभोग किया जाता हो, हर एक प्रकार का तुष्टिगुण जिसकी मात्रा सीमित हो, जो एक बार उपयोग किये जाने पर भी विद्यमान रहती है या एक शब्द में, जिसका एक से अधिक बार प्रयोग किया जा सकता हो, जैसे कि एक मकान, एक प्रकार का फर्नीचर,' शामिल है।

नीज ने पूँजी को वस्तुओं का वह विद्यमान भण्डार कह कर परिभाषित किया है 'जो भविष्य में माँग की संतुष्टि के लिए प्रयोग में लाया जाता है।' और प्रो० निकल्सन कहते हैं : 'ऐडम स्मिथ द्वारा बतलायी गयी तथा नीज द्वारा विकसित की गयी विचार पद्धति से यह निष्कर्ष निकलता है : 'पूँजी भविष्य की जरूरतों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में संतुष्टि के लिए अलग रखी गयी सम्पत्ति है।' किन्तु यह सारा वाक्यांश, और विशेषकर 'अलग रखी गयी' शब्दों में निश्चितता का अभाव दिखायी देता है, और इसमें इस समस्या की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा इनसे बचकर निकलने का प्रयत्न किया गया है।

पूंजी उत्पादन का एक साधन है और इससे पहले तो श्रम को सहायता एवं सहारा मिलता है।

या अन्य देशों में किये गये हों, मुख्यतया इसको उत्पादकता से सम्बन्धित हैं और इसमें इसकी पूर्वेक्षा की तुलनात्मक रूप से अवहेलना की गयी है। इन प्रयासों में सामाजिक पूंजी का अभिग्रहण (Erwerbskapital) या उत्पादन की आवश्यक वस्तुओं (Productions-mittel Vorrath) का भण्डार माना गया है। किन्तु इस सामान्य मत पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

अधिक पुरानी आंग्ल प्रथाओ के अनुसार पूंजी मे वे चीजें सम्मिलित हैं जो श्रमिक को उत्पादन में सहारा या सहायता देती हैं: अथवा जैसा कि अभी हाल ही में कहा गया है, इसमें वे चीजें शामिल हैं जिनके बिना समान कुशलता के साथ उत्पादन को चालू नही रखा जा सकता, किन्तु जो प्रकृति की उन्मुक्त देन नही हैं। इसी दृष्टिकोण से उपभोग पूंजी और सहायक पूंजी मे विभेद किया गया है और जिसे कि हम पहले देख चुके हैं।

पूंजी के बारे मे इस प्रकार का दृष्टिकोण श्रम बाजार के कार्यों का प्रतिफल है, किन्तु यह कभी भी पूर्णरूप से संगत नही रहा है। क्योंकि इसमें मालिकों द्वारा कर्मचारियों को उनके कार्य के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे दी जाने वाली सभी चीजें जिन्हें मजदूरी पूंजी या पारिश्रमिक सम्बन्धी पूंजी कहते हैं—पूंजी के अन्तर्गत शामिल की जाती हैं, किन्तु फिर भी इसमे अपने ही पालन के लिए या वास्तु शिल्पियों, अभियन्ताओं तथा अन्य व्यावसायिक व्यक्तियों के लिए आवश्यक किसी भी वस्तु को सम्मिलित नही किया जाता। किन्तु सगति के लिए इसमे श्रमिकों के सभी वर्गों की कुशलता के लिए आवश्यक वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए था, और शारीरिक श्रम करने वाले वर्गों तथा अन्य श्रमिकों की विलासिता की चीजों को इसमे शामिल नही करना चाहिए था।

यदि यह किसी प्रकार इस न्यायसंगत निष्कर्ष तक पहुँचा दी गयी होती तो मालिकों तथा उनके द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्तियों के सम्बन्धों के विवेचन मे इसका कुछ कम मुख्य भाग होता।[1]

---

1 ऐडम स्मिथ के आंग्ल अनुयायियों द्वारा दी गयी पूंजी की मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार है:—रिकार्डो ने कहा. 'पूंजी किसी देश की सम्पत्ति का वह भाग है जिसे उत्पादन में लगाया जाता है और यह भोजन, वस्त्र, औजार, कच्चेमाल, मशीनों इत्यादि से जो श्रम को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है, बनी होती हैं।' माल्थस ने कहा: 'पूंजी किसी देश के भण्डार का वह अंश है जिसे सम्पत्ति के उत्पादन एवं वितरण में लाभ उठाने के लिए रखा जाता है या लगाया जाता है।' सीनियर ने कहा: 'पूंजी सम्पत्ति का, मानवीय श्रम के परिणाम का एक भाग है जिसे सम्पत्ति के उत्पादन अथवा वितरण के काम में लाया जाता है।' जान स्टुवर्ट मिल ने कहा: 'पूंजी उत्पादन के लिए जो कार्य करती है वह यह है कि इससे काम के लिए आवश्यक शरण, संरक्षण, औजार तथा सामग्री प्राप्त होती है, तथा कार्य की अवधि में श्रमिकों को भोजन मिलता है अथवा उनका पालन होता है। इस प्रकार के उपयोग में जो भी चीजें लायी जाती

कुछ देशों में, विशेषकर जर्मनी तथा आस्ट्रिया में, पूँजी को (सामाजिक दृष्टिकोण से) सहायक अथवा साधक पूँजी तक सीमित रखने की कुछ प्रवृत्ति रही है। यह तर्क दिया जाता है कि उत्पादन तथा उपभोग के बीच भेद को स्पष्ट रखने के लिए किसी भी ऐसी चीज को उत्पादन का साधन नहीं मानना चाहिए जिसका प्रत्यक्षरूप से उपभोग किया जाता है। किन्तु इस बात के लिए कोई अच्छा तर्क नहीं मिलता कि किसी वस्तु को दुहरी क्षमता मे क्यो नही मानना चाहिए।[1]

दूसरे इससे श्रम को सहायता मिलती है किन्तु सहारा नहीं।

इसके बाद यह तर्क दिया जाता है कि वे चीजे जो प्रत्यक्षरूप मे मनुष्य को अपनी सेवाएँ अर्पित नही करती, किन्तु उसके उपयोग की अन्य चीजो को तैयार करने मे हिस्सा बँटाती है, उनकी भी एक ठोस श्रेणी होती है, क्योकि उनके मूल्य का अकन उनकी सहायता द्वारा तैयार का गयी वस्तुओ के मूल्य से किया जाता है। इस समूह के लिए भी एक नाम रखने के विषय मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। किन्तु इसमे सशय है कि क्या इसके लिए पूँजी एक अच्छा शब्द है, और इसमे भी सशय है कि यह समूह प्रथम दृष्टि मे जितना ठोस दिखायी देता है क्या उतना ही ठोस है भी।

इस प्रकार साधक वस्तुओ की हम ऐसी परिभाषा दे सकते है जिससे इस मे ट्राम तथा अन्य चीजो को शामिल किया जा सके जिनका मूल्य इनके द्वारा अर्पित की जाने वाली व्यक्तिगत सेवाओ के कारण होता है। अथवा हम उत्पादक श्रम के वाक्याश के पुराने प्रयोग के उदाहरण को अपना सकते है, और इस बात पर जोर दे सकते हैं कि केवल उन्ही वस्तुओ को उचितरूप से साधक वस्तु मानना चाहिए जिनके कार्य से प्रत्यक्षरूप मे एक भौतिक वस्तु पैदा की जा सके। पहले दी गयी परिभाषा शब्द के इस प्रयोग को वस्तुतः पिछले अनुभाग मे दिये गये विवेचन के समीप

हैं वे पूजी है।' पूजी के इस विचार पर हमें मजदूरी-निधि सिद्धान्त के सम्बन्ध में पुनः प्रकाश डालना होगा। परिशिष्ट ञ को देखिए।

जसा कि हेल्ड (Held) ने मत प्रकट किया है, पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में जो व्यावहारिक समस्याएँ प्रधान थीं उनसे पूजी के इस प्रकार के विचार की ओर सकेत मिलता है। लोग इस बात पर जोर देने के लिए उत्सुक थे कि श्रमिक वर्गों का कल्याण पहले से ही रोजगार तथा जीवन-यापन के साधन प्रदान करने पर निर्भर है: और लोग सरक्षण की पद्धति तथा पुराने निर्धनता सम्बन्धी कानून के अपव्यय के भीतर काल्पनिक रूप से रोजगार प्रदान करने के प्रयास के संकटों पर बल देना चाहते थे। हेल्ड के दृष्टिकोण को केनन के सांकेतिक एवं रोचक Production and Distribution, 1776-1848 में बड़े पाण्डित्य के साथ विकसित किया गया है: यद्यपि उनके द्वारा किये गये विश्लेषणों की अपेक्षा प्राचीन अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये कुछ वक्तव्यों में अधिक योग्य तथा अधिक तर्कसंगत विश्लेषण निहित है।

1 इस सम्बन्ध में दिये गये एक तर्क, तथा सारे विषय की कठिनाइयों के उत्कृष्ट विवेचन के लिए वागनर के Grundlegung, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 315-6 को देखिए।

जाती है और इसकी ही भाँति अस्पष्ट है। बाद की परिभाषा कुछ अधिक निश्चित है: किन्तु जहाँ प्रकृति ने कोई भी भेद-भाव नहीं रखा है वहाँ यह एक काल्पनिक भेद रखती है, और वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए उत्पादक श्रम की पुरानी परिभाषा की भाँति ही अनुपयुक्त है।

सारांश यह है: अमूर्त दृष्टिकोण से फ्रान्सीसियों की परिभाषा जिसकी प्रो० फिशर तथा अन्य लोगों ने हिमायत की थी, सर्वमान्य है। किसी व्यक्ति का कोट एक फैक्टरी की भाँति विगत के प्रयत्नों एवं त्याग का प्रतिफल है जिससे भविष्य में तृप्ति मिलती है, जब कि इन दोनों से मौसम में तुरन्त ही रक्षा होती है। यदि हम किसी ऐसी परिभाषा को ढूँढ़ने की चेष्टा करें जो यथार्थवादी अर्थशास्त्र को बाजार-स्थल के सम्पर्क में रखे तो बाजार में पूँजी गिनी जाने वाली वस्तुओं की कुल मात्रा को सतर्कतापूर्वक ध्यान में रखना चाहिए और ऐसी वस्तुओं में इन्हें शामिल नहीं करना चाहिए जो कि मध्यवर्ती (intermediate) उत्पादन हों। जहाँ संशय उत्पन्न हो वहाँ परम्परा द्वारा निर्धारित मार्ग अपनाना चाहिए। इन विचारों के फलस्वरूप ही पूँजी की व्यापारिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, दुहरी परिभाषा अपनायी गयी।[1]

---

1 भाग 2, अध्याय 4 अनुभाग 1, 5 देखिए। पूँजी की उत्पादकता का इसकी माँग के साथ, तथा इसकी पूर्ति का इसके सम्भरण के साथ सम्बन्ध बहुत समय से मनुष्यों के मस्तिष्कों में सुप्त अवस्था में रहा है, यद्यपि यह अन्य विचारों से जिनमें से बहुत से अब गलत धारणाओं पर आधारित प्रतीत होते हैं, बहुत ढका हुआ रहा है। कुछ लेखकों ने सम्भरण के पहलू पर अधिक जोर दिया है जब कि अन्य लोगों ने माँग पर अधिक बल दिया है: किन्तु इनमें अन्तर इन दो पहलुओं को दिये जाने वाले महत्व के अन्तर से कुछ ही अधिक है। जिन लोगों ने पूँजी की उत्पादकता पर जोर दिया है वे व्यक्तियों की भविष्य के लिए बचत करने तथा वर्तमान आवश्यकताओं को त्याग करने की अनिच्छा से अपरिचित नहीं थे। और दूसरी ओर, जिन लोगों ने भविष्य के लिए वर्तमान समय की आवश्यकताओं के स्थगन में होने वाले त्याग की दिशा एवं मात्रा पर मुख्यतया विचार किया है उन्होंने ऐसे तथ्यों को कि उत्पादन के औजारों के सचय करने से मानव जाति को अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए बहुत अधिक शक्ति प्राप्त होती है, स्पष्ट माना है। संक्षेप में यह विश्वास करने का कोई भी कारण नहीं कि प्रो० बाहम बावर्क ने 'उत्पादकता के सरल सिद्धान्तों' 'पूँजी एवं ब्याज के प्रयोग सम्बन्धी सिद्धान्तों' के जो लेख प्रस्तुत किये हैं उन्हें स्वयं अधिक प्राचीन लेखक स्वतन्त्र विभिन्न प्रकार की स्थितियों का सुसंगठित एवं पूर्ण प्रदर्शन मान लेते। यह भी प्रतीत होता है कि वह एक स्पष्ट एवं संगत परिभाषा को ढूँढ़ने में सफल नहीं हुए। वह कहते हैं कि 'सामाजिक पूँजी उत्पादन की वह राशि है जिससे आगे उत्पादन किया जाता है, या संक्षेप में मध्यवर्ती वस्तुएँ पैदा की जाती हैं।' वह औपचारिक रूप से 'निवासगृहों तथा अन्य प्रकार के मकानों को जिनसे तुरन्त ही आनन्द की शिक्षा या संस्कृति के किसी उद्देश्य की पूर्ति की जाती हो,'

इसमें सम्मिलित नहीं करते (भाग 1, अध्याय 6)। संगति के लिए उन्हें होटलों, ट्रामों, यात्रीजहाजों तथा रेलों, इत्यादि को, और सम्भवतः यहाँ तक कि निजी निवास-गृहों में बिजली के प्रकाश को पहुँचाने वाले संयंत्र को भी शामिल नहीं करना चाहिए, किन्तु इसके कारण पूंजी के विचार में कोई भी व्यावहारिक रुचि नहीं रहेगी। ड्रामकार पूंजी में शामिल करने और सार्वजनिक रंगमंच को इसमें शामिल न करने का कोई अच्छा आधार दिखायी नहीं देता। इस हिसाब से स्वदेशी वस्त्रों को बनाने वाली मिलों को इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकेगा और फीता बनाने वाली मिलों को इससे परे नहीं रखा जा सकेगा। इस विरोध के उत्तर में वह पूर्णतर्क के साथ यह निवेदन करते हैं कि हर एक प्रकार के आर्थिक वर्गों से सम्बन्धित वस्तुओं के लिए सीमान्त रेखाओं के अस्तित्व को मानना चाहिए। किन्तु उसकी परिभाषा के विरोध में जो भी आपत्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं वे ये हैं कि इनमें निहित क्षेत्र की तुलना में ये सीमान्त रेखाएँ आवश्यकता से अधिक व्यापक हैं और बाजार-स्थल के प्रयोगों से ये बहुत ही भिन्न हैं। इसके बावजूद भी इसमें पूर्णरूप से संगत एवं सम्बद्ध भावमय विचार निहित नहीं है जैसे कि फ्रान्सीसियों की परिभाषा में मिलते हैं।

परिशिष्ट (च)

वस्तु विनिमय[1]

दो व्यक्तियों के बीच वस्तु विनिमय की दर अकस्मात् निर्धारित होती है।

अब हम वस्तु विनिमय मे लगे हुए दो व्यक्तियों के विषय में विचार करेंगे। मान लीजिए कि अ के पास सेब की एक टोकरी है और ब के पास गरीफल की एक टोकरी है। अ को कुछ गरीफलों की आवश्यकता है और ब को कुछ सेबों की। ब को एक सेब से जो सन्तोष मिलेगा वह इसके बदले मे 12 गरीफलों को देने मे होने वाली क्षति से अधिक होगा, जब कि अ को सम्भवतः गरीफलो से जो सन्तोष मिलेगा वह इनके बदले मे एक सेब दे देने मे होने वाली क्षति से अधिक होगा। इन दो दरों के बीच कही भी विनिमय की दर प्रारम्भ हो सकती है: किन्तु जब इस प्रकार का वस्तु-विनिमय धीरे धीरे हो रहा हो तो अ के लिए गरीफलो के बदले मे दिये गये प्रत्येक सेब का सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ता जायेगा और उसमे इनके बदले सेब देने की अनिच्छा बढती जायेगी: जब कि उसे प्राप्त होने वाले प्रत्येक अतिरिक्त गरीफल का उसके लिए सीमान्त तुष्टिगुण घटता जायेगा और उसकी इन गरीफलो को और अधिक लेने की तीव्र इच्छा कम हो जायेगी: ब के सम्बन्ध मे स्थिति इसके विपरीत होगी। अन्त मे एक ऐसी स्थिति आयेगी जब सेबो की अपेक्षा गरीफलों के लिए अ की तीव्र इच्छा ब की तीव्र इच्छा से बढ़कर नही होगी, और विनिमय होना बन्द हो जायेगा। क्योंकि एक व्यक्ति जिन शर्तो पर दूसरे की चीज लेना चाहता था वह दूसरे के लिए हानिकारक होगी। इस बिन्दु तक विनिमय से दोनो पक्षो के सन्तोष मे वृद्धि होगी किन्तु इससे आगे ऐसा नही हो सकता। यहाँ पर साम्य की स्थिति आ चुकी होगी। किन्तु यह साम्य की वास्तविक स्थिति नही है अपितु अकस्मात् साम्य की स्थिति है।

वस्तु-विनिमय की एक ऐसी दर होती है जिसे इसकी वास्तविक दर कहा जा सकता है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में इस दर का पाया जाना

कुछ भी हो विनिमय की एक साम्य दर होती है जिसे कुछ अशो मे वास्तविक साम्य दर कहा जा सकता है, क्योकि यदि इसे एक बार प्राप्त कर लिया जाय तो यह सदैव लागू होगी। यह स्पष्ट है कि यदि सेब के बदले मे निरन्तर अनेक गरीफल दिये जाये तो ब केवल थोड़ी ही मात्रा मे अदला-बदली करना चाहेगा, किन्तु यदि सेब के बदले मे थोड़े से ही गरीफल देने पड़े तो अ थोड़ी ही मात्रा मे अदला-बदली करना चाहेगा। इनके बीच कोई मध्यवर्ती दर अवश्य होनी चाहिए जिस पर दोनो को बराबर मात्रा मे अदला-बदली करना चाहिए। मान लीजिए कि यह दर प्रति सेब छः गरीफल है और अ 48 गरीफलो के लिए आठ सेब देने को इच्छुक है, जब कि ब उस दर पर आठ सेब लेने को तैयार है, किन्तु अ नवाँ सेब अन्य छः गरीफलों के बदले मे, देने को तैयार न होगा और ब नवे सेब के लिए पुनः छः गरीफल देने को तैयार न होगा। यह साम्य की वास्तविक स्थिति होगी, किन्तु यह विश्वास करने का कोई कारण नही दिखायी देता कि व्यवहार मे यह स्थिति आ ही जायेगी।

---

1 पृष्ठ 330 देखिए।

दृष्टान्त के लिए मान लीजिए कि अ की टोकरी में सर्वप्रथम 20 सेब के दाने थे और ब की टोकरी में 100 गरीफल थे। प्रारम्भ में अ ने ब को यह विश्वास करने के लिए प्रलोभित किया कि उसे गरीफलों की कोई विशेष जरूरत नहीं है जिससे वह चार सेब के दानों के लिए 40 गरीफल, इसके पश्चात् दो अतिरिक्त सेबों के बदले में 17 गरीफल तथा इसके पश्चात् एक अतिरिक्त सेब के बदले में 8 गरीफल प्राप्त करने में सफल हुआ। अब साम्य की स्थिति आ गयी और इसके पश्चात् पुनः ऐसा विनिमय नहीं हो सकता जो दोनों के लिए लाभदायक हो। अ के पास 65 गरीफल हैं और वह एक अन्य सेब को 8 गरीफलों के बदले में भी देने के लिए इच्छुक नहीं है, जब कि ब जिसके पास अब केवल 35 गरीफल रह गये हैं, उनका मूल्य बढा देता है, और एक अन्य सेब के लिए 8 गरीफल नहीं देना चाहता।

सम्भव नहीं है।

दूसरी ओर यदि ब सौदा करने में अधिक निपुण हो तो हो सकता है कि वह अ को 15 गरीफलों के बदले में छः सेब और इसके पश्चात् 7 गरीफलों के बदले में दो सेब और देने के लिए प्रलोभित करता। अ अब तक आठ सेब दे चुका होता जिनके बदले में उसे 22 गरीफल मिले होते: यदि प्रारम्भ मे एक सेब के बदले मे 6 गरीफल देना तय हुआ होता तथा उसे अपने आठ सेबों के लिए 48 गरीफल मिले होते तो वह एक और सेब का दाना केवल 7 गरीफलों के बदले मे देने को तैयार नहीं हुआ होता, किन्तु पास मे केवल इतने थोड़े गरीफल होने के कारण वह इन्हे अधिक मात्रा मे प्राप्त करने को इच्छुक है और वह 8 गरीफलो के बदले मे अन्य दो सेब तथा 9 गरीफलों के बदले मे पुन. अन्य दो सेब तथा इसके पश्चात् पुनः 5 गरीफलो के बदले मे एक अतिरिक्त सेब देने को तैयार होगा। यहाँ भी साम्य की स्थिति आ चुकी होगी क्योंकि ब, जिसके पास 13 सेब और 56 गरीफल है, एक सेब के बदले मे पाँच गरीफल से अधिक देने के लिए इच्छुक नही रहता, और अ भी अपने थोडे से बचे हुए सेबों मे से एक सेब को भी 7 गरीफलों से कम पर नही बेचना चाहता।

इन दोनो दशाओं मे जहाँ तक विनिमय होगा इससे दोनो पक्षों की तुष्टि मे वृद्धि होगी तथा जब उनकी तुष्टि में वृद्धि होना समाप्त हो जाये तो इसके आगे विनिमय किये जाने पर कम से कम एक पक्ष की तुष्टि मे कमी हो जायेगी। प्रत्येक दशा मे साम्य की दर आ चुकी होगी, किन्तु यह काल्पनिक साम्य होगा।

इसके पश्चात् यह कल्पना कीजिए कि सैकड़ो लोग अ के अनुरूप स्थिति मे हैं और प्रत्येक के पास लगभग 20 सेब है, तथा इनकी गरीफल के लिए वैसी ही इच्छा है जैसी कि अ की है, दूसरी ओर ब के अनुरूप स्थिति मे भी इतने ही लोग हैं। बाजार के महानिपुण सौदाकारो मे से कुछ लोग अ पक्ष के तथा कुछ ब पक्ष के होगे। चाहे सम्पूर्ण बाजार मे स्वतत्ररूप से सचार की सुविधाएँ हो या नही, वहाँ होने वाले सौदों का औसत दो व्यक्तियों के बीच वस्तु-विनिमय की भाँति एक सेब के बदले में छः गरीफल की विनिमय दर से अधिक भिन्न नही हो सकता। किन्तु इस पर भी अन्न के बाजार मे इस औसत दर मे उस दर के बहुत निकट रहने की जो सम्भाव्यता रही है वह इस सम्बन्ध मे उतनी अधिक नहीं होगी। अ पक्ष के लोगों के लिए यह बिलकुल सम्भव है कि वे सौदे में ब के पक्ष मे पायी जाने वाली अधिक अच्छी चीजों को अलग अलग

दो वर्गों के बीच वस्तु-विनिमय में स्थिति अधिक सुधरी हुई नहीं होती।

मात्रा में प्राप्त कर सकें जिससे कुछ समय बाद 6500 गरीफलों का 700 सेबों के बदले में विनिमय किया जा सके। अ पक्ष के लोगों के पास इतने अधिक गरीफल हो जाने के कारण वे एक सेव के लिए कम से कम आठ गरीफलों से कम पर आगे विनिमय नहीं करना चाहेंगे, जब कि ब पक्ष के लोग, जिनके पास औसतरूप में प्रति व्यक्ति 35 गरीफल शेष बचते हैं, उस दर पर गरीफल बदलना अस्वीकार कर देंगे। दूसरी ओर हो सकता है कि ब पक्ष के लोग अ पक्ष के लोगों से सौदे में अलग अलग मात्रा में अच्छे रहे हों और परिणामस्वरूप कुछ समय बाद 1300 सेबों का केवल 4400 गरीफलों से विनिमय होने लगे: ब पक्ष के लोगों के पास तब 1300 सेब तथा 5600 गरीफल होने के कारण यह हो सकता है कि वे एक सेब के बदले में पाँच गरीफलों से अधिक देने के लिए तैयार न हों। अ पक्ष के लोग भी औसत रूप में प्रतिव्यक्ति केवल सात सेब बेचे जाने के कारण उस दर पर विनिमय करने से इन्कार कर देंगे। एक दशा में साम्य की दर पर एक सेब के लिए आठ गरीफल मिलेंगे तथा दूसरी दशा में एक सेब के लिए पाँच गरीफल मिलेंगे। प्रत्येक दशा में साम्य की एक स्थिति आयेगी किन्तु यह वास्तविक साम्य की स्थिति नहीं होगी।

यदि दो वस्तुओं में से एक वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण लगभग स्थिर हो तो बहुत कुछ अनिश्चितता दूर हो जाती है।

विनिमय की जिस दर पर साम्य स्थापित हो उसमें अनिश्चितता का होना अप्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर रहता है कि एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विनिमय किया जाता है, न कि उसे द्रव्य के बदले में बेचा जाता है। क्योंकि द्रव्य सामान्य क्रय का माध्यम है, अतः ऐसे अनेक व्यापारी मिलेंगे जो इसे पर्याप्त मात्रा में सरलतापूर्वक ले-दे सकते हैं, और इससे बाजार में स्थिरता आ जाती है। किन्तु जहाँ वस्तु-विनिमय होना है वहाँ कहीं तो सेबों की गरीफलों से, कहीं मछलियों से, कहीं बाणों इत्यादि से अदला-बदली की जाती है। यहाँ ऐसे बाजार में जहाँ चीजों के मूल्य द्रव्य के रूप में आँके जाते हैं, स्थिरता प्रदान करने वाले प्रभाव नहीं दिखायी देते, और हमें सभी वस्तुओं के सीमान्त तुष्टिगुणों को परिवर्तनशील मानना पड़ता है। यह सत्य है कि यदि वस्तु विनिमय वाले क्षेत्रों में गरीफलों का उत्पादन मुख्य उद्योग रहा हो, और दोनों पक्षों के सभी व्यापारियों के पास गरीफलों के बड़े-बड़े भण्डार पड़े हों और केवल अ पक्ष के लोगों के पास सेब हों तो थोड़े से गरीफलों के विनिमय से न तो उनके भण्डारों पर कोई प्रभाव पड़ता दिखायी देगा और न गरीफलों के सीमान्त तुष्टिगुण में अधिक परिवर्तन होगा। उस दशा में अन्न के किसी साधारण बाजार में सौदाकारी सभी आधारभूत बातों में क्रयविक्रय के अनुरूप होगी।

इस प्रकार दृष्टान्त के लिए यह मान लें कि अ 20 सेबों से ब के साथ सौदा करता है। वह 5 सेब 15 गरीफलों के लिए, छठा सेब 4 गरीफलों के लिए, सातवाँ सेब 5 गरीफलों के लिए, आठवाँ सेब 6 गरीफलों के लिए, नवाँ सेब 7 गरीफलों के लिए और आगे भी इसी प्रकार बेचने को तैयार है। गरीफलों का तुष्टिगुण उसके लिए सदैव बराबर होने के कारण वह आठवाँ सेब 6 गरीफलों के लिए, और आगे भी इसी प्रकार देने को तैयार है, भले ही विनिमय के पूर्ववर्ती भाग में उसकी सौदा करने की शक्ति ब से अच्छी रही हो या नहीं। इस बीच ब सेब खरीदने से वंचित न रहने के लिए पहले पाँच सेबों के लिए 50 गरीफल, छठे सेब के लिए 9 गरीफल, सातवें के लिए

7 गरीफल, आठवें के लिए 6 गरीफल और नवें के लिए केवल 5 गरीफल देने को तैयार हो जाता है। गरीफलों का तुष्टिगुण उसके लिए सदैव स्थिर होने के कारण वह आठवें सेब के लिए ठीक 6 गरीफल देगा चाहे इससे पहले उसने सेब सस्ते ही क्यों न खरीदे हों। इस सौदे में आठ सेब अवश्य हस्तांतरित होंगे, और आठवां सेब 6 गरीफलों के लिए दिया जायेगा। किन्तु यदि सौदे में सर्वप्रथम अ को अधिक लाभ की स्थिति प्राप्त हो तो उसे पहले सात सेबों के बदले में 50 या 60 गरीफल मिले होंगे। दूसरी ओर यदि सौदे में सर्वप्रथम ब को अधिक लाभप्रद स्थिति प्राप्त हो तो वह पहले सात सेबों को केवल 50 या 40 गरीफल देकर बदल सकता था। यह इस तथ्य के अनुरूप है कि अनाज के बाजार में, जिस पर मूल पाठ में प्रकाश डाला जा चुका है, लगभग 700 क्वार्टर (आठ बुशल का पैमाना) अनाज 36 शि० की अन्तिम दर पर बेचा जायगा किन्तु यदि विक्रेताओं को प्रारम्भ में सौदा करने में सर्वाधिक लाभ प्राप्त हो तो इनके लिए दी गयी कुल कीमत 700×36 शि० से कहीं अधिक होगी। यदि सौदा करने में क्रेताओं की स्थिति सर्वप्रथम अधिक अच्छी रही हो तो इनके लिए दी गयी कुल कीमत 700×36 शि० से कहीं कम होगी। क्रय एवं विक्रय के सिद्धान्त तथा वस्तु विनिमय के सिद्धान्त में यह वास्तविक अन्तर है कि साधारणतया पूर्वोक्त में यह मानना उचित तथा पश्चादुक्त में अनुचित है कि बाजार में विद्यमान किसी ऐसी वस्तु का, जिसका किसी अन्य वस्तु के साथ विनिमय हो रहा हो, भण्डार बहुत अधिक है तथा यह अनेक लोगों के अधिकार मे है, और इसलिए इसका सीमान्त तुष्टिगुण व्यावहारिक रूप में लगभग स्थिर रहता है। गणितीय परिशिष्ट में टिप्पणी 12 को पुनः देखिए।

परिशिष्ट (छ)[1]

स्थानीय शुल्कों का आपात तथा नीति सम्बन्धी कुछ सुझाव

सभी स्थानीय करों का आपात जनसंख्या के प्रव्रजन से तथा इन शुल्कों को खर्च करने के ढंग से प्रभावित होता है।

§1. हम देख चुके हैं[2] कि मुद्रण पर नये स्थानीय कर का आपात राष्ट्रीय करके आपात से मुख्यतया इस बात मे भिन्न है कि पूर्वोक्त के कारण स्थानीय मुद्रण उद्योग के कुछ हिस्सों को जहाँ तक सम्भव हो सकेगा, उस कर की सीमा से बाहर स्थापित किया जायेगा। जो ग्राहक उस स्थान में ही मुद्रण का कार्य कराना चाहेंगे वे वस्तुतः इसके लिए अधिक भुगतान करेंगे। वहाँ केवल उतने ही कम्पोजीटर रहेंगे जिन्हें उस स्थान मे पहले मिलने वाली मजदूरी पर रोजगार मिल सकेगा और कुछ मुद्रण कार्यालय अन्य उद्योगों में स्थानान्तरित कर दिये जायेंगे। अचल सम्पत्ति पर लगने वाले सामान्य स्थानीय शुल्क का कुछ पहलुओं मे अलग अलग प्रकार से आपात होता है। जिस प्रकार मुद्रण पर स्थानीय कर लगने पर उद्योग का कर की सीमा से बाहर स्थानान्तरित होना महत्वपूर्ण है उसी प्रकार यहाँ पर भी स्थानीय शुल्क क्षेत्र से उद्योग के स्थानान्तरण का बड़ा महत्व है। किन्तु सम्भवतः इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थानीय शुल्कों का अधिकतर भाग इस प्रकार से खर्च किया जाता है जिससे उस स्थान में रहने वाले तथा कार्य करने वाले लोगों को जिन्हें कि अन्यथा वहाँ से छोड़कर बाहर जाना पड़ता, प्रत्यक्ष रूप में आराम मिल सके। इन बातों को व्यक्त करने के लिए दो पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता है। दुर्भर शुल्क (onerous rates) वे हैं जिनसे इन्हें देने वाले लोगों को क्षतिपूर्ति के रूप मे कुछ भी लाभ नहीं होता। एक दूरतम दृष्टान्त के रूप मे उन शुल्कों का उल्लेख किया जा सकता है जो किसी नगरपालिका द्वारा किसी ऐसे उद्यम के लिए लिये गये ऋण का ब्याज देने के लिए लगाये जाते हैं जो असफल हो चुका है तथा जिसे न चलाने का निश्चय कर लिया गया है। इससे भी अधिक प्रतिनिधि दृष्टान्त निर्धन सहायता शुल्क का है जो मुख्यतया समृद्ध लोगों पर ही लगाया जाता है। जिन लोगो पर दुर्भर शुल्क लग सकते हैं वे उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं जहाँ ये शुल्क नही देने पड़ते।

दुर्भर शुल्क

दूसरी ओर लाभकारी या पारिश्रमिक सम्बन्धी शुल्क वे है जो प्रकाश, पानी के निकास की व्यवस्था तथा अन्य उद्देश्यों पर खर्च किये गये जाते है जिससे इन शुल्कों को देने वाले लोगो के जीवन की ऐसी अत्यावश्यक, आराम तथा विलासिता की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें जो स्थानीय अधिकारियों द्वारा सबसे सस्ती प्रदान की जा सकती हैं। इस प्रकार के शुल्क यदि योग्यतापूर्वक तथा ईमानदारी के साथ लगाये

लाभकारी या पारिश्रमिक सम्बन्धी शुल्क।

---

1 पृष्ठ 441 तथा 634 देखिए।

2 पीछे भाग 5, अध्याय 9, अनुभाग 11 यह परिशिष्ट मुख्यतया वहाँ दिये ज्ञापन पर आधारित है।

जायें तो इनसे उन शुल्को का भुगतान करने वाले लोगो को निवल लाभ पहुँच सकता है। इस प्रकार के शुल्को मे वृद्धि होने के कारण लोग तथा उद्योग इस ओर आकर्षित होंगे, न कि इससे दूर भागेगे। निस्सन्देह कोई शुल्क एक वर्ग के लोगो के लिए दुर्भर तथा दूसरे वर्ग के लोगों के लिए लाभदायी हो सकता है। अच्छी प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा मे खर्च किये जाने वाले ऊँचे शुल्क से शहर मे दस्तकार लोग निवास हेतु आने के लिए प्रलोभित होते है और समृद्ध लोग यहाँ से छोड़कर अन्यत्र जाने लगते हैं। जो सेवाएँ प्रबलरूप मे राष्ट्रीय होती हैं वे साधारणतया दुर्भर है, जबकि वे सेवाएँ जो प्रबल रूप मे स्थानीय होती है साधारणतया पौर-शुल्क दाता को प्रत्यक्ष एव विशेष लाभ पहुँचाती है। यह लाभ न्यूनाधिक रूप मे शुल्क देने मे पड़ने वाले भार के ही बराबर है।[1]

किन्तु 'पौर-शुल्क दाता' शब्द को विभिन्न प्रकार के स्थानीय व्यय के सदर्भ में विभिन्न प्रकार से व्याख्या करनी चाहिए। शहर के बीच की सड़को मे जल छिड़कने मे खर्च किये जाने वाले शुल्क इनके पास घरो मे रहने वाले किरायेदारों के लिए लाभदायक होते है, किन्तु उन्हें स्थायी सुधारो मे खर्च किये जाने वाले शुल्क से मिलने वाले प्रतिफल का केवल एक अश ही प्राप्त होता है: दीर्घकाल मे इसका अधिकतर भाग भूस्वामी को ही मिलता है। किरायेदार जो शुल्क देत है उसे वे साधारणतया अपने किराये के साथ ही मिली हुई धनराशि मानत है, किन्तु वे जीवन के उन सुखो की भी गणना करते है जो इन शुल्को के लाभदायक स्थानीय व्यय से प्राप्त किये जाते है। अर्थात् वे अन्य बातो के समान रहने पर, ऐसे क्षेत्रो का चयन करते है जहाँ किराया तथा दुर्भर शुल्को का योग कम हो। किन्तु इस धारणा से देशान्तरण की मात्रा कहाँ तक नियत्रित होती है इसका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है। अज्ञानता एव उदासीनता के कारण जितना लोग साधारणतया सोचते है सम्भवतः इसमे उससे कम ही बाधाए आती है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अपनी विशेष माग होने के कारण इसमे बड़ा बाधा पड़ती है। जो लोग लन्दन के जीवन को पसन्द करते है वे डेवनशायर मे शुल्को की दरे नीची होने के कारण चले नही जायेंगे, और विनिर्माताओ के कुछ वर्गों के लोगो को तो व्यावहारिक रूप मे अपनी पसन्द के अनुसार कहा बसने का भी अवसर नही मिलता। व्यक्तिगत एव व्यापारिक सम्बन्धो के अतिरिक्त काश्तकार को एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान तक जाने मे होने वाली परेशानी तथा इसमे होने वाले खर्च के कारण और भी अधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है: और यदि ये खर्च दो वर्षो की अवधि मे दिये जाने वाले किराये के बराबर हो तो उसे वहाँ से चले जाने मे हानि उठानी पड़ेगी। यह हानि उस समय न होगी जब वहाँ से चले जाने पर उसे बीस साल तक प्रति पौंड 2 शि० कम स्थानीय शुल्क देने पड़े। यदि कोई व्यक्ति किसी भी कारणवश अपना निवासस्थान बदल लेता है तो वह जिनजिन स्थानो को अपने

---

1 सन्, 1901 ई० में स्थानीय कर प्रणाली पर राजकीय आयोग द्वारा दी गयी अन्तिम रिपोर्ट Final Report of the Royal Commission on Taxation पृष्ठ 12 देखिए।

उद्देश्य के लिए अनुकूल समझता है वहाँ के वर्तमान तथा सम्भावित शुल्को से सम्बन्धित सभी बातों पर पूर्णरूप से विचार करता है।

समृद्ध लोगों की अपेक्षा श्रमिक वर्गों की कुछ दशाओं मे अधिक गतिशीलता होती है, किन्तु जब शुल्क संयोजित किये जाते है तो कभी कभी इससे होने वाला संघर्ष किरायेदारों के लिए हितकारी होता है, और इससे मालिकों को नये शुल्को के भार को किरायेदारो पर डालने मे समय लग जाता है। विनिर्माता पर अपने अहाते पर लगने वाले शुल्को का जितना प्रभाव पड़ता है बहुधा उतना ही प्रभाव अपने कामगरो के निवासस्थानो पर पड़ने वाले शुल्को से भी पड़ता है और यद्यपि जिन कारणो से बहुत से विनिर्माता बड़े बड़े शहर छोड़कर बाहर चले गये हैं उनसे इन शुल्कों की दरों का ऊँचा होना एक कारण है तथापि यह संदेहजनक है कि सुसचालित कर व्यवस्था मे इन शुल्को का निवल प्रभाव अधिक रहा होगा। क्योंकि ऐसी अवस्था मे प्रशासको के योग्य एवं ईमानदार होने पर इन शुल्कों से प्राप्त आय को जिन नयी मदो पर खर्च किया जाता है उनसे स्वयं विनिर्माता को चाहे लाभ न भी हो उसके कामगरो को अवश्य ही अधिक सुविधाएँ मिलती हैं, या उनकी असुविधाएँ कम हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त इस बात के अधिक प्रमाण है कि यद्यपि पट्टेदार स्थानीय शुल्कों के वर्तमान तथा सम्भाव्य निकट भविष्य के विषय मे सतर्कतापूर्वक विचार करते है किन्तु वे सुदूर भविष्य के विषय मे नही सोच सकते और वे कदाचित ही इस पर विचार करने का प्रयत्न करते हैं।[1]

परिवर्तन बड़े शीघ्र तथा समायोजन धीरे-धीरे होने पर पूर्वानुमान लगाने की कठिनाइयाँ।

इन शुल्को के आपात का जो विश्लेषण दिया जाता है उसे वास्तविक तथ्यो के स्थान पर सामान्य प्रवृत्तियो से सम्बन्धित होना चाहिए। जिन कारणो से पूर्वानुमान के लिए इन प्रवृत्तियो का उपयोग करने मे रुकावट पैदा होती है वे समुद्र के बीच डगमगाते हुए तथा लगर डालते हुए किसी जहाज के डेक पर पड़े हुए गेंद के लुढ़कने की दिशा का पता लगाने के लिए गणितीय तर्को का उपयोग करने मे रुकावट डालने वाले कारणो की भाति है। यदि जहाज का केवल एक ही दिशा मे झुकाव रहे तो गेंद की गति का पता लगाया जा सकता है। किन्तु किसी एक प्रवृत्ति का अधिक प्रभाव दिखायी देने के पूर्व स्वयं वह प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, और इसके बाद आने वाली प्रवृत्ति के विषय मे पहले कुछ भी नही कहा जा सकता। ठीक इसी प्रकार यद्यपि लगभग एक शताब्दी पूर्व अर्थशास्त्रियो ने करान्तरण की सामान्य प्रवृत्तियो को सदा के लिए निश्चित कर दिया था किन्तु इस पर भी विभिन्न स्थानो मे भूमि-कर शुल्कों का सापेक्षिक भार बहुधा इतनी तीव्रतापूर्वक बदलता है कि जिन परिवर्तनो का पूर्वानुमान नही लगाया जा सकता उनसे कोई भी प्रवृत्ति अधिक स्थायित्व प्राप्त करने के पूर्व ही या तो समाप्त हो जाती है या विपरीत दिशा की ओर बढ़ने लगती है।

'इमारत का मूल्य' शब्द।

§2. हम यह पहले ही देख चुके हैं कि कोई भी भवन-निर्माता किसी भी स्थल के लिए भूमि का जितना किराया देना चाहेगा वह उस व्यक्ति इस अनुमान से निर्य-

---

1 अभी अभी उल्लेख किये गये आयोग ने इस विषयों पर पर्याप्त प्रमाण एकत्रित किये थे (पृष्ठ 779, फुटनोट 1)।

त्रित होता है कि वहाँ पर इमारत खड़ी करने से कितना अतिरिक्त मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। पट्टा लेने से पूर्व उसकी अपनी तथा इस कार्य के लिए उधार ली गयी पूँजी 'मुक्त' होती है और इसे द्रव्य के रूप में व्यक्त किया जाता है। उसके विनियोजन से प्रत्याशित आय को भी द्रव्य के रूप मे व्यक्त किया जाता है। वह एक ओर तो इमारत के परिव्यय पर तथा दूसरी ओर स्थल सहित इमारत खड़ी करने के लगान मूल्य की भू-लगान से अधिकता पर विचार करता है। वह सम्भवतः स्थूल रूप मे तथा अपनी सहज वृत्ति से न कि अंकगणितीय गणना से, 11 वर्षों के पट्टे के लिए इस अधिकता के (मान लीजिए) (पूर्व प्रापित) मूल्य का हिसाब लगाता है। अन्त मे यदि उसे इसमे अच्छा लाभ मिलने के आसार दिखायी दें तो वह पट्टा ले लेगा क्योंकि उस समय उसे इनके अतिरिक्त अधिक अच्छा अन्य व्यवसाय नही दिखायी देता है।

वह अपनी पूर्ण योग्यता से यह सोचता है कि इस भूमि के ऊपर वह जिस मकान (या अन्य इमारत) को खड़ा करना चाहता है वह सदा के लिए उस स्थल के उपयुक्त होगी या वह स्थल उस मकान या इमारत के लिए उपयुक्त होगा। उसे इस विषय मे यदि सफलता मिलती है तो भविष्य मे किसी भी समय सम्पत्ति का किराया उसके वार्षिक स्थल मूल्य तथा उस इमारत के वार्षिक मूल्य के योग के बराबर होगा और इससे वह यह प्रत्याशा करता है कि उसे अपने परिव्यय पर पूर्ण लाभ होगा: जिसमे किसी अधिक जोखिमपूर्ण व्यापार के हो सकने वाली क्षति के लिए किये गये बीमे की धन-राशि भी सम्मिलित होगी। लगान के इस दूसरे भाग को साधारणतया इमारत का (वार्षिक) मूल्य या मकान का किराया कहा जाता है, यद्यपि पूर्ण औचित्य की दृष्टि से सम्भवतः ऐसा नही कहा जा सकता।

समय के बीतने पर द्रव्य की क्रय-शक्ति मे परिवर्तन हो सकता है, और जिस श्रेणी के मकान के लिए वह स्थल उपयुक्त हो उसमे भी परिवर्तन हो सकता है। भवन निर्माण कला मे भी सुधार होना निश्चित है। परिणामस्वरूप भविष्य मे किसी समय उस सम्पत्ति के कुल वार्षिक मूल्य मे उसका वार्षिक स्थल मूल्य तथा ऐसे भवन को बनाने मे लगी लागत पर मिलने वाला लाभ शामिल होगा जिससे उतना वांछनीय स्थान मिल सकेगा जितना उस समय पुराने मकान से मिल सकता है। किन्तु इसमे यह प्रमुख शर्त निहित है कि उस भवन का सामान्य रूप उस स्थल के अनुरूप होगा: यदि वह इसके अनुरूप न हो तो कुल मूल्य, स्थल मूल्य तथा इमारत के मूल्य के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। दृष्टान्त के लिए यदि किसी स्थल के पूर्ण विकास के लिए किसी गोदाम या बिलकुल भिन्न

यदि कोई इमारत किसी स्थल की दृष्टि से अनुपयुक्त हो जाय तो इसका सम्पूर्ण मूल्य केवल उस

1 भाग 5, अध्याय 11, अनुभाग 3 तथा 8 देखिए। भवन निर्माता साधारणतया अपने पट्टे से होने वाले लाभ में अधिक कमी होने के पूर्व ही उसे बेचने की सोचता है। किन्तु वह जिस कीमत को प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है वह उस सम्पत्ति के लगान मूल्य की शेष वर्षों में भू-लगान से (पूर्व प्रापित) अधिकता के बराबर होती है: और इसलिए प्रायः उतनी ही आय प्राप्त होगी जितनी कि उस सम्पत्ति को अपने पास ही रखने में होती।

स्थल का ही मूल्य होगा।

प्रकार के निवास-गृह की आवश्यकता हो तो वहाँ पर विद्यमान सम्पत्ति का स्थल मूल्य केवल उसके स्थल मूल्य से भी कम होगा। क्योंकि उनका स्थल मूल्य तब तक नहीं बढ़ सकता जब तक कि पुरानी इमारतों को गिराकर उनके स्थान पर नयी इमारतें खड़ी न कर दी जायें। उन इमारतों में लगे पुराने सामान का मूल्य उन्हें नीचे गिराने में लगने वाली लागतों से कम हो सकता है। इन इमारतों को गिराने में अनिवार्य रूप से आने वाली बाधाओं तथा समय की बरबादी के लिए आयोजित धनराशि भी शामिल है।

स्थल मूल्यों पर लगने वाले दुर्भर करों को, जहाँ तक उनका पूर्वानुमान लग सकता है, नये पट्टों में भू-लगान से कम कर दिया जाता है।

§3. कोई किरायेदार उन दो इमारतों में से जो कि अन्य सब बातों में समान हैं, अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति वाली इमारत के लिए जो वार्षिक धनराशि देगा वह इस प्राप्त होने वाली विशेष सुविधाओं के मूल्य के बराबर होगी। किन्तु वह व्यक्ति इस बात की चिन्ता नहीं करता कि इसका कितना भाग किराये के रूप में और कितना भाग कर के रूप में दिया जाता है। अतः स्थल मूल्यों पर लगने वाले दुर्भर कर भूस्वामी या पट्टेदार को प्राप्त होने वाले लगान में से कम कर दिये जाते हैं और जहाँ तक उनका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है उन्हें भूमि के उस किराये में से कम करना पड़ता है जिसे कोई भवन-निर्माता या अन्य व्यक्ति इमारत को पट्टे पर लेने के लिए देने को तैयार है। जो स्थानीय शुल्क लाभकारी होते हैं उनका भुगतान दीर्घकाल में किरायेदारों द्वारा किया जाता है किन्तु ये शुल्क उनके लिए वास्तविक रूप में भारस्वरूप नहीं हैं। उक्त कथन 'दीर्घकाल में' ही लागू हो सकता है: दृष्टान्त के लिए, किसी शहर के सुधार में ब्याज तथा शोधन-निधि (sinking fund) के कारण लगाये जाने वाले शुल्क जो अनेक वर्षों तक सार्वजनिक भागों में बाधा पहुँचाते हैं और इसके अच्छे परिणामों से वंचित रखते हैं, वे किरायेदारों द्वारा स्वयं भुगतान किये जाने पर दुर्भर होंगे। पूर्ण न्याय की दृष्टि से इन्हें उसके किराये में से घटा देना चाहिए, क्योंकि जब पूर्ण रूप से सुधार हो रहे हों, और विशेषकर जब ऋण का भुगतान हो जाने के कारण वह शुल्क ही समाप्त हो जाय तो सम्पत्ति का स्वामी प्रारम्भ से ही इसके फलस्वरूप लगाये जाने वाले दुर्भर शुल्कों के लाभ को अर्जित करने लगता है।[1]

यदि सारे

§4. इमारत में मूल्यों पर लगने वाले कर भिन्न प्रकार के हैं। यदि ये सारे देश

---

1 इसमें यह कल्पना की गयी है कि भूमि पर समान मात्रा में कर लगता है चाहे उसे किसी भी उपयोग में लाया जाय। किसी विशेष प्रकार के उपयोग में अतिरिक्त कर लगाये जाने के विषय पर भाग 10, अध्याय 7, अनुभाग 6 में विचार किया जा चुका है। यदि कृषि भूमि में कर न लगे तो ग्रामीण क्षेत्र में किसी मकान या फैक्टरी के पट्टेदार को स्थल-कर का वह भाग नहीं देना पड़ेगा जो कि भूमि के कृषि के स्थान पर इमारत बनाने के लिए उपयोग किये जाने पर प्राप्त अतिरिक्त मूल्य पर देना पड़ता है। इसके फलस्वरूप शहरों में जनसंख्या का घनत्व बढ़ सकता है जिससे विभिन्न स्थलों के मालिकों पर पड़ने वाला भार कुछ अंशों में इन्हें भी वहन करना पड़ता है: किन्तु इसके फलस्वरूप शहरों के मध्य के स्थलों के मूल्यों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा। आगे अनुभाग 6 भी देखिए।

में समान रूप से लगाये जाते हों तो उनसे अनुकूल स्थलों के अवकलन लाभ में कोई परिवर्तन नहीं होता। और इसलिए इनसे भवन-निर्माता या अन्य कोई व्यक्ति कम से कम प्रत्यक्ष रूप में अच्छे स्थल के लिए अधिक किराया देने के लिए कम इच्छुक नहीं होता। यदि कर इतने अधिक भारस्वरूप हों कि इनसे उस भूमि में पर्याप्त कमी हो जाय जिसमें इमारत खड़ी करनी हो तो इनसे वस्तुत: सभी इमारती भूमि का मूल्य घट जायेगा: और इमारती स्थलों के विशेष मूल्यों में अन्य भूमि की भाँति कमी हो जायेगी। किन्तु इस दिशा में उनका इतना कम प्रभाव पड़ता है कि इस कथन में कि इमारत के मूल्यों पर समान रूप से लगने वाले कर भूमि के मालिक पर नहीं पड़ते कोई बड़ी त्रुटि न होगी। भवन निर्माता जहाँ तक इन करों का अनुमान लगा सकता है, तदनुसार अपनी योजनाओं को समायोजित करता है, उसका उद्देश्य केवल इतनी लागत लगा कर इमारत खड़ी करना है जिससे पट्टेदारों से लिये गये किराये से प्रसामान्य लाभ प्राप्त हो सकें, और ये शुल्क पट्टेदार को ही देने पड़ें। इसमें सन्देह नहीं कि उसका अनुमान गलत भी हो सकता है किन्तु दीर्घकाल में भवन निर्माताओं के अनुमान सभी अन्य योग्य व्यावसायिक व्यक्तियों की भाँति प्रायः सही होते हैं। दीर्घकाल में इमारत के मूल्यों पर समान रूप से लगने वाले कर किरायेदार पर पड़ते है, या उस इमारत का व्यापारिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किये जाने पर अन्त में उसके ग्राहकों को देने पड़ते है। उसके प्रतियोगियों को भी इसी प्रकार के शुल्क देने पड़ते हैं।

देश में इमारत के मूल्यों पर लगने वाले कर समान हों तो उनकी किरायेदारों द्वारा तब तक उपेक्षा नहीं की जा सकती जब तक कि वे कम कीमती इमारतों में न रहें।

किन्तु इमारत के मूल्यों पर पड़ने वाले विशेष रूप से दुर्भर स्थानीय शुल्कों के सम्बन्ध में स्थिति पर्याप्त रूप से भिन्न है: और अचल सम्पत्ति पर लगने वाले राष्ट्रीय कर तथा स्थानीय शुल्कों के आपात के बीच यही मुख्य अन्तर है। इन शुल्कों में से किये जाने वाले जिस लाभकारी व्यय से जीवन की सुविधाओं में लागत से अधिक वृद्धि होती है उसका किरायेदार विरोध नहीं करते। इनका केवल वह भाग जो इमारत के मूल्यों पर लगाया जाता है किरायदार को देना पड़ता है, किन्तु यह उस पर वास्तविक रूप में उसी प्रकार भारस्वरूप नहीं होता जिस प्रकार स्थल मूल्यों पर लगने वाले लाभकारी शुल्क भार स्वरूप नहीं होते।

लाभकारी शुल्क वास्तव में निवल रूप में भार-स्वरूप नहीं होते।

इमारत के मूल्यों पर लगने वाले शुल्कों का वह भाग जो दुर्भर है तथा अन्य स्थानों में लगने वाले तदनुरूप प्रभारों से अधिक है, मुख्यतया किरायेदारों को ही देना पड़ता। यदि उन पर असाधारण भार पड़ने लगे तो वे पर्याप्त संख्या में किसी ऐसे स्थान में चले जायेंगे जहाँ वे शुल्क न देने पड़ें। और इसके फलस्वरूप उस स्थान में मकानों तथा अन्य इमारतों के लिए माँग कम हो जायेगी, और अन्त में इन असाधारण शुल्कों का भार भूस्वामियों या पट्टेदारों को ही वहन करना पड़ेगा। अतः भवन निर्माता, भविष्य का जहाँ तक पूर्वानुमान लगा सकते हैं, इन इमारतों पर लगने वाले इन असाधारण रूप से दुर्भर शुल्कों के तुल्यांक तथा स्थल मूल्यों पर लगने वाले सभी करों एवं शुल्कों को भूमि के उस किराये में से कम कर देते हैं जिसे वे देने के लिए तैयार हैं।

इमारत के मूल्यों पर लगने वाले असाधारण रूप से दुर्भर शुल्क ठीक उसी प्रकार मालिकों को देने पड़ते है जिस प्रकार उन्हें स्थल मूल्यों पर

किन्तु जिन दिशाओं में इस प्रकार की बड़ी कटौतियाँ की जाती है वे अधिक नहीं हैं और उनका महत्व भी अधिक नहीं है। क्योंकि दुर्भर शुल्कों की स्थायी असमान-

लाने वाले शुल्क देने पड़ते हैं। दुर्भर शुल्कों की गम्भीर असमानताएँ कदाचित् ही अधिक समय तक बनी रहती हैं।

ताएँ पर्याप्त होने पर भी उतनी नहीं हैं जितनी की साधारणतया सोची जाती हैं: और नमें से अनेक असमानताएँ उन आकस्मिक कारणों के फलस्वरूप होती है जिनका सरलतापूर्वक ज्ञान नहीं हो सकता, उदाहरण के लिए स्थानीय प्रशासकों के किसी विशेष वर्ग द्वारा की गयी अव्यवस्था। वास्तव में इसका एक ऐसा स्थूल तथा सम्भवतः स्थायी कारण है जिसके लक्षण पहले से ही दिखायी देने लगे हैं, और वह लक्षण यह है कि धनाढ्य लोगों में अधिक घने बसे हुए क्षेत्रों से अधिक कमरों तथा फैशन वाले उपनगरों में जाकर बसने की प्रवृत्ति पायी जाने लगी है: इस प्रकार वे श्रमिक वर्गों के ऊपर बहुत निर्धन लोगों के प्रति राष्ट्रीय कर्तव्य निभाने का बहुत बड़ा भाग छोड़ गये हैं। किन्तु इस बुराई के स्पष्ट होते ही कानून द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया जाता है और कुछ उद्देश्यों के लिए इन शुल्कों के लगने के क्षेत्रों का विस्तार कर दिया जाता है जिससे एक ही बजट मे समृद्ध तथा निर्धन दोनों प्रकार के क्षेत्र सम्मिलित किये जा सके। अन्य प्रकार से भी इस बुराई को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

किसी क्षेत्र में विशेषरूप से लागू होने वाले दुर्भर शुल्क अन्य क्षेत्रों में भूस्वामियों के लिए उपहार स्वरूप है।

यह स्मरण रखना अधिक महत्वपूर्ण है कि इमारतों के मूल्यों पर असाधारण रूप से लगने वाले दुर्भर शुल्कों से यद्यपि किसी स्थल के किराये में कमी हो जाती है तथा नये पट्टों पर भूमि का किराया कम हो जाता है, किन्तु ये भूमि के सभी मालिकों के ऊपर उतने अधिक भारस्वरूप नहीं हैं जितने कि प्रथम दृष्टि मे दिखायी देते हैं। क्योंकि इन शुल्कों के लगने के कारण रुक जाने वाला अधिकांश भवन निमाण कार्य नष्ट न होकर अन्य क्षेत्रों मे होने लगता है और इसके फलस्वरूप उन क्षेत्रों मे नयी इमारतों को पट्टे पर देने की होड़ बढ गयी है।

सम्पत्ति की बिक्री से पूर्व लगे हुए पुराने शुल्क तथा कर क्रेताओं के लिए भारस्वरूप नहीं होते।

§5. बहुत समय पूर्व से लगे हुए शुल्क भूस्वामी की अपेक्षा पट्टेदार से वसूल करने पर आयात बहुत कम प्रभावित होता है, चाहे इसमें क्रमशः स्थल तथा इमारत के मूल्यों पर लगने वाले शुल्क के अनुपातों का महत्वपूर्ण प्रभाव ही क्यों न पड़ता हो। दूसरी ओर दुर्भर शुल्कों में होने वाली वृद्धि का आयात पहले के कुछ वर्षों में इन्हें वसूल करने के ढंग से बहुत प्रभावित होता है। उस स्थिति की अपेक्षा जब इन शुल्कों का कुछ अंश भूस्वामियों से लिया जाता है या जब किरायेदार को भूस्वामियों को दिये जाने वाले लगान मे से एक अंश कम कर देने की छूट होती है, इस नये भार का अधिकतर भाग स्वयं किरायेदारों को वहन करना पड़ता है, यह बात केवल उन समीपस्थ क्षेत्रों पर ही लागू होती है जो प्रगति कर रहे हैं। जहाँ जनसंख्या मे कमी हो रही हो, और इमारत बनाने का कार्य समाप्त हो गया हो वहाँ दुर्भर शुल्क भूस्वामियों द्वारा ही दिये जाते हैं। किन्तु ऐसे स्थानों मे होने वाला आर्थिक संघर्ष साधारणतया सुदृढ़ होता है।

शुल्कों में एकाएक बड़े परिवर्तन होने की बुराइयाँ।

यह सम्भाव्य प्रतीत होता है कि इमारतों का सट्टा करने वालों तथा अन्य अन्तरिम भूस्वामियो के व्यवसाय पर दुर्भर शुल्कों का कुल भार बहुत अधिक नहीं पड़ता, और जिन शुल्कों के प्रति उन्होंने आपत्ति की है उनमे से अनेक शुल्कों के कारण ही वास्तव मे वे समृद्ध बने हैं। किन्तु शुल्को मे समय-समय पर परिवर्तन होने से भवन-निर्माण व्यवसाय के बड़े-बड़े जोखिमो मे कुछ और वृद्धि हो जाती है और समाज को इस प्रकार

के जोखिमों के लिए अनिवार्य रूप से किये जाने वाले बीमे के तुलना से अधिक भुगतान करना पड़ता है। ये सभी बातें उन महा दुखदायी बुराइयों की ओर इंगित करती हैं जो शुल्कों मे विशेषकर इमारतों मे लगने वाले शुल्को मे जिनका किरायेदार को होने वाली निवल आय की तुलना से अधिक कर योग्य मूल्य होता है, अत्यधिक मात्रा में तथा एकाएक वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है।

व्यापारी, विशेषकर दुकानदार, बहुधा अपने शुल्क का कुछ भाग अपने ग्राहकों के ऊपर डाल सकता है। यदि उसकी दुकान मे वे वस्तुएँ बेची जायें जिन्हे कुछ दूर से सरलतापूर्वक प्राप्त नही किया जा सके तो वह सदैव ही इसका कुछ भाग ग्राहकों के ऊपर डाल देगा। किन्तु दुकानदार पर लगने वाले शुल्क उसकी आय के अनुपात मे बहुत अधिक होने है, और इन शुल्को से प्राप्त धनराशि मे से व्यय किया जाने वाला जो भाग वहाँ के समृद्ध निवासियों की दृष्टि से लाभकारी है, दुकानदार के लिए दुर्भर हो सकता है। उसका कार्य ऐसी श्रेणी के कार्य से सम्बन्धित है जहा आर्थिक प्रगति के कारण माँग की अपेक्षा सम्भरण मे अधिक वृद्धि हो रही है। कुछ समय पूर्व समाज से अत्यधिक कीमत लेने के कारण उसकी आय काल्पनिक रूप से ऊँची थी किन्तु अब इसमे कमी होती जा रही है और यह सम्भवत अधिक न्यायसगत स्तर पर पहुँच रही है। वह इन नयी परिस्थितियों को शीघ्र ही नही समझता। उसका मस्तिष्क इस बात मे व्यस्त है कि एकाएक इन शुल्कों मे पर्याप्त वृद्धि हो जाने के कारण उसके साथ वास्तविक रूप मे अन्याय किया गया है, और वह इन शुल्को को कुछ अशो मे उस पर पड़े हुए भार का कारण मानता है किन्तु यह वास्तव मे अधिक गूढ कारणों का परिणाम है। उसमे इस बात से अन्याय की भावना और भी बढ गयी है कि वह अपने भूस्वामी के साथ सदैव समानस्तर पर सौदा नही कर सकता। क्योकि उसे यह डर लगा रहता है कि यदि उसे उस स्थान को छोड़कर कुछ ही दूर पर समानरूप से अच्छे स्थान पर यदि जाना पड़े तो दुकान खोलने पर बँधी हुई सामग्री की लागत तथा इस परिवर्तन मे होने वाले सामान्य खर्चों के साथ साथ अधिकाश ग्राहक खो देने के कारण भी क्षति उठानी पड़ेगी। यह ध्यान रहे कि दुकानदार कभी कभी एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर भी चले जाते है, वे बड़े चौकन्ने होते हैं, वे इन शुल्कों को पूर्णरूप से ध्यान मे रखते हैं, और कुछ वर्षों बाद अन्य किसी वर्ग के लोगों की अपेक्षा इन दुर्वह शुल्कों का भार मालिक तथा ग्राहकों पर हस्तांतरित करने में अधिक सफल हुए हैं। (होटल तथा निवासगृह का कार्य करने वाले व्यक्ति भी दुकानदार की ही भांति है)।

दुकान का दृष्टान्त

§6. किसी उदीयमान शहर के निकट की भूमि मे जिसमे अभी भी कृषि की जाती हो, कुछ ही निवल लगान प्राप्त होता है: किन्तु इस पर भी यह बहुमूल्य सम्पत्ति है। क्योकि इस भूमि के लिए भविष्य मे दिये जाने वाले किराये को इसके पूंजीगत मूल्य मे आँका जाता है। इसके साथ साथ इस भूमि के ऊपर स्वामित्व होने से मिलने वाले द्रव्यिक लगान के अतिरिक्त एक संतोष भी मिलता है। इस दृष्टि से यदि इस भूमि पर इसके पूर्व लगान मूल्य के अनुसार ही कर निर्धारित किया जाय तो वह कम ही होगा और यह प्रश्न उठता है कि क्या इसमे लगने वाले कर को इसके

खाली पड़ी हुई इमारती भूमि पर उसके पूंजीगत मूल्य के अनुसार

तथा इसके कुछ भाग पर साधारणतया इमारत के मूल्य के स्थान पर स्थल मूल्य के रूप में शुल्क आँकना अधिक उपयुक्त होगा।

लगान के किसी प्रतिशत की अपेक्षा इसके पूँजीगत मूल्य के किसी प्रतिशत के रूप मे नहीं आँका जा सकता।

इस प्रकार की योजना में नयी-नयी इमारते तेजी से बनायी जायेंगी और माँग की अपेक्षा इमारतों की सख्या अधिक हो जायेगी। अतः इनका किराया घटने लगेगा जिससे भवन निर्माता ऊँची लगान वाली भूमि को इमारत बनाने के लिए पट्टे पर न ले सकेंगे। इस परिवर्तन के फलस्वरूप जिस भूमि पर इमारतें खड़ी है अथवा जिस पर इमारते खड़ी की जाने की सम्भावना है, उसके सार्वजनिक मूल्य का कुछ भाग जो कि अब तक भूस्वामी को मिलता रहा, सभी लोगो को मिलने लगेगा। किन्तु जब तक शहर के प्राधिकारी शहर के विकास की योजना तैयार करने मे ठोस कार्य करके न दिखावें तब तक मकान जल्दी मे तथा अनुपयुक्त रूप से बनाया जायेगा, और यह ऐसी भूल होगी जिसके लिए आगामी पीढी को सुन्दरता तथा स्वास्थ्यप्रद दशाओं के अभाव में बड़ी ऊँची कीमत देनी पड़ेगी।

जिस सिद्धान्त पर यह योजना आधारित है उसे व्यापकरूप मे लागू किया जा सकता है। और नितान्त भिन्न प्रकार के इस सुझाव के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता कि भविष्य मे इमारत के मूल्य से कुछ ही या बिलकुल ही सम्बन्ध न रखकर मुख्यतया या पूर्णतया स्थल मूल्यों के आधार पर ही शुल्क निर्धारित किये जाने चाहिए। इस ओर हाल ही मे कुछ ध्यान भी आकर्षित हुआ है। इसका तुरन्त परिणाम यह होगा कि सम्पत्ति का मूल्य बढ जायेगा तथा कुछ घट जायेगा। इसके फलस्वरूप विशेष रूप से जिन क्षेत्रों मे शुल्क पहले से ही अधिक थे वहाँ उन क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ थे, पहले से कम थे: ऊँची एव कीमती इमारतों का मूल्य और भी अधिक हो जायेगा, क्योंकि वहाँ एक अधिक भारी बोझ से छुटकारा मिल जायेगा। किन्तु इसके फलस्वरूप जिन क्षेत्रों मे ये शुल्क बहुत ऊँचे थे वहाँ बडे बड़े स्थलों के ऊपर खडी पुराने ढग की इमारतों का मूल्य कम हो जायेगा। कुछ समय बाद किसी स्थल पर कितनी बडी इमारत खडी की जाय यह अजकल की भाँति आशिक रूप से स्थिति सम्बन्धी लाभों के अनुसार तथा आशिक रूप से इन शुल्को के प्रतिकूल न होकर साधारणतया वहाँ के उपनियमों के अन्तर्गत स्थिति सम्बन्धी लाभों के अनुसार निश्चित होगी। इसके फलस्वरूप जनसंख्या का घनत्व बढ जायेगा और लाभप्रद क्षेत्रो के सकल स्थल मूल्यो मे वृद्धि होगी: किन्तु इसके फलस्वरूप शुल्को मे से किये जाने वाले कुल व्यय मे भी वृद्धि होगी और चूंकि यह व्यय स्थल मूल्यों मे सम्मिलित होगा, अत. इनका निवल स्थल मूल्य बहुत कम होगा। यह कहना कठिन है कि इससे कुल मिलाकर जनसख्या का घनत्व बढ़ जायेगा: क्योंकि जहाँ खाली भूमि पर कुछ समय बाद ऊँचे शुल्कों का लगाया जाना अवश्यभावी है उप-पौर क्षेत्रों में भवन-निर्माण का कार्य सक्रिय रूप मे होगा। ऐसा होना भवन-निर्माण सम्बन्धी उपनियमों पर बहुत कुछ निर्भर होगा: जनसंख्या के घनत्व को इस प्रकार के कठोर नियमों से कम किया जा सकता है कि सभी ऊँची इमारतों के सामने तथा पीछे बहुत बडी खाली जगह छोड़ दी जानी चाहिए।[1]

1 दृष्टान्त के लिए मान लीजिए कि दस लाख वर्गफीट के क्षेत्र में 40 फीट ऊँची तथा 40 फीट गहरी इमारतों की समानान्तर पंक्तियाँ बननी हैं। यदि एक ऐसा

ग्रामीण क्षेत्रों में शुल्क की दरें।

§7. आंग्ल कृषि में काश्तकार तथा भूस्वामी के बीच साधारणतया पायी जाने वाली गुप्त साझेदारी का पहला उल्लेख किया जा चुका है।[1] ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा कम प्रतियोगिता होता है। किन्तु दूसरी ओर भूस्वामी द्वारा फार्म की प्रभावोत्पादक पूँजी में दिया गया योगदान लोचपूर्ण होता है और परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस प्रकार के समायोजनों से कृषि शुल्कों का आपात उसी प्रकार धूमिल पड़ जाता है जिस प्रकार हवा के झोंके से बहुधा तुषार पिण्ड गुरुत्वाकर्षण की प्रवृत्ति के बावजूद भी ऊपर उड़ा दिये जाते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि इससे गुरुत्वाकर्षण की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए यह आम कहावत है कि फार्म के लिए कड़ी प्रतियोगिता होने पर काश्तकार इन नये शुल्कों में अपने तथा भूस्वामी के हिस्से को स्वयं ही देगा किन्तु यदि भूस्वामी को यह भय लगे कि इन शुल्कों के लगने पर कोई भी काश्तकार फार्म लेने के लिए तैयार नहीं होगा तो वह सारे शुल्कों को स्वयं ही देगा।

आमतौर पर जितना अनुमान लगाया जाता है ग्रामीण जनसंख्या सम्भवतः उससे कम दुर्भर शुल्क दे सकती है। इन लोगों की सुधरी हुई पुलिस सेवा से तथा शुल्क-द्वार (turnpike) के उन्मूलन से लाभ पहुँचा है। इन्होंने पड़ोस के शहरों में शुल्क लगने के फलस्वरूप प्राप्त लाभों को बिना योगदान दिये ही प्राप्त किया है। इन्होंने जो शुल्क दिये हैं वे भी पड़ोस के शहरों में दिये जानेवाले शुल्कों की अपेक्षा बहुत कम हैं। जहाँ तक ये शुल्क तुरत वर्तमान के लिए लाभकारी है, ये किरायेदार के लिए निवल रूप में भारस्वरूप नहीं होते, भले ही उसे शुल्क देने पड़ते हैं किन्तु काश्तकार द्वारा जो शुल्क दिये जाते हैं वे उसकी निवल आय के पर्याप्त प्रतिशत के बराबर होते हैं, और जब दुर्भर ग्रामीण शुल्कों में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है तो इनका उस पर बहुत अधिक भार पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु ऐसा बहुत कम ही होता है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, स्थानीय भूस्वामियों एवं काश्तकारों के लिए किसी एक क्षेत्र पर ही लगाया जाने वाला दुर्भर शुल्क सारे देश भर में लगाये जाने वाले शुल्कों की अपेक्षा अधिक भारस्वरूप होते हैं।[2]

उपनियम हो कि इमारत के सामने और पीछे के दोनों भाग मिलकर आकाश के साथ 45 अंश का कोण बनायें तो प्रत्येक पंक्ति की दूसरी पंक्ति से दूरी 40 फीट होगी: और उस इमारत का कुल आयतन=40×कुल क्षेत्र का आधा भाग अर्थात् 20,000,000 घन फीट होगा। अब यह मान लीजिए कि उस इमारत की ऊँचाई तिगुनी होनी है। पहले के उपनियम के अन्तर्गत पंक्तियों के बीच की दूरी 120 फीट होनी चाहिए: और इस कल्पना पर कि इमारत की गहराई को 40 फीट से अधिक बढ़ाना सुविधाजनक नहीं है, उस इमारत का कुल आयतन 120 फीट×कुल क्षेत्र का एक चौथाई भाग, अर्थात् 30,000,000 घन फीट होगा। इस प्रकार यदि पहले की भाँति पंक्तियों में 40 फीट की दूरी रखी जाती तो कुल स्थान में तिगुनी वृद्धि होती, किन्तु अब केवल आधे भाग के बराबर ही वृद्धि होगी।

1 भाग 6, अध्याय 9, अनुभाग 10 देखिए।

2 पृष्ठ 427 देखिए।

इस ग्रन्थ की सामान्य योजना से विषयान्तर करने तथा इन विचारों को कुछ व्यावहारिक समस्याओं पर लागू करने के कारण ।

§8 यह ग्रन्थ मुख्यतया वैज्ञानिक खोज से सम्बन्धित है। किन्तु इसमें उन व्यावहारिक समस्याओ की कुछ झलके हैं जो आर्थिक अध्ययनो के प्रयोजनों के लिए उपयोगी है।[1] यहाँ इन शुल्को से सम्बन्धित कुछ नीति विषयक बातों पर विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है। सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि किसी प्राचीन देश मे भूमि अनेक दृष्टियों से धन (wealth) के अन्य रूपों से मिलती है तथा शेष इनसे भिन्न हे और कुछ आधुनिक विवादजनक लेखों से मतभेद वाली बातों को गौण स्थान देने तथा एकमत वाली बातो को प्रधानता देने की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। यदि अत्यावश्यक व्यावहारिक समस्याओ मे एक मतवाली बातो का ही ऊँचा महत्व हो तो इस दिशा मे सयत प्रवृत्ति उचित होगी। किन्तु वास्तविकता इसके प्रतिकूल है। अत: प्रशासन वित्त से सम्बन्धित कुछ महान विषयो पर जिनमे भूमि के उन गुणो का प्रमुख स्थान है जो धन के अन्य रूपो मे अधिकाशतया नही पाये जाते, विचार करना उचित प्रतीत होता हे। किन्तु इससे पहले इनकी न्यायसगति (equity) के विषय मे चन्द शब्द कहने दे।

विशेष प्रकार के लाभकारी शुल्कों का अलग से तथा दुर्भर कर-प्रणाली का सम्पूर्ण रूप में मूल्यांकन करना चाहिए।

जब कोई विशेष कर किसी खास उद्देश्य के लिए लगाया जाता है और इसमें स्वामित्व के विद्यमान अधिकारो मे जैसे कि दृष्टान्त के लिए, भूमि से मे जल निष्कासन की नाडी (धमनी) पद्धति तैयार करते समय सार्वजनिक प्राधिकारी द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप न किये जाने पर जिन जिन भूस्वामियो की सम्पत्ति को इससे लाभ पहुँचेगा उनके द्वारा दी जाने वाली कर की मात्रा को सयुक्त पूंजी सिद्धान्त के आधार पर निर्धारित करना उचित होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी के हिस्सेदारो से किसी जोखिमपूर्ण कार्य के लिए उनके हिस्सो के अनुपात मे धन माँगा जाता है। इस प्रकार के प्रत्येक प्रभार की न्यायसगति की अलग से जाँच की जानी चाहिए। किन्तु इसके दूसरी ओर सभी दुर्भर करो तथा शुल्कों की न्यायसगति की एक साथ जाँच की जानी चाहिए। प्राय प्रत्येक दुर्भर कर का किसी न किसी वर्ग के लोगो पर अधिक प्रभाव पडता हे, किन्तु यदि एक दुर्भर कर द्वारा उत्पन्न असमानताओ की अन्य दुर्भर करो द्वारा क्षतिपूर्ति हो जाती है और इनमे विभिन्न रूपों मे होने वाले परिवर्तनो मे समरूपता पायी जाती है तो इसका कोई महत्व नही होता। किन्तु यदि यह कठिन शर्त पूरी हो जाय तो इस प्रणाली को न्यायसगत माना जा सकता है, भले ही इसके किसी एक अंग पर विचार किये जाने पर इसे न्यायसगत नही माना जा सकता।

इमारतों पर लगने वाले कर स्थूलरूप में व्यय के अनुपात में होते है,

दूसरे स्थान पर, इस बात मे सामान्यतया एकमत है कि न्यूनाधिक रूप से सीधे अशाकन द्वारा लोगो की आय या इससे भी अच्छा यह होगा कि उनके व्यय के अनुसार कर प्रणाली मे समायोजन किया जाना चाहिए। क्योकि किसी व्यक्ति की आय के बचत किये जाने वाले भाग से राजकोष मे पुनः तब तक योगदान होता रहता है जब तक उसे खर्च न कर लिया जाय। परिणामस्वरूप हम जब इस तथ्य पर विचार करते हैं कि हमारी सामान्य एव स्थानीय सभी प्रकार की आधुनिक कर प्रणालियाँ इमारतो पर बहुत निर्भर रहती हैं तो यह स्मरण रखना होगा कि साधारणतया बड़े मकानों

1 भाग 1, अध्याय 4, अनुभाग 2–4 देखिए।

पर ही अधिक व्यय होता है, और करों, तथा विशेषकर सामान्य व्यय पर लगने वाले अंशावित करों से, कर वसूल करने वाले व्यक्ति के लिए अ क प्राविधिक कठिनाइयाँ पैदा हो जाती है। इसके अतिरिक्त इनमे से राज्य को जितनी आय प्राप्त होती है उसकी अपेक्षा उपभोक्ता को प्रत्यक्ष या परोक्षरूप मे अधिक भार वहन करना पड़ता है। किन्तु इमारतों पर लगने वाले कर प्राविधिक रूप मे सरल होते है, इन्हे वसूल करने मे भी कम लागत लगती है, इनका अपवचन (evas on) भी सम्भव नही है तथा सरलतापूर्वक अंशाकन किया जा सकता है।[1]

और ये स्वतः न्यायोचित होते हैं।

किन्तु तीसरी बात यह है कि यह तर्क सभी इमारतो पर लागू नही होता। इस कारण जहाँ तक नये करो का प्रश्न है दुकानो, माल गोदामो, फैक्टरियो, इत्यादि पर अन्य इमारतों की अपेक्षा कम मात्रा मे कर लगाना न्यायसगत है: पुराने करों का भार व्यापारिक स्थानों के किरायेदारों से आशिक रूप मे भूस्वामियो पर और आशिक रूप में ग्राहकों पर पहले ही अन्तरित हो गया है। अन्तरण की यह प्रक्रिया सदैव होती रहती है और इसलिए शहरी क्षेत्रो मे यदि व्यापारिक वर्गो को नये करों का एक चौथाई भाग एकाएक देना पड़े जबकि शेष तीन-चौथाई कर का आशिक या पूर्णभार कुछ वार्षिक प्रतिशतों के रूप में धीरे धीरे देना पडे तो उन्हे किसी बडी कठिनाई का सामना नही करना पड़ेगा। यदि शहरी स्थानीय सरकार के खर्चे निरन्तर तेजी से बढ़ते जाये तो हो सकता है कि उनके लिए इस विचार की योजना को अपनाना आवश्यक हो जाय।

किन्तु व्यापारिक स्थानों पर पड़ने वाले भारी कर केवल तभी न्यायोचित हैं जब इनको एक स्थान से हटाकर दूसर पर लागू किया जा सके: और नये करों का शीघ्र ही अन्तरण नहीं किया जा सकता है।

इन बातों के कारण हमे यह पुनरावृत्ति करनी होगी कि किसी पुराने या नये देश मे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ को सम्पत्ति के अन्य रूपों की अपेक्षा भूमि के सम्बन्ध मे कानून बनाने मे भावी पीढियों के प्रति अधिक उत्तरादायित्व लेना होगा। आर्थिक एवं नैतिक दृष्टिकोणों से भूमि को सर्वत्र तथा सदैव स्वयं एक विशेष वर्ग मानना

1 पुराने जमाने में किसी इमारत की खिड़कियाँ उस इमारत की श्रेणी की सूचक थीं और इन पर बहुत अधिक कर लगाये जाते थे: किन्तु इस कर से यह आभास नहीं होता था, और ऐसा आभास कराने का कोई विचार भी न था, कि लोग केवल खिड़कियों के ही मालिक तथा उपयोग कर्त्ता हैं। इससे अभिप्राय यह आभास कराना था, और वास्तव में यही आभास भी हुआ, कि लोग इमारतों के मालिक तथा उपयोग-कर्त्ता थे। जिस प्रकार खिड़की को इमारत की श्रेणी का न्यूनाधिक रूप में अच्छा सूचक माना जा सकता है, उसी प्रकार इमारत को सामान्य रूप में पारिवारिक व्यय के किसी स्तर तथा ढंग का सूचक, सम्भवतः अधिक अच्छा सूचक माना जा सकता है। जब इमारतों पर कर लगाया जाता है तो इसका उद्देश्य आराम तथा सामाजिक स्थिति को कुछ विशेष दशाओं में जीवन निर्वाह के साधनों के स्वामित्व तथा उनके उपयोग पर कर लगाना है। यदि इमारतों पर लगाये गये करों का कुछ भाग हटा दिया जाय और इसके फलस्वरूप होने वाली कमी को फर्नीचर पर तथा घर के अन्दर कार्य करने वाले नौकरों पर कर लगाने से पूरा किया जाय तो करों का वास्तविक आपात लगभग वैसा ही होगा जैसा कि अब है।

भूमि के सम्बन्ध में राजनीतिज्ञ को अनेक प्रकार से बड़ा उत्तरदायित्व लेना पड़ता है।

चाहिए। यदि राज्य ने आर्थिक दृष्टिकोण से वास्तविक लगान को अपने अधिकार में रखा हो तो उद्योग एवं सञ्चय की शक्ति में बुराई नहीं आनी चाहिए भले ही बहुत कम दशाओं में नये देशों में लोगों के बसने में अवश्य ही कुछ विलम्ब हुआ हो। मनुष्य द्वारा *अर्जित सम्पत्ति से प्राप्त होने वाली आय के सम्बन्ध में इस प्रकार की कोई भी बात* नहीं कही जा सकती। किन्तु भूमि के सार्वजनिक मूल्यों की न्यायोचितता का विवेचन करते समय हमारा जिन सार्वजनिक हितों से सम्बन्ध है उनकी महानता के कारण यह ध्यान रखना विशेषरूप से अनिवार्य है कि भूमि से प्राप्त होने वाली जिस आय पर एक व्यक्तिगत अधिकार स्वीकार कर लिया जाय उस पर एकाएक राज्य द्वारा स्वामित्व प्राप्त कर लेने से सुरक्षा नष्ट हो जाती है और समाज का आधार डगमगाने लगता है। अतः एकाएक बड़े-बड़े कदम उठाना न्यायोचित प्रतीत नहीं होते, और आंशिक रूप से न कि पूर्णरूप से इस कारण उठाये गये कदम व्यवसाय के लिए अनुपयुक्त ही नहीं अपितु मूर्खतापूर्ण भी होते है।

अतः सतर्कता बरतनी आवश्यक है। किन्तु किसी स्थल का मूल्य अधिक होने का कारण जनसंख्या का वह घनत्व रहा है जिसके फलस्वरूप स्वच्छ वायु तथा प्रकाश एवं क्रीडावक्षों का अभाव इतना दुखदायी हो गया है कि उदीयमान जनसंख्या के *ओज एवं हर्ष में कमी होने लगी है।* इस प्रकार बड़े बड़े वैयक्तिक लाभ न केवल वैयक्तिक कारणों की अपेक्षा सार्वजनिक कारणों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं अपितु ये सार्वजनिक सम्पत्ति के मुख्य रूपों में से किसी एक रूप में हानि होने पर ही प्राप्त होते है। वायु और प्रकाश एवं क्रीडावक्ष के लिए बहुत बड़ी धनराशि व्यय करने की आवश्यकता होती है। भूमि में निजी सम्पत्ति के उन अधिकतम अधिकारों का प्राप्त होना ही इस व्यय का सर्वोत्तम स्रोत है जो ऐसे समय से प्रायः अगम्य रूप से बढ़ते आ रहे हे जब राजा, जो कि राज्य का प्रतिनिधित्व करता था, भूमि का एकमात्र मालिक था। व्यक्तिगत रूप से लोग केवल इस अनुबन्धन पर भूमि के मालिक हो सकते थे कि सार्वजनिक हितवृद्धि के लिए कार्य करेंगे: उन्हें यह न्यायोचित अधिकार नहीं है कि वे सघन इमारतें खड़ी कर उस हितवृद्धि मे क्षति पहुँचायें।

पुराने करों में एकाएक परिवर्तन नहीं किये जाने चाहिए।

§9. इस प्रकार उक्त विवेचन के फलस्वरूप निम्नलिखित व्यावहारिक सुझाव मिलते है —जहाँ तक पुराने करो का प्रश्न है जिन व्यक्तियों से ये कर वसूल किये जाते है उनमें परिवर्तन करना अनुपयुक्त है। किन्तु जहाँ तक सम्भव हो सके, अतिरिक्त कर उन्ही व्यक्तियों पर लगाये जाने चाहिए जिन्हें अन्ततोगत्वा उनका भुगतान करना पड़ता है। किन्तु अनुसूची 'अ' के अन्तर्गत आयकर की भाँति ऐसा उस समय न होगा जब काश्तकार से ये नये कर इस अनुदेश (हिदायत) के अन्तर्गत वसूल किये जाये कि इन करो का भुगतान करने पर काश्तकारों द्वारा दिये जाने वाले लगान में उतनी ही कमी हो जायेगी।

जहाँ तक सम्भव हो सके कर इन लोगों

इसके कारण ये हैं कि पुराने करों का लगभग वह सम्पूर्ण भाग जो जनसाधारण या भूमि के स्थल मूल्य पर लगाया जाता है पहले ही मालिकों को (जिसमे जहाँ तक उन पुराने शुल्कों का प्रश्न है जो पट्टा लेते समय प्रत्याशित न थे, पट्टेदार भी सम्मिलित हैं) भुगतान करना पड़ता है। इसका लगभग सम्पूर्ण शेष भाग काश्तकारो या उनके

ग्राहकों को ही देना पड़ता है: काश्तकार को लगान में से इस कर के आधे या पूरे भाग को कम कर देने का अधिकार दे देने से इस परिणाम में कोई अन्तर नहीं आयेगा: यद्यपि इस प्रकार की कानूनी व्यवस्था में मालिकों की सम्पत्ति का कुछ भाग उन पट्टेदारों को प्राप्त होने का जोखिम रहेगा जिन्होंने पट्टा लेते समय उन पुराने करों के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि की भी गणना की थी। दूसरी ओर, नये अर्थात् अतिरिक्त करों के विभाजन का आयोजन किये जाने से बड़े लाभ होंगे: किसी फार्म या व्यापारिक स्थान या इमारत का किरायेदार किराये में से नये करों का आधा भाग कम कर देगा। उसका निकटतम मालिक भी अपने से बड़े मालिक को दिये जाने वाले भुगतानों में उसी अनुपात में कमी कर देगा और आगे भी यही क्रम चलता रहेगा। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के व्यापारिक स्थानों पर कर लगायें जायेंगे। जैसा कि अभी अभी सुझाव दिया गया है, ये कर सर्वप्रथम पूर्ण दरों पर नहीं होंगे। इनमें धीरे धीरे ही वृद्धि की जायेगी। इन आयोजनों के फलस्वरूप किसान, दुकानदार तथा अन्य व्यापारी यदाकदा किये जाने वाले अन्याय तथा उसके निरन्तर भय से जिनके कारण कुछ विशेष वर्गों के लोगों पर एकाएक अनुपात से कहीं अधिक भार पड़ता है, मुक्त हो जायेंगे।

पर लगाये जाने चाहिए जिन्हें अन्ततोगत्वा उनका भुगतान करना पड़ता है।

स्थल मूल्यों के सम्बन्ध में यह बात सत्य है कि सम्पूर्ण भूमि का चाहे यह प्राविधिक अर्थ में शहरी हो या नहीं, उस समय विशेष स्थल मूल्य होता है जब इसमें से इमारतें गिरकर इसे मध्यम रूप से ऊँची कीमत पर, जैसे कि 200 पौंड प्रति एकड़ की दर पर बेचा जा सके। यह सम्भव है कि इसके पश्चात् इस पर सामान्य शुल्क लगा दिया जाय जो इसके पूँजीगत मूल्य के आधार पर आँका गया हो। इसके अतिरिक्त इस पर स्वच्छ वायु शुल्क भी लगाया जाय जिसे स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा ऊपर व्यक्त किये गये उद्देश्यों के लिए पूर्णरूप से केन्द्रीय नियंत्रण के अन्तर्गत खर्च किया जाय। यह स्वच्छ वायु शुल्क मालिकों के ऊपर अधिक भारस्वरूप नहीं होगा, क्योंकि इसका बहुत कुछ अंश विशेष इमारती स्थलों के बढ़े हुए मूल्यों के रूप में पुनः प्राप्त हो जायेगा। जैसा कि देखा गया है, महानगरों की सार्वजनिक उद्यान संस्था की भाँति गैरसरकारी समितियों का व्यय तथा सार्वजनिक सुधारों के लिए इमारती मूल्यों पर लगाये जाने वाले शुल्कों का अधिकांश भाग वास्तव में उन मालिकों को सम्पत्ति की मुक्त देन है जो पहले से ही सौभाग्यशाली रहे है।

शहरी भूमि पर सामान्य स्थल शुल्क तथा विशेष 'स्वच्छ वायु शुल्क' लगाये जाने चाहिए।

भूमि पर प्रारम्भिक रूप में लगाये जाने वाले शुल्कों की गणना करने के पश्चात् शहरी एवं ग्रामीण सभी प्रकार के क्षेत्रों में आवश्यक निधि का शेष भाग सम्भवतः अचल सम्पत्ति पर लगाये जाने वाले शुल्कों से प्राप्त किया जायेगा और इनकी स्थानीय प्राधिकारियों की इच्छानुसार लगाये जाने वाले कुछ छोटे स्थानीय करों द्वारा अनुपूर्ति की जायेगी। निवासगृह कर तब तक नहीं लगाया जायेगा जब तक इसकी किसी बड़े नये व्यय के हेतु जैसे कि वृद्धावस्था के लिए दी जाने वाली पेंशन के लिए, आवश्यकता न हो: और वर्तमान निवासगृह कर की भाँति मुख्य शुल्क अंशांकित किये जा सकते हैं। किन्तु साधारण आकार की इमारतों पर ये शुल्क अधिक हलके, तथा बहुत बड़ी इमारतों पर अधिक भारी लगाये जाने चाहिए। किन्तु किसी भी इमारत को इन

शुल्क अंशांकित किये जाने चाहिए, किन्तु किसी को भी इनसे पूर्णरूप से मुक्त नहीं

किया जाना चाहिए। शुल्कों से बिलकुल ही मुक्त नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि जहाँ तक किसी व्यक्ति को शुल्क लगाने तथा उन्हें खर्च करने के विषय मे मत देने का अधिकार है, यह उचित नहीं कि उस पर इन शुल्कों का कुछ भी भार न हो। किन्तु यह उचित तथा तर्कसंगत है कि उसे या उसके बच्चो को दिये गये शुल्को के बराबर ऐसे कार्यों द्वारा लाभ पहुँचाया जाय जिनसे शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य तथा ओज मे वृद्धि हो, तथा जिनसे राजनीतिक भ्रष्टाचार की सम्भावना न हो।[1]

---

1 हाल ही में स्थानीय कर-प्रणाली पर नियुक्त किया गया आयोग, स्थल मूल्यों को आँकने के कठिन कार्य में तथा तात्कालिक व्यवस्था करने के और भी कठिन कार्यों में बहुत व्यस्त रहा है जिससे दीर्घकाल में भूमि के अन्तिम मालिकों द्वारा दिये जाने वाले शुल्कों का न्यायोचित भाग (चाहे यह कम हो या अधिक) किरायेदार के पट्टेदारों को हस्तांतरित किया जा सके। (Final Report के विशेषकर पृष्ठ 153–176 देखिए) यद्यपि कर निर्धारण की कठिनाई बहुत बड़ी है तथापि यह अनुभव से तीव्रतापूर्वक कम हो जायेगी। यह सम्भव है कि इस प्रकार के पहले एक हजार कर निर्धारणों में अधिक कष्ट हो और इस पर भी ये उतने सही न हों जितने कि बाद के बीस हजार सही होंगे।

परिशिष्ट (ज)[1]

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के सम्बन्ध में स्थैतिकीय मान्यताओं के प्रयोग की परिसीमाएँ

विचाराधीन कठिनाई का रूप।

§1. क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में साम्य के सिद्धान्त में आने वाली कठिनाइयों के विषय में कुछ संकेत पहले ही दिये जा चुके हैं। इन संकेतों पर अब कुछ विस्तारपूर्वक विचार करना है।

सर्वप्रमुख विषय यह है कि 'उत्पादन के सीमान्त' शब्द का दीर्घकाल में उन वस्तुओं के सम्बन्ध में कोई महत्व नहीं है जिनकी उत्पादन लागत उत्पादन मे धीरे धीरे वृद्धि होने के साथ साथ घटती जाती है: और साधारणतया अल्पकाल में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति नही पायी जाती। अतः हम जब उन वस्तुओं के मूल्य की विशेष दशाओं का विवेचन करते हैं जिनमें यह प्रवृत्ति पायी जाती है तो जहाँ तक सम्भव हो सके 'सीमान्त' शब्द का प्रयोग नही किया जाना चाहिए। माँग में अल्पकालीन एवं शीघ्र होने वाले उतार चढ़ाव के सम्बन्ध में अन्य वस्तुओं की भाँति इन वस्तुओं के विषय में भी निस्सन्देह इस शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार के उतार चढ़ावों के सम्बन्ध मे उन तथा अन्य वस्तुओं के उत्पादन मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का, न कि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि का नियम लागू होता है। किन्तु जिन समस्याओं में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम प्रभावोत्पादक रूप में लागू होता है वहाँ कोई विशेष रूप से पारिभाषित सीमान्त उत्पाद नहीं है। इस प्रकार की समस्याओं में हमारी इकाई अधिक बडी होनी चाहिए, हमें किसी निश्चित व्यक्तिगत फर्म की अपेक्षा प्रतिनिधि फर्म की दशाओं पर विचार करना है: इन सब के अतिरिक्त हमें किसी एक वस्तु की जैसे कि राइफल या कपड़े के गज की, लागत को विलग करने का प्रयत्न किये बिना उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया की लागत पर विचार करना है। यह सत्य है कि जब उद्योग की किसी शाखा का लगभग सम्पूर्ण भाग कुछ विशाल व्यवसायों के हाथों मे रहता है तो उनमे से किसी को भी पर्याप्त रूप से 'प्रतिनिधि' नही माना जा सकता। यदि इन व्यवसायों का किसी ट्रस्ट के रूप में एकीकरण हो जाय या ये एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो तो 'उत्पादन के प्रसामान्य खर्चे' शब्द का कोई यथार्थ अर्थ नही रह जाता। जैसा कि बाद के खण्ड मे पूर्णरूप से स्पष्ट किया जायेगा, इसे प्रथम दृष्टि मे एक एकाधिकार माना जाना चाहिए: और इसकी पद्धति का भाग 5 अध्याय 14 मे दिये गये आधार पर विश्लेषण किया जाना चाहिए: यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्ष तथा वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों से यह प्रदर्शित हो चुका है कि इस प्रकार की दशाओं में भी प्रतिस्पर्द्धा की शक्ति बहुत बड़ी होती है,

1 पृष्ठ 449 देखिए।

और 'असामान्य' शब्द का प्रयोग सम्भवतः जितना अनुपयुक्त समझा जाता है उससे कम अनुपयुक्त है।

एक दृष्टान्त।

§2. अब हम फैशन के कारण निर्द्रव वायु-दाबमापकों के लिए बढ़ी हुई उस माँग के दृष्टान्त पर पुनः विचार करेंगे जिसके फलस्वरूप कुछ समय पश्चात् संगठन में सुधार हुआ तथा सम्भरण कीमत घट गयी।[1] अन्त मे जब फैशन का प्रभाव समाप्त हो जाय और निर्द्रव वायु-दाबमापकों के लिए माँग पुनः उनके वास्तविक तुष्टिगुण पर ही आधारित हो तो यह कीमत तदनुरूप उत्पादन के स्तर पर असामान्य माँग कीमत से या तो अधिक या कम होगी। पूर्वोक्त दशा में उस व्यवसाय में पूँजी एवं श्रम नहीं लगाया जायेगा। जो फर्में प्रारम्भ की जा चुकी हैं उनमे से कुछ अपना कार्य करती रहेंगी, यद्यपि उन्हें उतने लाभ नहीं होंगे जितने कि वे प्राप्त करने की आशा करती थीं किन्तु अन्य फर्में इससे लगभग सम्बन्धित अधिक प्रगतिशील उत्पादन की आशा मे प्रवेश करने का प्रयत्न करेंगी : और जैसे जैसे पुरानी फर्मों का पतन होता जायेगा उनके स्थान पर कुछ नयी फर्में खुल जायेंगी। इससे उत्पादन के स्तर में पुनः कमी हो जायेगी और साम्य की पुरानी स्थिति इन अभियानों के बावजूद भी पर्याप्तरूप से स्थायी रहेगी।

अब हम उस दूसरी दशा पर विचार करेंगे जिसमें उत्पादन में हुई वृद्धि की दीर्घकालीन सम्भरण कीमत इतनी कम हो गयी हो कि माँग कीमत इससे अधिक हो। ऐसी दशा में उपक्रामी लोग उस व्यवसाय में प्रारम्भ की गयी फर्म के भविष्य की ओर देखते हुए इसमें समृद्धि एवं पतन के अवसरों पर विचार करते हुए, इसके भावी परिव्यय तथा इसकी भावी आय का बट्टा काटते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि पूर्वोक्त की अपेक्षा पश्चादुक्त में अधिक अच्छा संतुलन दिखायी देता है। उस व्यवसाय मे पूँजी एवं श्रम का तीव्रतापूर्वक विनियोजन किया जायेगा और माँग कीमत मे दीर्घकालीन सम्भरण कीमत के बराबर कमी होने तथा स्थायी साम्य की स्थिति आ जाने के, पूर्व उत्पादन में सम्भवतः दस गुनी वृद्धि हो जायेगी।

सैद्धान्तिक रूप से स्थायी साम्य की दो स्थितियाँ सम्भव हैं।

यद्यपि अध्याय तीन मे माँग एवं सम्भरण के स्थायी साम्य की स्थिति के निकट दोलनों का उल्लेख करते समय बिना यह स्पष्ट किये ही, जैसा कि प्रायः किया जाता है, यह मान लिया गया था कि किसी बाजार में स्थायी साम्य की केवल एक ही स्थिति हो सकती है, इस पर भी व्यवहार मे ऐसी स्थिति कम आने पर भी कुछ ऐसी दशाओं की कल्पना की जा सकती है जब माँग एवं सम्भरण के वास्तविक साम्य की दो या उससे अधिक स्थितियाँ हो सकती हैं। इनमे से प्रत्येक स्थिति बाजार की सामान्य परिस्थितियों से समानरूप से संगत है और जब तक कोई बड़ी अव्यवस्था न फैल जाय तब तक इनमें से प्रत्येक स्थिति स्थायी होगी।[2]

---

1 भाग 5, अध्याय 12, अनुभाग 1 देखिए।

2 स्थायी साम्य की स्थितियों के अतिरिक्त सैद्धान्तिक रूप में अस्थायी साम्य की स्थितियों की भी कल्पना की जा सकती है : ये स्थायी साम्य की दो स्थितियों के बीच विभाजन की सीमाएँ हैं; इन्हें दो नदियों द्वारा सींचे जाने वाले प्रदेशों को विभाजित

§3. यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह सिद्धान्त जीवन की वास्तविक दशाओं से इस दृष्टि से मेल नहीं खाता कि इसमें यह कल्पना की गयी है कि यदि किसी वस्तु

करने वाले जल-विभाजक (watershed) की भाँति माना जा सकता है, और इनसे कीमत में कमी या वृद्धि होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

जिस प्रकार अपने किसी भी छोर पर खड़ा अण्डा थोड़ा सा हिलने पर गिर जायेगा और लम्बाई के अनुसार स्थिर हो जायेगा उसी प्रकार जब माँग तथा सम्भरण अस्थायी साम्य की स्थिति में होते हैं तब उत्पादन का स्तर साम्य की स्थिति से किंचित् विचलित हो जाने पर शीघ्र ही स्थायी साम्य की स्थिति के अनुरूप हो जायेगा। जिस प्रकार यह सैद्धान्तिक रूप में सम्भव, किन्तु व्यावहारिक रूप में सम्भव नहीं है कि अण्डा अपनी छोर पर संतुलित खड़ा रहे, उसी प्रकार यह सैद्धान्तिक रूप में तो सम्भव है किन्तु व्यावहारिक रूप में असम्भव है कि अस्थायी साम्य में उत्पादन का स्तर संतुलित रहे।

इस प्रकार रेखाचित्र 38 में वक्र अनेक बार एक दूसरे को काटती हैं, और ख ग रेखा पर तीर के चिह्न उन दिशाओं को प्रदर्शित करते हैं जिनमें उत्पादन का स्तर अपनी स्थिति के अनुसार ख ग रेखा की ओर बढ़ता है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि यदि द, ह या ल बिन्दु पर हो और यह दोनों दिशाओं में कुछ विस्थापित हो जाये तो यह गड़बड़ पैदा करने वाले कारण के समाप्त होते ही अपनी पूर्व स्थिति पर आ जायेगा: किन्तु यदि यह म बिन्दु पर हो और इसे दाहिनी ओर विस्थापित किया जाय तो गड़बड़ पैदा करने वाले कारण के समाप्त होने के बाद भी यह दाहिनी ओर ल बिन्दु तक बढ़ता जायेगा, और यदि यह बायीं ओर विस्थापित हो) तो यह तब तक बायीं ओर बढ़ता जायेगा जब तक ह बिन्दु तक न पहुँच जाय। कहने का अभिप्राय यह है कि ह तथा ल स्थायी साम्य के बिन्दु हैं और म अस्थायी साम्य का बिन्दु है। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि:—
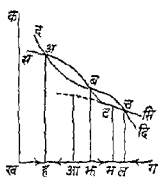
रेखाचित्र 38

माँग एवं सम्भरण वक्रों के कटान बिन्दु के अनुरूप माँग एवं सम्भरण के साम्य को इस आधार पर स्थायी या अस्थायी माना जायेगा कि माँग वक्र उस बिन्दु के ठीक बायीं ओर सम्भरण वक्र के ऊपर है या नीचे स्थित है, या यह उस बिन्दु के ठीक दाहिनी ओर सम्भरण वक्र के नीचे या ऊपर स्थित है।

हम देख चुके हैं कि माँग वक्र सर्वत्र ऋणात्मक झुकी रहती है। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि यदि किसी कटान बिन्दु के ठीक दाहिनी ओर सम्भरण वक्र माँग वक्र के ऊपर हो तो सम्भरण वक्र के साथ साथ दाहिनी ओर बढ़ने पर माँग वक्र को दूसरे कटान बिन्दु तक पहुँचने तक आवश्यक रूप से ऊपर रहना चाहिए: अर्थात् स्थायी साम्य बिन्दु के दाहिनी ओर का साम्य बिन्दु अवश्य ही अस्थायी साम्य का बिन्दु होगा

के प्रसामान्य उत्पादन में वृद्धि हो और तत्पश्चात् यह घटकर अपने पुराने स्तर पर ही पहुँच जाय तो उस मात्रा की माँग एवं सम्भरण कीमतें पूर्ववत् होंगी ।[1]

इस कल्पना में कोई बड़ी तीक्ष्णता नहीं है कि माँग कीमतों की सूची बेलोच है।

किसी वस्तु के उत्पादन में चाहे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का या क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि का नियम लागू होता हो, कीमत में कमी होने के फलस्वरूप उपयोग में वृद्धि धीरे धीरे ही होती है ;[2] और जब किसी वस्तु की कीमत के कम होने पर उसके उपयोग की जो आदतें एक बार हो जाती हैं उन्हें इसकी कीमतें पुनः बढ़ जाने पर शीघ्र ही नहीं छोड़ा जा सकता । अतः यदि सम्भरण में धीरे धीरे वृद्धि होने के बाद इसे प्राप्त करने के कुछ स्रोत बन्द हो जायें या अन्य किसी कारणवश वह वस्तु दुर्लभ हो जाय तो अनेक उपभोक्ता अपनी आदतों को बदलने के लिए तैयार न होंगे । दृष्टान्त के लिए यदि अमेरिका में वहाँ हुए युद्ध के पूर्व कपास की कीमतें कम होने के कारण लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसका साधारण उपयोग नहीं करते तो वहाँ युद्ध के समय कपास की कीमतें इतनी नहीं बढ़ती जितनी कि वे बढ गयी । सच तो यह था कि इनकी अनेक आवश्यकताएँ कपास की कीमत होने के कारण उत्पन्न हो गयी थी। इस प्रकार माँग कीमतों की जिस सूची से किसी वस्तु के उत्पादन को आगे बढ़ाया

चाहिए। इसी भाँति यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि ठीक इसके बायीं ओर का कटान बिन्दु भी अस्थायी साम्य का बिन्दु होगा। अन्य शब्दों में जिन दशाओं में ये वक्र एक दूसरे को एक से अधिक बार काटते हैं वहाँ स्थायी एवं अस्थायी साम्य के बिन्दु बारी बारी से आते हैं।

दाहिनी ओर बढ़ने के साथ साथ जब हम कटान के अन्तिम बिन्दु पर पहुँचें तो वह बिन्दु ही स्थायी साम्य की स्थिति होगी। क्योंकि यदि उत्पादन की मात्रा में अनिश्चित रूप से वृद्धि हो तो जिस कीमत पर इसे बेचा जायेगा वह आवश्यक रूप से लगभग शून्य के बराबर होगी, किन्तु इसके उत्पादन के खर्चों को पूरा करने के लिए आवश्यक कीमत में इतनी कमी नहीं होगी। अतः यदि सम्भरण वक्र को दाहिनी ओर पर्याप्त दूरी तक खींचा जाय तो अन्त में इसे अवश्य ही माँग वक्र के ऊपर रहना चाहिए।

बायें से दाहिनी ओर बढ़ते समय सर्वप्रथम जो कटान-बिन्दु आयेगा वह स्थायी या अस्थायी साम्य का बिन्दु होगा। यदि वह अस्थायी साम्य का बिन्दु हो तो इस तथ्य से यह प्रदर्शित होगा कि प्रसंगगत वस्तु का छोटे पैमाने पर उत्पादन करने से उत्पादकों को पारिश्रमिक नहीं मिलेगा। इसके फलस्वरूप इसका उत्पादन तब तक प्रारम्भ किया हो नहीं जा सकता जब तक किसी आकस्मिक घटना के कारण उस वस्तु के लिए अस्थायी रूप से तीव्र माँग न हो जाय, या इसके उत्पादन के खर्चे अस्थायी रूप से घट न जायें या जब तक कोई साहसिक फर्म उत्पादन की प्रारम्भिक कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए तथा उस वस्तु को ऐसी कीमत पर बेचने के लिए बहुत पूंजी नष्ट करने को तैयार न हो जिससे बहुत बड़ी मात्रा में बिक्री हो सके।

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 6 देखिए।

2 भाग 3, अध्याय 4, अनुभाग 6 देखिए।

जाता है उससे इसमें शायद ही कभी कभी की जायेगी, किन्तु साधारणतया इस सूची मे वृद्धि करने की आवश्यकता होगी।[1]

पुनः सम्भरण कीमतो की सूची उस वस्तु की सम्भरण कीमत मे सम्भरण में वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली वास्तविक कमी का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व कर रहा होगी किन्तु यदि माँग मे कमी हो या अन्य किसी कारणवश सम्भरण मे कमी करनी पड़े तो सम्भरण कीमत मे जिस गति से वृद्धि हुई हो उसी गति से कमी नही होगी, अपितु इसमे इससे निम्नतर गति से कमी होगी। सम्भरण कीमतो की जो सूची अग्रगामी गति के लिए थी वह विपरीत गति के लिए नही होगी अपितु उसका स्थान एक निम्नतर सारणी ले लेगी। उस वस्तु का उत्पादन चाहे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास या वृद्धि के नियम के अनुसार हो दोनो दशाओ मे यही बात सत्य होगी, किन्तु पश्चादुक्त दशा मे इसका विषेष महत्व है, क्योंकि उत्पादन मे इस नियम के अवश्य लागू होने के कारण यह सिद्ध हो जाता है कि उत्पादन मे वृद्धि के फलस्वरूप सगठन मे बड़े बड़े सुधार होते है।

किन्तु यह कल्पना कि सम्भरण कीमतों की सूची बेलोच है, क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि-नियम के लिए अनुपयुक्त है।

क्योकि जब किसी आकस्मिक अव्यवस्था से किसी वस्तु के उत्पादन मे बहुत वृद्धि हो जाती है, और इसके फलस्वरूप व्यापक रूप मे किफायते होने लगती है तो इन किफायतो का आसानी से लोप नही हो जाता। जब यान्त्रिकी उपकरणो, श्रम विभाजन और यातायात के साधनो का तथा सभी प्रकार के सुधरे हुए सगठनो का एक बार विकास हो जाता है तो इन्हें आसानी से त्यागा नही जा सकता। जब किसी विशेष उद्योग मे पूंजी एवं श्रम का विनियोजन कर दिया जाता है तो उनके उत्पादन की वस्तुओं की मांग घट जाने पर वास्तव मे उनका मूल्य ह्रास हो सकता है: किन्तु इन्हे अन्य धन्धो मे तेजी से परिवर्तित नही किया जा सकता, और कुछ समय तक उनको प्रतियोगिता से माँग मे कमी होने के कारण उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ की कीमतें नही बढ़ने पायेंगी।[2]

---

1 अर्थात् बिक्री के लिए रखी जाने वाली मात्रा में किसी कमी के फलस्वरूप माग वक्र के बायें छोर को ऊचा करने की आवश्यकता होगी जिससे यह मांग की नयी अवस्थाओ का प्रतीक बन सके।

2 दृष्टान्त के लिए रेखाचित्र 38 में सम्भरण वक्र के आकार से यह अभिप्राय निकलता है कि यदि प्रसगगत वस्तुएं वष मे ख भ मात्रा में उत्पादित की जाती हैं तो इनके उत्पादन मे होने वाली किफायतें इतनी व्यापक होगी कि इसे ट भ कीमत पर बेचा जा सकेगा। यदि इन किफायतो को एक बार प्राप्त कर लिया जाय तो स सि वक्र का आकार सम्भवतः सम्भरण की परिस्थितियो का सही रूप मे प्रतिनिधित्व नहीं करेगा। दृष्टान्त के लिए ख ओ मात्रा के उत्पादन के खर्च अनुपात में ख भ मात्रा के उत्पादन के खर्चों से कहीं अधिक नहीं होंगे। अतः सम्भरण की परिस्थितियों का पुनः प्रतिनिधित्व करने के लिए यह आवश्यक होगा कि इसे कुछ नीचे खींचा जाय, जैसा कि रेखाचित्र मे बिन्दु-अंकित वक्र से स्पष्ट हो जायगा। अगस्त 1902 के Quarterly Journal of Economics, पृष्ठ 505, में प्रो० फ्लक्स ने यह तर्क दिया है कि यह बिन्दु-अंकित वक्र ट से ऊपर की ओर बिलकुल ही झुकी हुई नहीं होनी चाहिए: किन्तु नीचे की ओर झुकी हुई होनी चाहिए, जिससे यह व्यक्त किया जा सके कि सबसे शक्तिहीन

माँग या सम्भरण में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप साम्य कीमत में बहुत परिवर्तन होते हैं।

आंशिक रूप से इस कारण ऐसी दशाएँ अधिक नहीं हैं जिनमें स्थायी साम्य की दो स्थितियाँ एक ही समय सम्भाव्य विकल्प हो, चाहे बाजार से सम्बन्धित सभी तथ्यों का व्यापारियों ने क्यों न पता लगा लिया हो। किन्तु जब विनिर्माण की किसी शाखा की दशाएँ ऐसी हो कि उत्पादन के पैमाने मे बड़ी वृद्धि होने के कारण सम्भरण कीमत मे तीव्रतापूर्वक कमी होने लगे तो किसी अव्यवस्था के कारण उस वस्तु की माँग बढ़ जाने से स्थायी साम्य कीमत मे बहुत अधिक कमी हो जायेगी। इसके पश्चात् पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा का बिक्री के लिए बहुत नीची कीमत पर उत्पादन किया जायेगा। यदि हम माँग एवं सम्भरण कीमतो की लम्बी अवधि से सम्बन्धित सूचियों का पता लगा सकें तो हम यह पायेंगे कि ये सदैव एक दूसरे के निकट होंगे।[1] क्योंकि यदि अत्यधिक बढ़ी हुई मात्रा की सम्भरण कीमत तदनुरूप माँग कीमतो से कुछ ही अधिक हो तो माँग मे मध्यम रूप मे वृद्धि होने से या तुलनात्मक रूप से कुछ नये आविष्कार से या उत्पादन को अन्य प्रकार से सस्ता बनाने से माँग एव सम्भरण कीमतों मे सामंजस्य हो सकता है और नया साम्य स्थापित हो सकता है। यह परिवर्तन कुछ दशाओ मे स्थायी साम्य की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर गतिशीलता के अनुरूप है, किन्तु

उत्पादको को व्यवसाय छोड़कर चले जाने के लिए बाध्य किये जाने पर, उत्पादन में हुई कमी से सीमान्त लागत मे कमी हो जायेगी, और भविष्य में सीमान्त लागत पहले की अपेक्षा अधिक योग्य उत्पादकों की लागत होगी। ऐसा होना सम्भव है। किन्तु यह ध्यान रहे कि सबसे शक्तिहीन उत्पादकों की सीमान्त लागत से मूल्य नियन्त्रित नहीं होता, अपितु इसे नियन्त्रित करने वाले कारणों की शक्ति व्यक्त होती है। जब तक बड़े पैमाने पर उत्पादन की किफायत 'आन्तरिक' होती है, या व्यक्तिगत फर्मों के आन्तरिक संगठन से सम्बन्धित होती है तब तक अधिक शक्तिशाली फर्म शीघ्रतापूर्वक शक्तिहीन फर्मों के अस्तित्व को मिटाने का प्रयत्न करेगी। इसके बावजूद भी शक्तिहीन फर्मों का अस्तित्व बना रहना इस बात का प्रमाण है कि कोई शक्तिशाली फर्म अनिश्चित रूप में अपना उत्पादन नहीं बढ़ा सकती। इसका आंशिक कारण यह है कि इसके बाजार का विस्तार करना कठिन है और आंशिक कारण यह है कि किसी फर्म की शक्ति स्थायी नहीं होती। जो फर्म आज शक्तिशाली है वह हो सकता है कि कुछ समय पूर्व शक्तिहीन रही हो, क्योंकि उस समय उसका विकास नहीं हुआ था, और वह कुछ समय बाद फिर शक्तिहीन हो सकती है, क्योंकि उसका पूर्ण विकास हो जाने के बाद उसकी शक्ति बढ़ने की अपेक्षा क्षीण होने लगती है। जब उत्पादन की मात्रा कम होगी तो उस समय भी सीमान्त पर शक्तिहीन फर्म रहेगी, और समय व्यतीत होने के साथ साथ वे उस स्थिति की अपेक्षा अधिक शक्तिहीन होंगी जब कुल उत्पादन का स्तर समान बना रहे। उस अवस्था में बाह्य किफायत भी कम होगी। अन्य शब्दों मे, प्रतिनिधि फर्म सम्भवतया अधिक छोटी तथा अधिक शक्तिहीन होगी, और उसे बाह्य किफायत कम उपलब्ध होगी। इसी [illegible] के फरवरी 1904 वाले अंक में प्रो॰ फ्लक्स के लेख को देखिए।

1 अर्थात् जब सम्भरण वक्र साम्य बिन्दु के दाहिनी ओर पर्याप्त दूरी पर माँग वक्र के केवल कुछ ही ऊपर हो।

यह पश्चवृक्त से इस बात में भिन्न है कि यह प्रसामान्य माँग या प्रसामान्य सम्भरण की दशाओं में बिना कुछ परिवर्तन हुए नहीं हो सकता।

इन परिणामों के संतोषजनक न होने के कारण आंशिक रूप में हमारी विश्लेषणात्मक प्रणालियों की अपूर्णता है, और हो सकता है कि भविष्य में वैज्ञानिक अनुसन्धान के शनैः शनैः विकास के फलस्वरूप यह बहुत कुछ दूर हो जाय। यदि हम प्रसामान्य माँग कीमत तथा प्रसामान्य सम्भरण कीमत को साधारणतया उत्पन्न की जाने वाली मात्रा तथा उस मात्रा के प्रसामान्य बनने में लगने वाले समय दोनों का ही फलन मानते तो हमने बड़ी प्रगति की होती।[1]

केवल स्थिर अवस्था में ही औसत खर्चे सीमान्त तथा प्रसामान्य दोनों ही

§4. इसके पश्चात् हमें औसत मूल्यों तथा प्रसामान्य मूल्यों के बीच पाये जाने वाले भेद पर पुनः विचार करना चाहिए।[2] स्थिर अवस्था मे उत्पादन के प्रत्येक उपकरण द्वारा अर्जित आय पहले ही प्रत्याशित होने के कारण उसे प्राप्त करने मे लगने वाले प्रयत्नों एवं त्यागों के प्रसामान्य माप का प्रतिनिधित्व करेगी। ऐसी दशा मे उत्पादन के कुल खर्चों का पता लगाने के लिए या तो इन सीमान्त खर्चों को उस वस्तु की इकाइयों से गुणा किया जा सकता है या इसके अलग अलग हिस्सो के उत्पादन के वास्तविक खर्चों तथा उत्पादन के अवकलन लाभों से उपार्जित सभी लगानों को एक साथ जोडने से प्राप्त किया जा सकता है। उत्पादन के कुल खर्चे इन दो प्रणालियों मे से किसी एक

1 कठिनाई का एक कारण यह भी है कि उत्पादन के पैमाने में किसी वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली किफायतों के प्राप्त होने में लगने वाला समय इतना लम्बा नहीं होता कि इसमें किसी अन्य तथा पहले से अधिक वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली किफायतें प्राप्त करने में लगने वाला समय भी शामिल हो, अतः हमें इस विशेष समस्या को दृष्टि में रखते हुए इस कार्य के लिए पर्याप्तरूप से लम्बा समय रखना चाहिए, और सम्भरण कीमतों की सम्पूर्ण सारणी को इसके अनुसार समायोजित करना चाहिए।

एक अधिक जटिल दृष्टान्त लेने से हम इस समस्या की गहराई तक पहुँच सकते हैं। उत्पादन के पैमाने में किसी वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली किफायतों को व्यक्त करने के लिए हम अनेक वक्रों पर विचार करें जिसमें से पहला वक्र एक वर्ष के अन्तर्गत, दूसरा दो वर्षों के अन्तर्गत, तीसरा तीन वर्षों के अन्तर्गत, और आगे भी इसी प्रकार किसी वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली किफायतों को व्यक्त करेंगा। यदि इन वक्रों को गत्ते से काट कर तथा पास खड़ा करें तो उनसे एक ऐसा तल बन जायेगा जिसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई क्रमशः मात्रा, कीमत तथा समय का प्रतिनिधित्व करेगी। यदि हम प्रत्येक वक्र पर उसके द्वारा व्यक्त की जाने वाली अवधि के लिए प्रसामान्य प्रतीत होने वाली मात्रा के अनुकूल बिन्दु अंकित किये होते तो ये बिन्दु उस तल पर एक वक्र बनाते और यह वक्र क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली किसी वस्तु की पर्याप्तरूप में वास्तविक दीर्घकालीन प्रसामान्य सम्भरण कीमत होती। सन् 1892 के Economic Journal के कुर्निगम (Cunynghame) द्वारा लिखित लेख से तुलना कीजिए।

2 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 6; अध्याय 5, अनुभाग 4 तथा अध्याय 9 अनुभाग 6 को देखिए।

खर्चों के बराबर होते हैं।

से निर्धारित किये जाने के कारण औसत खर्च कुल खर्चों को उस वस्तु की मात्रा से विभाजित करके निकाले जा सकते हैं और ये ही प्रसामान्य सम्भरण कीमत के बराबर होंगे, चाहे यह कीमत दीर्घकाल से या अल्पकाल से क्यों न सम्बन्धित हो।

किन्तु जिस संसार में हम रहते हैं वहां उत्पादन के 'औसत' खर्च कुछ सीमा तक भ्रम में डालने वाले हैं। क्योंकि उत्पादन के जिन अधिकांश भौतिक या व्यक्तिगत उपकरणों से कोई वस्तु बनायी गयी थी उसका बहुत पहले से ही अस्तित्व रहा है। अतः उत्पादक प्रारम्भ में उनसे जितना मूल्य प्राप्त करना चाहते थे ये ठीक उतने ही नहीं होंगे किन्तु कुछ वस्तुओं का मूल्य इससे अधिक और अन्य का कम होगा। अतः उनके द्वारा अर्जित वर्तमान आय उनके उत्पाद के लिए माँग तथा उनके सम्भरण के सामान्य सम्बन्धों से नियंत्रित होगी। और इस आय को पूँजीकृत करके उनके मूल्यों का पता लगाया जा सकेगा। अतः प्रसामान्य सम्भरण कीमतों की जिन सूचियों से मिल कर प्रसामान्य मूल्य की साम्य की स्थिति निर्धारित होती है, उन्हें तैयार करते समय हम बिना चक्रवत् तर्क के उत्पादन के इन उपकरणों के मूल्यों को ज्यों का त्यों नहीं मान सकते।

इसे रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है।

जिन उद्योगों मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की प्रवृत्ति दिखायी देती है उनके सम्बन्ध मे इस सतर्कता के विशेष महत्व को केवल स्थिर अवस्था में माँग एवं सम्भरण के सम्भाव्य सम्बन्धों को रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है। वहाँ विशेष प्रकार की प्रत्येक वस्तु का अनुपूरक लागतों में उचित हिस्सा होता है, और उत्पादक के लिए यह कभी भी लाभदायक नही होता कि वह कुल लागत, जिसमे किसी प्रतिनिधि फर्म के व्यापारिक सम्बन्ध तथा उसके बाह्य संगठन बनाने का प्रभार भी शामिल है, के अतिरिक्त अन्य किसी कीमत पर किसी विशेष आर्डर को स्वीकार करे। इस दृष्टान्त का कोई ठोस धनात्मक मूल्य नही है: यह निरपेक्ष तर्कप्रणाली से निहित सम्भावित त्रुटि से ही बचाव कर सकता है।[1]

---

1 रेखाचित्र 39 में स सि ऐसा वास्तविक सम्भरण वक्र नहीं है जो इस संसार की दशाओं के अनुकूल हो, किन्तु इसमें ऐसे गुण पाये जाते हैं जिन्हें बहुधा इस पर आरोपित करना मिथ्याजनक है। हम इसे विशेष व्यय वक्र कहेंगे। सदा की भाँति ख ग रेखा पर वस्तु की मात्रा तथा क ख रेखा पर इसकी कीमत प्रदर्शित की गयी है। ख ह प्रति वर्ष उत्पादित की जाने वाली मात्रा है और अ ह इसकी एक इकाई की साम्य कीमत है। ख ह इकाई के उत्पादक को कोई भी अवकलन लाभ प्राप्त नहीं होंगे, किन्तु ख म इकाई के उत्पादक को अवकलन लाभ प्राप्त हैं जिनके कारण वह प म परिव्यय पर उस इकाई का उत्पादन कर सकता है जो इनके बिना अ ह परिव्यय पर उत्पादित किये जा सकेंगे। प का बिन्दु-पथ विशेष व्यय वक्र है। यदि इस पर कोई प बिन्दु लें तथा ख ग पर प म लम्बवत् खींचें तो प म, ख म इकाई के उत्पादन में लगे हुए विशेष उत्पादन व्यय को व्यक्त करेंगी ; अ ह की प म से अधिकता ठ प के बराबर है, और यह उत्पादक अधिशेष या लगान है। सुविधा के लिए अवकलन ,लाभों के मालिकों को बायें से दायें अवरोही क्रम में रखा जा सकता है, और इस प्रकार स सि ऐसा वक्र है जो दाहिनी दिशा में ऊपर की ओर झुका रहता है।

उपभोक्ता अधिशेष या लगान की भाँति (भाग 3, अध्याय 6, अनुभाग 3) हम म ठ को एक पतली समांतर चतुर्भुज या एक मोटी सीधी रेखा मान सकते हैं। यदि ख ह रेखा पर म की क्रमानुसार अनेक स्थितियाँ हों तो उनसे होती हुई अनेक मोटी रेखाएं बनेंगी जिन्हें स अ वक्र रेखा दो भागों में काटेगी। इनमें से प्रत्येक नीचे का भाग उस वस्तु की एक इकाई के उत्पादन-व्यय को, तथा ऊपर का भाग लगान में दिये जाने वाले योगदान को व्यक्त करेगा। यदि इन मोटी रेखाओं का सम्पूर्ण नीचे का भाग एक साथ मिला दिया जाय तो इनसे स ख ह अ क्षेत्र बनेगा, जो ख ह मात्रा के उत्पादन में लगे खर्चों का प्रतिनिधित्व करेगा। यदि इन सभी मोटी रेखाओं के ऊपरी भाग को मिला दिया जाय तो इससे फ स अ क्षेत्र बनेगा जो कि उत्पादक अधिशेष या सामान्य अर्थ में लगान का प्रतिनिधित्व करेगा। ऊपर (भाग 3, अध्याय 6, अनुभाग 3 में) बतलाये गये संशोधनों के बाद द फ अ संतोष के उस अधिशेष का प्रतिनिधित्व करेगा जो उपभोक्ताओं को ख ह मात्रा पर ख ह×ह अ के बराबर द्रव्य देने के बाद प्राप्त होगा।
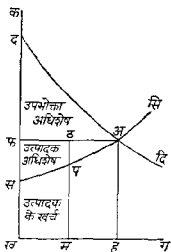
रेखाचित्र 40

किसी विशेष व्यय वक्र तथा किसी प्रसामान्य सम्भरण वक्र में इस बात के कारण भिन्नता है कि पूर्वोक्त में हम उत्पादन की सामान्य किफायतों को सदैव निश्चित तथा समान मानते हैं, किन्तु पश्चादुक्त में ऐसा नहीं मानते। विशेष व्यय वक्र का सदैव यह आधार रहा है कि कुल उत्पादन ख ह के बराबर है, और सभी उत्पादकों को वे आंतरिक एवं बाह्य किफायतें प्राप्त हैं जो इस पैमाने तक उत्पादन करने से प्राप्त हो सकती हैं। इन मान्यताओं को विशेषरूप से ध्यान में रखते हुए वक्र से किसी उद्योग की किसी विशेष अवस्था का, चाहे यह कृषि या विनिर्माण सम्बन्धी अवस्था हो, प्रतिनिधित्व किया जा सकता है: किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि इनसे उस उद्योग के उत्पादन की सामान्य दशाओं का प्रतिनिधित्व किया जा सकता है।

यह प्रतिनिधित्व तो केवल प्रसामान्य सम्भरण कीमत से ही किया जा सकता है जिसमें प म, ख म इकाई के उत्पादन के प्रसामान्य व्यय का इस कल्पना पर प्रतिनिधित्व करती है कि ख म इकाइयों (न कि ख ह की भाँति अन्य किसी मात्रा) का उत्पादन किया जा रहा है, और उत्पादन की वे बाह्य एवं आन्तरिक किफायतें मिल रही हैं जो एक प्रतिनिधि फर्म को ख म के बराबर उत्पादन करने से मिलती हैं। उत्पादन की कुल मात्रा ख ह के बराबर होने पर जितनी किफायतें मिल सकती थीं उनसे ये किफायतें साधारणतया कम ही होंगी, और इसलिए म बिन्दु पर जो कि ह बिन्दु के बायीं ओर है, सम्भरण वक्र के लिए जो कोटि (ordinate) खींचा जायेगा वह ख ह के बराबर कुल उत्पादन के लिए खींचे गये विशेष व्यय वक्र से बड़ा होगा।

इसका यह अभिप्राय है कि स अ फ क्षेत्र, जो कि वर्तमान रेखाचित्र में कुल लगान का प्रतिनिधित्व करता है, इससे कुछ कम लगान का प्रतिनिधित्व करता यदि प्रसामान्य माँग वक्र के द दि होने पर स सि कृषि उपज की भी प्रसामान्य सम्भरण वक्र रेखा होती। क्योंकि कृषि से भी उत्पादन की सामान्य किफायतें उत्पादन के कुल स्तर में वृद्धि होने के साथ बढ़ती जाती हैं।

यदि किसी विशेष तर्क की दृष्टि से हम इस तथ्य की अवहेलना करना चाहें अर्थात् यदि हम यह कल्पना करना चाहें कि म प उपज के उस भाग का उत्पादन व्यय है जिसे ख म मात्रा का उत्पादन करते समय सबसे अधिक कठिन परिस्थितियों में उत्पादित किया गया था (जिससे इसमें से लगान नहीं दिया जा सके) तो यह ख ह मात्रा के उत्पादन में भी ख म इकाई का भी (लगान के अतिरिक्त) उत्पादन व्यय है। या अन्य शब्दों में, यदि हम यह कल्पना करें कि उत्पादन को ख म से ख ह तक बढ़ाने में ख म इकाई के उत्पादन व्यय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो हम यह मान सकते हैं कि स अ फ कुल लगान का प्रतिनिधित्व करता है, भले ही स सि प्रसामान्य सम्भरण वक्र हो। कभी-कभी ऐसा करना अधिक सुविधाजनक है, किन्तु प्रत्येक दशा में इस विशेष मान्यता की ओर ध्यान आकर्षित होना चाहिए।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जाने वाली किसी वस्तु के सम्भरण वक्र के सम्बन्ध में इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसा करना शाब्दिक विरोध होगा। उस वस्तु के उत्पादन में इस नियम के लागू होने का यह अभिप्राय है कि कुल उत्पादन की मात्रा कम होने की अपेक्षा बहुत अधिक होने पर सामान्य किफायतें इतनी अधिक होती हैं कि ये उद्योगों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि करने में प्रकृति के बढ़ते हुए प्रतिरोध से भी कहीं बढ़ कर होती हैं। किसी विशेष व्यय वक्र में म प सदैव अ ह से कम होगा (क्योंकि म ह के बायीं ओर स्थित है) चाहे उस वस्तु का उत्पादन क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो या क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत। किन्तु दूसरी ओर जब किसी वस्तु का क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत उत्पादन किया जाय तो किसी सम्भरण वक्र में म प, अ ह से साधारणतया बड़ी होगी।

अब यह कहना शेष रह गया है कि यदि हम किसी ऐसी समस्या का हल कर रहे हों जिसमें मनुष्य द्वारा उत्पादित उत्पादन के उपकरणों को भी कुछ समय के लिए स्थिर माना जाता है, जिससे उनकी आय एक प्रकार का आभास-लगान हो, तो हम किसी विशेष व्यय वक्र को खींच सकते हैं जिसमें म प संकुचित अर्थ में उत्पादन व्यय को (जिसमें आभास-लगान सम्मिलित नहीं है) इंगित करेगी। इस प्रकार स अ फ क्षेत्र वास्तविक अर्थ में लगान तथा आभास लगान के योग को व्यक्त करेगा। अल्प-कालीन प्रसामान्य मूल्यों से सम्बन्धित समस्याओं के हल निकालने की यह प्रणाली रोचक है, और सम्भवतः अन्त में यह उपयोगी सिद्ध होगी; किन्तु इसके लिए सतर्कता बरतने की आवश्यकता है क्योंकि जिन मान्यताओं पर यह आधारित है वे बहुत ही अनिश्चित हैं।

परिशिष्ट (झ)

रिकार्डो के मूल्य का सिद्धान्त

§1. आम जनता के बीच भाषण देते समय रिकार्डो जीवन के तथ्यों के व्यापक एवं घनिष्ठ ज्ञान का परिचय देते थे, और उन्हें 'दृष्टान्त, सत्यापन अथवा तर्क के लिए' उद्धृत करते थे। किन्तु Principles of Political Economy में उन्होंने 'उन्ही प्रश्नों पर अपने आसपास के वास्तविक संसार का कुछ भी हवाला न देकर विचार किया है।'[2] उन्होंने मई 1820 ई० में माल्थस को (जिन्होने इसी वर्ष Principles of Political Economy considered with a view to their Practical appication नामक पुस्तक प्रकाशित की थी) यह लिखा कि 'मैं सोचता हूँ कि मेरे और आपके मतभेद का कारण कुछ अंशों मे यह है कि आप मेरी पुस्तक को जितनी मैंने कोशिश की है उससे अधिक व्यावहारिक मान रहे हैं। मेरा उद्देश्य सिद्धान्तों को समझाना रहा है, और इसके लिए मैंने ठीक उदाहरण लिये हैं जिससे कि मैं उन सिद्धान्तों के प्रयोग को प्रदर्शित कर सकूँ।' उनकी पुस्तक मे व्यवस्थित होने का कोई भी दावा नही किया गया है। उन्हें बड़ी कठिनाई से इसे प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया गया था, और यदि अपनी समझ से उन्होंने जिन पाठकों के लिए इसकी रचना की तो वे मुख्यतया वे राजनीतिज्ञ तथा व्यवसायी व्यक्ति थे जिनसे उनका सम्पर्क रहा। इस कारण उन्होंने जानबूझकर उन अनेक चीजों का उल्लेख नही किया जो उनके तर्क की तार्किक परिपूर्णता के लिए तो आवश्यक थे किन्तु जिन्हें वे लोग सुस्पष्ट मानते थे। इसके अतिरिक्त उसी वर्ष अक्टूबर मे उन्होंने माल्थस से भी कहा था कि उनका 'भाषा पर अच्छा अधिकार नही है।' उनके विचार जितने ही गूढ़ हैं उनकी प्रस्तावना उतनी ही अव्यवस्थित है। वह शब्दों का ऐसे काल्पनिक अर्थों मे प्रयोग करते हैं जिन्हें वह न तो स्पष्ट करते हैं और न उन शब्दों का उन्ही अर्थों मे निरन्तर प्रयोग करते हैं। वे बिना किसी संकेत के एक परिकल्पना को छोड़कर दूसरी परिकल्पना कर लेते थे।

रिकार्डो को व्यावहारिक अनुभव था, किन्तु उनके लेख गूढ़ एवं अव्यवस्थित थे।

अतः यदि हम उन्हें सही अर्थों मे समझने की चेष्टा करें तो हमें उनकी उदारतापूर्वक टीका-टिप्पणी करनी चाहिए। उन्होंने एडम स्मिथ की जितनी उदारतापूर्वक टिप्पणी की थी हमें उससे भी अधिक उदारतापूर्वक विचार करना चाहिए। जब उनके शब्द अस्पष्ट हों तो हमें उनकी वही व्याख्या करनी चाहिए जो उनके लेखों से कहीं अन्यत्र

1 भाग 5 के अन्तिम अभिवचनों से तथा परिशिष्ट ख, अनुभाग 5 से तुलना कीजिए।

2 हार्वर्ड विश्वविद्यालय के Quarterly Journal of Economics के प्रथम खण्ड में स्वर्गीय डंबार (Dunbar) के Ricardo's Use of Facts नामक प्रशंसनीय लेख देखिए।

व्यक्त होती है। यदि हम इससे उनके अभिप्राय का पता लगाने की कोशिश करें तो यह पायेंगे कि उनके सिद्धान्त अपूर्ण होते हुए भी उन अनेक त्रुटियों से दूर है जो कि इन पर आरोपित की जाती हैं।

उन्होंने तुष्टिगुण का होना निश्चित माना, क्योंकि इसका प्रभाव तुलनात्मक रूप में सरल है,

दृष्टान्त के लिए (Principles, अध्याय I, अनुभाग 1 मे) वह (प्रसामान्य) मूल्य के लिए तुष्टिगुण को, न कि इसके माप को 'नितान्त आवश्यक' मानते हैं, जब कि 'जिन वस्तुओं की मात्रा सीमित होती है उनका मूल्य उन लोगों के धन तथा उनकी अनुरक्ति के अनुसार परिवर्तित होता है जो उन्हे प्राप्त करने के लिए इच्छुक है।' अन्यत्र (तत्रैव, अध्याय IV मे) वे उस ढंग पर जोर देते है जिसके अनुसार बाजार मे कीमतों मे होने वाले उतार चढ़ाव एक ओर बिक्री की सुलभ मात्रा से तथा दूसरी ओर 'मानव आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं' से निर्धारित होते है।

पुनः 'मूल्य तथा सम्पदा' के अन्तर के विषय मे किये गये गहन, यद्यपि बहुत अपूर्ण, विवेचन मे वह सीमान्त एव कुल तुष्टिगुण के अन्तर का पता लगाते हैं। क्योंकि सम्पदा से उनका अभिप्राय कुल तुष्टिगुण से है और ऐसा प्रतीत होता है कि सदैव वह यह व्यक्त करना चाहते है कि मूल्य सम्पदा मे होने वाली उस वृद्धि के अनुरूप है जो किसी वस्तु के उस भाग से प्राप्त होता है जिसे खरीदने मे क्रेताओं को लागत के बराबर तुष्टिगुण मिलता है। जब किसी आकस्मिक घटना के फलस्वरूप सम्भरण मे अस्थायी रूप से, या उत्पादन की लागत मे वृद्धि के फलस्वरूप स्थायीरूप से, कमी हो जाती है तो इस सम्पदा मे होने वाली सीमान्त वृद्धि, जिसे मूल्य के रूप मे मापा जाता है, बढ़ जाती है। उस समय उस वस्तु से प्राप्त कुल सम्पदा मे कुल तुष्टिगुण मे भी कमी हो जाती है। सम्पूर्ण विवेचन मे वह यही कहने का प्रयत्न करते है कि सम्भरण मे किसी भी प्रकार के नियंत्रण के फलस्वरूप सीमान्त तुष्टिगुण मे वृद्धि और कुल तुष्टिगुण मे कमी हो जाती है, यद्यपि (अवकलन-गणित की सुगठित भाषा का ज्ञान न होने के कारण) वह इसे स्पष्टरूप मे व्यक्त करने के लिए उचित शब्दों का प्रयोग नहीं कर सके।

और उत्पादन की लागत की व्याख्या की, क्योंकि इसका प्रभाव कम स्पष्ट है।

§2. किन्तु तुष्टिगुण के विषय मे कोई महत्वपूर्ण बात कहने का विचार न रखते हुए भी उनका यह विश्वास था कि उत्पादन की लागत तथा मूल्य का सम्बन्ध भली-भाँति नहीं समझा गया है, और इस विषय पर भ्रमपूर्ण विचारों के कारण कर एवं वित्त से सम्बन्धित व्यावहारिक समस्याओं मे देश का सही पथ-प्रदर्शन नहीं हो सकता, और अतः उन्होंने विशेषकर इस विषय पर ही प्रकाश डाला। किन्तु यहाँ भी उन्होंने अपने विचार सक्षेप मे ही व्यक्त किये।

क्योंकि यद्यपि वह जानते थे कि वस्तुओं मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास, उत्पत्ति समता या उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने से उन्हे तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है, तथापि सभी प्रकार की वस्तुओं पर लागू होने वाले मूल्य के सिद्धान्त मे इस भेद को छोड़ देना ही सर्वोत्तम समझा किसी वस्तु मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियमों में से कोई भी नियम लागू हो सकता है, और इसलिए उन्होंने अस्थायी रूप से यह कल्पना करना उचित समझा कि इन सब मे क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू होता है। उनकी इस प्रकार की कल्पना न्यायोचित थी, किन्तु

उनकी त्रुटि यह थी कि उन्होंने स्पष्टरूप से यह नही बतलाया कि वह क्या कर रहे है।

उन्होंने अपने पहले अध्याय के पहले अनुभागमे यह तर्क दिया कि 'समाज की प्रारम्भिक अवस्थाओ' मे जहाँ पूंजी का शायद ही कुछ उपयोग किया जाता है, और जहाँ किसी भी व्यक्ति के श्रम की लगभग वही कीमत है जो कि किसी दूसरे व्यक्ति के श्रम की है, यह स्थूल रूप मे सत्य है कि "किसी वस्तु का मूल्य या किसी वस्तु की वह मात्रा जिसका इस वस्तु के साथ विनिमय किया जायेगा इसके उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम की सापेक्षिक मात्रा पर निर्भर रहती है।" अर्थात् यदि दो चीजे बारह तथा चार व्यक्तियो द्वारा बनायी जाती है तो उन सभी व्यक्तियो का एक ही ग्रेड होने के कारण, पूर्वोक्त का प्रसामान्य मूल्य पश्चादुक्त का तिगुना होगा। यदि इनमे से किसी एक स्थिति मे विनियोजित पूंजी पर लाभ मे दस प्रतिशत की वृद्धि की जाय तो दूसरी स्थिति मे भी दस प्रतिशत की वृद्धि करनी पड़ेगी। यदि इस श्रेणी के किसी श्रमिक की एक वर्ष की मजदूरी 'म' हो तो उत्पादन की लागत 4 म$\times$110/100, और 12 म $\times$110/100 होगी और इनका अनुपात 4 : 12 या 1 : 3 होगा।

(1) उत्पादन की लागत प्रत्यक्ष रूप में उपयोग की गयी श्रम की मात्रा, (2) उस श्रम के गुण, (3) औजारों पर पहले लगे श्रम, (4) माल को बाजार तक लाने के पूर्व व्यतीत होने वाले समय तथा (5) लाभ की दर के सापेक्षिक मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर है।

किन्तु उन्होंने बाद मे यह प्रदर्शित किया कि सभ्यता के बाद की अवस्थाओ मे इस प्रकार की मान्यताएँ स्वीकार करना उचित नही है और उन्होंने प्रारम्भ मे उत्पादन की लागत तथा मूल्य के जितने जटिल सम्बन्ध की कल्पना की थी यह उससे अधिक जटिल है। इसके पश्चात् उन्होंने अनुभाग 2 मे इस विचार का सूत्रपात किया कि 'विभिन्न गुणो वाले श्रमिको को विभिन्न प्रकार से पुरस्कार मिलता है।' यदि किसी जौहरी की मजदूरी कार्यरत श्रमिक की मजदूरी हो तो इनमे से पहले के एक घण्टे का कार्य दूसरे के दो घण्टे के कार्य के बराबर होना चाहिए। यदि उनकी सापेक्षिक मजदूरी मे कोई परिवर्तन हो तो उनके द्वारा तैयार वस्तुओ के सापेक्षिक मूल्यो मे भी तदनुरूप परिवर्तन होगा। किन्तु इस पीढ़ी के अर्थशास्त्रियो की भाँति वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे साधारण श्रमिको की अपेक्षा जौहरियो का मजदूरी मे परिवर्तन करने वाले कारणो का विश्लेषण न कर केवल यह व्यक्त कर सतोष कर लेते है कि इनकी मजदूरी मे इस प्रकार के बड़े उतार चढ़ाव नही हो सकते।

इसके पश्चात् अनुभाग 3 मे उन्होंने यह अनुरोध किया कि किसी वस्तु के उत्पादन की लागत की गणना करते समय न केवल इस पर तुरन्त लगाये जाने वाले श्रम की, अपितु उन यन्त्रो, औजारो तथा इमारतो पर लगाये जाने वाले श्रम की भी गणना करनी होगी जो श्रमिक के कार्य मे सहायता पहुंचाती है। समय के जिस तत्त्व को उन्होंने प्रारम्भ मे सतर्कतापूर्वक गुप्त रखा था उसे उन्होंने निश्चय ही यहाँ पर स्पष्टरूप मे प्रस्तुत किया।

तदनुसार अनुभाग 4 मे वह 'वस्तुओ के कुलक' (Set) के मूल्य पर विभिन्न प्रकार के प्रभावो पर और अधिक प्रकाश डालते है (मूल लागत तथा कुल लागत के बीच अन्तर को व्यक्त करने की कठिनाइयो से बचने के लिए वह कभी-कभी इस सरल प्रणाली का प्रयोग करते है) : और वह एक ही बार उपयोग करने मे समाप्त हो जाने वाली चलपूंजी तथा अचल पूंजी के प्रयोग के विभिन्न प्रभावो तथा वस्तुओ के उत्पा-

दन के लिए मशीनें तैयार करने में लगे हुए श्रम की अवधि की विशेषकर गणना करते हैं। यदि यह समयावधि लम्बी हो तो उन वस्तुओं के उत्पादन की लागत अधिक होगी। और उन वस्तुओं से इन्हें बाजार तक ले आने में आवश्यक रूप से लगने वाले समय की अधिक अच्छे ढंग से क्षतिपूर्ति होगी।"

अन्त में अनुभाग 5 में वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अलग अलग समयावधियों के लिए किये गये विनियोजन के सापेक्षिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का सारांश देते हैं। उनका यह तर्क सही है कि यदि मजदूरी में साथ साथ वृद्धि या कमी हो तो विभिन्न वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्यों में इस परिवर्तन का कुछ भी स्थायी प्रभाव नहीं पड़ेगा। किन्तु वह यह तर्क देते हैं कि लाभ की दर में कमी हो जाने से उन वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्यों में कमी हो जायेगी जिनके उत्पादन में लम्बे समय तक पूँजी विनियोजित करने के पश्चात् ही वस्तुओं को तैयार कर बाजार तक ले जाया जा सकता है। क्योंकि यदि एक दशा में औसत विनियोजन एक वर्ष के लिए किया जाय और लाभ के लिए मजदूरी-बिल में दस प्रतिशत की वृद्धि हो, तथा दूसरी दशा में यह दो वर्ष के लिए किया जाय और मजदूरी बिल में बीस प्रतिशत की वृद्धि हो, तो लाभ में 1/5 भाग के बराबर कमी हो जाने से दूसरी दशा में 20 के स्थान पर 16 प्रतिशत तथा पूर्वोक्त में 10 के स्थान पर 8 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी। (यदि उनकी प्रत्यक्ष श्रम-लागत बराबर हो तो परिवर्तन के पूर्व उनके मूल्यों का अनुपात 120/100 या 1.091 होगा, और इसके पश्चात् यह 116/108 या 1.074 होगा, इनमें लगभग 2 प्रतिशत की कमी होगी)। उनका तर्क स्पष्टतः अस्थायी ही है। बाद के अध्यायों में वह विभिन्न उद्योगों में विनियोजन की अवधि के अतिरिक्त लाभ में अन्तर के अन्य कारणों को ध्यान में रखते हैं। किन्तु यह कल्पना करना कठिन है कि उन्होंने किस प्रकार अपने पहले अध्याय में इसका विवेचन करने की अपेक्षा इस तथ्य पर अधिक जोर दिया कि समय या प्रतीक्षा तथा श्रम, उत्पादन की लागत के अंग हैं। अभाग्यवश उन्हें संक्षिप्त वाक्यांशों के प्रयोग में आनन्द मिलता था, और उन्होंने यह सोचा कि पाठकगण स्वतः ही सदैव उन व्याख्याओं को समझ लेंगे जिनके विषय में उन्होंने कुछ संकेत किया था।

वह मार्क्स की उस मिथ्या धारणा में संशोधन करते हैं जिसे माल्थस ने प्रत्याशित किया था।

अपने पहले अध्याय के छठे अनुभाग के अन्त में एक टिप्पणी में वह कहते हैं: ऐसा प्रतीत होता है कि माल्थस यह सोचते हैं कि किसी वस्तु की लागत तथा मूल्य का बराबर होना मेरे सिद्धान्त का ही एक अंग है। यदि उनका अभिप्राय 'उत्पादन की लागत' से है जिसमें लाभ भी शामिल है, तो उनकी यह धारणा ठीक ही है। किन्तु उक्त गद्यांश में उनका यह अभिप्राय नहीं है, और इसलिए उन्होंने मेरे विचारों को ठीक तरह नहीं समझा। इस पर भी राडबर्टस तथा कार्ल मार्क्स इस कथन में रिकार्डो के प्राधिकार का दावा करते हैं कि वस्तुओं का प्राकृतिक मूल्य उनमें लगे हुए श्रम के ही बराबर होता है। यहाँ तक कि वे जर्मन अर्थशास्त्री जो बड़े बड़े परिश्रम के साथ इन लेखकों के निष्कर्षों का विरोध करते हैं, बहुधा यह स्वीकार कर लेते हैं कि उन्होंने रिकार्डो के विचारों की सही ढंग से व्याख्या की है, और तार्किक दृष्टि से उनके निष्कर्ष रिकार्डो के ही निष्कर्षों से निकलते हैं।

इस तथ्य तथा इसी प्रकार के अन्य तथ्यों से यह प्रदर्शित होता है कि रिकार्डो का वाक्यसंयम निर्णय की त्रुटि थी। यह अधिक अच्छा होता कि वह यदाकदा इस कथन की पुनरावृत्ति कर देते कि दीर्घकाल में अन्य बातें समान रहने पर दो वस्तुओं का मूल्य उनके उत्पादन में लगे दो वस्तुओं के अनुपात में होगा। अर्थात् दोनों दशाओं में नियोजित श्रम समानरूप से कुशल होगा और अतः इनके लिए समानरूप से ऊँची दर पर भुगतान किया जायेगा। विनियोजन की अवधि को ध्यान में रखते हुए इस श्रम की सहायता के लिए समान अनुपात में पूँजी लगायी जाती है, और लाभ की दरें समान होती है। वह विचारों को स्पष्टरूप में व्यक्त नही करते, और कुछ दशाओं में वह पूर्ण तथा स्पष्ट रूप में यह न समझ सके कि किस प्रकार प्रसामान्य मूल्य की समस्या में विभिन्न अवयव एक दूसरे को परस्पर, न कि विभिन्न कारणो की लम्बी शृंखला क्रमानुसार नियंत्रित करते हैं। किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा वह इस बात के लिए अधिक अपराधी थे कि उन्होंने महान आर्थिक सिद्धान्तों को संक्षिप्त वाक्यों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया।[1]

किन्तु वह बहुत अधिक मितभाषी थे।

§3. आधुनिक समय में कुछ ही ऐसे लेखक है जो जेवन्स की भाँति रिकार्डो की अद्भुत मौलिकता के निकट तक पहुँच सके है। किन्तु जेवन्स ने रिकार्डो तथा

जेवन्स का अद्भुत एक

---

1 'रिकार्डो के सिद्धान्त को पुनर्स्थापित करने के लिए (Economic Journal खण्ड 1) प्रो० एश्ले इस टिप्पणी की व्यंजनापूर्ण आलोचना में इस आम विश्वास पर जोर देते हैं कि रिकार्डो ने स्वभाववश श्रम की मात्राओं को ही कुछ संशोधन के बाद उत्पादन की लागत का अंग माना। वह यह सोचते थे कि इससे ही मूल्य नियंत्रित होता है। उनकी सम्पूर्ण कृतियों को देखते हुए उनकी इस प्रकार की व्याख्या सर्वाधिक संगत है। इस बात में कोई भी मतभेद नहीं है कि अनेक योग्य लेखकों द्वारा इस व्याख्या को स्वीकार कर लिया गया है: अन्यथा उनके सिद्धान्त को पुनर्स्थापित करने अर्थात् उनके कुछ दृष्टियों में अत्यन्त सरल सिद्धान्त का अधिक पूर्णता प्रदान करने की कुछ ही आवश्यकता होती। किन्तु रिकार्डो द्वारा अपनी पुस्तक के पहले अध्याय से निहित व्याख्यात्मक वाक्यांशों की निरन्तर पुनरावृत्ति न किये जाने के कारण इस अध्याय को निरर्थक समझना या न समझना पाठकों के अपने अपने स्वभाव पर निर्भर है: केवल तर्क देने से ही इस समस्या का हल निकलना सम्भव नहीं है। यहां यह दावा नहीं किया गया है कि उनके सिद्धान्तों में मूल्य का पूर्ण सिद्धान्त निहित है: अपितु केवल यह दावा किया गया है कि इनसे इस विषय पर जितना भी विचार किया गया वह मुख्यतया सही था। राडबर्टस तथा मार्क्स नें रिकार्डो के सिद्धान्तों की जो व्याख्या की उनके अनुसार उत्पादन के मूल्य को नियंत्रित करने में या इसे नियंत्रित करने में योगदान देने वाली लागत में ब्याज शामिल नहीं है: और प्रो० एश्ले यह कहते समय (पृष्ठ 460) कि 'रिकार्डो ने ब्याज के भुगतान को, अर्थात् पूँजी के प्रतिस्थापन के अतिरिक्त कुछ अन्य चीजों के लिए किये जाने वाले भुगतान को, साधारण बात माना, इस विषय पर किये गये उक्त कथित दावे को स्वीकार कर लेते हैं।'

तरफा पक्ष-पोषण

मिल दोनों की क्रूरतापूर्वक समीक्षा की ओर ऐसा प्रतीत होता कि वह उनके सिद्धान्त को वास्तविकता की अपेक्षा संकुचित एवं कम वैज्ञानिक ठहराते हैं। जेवन्स मूल्य के किसी ऐसे भाग पर जोर देना चाहते थे जिसे उन दोनों लेखकों ने पर्याप्त महत्व नहीं दिया, और सम्भवतया इसी कारण वह यह कहते हैं कि 'पुनः पुनः चिन्तन करने तथा खोजबीन करने के पश्चात् ही मैं इस अनूठे मत पर पहुँचा हूँ कि *मूल्य पूर्णरूप में तुष्टिगुण पर ही निर्भर रहता है*' (*Theory*, पृष्ठ 1) उत्पादन की लागत पर मूल्य की निर्भरता के विषय पर रिकार्डो के अचेतन रूप से संक्षिप्त कथन की अपेक्षा उक्त कथन कम एक-पक्षीय एवं असंयोजित नही है। सच तो यह है कि यह कथन उससे भी अधिक भ्रमकारक है। किन्तु रिकार्डो ने इसे कभी भी किसी बड़े सिद्धान्त के एक अंग से बढ़कर नहीं माना और वह इसके शेष भाग को स्पष्ट करने के लिए सदैव यत्न करते रहे।

जेवन्स आगे कहते हैं: 'विनिमय के एक ऐसे सन्तोषजनक सिद्धान्त पर पहुँचने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप माँग एवं सम्भरण के साधारण नियमों को प्रतिपादित किया जाता है, हमें अपने पास विद्यमान वस्तु की मात्रा के अनुसार तुष्टिगुण में होने वाले उतारचढाव के प्राकृतिक नियमों का सतर्कतापूर्वक पता लगाना है। बहुधा यह देखा गया है कि श्रम से मूल्य निर्धारित किया जाता है, किन्तु किसी वस्तु के सम्भरण में वृद्धि या कमी कर उसके तुष्टिगुण की मात्रा में परिवर्तन कर केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही ऐसा किया जा सकता है।' जैसा कि हम अभी देखेंगे कि बाद के इन दो कथनों को रिकार्डो तथा मिल ने इसी भाँति अव्यवस्थित एवं अशुद्ध रूप से पहले ही व्यक्त कर दिया था, किन्तु वह पूर्वोक्त कथन को कभी भी स्वीकार नहीं करते। क्योंकि यद्यपि *उन्होंने तुष्टिगुण मे उतार चढ़ाव के प्राकृतिक नियमों को इतना स्पष्ट माना* कि इनके स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता ही नही समझी और यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया कि उत्पादन की लागत का उत्पादकों द्वारा विक्रय के लिए रखी गयी मात्रा पर कोई भी प्रभाव न पड़ने पर इसका विनिमय मूल्य पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा तथापि उनके सिद्धान्तों का यह अभिप्राय है कि जो बात सम्भरण के सम्बन्ध मे सत्य है वही यथोचित परिवर्तनों सहित माँग के सम्बन्ध मे भी सत्य है। यदि किसी वस्तु के तुष्टिगुण का क्रेताओं द्वारा बाजार से क्रय की गयी मात्रा पर कोई प्रभाव न पड़े तो इसका उस वस्तु के विनिमय मूल्य पर भी कोई प्रभाव नही पड़ेगा। अब हम कार्यकारण सम्बन्ध की उस श्रृंखला पर विचार करेंगे जिसके अनुसार उनकी पुस्तक के दूसरे संस्करण में उनके मुख्य विचारो को सूत्रबद्ध किया गया है। इस सम्बन्ध मे हम रिकार्डो तथा मिल के विचारों से इसकी तुलना करेंगे। वह कहते हैं:— पृष्ठ 179 में)

जवन्स की सर्वप्रमुख प्रस्थापना।

'उत्पादन की लागत से सम्भरण निर्धारित होता है। सम्भरण से तुष्टिगुण की अन्तिम मात्रा निर्धारित होती है। तुष्टिगुण की अन्तिम मात्रा से मूल्य निर्धारित होता है।'

अब यदि कार्यकारण की यह श्रृंखला वास्तव मे विद्यमान हो तो बीच की स्थितियो की अवहेलना करने तथा यह कहने से कोई बड़ी क्षति नहीं होगी कि उत्पादन

की लागत से मूल्य निर्धारित होता है। क्योंकि यदि अ, ब का और ब, स का तथा स्वयं स द का कारण हो तो अ द का कारण होगा किन्तु वास्तव में इस प्रकार की कोई शृंखला नहीं है।

'उत्पादन की लागत' तथा 'सम्भरण' शब्दों की संदिग्धता के विषय में प्रारम्भ में आपत्ति उठायी जा सकती है, जिन्हें जेवन्स को अर्द्ध-गणितिय वाक्यांशों के तकनीकी यंत्र द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिए था, किन्तु रिकार्डो के लिए ऐसा करना सम्भव न था। उनके तृतीय कथन के विरुद्ध इससे भी बड़ी आपत्ति उठायी जा सकती है। क्योंकि किसी बाजार में अनेक क्रेता किसी वस्तु के लिए जो कीमत देंगे वह उनके लिए उन वस्तुओं की तुष्टिगुण की अन्तिम मात्राओं द्वारा ही निर्धारित नहीं होती। अपितु इनके साथ साथ उनके पास विद्यमान क्रय-शक्ति से भी निर्धारित होती है। किसी वस्तु का विनिमय मूल्य सम्पूर्ण बाजार मे एक ही रहता है, किन्तु किन्ही भी दो भागों में इससे प्राप्त होने वाले तुष्टिगुण की अन्तिम मात्राएँ समान नहीं होतीं। जेवन्स की मूल्य को निर्धारित करने वाले कारणों का वर्णन करते समय 'जिस कीमत को देने के लिए उपभोक्ता तैयार हो जाते हैं' जिसे इस ग्रन्थ में संक्षेप में 'सीमान्त माँग कीमत' के रूप में व्यक्त किया गया है—वाक्याश के स्थान पर' 'तुष्टिगुण की अन्तिम मात्रा' वाक्यांश का प्रयोग कर विनिमय मूल्य के आधारभूत कारण के निकट पहुँचने की कल्पना की। दृष्टान्त के लिए (द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 105 में) दो व्यापारिक संस्थाओं जिनमें से एक के पास अनाज तथा दूसरे के पास गोमांस थे, के बीच विनिमय निश्चित किये जाने का उल्लेख करते समय वह अपने रेखाचित्र में 'किसी व्यक्ति' को प्राप्त होने वाले 'तुष्टिगुण' को एक रेखा द्वारा तथा उसके 'तुष्टिगुण' में होने वाली क्षति को दूसरी रेखा द्वारा प्रदर्शित करते हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति इस प्रकार की नहीं है। कोई व्यापारिक संस्था 'किसी व्यक्ति' की भांति नहीं है। इसमें जिन वस्तुओं का त्याग किया जाता है उनको इस संस्था के सभी सदस्यों के लिए क्रय-शक्ति तो समान होती है, किन्तु उनसे प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण भिन्न होता है। यह सत्य है कि स्वयं जेवन्स इस बात को समझते थे और उनके द्वारा किये गये वर्णन के विश्लेषणों की शृंखलाओं द्वारा जीवन के तथ्यों से संयत बनाया जा सकता है किन्तु इस कार्य में 'तुष्टिगुण' तथा तुष्टिहीनता' शब्दों के स्थान पर 'माँग कीमत' तथा 'सम्भरण कीमत' शब्दों का ही प्रतिस्थापना करना होगा, किन्तु इस प्रकार संशोधन किये जाने पर इनसे पुराने सिद्धान्तों की उतनी बड़ी आलोचना नहीं की जा सकती जितनी कि अन्यथा की जा सकती है, और यदि इन दोनों के बिलकुल शाब्दिक अर्थ लगाये जायें तो इन्हें व्यक्त करने की प्राचीन प्रणाली पूर्णरूप से सही न होने पर भी, जेवन्स तथा उनके कुछ अनुयायियों द्वारा प्रतिस्थापित प्रणाली की अपेक्षा सच्चाई के अधिक निकट होगी।

जेवन्स का यह अभिप्राय है कि किसी बाजार में वस्तुओं के तुष्टिगुण के अनुसार उनकी तुलना की जाती है: किन्तु ये तुष्टिगुण के अप्रत्यक्ष माप हैं।

किन्तु उनके मुख्य सिद्धान्त के औपचारिक वर्णन के विरुद्ध सभी लोगों की सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसमें सम्भरण कीमत, माँग कीमत तथा उत्पादन की मात्रा को कुछ अन्य आवश्यक शर्तों के साथ एक दूसरे को निर्धारित करते हुए नहीं व्यक्त किया गया है, अपितु यह माना गया है कि ये किसी शृंखला में एक दूसरे से निर्धारित

यह पारस्परिक कार्यकारण सम्बन्ध के

स्थान पर कारणों की सम्बन्ध सरणी तैयार करते हैं।

होते हैं। यह स्थिति अ ब तथा स, 3 ग्रेडों के किसी बरतन में एक के सहारे होने के अनुरूप है, और यह न कहकर कि गुरुत्वाकर्षण के अन्तर्गत इन तीनों की स्थिति एक दूसरे को निर्धारित करती है, उन्होंने यह कहा कि अ, ब को तथा ब, स को निर्धारित करता है। कोई अन्य व्यक्ति समान औचित्य के साथ यह कह सकता है कि स, ब को तथा ब, अ को नियंत्रित करता है। जेवन्स की सम्बन्ध सारणी के स्थान में उनके द्वारा रखे गये क्रम को उलटा कर वस्तुतः अपेक्षाकृत कम गलत सम्बन्ध सारणी तैयार की जा सकती है और इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:—तुष्टिगुण से सम्भरण की जाने वाली मात्रा निर्धारित होती है, सम्भरण की जाने वाली मात्रा से उत्पादन की लागत निर्धारित होती है, उत्पादन की लागत से मूल्य निर्धारित होता है, क्योंकि यह उस सम्भरण कीमत को निर्धारित करती है जो उत्पादकों को अपने कार्य पर लगे रहने के लिए आवश्यक है।

रिकार्डो द्वारा तुष्टिगुण के विषय में दिये गये सही, किन्तु अपर्याप्त विचारों में समय के तत्त्व को भी कुछ ध्यान में रखा गया है।

इसके पश्चात् हम रिकार्डो के सिद्धान्त पर विचार करें। इसे यद्यपि अव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा इसकी बडी आलोचना भी की जा सकती है, तथापि यह सैद्धान्तिक रूप में अधिक दार्शनिक तथा जीवन के तथ्यों के अधिक अनुरूप है। उन्होंने माल्थस को लिखे पत्र मे, जिसे पहले भी उद्धृत किया जा चुका है, यह कहा:—"म० से जब यह तर्क देते है कि किसी वस्तु का मूल्य उसके तुष्टिगुण के अनुपात मे होता है तो इससे यह विदित होता है कि मूल्य के अर्थ का सही ज्ञान नही है। उनका कथन तभी सत्य होगा जब वस्तुओं के मूल्य क्रेताओं द्वारा ही नियंत्रित किये जायें। ऐसी दशा में निश्चय ही सभी लोग वस्तुओं के लिए उनकी कीमत के अनुपात मे भुगतान करने को तैयार होंगे। किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि क्रेताओं का वस्तुओं की कीमतों के नियंत्रण में कोई भी हाथ नही रहता। यह तो विक्रेताओं की प्रतियोगिता से ही नियंत्रित होती है। क्रेता सोने की अपेक्षा लोहे के लिए कितना भी अधिक भुगतान करने को क्यो न तैयार हों, वे उसकी कीमत को निर्धारित न कर सकेंगे, क्योंकि सम्भरण उत्पादन की लागत से निर्धारित होगा। आपके विचार मे माँग और सम्भरण से मूल्य नियंत्रित होता है। मैं सोचता हूँ कि इस कथन मे कुछ भी नयी बात नही कही गयी है, और मैंने इस पत्र के प्रारम्भ मे इसके कारण भी दे दिये हैं: सम्भरण से मूल्य नियंत्रित होता है, और स्वयं यह उत्पादन की तुलनात्मक लागत से नियंत्रित होता है। द्रव्य के रूप मे उत्पादन की लागत से अभिप्राय श्रम के मूल्य तथा लाभ से है।" (डा० बोनार द्वारा तैयार किये गये इन पत्रों के सर्वोत्तम संस्करण के पृष्ठ 17–36 देखिए)। पुनः उन्होंने अपने दूसरे पत्र में यह लिखा, "मुझे न तो अन्न और न अन्य सभी वस्तुओं को कीमत पर माँग के पडने वाले प्रभाव के विषय में कोई आपत्ति है: किन्तु सम्भरण छाया की भाँति माँग का अनुसरण करता है, और इस प्रकार शीघ्र ही इससे वस्तु की कीमत नियंत्रित होने लगती है, जो कि स्वयं उत्पादन की लागत के अनुसार निर्धारित की जाती हैं।"

जिस समय जेवन्स ने अपनी पुस्तक लिखी थी, उस समय तक ये पत्र प्रकाशित नही हुए थे, किन्तु रिकार्डो लिखित Princ ples नामक पुस्तक में भी इसी प्रकार के कथन मिलते हैं। मिल भी (अपनी पुस्तक के भाग III, अध्याय IX, अनुभाग

3 में) द्रव्य के मूल्य का विवेचन करते समय "माँग तथा सम्भरण के ऐसे नियम के विषय में विचार करते हैं जो सभी वस्तुओं पर लागू होता है, और जो अन्य अनेक वस्तुओं की भाँति द्रव्य के सम्बन्ध में भी उत्पादन की लागत के नियम से नियन्त्रित, न कि विस्थापित होता है, क्योंकि उत्पादन की लागत का यदि सम्भरण पर कोई प्रभाव न पड़े तो इसका मूल्य पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।" पुनः (भाग III, अध्याय XVI, अनुभाग 1 में) अपने मूल्य के सिद्धान्त का सारांश देते हुए वह कहते हैं:—"इससे यह प्रतीत होता है कि सभी दशाओं में माग एवं सम्भरण से कीमतों के उतार-चढ़ाव तथा उन सब वस्तुओं के स्थायी मूल्य नियन्त्रित होते हैं जिनका मुक्त प्रतियोगिता के अतिरिक्त अन्य किसी ढंग से सम्भरण निर्धारित होता है: किन्तु मुक्त प्रतियोगिता में औसत रूप में वस्तुओं का उन मूल्यों पर विनिमय तथा ऐसी कीमतों पर विक्रय होता है जिनसे सभी वर्गों के उत्पादकों को समान लाभ प्राप्त करने की आशा रहती है। ऐसा तभी सम्भव है जब वस्तुओं का विनिमय एक दूसरे की लागत के अनुपात में हो।" दूसरे पृष्ठ पर उत्पादन की संयुक्त लागत वाली वस्तुओं के विषय में वह कहते हैं "चूँकि इन वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में उत्पादन की लागत से सहायता नहीं मिलती, अतः हम उत्पादन की लागत से पूर्ववर्ती तथा अधिक आधारभूत नियम माग एवं सम्भरण के नियम की सहायता लेनी चाहिए।"

जेवन्स (पृष्ठ 215 में) उस अंतिम गद्यांश का उल्लेख करते समय कहते हैं कि "मिल का यह कथन कि वह मूल्य के पूर्ववर्ती नियम—माग एवं सम्भरण के नियम को पुनः अपना रहे हैं, भ्रमपूर्ण है। सच तो यह है कि उत्पादन की लागत के नियम को अपनाने पर भी उन्होंने माग एवं सम्भरण के नियम को पूर्णरूप से तिलांजलि नहीं दी थी। उत्पादन की लागत तो सम्भरण को नियन्त्रित करने वाले अनेक कारणों में से एक है, और इसका मूल्यों पर परोक्ष प्रभाव पड़ता है।"

जेवन्स की प्रस्थापना जितनी भिन्न प्रतीत होती है उतनी नहीं है, और उन्होंने माँग एवं सम्भरण की व्यापक समरूपता को कम महत्व दिया।

इस आलोचना में एक महत्वपूर्ण तथ्य निहित है, भले ही इसके अंतिम भाग में प्रयुक्त शब्दों पर आपत्ति उठायी जा सकती है। यदि मिल के जीवन काल में ही यह आपत्ति उठाई गयी होती तो सम्भवतः वह इसे मान लेते और अपने वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने के लिए पूर्ववर्ती शब्द का प्रयोग करना समाप्त कर देते। 'उत्पादन की लागत का नियम' तथा 'अन्तिम तुष्टिगुण' सिद्धान्त निश्चय ही माग एवं सम्भरण के एकमात्र सिद्धान्त के अंग हैं। इनमें से प्रत्येक की कैंची के एक फल से तुलना की जा सकती है। जब एक फल स्थिर हो, और दूसरे फल को चलाकर किसी वस्तु को काटा जाय तो हम असावधानी के साथ संक्षिप्त रूप में यह कह सकते हैं कि वह वस्तु दूसरे फल से काटी जाती है। किन्तु इस प्रकार के कथन को न तो औपचारिक रूप में व्यक्त करना चाहिए और न उसका जानबूझ कर समर्थन करना चाहिए।[1]

यदि जेवन्स स्वयं भी केवल माँग कीमत तथा मूल्य के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों को तुष्टिगुण तथा मूल्य के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों के अनुरूप न मानते और यदि वह कूर्नो की भाँति, तथा अपनी कृति में गणितीय रूपों का उपयोग करने

---

1 भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 7 देखिए।

से, माँग एवं सम्भरण मूल्य की उस आधारभूत समरूपता पर जोर देते जो कि सूक्ष्म रूप में देखने में बहुत भिन्न है तो संभवतः वह रिकार्डो तथा मिल के विचारों का कम विरोध करते। हमे यह भूलना नही चाहिए कि जिस समय उन्होंने उक्त विचार व्यक्त किये थे उस समय मूल्य के माँग पहलू की बड़ी अवहेलना हो रही थी और उन्होंने इस ओर ध्यान आकर्षित कर तथा इस सिद्धान्त का विकास कर सर्वोत्तम सेवा की। बहुत कम ऐसे विचारक हैं जिनके हम विभिन्न प्रकार से इतने अधिक कृतज्ञ हैं: किन्तु इसका अर्थ यह नही कि हम इतनी शीघ्रता से उनके द्वारा की गयी पूर्वजों की आलोचना को मान लें।[1]

अन्य आलोचकों ने समय के तत्त्व के स्पष्टीकरण के विषय में रिकार्डो

जेवन्स द्वारा की गयी आलोचना से उनका उत्तर देना इसलिए उचित प्रतीत हुआ कि उस समय इंग्लैंड मे प्रायः अन्य किसी द्वारा की गयी आलोचना की ओर इतना ध्यान नही आकर्षित हुआ जितना कि उनकी आलोचना की ओर हुआ था। किन्तु रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित मूल्य के सिद्धान्त की भी अन्य अनेक लेखकों ने आलोचना की थी। उनमे मिस्टर मैकलियोड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने सन् 1870 ई० के पूर्व जो लेख लिखे थे उनमे मूल्य के सस्थापित सिद्धान्तों तथा लागत के सम्बन्ध के विषय मे आधुनिक काल मे प्रो० वालरस तथा कार्ल मेजर (जो कि

---

1 वर्तमान लेखक द्वारा जेवन्स की Theory पर लिखे गये एक लेख को देखिए जो कि 1 अप्रेल, 1872 ई० में Academy में प्रकाशित हुआ था। उनकी Theory के दूसरे संस्करण में, जिसे उनके पुत्र ने सन् 1911 में निकाला था, पूंजी के विषय में "उनके विचारों के उक्त लेख के विशेष प्रसंग में एक परिशिष्ट में दिया है (भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 8 भी देखिए)। उनके पुत्र ने यह दलील दी है कि उनके पिता के सिद्धान्त में जो कुछ व्यक्त किया गया है वह सही है, भले ही उन्होने रिकार्डो के सिद्धान्त के समर्थकों की भांति अपने दृष्टिकोण को गूढ़ रूप में व्यक्त करने की अभाग्यपूर्ण पद्धति अपनायी। उनके पुत्र ने अपने पिता के विचारों को सही रूप में व्यक्त किया है: और निश्चय ही उनके पिता का अर्थशास्त्र उतना ही अधिक ऋणी है जितना कि यह रिकार्डो की परमोत्कृष्ट कृति के लिए आभारी है। किन्तु जेवन्स के सिद्धान्त का एक पक्ष जहाँ प्रतिषेधात्मक है वहाँ रचनात्मक भी है। बहुत कुछ अंशों में यह रिकार्डो के ऊपर जिन्हें यह प्राक्कथन में *'योग्य किन्तु दुराग्रही व्यक्ति'* की संज्ञा देते थे, तथा जिन्होंने 'अर्थ विज्ञान की गाड़ी को गलत मार्ग में संचालित किया था,' एक प्रकार का आरोप लगाना था। उनके द्वारा की गयी रिकार्डो की आलोचनाओं से उन्हें बाह्यरूप में कुछ अनुचित तार्किक सफलता इसलिए प्राप्त हुई कि उन्होंने यह कल्पना की कि रिकार्डो ने मूल्य को उत्पादन की लागत से ही नियंत्रित माना और मांग के प्रभाव का कोई भी उल्लेख नहीं किया। रिकार्डो के इस विचार-विभ्रम के कारण सन् 1872 ई० में बड़ा अनिष्ट हो रहा था: और यह प्रदर्शित करना आवश्यक हो गया था कि यदि जेवन्स के ब्याज के सिद्धान्त की उसी ढंग से व्याख्या की जाय जिस ढंग से उन्होंने रिकार्डो के सिद्धान्त की व्याख्या की थी, तो यह अमान्य होगा।

जेवन्स के समकालीन विचारक थे) तथा प्रो० बह्मबावर्क व वीयेजर द्वारा (जो कि उनके बाद हुए थे) की गयी आलोचनाओं के रूप एवं सार का पहले ही अनुमान लगा लिया था।

समय के तत्त्व के विषय में रिकार्डो की भाँति उनके अलोचकों ने भी असावधानी बरती है, जिससे दुगुना भ्रम उत्पन्न हुआ है। क्योंकि मूल्य के अस्थायी परिवर्तनों तथा अल्पकालीन उतार चढ़ाव के कारणों पर आधारित तर्कों की सहायता से उन्होंने उत्पादन की लागत तथा मूल्य के सम्बन्धों की अन्तिम प्रवृत्तियों के विषय मे दिये गये उन सिद्धान्तों को गलत सिद्ध करने का प्रयत्न किया जो कि कारणों के कारण (Causae causantes) थे। इसमे सन्देह नही कि उन्होंने स्वयं अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए जो कुछ भी कहा वह उनके द्वारा लगाये गये अर्थ मे प्राय. सही था, इस पर भी इस आलोचना का कुछ भाग नया है और इसके रूप मे भी बहुत अधिक सुधार हुआ है। किन्तु इससे आलोचक गणों के इस दावे की किंचित् भी पुष्टि नही होती कि उन्होंने मूल्य के किसी ऐसे नये सिद्धान्त का आविष्कार किया है जो पुराने सिद्धान्त के एकदम विपरीत हो या जिससे पुराने सिद्धान्त का विकास एव प्रसार न होकर उसमे कोई उल्लेखनीय क्षति पहुँची हो।

की भाँति असावधानी बरती और वे उनके मुख्य सिद्धान्त को पलटने में असमर्थ रहे।

यहाँ पर रिकार्डो के पहले अध्याय का विभिन्न वस्तुओं के सापेक्षिक विनिमय मूल्यों को नियंत्रित करने वाले कारणो के ही एकमात्र प्रसंग मे विवेचन किया गया है। क्योकि इसका बाद की विचारधारा मे इस दिशा मे मुख्य प्रभाव पड़ा है। किन्तु इसका प्रारम्भ में इस विवाद से भी सम्बन्ध रहा है कि श्रम की मजदूरी किस सीमा तक द्रव्य की सामान्य क्रय-शक्ति का उचित मानक है। इस सम्बन्ध मे इसका महत्व मुख्यतया ऐतिहासिक है: किन्तु इस विषय पर सन् 1904 ई० के Quarterly Journal of Economics में प्रो० हालेण्डर के लेख को भी देखिए।

परिशिष्ट (ञ)[1]

मजदूरी-निधि का सिद्धान्त

पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में विशेष परिस्थितियों के कारण श्रम पूंजी के ऊपर अधिक निर्भर था, किन्तु कुछ अविवेकपूर्ण कथनों के कारण यह निर्भरता बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त की गयी थी।

§1. पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैंड के निवासी तो अधिक निर्धन थे ही किन्तु यूरोप के निवासी उनसे भी अधिक निर्धन थे। इन अधिकांश देशों में जनसंख्या कम थी और भोजन सस्ता था। किन्तु फिर भी उन्हें भरपेट भोजन प्राप्त नहीं होता था और वे युद्ध की सामग्री का आयोजन नहीं कर सकते थे। प्रारम्भिक विजयों के बाद फ्रान्स ने दशवासियों पर अनिवार्य रूप में कर लगाकर अपना काम चलाया। किन्तु मध्य यूरोप के देश बिना इंग्लैंड की सहायता के अपनी सेनाओं का भरण-पोषण नहीं कर सके। यहां तक कि अमेरिका पूर्ण शक्तिशाली और प्रचुर राष्ट्रीय साधनों से सम्पन्न होने पर भी इतना धनवान नहीं था कि वह यूरोप की सेनाओं पर होने वाले व्यय की अनुपूर्ति कर सके। अर्थशास्त्रियों ने इसके कारणों का पता लगाने का प्रयत्न किया, और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इसका मुख्य कारण इंग्लैंड की संचित पूंजी थी जो आधुनिक मानक के अनुसार यद्यपि बहुत कम थी किन्तु अन्य किसी देश की पूंजी से बहुत अधिक थी। अन्य देश इंग्लैंड से ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने इसका अनुकरण करना चाहा, किन्तु वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। क्योंकि आंशिक रूप में अन्य कारणों के अतिरिक्त इसका विशेष कारण यह था कि उनके पास पर्याप्त मात्रा में पूंजी नहीं थी। उनकी वार्षिक आय तो तुरंत उपभोग में ही खर्च हो जाती थी। उनमें से ऐसे बहुत कम लोग थे जिनके पास बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी थी जिसकी उन्हें तुरंत उपभोग के लिए आवश्यकता न थी किन्तु जिसे मशीनों तथा अन्य उपकरणों को तैयार करने के लिए उपयोग में लाया जा सकता था। इन मशीनों एवं उपकरणों की सहायता से मजदूर वर्ग भविष्य में उपयोग में आने वाली वस्तुओं का अधिक उत्पादन करने लगे। सभी देशों में, यहां तक कि इंग्लैंड में भी, पूंजी की कमी, मजदूरों की मशीनों के ऊपर अधिकाधिक निर्भरता तथा रूसो के कुछ अनुयायियों द्वारा पूंजी की सहायता के बिना ही श्रमिक वर्ग के अधिक सुखी होने की मूर्खतापूर्ण विचार व्यक्त करने के कारण अर्थशास्त्रियों के तर्कों को विशेष महत्व प्राप्त हुआ।

परिणामस्वरूप अर्थशास्त्रियों ने निम्न कथनों को सर्वाधिक महत्व दिया: सर्वप्रथम, श्रमिक वर्ग को पूंजी की अर्थात् पहले से ही तैयार किये गये अच्छे वस्त्र, इत्यादि की, आवश्यकता होती है। दूसरा, श्रमिक वर्ग को कारखानों, गोदामों तथा कच्चे माल इत्यादि के रूप में पूंजी की आवश्यकता होती है। निस्सन्देह कामगर अपनी पूंजी का आयोजन कर सकता था, किन्तु उसके पास कुछ ही कपड़े, फर्नीचर, तथा साधारण प्रकार के निजी औजार थे—और प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं के लिए वह अन्य लोगों

---

1 पृष्ठ 526 देखिए।

की बचत पर आश्रित था। श्रमिक को पहनने के लिए वस्त्र, खाने के लिए डबलरोटी अथवा डबलरोटी खरीदने के लिए द्रव्य प्राप्त हो जाता था। पूंजीपति की ऊन से धागा, धागे से कपड़ा, तैयार किया जाता था, या भूमि की जुताई की जाती थी अथवा कभी-कभी उपयोग मे आने वाली वस्तुएँ, जैसे पहनने के लिए कोट तथा खाने के लिए डबलरोटी तैयार की जाती थी। निस्सन्देह इसके कुछ अपवाद भी है, किन्तु मालिको एव मजदूरों के बीच होने वाले सौदों के फलस्वरूप मजदूरों को कार्य के बदले मे तुरत उपभोग में आने वाली वस्तुएँ दी जाती है तथा मालिकों को इसके बदले भविष्य मे उपभोग में आने वाली वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक सहायता मिलती है। अर्थशास्त्रियों ने इन तथ्यों को यह कह कर व्यक्त किया कि सभी प्रकार के श्रम को पूँजी की आवश्यकता होती है चाहे यह पूंजी श्रमिक के अथवा अन्य किसी के अधिकार मे हो और जब कभी कोई व्यक्ति मजदूरी पर कार्य करता है तो उसकी मजदूरी का भुगतान मालिक की पूँजी मे से होता है—यह भुगतान मजदूर द्वारा बनायी जाने वाली चीजों के उपभोग के लिए तैयार होने के पहले ही किया जाता है। इन सरल कथनो की बड़ी आलोचना की गयी है, किन्तु जिन लोगों ने इन्हे सही अर्थ मे समझा था उन्होंने इन पर कभी भी आपत्ति नही की।

पुराने अर्थशास्त्री यह कहते रहे कि मजदूरी की मात्रा पूँजी की मात्रा से निर्धारित होती है। उनके इस कथन को दोष रहित नही माना जा सकता, और उनके पक्ष में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यह उनका असावधानी से विचार व्यक्त करने का ढंग है। उनके इस कथन से लोगों को इस बात का मान हुआ है कि किसी देश मे, मान लीजिए एक वर्ष मे जो मजदूरी दी जा सकती है वह एक निश्चित मात्रा के बराबर है। यदि हड़ताल के फलस्वरूप अथवा अन्य किसी प्रकार श्रमिकों के किसी एक वर्ग की मजदूरी बढ़ जाय तो श्रमिकों से यह कहा जायेगा कि अन्य वर्गो के लोगों को उतनी ही मात्रा मे कम मजदूरी मिलेगी। जिन्होंने यह विचार व्यक्त किये है उनके मन मे ऐसी कृषि उपज की बात थी जिसे वर्ष मे केवल एक फसल ही उगा कर प्राप्त किया जाता था। यदि एक फसल मे उगाये गये गेहूँ का दूसरी फसल के तैयार होने के पूर्व ही उपभोग हो जाये तथा गेहूँ का बिलकुल ही आयात न हो तो यह कथन सत्य होगा कि गेहूँ की उपज मे किसी का हिस्सा बढ जाने से अन्य लोगों को उसी मात्रा में कम गेहूँ उपलब्ध होगा। किन्तु इससे यह कथन कि किसी देश मे दी जाने वाली मजदूरी की मात्रा वहाँ उपलब्ध पूँजी की मात्रा से निर्धारित होती है, जिसे 'मजदूरी-निधि सिद्धान्त का अश्लील रूप' समझा जाता है, न्यायसंगत सिद्ध नही होता।[1]'

---

1 ये तीन पैराग्राफ Co-operative Annual के लिए लिखे गये लेख से उद्धृत किये गये है जिसे सन् 1885 ई० में औद्योगिक पारिश्रमिक सम्मेलन की रिपोर्ट (Report of the Industrial Remuneration Conference) में पुनः छापा गया था, और इनमें भाग 6 के पहले दो अध्यायों के मुख्य तर्क की रूपरेखा दी गयी है।

मिल ने मूल्य के सिद्धान्त पर विचार करने के पूर्व मजदूरी के विषय में विवेचन करने का प्रयत्न किया।

§2. (भाग 1, अध्याय 4, अनुभाग 7 में) यह पहले ही देखा जा चुका है कि मिल अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे काम्टे, समाजवादी विचारकों तथा जनसाधारण की मनोवृत्ति की सामान्य प्रवृत्तियों के संयुक्त प्रभाव मे आकर अर्थशास्त्र मे यान्त्रिक प्रधानता के स्थान पर मानवीय प्रधानता को लोगों के सम्मुख रखने लगे। उन्होंने प्रथा तथा परम्परा द्वारा, समाज के निरन्तर बदलते हुए गठन, तथा मानव प्रकृति में सतत् परिवर्तन के कारण मानवीय आचरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहा। काम्टे की भाँति उनका भी यह मत था कि पुराने अर्थशास्त्रियों ने मानवीय प्रकृति की लोचकता का अल्पानुमान लगाया। उनके जीवन के उत्तरार्द्ध मे उक्त अभिलाषा से ही उन्हे अपनी आर्थिक कृति की रचना के लिए विशेष प्रेरणा मिली जो कि उनकी Ess1ys on Unsetll d Quest ons नामक पुस्तक लिखने के लिए मिली प्रेरणा से भिन्न थी। इसके कारण उन्हे वितरण को विनिमय से पृथक् करने तथा यह तर्क करने के लिए प्रेरणा मिली कि वितरण के नियम 'विशेष मानवीय परम्पराओं' पर आधारित है तथा मनुष्य की भावनाओ, उसके विचारों तथा उसकी कार्यप्रणाली मे परिवर्तन होने के साथ साथ इनमे भी निरन्तर संशोधन होते रहेंगे। इस प्रकार उन्होने वितरण के नियमों का उत्पादन के उन नियमों से विपर्यय दिखाया जिन्हे भौतिक प्रकृति की अपरिवर्तनीयता पर आधारित मानते थे। उन्होंने वितरण के नियमों का विनिमय के उन नियमों के साथ भी विपर्यय दिखाया जिन्हें वे गणित-शास्त्र की भाँति बहुत कुछ सार्वभौमिक मानते थे। यह सत्य है कि उन्होंने कभी कभी यह भी कहा कि अर्थशास्त्र मे मुख्यरूप से उत्पादन तथा वितरण पर विचार किया जाता है। इससे ऐसा भान हुआ कि वह विनिमय के सिद्धान्त को वितरण के सिद्धान्त का ही अंग समझते थे, किन्तु इस पर भी उन्होंने इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् रखा। उन्होंने वितरण पर अपनी पुस्तक के दूसरे तथा चौथे भाग मे तथा 'विनिमय की पद्धति' पर इसके तीसरे भाग मे विवेचन किया (उनकी Principles of Political Economy, भाग II, अध्याय 1, अनुभाग 1 तथा अध्याय 16 अनुभाग 6 से तुलना कीजिए।)

इन कारणों के फलस्वरूप वह अपूर्ण कथन देने के लिए ही प्रलोभित हुए। उन्होंने अपनी पुस्तक के भाग IV में इस कथन

अर्थशास्त्र को अधिक मानवीय रूप प्रदान करने की उत्सुकता के कारण वह अपनी निर्णयशक्ति का समुचित उपयोग न कर सके और बिना पूर्ण विश्लेषण किये अपने विचारों को शीघ्रता से व्यक्त करने लगे क्योंकि माँग तथा सम्भरण के विवेचन के पूर्व मजदूरी के सिद्धान्त पर विचार करने से ही उन्होंने उस सिद्धान्त पर संतोषजनक ढंग से विचार करने की संभावना ही नही रखी। सच तो यह है कि वह (Principles, भाग II, अध्याय XI, अनुभाग 1 मे) यहाँ तक कहने लगे कि मजदूरी मुख्यतया जनसंख्या तथा पूँजी के अनुपात पर या जैसा कि उन्होंने बाद मे स्पष्ट किया है, मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिक वर्ग की संख्या तथा उन्हें मजदूरी देने के लिए बनायी गयी कुल मजदूरी-निधि (जो कि चल पूँजी का एक अंश है) के अनुपात पर निर्भर है।

तथ्य यह है कि वितरण तथा विनिमय के सिद्धान्त इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं कि उन्हे एक ही समस्या के दो पहलू समझा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक मे 'यांत्रिक' सुनिश्चितता तथा सार्वभौमिकता का अंश पाया जाता है, इनमे से प्रत्येक

पर विशेष मानवीय परम्पराओं का जो प्रभाव पड़ा है वह विभिन्न स्थानों तथा युगों में बदलता रहा है तथा बदलता रहेगा। यदि मिल ने इस महान सत्य को समझ लिया होता तो वह मजदूरी की समस्या के समाधान करने के लिए दिये गये कथन को प्रतिस्थापित करने के लिए अग्रसर न होते जैसा कि वह अपनी पुस्तक के दूसरे भाग में हुए थे: किन्तु वह अपनी पुस्तक के दूसरे भाग में दिये गये वर्णन तथा विश्लेषण का राष्ट्रीय लाभांश के वितरण को नियंत्रित करने वाले कारणों के संक्षिप्त किन्तु गहन अध्ययन के साथ साथ (जो कि चौथे भाग में दिया गया है) संयोजन कर सकते थे। इससे अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के सही प्रतिपादन की दिशा में तीव्र प्रगति हो सकती थी।

का जो संशोधित रूप दिया है उस ओर साधारणतया लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। इसका आंशिक कारण यह है कि थोर्न्टन द्वारा की गयी आलोचना का उत्तर देने में उन्होंने कम वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया।

जब लोंगे, क्लिफ, लैस्ली, जेवन्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियों की भाँति उनके मित्र थोर्न्टन ने तर्क द्वारा उन्हें यह विश्वास दिलाया कि उनकी पुस्तक के दूसरे भाग के कुछ तर्क अमान्य हैं तो उन्होंने इस पर आवश्यकता से कहीं अधिक विश्वास कर लिया। उन्होंने अपनी पुरानी त्रुटि को बढ़ा चढ़ाकर व्यक्त किया तथा अपने आलोचकों की अधिकांश आलोचना मान ली। उन्होंने Dissertation, खण्ड IV, पृष्ठ 46) में कहा: 'प्रकृति का कोई भी ऐसा नियम नहीं है जिसके कारण मजदूरी स्वाभाविक रूप से उस स्तर तक बढ़ ही न सके जिस पर न केवल व्यवसाय चलाने के लिए मालिक द्वार नियत की गयी निधि, अपितु जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त वैयक्तिक खर्चों के लिए रखी गयी सम्पूर्ण धनराशि इसके भुगतान करने मे समाप्त हो जाय। वृद्धि मजदूरी-निधि की अपरिवर्तनीय सीमा पर निर्भर न होकर वास्तव में मजदूरी मे होने वाली इस व्यावहारिक विचार पर निर्भर है कि कितनी मजदूरी दी जाने से मालिक का विनाश हो सकता है या उसे अपना व्यवसाय छोड़ना पड़ता है।' उन्होंने यह स्पष्ट यह स्पष्ट नहीं किया कि यह कथन तुरत या अन्तिम प्रभावों से, अथवा अल्प दीर्घकाल से सम्बन्धित है: किन्तु प्रत्येक दशा में यह कथन अमान्य प्रतीत होता है।

दीर्घकाल में मजदूरी निधि की सीमा बहुत बड़ी होती है: क्योंकि मजदूरी में स्थायी रूप से इतनी वृद्धि नहीं हो सकती कि श्रमिकों को राष्ट्रीय आय का वह सम्पूर्ण भाग मिल सके जिसका संकेत यहाँ दिया गया है। अल्पकाल में भी यह निधि बहुत बड़ी नहीं होती: क्योंकि यह सम्भव है कि किसी संकटकालीन स्थिति में सुसंगठित हड़ताल के फलस्वरूप मालिक मजदूरों को अल्पकाल मे उनके उत्पादन के मूल्य से भी अधिक भुगतान करने के लिए बाध्य हो सकते हैं, (चाहे कच्चे माल के लिए भुगतान करने के बाद) ऐसा करने मे होने वाले लाभ ऋणात्मक ही क्यों न हो। वास्तव मे भूतकाल मे अथवा हाल में ही प्रतिपादित मजदूरी के सिद्धान्त का श्रम बाजार के किसी विशेष संघर्ष से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है: यह तो प्रतिस्पर्धा में भाग लेने वाले पक्षों की सापेक्षिक शक्ति पर निर्भर है। किन्तु इसका पूंजी तथा श्रम के पारस्परिक सम्बन्ध की सामान्य नीति से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि इससे यह पता लगता है कि किन नीतियों का अनुकरण करने से अन्त में हानि होगी तथा किन से हानि न होगी और, उपर्युक्त संगठनों की सहायता से किन नीतियो को कायम रखा जा सकता है तथा किन नीतियों का अनुकरण करने से अन्त में दोनो पक्ष, कितने ही सुसंगठित होने पर भी, दुर्बल पड़ सकते हैं।

किसी विशेष व्यापार में होने वाले संघर्ष से मजदूरी के सिद्धान्त का अप्रत्यक्ष तथा दूरवर्ती सम्बन्ध है।

कैरननेस मजदूरी-निधि सिद्धान्त की अपमार्जितता के चरम रूपों को समझाया किन्तु उनके विचार स्पष्ट नहीं हैं।

कुछ समय पश्चात् कैरनेस ने अपनी Leading Principles नामक कृति में मजदूरी-निधि सिद्धान्त को ऐसे रूप में प्रतिपादित कर पुनर्जीवित किया जिसे उनके विचार में इस सिद्धान्त की पहले की गयी आलोचनाओं की उपेक्षा की जा सके। यद्यपि अपनी प्रस्तावना के अधिकांश भाग में वह इस सिद्धान्त के पुराने दोषों को दूर करने में सफल हुए, तथापि उन्होंने इस सिद्धान्त में प्रतिपादित *विशिष्टताओं को ही समझाने* के अतिरिक्त प्रायः अन्य कोई नयी बात नहीं कही : अतः उनकी पुस्तक को Leading Principles कहना तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होता। उन्होंने अपनी पुस्तक (पृष्ठ 203) में कहा है कि *'अन्य बातों के समान रहने पर मजदूरी की दर में श्रम की पूर्ति की विपरीत दिशा मे कमी या वृद्धि होती है।'* उनके तर्क श्रम की पूर्ति में एकाएक बड़ी वृद्धि होने के तुरत परिणाम के प्रसंग मे सही सिद्ध होंगे; किन्तु जनसंख्या में *साधारण वृद्धि होने पर न केवल पूँजी में ही वृद्धि होगी अपितु श्रम का उपविभाजन* भी अधिक होगा जिससे कुशलता में वृद्धि होगी। उनका यह कहना कि मजदूरी की दर में 'विपरीत दिशा मे कमी या वृद्धि होती है,' भ्रमकारी है। उन्हें तो यह कहना चाहिए था कि इसमें 'कम से कम कुछ समय तक विपरीत दिशा में कमी या वृद्धि होती है।' वह यह 'अप्रत्याशित निष्कर्ष' निकालते हैं कि जब अचल पूँजी तथा कच्च माल का उपयोग करने के लिए श्रम की पूर्ति में वृद्धि हो तो *'श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप मजदूरी-निधि मे कमी हो जायेगी।'* किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण उत्पादन से कुल मजदूरी प्रभावित नही होती। तथ्य यह है कि श्रमिकों को प्रभावित करने वाले कारणों में कुल उत्पादन सबसे बड़ा कारण है।

मजदूरी-निधि सिद्धान्त का केवल इस विषय के मांग पक्ष से ही सम्बन्ध है।

§3. ऐसा प्रतीत होता है कि मजदूरी-निधि सिद्धान्त के चरम रूपों के अनुसार मजदूरी माँग से ही पूर्णतया निर्धारित होती है, यद्यपि मोटे तौर पर यह भी कहा जाता है कि माँग पूँजी के भण्डार पर निर्भर है। किन्तु अर्थशास्त्र के कुछ प्रसिद्ध विचारकों ने इस सिद्धान्त तथा मजदूरी के लौह सिद्धान्त को, जिसमें मजदूरी को मानवमात्र के पालन पोषण की लागत से नियंत्रित माना जाता है, सही ठहराया। कैरनेस की भाँति उन्होंने निश्चय ही उन दोनो सिद्धान्तों की उग्रता में कमी कर उनमें न्यूनाधिक रूप से सामंजस्य स्थापित किया होगा। किन्तु यह दृष्टिगोचर नही होता कि उन्होने ऐसा किया था।

इस सिद्धान्त का कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों के समर्थन में प्रयोग किया गया, किन्तु इन तथ्यों को इसके

उद्योग को पूँजी पर निर्भर मानने की बहुधा इस प्रकार व्याख्या की गयी कि *यह कथन व्यावहारिक रूप में मजदूरी-निधि सिद्धान्त के ही अनुरूप हो गया।* इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है जिससे यह सही प्रतीत हो : किन्तु इसी प्रकार के स्पष्टीकरण से यह कथन भी सही सिद्ध होगा कि विनियोजन की जाने वाली, 'पूँजी की मात्रा (विशेष) उद्योग पर निर्भर है।' मिल ने इस सिद्धान्त का मुख्यरूप से इस तर्क के लिए उपयोग किया कि साधारणतया संरक्षात्मक करों अथवा अन्य उपायों से लोगों को अपनी इच्छानुसार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने से वंचित कर श्रम के कुल नियोजन को नही बढ़ाया जा सकता है। संरक्षात्मक करों के प्रभाव बड़े जटिल हैं और उन पर यहाँ विचार करना सम्भव नही है किन्तु मिल का यह विचार सही है कि सामान्यतया किसी ऐसे नये उद्योग में जो इन करों के कारण ही स्थापित हो सका, श्रम के पालन-पोषण तथा उसे सहायता देने के लिए केवल तभी पूँजी लगायी गयी होगी जब

किसी ऐसे अन्य उद्योग से इसे या तो हटाया गया होगा या उसमे लगाया ही न गया होगा जिसमे सम्भवतया नये उद्योगों मे लगे हुए श्रमिकों के बराबर संख्या मे ही लोगों को रोजगार मिला हो अथवा अधिक आधुनिक रूप मे इस तर्क को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि इस प्रकार के कानून बनाने से प्रथम दृष्टि मे न तो राष्ट्रीय लाभांश, और न इसमे से श्रमिकों को प्राप्त होने वाले अंश में ही वृद्धि होती है। इससे न तो पूंजी की पूर्ति मे और न किसी भी प्रकार पूंजी की अपेक्षा श्रम की सीमान्त कार्य-कुशलता मे ही वृद्धि होती है। अतः पूंजी के लिए प्राप्त होने वाले भुगतान की दर मे कमी नहीं होती, और न राष्ट्रीय लाभांश मे वृद्धि ही होती है (सच तो यह है कि इसमे कमी होनी अवश्यम्भावी है)। जब इस लाभांश के वितरण मे अधिक अंश प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले सौदों मे न तो श्रम के लिए और न पूंजी के लिए ही अपेक्षाकृत अधिक भुगतान किया जाय तो इस प्रकार के कानून बनाने से किसी को भी लाभ नहीं होगा।

बिना भी सही ठहराया जा सकता है।

इस सिद्धान्त मे दिये गये क्रम को उलटा किया जा सकता है, जिससे संरक्षात्मक करों के कारण स्थापित उद्योगों मे पूंजी के पर्ण प्रभाव के लिए जितना श्रम आवश्यक है उसे किसी ऐसे अन्य उद्योग से या तो हटाया गया होगा या इसमे लगाया ही न गया होगा, जिसमे इसके फलस्वरूप नये पेशे के लगभग बराबर पूंजी का उपयोग करना लाभप्रद हुआ है, तथा होगा। किन्तु यह कथन समान रूप से सही होने पर भी साधारण समझ वाले लोगों को समान रूप से उचित प्रतीत नहीं होगा। क्योंकि जिस प्रकार यह माना जाता है कि वस्तुओं का खरीददार उनके विक्रेता को विशेष लाभ पहुँचाता है, यद्यपि सही बात तो यह है कि दीर्घकाल मे क्रेताओं तथा विक्रेताओं द्वारा एक दूसरे के लिए अर्पित की गयी सेवाएँ समकक्ष है उसी प्रकार आमतौर पर यह माना जाता है कि मालिक पारिश्रमिक के लिए कार्य करने वाले श्रमिक का विशेष लाभ पहुँचाता है, यद्यपि दीर्घकाल मे मालिक तथा श्रमिकों द्वारा एक दूसरे के लिए अर्पित की जाने वाली सेवाएँ समकक्ष है। इन दो प्रकार के तथ्यों के कारणो एव परिणामों पर हम बाद मे चल कर विचार करेंगे।

पूंजी एवं श्रम के बीच स्थापित किये गये कुछ सम्बन्धों में पायी जाने वाली समरूपता।

जर्मनी के कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह तर्क दिया है कि मालिक जिस पूंजी मे से मजदूरी देते है वह उपभोक्ताओं से प्राप्त होती है। किन्तु इससे एक भ्रम उत्पन्न हो जाता है। किसी व्यक्तिगत मालिक की दृष्टि से यह बात उस समय सही हो सकती है जब उपभोक्ता उसके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तु के लिए अग्रिम पेशगी देता है: किन्तु वास्तविक स्थिति इसके ठीक विपरीत है। उपभोक्ता द्वारा बहुधा बाद मे भुगतान किये जाते है, और ये तैयार वस्तुओं के बदले मे तैयार वस्तुओं के लिए केवल अस्थगित अधिकार प्रदान करते है, यह स्वीकार किया जा सकता है कि यदि उत्पादक अपनी वस्तुओं को न बेच सके तो हो सकता है कि वह कुछ समय तक श्रमिकों को मजदूरी पर न रख सके, किन्तु इसका केवल यह अभिप्राय होगा कि उत्पादन की व्यवस्था आंशिक रूप से नियंत्रण से बाहर है: यदि किसी मशीन की कोई शलाका कार्य न करे तो मशीन कार्य करना बन्द कर देगी। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मशीन की चालन शक्ति शलाका मे पायी जाती है।

निजी मालिक ग्राहकों को की जाने वाली बिक्री से प्राप्त आय द्वारा अपनी पूंजी वसूल कर लेते हैं।

किन्तु एक व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार सभी लोगों को उपभोक्ता माना जा सकता है और यह कहना कि उत्पादकों की पूँजी उपभोक्ताओं से प्राप्त होती है, यह कहने के अनुरूप है कि यह राष्ट्रीय लाभांश से प्राप्त होती है।

पुनः मालिक किसी भी समय मजदूरी के रूप में जो धनराशि देता है उसे उस कीमत से निर्धारित मानना भी उचित नहीं है जो उसकी वस्तुओं के लिए उसे उपभोक्ता देते हैं, यद्यपि साधारणतया इस पर उनके द्वारा दी जाने वाली कीमत की प्रत्याशा का बहुत प्रभाव पड़ेगा। वास्तव में यह सत्य है कि दीर्घकाल में तथा सामान्य दशाओं में उसे उपभोक्ताओं द्वारा जो कीमतें दी जाती हैं तथा जो कीमतें दी जायेंगी वे लगभग बराबर होती हैं। किन्तु जब हम एक निजी मालिक को होने वाले भुगतानों पर विचार करने के पश्चात् सामान्य रूप से मालिकों को किये जाने वाले प्रसामान्य भुगतानों पर विचार करते हैं—और वास्तव में हमें अब इन्ही पर विचार भी करना है—तो उपभोक्ताओं का एक पृथक् वर्ग नहीं रह जाता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता होता है। राष्ट्रीय लाभांश उस व्यापक अर्थ मे पूर्णतया उपभोक्ताओं को ही प्राप्त होगा जिसमे मालगोदाम या किसी अभियांत्रिक निर्माणशाला से ऊन या किसी मुद्रणालय को स्थानांतरित कर इन ऊनी वस्त्र निर्माताओं या मुद्रकों को दे देने से इनका उपभोग होता है। ये उपभोक्ता ही उत्पादक भी होते हैं, अर्थात् ये ही उत्पादन के उपादानों, श्रम, पूँजी तथा भूमि के मालिक भी होते है। बच्चे तथा अन्य लोग जिनका उनके द्वारा भरण-पोषण किया जाता है, तथा सरकार जो उन पर कर लगाती है,[1] सभी अपनी आय का कुछ ही अंश इन लोगों पर खर्च करते है। अतः यह कहना कि मालिकों की पूँजी अन्ततोगत्वा साधारणतया उपभोक्ताओं से ही प्राप्त की जाती है बिलकुल सत्य है, किन्तु यह केवल कहने का दूसरा ढंग है कि आय के सम्पूर्ण साधन राष्ट्रीय लाभाश के ही अंग है जिन्हें तुरन्त उपयोग करने की अपेक्षा भविष्य में उपयोग के लिए स्थगित किया जा सकता है। यदि इनमे से किसी भी भाग को तुरत उपभोग के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के लिए खर्च किया जाय तो इसमे यही आशा की जाती है कि राष्ट्रीय लाभाश के उमड़ते हुए प्रवाह से उनके स्थान की पूर्ति हो जायेगी।[2]

वस्तुओं के लिए की जाने वाली माँग साधारणतया श्रम के लिए की जाने वाली माँग है। यह सत्य है कि जो लोग कुछ विशेष वस्तुओं को खरीदते हैं वे साधारणतया उन वस्तुओं के उत्पादन करने वाले श्रम को सहायता देने के लिए आवश्यक पूँजी का

---

1 जब तक हम सरकार द्वारा न्यायोचित सुरक्षा तथा अन्य सुविधाओं को भी राष्ट्रीय आय के अंश न मान लें।

2 वाकर के लेखों तथा उनकी आलोचना द्वारा मजदूरी-निधि पर बहुत प्रकाश डाला गया है। उन्होंने उन कर्मचारियों के विषय में जो वेतन मिलने से पूर्व सेवाएँ अर्पित करते हैं, जिन दृष्टान्तों का संग्रह किया है उनका मजदूरी-निधि के विषय में उत्पन्न विवाद के कुछ पहलुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु इसके मुख्य विषय से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कैनन द्वारा लिखित Production and Distribution, 1776–1848, में मजदूरी के प्राचीन सिद्धान्तों की बड़ी कटु आलोचना की गयी है। टासिग की वृहत् पुस्तक Capital and Wages में अधिक रूढ़िवादी रुख अपनाया गया है। विशेषकर अंग्रेजी भाषा के पाठकों को जर्मनी में प्रतिपादित सिद्धान्तों के पूर्ण विवरण तथा उनकी आलोचना के ज्ञान के लिए इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

सम्भरण नही करते: वे तो केवल अन्य व्यवसायों से उस व्यवसाय की ओर पूंजी एवं रोजगार को व्यपवर्तित करते है जिसके उत्पादो के लिए उनकी माँग बढ़ जाती है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मिल इसे सिद्ध करने से ही संतुष्ट नही हुए, बल्कि उनका यह भी अभिप्राय रहा है कि द्रव्य को वस्तुओं को खरीदने में खर्च करने की अपेक्षा श्रमिकों की मजदूरी के रूप में ही खर्च करना श्रमिकों के लिए अधिक लाभकारी है, इसके पश्चात् हम उस अर्थ पर विचार करेंगे जिसमे इस धारणा मे कुछ सच्चाई भी है। वस्तुओं की कीमत में विनिर्माता तथा मध्यस्थ को प्राप्त होने वाले लाभ भी शामिल है और यदि क्रेता मालिक के रूप मे कार्य करता है तो वह रोजगार देने वाले वर्ग के लोगों की सेवाओं की माँग में कुछ कमी और श्रम की माँग में उसी प्रकार वृद्धि कर देता है जिस प्रकार वह, मान लीजिए, मशीन से बने हुए डोरे के स्थान पर हाथ से बने हुए डोरे को खरीद कर इसमें वृद्धि करता है। किन्तु इस तर्क मे यह कल्पना की गयी है कि श्रम के लिए दी जाने वाली मजदूरी नित्य-प्रति की भाँति कार्य के चालू रहते समय भी दी जायेगी, किन्तु वस्तुओं की कीमत, जैसा कि आमतौर पर किया जाता है उनके तैयार हो जाने के बाद ही की जायेगी: और यह देखा जायेगा कि मिल द्वारा अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक दृष्टान्त मे उनके तर्कों का यह अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने की अपेक्षा अधिक श्रमिक को मजदूरी पर नियुक्त करता है तो वह श्रम के बदले मे मिलने वाले प्रतिफल के निजी उपयोग की अवधि को अज्ञात रूप से भविष्य के लिए स्थगित कर देता है। यदि क्रेता अपने व्यय करने के ढंग मे कोई परिवर्तन न करे तो इसी स्थगन के फलस्वरूप श्रम को बराबर ही लाभ प्राप्त होगा।[1]

मिल के प्रथम आधारभूत कथन उसके इस चौथे कथन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं कि वस्तुओं के लिए की गयी माँग श्रम के लिए की गयी माँग के अनुरूप नहीं है: और पुनः इस कथन से भी उनका अभिप्राय उचित रूप में व्यक्त नहीं होता।

§4. राष्ट्रीय लाभांश के सम्पूर्ण विवेचन मे किसी होटल के रसोई मे काम आने वाले उपकरणों तथा निजी गृह मे उपयोग मे लाये जाने वाले उपकरणों से प्राप्त होने वाले रोजगार को बिना स्पष्ट किये समान आधार पर रखा गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि पूंजी का व्यापक अर्थ मे उपयोग किया गया है: इसे केवल 'व्यापारिक पूंजी' तक ही सीमित नही रखा गया है। किन्तु इस विषय पर कुछ और प्रकाश डाला जायेगा।

श्रमजीवियों को दूसरों की सम्पत्ति में तथा ऐसी सम्पत्ति में जो कि व्यापारिक पूंजी के रूप में न हो, वृद्धि से होने वाले लाभ।

बहुधा यह सोचा जाता है कि जिन लोगो के पास अपना थोड़ा ही या कुछ भी धन नही होता उन्हे उस सकुचित अर्थ में पूंजी मे होने वाली वृद्धि से लाभ होगा जिसमें इसे उनके कार्य मे सहायता पहुँचाने वाली व्यापारिक पूंजी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इस पर भी उन्हें दूसरों की सम्पत्ति के अन्य रूपों में वृद्धि होने से थोड़ा ही लाभ हो सकता है। इसमे सन्देह नही कि कुछ प्रकार का धन ऐसा है जिसके अस्तित्व से श्रमिक वर्गों पर कदाचित् ही कुछ प्रभाव पड़ता है, जब कि 'व्यापारिक पूंजी' में होने वाली हर वृद्धि के फलस्वरूप इन वर्गों के लोगों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इसका अधिकतर भाग उनके औजार या अन्य सामग्री के रूप मे उनके हाथों

1 न्यूकोम्ब द्वारा लिखित Political Economy के भाग IV से सम्बन्धित परिशिष्ट को देखिए।

से होकर गुजरता है, जब कि इसका उल्लेखनीय भाग उनके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उपयोग मे लाया जाता है या यहाँ तक कि इसका उपभोग कर लिया जाता है।[1]

अतः जब सम्पत्ति के अन्य रूप 'व्यापारिक पूँजी में परिवर्तित हो जाये या इसके विपरीत स्थिति हो, तो श्रमिक वर्गों के लोगों को निश्चय ही लाभ होगा। किन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता। यदि लोग सामान्यतया निजी रूप में बग्घी या पालदार नावो का रखना छोड़ दे, और उन्हें पूँजीपति उपक्रामियों से किराये पर ले तो पारिश्रमिक के लिए कार्य करने वाले मजदूरों के लिए मांग कम हो जायेगी क्योंकि अन्यथा मजदूरी में दी जाने वाली धनराशि का कुछ भाग मध्यस्थ लोगों को लाभ के रूप में प्राप्त होगा।[2]

यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि सम्पत्ति के अन्य रूप बड़े पैमाने पर व्यापारिक पूँजी का स्थान ले लें तो श्रम को अपने कार्य मे सहायता पहुँचाने वाली चीजों तथा यहां तक कि उसकी आजिविका पालन के लिए आवश्यक चीजो मे भी कमी हो जायेगी। कुछ पूर्वीय देशों मे यह वास्तविक संकट का कारण बन सकता है। किन्तु पाश्चात्य जगत मे तथा विशेषकर इंग्लैंड मे, पूँजी के कुल भण्डार का मूल्य अनेक वर्षों तक श्रमिक वर्गों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के योग के बराबर होगा: अन्य प्रकार की पूँजी की अपेक्षा उस प्रकार की पूँजी की किंचित भी मांग बढ जाने पर जिससे श्रमिको की प्रत्यक्ष रूप मे सहायता हो सके सम्भरण मे वृद्धि हो जायेगी, चाहे इस ससार के अन्य भागो से मँगाया जाय अथवा नयी मांग की पूर्ति के लिए विशेषरूप से देश मे ही उत्पादित किया जाय। अतः इस विषय पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नही है। यदि श्रमिक की कार्य-कुशलता ऊँची हो तो उसका निवल उत्पाद भी अधिक होगा, और इस प्रकार इसका उपार्जन भी अधिक होगा: और राष्ट्रीय लाभांश की निरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा तदनुरूप अनुपातों

---

1 अधिकांश परिभाषाओ के अनुसार सभी परिस्थितियों में ऐसा होता है। वास्तव में कुछ ऐसे विचारक हैं जो पूंजी को मध्यवर्ती पदार्थ तक ही सीमित रखते हैं, और इन वस्तुओं का होटलो, निवासस्थानों तथा श्रमिको के घरो के रूप में उपयोग होते ही इन्हें पूंजी की श्रेणी मे नहीं रखते। किन्तु परिशिष्ट (ड), अनुभाग 4 में इस प्रकार की परिभाषा को अपनाने के विषय में उठायी गम्भीर आपत्तियों की ओर संकेत किया गया है।

2 ऊपर पृष्ठ 766 देखिए। पुनः पीतल के ऐसे फर्नीचर के उपयोग का जिसे निरन्तर साफ करना पड़े तथा साधारणतया ऐसे रहन-सहन के ढगों का जिसमें घर के अन्दर तथा बाहर अनेक नौकरो की आवश्यकता हो, श्रम की मांग पर उसी प्रकार प्रभाव पड़ता है जिस प्रकार कीमती मशीनो तथा अन्य अचल पूंजी द्वारा बनायी गयी वस्तुओं के प्रयोग का इस पर प्रभाव पड़ता है। यह सत्य है कि बहुत बड़ी संख्या में घरेलू नौकरो को रखने से बहुत बड़ी आय का दुरुपयोग होता है: किन्तु आय खर्च करने का इसके अतिरिक्त ऐसा स्वार्थपूर्ण ढंग नही है जिससे राष्ट्रीय लाभांश में से श्रमिको को प्रत्यक्ष रूप में अधिक अंश मिल सके।

में विभाजित हो जायेगी जिसके सदैव श्रमिकों के तुरन्त उपभोग के लिए पर्याप्त सम्भरण उपलब्ध होगा, और उन वस्तुओं के उत्पादन के लिए समुचित मात्रा मे औजार सुलभ होंगे। जब माँग एवं सम्भरण की सामान्य दशाओ से यह निश्चित हो जाय कि समाज के अन्य वर्गों के लोग अपनी इच्छानुसार राष्ट्रीय लाभांश के कितने भाग को स्वतन्त्ररूप से खर्च कर सकते है, तथा उन वर्गो की अनुरक्ति से वर्तमान तथा आस्थगित परितुष्टियों आदि में उनके व्यय के वितरण का ढग निश्चित हो जाय तो श्रमिक वर्गो के लिए इस बात का कोई महत्व नही है कि आर्किड (Orchid) निजी रक्षण स्थान (conservatories) से या पेशेवर पुष्प विक्रेता के शीश-गृहो से लाये गये है और इसलिए जो व्यापारिक पूंजी कहलाते है।

परिशिष्ट (ट)

कुछ प्रकार के अधिशेष

राष्ट्र की आय पूर्ण-रूप में विभाजित होती है, किन्तु इस पर भी प्रत्येक व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में जो सन्तोष मिलता है वह उसके द्वारा इसे प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले भुगतानों से अधिक होता है, और साधारणतया श्रमिकों एवं बचत करने वालों को अन्य प्रकार के अधिशेष प्राप्त होते हैं।

§1. इसके पश्चात् हमें विभिन्न प्रकार के अधिशेषों के पारस्परिक सम्बन्धों पर तथा उनके राष्ट्रीय आय से सम्बन्ध पर विचार करना है। यह एक कठिन विषय है और इसका व्यावहारिक महत्व भी कम है, किन्तु शैक्षणिक महत्व की दृष्टि से इसका अध्ययन करना कुछ रोचक प्रतीत होता है।

यद्यपि राष्ट्रीय आय या लाभांश उत्पादन के प्रत्येक उपादान को उसकी सीमान्त दर पर पुरस्कृत करने में पूर्णरूप से विभाजित हो जाता है, तथापि इससे उन्हें साधारणतया एक ऐसा अधिशेष प्राप्त होता है जिसके दो भिन्न पहलू हैं, यद्यपि उन्हें एक दूसरे से बिलकुल पृथक् नहीं समझा जा सकता। उन्हें उपभोक्ताओं के रूप में एक अधिशेष प्राप्त होता है जो उनको उस वस्तु से मिलने वाला कुल तुष्टिगुण उनके लिए तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए किये गये भुगतानों के वास्तविक मूल्य के अन्तर में बराबर होगा। उसके सीमान्त क्रय में, अर्थात् उन वस्तुओं के क्रय में ये दोनों पक्ष बराबर हैं जिन्हें वह केवल लागत के ही बराबर लाभ होने पर भी खरीद ही लेता है : किन्तु उसके क्रय के जिस भाग के लिए वह कुछ भी न खरीदने की अपेक्षा स्वेच्छा से ऊँची कीमत देने को तैयार रहता है उससे उसे संतोष के रूप में अधिशेष प्राप्त होता है : यही वह वास्तविक निवल लाभ है जो कि उसे उपभोक्ता के रूप में अपने वातावरण से या संयोगवश प्राप्त होने वाली सुविधाओं से मिलता है। यदि उसके वातावरण में इस प्रकार परिवर्तन किये जा सकें कि वह उस वस्तु का सम्भरण प्राप्त न कर सके, और वह उस वस्तु पर खर्च की जाने वाली धनराशि को उन अन्य वस्तुओं पर (जिनमे पहले से अधिक मात्रा में अवकाश प्राप्त करना भी सम्मिलित है) खर्च करने के लिए बाध्य हो जाय जिनकी वह वर्तमान कीमतों पर और अधिक मात्रा खरीदने का इच्छुक नहीं है तो वह इस अधिशेष को खो बैठेगा।

किसी व्यक्ति को अपने वातावरण से जो अधिशेष प्राप्त होता है उसके दूसरे पक्ष का उस समय अधिक अच्छा ज्ञान होता है जब उसे प्रत्यक्ष श्रम करने के कारण या उसे संचय के कारण, अर्थात् उसके आधार में रहने वाले अर्जित तथा बचाये हुए भौतिक साधनों के कारण उत्पादन माना जाता है। एक श्रमिक के रूप मे उसे अपने सम्पूर्ण कार्य के लिए उस अन्तिम कार्य के लिए किये जाने वाले भुगतान की दर पर पारिश्रमिक मिलने पर भी श्रमिक अधिशेष मिलेगा जिसमे ठीक लागत के बराबर ही आय प्राप्त होती है। यद्यपि इसमे अधिकांश कार्य से उसे निस्सन्देह आनन्द मिला होगा। एक पूँजीपति के रूप में (या साधारणतया किसी भी रूप मे संचित सम्पत्ति के मालिक की भाँति) उसे अपनी सम्पूर्ण बचत या प्रतीक्षा के लिए उस दर पर

पारिश्रमिक मिलने पर भी बचत करने वाले का अधिशेष प्राप्त होगा जिससे कम पर वह इसका विनियोजन नहीं करेगा। उसे साधारणतया उसी दर पर भुगतान किया जायेगा चाहे उसको कुछ बचत सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए कुछ भुगतान देकर तथा इस प्रकार ऋणात्मक ब्याज पर भी क्यों न की गयी हो।[1]

ये दो प्रकार के अधिशेष एक दूसरे से बिलकुल भिन्न नहीं है : और यदि इस बात पर ध्यान दें कि एक ही चीज की दो बार गणना हो रही है तो इन अधिशेषों को आंकना सरल होगा। क्योंकि हम जब उत्पादक अधिशेष का उस सामान्य क्रयशक्ति के अनुसार मूल्यांकन करते हैं जो कि वह अपने श्रम या अपनी बचत से प्राप्त करता है तो उसके आचरण एवं वातावरण के निश्चित होने पर इसमें उपलक्षित रूप में उसके उपभोक्ता अधिशेष की भी गणना हो जाती है। इस कठिनाई को विश्लेषणात्मक रूप में दूर किया जा सकता है, किन्तु किसी भी दशा में यह व्यावहारिक रूप में सम्भव नहीं हो सकता कि इन दोनों सारणियों का अनुमान लगाया जा सके तथा इन्हें जोड़ा जा सके। किसी व्यक्ति के वातावरण से जो उपभोक्ता अधिशेष, श्रमिक अधिशेष तथा बचत करने वाले का अधिशेष प्राप्त होता है वह उसके व्यक्तिगत आचरण पर निर्भर रहता है। ये कुछ अंशों में उपभोग, श्रम तथा प्रतीक्षा में निहित संतोष एवं असंतोष के प्रति उसकी सामान्य चेतना पर निर्भर रहते हैं, और कुछ अंशों में उसकी चेतनाओं की लोचकता पर अर्थात् क्रमशः उपभोग कार्य या प्रतीक्षा की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन की दर पर भी निर्भर रहते हैं। उपभोक्ता अधिशेष का सर्वप्रथम व्यक्तिगत वस्तुओं से सम्बन्ध है, और इसके प्रत्येक भाग पर उस वस्तु को प्राप्त करने की शर्तों को प्रभावित करने के संयोग मे होने वाले परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है : जब कि दोनों प्रकार के उत्पादक अधिशेष सदैव उस सामान्य प्रतिफल के रूप में दिखायी देते है जो कि संयोगवश किसी क्रयशक्ति से प्राप्त होते है। ये दोनों प्रकार के उत्पादक अधिशेष एक दूसरे से भिन्न है और संचयी हैं। वे किसी ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में जो कि अपने उपयोग के लिए ही कार्य तथा बचत करता है एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। उन दोनों के बीच तथा उपभोक्ता अधिशेष के बीच पाये जाने वाला घनिष्ठ सम्बन्ध इस बात से प्रदर्शित होता है कि रोबिन्सन क्रूसो के जीवन मे सुख एवं संताप का अनुमान लगाते समय उसके उत्पादक अधिशेषों को ऐसी योजना के अनुसार सबसे पहले सरल ढंग से आंका जा सकता है जिसमें उसका सम्पूर्ण उपभोक्ता अधिशेष शामिल हो।

इन अधिशेषों का मूल लागत की अपेक्षा

किसी भी श्रमिक के उपार्जनों का अधिकाश भाग उसे कार्य करने के योग्य बनाने मे होने वाले कष्ट तथा व्यय के लिए मिलने वाला एक प्रकार का आस्थगित भुगतान है, और इस कारण इसके अधिशेष का अनुमान लगाने मे बड़ी कठिनाई होती है। उसका लगभग सम्पूर्ण कार्य आनन्ददायक हो सकता है, और उसे उस सम्पूर्ण कार्य के लिए अच्छी मजदूरी मिल सकती है : किन्तु मानव सुख एवं सहिष्णुता के शेष भाग

1 गोसे (Gosseu) तथा जेवन्स ने इस बात पर जोर दिया था। क्लार्क लिखित Surplus Gains of Labour नामक पुस्तक को भी देखिए।

उत्पादन के किसी उपकरण से प्राप्त उपार्जनों के आधिक्य से अवश्य ही भिन्न समझना चाहिए।

की गणना करते समय हमें इसमें से उन व्यक्तियों के माता-पिताओं द्वारा तथा स्वयं उनके द्वारा विगत काल में किये गये श्रम एवं त्याग को घटा देना चाहिए: किन्तु हम यह स्पष्ट रूप से नही कह सकते कि इसमें से कितनी मात्रा घटानी चाहिए। कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में हो सकता है कि सन्ताप शेप ही रहे। किन्तु यह विचार करना उचित है कि अधिकांश व्यक्तियों के सम्बन्ध में सुख ही शेष रहता है और कभी कभी तो पर्याप्त सुख शेष रहता है। यह समस्या जितनी आर्थिक है उतनी ही दार्शनिक भी है। यह समस्या इस तथ्य से जटिल हो जाती है कि मनुष्य का कार्य उत्पादन का साधन ही नहीं लक्ष्य, भी है। इसके जटिल होने का एक कारण यह भी है कि मनुष्य के प्रयत्नों की तुरत एवं प्रत्यक्ष (अर्थात् मूल) लागत को कुल लागत से विभाजित करना भी कठिन है। इस कारण इसका पूर्ण हल नहीं निकाला जा सकता ।[1]

जहाँ तक भौतिक उपादानों का प्रश्न है यह अतिरिक्त अधिशेष उस समय समाप्त हो जाता है जब सभी परिव्ययों की गणना की जाती है, किन्तु आंशिक रूप में भूमि के सम्बन्ध में बात कुछ भिन्न है।

§2. उत्पादन के भौतिक उपादानों से अर्जित आय पर विचार करते समय यह समस्या कुछ दृष्टियों में सरल हो जाती है। जिस श्रम एवं प्रतीक्षा के फलस्वरूप *ये उपादान प्राप्त किये जाते हैं उनसे श्रमिक तथा प्रतीक्षक का अधिशेष प्राप्त होता* है जिनका अभी अभी जिक्र किया गया था, इनके अतिरिक्त कुल द्रव्यिक आय की कुल परिव्यय से अधिकता के रूप में कुछ अधिशेष (या आभास-लगान) प्राप्त होता है। किन्तु ये बातें तभी सत्य निकलेंगी जब हम अपने को केवल अल्पकाल तक ही सीमित रखें। किन्तु दीर्घकालों के लिए अर्थात् विज्ञान की अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं मे, और विशेषकर इस अध्याय में विवेचन की गयी समस्याओं में तुरत परिव्यय तथा कुल परिव्यय के बीच कोई विभेद नही है। दीर्घकाल मे प्रत्येक उपादान के उपार्जन से उनके उत्पादन में लगने वाले कुल श्रम एवं त्याग का उनकी सीमान्त दरों पर ही क्षतिपूर्ति हो सकती है। यदि आय इन सीमान्त दरों से भी कम हो तो इनके सम्भरण में कमी हो गयी होती, और इसलिए कुल मिलाकर इस दिशा मे सामान्य रूप मे कोई अतिरिक्त अधिशेष नहीं है।

यह अन्तिम कथन एक अर्थ मे उस भूमि पर लागू होता है जिस पर कुछ ही समय पूर्व से खेती की जाने लगी है और यदि इसके प्राचीनतम अभिलेखों का पता लगाया जाय तो सम्भवतः यह कथन पुराने देशों की बहुत अधिक भूमि पर लागू हो सकता है। किन्तु इस प्रयास के फलस्वरूप इतिहास तथा नीतिशास्त्र मे व अर्थशास्त्र मे भी विवादजनक प्रश्न उठ जायेंगे। वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य तो विगत काल से सम्बन्धित न होकर भविष्य से सम्बन्धित है। भविष्य की ओर, न कि विगत की ओर देखते हुए तथा भूमि पर वर्तमान निजी सम्पत्ति के अधिकारो के औचित्य एवं उनकी उचित सीमाओं से कुछ भी सम्बन्ध न रखते हुए हम यह देखते हैं कि राष्ट्रीय लाभाश का वह भाग जिसे भूमि का उपार्जन कहा जाता है उस अर्थ मे अधिशेष है जिसमें अन्य उपादानों के उपार्जन अधिशेष नही हैं।

अब हम इस अध्याय के दृष्टिकोण से एक ऐसे सिद्धान्त को व्यक्त करेंगे जिस पर भाग 5, अध्याय 8 से लेकर 11 मे विवेचन किया गया है: उत्पादन के सभी

---

1 भाग 6, अध्याय 5 देखिए।

[उपकरणों से, चाहे वे मशीनें हों, या फैक्टरियाँ हों (इनमे फैक्टरियों द्वारा घिरी हुई भूमि भी शामिल है) या फार्म हों, मालिक तथा इन्हें चलाने वाले व्यक्ति को उत्पादन की किसी क्रिया के लिए मूल लागत के अतिरिक्त बहुत बड़ी मात्रा में समान रूप से अधिशेष प्राप्त होता है: ये दीर्घकाल मे उसे इन्हें खरीदने तथा चलाने में होने वाले कष्ट एवं त्याग तथा उनके द्वारा इनमें किये जाने वाले परिव्यय के लिए आवश्यक अधिशेष के अतिरिक्त सामान्यतया कोई विशेष अधिशेष (सामान्य श्रमिक अधिशेष तथा प्रतीक्षक अधिशेष की तुलना मे कोई विशेष अधिशेष) प्रदान नही करते। किन्तु भूमि तथा उत्पादन के अन्य उपादानों के बीच यह अन्तर है कि सामाजिक दृष्टिकोण से भूमि से स्थायी अधिशेष निकलता है जो कि मनुष्य द्वारा बनायी जाने वाली नाशवान चीजों से नही मिलता। यह बात जितनी ही अधिक सत्य होगी कि उत्पादन के किस उपादान का उपार्जन उसकी पूर्ति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है, इसके सम्भरण मे भी और अधिक निकटता से इस प्रकार के परिवर्तन होंगे जिनसे राष्ट्रीय लाभांश से मिलने वाला भाग इसके सम्भरण को बनाये रखने की लागत के बराबर होगा: और किसी प्राचीन देश में भूमि की स्थिति इसलिए असाधारण होती है कि इसके उपार्जनो पर इस कारण का प्रभाव नही पड़ता। भूमि तथा अन्य स्थायी उपादानों के बीच पाये जाने वाला अन्तर मुख्यतया मात्रा का ही अन्तर है: और भूमि के लगान के अध्ययन के लिए इसलिए भी बहुत रुचि हो जाती है कि इसमे अर्थशास्त्र के प्रत्येक भाग मे व्याप्त एक बड़े सिद्धान्त से सम्बन्धित अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

परिशिष्ट (ठ)[1]

कृषि पर लगाये गये करों तथा इसमें होने वाले सुधारों के विषय में रिकार्डो का सिद्धान्त

लगान तथा कृषि में होने वाले सुधारों के सम्बन्ध में अंतिम परिणामों की अपेक्षा तात्कालिक परिणाम पर रिकार्डो द्वारा अधिक ध्यान देने के कारण की गयी असंगति के विषय में माल्थस की आपत्ति उचित है।

रिकार्डो के विचार की उत्कृष्टता तथा उनकी व्यंजन शैली की अपूर्णताओं के विषय में बहुत कुछ पहले ही कहा जा चुका है, और विशेषकर उन कारणो पर प्रकाश डाला जा चुका है जिनके कारण उन्होने बिना उचित विशेषताओं को व्यक्त किये क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के नियम को प्रतिपादित किया। कृषि मे किये जाने वाले सुधारो तथा इस पर लगाये जाने वाले करों के आपात के विषय मे भी ऐसा ही कहा जा सकता है। उन्होने एडम स्मिथ की आलोचना करने में विशेष रूप से असावधानी व्यक्त की थी, और माल्थस ने अपनी (Political Economy के अनुभाग 10 के साराश मे) उचित ही कहा था, 'मिस्टर रिकार्डो ने, जो कि साधारणतया स्थायी तथा अन्तिम परिणामों को दृष्टि मे रखते हैं, भूमि के लगान के प्रसंग मे सदैव विपरीत नीति अपनायी। केवल अस्थायी परिणामो को दृष्टि मे रखकर ही उन्होंने एडम स्मिथ के इस कथन का विरोध किया था कि चावल या आलू की कृषि में अन्य प्रकार के अन्न की अपेक्षा अधिक लगान प्राप्त होगा।' माल्थस का यह कहना भी बहुत गलत न था कि :-'व्यावहारिक रूप मे यह विश्वास किया जा सकता है कि चावल से अन्न उगाने के लिए धीरे धीरे परिवर्तन होने के कारण लगान मे अस्थायी रूप मे भी कमी नही होगी।

इस पर भी रिकार्डो के समय मे इस बात पर जोर देने का बड़ा व्यावहारिक महत्व था, और आजकल भी वैज्ञानिक महत्व की दृष्टि से यह जानना बहुत आवश्यक है कि जो देश अधिक अन्न का आयात नही कर सकता वहाँ कृषि पर करो को समायोजित करना तथा इसमे होने वाले सुधारों मे ऐसे प्रतिबन्ध लगाना बहुत सरल है। जिससे भूस्वामी तो कुछ समय के लिए अमीर बन जायें और अन्य लोग निर्धन बन जाये। इसमे सन्देह नही कि जब अन्न के अभाव के कारण लोगो की संख्या कम हो जायेगी तो इससे भूस्वामियों की आय भी कम हो जायेगी: किन्तु इस तथ्य से रिकार्डो की यह धारणा बहुत कम प्रभावित हुई कि उनके जीवन काल मे कृषि उपज की कीमतो तथा भूमि के लगान मे प्रचुर मात्रा मे वृद्धि होने से भूस्वामियों को जो लाभ होगें उनकी अपेक्षा राष्ट्र को कही अधिक हानि उठानी पड़ेगी। किन्तु अब हमे समालोचना करते हुए उन तर्कों मे से कुछ ऐसे तर्कों पर विचार करना चाहिए जो स्पष्टरूप मे परिभाषित मान्यताओं पर आधारित थे तथा जिनका उद्देश्य ऐसे वास्तविक निबल

---

1 भाग 6, अध्याय 9, अनुभाग 4 देखिए।

परिणामों को प्राप्त करता था जिसकी ओर ध्यान आकर्षित हो सके, तथा जिन्हें पाठक स्वयं अपने लिए इस प्रकार से संयोजित कर सके कि ये उसके जीवन की वास्तविक दशाओं पर लागू हो सके।

सर्वप्रथम हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि किसी देश में उगाया जाने वाला 'अन्न' नितान्त आवश्यक है, अर्थात् इसके लिए माँग बेलोच है, और इसके उत्पादन की सीमान्त लागत का लोगों द्वारा दी गयी कीमत पर, न इसके उपभोग की मात्रा पर, प्रभाव पड़ता है। इसके पश्चात् हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि अन्न का बिलकुल ही आयात नहीं किया जाता।

किन्तु अब हम रिकार्डो का अनुसरण करें, और यह मान लें कि अन्न के लिए माँग स्थिर है। ऐसी दशा में इस पर कर लगने से लगान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ऐसी दशा में अन्न के एक दसवें भाग के बराबर कर लग जाने से इसके वास्तविक मूल्य में तब तक वृद्धि होती रहेगी जब तक पहले के 9/10 के बराबर भाग से सीमान्त मात्रा के लिए और इसलिए प्रत्येक मात्रा के लिए, उचित पारितोषिक न मिले। अतः भूमि के प्रत्येक टुकड़े का सकल अन्न अधिशेष पूर्ववत् रहेगा, किन्तु 1/10 भाग कर के रूप में ले लिये जाने के कारण शेष भाग पहले के अन्न अधिशेष का 9/10 होगा। चूंकि इसके प्रत्येक भाग का वास्तविक मूल्य 10/9 के अनुपात में बढ़ चुका होगा, अतः वास्तविक अधिशेष में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

किन्तु उपज के लिए माँग को नितान्त बेलोच मानना एक उग्र कल्पना होगी। वास्तव में कीमत बढ़ने से चाहे मुख्य खाद्य पदार्थों की माँग न भी घटे, किन्तु कुछ प्रकार की उपज की माँग तुरन्त ही घट जायेगी। अतः अन्न अर्थात् सामान्य रूप में उपज का मूल्य कभी भी पूर्णरूप से कर के बराबर नहीं बढ़ेगा, और सभी प्रकार की भूमि में पूंजी एवं श्रम की कम मात्रा में उपयोग किया जायेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमि में प्राप्त होने वाले अन्न के अधिशेष में कमी हो जायेगी, किन्तु यह कमी सर्वत्र समान अनुपात में नहीं होगी। अन्न अधिशेष का 1/10 भाग कर के रूप में ले लिये जाने पर इसके प्रत्येक भाग के मूल्य में 10/9 के अनुपात से कम अनुपात में वृद्धि होने में वास्तविक अधिशेष में दुगुनी कमी होगी (रेखाचित्र 12, 13 तथा 14 से तुरन्त यह सुझाव मिलता है कि इन तर्कों का ज्यामिति की भाषा में अनुवाद किया जाय।)

आधुनिक दशाओं में अन्न का स्वतंत्र रूप से आयात होने के कारण इस पर कर लगने से इसका वास्तविक मूल्य बहुत अधिक नहीं बढ़ सकता और इसलिए इसके फलस्वरूप माँग में तुरन्त बहुत कमी हो जायेगी। आयात के अभाव में भी यदि अन्न के वास्तविक मूल्य में वृद्धि होने से लोगों की संख्या कम हो जाय या यदि इसके फलस्वरूप रहन-सहन का स्तर तथा कार्यरत जनसंख्या की कार्यकुशलता कम होती जाय तो भी अन्त में यही परिणाम निकलेगा। इन दोनों का उत्पादक अधिशेष पर बहुत कुछ अंशों में समान प्रभाव पड़ेगा, इन दोनों की दशाओं में मालिकों को श्रमिक के लिए अधिक भुगतान करना पड़ेगा और पश्चादुक्त दशा में श्रमिकों की कमानी कम हो जायेगी।

इन सभी प्रश्नों के विषय में रिकार्डो द्वारा दी गयी तर्कप्रणाली को समझना वस्तुतः कठिन है; क्योंकि वह यह संकेत नहीं देते कि वह जनसंख्या की वृद्धि की तुलना

में 'तुरत' एवं 'अल्पकालीन' परिणामों पर विचार करना कब समाप्त करते हैं तथा 'अन्तिम' एवं 'दीर्घकालीन' परिणामों पर कब विचार प्रारम्भ करते हैं। दीर्घकाल से यहाँ पर अभिप्राय इतने लम्बे समय से है जब कच्चे माल के श्रम मूल्य से लोगों की संख्या और इसलिए कच्चे माल के लिए माँग प्रभावित हो सकती है। जहाँ कहीं इस प्रकार के भाष्यात्मक वाक्यांशों का प्रयोग हुआ है वहाँ उनके कुछ ही तर्क अप्रामाणिक सिद्ध होंगे।

इसी कल्पना के आधार पर जिन सुधारों से पूंजी की मात्रा के लिए समान प्रतिफल मिलता है उन्हीं से वास्तविक लगान में दुगुनी कमी हो जायेगी।

अब हम कृषि प्रणालियों में सुधारों के प्रभाव के सम्बन्ध में उनके द्वारा दिये गये उस तर्क पर विचार करेंगे जिसे उन्होंने दो वर्गों में विभाजित किया था। पहले भाग के निरूपण का विशेष वैज्ञानिक महत्व है और इसमें वे सुधार शामिल हैं जिनसे 'मैं अपेक्षाकृत कम पूंजी से, तथा पूंजी के क्रमिक अंशों की उत्पादक शक्तियों के अन्तर को परिवर्तित किये बिना पहले के बराबर उपज प्राप्त कर सकता हूँ।[1]' निस्सन्देह इसमें उनके सामान्य तर्क के सम्बन्ध में इस तथ्य की अवहेलना की गयी है कि कोई भी सुधार भूमि के विभिन्न टुकड़ों में अलग अलग मात्रा में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। (भाग 4, अध्याय 3, अनुभाग 4 देखिए)। पहले की भाँति यह कल्पना करते हुए कि अन्न की माँग बेलोच है उन्होंने यह सिद्ध किया कि पूंजी को अपेक्षाकृत घटिया भूमि (तथा अपेक्षाकृत उपजाऊ भूमि में प्रकृष्ट खेतों) से स्थानान्तरित कर दिया जायेगा। अतः सर्वोत्तम परिस्थितियों में पूंजी के प्रयोग के फलस्वरूप प्राप्त अन्न के रूप में मापा गया अधिशेष जिसे अन्न अधिशेष कहा जा सकता है, भूमि के उन टुकड़ों की तुलना में अधिशेष होगा जो कृषि के सीमान्त पर स्थित भूमि के टुकड़ों से कम उपजाऊ नहीं है। *यदि प्राकल्पना (Hypothesis) द्वारा पूंजी के दो प्रकार के उपयोगों की अवकलन* उत्पादकता में कोई भी परिवर्तन न हो तो अन्न अधिशेष में आवश्यक रूप से कमी होनी चाहिए, और निस्सन्देह अधिशेष के वास्तविक मूल्य तथा श्रम मूल्य में अनुपात से कहीं अधिक कमी होगी।

रेखाचित्र 40 से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। इसमें अ च उस प्रतिफल को व्यक्त करता है जो सारे देश की भूमि में (जिसे एक फर्म माना जा सकता है) पूंजी एवं श्रम की मात्राएँ लगाने से प्राप्त होता है। यहाँ यह ध्यान रहे कि इन मात्राओं का विन्यास इनके प्रयोग के अनुसार न होकर इनका उत्पादकता के अनुसार किया गया है। साम्य की स्थिति में ख द मात्राओं का प्रयोग किया जायेगा। उस समय अन्न की कीमत इतनी होगी जिससे द च प्रतिफल का मूल्य उसे उत्पन्न करने में लगी ठीक लागत के ही बराबर होगा। अन्न के कुल उत्पादन को अ ख द च क्षेत्र द्वारा व्यक्त किया गया है, जिसमें अ ह च कुल अन्न अधिशेष को व्यक्त करता है। (इस रेखाचित्र से किसी एक फर्म के स्थान पर सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करने पर इसके विश्लेषण

---

1 Collected Works, अध्याय, II, पृष्ठ 42, कनन के Production and Distribution, 1776–1848, पृष्ठ 325–6 से तुलना कीजिए। दो प्रकार के सुधारों के बीच रिकार्डो ने जो भेद प्रदर्शित किया है वह बिल्कुल ही सन्तोषजनक नहीं है, और उस पर यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

में केवल इस कारण परिवर्तन आवश्यक हो जाता है कि हम पहले की भाँति अब यह कल्पना नहीं कर सकते कि पूँजी की सभी मात्राएँ लगभग समीप के क्षेत्र में ही लगायी जाती है, और इसलिए (समान प्रकार की) उपज के बराबर हिस्सों का मूल्य भी बराबर होता है। हम किसी आम बजार तक उपज को ले जाने मे लगने वाले परिवहन के खर्चों को इसके उत्पादन के खर्चों का ही एक अंग मानकर तथा पूँजी एवं श्रम की प्रत्येक मात्रा के कुछ भाग को परिवहन व्यय में शामिल कर इस कठिनाई का हल निकाल सकते हैं।)

रेखाचित्र 40

अब रिकार्डो द्वारा पहली श्रेणी में रखे गये किसी सुधार के फलस्वरूप सर्वानुकूल दशाओं में लगाई जाने वाली किसी मात्रा से प्राप्त होने वाले प्रतिफल ख अ से बढ़कर ख इ हो जायेगा और अन्य मात्राओं के लिए इसी अनुपात में प्रतिफल मिलने की अपेक्षा बराबर मात्राओं में प्रतिफल मिलेगा। इसके परिणामस्वरूप नयी उत्पादन वक्र रेखा इ चि पुरानी उत्पादन वक्र रेखा अ च की ही पुनरावृत्ति करेगी किन्तु यह अ इ की दूरी के बराबर बढी हुई होगी। अतः यदि अन्न के लिए असीमित मांग हो जिससे पहले की भाँति ख द मात्राओं का प्रयोग करना लाभप्रद हो तो कुल अन्न अधिशेष उतना ही रहेगा जितना कि इस परिवर्तन के पूर्व था। किन्तु वास्तव मे उत्पादन मे इस प्रकार एकाएक हुई वृद्धि लाभप्रद नही हो सकती, और इसलिए इस प्रकार के किसी सुधार के फलस्वरूप कुल अन्न अधिशेष मे अवश्य ही कमी होनी चाहिए। रिकार्डो की भाँति यहाँ कुल उत्पादन मे बिलकुल ही वृद्धि न हो सकने की कल्पना कर केवल ख दि मात्राओं का प्रयोग किया जायेगा जो कि इस आधार पर निश्चित की गयी है कि इ ख दि चि, अ ख द च के बराबर है, और कुल अन्न अधिशेष घट कर इ हि चि रह जायेगा। इस निष्कर्ष का अ च के आकार से कोई सम्बन्ध नहीं है, और रिकार्डो ने अपने तर्क की पुष्टि के लिए संख्यात्मक दृष्टान्त देते समय जिन रेखाचित्रों का उपयोग किया है उनके सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।
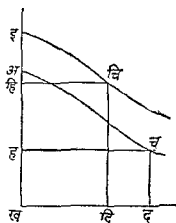
इस अवसर पर हम यह कह सकते हैं कि प्रायः संख्यात्मक दृष्टान्तों को केवल दृष्टान्तों के रूप में, न कि प्रमाणों के रूप मे, प्रयोग करना हितकारक है: क्योंकि साधारणतया स्वतन्त्र रूप से यह निर्णय करने की अपेक्षा की निष्कर्ष सत्य है या नहीं यह, जानना और भी कठिन है कि क्या विशेष दशाओं मे इन संख्याओं में उस निष्कर्ष को उपलक्षित मान लिया गया है। स्वयं रिकार्डो को गणित का कुछ भी प्रशिक्षण नहीं मिला था। किन्तु उनकी सहवृत्तियां अद्भुत थी, और तर्क के अत्यन्त गम्भीर विषयों में बहुत कम ही ऐसे प्रशिक्षित गणितज्ञ थे जो उनका मुकाबला कर सकते थे। यहाँ तक कि मिल भी, जिनकी तार्किक शक्ति बड़ी पैनी थी, इस दृष्टि से रिकार्डो की बराबरी नहीं कर सके।

मिल ने समान 'मात्रा' के स्थान पर समान 'अनुपात शब्द का प्रयोग किया और इसके पश्चात् प्रस्तुत ढंग

से निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न किया।

मिल ने विशेषतया यह अनुभव किया कि किसी सुधार के फलस्वरूप विभिन्न श्रेणियों की भूमि पर पूँजी विनियोजित करने से समान मात्रा में प्रतिफल मिलने की अपेक्षा समान अनुपात में प्रतिफल मिलने की अधिक सम्भावना है। (Political Economy, भाग IV, अध्याय III, अनुभाग 4 में उनके दूसरी श्रेणी के सुधारों को देखिए।) उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि ऐसा करने से रिकार्डो द्वारा सूक्ष्मरूप से परिभाषित किये गये इस तर्क का आधार ही विच्छिन्न हो गया कि परिवर्तन से पूँजी के अलग अलग प्रयोगों के अवकलन लाभों में कोई परिवर्तन नहीं होता। यद्यपि वे भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचे जिस पर रिकार्डो पहुँचे थे, किन्तु इसका कारण यह था कि उन्होंने दृष्टान्त के लिए जिन संख्याओं को प्रयोग किया उनमें रिकार्डो का निष्कर्ष उपलक्षित था।

रेखाचित्र 41 में यह प्रदर्शित किया गया है कि कुछ आर्थिक समस्याएँ ऐसी हैं जिनकी रिकार्डो की अपेक्षा कम मेधा वाले व्यक्ति तब तक भलीभाँति समालोचना नहीं कर सकते जब तक गणित या रेखाचित्रों की ऐसी सहायता न ली जाए जिससे आर्थिक शक्तियों की सारणियों को, चाहे ये क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम से या माँग एवं सम्भरण से सम्बन्धित हों, सम्पूर्ण रूप में प्रदर्शित किया जा सके। इस रेखाचित्र में भी अ च वक्र की वही व्याख्या है जो कि पिछले चित्र में थी, किन्तु यहाँ सुधार के फलस्वरूप श्रम एवं पूँजी की प्रत्येक मात्रा के प्रयोग से पहले की अपेक्षा एक-तिहाई प्रतिफल अधिक मिलता है, अर्थात् समान अनुपात में, न कि समान मात्रा में, वृद्धि होती है: और नयी उत्पादन वक्र रेखा इ चि, वक्र के दायीं ओर की अपेक्षा बायें और बहुत ऊपर
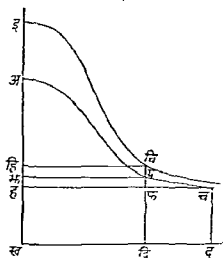
रेखाचित्र 41

स्थित है। कृषि क्षेत्र ख दि मात्राओं तक सीमित होगा, क्योंकि यहाँ पर इ ख दि चि, जो नये कुल उत्पादन का प्रतीक है, पहले की भाँति अ ख द च क्षेत्र के बराबर है, और इ हि चि पहले की भाँति नया कुल अन्न अधिशेष है। अब यह सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि इ हि चि, अ ह च का 4/3 है, और इसका अ ह च से अधिक या कम होना इस बात पर निर्भर है कि अ च का क्या आकार है। यदि अ च एक सीधी रेखा या लगभग सीधी रेखा हो तो (सीधी उत्पादन वक्र पर स्थित बिन्दु मिल तथा रिकार्डो दोनों की संख्याओं को व्यक्त करते हैं) इ हि चि, अ ह च से छोटी होगी, किन्तु रेखाचित्र 41 में अ च का जो आकार बनाया गया है उसमें इ हि चि, अ ह च से बड़ा है। इस प्रकार जहाँ मिल एवं रिकार्डो दोनों द्वारा सकल उत्पादन

वक्र के किसी आकार की जो कल्पना की गयी है उस पर मिल के तर्क का निष्कर्ष निर्भर है किन्तु रिकार्डो के तर्क का इसमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

(मिल ने यह कल्पना की कि किसी देश के कर्षित भाग में तीन प्रकार की भूमि शामिल है और इनमें बराबर लागत लगाये जाने पर 60, 80 तथा 100 बुशल अन्न उत्पन्न किये जाते हैं। इसके बाद वह यह प्रदर्शित करते है कि जिस सुधार के फलस्वरूप पूंजी एवं श्रम की प्रत्येक मात्रा को लगाने से पहले की अपेक्षा एक-तिहाई प्रतिफल अधिक मिलता है उससे अन्न के रूप में दी जाने वाली लगान में 60 $26\frac{2}{3}$ के अनुपात में कमी हो जायेगी। किन्तु यदि उन्होंने किसी देश में उर्वरता का ऐसा वितरण माना होता जिसमें तीन प्रकार की भूमि से समान लागत लगाये जाने पर 60, 65 तथा 115 बुशल के अनुपात में वृद्धि होती (जैसा कि स्थूल रूप में रेखाचित्र 41 में प्रदर्शित किया गया है) तो उस दशा में किसी सुधार के फलस्वरूप अन्न के रूप में दिये जाने वाले लगान में 60:$60\frac{2}{3}$ के अनुपात में वृद्धि हुई होती।)

(अन्त में यह ध्यान रखना चाहिए कि सुधारों के फलस्वरूप भूमि के लगान पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभावों के विषय में रिकार्डो का विरोधाभास शहरी तथा कृषि दोनों प्रकार की भूमि पर लागू होता है। दृष्टान्त के लिए अमेरिका में भवन-निर्माण, प्रकाश, संवातन तथा उत्पादक यंत्रों को बनाने की कलाओं में सुधार होने के फलस्वरूप इस्पात के चौखटों से बने तथा उत्पादक यंत्रों से युक्त सोलह मंजिल ऊँचे गोदाम बनाने की योजना एकाएक अत्यधिक कुशल, मितव्ययी तथा सुविधाजनक हो सकती है। इस दशा में प्रत्येक शहर का व्यापारिक भाग पहले की अपेक्षा कम क्षेत्र में फैला हुआ होगा। बहुत-सी भूमि को कम लाभप्रद उपयोगों में भी लगाया जायेगा, और सम्भवतः इसका निवल परिणाम यह होगा कि शहरों के कुल स्थल मूल्य में कमी हो जायेगी।

रिकार्डो का विरोधाभास शहरी भूमि पर भी लागू होता है।

गणितीय परिशिष्ट

टिप्पणी 1 (पृष्ठ 87)। सीमान्त तुष्टिगुण मे ह्रास होने के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:—यदि किसी व्यक्ति को किसी निश्चित काल मे किसी वस्तु की ग मात्रा से जो कुल तुष्टिगुण मिलता है उसे उ माने तो सीमान्त तुष्टिगुण को $\frac{dउ}{dग}$ δग द्वारा मापा जायेगा; aउज $\frac{dउ}{dग}$ तुष्टिगुण की सीमान्त मात्रा dग माप है। जेवन्स अन्य स्थानों पर जिसे तुष्टिगेण की 'अन्तिम मात्रा' कहते है उसके लिए स्वयं उन्होंने तथा कुछ अन्य लेखकों ने 'अंतिम तुष्टिगण' का प्रयोग किया है। इनमे से किस पद का उपयोग करना अधिक सुविधाजनक है, यह सदेहास्पद है: इसके निर्णय में कोई सिद्धान्त की बात निहित नही है। मूलपाठ मे बतलायी गयी आवश्यक चीजो के पूर्ण होने पर $\frac{d^2उ}{dग^2}$ सदैव ऋणात्मक होगा।

टिप्पणी 2 (पृष्ठ 90)। यदि किसी व्यक्ति के पास किसी समय द्रव्य की म मात्रा या सामान्य क्रयशक्ति हो और इससे उसे प्राप्त होने वाल कुल तुष्टिगुण ए हो तो $\frac{dए}{dमा}$ उसके लिए द्रव्य के तुष्टिगुण की सीमान्त मात्रा होगी।

यदि वह किसी वस्तु की ग मात्रा के लिए जिससे कि उसे उ के बराबर कुल आनन्द मिलता है, ठीक पा कीमत देने को तैयार हो तो $\frac{dए}{dमा}\Delta पा = \Delta उ$; और

$$\frac{dए}{dमा}\frac{dपा}{dग} = \frac{dउ}{dग}।$$

यदि किसी अन्य वस्तु की गा मात्रा के लिए जिससे कि उसे ऊ के बराबर कुल आनन्द मिलता है, वह ठीक पी कीमत देने को तैयार हो तो

$$\frac{dए}{dमा}\cdot\frac{dपी}{dगा} = \frac{dऊ}{dगा}$$ और अत:

$$\frac{पाd}{dग} : \frac{dपी}{dगा} = \frac{dउ}{dग} : \frac{dऊ}{dगा}$$

(जेवन्स की पुस्तक के Theory of Exchange नामक अध्याय के पृष्ट 151 से तुलना कीजिए।)

आय के साधनों में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके लिए द्रव्य के तुष्टिगण की सीमान्त म त्रा घटती जाती है, अर्थात् $\frac{d^2ए}{d सा^2}$ सदैव ऋणात्मक होगा।

अत: किसी वस्तु की ग मात्रा से प्राप्त होने वाले सीमान्त तुष्टितण में कोई परितंन न होने पर उसके आय के साधनों मे वृद्धि होने से $\frac{d उ}{d ग} \div \frac{ए d}{d म.}$ मे भी वृद्धि होगी

अर्थात् इसके फलस्वरूप $\frac{dपा}{dग}$, अर्थात् वह दर भी बढ़ेगी जिस पर वह उस वस्तु का अतिरिक्त सम्भरण प्राप्त करना चाहता है। हम $\frac{dपा}{dग}$ को मा, उ तथा ग का फलन मान सकते हैं; और तब $\frac{dपा}{dमा\,dग}$ सदैव घनात्मक होगा। निस्सन्देह $\frac{d^2\,पा}{dउdग}$ सदैव घनात्मक होगा।

टिप्पणी 3. (पृष्ठ 98–99)। माँग वक्र पर लगातार क्रम में दो बिन्दु प तथा पि लीजिये। ख ग रेखा पर लम्बवत् पड़ती हुई प र म रेखा खींचिए जो प पि रेखा द्वारा ख ग रेखा को ट बिन्दु पर तथा ख क रेखा को टा बिन्दु पर काटे। इसके फलस्वरूप प से किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा में जो वृद्धि इंगत होगी वह किसी वस्तु की प्रति इकाई कीमत में प र के बराबर कमी के अनुरूप होगी। इस दशा में प बिन्दु पर माँग की लोच को
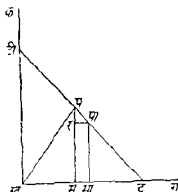
$\frac{पि\ र}{ख\ म} \div \frac{प\ र}{प\ म}$ से, अर्थात् $\frac{पि\ र}{प\ र} \times \frac{प\ म}{ख\ म}$ से;

अर्थात् $\frac{टम}{पम} \times \frac{प\ म}{ख\ म}$ से।

अर्थात् $\frac{ट\ म}{ख\ म}$ × या $\frac{प\ ट}{प\ टा}$ से मापा जायेगा।

जब प तथा पि की दूरी अनिश्चित रूप से कम की जाती है तो प पि स्पर्श-रेखा (Tangent) बन जाती है। इस प्रकार पृष्ठ 98–99 में दिया गया तर्क वाक्य सही सिद्ध हो जाता है।

यह अनुमानतः (a priori) स्पष्ट है कि ख ग तथा ख क रेखा के समानान्तर मापी गयी दूरी के पैमानों को सापेक्षिक रूप मे परिवर्तित कर लोच की माप को नही बदला जा सकता। किन्तु प्रक्षेप (Projection) प्रणाली द्वारा इस निष्कर्ष की ज्यामितिक उपपत्ति सरलतापूर्वक दी जा सकती है: जब कि विश्लेषात्मक रूप मे यह स्पष्ट है कि लोच की माप के विश्लेषणात्मक व्यंजक (Expression) $\frac{d\,ग}{ग} \div \frac{d\,क}{क}$ के मान (value) मे तब कोई भी परिवर्तन नही होता जब वक्र, $क=f(ग)$, को नये पैमानो पर खींचा जाय जिससे इसका समीकरण $ठा\ क=f\ (पा\ ग)$ हो जाता है; जिसमे पा तथा ठा अचर (constants) हैं।

यदि उस वस्तु की सभी कीमतों के लिए माँग की लोच इकाई के बराबर हो तो कीमत में कमी के फलस्वरूप क्रय की जाने वाली मात्रा में उसी अनुपात में वृद्धि

होगी, और अतः क्रेताओं द्वारा उस वस्तु के लिए किये जाने वाले परिव्यय मे कुछ भी परिवर्तन नही होगा। अतः इस प्रकार की मांग **स्थिर परिव्यय** मांग कहा जा सकता है। इसे व्यक्त करने वाली वक्र, जिसे **स्थिर परिव्यय वक्र** कहा जा सकता है, समान कोणीय अतिपरवलय है। इसके ख ग तथा ख क अनन्तस्पर्शी हैं। इस प्रकार के वक्रो की एक शृंखला को निम्न रेखाचित्र मे बिन्दु अंकित वक्रों द्वारा व्यक्त किया गया है।

इन वक्रो के आकार से अभ्यस्त होना लाभदायक है, क्योंकि इससे किसी भी माँग वक्र को देखते ही तुरन्त यह कहा जा सकता है कि क्या किसी बिन्दु पर उससे होकर निकलती हुई स्थिर परिव्यय वक्र की अपेक्षा अधिक या कम कोण बनाती हुई ऊर्ध्वाधर झुकी हुई है। पतले कागज पर स्थिर परिव्यय वक्रों को खीचने तथा इसके पश्चात् उस कागज को माँग वक्र के ऊपर रखने से अधिक यथार्थता प्राप्त की जा सकती है। इस साधन से, दृष्टान्त के लिए, तुरन्त ही यह देखा जा सकता है कि रेखाचित्र मे माँग वक्र अ, ब, स, द मे से प्रत्येक बिन्दु पर इकाई के बराबर लोच व्यक्त करती है। यह अ तथा ब के बीच, और पुनः स तथा द के बीच, इकाई से अधिक लोच व्यक्त करती है जब कि ब तथा स के बीच इकाई से कम लोच व्यक्त करती है। यह ज्ञात हो जायेगा कि इस प्रकार के अभ्यास से किसी वस्तु के लिए की जाने वाली माँग के रूप मे सम्बन्धित उन मान्यताओ का पता लगाना सरल हो जाता है जो किसी विशेष आकार की माँग वक्र को खीचते समय उपलक्षित होती हैं। इसके फलस्वरूप इसमे असम्भाव्य मान्यताओ की अज्ञात रूप से समाविष्टि नही होती।
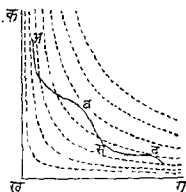
प्रत्येक बिन्दु पर माँग वक्रो से ना के बराबर लोच व्यक्त करने का सामान्य समीकरण यह है :—

$$\frac{d\ ग}{ग} + ना\frac{d\ क}{क} = 0 \text{ अर्थात्}$$

$$ग\ क^{ना} = च$$

यह ध्यान रहे कि इस प्रकार की वक्र में $\frac{d\ ग}{d\ क} = -\frac{च}{क^{ना+1}}$ अर्थात् कीमत मे थोडी सी कमी होने के फलस्वरूप माँग मे जिस अनुपात में वृद्धि होगी उसमे कीमत के (ना+1) वॉ घात के प्रतिलोम दिशा मे परिवर्तन होगा। स्थिर परिव्यय वक्रों मे इस कीमत के वर्ग के प्रतिलोम दिशा मे परिवर्तन होगा। या यहाँ पर यह भी कह सकते हैं कि इसमे सीधे वस्तु की मात्रा के वर्ग के अनुसार परिवर्तन होगा।

टिप्पणी 4. (पृष्ठ 107–8) यदि समयान्तर को ख क रेखा पर नीचे की ओर और विचाराधीन मात्राओं को ख क से दूरी द्वारा मापा जाय तो उस मात्रा की वृद्धि को प्रदर्शित करने वाली रेखा में पि तथा प दो संलग्न बिन्दु होने के कारण समय की एक छोटी सी इकाई नि न मे वृद्धि की दर

$$\frac{\text{प ह}}{\text{पि नि}}=\frac{\text{प ह}}{\text{पि ह}}\times\frac{\text{पि ह}}{\text{पि नि}}=\frac{\text{हब}}{\text{न टा}}\times\frac{\text{पि ह}}{\text{पि नि}}=\frac{\text{पि ह}}{\text{न टा}}$$

होगी, क्योंकि प न तथा पि नि की सीमा बराबर है।

यदि हम समय की इकाई को एक वर्ष के बराबर मानें तो वार्षिक वृद्धि की दर न टा मे निहित वर्षो के प्रतिलोम के बराबर होगी।

यदि न टा, चा के बराबर हो, जो कि उस वक्र के सभी बिन्दुओ के लिए अचर है, तो वृद्धि की दर स्थिर होगी और यह $\frac{1}{\text{चा}}$ के बराबर होगी। इस दृष्टान्त मे ग वस्तु की सभी मात्राओं की वृद्धि की दर $= -\text{ग}\,\frac{d\,\text{क}}{d\,\text{ग}} = \text{चा}$ होगी, अर्थात् वक्र पर लागू होने वाला समीकरण क=आ−चा (लघु) ग होगा।
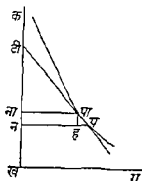
टिप्पणी 5. (पृष्ठ 121)। हम मूलपाठ मे देख चुके है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले आनन्द मे जिस दर मे कटौती होती है उसमे एक व्यक्ति की कटौती दूसरे से बहुत भिन्न होती है। यदि रा व्याज की वह वार्षिक दर हो जो इसके प्राप्तकर्ता को उतना ही आनन्द दे जितना कि उसे इस समय मिल सकता है (इसे वर्तमान आनन्द मे अवश्य जोड़ना चाहिए जिससे यह भविष्य मे मिलने वाले आनन्द के बराबर हो सके तो रा किसी व्यक्ति के लिय 50 या यहा तक कि 200 प्रतिशत, तथा उसके पड़ोसी के लिये व्याज का ऋणात्मक दर भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रकार के आनन्द अन्य की अपेक्षा अधिक आवश्यक होते है, और ऐसी स्थिति की भी कल्पना की जा सकती है जब कोई व्यक्ति भावी आनन्द मे अनियत्रित एव मनमाने ढग से कटौती करे। वह किसी आनन्द को दो वर्षो तक स्थगित करने के लिए ठीक उतना ही तैयार हो सकता है जितना कि उसे एक वर्ष के लिए स्थगित करने को तैयार होता है। या दूसरी ओर, यह भी सम्भव है कि वह किसी आनन्द को लम्बे समय तक स्थगित करने का बड़ा विरोध करे, किन्तु वह कुछ समय के लिए इसके स्थगन का कदाचित ही कभी विरोध करेगा। इस विषय मे कुछ मतभेद है कि क्या इस प्रकार की अनियमितताएँ बहुधा पायी जाती हैं। इस प्रश्न का सरलतापूर्वक निर्णय नही किया जा सकता। किसी व्यक्ति के आनन्द का अनुमान लगाना पूर्णरूप से आत्मगत विषय होने के कारण यह पता लगाना कठिन है कि ये अनियमितताएँ कब आ जाती है। जहाँ इस प्रकार की अनियमितताएँ नही पायी जायें वहाँ समय की सभी अवधियों के

लिए बराबर कटौती की जायेगी। हम इसी बात को अन्य शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि इनमें घातीय (exponential) नियम लागू होगा। यदि हा किसी ऐसे आनन्द की भविष्य में प्राप्त होने वाली मात्रा हो जिसकी सम्भाव्यता पा है तथा जो टा समय में ही घटित हो सकती है, और यदि र=1+रा हो तो आनन्द का वर्तमान मूल्य पा हा र−टा होगा। यह ध्यान रहे कि यह परिणाम सुखवाद विज्ञान (hedonics) से सम्बन्धित है, न कि सही अर्थ में अर्थशास्त्र से सम्बन्धित है।

इसी परिकल्पना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यदि समय की किसी अवधि Δ टा में किसी व्यक्ति को, मान लीजिए, पियानो रखने से प्राप्त होने वाले सुख, Δ हा, की संभाव्यता वा हो तो पियानो का उसके लिए वर्तमान मूल्य $\int_0^{ट}$ वा र $^{-टा}$ $\frac{d\ हा}{d\ टा}$ d ट. होगा। यदि इससे कभी भी प्राप्त होने वाले कुल सुख को इसमें सम्मिलित करें तो हमें ट = ∞ मानना चाहिए। यदि बैन्थम के शब्दों में इस आनन्द का स्रोत 'मिश्रित' हो तो टा की कुछ मात्राओं में $\frac{d\ हा}{d\ टा}$ संभवतया ऋणात्मक होगा। निस्सन्देह समाकल (integral) का सम्पूर्ण मान ऋणात्मक हो सकता है।

टिप्पणी 6 (पृष्ठ 132–33)। यदि किसी बाजार में किसी वस्तु की ग मात्रा के लिए क कीमत पर क्रेता हो, और मांग वक्र का समीकरण क=f(ग) हो, तो उस वस्तु के लिए कुल तुष्टिगुण को $\int_0^{आ} f\ (ग)\ dग$ द्वारा मापा जायेगा जिसमें आ उपभोग की गयी मात्रा है।

यदि जीवन निर्वाह के लिए किसी प्रकार उस वस्तु की बा मात्रा आवश्यक हो तो ग वस्तु की बा से कम मात्राओं के लिए f (ग) अनंत या असीमित रूप से बड़ा होगा। अतः हमें जीवन को निश्चित मानना चाहिए, और इस वस्तु के सम्भरण के उस भाग के कुल तुष्टिगुण का अलग से अनुमान लगाना चाहिए जो कि जीवन की नितांत आवश्यकताओं के अतिरिक्त है: निस्सन्देह यह $\int_{बा}^{आ} f\ (ग)\ d\ ग$ होगा।

यदि ऐसी अनेक वस्तुएँ हों जो एक ही अत्यावश्यक आवश्यकता की पूर्ति करती हों, जैसे कि जल तथा दूध में से किसी भी चीज से प्यास बुझाई जा सकती है, तो हम देखेंगे कि जीवन की साधारण दशाओं में केवल यह सरल कल्पना कर लेने से कोई बड़ी त्रुटि नहीं होती कि सबसे सस्ती वस्तु से ही पूर्णतया आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

यह ध्यान रहे कि उपभोक्ता अधिशेष पर विचार करते समय यह कल्पना करते हैं कि किसी एक ग्राहक के लिए द्रव्य से सदैव समान तुष्टिगुण प्राप्त होता है। सच पूछो तो हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि वह चाय पर कम खर्च करे तो उसके लिए द्रव्य का तुष्टिगुण वर्तमान स्थिति की अपेक्षा कम होगा और उसे उन कीमतों पर अन्य वस्तुएँ खरीदने में उपभोक्ता अधिशेष प्राप्त होगा जिनसे उसे

अभी इस प्रकार का कुछ भी अनुमान नहीं मिलता। किन्तु उपभोक्ता के अनुमान में होने वाले इन परिवर्तनों की (जो लघुता की दूसरी कोटि में आते हैं) इस कल्पना के आधार पर उपेक्षा की जा सकती है कि किसी एक वस्तु में जैसे कि चाय में, होने वाला व्यय कुल व्यय का केवल थोड़ा सा ही अंश है। हमारी सम्पूर्ण तर्कप्रणाली में सदैव यह मान्यता निहित है। (भाग 5, अध्याय 3, अनुभाग 3 से तुलना कीजिए)। यदि किसी कारण चाय में होने वाले व्यय के द्रव्य के मूल्य में पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखना आवश्यक हो तो ऊपर दिये गये समाकल में f (ग) को ग f (ग) के उस फलन द्वारा (अर्थात्, उसके द्वारा चाय में किये गये व्यय द्वारा) गुणा करना चाहिए जिससे इसके लिए उसके द्रव्य के कोष में कमी होते समय द्रव्य का सीमान्त व्यक्त होता है।

टिप्पणी 7. (पृष्ठ 134)। इस प्रकार यदि आ$_1$, आ$_2$, आ$_3$. . . . . उन अनेक वस्तुओं की उपभोग की गयी मात्राएँ हों जिनमें से वा$_1$, वा$_2$, वा$_3$ . . . . . . मात्राएँ जीवन निर्वाह के लिए, आवश्यक हों, यदि क $= f_1$ (ग), क $= f_2$ (ग), क $= f_3$ (ग) . . . . . . उनके माँग वक्रों के समीकरण हों और यदि उनके धन के वितरण की सभी असमानताओं को ध्यान में न रखें, तो आय के कुल तुष्टिगुण को (जिसमें जीवन का निर्वाह भी होना शामिल है) $\Sigma \int_{वा}^{आ}$ f (ग) dग से व्यक्त किया जा सकता है। किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब हम एक ही माँग वक्र में एक ही प्रकार की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाली और अतः विरोधी, वस्तुओं को तथा उन सभी प्रकार की वस्तुओं को एक साथ वर्गीकृत करने की योजना तैयार करें जिनका पूरक वस्तुओं के रूप में उपयोग किया जाता है। (भाग 5, अध्याय 6 देखिए)। किन्तु हम ऐसा नहीं कर सकते: और यह सूत्र केवल एक सामान्य अभिव्यक्ति मात्र रह जाता है और इसका कुछ भी व्यावहारिक उपयोग नहीं किया जा सकता। पृष्ठ 134 में पुटनोट 1 को, तथा टिप्पणी 14 का बाद वाला भाग देखिए।

टिप्पणी 8. (पृष्ठ 134)। यदि किसी व्यक्ति को अपनी आय ग से प्राप्त होने वाला सुख क हो, और यदि बर्नूली के सिद्धान्त के अनुसार हम यह कल्पना करें कि चाहे आय कितनी ही क्यों न हो, आय में हर एक प्रतिशत वृद्धि से प्राप्त होने वाले सुख में सदैव समान मात्रा में वृद्धि होगी तो ग $\frac{d क}{d ग}$ = झ, और ∴ क = झ (लघु$_e$) क + च, जिसमें झ तथा च अचर हैं। इसके अतिरिक्त बर्नूली की भाँति हम यह कल्पना करेंगे कि आय आ से जीवन की केवल निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जब आय आ से कम होतो आनन्द की अपेक्षा कष्ट अधिक होगा, और और जब यह आ के बराबर हो तो कष्ट तथा आनन्द बराबर होंगे। अतः हम उक्त समीकरण को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:—क = झ (लघु$_e$) ग/आ। निस्सन्देह स्वभाव, स्वास्थ्य, आदतों तथा प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक वातावरण के अनुसार झ तथा आ भिन्न हो सकते हैं। लाप्लेस ने ग को स्वास्थ्य का सौभाग्य (fortune physique) तथा क को चरित्र सौभाग्य (fortune morale) की संज्ञा दी थी।

स्वयं बर्नूली ने ग तथा आ को सम्पत्ति की न कि आय की किसी निश्चित मात्रा का प्रतीक माना था। किन्तु हम जीवन के लिए आवश्यक सम्पत्ति तथा अनुमान नहीं लगा सकते जब तक उस समयावधि का कुछ ज्ञान न हो जिसमें इस सम्पत्ति से जीवन का भरण-पोषण किया जायेगा, अर्थात् इसे वास्तव में आय माने बिना इसका अनुमान नहीं लगा सकते।

बर्नूली के अटकल के पश्चात् जिस अटकल की ओर सबसे अधिक ध्यान आकर्षित हुआ वह क्रैमर (Cramer) द्वारा दिया गया यह सुझाव था कि धन से मिलने वाले आनन्द में इसकी मात्रा के वर्गमूल के अनुसार परिवर्तन होता है।

टिप्पणी 9 (पृष्ठ 135)। यह तर्क कि कपट रहित जुआ एक भारी आर्थिक भूल है, साधारणतया बर्नूली की या किसी अन्य अनिश्चित परिकल्पना पर आधारित है। किन्तु इसमें सर्वप्रथम यह कल्पना की गयी है कि जुआ खेलने में मिलने वाले आनन्द की अवहेलना की जानी चाहिए; और दूसरी यह कल्पना की गयी है कि ϕ'' (ग), ग के सभी मानों के लिए ऋणात्मक है, जिसमें ϕ(ग), ग के बराबर धन से प्राप्त आनन्द है।

मान लीजिए कि किसी घटना के होने की सम्भाव्यता पा है, और कोई व्यक्ति (1–पा) क के विरुद्ध पा क का न्यायसंगत बाजी इसलिए लगाता है कि वह घटना अवश्य घटेगी। ऐसा करने से वह अपने सुख की प्रत्याशा को ϕ(ग) से बदल कर पा ϕ {ग+(1–पा) क} +(1–पा)ϕ(ग–पा) क मानेगा।

यदि इसका टेलर (Tylor) के प्रमेय (Theorem) द्वारा विस्तार किया जाय तो इसे ϕ(ग) + $\frac{1}{2}$ पा (1–पा)^2 क^2ϕ''{ग+θ(1–पा) क} + $\frac{1}{2}$ पा^{2} (1–पा) क^2 ϕ'' (ग–θ पा क) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यहाँ पर यह कल्पना की गयी है कि ϕ''(ग), ग के सभी मानों के लिए ऋणात्मक होगा, और अतः वह सदैव ϕ (ग) से कम होगा।

यह सत्य है कि सम्भावित सुख में होने वाली इस क्षति का जुआ खेलने के जोश से प्राप्त आनन्द से बढ़कर होना आवश्यक नहीं है, और अतः हमें इस आगमन (induction) का आश्रय लेना पड़ता है कि बर्नूली के आधार में जुआ खेलने से प्राप्त आनन्द 'मिथिल' है क्योंकि अनुभव से यह पता लगता है कि वे चंचल, क्षुब्ध आचरण वाले व्यक्तियों को जन्म देते हैं जो स्थिर चित होकर कार्य करने तथा जीवन के उच्चतर एवं अधिक ठोस आनन्दों के लिए अनुपयुक्त हैं।

टिप्पणी 10. (पृष्ठ 141)। टिप्पणी I की भाँति यदि हम श्रम की किसी मात्रा ला में होने वाली असुविधा या तुष्टिहीनता को मा मानें तो $\frac{d^2 \text{मा}}{d \text{ला}^2}$ श्रम को होने वाली सीमान्त तुष्टिहीनता की मात्रा को व्यक्त करेगी, और मूलपाठ में दी गयी विशेषताओं के अनुसार $\frac{d \text{ मा}}{d \text{ ला}^2}$ धनात्मक होगा।

अब यह मान लें कि किसी व्यक्ति के पास मा द्रव्य या सामान्य क्रयशक्ति है। इससे उसे ए के बराबर कुल तुष्टिगुण मिलता है, और अतः $\frac{d\text{ए}}{d\text{मा}}$ इसका सीमान्त तुष्टिगुण होगा। इस प्रकार यदि उसे Δला के बराबर श्रम के लिए प्रलोभित करने

के लिए दी जाने वाली मजदूरी Δ वा है, तो

$$\Delta \text{ वा} \frac{d \text{ ए}}{d \text{ मा}} = \Delta \text{मा}, \text{ और } \frac{d \text{ वा}}{d \text{ ला}} \frac{d \text{ ए}}{d \text{मा}} = \frac{d \text{ मा}}{d \text{ ला}}।$$

हम यदि कल्पना करें कि उसकी श्रम करने में होने वाली घृणा निश्चित न होकर परिवर्तनशील है तो हम $\frac{d \text{ वा}}{d \text{ ला}}$ को मा, भा तथा ला का फलन मान सकते हैं।

तब $\frac{d^2 \text{ वा}}{d \text{ मा } d \text{ ला}}$ तथा $\frac{d^2 \text{ वा}}{d \text{ मा } d \text{ ला}}$ दोनों ही सदैव घनात्मक होंगे।

टिप्पणी 11. (पृष्ठ 248. .)। यदि किसी जाति के पक्षी जल में रहने की आदतें डालना प्रारम्भ करने लगें तो उनके पंजों के बीच की झिल्लियों में होने वाली वृद्धि से, चाहे यह प्राकृतिक चयन के फलस्वरूप धीरे-धीरे उत्पन्न हो, या इस अभ्यास के कारण एकाएक उत्पन्न हो—उन्हें जल में रहने में अधिक लाभ होंगे, और उनके बच्चे झिल्ली में होने वाली वृद्धि पर निर्भर रहेंगे। अत. यदि टा समय में झिल्ली का औसत क्षेत्रफल f (ट) हो तो झिल्ली की वृद्धि-दर (कुछ सीमा तक) झिल्ली में होने वाली वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है। और अतः f' (टा) घनात्मक होगा। हम अब टेलर के प्रमेय के अनुसार यह जानते हैं कि f (ट+हा)=f (टा)+हा f' (टा)+$\frac{\text{हा}^2}{1.2}$ f' (टा+θ हा); और यदि हा बड़ा हो, जिससे हा² बहुत बड़ा हो तो f(टा+टा), f (टा) से बहुत बड़ा होगा, भले ही f(टा) छोटा हो और f (टा) कभी भी बड़ा न हो। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में तथा उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भौतिक शास्त्र में अवकलन-गणित (differential calculus) के प्रयोग मे तथा विकास के सिद्धान्त में हुई प्रगति मे केवल बाह्य ही नही अपितु अधिक गहरा सम्बन्ध है। समाजशास्त्र तथा जीव-विज्ञान (biology) में हम उन शक्तियों के संचित प्रभावों को देखते हैं जो सर्वप्रथम तो दुर्बल प्रतीत होती थी किन्तु जो अपने ही प्रभावों के विकास के कारण अधिक शक्तिशाली बन जाती हैं। टेलर का प्रमेय इसका ऐसा सार्वभौमिक रूप है जिससे प्रत्येक तथ्य को विशेष रूप से अभिव्यक्त किया जाता है। या यदि हमें एक से अधिक कारणों के संयुक्त प्रभाव का पता लगाना हो तो हम इनमें अनेक चरों (variables) के फलन की तदनुरूप अभिव्यक्ति को देखते हैं। यह निष्कर्ष उस समय भी सत्य होगा जब मेंडल सिद्धान्त को अपनाने वाले कुछ लोगों द्वारा और अधिक खोज करने से यह सिद्ध हो जाय कि किसी जाति में क्रमिक परिवर्तन का कारण उस जाति के लोगों का वहाँ की अन्य जातियों की अपेक्षा अनेक रूपों मे भिन्न होना है। क्योंकि अर्थशास्त्र मानव जाति, विशेष देशों तथा विशेष सामाजिक स्तरों, का अध्ययन है, और इसके. असाधारण मेधा वाले ये असाधारण दुराचार एवं हिंसात्मक वृत्ति वाले लोगों के जीवन से केवल अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

टिप्पणी 12 (पृष्ठ 325)। यदि टिप्पणी 10 की भाँति किसी व्यक्ति को किसी

ऐसी वस्तु की ग मात्रा प्राप्त करने में लगने वाले श्रम में होने वाले कष्ट को मा मानें जिससे उसे उ आनन्द प्राप्त होता है, तो उस वस्तु की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने में होने वाला आनन्द उन्हे प्राप्त करने मे होने वाले कष्ट के उस समय बराबर होगा जब $\frac{d\, उ}{d\, ग}=\frac{d\, मा}{d\, ग}$।

यदि श्रम में होने वाले दर्द को ऋणात्मक आनन्द मानें, और ओ = मा, तो $\frac{d\, उ}{d\, ग}+\frac{d\, ओ}{d\, ग}=0$ अर्थात् उ+ओ=उस विन्दु पर अधिकतम होगा जहाँ वह श्रम करना बन्द कर दे।

टिप्पणी 12. पुन: (पृष्ठ 777)। फरवरी, सन् 1881 ई० के Giornale degli Economisti मे एक लेख मे प्रो० ऐजवर्थ ने वगल मे दिया गया आरेख खीचा था, जिसमें उन्होंने 774–76 मे गरीफलों के सेवों से अदला-बदली के विवरण को प्रदर्शित किया था। सेवों को ख ग रेखा पर और गरीफलो को ख क रेखा पर मापा गया है। ख पा=4, पा आ=40, और आ प्रथम सौदे की समाप्ति को प्रदर्शित करती है जिसमे अ को प्रारम्भ मे लाभ होता है और 4 सेवो की 40 गरीफलों के साथ अदला-बदली की गयी है: वा इनकी अदला बदली की दूसरी स्थिति को तथा चा तीसरी स्थिति को व्यक्त करता है। दूसरी ओर, प्रारम्भ मे सौदो मे ब को होने वाले लाभ वाले उदाहरण मे ई इसकी प्रथम स्थिति को और बी, ची, दी दूसरी, तीसरी तथा अंतिम स्थितियों को व्यक्त करती हैं। ठ प को, जिसके बिन्दु पथ मे चा तथा दी अवश्य ही स्थिति होंगी, प्रो० ऐजवर्थ ने संविदा वक्र ने की संज्ञा दी।
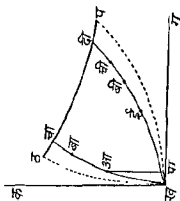
अपनी Mathematical Qsychics (1881) में दी गयी प्रणाली का प्रयोग करते हुए वह अ को ग सेब देने तथा क गरीफल लेने के बाद प्राप्त होने वाले कुल तुष्टिगुण को ओ मानते हैं और ब को ग सेब लेने तथा क गरीफल देने के बाद प्राप्त होने वाले कुल तुष्टिगुण को मा मानते हैं। यदि $\triangle$ ग अतिरिक्त सेबों का $\triangleleft$ क अतिरिक्त गरीफलों से विनिमय किया जाय तो विनिमय के लिए अ उस समय उदासीन होगा जब $\frac{dओ}{dग}\triangle ग+\frac{dओ}{dक}\triangle क=0$; और ब उस समय उदासीन होगा जब

$\frac{dम}{dग}\triangle ग+\frac{dम}{dक}\triangle क=0$ अत: रेखाचित्र के क्रमशः ख प तथा ख ठ अनधिमा

वक्रों (indifference curves) के समीकरण हैं, और संविदा वक्र, जो कि उन बिन्दुओं का बिन्दु-पथ है जिनमें विनिमय की अ के लिए अनधिमान शर्तें ब के लिए भी अनधिमान हैं, का नया समीकरण $\frac{dओ}{dग} \div \frac{dओ}{dक} = \frac{dम}{dग} \div \frac{dम}{dक}$ होगा।

यदि अ तथा ब दोनों के लिए ही गरीफलों का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर हो तो $\frac{dओ}{dक}$ और $\frac{dम}{dक}$ स्थिर होंगे। ओ, ϕ (आ − ग) + आ क तथा, म ψ (आ − ग) + घ क, हो जायेगा, और संविदा वक्र F (ग) = 0 या ग = च होगी। अर्थात् यह ख क तथा $\triangle$ क के मान के समानान्तर सीधी रेखा होगी : $\triangle$ ग को, जो कि च का फलन है, इन दोनों वक्रों मे से किसी से भी जाना जा सकता है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि चाहे वस्तु विनिमय किसी भी ढंग से प्रारम्भ हो, साम्य ऐसे बिन्दु पर ही स्थापित होगा जहाँ च सेवों का विनिमय हुआ हो, और विनिमय की अंतिम दर च का फलन है। अर्थात् यह भी अचर है। सर्वप्रथम मि० बेरी ने मूलपाठ में निकाले गये निष्कर्षों की पुष्टि के लिए प्रो० ऐजवर्थ के वस्तु-विनिमय के सिद्धान्त के गणितीय रूपान्तर के इस अंतिम प्रयोग का उपयोग किया था, और यह जून 1891 ई० के Giornale degli Economisti में प्रकाशित हुआ।

प्रो० ऐजवर्थ की ओ तथा म को ग तथा क के सामान्य फलन मानने की योजना गणितज्ञों के लिए बड़ी आकर्षक है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह आर्थिक जीवन के नित्य-प्रति के तथ्यों को व्यक्त करने के लिए उतनी उपयुक्त नहीं है जितनी कि जेवन्स की भाँति, सेवों के सीमान्त तुष्टिगुण को केवल ग के फलन मानने से उपयुक्त है। उस दशा मे यदि अ के पास प्रारम्भ में कोई भी गरीफल न हो, जैसा कि विचाराधीन विषय के अन्तर्गत माना गया है, तो ओ $\int_0^{ग} \phi_1$ (आ − ग) dग + $\int_0^{क} \psi_1$ (क) dक रूप धारण कर लेगा। म के सम्बन्ध मे भी यही बात सत्य है। तब संविदा वक्र के समीकरण का रूप।

ϕ_1 (आ − ग) $\div$ ψ_1 (क) = ϕ_2 (ग) $\div$ ψ_2 (बा − क) होगा जो जेवन्स की Theory के दूसरे सस्करण, पृष्ठ 104 मे दिये गये विनिमय के समीकरणों मे से एक है।

टिप्पणी 13. (पृष्ठ 347)। टिप्पणी 5 मे प्रयोग की गयी अंकन-पद्धति का प्रयोग करते हुए हम समय की उस अवधि को प्रारम्भ करते हैं जब इमारत बनाने का कार्य चालू किया जाता है और इसके तैयार होने मे लगने वाले समय को टि मानते हैं। ऐसी स्थिति मे वह उस इमारत से जिन आनन्दों को प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है वे इस प्रकार होंगे : ह $\int_{ट}^{ट}$ वा र$^{-टा}$ $\frac{d हा}{d टा}$ dटा।

यदि समय के मध्यान्तर Δ टा मे (समय टा तथा टा + Δ टा के बीच) इमारत तैयार करने मे लगने वाले प्रयत्न को Δ म मानें तो कुल प्रयत्न का वर्तमान मल्य

$$म = \int_{0}^{टि} र^{-टा} \frac{d मा}{d टा} d टा \text{ होगा।}$$

यदि इसमें लगने वाले श्रम के विषय में कोई अनिश्चितता हो तो प्रत्येक सम्भवित स्थिति को ध्यान मे रखना चाहिए और इस प्राप्त करने की सम्माव्यता, बी, से गुणा करना चाहिए। ऐसी दशा में

$$म = \int_{0}^{टि} वा \; र^{-टा} \frac{d मा}{d टा} d टा \text{ होगा।}$$

यदि हम समय के प्रारम्भिक विन्दु को इमारत बनाने का कार्य चालू करने के स्थान पर इसके तैयार हो जाने के बाद का बिन्दु लें तो

$$ह = \int_{0}^{ट_1} वा \; र^{-टा} \frac{d हा}{d टा} d टा \text{ और } म = \int_{0}^{टि} वी \; र^{-टा}$$

$$\frac{d मा}{d टा,} d टा, \text{ जिसमें } ट_1 = ट - टि$$

यह प्रारम्भिक विन्दु, गणित के दृष्टिकोण से कम किन्तु साधारण व्यवसाय की दृष्टि से अधिक स्वाभाविक है। इसे मानने पर म इसमे लगने वाले प्रत्याशित कष्ट के बराबर होगा। प्रत्येक कष्ट के पीछे इस कष्ट को करने तथा इसके फल मिलने के बीच की अवधि की प्रतीक्षाओं का संचित भार रहता है।

पूंजी के विनियोजन के विषय मे जेवन्स के विवेचन मे इस अनावश्यक मान्यता के कारण कुछ क्षति पहुँची है कि इसे प्रदर्शित करने वाला फलन प्रथम श्रेणी की अभिव्यक्ति है। यह क्षति उस समय अधिक उल्लेखनीय है जब स्वयं वह गोसें (Gossen) की कृति का वर्णन करते समय उन आपत्तियो का उल्लेख करते हैं जो आर्थिक मात्राओं मे उतार-चढ़ाव के वास्तविक गुणों को व्यक्त करने वाले विविध रूपीय-वक्रों के स्थान पर उनके (तथा हेवले) द्वारा अपनायी गयी सीधी रेखाएँ खीचने की योजना के विरुद्ध उठायी गयी [हैं]।

टिप्पणी 14. (पृष्ठ 530)*। मान लें कि आ1, आ2, आ3 किसी व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के श्रम की, जैसे कि दृष्टान्त के लिए लकड़ी काटने, पत्थर ले जाने, मिट्टी खोदने, इत्यादि की अलग-अलग मात्राएँ है जिन्हे किसी निर्धारित योजना के अनुसार इमारत खड़ी करने मे लगाया जाता है। इस योजना के अन्तर्गत घ, घा + घि इत्यादि बैटक कक्ष, शयन कक्ष, कार्यालय इत्यादि के लिए प्राप्त होने वाले स्थान की अलग-अलग मात्राएँ हैं। म तथा ह का पिछली टिप्पणी के अनुरूप अर्थों मे प्रयोग करने पर श, घ,

घ, घि सभी आ1, आ2, आ3, ... के फलन है, और चूँकि घ, घा, घि ... . का ह फलन है, अतः यह आ1, आ2, आ3, ... का भी फलन होगा। इसके पश्चात् हमे प्रत्येक प्रकार के प्रयोग मे प्रत्येक प्रकार के श्रम के सीमान्त नियोजन का पता लगाना चाहिए।

$$\frac{d \text{ म}}{d \text{ आ1}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घ}} \frac{d \text{ घ}}{d \text{ आ1}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घा}} \frac{d \text{ घा}}{d \text{ आ1}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घि}} \frac{d \text{ घि}}{d \text{ आ1}} = \ldots\ldots$$

$$\frac{d \text{ म}}{d \text{ आ2}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घ}} \frac{d \text{ घ}}{d \text{ आ2}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घा}} \frac{d \text{ घा}}{d \text{ आ2}} = \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घि}} \frac{d \text{ घि}}{d \text{ आ2}} = \ldots\ldots$$

ये समीकरण प्रयत्न तथा हित के बीच होने वाले सन्तुलन का प्रतिनिधित्व करते है। प्रसंगगत व्यक्ति के लिए इमारती लकड़ी काटने तथा इसे उपयोग के योग्य बनाने मे लगने वाले थोड़े अतिरिक्त श्रम की वास्तविक लागत बैठक-कक्ष या निवास-कक्ष के लिए इसके फलस्वरूप थोड़ा अतिरिक्त स्थान मिलने से होने वाले हित के ठीक बराबर होगी। यदि वह इस कार्य को स्वयं करने की अपेक्षा इसके लिए बढ़ई लगाता है तो म से उसके कुल प्रयत्न के स्थान पर सामान्य क्रय-शक्ति के रूप मे होने वाले कुल परिव्यय का प्रतिनिधित्व करेंगे। ऐसी दशा मे वह बढइयों को अतिरिक्त श्रम के लिए जिस दर पर भुगतान करने को तैयार होगा उसे अर्थात् उनके श्रम के लिए उसकी सीमान्त माँग-कीमत को $\frac{d \text{ म}}{d \text{ आ}}$ से मापा जायेगा; जबकि $\frac{d \text{ ह}}{d \text{ घ}}, \frac{d \text{ ह}}{d \text{ घा}}$ क्रमशः बैठक तथा शयन कक्ष के लिए अतिरिक्त स्थान के सीमान्त तुष्टिगुणो को मापने के द्रव्यिक माप है, अर्थात् ये इनके लिए उसकी सीमान्त माँग-कीमतें हैं। $\frac{d \text{ घ}}{d \text{ आ}}, \frac{d \text{ घा}}{d \text{ आ}}$ इन स्थानों को प्रदान करने मे बढ़इयों के श्रम की सीमान्त कार्यकुशलता को व्यक्त करते हैं। तब इन समीकरणों का यह अर्थ होगा कि बढइयो के श्रम की माँग कीमत बैठक कक्ष तथा शयन-कक्ष, इत्यादि के लिए उचित मात्रा मे अतिरिक्त स्थान प्राप्त करने की माँग कीमत × प्रत्येक दशा मे अतिरिक्त स्थान प्रदान करने मे बढ़इयो के कार्य की सीमान्त कार्यकुशलता के बराबर होने लगती है।

जब इस कथन को सामान्य रूप मे व्यक्त किया जाता है जिससे कि इसमें किसी बाजार में बढ़इयों के श्रम की विभिन्न प्रकार की माँग को सम्मिलित किया जा सके तो इसका यह रूप हो जाता है :—बढइयों के श्रम की (सीमान्त) माँग कीमत किसी उत्पादन के संभरण को बढ़ाने मे बढइयों के श्रम की (सीमान्त) कार्य कुशलता × उस उत्पाद की (सीमान्त) माँग कीमत के बराबर होती है। अथवा अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि बढ़इयो के श्रम की किसी इकाई की मजदूरी मे किसी भी उत्पाद के, जिसके उत्पादन मे उनके श्रम का योगदान होता है, ऐसे भाग के मूल्य के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे उस उत्पाद मे बढइयों के श्रम की एक इकाई की सीमान्त कार्यकुशलता को व्यक्त किया जा सके। अथवा भाग 6, अध्याय 1 मे बहुधा

प्रयोग किये गये एक वाक्यांश का प्रयोग करते हुए हम यह कह सकते हैं कि यह उनके श्रम के 'निवल उत्पाद' के मूल्य के बराबर होने लगता है। यह कथन बहुत महत्पूर्ण है और इसमे वितरण के सिद्धान्त के मांग पक्ष का मूल निहित है।

इसके पश्चात् हम यह कल्पना करें कि एक प्रधान भवन निर्माता कोई इमारत तैयार करना चाहता है और यह विचार कर रहा है कि उसे विभिन्न प्रकार की चीजो के लिए, जैसे कि निवास-गृहो, मालगोदामो, फैक्टरियों तथा फुटकर दुकानों, इत्यादि के लिए कितना स्थान नियत करना चाहिए। उसे दो विषयों के सम्बन्ध में निर्णय करना पड़ता है: इनमे पहला प्रश्न यह है कि उसे प्रत्येक प्रकार के उपयोग के लिए कितना स्थान प्रदान करना चाहिए, और दूसरा प्रश्न यह है कि इस स्थान का किस प्रकार आयोजन करना चाहिए। इस प्रकार यह निर्णय करने के अतिरिक्त कि उसे निश्चित मात्रा मे स्थान उपलब्ध करने के लिए कहाँ निवास बनाने चाहिए या नही, उसे यह भी निर्णय करना होगा कि इसमे उत्पादन के किन कारणों का और किस-किस अनुपात मे उपयोग करना चाहिए। उदाहरण के लिए, उसे यह निर्णय करना है कि खपरैल का उपयोग करना चाहिए या स्लेट का, इसमे कितने पत्थर लगाये जाने चाहिए, और वाष्प-शक्ति का गारा बनाने इत्यादि के लिए भी उपयोग करना चाहिए या उसका क्रेन से किये जाने वाले कार्य मे ही उपयोग किया जाना चाहिए। यदि वह किसी बड़े शहर मे कार्य कर रहा हो तो उसे यह भी निर्णय करना होगा कि चबूतरे को इस कार्य मे प्रवीण लोगो द्वारा तैयार करवाना चाहिए या साधारण श्रमिकों द्वारा ही तैयार करवाना चाहिए, और आगे भी इसी प्रकार।

इसके पश्चात् यह मान लें कि वह महानिवास के लिए घ मात्रा मे, मालगोदाम के लिए घा मात्रा मे, फैक्टरी के लिए घि मात्रा मे, और आगे भी इसी प्रकार विशेष स्थान निर्धारित करता है। किन्तु इस कल्पना के स्थान पर कि वह पहले की भाँति विभिन्न प्रकार के श्रम को आ1, आ2........ मात्राओं मे मजदूरी पर लगाता है, हम उसके व्यय को 1 मजदूरी, 2 कच्चे माल की कीमत, और 3 पूंजी के व्याज के रूप मे वर्गीकृत करेंगे: स्वयं उसके द्वारा किये गये कार्य एवं उद्यम के मूल्य को चौथी श्रेणी मे रखा जा सकता है।

इस प्रकार यह मान लें कि वह ग 1, ग 2 विभिन्न श्रेणियों के श्रम को (जिसमे निरीक्षण का कार्य भी शामिल है) किराये पर लेता है। प्रत्येक प्रकार के श्रम की मात्रा मे उसकी अवधि तथा तीव्रता सम्मिलित है।

अब यह मान लें कि क 1, क2........ विभिन्न प्रकार के कच्चे माल की मात्राएं हैं जिनका इमारत तैयार करने मे उपयोग किया जाता है तथा जिन्हें स्वतंत्र रूप से बेचा जाता है। ऐसी दशा में वर्तमान दृष्टिकोण से भूमि के जिन टुकड़ों मे इन्हें अलग-अलग प्रकार के तैयार किया जाता है उन्हें वर्तमान (यहाँ पर वैयक्तिक) उपक्रमी के दृष्टिकोण से विशेष प्रकार का कच्चा माल माना जा सकता है।

इसके पश्चात् यह मान लें कि ज विभिन्न उद्देश्यो के लिए पूंजी को लगाने या रोजगार प्रदान करने की मात्रा है। यहाँ पर हमे कच्चे माल के क्रय के लिए पूंजी के सभी रूपो की, जिनमे मजदूरी के रूप मे किया गया अग्रिम भुगतान भी शामिल है,

सामान्य द्रव्यिक माप के रूप में गणना करनी चाहिए। हमे उसके सभी प्रकार के संयंत्र की टूट-फूट इत्यादि के लिए गुंजाइश रखते हुए इसके उपयोगो की भी गणना करनी चाहिए: स्वयं उसके कारखानों तथा जिस भूमि पर ये बनायी गयी है उसकी भी इसी आधार पर गणना करनी चाहिए। पूंजी के बचे रहने की अवधि अलग-अलग दशाओ मे अलग-अलग होगी, किन्तु इन्हे 'यौगिक दर' मे अर्थात् किसी मानक इकाई, जैसे, एक वर्ष में गुणोत्तर वृद्धि के रूप मे व्यक्त करना चाहिए।

चौथा विभिन्न उपक्रमों मे लगे उसके निजी श्रम, चिन्ता, दुःख, टूट-फूट इत्यादि के द्रव्यिक मूल्यांक को उ के रूप मे निरूपित करे।

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे विषय है जिन्हे अलग-अलग मदो के रूप मे रखा जा सकता है, किन्तु इन्हें पहले व्यक्त किये गये मदो मे सम्मिलित माना जा सकता है। इस प्रकार जोखिम के लिए रखी गयी गुंजाइश को अन्तिम दो मदो मे विभाजित किया जा सकता है। व्यवसाय को चलाने के सामान्य खर्चों–अनुपूरक लागतो की मजदूरी, कच्चे माल, चालू व्यवसाय के संगठन के पूंजीगत मूल्य (इसकी सद्भावना इत्यादि) और स्वयं भवन निर्माता के कार्य, उद्यम तथा चिन्ता के लिए मिलने वाले पारिश्रमिक मे उचित वितरण हो जायेगा।

इन परिस्थितियों में म से उसके कुल परिव्यय का और ह से उसकी कुल आय का निरूपण किया जाता है, और वह यह प्रयत्न करता है कि ह– म अधिकतम हो। इस योजना के आधार पर पहले दिये गये समीकरणों की भाँति हम इसी प्रकार निम्न समीकरण प्राप्त करते हैं:—

$$\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{ग}1} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{ग}1} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घा}}\cdot\frac{d\,\text{घा}}{d\,\text{ग}1} = \ldots$$

$$\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{ग}2} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}'}{d\,\text{ग}2} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घा}}\cdot\frac{d\,\text{घा}}{d\,\text{ग}2} = \ldots\ldots$$

......

$$\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{क}1} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{क}1} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घा}}\cdot\frac{d\,\text{घा}}{d\,\text{क}1} = \ldots\ldots$$

......

$$\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{ज्ञ}} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{ज्ञ}} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घा}}\cdot\frac{d\,\text{घा}}{d\,\text{ज्ञ}} = \ldots\ldots$$

$$\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{उ}} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{उ}} = \frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घा}}\cdot\frac{d\,\text{घा}}{d\,\text{उ}} = \ldots\ldots$$

कहने का अभिप्राय यह है कि भवन निर्माता प्रथम श्रेणी के श्रम के कुछ अतिरिक्त सम्भरण, $\delta\,\text{ग}1$, के लिए जो सीमान्त परिव्यय लगाने को तैयार है, अर्थात $\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{ग}1}\,\delta\,\text{ग}1$, $\frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\cdot\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{ग}1}\,\delta\,\text{ग}1$ के बराबर है; अर्थात् यह उसकी कुल आय, ह, मे होने

वाले उस वृद्धि के बराबर है जिसे वह महानिवास के स्थान मे होने वाली वृद्धि द्वारा प्राप्त करेगा जो कि स्वयं प्रथम श्रेणी के श्रम के कुछ अतिरिक्त संभरण से प्राप्त होगी : माल गोदाम से सम्बन्धित स्थान के विषय में भी यह इतनी ही धनराशि के बराबर होगी, तथा आगे भी इसी प्रकार होगा। इस प्रकार वह विभिन्न उपयोगो मे अपनी आय के साधनों का इस प्रकार वितरण करेगा कि वह उत्पादन के किसी भी कारक-श्रम, कच्चा माल, पूँजी के उपयोग में किसी भी मात्रा मे व्यपवर्तन करके कुछ भी लाभ प्राप्त नही कर सकता, और न वह भवन निर्माण के एक श्रेणी के कार्य के स्थान पर दूसरी श्रेणी के कार्य मे स्वयं अपना श्रम एवं उद्यम लगाकर कुछ लाभ प्राप्त कर सकता है : वह न तो अपने उद्यम की किसी भी शाखा मे उत्पादन के किसी एक कारक का किसी दूसरे के स्थान पर उपयोग करने से और न किसी कारक की मात्रा मे वृद्धि या कमी करके ही कुछ लाभ प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टिकोण से एक ही वस्तु के विभिन्न उपयोगो *के बीच चयन के विषय मे हमारे समीकरण का रुख भी भाग 3, अध्याय 5 मे दिये* गये तर्क की भाँति है। (प्रो० एजवर्थ द्वारा सन् 1889 ई० मे विलायती परिषद् (British Association) मे दिये गये प्रसिद्ध अभिभाषण से सम्बद्ध सर्वाधिक टिप्पणियो मे एक टिप्पणी (F) से तुलना कीजिए।

उत्पादन के किसी भी कारक के, चाहे वह विशेष प्रकार का श्रम हो या कोई नया कारक, 'निवल उत्पादक' वाक्यांश के विश्लेषण की कठिनाई पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है (भाग 5 अध्याय 11, अनुभाग 1 तथा भाग 6, अध्याय 1, अनुभाग 8 देखिए)। सम्भवत. इस टिप्पणी के शेष भाग का बाद मे चलकर अध्ययन करना सुविधाजनक होगा, भले ही यह इसके पूर्व दिये गये भाग के सदृश है। भवन-निर्माता प्रथम श्रेणी के श्रमिक की अंतिम मात्रा के लिए $\frac{d\,\text{म}}{d\,\text{ग}1}\times\delta\text{ग}1$ धनराशि का इसलिए भुगतान करता है कि यह इसका निवल उत्पाद था। यदि इसे महानिवास के निर्माण के लिए लगाया जाता तो इससे उसे $\frac{d\,\text{ह}}{d\,\text{घ}}\;\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{म}_1}\;\delta\,\text{ग}1$ के बराबर विशेष आय प्राप्त होती। अब यदि प्रति इकाई कीमत पा हो जिसे वह महानिवास की घ मात्रा के लिए प्राप्त करता है, और अतः पा घ वह कीमत होती जिसे वह ख की सम्पूर्ण मात्रा के लिए प्राप्त करता है। और यदि संक्षेप मे $\frac{d\,\text{घ}}{d\,\text{ग}1}\,\delta\,\text{ग}1$ के स्थान पर Δ घ का प्रयोग करें जो कि श्रम की अतिरिक्त मात्रा δ ग1 के प्रयोग के कारण भवन के रूप में प्राप्त स्थान में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करता है, तो हम जिस निवल उत्पादन का पता लगाना चाहते हैं वह पा Δ घ, न होकर पा Δ घ+घ Δ पा है, जिसमे Δ एक ऋणात्मक मात्रा है, और यह भवन निर्माता द्वारा महानिवास के स्थान मे वृद्धि के फलस्वरूप माँग कीमत मे होने वाली कमी को व्यक्त करता है। अब हमें पा Δ घ तथा घ Δ पा की सापेक्षिक मात्राओं का कुछ अध्ययन करना चाहिए।

यदि भवन निर्माता का महानिवास के संभरण में एकाधिकार हो तो घ उनके कुल संभरण को निरूपित करेगा; और यदि उस समय जब घ माता का संभरण किया जा रहा हो उनके लिए माँग की लोच इकाई से कम हो तो वह इनके संभरण मे वृद्धि कर अपनी कुल आय मे कमी करेगा, और पा △ घ+घ △ पा एक ऋणात्मक मात्रा होगी। किन्तु निस्सन्देह वह उत्पादन मे उस सीमा तक वृद्धि नहीं होने देगा जहाँ माँग इस प्रकार से बेलोच हो। वह जिस सीमा तक उत्पादन करेगा वह निश्चय ही ऐसा सीमान्त होगा जिस पर घ △ पा (जो कि ऋणात्मक है) पा △ घ से कम होगी, किन्तु इसका इतना कम होना आवश्यक नही कि इसकी तुलना करने पर इसकी अवहेलना की जा सके। भाग 5, अध्याय 14 मे विवेचन किये गये एकाधिकारो के सिद्धान्तों मे यह एक प्रमुख तथ्य है।

किसी भी उत्पादक के सम्बन्ध मे जो अपने सीमित व्यापारिक सम्बन्ध का शीघ्रतापूर्वक विस्तार नहीं कर सकता, यह एक प्रमुख तथ्य है। यदि इसके ग्राहकों के पास पहले से ही उसके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ आवश्यक मात्रा मे हो जिसके फलस्वरूप उनकी *माँग की लोच अस्थायी रूप से इकाई से कम हो तो वह एक अतिरिक्त व्यक्ति को* कार्य पर लगाने से हानि उठायेगा, भले ही वह व्यक्ति मुफ्त मे ही कार्य क्यों न करता हो। किसी वस्तु के विशेष बाजार को अस्थायी रूप से बिगाड़ने के इस भय का अल्पकाल से सम्बन्धित मूल्य की अनेक समस्याओ पर प्रमुख प्रभाव पड़ता है (भाग 5, अध्याय 7, 11 देखिए) और विशेषकर वाणिज्यिक मंदी के उन समयों मे तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक संघों के उन नियंत्रणो मे उक्त भय का विशेष प्रभाव पड़ता है जिन पर हमे दूसरे ग्रन्थ मे अध्ययन करना होगा। उन वस्तुओं के सम्बन्ध मे जिनके उत्पादन की लागत उत्पादन की मात्रा मे होने वाली प्रत्येक वृद्धि के फलस्वरूप तत्परतापूर्वक बढ़ती है एक मिश्रित कठिनाई उठानी पड़ती है: किन्तु इस सम्बन्ध मे उत्पादन *की सीमाओं को नियंत्रित करने वाले कारण इतने जटिल है कि इन्हें गणितीय भाषा* में व्यक्त करने के प्रयास का शायद ही कुछ मूल्य दिखाई दे। (भाग 5, अध्याय 12, अनुभाग 2 देखिए।)

किन्तु जब हम उत्पादन के असंख्य कारणों की सामान्य माँग को नियंत्रित करने वाले कारणों के प्रसामान्य प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए किसी निजी उपक्रमी के कार्य का अध्ययन करते है तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमे इस प्रकार की दशाओं से दूर रहने की कोशिश करनी चाहिए। हमे उनके विशेष विवेचनों को पृथक् विश्लेषण करने के लिए छोड़ देना चाहिए और किसी ऐसी दशा से प्रसामान्य दृष्टान्त लेना चाहिए जिसमे व्यक्ति उन अनेक लोगों मे से एक है जिनकी बाजार तक अच्छी पहुँच है भले ही यह अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो। यदि घ △ पा संख्यात्मक रूप मे पा △ घ के बराबर हो जिसमे घ किसी विशाल बाजार मे कुल उत्पादन को व्यक्त करे और यदि कोई एक उपक्रमी घा मात्रा का उत्पादन करे, जो कि घ के हजारवें भाग के बराबर हो, तो एक अतिरिक्त व्यक्ति लगाने से बढ़ी हुई आय पा △ घा होगी जो कि पा △ घ के ही बराबर है। इसमें से की जाने वाली कटौती केवल घा △ पा के ही बराबर होगी जो कि घ △ पा के हजारवें भाग के बराबर होने के कारण थोड़ी

जा सकती है। अतः वितरण के नियमों के सामान्य प्रभाव के एक अंश को स्पष्ट करते समय हमारा यह कहना न्यायोचित है कि उत्पादन के किसी भी कारक के सीमान्त के निवल उत्पाद का मूल्य उस निवल उत्पाद के बराबर है जो कि उस उत्पाद के प्रसामान्य विक्रय मूल्य से प्राप्त होता है, अर्थात् यह पा Δ घ के बराबर है।

यह ध्यान रहे कि इन कठिनाइयों मे से कोई भी कठिनाई ऐसी नही है जो कि श्रम विभाजन तथा भुगतान के लिए किये गये कार्य की प्रणाली पर निर्भर हों, भले ही इससे सम्बद्ध कीमत द्वारा प्रयत्नों एवं तुष्टि को मापने की आदत के कारण ही इनका महत्व बढ़ा है। राबिन्सन क्रूसो अपने लिए एक मकान तैयार करते समय यह अनुभव नहीं करेगा कि उसे जितना स्थान पहले प्राप्त था उसमें हजारवें भाग के बराबर वृद्धि होने से उसके आराम मे हजारवें भाग के बराबर वृद्धि होगी। उसने इस स्थान में जो वृद्धि की है वह उसके अपने पहले के स्थान के ही सदृश है। किन्तु यदि उसके लिए इसके वास्तविक मूल्य की इसी दर पर गणना की जाय तो यह तथ्य ध्यान में रखना होगा कि नये भाव के बन जाने पर पुराने की आवश्यकता कुछ कम हो जाती है, उसके लिए उसका वास्तविक मूल्य कुछ कम हो जाता है (पृष्ठ 407 पर फुटनोट 1 को देखिए)। दूसरी ओर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास के नियम के फलस्वरूप उसके लिए किसी आधे घण्टे के कार्य के वास्तविक नियत उत्पाद का पता लगाना बड़ा कठिन हो जायेगा। दृष्टान्त के लिए यह मान लें कि इलायची की भाँति उपयोगी तथा सरलतापूर्वक समवहनीय कुछ छोटी-छोटी जड़ी-बूटियाँ उसके द्वीप के किसी भाग में उगती हैं जहाँ तक पहुँचने में आधा दिन लगता है, और वह वहाँ एक बार में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ही जड़ी-बूटियाँ लेने के लिए जाता है। इसके पश्चात् वह आधे से भी कम दिन का कुछ भी महत्वपूर्ण उपयोग न उठा सकने के कारण इस पर अपना सम्पूर्ण दिन व्यतीत करता है और पहले से दसगुनी मात्रा में जड़ी-बूटियाँ लाता है। ऐसी स्थिति में इन अन्तिम आधे घण्टे के प्रतिफल को शेष प्रतिफल से विलग नहीं कर सकते। हमारी योजना सम्पूर्ण दिन को एक इकाई मानना है और इससे प्राप्त संतोष की उन दिनों का अन्य रूपों में उपयोग करने से प्राप्त हो सकने वाले संतोष से तुलना करनी है। उद्योग की आधुनिक प्रणाली में कुछ उद्देश्यों के लिए हमें उत्पादन की सम्पूर्ण क्रिया को ही एक इकाई के रूप मे मानने में इसी प्रकार की किन्तु इससे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

हम जिन समीकरणों की प्रणालियों पर विचार करते आ रहे हैं उनके क्षेत्र को बढ़ाना तथा उनके विवरणों में तब तक वृद्धि करना सम्भव है जब तक इनमें वितरण की समस्या के सम्पूर्ण माँग पक्ष को ही आत्मसात न कर लिया जाय। किन्तु किसी निश्चित प्रकार के कारणों के प्रभाव के ढंग को गणितीय भाषा में स्पष्ट करना पर्याप्त ही नहीं, पूर्णरूप में सही भी होगा, क्योंकि इसकी सीमाएँ स्पष्ट रूप में परिभाषित हैं तथापि उसका उद्देश्य समीकरणों की एक श्रृंखला में वास्तविक जीवन की किसी जटिल समस्या के पूरे या किसी उल्लेखनीय भाग को समझने का प्रयास करना है। क्योंकि अनेक महत्व-पूर्ण विचारों, विशेषकर समय के अनेक प्रभावों से सम्बन्धित विचारों को गणितीय व्यंजक के रूप में सरलतापूर्वक व्यक्त नहीं किया जा सकता: इनका या तो बिलकुल ही उपयोग नहीं किया जाय या इतनी काट-छाँट कर उपयोग किया जाय कि ये किसी

आभूषित कला के रूप में बनाये गये पक्षियों एवं पशुओं के सदृश हो जाये। अतः आर्थिक शक्तियों के प्रभाव पर अनुचित अनुपात में जोर देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और उन बातों पर सबसे अधिक जोर दिया जा रहा है जिन्हें विश्लेषणात्मक प्रणालियों द्वारा सर्वाधिक सरलतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि वास्तविक जीवन की समस्याओं के गणितीय विश्लेषण में ही नहीं अपितु इनके प्रत्येक प्रकार के विश्लेषण में यह डर लगा रहता है। यह ऐसा डर है जिसे प्रत्येक अर्थशास्त्री को हर क्षण ध्यान में रखना चाहिए। किन्तु इसका बिलकुल भी प्रयोग न करने का अभिप्राय वैज्ञानिक प्रगति के मुख्य साधनों का त्याग करना होगा: और विशेष रूप से गणित के पाठकों के लिए लिखे गये विवेचनों में व्यापक सामान्यीकरणों की खोज में अत्यधिक साहस का परिचय देना सदैव उचित है

इस प्रकार के विवेचनों में दृष्टान्त के लिए ह को किसी समाज को आर्थिक कारणों से प्रदान होने वाला कुल संतोष तथा म को इनसे होने वाला कुल असंतोष (प्रयत्न त्याग इत्यादि) माना जा सकता है। इन कारणों के प्रभाव के विचार को इस सिद्धान्त के अनेक रूपों में न्यूनाधिक मात्रा में चेतन रूप में की गयी कल्पनाओं के आधार पर सरल रूप देने से समाज के निवल योग में अधिकतम संतोष की प्राप्ति होती है। (पृष्ठ 458–464 देखिए)। या अन्य शब्दों में ह – म को सम्पूर्ण समाज के लिए अधिकतम बनाने की निरन्तर प्रवृत्ति पायी जाती है। इस योजना के आधार पर प्राप्त अवकलन समीकरणों का जोकि उसी वर्ग के अवकलन समीकरण है जिन पर हम विचार करते आ रहे हैं, यह अभिप्राय लगाया जायेगा कि अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के तुष्टिगुणों की विभिन्न प्रकार की तुष्टिहीनता से, विभिन्न प्रकार के संतोष की विभिन्न प्रकार की वास्तविक लागत से, संतुलन द्वारा मूल्य नियन्त्रित होता है। ऐसे विवेचनों का अपना महत्व है: किन्तु वर्तमान ग्रन्थ के अनुरूप ग्रन्थ में इनका कोई महत्व नहीं है क्योंकि इसमें गणित का विश्लेषण एवं तर्क की उन प्रणालियों को संक्षिप्त तथा अधिक यथार्थ भाषा में व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया गया है जिन्हें साधारण लोग दैनिक जीवन में न्यूनाधिक मात्रा में चेतन रूप में प्रयोग करते हैं, और इसलिए इन विवेचनों का कोई अधिक महत्व नहीं है।

यह स्वीकार करना होगा कि इन विवेचनों का भाग 3 में खास वस्तुओं के कुल तुष्टिगुणों पर प्रयोग की गयी विश्लेषण की प्रणाली से कुछ बातों में ऐक्य है। इन दो दशाओं में मुख्यतया केवल कोटि में अन्तर पाया जाता है। किन्तु यह कोटि इतनी बड़ी है कि इसे वस्तुतः एक प्रकार का अन्तर माना जा सकता है। क्योंकि पूर्वोत्तर दशा में हम प्रत्येक वस्तु पर किसी विशेष बाजार के संदर्भ में विचार करते हैं, और हम विचाराधीन समय तथा स्थान पर उपभोक्ताओं की परिस्थितियों को सतर्कतापूर्वक ध्यान में रखते हैं। इस प्रकार हम वित्तीय नीति पर विचार करते समय संभवतः अपेक्षाकृत अधिक सावधानी से वित्त मंत्रियों तथा आम व्यक्तियों का अनुकरण करते हैं। हम यह देखते हैं कि कुछ वस्तुओं का मुख्यतया धनी व्यक्तियों द्वारा ही उपभोग किया जा सकता है और परिणामस्वरूप इनका कुल वास्तविक तुष्टिगुण इन तुष्टियों के द्रव्यिक माप की अपेक्षा कम होता है। किन्तु हम सम्पूर्ण जगत के साथ-साथ यह

कल्पना करते हैं कि प्रायः तथा इसके विपरीत विशेष कारणों के अभाव में, मुख्यतया अमीर लोगो द्वारा उपभोग की जाने वाली दो वस्तुओं के कुल वास्तविक तुष्टिगुणों का आपस मे वही सम्बन्ध रहता है जो कि उनके द्रव्यिक मापों के बीच रहता है: और उन वस्तुओं के सम्बन्ध मे यही बात सत्य है जिनका धनी तथा मध्यम श्रेणी तथा निर्धन लोगों के बीच इन्ही अनुपातो मे विभाजन होता है। इस प्रकार के अनुमान केवल स्थूल निकटतम अनुमान है, किन्तु हमारे वाक्यांशों की निश्चितता के कारण प्रत्येक विशेष कठिनाई तथा प्रत्येक सम्भावित त्रुटि का विशेष महत्व दिखायी देता है: हम किसी ऐसी नयी मान्यताओं को नही अपनाते जो साधारण जीवन में गुप्त रूप मे न अपनायी गयी हो, जबकि हम किसी ऐसे कार्य का बीड़ा नही उठाते जिस पर व्यावहारिक जीवन मे स्थूल रूप मे विजय प्राप्त न कर ली गयी हो। किन्तु इस पर भी जिसका अच्छे कार्य के लिए ही उपयोग किया गया हो: हम कोई नयी मान्यताएँ नही अपनाते और हम उन मान्यताओं को स्पष्ट रूप मे प्रकाश मे लाते है जिन्हें अपनाना अपरिहार्य है। किन्तु यद्यपि कुछ विशेष वस्तुओ पर विशेष बाजारो के संदर्भ मे ऐसा करना संभव है तथापि असंख्य आर्थिक तत्वो के विषय मे जो कि अधिकतम संतुष्टि के सिद्धान्त के जाल मे फँस जाते हैं, ऐसा करना संभव नही दिखायी देता। संभरण की शक्तियाँ विशेष रूप से विषम तथा जटिल हैं: इनमे विविध प्रकार के औद्योगिक स्तरों मे कार्य करने वाले लोगों के सीमित किस्म के, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, प्रयत्न एवं त्याग निहित हैं: और यदि इस सिद्धान्त की ठोस व्याख्या देने मे अन्य कोई बाधाएँ उत्पन्न नही होती तो इससे इस गुप्त मान्यता मे घातक कठिनाई उत्पन्न होगी कि बच्चों के पालन-पोषण की लागत तथा उन्हे अपने कार्य के लिए प्रशिक्षित करने की लागत को उसी प्रकार मापा जा सकता है जिस प्रकार किसी मशीन को तैयार करने की लागत को मापा जा सकता है।

इस विशेष दृष्टान्त मे दिये गये तर्कों के अनुरूप तर्कों के कारण मूलपाठ में विवेचन किये गये विषयों की जटिलता बढ़ने के साथ-साथ गणितीय टिप्पणियों के प्रयोग का क्षेत्र कम होता जायेगा। आगे दी गयी कुछ टिप्पणियाँ एकाधिकारों के विषय मे है जिनमे से कुछ पहलुओं पर प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषणात्मक विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किन्तु अधिकांश शेष भाग संयुक्त तथा मिश्रित माँग एवं संभरण के दृष्टान्तों से ही सम्बन्धित हैं जिनकी इस टिप्पणी के सार से बहुत कुछ समरूपता है: जब कि टिप्पणी 21 मे वितरण तथा विनिमय की समास्याओ के सामान्य सर्वेक्षण पर (समय के तत्त्व के सदर्भ के बिना) प्रकाश डाला गया है, किन्तु इसमे केवल यह निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है कि इसमे प्रयुक्त गणितीय दृष्टान्त इस प्रकार के समीकरणो की ओर संकेत करते हैं जो इनमे अज्ञात रूप से प्रविष्ट होने वाले समीकरणो से संख्या में न तो अधिक और न कम है।

टिप्पणी 14 पुनः (पृष्ठ 376) इस अध्याय (भाग 5, अध्याय 6) में दिये आरेखों मे सभी सम्भरण वक्र धनात्मक रूप में झुके हुए रहते हैं, और इनके गणितीय रूपान्तरों मे हम उत्पादन के सीमान्त सर्चो को जिस निश्चितता से अधारित करते हैं उसका वास्तविक जीवन में कोई अस्तित्व ही नही है: हम बड़े पैमाने पर उत्पादन

करने की आन्तरिक तथा बाह्य किफायतें प्राप्त करने वाले किसी प्रतिनिधि व्यवसाय के विकास में लगने वाले समय को ध्यान में नहीं रखेंगे, और भाग 5, अध्याय 12 में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि के नियम से सम्बन्धित सभी कठिनाइयों को भी ध्यान में नहीं रखेंगे। अन्य कोई मार्ग अपनाने से हमारे सामने ऐसी गणितीय समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी जिनका सम्भवतः कुछ न कुछ तो उपयोग है किन्तु जो इस प्रकार के ग्रन्थ के लिए अनुपयुक्त होंगी। अतः इस ध्येय के बाद आने वाली टिप्पणियों में दिये गये विवेचनों को इनका पूर्ण अध्ययन न मानकर इनकी सामान्य रूपरेखा मानना चाहिए।

किसी वस्तु अ के उत्पादन के कारकों को आ1, आ2 इत्यादि मान लें और उनके क $=\phi_1$ (ग), क $=\phi_2$ (ग) इत्यादि सम्भरण समीकरण मान लें। अब यह मान लें कि अ वस्तु की ग मात्राओं के उत्पादन के लिए आवश्यक मात्राएँ क्रमशः मा$_1$ ग, मा$_2$ ग,.... है जिसमें मा$_1$, मा$_2$ अचर न होकर ग के फल हैं। ऐसी स्थिति में अ का सम्भरण समीकरण बराबर होगा क $=\theta$ (ग) $=$ मा$_1$ θ_1 (मा$_1$ ग) $+$मा$_2$ ϕ_2 (मा$_2$ ग)$+$........$=\Sigma$ { माϕ (मा ग) }

यदि क$=F$ (ग) तैयार माल का समीकरण हो तो आ$_{रा}$ का जो रावाँ कारक है व्युत्पन्न माँग का समीकरण

$$क=F\ (ग) - \{\phi\ (ग) - मा_{रा}\ \phi_{रा}\ मा_{रा}\ ग)\},$$

किन्तु इस समीकरण में क किसी कारक की एक इकाई की कीमत न होकर मा इकाइयों की कीमत है, और निश्चित इकाइयों के रूप में किसी समीकरण को व्यक्त करने के लिए η को इकाई की कीमत मान लें तथा $\xi =$ मा$_{रा}$ ग मान लें, तो η

$= \frac{1}{मा_{रा}}$ क और समीकरण का रूप इस प्रकार हो जाता है: $\eta - f(\xi) = \frac{1}{मा_{रा}}$

$$\left[\ F\left(\frac{1}{मा_{रा}}\ \xi\right) - \left\{\left(\phi\frac{1}{मा_{रा}}\ \xi\right) मा_{रा}\ मा_{रा}\theta_{रा}\ (\xi)\right\}\ \right]।$$

यदि मा$_{रा,}$ ग का फलन हो जो$=\psi_{रा}$ (ग) तो ग की $\xi=$ग$\psi_{रा}$ (ग) समीकरण द्वारा ξ के रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए जिससे म$_{रा}$ को$\times_{रा}(\xi)$ के रूप में लिखा जा सकता है। इसे स्थानापन्न कर हम y को ξ के फल के रूप में व्यक्त कर सकते हैं। आ रा का सम्भरण समीकरण केवल $\eta = \phi$ रा (ξ) होगा।

टिप्पणी 15. (पृष्ठ 377)। यदि चाकुओं का माँग समीकरण

क$=$F (ग).... (1) तथा सम्भरण समीकरण क$=\phi$ (ग)...... (2) हत्यों का सम्भरण समीकरण क$=\phi_1$ (ग) ..... (3) फलकों का सम्भरण समीकरण क$=\phi_2$ (ग)...... (4) हों तो हत्थों का माँग समीकरण क$=f_1$ (ग)$=$F (ग)$-\phi_2$ (ग)...... (5) होगा। समीकरण (5) की लोच का माप

$$-\left\{\frac{गf_1'\ (ग)}{f_1\ \ (ग)}\right\}^{-1}$$ है, अर्थात्

$$-\left\{\frac{गF'\ (ग) - ग\phi_2'\ (ग)}{f_1\ (ग)}\right\}^{-1}$$,अर्थात्

$$\left\{-\frac{गF'\ (ग)}{F\ (ग)}\ \frac{F\ (ग)}{f_1\ (ग)} + \frac{ग\phi_2'\ (ग)}{f_1\ (ग)}\right\}^{-1}$$ है।

निम्न शर्तें जितनी अधिक पूर्णता से पूरी होंगी यह उतना ही कम होगा: (i) $\frac{ग F'(ग)}{F(ग)}$, जो कि निश्चय ही धनात्मक होगा बड़ा हो, अर्थात् चाकुओं के लिए माँग की लोच थोड़ी हो, (2) ϕ_2' (ग) धनात्मक तथा बड़ा हो, अर्थात् सम्भरण की मात्रा मे वृद्धि होते ही फलकों की सम्भरण कीमत मे तीव्रता से वृद्धि और इसमे कमी होते ही इनकी सम्भरण कीमत में तीव्रता से कमी होनी चाहिए तथा (3) $\frac{F(ग)}{f_1(ग)}$ बड़ा होना चाहिए, अर्थात् हत्थों की कीमत चाकुओं की कीमत का केवल थोड़ा ही अंश होना चाहिए।

जब उत्पादन के कारक निश्चित न हों, किन्तु पूर्वगामी टिप्पणी की भाँति परिवर्तित हों तो इसी प्रकार की, किन्तु अधिक जटिल खोज मे पर्याप्त रूप में समान परिणाम निकलते है।

टिप्पणी 16. (पृष्ठ 377)। मान लीजिए कि किसी किस्म की एक गैलन यव-सुरा (ale) बनाने में मा बुशल हॉप का प्रयोग किया जाता है जिसमे से साम्य की स्थिति में ग. गैलन का=F (ग) कीमत पर बेचे जाते हैं। यदि मा बदल कर मा+ Δमा हो जाता है, और परिणामस्वरूप यदि अभी भी विक्रय के लिए गा गैलन रखे जायें तो उनके लिए का+Δका कीमत पर ग्राहक मिलेंगे। तब $\frac{\Delta का'}{\Delta मा}$ से *हॉप की सीमान्त माँग कीमत व्यक्त होगी: यदि यह उनकी सम्भरण कीमत से बड़ी* हो तो शराब बनाने वाले के हित मे यह होगा कि वह यवसुरा में अधिक हॉप डाले। अथवा अधिक सामान्य रूप में यह कह सकते हैं कि यदि क=F (ग, मा) क=ϕ (ग, मा) बियर (जौ की शराब) के क्रमशः माँग एवं सम्भरण समीकरण हैं जिसमें ग गैलनो की संख्या तथा मा प्रत्येक गैलन मे हॉप बुशलों की संख्या को व्यक्त करती है। तब F (ग,मा)—ϕ (ग, मा)=सम्भरण कीमत से माँग कीमत का आधिक्य। साम्य की स्थिति में निश्चय ही यह शून्य के बराबर है: किन्तु यदि मा में परिवर्तन कर इसे धनात्मक राशि बनायी जा सकती हो तो परिवर्तन हो सकता है: अतः (यह कल्पना करते हुए कि बियर बनाने के खर्चों में कोई अनुमाप्य (perceptible) परिवर्तन नहीं हुआ है और जो भी परिवर्तन हुए हैं वे केवल हॉप की मात्रा बढ़ाने के ही फलस्वरूप हैं। $\frac{dF}{d\,मा}=\frac{d\phi}{d\,मा}$: पहला सीमान्त माँग कीमत को, तथा दूसरा हॉप की सीमान्त सम्भरण कीमत को व्यक्त करता है और अतः ये दोनों बराबर हैं।

इस प्रणाली को उन दशाओं पर लागू किया जा सकता है जिसमें उत्पादन के दो या अधिक कारकों के साथ-साथ परिवर्तन हो रहे हों।

टिप्पणी 17. (पृष्ठ 378)। मान ले कि कोई चीज, चाहे यह तैयार वस्तु हो अथवा उत्पादन का कारक दो उपयोगों में इस प्रकार से विभाजित की जाती है कि कि कुल ग मात्रा $ग_1$ भाग को पहले उपयोग मे तथा $ग_2$ मात्रा को दूसरे उपयोग

में प्रयोग किया जाता है। अब यह मान लें कि क=ϕ (ग) कुल सम्भरण समीकरण, क=f_1 (ग$_1$) तथा क f_2 (ग$_2$) इसके पहले तथा दूसरे उपयोगों के माँग समीकरण हैं तब साम्य की स्थिति में, ग, ग$_1$ तथा ग$_2$ तीनों अज्ञात राशियों को तीन समीकरणों f_1 (ग$_1$)=f_2 (ग$_2$)=ϕ (ग) ाट सकता है। इसमें ग$_1$+ग$_2$=ग।

इसके बाद उस चीज के पहले उपयोग में माँग एवं सम्भरण के सम्बन्धों को पृथक से पता लगाना है। इसमे यह कल्पना की गयी है कि इसके पहले उपयोग में चाहे कुछ भी व्यवस्था रही हो दूसरे उपयोग के लिए इसकी माँग एवं सम्भरण में साम्य है, अर्थात् दूसरे उपयोग के लिए इसकी माँग कीमत कुल उत्पादित मात्रा की सम्भरण कीमत के बराबर है। अर्थात् सदैव f_2 (ग$_2$)=ϕ (ग$_1$+ग$_2$)। इस समीकरण से हम ग$_1$ के रूप में ग$_2$ को निर्धारित कर सकते हैं, और अतः ग को ग$_1$ के रूप मे निर्धारित कर सकते हैं। अतः हम $\varnothing$ (ग)=ψ (ग$_1$) लिख सकते हैं। इस प्रकार पहले उपयोग में उस चीज का सम्भरण समीकरण क=ψ (ग$_1$) हो जाता है। और पहले से ज्ञात समीकरण क=f_1 (ग$_1$) के साथ इसके आवश्यक सम्बन्धों का पता लग जाता है।

टिप्पणी 18. (पृष्ठ 38)। मान लीजिए कि आ$_1$, आ$_2$ संयुक्त उत्पाद हैं, जिनमें से मा$_1$ ग, मा$_2$ ग, संयुक्त उत्पाद की प्रक्रिया की ग इकाइयों के फलस्वरूप अनेक प्रकार से उत्पादित मात्राएँ हैं। और इनके लिए सम्भरण समीकरण क=$\varnothing$ (ग) है। यदि क=f_1 (ग), क=f_2 (ग) क्रमशः इनके माँग समीकरण हैं तो साम्य की स्थिति मे मा$_1$ f_1 (मा$_1$ ग)+मा$_2$ f_2 (मा$_2$ ग)+.....$\varnothing$ ग। यदि गा इस समीकरण से निर्धारित ग का मूल्य है तो f_1 (मा$_1$ गा) f_2 (मा$_2$ गा) इत्यादि विभिन्न सयुक्त उत्पाद की वस्तुओं की सम्भरण कीमतें हैं। निस्सन्देह मा$_1$, मा$_2$ आवश्यक रूप से गा के रूप मे व्यक्त किये गये हैं।

टिप्पणी 19. (पृष्ठ 38)। आवश्यक परिवर्तनपूर्वक यह विषय टिप्पणी 16 में विवेचन किये गये विषय के अनुरूप है। यदि साम्य की स्थिति में गा बैल बिक्री के लिए रखे जायें और ये का=$\varnothing$ (गा) कीमत पर बेचे जायें और प्रत्येक बैल से मा इकाइयों के बराबर मांस मिले: और यदि पशु पालने वाले यह देखें कि बैलों की नस्ल तथा उनके भोजन मे सुधार करने से वे उनके मास मे पशु चर्म तथा अन्य संयुक्त उत्पादों के संतुलन मे कोई परिवर्तन न होने पर Δ मा इकाइयों के बराबर वृद्धि करते हैं, और इस कार्य में Δ का अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है, तो $\frac{\Delta \text{का}}{\Delta \text{मा}}$ से बैल के मास की सीमान्त सम्भरण कीमत व्यक्त होगी: यदि यह कीमत विक्रय कीमत से कम हो तो यह पशु पालने वालों के हित में होगा कि वे इसमें परिवर्तन करें।

टिप्पणी 20. (पृष्ठ 383)। मान लें कि आ$_1$ आ$_2$..... वे चीजें हैं जो बिलकुल समान फलन की पूर्ति करती हैं। यह भी मान लें कि उनकी इकाइयों का इस प्रकार चयन किया जाता है कि उनमें से कोई एक इकाई किसी अन्य इकाई के बराबर है, और उनके सम्भरण समीकरण इस प्रकार है: क$_1$=$\varnothing_1$ (ग$_1$), क$_2$=$\varnothing_2$ (ग$_2$)।

इन समीकरणों में यदि चर राशि में परिवर्तन किया जाय, और उन्हें इस प्रकार लिखा जाय कि $ग_1 = \phi_1$ (क), $ग_2 = \phi_2 (क_2)$ अब यह मान लें कि उनमे से सभी जिस सेवा के लिए उपयुक्त हैं उनका माँग समीकरण क $= f$ (ग) है। तब साम्य में ग और क को जिन समीकणों से निर्धारित किया जाता है वे इस प्रकार हैं: क $= f$ (ग), ग $= ग_1 + ग_2 + \ldots$, $क_1 = क_2 = \ldots =$ क।

(इन समीकरणों मे $ग_1$ $ग_2$ में से किसी भी मात्रा का मान ऋणात्मक नहीं होना चाहिए। जब $क_1$ घटकर किसी खास स्तर के बराबर हो तो $ग_1$ शून्य के बराबर हो जाता है, और इनसे न्यूनतर मानों में $ग_1$ का मान सदैव शून्य ही रहेगा। यह कभी भी ऋणात्मक नहीं होगा।) जैसा कि मूलपाठ मे देखा गया है, यह सदैव मान लेना चाहिए कि सभी सम्भरण समीकरणों में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू होता होता है, अर्थात् यह कि ϕ'_1 (ग), ϕ'_2 (ग),..... सदैव धनात्मक होते हैं।

टिप्पणी 21. (पृष्ठ 385) । हम अब संयुक्त माँग, मिश्रित माँग, संयुक्त सम्भरण तथा मिश्रित सम्भरण की सम्पूर्ण समस्याओं का विहगावलोकन करेंगे जिससे कि हम यह निश्चित कर सकें कि हम रे गूढ़ सिद्धान्त मे ठीक उतने ही समीकरण बन सकते हैं जितनी कि इसमे अज्ञात राशियाँ हैं।

संयुक्त माँग की समस्या मे हम यह मान लेते हैं कि $अ_1$, $अ_2$ $अ_{ना}$ वस्तुएँ हैं। $अ_1$ में $अ_1$, $अ_2$ मे $आ_2$ तथा इसी भाँति उत्पादन के कारक लगे हैं। और उत्पादन के इन कारकों का योग $अ_1 + अ_1 + अ_3 + आ_{ना} =$ मा है।

सर्वप्रथम यह मान लें कि सभी कारक अलग-अलग हैं जिससे इनके लिए मिश्रित माँग नहीं होती। प्रत्येक कारक की उत्पादन प्रक्रिया भिन्न होती है जिससे वस्तुओं का संयुक्त उत्पादन नहीं होता। अंत में, कोई भी दो कारकों को एक ही उपयोग में नहीं लगाया जाता जिससे इनका सम्भरण भी मिश्रित नहीं होता। ऐसी स्थिति में 2 ना +2 मा अज्ञात राशियाँ होगी जो कि ना वस्तुओं तथा मा कारकों की मात्राएँ तथा कीमतें होगी। इन्हें निर्धारित करने के लिए हमें 2 मा +2 ना समीकरण चाहिए जो इस प्रकार होंगे:—(1) न माँग समीकरण, जिनमें से प्रत्येक किसी वस्तु की कीमत तथा मात्रा में सम्बन्ध स्थापित करता है, (2) ना समीकरण, जिनमें से प्रत्येक किसी वस्तु की किसी मात्रा की सम्भरण कीमत तथा इसके उत्पादन के कारकों की तदनुरूप मात्राओं की कुल कीमत में संतुलन स्थापित करता है, (3) मा सम्भरण समीकरण, जिनमे से प्रत्येक उत्पादन के कारक की कीमत तथा इसकी मात्रा में संतुलन स्थापित करता है, तथा अन्त मे (4) मा समीकरण जिनमें से प्रत्येक किसी वस्तु की किसी मात्रा के उत्पादन में लगे कारक की मात्रा को प्रदर्शित करता है।

इसके पश्चात्, हम अब न केवल संयुक्त माँग का अपितु मिश्रित माँग को भी ध्यान मे रखेंगे। मान लें कि उत्पादन के $घ_1$ कारकों में एक ही प्रकार की चीज, जैसे कि बढ़इयों की किसी निश्चित कार्य-कुशलता का कार्य सम्मिलित है। अन्य शब्दों मे बढ़इयों का कार्य $अ_1$, $अ_2$, $अ_{न}$ वस्तुओं के उत्पादन के $घ_1$ कारकों के बराबर है। तब चूँकि बढ़इयो के कार्य के लिए एक ही कीमत दी जाती है चाहे इसका किसी भी वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किया जाय, अतः इनमे से प्रत्येक कारक की केवल एक ही कीमत

होगी, और अज्ञात राशियों की संख्या में $घ_1-1$ कमी हो जायेगी। सम्भरण समीकरणों मे भी $घ_1-1$ कमी होगी : और अन्य विषयो में भी इसी प्रकार होगी।

इसके बाद हम संयुक्त सम्भरण को भी ध्यान में रखेंगे। मान लें कि वस्तुओं के उत्पादन मे लगी हुई चीजों की $घ_1$ मात्रा एक ही प्रक्रिया का संयुक्त-उत्पाद है। तब अज्ञात राशियो की संख्या पूर्ववत् रहेगी, किन्तु सम्भरण समीकरणो की संख्या $घ_1-1$ कम हो जायेगी : नये श्रेणी के $(घ_1-1)$ समीकरणों द्वारा, जो इन संयुक्त उत्पादों की मात्राओं में सम्बन्ध स्थापित करते हैं, यह कमी दूर की जा सकती है : और आगे भी इसी प्रकार।

अन्त में यह मान लें कि उत्पादन मे प्रयोग की गयी किसी एक वस्तु का सम्भरण मिश्रित है और इसकी $थ_1$ प्रतिद्वन्द्वी स्रोतों से पूर्ति की जाती है : तब इन प्रतिद्वन्द्वियों में से पहले के स्रोतों के लिए पुराने सम्भरण समीकरणों को पूर्वनिर्दिष्ट करने में $2(थ_1-1)$ अतिरिक्त अज्ञात राशियां होंगी, जो शष $(थ_1-1)$ प्रतिद्वन्द्वियों की कीमतों तथा मात्राओं को व्यक्त करती हैं। इनका प्रतिद्वन्द्वी स्रोतों के लिए $(थ_1-1)$ सम्भरण समीकरणों द्वारा तथा $थ_1$ प्रतिद्वन्द्वियो की कीमतों के बीच $(थ_1-1)$ समीकरणों द्वारा मान जाना जा सकता है।

इस प्रकार यह समस्या चाहे कितनी ही जटिल रूप मे क्यों न ले लें, इसे सैद्धान्तिक रूप से निर्धारित किया जा सकता है, क्योंकि अज्ञात राशियों की संख्या सदैव उतनी ही होती है जितन कि समीकरण बनाये जा सकते हैं।

टिप्पणी 22. (पृष्ठ 468)। यदि $क = f_1(ग)$, $क = f_2(ग)$, क्रमशः मांग एवं सम्भरण वक्रो के समीकरण हों तो उत्पादन की जिस मात्रा से अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त हो सकती है वह $\{ग f_1(ग) - गf_2(ग)\}$ को अधिकतम करने से जानी जा सकती है, अर्थात् यह समीकरण $\frac{d}{dग}\left\{ गf_1(ग) - गf_2(ग) \right\} = 0$ का मूल या मूलो मे से एक मूल है।

यहाँ पर सम्भरण समीकरण को पहले की भांति $\varnothing(ग)$ द्वारा निरूपित न कर $f_2(ग)$ द्वारा निरूपित किया जाता है। इसका आंशिक कारण इस तथ्य पर जोर देना है कि यहाँ पर सम्भरण कीमत का बिलकुल वही अर्थ नही है जो कि पिछली टिप्पणियो मे था, और आंशिक कारण वक्रो पर नम्बर डालने की उस प्रणाली को अपनाना है जो इस भ्रम को दूर करने के लिए आवश्यक है कि इनकी संख्या में वृद्धि की जा रही है।

टिप्पणी 23. (पृष्ठ 469)। यदि किसी कर के लगाये जाने से कुल $F(ग)$ धनराशि प्राप्त की जा सकती है तो ग के उस मान का पता लगान के लिए जिससे अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त हो $\frac{d}{dग}\left\{ गf_1(ग) - गf_2(ग) - F(ग) \right\} = 0$ होगा। यह स्पष्ट है कि यदि $F(ग)$ लाइसेंस शुल्क की भांति या तो स्थिर हो, या आयकर की भांति $गf_1(ग) - गf_2(ग)$ के अनुसार परिवर्तित हो तो इस समीकरण के वही मूल होंगे जो कि $F(ग)$ के शून्य होने पर होंगे।

इन समस्याओं पर ज्यामितिक रूप से विचार करने पर हम यह दखेंगे कि यदि किसी एकाधिकार पर निश्चित मात्रा में इतना भार डाला जाय कि एकाधिकार वक्र ख ग से पर्याप्त रूप से नीची हो जाय और रेखाचित्र 36 में नये वक्र में ल बिन्दु के लम्बवत् नीचे कोई बिन्दु ठी हो तो ठी पर नयी वक्र उन समानकोणीय अतिपरवलयों की श्रृंखला में से एक को छुयेगी जो एक अनन्त स्पर्शी के लिए क ख को, तथा दूसरे के लिए ख ग को, नीचे की ओर बढ़ाने से खीचे जाते हैं। इन वक्रों को स्थिर हानि वक्र कहा जा सकता है।

पुनः एकाधिकार आय के अनुपात में लगने वाले कर से जो उस आय के मा गुने (मा 1 से कम है) के बराबर है, ठ ठि के बदले में एक ऐसा वक्र प्रतिस्थापित होगा जिसकी प्रत्येक कोटि (ordinate) (1—मा)×ठ ठि पर तदनुरूप बिन्दु की अर्थात् उस बिन्दु की कोटि के बराबर होगी जिसका वही सूच्याकार भुज (obscissa) हो। ठ ठि की पुरानी तथा नयी स्थितियों में तदनुरूप बिन्दुओं पर स्पर्श ख ग को उसी बिन्दु पर काटेंगी, जैसा कि प्रक्षेप प्रणाली से स्पष्ट है। किन्तु समानकोणीय अतिपरवलयों को काटने के लिए किसी अनन्तस्पर्शी के समानान्तर कोई रेखा खींची जाय और इसके कटान-बिन्दुओं पर स्पर्श रेखाएँ खीची जायें, तो वे सभी दूसरे अनन्त स्पर्शी को उसी बिन्दु पर काटेंगी। अतः यदि ठ ठि की नयी स्थिति पर ठी$_3$ के अनुरूप कोई बिन्दु ठा$_3$ हो, और यदि त को वह बिन्दु मानें जिस पर अतिपरवलय तथा ठ ठि, दोनों पर, एक ही स्पर्श रेखा ख ग को काटे तो त ठी$_3$ उस अति परवलय पर स्पर्श रेखा होगी जो ठी$_3$ से होकर निकलती है, अर्थात् नयी वक्र पर ठी$_3$ अधिकतम आय का बिन्दु है।

इस टिप्पणी की ज्यामितिक तथा विश्लेषणात्मक प्रणालियों को उन दशाओं पर लागू किया जा सकता है जिन पर मूल पाठ के अनुभाग 4 के पिछले भाग में एकाधिकार के उत्पाद पर लगे कर के सम्बन्ध मे विवेचन किया गया है।

टिप्पणी 23. पुनः (पृष्ठ 476)। न्यूटन की प्रणाली तथा समानकोणीय अतिपरवलय के सुप्रसिद्ध गुणधर्म से इन परिणामों को सरल ज्यामितिक उपपत्तियों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। विश्लेषणात्मक रूप मे भी इन्हे सिद्ध किया जा सकता है। *पहले की भाँति* क$=f_1$ (ग) *को माँग वक्र का,* क$=f_2$ (ग) *को सम्भरण वक्र* का, और क$=f_3$ ग) को एकाधिकार आय का समीकरण मान लें, जहाँ f_3 (ग)$=f_1$ (ग)$-f_2$ (ग) जो कि उपभोक्ता अधिशेष वक्र क$=f_4$ (ग) का समीकरण है, जिसमे f_4 (ग)$=\frac{1}{\text{ग}}\int_0^{\text{ग}} f_1$ (आ) d मा$-f_1$ (ग)। कुल सुलाभ (benefit) वक्र का समीकरण क$=f_5\rightarrow$(ग) है, जिसमें

$$f_5 \text{ (ग)}=f_3 \text{ (ग)}+f_4 \text{ (ग)} = \frac{1}{\text{ग}}\int_0^{\text{ग}} f_1 \text{ (आ) d आ}-f_2 \text{ (ग)}।$$

इस परिणाण पर सीधे भी पहुँचा जा सकता है। समझौता सुलाभ वक्र का समीकरण क$=f_6$ (ग) है, जहां यह मानते हुए कि एकाधिकारी उपभोक्ता

अधिशेष को उसके वास्तविक मूल्य के ना गुने के बराबर आँकता है,
f_6 (ग)$=f_3$ (ग)$+$ना f_4 (ग)।

रेखाचित्र (36) में ख ल, अर्थात् उस मात्रा का जिसकी बिक्री से अधिकतम एकाधिकार आय प्राप्त होगी $\frac{d}{d\text{ग}}\{$ग f_3'(ग)$\}=0$:, अर्थात् f_1 (ग)$-f_2$ (ग)$=$ग$\{f_2'$ (ग)$-f_1'$ (ग)$\}$ समीकरण द्वारा पता लगाया जा सकता है।

इस समीकरण का बायाँ भाग आवश्यक रूप से घनात्मक होगा, और अतः दायाँ भाग भी जो कि यह प्रदर्शित करता है कि यदि सम्भरण तथा माँग वक्रों की क्रमशः ढ$_2$ तथा ढ$_1$ बिन्दुओं पर काटने के लिए ल ढ$_3$ का उत्पादन किया जाय तो ढ$_2$ पर सम्भरण वक्र (ऋणात्मक झुकी होने पर) ढ$_1$ बिन्दु पर माँग वक्र की अपेक्षा शीर्षवृत्त पर अधिक बड़ा कोण बनायेगी। ख व अर्थात् बिक्री की उस मात्रा का जिससे कुल हित अधिकतम होगा, इस समीकरण द्वारा पता लगया जा सकता है : $\frac{d}{d\text{ग}}$ $\{$ग f_5 (ग)$\}=0$; अर्थात् f_1 (ग)$-f_2$(ग)$-$गf'_2 (ग)$=0$ ख क, अर्थात् बिक्री की उस मात्रा का जिससे अधिकतम उभय हित होगा इस समीकरण द्वारा पता लगया जा सकता है $\frac{d}{d\text{ग}}\left\{\frac{\text{ग}}{\text{ग}}f_6\right.$ (ग)$=0$ अर्थात् $\frac{d}{d\text{ग}}\Big\{$(1$-$ना) ग f_1(ग) $-$ग f_2 (ग)$+$ना$\int_0^{\text{ग}} f_1$ (आ) d आ $\Big\}=0$ अर्थात्

(1$-$ना) ग f'_1(ग) $+f_1$ (ग)$-f_2$ (ग)$-$ग f'_2 (ग)$=0$

यदि ख ल$=$घा तो जिस शर्त पर ख क, ख न से बड़ी होगी वह यह है कि $\frac{d}{d\text{ग}}\{$ग f_6 (ग)$\}$ उस समय धनात्मक होना चाहिए जब ग के स्थान पर चा लिखा जाय। अर्थात्, चूँकि जब ग$=$घा हो तो $\frac{d}{d\text{ग}}\{$ग f_3 (ग)$\}=0$ होने पर $\frac{d}{d\text{ग}}$ $\{$ग f_4 (ग)$\}$ उस समय घनात्मक होगा जब ग$=$चा हो, अर्थात् f'_1 (चा) ऋणात्मक हो। किन्तु चा का चाहे कुछ भी मान हो यह शर्त अवश्य ही पूरी हो जाती है। भाग 5 अध्याय 14, अनुभाग 7 के अन्त मे दिये गये पहले परिणाम की इससे पुष्टि हो जाती है। और दूसरे की उपपत्ति भी इसी से मिलती-जुलती है। (इन परिणामों को व्यक्त करने वाले शब्दो के चयन तथा इनकी उपपत्तियों में अव्यक्त रूप में यह मान लिया जाता है कि अधिकतम एकाधिकार आय का केवल एक ही बिन्दु होता है।)

मूलपाठ मे दिये गये परिणामो के अतिरिक्त एक और परिणाम भी निकाला जा सकता है। यदि हम ख ह$=$ आ मानें तो ख ह से ख क के बड़ा होने के लिए यह शर्त होगी कि $\frac{d}{d\text{ग}}\{$ना f_6 (ग)$\}$ उस समय घनात्मक होना चाहिए जब ग के स्थान पर आ लिखा जाय : अर्थात्, चूँकि f_1 (आ)$=f_2$ (आ), (1$-$ना) f'_1(आ)$-f'_2$

(आ) धनात्मक होगा। अब f_1 (आ) सदैव ऋणात्मक होगा और अतः शर्त यह हो जायेगी, कि f'_2(ग) ऋणात्मक हो, अर्थात् सम्भरण में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि का नियम लागू होगा और स्पर्श रेखा θ (1 − ना) स्पर्श रेखा θ से संख्यात्मक रूप में बड़ी होगी। यहां पर θ और $\varnothing$ वे कोण हैं जो अ विन्दु पर क्रमशः ख ग के साथ मांग तथा सम्भरण वक्रों की स्पर्श रेखाएँ बनाती है। अब ना = 1 हो तो यह एकमात्र ऐसी दशा होगी जब स्पर्श रेखा ऋणात्मक हो: अर्थात् ख व, ख ह से इस शर्त पर बड़ी हो सकती है कि अ विन्दु पर सम्भरण वक्र ऋणात्मक झुकी हो। अन्य शब्दों में, यदि एकाधिकारी उपभोक्ताओं के हितों को अपने हित के ही समान समझे तो वह उत्पादन को उस विन्दु से भी आगे बढ़ायेगा जहाँ पर सम्भरण कीमत (यहाँ पर प्रयोग किये गये विशेष अर्थ में) मांग कीमत के बराबर हो। किन्तु इसमें भी यह शर्त निहित है कि उस बिन्दु के समीप सम्भरण में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होना चाहिए: यदि इसमें क्रमगत उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू हो तो वह इसे अपेक्षाकृत कम दूर तक बढ़ायेगा।

टिप्पणी 24. (पृष्ठ 545)। मान लें कि Δ टा समय में वह धन की Δग सम्भावित मात्रा का उत्पादन करता है, और Δ क उसके उपभोग की सम्भावित मात्रा है। तब उसकी भावी सेवाओं का पूर्वप्रापित मूल्य $\int_0^{ट} र^{-टा}\left(\frac{d ग}{d टा}-\frac{d क}{d टा}\right) d टा$; जहाँ ट उसके जीवन की अधिकतम सम्भावित अवधि है। इसी के अनुरूप योजनानुसार उसके पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण की भूतकालीन लागत $\int_{-टा}^{0} र^{-टा}\left(\frac{d क}{d टा}-\frac{d ग}{d टा}\right) d टा$, जहाँ पर टि उसकी जन्म-तिथि है। यदि हम यह कल्पना करें कि वह जिस देश में जीवन पर्यन्त रहा है उसकी भौतिक समृद्धि में वह न तो वृद्धि और न कमी ही करेगा, तो $\int_{टा}^{ट} र^{-टा}\left(\frac{d ग}{d टा}-\frac{d क}{d टा}\right) dटा = 0$ होना चाहिए या उसके जन्म का समय का प्रारम्भिक बिन्दु मानते हुए और ला = टि+ट = उसके जीवन की अधिकतम सम्भावित अवधि मानते हुए इसका यह सरलतर रूप होगा:—

$$\int_0^{ला} र^{-टा}\left(\frac{d ग}{d टा}-\frac{d क}{d टा}\right) d टा = 0$$

यह कहना है कि Δ ग, Δ टा समय में उसके उत्पादन की सम्भावित मात्रा है, इस बात को संक्षिप्त रूप में व्यक्त करना है जिसे अधिक सच्चाई के साथ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

मान लें कि $पा_1$, $पा_2$,.... वे अवसर हैं जब Δ-टा-समय में वह धन की Δ_1 ग, Δ_2ग,...., मात्राओं का उत्पादन करेगा, जहां $पा_1+पा_2+\dots=1$, और Δ_1 ग, Δग,.... इत्यादि में से एक या दो श्रृंखलाएँ शून्य के बराबर हैं तो $\Delta ग = पा_1 \Delta_1 ग + पा_2 \Delta_2 ग + \dots$ ।